॥ श्रीः ॥

श्रीचरकाचार्य्येण प्रतिसंस्कृता

चरकसंहिता.

उत्तरार्द्धम्.

मथुरानिवासि-श्रीकृष्णलाल-कृतभाषानुवाद-
समलंकृता संशोधिता परिवर्द्धिता च ।

यह ग्रन्थ

श्यामलाल श्रीकृष्णलालने

मुंबई

के टाईपसे विभूषित "लक्ष्मीनारायणाख्य"
यंत्रालयमें छपवाकर प्रसिद्ध किया ।

संवत् १९५४, सन् १८९८.

Registered under Act XXV of 1867.

'चरके च चिकित्सितम्'।

प्रियवर ! ऊपर लिखा हुआ एक श्लोकका पाद है जिसको आपने सहस्रोंवार सुना होगा परन्तु आज इसके साक्षात् दर्शन मिलने और नेत्र सफल करनेका अवसर है। वास्तवमें इस श्लोकका कहना सत्यही है, जैसी विस्तारपूर्वक चिकित्सा इस ग्रन्थमें वर्णित है वैसी कभी काहेको किसी दूसरे ग्रन्थमें मिलैगी। यद्यपि रोगोंकी संख्या असंख्येय है परन्तु उनके नाश करनेवाले प्रयोगभी इसमें असंख्यही हैं। बहुतसे प्रयोग इसमें ऐसे हैं जिनकी आत्रेय ऋषिने स्वयं प्रशंसा की है।

इसही भाग में कल्पस्थान और सिद्धिस्थान दो और हैं, इनमें वमन विरेचनादि प्रयोगोंकी कल्पना तथा अन्य बहुतसी बातें वर्णन की गई हैं।

सारांश यह है कि यह ग्रन्थ बहुत प्राचीन आयुर्वेदकागौरव स्वरूप और चिकित्साका अखिलभण्डार है। इसकी महिमा बड़े बड़े डाक्टरोंने अपने मुखसे गाई है, अतएव आर्यावर्त्तके निवासियोंके आदरका पात्र है।

इस ग्रन्थक मुद्रणादि कर्म्मोंमें अनेक प्रकारके विघ्न उपस्थित हुए परन्तु वे ईश्वरकी कृपासे सब शान्त हुए। परन्तु तौभी यदि किसी प्रकारकी अशुद्धि दृष्टि पड़े तौ सूचित किये जानेपर फिर छपनेपर उपयोगमें लाई जावैगी.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

सेठजी गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
" लक्ष्मीवेंकटेश्वर " छापाखाना,
कल्याण-मुंबई.

श्यामलाल,
श्यामकाशी प्रेस,
मथुरा.

☞ यह मुखपृष्ठ (टाईटल) कल्याण-मुंबईके लक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेसमें छपाया.

चरक संहिताके उत्तरार्द्धकी

अनुक्रमणिका ।

॥ अथ चिकित्सित स्थानम् ॥

अतीसार चिकित्सितंनाम दशमोऽध्यायः ।

द्विव्रणीयचिकित्सितं नाम त्रयोदशोऽध्यायः।

उदरचिकित्सितंनाम अष्टादशोऽध्यायः

ग्रहणीरोग चिकित्सितंनामएकोनविंशोऽध्यायः

छर्दिचिकित्सितंनामत्रयोविंशोऽध्यायः

अनुक्रमणिका

इतिचिकित्सित स्थानम्

अथ कल्पस्थानम्

मदनकल्पंनामप्रथमोऽध्यायः

जीमूतकल्पंनाम द्वितीयोऽध्यायः

इक्ष्वाकुकल्पंनाम तृतीयोऽध्यायः

धामार्गव कल्पंनाम चतुर्थोऽध्यायः

वत्सककल्पंनाम पञ्चमोऽध्यायः

...स्तिव्यापदिकासिद्धिर्नाम सप्तमोऽध्यायः

प्रासृतयोगिकसिद्धिर्नाम अष्टमोऽध्यायः

त्रिमर्मीय सिद्धिर्नाम नवमोऽध्यायः

फलमात्रासिद्धिर्नाम एकादशोऽध्यायः

पृष्ठाङ्कः

उत्तरसिद्धिर्नामद्वादशोऽध्यायः

विषय

इतिअनुक्रमणिका समाप्ता

॥ श्रीः ॥

श्रीचरकाचार्य्येणप्रतिसंस्कृतम्

चिकित्सितस्थानम्

मथुरानिवासिश्री[illegible]कृतभाषानुवाद-

सहितम्

यहग्रन्थ

श्यामलाल श्रीकृष्णलाल ने छपाकर

प्रकाशितकिया

Printed.

AT L. N. PRESS.

ॐ

श्रीहरिम्वन्दे

श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः

॥ अथचिकित्सितस्थानम् ॥

प्रथमोऽध्यायः ॥

ऽभयामलकीयं(१) रसायनपादं

...(१) रसा...

...मः इतिहस्माहभगवानात्रेयः

...—तदनन्तर भगवान् आत्रेय वोले कि अव हम यहां से अभयामलकीयरसायन पाद की व्याख्या करेंगे।

भेषजके नाम और भेद

चिकित्सितंव्याधिहरपथ्यंसाधनमौषधम्।
प्रायश्चित्तप्रशमनंप्रकृतिस्थापनंहितम् ॥
विद्याद्भेषजनामानिभेषजंद्विविधश्चतत्।
स्वस्थस्योजस्करंकिञ्चित्किञ्चिदार्त्तस्य रोगनुत्।

अर्थ—भेषजके ये नामान्तर हैं यथा—चिकित्सित, व्याधिहर, पथ्य, साधन, औषध, प्रायश्चित्त, प्रशमन, प्रकृतिस्थापन और हित। भेषज दो प्रकार की होती हैं एक स्वस्थको कुछ२ ओजस्कर, दूसरी कुछ कुछ रोगी का रोग हरने वाली।

अभेषजभेदानि।

अभेषजञ्चाद्विविधंवाधनंसानुवाधनम् ॥

अर्थ—अभेषज अर्थात् कुत्सित औषधके भी दो भेद हैं। एक वाधन अर्थात् तत्काल प्राणों को नाश करने वाली और दूसरी सानुवाधन अर्थात् कुछ काल पीछे ... को हरने वाली होती हैं।

ओजस्कर भेषज का वर्णन।

स्वस्थस्योजस्करंयत्तुतद्वृष्यन्तद्रसायनम्।
प्रायःप्रायेणरोगाणांद्वितीयंप्रशमेमतम्।
प्रायःशब्दोविशेषार्थोह्युभयंह्युभयार्थकृत।

अर्थ—जो स्वस्थ अर्थात् आरोग्य मनुष्य के ओज को बढ़ने वाली औषध हैं वेही वृष्य और वेही रसायन होतीहैं प्रायः रसायन औषध विशेष करके सम्पूर्ण रोगों की शान्ति करने वाली होती हैं। यहां 'प्रायः' शब्दका अर्थ विशेषतः है। इस शब्द के इस स्थानपर प्रयोग करने का तात्पर्य्य यह है कि वृष्य और रसायन दोनों औषध उभयार्थ करने वाली हैं। अर्थात् जो वृष्यहैं वेही रसायन हैं और जो रसायन हैं वेही वृष्यहैं।

रसायन के गुण।

दीर्घमायुःस्मृतिंमेधांआरोग्यंतरुणंवयः
प्रभावर्णस्वरौदार्यंदेहेन्द्रियबलं...।
वाक्सिद्धिंप्रणतिंकान्तिंलभतेनारसायनात्

अर्थ—मनुष्य रसायन सेही दीर्घ आ-

,आरोग्यता, तरुणावस्था, की स्पष्टता,देह और इन्द्रि- बल, वाक्सिद्धि, प्रणति और करता है ।

रसायन की निरुक्ति ।

लाभोपायोहिशस्तानांरसादीनांरसायनम्

अर्थ—रसादि उत्तम धातुओं के प्राप्त करने का यह एकमात्र उपाय है इससे इसे रसायन कहते हैं।

वाजीकरणके लक्षण ।

अपत्यसन्तानकरंयत्सद्यःसंप्रहर्षणम् ।
वाजीवातिबलोयेनयात्यप्रतिहतःस्त्रियः॥
भवत्यतिप्रियःस्त्रीणांयेनयेनोपचीयते ।
जीर्यतोऽप्यक्षयंशुक्रंफलवद्येनदृश्यते ॥
प्रभूतशाखःशाखीवयेनचैत्योयथामहान् ।
भवत्यर्च्योबहुमतःप्रजानांसुबहुप्रजः ॥
सन्तानमूलंयेनेहप्रेत्यचानन्त्यमश्नुते ।
यशःश्रियंबलंपुष्टिंवाजीकरणमेवतत् ॥

अर्थ—जिसके सेवन करने से बहुतसी सन्तान की उत्पत्ति होती है,जो तत्कालही आल्हाद उत्पन्न करती है, जिसके सेवन से अश्वके समान बल प्राप्त कर मनुष्य स्त्री संगम में कभी प्रतिहत नहीं होता है,जिस के सेवन से पुरुष स्त्रियों का अत्यन्त प्यारा होजाता है और बहुत पुष्ट भी होता है। जिस के सेवन से वृद्धावस्था में भी वीर्य अक्षयहोकर फलवान् होता है। जैसे बडा पेड़ बहुतसी शाखा प्रशाखाओं से युक्त हो- कर शोभित होता है उसी तरह मनुष्य भी बहुतसी सन्तानों से युक्त होकर शोभित होजाता है। जो सन्तानकी मूल कारण है उस के सेवन करने से मनुष्य अनन्त यश श्री, बल, पुष्टि प्राप्त करता है उसेही **वाजीकरण** कहते हैं ।

स्वस्थस्योजस्करन्त्वेतद्द्विविधं प्रोक्तमौ षधम् । यद्व्याधिनिर्घातकरंवक्ष्यतेतच्चि कित्सिते ॥ चिकित्सितार्थएतावान्वि काराणांयदौषधम् । रसायनविधिश्चाग्रे वाजीकरणमेव च ॥

अर्थ—जो दो प्रकारकी औषध कही हैं एक स्वस्थ के लिये ओजस्कर दूसरी रोगना- शक । जो रोगनाशक हैं वे इस चिकित्सा- स्थान में कहींजायँगी, आगे रसायनविधि और वाजीकरण औषधों का वर्णन किया जायगा।

अभेषज का लक्षण ।

अभेषजमितिसेयंविपरीतं यदौषधात् ।
तदसेव्यंनिषेव्यन्तुप्रवक्ष्यामियदौषधम्॥

अर्थ—जो औषध से विपरीत होती है उसे अभेषज कहते हैं,वह असेव्य अर्थात् सेवन के योग्य नहीं होती, अब इस जगह सेव्य औषधि का वर्णन किया जायगा ।

रसायन के भेद ।

रसायनानांद्विविधंप्रयोगमृषयोविदुः।
कुटीप्रावेशिकंचैववातातपिकमेव च ॥

अर्थ—ऋषियों ने रसायन के दो प्रकार के प्रयोग वर्णन किये हैं उन मे से एक को **कुटीप्रावेशिक** और दूसरे को **वातातपिक** कहते हैं ।

कुटीप्रावेशिक की विधि ।

कुटीप्रावेशिकस्यादौविधिःसमुपदेक्ष्यते।

नृपवैद्यद्विजातीनांसाधूनांपुण्यकर्म्मणाम्
निवासेनिर्भयेशस्तेप्राप्योपकरणेपुरे । दि
शिपूर्वोत्तरस्यान्तुसुभूमौकारयेत्कुटीम् ॥
विस्तारोत्सेधसम्पन्नांत्रिगर्भांसूक्ष्मलोच
नाम् । घनभित्तिमृतुसुखांसुस्पर्शांमनसः
प्रियाम् ॥ शब्दादीनामशस्तानामगम्यां
स्त्रीविवर्जिताम् । इष्टोपकरणोपेतांसज्ज
वैद्यौषधाद्विजाम् ॥

अर्थ—प्रथम कुटीप्रावेशिक की विधि वर्णन की जाती है । साधु तथा पुण्यकर्म्मा राजवैद्य और द्विजातियों के निवासस्थान में जहां किसी प्रकार का भय न हो और जो उत्तम भी हो और जहां सब प्रकार की सामग्रियां भी उपस्थित हो सक्ती हों, एक स्थान लेवै, इस स्थान के उत्तर वा पूर्व की ओर एक अच्छी सी भूमि में एक कुटी बनवावै । कुटी खूब लम्बी चौड़ी और ऊँची

मानसान्दोषान्मैत्रींभूते
वताः पूजयित्वाग्रेद्विजाती
देवगोब्राह्मणान्कृत्वाततस्
टीम् ॥ तस्यांसंशोधनैः शुद्धः
बलः पुनः । रसायनंप्रयुञ्जीतत
मिशोधनम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त विधि से स्थान तयार कर के सूर्य के उत्तरायण काल में शुक्लपक्षके शुभ तिथि, नक्षत्र मूहूर्त्त, करण में हजामत बनवाकर, धृति, स्मृति और वल धारण करके श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित्त होकर मानसिक दोषों को दूर करै और सम्पूर्ण प्राणियों में मैत्री भाव स्थापनकरै, तदनन्तर प्रथम देवताओं का पूजन और फिर गोद्वि जादि का पूजन करके इनकी प्रदक्षिणा कर के उस स्थान में प्रवेश करै । प्रवेश करने के पीछे संशोधन योगों से देह को शुद्ध करै

प्रशः श्रियंवलंपुष्टिंवाजीकरणमेवतत् ॥

अर्थ—जिसके सेवन करने से बहुतसी सन्तान की उत्पत्ति होती है,जो तत्कालही आल्हाद उत्पन्न करती है, जिसके सेवन से अश्वके समान बल प्राप्त कर मनुष्य स्त्री संगम में कभी प्रतिहत नहीं होता है,जिस के सेवन से पुरुष स्त्रियों का अत्यन्त प्यारा होजाता है और बहुत पुष्ट भी होता है । जिस के सेवन से वृद्धावस्था में भी वीर्य अक्षयहोकर फलवान् होता है । जैसे वडा पेड़ बहुतसी शाखा प्रशाखाओं से युक्त होकर शोभित होता है उसी तरह मनुष्य भी बहुतसी सन्तानों से युक्त होकर शोभित

अर्थ—जो औषध से विपरीत होती है उसे अभेषज कहते हैं,वह असेव्य अर्थात् सेवन के योग्य नहीं होती, अव इस जगह सेव्य औषधि का वर्णन किया जायगा ।

रसायन के भेद ।

रसायनानांद्विविधंप्रयोगमृषयोविदुः ।
कुटीप्रावेशिकंचैववातातपिकमेव च ॥

अर्थ—ऋषियों ने रसायन के दो प्रकार के प्रयोग वर्णन किये हैं उन मे से एक को कुटीप्रावेशिक और दूसरे को वातातपिक कहते हैं ।

कुटीप्रावेशिक की विधि ।

कुटीप्रावेशिकस्यादौविधिःसमुपदेक्ष्यते ।

जल के साथ फाँकें परन्तु हन और स्वेदन कर्म कर धन से देह शुद्ध होजाय करके मळकी शुद्धि के लिये निरात्रि तक यवागू पान करै अथवा पंच दिन तक घृतपान करै अथवा सात दिनतक पुराने चावलों का माढ लेवै ॥

शुद्धकोष्ठन्तुतंज्ञात्वारसायनमुपाचरेत् । वयःप्रकृतिसात्म्यज्ञोयौगिकंतस्ययद्भवेत्

अर्थ—जब कोठा शुद्ध जान पडै तब रसायन का प्रयोग करै। रोगी की आयु, प्रकृति और सात्म्यका विचार करके जिसके लिये जैसी रसायन हितकारी हो उस को वैसीही देवै।

हरीतकी वर्णन।

हरीतकींपञ्चरसामुष्णामलवणांशिवाम् दोषानुलोमिनींलघ्वींविद्यादीपनपाचनीम् आयुष्यांपौष्टिकींधन्यांवयसःस्थापनींपराम्। सर्वरोगप्रशमनींबुद्धीन्द्रियबलप्रदाम्॥ कुष्ठंगुल्ममुदावर्तंशोषंपाण्ड्वामयं। मदम्। अर्शांसिग्रहणीदोषंपुराणंविषमज्वरम्॥ हृद्रोगंसशिरोरोगमतीसारमरोचकम्। कासंप्रमेहमानाहंप्लीहानमुदरं नवम्॥ कफप्रसेकंवैस्वर्यंवैवर्ण्यंकामलान् क्रुमीन्। श्वयथुन्तमकंछर्दिंक्लैव्यमंगावसादकम्॥ स्रोतोविबन्धान्विविधान्प्रलेपंहृदयोरसोः।स्मृतिबुद्धिप्रमोहञ्चजयेच्छीघ्रंहरीतकी॥

अर्थ--हरीत की में लवणरस को छोड़कर पांचों रस हैं इससे इसे पंचरसाभी कहते हैं यह उष्ण, लवणरस रहित, कल्याण करने वाळी, दोषानुलोमिनी, हलकी और दीपन पाचनभी होती है। यह हरड़ आयु को हितकारी, पुष्टिकर्त्ता धन्य उत्तम वयः स्थापन करने वाली सर्व रोगनाशिनी, बुद्धि इन्द्रियगणऔर बलको वढाने वाळी होतीहै। तथाकोढ़, गुल्म, उदावर्त्त, शोष, पाण्डुरोग, मदरोग, अर्श, ग्रहणीदोष, पुरानाज्वर, विषमज्वर,हृद्रोग, शिरोरोग, अतीसार अरुचि, खांसी प्रमेह, आनाह प्लीहा,नवीन उदररोग कफप्रसेक, वैस्वर्य, विवर्णता, कामलारोग कृमिरोग, शोथ, तमकश्वास, वमन, क्लीवता शिथिलता, अनेक प्रकार के स्रोतोविबंध, हृदयप्रलेप, स्मरणशक्ति कानाश, बुद्धिभ्रम, इन सब को हरड़ शीघ्रही जीतलेतीहै।

हरीतकी केअयोग्य व्यक्ति।

अजीर्णिनोरूक्षभुजःस्त्रीमद्यविषकर्षिताः सेवेरन्नाभयामेतेक्षुत्तृष्णोष्णार्दिताश्चये॥

अर्थ—अजीर्णरोगी, रूक्षभोजी, स्त्रीसेवी, मद्यप, विषभक्षी, क्षुधा, तृष्णा, और उष्णतासे पीड़ित मनुष्यों को हरड़का सेवन करना उचित नहीं है॥

आंवले के गुण।

तान्गुणांस्तानिकर्माणिविद्यादामलकीष्वपि। यान्युक्तानिहरीतक्यावीर्यस्यतु विपर्ययः॥

अर्थ—जो जो गुण और कर्म ... वर्णन किये गये हैं ... आंवले में ...

अतःश्चामृतकल्पानिविद्यात्कर्म्मभिरीदृशैः हरीतकीनांशस्यानिभिषगामलकानिच।

अर्थ—ऊपर कहेहुये गुण और कर्मों के कारण वैद्य हरड़ और आंवलेको अमृत कल्प कहते हैं।

ओषधीनांपराभूमिर्हिमवान्शैलसत्तमः तस्मात्फलानितज्जानिग्राहयेत्कालजानि तु ॥ आपूर्णरसवीर्याणिकालेकालेयथा विधि। आदित्यपवनच्छायासलिलप्रीणितानिच ॥ यान्यजग्धान्यपूतीनिनिर्व्रणान्यगदानितु। तेषांप्रयोगंवक्ष्यामि फलानांकर्म्मचोत्तमम् ॥

अर्थ—औषधियों के उत्पन्न होने का सर्वोत्तम स्थान हिमालयपर्वत है, इसलिये [illegible] जिसऔषधके लानेकी इच्छा हो [illegible] वहीं से लावै। समय समय पर विधि पूर्वक ऐसी औषधों को लावै जो रस और वीर्य से परिपूर्ण हों, सूर्य की धूप वायु छाया और जल के संसर्ग से अच्छी तरह फूली हों, जो अजग्ध हों अर्थात् जिनको कोई पशु न चरगया हो (अजग्धकी जगह अदग्ध) पाठ भी है = बिना जलीहुई), विनागली खोखलों तथा रोगों से रहित हों। अब हम उन औषधों के उत्तम २ प्रयोग फल और कर्मोंका वर्णन करेंगे।

ब्राह्म रसायन।

[illegible]नांभागानदशपलोन्मि[illegible]मलकंनवम् बिल्वाग्निमन्थश्योनाकं[illegible]लीम्। पुनर्नवासूर्पपर्णीबल[illegible] जीवकर्षभकौमेदांजीवन्तीं[illegible] शरेचुदर्भकासानांशालीनांमूल[illegible]॥ इत्येषांपञ्चमूलानांपञ्चानामुपकल्पयेत् भागान्यथोक्तांस्तत्सर्वंसाध्यंदशगुणेऽम्भसि ॥ दशभागावशेषन्तुपूतन्तद्ग्राहयेद्रसम्। हरीतकीश्चताःसर्वाःसर्वाण्यामलकानिच॥ तानिसर्वाण्यनस्थीनिफलान्यापोथ्यकूर्चनैः। विनीयतस्मिन्निर्यूहेचूर्णानीमानिदापयेत् ॥ मण्डूकपर्ण्याःपिप्पल्याःशंखपुष्प्याःप्लवस्यच। मुस्तानां सविडङ्गानांचन्दनागुरुणोस्तथा ॥ मधुकस्यहरिद्रायावचायाःकनकस्यच। भागांश्चतुष्पलान्कृत्वासूक्ष्मैलायास्त्वचस्तथा सितोपलासहस्रन्तुचूर्णितन्तुलयाधिकम्। तैलस्यद्व्याढकंतत्रदद्यात्त्रीणिचसर्पिषः॥ साध्यमौदुम्बरेपात्रेतत्सर्वंमृदुनाग्निना। ज्ञात्वालेह्यमदग्धञ्चशीतंक्षौद्रेणसंमृजेत् क्षौद्रप्रमाणंस्नेहार्द्धंतत्सर्वंघृतभाजने ॥ तिष्ठेत्संमूर्च्छितंतस्यमात्रांकालेप्रयोजयेत् यानोपरुन्ध्यादाहारमेवंमात्राजरांप्रति। षाष्टिकः पयसाचात्रजीर्णेभोजनमिष्यते वैखानसाबालखिल्यास्तथाचान्येतपोधनाः ॥ रसायनमिदंप्राश्यबभूवुरमितायुषः। मुक्त्वाजीर्णंवयश्चाग्र्यमवापुस्तरुणंवयः ॥ वीततन्द्राक्लमाश्वासन्निरातंकाः समाहिताः। मेधास्मृतिबलोपेताश्चिररात्रंतपोधनाः ॥ ब्राह्मंतपोब्रह्मचर्यंचेरुश्चात्यन्तनिश्चयाः ।रसायनमिदंब्राह्म

मायुष्कामः प्रयोजयेत् ॥ दीर्घमायुर्वय श्चाग्र्यंकामांश्चेष्टानसमश्नुतेऽइति ।

अर्थ—पांचों प्रकार के पंचमूलों के दश २ पल, हरड़ सहस्र पल, और तीन सहस्र पल आंबला लेवै। विदारीगन्धा, वृहती, पृष्णिपर्णी, कटेरी और गोखरू यह लघु पंचमूल है। बेलगिरी, अरनी, श्योनाक, खंभारी और पाटली यही बृहतपंचमूल है। सोंठ, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, खरैटी और अरंड यह पुनर्नवादिपंचमूल है। जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती और शतावरी यह जीवकादि पंचमूल हैं। सर, इक्षु, दर्भ, कांस और शालि इन सबकी जड़को तृण पंचमूल कहते हैं। इन सबको दो दो पळ लेवै और पूर्वोक्त हरड़ और आंबलेको लेकर इन के दशगुने जल में औटावै और जब जलते जलते जळका दशवां भाग रहजाय तब उस रसको अलग करलेवै। फिर हरड़ और आंवले की गुठलियों को निकालकर कूटडाले और उस क्वाथ में मिलादेवै फिर मंडूकपर्णी, पीपळ, शंखपुष्पी, केवटीमोथा, नागरमोथा, वायविड़ंग, चन्दन, अगर, मुलहटी, हल्दी, वच, ढाक और छोटी इलायची इन सबका चूर्ण बनाकर प्रत्येक में से चार चार पल लेवै और इन सब से सहस्र पल अधिक मिश्री मिला लेवै, तेल दो आढ़क, घी तीन आढ़क, इन सवको मिलाकर तांबे के पात्र में मंदी मंदी आग देकर पकावै। जब यह चाटनेके योग्य होजाय और जलने न पावै तव उतारकर ठंढी करले और डेढ़ आढ़क शहत मिलाकर एक घी के चिकने पात्र में भरदेवै। इसमेंसे यथाकालमें इतनी मात्रा देवै कि जिससे क्षुधा न मारी जाय। जब यह मात्रा पचजाय तब सांठीके चावळ और दूध का पथ्य देवै। वैखानस, बालखिल्य तथा और और तपस्वी लोग इस औषध का सेवन कर के अमित आयुवाळे होगये हैं, अपनी जीर्ण अवस्था को छोड़कर तरुण होगये हैं तन्द्रा और क्लांतिसे रहित निरोग होगये हैं। इस रसायन के सेवन करने से ये महात्मा मेधावी, स्मृतिमान् और बलयुक्त होकर चिरकाळ तक तप करतेरहे हैं और बहुत दिवस पर्य्यन्त ब्राह्मतप और ब्रह्मचर्य में लवळीन रहेहैं। आयुकी इच्छा करनेवाला मनुष्य इस ब्राह्मरसायनका सेवन करै। इस के सेवन करने से, दीर्घायु, तरुणावस्था और अभीष्ट मनोरथों को प्राप्त करता है।

द्वितीय ब्राह्मरसायन।

यथोक्तगुणानामामलकानांसहस्रं पिष्ट्वा स्वेदनाविधिनापयसऊष्मणासुस्विन्नमना तपशुष्कमनस्थिचूर्णयेत्। तदामलकस हस्रंस्वरसपरिपीतंस्थिरापुनर्नवाजीवन्ती नागवलाब्रह्मसुवर्चलामण्डूकपर्णीशताव रीशंखपुष्पीपिप्पलीवचाविडंगस्वयंगुप्ता ऽमृता चन्दनागुरुमधुकमधूकपुष्पोत्पलप द्ममालतीसुरभियूथिकाचूर्णाष्टभागसंयुक्तंपुनर्नागबलासहस्रपलस्वरसपरिपीत मनातपशुष्कंद्विगुणितसर्पिषावाक्षुद्रगुडा कृतिंकृत्वाशुचौदृढेघृतभाविते कुम्भेभस्म-

राशेरधःस्थापयेत्अन्तर्भूमेःपक्षं कृतरक्षाविधानंअथर्ववेदविदापक्षात्ययेचोद्धृत्य कनकरजतताम्रप्रवालकालायसचूर्णाष्टभागसंयुक्तमर्द्धकर्षवृद्ध्यायथोक्तेनविधिनाप्रातः प्रातः प्रयुञ्जानोऽग्निबलमभिसमीक्ष्यजीर्णेचषाष्टिकंपयासासससर्पिष्कमुपसेवमानोयथोक्तानुगुणान्समश्नुते इति।

अर्थ—पूर्वकथित गुणोंसे युक्त एकहजार आंवले लेकर दूध के भाफ से सिजावै जब अच्छी तरह सीज जांय, तब छाया में सुखाकर गुठली निकालकर चूर्ण करलेवै, फिर नये आंवलों का रस निकाल कर उस चूर्ण को अच्छी तरह भावना देवै, पश्चात् शालपर्णी, स्थिरा, पुनर्नवा, जीवन्ती, नागवला ब्रह्मसांचौली मण्डूकपर्णी, सितावर, संखाहूली पीपळ, वच, वायविडंग, केंच, गिलोय, चन्दन, अगर, मुलहठी, महुआ, नीलोफर, पद्म, माळनी, तुळसी और यूथिका इनसब का चूर्ण बनाकर आंवले के चूर्ण से अष्टमांश लेवै और सबको मिळालेवै फिर इस सबको एक हजार नागवले के रसकी भावना देकर छाया में सुखाळे, फिर दूना घृत अथवा शहत और घी मिळाकर छोटी २ गोलियांसी बनाकर एक शुद्ध औरपक्के घी के बर्तन में भरकर भूमि के भीतर रख देवै और ऊपर नीचे चारों ओर राख के ढेर से ढकदेवै,इसतरह १६ दिन दबी रहने देवै फिर पखवारे के व्यतीत होने पर उसे निकाल लेवै और उसका अष्टमांश शुद्ध किया हुआ सोना,रूपा,तांबा, मूंगा, और-कांतिसार मिलादेवै। जब इसतरह यह तयार होजाय तब पहिले दिन इसमेंसे एक तोळे लेवै फिर प्रति दिन एक एक तोले बढ़ाता रहै, परन्तु जठराग्नि न बिगड़ने पावै। औषध के पचनेपर साठीचावल दूध और घृत के साथ खावै। तौ पूर्वोक्त रसायन के सेवनके गुणोंसे युक्त होवै।

रसायन के गुण॥

भवतिचात्र। इदंरसायनंब्राह्मंमहर्षिगणसेवितम्। भवत्यरोगीदीर्घायुःप्रयुञ्जानोमहाबलः॥ कान्तःप्रजानांसिद्धार्थश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः। श्रुतंधारयतेसत्त्वमार्षंचास्यप्रवर्तते॥ धरणीधरसारश्चवायुनासमविक्रमः। सभवत्यविषंचास्यगात्रेसम्पद्यतेविषम्॥

अर्थ—इस ब्रह्मरसायन को महर्षिलोग सेवन करते हैं। इस के सेवन करने से निरोगता, दीर्घआयु, अत्यन्त बल, कान्ति युक्त, सन्तान सम्पन्न, सिद्ध मनोरथ, सूर्य चन्द्रवत तेजस्वी, श्रुतिधर, आर्षसत्वयुक्त पहाड़ के समान दृढ़ और वायुके समान विक्रमी होजाता है जिसके देह में विषप्रावि होजाता है वह निर्विष होजाता है।

च्यवनप्रासकी विधि।

बिल्वाग्निमन्थौश्योनाकःकाश्मर्यंपाटलिर्बला। पर्ण्यःचतस्रःपिप्पल्यःश्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम्॥ शृङ्गीतामलकीद्राक्षाजीवन्तीपुष्करागुरुः। अभयाचामृताऋद्धिर्जीवकर्षभकौशटी। मुस्तंपुनर्नवामेदाएलाचन्दनमुत्पलम्॥ विदारीवृषमूला

ाकोलीकाकनासिका । ऐषांपलोन्मि-
ान्भागान्शतान्यामलकस्यच ॥ पञ्च
द्यात्तदैकत्रजलद्रोणेविपाचयेत्। ज्ञात्वा
तरसान्येतान्यौषधान्यथतंरसम् ॥ त-
चामलकमुद्धृत्यनिष्कुलंतैलसर्पिषोः ।
लद्वादशकेभृष्ट्वादत्त्वाचार्द्धतुलांभिषक्
स्यपिंडकायाःपूतायालेहवत्साधुसाध
। षट्पलंमधुनश्चात्रसिद्धशीतेसमाव
॥ चतुष्पलन्तुगोक्षीर्याःपिप्पलीद्विप-
तथा । पलमेकंनिदध्याच्चत्वगेलापत्रके
रान् ॥ इत्ययंच्यवनःप्राशःपरमुक्तो
रसायनः ।

अर्थ—वेलगिरी,अरनी,श्योनाक,खंभारी
टला, खरैटी, चारोंपर्णी (मुद्गपर्णी, माष
र्णी, पृष्ठपर्णी, शालपर्णी,), पीपल, गो-
रू, दोनों, कटेरी, काकड़ासिंगी, भूयआं
ला, दाख जीवन्ती, कूठ, अगर, हरड़,
लाय, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, शाटी,
था, सांठ, मेदा, इलायची, रक्तचन्दन,
लोफर, विदारीकन्द, अडूसाकी जड़
कोळी, काकतुण्डी, ये सब एक एकपल
और पांच सौ आंवले लेकर इन सब
एक द्रोण जळ में चढ़ाकर पकावै ।
टते औटते जब जल में औषधियों का
निकल आवै तब उस क्वाथको छानकर
लग रखलेवै और आंबलेकी गुठलियोंको
काल डाले और १२ पल घृत तेल में
कर आधे तुला मिश्री मिलाकर पूर्वोक्त
थ औटावै । औटने से जवरस
र ठंढा कर लेवै पीछे छः पल शहत, चारपल बंशलोचन,
दोपल पीपल, और एक एक पल दालचीनी
छोटी इलायची, तेजपात और नागकेशर
पीसकर डाल देवै । यह च्यवनप्राश है ।
यह रसायन अत्यन्त उत्तम है ।

च्यवनप्राश के गुण ।

कासश्वासहरश्चैषोविशेषेणोपदिश्यते ॥
क्षीणक्षतानांवृद्धानांबालानांचांगवर्द्धनः।
स्वरक्षयमुरोरोगंहृद्रोगंवातशोणितम्।पि-
पासांमूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चाप्यपकर्षति ।
अस्यमात्रांप्रयुञ्जीतयोपरुन्ध्यान्नभोजनम्
अस्यप्रयोगाच्च्यवनःसुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा
मेधास्मृतिंकान्तिमनामयत्वमायुःप्रकर्ष
वलमिन्द्रियाणाम् ॥ स्त्रीषुप्रहर्षंपरमग्नि
वृद्धिंबर्णप्रसादंपवनानुलोम्यम् ॥
रसायनस्यास्यनरःप्रसादाल्लभेतजीर्णोऽ
पिकुटीप्रवेशात् । जराकृतंरूपमपास्यसर्वं
बिभर्तिरूपंनवयौवनस्य ॥

अर्थ—ऊपर लिखेहुए च्यवनप्राश के
सेवन करने से खांसी और श्वास विशेष
कर के नष्ट होजाते हैं, इस के सेवन से
क्षीणरोगी, क्षतरोगी, बृद्ध, और बालकोंके
देह पुष्ट होजाते हैं । तथा स्वरभंग, उरो-
रोग, हृद्रोग, वातरक्त, पिपासा, मूत्ररोग
और शुक्रदोष बिलकुल जाते रहते हैं ।
इसकी मात्रा ऐसे प्रमाण से सेवन करनी
चाहिये जिससे क्षुधा में कुछ बाधा न पहुंचे
। इस औषध को च्यवनऋषि ने बृद्धावस्था
मेंसेवन किया था और इस के प्रभाव से उन
को फिर युवावस्था प्राप्त होगई थी, इसी

से इसे च्यवनप्राश कहते हैं ॥

इस रसायनके प्रभाव से मनुष्य मेधा,स्मृति कान्ति, अनारोग्यत्व, दीर्घायु, इन्द्रियबळ, स्त्री संगम में प्रहृष्टता,जठराग्नि बृद्धि,शरीर के वर्ण में चमक, और वातानुलोमन प्राप्त करते हैं वृद्धावस्था के दवालेने पर भी पूर्वोक्त कुटीप्रवेश विधि से इसका सेवन किया जाय तो बुढापे के कारण से हुई कुरूपता दूर होकर नवीन युवावस्थाका सौंदर्य्य मिलताहै

आमलक रसायन ॥

अथामलकहरीतकीनामामलकविभीतकानामामलकहरीतकीविभीतकानांवापलाशत्वगवनद्धानांमृदावालिप्तानांकुकुलेस्विन्नानामकुलकानांपलसहस्रमुदूखलेसंपोथ्य दधिघृतमधुपललतैलशर्करासंप्रयुक्तंभक्षयेदनन्नभुग्यथोक्तेनविधिनातस्यान्तेयवाग्वादिभिःप्रकृत्यवस्थापनमभ्यङ्गोत्सादनं सर्पिषायवचूर्णैःअयञ्चरसायनप्रयोगप्रकर्षोद्धिस्तावदग्निबलमभिसमीक्ष्यप्रतिभोजनंयूषेणपयसावाषष्टिकःससर्पिष्कोऽतःपरंयथासुखविहारःकामभक्ष्यःस्यादनेन प्रयोगेणऋषयःपुनर्युवत्वमवापुः । बभूवुश्चानेकवर्षशतजीविनोनिर्विकाराःपरंशरीरबुद्धीन्द्रियबलसमुदिताःचेरुश्चात्यन्त निष्ठन्तपइति ॥

अर्थ—आंवला और हरड़ वा आंवला और बहेड़ा वा आंवला हरड़ और बहेड़ा इनको ढाककी छालमें लपेटकर ऊपर से मिट्टी लपेट देवै फिर पृथ्वी में एक गडा खोदकर उस में उपलों की अग्नि में रखदेवै सीजने पर इन्है निकालकर इनके भीतर गु[ठ]ली दूर करके इस में से एकहजार पल ओ[ख]ली में डालकर कूट डाले, फिर इस में द[ही] घी, शहत, तिल, तेल और शर्करा मिलाक[र] पूर्वोक्त विधि से विना भोजन किये इसक[ा] सेवन करै । क्षुधा लगने पर यवागू आदि प्रकृत्युकूल भोजन करै । घी और जौ[के] चून का देह पर मर्दन वा उबटना करै इस रसायन का इसतरह प्रयोग करना उत्त[म] है। जबतक इस रसायन का सेवन करै त[ब] तक अग्नि बल को देखकर प्रत्येक भोज[न] में मांसयूष वा दूध के साथ घी मिला हु[आ] साठी चांवलों का भोजन करै, इस से पी[छे] यथेष्ट सुखदायक आहार विहार करै । इ[स] रसायन के सेवन करने से ऋषियों ने वृद्धा[व]स्था में तरुणावस्था प्राप्तकी है। कई सै[कड़े] वर्ष की उनकी आयु हुई है, किसी प्रका[र] का उन को रोग नहीं हुआ है, तथा शरी[र] वल, बुद्धि वल और इन्द्रियबल से युक्त [हो] कर अत्यन्त निष्ठा से तप करते रहे हैं,

हरीत की रसायन ।

हरीतक्यामलकविभीतकपञ्चपञ्चमू[ल] निर्यूहेणपिप्पलीमधुमधूककाकोलीक्षी[र]कोलीआत्मगुप्ताजीवकर्षभकक्षीरशुक्ला[...]ल्कसंप्रयुक्तेनविदारीस्वरसेनक्षीराष्टगुण संप्रयुक्तेनचसर्पिष्कुम्भंसाधयित्वाप्रयु[...]नोऽग्निबलसमांमात्राञ्चजीर्णेचक्षीरस[र्पि]र्भ्यामशालिषष्टिकमुष्णोदकानुपान[...] जराव्याधिपाप्माभिचा[...] रीरेन्द्रियबल[...]

रम्भःपरमायुरवाप्नुयादिति ।

अर्थ—हरड़, आंवला, बहेड़ा, पांचोंपंच
लका क्वाथ, पीपल, शहत, मुलहठी, का
कोली, क्षीरकाकोली केंच, जीवक, ऋषभक,
और क्षीरविदारी इन सबका कल्क और
दूध, दूध से आठगुना विदारी कंद का रस
मिलाकर इन सब को सर्पिष्कुम्भ अर्थात्
सेर घृत में पकावै। इस घृतकी मात्रा
प्रयोग अग्नि बलके समान करै। औषध
पचने पर दूध और घी के साथ साठी
चांवलों को खाय ऊपर से उष्णोदक पान
रे। इस घृत के सेवन करने से बुढापा
रोग, पाप, अभिचार और भय दूर होकर
तुल शारीरिक और इन्द्रिय बलकी प्राप्ति
गी सम्पूर्ण प्रकार के कामों में हतोत्साह न
गा और आयु भी दीर्घ होगी।

हरीतक्यादिरसायनका दूसराप्रयोग

रीतक्यामलकविभीतकहरिद्रास्थिराव
विडङ्गामृतवल्लीविश्वभेषजमधुकपिप्प
सोमवल्कसिद्धेनक्षीरसर्पिषामधुशर्क
स्यामपिचसन्नीयामलकस्वरसशतपल
मामलकचूर्णमयःचूर्णचतुर्भागसम्प्र
कंपाणितलमात्रम्प्रातःप्रातःप्राश्ययथो
नविधिनासायंयूषेणपयसावासर्पिष्कं
लिषाष्टिकमश्नीयात्। त्रिवर्षप्रयोगादस्य
र्षशतमजरंवयस्तिष्ठतिश्रुतमवतिष्ठतेस
मयाःप्रशाम्यन्तिविषमविषंभवतिगात्रे
त्रमश्मवत्स्थिरीभवति अदृश्योभूतानां
भवतीति ।

र्थ—हरड़, आंवला, बहेड़ा, हलदी,
शालपर्णी, वच, बायबिडंग, गिलोय, सोंठ,
मुलहठी, पीपल, सफेद खैर इनके साथ दूध
और घीको सिद्ध करै। जब यह ठंडाहोजाय
तब इसमें घी और खांड़ मिलादे। तदनन्तर
इसमें स्वरसपीत (आंवलेके रसमें भावना दिये
हुये) आंवले का सौपल चूर्ण पच्चीस पल
लोहचूर्ण मिलादेवै। पूर्वोक्त विधिके अनुसार
हथेली भर अर्थात् दो तोले प्रतिदिन प्रातः
काल सेवन करै। सायंकालके समय मांस
यूष और दूध के साथ घृत मिलाहुआ सा
ठीचांवलों का भातखाय। इस रसायनका
तीनवर्ष पर्य्यन्त सेवन करने से आयु सौ
बर्षकी होजाती है और बुढापा पास नहीं
आता है। सुनीहुईवातबहुत दिवसतक विस्मृत
नहीं होतीहै। सम्पूर्ण रोग शान्त होजातेहैं।
बिषनष्ट होजाताहै। देहमें पत्थरके समान
दृढता होजातीहै, प्राणीयोंमें अदृश्य हो
जाताहै अर्थात् ऐसा हृष्ट पुष्ट होजाता है
कि आदमियों की उसपर निगाह नहीं
ठहरती हैं।

प्रथम पाद का उपसंहार

यथामराणाममृतंयथाभोगवतांसुधा ।
तथाभवन्महर्षीणांरसायनाविधिःपुरा ॥
नजरांनचदौर्बल्यन्नातुर्यन्निधनंनच ।
जग्मुर्वर्षसहस्राणिरसायनपराःपुरा ॥
नकेवलंदीर्घमिहायुरश्नुते। रसायनंयोवि
धिवन्निषेवते। गतिंसदेवर्षिनिषेवितांशु
भांप्रपद्यतेशर्मतथेतिचाक्षयमिति ॥

अर्थ—जैसे देवताओं को अमृत, सर्पों
को सुधा थे वैसेही प्राचीन समयमें ऋषियों

के लिये रसायन विधि थी । पूर्वकाल में रसायन सेवन करने वालों के पास सहस्र वर्ष पर्य्यन्त बुढापा, दुर्बलता, रोग और मृत्यु नहीं आते हैं ।

जो मनुष्य विधिपूर्वक रसायन सेवन करता है उसको केवल दीर्घायुही नहीं मिलती है, किन्तु उसे देव और ऋषि गण सेवित शुभगति और अक्षयकल्याण अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

अभयामलकीयेऽस्मिन्षड्योगाःपरिकीर्तिताः । रसायनानांसिद्धानामायुर्यैरनुवर्तते

अर्थ—अभयामलकीयाध्याय के इस प्रथम पाद में छः रसायन प्रयोगों का वर्णन किया गया है,इन सिद्ध रसायनों के सेवन से दीर्घायु मिलती है ।

चिकित्सितेऽभयामलकीयोरसायनपादःप्रथमः।

द्वितीयः पादः ।

अथातःप्राणकामीयं(२)रसायनपादंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अबहम प्राणकामीयनामक रसायन पाद की व्याख्या करेंगे ।

रसायन की प्रशंसा ।

प्राणकामाःशुश्रूषध्वमिदमुच्यमानममृतमिवापरमदितिसुतहितकरमचिन्त्याद्भुतप्रभावमायुष्यमारोग्यकरंवयसःस्थापनंनिद्रातन्द्राश्रमक्लमालस्यदौर्बल्यापहमनिलकफपित्तसाम्यकरं,स्थैर्यकमरबद्धमांसहरं,अन्तरग्निसन्धुक्षणं,प्रभावर्णोत्तमस्वरोत्तमकरं,रसायनविधानमनेनच्यवनादयोमहर्षयःपुनर्युवत्वमापुः।नारीष्वेष्टतमाबभूवुः। स्थिरसमसुविभक्तमांसासुसंहतस्थिरशरीराःसुप्रसन्नबलवर्णेन्द्रियाःसर्वत्राप्रतिहतपराक्रमाःक्लेशसहाश्च

अर्थ—हे प्राणों को चाहनेवाळे इस अमृतरूप रसायन कथा का श्रवण करो यह अदितिसुत देवताओं को भी हितकारी होती है, इसका प्रभाव अचिन्त्य और अद्भुत है, यह आयुको वढ़ानेवाली, आरोग्यता करनेवाली, वयःस्थापनकर्त्ता, निद्रा तन्द्रा, श्रम, क्लम, आलस्य और दुर्बलता को दूर करनेवाली होती है, वात पित्त कफ इन तीनों दोषों की समानता करती है शरीर को दृढ़ करती है, मांस के ढीळापन को दूर करती है, जठराग्निको बढ़ाती है. प्रभा, वर्ण और स्वरको उत्कृष्ट करती है, रसादि धातुओंकी उत्कर्षता करती है इस रसायन के सेवन से च्यवन से आदि लेकर बहुत से ऋषि बुड्ढेसे जवान होगये हैं । नारियों में अधिक हर्षयुक्त हुए हैं उन के शरीर का मांस दृढ़, समान और सुडौल होगया है । उन के शरीर सुसंहत और दृढ़ होगये हैं, उन के बल वर्ण और इन्द्रियगण प्रफुल्लित होगये हैं । किसीजगह उन के पराक्रम का पराभव नहीं हुआ और वे परिश्रम के कामों को सहने वाले भी होगये हैं ।

शारीरिक दोषों के कारण ।

सर्वेशरीरदोषाभवन्तिग्राम्याहारात्अम्ललवणकटुकक्षारशुष्कशाकमाषतिलपललपिष्टान्नभोजिनांविरूढनवशूकशमीधान्यविरुद्धासात्म्यरूक्षक्षाराभिष्यन्दिभोजिनांक्लिन्नगुरुपूतिपर्युषितभोजिनांअसमाध्यशनप्रायाणांदिवास्वप्नस्त्रीमद्यानित्यानांविषमातिमात्रव्यायामसंक्षोभितशरीराणांभयक्रोधशोकलोभायासबहुलानांअतोनिमित्तंहिशिथिलीभवन्तिमांसानिविमुच्यन्तेसन्धयोविदह्यतेरक्तंननिष्यन्दतेचानल्पंमेदोनसन्धीयतेऽस्थिषुमज्जाशुक्रंनप्रवर्ततेक्षयमुपैत्योजःसएवंभूतोग्लायतिसीदतिनिद्रातन्द्रालस्यसमान्वितोनिरुत्साहःश्वसिति । असमर्थश्चेष्टानांशारीरमानसीनांनष्टस्मृतिबुद्धिच्छायोरोगाणामधिष्ठानभूतोनसर्वमायुरवाप्नोति । तस्मादेतान्दोषानवेक्ष्यमाणाःसर्वान्यथोक्तानहितानपास्याहारविहारान्रसायनाप्रयोक्तुमर्हतिइत्युक्त्वाभगवान्पुनर्वसुरात्रेयउवाच ॥

अर्थ—शरीर में दोषों के उत्पन्न होने के कारण ये हैं, यथा—ग्राम्य अहार (गंवारों के सदृश भोजन); खट्टा, नमकीन, कटु, क्षार, शुष्क, शाक,उरद, तिळ,पलल और पिष्टान्न; सेवन; विरूढ़ (उगाहुआ), नवीन, शूकधान्य, शमीधान्य, विरुद्ध,असात्म्य,रूक्ष,क्षारयुक्त और अभिष्यन्दी पदार्थों का सेवन; गीला, भारी, सड़ाहुआ और बासी अन्नका सेवन; विषम भोजन, अध्यशन, दिवास्वप्न; नित्यप्रति स्त्री संसर्ग, मद्यपान; विषम और अत्यन्त व्यायाम या और किसी प्रकारसे शरीरको क्षुभित करना; अत्यन्त भय, क्रोध, शोक, लोभ और आयास से ग्रस्त होना; इन्हीं कारणोंसे मांस शिथल होजाता है; सन्धि के जोड़ अलग होजाते हैं, रक्त में जलन होती है ; मेदा अत्यन्त निष्यन्दितहोतीहै,हड्डियों में मज्जा नहीं ठहराता है, शुक्र निकलने नहीं पाता है, ओजका नाश होजाता है, इन उपद्रवों से युक्त मनुष्यको ग्लानि उत्पन्न होजातीहै, सुस्ती पैदा होती है, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य से युक्त होकर निरुत्साह होजाता है,जल्दी जल्दी सांस लेता है अर्थात् उसका दमभर-जाता है, शारीरिक और मानसिक उभय कार्य्य में असमर्थ होजाता है,उसकी स्मृति बुद्धि और प्रभा नष्ट होजाती है उसका शरीर रोगों का अड्डा होजाता है और अपनी पूर्ण आयु पर भी नहीं पहुंचने पाता है ।

इन दोषों के उत्पन्न होने पर यथोक्त आहार विहारों का परित्याग करके रसायनों का प्रयोग करना उचित है इतना कह अत्रिनन्दन भगवान् पुनर्वसु बोले ।

आंवले का घृत ।

आमलकानांसुभूमिजानांकालजानामनुपहतगन्धवर्णरसानामापूर्णरसप्रमाणवीर्याणांस्वरसेनपुनर्नवाकल्कपादसंयुक्तेनसर्पिषःसाधयेदाढकम्।अतःपरंविदारीस्वरसेनजीवन्तीकल्कसंप्रयुक्तेनअतःपरंचतुर्गुणेनपयसावावलातिवलाकषायेण

शतावरीकल्कसंयुक्तेन अनेनक्रमेणैकैकंश तपाकंसहस्रशःकंवाशर्कराक्षौद्रचतुर्भाग संप्रयुक्तंसौवर्णेराजतेमार्तिकेवाशुचौदृढे घृतभाविते कुम्भेस्थापयेत् । तद्यथोक्तेन विधिनायथाग्निंप्रातःप्रातःप्रयोजयेत् । जीर्णेचत्तीरसर्पिर्भ्यांशालिषष्टिकमश्नीयात् । अस्यत्रिवर्षप्रयोगाद्वर्षशतंवयोऽजरंतिष्ठति श्रुतमवतिष्ठतेसर्वामयाःप्रशाम्यन्तिअप्रतिहतगतिःस्त्रीष्वपत्यवान्भवतीति ॥

अर्थ—उत्तम भूमि और उत्तम कालमें उत्पन्न हुए ऐसे आंवले लावे जिनका गंध, वर्ण और किसी प्रकार से नष्ट न हुआ हो जो पूर्णरस, पूर्णवीर्य और पूर्ण प्रमाणहों, इन आंवलों का रस निकाललेवे और इससे चतुर्थांस सांठ की जड़को पीस ले इन दोनों के साथ एक आढक घृतको सिद्ध करै। तदनन्तर उसी घृतको विदारीकन्दके रस और जीवन्ती के कल्क के साथ सिद्ध करै। तदनन्तर चौगुने दूध वा वला अतिबलाके कषायके साथ सितावरका कल्क मिलाकर सिद्ध करै। इस तरह एक एक क्रम करके इसका सौ वा सहसूवार पाक करके इसका चौथाई शर्करा और शहत मिलावै । फिर इस सम्पूर्ण को सौने, चांदी वा घी के दृढ़ पात्र में भरकर रखदे। पूर्वकथित रीतिसे अग्निवलका विचार करके प्रति दिन प्रातःकाल इसका सेवन करै। औषध के पचनेपर दूध और घीके साथ शाली चांवल और साठी चांवलका भात वनाकर भोजन करै। इस औषध के तीन वरषतक सेवन करने से मनुष्य की आयु सौ वर्ष की हो जाती है बुढापा पास नहीं आता है, सुनी हुई बातका विस्मरण नहीं होता, सम्पूर्ण रोग शान्त होजाते हैं स्त्री संभोग में अनिवार्य गति होजाती है और सन्तान भी अच्छी होती है।

आमलकघृत के गुण

बृहच्छरीरंगिरिसारसारंस्थिरेन्द्रियंचातिबलेन्द्रियञ्च । अधृष्यमन्यैरतिकान्तरूपं प्रशस्तपूजासुखचित्तभाक्च ॥ बलंमहद्वर्णविशुद्धिरग्र्यास्वराघनौघस्तनितानुकारीभवत्यपत्यंविपुलं स्थिरञ्चसमश्नतोयोगमिमंनरस्य ॥

अर्थ—इस आमलकघृत के सेवन करने से मनुष्यका देह बड़ा और पर्वत के तुल्य सारयुक्त होजाता है। सम्पूर्ण इन्द्रियां दृढ़ और अत्यन्त बळवान् होजाती हैं। अन्य मनुष्यों से अजेय होजाता है, रूप अत्यन्त कमनीय होजाता है। वह मनुष्य प्रशंसा, स्वस्थचित्त और सुखका भाजन होजाता है इसके सेवन करने से अत्यन्त बल, उत्तम शुद्धवर्ण, घनवत् गम्भीर स्वर होता है तथा सन्तान भी वहुत और दृढ़ होती हैं।

आंवलेका अवलेह ।

आमलकसहस्रंपिप्पलीसहस्रसंप्रयुक्तं पलाशतरुक्षारोदकोत्तरं तिष्ठत्तदनुगतक्षारमनातपशुष्कमनस्थि चूर्णीकृतञ्चतुर्गुणाभ्यां मधुसर्पिर्भ्यांसंनीयशर्कराचूर्णचतुर्भागसम्प्रयुक्तंघृतभाजनस्थंषण्मासान्स्थपयेदन्तर्भूमेस्तस्योत्तरकालमग्निवलस

त्रांपौर्वाह्णिकःप्रयोगः।सात्म्यापेक्षः
ाहारविधिनापराह्णिकस्तस्यप्रयोगाद्व
शतमजरंवयस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ॥

अर्थ—एक सहस्र आंवले और इतनीही
ल लेकर ढाक के क्षारजलमें ऐसे भिजो
कि वे सब डूब जांय, जब वे खार के
जलको पीलें तब उन्हें छाया में सुखा
फिर गुठलियां निकालकर पीस ले,
चूर्ण में चौगुना घी और शहत मिलावै
चौथाई खांड़ डालदे इन सबको सानकर
चिकनी हांड़ी में भरकर छः महीने
पृथ्वी में गाड़देवै । तदुपरान्त इसे
लकर अग्निबल के अनुसार प्रतिदिन
इसका सेवन करै । अपरान्ह में
भोजन करै । इस रसायन के
ने से वृद्धावस्था से रहित सौवर्ष
होजाती है तथा इसके अन्यगुण
त के समान हैं ।

आंबले का चूर्ण ।

कचूर्णाढकमेकविंशतिरात्रमामल
सहस्रस्वरसपरिपीतंमधुघृताढकाभ्यां
भ्यामेकीकृतमष्टभागपिप्पलीकंकशरा
र्णचतुर्भागसम्प्रयुक्तंघृतभाजनस्थंप्रावृ
भस्मराशौनिदध्यात्तद्वर्षान्तेसात्म्यापे
प्रयोजयेदस्यप्रयोगाद्वर्षशतमजरमायु
स्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ।

अर्थ—आंबले के एक आढ़क चूर्ण को
हस्र आंबले के रस में इक्कीस दिन तक
जौये रक्खै । फिर इस में एक २ आढ़क
हत और घृत मिलाकर सानले फिर इस
में आठवां भाग पीपल और चौथाई खांड़
डालकर सबको मिलाले और घी की हांड़ी
में भरकर बर्षाऋतु में राख के ढेर में दाब
देवै, वर्षा व्यतीत होने पर इसका मात्राके
अनुसार सेवन करै, सात्म्य भोजन करै ।
इस चूर्ण के सेवन करने से वृद्धावस्था रहित
सौ वर्षकी आयु होजाती है, इस के गुण
भी पूर्वोक्त रसायन के समान होते हैं ।

विडङ्गावलेह ।

विडंगतण्डुलचूर्णानामाढकम्पिप्पलीतं
डुलानामध्यर्द्धाढकंसितोपलायाः सर्पि
स्तैलमध्वर्द्धाढकैः षड्भिरेकीकृतंघृतभाज
नस्थंप्रावृषिभस्मराशावितिसमानंपूर्वेण
यावदाशीः ॥

अर्थ—वायविडंग की मिंगी का चूर्ण
एक आढ़क, पीपल मिंगी का चूर्ण एक
आढ़क, मिश्री आधाआढ़क, घृत आधा
आढ़क, तेल आधा आढ़क, और शहत
आधा आधाआढ़क,इन छः ओंको मिलाकर
घी की हांड़ी में भरकर प्रावृट्ऋतु में राख
के ढेर में गाड़देवै । इसके गुण भी पूर्वोक्त
रसायन के समान हैं ।

आंबलों का दूसरा अवलेह ।

यथोक्तगुणानामामलकानांसहस्रमार्द्रपला
शद्रोण्यांसपिधानायांबाष्पमनुद्वमन्त्यामा
रण्यगोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत् । तानिसु
स्विन्नशीतानिउद्धृतकुलकान्यापोथ्याढ
केनपिप्पलीचूर्णानामाढकेनचविडंगतण्डु
लचूर्णानामध्यर्धेनचाढकेनशर्कराचूर्णानां
द्वाभ्यांद्वाभ्यांआढकाभ्यांतैलस्यमधुनःस

पिषश्चसंयोज्यशुचौदृढेघृतभाविर्तेकुम्भेस्था पयेदेकविंशतिरात्रमतऊर्द्धंप्रयोगःतस्यप्र योगाद्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीति समानं पूर्वेण ॥

अर्थ—सुभूमि जातानामित्यादि पूर्वोक्त गुण सम्पन्न एक सहस्र आंवले लेकर पीले पलासकी द्रोणी (हांडी, संदूक) में बन्द करके ऐसी तरह से ढकदेवै कि उस में से भाफ न निकल सकै, फिर उस द्रोणी के चारोंओर अरने ऊपळोंकी आग ऐसी रीति से जलावै कि द्रोणी को भवका तौ लगै पर जलै नहीं । इस आगकी तेजी से आंबले सीज जांयगे । उनको निकाळकर ठंढा कर के गुठली निकाल डालै और उन्हैं पीस लेवै फिर इस में एक आढ़क पीपलका चूर्ण एक आढ़क वायविडंग का चूर्ण, डेढ़ आढ़क शर्करा, तथा दो दो आढ़क तेल, शहत और घी इन सबको मिलाकर एक स्वच्छ और दृढ घृत की हांडी में भरकर इक्कीस दिन तक धरा रहने दे फिर प्रयोग करै । इस औषध के प्रयोग करने से सौ वर्ष की आयु होती है शेष गुण पूर्वोक्त रसायन के समान हैं ।

नागवला रसायन ।

धन्वनिकुशास्तीर्णेस्निग्धकृष्णमधुरमृत्ति केसुवर्णवर्णमृत्तिकेवाऽव्यपगतविषश्वाप दपवनसलिलाग्निदोषेकर्षणवल्मीकश्मशा नचैत्योषररसवर्जितेदेशेयथर्तुसुखपवनस लिलादित्यसेवितेजातामनिम्नेऽनुपहता मनध्यारूढामबालामजीर्णां अधिगतवी र्यामशीर्णपुराणपर्णामसञ्जातान्यपर्णा पसितपस्येवामासेशुचिःप्रयतःकृतदेवार्च नःस्वस्तिवाचयित्वाद्विजातीन्सुमुहूर्तेना गवलांमूलतउद्धरेत् । तेषांसुप्रक्षालिता न्त्वक्पिण्डमाम्रमात्रमक्षमात्रंवाश्लक्ष्ण पिष्टमालोड्यपयसाप्रातःप्रयोजयेत्चू कृतानिवापिबेत्पयसामधुसर्पिर्भ्यांवा योज्यभक्षयेत् । जीर्णेचक्षीरसर्पिर्भ्यां लिष्टष्टिकमश्नीयात् । संवत्सरप्रयोगा स्यवर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीतिसमानं णेतिनागवलारसायन

अर्थ—माघ वा फाल्गुन के महीने स्नानादि से पवित्र होकर देवताओं पूजन करके ब्राह्मणों से स्वस्ति के शुभ मूहूर्त्त में ऐसी नागवला से उखाड़ लावै जो धन्वन देश स्थान में उत्पन्न हुई हों जहां कुशा उत्पन्न हों, जहां की मिट्टी काळी, मधुर वा पीली हो, जहां स वर न रहता हो, जहां विषदोष, व जलदोष वा अग्निका उपद्रव न हो, ज खेती, सांपकी बांवी, श्मशान, चैत्य(वलिभूमि और ऊषर भूमि न हो, जहां प्रत्येक ऋतु में सुखदायक हवा, जल और धूप आ जाती हो, जो निम्न स्थान में उत्पन्न हुई हो, जो अनुपहत हो अर्थात् कि कीडे ने न खाई हो, जो अनध्यरूढा अर्थात् जिस पर और कोई पौदा आदि उगा हो, जो न नवीन और न पुरानी हो, जो पूर्णवीर्य हो, जिसके पत्ते पुराने

हुए न हों, जिस में अन्यपत्ते न आये हों नागवला की जडको खूब धोकर पीस ले इस में दो या चार तोले दूध मिकर प्रातःकाल पानकरै अथवा फंकी ले- ऊपर से घी और शहत मिलाहुआ पानकरै। इस औषध के पचने पर दूध र घी के साथ शाली चांवल वा साठी ांवलका भातखाय। एक वरसतक इसका वन करने से सौ बर्ष की आयु होजाती इस के शेषगुण पूर्वोक्त रसायनके सदृश यह नागवलारसायन है।

तिवलाचन्दनागुरुधवतिनिशखदिर शपासनस्वरसाःपुनर्नवान्ताश्चौषधयो ायेवयःस्थापनव्याख्यातास्तेषांस्वर नागवलावत्स्वरसानामलाभेत्वयंस्व विधिःचूर्णानामाढकआढकमुदकस्या ात्रस्थितंमृदितपूतंस्वरसवत्प्रयोज्यम्

र्थ—वला अतिवला, चन्दन, अगर, तिनिश, खदिर शीशम, असन, तथा न्न ये दस औषधें वयःस्थापन गण न की गई हैं, इन सबका रस नाग सह... से नागवला ...स्वरसन

शुचौशुक्लेवामासेसंगृह्ययवपल्वेमाषपल्वे वानिधापयेत्। तानिचतुर्मासस्थितानि सहासिसहस्येवामासेप्रयोक्तुमारभेत॥ शीतस्निग्धमधुरोपस्कृतशरीरःपूर्वन्दशभ ल्लातकान्यापोथ्याष्टगुणेनाम्भसासाध येत्। तेषांरसमष्टभागावशिष्टंपूतंसपय स्कम्पिवेत्सर्पिषान्तर्मुखमभ्यज्यतान्ये कैकभल्लातकोत्कर्षापकर्षेणदशभल्ला तकान्यात्रिंशतःप्रयोज्यानि॥ नातः परमुत्कर्षःप्रयोगविधानेनसहस्त्रपरोभ ल्लातकप्रयोगः। जीर्णेचसर्पिषाप यसाशालिषष्टिकाशनमुपचारःप्रयोगान्ते चद्विस्तावत्पयसैवोपचारःतत्प्रयोगाद्व र्षशतमजरंवयस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेणेति भल्लातकक्षीरम्॥

अर्थ—अनुपहत, रोग रहित, पूर्णप्रमाण पूर्णवीर्य्य, पकी हुई जामनके सदृश कृष्ण-वर्ण भिलाये आषाढ मास के शुक्लपक्ष में लाकर जौके ढेर वा उडद के ढेर में गाढ देवै और चार महीने पीछे निकालकर अगहन वा पौष के महीने में इनका प्रयोग करना प्रारम्भ करै। भिलाये सेवन करने से पहिले शीतळ, स्निग्ध और मधुर द्रव्यों से शरीर ... करै ... दस भिलायों

एक सहस्त्र भिलाये का सर्वोत्कृष्ट प्रयोग इस तरह है कि प्रथम एक भिलाये से एक २ की वृद्धिद्वारा दस पर्य्यन्त सेवन करै फिर एक एक घटाकर एक तक सेवन करै इस तरह सब मिलकर १०० भिलाये हुए, जब ये पच जांय और किसी प्रकार का उपद्रव न करें तब एक से लेकर तीस तक बढाता जाय, ये सब चारसौ पेंसठ हुए और फिर एक एक घटाने लगै अर्थात् २९ से लेकर एक तक ले आवै ये सब चार सौ पेंतीस हुए इस तरह ५५+४५+४६५+४३५ सब मिलकर पूरे एक सहस्त्र हुए। जब भिलाया पचजाया करै तब दूध और भात का सेवन करै, इसी तरह सहस्त्र मिलावे के प्रयोग के पीछे सायंकाल और प्रातःकाल दूध भातही का सेवन करता रहै। इस प्रयोग से सौ वर्ष पर्य्यन्त बुढापा पास नहीं आता है,इस के दोषगुण पूर्वोक्त रसायनों के समान हैं, यह भल्लातकी क्षीर का प्रयोग है।

भल्लातकमधु।

भल्लातकानाञ्जर्जरीकृतानांपिष्टस्वेदनं पूरयित्वाभूमावाकण्ठन्निखातस्यस्नेहभा वितस्यदृढस्योप... स्य...

फिर एक चिकनी हांडी में भरै जिस तले में तीन चार छोटे छोटे छिद्र हों उस के ऊपर एक सरवा ढक देवै इस हांडी का मुख काळी चिकनी मिट्टी से वन्द कर दे, इस हांडीके नीचे एक और चिकनी हांडी लगाकर नींचे की हांडी के मुख और ऊपरकी हांडी के पेंदे को भी चिकनी मिट्टी से वन्द करदे इन हांडियों को कंठ पर्य्यन्त पृथ्वी में गाढकर उपलों की आग चारों ओर लगा दे। जब ऊप[र] की हांड़ी में से रस टपक टपक कर की हांड़ी में आजाय तब उसे निकाल इस रसका आठवां भाग शहत और दुगु[ना] घृत डालकर सेवन करै। इस भल्लातकम[धु] के सेवन करने से पूर्ववत् सौ वर्ष पर्य्यन[्त] बुढ़ापा पास नहीं आता है।

भल्लातक तैल।

भल्लातकतैलपात्रंसपयस्कंमधुकेनकल् नाक्षमात्रेण शतपाकंकुर्य्यात्समानं पूर्वेण

अर्थ—भिलाये का तेळ एक लेकर दूध और ... पथ्य ... पाक ...

र्थ—भल्लातकक्षीर, भल्लातकमधु, भल्ला ळ और इसीतरह गुड़भल्लातक, भल्ला- कयूष, भल्लातकसर्पि, भल्लातकपलल, भल्ला सक्तु, भल्लातकलवण, और भल्लातक ा येदस प्रकार की रसायन होती हैं।

द्वितीय पादका उपसंहार।

वतिचात्र। भल्लातकानितीक्ष्णानि कीन्यग्निसमानिच। भवन्त्यमृतकल्पा निप्रयुक्तानियथाविधि ॥ एतेदशविधा षांप्रयोगाःपरिकीर्तिताः। रोगप्रकृति म्यज्ञस्तान्प्रयोगान्प्रयोजयेत् ॥ क ानसरोगोऽस्तिनविबन्धोस्तिकश्चन। भल्लातकंहन्यात्शीघ्रंमेधाग्निवर्धनम्॥ णाकामाःपुराजीर्णाश्च्यवनाद्यामहर्ष ः। रसायनैःशिवैरेतैर्बभूवुरमितायुषः। ानन्तपोब्रह्मचर्यमध्यात्मंध्यानमेवच। र्घायुषोयथकामंसंभृत्यत्रिदिवंगताः॥ स्मादायुःप्रकर्षार्थंप्राणकामैःसुखार्थि ः। रसायनविधिःसेव्योविधिवत्सुस माहितैरिति॥

र्थ—भिलाये अग्नि के समान तीक्ष्ण र पाचक होते हैं यदियथारीति से नका प्रयोग किया जाय तौ ये अमृत के समान गुणदायक हैं। भिलाये के ये दस प्रयोग वर्णन किये गये हैं। रोग प्रकृति और सात्म्य के अनुसार इनका प्रयोग करै। कोई ऐसा कफज और विबन्ध रोग नहीं है जो भिलाये से दूर न होता हो, प्राचीनकाल में जीने की इच्छा करने वाले वृद्ध च्यवनादिक महर्षियों ने इन कल्याण कारक रसायनों का सेवन किया था और दीर्घायु होगये थे। इन महर्षियों ने अमित ज्ञान, तप, ब्रह्मचर्य्य, अध्यात्मज्ञान ध्यान और दीर्घायु प्राप्त करके अन्त में स्वर्गलाभ किया था-अतएव जो कोई प्राणकामी और सुखार्थी अपनी आयुको बढाना चाहै उसे उचित है कि ध्यान पूर्वक विधिवत् रसायनों का सेवन करै।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

रसायनानांयोगाःसिद्धाभूतहितैषिणा निर्दिष्टाःप्राणकामीयेसप्तदशमहर्षिणेति।

अर्थ—प्राणियों में हित रखने वाले भग- वान् पुनर्वसु ने रसायनों के ये सत्रह प्रयोग इस प्राणकामीयाध्याय में वर्णन किये हैं।

प्राणकामीयोनाम द्वितीयः पादः समाप्तः।

—०—

तृतीयः पादः।

अथातःकरप्रचितीयंरसायनपादंव्या ख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम करप्रचितीय नामक तृतीय पादकी व्याख्या करते हैं।

आमलकायसरसायन।

करप्रचितानांयथोक्तगुणानामामलकाना मुद्धृतास्थ्नांशुष्कचूर्णितानांपुनःमाघेफा ल्गुनेवामासेत्रिःसप्तकृत्वःस्वरसपरिपी तानांपुनःशुष्कचूर्णीकृतानामाढकमेकंग्रा हयेत्। अथजीवनीयानांबृंहणीयानांस्त न्यजननाशुक्रवर्द्धनानांवयःस्थापनानांष

ड्विरेचनशताश्रितीयोक्तानामौषधानां चन्दनागुरुधवतिनिशखदिरशिंशपासन साराणाञ्चाणुशीश्च्छन्नानांत्रिफलानामभयाविभीतकपिप्पलीवचाचव्यचित्रकविडङ्गानाञ्चसमस्तानामाढकमेकंदशगुणेनाम्भसासाधयेत् । तस्मिन्नाढकावशेषेरसे सुपूतेतान्यामलकचूर्णानिदत्वागोमयाग्निभिर्वंशविदलशरतेजनाग्निभिर्वासाधयेत् यावदुपनयाद्रसस्यतमनुपदग्धमुपहृत्याय सीषुपात्रेष्वास्तीर्यशोषयेत् । सुशुष्कंकृष्णाजिनस्योपरिदृषदिश्लक्ष्णपिष्टमयः स्थाल्यान्निधापयेत् । तच्चूर्णमयीश्चूर्णाष्टभागसम्प्रयुक्तंमधुसर्पिर्भ्यांअग्निबलमभिसमीक्ष्यप्रयोजयेदिति ॥

अर्थ—पूर्वोक्तगुण सम्पन्न आंवलों को माघ वा फाल्गुनके महीने में हाथसे तोडकर लावै और उनकी गुठली निकालकर छोटे २ टुकडे कर ले फिर आंवलों के रस की इकीस भावना देकर सुखाकर फिर चूर्ण कर के एक आढक तयार कर लेवै । पीछे षड् विरेचन शताश्रितीय अध्याय में कहे हुए जीवनीय, वृंहणीय, स्तन्यजनन, शुक्र वर्द्धन और वयःस्थापनगणोक्त औषधों को लेकर छोटे २ टुकडे कर के एक पात्र में रख ले और उसी में चन्दन, अगर, धौ खैर, शीशम और असन इनका सार लेवै तथा हरड़, वहेड़ा, पीपल, वच, चव्य, चीता, वायविडंग इन सब औषधियों को तेल में एक आढक लेवै और दसगुने जल में चढा कर सिद्ध करलेवै जब एक आढक रस शेष रहजाय तबउसे छानकर पूर्वोक्त [आं]वले का चूर्ण डालकर ऊपले, बांसकी [...] वासरकंडे की आग से धीरे धीरै पका[वै] जब रस न रहै और जलने भी न पावै [तब] अग्नि पर से उतार कर एक लोह के पा[त्र में] फैलाकर सुखा लेवै । फिर काले मृग चर्म पर एक शिला बिछाकर इसे बारी[क] पीसकर एक लोहे के पात्र में भरकर र[ख] देवै । इस चूर्ण में अष्टमांश लोह चूर्ण मिलाकर घी और शहत के साथ अग्नि[बल] के अनुसार प्रतिदिन सेवन करै ।

अमलकायसरसायनकेगुण ।

एतद्रसायनंपूर्ववासिष्ठःकश्यपोऽङ्गिरा[ः] जमदग्निर्भरद्वाजोभृगुरन्येचतद्विधाः ॥ [प्र]युज्यप्रयतामुक्ताःश्रमव्याधिजरामयात् । [यथा]वदिच्छन्तपस्तेपुःतत्प्रभावान्महाबलाः तपसाब्रह्मचर्येणध्यानेनप्रशमेनच । र[सा]यनविधानेनकालयुक्तेनचायुषा ॥ स्थि[ता]महर्षयःपूर्वंनहिकिञ्चिद्रसायनम्।ग्रा[म्या]णामन्यकार्याणांसिद्धिश्चप्रयतात्म[नाम्] इदंरसायनञ्चक्रेब्रह्मावार्षसहस्रिक[म्] जराव्याधिप्रशमनंबुद्धीन्द्रियबलप्रद[म्]

अर्थ—बहुत पुराने समय में इसरसाय[न] को वशिष्ठ, काश्यप, अंगिरा, जमदग्नि भरद्वाज, भृगु तथा अन्यान्य वैसेही बहु[त] से ऋषियों ने नियमित रीति से सेव[न] किया था, इस के सेवन करने से वे, श्र[म] व्याधि, जरा और अन्य रोगों से मुक्त होकर महाबली होगयेथे और इसके प्रभाव से स्वेच्छापूर्वक तप करते रहे। तप, ब्रह

र्य, ध्यान, शान्ति और रसायन प्रयोगों द्वारा जो आयुकी वृद्धि होती है उसपर कुछ प्रभुत्व नहीं होता है पहिले महर्षियों ने कोई रसायन सेवन नहीं कीथी । ग्राम्य में, अन्यकार्य तथा अजितेन्द्रियतामें भी अनुरक्त होने से उनकी सिद्धि नहीं होसक्ती है। यह सहस्रवार्षिकी रसायन ब्रह्मा ने बनाई है इस के सेवन करने से बुढ़ापा और रोग शान्त होजाते हैं तथा बुद्धिबल और इन्द्रियबल बढ़ता है ॥

केवलआमलकरसायन ।

वत्सरंपयोवृत्तिर्गवांमध्येवसेत्सदा । सावित्रींमनसाध्यायन्ब्रह्मचारीजितेन्द्रियः ॥ संवत्सरान्तेपौषींवामाघींवाफाल्गुनींतथा । अहोपवासीशुद्धश्चप्रविश्याम लकीवनम् ॥ बृहत्फलाढ्यमारुह्यद्रुमंशाखागतंफलम् । गृहीत्वापाणिनातिष्ठेज्जपन्ब्रह्मामृतंक्षणम् ॥ तदाह्यवश्यममृतंवसत्यामलकेक्षणम् । शर्करामधुकल्पानिभवन्तिमृदूनिच ॥ भवन्त्यमृतसंयोगातानियावन्तिभक्षयेत् । जीवेद्वर्षसहस्रा णितावन्त्यागतयौवनः ॥ सौहित्यमेषांगत्वातुभवत्यमरसन्निभः । स्वयंचास्योपतिष्ठन्तिश्रीर्वेदावाक्यरूपीणी ॥

अर्थ—एक वर्ष पर्य्यन्त केवल दूध पीकर गौओं के बीच में रहै, मन में सावित्रीका ध्यान करता हुआ ब्रह्मचर्य तथा जितेन्द्रिय व्रत धारण करै। जब इस तरह एक वर्ष व्यतीत होजाय तब एक दिन निराहार रहकर स्नानादि से पवित्र होकर पौष, माघ वा फाल्गुनकी पूर्णमासी के दिन आंबले के बन में घुसजाय और एक बड़े आंबले के वृक्षपर जो फलों से लदा हो चढ़जाय और डाली से एक फल को हाथ से तोड़ कर ब्रह्मामृत मंत्र का जाप करै, इस जप के करने से तत्क्षण आंबलेके फल में अमृत का संचार होगा और उस आंबले में शर्करा युक्त मधुर स्वाद होजायगा तथा वह स्निग्ध और मृदु भी होगा, उसी समय आंबलेको को खाले। इस के सेवन करने से युवा-वस्थाही में सहस्रवर्ष पर्य्यन्त जीवैगा, उस समय इन फलों को पेट भरकर खालेने से देवताओं के सदृश कांति होती है और लक्ष्मी तथा सरस्वती स्वयं उस के पास आकर बास करेंगी।

लौह रसायन ।

त्रिफलायारसेमूत्रेगवांक्षारेचलावणे। क्रमेणचेङ्गुदीक्षारेकिंशुकक्षारएवच ॥ तीक्ष्णायसस्यपत्राणिवह्निवर्णानिसाधयेत्। चतुरङ्गुलदीर्घाणिसमोत्सेधतनूनिच ॥ ज्ञात्वातान्यञ्जनाभानिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् । तानिचूर्णानिमधुनारसेनामलकस्यच ॥ युक्तानिलेहवत्कुम्भेस्थिता निघृतभाविते । संवत्सरंनिधेयानियवपल्लेतदेवच ॥ दद्यादालोडनंमासेसर्वत्रालोडयन्बुधः । संवत्सरात्ययेतस्यप्रयोगोमधुसर्पिषा ॥ प्रातः प्रातर्बलापेक्षीसात्म्यञ्जीर्णेचभोजनम् । एषएवचलोहानांप्रयोगःसम्प्रकीर्त्तितः । अनेनैवविधानेनहेम्नश्चरजतस्यच ॥ आयुःप्रकर्षकृ

त्सिद्धः प्रयोगः सर्वरोगनुत् । नाभिघातै नचातंकैर्जरयानचमृत्युना॥ अधृष्यःस्या द्गजप्राणःसदाचातिबलेन्द्रियः। धीमान् यशस्वीवाक्सिद्धःश्रुतधारीमहाबलः ॥ भवेत्समांप्रयुञ्जानोनरोलौहरसायनम्।

अर्थ—कांतिसार लोह के चार अंगुल लम्बे चौड़े बहुत पतले पत्र बनवाकर अग्नि में सुरखासुरख गरमकर करके क्रम से त्रिफला के क्वाथ, गोमूत्र, नमकक्षार, गोंदीक्षार पलाशक्षार में भिजोवै, जब अंजनके समान रंग होजाय तब महीन पिसवा डालै। इस चूर्ण को शहत और आंवले के रस में सानकर लोहवत् करके घी के चिकने घड़े में भरकर जौ के ढेर में बरस दिनतक दबा रक्खै, प्रतिमास इस घड़े को निकाल कर कुम्भस्थ द्रव्योंको हिलाता रहै, बरस दिन के व्यतीत होने पर शहत और घीके साथ प्रतिदिन प्रातःकाल बल के अनुसार इसकी मात्राका सेवन करै। औषधके पचने पर सात्म्य भोजन करै।

यह लौहरसायन का प्रयोग वर्णन किया गया है, इसीतरह सुवर्ण रसायन और रूप रसायन की भी विधि है । यह प्रयोग आयुवर्द्धक, सिद्ध और रोगनाशक है। इस प्रयोग के सेवन से चोट, रोग, बुढ़ापा और मृत्यु कुछ असरनहीं करसक्ते हैं, उस के प्राण हाथी के समान दृढ़ जाते हैं। उस की इन्द्रियाँ अत्यन्त बलवान् होजाती हैं वह पुरुष धीमान् यशस्वी, वाक्सिद्ध, श्रुतधारी और महाबली होजाता है । इस लौहरसायन का प्रयोग एक वर्ष पर्य्य करने से फलप्रद होता है ॥

ऐन्द्रीरसायन ।

ऐन्द्रीमत्स्याक्षकोब्रह्मीवचाब्राह्मसुवर्च पिप्पलंलवणंहेमशंखपुष्पीत्रिपङ्घृतम् एषान्त्रियवकान्भागान्हेमसर्पिर्विषैर्वि ना॥ द्वौयवौतत्रहेम्नस्तुतिलन्दद्याद्विषस च । सर्पिषश्चपलन्दद्यात्तदैकध्यंप्रयो येत्घृतप्रभूतंसक्षौद्रञ्जीर्णेचान्नंप्रशस्यते जराव्याधिप्रशमनंस्मृतिमेधाकरम्परम् आयुष्यंपौष्टिकंबल्यंस्वरवर्णप्रसादन परमोजस्करंचैतत्सिद्धमेतत्रसायनम् नैनंप्रसहतेकृत्यानालक्ष्मीर्नविषन्नरुक् श्वित्रंसकुष्ठंजठराणिगुल्माः । प्लीहापु णोविषमज्वरश्च ॥ मेधास्मृतिज्ञानहराश्च रोगाः। शाम्यन्त्यनेनातिबलाश्चवाताः।

अर्थ—इन्द्रायणकीजड़, मछेछी, ब्राह्मी बच, ब्रह्मसांचौली, पीपल, नमक ये स दो २ जौ भर लेवै, सुवर्ण दो जौ, वि तिलभर, घृत एक पल इन सबको कर के सेवन करै । इस औषध के पर घृतप्लुत मधुमिश्रित भोजन करै। रसायन जरानाशक, व्याधिशमनकर्ता अत्यन्त स्मृतिवर्द्धक, मेधावर्द्धक, आयुवर्द्धक पुष्टिवर्त्ता, बलकारक, स्वरवर्द्धक, वर्णप्रसा दक, अत्यन्त ओजस्कर है । इस सि रसायन को सेवन करनेवाले के पास अलक्ष्मी, न विष और न रोग जा हैं। इस रसायन के सेवन से श्वित्रकुष्ठ जठररोग, गुल्मरोग, प्लीहा, विषमज्वर

तनज्वर,, मेधा–स्मृति–ज्ञाननाशकरोग, बलवान् वातरोग नष्ट होजाते हैं ।

मेध्यरसायन ।

ण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः क्षीरेण ष्टीमधुकस्यचूर्णम् ॥ रसोगुडूच्यास्तु मूलपुष्पयाः कल्कःप्रयोजयः खलुशंख प्याः । आयुःप्रदान्यामयनाशनानि ाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि ॥ मेध्यानिचै निरसायनानि मेध्याविशेषेणचशंख पुष्पी ।

र्थ—दूधके साथ मण्डूकपर्णी का रस मुलहटी का चूर्ण, वा गिलोय का रस शंखपुष्पी की जड़ और पुष्पका कल्क न करने से आयु बढ़ती है, रोग नष्ट जाते हैं, बल अग्नि वर्ण और स्वर ते हैं। ये चारों रसायन मेधावर्द्धक हैं। न में से शंखपुष्पी अधिक मेधावर्द्धक है।

पीपलरसायन ।

ष्टौसप्तदश वापिप्पलीर्मधुसर्पिषा ॥ नगुणान्वेषीसमामेकांप्रयोजयेत् । तस्त्रस्तुपूर्वाह्णेभुक्त्वाग्रेभोजनस्य ॥ पिप्पल्यःकिंशुकक्षारभाविताघृतभ ताः । प्रयोज्यामधुसंमिश्रारसायनगु षिणा ॥ जेतुङ्कासङ्क्षयंशोषंश्वासंहि ङ्गलामयान् । अर्शांसिग्रहणीदोषंपांडु विषमज्वरम्॥ वैस्वर्यंपनिसंशोफंगुल्म वातवलासकम् ।

अर्थ—जो रसायन के सदृश गुण चाहते उन्हें उचित है कि प्रतिदिन पांच, आठ ात, वा दश पीपल घृत और शहत के साथ एक वर्ष पर्य्यन्त सेवन करें ।

अथवा पीपलोंको ढाकके खारकी भावना देकर घृत में भून लेवै और भोजन करने से पहिले प्रतिदिन दुपहर से पहिले शहत में मिलाकर तीन पीपल खाय तौ खांसी, क्षय, शोष, श्वास, हिचकी, गलरोग, अर्श, ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, विषमज्वर, विस्वर पीनस, शोक, गुल्म, वातरोग, कफरोग ये सब नष्ट होजाते हैं ।

वर्द्धमान्पीपल ।

क्रमवृद्ध्यादशाहानिदशपिप्पलिकीदनम् वर्द्धयेत्पयसासासार्द्धंतथाचापनयेत्पुनः जीर्णेजीर्णेचभुञ्जीतषष्टिकंक्षीरसर्पिषा। पिप्पलीनांसहस्रस्यप्रयोगोऽयंरसायनम् पिष्टास्तावलिभिःसेव्याः शृतामध्यबलै नरैः ॥ शीतीकृताह्रस्वबलैर्योज्यादोषा मयान्प्रति । दशपैप्पलिकःश्रेष्ठोमध्यमः षट्प्रकीर्त्तिताः॥प्रयोगोयस्त्रिपर्यन्तःसकर्न यान्सचाबलैः । बृंहणंस्वर्यमायुष्यंप्ली होदरविनाशनम् ॥ वयसःस्थापनंमेध्यं पिप्पलीनांरसायनम् ॥

अर्थ—प्रतिदिन दश दश पीपल बढ़ाता हुआ दुग्धके साथ सेवन करै इसी तरह फिर घटाता हुआ लेजाय यह दश दिनका प्रयोग है औषध के पचने पर दूध भात् का भोजन करै। यह सहस्र पीपलों का प्रयोग रसायन है । बलवान पुरुषइन सबको पीसकर सेवन करै, मध्यबलवाला पीपलों का क्वाथ पान करै, ह्रस्वबळवाला पीपलों का शीत कषाय सेवन करै, इस

तरह दोष और रोग के अनुसार इसका सेवन करै । इसकी दश पीपळ की मात्रा उत्तम है, छः की मध्यम और तीन की निकृष्ट है यह दुर्बल पुरुषोंके लिये अच्छी है । **वर्द्धमान्** पीपल का सेवन वृंहणकर्त्ता स्वरवर्द्धक, प्लीहानाशक, उदररोगनाशक वयःस्थापनकर्त्ता और मेध्य है ।

त्रिफला रसायन ।

जरणान्तेऽभयामेकांप्राग्भुक्तेद्वेविभीतके भुक्त्वातुमधुसर्पिर्भ्यांश्चत्वार्यामलकानि च । प्रयोजयेत्समामेकांत्रिफलाया रसायनम् ॥ जीवेद्वर्षशतंपूर्णमजरोऽव्याधिरेवच ।

अर्थ—प्रथम दिन का आहार पचने पर ही प्रातःकाल एक हरड खाले, तदुपरान्त भोजन करने से पहले दो बहेड़े खाले, भोजन करने के पश्चात् शहत और घी के साथ चार आंवले खाले, इस तरह एकवर्ष पर्य्यन्त इस त्रिफळा रसायन का सेवन करता रहै तौ अजर और व्याधि रहित होकर सौबर्ष पर्य्यन्त जीता रहै ।

दूसरी त्रिफला रसायन ।

त्रैफलेनायसींपात्रींकल्केनालेपयेन्नवाम्॥ तमहोरात्रिकंलेपंपिवेत्क्षौद्रोदकाप्लुतम्। प्रभूतस्नेहमशनंजीर्णेतत्रप्रशस्यते॥अजरोऽरुक्समाभ्यासाज्जीवेत्तस्यसमाशतम् ।

अर्थ—त्रिफला को घोटकर लुगदी बनाकर एक नवीन लोहे के पात्रपर लेप कर दिया करै और एक रात दिन तक उसी पर रहने दे दूसरे दिन उतारकर शहत और जल के साथ सेवन करै । औषध पचने पर घृतप्लुत आहार करै इस[...] वरसदिन तक इस रसायन के से[...] करने से सौ वरष पर्य्यन्त अजर औ[...] आरोग रहकर जीता रहैगा ।

तीसरी त्रिफला रसायन ।

मधुकेनतुगोक्षीर्यापिप्पल्याक्षौद्रसर्पिषा त्रिफलासितयाचापियुक्तासिद्धंरसाय[...]

अर्थ—मुलहटी वा वंशलोचन वा पीपल[...] शहत और घृतके साथ भी त्रिफलाका सेव[...] करना रसायन है अथवा मिश्री के [...] त्रिफला कीं फंकी लेवै ।

चौथी त्रिफला रसायन ।

सर्वलौहैः सुवर्णेनवचयामधुसर्पिषा॥[...] डङ्गपिप्पलीभ्यांचत्रिफलालवणेनच । [...]वत्यायुष्यदाधन्याजरारोगनिवर्हणी

अर्थ—सब प्रकार के लोहों के सा[...] बच के साथ, शहत घी के साथ, वायवि[...] डंग पीपल के साथ अथवा लवण के स[...] एक वर्ष तक त्रिफळा का सेवन [...] मेधावर्द्धक, स्मृतिकारक, वलप्रद, आयु[...] धन्य और जरारोग नाशक होता है ।

शिलाजतु प्रयोग ।

अनम्लञ्चकषायञ्चकटुपाकैःशिलाज[...] नात्युष्णशीतंधातुभ्यःचतुर्भ्यस्तस्यसम[...]वः । हेम्नश्चरजतात्ताम्राद्वरंकृष्णायसा[...]पि ॥ रसायनंतद्विधिभिस्तद्वृष्यन्तच्चरो[...]गनुत्। वातपित्तकफघ्नैश्चनिर्यूहैस्तत्सुभ[...]वितम्॥ वीर्योत्कर्षपरंयातिसर्वैरेकैकशो[...]ऽपिवा । प्रक्षिप्तोद्धृतमप्येनंपुनस्तत्प्रक्षि[...]

से ॥ कोष्णंसप्ताहमेतेनविधिनातस्य
ना ॥ पूर्वोक्तेनविधानेनलोहैःचूर्णी
:सह ॥ तत्पीतंपयसादद्याद्दीर्घमायुः
ान्वितम् । जराव्याधिप्रशमनंदेहदा
करंपरम् ॥ मेधास्मृतिकरंधन्यंक्षीरा
तत्प्रयोजयेत् । प्रयोगः सप्तसप्ताहास्त्र
यश्चैकश्चसप्तकः ॥

र्थ—शिलाजीत अनम्ल, कषाय, कटुपा
, न अत्यन्त शीत होता है। यह सोना
, तांवा और लोहा इन चारधातुओं
उत्पन्न होता है । इन में से लौहज
ाजतु उत्तम होता है । इसका विधि
क सेवन करने से यह रसायन बृष्य
र रोगनाशक है । वात पित्तकफनाशक
यों की इसे भावना देने से यह उत्तम
गोत्पादक होजाता है । इन तीनों प्रकार
क्काथों को मिलाकर वा अलग अलग
२ उष्णक्काथ की शिलाजीत को सात
तक भावना देवै । यह इसको
देने की विधि है । फिर इस को
सब प्रकार के लोह चूर्णो के साथ
ाकर दूध के साथ पान करै तौ दीर्घ
और सुख मिलै । यह शिलाजीत जरा
धिनाशक देह को अत्यन्त दृढका
मेधावर्द्धक स्मृतिकारक और धन्य है।
पर दूधका अनुपान करै । इस के प्र-
की अवधि सात सप्ताह, तीन सप्ताह,
एक सप्ताह भी है ।

शिलाजतुकीमात्रा

दृष्टःत्रिविधस्तस्यपरोमध्योवरस्तथा।
पलमर्द्धपलंकर्षोमात्रातस्यत्रिधामता ॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट ये तीन प्रकार की मात्रा शिलाजीत की हैं यथा-एक पलकी उत्तम आधेपल की मध्यम और एक कर्ष की निकृष्ट ।

शिलाजतुके जातिभेद ।

जातेर्विशेषंसविधितस्यवक्ष्याम्यतःपरम्।
हेमाद्याःसूर्यसन्तप्ताःस्रवन्तिगिरिधातवः।
जत्वाभंमृदुमृत्स्नाभंयन्मलन्तच्छिलाजतु

अर्थ—अब हम शिलाजतुकी भिन्न २ जातियों का विधि पूर्वक वर्णन करते हैं । सूर्य के तीव्रतापसे सुवर्णादिक धातु जो पहाड़ों से चुचा निकलती हैं, उन में लाख के सदृश, कोमल मृतिका की आभा के समान जो मैल होता है उसे शिलाजतु कहते हैं ।

सुवर्ण शिलाजतु के लक्षण ।

मधुरश्चसतिक्तश्चजपापुष्पनिभश्चयः। वि
पाकेकटुशीतश्चससुवर्णस्यनिस्रवः ॥

अर्थ—स्वाद में मधुर कुछ तीखापन लिये जपापुष्प के समान कान्तियुक्त, कटुपाकी और शीत इन लक्षणों से युक्त सुवर्णजन्य शिलाजतु होता है ।

रूप्यजशिलाजतु के लक्षण ।

रूप्यस्यकटुकःश्वेतःशीतःस्वादुविपच्यते।

अर्थ—कटु, श्वेतवर्ण, शीतल और पाक में मधुर शिलाजतु रूप्यज होता है ।

ताम्रजशिलाजतु के लक्षण ।

ताम्रस्यबर्हिकण्ठाभस्तिक्तोष्णः पच्यते
कटुः ॥

अर्थ—मयूर के कंठके समान, तिक्त, उष्ण और कटुपाकी शिळाजतु ताम्रज होता है।

लौहज शिलाजतु के गुण।

यस्तुगुग्लुलुकाभासास्तिक्तकोलबणान्वितः। कटुर्विपाकेशीतश्चसर्वश्रेष्ठःसचायसः॥ गोमूत्रगन्धयःसर्वेसर्वेकर्मसुयौगिकाः। रसायनप्रयोगेषुपश्चिमस्तुविशिष्यते॥

अर्थ—गुग्गुलके समान कान्तिवाला, तिक्त ळवणरसयुक्त, कटुपाकी शीतल और गोमूत्र की सी गन्धवाला शिळाजतु लौहज होता है, यह सब में अच्छा होता है। सब प्रकार के शिळाजीत सब कामों में प्रयोग किये जाते हैं परन्तु रसायन प्रयोग में लौहज सर्वोत्कृष्ट होता है।

शिलाजीत का गुण।

यथाक्रमंवातपित्तेश्लेष्मपित्तेकफेत्रिषु। विशेषतः प्रशस्यन्तेमलाहेमादिधातुजाः।

अर्थ—सुवर्ण शिलाजीत वात पित्त को दूर करता है, इसी तरह रूप्यज कफपित्त को, तामूज कुष्ठको और लौहज सन्निपात को दूर करता है।

शिलाजीत पर पथ्यापथ्य।

शिलाजतुप्रयोगेषुविदाहीनिगुरूणिच। वर्जयेत्सर्वकालन्तुकुलत्थान्परिबर्जयेत्॥ तेह्यत्यन्तविरुद्धत्वादश्मनोभेदनाःपरम्। लोकेदृष्टास्ततस्तेषांप्रयोगःप्रतिषिध्यते॥ पयांसिशुक्तानिरसाःसयूषाःतोयंसमूत्रम् त्रिविधाःकषायाःआलोडनार्थङ्गिरिजस्य शस्तास्तेतेप्रयोज्याःप्रसमीक्ष्यकार्यम् नसोऽस्तिरोगोभुविसाध्यरूपःशिल यंयञ्जयेत्प्रसह्यतत्कालयोगैर्विधि प्रयुक्तं स्वस्थस्यचोर्जोविपुलांददाति

अर्थ—शिलाजीत सेवन करने वा विदाही और गुरु पदार्थों को त्याग दे कुलथी का सर्वथा त्याग कर देवै ये शिल जीत के अत्यन्त विरुद्ध हैं और विशेष कर पत्थर का भेदन करने वाळी है यह वात ल किक प्रसिद्ध है इस लिये कुलथी का प्र निषेध किया है। दूध, शुक्त, मांस मांसयूष, जल, गोमूत्र तथा अन्यकषाय से किसी के साथ रोग के अनुसार शि जीत का प्रयोग किया जाता है। पृथ्वी कोई ऐसा साध्य रोग नहीं है जो शिळ जीत से अच्छा न हो सक्ता हो। काल नुसार विधिवत् प्रयोग किये जाने से स्वस् पुरुष को भी अत्यन्त वलकारक है।

तृतीयपादका संक्षिप्तवर्णन

करप्रचितिकेपादेदशषट्चमहर्षिण रसायनानांसिद्धानांसंयोगाःसमुद

अर्थ—इस करप्रचितिक नाम पाद महर्षि पुनर्वसुने सिद्ध रसायनों के सोळ प्रयोग वर्णन किये हैं।

इति करप्रचितिकोनामरसायनपादस्तृतीय

चतुर्थः पादः।

अथातआयुर्वेदसमुत्थानीयं[४]रसायन पादंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगव नात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले

अब हम आयुर्वेदीय समुत्थानक नाम र्थ पादकी व्याख्या करते हैं।

प्राचीन इतिहास।

ऋषयःखलुकदाचित्शालीनायायावरा ग्राम्यौषध्याहाराःसन्तःसाम्पन्निका दचेष्टाश्चनातिकल्याः प्रायेणबभूवुःते। वासामितिकर्तव्यता नामसमर्थाःसन्तो म्यवासकृतमात्मदोषंमत्वापूर्वनिवास गतग्राम्यदोषंशिवंपुण्यमुदारंमेध्यमग मसुकृतिभिर्गङ्गाप्रभवममरगन्धर्वकिन्न चरितमनेकरत्ननिचयमचिन्त्याद्भुत वंब्रह्मर्षिसिद्धचारणानुचरितंदिव्य र्थौषधिप्रभावमतिशरण्यंहिमवन्तमम धिपाभिगुप्तंजग्मुःभृग्वङ्गिरोऽत्रिवसि कश्यपागस्त्यपुलस्त्यवामदेवासितगौ मप्रभृतयो महर्षयः। तानिन्द्रःसहस्रदृग रगुरुवरोऽब्रवीत्। स्वागतंब्रह्मविदां नतपोधनानांब्रह्मर्षीणामस्ति। ननु ग्लानिरप्रभावैस्वर्यंवैवर्ण्यञ्चग्राम्य कृमतसुखमसुखानुबन्धश्चग्राम्योहिवा मूलमशस्तानान्ततकृतमपुण्यकृद्भिरनुग्र प्रजानांस्वशरीरमरक्षिभिःकालश्चाय युर्वेदोपदेशस्यब्रह्मर्षीणामात्मनःप्रजा श्चानुग्रहार्थंयमायुर्वेदमश्विनौमह्यं प्रयच्छतां।

अर्थ—किसी समय ऐसा हुआ कि नीत स्वभाव और यज्ञ शील ऋषिगण म्य औषध और आहारके सेवन से प्रायः न्दचेष्टित और उपाय रहित होगये तथा पने कर्तव्य कार्मों के करने में भी अस मर्थ होगये। तब वे विचार करने लगे कि यह हमारे गांवों में वसने के दोषका कारण है और यह निश्चय कर लिया कि पूर्व निवासही ग्राम्य दोषों से रहित है इस हेत से वे कल्याणमय पुण्य, उदार, पवित्र, पापियों से अगम्य, गंगाका उत्पत्ति स्थान देवता, गन्धर्व और किन्नरों से सेवित्त, नानाप्रकार के रत्नों से युक्त, अचिन्त्य अद्भुत प्रभावशाली, ब्रह्मर्षि सिद्ध चारणों से सेवित, दिव्य तीर्थ और औषधों का प्रभाव स्थान, अति शरण्य (शरण लैने के योग्य) और इन्द्रसे रक्षित हिमालयपर गये। इन ऋषियों में भृगु, अंगिरा, अत्रि, वासिष्ठ, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, आर असित गौत्तम आदि वहुत से ऋषि थे। सहस्राक्ष अमरेश्वर उन ऋषियों से कहने लगे कि हे ब्रह्मवित्, हे ज्ञानधन, हे तपोधन, हे ब्रह्मर्षियों आपका आगमन शुभ है। हे ऋषियों गांवके रहने से अपलोगों के मुखपर ग्लानि, प्रभावहीनता, मन्दभाग्यता, विवर्णता, सुखहीनता तथा दुःख जनित चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं। ग्राम्य वासही सबदुखों का मूल है। आपलोगों ने अपने पुण्यस्वाभाव से प्रजा के हित के लिये अपने शरीर का कुछ विचार न कर के ग्रामों में वसना स्वीकार किया। यही आयुर्वेद के उपदेश का समय है, इस आयुर्वेद को ऋषिगण और अपनी पर अनुग्रह के लिये अश्विनीकुमारों ने मुझे सिखायाथा।

आयुर्वेदोत्पत्तिक्रम ।

प्रजापतिरश्विभ्यांप्रजापतयेब्रह्माप्रजानामल्पमायुर्जराव्याधिबहुलमसुखंअसुखानुबन्धंअल्पत्वादल्पतपोदमनियमदानाध्ययनसञ्चयंमत्वापुण्यतममायुःप्रकर्षकरंजराव्याधिप्रशमनंऊर्जस्करममृतंशिवंशरण्यमुदात्तंमत्तःश्रोतुमर्हत्युपधारयितुं प्रकाशयितुञ्चप्रजानुग्रहार्थमार्षब्रह्म चमैत्रीङ्कारुण्यमात्मनश्चानुत्तमंपुण्यमुदारं ब्राह्ममत्तयंकर्मेति । तत्श्रुत्वाविबुधपति वचनमृषयःसर्वएवामरवरमृग्भिस्तुष्टुवुः प्रहृष्टास्तद्वचनमभिननन्दुश्चेति । अथेन्द्रः तदायुर्वेदामृतमृषिभ्यःसंक्रम्योवाचैतत्सर्वमंनुष्ठेयमयञ्चकालोरसायनानांदिव्या श्चौषधयोहिमवत्प्रभवाःप्राप्तवीर्याः ।

अर्थ—इसी आयुर्वेद का उपदेश प्रजापति ने अश्विनीकुमारों को किया था। इसी आयुर्वेद का उपदेश ब्रह्माने प्रजाओं को जराव्याधिग्रस्त अल्पायु, असुख, असुखानुबन्धी अशुभकर्म देखकर तथा अल्पायु होने से अल्पतप, इन्द्रियदमन, नियम, दान, अध्ययन की ओर निरुत्साहित देखकर प्रजापति दक्षको उपदेश दिया था कि जिस से ये उपाधियां शान्त होवें । यह आयुर्वेद पुण्यतम आयुवर्द्धक जराव्याधिनाशक,बलकारक अमृतोपम, कल्याणकारक, शरण्य और उदात्त है । इस आयुर्वेद को मुझ से सुनिये, धारण कीजिये और प्रजा के अनुग्रह के लिये इसका प्रकाश कीजिये क्योंकि ब्रह्मही ऋषियों का आश्रित स्थान है, वही मैत्री है, मैत्रीही कारुण्य है आत्मा का कारुण्यही उत्कृष्ट और उ पुण्य है वही पुण्य ब्राह्म और अ कर्म है । इन्द्रके वचनको सुनकर सम्पू ऋषि ऋग्वेदोक्त मंत्रों से इन्द्राकी प्रशंसाक लगे और प्रसन्न होकर उसकी बात सराहने लगे । तदन्तर इन्द्रने आयुर्वेदाम् की व्याख्या ऋषियों से की और कहा ये सब कर्म अनुष्ठानके योग्य हैं, रसा बनाने का यही उत्तम काल है क्यों हिमालय पर उत्पन्न होने वाली औषधियां भी मौजूद हैं जो इस स पूर्ण वीर्य हैं ।

इन्द्रोक्त रसायन ।

तद्यथाऐन्द्रीब्राह्मीपयस्याक्षीरपुष्पीश्र वणीमहाश्रावणीशतावरीविदारीजीव न्तीपुनर्नवास्थिरावचाछत्रातिच्छत्रामे दामहामेदाजीवनीयाश्चान्याःपयसाप्र क्ताः । षण्मासात्परमायुर्वयस्त मनामयत्वंस्वरवर्णसम्पदमुपचयमे स्मृतिमुत्तमबलमिष्टाश्चापरान्भावा हन्तिसिद्धाः । इन्द्रोक्तंरसायनम्

अर्थ—इन्द्रायण, ब्राह्मी, काकोली दु श्रावणी, महाश्रावणी, सितावर,विदारीकन् जीवन्ती, सांठ, शालिपर्णी, वच, छत्रा, अ छत्रा, मेदा, महामेदा, तथा अन्यान्य जीव नीय औषधोंको छः महीने तक दुग्धके स सेवन करै तौ दीर्घायु,तरुणावस्था,निरोगत स्वर और वर्ण की स्वच्छता, पुष्टाई, मेधा स्मृति, उत्तम बल तथा और और भ

न फलों की प्राप्ति होती है । यह
क्त रसायनहै ।

ह्मसुवर्चलादिऔषधियों के लक्षण ।

ह्मसुवर्चलानामौषधिर्याहिरण्यक्षीरा
करसदृशपत्राआदित्यपर्णीनामौषधि
सूर्यकान्तेतिविज्ञायतेसुवर्णक्षीरासूर्यम
लाकारपुष्पी । नारीनामौषधिरश्व
नेतिविज्ञायतेयावल्वजसदृशपत्रा। का
ोधानामौषधिर्गोधाकारासर्पानामौष
ःसर्पाकारा । सोमनामौषधिराजः
वदशपर्वासस्सोमइवहीयतेवर्धतेच ।
ानामौषधिःपद्माकारापद्मरक्तापद्मग
ा । अजानामौषधिरजशृङ्गीतिविज्ञाय
नीलानीलक्षीरपुष्पीलताप्रतानवहुला

र्थ—एक ब्रह्म सुवर्चला औषध होती
हिन्दी में ब्रह्मसौचळी कहते हैं,इस
रा नाम हिरण्यक्षीरा है, इस के
मल के सदृश होते हैं। एक आ-
पर्णी होती है उसे सूर्य कान्ता क-
। इसका दूध सुवर्ण के समान पीळा
है और फूल सूर्यमण्डल के आकार
दृश होता है । एक नारी नामकी
ध होती है इस को अश्ववला कहते
इसके पत्ते वल्वज के समान होते हैं।
काष्ठगोधा औषधहोती है इसका आ-
र गोधा के सदृश होता है सर्पा नामकी
षधी होती है इसका आकार सर्प का सा
ता है। एक सोमऔषध होती इसे
मळता भी कहते हैं यह औषधियों की
जा है, इस में पन्द्रह पत्ते होते हैं, यह
चन्द्रमा की तरह घटती बढती है अर्थात्
शुक्लपक्ष में चन्द्रमाकी कला के साथ एक
एक पत्ता बढता जाता है और कृष्णपक्ष
में चन्द्रमा के घटने के साथही एक एक
पत्ता घटता चला जाता है (इसका विशेष
वर्णन सुश्रुत संहिता में लिखा है पृष्ठ ८१३
से ८२४ तक देखो), एक पद्म नाम की
औषधी है इसका आकार पद्मके सदृश होता
है यह पद्म के समान लाल तथा पद्म के
समानहीं गंधयुक्त होती है। एक अजा
नामकी औषधी होती है इसे अजशृंगी
कहते हैं एक नीला औषधी होती है
इसका दूध और फूल नीले होते हैं इस में
लताप्रतान बहुत होते हैं।

पूर्वोक्त औषधियोंकीसेवनविधि ।

इत्यासामष्टानामौषधीनांयामेवोपलभे
ततस्यास्तस्याःस्वरसस्यसौहित्यङ्गत्वा
स्नेहभावितायामार्द्रपलाशद्रोण्यांशयीत
तत्रप्रलीयेतषण्मासेनपुनःपुनःसम्भवति
तस्याजम्पयःप्रत्यवस्थापनंषण्मासेनदेव
तानुकारीभवति । वयोवर्णस्वराकृतिब
लप्रभाभिः । स्वयंचास्यसर्ववाचोगता
निप्रादुर्भवन्ति । दिव्यंचास्यचक्षुःश्रोत्रं
भवति । गतिर्योजनसहस्रंदशवर्षसहस्रा
ण्यायुरनुपद्रवंचेति

अर्थ—इन आठ औषधियों में से जौन
सी मिल सकै उसका पेट भरकर पान कर
ले और एक ढाक की द्रोणी में सो जाय
जिस में पहिलेही तेल चुपड़ दिया गया हो
छःमासमें उसका पुनर्जन्महोजाता है। इसको

बकरी के दूधका अनुपान करावे । छः महीने में वह मनुष्य वय, वर्ण, स्वर प्रकार आकृति, बल और प्रभाइन करके देवताओं के सदृश होजाता है । भूत बातों के विषय में इस की सहस्र योजनकी गति और उपद्रव रहित दस सहस्र वर्ष की आयु होजातीहै।

भवतिचात्र ।

दिव्यानामौषधीनांयःप्रभावःसभवद्विधैः
शक्यःसोढुमशक्यस्तुनसोढुमकृतात्मभिः॥
औषधीनांप्रभावेणातिष्ठतांस्वेचवर्त्मनि ।
भवतान्निखिलंश्रेयःसर्वमेवोपपत्स्यते ॥
वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्चप्रयतैर्नियतात्मभिः ।
शक्याऔषधयोह्येताःसेवितुंविषयाभिजाः
तास्तुक्षेत्रगुणैस्तेषांमध्यमेनचकर्मणा ।
मृदुवीर्यतरास्तासांविधिर्ज्ञेयःसएवतु॥
पर्येष्टुन्ताःप्रयोक्तुंवायेऽसमर्थाःसुखार्थिनः।रसायनविधिस्तेषामयमन्यःप्रशस्यते॥

अर्थ—इन दिव्य औषधियों का जो प्रभाव है उस को आपसरीकेही सहसक्ते हैं और कोई अजितेन्द्रिय उन को नहीं सह सक्ता है इन औषधियोंके प्रभाव से अपने अपने मार्गों में स्थित होकर आप सम्पूर्ण कल्याणों को प्राप्त करसकेंगे । प्रयत्नवान् और जितेन्द्रिय वानप्रस्थाश्रमी और गृहस्थी इन रसायन औषधों को सहन करसकेंगे यदि वे उन के देशकी उत्पन्न होंगी क्योंकि ये सब औषधियां क्षेत्रगुण से मृदुवीर्य होती हैं, इनकी क्रिया मध्यम होती है, परन्तु सेवनकी विधि एकही है ।

जो सुखाभिलाषी इन औषधोंके सेवन करने में असमर्थ हैं वे नीचे लिखी हुई से सेवन करें ।

इन्द्रोक्तब्राह्मरसायन। ।

बल्यानाञ्जीवनीयानांबृंहणीयाश्चया
वयसः स्थापनानाञ्चखदिरस्यासनस्
खर्जूराणांमधूकानांमुस्तानामुत्पलस्य
मृद्वीकानांविडङ्गानांवचायाःचित्रकस्य
शतावर्याः पयस्यायाः पिप्पल्याजी
स्यच । ऋद्ध्यानागबलायाश्चहरिद्रा
धवस्यच ॥ त्रिफलाकण्टकार्योश्चवि
र्यश्चन्दनस्यतु । इक्षूणांशरमूलान
पण्र्यास्तिनिशस्यच॥ रसाः पृथक्पृ
ग्राह्याःपलाशक्षारएवच । एषांपलो
तान्भागान्पयोगव्यंचतुर्गुणम् ॥
त्रेतिलतैलस्यद्वेचगव्यस्यसर्पिषः ।
ध्यंसर्वमेकत्रसुसिद्धंस्नेहमुद्धरेत् ।
लकचूर्णानामाढकंशतभावितम् ।
नैवदातव्यंक्षौद्रस्याभिनवस्यच ॥
राचूर्णपात्रञ्चप्रस्थमेकंप्रदापयेत् ।
क्षीर्याःसपिप्पल्याःस्थाप्यंसंमूर्च्छि
त् ॥ शुचौक्षेमार्तिकेकुम्भेमासार्धघृ
विते । मात्रामग्निसमांतस्यततऊर्ध
योजयेत्॥ हेमताम्रप्रवालानांअयस
टिकस्यच । मुक्तावैदूर्यशंखानांचूर्ण
रजतस्यच ॥ प्रक्षिप्यषोडशींमात्रां
यायासमैथुनः। जीर्णेजीर्णेचभुञ्जीत
क्षीरसार्पिषा ॥ सर्वरोगप्रशमनंसर्ववा
गतप्रदम् । परमूर्जस्करंचैववर्णस्वर
तथा । विषालक्ष्मीप्रशमनंबुद्धीन्द्रि
बलप्रदम् ॥ सिद्धार्थताश्चाभिनवंवयश

प्रियत्वञ्चयशश्चलोके ॥ प्रयोज्य
ऋद्धिरिदंयथावद्रसायनंब्राह्ममुदार
वीर्यम् ॥

र्थ—वल्य, जीवनीय, बृंहणीय, वयः
पन, इन गणों की दश दश औषधें
। खैर, असन, खजूर, महुआ, मोंथा,
पल, दाख, वायविडंग, वच, चीता, सि-
र, काकोली, पीपल, जोंगक, ऋद्धि,
वला, हलदी, धौ, त्रिफला, कटेरी,
रीकंद, चन्दन, इक्षुरस, शरमूळरस,
रस, तिनिश और पलाशक्षार ये
एक पळ लेवै इन सब औषधियों
ना गौ का दूध, दोपात्र (आढ़क)
ेल, दोपात्र गौ का घी इन सबको
पकावै जब अच्छी तरह सिद्ध हो-
चिकनाई के भागको अलग निकाल
स में आंबले के रससे सौ वार
दिया हुआ आंबळे का चूर्ण एक
डाल देवै, नयाशहत एक आढ़क,
एक आढ़क, वंशलोचन और पीपल
प्रस्थ डालकर सबको मिलालेवै, फिर
ह दिन तक इसे एक चिकनी घी
हांडी में भरकर धरदे तदुपरान्त अ-
ल के अनुसार इसकी मात्रा का प्रयोग
। औषध की मात्रा से सोलहवां हिस्सा
ो, तांबा, मूंगा, लोहा, स्फटिक, मोती,
र्य, शंख और रूपे का चूरण मिलावै।
ध के सेवन काल में परिश्रम और
न का परित्याग करदेवै । औषध के
ने पर दूध घी मिलाकर चांवलों काभात
खाय । यह रसायन सम्पूर्ण रोगोंकी नाश करनेवाळी और वचनको सिद्ध करनेवाली है, यह अत्यन्त ऊर्जस्कर, वर्णप्रसादक, स्वरवर्द्धक, विष अळक्ष्मीनाशक तथा बुद्धि वल और इन्द्रियबल को बढ़ानेवाली है।इस रसायन के सेवन करने से मनोवांछित कार्य्यों की सिद्धि, नवीन वय,संततिप्रियत्व और लोकमें यश होता है । जो इन सब बातों की इच्छा करनेवाला है उसे उचित है कि वह इस उदारवीर्य ब्राह्मरसायन को सेवन करै ।

समर्थानामरोगाणान्धीमतान्नियतात्मनाम् ॥ कुटीप्रवेशःक्षमिणांपरिच्छदवतांहितः । अतोऽन्यथातुयेतेषांसौर्यमारुतकोविधिः ॥ ताभ्यांश्रेष्ठतरःपूर्वोविधिःसतुसुदुष्करः । रसायनविधिभ्रंशाज्जायेरन्व्याधयोयदि ॥ यथास्वमौषधन्तेषांकार्यमुक्त्वारसायनम् ॥

अर्थ—सामर्थ्यवान्, निरोगी, बुद्धिमान् जितेन्द्रिय, क्षमावान् और परिच्छदवान् (जिन के पास ओढ़ने पहरने का सामान हैं) पुरुषोंके लिये कुटी प्रावेशिक रसायन बहुत अच्छी होती है । और जो ऊपरकहे हुये लक्षणोंसे विपरीत लक्षणवाले हैं उनको सौर्यमारुतिक विधि अच्छी है, परन्तु इन में पहिली उत्तम और साध्य है । रसायन विधि में गड़वड़ होजानेसे यदि रोग उत्पन्न होजायं तो रसायन सेबन को वन्दकरके प्रथम उनरोगोंकी विधिपूर्बक चिकित्सा करै।

विनारसायनरसायनवत्फल ।
सत्यवादिनमक्रोधंनिवृत्तंमद्यमैथुनात् ॥
अहिंसकमनायासम्प्रशान्तंप्रियवादिनम्
याज्यशौचपरंधीरंदाननित्यंतपस्विनम्॥
देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चनेरतम् ।
आनृशंस्यपरन्नित्यंनित्यंकरुणवेदिनम्॥
समजागरणंस्वप्ननित्यंक्षीरघृताशिनम्।
देशकालप्रमाणज्ञंयुक्तिज्ञमनहङ्कृतम्॥ श
स्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम्।
उपासितारंवृद्धानामास्तिकानांजितात्म
नाम् । धर्मशास्त्रपरंविद्यान्नरंनित्यरसा
यनम् ॥

अर्थ—सत्यवादी, अक्रोधी, मद्य और मैथुन का सेवन न करनेवाला, अहिंसक, अपरिश्रमी, शान्त, प्रियवादी, यतनकर्त्ता, पवित्रतापरायण, धीर, दानकर्त्ता, तपस्वी, देवता, गौ, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्ध, इनकी सेवा में परायण, निष्ठुरता रहित, दयापरायण, उचित काल में जगने और सोनेवाला, नित्यप्रति दूध घी खानेवाला, देश और काल के प्रमाण का जाननेवाला, युक्तिज्ञ, अनहंकारी, सदाचार परायण, एक धर्मावलम्बी, अध्यात्म ज्ञानवेत्ता, वृद्धों का सेवक, आस्तिक, और जितेन्द्रियों का उपासक, धर्मशास्त्रपरायण पुरुष यद्यपि रसायन सेवन न करै तो भी नित्यरसायन सेवन का फल प्राप्तकरता है ।

गुणैरेतैःसमुदितैःप्रयुङ्क्तेयोरसायनम् ।
रसायनगुणान्सर्वान्यथोक्तान्ससमश्नुते

अर्थ—पूर्वोक्त सम्पूर्ण गुणों से सम्पन्न जो रसायन का सेवन करता है, वह य रसायन गुणों को प्राप्त करता है ।

रसायन के योग्यायोग्य पुरुष ।

यथास्थूलमनिर्वाह्यदोषान्शारीरमान
रसायनगुणैर्जन्तुर्युज्यतेनकदाचन ॥
गाह्यायुःप्रकर्षार्थाजरारोगनिवर्हणाः
मनःशरीरशुद्धानांसिध्यन्तिप्रयतात्म
तदेतन्नभवेद्वाच्यंसर्वमेवहतात्मने । :
जेभ्योद्विजातिभ्यःशुश्रूषायेषुनास्तिच

अर्थ—शारीरिक और मानसिक के विना दूर किये जो पुरुष रसाय करता है उसको रसायन का नहीं मिलता है । आयुवर्द्धक औ व्याधि नाशक जो योग वर्णन कि वे मानसिक और शारीरिक दोषों और जितेन्द्रिय पुरुषों को ही फल हैं । अजितेन्द्रिय नित्यरोगी तथा द्वि से निरोध रखने वालों को रसाय कुछ फल नहीं मिलता है ।

वैद्यकी उत्कृष्टता ।

येरसायनसंयोगावृष्यायोगाश्चये
यच्चौषधंविकाराणांसर्वन्तद्वैद्यसंश्रय
प्राणाचार्यम्बुधस्तस्माद्धीमन्तंवेदप
आश्विनाविवदेवेन्द्रःपूजयेदतिशनि

अर्थ—जितने रासायनिक प्रयोग और जितने वृष्यकारक योग हैं और कारों की जितनी औषधियां हैं वे सब के आधीन हैं । इस लिये मनुष्यों को चितहै कि प्राणाचार्य, वेदपारगामी, धीम वैद्यकी अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक सेवा क

ये जैसे इन्द्रने अश्विनी कुमारों की
थी।

अश्विनी कुमार प्रशंसा।

श्विनौदेवभिषजौयज्ञवाहाविति स्मृतौ॥
क्षस्यहिशिरश्छिन्नंपुनस्ताभ्यांसमाहि
॥ प्रशीर्णादशनाःपूष्णोनेत्रेनष्टेभग
च ॥ वज्रिनश्चभुजस्तम्भःताभ्या
चिकित्सितः।चिकित्सितःशशीताभ्यां
तोराजयक्ष्मणा॥ सोमान्निपतितश्च
कृतस्ताभ्यांपुनःसुखी। भार्गवःच्य
वृद्धःसन्विकृतिंगतः॥ वीतव
तःकृतस्ताभ्यांपुनर्युवा ॥ एतै
चबहुभिःकर्म्मभिर्भिषगुत्तमौ ॥
शंपूज्याविन्द्रादीनांमहात्मनाम्।
ाणिमन्त्राणितथानानाहवींषिच
पशवःताभ्यांप्रकल्प्यन्तेद्विजाति
प्रातश्चसवनेसोमंशक्रोऽश्विभ्यां
नुते॥ सौत्रामण्याञ्चभगवानश्वि
हमोदते। इन्द्राग्नीचाश्विनौचैव
तेप्रायशोद्विजैः॥ स्तूयन्तेवेदवा
तथान्याहिदेवताः।अजरैरमरैस्ता
धैःसाधिपैर्ध्रुवैः ॥ पूज्येतेप्रयतैरेव
नौभिषजाविति। मृत्युव्याधिजरा
दुःखप्रायैःसुखार्थिभिः॥ किम्पुन
जोमर्त्यैःपूज्याःस्युर्नातिशक्तितः।

र्थ—अश्विनी कुमार ये दोनों स्वर्ग देवताओं के चिकित्सक थे, इन को में भाग मिलता था। इन्होंने महादेव गण वीरभद्र से काटे हुए दक्ष के सिर फिर जोड़ दिया था। पूषा के टूटे हुए दांत, भग के फूटे हुए नेत्र और इन्द्र का भुजस्तम्भ इन्हीं ने अच्छा किया था। चन्द्रमा को राजयक्ष्मा रोग से इन्हीं ने बचाया था। चन्द्रमा सौम्यभाव से पतित होगया था, उसको फिर सुखी किया था। भृगु का पुत्र च्यवन बड़ा कामी था यह बुढ़ापे के कारण विकृत होगया था, इसका वर्ण और स्वर नष्ट होगया था इन्हीं ने इसको फिर युवा बनादिया था। ऐसेही अन्य कारणों से भी ये दोनों स्वर्ग वैद्य इन्द्रादिक महात्माओं के भी पूज्यपात्र होगये थे। इसी कारण से द्विजाति उन के लिये ग्रह, स्त्रोत्र, मंत्र, आहुति, धूम्र और पशुओं का संकल्प करते है। नन्दनवन में इन्द्र नित्य प्रति प्रातःकाळ अश्विनी कुमार के साथ सोमपान करता है। सौत्रामणि यज्ञ में उन के साथ भाग पाता है। प्रायः द्विज, इन्द्र अग्नि और अश्विनीकुमारों की ही स्तुति करते हैं। इनके समान अन्य देवताओं का पूजन वेद मंत्रों से नहीं होता है। अजरामर देवता अपने अधिपति इन्द्र सहित अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक अश्विनीकुमारों का पूजन करते हैं।

तो क्या मृत्यु, व्याधि और जराग्रस्त तथा सदाही दुखी मनुष्यों को अपने सुख के लिये वैद्यों का पूजना अनुचित है? ॥

वैद्यका गुरुवत् पूजन।

शीलवान्मतिमान्युक्तोद्विजातिःशास्त्रपार
गः॥ प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्यःप्राणाचार्य्यः
सहिस्मृतः।

अर्थ—मनुष्यों को शीलवान्, मतिमान्, द्विजाति, शास्त्रपारग और प्राणाचार्य वैद्यकी गुरुवत् पूजा करनी चाहिये।

विद्यासमाप्तौभिषजोतृतीयाजातिरुच्यते अश्नुतेवैद्यशब्दंहिनवैद्यःपूर्वजन्मना । विद्यासमाप्तौब्राह्मंवासत्त्वमार्षअथापिवा॥ ध्रुवमाविशतिज्ञानात्तस्माद्वैद्योत्रिजःस्मृतः। नाभिध्यायेन्नचाक्रोशेदहितंनसमाचरेत्॥ प्राणाचार्यम्बुधःकश्चिदिच्छन्नायुरनित्वरम्।

अर्थ—भिषक् द्विजाति होता है परन्तु वैद्यक विद्या को समाप्तकर लेनेपर त्रिजाति होजाता है, तबही वह वैद्य कहलाता है। पूर्वजन्म द्वारा यह वैद्य नहीं कहलाता है मनुष्य विद्या की समाप्ति में ब्राह्म वा आर्ष सत्व में निश्चय प्रवेश करता है औरफिर वैद्यक का ज्ञान प्राप्त करने पर त्रिज कहलाता है।

जो मनुष्य दीर्घ जीवनकी इच्छा करता है उसे उचित है कि वैद्य को न गाळी दे न कोसे न उस के साथकोई अहितकार्य्यकरै।

रोगी और वैद्य का धर्म

चिकित्सितस्तुसंश्रुत्ययोवासंश्रुत्यमानवः नोपाकरोतिवैद्यायनास्तितस्येहनिष्कृतिः भिषगप्यातुरान्सर्वान्स्वसुतानिवयत्नवान् ॥ आबाधेभ्योहिसंरक्षेदिच्छन्धर्ममनुत्तमम्।

अर्थ—यह प्रतिज्ञा करने पर कि मैं अमुक उपकार करूंगा और आराम होने पर वैद्यके लिये यदि वह उपकार न किया जाय तो उसका कल्याण नहीं है वैद्यको भी उचित है कि सम्पूर्ण रो[गियों] को अपने पुत्र के समान देखै और उत्तमोत्तम धर्म प्राप्ति की इच्छा करता हुआ रोग से उसकी रक्षा करै।

धर्मार्थंचार्थकामार्थआयुर्वेदोमहार्षिभिः प्रकाशितोधर्मपरैरिच्छद्भिःस्थानमक्ष[रम्] नार्थार्थंनापिकामार्थंअथभूतदयांप्रति वर्ततेयःचिकित्सायांससर्वमतिवर्तते

अर्थ—महर्षियों ने धर्म, अर्थ अ[ौर] ... की प्राप्ति के लिये आयुर्वेद का ... किया है, क्योंकि वे धर्मपरायण ... उनकी इच्छा मोक्ष धाम प्राप्त क[रने की] थी। जो विना अपनी किसी अ[र्थ] की स्वार्थ सिद्धि के केवळ प्राणि[यों पर] दयाकर के चिकित्सा में प्रवृत होते ... सर्वोत्कृष्ट होते हैं।

जीविकार्थ चिकित्सा निषेध।

कुर्वतेयेतुवृत्यर्थंचिकित्सापण्यविक्र[यम्] तेहित्वाकाञ्चनंराशिंपांसुराशिमुपा[सते]

अर्थ—जो जीविका के लिये चिकि[त्सा] को वेचते हैं वे सुवर्ण के ढेर को छो[ड़] धूल के ढेर को समेटते हैं।

वैद्यको यश प्राप्ति का उपाय।

दारुणैःकृष्यमाणानांगदैर्वैवस्वतक्षय[म्] छित्वावैवस्वतान्पाशान्जीवितञ्चप्र[य]च्छति। धर्मार्थसदृशस्तस्यदातानेहोप[ल]भ्यते॥ नहिजीवितदानाद्धिदानमन्य[द्वि]शिष्यते। परोभूतदयाधर्मइतिमत्वाचि[कित्सया]

नया ॥ वर्ततेयःससिद्धार्थःसुखम
त्यन्तमश्नुते ।

र्थ—मनुष्य दारुण रोगों से पीडित र यमालय की ओर आकर्षित होते जो यमपाशों का छेदन कर के जीव देता है उस के समान धर्मार्थ परायण दाता इस संसार में दूसरा नहीं है । दान के अतिरिक्त और कोई विशेष नहीं है । प्राणियों में दया करने से रिक्त और कोई धर्म नहीं है इस बात नानकर जो चिकित्सा में प्रवृत होते न्हीं का मनोरथ सिद्ध होता है और सुख भोगते हैं ।

इस पाद का संक्षिप्त वर्णन ।

दसमुत्थानंदिव्यौषधिविधिःशुभः
ल्पान्तरगुणंसिद्धंरत्नरसायनम् ॥
भ्योब्रह्मचारिभ्योयदुवाचामरेश्वरः
दसमुत्थानेतत्सर्वंसम्प्रकाशितम् ॥

—इस आयुर्वेद की उत्पत्ति, दिव्य नों के प्रयोग तथा जो कुछ इन्द्रने महात्मओं से कहा है वह सब इस में वर्णन किया गया है ।

दसमुत्थानीयो रसायनपादःचतुर्थः।
श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविर-
तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां
चेकित्सितस्थाने रसायने विकल्पनो
नाम प्रथमोऽध्यायः । १ ॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथातःसंप्रयोगशरमूलीयं(१)वाजीकर
णपादंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभ
गवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेये बोले कि अब हम द्वितीय अध्याय के संप्रयोग शरमूलीय वाजीकरण पाद की व्याख्या करेंगे ।

वाजीकरण के गुण

वाजीकरणमन्विच्छेत्पुरुषोनित्यमात्म
वान् । तदायत्तौहिधर्मार्थौप्रीतिश्चयश
एवच । पुत्रस्यायतनंह्येतद्गुणाश्चैतेसुता
श्रयाः । बाजीकरणमग्र्यञ्चक्षेत्रंस्त्रीया
प्रहर्षिणी ॥

अर्थ—जितेन्द्रिय पुरुषको नित्यही वाजीकरण करना चाहिये, क्योंकि धर्म, अर्थ, प्रीति और यश ये वाजीकरणकेही आश्रित हैं । पुत्र भी वाजीकरण केही आश्रित है और पूर्वोक्त धर्मार्थादि चारों गुण पुत्र के आश्रित हैं और रोम रोम में हर्ष उत्पन्न करनेवाली स्त्री बाजीकरणका सर्वोत्तम क्षेत्र है अर्थात् बाजीकरण सेवन का फल स्त्री में प्रकट होता है ॥

इष्टाह्येकैकशोऽप्यर्थाःपरंप्रीतिकराःस्मृताः
किंपुनःस्त्रीशरीरेयेसंघातेनव्यवस्थिताः।
संघातोहीन्द्रियार्थानांस्त्रीषुनान्यत्रविद्यते ।
स्त्र्याश्रयोहीन्द्रियार्थोयःसप्रीतिजननोऽ
धिकम् ॥ स्त्रीषुप्रीतिर्विशेषेणस्त्रीष्वपत्यं
प्रतिष्ठितम् । धर्मार्थौस्त्रीषु लक्ष्मीश्चस्त्रीषु
लोकाःप्रतिष्ठिताः ॥

अर्थ—रूपरसादि इन्द्रियों के पांचों विषय अत्यन्त प्रीतिकारक वर्णन कियेगये हैं, और जब ये पांचों विषय एक स्त्रीमें इकट्ठे हैं तो स्त्री अत्यन्तप्रीतिकी खान है। स्त्रियों के अतिरिक्त ये विषय और किसी जगह एकत्रित नहीं हैं। जो इन्द्रियार्थ स्त्री में आश्रित है वह अत्यन्त प्रीतिवर्द्धक है। विशेष करके स्त्रियों मेंही प्रीति प्रतिष्ठित और स्त्रीयों मेंही सन्तान प्रतिष्ठितहै, धर्म और अर्थ स्त्रियों मेंही प्रतिष्ठित हैं, इसी तरह लक्ष्मी और लोक भी स्त्रियों मेंहीं प्रतिष्ठित हैं।

स्त्रियोंकोबाजीकरणत्व।

सुरूपायौवनस्थायालक्षणैर्याविभूषिता। यावश्याशिक्षितायाचसास्त्रीवृष्यतमामता

अर्थ—अत्यन्त रूपवती, तरुणा, शुभ सम्पन्ना, वश्या और शिक्षिता स्त्री उत्तमोत्तम वाजीकरण है। अर्थात् ऊपरकहे हुये गुणवाली स्त्री के साथ वार्तालापादि करने से बाजीकरण सेवन का फल मिलता है।

नानाभक्त्यातुलोकस्यदैवयोगाच्चयोषिताम्। तंतंप्राप्यविवर्द्धन्तेनरंरूपादयो गुणाः।

अर्थ—अनेक प्रकार के सांसारिक और कर्मज भोग्यो से जैसे २ मनुष्यों से संसर्ग होता है तदनुसारही स्त्रियोंके रूपादि गुणोंकी वृद्धि होती है।

रुच्यनुरूपस्त्रीकोवाजीकरणत्व।

वयोरूपवचोहावैर्यायस्यपरमाङ्गना। प्रविशत्याशुहृदयंदैवाद्वाकर्म्मणोऽपिवा॥ हृदयोत्सवरूपायायासमानमनोरम समानसत्वायावश्यायायस्यप्रीयतेप्रि यापाशभूतासर्वेषामिन्द्रियाणांपरैर्गुणै ययाविमुक्तोनिस्त्रीकमरतिर्मन्यतेजगत यस्याऋतेशरीरंनाधत्तेशून्यमिवेन्द्रियै शोकोद्वेगारतिभयैर्यांदृष्ट्वानाभिभूय यातियांप्राप्यविस्रम्भंदृष्ट्वाहृष्यत्यत यां। अपूर्वामिवयांयातिनित्यंहर्षाति गतः॥ गत्वागत्वापिबहुशोयांतृप्तिंनै च्छति। सास्त्रीवृष्यतमातस्यनानाभ हिमानवाः

अर्थ—जो सर्वगुण सम्पन्ना स्त्री अ वय, रूप, वचन और हावभावों से के हृदय में दैववश वा कर्मवश से प्र होजाती है, जो स्त्री जिस के हृ आनन्दरूपा है, जो जिसके मनको करानेवाली है, जिस स्त्री का सत के सत्व के समान है, जो स्त्री जिस धीन है, जो स्त्री जिसको अपने प्रेम गुणों से प्रसन्न करे, जो स्त्री अपने गुणों से जिसकी सम्पूर्ण इन्द्रियों को ज बाँधले, जिसस्त्री के वियोग से जो होकर संसार को स्त्री से रहित मान जिस स्त्री के वियोग से जो अपने इन्द्रियशून्य अर्थात् निश्चेष्टित मा शरीर को त्यागने की इच्छा करता जिस के दर्शनमात्र से जिसके हृदय शोक, उद्वेग, दुःख और भय दूर जाते हैं। जिस से मिलकर हृदय के आन भावों को प्रकट करदे, जिसको देख

त प्रसन्न हो जिसको देखकर नित्यही परिचित की तरह हर्ष के वेग से ने को उत्सुक हो, जिस स्त्री के पास बार जाकरभी जिसकी तृप्ति न हो, उस के लिये अत्यन्त उत्तम वाजी है, संसार में मनुष्यों की भिन्न २ है। इस से यह बात जानने की है स्त्रीके सुरूप कुरूप होने पर भी नि- नहीं हैं जिस पुरुषका जिस स्त्री पर आशक्त होजाय चाहै वह कैसीहीहो स्त्री उस के लिये वाजीकरण है।

गमन के योग्य स्त्री।

ुल्यगोत्रांवृष्याञ्चप्रहृष्टांनिरुपद्रवाम्।
स्नातांव्रजेन्नारींअपत्यार्थीनिरामयः॥

—वह मनुष्य जो सन्तानकी इच्छा है उसे उचित है कि अपनी निरोगा- ऐसी स्त्री से गमन करे जो अपने की न हो, वृष्या हो, हर्षवतीहो निरु- ो जिस ने ऋतुधर्म के पीछे शुद्धस्नान या हो।

निस्सन्तान पुरुषका वर्णन।

अयश्चैकशाखश्चनिष्फलश्चयथाद्रुमः।
ष्टगन्धश्चैकश्चनिरपत्यस्तथानरः॥
दिपःसरःशुष्कमधातुर्धातुसन्निभः।
ूजस्तृणपूलीभिर्ज्ञातव्यःपुरुषाकृतिः॥
तिष्ठश्चनग्नश्चशून्यश्चैकेन्द्रियश्चना।
त्योनिष्क्रियश्चैवयस्यापत्यंनविद्यते॥

र्थ—निःसन्तान पुरुष ऐसा होता है जा बिना छाया का एक शाखावाला, ल रहित और दुर्गन्धयुक्त वृक्ष होताहै। जो मनुष्य निःसन्तान होता है वह चित्र के दीपक के समान शुष्क सरोवर के समान धातुरहित धातुमान् पदार्थके समान तथा पुरुषकासारूप धारण किये हुए तिनुकोंकी (कड़वी) पूली के समान होता है। जिस पुरुष के सन्तान नहीं होती है वह अप्रि- तिष्ठित, नग्न, शून्य, एकइन्द्रिययुक्त और क्रियाहीन जानने के योग्य है। अर्थात् जिस के सन्तान नहीं होती उसका सब सांसारिक व्यहार व्यर्थ है।

वहुसन्तान पुरुष का वर्णन।

बहुमूर्तिर्बहुमुखोबहुव्यूहोबहुक्रियः। बहुचक्षु र्बहुज्ञानोबह्वात्माचवहुप्रजः॥ मङ्गल्यो ऽयंप्रशस्योऽयंधन्योऽयंवीर्यवानयम्। बहुशाखोऽयमितिचस्तूयतेनाबहुप्रजः॥

अर्थ—जिस पुरुष के बहुत सन्तान होती है वह वहुमूर्त्ति, वहुमुख, वहुव्यूह, वहुक्रिय वहुचक्षु, वहुज्ञान और वह्वात्मा होता है। जिस के बहुत सन्तान होती हैं वही मंगल मय, प्रशंसनीय, धन्य, वीर्यवान् और वहु शाखायुक्त होता है।

वाजी करण सेवन का कारण।

प्रीतिर्बलंसुखंवृत्तिर्विस्तारोविपुलंकुलम्। यशोलोकाःसुखादर्कास्तुष्टिश्चापत्यसंश्रि ता। वाजीकरणनित्यःस्यादिच्छेत्का मसुखानिच॥ उपभोगसुखान्सिद्धान् वीर्यापत्यविवर्द्धनान्॥ वाजीकरणसं योगान्प्रवक्ष्याम्यतउत्तरम्॥

अर्थ—प्रीति, वल, सुख, वृत्ति, विस्तार विभव, कुल, लौकिक यश, सुखानुवन्ध और

तुष्टि ये सब सन्तान के आश्रयभूत हैं। अतएव जो मनुष्य सन्तानाश्रित गुण तथा काम और सुखकी इच्छा करता है उसे उचित है कि वाजी करण सेवन करै। अव हम उपभोग सुखकारक, सिद्ध, वीर्योत्पादक और सन्तान वर्द्धक वाजीकरण प्रयोगों का वर्णन करते हैं।

वाजी करण गुटका।

शरमूलेक्षुमूलानिकाण्डेक्षुंसेक्षुवालिकम्। शतावरींपयस्याञ्चविदारींकण्टकारिकाम्॥ जीवन्तींजीवकांमेदांवीरमृषभकंबलाम्। ऋद्धिंगोक्षुरकंरास्नामात्मगुप्तांपुनर्नवाम्॥ पृथक्त्रिपलिकान्कृत्वामाषाणामाढकंनवम्। विपाचयेज्जलद्रोणेचतुर्भागश्चशोषयेत्॥ तत्रपेष्याणिमधुकंद्राक्षांफल्गुणिपिप्पलीम्। आत्मगुप्तांमधूकानिखर्जूराणिशताबरीम्॥ विदार्यामलकेक्षूणांरसस्यचपृथक्पृथक्। सर्पिषश्चाढकंदद्यात्क्षीरद्रोणञ्चतद्भिषक्॥ साधयेद्घृतशेषञ्चसपूतंयोजयेत्पुनः। शर्करायास्तुगाक्षीर्याश्चूर्णैःप्रस्थोन्मितौभिषक्॥ पलैश्चतुर्भिर्मागध्याःपलेनमरिचस्यच। त्वगेलाकेशराणाञ्चचूर्णैरर्धपलोन्मितैः। मधुनःकुडवाभ्याञ्चद्वाभ्यांतत्कारयेद्भिषक्। पालिकीर्गुटिकाःकृत्वातायथाग्निप्रयोजयेत्। एषवृष्यःपरोयोगोबृंहणोबलवर्द्धनः॥ अनेनाश्वइवोदीर्णोलिङ्गमर्पयतेस्त्रियाम्॥

अर्थ—शरमूल, इक्षुमूळ, काण्डेक्षु, इक्षुवाळिका, सितावर, क्षीरकाकोली, विदारी गंध, कटेरी, जीवन्ती जीवक, मेदा, (वाराहकन्द) ऋषभक, खरैटी, ऋ गोखरू, रास्ना, केंच, सांठ, इन सब तीन तीन पल लेवै। एक आढ़क माषकल इन सब को मिलाकर एक द्रोण जल चढा दे और चौथाई शेष रहने पर उ लेवै फिर इस में मुलहटी, दाख, अंजी पीपल, केंच, महुआ, खिजूर, सितावर सब पीसकर मिळादेवै फिर वि कंदका रस, आंवळे का रस, ईख का और घी ये चारों एक २ आढक और द्रोण दूध चढाकर पकावै पकते पकते घी बच रहै तब उसे छान ले फिर उस शर्करा और वंशलोचन एक एक प्र पीपल चारपल, कालीमिरच एक पल चीनी आधेपळ, इलायची आधेपल आधेपल और शहत दो कुडव सबको मिलालेवै। इसमें से एक एक गोली बनाकर अग्निवल के अनुसार करै। यह योग अत्यन्त वृष्य, वृहंण और बलवर्द्धक होता है। इस प्रयो सेवन करने से अश्ववत् स्त्री गमन में होवै।

वाजीकरण घृत।

माषाणामात्मगुप्तायाबीजानामाढकं जीवकर्षभकौवीरंमेदामृद्धिंशतावरीं मधुकंचाश्वगन्धाञ्चसाधयेत्कुडवो ताम्॥ रसेतस्मिन्घृतप्रस्थंगव्यंदश पयः। विदारीणांरसप्रस्थंप्रस्थमिक्षुर स्यच। दत्त्वामृद्वग्निनासाध्यंसिद्धंस

येत् । शर्करायास्तुगाक्षीर्याःक्षौद्र
पृथक्पृथक् ॥ भागांश्चतुष्पलांस्तत्र
पिप्पल्याश्चावपेत्पलम् ।
पूर्वमतोलीढ्वाततोन्नमुपयोजयेत् ।
इच्छेदक्षयंशुक्रंशेफसश्चोत्तमंबलम् ॥

र्थ—नये उरद एक आढक, नये केंच
ज एक आढक, जीवक, ऋषभक,
ही कंद, मेदा, सितावर, मुलहटी और
ध इन सबको एक एक कुडव लेवै
ने जल में चढाकर चौथाई शेष रहने
उतार कर छान ले फिर उस रस में
प्रस्थ गौका घी, दसगुना दूध, विदारी
का रस एक प्रस्थ, ईखका रस एक
इन सब को मिलाकर मन्दी मन्दी आँच
कावै, जब घृत शेष रह जाय तब उसे
शर्करा, बंशलोचन, शहत प्र-
र चार पल, पीपल एक पललेकर
कहे हुए गुटका की तरह एक २
सेवन करै, औषध सेवन के पश्चात्
करै । इस के सेवन करने से शुक्र
और पुंजननेन्द्रिय अत्यन्त वलिष्ठ
है ।

वाजी कारण पिण्डरस ।

माषविदलास्तुगाक्षीरीचपयोघृतम्
चूर्णषष्ठीनिसर्पिष्युत्कारिकांपचेत् ।
तिपक्कांमृदितांकौक्कुटेमधुरेरसे ॥ सु
प्रक्षिपेदुष्णेयथासान्द्रीभवेद्रसः । ए
डरसोवृष्यःपौष्टिकोबलवर्द्धनः ॥
ाश्वइवोदीर्णोवली।लिङ्गंसम पयेत् ।
वतित्तिरिहंसानामेवंपिण्डरसोमतः॥

अर्थ—शर्करा, उरदकी दाळ का चून, वंशलोचन, दूध, घी, और गेहूं का चून इन सब को मिलाकर लपसी बनावै । पकाते समय जब कुछ पकजाय तबही इस में कुकुटमांसरस डालदेवै और गरम में ही सुगंधित द्रव्य इलायची आदि डालकर धीरे धीरे चलाता रहै यहां तक कि वह गाढा पड़ जाय । यह **पिण्डरस** अत्यन्त वृष्य पुष्टि करता और वल वर्द्धक होता है, इस के सेवन से घोडे के समान रति करने में इच्छा होती ही । मोर, तीतर और हंसो का पिण्ड रस भी इसी तरह वनाता है ।

वलकारकरस ।

घृतमाषान्सवस्ताण्डान्साधयेन्माहिषे
रसेभर्जयेत्तंरसंपूतंफलाम्लंनवसार्पिषि ॥
ईषत्सलवणंयुक्तंधान्यजीरकनागरैः । ए
षवृष्यश्चवल्यश्चवृंहणश्चरसोत्तमः ॥

अर्थ—घी, उरद, बकरेके अंडकोष इनको भैंसे के मांसरस में पकाकर रसको निकाल लेवै, इस रस में ताजी घी फलों की खटाई, थोड़ा सा नमक धनियां, जीरा, सोंठ मिलाकर सेवन करै । यह रस वृष्य, बल कर्त्ता, वृंहणकर्त्ता और बहुत उत्तम होताहै ।

दूसरा वृष्यरस ।

चटकांस्तित्तिरिरसेतित्तिरीन्कौक्कुटेरसे।कुक्कु
टान्वार्हिणरसेहांसेबार्हिणमेवच ॥नवसर्पि
षिसन्तप्तान्फलाम्लान्कारयेद्रसान्।मधुरा
न्वायथासात्म्यंगन्धाढ्यान्वलवर्द्धनान् ॥

अर्थ—चटकमांस को तीतर के मांसरस में, तीतर के मांसको मुर्गे के मांसरस में

मुर्गमांस को मोर के मांसरस में, मोर मांस को हंसके मांसरस में सिद्ध कर के गरम गरम को ताजी घी में छोंककर अनारदाने की खटाई और इलायची आदि मसाले डाळकर मिश्री से मीठा कर के सेवन करै तौ बलकी वृद्धि होय ।

वृष्यमांस ।

तृप्तिञ्चटकमांसानांगत्वायोऽनुपिवेत्पयः
नतस्यबलशैथिल्यंस्यान्नशुक्रक्षयोनिशि ।

अर्थ—पेट भरकर चटककामांस खाकर ऊपरसे दूध पीले, रात्रि में उसका बल तथा शुक्र कभी क्षीण न होगा ।

वृष्य प्रयोग ।

माषयूषेणयोभुक्त्वाघृताढ्यंषष्टिकौदनम् ।
पयःपिवतिरात्रिंसकृत्स्नांजागर्त्तिवेगवान
ननास्वपितिरात्रीषुनिस्तब्धेनचशेफशा ॥
तृप्तःकुक्कुटमांसानांभृष्टानांनक्ररेतसि । निः
स्राव्यमत्स्याण्डरसंभृष्टंसर्पिषिभक्षयेत् ॥
हंसवर्हिणदक्षाणामेवमण्डानिभक्षयेत् ।

अर्थ—मांषयूष के साथ घृतप्लुत भात खाकर ऊपरसे दूधपीवें वह ऐसा वेगवान् होजाय कि रात्रभर न सोवे । अथवा-मगर के वीर्य में मुर्गे के मांसको भूनकर तृप्ति पर्य्यंत सेवन करै तौ शेफकी निस्तब्धतासे रात्रि में नींद न आवे । अथवा—मछली के अंडों के रस को निकालकर घृत में भूनकर खाय अथवा हंस, मोर या मुर्गे के अंडों के रसको इसी तरह सेवन करै तौ वाजीकरण होता है ।

वाजीकरण सेवनविधि ।

स्रोतःसुशुद्धेष्वमलेशरीरे वृष्यंयदा
हितदात्तिकालेवृषायतेतेनपरंमनुष्य
बृंहणञ्चैववलप्रदञ्च । तस्मात्पुरा
नमेवकार्य्यं वलानुरूपंनहिवृष्ययोग
सिध्यन्तिदेहेमलिनेप्रयुक्ताः क्लिष्टेयथ
सिरागयोगाः ॥ सिद्ध्यन्तिदेहेम
युक्ताक्लिष्टेयथावाससिरागयोगाः

अर्थ—शरीर के शुद्ध होने पर स्रोतःसमूह के शुद्ध होनेपर यदि वृष्य थोंका सेवन कियाजाय तौ उस के से मनुष्य बैल के समान वृष्य होजाता है उसही समय वह वृष्य पदार्थ बृंहण और वळवर्द्धक होता है । इस लिये पदार्थों के सेवन से पहिले वमन वि दिसे शरीर को शुद्ध कर लैना विना देह की शुद्धि के वृष्य योग होते हैं जैसे मैले वस्त्रको रंगने से रंग नहीं चढता है ।

प्रथम पादका संक्षिप्त वर्णन

वाजीकरणसामर्थ्यंक्षेत्रंस्त्रीयस्यचै
येदोषानिरपत्यानांगुणाःपुत्रवताञ्
उक्तास्तेशरमूलीयेपादेपुष्टिवलप्रदा
शपञ्चचसंयोगावीर्य्यापत्यविवर्द्ध

अर्थ—इस शरमूलीय नामक पाद में वाजी करण के योग्य स्त्री को क्षे जिस को जो स्त्री वाजीकरण योग्य, सन्तान पुरुष के दोष, सन्तान वाले के गुण तथा पुष्टाई और बल वढाने वीर्योत्पादक तथा सन्तानोत्पादक प

का वर्णन किया गया है ।
त्सितेशरमूलीयो वाजीकरण पादःप्रथमः।

द्वितीयपादः ।

तआसिक्तक्षीरीयं[२]वाजीकरण
याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवा
नात्रेयः ।

र्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोळे
अव हम आसिक्तक्षीरीय नाम द्वितीय
ी व्याख्या करेंगे ।

सन्तानोत्पादक गुटिका ।

क्तक्षीरमापूर्णमशुष्कंशुद्धषष्टिकम् ।
लेसमापोथ्यपीड़येत्क्षीरमर्दितम् ॥
वातंरसंपूतंगव्येनपयसासह । वीजा
त्मगुप्तायाधान्यमाषरसेनच ॥ बला
जीवन्त्याजीवकस्यचात्र
काकोलीश्वदंष्ट्रामधुकस्यच॥शता
दार्याश्चद्राक्षाखर्जूरयोरपि। संयु
यावैद्यःसाधयेत्तत्रचावपेत् ॥ तुगा
ःसमाषाणांशालीनांषष्टिकस्यच ।
नाश्चचूर्णानियैःससान्द्रीभवेद्रसः।
भूतञ्चतंकुर्य्यात्प्रभूतमधुशर्करम्।
ाबदरैस्तुल्यास्ताश्चसर्पिषिसाध
। तायथाग्निप्रयुञ्जानःक्षीरमांसरसा
। पश्यत्यपत्यंविपुलंवृद्धोऽप्यात्मज
मक्षयम् ॥

—पूर्णरस, हरे और शुद्ध साठी
को दूध में भिजोवै जव बहुत भी-
य तब उन्हे खरल करले और दूध में
कर वस्त्र में छानळेवै । इस रस में
दूध मिलावै । फिर इस में केंच के
वीज, धनिया, माषरस, खरैटी, मुद्गपर्णी
माषपर्णी, जीवन्ती, जीवक,ऋद्धि, ऋषभक
काकोली, गोखरू, मुलहटी, सितावर, वि-
दारीकन्द, दाख, खिजूर, इन सब का क्राथ
उस में मिलाकर पकालेवै जब ये पकने पर
आजाय तब वंशलोचन, उरद का चून,
शालीचून, षष्टिक चून, गेंहू का चून इन
को घी में भूनकर उस में डाळदे और
कलछी से चळाता रहै जब तक वह गाढा
होजाय, गाढा होने पर शहत और सफेद
वूरा बहुतसा डालदे, फिर इसकी वेरकी
बरावर गोली बनाकर घी में तल ळेवै ।
अपनी अग्नि के बल के अनुसार इसका
सेवन करै और ऊपर खूब दूध पीवै, खूब
मांसरस पीवै । इस वाजीकरण के सेवन
करने से वुढ़ापे में भी दीर्घजीवीसन्तान होती है

द्वितीय प्रयोग ।

चटकानांसहंसानांदक्षाणांशिखिनांतथा।
शिशुमारस्यनक्रस्यभिषक्शुक्राणिसंहरेत्।
गव्यंसर्पिर्वराहस्यकुलिङ्गस्यवसामपि ।
षष्टिकानाञ्चचूर्णानिचूर्णंगोधूममेवच ॥
एभिःपूपलिकाःकार्य्याःषष्कुल्योवर्त्ति
कास्तथा ॥ पूपाधानाश्चविविधाभक्ष्या
श्चान्येपृथग्विधाः । एषांप्रयोगाद्भक्ष्या
णांस्तब्धेनापूर्णरेतसा ॥ शेफसावाजि
वद्यातियावदिच्छंस्त्रियोनरः ।

अर्थ—चटक, हंस, मुर्गा,मोर, शिशुमार
और मगर का वीर्य लावै तथा गौका घी,
शूकर की चर्वी, चटककी चर्वी तथा चांवलों
का चून और गेंहू का चून इन सब को

मिलाकर पूरी, शष्कुली वा वाटी अथवा और तरह तरह के भक्ष्य पदार्थ वनालेवै। इनका सेवन करने से शेफेन्द्रिय स्तब्ध और शुक्र से भरी हुई रहती है अथच पुरुष इच्छानुसार स्त्री गमन करसकता है।

तीसरा प्रयोग।

आत्मगुप्ताफलंमाषःखर्जूरानिशतावरीम् शृङ्गाटकानिमृद्वीकांसाधयेत्प्रसृतोन्मिताम्। क्षीरप्रस्थंजलप्रस्थंएतत्प्रस्थावशेषितम्। शुद्धेनवाससापूतंयोजयेत्प्रसृतैस्त्रिभिः। शर्करायास्तुगाक्षीर्य्याःसर्पिषोऽभिनवस्यच ॥ तत्पाययेतसक्षौद्रंषष्टिकान्नञ्चभोजयेत्। जरापरीतोऽप्यबलोयोगेनानेनविन्दति ॥ नरोऽपत्यंसुविपुलंयुवैवचसहृष्यति।

अर्थ—केंचके वीज,उरद,खिजूर,सितावर-सिंघाडे और दाख इनसब को एक एक प्रसृत (८ तोले) लेवै इन में एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ (६४ तोला) जल डालकर सिद्ध करै। एक प्रस्थ जळ शेष रहने पर उतार कर छान डालै और इस रस में शर्करा, वंशलोचन और ताजी घी प्रत्येक तीन तीन प्रसृत मिला देवै। इस औषध को शहत में मिलाकर सेवन करै, चांवलों का भात खाय, जराग्रस्त और निर्वल मनुष्य भी इसके सेवन से युवाकी तरह आल्हादित होकर बहुत सन्तान प्राप्त करैगा।

चौथा प्रयोग।

खर्जूरीमस्तकंमाषान्पयस्यांसशतावरीम् खर्जूराणिमधूकानिमृद्वीकामजडाफलम्। पलोन्मितानिमतिमान्साधयेत्सर्पि... ढके ॥ तेनपादावशेषेणक्षीरप्रस्थं... चयेत्। क्षीरशेषेणतेनाद्यात्घृताढ्... कौदनम् ॥ सशर्करेणसंयोगएषवृष्य... रंस्मृ...

अर्थ—खिजूर, उरद, क्षीरकाकोली ...तावर, खिजूर, महुआ, दाख, केंच के ... इन सब को एक एक पल लेकर एक ... जल में चढ़ादेवै जब चौथाई रहजाय ... छानकर इस रस में एक प्रस्थ दूध ... जब जळ जलजाय और दूध शेष रह... तव उसका सेवन करै। ऊपरसे घृत... भातका भोजन करै भात में सफेद बूर... मिलालेवै। यह अत्यन्त वृष्य ...

पाँचवां प्रयोग।

जीवकर्षभकौमेदांजीवन्तींश्रावण... खर्जूरंमधुकंद्राक्षांपिप्पलींविश्वभे... शृङ्गाटकींविदारीञ्चनवंसर्पिःप... सिद्धंघृतावशेषंतत्शर्कराक्षौद्रपा... षष्टिकान्नेनसंयुक्तमुपयोज्यंयथा... वृष्यंबल्यञ्चवर्ण्यञ्चकण्ठ्यंबृंहणमु...

अर्थ—जीवक, मेदा, ऋषभक, ... श्रावणी, महाश्रावणी, खिजूर महुआ... पीपल, सोंठ, सिंघाडा, विदारीकंद, ... घी, दूध, जल, इन सव को मिलाकर ... पर चढादे जव घृत शेष रहजाय त... से चौथाई शर्करा और मधु मिला... ऊपरसे चांवलों का भात शरीर के ... अनुसार सेवन करै। यह प्रयोग

र्य, वर्णप्रसादक, कंठको हितकारी अत्यन्त बृंहण है।

छटा प्रयोग।

:शरंशरच्चन्द्रसन्निभंदोषवर्जितम् ॥ गात्क्षौद्रमरिचैस्तुगाक्षीर्य्याश्चबुद्धिमान् यायुक्तंसुसूक्ष्मैलंनवेकुण्डेशुचौपटे ॥ तंप्रक्षिपेच्छीतेघृताढ्येषष्टिकौदने । मात्रांरसालायास्तंमुक्त्वाषष्टिकौद ॥ वर्णस्वरबलोपेतःपुमांस्तेनवृषायते

र्थ—चन्द्रमाकी चांदनी के समान उ दोषरहित दही की मलाई लावै उ सफेद बूरा, शहत, कालीमिरच, बंश न और इलायची इन सबको मिलाकर शुद्ध नये वस्त्र में मथकर एक मिट्टी रखदेवे और इस को घृतप्लुत थ दबाकर ऊपर से रसाला पान स प्रयोग के सेवन करने से मनुष्य र्ण और स्वर सम्पन्न होजाता है वत स्त्री संगम में प्रवृत होता है।

सातवां प्रयोग।

गुकल्पंपयसाघृताढ्यंषष्टिकौदनम्॥ मधुसंयुक्तंप्रयुञ्जानोवृषायते।

—जो मनुष्य चन्द्रकान्तिवत् उज्वल घी, शर्करा और मधु मिश्रित भात न करता है वह वृषवत् रमण में होता है।

आठवां प्रयोग।

पिंषिनक्राण्डंताम्रचूडाण्डमिश्रितम् ष्टिकचूर्णेनसर्पिषाभिनवेनच। पूपलिकाःखादेद्वारुणीमण्डपोनरः। यइच्छेदश्ववद्गन्तुंप्रसेक्तुंगजवच्चयः।

अर्थ—तप्त घृत में नक्रके अंडे और मुर्गा के अंडों को तलकर साठी चांवलके चून और ताजीघी में सानकर पूरी उतारलेवै और इनको खाय और ऊपर से सुराम-ण्डका पान करै,यह प्रयोग उस मनुष्य के लिये है जो घोडे के समान रमण करने की इच्छा करता है और हाथी के समान वीर्य का क्षेप करना चाहता है।

द्वितीयपादका संक्षिप्त वर्णन

आसिक्तक्षीरिकेपादेयेयोगाःपरिकीर्त्तिताः। अष्टावपत्यकामैस्तेप्रयोज्याःपौरुषार्थिभिः॥ एतैःप्रयोगैर्विविधैर्वपुष्मान् स्नेहोपपन्नोबलवर्णयुक्तः। हर्षान्वितोवाजिवदष्टवर्षोभवेत्समर्थश्चवराङ्गनासु। यद्यच्चाकिञ्चिन्मनसःप्रियंस्याद्रम्यावनान्ताःपुलिनानिशैलाः। इष्टास्त्रियोभूषणगन्धमाल्यंप्रियावयस्याश्चतदत्रयोग्यम्॥

अर्थ—इस आसिक्तक्षीरक पाद में जो आठ प्रयोग बर्णन किये गये हैं वे अपत्यार्थी और पौरुषार्थी मनुष्यों के सेवन करने के योग्य हैं। इन प्रयोगोंका सेवन करने से मनुष्य स्निग्ध, बलवर्णयुक्त, हर्षान्वित होकर स्त्रीगणोंसे रमण करने में घोडे की तरह आठ वरस तक समर्थ रहेगा। जो जो वस्तु मन को प्रसन्न करने वालीहैं वे बाजीकरण में सहायता देती हैं यथा रमणीक बनों में घूमना, पुलिनों में विहार करना, पहाडकी चोटियों पर सैर करना, मनोरमास्त्रियों का सहवास, भूषण,

गन्ध, माला, और प्यारे समानवयवाले मित्रों का समागम ॥

इत्यासिक्तक्षीरिकोनामद्वितीयःपादः ।

तृतीयःपादः ॥

अथातोमाषपर्णतृतीय[३]वाजीकरणपादंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम माषपर्ण नामक तृतीय पाद की व्याख्या करेंगे ॥

दूधकोबाजीकरणत्व ।

माषपर्णभृतांधेनुंगृष्टिंपुष्टांचतुःस्तनीम् । समानवर्णवत्साञ्चजीववत्साञ्चबुद्धिमान्॥ रोहिणीमथवाकृष्णामूर्द्ध्वशृङ्गीमदारुणाम् । इक्ष्वादामर्जुनादांवासान्द्रक्षीराञ्चधारयेत् ॥ केवलन्तुपयस्तस्याःशृतंवाशृतमेववा । शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तंतद्वृष्यमुत्तमम् ॥

बुद्धिमान् ऐसी गौ को तलाश करे जो विशेष करके उरद के भुसको खाती है, जो सकृत प्रसूता हो, जो पुष्ट हो और चारों थनों से युक्त हो, जिसका बछडा उसी के रंगका हो और जीता हो, जिसका वर्ण रोहित वा काला हो, जिसके सींग ऊंचे हों, दारुण न हों, जो ईख खाती हो, वा अर्जुनके पत्ते खातीहो, जिसका दूध गाढाहो ऐसी गौ के औटे वा बिना औटे दूध को मिश्री, शहत और घी मिळाकर पीवै तौ यह दूध अत्यन्त पुष्टिकारक है ॥

शुक्रवर्द्धनप्रयोग ॥

शुक्रलैर्जीवनीयैश्चबृंहणैर्बलबर्द्धनैः सञ्जननैश्चैवपयःसिद्धंपृथक्पृथक्॥ धूमचूर्णेनसघृतक्षौद्रशर्करम् । पय
णप्रयोक्तव्यमिच्छताशुक्रमक्षय

अर्थ—शुक्रवर्द्धकगण, जीवनीयगण
हणगण, बलवर्द्धनगण,स्तन्यवर्द्धक ग
भिन्न २ औषधियों को दूध में सिद्ध
के, गेहूंकाचून, घी शहत और खांड
लाकर पर्य्यायक्रम से सेवन करै तौ
शुक्रकी वृद्धि होती है ॥

मेदांपयस्यांजीवन्तींबिदारींकण्टका
म् । माषान्श्वदंष्ट्रांक्षीरीकांगोधूम
लिषष्टिकान् ॥ पयस्यर्द्धोदकेपक्त्व
षिंकानाढकोन्मिते । विवर्जय
तत्पूतंक्षौद्रसर्पिषा ॥ युक्तंसशर्क
वृद्धःसाप्ततिकोऽपिवा । विपुलं
पत्यंयुवेवचसहृ

अर्थ—मेदा, क्षीरकाकोळी,
विदारीकन्द, कटेरी, उरद, गोखरू
लोचन, गेहूं, शालीचावल, षष्टि
इन सब को एक २ कर्ष लेकर एक
आधे जल और आधे दूध में पकावे
ते २ जब दूध शेष रहजाय तब
नकर घी, शहत और चीनी मिलाव
करै तौ सत्तर वर्षका बुड्ढा भी बहु
न्तान उत्पन्न करने के योग्य होजाय
तरुण की तरह आल्हादित होवै ॥

अन्यप्रयोग ॥

मण्डलैर्जातरूपस्यतस्याएवपयःशृ

त्यजननंसिद्धंसघृतक्षौद्रशर्करम् ॥

र्थ—स्वच्छ सुवर्णका एक टुकडा डा र दूध को औटाळे और फिर उस में शहत और खांड मिलाकर पानकरै निश्चय सन्तान होय ॥

अन्यप्रयोग ॥

शत्सुपिष्टाःपिप्पल्यःप्रकुश्चेतैलसर्पिषोः ग्राःसशर्कराक्षौद्राःक्षीरधारावदोहिताः स्वाययाबलश्चोर्द्धंषष्टिकंक्षीरसर्पिषा। त्वानरात्रिमस्तब्धंलिङ्गंपश्यतिनाक्ष रम् ॥

र्थ—तीस पीपलों को पीसकर चार ले घी तेल में भून लेवै,फिर इस में खांड र घी मिलाकर एक पात्र में धरले और गौ का दूध दोहकर बळके पानकरै और ऊपर से दूध,घी और भोजन करै तो रात्रिभर शेफेन्द्रिय ल न होगी और स्तम्भता भी होगी॥

अन्यप्रयोग ॥

ष्ट्रायाविदार्य्याश्चरसेक्षीरचतुर्गुणे। ढ्यःसाधितोवृष्योमाषषष्टिकपायसः॥

र्थ—गोखरूकारस, विदारीकन्दकारस दोनों से चौगुना दूध लेकर उरद और चांवलकी खीर बनाकर घी डालकर नकरै तो यह भी वृष्य है ॥

अन्यप्रयोग ॥

लानांजीवनीयानांस्निग्धानांरुचिका णाम् । कुडवःचूर्णितानांस्यात्स्वयंगुप्ता ळस्यच ॥ कुडवश्चैवमाषाणांद्वौद्वौच लमुद्गयोः । गोधूमशालिचूर्णानांकुडवः कुडवोभवेत् ॥ सर्पिषःकुडवश्चैकस्तत्सर्वं क्षीरसंयुतम् । पक्त्वापूपलिकाःखादेद्बहूव्यः स्युर्यदियोषितः ॥

अर्थ—स्निग्ध और रुचिकारक जीवनीय गणोक्त द्रव्यों के फलोंका एक कुडवचूर्ण, केंच के बीजों का चूर्ण एक कुडव, उरद का चूर्ण दोकुडव, तिलकाचून दोकुडव, मूंगकाचून दोकुडव गेहूंकाचून एककुडव,, शाळीचांवलोंका चून एक कुडव घी दो कुडव इन सबको दूध में मांडकर घी में उतार लेवे। परन्तु जिसके बहुत स्त्रियां हों वही इसका प्रयोग करे ॥

अन्यप्रयोग ॥

घृतंशतावरीगर्भंक्षीरेदशगुणेपचेत्।शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तंतद्वृष्यमुत्तमम् ॥

अर्थ—घी और सितावरकी गुळी को दसगुने दूध में पकावे फिर इस में खांड, पीपल और शहत मिलाकर भोजन करै तो यह उत्तम वृष्य प्रयोग होवै ॥

अन्यप्रयोग ॥

कर्षंमधूकचूर्णस्यघृतक्षौद्रसमांशिकम् । प्रयुंक्तेयःपयश्चानुनित्यवेगःसनाभवेत् ॥

अर्थ—मुलहटी का चूर्ण एककर्ष और इस में बराबरका घी शहत मिलाकर चाट ले ऊपर से दूध पी ले तो अत्यन्त वेग की प्राप्ति होवे ॥

अन्य प्रयोग ।

घृतक्षीराशनोनिर्भीर्निर्व्याधिर्नित्यगोयुवा सङ्कल्पप्रवणोनित्यंनरःस्त्रीषुवृषायते ॥

अर्थ—यदि दूध और घी का सेवन

ऐसा पुरुष करै जो निर्भय, व्याधि रहित आन्हिक कर्म का करने वाला और संकल्प करने वालाहो तौ विजारकी तरह स्त्रियों से रमण करै ।

अन्य प्रयोग ।

कृतैककृत्याःसिद्धार्थायेचान्योऽन्यानुवर्त्तिनः। कलासुबाह्यायेतुल्याःसत्त्वेनवयसा चये ॥ कुलमाहात्म्यदाक्षिण्यशीलशौचसमन्विताः । येकामनित्यायेहृष्टायेविशोकागतव्यथाः ॥ येतुल्यशीलायेभक्ता येप्रियायेप्रियम्वदाः। तैर्नरःसहविस्रब्धः सुवयस्यैर्वृषायते ॥

अर्थ—एकही कर्म के करने वाळे, सिद्ध संकल्प, अन्योन्यानुवर्त्ती, वाह्यकला तथा सत्व और वय में परस्पर तुल्य, सत्कुलोद्भव, प्रशंसनीय, चतुर, शीलसम्पन्न, पवित्रता परायण भोगिया, हृष्ट, शोक रहित गतव्यथ समान शील सम्पन्न, अन्योन्य प्रेमी, प्रिय वक्ता ऐसे समान वय वाले पुरुषों के साथ रहने सहने से भी मनुष्य वृष्य होता है ।

अन्य प्रयोग ।

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानगन्धमाल्यविभूषणैः । गृहशय्यासनसुखैर्वासोभिरहतैःप्रियैः ॥ विहङ्गानांरुतैरिष्टैःस्त्रीणाञ्चाभरणस्वनैः । संवाहनैर्वरस्त्रीणामिष्टानाञ्च वृषायते ॥

अर्थ—तैलमर्दन उवटना, स्नान, अतर-लगाना, फूलमाला धारण करना, आभूषण पहरना, सुखदायक घर, सेज, आसनों पर सौना वैठना, सुन्दर सावत हलके मनोनुकूल वस्त्र धारण करना, चित्ताकर्षक पक्षि के कलरव श्रवण करना, स्त्रियों के भू की छना छन श्रवण करना, सुन्दर मन कूल स्त्रियों से पगचप्पी करना इन का से भी मनुष्य वृष्य होताहै ।

अन्य प्रयोग ।

मत्तद्विरेफाचरिताःसपद्माःसलिलाशय जात्युत्पलसुगन्धीनिशीतगर्भगृहाणि नद्यःफेनोत्तरीयाश्चगिरयोनीलसान उन्नतिर्नीलमेघानांरम्यचन्द्रोदयानिश वायवःसुखसंस्पर्शाःकुमुदाकरगन्धि रतिभोगक्षयारात्र्यःसङ्कोचागुरुवल्लभा सुखाःसहायाःपरपुष्टघुष्टाःफुल्लावना विशदानुपानाः । गान्धर्वशब्दश्चसुग माल्याःसतत्त्वंविशालंनिरुपद्र द्धार्थताचाभिनवश्चकामःस्त्रीचा मिहात्मजस्य । वयोनवंजातमद लोहर्षस्ययोनिःपरमानराण

अर्थ—ऐसे जलाशयों पर विहार जहां खिलेहुए कमलोंपर मतवाले भौंरे जार कररहे हों, जहां चमेली और की सुगन्ध की महक माररही हो, घरहों, जहां झागदार नदियां बहरहीं ऐसे पर्वतों पर बिहार करना जिन के लवर्ण के शिखर अत्यन्त शोभायुक्त काली २ घटा सिर के ऊपर घिर आ रात्रि में जव चन्द्रमा की शीतलचां छिटक रही हो, जहां कुमोदनियों के ग से सुगन्धित पवन शरीर को स्पर्श क हो, रमण के योग्य जाडे की रात्रियों

बडे वूढों का संकोच न हो, जहां त्पादक सम्पूर्ण सामान उपस्थित हों, हुए उपवनों में जहां कोकिला कुहुक रहीहो, विशद अन्नपान का सेवन हो बजाने की मन्द २ तान कान में प्रकर रहीहो, सुगन्धित फळमाला धाकर रक्खे हों, विशाळ और उपद्रव त सत्व सेवन, सिद्ध संकल्पता, नित अभिळाषाका पूर्ण होना,कामदेवकीशस्त्र स्त्रियों की उपस्थिति, नवीनवय, बऋतु ये सब बातें मनुष्यों को हर्षित ने वाली हैं ॥

तृतीयपादका संक्षिप्त वर्णन ॥

षेयोनयोयोगाव्याख्यातादशपञ्चच। तृतीयेचपादेशुक्रबलप्रदाः॥

इस माषपर्णनामक तृतीय पाद वीर्य के वढाने वाले और हर्षोत्पादक प्रयोग बर्णन किये गये हैं ॥

माषपर्णनामतृतीयोवाजीकरणपादः॥

चतुर्थपादः ॥

तःपुमान्जातवलादिकं(४)वाजीक ादंव्याख्यास्यामःइतिहस्माहभगवानात्रेयः

र्थ—तदनन्तर भगवान आत्रेय बोले बहम जातवलादिनामक चौथे वाजीपादकी व्याख्या करेंगे ॥

यथाजातवलोयावदिच्छंस्त्रियोव्रजे यथाचापत्यवान्सद्योभवेत्तदुपदेच्यते ॥

र्थ—अव हम उन वातों का वर्णन करेंगे जिनसे पुरुष वलवान् होकर जितनी चाहै उतनी स्त्रियों से भोग करसकै और जिनसे तत्काल सन्तान भी प्राप्त कर सकै।

भिन्न भिन्न पुरुषों की प्रकृति ।

नहिजातवलाःसर्वेनराश्चापत्यभागिनः वृहच्छरीराबलिनःसन्तिनारीषुदुर्वलाः ॥ सन्तिचाल्पायुषःस्त्रीषुबलवन्तोवहुप्रजाः। प्रकृत्याचावलाःसन्तिसन्तिचामयदुर्बलाः नराश्चटकवत्केचित्व्रजन्तिबहुशःस्त्रियम् गजवच्चप्रसिञ्चन्तिकेचिन्नबहुगामिनः। कालयोगवलाःकेचित्केचिदभ्यसनध्रुवाः केचित्प्रयत्नैर्वाह्यन्तेवृषाःकेचित्स्वभावतः तस्मात्प्रयोगानवच्यामोदुर्बलानांवलप्रदान ॥ सुखोपभोगान्बलिनांभूयश्चबल वर्द्धनान् ॥

अर्थ—यह वात नहीं है सम्पूर्ण वलवान् पुरुषों के सन्तान होती ही हो, क्यों कि बहुतसे ऐसे ऐसे मनुष्य हैं जिन के बड़े २ शरीर हैं परन्तु वे स्त्री गमनमें असमर्थ होते हैं कितनेही अल्पायु पुरुष स्त्री गमन में बड़े बळवान् और बहुत सन्तान युक्त होते हैं, कितनेही प्रकृति से दुर्बल हैं कितनेही रोगों के कारण दुर्बळ हैं । कितने ही दुर्बल भी चिरोंटे की तरह वहुतसी स्त्रियों से गमन करते हैं, कितने वहुगामी पुरुषभी हाथी की तरह वीर्य को छोड़ते हैं। कोई काल योग से और कोई अभ्यास से कामोन्मुख होते हैं, कोई बाह्य प्रयत्नों से और कोई स्वभाव से वृष्य होते हैं, इस लिये अब हम उन प्रयोगों का

वर्णन करते हैं जो दुर्वलोंको वलवान् वनाने वाले हैं और वलवानों को सुखोपभोगके योग्य वल बढाने वाले हैं ।

शुक्रवर्द्धन प्रयोग ।

घृततैलरसक्षीरशर्करामधुसंयुताः ॥ वस्तयः संविधातव्याः क्षीरमांसरसाशिनाम्॥ पिष्ट्वावराहमांसानिदत्त्वामरिचसैन्धवे॥ कोलवद्गुलिकाःकृत्वातप्तेसर्पिषिभर्जयेत्॥ भर्जनस्तम्भितास्ताश्चप्रक्षेप्याःकौक्कुटेरसे॥ घृताढ्येगन्धपिशुनेदाधिदाडिमसाधिते । यथानभिन्द्याद्गुलिकास्तथातंसाधयेद्रसम्॥ तंपिवन् भक्षयंस्ताश्च लभते शुक्रमक्षयम्॥ मांसानामेवमन्येषांमेध्यानांकारयेद्भिषक्॥ गुडिकाःसुरसास्तासांप्रयोगःशुक्रवर्द्धनः ।

अर्थ—घृत, तेल, मांसरस, दूध, खांड़ और शहत इनकी सव प्रकार की वस्तियां देवै और दूध तथा मांस रस पीता रहै तौ बलकी वृद्धि होय, अथवा शूकर के मास को पीसकर उस में काली मिरच और सेंधा नमक डालै और वेर की वरावर गोली सी (पकौड़ी) वनाकर घी में तल लेवै और मुर्गे के मांस रस में डालताजाय, इस रस को घी, सुगंधितद्रव्य, दही और अनार की खटाई डालकर ऐसा पकालेवै कि जिस में वे पकौड़ी फूट न जांय । इस मांस रस को पीने तथा पकोड़ियों को खाने से वीर्य अक्षय होजाता है । इसीतरह अन्यमांसों की पकौडी और रस बनाकर सेवन करने से वीर्य बढता है ।

शुक्रवर्द्धन अन्य प्रयोग ।

माषानंकुरितानशुद्धान्निस्तुषान्सा फलान् । घृताढ्येमाहिषरसेदधिदा साधिते ॥ प्रक्षिपेन्मात्रयायुक्तान्धा जीरकनागरैः ॥ पीतोभुक्तश्चसरसः तेशुक्रमक्षय

अर्थ—शुद्ध निस्तुष उडद, केंच वीज, इनको पकाकर दही और अनार की खटाई डालकर सिद्ध कियेहुए घृत महिषमांस रस में डालदे, धनियां, जी सोंठ ये मसाळे भी डालदे, इसको रस भक्षण करने से वीर्य अक्षय होजाता है

अन्यप्रयोग ॥

आर्द्राणिमत्स्यमांसानिभृष्टाश्चशफरी तप्तेसर्पिषियःखादेत्सग

अर्थ—जो मछलीके ताजी मां शफरीनामक मछली के मांस को भूनकर खाते हैं वह स्त्री संगम में पराभूत नहीं होते हैं ॥

अन्यप्रयोग॥

घृतभृष्टान्रसेच्छागेरोहितान्फलस अनुपीतरसान्स्निग्धानपत्यार्थीप्रयो

अर्थ—अनारदाने की खटाई के सिद्ध कियेहुए वकरे के मांसके रसके घी में भुनीहुई रोहू मछली को खाय से उसी घृताढ्य रसका पान करै तौ के निश्चय सन्तान होय ॥

अन्य प्रयोग ।

कुट्टकंमत्स्यमांसानांहिंगुसैन्धवधान्य युक्तंगोधूमचूर्णेनघृतेपूपालिकाःपचेत

वरसेमत्स्यान्स्निग्धाम्ललवणान्प
। रसेचानुगतेमांसंपोथयेत्तत्रचावपेत्
पजीरकंधान्यमल्पंहिंगुनवंघृतम्॥मा
लिकानांतंगर्भार्थमुपकल्पयेत् । एतौ
कायोगौबृंहणीबलवर्द्धनौ ॥ हर्षसौ
भाग्यजननौपरंशुक्राभिवर्द्धनौ ।

—मछली के मांसको कूटकर भुनी
ंग, सेंधानमक और धनियां डालकर
चून के साथ मांड़कर घी में टिकियां
नाकर उतार ले और इनका सेवन
अथवा भैंसा के मांसरस में घी
और नमक डालकर मछली के मांस
कालेवै और उसी मांस रस में भिगो
और उसी में काली मिरच, जीरा,
थोडी सी हींग, ताजा घी डालदे
दकी पूरी सी बनाकर उसको उस
और घी में तलकर सेवन करै ।
प्रयोग बृंहणकर्त्ता, वलवर्द्धक; ह-
क, सौभाग्यकारक और अत्यन्त
र्द्धक हैं ।

अन्य प्रयोग ।

त्मगुप्तागोधूमशालिषष्टिकपैष्टिकम्॥
यायाविदार्याश्चचूर्णमिक्षुरसस्यच ।
य:सघृतेक्षीरेघृतेपूपलिका:पचेत् ॥
पाना:ता:शीघ्रंकुर्वन्तिवृषतांपरम्।

—उरद,केंचकेबीज, गेहूंकाचून,शा-
लकाचूनसांठीचावलकाचून इनमें खांड,
कन्द और ईखकारस डालकरदूधमें माढ
ी में टिकडी उतार लेवै, इनको खा-
पर से दुग्ध पानकरै तौ बहुतही
शीघ्र अत्यन्त वृषताकी प्राप्तिहोय ॥

अन्यप्रयोग ॥

शर्करायास्तुलैकास्यादेकागव्यस्यसर्पिषः
प्रस्थोविदार्य्या:चूर्णस्यपिप्पल्या:प्रस्थएव
च । अर्द्धाढकन्तुगाक्षर्यां:क्षौद्रस्याभि
नवस्यच ॥ तत्सर्वंमूर्च्छितंतिष्ठेन्मार्त्तिके
घृतभाजने। मात्रामग्निसमांतस्यप्रात:प्रात:
प्रयोजयेत्॥ एषवृष्य:परंयोग:कण्ठ्योबृंह
णएवच ।

अर्थ—खांड एकतुला, गौकाघी एक
तुला, विदारीकन्द एकप्रस्थ, पीपल एक
प्रस्थ, वन्शलोचन आधाआढक, नयामधु
आधाआढक, इन सबको मिलाकर घी की
चिकनी हांडी में भर दे, अग्निवल के अ-
नुसार प्रतिदिन प्रात:काल इसकी मात्रा
सेवन करै । यह योग अत्यन्त वृषताका-
रक, कण्ठको हितकारी और बृंहणकर्त्ताहै

अन्यप्रयोग ॥

शतावर्य्याविदार्य्याश्चतथामाषात्मगुप्तयो:।
श्वदंष्ट्रायाश्चनिष्काथानञ्जलेषुपृथक्पृथक्
साधयित्वाघृतप्रस्थंपयस्यष्टगुणेपुन: ॥
शर्करामधुसंयुक्तमपत्यार्थीप्रयोजयेत् ।

अर्थ—सितावर, विहारीकन्द, उरद, कें
चके बीज, गोखरू इन सबका पृथक् २
एक २ अंजलिक्वाथ लेवै इनमें एक प्रस्थ
घी और आठगुना जल डालकर पकावै,फि
रखांड और शहत मिलाकर वह मनुष्य
इसका सेवनकरै जिसे सन्तानकी इच्छाहो॥

अन्यप्रयोग ॥

घृतपात्रंशतगुणेविदारीस्वरसेपचेत्॥ स्नि

द्धंपुनःशतगुणेगव्येपयसिसाधयेत् । शर्करायास्तुगाक्षीर्याक्षौद्रस्येक्षुरसस्यच ॥ पिप्पल्याःसजडायाश्चभागैःपादांशिकैर्युतम् । गुलिकाःकारयेद्वैद्योयथास्थूलमुदुम्बरम् ॥ तासांप्रयोगात्पुरुषःकुलिङ्गइव हृष्यति ।

अर्थ—एकपात्र घी को सौगुने विदारी कन्द के रस में पकावे, फिर घृत के शेष रहनेपर उसे सौगुने गौके दूध में पकावै, फिर जब घी शेषरहजाय तब उसकी चौथाई खांड, वंशलोचन, शहत, तालमखाने पीपल और केंचके वीज डालकर गूलर के वरावर गोली वनालेवै । इसके सेवन करने से मनुष्य चिरोंटेकी तरह वृष्य हो जाता है ॥

अन्यप्रयोग ॥

सितोपलापलशतंतदर्द्धंनवसर्पिषःक्षौद्रपादेनसंयुक्तंसाधयेज्जलपादिकम् ॥ सान्द्रगोधूमचूर्णानांपादास्तीर्णेशिलातले । शुचौश्लक्ष्णेसमुत्कीर्यमर्दनेनोपपादयेत्॥शुद्धाउत्कारिकाःकार्याःचन्द्रमण्डलसन्निभाः । तासांप्रयोगाज्जवान्नारीःसन्तर्पयेत्नरः ॥

अर्थ—खांड सौपल, ताजाघी पचासपल शहतपच्चीसपल, और जल पच्चीसपल, इन को अग्नि पर चढाकर चलातारहै जव गाढा पडने लगै तव २५ पल गेहूं का चून मिलाकर धीरे २ पकाकर उतार ले, फिर एक स्वच्छ सिलपर डालकर सवको मीड डालै, यह चन्द्रमण्डल के समान उत्कारिका वनती है इस के सेवन से म हाथी की तरह स्त्री को प्रसन्न करने मर्थ होता है ॥

अन्यप्रयोग ॥

यत्किञ्चिन्मधुरंस्निग्धंजीवनंवृंहण हर्षणंमनसश्चैवसर्वन्तद्वृष्यमुच्यते रेवंविधैस्तस्माद्भावितःप्रमदांव्रजेत् वेगेनचोदीर्णःस्त्रीगुणैश्चप्रहर्षितः ॥ स्नात्वापयःपीत्वारसंचानुशयीतन तथासाप्यायतेभूयःशुक्रश्चबलमेव

अर्थ—जो २ पदार्थ मीठे, स्निग्ध वनकर्त्ता, बृंहण, भारी और मन को ह त्पन्न करने वाले हैं वे सब वृष्य हो इसलिये मधुर द्रव्यों का सेवन करके गमन में प्रवृत होवै । आत्मवेग से होकर वा स्त्री के गुणों से प्रहर्षित स्नान करके दुग्ध वा मांसरस पान शयन करै तो पूर्ववत् वळ वीर्य की होय ॥

शुक्रोपलब्धिकासमय ॥

यथामुकुलपुष्पस्यसुगन्धोनोपलभ्य लभ्यतेतद्विकाशात्तुतथाशुक्रंहिदेहि

अर्थ—जैसे फूलकी कली में यद्यपि सु होतीहै । परवहमालूमनहींहोती वह सु फूल केखिलनेपरहीमिलती है । इसी तर यद्यपि वालकपन में भी होता है परन् युवावस्था के प्राप्तहुए उसकी उप नहीं होसक्ती है ॥

सम्भोगकाल ।

नर्त्तेवैषोड़षाद्वर्षात्सप्तत्याः परतोन

ष्कामोनरःस्त्रीभिःसंयोगंकर्तुमर्हति॥
ालोह्यसम्पूर्णसर्वधातुःस्त्रियोव्रजन्।
तप्येतसहसातड़ागमिवकाजलम् ॥
रूक्षंयथाकाष्ठंजन्तुजग्धंविजर्जरम्।
ाशुविशीर्येततथावृद्धस्त्रियोव्रजन् ॥
—जो मनुष्य दीर्घजीवी होना चाहता
उचित है कि सोलह वर्ष की अवस्था
ले और सत्तर वर्ष की अवस्था से पीछे
वास में प्रवृत न हो। बालकपन में
धातु अपूर्ण होती हैं इससे उस
ा में स्त्री सहवास करने से उसका
ऐसे शुष्क होजाता है जैसे गरमी के
थोड़े जळका सरोवर सूखजाता है ।
सूखा, रूखा, कीड़ों से खाया हुआ
रीभूत काष्ठ हाथ लगते ही टूट
इसी तरह वृद्ध पुरुषभी स्त्री सह
रने से विशीर्ण होजाता है ।

शुक्रक्षीण के कारण ।

चिन्तयाशुक्रंव्याधिभिःकर्मकर्षणात्
छल्यनशनात्स्त्रीणाञ्चातिनिषेव
णात् ॥
—बुढापे से, चिन्ताग्रस्त होने से
से, परिश्रम जनक कार्यों के करने
न न करने से वा स्त्रियों के अत्य-
न से शुक्रक्षीण होजाता है ॥
यादविश्रम्भाच्छोकात्स्त्रीदोषदर्श
। नारीणामरसज्ञत्वादभिचाराद
त् ॥ तृप्तस्यापिस्त्रियोगन्तुंनशक्ति
यते । देहसत्वबलापेक्षीहर्षःशक्ति
श्चहर्षजा ॥

अर्थ—क्षय, भय, अविश्वास, शोक, स्त्री दोष दर्शन, स्त्रियों की अरसज्ञता, अभिचार असेवन इन कामों से तथा जिस का मन स्त्री संग से तृप्त होगया हो उस को स्त्री गमन की शक्ति उत्पन्न नहीं होती है। क्यों कि हर्ष तौ देह बल और सत्वबल के अधीन है और शक्ति हर्ष से उत्पन्न होती है।

शुक्र का स्थान ।

रसइक्षौयथादध्निसर्पिस्तैलन्तिलेयथा ।
सर्वत्रानुगतंदेहेशुक्रंसंस्पर्शनेतथा ॥ तत्
स्त्रीपुरुषसंयोगेचेष्टासंकल्पपीड़नात् ।
शुक्रंप्रच्यवतेस्थानाज्जलमार्द्रात्पटादिव ॥

अर्थ—जैसे ईखमें रसदही में घी और तिलों में तेल सर्वत्र रहता है उसी तरह वीर्य भी सब देह में तथा त्वचा में रहता है । वह वीर्य स्त्री पुरुष के संयोग, चेष्टा, संकल्प, पीड़नादि से ऐसे वाहिर निकल आता है जैसे गीले वस्त्र से जळ टपकता है ।

वीर्य निकलने के हेतु ।

हर्षात्तर्षात्सरत्वाच्चपैच्छिल्याद्गौरवाद
पि । अनुप्लवत्वात्सौक्ष्म्याच्चद्रुतत्वान्मारु
तस्यच ॥ अष्टाभ्यएभ्यहेतुभ्यःशुक्रंदेहा
त्प्रसिच्यते । चरतोविश्वरूपस्यरूपद्रव्यं
यदुच्यते ।

अर्थ—हर्ष,अभिलाषा,सरलता,पिच्छिलता गुरुता, द्रवता, सूक्ष्मता और वायु के वेग इन आठ कारणो से शुक्र देह से बाहर निकलता है । यह शुक्र विश्वरूप में चरण शीळ द्रव्यों की मूर्ति है ॥

फलोपयोगीशुक्र ॥

वहुलंमधुरंस्निग्धंअविस्रंगुरुपिच्छिलम् ।
शुक्लंवहुचयच्छुक्रंफलवत्तदसंशयम् ॥

अर्थ—जो वीर्य गाढा, मधुर, स्निग्ध, दुर्गन्धरहित, पिच्छिल, गुरु शुक्रवर्ण और बहुत होता है वह निश्चयफळवान् होताहै।

वाजीकरण की निरुक्ति ॥

येननारीषुसामर्थ्यंवाजीवल्लभतेनरः ।
व्रजेच्चाभ्यधिकंयेनबाजीकरणमेवतत्।

अर्थ—जिससे मनुष्य को स्त्रियों के साथ सम्भोग करने की घोडे की तरह शक्ति होजाती है और सम्भोग करने में अधिक २ प्रवृत होता है उसहीको बाजीकरण कहते हैं ॥

चतुर्थपादकीसूची ॥

हेतुर्योगोपदेशस्ययोगाद्वादशचोत्तमाःयत्
पूर्वंमैथुनात्सेव्यंसेव्यंतन्मैथुनादनु ॥ यदा
नसेव्याःप्रमदाःकृत्स्नःशुक्रविधिश्चयः ।
निरुक्तश्चेहनिर्दिष्टंपुमान्जातबलादिकम्॥

अर्थ—दूसरे अध्याय के इस पुमान जात वलादि नामक चतुर्थ पाद में वाजीकरणोपयोगी प्रयोगों के हेतु, वाजीकरण के उत्तम २ बारह प्रयोग, जो बस्तु मैथुन से पहिले तथा पीछे सेवन करने की हैं। स्त्री से सम्भोग न करनेका काल, सम्पूर्ण शुक्र विधि और वाजीकरण शब्द की निरुक्ति वर्णन की गई है ॥

जातबलादिको नाम चतुर्थःपादः

इतिश्रीभापाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांचिकित्तस्थाने वाजीकरणप्रयोगकथनं नामद्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

—○—

अथतृतीयोऽध्यायः ॥

अथातोज्वरचिकित्सितंव्याख्या
इतिहस्माहभगवानात्रेयः

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय कि अब हम ज्वर चिकित्सित नाम अ की व्याख्या करेंगे ॥

विज्वरंज्वरसन्देहंपर्यपृच्छत्पुनर्व
विविक्तेशान्तमासीनमाग्निवेशःकृता
देहेन्द्रियमनस्तापीसर्वरोगाग्रजोबल
ज्वरःप्रधानंरोगाणामुक्तोभगव
तस्यप्राणिसपत्नस्यध्रुवस्यप्रलय
प्रकृतिश्चप्रवृत्तिश्चप्रभावंकारणा
पूर्वरूपमधिष्ठानंबलकालात्मलक्ष
व्यासतोविधिभेदञ्चपृथग्भिन्न
तिम् ॥ लिङ्गमामस्यजीर्णस्यसनि
याक्रमम् । विमुञ्चतःप्रशान्तस्य
यच्चपृथक्पृथक् ॥ ज्वरावशिष्टो
यावत्कालंयतोयतः । प्रशान्तःक
श्चपुनरावर्ततेज्वरः ॥ याश्चापिपुन
क्रियाःप्रशमयन्तितम् । जगद्धित
वंभगवन् ! वक्तुमर्हसि ॥ तदग्नि
वचोनिशम्यगुरुरब्रवीत् । ज्वरा
यद्वाच्यन्तत्सौम्य ! निखिलंशृ

अर्थ—अग्निवेश ने हाथ जोडक
कान्त में शान्तभाव से बैठेहुए निर

से ज्वर के विषय में यह प्रश्नकिया कि गवन् आपने पाहिले यह कहा था ज्वर रोगों में प्रधान है यह देह इं- और मनका संतप्त करने वाला और है यह सम्पूर्ण रोगों से प्रथम उत्पन्न है " इसलिये इस प्राणों के नाश वाले और जन्म समय और मरण में अवश्य होने वाले ज्वर की प्रकृति ति, प्रभाव, कारण, पूर्वरूप, अधिष्ठान काल, लक्षण, विस्तारपूर्बक विधिभेद २ ज्वर की जुदी २ आकृति, आम जीर्णज्वर के लक्षण और चिकित्सा क्रम, ज्वर के छोडने के तथा शान्त के पृथक् २ लक्षण, ज्वरत्यक्त पुरुष तने दिन और जिसकारण से रक्षा चाहिये; शान्त हुआ ज्वर भी जि- गों से फिर उत्पन्न होजाता है, जिस सा से फिर उत्पन्न हुआ ज्वर शांत ा है, हे भगवन् ये सव आप जगत त के लिये मुझसे कहिये।

आग्निवेश के इस वचन को सुनकर नु बोले कि हे सौम्य । ज्वराधिकार कुछ बर्णन के योग्य विषय हैं उसे

ज्वरके पर्य्यायवाची नाम ॥

विकारोरोगश्चव्याधिरातङ्कएवच ।
ार्थनामपर्यायैर्विविधैरभिधीयते ॥

र्थ—ज्वर, विकार, रोग, ध्याधि और क ये सब एकार्थ वाची शब्द ज्वर के य हैं ॥

ज्वरकाकारण ॥

तस्यप्रकृतिरुद्दिष्टादोषाःशारीरमानसाः ।
देहिनंनहिनिर्दोषंज्वरःसमुपसेवते ॥ क्ष
यस्तमोज्वरःपाप्माभृत्युश्चोक्तोऽयमात्मजः
पञ्चत्वप्रत्ययानृणांबद्धानांस्वेनकर्मणा॥
इत्यस्यप्रकृतिःप्रोक्ताप्रवृत्तिस्तुपरिग्रहः ।
निदानेपूर्वमुद्दिष्टारुद्रकोपाच्चदारुणात् ॥

अर्थ—शारीरिक और मानसिक दोष ज्वर की उत्पति के कारण हैं। दोष र- हित प्राणी को ज्वर कभी नहीं सताता है। अपने २ कर्म्मों से वद्ध मनुष्यों के मर जाने के निश्चय से यह आत्मजज्वर क्षय तम, पाप्मा और मृत्यु कहलाता है। यह ज्वरकी प्रकृति वर्णन की गई है, प्रवृत्ति को ही उत्पत्ति कहते हैं। यह प्रवृत्ति रुद्र के दारुण कोप से हुई है यह बात निदान स्थान में वर्णन करचुके हैं ॥

ज्वरोत्पत्तिमें विशेषवर्णन ॥

द्वितीयेहियुगेशर्वमक्रोधव्रतमास्थितम् ।
दिव्यंसहस्रंवर्षाणामसुराअभिदुद्रुवुः ॥
तपोविघ्नंशमीकर्तुन्तपोविघ्नंमहात्मनाम्।
पश्यन्समर्थश्चोपेक्षाश्चक्रेदक्षःप्रजापतिः॥
यज्ञेनकल्पयामासप्रोच्यमानःसुरैरपि। ऋ
चःपशुपतेर्याश्चशैव्यआहुतयश्चयाः॥ यज्ञ
सिद्धिप्रदास्ताभिर्हीनैश्चैवसइष्टवान्। अ
थोत्तीर्णव्रतोदेवोबुद्ध्वादक्षव्यतिक्रमम्।
रुद्रोरौद्रंपुरस्कृत्यभावमात्मविदात्मनः ।
सृष्ट्वाललाटेचक्षुर्वैदग्ध्वातानसुरान्प्रभुः
बाणंक्रोधाग्निसन्तप्तमसृजच्छत्रुनाशनम्।
ततोयज्ञःसविध्वस्तोव्यथिताश्चादिवौकसः

दाहव्यथापरीताश्चभ्रान्ताभूतगणादिशः। अथेश्वरंदेवगणःसहसप्तर्षिभिर्विभुम् ॥ त मृग्भिरस्तुवन्यावच्छिवेभावेशिवःस्थितः शिवंशिवायभूतानांस्थितंज्ञात्वाकृताञ्ज लिः ॥ क्रोधाग्निरुक्तवान्देवमहंकिङ्करवा णिते । तमुवाचेश्वरःक्रोधंज्वरोलोकेभ विष्यसि ॥ जन्मादौनिधनेचत्वमपिचा वान्तरेषुच ।

अर्थ—सुनते चले आते हैं कि त्रेतायुग में महादेव ने दिव्य सहस्र वर्ष का अक्रो धव्रत अवलम्बन किया था, इस बीच में असुरों ने बडा उपद्रव मचाया और महा त्माओं के तप में बडा विघ्न हुआ, अपने अक्रोधव्रत में विघ्न पडने के कारण समर्थ होकर भी महादेव ने उनके विघ्नों को दूर करने की उपेक्षा की । इसी समय में दक्षप्रजापतिने यज्ञ कियाथा और यद्यपि देवताओं ने उसको सचेत भी किया तथापि यज्ञ में महादेव का भाग न निकाला और यज्ञ को सिद्ध करने वाली जो पशुपति संबंधी ऋचा और शैव्य आ- हुति हैं उन के विनाही यज्ञ किया । जब महादेव का अक्रोध व्रत समाप्त होगया तब आत्मवित् रुद्र ने दक्षके व्यतिक्रमको जान कर अपना रौद्रभाव प्रकट कर के अपने ललाटस्थ तृतीय नेत्रको खोलकर सामर्थवान् रुद्रने प्रथम उन असुरों को जलादिया और तदनन्तर शत्रुनाशकर्त्ता क्रोधाग्नि से संतप्तवाण छोडे उन से यज्ञ विध्वंस होगया सम्पूर्ण देवगण व्यथित होगये । और भूत गण दाह और व्यथा से पीडित हो दिशा विदिशाओं में भागने लगे । इस को देखकर सप्तर्षि समेत सम्पूर्ण देव विभुरूप महादेवकी ऋग्वाक्यों से उस मय तक स्तुति करते रहे जब तक शान्तभाव में स्थित न हुए । प्राणियों कल्याण के निमित्त शिवको शान्तभ स्थित देखकर क्रोधाग्निने हाथ जो महादेव से कहा कि हे देव । अब मैं करूं । यह सुनकर महादेव ने क्रोध कहा कि तू ज्वररूप होकर संसार में जन्मकाल में, मरण समय में और बी भी तू उत्पन्न होता रहैगा ।

ज्वरके प्रभाव ।

सन्तापःसारुचिस्तृष्णाचाङ्गमर्दोह ज्वरप्रभावोजन्मादौनिधनेचमह

अर्थ—सन्ताप, अरुचि, तृष्णा, हृदय में वेदना, ये ज्वर के प्रभाव जन्म और मरणके समय ये अत्यन्त प से होते हैं ।

प्रकृतिश्चप्रवृत्तिश्चप्रभावश्चप्रदर्शितः दानेकारणान्यष्टौपूर्वोक्तानिविभाग

अर्थ—ज्वर की प्रकृति प्रवृत्ति प्रभाव इस तरह वर्णन किया गया है ग्रन्थ के निदानस्थान में ज्वर के आठ भी पृथक् पृथक् वर्णन कर दिये गये

ज्वर के पूर्वरूप ।

आलस्यंनयनेकण्ठेजृम्भणंगौरवंक्ल ज्वलनातपवाय्वम्बुभक्तिद्वेषावनि अविपाकास्यवैरस्येहानिश्चबलवर्ण

वैकृतमल्पञ्चज्वरलक्षणमग्रजम् ।
र्थ—नेत्रों में आलस्य,कण्ठ में जम्हाई
पन, क्लान्ति, कभी कभी अग्नि, धूप
और जलका अच्छा लगाना और कभी
लगाना, अविपाक, मुख में विरसता
और वर्ण की हानि तथा स्वभाव का
विकृत होजाना ये सब ज्वर के
प हैं ॥

ज्वरका अधिष्ठान ।

समनस्कञ्चज्वराधिष्ठानमुच्यते ॥
म्बलकालस्तुनिदानेसम्प्रदर्शितः ।
र्थ—ज्वर का अधिष्ठान मन और
दोनों हैं। ज्वर ग्रस्त होने पर शरीर
दशा तथा ज्वर के बल और काल ये
ान स्थान में दिखाये गये हैं ।

ज्वर के लक्षण।

यात्मिकंलिङ्गसन्तापोदेहमानसः ॥
विशताभूतंनहिकिञ्चिन्नतप्यते।
—शारीरिक और मानसिक सन्ताप
साधारण लक्षण है । कोई ऐसा
ी नहीं है जिस का देह ज्वरग्रस्त
न तपता हो ॥

ज्वर के भेद ।

विधिभेदेनज्वरःशारीरमानसः ॥
द्विविधोदृष्टःसौम्यश्चाग्नेयएववा ।
गोवहिर्वेगोद्विविधःपुनरुच्यते ॥
वैकृतश्चैवसाध्यश्चासाध्यएवच ।
ञ्चविधोदृष्टोदोषकालवलावलात्॥
ःसततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ।
श्रयभेदेनधातूनांसप्तधामतः । भि
न्नःकारणभेदेनपुनरष्टविधोज्वरः ॥

अर्थ—विधि भेद से ज्वर दो प्रकार का होता है शारीरिक और मानसिक । पुनः इसके दो भेद हैं यथा सौम्य और आग्नेय ज्वर के दो वेग हैं, एक अन्तर्वेग दूसरा वहिर्वेग । इसी तरह प्राकृत, वैकृत। साध्य असाध्य, फिर दोष और कालके वलावल से ज्वर पांच प्रकार का देखने में आता है यथा—सन्तत, सततअन्येद्युः, तृतीयक और चातुर्थिक । इसी तरह सात धातुओं के आश्रय भेद से सात प्रकार का, और बात कफादि कारण भेद से आठ प्रकार का होता है ।

शारीरोमानस ज्वरोंके उत्पत्ति स्थान।

शारीरोजायतेपूर्वन्देहेमनसिमानसः ।

अर्थ—शारीरिक ज्वर प्रथम देह में उत्पन्न होता है और मानसिक ज्वर प्रथम मन में उत्पन्न होता है ॥

मानसिक सन्तान के लक्षण ॥

वैचित्यमरतिर्ग्लानिर्मनसस्तापलक्षणम्॥

अर्थ—मन में चंचलता, अरति और ग्लानि ये मानसिकताप के लक्षण हैं ॥

शारीरिकतापलक्षण ॥

इन्द्रियाणाञ्चवैकृत्यंदेहसन्तापलक्षणम्

अर्थ—इन्द्रियों की विकृतता शारीरिक सन्तान के लक्षण है ॥

वातपित्तात्मकःशीतमुष्णंवातकफात्मकः।
इच्छत्युभयमेतत्तुज्वरोव्यामिश्रलक्षणः॥

अर्थ—वात पित्तात्मक ज्वर में शीतल बस्तुकीकफाइच्छा होती है, बातकाफत्मक में

उष्ण पदार्थकी और व्यामिश्रलक्षण अर्थात् कफ पित्तात्मक ज्वरमें उष्ण शीत दोनों की इच्छा होतीहैं ॥

वायुको योगवाहित्व ॥

योगवाहःपरंवायुःसंयोगादुभयार्थकृत् । दाहकृत्तेजसायुक्तःशीतकृत्सोमसंश्रयात्॥

अर्थ—वायु अत्यन्त योग वाही है अर्थात् जिस के साथ में मिलती है उसके गुणों को उत्कर्ष करती है। जब तेज से मिलती है तब दाह करती है। और सोमसे मिलती है तव शीत करती है॥

अन्तर्वेगज्वर के लक्षण ॥

अन्तर्दाहोऽधिकंतृष्णाप्रलापःश्वसनम्भ्रमः सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदोदोषोवर्चोविनिग्रहः अन्तर्वेगस्यलिङ्गानिज्वरस्यैतानिलक्षयेत्।

अर्थ—अन्तर्दाहकी अधिकता, प्यास वकवाद, श्वास, चक्कर, सन्धिशूल, अस्थिशूळ, अस्वेद (पसीनों का रुकना), दोष विनिग्रह और पुरीष विनिग्रह, ये अन्तर्वेग ज्वर के लक्षण हैं।

वहिर्वेगज्वरकेलक्षण ।

सन्तापोभ्यधिकोवाह्यस्तृष्णादीनांश्च मार्दवम् । वहिर्वेगस्यलिङ्गानिसुखसाध्यत्वमेवच ॥

अर्थ—वाह्यसंताप का अधिक होना, तृषा आदि का कम होना और सुख साध्यता ये वहिर्वेग के लक्षण हैं।

प्राकृतादि ज्वरों के लक्षण।

प्राकृतःसुखसाध्यस्तुवसन्तशरदुद्भवः ॥

अर्थ—वसन्त और शरद ऋतुओं में उत्पन्न हुआ ज्वर प्राकृत और सुखस होता है। कालकी प्रकृति के अनुसा ज्वर होता है उसेही प्राकृत कहते माधवाचार्य लिखते हैं कि " वर्षा वसन्तेष्व वाताद्यैः प्राकृतःक्रमात् । तोऽन्यःसुदुःसाध्यः प्राकृतश्चानि द्भवः ,, अर्थात् वर्षा में वातज्वर, में पित्तज्वर, और वसन्त में कफ प्राकृत होते हैं क्योंकि इन भिन्न ऋतुओं में पृथक् २ दोषों की प्र होती है। इससे भिन्न होने पर वैकृत होता है यह ज्वर दुःसाध्य होता है वातसे उत्पन्न हुआ प्राकृत ज्वर भी दु ध्य होता है और वातसे उत्पन्न प्राकृत ज्वर भी दुःसाध्य होता है

दोषों के प्रकुपित होने का स

उष्णमुष्णेनसंवृद्धंपित्तंशरदिकुप्य तःशीतेफलश्चैववसन्तेसमुदी

अर्थ—उष्ण प्रकृति वाला पित्त द्रव्यों के संयोगसे वृद्धिपाकर शर में कुपित होता है। और शीत संचित हुआ कफ वसन्त ऋतु में होता है।

कालकृतज्वरोत्पतिक्रम ॥

वर्षास्वम्लविपाकाभिरौषधीभिः मिः । सञ्चितंपित्तमुत्क्लिष्टंशरद्या जसा ॥ ज्वरंसञ्जनयत्याशुतस्यच कफः । प्रकृत्यैवविसार्गाच्चतत्रना द्भयम् । अद्भिरोषधिभिश्चैवमधुरा तःकफः ॥ हेमन्तेसूर्यसन्तप्तःसव

ति ॥ वसन्तेश्लेष्मणातस्माज्ज्वरः
जायते । आदानमध्येतस्यापिवात
भवेदनु ॥ आदावन्तेचमध्येचज्ञात्वा
लावलम् । शरद्वसन्तयोर्विद्वान्ज्वर
स्यप्रतिकारयेत् ॥

—वर्षाऋतु में अम्लविपाक वाली और जलों के कारणसंचित हुआ रदऋतु में सूर्य की तेजी से उदीर्ण ा है और शीघ्रही ज्वर को उत्पन्न है और कफ उसका अनुबंधी र- । उस ज्वर में कफ पित्त के स्व रके और विसर्ग काळ के कारण करने में कुछ भय नहीं होता है —शरदऋतु विसर्गकाळ के अन्तर्गत तरह हेमन्तऋतु में जल और मधुरपाकी होती हैं उस ऋतुमें आ कफ सूर्य्य की तेजी से संतप्त न्तऋतु में प्रकुपित होजाता है । वसन्तकाल में ज्वर कफ से ता है । आदानकाल में होने पर और पित्त इस ज्वर के अनुवन्धी अर्थात् कफ से उत्पन्न होता है ा पित्त साथ में रहते हैं तो यह न्य होजाता है । इन हेतुओं से चिकित्सक को उचित है कि शर- बसन्तऋतु के आदि मध्य और दोषोंके बळाबळका विचार करके चिकित्साकरै ॥

ज्वरोंकासाध्यासाध्यत्व ॥

तिप्रादिश्यनिर्दिष्टःप्राकृतोज्वरः ।
प्रायेणानिलजोदुःखःकालेष्वन्येषुवैकृतः ॥
हेतवोविविधास्तस्यनिदानेसम्प्रदर्शिताः ।
वलवत्स्वल्पदोषेषुज्वरःसाध्योऽनुपद्रवः ॥
हेतुभिर्बहुभिर्जातोवलिभिर्बहुलक्षणः ।
ज्वरःप्राणान्तकृद्यश्चशीघ्रमिन्द्रियनाशनः

अर्थ—काल और प्रकृतिका लक्षकरके प्राकृत ज्वरका वर्णन कियागया है । वात जन्यज्वर तथा अन्यकाल में उत्पन्न हुआ वैकृतज्वर दुःखसाध्य होता है ॥

ज्वर के भिन्न २ हेतु निदानस्थान में दिखाये गये हैं । बलवान् पुरुषका अल्प दोषों से युक्त ज्वर जो उपद्रव रहित होता है वह सुखसाध्य होता है । जो ज्वर व- हुत वलवान् हेतुओं से उत्पन्न होकर ब- हुत से लक्षणों से युक्त होता है वह ज्वर प्राणों का नाश करनेवाला है और उस ज्वर से इन्द्रियज्ञान भी शीघ्रही नष्ट हो- जाता है ॥

असाध्यज्वर के अन्य लक्षण ॥

सप्ताहाद्वादशाहाद्वाद्वादशाहात्तथैवच ।
सप्रलापभ्रमश्वासःतीक्ष्णोहन्याज्ज्वरो
नरम् ॥ ज्वरःक्षीणस्यशूनस्यगम्भीरोदै
र्घ्यरात्रिकः । असाध्योबलवान्यश्चकेश
सीमन्तकृज्ज्वरः ॥

अर्थ—वह तीक्ष्णज्वर जिसमें प्रळाप,भ्रम और श्वास होता है वह सात, दस वा बा रह दिन में मनुष्य को मार डालता है । जो मनुष्य क्षीण होगया है, जिसकी देह पर सूजन आगई है, जिसका ज्वर गंभीर है और जो चढकर कई दिवसतक रहता

है, जो वलवान् है और जिसमें मनुष्य के सिरपर बालों की गुलझट पडजाती है ऐसे ज्वर असाध्य होते हैं ॥

सन्ततज्वरकीउत्पत्तिकाकारण ॥

स्रोतोभिर्विसृतादोषागुरवोरसवाहिभिः। सर्वगात्रानुगाःस्तब्धाज्वरंकुर्वान्तिसतन्तम्॥

अर्थ—रसवाही स्रोतों के द्वारा सम्पूर्ण गुरु दोष फैलकर सम्पूर्ण देह में व्याप्त होकर स्तब्ध होजाते हैं तव सन्तत्‌ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥

सन्ततज्वरका मोक्षकाल ॥

द्वादशाहंदशाहंवासप्ताहंवासुदुःसहः । स शीघ्रंशीघ्रकारित्वात्प्रशमंयातिहन्तिवा॥

अर्थ—सन्ततज्वर वारह, दस वा सात दिन तक अनवच्छिन्न रहता है, यह बडा दुःसह होता है और शीघ्रकारी होने से या तो शीघ्रही शान्त होजाता है वा शीघ्रही देह को नाश कर देता हैं । दस वारह और सात दिन की अवधि दोषों के अनुसार दीगई है, तथा **वातिकःसप्तरात्रेणदशरात्रेणपैत्तिकः । श्लैष्मिकोद्वादशाहेनज्वरःपाकंनियच्छति** ॥ अर्थात् वातज्वर सात दिन में, पित्तज दस दिन में, और कफज वारह दिन में पाक को प्राप्त होता है । इस समय में या तो रोगी ज्वरनिर्मुक्त होजाता है वा मरजाता है ।

सन्ततज्वरको असाध्यत्व ॥

कालदूष्यप्रकृतिभिर्दोषस्तुल्यो हि सन्ततम् । निष्पूत्यनीकं कुरुते तस्मात् ज्ञेयः सुदुः सहः ॥

अर्थ—काल, दोष और प्रकृति के [illegible] होने से दोष दुश्चिकित्स्य सन्तत [illegible] को उत्पन्न करते हैं अतएव यह [illegible] दुःसाध्यहोता हैं ।

सन्तत ज्वर के अनुबन्धी पदा[illegible]

यथाधातुंतथामूत्रंपुरीषञ्चानिलाद[illegible] नुबध्नन्तियुगपत्त्रवश्यंसन्ततेज्व[illegible]

अर्थ—सन्तत ज्वर में सातों धा[illegible] मल और तीनों दोष अवश्य साथ र[illegible]

अनुवन्धी पदार्थों का फल

सशुद्ध्यावाप्यशुद्ध्याबारसादीना[illegible] तः । सप्ताहादिषुकालेषुप्रशमंयाति[illegible]

अर्थ—यह ज्वर सम्पूर्ण र[illegible] और दोषों की शुद्धि होने पर [illegible] सप्ताहादि काल में शान्त होजाता[illegible] शुद्धि न होने पर मनुष्यको मारड[illegible]

सन्तत ज्वर को रसादि का [illegible]

यदातुन[illegible]शुध्यन्तिनवाशु[illegible] द्वादशैतेसमुद्दिष्टाःसन्ततस्याश्र[illegible]

अर्थ—सातों धातु, मल, मूत्र [illegible] दोष जव ये वारहों पदार्थ सम्यक् [illegible] होते हैं तव सन्तत ज्वर इनके [illegible] रहता है ।

अन्यप्रकार संतत ज्वर

विसर्गंद्वादशेकृत्वादिवसेऽव्यक्त[illegible] दुर्लभोपशमःकालंदीर्घमप्यनुव[illegible]

अर्थ—कोई कोई सन्तत ज्व[illegible] दिन छोड़कर बहुत दिन तक ऐ[illegible]

सका कोई चिन्ह प्रकट नहीं होता
ह कठिन साध्य होता है ।

वैद्यको कर्त्तव्य कर्म ।

द्ध्वाज्वरंवैद्यउपक्रामेत्तुसन्ततम् ।
क्रमविधौयुक्तःप्रायःप्रागपतर्पणैः ॥

—इन ऊपर कहे हुए लक्षणों को
कर वैद्यको संतत ज्वर की चिकि
रना उचित है, इस ज्वर में प्रायः
द्वारा चिकित्सा करना अभीष्ट है ।

तत ज्वर के लक्षणादि ।

त्वाश्रयःप्रायोदोषःसततकंज्वरम् ।
नीकःकुरुतेकालवृद्धिक्षयात्मकः ॥
त्रिसततकोद्वौकालावनुवर्तते । काल
तिदूष्याणांप्राप्यैवान्यतमाद्बलम् ॥

प्रायः दोष रक्त धातुका आश्रय
क ज्वर उत्पन्न करते हैं । इस
चिकित्सा हो सकती है यह काल
भी है और घटता भी है । यह
र काळ, प्रकृति और दूष्य में
ा वल प्राप्त कर के दिन रात
आता है ।

ुष्कज्वर के लक्षणादि ।

वहारुद्ध्वानाडीरन्येद्युकंज्वरम् ।
कःकुरुतेएककालमहर्निशम् ॥

-मेदोवहा नाडियों को रोककर
द्युष्कज्वर को उत्पन्न करते हैं
ुचिकित्स्य है और दिन रात में
आता है ।

चातुर्थिक ज्वर का लक्षणादि ।

थमज्जगःकुर्यात्तृतीयकचतुर्थकौ
गतिर्ह्यकान्तरान्येद्युर्दोषस्योक्तान्यथापरैः

अर्थ—जव दोष हड्डियों में पहुंचते हैं
तव तृतीयक ज्वर होता है और जब दोष
मज्जा में पहुंचते हैं तव चातुर्थिक ज्वर
उत्पन्न होता है । अन्येद्युष्क ज्वर का वेग
प्रति दिन होता है तृतीयक का एक दिन
वीच में देकर और चातुर्थिक का, दो दिन
वीच में देकर वेग होता है ॥

अन्येद्युष्कादि ज्वरों का कारण ।

रक्तमेवाभिसंसृज्यकुर्यादन्येद्युकंज्वरम् ।
मांसस्रोतांस्यनुसृतोजनयेत्तुतृतीयकम् ॥
ज्वरंदोषःसंसृतोहिमेदोमार्गञ्चतुर्थकम् ।

अर्थ—दोष जब रक्तसे मिलजाते हैं तव
अन्येद्युष्क ज्वर उत्पन्न होता है । जब
मांस स्रोतों से मिलते हैं तब तृतीयक ज्वर
होता है । और जब मेदा के मार्ग में संसृत
होते हैं तव चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न होता है

अन्येद्युष्कादि ज्वरों का समय ।

अन्येद्युष्कःप्रतिदिनंदिनंक्षिपत्वातृतीयकः
दिनद्वयंयोविश्राम्यप्रत्येतिसचतुर्थकः ॥

अर्थ—जो ज्वर नित्यप्रति आता है
उसे अन्येद्युष्क कहते हैं, जो एक दिन
बीच में देकर आता है उसे तृतीयक कहते
हैं, लोक में इसी को तिजारी एकांतरा भी
कहते हैं । जो दो दिन वीच में देकर आता
है उसे चातुर्थिक वा चौथैया कहते हैं ।

कालान्तर में दोषों के कुपित होने
का दृष्टान्त

अधिशेतेयथाभूमिंवीजङ्कालेचरोहति ॥
अधिशेतेतथाधातुंदोषंकालेचकुप्यति ।

अर्थ—पृथ्वी में वोया हुआ वीज जैसे कालान्तर में अंकुरित होता है इसी तरह धातुओं से मिला दोष कालान्तर में कुपित होता है।

ज्वरों में विश्राम का कारण।

तेवृद्धिम्बलकालञ्चप्राप्यदोषास्तृतीयकम्॥ चतुर्थकञ्चकुर्वंतिप्रत्यनीकबलक्षयात्। कृत्वावेगंगतबलाःस्वेस्वेस्थाने व्यवस्थिताः॥ पुनर्विवृद्धाःस्वेकालेज्वरयन्तिनरंमलाः।

अर्थ—वेंही दोष वृद्धि और बलकाल को प्राप्त करके तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरों को उत्पन्न करते हैं और बलके क्षीण होने पर सुचिकित्स्य होजाते हैं। वेग के पश्चात् जब उनका बल घटजाता है तब अपने अपने स्थान पर स्थित होजाते हैं और अपने काळ में फिर बढकर वेही दोष ज्वरों को उत्पन्न करते हैं।

तृतीयक ज्वर के अन्यलक्षण।

कफपित्तात्त्रिकग्राहीपृष्ठाद्वातकफात्मकः॥ वातपित्ताच्छिरोग्राहीत्रिविधःस्यात् तृतीयकः।

अर्थ—कफ पित्त से उत्पन्नहुआ तृतीयक ज्वर त्रिकस्थान (तीन हड्डियों का समागम- एक तौ कंधों और ग्रीवा का जोड़। दूसरा कमर और जांघ की हड्डियों का जोड़) में वेदना करताहै। वातऔर कफसे उत्पन्नहुआ पीठ में, इसी तरह वात पित्त से उत्पन्न हुआ मस्तक में पीड़ा करता है इसतरह तृतीयक ज्वर तीन प्रकार का होता है।

चातुर्थिक ज्वर के प्रकार।

चतुर्थकोदर्शयतिप्रभावंद्विविधंज्वर जंघाभ्यांश्लैष्मिकःपूर्वंशिरस्तोऽ सम्भ

अर्थ—चातुर्थिक ज्वर दो प्रक प्रभाव दिखाता है यथा जब यह उत्पन्न होता है तव प्रथमही जंघा वेदना करता है फिर आप उत्पन्न है और जव वातसे उत्पन्न होता सिर में वेदना करता है।

विषम ज्वर का लक्षण।

विषमज्वरएवान्यःचतुर्थकविपर्य्य त्रिविधोधातुरेकैकोद्विधातुस्थःकरो

अर्थ—चातुर्थिक ज्वर का उलट और ज्वर होता है उसे वि कहते हैं। माधव निदान में लि "समध्ये ज्वर यत्यन्ही आद्य मुंचति।" विषम ज्वर उसे कह वीच के दो दिन आता है और के दो दिन नहीं आता। इससे है कि तिजारी और चौथैया के नाम विषम ज्वर है कि इससे वाजत, पित्तज और कफज होता अस्थि और मज्जा दो धातुओं मे होता है क्यों कि पहिले कह चु अस्थि ज्वर तृतीयक और मज्जाग थिक होता है।

प्रायशः सन्निपातेनदृष्टः पञ्च ज्वरः॥ सन्निपातेतुयोभूयान रिकी

र्थ—प्रायः सन्निपातसे पांच प्रकार का
र देखा गया हैं, यथा संतत, सतत, अ-
थुष्क, तृतीयक और चतुर्थक । इन में
दोष अधिक होता है उसी के नामसे
ज्वर बोला जाता है ।

भिन्न २ ज्वरोत्पातिका कारण ॥

त्वहोरात्रदोषाणांमनसश्चबलावलात्
लमर्थवशाच्चैवज्वरस्तन्तंप्रपद्यते ।

र्थ—ऋतु, दिन, रात, दोष और म-
ा वलावल, कालवश और अर्थवश से
ा २ मनुष्यों को भिन्न २ प्रकार का
र आता है ॥

रसस्थज्वर के लक्षण ॥

रुत्वंदैन्यमुद्वेगःसदनंछर्घरोचकौ ॥
थतेबहिस्तापःसाङ्गमर्दोविजृम्भणम्

—रसधातु में ज्वर के स्थित हो
भारापन,दीनता, उद्वेग, अंगग्लानि
अरुचि, वाह्यताप, अंगमर्द और
ये उपद्रव होते हैं ॥

रक्तस्थज्वरके लक्षण ॥

ष्णाःपिडकास्तृष्णासरक्तंष्ठीवनं
॥ दाहरागभ्रममदप्रलापारक्तसं
स्थिते ।

र्थ—रक्तस्थज्वरमें देहपर लालरंगकी
फुन्सियां होजाती हैं, कफ के साथ
२ रुधिर आता है, तथा दाह, राग,
, मद और प्रलाप ये भी होते हैं ॥

मांसस्थज्वर के लक्षण ॥

न्तर्दाहःसतृष्णमोहःग्लानिःसंसृष्टवि
ा ॥ दौर्गन्ध्यंगात्रविक्षेपोज्वरेमांस
स्थितेभवेत् ।

अर्थ—मांसस्थज्वर में अन्तर्दाह, तृ-
षा, मोह, ग्लानि, पुरीषविवन्ध, दुर्गंधि
और गात्र विक्षेप (हाथ पांवों का पट-
कना) होता है ॥

मेदस्थज्वर के लक्षण ॥

स्वेदस्तीव्रापिपसाचप्रलापो
वम्यभीक्ष्णशः ॥ स्वगन्धस्यासहत्त्वञ्चमे
दस्थेग्लान्यरोचकौ ॥

अर्थ—मेदस्थज्वर में पसीना, तेज-
प्यास, प्रलाप, वार २ वमन, अपनी गंध
अपने को बुरी लगना, ग्लानि और अरुचि
ये लक्षण होते हैं ॥

अस्थिगतज्वर के लक्षण ॥

विरेकवमनेचोभेसास्थिभेदंप्रकूजनम् ॥
विक्षेपणञ्चगात्राणांश्वासःस्याचा
स्थिगेज्वरे ।

अर्थ—अस्थिगतज्वर में वमन और
विरेचन दोनों होतेहैं । हडफूटन,अंत्रकूजन
गात्रविक्षेप और श्वास ये लक्षण होते हैं ।

मज्जागतज्वर के लक्षण ॥

हिक्काश्वासःतथाकासःतमसश्चातिदर्श
नम् ॥ मर्म्मच्छेदोबहिःशैत्यंदाहोऽन्तश्च
वमज्जगे ।

अर्थ—मज्जागतज्वरमें हिचकी, श्वास,
खांसी, अधिक अन्धकार दीखना, मर्म-
च्छेद, बाहरठंड और भीतर दाह ये ल-
क्षण होते हैं ।

शुक्रगतज्वरके लक्षण ॥

शुक्रस्थानगतेशुक्रमोक्षंकृत्वाविनाश्य

वा॥ प्राणवाय्वग्निसोमैश्चसार्धंगच्छत्य सौविभुः।

अर्थ—ज्वर के शुक्रमेंपहुंचने पर वीर्य अत्यन्त निकलता है और आत्मा देह को नष्ट कर के प्राण, वात, पित और कफ को साथ लेजाती है, अन्य ग्रन्थों में लिखा है कि पुरुषेन्द्रिय जकडजाती है और बीर्य के साथ रक्तभी आता है॥

धात्वाश्रितज्वरकासाध्यासाध्य॥

रसरक्ताश्रितःसाध्योमेदोमांसगतश्चयः॥ अस्थिमज्जगतःकृच्छ्रः शुक्रस्थोनैवसि द्ध्यति।

अर्थ—रसाश्रित और रक्ताश्रित ज्वर साध्य होता है। मेदोगत, मांसगत अस्थिगत और मज्जागत कृच्छ्रसाध्य होता है और शुक्र स्थज्वर कभी अच्छा नहीं होता है॥

हेतुभिर्लक्षणैःसिद्धःपूर्वमष्टविधोज्वरः॥ समासेनोपदिष्टस्यव्यासतःशृणुलक्षणम्

अर्थ—हेतु और लक्षणों द्वारा हम प्रथम ज्वर के आठ भेदों का संक्षेप से बर्णन कर चुके हैं अव हम विस्तार पूर्वक बर्णन करते हैं उसे सुनो॥

बातपित्तजज्वर के लक्षण॥

शिरोरुक्पर्वणांभेदोदाहोरोमणांप्रहर्षणम्। कण्ठास्यशोषोवमथुस्तृष्णामूर्च्छाभ्रमोऽरुचिः। स्वप्ननाशोऽतिवाग्जृम्भा बातपित्तज्वराकृतिः॥

अर्थ—माथे में दर्द, हाथपांव के जोडों में दर्द, दाह, रोमाञ्च खडे होना, कण्ठशोष, मुखशोष वमन, तृष्णा, मूच[...] अरुचि, स्वप्ननाश, बकवाद जम्हाई[...] सब बातपितज्वके लक्षण हैं॥

वातकफज्वर के लक्षण॥

शीतकोगौरवंतन्द्रास्तैमित्यंपर्वणाञ्च[...] शिरोग्रहःप्रतिश्यायकासःस्वेदाप्रवर्[...] सन्तापोमध्यवेगश्चबातश्लेष्मज्वरा[...] कृतिः॥

अर्थ—शीत, भारापन, तन्द्रा, स्तिमि[...] हडफूटन, माथे का दर्द, प्रतिश्याय, [...] सी, पसीनों का आना, सन्ताप और ज[...] का मध्यमवेग ये सव बातश्लैष्मिकज[...] के लक्षण हैं॥

श्लेष्मपित्तज्वरकेलक्षण॥

मुहुर्दाहोमुहुःशीतंस्वेदस्तम्भौमुहुर्मु[...] मोहःकासोरुचिस्तृष्णाश्लेष्मापित्त[...] म्॥ लिप्ततिक्तास्यतातन्द्राश्लेष्मा[...] राकृति[...]

अर्थ—वार वार दाहहोना वार [...] तलगना, वार वार पसीने आना, वा[...] पसीनों का रुकना, मोह, खांसी, अ[...] तृष्णा, कफ और पित्तका निकलना,[...] में कफ की लिहसावट मुख में कडव[...] और तन्द्रा ये कफपित्तज्वरकी आकृति[...]

सान्निपातज्वरकाबर्णन॥

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वंत्रयोदशविधस्य[...] प्राक्सूत्रितस्यवक्ष्यामिलक्षणंवैपृथक्[...]

अर्थ—सान्निपातज्वर के जो तेरह[...] प्रथम संक्षिप्त रीति से बर्णन किये ग[...]

उन्हें विस्तार पूर्वक पृथक् पृथक्
ा हैं ॥

बातपित्तोल्वणज्वर के लक्षण ॥

ःपिपासादाहश्चगौरवंशिरसोऽतिरु
॥ वातपित्तोल्वणेविद्याल्लिङ्गंमन्दक
फेज्वरे ।

—भ्रम, तृषा, दाह, भारापन और
अत्यन्त वेदना ये बातपित्तोल्वण
न्दकफज्वर में होते हैं ॥

श्लेष्मोल्वणहीनकफज्वर ॥

ासोरुचिस्तन्द्रापिपासादाहरुग्व्य
वातश्लेष्मोल्वणेविद्याल्लिङ्गंपित्त
वरेविदुः ।

शीत, खांसी, अरुचि, तन्द्रा,
ृ वेदना, व्यथा ये बातश्लेष्मो-
न्द पित्त ज्वर में होते हैं ॥

फोल्वणहीनवायु के लक्षण ॥

त्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोऽस्थिवेदना
सव्यवस्यन्तेलिङ्गंपित्तकफोल्बणे ।

—वमन, शीत, बारम्वारदाह, तृ-
ाह, अस्थिवेदना, ये पित्तकफोल्व
ार मन्द बात के लक्षण हैं ॥

तोल्वणसन्निपातके लक्षण ॥

अस्थिशिरसःशूलंप्रलापोगौरवंभ्रमः॥
ल्वणेस्याद्वनुगेतृष्णाकण्ठास्यशो
षता ।

र्थ—हाथ पांव के जोड, हड्डी और,
में वेदना, प्रलाप, भारापन, भ्रम, तृषा
ःशोष और मुख शोष ये सव वातो
ा और हीन कफपित्त के लक्षण हैं ॥

पित्तोल्वणसन्निपात के लक्षण ॥

रक्तविण्मूत्रतादाहःस्वेदस्तृड्वलसंक्षयः॥
मूर्छाचातित्रिदोषेस्याल्लिङ्गंपित्तेगरीयसि

अर्थ—विष्टा और मूत्रका लालाहोजाना
दाह, पसीना, तृषा, और बल की क्षी-
णता तथा मूर्च्छा ये पितोल्वण और वात
कफ सान्निपात के लक्षण हैं ॥

कफोल्वणसान्निपातके लक्षण ।

आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरतिभ्रमैः॥
कफोल्वणंसन्निपातंतन्द्राकासेनचादिशेत्

अर्थ—आलस्य, अरुचि, हृल्लास, दाह,
वमन, अरति, भ्रम, तन्द्रा और खांसी ये
कफोत्वणहीन वात पित के लक्षण हैं ।

हीनवात पित्तमध्य के लक्षण ।

प्रतिश्याछर्दिरालस्यंतन्द्रारुच्यग्निमार्दव
म् ॥ हीनवातेपित्तमध्येचिह्नंश्लेष्माधि
केमतम् ।

अर्थ—नाक वहना, वमन, आलस्य,
तन्द्रा, अरुचि, अग्निमांद्य ये हीनवात पि-
त्तमध्य और श्लेष्माधिकके लक्षण हैं ।

हीनबातमध्यकफकेलक्षण ।

हारिद्रमूत्रनेत्रत्वंदाहस्तृष्णाभ्रमोऽरुचिः ॥
हीनवातेमध्यकफेलिङ्गंवाताधिकेमतम् ।

अर्थ—हल्दी के रंग के मूत्र और आंख
होजाना, दाह, तृष्णा, भ्रम और अरुचि
ये हीन वात मध्य कफ और पित्ताधिक
के लक्षण हैं ।

हीनपित्तमध्यकफकेलक्षण ।

शिरोरुक्वेपथुःश्वासःप्रलापोछर्द्यरोचकाः
हीनपित्तेमध्यकफेलिङ्गंवाताधिकेमतम् ।

अर्थ—शिर में वेदना, कम्पन, श्वास, प्रलाप, वमन, अरुचि ये हीन पित्त मध्य कफ और वाताधिक के लक्षण हैं।

हीनपित्तमध्यबातकेलक्षण।

शीतकंगौरवंतन्द्राप्रलापोऽस्थिशिरोऽति रुक्॥ हीनपित्तेवातमध्येलिङ्गंश्लेष्माधि केविदुः।

अर्थ—शीत, भारापन, तन्द्रा, प्रलाप हड्डी और सिर में अत्यन्त वेदना ये हीन पित्त मध्यवात और श्लेष्माधिक के लक्षण हैं।

कफहीनपित्तमध्यकेलक्षण।

श्वासकासप्रतिश्यायामुखशोषोऽतिपार्श्व रुक्॥ कफहीनेपित्तमध्येलिङ्गंवाताधिके मतम्।

अर्थ—श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, मुख शोष, पसलियों में अत्यन्त वेदना ये हीन कफ, मध्य पित्त और वाताधिक के लक्षण हैं।

हीनकफबातमध्यकेलक्षण।

पर्ववर्चोदग्निमान्द्यंतृष्णादाहोऽरुचिभ्रमः कफहीनेवातमध्येलिङ्गंपित्ताधिकेविदुः।

अर्थ—हडफूटन, विष्टाकाफटना, अग्नि मान्द्य, तृष्णा, दाह, अरुचि और भ्रम ये कफहीन, वातमध्य और पित्ताधिक के लक्षण हैं॥

तेरहवेंसन्निपातकेलक्षण।

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वंअतोवक्ष्यामिलक्षणम् क्षणेदाहःक्षणेशीतमस्थिसन्धिशिरोरुचः सस्रावेकलुषेरक्तेनिर्भुग्नेचापिदर्शने। स स्वनौसरुजौकर्णौकण्ठःशूकैरिवावृतः॥ तन्द्रामोहःप्रलापश्चकासःश्वासोऽरुचिर्भ्रमः परिदग्धाखरस्पर्शाजिह्वास्रस्ताङ्गत म्॥ ष्ठीवनंरक्तपित्तस्यकफेनोन्मिश्रि च। शिरसोलोठनंतृष्णानिद्रानाशोहृ व्यथा॥ स्वेदमूत्रपुरीषाणांचिरादद मल्पशः। कृशत्वंनातिगात्राणांप्र कण्ठकूजनम्॥ कोठानांश्यावरक्ता ण्डलानांचदर्शनम्। मूकत्वंस्रोतस गुरुत्वमुदरस्यच॥ चिरात्पाकश्च सन्निपातज्वरा

अर्थ—अब हम सान्निपातिक ज लक्षण कहते हैं, यथा क्षणभर में होना, क्षण भर में शीत लगना, शूल, सन्धिशूल, शिरःशूल, आंसू भरकर नेत्रों का लाल होजाना और फटे से होजाना, शब्द और वेदना होना, कण्ठ पडजाना, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, श्वास, अरुचि, भ्रम, जिहूवा का खरदरा होजाना, अंगका अत्यन्त लपडजाना, कफमिलाहुआ रक्त थूकके साथ निकलना, सिरकाइध पटकना, तृष्णा, निद्रानाश, हृदयमें पसीना, मूत्र और मलका बहुत थोड़ासा होना, देह का अत्यन्त होना, कण्ठ में कूजने का सा शब्द काले और लाल रंग की पित्ती औ कत्ते होना, कन्ठका शब्द रुकजाना लमूत्रादि स्रोतोंका पकना, उदरका भ पन, वातादि दोषों का देर में पाक ह ये सन्निपातज्वरकेलक्षणहैं।

न्निपात के साध्यासाध्यत्व ।

विवृद्धेनष्टेऽग्नौसर्वेसम्पूर्णलक्षणः ॥
पातज्वरोऽसाध्यःकृच्छ्रसाध्यस्त्व
तोऽन्यथा ।

—दोष बढ़ जांय, अग्नि मंद पड़ और त्रिदोष के कोप के सम्पूर्ण पूरे दिखाई दें तो वह सन्निपात होता है और जो इस से विपरीत ला है वह कष्टसाध्य है ।

विधाप्रोक्तायापृथक्पृथग्ज्वराकृ
संसर्गसन्निपातानांतथाचोक्तंस्व
लक्षणम् ।

स्थान में तीनों दोषों से ज्वरों के पृथक् पृथक् लक्षण से उत्पन्न हुए ज्वरों के ल- सन्निपातज ज्वर के लक्षण वर्णन ॥

आगन्तुकज्वर के लक्षण ॥

ष्टमोयस्तुसानिर्दिष्टश्चतुर्विधः ॥
ाभिषङ्गाभ्याममिचाराभिशा
पतः ।

—ज्वर प्रथम आठ प्रकार के व- ये गये थे उन में सातका वर्णन और आठवां आगन्तुकज्वर होता आगन्तुजज्वर चार प्रकार का है यथा अभिघातज, अभिषंगज, अ- ज और अभिशापज ॥

अभिघातजज्वर के लक्षण ॥

घ्रकशाकाष्ठमुष्ट्यरत्नितलद्विजैः ॥
श्चहतेगात्रेज्वरःस्यादभिघातजः ।

अर्थ—जो ज्वर शस्त्र, लाठी, कशा, काठ, मुट्ठी, थप्पड और दांतों के लगनेसे उत्पन्न होता है उसे अभिघातजज्वर कहते हैं ॥

अभिघातजज्वरकाकर्म ॥

तत्राभिघातजोवायुःप्रायोरक्तंप्रदूषयन् ॥
सव्यथाशोफवैवर्ण्यंकरोतिसरुजंज्वरम् ।

अर्थ—यहां अभिघातजवायु प्रायः रक्त को दूषित करके व्यथा, सूजन, विवर्णता और वेदना उत्पन्न करतीहुई ज्वर को उत्पन्न करती है ॥

अभिषंगजज्वरके लक्षण ॥

कामशोकभयक्रोधैरभिशक्तस्ययोज्वरः ।
सोऽभिषङ्गज्वरोज्ञेयोयश्चभूताभिषङ्गजः ।
कामशोकभयाद्वायुःक्रोधात्पित्तंत्रयोमलाः
भूताभिषङ्गात्कुप्यन्तिभूतसामान्यलक्षणः
भूताधिकारेव्याख्यातंतदष्टविधलक्षणम् ॥

अर्थ—काम, शोक, भय और भय से पीडित मनुष्यों को जो ज्वर होता है उसे अभिषङ्गज कहते हैं यह भूताभिषंग से उत्पन्न होता है । काम, शोक, और भय से वायु कुपित होता है, क्रोध से पित्त कुपित होता है और भूताभिषंग से तीनों कुपित होते हैं । ये आठ प्रकार के भूत दोष लक्षण भूतविकार में वर्णन किये गये हैं ॥

अभिषङ्गजज्वर में अन्य आचार्यों का मत ॥

विषवृक्षानिलस्पर्शात्तथान्यैर्विषसम्भवैः ॥
अभिषिक्तस्यचाप्याहुर्ज्वरमेकेऽभिषङ्गज

म् । चिकित्सयाविषघ्न्यैवप्रशमंलभते नरः ।

अर्थ—कोई २ आचार्य यह कहते हैं कि विषवृक्षकी वायु के स्पर्श से तथा विषसम्भव अन्य द्रव्यों के अभिषंग से भी अभिषंगज ज्वर उत्पन्न होता है। इस में विषनाशक चिकित्सा के करनेसे रोगी को आराम होता है ॥

अभिचाराभिशापज ज्वर के लक्षण।

अभिचाराभिशापाभ्यांसिद्धानांयःप्रवर्त्तते ॥ सन्निपातज्वरोघोरःसविज्ञेयःसुदुःसहः । सन्निपातज्वरस्योक्तंलिंगंयत्तस्य तत्स्मृतम् ॥ चित्तेन्द्रियशरीराणामर्तयोन्याश्चनैकशः । प्रयोगस्त्वभिचारस्यदृष्ट्वाशापस्यचैवहि ॥ स्वयंश्रुत्वानुमानेन लक्ष्यतेप्रशमेनवा । वैविध्यादभिचारस्य शापस्यचतदात्मके ॥ यथाकर्म्मप्रयोगेण लक्षणंस्यात्पृथग्विधम् ।

अर्थ—सिद्धों के अभिचार अर्थात् मारणादि प्रयोगों से, और अभिशाप से जो सान्निपातजज्वर होताहै वह दुःसाध्य होता है। इस के लक्षण सान्निपात के ज्वर सदृश होते हैं, इन ज्वरों के उत्पन्न होने से चित्त, इन्द्रिय समूह और शरीर में अनेक प्रकार की विकलता उत्पन्न होती है। अभिचार और अभिशाप का होना न होना स्वयं देखकर, अनुमान करके वा उसकी शान्ति के प्रयोगो के द्वारा कहने में आसकता है। अभिचार और अभिशाप कर्मवश से अनेक प्रकार का होता है और भिन्न २ कर्मों के अनुसार उ लक्षण भी भिन्न २ होते हैं ॥

भिन्न २ ज्वरों के लक्षण ।

ध्यानानिःश्वासबहुलंलिङ्गंकामज्वरे शोकजेवाष्पबहुलंत्रासप्रायंभयज्वरे धजेबहुसंरम्भंभूतावेशेत्वमानुषम् । मोहमदग्लानिभूयिष्ठंविषसम्भवे श्चिदषांलिङ्गानांसन्तापोजायते श्चात्तुल्यन्तुकेषाञ्चिदेषुकामज्व कामादिजानामुद्दिष्टंज्वराणां कामादिजानांरोगाणामन्येषाम

अर्थ—काम ज्वर में अत्यन्त ध्यान लगना, अ चलना ये लक्षण होते हैं शोक वाष्प की अत्यन्तता होती है में त्रास होता है। क्रोध में अ म्भता, भूतज ज्वर में अमानुष विषज ज्वर में अत्यन्त मूर्च्छा, और ग्लानि ये लक्षण होते हैं।

ऊपर कहे हुए किसी किसी ज्व लक्षणों के प्रकट होने से पहिले होता है और किसी किसी ज्वर मे के साथही अथवा पीछे सन्ताप हो

कामादि ज्वरों के जो लक्षण इस वर्णन किये गये हैं वेही लक्षण अ मादि जन्य रोगों में भी होते हैं।

तेपूर्वंकेवलाःपश्चान्निजैर्व्यामिश्रल हेत्वौषधिविशिष्टाश्चभवन्त्यागन्त राः॥मनस्यभिद्रुतेपूर्वंकामाद्यैर्नतथा

ाप्नोतिकामाद्यैर्मनोयावन्नदूष्यति॥
—आगन्तुक ज्वरों में प्रथमही के-
ागन्तुक ज्वरों के लक्षण पाये जाते
र निज दोषों के कुपित होकर उन
जाने पर व्यामिश्र लक्षण पाये जाते
ात् पूर्वोक्त लक्षण और वातादि दो
त लक्षण दोनों मिले हुए होते हैं।
ज्वर हेतु और औषधों के गुण
होते हैं।
से मन के आक्रान्त होने पर
र बल प्राप्त नहीं करता है परन्तु
दि से मन दूषित होजाता है तव
ान् होता है।

वर का उत्पत्ति क्रम।

न्निपतिताःपृथक्त्वाकुपितामलाः
ातुमन्वेत्यपक्तिस्थानान्निरस्यच
ष्मणाचैवकृत्वादेहोष्मणोवलम्
ध्वासम्प्राप्तःकेवलंदेहमुल्वणाः
यकंदेहेजनयन्तिनरास्तदा। भ
ासर्वाङ्गोज्वरितस्तेनचोच्यते॥

दो दो दोष अथवा पृथक् पृथक्
त होकर रसनामक धातुका अनुस-
के जठराग्निको स्थानभ्रष्ट कर
उस जठराग्नि की गर्मी से शरीर
का वल वढजाता है और वह गर्मी
ो रोक कर केवल देह पर अत्यन्त
र जमाती है तव देह में अत्यन्त
उत्पन्न होता है। तव सम्पूर्ण देह
ोजाती है और उस मनुष्य को
स्त कहते हैं॥

पसीने न निकलने का कारण।

स्रोतसांसंनिरुद्धत्वात्स्वेदंनाधिगच्छति। स्वस्थानात्प्रच्युतेचाग्नौप्रायशस्तरुणेज्वरे॥

अर्थ—तरुण ज्वर में ही प्रायः जठराग्नि अपने स्थान से चलित होजाती है और इस हेतु से स्रोतों के रुकजाने के कारण पसीने नहीं निकलने पाते हैं।

आमज्वर के लक्षण।

अरुचिश्चाविपाकश्चगुरुत्वमुदरस्यच।
हृदयस्याविशुद्धिश्चतन्द्राचालस्यमेवच॥
ज्वरोऽविसर्गीबलवान्दोषाणामप्रवर्त्तनम्
लालाप्रसेकोहृल्लासोक्षुन्नाशोऽविशदंमुखम्॥ स्तब्धसुप्तगुरुत्वञ्चगात्राणांबहुमूत्रता। नविड्जीर्णानचग्लानिर्ज्वरस्यामस्यलक्षणम्॥

अर्थ—अरुचि, अविपाक,पेटका भरापन हृदयकी अविशुद्धि (भारी डकार आना) तन्द्रा, आलस्य अविसर्गी ज्वर (जो वीच में कम न हो) वलवान् ज्वर, दोषों की रुकावट, लालाप्रसेक (लारगिरना) हृल्लास क्षुधानाश, मुख में गिलगिलापन, अंगावयवों कास्तब्ध, सुप्त और भारी होजाना, पेशाव बहुत आना, मलका कच्चापन और अग्लानि ये सव आमज्वर के लक्षण हैं।

निरामज्वरलक्षण॥

क्षुत्क्षामतालघुत्वञ्चगात्राणांज्वरमार्दवम्। दोषप्रवृत्तिरष्टाहोनिरामज्वरलक्षणम्॥

अर्थ—भूखसे दुर्बलता (भूख लगना और देहका कृश होजाना) शरीर का हलकापन, ज्वरका कमहोना, दोषों की प्रवृत्ति आठ दिन व्यतीत होना अर्थात् आठ दिन में ज्वरका पचजाना ये लक्षण निराम ज्वर के हैं ।' दोषप्रवृतिरष्टाहो , की जगह ' दोषप्रवृत्तिरुत्साहो, ऐसा पाठभी है।

नवज्वरमें वार्जितकर्म ॥

नवज्वरेदिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम्।
क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्चविवर्जयेत्॥

अर्थ—नवीनज्वर में दिनका सोना, स्नान करना, तैलमर्दन, भोजन करना, मैथुनकरना, क्रोधकरना, हवाखाना, क्काथपान करना ये सव वार्जित हैं ॥

ज्वर में लंघन विधान ॥

ज्वरेलंघनमेवादौउपदिष्टमृतेज्वरात्॥ ॥
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात्॥

अर्थ—ज्वर की आदि में लंघन करना उचित है परन्तु जो ज्वर क्षय, वात, क्रोध, काम, शोक और श्रम से उत्पन्न हुआ है उस में लंघन न करै ॥

लंघनकागुण ॥

लंघनेनक्षयंनीतेदोषेसन्धुक्षितेऽनले ।
विज्वरत्वंलघुत्वंचक्षुच्चैवास्योपजायते॥
प्राणाविरोधिनाचैनंलंघनेनोपपादयेत्।
बलाधिष्ठानमारोग्यंयदर्थोऽयंक्रियाक्रमः॥

अर्थ—लंघन से दोष क्षीण होजाते और जठराग्नि बढजाती है इस से ज्वरका नाश होता है, देह हलकी पडजाती है और क्षुधा चैतन्य होजाती है । ऐसा लंघन देना चाहिये जिस से प्राणों को न पहुंचै । वल अरोग्यता के आश्रि और आरोग्यता चिचित्सा के अ होती है ॥

अविपक्वदोषों के पाचकद्रव्य

लंघनंस्वेदनंकालोयवाग्वस्तिक्तक
पाचनान्यविपक्वानांदोषाणांतरुण

अर्थ—तरुण ज्वर में अविपक्व पचाने वाले ये हैं यथाः—लंघ काल, यवागू और तिक्तरस ॥

उष्ण शीतल जलका वि

तृष्यतेसलिलञ्चोष्णंदद्याद्वातक
मद्योत्थेपैत्तिकेवाथशीतलंतिक्त
दीपनंपाचनञ्चैवज्वरघ्नमुभयंहि
तसांशोधनंबल्यंरुचिस्वेदकरंशि

अर्थ—वातकफ ज्वर में जो प्रवलता होतो रोगी को उष्ण को देवै । मद्य से उत्पन्न अ ज्वर में तिक्त औषधियों को ड टाया हुआ जल ठंडा कर वे दोनों प्रकार के जल दीपन, पा नाशक, स्रोतः समूह के शोधनक कारक, रुचिवर्द्धक, स्वेदोत्पादक ल्याणकारक होते हैं ॥

पिपासानाशकजल ॥

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यन
शृतशीतंजलंदद्यात्पिपासाज्वरघ्न

अर्थ—यदि उक्त ज्वरों में तृष धिकता होतो मोथा, पितपापडा, चन्दन. नेत्रवाळा और सोंठ डालव

वे और ठंडा कर के पान करावै तौ और तृषा दोनों शान्त हों ॥

षों में बमन का विधि निषेध ॥

प्रधानानुत्क्लिष्टान्दोषानामाशयस्थि । बुद्ध्वाज्वरकरान्कालेवम्यानांव रेत् ॥ अनुपस्थितदोषाणांवमनंतरु र । हृद्रोगंश्वासमानाहंमोहञ्चजन येत्भृशम् ॥

—यदि आमाशयस्थ ज्वरको उत्पने वाले दोष कफ प्रधान और ी वमन कराने के योग्य होतौ उ में वमन कराके दोषों को निका तु यदि दोष उपास्थित हों तौ त- में बमन करानि से हृद्रोग, श्वास, और मोह की अत्यन्त उत्पत्ति ।

दोष में संशोधन निषेध ।

नुगासामाधातुस्थादुःखनिर्हराः। लेभ्यआमेभ्य स्वरसाइवसा त्ययाः ॥

—सम्पूर्ण देह में व्याप्त धातुओं में आमदोषों का निकालना ऐसा कष्ट है जैसे कच्चे फल से रस का नि- र फलका नाश करने वाला होता है ।

मनलंघन का पश्चात् कर्म ।

लंघितंकालेयवागूभिरुपाचरेत् । स्वौषधसिद्धाभिर्मण्डपूर्वाभिरादितः तृज्वरमृदूभावात्षड्हंवाबिचक्षणः । ाग्निर्दीप्यतेताभिःसमिद्भिरिवपावकः

र्थ—वमन और लंगन कराने के पश्चात् क्षुधा लगने पर यवागू पान करावै यवागू तीन प्रकार की होती है इन में से दोषानुसार औषधों से सिद्धकी हुई मण्ड प्रथमपान करावै, जब तक ज्वर मृदु न हो अथवा छः दिवस पर्य्यन्त यवागू पान करता रहै । इस यवागू के पान करने से रोगी की जठराग्नि ऐसे बढती चली जायगी जैसे ईंधन डाळने से अग्नि बढ़ती है ।

यवागू के गुण ।

ताश्चभेषजसंयोगाल्लघुत्वाच्चाग्निदीपनाः। वातमूत्रपुरीषाणांदोषाणाञ्चानुलोमनाः स्वेदनायद्रवौष्णत्वाद्द्रवत्वात्तृट्प्रशान्तये आहारभावात्प्राणायसरत्वाल्लाघवाय च ॥ ज्वरघ्न्योज्वरसात्म्यत्वात्तस्मात् पेयाभिरादितः । ज्वरानुपचरेद्धीमान्ऋत मद्यसमुत्थितान् ॥

अर्थ—औषधियों के संयोग और लघुता के कारण यवागू अग्नि वर्द्धक होती हैं, अधोवायु, मूत्र, पुरीष और दोषों को अनुलोमन करने वाली हैं । पेया द्रव और और उष्ण होने से स्वेदन कर्त्ता हैं, द्रव होने से तृषानाशक है, आहारगुण विशिष्ट होने से प्राणधारक है, सर होने से शरीर को हलका करती है ज्वर के सात्म्य होने से ज्वर को नाश करने वाली है, अतएव वुद्धिमान् वैद्य को उचित है कि प्रथमही पेया से ज्वरों का उपचार करै परन्तु मद्यज ज्वरों में पेया का पान करना उचित नहीं है ।

यवागू वर्जित ज्वर ।

मदात्ययेमद्यनित्येग्रीष्मेपित्तकफाधिके।

ऊर्ध्वगेरक्तपित्तेचयवागूरहिताज्वरे ॥

अर्थ—मदात्यय जन्य ज्वर, नित्यमद्य सेवी का ज्वर, ग्रीष्मऋतु का ज्वर, पित्त कफजन्य ज्वर और ऊर्ध्वगरक्त पित्त ज्वर में यवागू पान न करावै ।

तर्पण विधि ।

तत्रतर्पणमेवाग्रेप्रयोज्यंलाजशक्तुभिः । ज्वरापहैःफलरसैर्युक्तंसमधुशर्करम् ॥ द्राक्षादाड़िमखर्जूरपियालैःसपरूषकैः ।तर्पणार्हेषुकर्त्तव्यंतर्पणंज्वरशान्तये ॥ ततः सात्म्यबलापेक्षीभोजयेज्जीर्णतर्पणम् । तनुनामुद्गयूषेणजाङ्गलानांरसेनवा ॥ अन्नकालेषुचाप्यस्मैविधेयंदन्तधावनम् । योऽस्यवक्त्ररसस्तस्माद्विपरीतंप्रियञ्चयत् विशोध्यद्रुमशाखाग्रैरास्यंप्रक्षाल्यचासकृत् । मस्त्विक्षुरसमद्याद्यैर्यथाहारमवाप्नुयात् ॥

अर्थ—प्रथमही ज्वर नाशक फलों का रस तथा शहत और खांड मिलाकर लाज (खीळ) के सत्तूका तर्पण देवै । दाख अनार, खिजूर, पियाळ, फालसा इनका रस मिलाकर तर्पण के योग्य पुरुषों के लिये ज्वरको शान्त करने के निमित्त तर्पण दियाजाता है । जब तर्पण पचजाय तब सात्म्य और बलकी अपेक्षा करके मूंगका पतळायूष और जांगल पशुओं का मांसरस भोजन के समय देवै । भोजन करने से पहिले दन्तधावन करै और मुख को वृक्ष की शाखा के अग्रभाग से शुद्ध करके ऐसे रसों से धोवै जो मुख के रस के विपरीत हों और जिनका जायका खराब न हो । तदनन्तर मस्तु, इक्षु और मद्यादिका रोग के अनुसार करावै ॥

ज्वर में पाचन द्रव्योंका समय

पाचनीयंशमनीयंकषायंपाययेततम् ज्वरितंषडहेऽतीतेलघ्वन्नप्रतिभोजि स्तभ्यन्तेनविपच्यन्तेकुर्वन्तिविष दोषावद्धाःकषायेणस्तम्भित्वात्

अर्थ—छः दिन व्यतीत होनेप रोगी को पाचन कर्त्ता और श औषधों का क्वाथ पान करावै अ अन्नका भोजन करावै । तरुण क्वाथ का सेवन कराने से दोषवद्ध स्तम्भित होजाते हैं और पचने मे आते हैं तव वे विषम ज्वरको करते हैं ॥

नतुकल्पनमुद्दिश्यकषायःप्रतिषि कषायःकषायःस्यात्सवर्ज्यस्तरु

अर्थ—ऊपर जो तरुण ज्वरमे का निषेध किया गया है वह क का नहीं है परन्तु जो कषाय रस उसीका निषेध है ॥

दसदिन पर्यंत पथ्याविधि ।

यूषैरम्लैरनम्लैर्वाजाङ्गलैर्वारसैर्हितैः दशाहंतावदश्नीयाल्लघ्वन्नंज्वरश

अर्थ—ज्वरकी शांति के लिये दस तक अम्ल वा अनम्लयूष और हित जांगल पशुओं के मांस रस के साथ अन्न का पथ्य करै ॥

दसदिन पीछे कर्म ॥

र्द्धंकफेमन्देवातपित्तोत्तरेज्वरे ।
केषुदोषेषुसर्पिष्पानंयथामृतम् । नि
मपिज्ञात्वाकफोत्तरमलंघितम् ।
ः पाययेत्वैद्यःकषायैस्तमुपाचरेत् ॥
लघुत्वादशनंदद्यान्मांसरसेनच ।
ददोषहरंपरन्तच्चबलप्रदम् ॥ दाह
रीतस्यवातपित्तोत्तरंज्वरम् ।
तदोषंवानिरामंपयसाजयेत् ॥
राभिःप्रशमंनप्रयातियदाज्वरः ।
लमांसस्यशमयेत्तंविरेचनैः ॥
ास्यनहितंवमनंनविरेचनम् । का
पसातस्यनिरूहैर्वाहरेन्मलान् ॥

—दस दिन पीछे यदि कफ मन्द र वात पित्त प्रवल रहैं और रिपक्व होजाय तब घृतका ा अमृत के समान गुणकारकहै। दिन पीछे भी यदि कफ वलवान् सको लंघन ठीक न हुए ऐसे स तपान न करावै किन्तु कषायों चिकित्सा करै ॥ तक देह हलकी न हो तबतक ने को दे क्योंकि मांसरस अ-नाशक, परमोत्तम और वल

सा ज्वर जिसमें वात पित्त की अ-हो और दाह और तृषा बलवान् र उस में दोप वद्ध हो वा प्रच्युत निरामज्वर में दुग्ध का सेवन

यदि ऊपर कही हुई क्रियाओं से ज्वर शान्त न हो और रोगी का वल और मांसक्षीण न हुआहो तो विरेचन द्वारा ज्वर की शान्ति करै और जो रोगी ज्वर से क्षीण होगया हो तौ उसको वमन विरेचन कुछ न देवै । किन्तु तृप्ति पर्यंत दुग्ध पान कराके अथवा निरूहण वास्ति द्वारा दोषों को निकाल देवै ॥

ज्वर मे निरूहणवास्ति ॥

निरूहोबलमग्निञ्चविज्वरत्वंमुदंरुचिम् ।
परिपक्वेषुदोषेषुप्रयुक्तःशीघ्रमावहेत् ॥

अर्थ—परिपक्व दोषों में निरूहण व-स्तिका प्रयोग करने से बल, अग्नि, ज्वर रहितता, प्रसन्नता और अन्न में रुचि शीघ्रही उत्पन्न होती हैं ॥

ज्वर में निरूहणवस्ति ॥

पित्तंवाकफपित्तंवापित्ताशयगतंहरेत्।स्रं
सनंत्रीन्मलान्वास्तिर्हरेत्पक्वाशयस्थितान्।

अर्थ—वस्ति पित्ताशयगत पित्त को निकाल देती है । स्रंसनकर्ता है और प-क्वाशयस्थ तीनों मलों को निकाल देती है ॥

अनुवासनवस्तिविधान ॥

ज्वरेपुराणेसंक्षीणेकफपित्तेदृढाग्नये ।
रूक्षबद्धपुरीषाणांप्रदद्यादनुबासनम् ।

अर्थ—ज्वर पुराना पडगया हो, कफ पित्त क्षीण होगये हों, अग्नि मन्दहो, और पुरीषरूक्ष वा वद्ध होगयाहो तव अ नुवासन वस्ति देवै ।

शिरोविरेचन ॥

गौरवेशिरसःशूलेविबद्धेष्विन्द्रियेषुच ॥

जीर्णज्वरेरुचिकरङ्कुर्यान्मूर्धविरेचनम् ।

अर्थ—देह में भारापन, शिरोवेदना, इंद्रियविवन्ध इन लक्षणों से युक्त जीर्णज्वर में विरेचन देवै इसके देने से रुचि वढती है ॥

जीर्णज्वर के अन्य उपचार ॥

अभ्यङ्गांश्चप्रदेहांश्चसस्नेहान्सावगाहनान् विभज्यशीतोष्णतयाकुर्याज्जीर्णज्वरेभिषक् । तैराशुहिशमंयातिवहिर्मार्गगतोज्वरः ॥ लभन्तेसुखमंगानिवलंवर्णश्चवर्धते।

अर्थ—भिषक को उचित है कि जीर्ण ज्वर में विवेचना करके शीतोष्ण अभ्यंग स्निग्ध प्रमेह और अवगाहन द्वारा चिकित्सा करै । इन उपचारों के करने से वहिर्मार्ग गामी ज्वर शान्त होजाता है, अंग के अवयव सुखी होजाते हैं तथा वल और वर्णकी वृद्धि होती है ॥

धूपनाञ्जनयोगैश्चयान्तिजीर्णज्वराःशमम्॥ त्वङ्मात्रशेषायेषाञ्चभवन्त्यागन्तुरन्वयः। इतिक्रियाक्रमःसिद्धोज्वरघ्नःसम्प्रकाशितः ॥ येषान्त्वेषक्रमस्तानिद्रव्याण्यूर्ध्वमतःशृणु ।

अर्थ—ऐसे जीर्णज्वर जिन में त्वचामात्र शेष रहगई हो और आगन्तुक ज्वर धूपन और अञ्जन के योग से शमन होते है यह ज्वर नाशक चिकित्सा का क्रम वर्णन किया गया है, अव हम उन द्रव्यों का वर्णन करते हैं जो इस चिकित्सा क्रम में उपयोगी होते हैं ॥

ज्वर नाशक प्रयोग ।

रक्तशाल्यादयःशस्ताःपुराणाःषष्टिकैःसह यवाग्वोदनलाजार्थेज्वरितानांज्वर अम्लाभिलाषीतामेवदाडिमाम्ला राम् ॥ सृष्टविट्पैत्तिकोवाथशीतां तांपिवेत् । लाजपेयांसुखजरांपिप नागरैःशृताम् ॥ पिवेज्ज्वरीज्वरह्र द्वानल्पाग्निरार्दितः । पेयांवारक्त नांपार्श्ववस्तिशिरोरुजः ॥ श्वदंष्ट्रा कारिभ्यांसिद्धांज्वरहरांपिवेत् । सारीपेयांवापिवेत्साम्लांशृतां पर्णीवलाविल्वनागरोत्पलध

अर्थ--ज्वर ग्रस्त रोगी के ज्वर करने के निमित्त रक्तशांली चांवल भात और खील वनवाकर देवै ।

जो रोगी की खटाई पर इच्छ उस यवागू में अनारकी खटा डाळकर पान करावै। जो विष्ठा निकल गये हों तौ उसको ठं शहत डाळकर पान करावै ॥

मन्दाग्निवाला पुरुष क्षुधालगने और सोंठ डालकर लाजपेया क यह सुख पूर्वक पचजाती है और भी दूर कर देती है ।

लाल शाली चांवलों की पेया गो कटेरी डालकर सिद्ध करै और करै तौ पार्श्व वेदना, वस्तिवेदना और ज्वर ये सव नष्ट होजाते हैं

ज्वरातिसार रोगवाला पृश्निपर्णी वेलगिरी, सोंठ, निलोफर और धनि लकर सिद्धकी हुई पेया में खटा पान करै ॥

ज्वरनाशक अन्यप्रयोग ॥

शृतांविदारीगन्धाद्यैर्दीपनींस्वेदनींनरः॥ कासीश्वासीचहिक्कीचयवागूंज्वरितःपिवेत् । विवद्धवर्चाःसयवाःपिप्पल्यामलकैः कृताम् ॥ सर्पिष्मतींपिवेत्पेयांज्वरीदोषानुलोमनीम् । कोष्ठेविबद्धेसरुजिपिवेत् पेयांशृतांज्वरी ॥ मृद्वीकापिप्पलीमूलच व्यामलकनागरैः । पिवेत्सविल्वांपेयां वाज्वरेसपरिकर्तिके ॥ बलावृक्षाम्लको लाम्लकलशीधावनीशृताम् । अस्वेदनिद्रस्तृष्णार्तःपिवेत्पेयांसशर्कराम् ॥ नागरामलकैःसिद्धांघृतभृष्टांज्वरापहाम् ।

अर्थ—विदारीगधं डालकर सिद्धकीहुई यवागू खांसी, श्वास, हिचकी और ज्वररोगों में देवै, यह यवागू दीपनीय और स्वेदन कर्त्ता है ॥

जो बिष्टारुकगया हो तो ज्वर रोगी पीपल और आंवला डालकर सिद्ध की हुई जौकी पेया में घृत डालकर पानकरै, यह पेया दोषों को अनुलोमन करने वाली है।

कोष्ठबद्ध और शूलहोनेपर ज्वर रोगी किसमिस, पीपलामूल, चव्य, आंवला और सोंठ डालकर सिद्धकी हुई पेया पान करावै ॥

परिकर्त्तिका (पेट में मरोडा) रोग [र]रोगी बेलगिरी, खरैटी, वृक्षाम्ळ, को- [ल]लशी (पृष्णपर्णी) और धावनी [पर्णी]) डालकर सिद्ध की हुई पेया [क]रावै ॥

जिसको पसीने और नींद न आती हो और तृषा अधिक लगतीहो वह सोंठ और आंवला डालकर सिद्ध की हुई और घृत में भुनीहुई पेया में चीनी डालकर पानकरै । इससे ज्वर भी जाता रहता है।

ज्वरपरयूष ॥

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलुत्थान्समकुष्ठकान् ॥ यूषार्थंयूषसात्म्यानांज्वरितानाम्मकल्पयेत् ।

अर्थ—वे ज्वर रोगी जिनको यूष सात्म्य है वे मूंग, मसूर, चना, कुलथी और मोठका यूष पीवें ।

ज्वरपरशाक ॥

पटोलपत्रंसफलंकुलकंपापचेलिकाम् ॥ कर्कोटकंकठिल्लश्चविद्यात्शाकंज्वरेहितम्

अर्थ—ज्वर में परवल के पत्ते, फल और डंठलकासाग, पाठा ककोंड़ा और करेले का साग हित है ॥

ज्वरपरमांस ॥

लावान्कापिञ्जलानेणांश्चकोरानुपच्क्रकान ॥ कुरङ्गान्कालपुच्छांश्चहरिणान् पृषतान्शशान् । प्रदद्यान्मांससात्म्यायज्वरितायज्वरापहान् ॥

अर्थ—लवा, तीतर, हरिण, चकोर, चकवा, कुरंग, कालपुच्छ, पृषत और खर्गोश इनका मास मांससात्म्य रोगियों को देवै, ये ज्वरनाशक होते हैं ॥

ज्वर में मांसरसका बर्णन ॥

ईषदम्लान्अनम्लान्वारसान्कालेविचक्षणः । कुक्कुटांश्चमयूरांश्चतित्तिरिक्रौञ्चबर्तकान् ॥ गुरूष्णत्वात्नशंसन्तिज्व

रेकेचिच्चिकित्सकाः । लंघनेनानिलबलं ज्वरेयद्यधिकंभवेत् ॥ भिषङ्मात्राविक ल्पज्ञोदद्यात्तानपिकालवित् ।

अर्थ—बुद्धिमान् वैद्य को उचित है कि थोडी सी खटाई डालकर या बिना खटाई का मांसरस उचितकाल में ज्वर रोगी को देवै । मुर्गा, मोर, तीतर, कुञ्ज और वतकका मांसरस हित होता है । कोई २ वैद्य यह कहते हैं कि मांसरस भारी और उष्ण होता है इसलिये ज्वर में देना ठीक नहीं है ॥

यदि ज्वर में लंघन कराने से बात का बल अधिक होजाय तौ वैद्य को उचित है कि मात्रा, विकल्प और काल के अनुसार मांसरसों का सेवन करावै ॥

ज्वर पर मद्यादि विधि ॥

घर्माम्बुचानुपानार्थंतृषितायप्रदापयेत् ॥ मद्यंवामद्यसात्म्याययथादोषंयथाबलम्। गुरूष्णस्निग्धमधुरकषायांश्चनवज्वरे ॥ आहारान्दोषपक्त्यर्थंप्रायशःपरिवर्जये त् । अनुपानक्रमःसिद्धोज्वरघ्नःसम्प्रका शितः ॥ अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यन्तेकषायाज्वर नाशनाः ।

अर्थ—भोजन के पश्चात् तृषा लगने पर ज्वर रोगी को उष्णजलका पान करावै । जिसको मद्यअनुकूल है उसे यथा दोष और यथाबळ मद्यका अनुपाम करावै । नवीन ज्वर में दोषों के पचाने के लिये गुरु, उष्ण, मधुर, स्निग्ध और कषायरस वाळे आहारों का सेवन न करावै । यह अनुभूत ज्वरनाशक अनुपानक्रम वर्णन किया गया है ॥

अब हम ज्वरनाशक क्वाथों का वर्णन करते हैं ।

ज्वरनाशकक्काथ ॥

पाक्यंशीतकषायंवामुस्तपर्पटकंपिबेत् ॥ सनागरंपर्पटकंपिबेद्वासदुरालभम् । किराततिक्तकंमुस्तंगुडूचींविश्वभेषजम् ॥ पाठामुशीरंसोदीच्यंपिबेद्वाज्वरशान्तये। ज्वरघ्नादीपनाश्चैतेकषायादोषपाचनाः। तृष्णारुचिप्रशमनामुखवैरस्यनाशनाः ।

अर्थ—ज्वर के दूर करने के लिये नीचे लिखीहुई औषधियों के प्रयोगों का कषाय वा शीतकषाय वनाकर देवै यथा मोथा और पित्त पापड़ा इनका शीत कषाय वा कषायपान करै । अथवा सोंठ, पित्तपापडा, और जवासा इन का क्वाथ पीवै । अथवा चिरायता, नागर मोथा, गिलोय सोंठ, पाठा, खस, और नेत्रवाला इनका कषाय ज्वरकी शांतिके लिये पानकरै । ये तीनों कषाय जो ऊपर कहे गये हैं ज्वरशान्त कर्त्ता, दीपन, दोषपाचन, तृषानाशक, अरुचिनाशक और मुखकी विरसता को नाशकरने वाले हैं ॥

ज्वरनाशकअन्यक्काथ ।

कलिङ्गकाःपटोलस्यपत्रंकटुकरोहिणी पटोलःशारिवामुस्तंपाठाकटुकरो निम्बःपटोलस्त्रिफलामृद्वीकामुस्त किराततिक्तममृताचन्दनंविश्वभे गुडूच्यमलकंमुस्तमर्द्धश्लोकसमाप

कषायाःशमयन्त्याशुपञ्चपञ्चविधंज्वरम्।
सन्ततंसततान्येद्युस्तृतयिकचतुर्थकम् ॥

अर्थ—१-इन्द्रजो, परवल के पत्ते, कुटकी। २-परवल, शारिवा, मोथा, पाठा, कुटकी। ३-नीम, परवल, त्रिफला, किसमिस, मोथा, इन्द्रजौ। ४-चिरायता, गिलोय, रक्तचन्दन और सोंठ। ५-गिलोय आंवला और मोथा। ये आधे २ श्लोक में कहेहुए पांच प्रकार के क्वाथ क्रम से सन्तन, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक इन पांचों प्रकार के ज्वरको नाश करते हैं।

ज्वरनाशक अन्यकाथ।

वत्सकारग्वधंपाठांषड्ग्रन्थांकटुरोहिणीम्
मूर्वांसातिविषांनिम्बंपटोलंधन्वयाशकम्।
बचामुस्तमुशीराणिमधूकंत्रिफलांबलाम्॥
पाक्यंशीतकषायंवापिवेज्ज्वरहरंनरः।

अर्थ—इन्द्रजौ, अमलतास, पाठा, वच, कुटकी, मूर्वा, अतीस, नीम, परवल, जवासा वच, मोथा, खस, मुळहटी, त्रिफला, खरैटी इन सब के क्काथ वा शीतकषायका पान करै। यह ज्वर नाशक क्काथ है।

अन्यप्रयोग।

मधूकमुस्तमृद्वीकाकाश्मर्याणिपरूषकम् ॥
त्रायमाणमुशीराणित्रिफलांकटुरोहिणीम्
पीत्वाशिनिस्थितंजंतुर्ज्वरात्शीघ्रंविमुच्यते

अर्थ—मुलहटी, मोथा, किसमिस, खंभारी फालसा, त्रायमाणा, खस, त्रिफला और कुटकी इनके शीतकषाय का पान करने से ज्वर शीघ्रही नष्ट होजाता है॥

अन्यप्रयोग।

बृहत्यौवत्सकंमुस्तंदेवदारुमहौषधम्।
कोलवल्लीचयोगोऽयम्सन्निपातज्वरापहम् ॥

अर्थ—दोनों कटेरी, इन्द्रजौ, मोथा, देवदारु, सोंठ, और गज पीपल इनका क्काथ सन्निपात ज्वरका नाश करने वाळा है।

विवन्धदोषयुक्त ज्वर पर क्काथ।

जात्यामलकमुस्तानितद्वद्धन्वयवासकम्।
विवद्धदोषोज्वरितःकषायंसगुडंपिवेत् ॥

अर्थ—जायफळ, आंवला, मोथा, जवासा और गुड़ इनका कषाय करके विवद्धदोष युक्त ज्वर नष्ट होजाता है।

तिफलांत्रायमाणाञ्चमृद्वीकांकटुरोहिणीम्
पित्तश्लेष्महरस्त्वेषकषायोह्यानुलोमिकः॥
त्रृवृताशर्करायुक्तःपितश्लेष्मज्वरापहः।

अर्थ—त्रिफला, त्रायमाण, किसमिस कुटकी कफपित्तजन्य ज्वर को नाश करने वाळा और अनुलोमन कर्त्ता है। शर्करा मिश्रित निशोथ क्वाथ पान करने से भी ऊपर कहा हुआ गुण होता है।

सन्निपात पर प्रयोग।

शटीपुष्करमूलञ्चव्याघ्रीशृङ्गीदुरालभा।
गुडूचीनागरंपाठाकिरातंकटुरोदिणी ॥
एषशट्यादिकोवर्गःसन्निपातज्वरापहः।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासतन्द्रासुशस्यते।

अर्थ—शटी, पुहकरमूल, कटेरी, काकड़ा सींगी, जवासा, गिलोय, सोंठ पाठा, चिरायता, कुटकी, यह शट्यादिक वर्ग ज्वर नाशक है तथा खांशी, हृद्ग्रह, दर्दपसली,

श्वास और तन्द्रा इन सब में बहुत गुण दायक होता है ।

अन्यप्रयोग ।

बृहत्यौपुष्करंभार्गीशटीशृङ्गीदुरालभा । वत्सकस्यचवीजानिपटोलंकटुरोहिणी ॥ बृहत्यादिर्गणःप्रोक्तःसन्निपातज्वरापहः। कासादिषुचसर्वेषुदद्यात्सोपद्रवेषुच ॥

अर्थ—दोनों कटेरी, पौहकरमूल, भारंगी शटी, काकड़ासींगी, इन्द्रजौ, परवल, कुटकी यह वृहत्यादिगण सन्निपात ज्वर नाशक है, यह कास, हृद्ग्रह आदि सम्पूर्ण उपद्रवों में विशेष गुणदायक है ।

कषायाश्चयवाग्वश्चपिपासाज्वरनाशनाः॥ निर्दिष्टाभेषजाध्यायेभिषक्तानपियोजयेत्

अर्थ—तृषा और ज्वर नाशक भी कषाय यवागू तथा जो सूत्र स्थान के भेषजाध्याय में वर्णनकिये गये हैं उनका प्रयोग भी करना चाहिये ।

ज्वर में घृतविधि ।

ज्वराःकषायैर्वमनैःलंघनैर्लघुभोजनैः ॥ रूक्षस्ययेनशाम्यन्तिसर्पिस्तेषांभिष ज्यितम् । रूक्षंतेजोज्वरकरंतेजसारूक्षित स्यच ॥ यःस्यादनुवलोधातुःस्नेहसाध्यः सचानलः । कषायाःसर्वएवैतेसर्पिषास हयोजिताः ॥ प्रयोज्याज्वरशान्त्यर्थमअ ग्निसन्धुचणाःशिवाः ।

अर्थ—रूक्ष मनुष्यका ज्वर कषाय, वमन, लंघन और लघुभोजनसे शान्त न हो तो घृत देना श्रेष्ठ है । रूक्ष व्यक्तिका ज्वर तेजोमय होने से रूक्ष है और वायु उसका अनुवळ है अतएव वायु स्नेहसाध्य है । नीचे लिखे हुए कषायों में घृत डालकर सिद्ध करना चाहिये । ये कषाय ज्वर शान्तकर्त्ता, अग्निवर्द्धक और कल्याण कारक हैं ॥

घृत सिद्ध करने का कषाय ।

पिप्पल्यःचन्दनंमुस्तमुशीरंकटुरोहिणी ॥ कलिङ्गकस्तामलकीशारिवातिविषास्थि रा । द्राक्षामलकविल्वानित्रायमाणानि दिग्धिका ॥ सिद्धमेतैर्घृतंसद्योजीर्णज्वर मपोहति । क्षयंकासंशिरःशूलंपार्श्वशूलं हलीमकम् ॥ अंसाभितापमग्निञ्चविष मंसनियच्छति ।

अर्थ—पीपल, चन्दन, मोथा, उसीर कुटकी, इन्द्रजौ, भू आंवला, सारिवा, अतीस शालिपर्णी, दाख, आंवला, वेलगिरी, त्रायमाण, कटेरी इनके क्वाथ में सिद्ध किया हुआ घृत जीर्ण ज्वर को शीघ्र नष्ट करदेता है । क्षयी, खांसी, शिरोवेदना, पार्श्वशूल हलीमक, असाभिताप और विषमाग्नि ये भी दूर हो जाते हैं ।

अन्यप्रयोग ॥

वासांगुडूचींत्रिफलांत्रायमाणांयवासकम् पक्त्वातेनकषायेणपयसाद्विगुणेनच । पिप्पलीमुस्तमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः॥ कल्कीकृतैश्चविपचेत्घृतंजीर्णज्वरापहम्

अर्थ—अडूसा, गिलोय, त्रिफला, त्रायमाण, जवासा, इनके क्वाथ में घृत और घृत सेदूना दूध, तथापिपल, मोथा, किसमिस, चन्दन, नीलोफर, सोंठ, ये सब डा-

लकर घृत पकावै, यह घृत जीर्णज्वरनाशक होता है ॥

अन्य प्रयोग ।

बलांश्वदंष्ट्रांबृहतींकलसींधावनींस्थिराम्॥ निम्बंपर्पटकंमुस्तंत्रायमाणांदुरालभाम् । कृत्वाकषायंपेष्यार्थेदद्यात्तामलकींशटीम्॥ द्राक्षांपुष्करमूलञ्चमेदामामलकानिच । घृतंपयश्चतत्सिद्धंसर्पिर्ज्वरहरंपरम् ॥ क्षयकासशिरःशूलपार्श्वशूलांसतापनुत् ।

अर्थ—खरैटी, गोखरू, कटेरी, प्रश्नपर्णी छोटी कटेरी, शालपर्णी, नीम, पितपापड़ा मोथा, त्रायमाण, जवासा, इन का क्वाथ करै । तथा भू आंवळा, शटी, दाख, पौहकरमूल, मेदा और आंवळा इनकी पीस कर लुगदी बनावै और इन में घृत और दूध डालकर सिद्ध करै तो यह घृत उत्तम ज्वर नाशक होता है ।क्षयी, खांशी,शिरोवेदना, पार्श्वशूल और तापको दूर करता है।

ज्वर में शोधन विधि ।

ज्वरिभ्योबहुदोषेभ्यऊर्द्धञ्चाधश्चबुद्धिमान ॥ दद्यात्संशोधनेकालेकल्पेयदुपदेच्यते ॥

अर्थ—ऐसे ज्वर रोगी को जो बहुत दोषों से युक्त हो उसे बुद्धिमान् वैद्य कल्पस्थान में कहे हुए वमन विरेचन उचित काल में देवै ।

ज्वर में वमन के प्रयोग ।

मर्दनंपिप्पलीभिर्वाकलिङ्गैर्मधुकेनवा ॥ युक्तमुष्णाम्बुनापेयंवमनंज्वरशान्तये । क्षौद्राम्बुनारसेनेक्षोरथवालवणाम्बुना ॥ ज्वरेप्रच्छर्दनंशस्तंमद्यैर्वातर्पणेनवा । मृद्वीकामलकानांवारसंप्रच्छर्दनंपिबेत् ॥ रसमामलकानांवाघृतभृष्टंज्वरापहम् ।

अर्थ—पीपल, अथवा इन्द्रजौ अथवा मुळहटी के साथ मैनफल का चूर्ण मिलाकर गरम जळके साथ पान करने से वमन होती है , यह वमन ज्वरनाशक है शहत और जल अथवा ईखका रस अथवा नमक का जल अथवा मद्य अथवा तर्पण द्वारा वमन कराना ज्वर में हितकारक है दाख अथवा आंवले का क्काथ पान करै यह भी वमन कारक है, अथवा घृत में भुना हुआ आंवलेका रस पान करै । यह ज्वर नाशक होता है ।

ज्वर में विरेचन प्रयोग ।

लिह्याद्वात्रैवृतंचूर्णंसंयुक्तंमधुसर्पिषा ॥ पिबेद्वाक्षौद्रमासाद्यसघृतंत्रिफलारसम् । आरग्वधंवापयसामृद्वीकानांरसेनवा ॥ त्रिवृतांत्रायमाणांवापयसाज्वरितःपिबेत्। ज्वराद्विमुच्यतेपीत्वामृद्वीकाभिःसहाभयाम् पयोऽनुपानमुष्णंवापीत्वाद्राक्षारसंनरः। कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलाच्चिरज्वरात् ।

अर्थ—निसोथ के चूर्ण को घृत और शहत में मिलाकर चाटै । अथवा त्रिफला के क्काथ में घी और शहत मिलाकर पीवै । अथवा दूध के साथ अमलतास, अथवा दाख के रसके साथ निसोथ अथवा दूध के साथ त्रायमाण का पान करै । अथवा दाख के रस के साथ हरड़ अथवा दाख का

रस पीकर ऊपर से गरम दूध पीले । इन का सेवन करने से खांशी, श्वास, शिरः शूल पार्श्व शूल और पुराना ज्वर ये सब दूर होजाते हैं ।

ज्वरनाशक दूध के प्रयोग ॥

मुच्यतेज्वरितःपीत्वापञ्चमूलशृतंपयः ॥ एरण्डमूलोत्कथितंज्वरान्सपरिकर्त्तिकात् । पयोविमुच्यतेपीत्वातद्वद्बिल्वशलाटुभिः ॥ त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीगुड़नागरसाधितम् । वर्चोमूत्रविबन्धघ्नंशोफज्वरहरंपयः ॥ सनागरंसमृद्वीकंसघृतक्षौद्रशर्करम् । शृतंपयःसखर्जूरंपिपासाज्वरनाशनम् ॥ चतुर्गुणेनाम्भसावाशृतंज्वरहरंपयः । धारोष्णंवापयःसद्योवातपित्तज्वरंजयेत् ॥ जीर्णज्वराणांसर्वेषांपयःप्रशमनंपरम् । पेयंतदुष्णंशीतंवायथास्वंभेषजैः शृतम् ॥

अर्थ—पञ्चमूल डालकर सिद्ध किया हुआ दूध पान करने से ज्वर जाता रहता है । अथवा अरंडकी जड वा कच्ची वेलागिरी डालकर औटाया हुआ दूध पीने से परिकर्त्तिका से युक्त ज्वर जाता रहता है । अथवा गोखरू, खरैटी, कटेरी, पुंराना गुड और सोंठ इनको डालकर सिद्धकियाहुआ दूध मळ मूलके विबन्ध और सूजन युक्त ज्वर को दूर कर देता है । अथवा सोंठ, किसमिस, घी, शर्करा, और खिजूर इनको दूध में डालकर औटाले फिर छानकर शहत मिलाकर पान करै तो तृषा और ज्वरका नाश होजाता है । अथवा एकभाग दूध और चार भाग जलको औटाकर पान करै तौ ज्वर नष्ट होजाता है । धारोष्ण (थनकढ गरम २) दूधका पान करने से बात पित्त ज्वर शीघ्र जाता रहता है ॥

सम्पूर्ण प्रकार के पुराने ज्वरों में दुग्ध अत्यन्त श्रेयस्कर है । जैसा दोष हो उसी के अनुसार औषधों से सिद्ध किया हुआ दूध गरम वा ठंडा पान करना चाहिये ॥

प्रयोजयेत्ज्वरहरान्निरूहान्सानुवासनान् । पक्काशयगतेदोषेवक्ष्यन्तेयेचसिद्धिषु

अर्थ—जब दोष पक्वाशय में चलेजांय तब सिद्धस्थान में कहीहुई ज्वरनाशक निरूहण और अनुवासन वस्ति देवै ॥

ज्वरनाशकवस्ति ।

पटोलारिष्टपत्राणिसोशीरश्चतुरंगुलः । ह्रीवेरंरोहिणंतिक्ताश्वदंष्ट्रामदनानिच ॥ स्थिराबलाचतत्सर्वंपयस्यर्द्धोदकेशृतम् । क्षीरावशेषंनिर्यूहंसंयुक्तंमधुसर्पिषा ॥ कल्कैर्मदनमुस्तानांपिप्पल्यामधुकस्यच । वत्सकस्यचसंयुक्तंवस्तिंदद्यात्ज्वरापहम् शुद्धेमार्गेहृतेदोषेविप्रसन्नेषुधातुषु । गताङ्गशूलोलघ्वङ्गःसद्योभवतिविज्वरः ॥

अर्थ—परवल के पत्ते, नीम के पत्ते, उशीर, अमलतास, नेत्रवाला, रोहिण, कुटकी, गोखरू,मेनफल, पृष्णिपर्णी, खरैटी इनको आधे जळ और आधे दूध में औटा लेवे । दूध शेष रहने पर छान ले और घी तथा शहत मिलादेवे । फिर उस में मैनफल,

मोथा, पीपल, मुलहटी, इन्द्रजौ इनका कल्कमिलाकर ज्वरनाशक वस्ति देवै।

इस वस्ति के प्रयोग से, मार्ग शुद्ध होजाते हैं, दोष निकलजाते हैं, और सम्पूर्ण धातु प्रफुल्लित होजाती हैं। सब प्रकार की अंगवेदना, दूर होकर देह हलका पडजाता है और ज्वर भी तत्काल दूर होजाता है॥

दूसरावस्तिप्रयोग॥

आरग्वधमुशीराणिमधुकंमधुराणिच।
चतस्रःपर्णिनीश्चैवनिर्यूहमुपकल्पयेत्॥
प्रियंगुमदनंमुस्तंशताह्वामधुयष्टिका।क
ल्कःसर्पिःगुडःक्षौद्रंज्वरघ्नोवस्तिरुत्तमः॥

अर्थ—अमलतास, उसीर, मुलहटी, मधुरगण और चारों पर्णी (पृष्णिपर्णी, शालिपर्णी मुद्गपर्णी माषपर्णी) इन सबका क्वाथ करले फिर इन में प्रियंगु, मैनफल, मोथा, सौंफ मुलहटी का कल्क और घी, गुड, शहतमिलाकर वस्ति देवे, यह ज्वरनाशक उत्तम वस्ति है॥

ज्वरनाशकनिरूहणवस्ति॥

गुडूचीन्त्रायमाणाञ्चचन्दनंमधुकम्वृषम्
स्थिराम्बलांपृश्निपर्णीमदनञ्चेतिसाध
येत्॥ रसञ्जाङ्गलमांसस्यरसेनसहितांभि
षक्। पिप्पलीफलमुस्तानांकल्केनमधुक
स्यच॥ ईषत्सलवणंयुक्त्यानिरूहंमधुस
र्पिषा। ज्वरप्रशमनंदद्याद्बलस्वेदरुचि
प्रदम्॥

अर्थ—गिलोय, त्रायमाण, रक्तचन्दन, मुलहटी, अडूसा, शालिपर्णी, खैरैटी पृष्णिपर्णी मैनफल इन सबका क्वाथ करे। इस क्वाथ में जांगल पशुपक्षियों का मांसरस मिलावै, फिर इस में पीपल, मैनफल, नागरमोथा और मुलहटी का क्वाथ मिलावै तथा घी, शहत और थोडासा नमक मिलाकर निरूहण वस्ति देवै। यह वस्ति बलवर्द्धक, स्वेदकारक और रुचिप्रद होती है॥

स्नेहनवस्तिप्रयोग॥

जीवन्तीमधुकंमेदांपिप्पलींमरिचंवचाम्।
ऋद्धिंरास्नांबलांविश्वंशतपुष्पांशतावरी
म्॥ पिष्ट्वाक्षीरञ्जलंसर्पिस्तैलञ्चविप
चेद्भिषक्। आनुवासनिकंस्नेहमेतंविद्या
ज्ज्वरापहम्॥

अर्थ—जीवन्ती, मुलहटी, मेदा, पीपल, कालीमिरच, वच ऋद्धि, रास्ना, खैरैटी, सोंठ, सौंफ, सितावर, इनको कूटकर दूध, जल, घी और तेलडालकर पक्क करले। यह स्नेहनवस्ति ज्वर नाशक होती है।

अन्यस्नेहन प्रयोग।

पटोलपिचुमर्दाभ्यांगुडूच्यामधुकेनच।
मदनैश्चशृतःस्नेहोज्वरघ्नमनुवासनम्॥
चन्दनागुरुकाश्मर्यपटोलमधुकोत्पलैः।
सिद्धःस्नेहोज्वरहरःस्नेहवस्तिःप्रयुज्यते॥
यदुक्तंभेषजाध्यायेविमानेरोगभेषजे।
शिरोविरेचनंकुर्याद्युक्तिज्ञस्तज्ज्वरापहम्
यच्चनावनिकंतैलंयाश्चप्राग्धूमवर्तयः।
मात्राशितीयेनिर्दिष्टाःप्रयोज्यास्ताज्वरेष्व
पि॥ अभ्यङ्गांश्चप्रदेहांश्चपरिषेकांश्चकार
येत। यथाभिलाषंशीतोष्णांविभज्याद्द्विवि
धंज्वरम्॥ सहस्रधौतंसर्पिर्वातैलंवाप

न्दनादिकम् । दाहज्वरप्रशमनंदद्याद भ्यञ्जनंभिषक् ॥

अर्थ—परवल, नीमकीछाल गिलोय, मुहटी, मेंनफल इनके साथ घृत को सिद्ध कर के ज्वर नाशक अनुवासनवस्ति देवै। अथवा चंदन, अगर, खंभारी, परवल, मुलहटी, नीलोफर इन में सिद्ध किये हुए घृत की स्नेहनवस्ति ज्वर नाशक होती है।

जो सूत्रस्थान में और विमानस्थान में शिरोविरेचन कहे गये हैं वे भी युक्ति पूर्वक देने चाहिये। उन के प्रयोग से भी ज्वरनाश होता है।

सूत्र स्थानके मात्राशितीय अध्याय में जो नस्य तैल, धूमवर्त्ति आदि प्रयोग वर्णन किये गये हैं वे भी ज्वर में करने चाहियें। शीत और उष्ण दोनों प्रकार के ज्वरों की विवेचना कर के ठंडा और गरम अभ्यंग, प्रदेह और परिषेक करै। हजारवार धोया हुआ घी, वा चन्दनादि तैल का अभ्यंग करने से दाह ज्वर नष्ट होजाता है।

चन्दनाद्य तैल।

अथ चन्दनाद्यंतैलमुपदेक्ष्यामः। चन्दनशैलेयभद्रश्रियकालानुसार्यकालीयकपद्मपद्मकोशीरशारिवामधुकप्रपौण्डरीकनागपुष्पोदीच्यचव्यपद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रविसमृणालशालूकशैवालकशेरुकानन्ताकुशकाशेक्षुदर्भशरनलशालिमूलजम्बुवेत्रवेतसवाणीरगुन्द्राककुभाशनाश्वकर्णस्यन्दनवातपोथसालतालधवतिनिशखदिरकदरकदम्बकाश्मर्यफलसर्जप्लक्षवटकपीतनोदुम्बराश्वत्थन्यग्रोधलोध्रधातकीदूर्वेत्कटकशृङ्गाटकमञ्जिष्ठाज्योतिष्मतीपुष्करबीजक्रौञ्चादनवदरीकोविदारकदलीसंवर्तकारिष्टशतपर्वाशीतकुम्भिकाशतावरीश्रीपर्णीश्रावणीमहाश्रावणीरोहिणीशीतपाक्योदनपाकीकालाबला पयस्याविदारीजीवकर्षभकमेदामहामेदामधुरऋष्यप्रोक्तातृणशून्यमोचरसारूटरूषकबकुलकुटजपटोलनिम्बशाल्मलीनालिकेरखर्जूरमृद्वीकापियालप्रियंगुधन्वनात्मगुप्तामधूकानामन्येषाञ्चशीतवीर्याणांयथालाभमौषधानांकषायंकारयेत् । तेनकषायेणद्विगुणितपयसातेषामेवचकल्केनकषायार्धमात्रंमृद्वग्निनासाधयेत्तैलम् एतत्तैलंसद्योनाहंज्वरमपनयत्येतैरेवचौषधैःसुश्लक्ष्णपिष्टैःसुशीतैःप्रदेहङ्कारयेत्एतैरेवचशृतशीतंसलिलमवगाहपरिषेकार्थे प्रयुञ्जीतइतिचन्दाद्यंतैलं।

अर्थ—रक्तचन्दन, शिलापुष्प, सफेद चन्दन, कालानुसार्य्य (शैलेय) पीतचन्दन पद्मा, पद्माख, उसीर, शारिवा, मुलटी पुण्डरीक, नागकेसर, नेत्रवाळा, चव्य, पद्म, नीलकमल, नलिन, कमोदनी, सौगन्धिक, पुण्डरीक, शतपत्र, विस (कमल नाळ), मृणाल, शालूक शैवाल, कसेरू अनन्तमूल, कुशा, कांस, ईख, दाभ, सरकंडे की जड़, नरसलकी जड़; शालिमूल, वेत, वेतस, वाणीरि, गुन्द्रा, अर्जुन, असन, साल स्यन्दन (तिनिशवृक्ष), वातपोथ (पळास)

साल, ताल, धौ, तिनिश, खैर, दुर्गन्धखैर कदम्ब, खंभारीफल, सर्ज, पाकड़, वट कपीतन, गूलर, पीपल, वड़, लोध, धाय, दूव उत्कएटक, सिंघांड़ा, मजीठ, माळकांगनी, पुष्कर वीज, क्रौञ्चादन, वेर, लाळकनेर केला, मोथा, नीम, शतपर्वा (एक प्रकार की दूव), शीतकुम्भिका, सितावर, खंभारी श्रावणी महाश्रावणी, कुटकी, शीतपाकी (खैरेटी) ओदनपाकी, काला (नीलिनी) खरैटी, क्षीर काकोली, विदारीकन्द, जीवक ऋषभक, मेदा, महामेदा, मूर्वा अतिवला मल्लिका, मोचरस, अडूसा, वकुल, कुड़ा की छाल, परवल, नीम, सेमर, नारियल खिजूर, किसमिस, पियाल, चिरोंजी, धन्वन केंच, महुआ। इन सब औषधियों को तथा अन्य शीतवीर्य वाली औषधों को जो जो मिलसकें इकट्ठी कर के क्वाथ करै फिर इस क्वाथ का आधा तेल और दूना दूध तथा इन्हीं औषधों का कल्क करके मन्दी मन्दी आग पर पकावै। यह तैल दाह ज्वर को शीघ्रही दूर कर देता है। इन्हीं औषधियों को महीन पीसकर ठंडी ठंडी का लेप करै और इन्हीं औषधों को डालकर जल औटावै और ठंडा कर के स्नान और परिषेक में देवै। यह चन्दनाद्य तैलहै।

अन्यप्रयोग।

मध्वारनालक्षीरदधिघृतसलिलसेकावगाहाश्चसद्योदाहज्वरमपनयन्तिशीतस्पर्शत्वादिति।

अर्थ—शहत, कांजी, दूध, दही, घी और जल इनका स्पर्श शीतल है इनका परिषेक और अवगाह में प्रयोग करने से तत्काळ दाह ज्वर दूर हो जाता है।

दाहज्वर में अन्य उपचार।

भवन्ति चात्र।

पौष्करेषुसुशीतेषुपद्मोत्पलदलेषुच। कह्लाराणाञ्चपत्रेषुक्षौमेषुविमलेषुच। चन्दनोदकशीतेषुसुप्याद्दाहार्दितःसुखम्॥ हिमाम्बुसिक्तेसदनेशीतेधारागृहेऽपिवा। हेमशंखप्रवालानांमणीनांमौक्तिकस्यच॥ चन्दनोदकशीतानांसंस्पर्शानुरसान्स्पृशेत्। स्रग्भिर्नीलोत्पलैःपद्मैर्व्यजनैर्विविधैरपि॥ शीतवातावहैर्व्यज्येच्चन्दनोदकवर्षिभिः। नद्यस्तडागाःपद्मिन्योह्रदाश्चविमलोदकाः॥ अवगाहेहितादाहतृष्णाग्लानिज्वरापहाः। प्रियाःप्रदक्षिणाचाराःप्रमदाश्चन्दनोक्षिता॥ सान्त्वयेयुःपरैःकामैर्मणिमौक्तिकभूषणाः। शीतानिचान्नपानानिशीतान्युपवनानिच॥ वायवःचन्द्रपादाश्चशीतदाहज्वरापहाः।

अर्थ—दाहज्वरसे पीड़ित मनुष्यको उचितहै कि ऐसे ठंडे घरमें जहां शीतल जलोंका छिड़कावहोरहाहो अथवा जहां फव्वारे चलरहेहों शीतलकमल के पत्तों पर अथवा रक्तकमल, नीकमल वा कल्हारके पत्रोंपर वा नरमनरम रेशमीबस्त्रोंपर शयन करै जिनपर शीतल चन्दनोदकभी छिड़करहाहो। सुवर्ण, शंख, मूंगा, मणि, मोती और शीतलचन्दनोदक को अपने देह पर लगाता रहै। नीलकमल और ळाल कमल

की माला धारणकरै। ऐसे पंखों से हवा करावै जिनपर चन्दन का जल छिडक रहाहो और जिनसे ठंडी २ वायु आतीहो। निर्मलजल के नदी, तळाव वा ह्रद में जिन में कमल खिल रहे हैं स्नान करने से दाह तृष्णा, ग्लानि और ज्वर शीघ्र शान्त होते हैं। अत्यन्त प्यारी, चतुर, चन्दन लगी हुई, मणिभूषणादि अलंकारों को धारण करने वाली, नवीन स्त्रियों से आलिंगन करने से भी दाह ज्वर शान्त होजाता है। शीतल अन्नपान, शीतलउपवन, शीतलवायु, शीतल चन्द्रमाकी किरण इनका सेवन करने से भी दाहज्वर शांत होता है।

अथोष्णाभिप्रायिणांज्वरितानांअभ्यङ्गादीनुपक्रमानुपदेक्ष्यामः।

अर्थ—अब हम उन अभ्यंगादि का वर्णन करते हैं जो ऐसे शीतज्वर रोगियों को हितकारी हैं जिनको उष्ण पदार्थ के सेवन की आवश्यकता है।

अगुर्वादि तेल ॥

अगुरुकुष्ठतगरपत्रनलदशैलेयकध्यामकहरेणुकास्थौणेयकक्षेमिकैलावरावराङ्गदलपुरतमालपत्रभूतीकरोहिषसरलसल्लकीदेवदार्वग्निमन्थबिल्वस्योनाककाश्मर्यपाटलापुनर्नवावृश्चीवकण्टकारिकाबृहतीशालिपर्णीपृश्निपर्णीमाषपर्णमुद्गपर्णीगोक्षुरकैरण्डशोभाञ्जनकवरुणार्कचिरिबिल्वतिल्वकशठीपुष्करमूलभाण्डीररोध्रकपत्सुराक्षीराश्मान्तकशिग्रुमातुलुङ्गमूलकमूलपर्णीपीलुपर्णीतिलपर्णीमेषशृङ्गीहिंस्रादन्तशठैरावतकभल्लातकास्फोतकण्डीरात्मजकैषीकाकरञ्जधान्यकाजमोदपृथ्वीकासुमुखसुरसकुठेरककण्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफणिज्झकशृङ्गवेरपिप्पलीसर्षपाश्वगन्धारास्नारुहारोहावचाबलातिबलागुडूचीशतपुष्पाशीतवल्लीनाकुलीगन्धनाकुलीश्वेताज्योतिष्मतीचित्रकाव्यएडाम्लचाङ्गेरीबदरकुलत्थमाषाणामेवंविधानामन्येषांचोष्णवीर्याणांयथालाभमौषधानांकषायङ्कारयेत्तेनकषायेणतेषामेवचकल्केनसुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकदधिमण्डारनालकट्वरप्रतिविनीतेनतैलपात्रंविपाचयेत्। तेनसुखोष्णेनतैलेनोष्णाभिप्रायिणंज्वरितमभ्यञ्ज्यात्। तथाशीतज्वरःप्रशाम्यतितैरेवचौषधैःश्लक्ष्णपिष्टैःसुखोष्णैःप्रदेहंकारयेत्। एतेषामेवचसुखोष्णमुत्काथमवगाहनपरिषेकार्थंप्रयुञ्जीतज्वरप्रशमार्थमिति। इतिशीतज्वरेअगुर्वादितैलम्॥

अर्थ—अगर, कूठ, तगर, तेजपात, खस, शैलेय, ध्यामकतृण, हरेणु, थूनेर, हलदी, इलायची, त्रिफला, प्रियंगु के पत्ते पुर (धूपागर), तमाळपत्र, अजवायन, रोहिषतृण, सरलकाष्ठ, शल्लकी देवदारु, अरनी, वेलगिरीकीछाल, श्यौनाक, खम्भारी, पाटला, पुनर्नवा, वृश्चीर (लालसांठ) छोटीकटेरी, बडीकटेरी, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, गोखरू, अरण्ड, सहजना, वरना, आक, चिरविल्व (एक प्रकार का कञ्जा), लोध, कचूर, पौहकर

मूल, भाण्डीर, रोधू, पतूर, सहजना, अश्मंतक विजौरी, मूळक, मूलपर्णी, पीलुपर्णी, मेंढासिंगी, हिंस्रा, दन्तशठा, ऐरावत, भिलाया आस्फोतक, कण्डीर, आत्मजक, इषीका, कंजा, धनियां, अजमोद, कालाजीरा, सुमुख, सुरस, कुठेरक, कण्डीर, कालमाल, पर्णास, क्षवक, फणिज्झक (ये आठों प्रकार की तुलसी होती है), सोंठ, पीपल, सरसों, असगन्ध, रास्ना, दूवकीजड, वच, बळा, अतिबला, गिळोय, सोंफ, शीतवल्ली, नाकुली, गन्धानाकुळी, श्वेत अपराजिता, मालकांगनी, केंच, अम्लचांगेरी, वेर कुलथी, उरद । इन सबको तथा और भी ऐसेही उष्ण वीर्य द्रव्यों को जो मिल सकें इकट्ठे कर के इनका क्काथ करै ॥ यह कषाय और इन्हीं का कल्क तथा सुरा, सौवीरक, तुषोदक, मैरेय, दमेक, दधिमण्ड, कांजी, और कट्वर, इन सबको इकट्ठे करे और एकपात्र अर्थात् सोलह सेर तेल इकट्ठा करके सबको पकावै । इस सुहाते २ गरम तेल से शीत ज्वर वाले रोगी का अभ्यञ्जन करै । इन्हीं औषधों को महीन पीसकर गरम २ का लेप करने से शीतज्वर शांत होजाता है । इन्हीं का क्काथ करके परिषेक वा अवगाहन करनेसे ज्वर शान्त होजाता है । यह शीत ज्वर में अगुर्वादि तैल है ॥

शीत ज्वरमें अन्य उपचार ।

भवन्तिचात्र ।

त्रयोदशविधःस्वेदःस्वेदाध्यायेनिदर्शितः। मात्राकालविदायुक्तःसचशीतज्वरापहः॥ साकुटीतचशयनंतथावच्छादनंज्वरम् । शीतंप्रशमयन्त्याशुधूपाश्चागुरुजाघनाः। पवित्रचारुगात्राश्चतरुण्योयौवनोष्मणा। आश्लेषाच्छमयन्त्याशुप्रमदाःशिशिरज्वरम् ॥ स्वेदनान्यन्नपानानिवातश्लेष्महराणिच । शीतज्वरंजयन्त्याशुसंसर्गबलयोजनात् ॥

अर्थ—स्वेदाध्याय में जो तेरह प्रकार के स्वेदन वर्णन किये गये हैं उनकी मात्रा और कालका विचार करके प्रयोग करने से शीत नष्ट होजाता है । कुटीप्रावेशिक विधि, शयन तथा अच्छादन भी जो वर्णन किये हैं तथा अगर और कपूर की धूपका प्रयोग करने से शीत ज्वर शान्त होजाता है । सुन्दर मनोहर गात्रवाली तरुणाई में भरपूर प्रमदाओं के गाढ़ आलिंगकरने पर उन के यौवन की गरमई से शीतज्वर शान्त होजाता है । वातकफ नाशक स्वेदन अन्नपानका संसर्गबल के साथ (एकसाथ) प्रयोग करने पर शीतज्वर शान्तहोजाता है ॥

वातजेश्रमजेचैवपुराणेक्षतजेज्वरे । लंघनंनहितंविद्याच्छमनैस्तानुपाचरेत् ॥

अर्थ—वातज, श्रमज, जीर्ण और क्षतज ज्वरों में लंघन हितकारी नहीं होता है, इनकीचिकित्सा संशमन औषधियों द्वाराकरै ।

विक्षिप्यामाशयोष्माणंयस्माद्वत्वारसंन्नृणाम् । ज्वरंकुर्वन्तिदोषास्तुहीयतेऽग्निवलंततः ॥ यथाप्रज्वलितोवन्हिःस्थाल्यामिन्धनवानपि । नपचत्योदनंसम्यगनि

लप्रेरितोबहिः ॥ पक्तिस्थानात्तदादोषै रूष्माक्षिप्तोबहिर्नृणाम् । नपचत्यभ्यव हृतंकृच्छ्रात्पचतिबालघु । अतोऽग्निवल रक्षार्थलंघनादिक्रमोहितः । सप्ताहेनहि पच्यन्तेसर्वधातुगतामलाः ॥ निरामश्चा प्यतःप्रोक्तोज्वरःप्रायोऽष्टमेऽहनि ।

अर्थ—जिस कारणसे दोष रसको प्राप्त होकर आमाशयस्थ उष्मा को स्थान से हटाकर ज्वर को उत्पन्न करते हैं इसी हेतु से अग्निबल क्षीण होजाता है । जैसे जलती हुई ईंधनयुक्त अग्नि हवाके झोके से बाहर निकलकर हांडी के भातको नहीं पका सकती है । तैसेही दोषों से प्रेरित होकर आमाशय से निकली हुई ऊष्मा भोजन को नहीं पचा सकती है अथवा लघु अन्नको भी कठिनतासे पचाती है । इस लिये अग्नि के बळकी रक्षाके निमित्त लंघन कराना हित है । सात दिवस तक लंघन करने से सर्वधातुगत दोष पच जाते हैं । आठवें दिन ज्वर प्रायः निरामय होजाता है ॥

वातज ज्वर में चिकित्साक्रम ।

उदीर्णदोषस्त्वल्पाग्निरश्नन्गुरुविशेषतः॥ मुच्यतेसहसाप्राणैश्चिरंक्लिश्यतिवानरः । एतस्मात्कारणाद्विद्वान्वातिकेऽप्यादितो ज्वरे ॥ नातिगुर्वतिवास्निग्धंभोजयेत्स हसानरम् । ज्वरेमारुतजेत्वादावनपेक्ष्या पिहिक्रमम् ॥ कुर्यान्निरनुबन्धानामभ्यङ्गा दीनुपक्रमान् । पाययित्वाकषायञ्चभो जयेद्रसभोजनम् ॥ जीर्णज्वरहरंकुर्यात् सर्वशश्चाप्युपक्रमम् ।

अर्थ—उदीर्ण दोष और अल्पाग्निवाला पुरुष यदि विशेष करके भारी भोजन करै तो शीघ्र ही मर जाता है या बहुत दिन तक क्लेश पाता है । इसकारण से विद्वान् वैद्य को उचित है कि वातिक ज्वर में भी प्रथमही अत्यन्त भारी वा स्निग्ध भोजन न करावै ।

वातज ज्वर में जो कफ पित्तादि दोषों का अनुवन्धन हो तो प्रथमही लंघनादि क्रम की उपेक्षा करके अभ्यंगादि द्वारा चिकित्सा करैं । क्वाथ का पान करा के मांसरस का भोजन करावै । और जो जीर्ण ज्वर के नाश करने रीति वाली कही गई है वह सब बातज ज्वर में करै ।

कफज ज्वर में चिकित्साक्रम ।

श्लेष्मलानामवातानांज्वरोऽनुष्णेकफाधिकः ॥ परिपाकंनसप्ताहेनापियातिमृदूष्मणाम् । तंक्रमेणयथोक्तेनलंघनाल्पाशनादिना ॥ आदशाहमुपक्रम्यकषायाद्यैरुपाचरेत् ।

अर्थ—कफ प्रकृति और हीन वातवाले पुरुषों का शरीर ठंढा रहता है और उस को कफाधिक ज्वर होता है उनकी जठरा- मन्द होती है इससे ज्वर सात दिन में नहीं पचता है । इस ज्वर में पूर्वोक्त क्रम से दस दिन तक लंघन वा अल्प भोजन द्वारा चिकित्सा कर के क्वाथादि से चिकित्सा करै ।

अन्य ज्वरों में चिकित्साक्रम ।

सामायेयेचकफजाःकफपित्तज्वराश्च ये ॥ लंघनंलंघनीयोक्तंतेषुकार्यंप्रतिमति। वमनैश्चविरेकैश्चवस्तिभिश्चयथाक्रमम् ॥ ज्वरानुपचरेद्धीमानकफपित्तानिलोद्भवान् । संसृष्टान्सन्निपतितानबुद्ध्वातरतमैःसमैः ॥ ज्वरान्दोषक्रमापेक्षीयथोक्तैरौषधैर्जयेत् ।

अर्थ—आमज्वर, कफज्वर तथा कफ पित्त ज्वरों में सम्पूर्ण लंघनीयोक्त लंघनो का दोष के अनुसार प्रयोग करना उचित्त है । बुद्धिमान् वैद्य को उचित है कि कफजज्वर की वमन से पित्तजकी विरेचन से और वातजकी वस्ति प्रयोगसे चिकित्सा करै । द्वन्द्वज और सन्निपातज ज्वर में दोषों की न्यूनता, अधिकता और समानता का विचार कर के यथोक्त औषधियों द्वारा चिकित्सा करै ।

सन्निपातज ज्वर में चिकित्साक्रम ।

वर्द्धनेनैकदोषस्यक्षपणेनोच्छ्रितस्यवा ॥ कफस्थाननुपूर्व्यावासन्निपातज्वरंजयेत्।

अर्थ—सन्निपातज ज्वर में हीन दोष को बढ़ाने से और वृद्धदोषको क्षीण करने से चिकित्सा करै, जब दोष समान होजाय तव प्रथम कफकी फिर पित्तकी और फिर वातकी चिकित्सा करै ।

कर्णमूलकाचिकित्साक्रम ॥

सन्निपातज्वरस्यान्तेकर्णमूलेसुदारुणः॥ शोथःसञ्जायतेतेनकश्चिदेवप्रमुच्यते । रक्तावसेचनैःशीघ्रंसर्पिष्पानैश्चतञ्जयेत्॥ प्रदेहैःकफपित्तघ्नैर्नावनैःकवलग्रहैः ।

अर्थ—सन्निपात के अन्त में कर्णमूल नामक एक दारुण शोथ उत्पन्न होता है इससे कोई २ ही बचता है, इस शोथको फस्त खोलकर, घृतपान कराके, कफ पित्त नाशक प्रदेह, नस्य वा कवलग्रह द्वारा शीघ्रही दूर करने का उपाय करै ॥

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्ज्वरोयस्यनशाम्यति ॥ शाखानुसारीरक्तस्यसोऽवसेकात् प्रशाम्यति । विसर्पणाभिघातेनयश्चविस्फोटकैर्ज्वरः ॥ तत्रादौसर्पिषःपानंकफपित्तोत्तरोनचेत् ।

अर्थ—शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रूक्षादि उपचारों द्वारा जिसका ज्वर शांत न हो तौ यह ज्वर शाखानुसारी होता है यह रक्त मोक्षण से शान्त होता है । जो ज्वर विसर्प, अभिघात, और विस्फोटक द्वारा उत्पन्न होता है उस में प्रथम घृतपान करावै परन्तु इन ज्वरों में कफ पित्त की अधिकता न हो तो ऐसाकरै ।

जीर्णज्वर में चिकित्साक्रम ।

दौर्वल्याद्देहधातूनांज्वरोजीर्णोऽनुवर्त्तते । वल्यैःसबृंहणैस्तस्मादाहारैस्तमुपाचरेत् ।

अर्थ—देह की सम्पूर्ण धातुओं की दुर्बलता से जीर्णज्वर उत्पन्न होता है, अत एव वलकारक और बृंहणकर्त्ता आहारोंके द्वारा इसकी चिकित्सा करै ॥

विषमज्वर में चिकित्साक्रम ।

कर्म्मसाधारणंकुर्य्यात्तृतीयकचतुर्थके ॥ आगन्तुरनुबन्धीहिप्रायशोविषमज्वरे ।

अर्थ—तिजारी और चौथैया ज्वर में साधारण विधि करै, क्योंकि विषमज्वर में प्रायः आगन्तु का अनुवन्ध होता है ॥

वातप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ।

वातप्रधानंसर्पिर्भिर्वस्तिभिःसानुवासनैः॥ स्निग्धोष्णैरनुपानैश्चशमयेद्विषमज्वरम् ।

अर्थ—वात प्रधान विषमज्वर को घृत तथा अनुवासनादि वास्तिकर्म द्वारा शमन करै और भोजन करके स्निग्ध और उष्ण अनुपानका सेवन करै ॥

पित्तप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ।

विरेचनेनपयसासर्पिषासंस्कृतेनच ॥ विषमन्तिक्तशीतैश्चज्वरंपित्तोत्तरंजयेत् ।

अर्थ—पित्त प्रधान विषमज्वरकी चिकित्सा विरेचन और दूध से संस्कार किये-हुए घृत और तिक्त शीतकषायों द्वारा करै ॥

कफप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ।

वमनंपाचनंरूक्षमनुपानंविलंघनम् ॥ कषायोष्णश्चविषमेज्वरेशस्तंकफोत्तरे।

अर्थ—कफ प्रधान विषमज्वर में वमन पाचन, रूक्ष अनुपान, लंघन, क्काथ और उष्णक्रिया द्वारा चिकित्सा करै ॥

विषमज्वरनाशक अन्ययोग ॥

योगाःपराःप्रवक्ष्यन्तेविषमज्वरनाशनाः॥ प्रयोक्तव्यामतिमतादोषादीन्प्रविभज्यये सुरासमण्डपानार्थेभक्ष्यार्थेचरणायुधाः तित्तिरिश्चमयूरश्चप्रयोज्योविषमज्वरे । पिवेद्वाषट्पलंसर्पिरभयांवाप्रयोजतेत् । त्रिफलायाःकषायंवागुडूच्यारसमेववा । नीलिनीमजगन्धाञ्चत्रिवृतांकटुरोहिणीम् ॥ पिवेत्ज्वरागमेयुक्त्यास्नेहस्वेदोपपादितः । सर्पिषोमहतींमात्रांपीत्वावाछर्दयेत्पुनः ॥ उपयुज्यान्नपानंवाबभूतंपुनरुल्लिखेत् । सान्नमद्यंप्रभूतंवापीत्वास्वप्याज्ज्वरागमे ॥ आस्थापनंयापनंवाकारयेद्विषमज्वरे । पयसावृषदंशस्य शकृद्वातदहःपिवेत् ॥ वृषस्यदधिमण्डेन सुरयावाससैन्धवम् ॥ पिप्पल्याःत्रिफलायाश्चदध्नस्तक्रस्यसर्पिषः ॥ पञ्चगव्यस्यपयसःप्रयोगेविषमज्वरे ।

अर्थ—अव हम विषमज्वरनाशक कुछ उत्कृष्ट प्रयोगों का वर्णन करते हैं, बुद्धिमान को उचित है कि इन योगों का प्रयोग दोषों की विवेचना करके करै ॥

विषमज्वर में पीने के लिये सुरा और सुरामण्ड, खाने के लिये मुर्गा, तीतर और मोरका मांस देवै । अथवा षट्पल घृत, हरड, त्रिफलाका क्काथ और गिलोय कारस देवै। अथवा रोगी का स्नेहन और स्वेदन कर्म करके ज्वरके आगम में नीलिनी, अजगन्धा, निसोथ और कुटकी इनका पान करावे । अथवा घी की वडी मात्रा को पीकर वमन करदे । अथवा बहुतसा अन्नपान कराके बमन करादे । अथवा ज्वर के आगम में अन्न और वहुता मद्यपान कराके शयन करादेवै और जो नींद न आवै तौ आस्थापनादि वस्तिका प्रयोग करै अथवा जिस दिन ज्वर आवै उस दिन दूध के साथ बिल्लीका विष्टा पान करावे ।

अथवा बैलका गोबर सेंधेनमक में मिलाकर दधिमण्ड वा मद्य के साथ पान करै। अथवा पीपल, त्रिफला, दही, मठा, घी, पंचगव्य और दूधका प्रयोग करना चाहिये।

विषमज्वर में अन्य प्रयोग।

लशुनस्यसतैलस्यप्राग्भक्तमुपसेवनम् ॥ मेध्यानामुष्णवीर्य्याणामामिषाणाञ्चभक्षणम् हिंगुतुल्यानुवैयाघ्रीवसानस्यंससैन्धवाः ॥ पुराणसर्पिःसिंहस्यवसातद्वत्ससैन्धवा।सैन्धवंपिप्पलीनाञ्चतण्डुलाःसमनःशिलाः। नेत्राञ्जनंतैलपिष्टंशस्यतेविषमज्वरे पलंकषानिम्बपत्रंवचाकुष्ठंहरीतकी। सर्षपाःसयवाःसर्पिर्धूपनंज्वरनाशनम् ॥ ये धूमाधूपनंयच्चनावनञ्चाञ्जनञ्चयत्। मनोविकारेव्याख्यातंकार्य्यंतद्विषमज्वरे ॥

अर्थ—विषम ज्वर में भोजन करने से पहिले लहसन का रस और तेल पीवै पीछे मेध्य और उष्णवीर्य मांसका भक्षण करै। अथवा हींग और व्याघ्रवसा इन के समान भागलेकर थोड़ा सा सेंधानमक मिलाकर नस्य लेवै। अथवा पुराना घी, सिंह की चर्वी और सेंधानमक इनकी नस्य लेवै। अथवा सेंधानमक, पीपल के बीज, मनसिल इनको तेल में पीसकर अंजन लगावै तौ विषम ज्वर जाता रहता है है। अथवा गूगल, नीम के पत्ते, वच, कूठ, हरड, सरसों जौ और घी इनकी धूप देने से ज्वर नष्ट होजाता है। मनोविकार अर्थात् उन्माद रोग में जो जो धूम, धूप, नस्य और अञ्जन वर्णन किये हैं वे भी सब विषम ज्वर में करने चाहियें।

विषमज्वर में दैवव्याश्रय प्रयोग।

मणीनामौषधीनाञ्चमङ्गल्यानांविषस्यच धारणादगदानाञ्चसेवनान्नभवेत्ज्वरः। सोमंसानुचरंदेवंसमातृगणमीश्वरम्। पूजयन्प्रयतःशीघ्रमुच्यतेविषमज्वरात्। विष्णुंसहस्रमूर्द्धानंचराचरपतिंविभुम्। स्तुवन्नामसहस्रेणज्वरान्सर्वानपोहति॥ ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रंहुतभक्षंहिमाचलम्। गङ्गामरुद्गणांश्चेष्टान्पूजयन्जयतिज्वरान्॥ भक्त्यामातापित्रोश्चगुरूणांपूजनेनच ब्रह्मचर्य्येणतपसासत्येननियमेनच ॥ जपहोमप्रदानेनवेदानांश्रवणेनच ॥ ज्वराद्विमुच्यतेशीघ्रंसाधूनांदर्शनेनच ॥

अर्थ—मणि, औषध, मंगलद्रव्य, विष और अगदके धारण करने से ज्वर नहीं आता है। शान्तभाव में स्थित अनुचर और मातृगणों से युक्त शिवका पूजन करने से विषम ज्वर शीघ्र दूर होजाता है। सहस्र मूर्द्धा, चराचर के स्वामी, सर्वव्यापक विष्णु के सहस्रनामका पाठ करने से सबप्रकार के ज्वर दूर होजाते हैं। ब्रह्मा, अश्विनी कुमार, इन्द्र, अग्नि, हिमाचळ, गंगा, भद्रगण तथा अन्य इष्ट देवताओं का पूजन करने से सब प्रकार के ज्वर दूर होजाते हैं। माता पिता में भक्ति करने से, गुरु जनों का पूजन करने से, ब्रह्मचर्य ब्रत धारण से, तपस्यासे, सत्य से, नियम से जप होम दान से, वेदों के श्रवण से और

साधु महात्माओं के दर्शनों से ज्वर शीघ्रही जाता रहता है ।

भिन्न भिन्न धातुस्थ ज्वरों की चिकित्सा ।

ज्वरेरसस्थेवमनंउपवासञ्चकारयेत् । सेकप्रदेहौरक्तस्थेतथासंशमनानिच ॥ विरेचनंसोपवासंमांसमेदःस्थितेहितम् । अस्थिमज्जगतेदेयानिरूहाःसानुवासनाः

अर्थ—जो ज्वर रस में स्थित हो तौ वमन और उपवास करावे । रक्तस्थ हो तौ परिषेक, प्रदेह और शंसमन चिकित्सा करै, ज्वर के मांस और मदो में स्थित होने पर विरेचन और उपवास हित है । ज्वर के अस्थि और मज्जा में स्थित होने पर निरूहण और अनुवासन वास्ति देवै ।

अभिचारादि जन्य ज्वर में चिकित्सा ।

शापाभिचारात्भूतानामभिषङ्गाच्चयो ज्वरः । दैवव्यपाश्रयंतत्रसर्वमौषधमिष्य ते ॥ अभिघातज्वरोनश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः । रक्तावसेकैर्मद्यैश्चसात्म्यैर्मांस रसोदनैः ॥ सानाहोमद्यसात्म्यानांमदि-रारसभोजनैः । क्षतानांव्रणितानाञ्च क्षतव्रणचिकित्सया ॥

अर्थ—शाप, अभिचार और भूतभिषाग से जो ज्वर उत्पन्न होता है वह दैवयुक्त व्यपाश्रय औषधियों से दूर होजाता है । अभिघातजज्वर घृतमान और घृताभ्यंग, रक्तावसेक (फस्त), मद्य और सात्म्य मांस रस और चांवल का भोजन इन से शान्त होता है । मद्यत्सात्म्य वालों का आनाहयुक्त ज्वर मद्यपान और मांसरस के भोजन से दूर होता है । क्षतरोगी और वृणरोगियों काज्वर उन औषधों से शान्तहोता है जो क्षत और व्रणकी चिकित्सा में वर्णन की गई हैं ।

कामादि ज्वर चिकित्सा ।

आश्वासेनेष्टलाभेनवायोःप्रशमनेनच । हर्षणैश्चशमंयान्तिकामशोकभयज्वराः॥

अर्थ—कामज, शोकज और भयजज्वर आश्वासन (संतोषदायक वचन), इष्ट लाभ वायुशमन और हर्षोत्पादक कर्मों से दूर होजाते हैं ।

क्रोधजज्वरकी चिकित्सा ॥

काम्यैरर्थैर्मनोज्ञैश्चपित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः। सद्वाक्यैःशाम्यतिक्षिप्रज्वरःक्रोधसमुत्थितः ॥

अर्थ—क्रोधजन्यज्वर काम्य और मनोज्ञ विषयों तथा पितघ्न चिकित्सा और सद्वाक्यों से शान्त होता है ॥

क्रोधादि ज्वर में अन्योन्यक्रम ॥

कामात्क्रोधज्वरोनाशंक्रोधात्कामसमुद्भवः । यातिताभ्यामुभाभ्याञ्चभयशोकसमुत्थितः ॥

अर्थ—काम से क्रोधज्वर और क्रोध से काम ज्वर दूर होजाता है, एवं काम और क्रोध दोनों की उत्पत्ति से भय और शोक से उत्पन्न हुआ ज्वर जाता रहता है।

स्मृतिज्वरकी चिकित्सा ॥

ज्वरकालश्चवेगञ्चाचिन्तयन्ज्वर्यतेतुयः। तस्येष्टैस्तुविचित्रैश्चविषयैर्नाशयेत्स्मृतिम्

अर्थ—जिसको ज्वर के आने के समय ज्वरके वेगका ध्यान बन्धा रहता है उसको ज्वर आजाता है उसका उपाय यही है कि अनेक प्रकार के अद्भुत २ विषयों में उसका चित्त खींचकर ज्वरकी ओर से हटादेवै ॥

कुसमयज्वरमुक्ति के लक्षण ।

ज्वरप्रमोक्षेपुरुषःकूजन्वमतिचेष्टते । श्वसन्विवर्णःस्विन्नाङ्गोवेपतेलीयतेमुहुः ॥ प्रलपत्युष्णसर्वाङ्गःशीतांगश्चभवत्यपि । विसंज्ञोज्वरवेगार्त्तःसक्रोधइववीक्ष्यते ॥ सदोषशब्दश्चशकृद्द्रवंस्रवतिवेगवत् । लिङ्गान्येतानिजानीयात्ज्वरमोक्षेविचक्षणः ॥

अर्थ—ज्वर के दूर होने के समय पुरुष के कण्ठ में गूंजने कासा शब्द होता है वमनसी होती है तथा हाथ पांव चलने लगते हैं । श्वास वेगसे आता है, देहकारंग बदलजाता है, पसीने आते हैं, देह में कम्पन तथा सुस्ती होती है, वकरकरने लगता है, सम्पूर्ण देह गरम रहता है कभी कभी ठंडा भी होजाता है, वेचेत रहताहै, ज्वरके वेग से क्रोधी की तरह देखने लगता है । अत्यन्त वेग से दोष शब्द से युक्त पतळा दस्त निकलजाता है, ये सब लक्षण ज्वरके हटने के समय होते हैं ॥

वहुदोषस्यवलवान्प्रायेणाभिनवोज्वरः। सत्क्रियादोषपक्त्याचेद्विमुञ्चतिसुदारुणम् ॥ कृत्वादोषवशाद्वेगंक्रमाद्युपरमन्ति ये । तेषामदारुणोमोक्षोज्वरिणांचिरकारिणाम् ॥

अर्थ—वहुत दोष युक्त मनुष्यका प्रायः वळवान और नवीन ज्वर शीघ्रकारी चिकित्सा से कुसमय दोषों के पचने के कारण से ऊपर कहेहुए दारुण लक्षणों के साथ हटता है । दोषों के कारण वेग को प्राप्त होकर भी जो ज्वर धीरेधीरे हटते हैं उन चिरकारी ज्वरोंके हटने के समय ऐसे दारुण लक्षण नहीं होते हैं ।

ज्वरमुक्तव्यक्ति के लक्षण ॥

विगतक्लमसन्तापमव्यथंविमलेन्द्रियम् । युक्तंप्रकृतिसत्त्वेनविद्यात्पुरुषमज्वरम् ॥

अर्थ—जिसका ज्वर शान्त होजाता है उसकी क्लान्ति, सन्ताप और व्यथा सव दूर होजाती हैं इन्द्रियां निर्मल होजाती हैं और उसका सत्व भी पूर्ववत् होजाता है ।

ज्वर में अकर्तव्यकर्म ॥

सज्वरोज्वरमुक्तश्चविदाहीनिगुरूणिच । असात्म्यान्यन्नपानानिविरुद्धानिविवर्जयेत् ॥ व्यवायमतिचेष्टाश्चस्थानशय्यासनानिच । तथाज्वरःशमंयातिप्रशान्तोजायतेनच ॥

अर्थ—चाहै ज्वर चलागया हो चाहै न गयाहो मनुष्य को उचित है कि विदाही भारी, असात्म्य और विरुद्ध अन्नपानका सेवन त्याग देवै, मैथुन, अत्यन्त डोलना फिरना, अत्यन्त बैठे रहना, खडे रहना इत्यादि को भी त्याग दे । ऐसा करने से

ज्वर शान्त होजाता है और शान्त होने पर फिर उत्पन्न नहीं होता है ॥

ज्वर के हटने पर अकर्त्तव्यकर्म ॥

व्यायामञ्चव्यवायञ्चस्नानंचंक्रमणानि च । ज्वरमुक्तोनसेवेतयावन्नवलवान्भवेत् ॥ असञ्जातबलोयस्तुज्वरमुक्तोनिषेवते । वर्ज्यमेतन्नवस्तस्यपुनरावर्त्तते ज्वरः ॥ दुर्हृतेषुचदोषेषुयस्यवाविनिवर्त्तते । स्वल्पेनाप्यपचारेणतस्यव्यावर्त्ततेपुनः ॥

अर्थ—ज्वर के दूर होजानेपर जबतक देह में वल न आवै तबतक व्यायाम, व्यवाय, स्नान चक्रमणनकरै । ज्वरमुक्त पुरुष विना बल उत्पन्न हुए जो इन वर्जित कर्मों को करता है, उसको ज्वर फिर आ जाता है । जो ज्वर दोषों के बुरी रीति से निकाले जाने पर शान्त होजाता है वह थोडे से व्यतिक्रम सेही फिर आजाता है ।

पुनरागतज्वर के कर्म ॥

चिरकालपरिक्लिष्टंदुर्बलंदीनचेतसम् । अचिरेणैवकालेनसहन्तिपुनरागतः ॥ अथवापिपरीपाकंधातुष्वेवक्रमान्मलाः । यान्तिज्वरमकुर्वन्तःतेतथाप्यपकुर्वते ॥ दीनतांश्वयथुंग्लानिंपाण्डुतांनान्नकामताम् । कण्डूरुत्कोठपिडकाःकुर्वन्त्यग्निञ्चतेमृदुम् ॥ एवमन्येऽपिगदाव्यावर्त्तन्तेपुनर्गताः । अनिर्घातेनदोषाणामल्पैरप्यहितैर्नृणाम् ॥ निवृत्तेऽपिज्वरेतस्माद्यथावस्थंयथावलम् । यथाप्राणंहरेद्दोषंप्रयोगैर्वाशमन्नयेत् ॥ मृदुभिःशोधनैःशुद्धिर्यापनावस्तयोहिताः । हिताश्चलघवोयूषा जांगलामिषजारसाः ॥

अर्थ—फिर आयाहुआ ज्वर पाहिले ज्वर से बहुतकाल पर्य्यंत क्लिष्ट, दुर्बल, दीन पुरुष को अल्पकालही में मारडालता है अथवा दोष ज्वर को विना उत्पन्न कियेही क्रम से धातुओं को क्षीण करके परिपक्व होजाते हैं और नीचे लिखेहुए उपद्रवों को करते हैं, तथा दीनता, सूजन ग्लानि, पाण्डुता, अन्न में अरुचि, कण्डू उत्कोठ,पिडका, और मन्दाग्नि करतेहैं इसी तरह और भी बहुत से रोग जो निःशेष दूरहोनेपर थोडे सेही अहित आहार विहारसे फिर उत्पन्न होआते हैं, अतएव ज्वर के निवृत होने परभी रोगी की अवस्था, बल और पराक्रम के अनुसार मृदुसंशोधन द्वारा दोषों को निकालै और संशमन द्वारा शान्त करै । यहां यापनवास्ति, लघुयूष तथा जांगल जीवों के मांसरसहितहैं ।

पुनरागत ज्वर में चिकित्सा ॥

अभ्यङ्गोद्वर्तनस्नानंधूपनाभ्यञ्जनानिच। हितानिपुनरावृत्तेज्वरेतिक्तघृतानिच ॥ गुर्वभिष्यन्दसात्म्यानांभोजनात्पुनरागते । लंघनोष्णोपचारादिःक्रमःकार्य्यश्चपूर्ववत्॥किराततिक्तंतिक्तामुस्तंपटोलोऽमृता।घ्नन्तिपीतानिचाभ्यासात्पुनरावर्तकंज्वरम् ॥ तस्यांतस्यामवस्थायांज्वरितानांविचक्षणः । ज्वरक्रियाक्रमापेक्षीकुर्यात्तत्रचिकित्सितम् ॥

अर्थ—पुनरागत ज्वर में अभ्यंग, उद्व-

र्तन, स्नान, धूपन, अभ्यञ्जन और तिक्त औषधियों से सिद्ध कियाहुआ घृत अच्छा होता है ॥

जो ज्वर भारी, अभिष्यन्दी और असात्म्य भोजनसे फिर उत्पन्न होआया है उस में पहिले की तरह लंघनादि क्रम से चिकित्सा करै ॥

चिरायता, कुटकी, मोथा, पितपापडा गिलोय इनका क्वाथ पीने से पुनरागत ज्वर शांत होजाता है ॥

पुनरागत ज्वरकी भिन्न२ अवस्थाओं में पूर्ववत् ज्वरकी क्रियाओं के क्रम से चिकित्सा करना उचित है ॥

अध्यायकाउपसंहार ॥

रोगराट्सर्वभूतानामन्तकृद्दारुणोज्वरः । तस्माद्विशेषतस्तस्ययतेतप्रशमंभिषक् ।

अर्थ—यह ज्वर रोगों का राजा, सम्पूर्ण प्राणियों का नाशकर्त्ता और दारुण है, अतएव विशेष ध्यान पूर्वक इसकी चिकित्सा करना उचित है ।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

भवतिचात्र ॥

यथाक्रमंयथाप्रश्नमुक्तंज्वरचिकित्सितम् । अत्रिजेनाग्निवेशायभूतेभ्योहितमिच्छता

अर्थ—अत्रि नन्दन भगवान् पुनर्वसुने प्राणियों की हितकी इच्छा के निमित्त अग्निवेश के प्रश्ण के अनुसार क्रम से ज्वर की चिकित्सा वर्णन की है ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विराचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने ज्वरचिकित्सितं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातोरक्तपित्तचिकित्सितंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम रक्तपित चिकित्सित अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

विहरन्तंजितात्मानंपञ्चगङ्गेपुनर्वसुम् । प्रणम्योवाचनिर्मोहमग्निवेशोऽग्निवर्चसम् भगवन् ! रक्तपित्तस्यहेतुरुक्तःसलक्षणः वक्तव्यंयत्परंतस्यवक्तुमर्हसितद्गुरो ।

अर्थ—जितात्मा, अग्निवत् तेजस्वी और निर्मोह पुनर्वसु एक दिन पञ्चगंगा नामक स्थानपर विचर रहे थे उस समय अग्निवेशने नमस्कार कर के पूछा कि हे भगवन् । आपने रक्तपित्त के हेतु और लक्षण तो निदानस्थान में वर्णन कर दिये थे अव इस के विषय में जो कुछ अधिक वक्तव्य विषय होय उसे मेरे साम्हने कहिये ।

गुरुरुवाच ।

महागदंमहावीर्यमग्निवत्शीघ्रकारिच ॥ हेतुलक्षणविच्छीघ्रंरक्तपित्तमुपाचरेत् । तस्योष्णंतीक्ष्णमम्लञ्चकटूनिलवणानि च ॥ घर्मश्चान्नविदाहश्चहेतुःपूर्वन्निदर्शितः । तैर्हेतुभिःसमुद्दिष्टंपित्तंरक्तंप्रपद्य

ते । तद्योनित्वात्प्रपन्नञ्चवर्द्धतेतत्
प्रदूषयेत् ॥

अर्थ—यह रक्तपित्त बड़ा भारी रोग है यह महावीर्य और अग्नि के समान शीघ्र कारी है। इसके हेतु और लक्षण जानने वाले को उचित है कि इस का शीघ्रही उपाय करै।

उष्ण, तीक्षण, अम्ल, कटु और लवण द्रव्य, धूप में फिरना और अन्नका अपरिपक्व होकर विदाह उत्पन्न करना ये हेतु रक्तपित्त के पहिले दिखाये गये हैं। इन हेतुओं से उत्तेजित होकर पित्त रक्त से मिलजाता है। पित्तरक्त सेही उत्पन्न होता है, अतएव पितसे मिलकर बढ़ने लगता है और बढ़कर रक्तको दूषित कर देता है।

रक्तपित की निरुक्ति।

तस्योष्मणाद्रवोधातुर्धातोर्धातोः
प्रसिच्यते। स्विद्यतस्तेनसंवृद्धिंभूयस्तद
धिगच्छति ॥ संयोगाद्दूषणात्तत्तुसा
मान्याद्गन्धवर्णयोः। रक्तस्यपित्तमाख्या
तंरक्तपित्तंमनीषिभिः ॥

अर्थ—पित्तकी ऊष्मा से प्रत्येक धातु स्विन्नहोकर द्रवीभूत होती हुई पित्तसे मिलती है और इस मेळ से पित्त बढता चलाजाता है। पित्त के संयोग से रक्त दूषित होजाता है क्योंकि उनका गंध और वर्ण समान होता है अतएव बुद्धिमान् लोग रक्तपित्तके इस दूषित संयोगको **रक्तपित्त** कहते हैं।

रक्तपित का अधिष्ठान।

प्लीहानाञ्चयकृच्चैवतदधिष्ठायवर्त्तते ।
स्रोतांसिरक्तवाहानितन्मूलानिहिदेहि
नाम् ॥

अर्थ—तिल्ली और यकृत ये दोनों रक्त पित्त के स्थान हैं, क्यों कि रक्तवाही स्रोतों के मूल ये ही हैं।

कफ मिश्रित रक्तपित के लक्षण।

सान्द्रंसपाण्डुसस्नेहंपिच्छिलंचकफान्वि
तम् ॥

अर्थ—गाढा, कुछ २ पाण्डुता लिये चिकना और गिळगिला **कफ मिश्रित रक्त पित** होता है।

वातिक रक्त पित के लक्षण।

श्यावारुणंसफेनञ्चतनुरूक्षञ्चवाति
कम् ॥

अर्थ---कुछ काला, कुछ लाल, झागदार, पतला और रूखा **वात मिश्रित रक्तपित** होता है।

पैतिक रक्तपितके लक्षण।

रक्तपित्तंकषायाभंकृष्णंगोमूत्रसन्निभम् ।
मेचकागारधूमाभंअञ्जनाभञ्चपैत्तिकम् ॥

अर्थ---जो रक्तपित्त क्वाथ के रंग के सदृश, कृष्ण वर्ण, और गौ के मूत्र के समान होता है अथवा मोर की चन्द्रिका के समान नील वर्ण, घरके धूंए के से रंग का अथवा सुरमे के सदृश है उसे **पैतिक रक्तपित** समझो ॥

संसृष्टरक्त पितके लक्षण।

संसृष्टलिङ्गंसंसर्गात्त्रिलिङ्गंसान्निपाति
कम्।

अर्थ—दो दो दोषों से युक्त रक्तपित्त में दो दो दोषों के मिश्रित लक्षण होते हैं और जिस में तीनों दोषों के चिन्ह पाये जाते हैं उसे सान्निपातिक कहते हैं।

दोषभेद से साध्यासाध्यलक्षण॥

एकदोषानुगंसाध्यंद्विदोषंयाप्यमुच्यते॥ यत्त्रिदोषजमसाध्यंतन्मन्दाग्नेरतिवेगवत्। व्याधिभिःक्षीणदेहस्यवृद्धस्यानशनतश्चयत्॥

अर्थ—जो रक्त पित एक दोष से उत्पन्न होता है वह साध्य है, दो दोष से होनेवाळा याप्य है, जो तीनों दोष से उत्पन्न होता है वह असाध्य है। इसी तरह जिनकी अग्नि अत्यन्त मन्दी पडगई हो जिनकी देह रोगोंसे क्षीण होगईहो, जो बुड्ढा हो और जिसका आहार थकगयाहो ऐसे मनुष्यों का रक्त पित्त भी असाध्य होता है।

ऊर्ध्वाधःमार्गद्वारा साध्यासाध्य विचार॥

गतिरूर्द्धमधश्चैवरक्तपित्तस्यदर्शिता। ऊर्ध्वासप्तविधाद्वाराद्द्विद्वारात्वधरागतिः॥ सप्तच्छिद्राणिशिरसिद्वेचाधःसाध्यमूर्ध्वगम्। याप्यन्त्वधोगमंमार्गौद्वावसाध्यंप्रपद्यते॥

अर्थ—रक्त पित्त की ऊर्ध्व और अधोगति ये दो पहिले वर्णन करचुके हैं। रक्त पित्त के सातद्वार हैं, यथा दो आंख, दो नाक, दोकान और एक मुख। नीचे के दो द्वार हैं मलद्वार और मूत्रद्वार ऊर्ध्वगामी रक्त पित्त साध्य है, अधोगामी याप्य है और उभयमार्गगामी असाध्य होता है॥

यदातुसर्वच्छिद्रेभ्योरोमकूपेभ्यएवच। वर्ततेतामसंख्येयांगतिंतस्याहुरन्तिकीम्॥

अर्थ—जब रक्त सम्पूर्णछिद्रों रोम कूपों द्वारा निकलता है तब रक्त पित की असंख्येयागति को अन्तिकी कहते हैं।

असाध्य रक्तपित्त के लक्षण।

यच्चोभयाभ्यांमार्गाभ्यामतिमात्रंप्रवर्तते। तुल्यंकुणपगन्धेनरक्तंकृष्णमतीवच॥ संसृष्टंकफवाताभ्यांकण्ठेसज्जतिचापियत्। यच्चाप्युपद्रवैःसर्वैर्यथोक्तैःसमभिद्रुतम्॥ हारिद्रनीलहरितताम्रैर्वर्णैरुपद्रुतम् क्षीणस्यकासमानस्ययच्चयच्चनसिध्यति॥

अर्थ—जो रक्त ऊर्ध्व और अधः दोनों मार्गों से अतिशय करके निकळता है, जिस में सडीहुई गन्ध आती हो, अत्यन्त काला रुधिर निकलता हो, जो कफ वात दोनों दोषों से युक्तहो, और जो कण्ठ में अत्यन्त रुकता हो, जो सम्पूर्ण ऊपर कहेहुए उपद्रवों से युक्त हो, जो हलदी के सदृश पीला, नीला, हरित और ताम्रवर्ण से उपद्रुत हो वह असाध्य होता है। कास युक्त क्षीणरोगी का रक्तपित्तभी असाध्य होता है॥

याप्यरक्तपित्तकेलक्षण।

यद्द्विदोषानुगंयद्वाशान्तंशान्तंप्रकुप्यति। मार्गंमार्गेञ्चरेद्यद्वायाप्यंपित्तंअसृक्चतत्

अर्थ—जो द्विदोषाश्रित रक्तपित्त रुकरुक

कर कुपित होता है अथवा एक मार्ग को छोड़ कर दूसरे मार्ग से निकलने लगता है उसे याप्य कहते हैं ।

साध्य होने के कारण ।

एकमार्गंबलवतोनातिवेगंनबोत्थितम् । रक्तपित्तंसुखेकालेसाध्यंस्यान्निरुपद्रवम्॥

अर्थ---जो रक्तपित्त बलवान् पुरुष के एक मार्ग गामी होता है, जो अत्यन्त वेगवान् नहीं होता है और जो हाल में ही उत्पन्न हुआ है और जो हेमन्तादि सुखदायक समय में उत्पन्न हुआ है वह साध्य होता है।

रक्तपित के कारण ।

स्निग्धोष्णमुष्णरूक्षञ्चरक्तपित्तस्यकारणम् । अधोगस्योत्तरंप्रायःपूर्वस्यादूर्ध्वगस्य तु ॥ ऊर्ध्वगंकफसंसृष्टमधोगंमारुतानुगम् द्विमार्गंकफवाताभ्यांउभाभ्यामनुवध्यते॥

अर्थ--स्निग्धोष्ण और उष्णरूक्ष ये रक्त पित्त के कारण हैं, प्रायः अधोगामी रक्त पित्तका का कारण उष्णरूक्ष है और ऊर्ध्वगामी का स्निग्धोष्ण है ॥ ऊर्ध्वगरक्त पित्त कफ संसृष्ट होता है, अधोगामी बायुसंसृष्ट और उभयमार्गगामी कफ-बात संसृष्ट होता है । यहां यह बात जाननी चाहिये कि जब ऊर्ध्वगामी रक्त पित्त कफ संसृष्ट होता है तौ पित्त उष्ण है कफ स्निग्ध है अतएव ऊर्ध्वगामी रक्त पित्त कफबात कारक अर्थात् स्निग्ध और उष्ण द्रव्यों के सेवन से अत्यन्त बढता है इसी तरह बायुरूक्ष होती है और पित्त उष्ण होता है इसलिये आधोगामी रक्त पित्त बातपित गुण विशिष्ट रूक्षोष्ण द्रव्यों के सेवन से कुपित होता है ॥

स्तम्भन के अयोगरक्तपित्त ॥

अक्षीणबलमांसस्यरक्तपित्तंयदश्नतः । तद्दोषदुष्टमुत्क्लिष्टंनादौस्तम्भनमर्हति ॥

अर्थ—जिस पुरुष का वल और मांस क्षीण न हुआ हो और आहार भी न था का हो उसको दोषों से दूषित और उदीर्ण रक्त पित्त को प्रथमही रोकना उचित नहीं है ॥

रक्त पित्तको स्तम्भित करने के उपद्रव ॥

गलग्रहंपूतिनस्यंमूर्च्छायमरुचिंज्वरम् । गुल्मंप्लीहानमानाहंकिलासंकृच्छ्रमूत्रतां॥ कुष्ठान्यर्शांसिवीसर्पंवर्णनाशंभगन्दरम् । वुद्धीन्द्रियोपरोधञ्चकुर्यात्स्तम्भितमादितः ॥

अर्थ—रक्त पित्त को यदि प्रथमही से रोका जायगा तो इतने उपद्रव उत्पन्न होंगे, यथा—गलग्रह, पूतिनस्य, मूर्च्छा, अरुचि, ज्वर, गुल्म, प्लीहा, आनाह, किलास, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, अर्श, विसर्प, वर्णनाश भगन्दर बुद्धिनाश और इंन्द्रियोपरोध।

तस्मादुपेक्ष्यंवलिनंवलदोषविचारिणा । रक्तपित्तंप्रथमतःप्रवृद्धंसिद्धिमिच्छता ॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए हेतुओं से उस बुद्धिमान् वैद्य को उचित है जोकि रक्त पित्त को अच्छा किया चाहता है कि वल और दोष का विचार करके वलवान् म-

नुष्य के वढेहुए रक्तपित्त की भी प्रथम उपेक्षा करै ॥

रक्तपित में प्रथम कर्त्तव्य कर्म ॥

प्रायेणहिसमुत्क्लिष्टमामदोषाच्छरीरिणाम् । वृद्धिंप्रयातिपित्तासृक्तस्माल्लंघनमादितः ॥ मार्गंदोषानुबद्धञ्चनिदानंप्रसमीक्ष्यच । लंघनंरक्तपित्तादौतर्पणं वाप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—प्रायःमनुष्यों को उदीर्ण रक्त पित्त आम दोष से वढता है अतएव प्रथम लंघन कराना आवश्यकीय है । रक्त पित्त का मार्ग, दोषानुबन्ध (कौनसा दोष उस के साथ है) और निदान को देखकर रक्तपित्त में प्रथम लंघन वा तर्पण देवै ॥

रक्तपित्त में तृषानाशक औषध ॥

ह्रीवेरंचन्दनोशीरमुस्तपर्पटकैःशृतम् । केवलंशृतशीतंवादद्यात्तोयंपिपासवे ॥

अर्थ—रक्तपित्त में जो तृषा की अधिकता हो तौ नेत्रवाला, चन्दन, खस मोथा, पितपापडा, इनको डालकर जळ औटाले और फिर ठण्डा करके थोडा २ रोगी को पान कराता रहै ।

तर्पण और पेया की विधि ॥

ऊर्ध्वगेतर्पणंपूर्वंपेयांपूर्वमधोगतम् । कालसात्म्यानुबन्धज्ञोदद्यात्प्रकृतिकल्पवित् ।

अर्थ—काल, सात्म्य, अनुवन्ध, प्रकृति और कल्पना का जाननेवाला वैद्य ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त में प्रथम तर्पण देवै और अधोगामी रक्तपित्त में प्रथम पेया पान करावै।

तर्पण प्रयोग ।

जलंखर्जूरमृद्वीकामधूकैःसपरूषकैः । शृतशीतंप्रयोक्तव्यंतर्पणार्थेसशर्करम् ॥ तर्पणंसघृतक्षौद्रंलाजाचूर्णैःप्रयोजयेत् ।

अर्थ—खिजूर, दाख, महुआ और फालसे इनको जल के साथ औटाकर छान ले और ठण्डा होनेपर मिश्री डालकर पान करावै । अथवा घी और शहत मिलाकर खीलों के चूर्ण का तर्पण देवै ।

उक्ततर्पणोकेगुण ।

ऊर्ध्वगंरक्तपित्तंतत्शीतंकालेव्यपोहति । मन्दाग्नेरम्लसात्म्याययत्साम्लमपिकल्पयेत् ॥ दाडिमामलकैर्विद्यादम्लार्थश्चानुदापयेत् ॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए दोनों प्रयोग उचितकाल में पान कराने से ऊर्ध्वगामी रक्तपित को दूर कर देते हैं मन्दाग्नि वाले तथा जिसको खटाई की माफकत है उसे नीचे लिखी हुई खटाई मिलाकर देवै । अनारकी खटाई वा आमलेकी खटाई इसमें हितकारी होती है ॥

अन्यप्रयोग ।

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रशातिकाः ॥ श्यामाकश्चप्रियंगुश्चभोजनंरक्तपित्तिनाम् ।

अर्थ—शालीचांवल, साठीचांवल, नीवार कोदों, प्रशातिका, सामाखिया, और प्रियंगु, इन सवका भात रक्तपित रोगियों को हितकारक है ॥

रक्तपित्त रोगियों को अन्यद्रव्य ।

मुद्गामसूराश्चणकाःसमकुष्ठाढकीफलाः ॥ प्रशस्ताःसूपयूषार्थेकल्पितारक्तपित्तिनाम् । पटोलनिम्बवेत्राग्रप्लक्षवेतसपल्लवाः ॥ किराततिक्तकंशाकंगण्डीरःसकठिल्लकः कोविदारस्यपुष्पाणिकाश्मर्यस्याथशाल्म लेः ॥ अन्नपानविधौशाकंयच्चान्यद्रक्त पित्तनुत् । शाकार्थंशाकसात्म्यानांतच्छ स्तंरक्तपित्तिनाम् ॥ स्विन्नंवासर्पिषाभृ ष्टंयूषवद्वाविपाचितम् ।

अर्थ—मूंग, मसूर, चना, मोंठ और अड़हर इनकी दाल और यूष रक्तपित वालों के लिये अच्छे हैं । परवल, नीम के पत्ते, वेतकी कोंपल, पाकड़, वेतके पत्ते चिरायता, गण्डीर और करेळा इनका साग तथा कचनार के फूल, खंभारी के फूल सेमर के फूळ, तथा अन्यशाक जो अन्न पान विधि में रक्तपित के नाश करने वाले वर्णन किये गये हैं । ये सब शाक सिजा कर घृत में भून ळे अथवा यूष की तरह सिद्ध कर ऐसे रक्तपित वाले रोगी को देवै जिस को शाक अनुकूळ हों ।

रक्तपितपर मांसरस ।

पारावतान्कपोतांश्चलावान्रक्ताक्षवर्त कान् ॥ शशानकपिञ्जलानेणान्हरि णान्कालपुच्छकान् । रक्तपित्तहितान् विद्याद्रसांस्तेषांप्रयोजयेत् ॥ ईषदम्ला ननम्लानवाघृतभृष्टान्सशर्करान् ।

अर्थ—पारावत, कपोत, लवा, चकोर वटेर, शसा, तीतर, एण, हरिण, कालपुच्छ इन का मांसरस रक्तपित रोग में हित है । इसमें थोड़ीसी खटाई डालैहीं वा विना खटाई डालैही घी में भूनकर और चीनी मिलाकर सेवन करै ।

अन्यदोषाश्रित रक्तपित में चिकित्सा ।

कफानुगेयूषशाकंदद्याद्वातानुगेरसम् ॥ रक्तपितेयवागूनामतःकल्पःप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—कफयुक्त रक्तपित में यूष और शाक तथा वातयुक्त रक्तपित में रक्तपित नाशक मांसरस का प्रयोग करना चाहिये । अब यहां से उन यवागुओं का वर्णन करते है जो रक्तपित में हितकारी हैं ।

रक्तपित नाशक यवागू ।

पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कःपृश्निपर्णीप्रियं गुकाः ॥ जलेसाध्यंरसेतस्मिन्पेयास्या द्रक्तपित्तिनाम् । चन्दनोशीररोध्राणांर सेतद्वत्सनागरे ॥ किराततिक्तकोशीर मुस्तानांतद्वदेवच । धातकीधन्वयासाम्बु बिल्वानांबारसेशृताः ॥ मसूरपृश्निपर्ण्यो र्वास्थिरामुद्गरसेनवा । रसेहरेणुकानांवा सघृतेसबलारसे । सिद्धाःपारावतादीनां रसेवास्युःपृथक्पृथक् । इत्युक्तारक्तपित्त घ्न्यःशीताःसमधुशर्कराः ॥ यवाग्वःक ल्पनाचैषांकार्यामांसरसेष्वपि ।

अर्थ—लाल कमल की केसर, नीलकमल की केसर प्रष्णिपर्णी, प्रियंगु इन को डाल कर जलको औटाले और उस जल में पेया तयार कर के रक्तपित वाले रोगी को देवै। अथवा चन्दन, उसीर, लोध और सोंठ के रस में पूर्ववत् पेया सिद्ध करै। अथवा

चिरायता, उसीर, मोथा इनके रस में पूर्ववत् पेया सिद्ध करै । **अथवा** धायके फूल जवासा, नेत्रवाला और वेलगिरी के रस में पेया सिद्ध करै। **अथवा** मसूर और पृष्णिपर्णी के रस में, **अथवा** शालिपर्णी और मूंग के रस में **अथवा** हरेणुका के जल में **अथवा** घृतयुक्त खरैटी के रस में पेया सिद्ध करै । **अथवा** पूर्वोक्त पारावतादिक के मांस रस में पृथक् पृथक् पेया सिद्ध करै । सम्पूर्ण प्रकार की पेया शीतल होती है इससे इन में शहत और शर्करा मिलाकर सेवन करै । मांसरस वाली पेया में भी शहत और शर्करा मिलालेवै । इस तरह इन सब रक्तपित नाशिनी पेयाओं का वर्णन किया गया है ।

सोपद्रव रक्तपित में चिकित्सा ।

शशःसवास्तुकःशस्तोविबन्धेरक्तपित्तिनाम् ॥ वातोल्वणेतित्तिरिःस्यादुदुम्बररसेशृताः । मयूरःप्लक्षनिर्यूहेन्यग्रोधस्यचकुक्कुटः ॥ रसेबिल्वोत्पलादीनांवर्तकक्रकरौहितौ ।

अर्थ—**विबन्धयुक्तरक्तपित में** ससे के मांसरस में सिद्ध किया हुआ वथुएका शाग हितकर है **वातोल्वणरक्तपित** में गूलर के रसमें सिद्ध कियाहुआ तीतर का मांस, पाकड़ के रस में सिद्ध किया हुआ मोर का मांस, वड़ के रस में सिद्ध किया हुआ मुर्गे का मांस, विल्वके रसमें वटेर और उत्पलके रस में क्रकरका मांस हितकारी होता है ।

तृषायुक्तरक्तपितकी चिकित्सा ।

तृष्यतेतिक्तकैःसिद्धंतृष्णाघ्नैर्वाफलोदकम् ॥ सिद्धंविदारिगन्धाद्यैरथवाशृतशीतलम् । ज्ञात्वादोषावनुबलौबलमाहारमेवच ॥ जलंपिपासवेदद्याद्विसर्गादल्पशोऽपिवा ।

अर्थ—**तृषायुक्त रक्तपित** में तिक्त औषधियों से सिद्ध किया हुआ जल अथवा तृषानाशक अनार आदि फल डाल कर सिद्ध किया हुआ जल अथवा विदारी गंधादि डालकर सिद्ध किया हुआ जल ठंडा कर के पान करावे । तृषायुक्त रक्त पित रोगी के दोषों का अनुबल और आहार का वलदेखकर थोडा वा अधिक जल देवै ।

रक्तपित में वर्जित द्रव्य ।

निदानंरक्तपित्तस्ययत्किञ्चित्संप्रकाशितम् ॥ जीवितारोग्यकामैस्तन्नसेव्यंरक्तपित्तिभिः ।

अर्थ—जो जीने की और आरोग्य लाभ करने की इच्छा हो तौ निदान स्थान में रक्त पित के उत्पन्न होने के जो२ कारण कहेगये हैं उनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये ।

इत्यन्नपानंनिर्दिष्टंक्रमशोरक्तपित्तिषु। बक्ष्यतेबहुदोषाणांकार्यंबलवताञ्चयत् ।

अर्थ—इस तरह क्रम से रक्त पित में उपयोगी अन्नपान का बर्णन किया गया है । अब बहुत दोषों से युक्त और वल-

वान् रक्त पित रोगियोंके कर्तव्याकर्तव्य का वर्णन कियाजाता है ।

अक्षीणबलमांसस्ययस्यसन्तर्पणोत्थितम् । बहुदोषम्बलवतोरक्तपित्तंशरीरिणः । कालेसंशोधनार्हस्यतद्धरेन्निरुपद्रवम् ॥ विरेचनेनोर्ध्वभागमधोगंवमनेनच ।

अर्थ—जिस रक्तपित रोगी का बल और मांस क्षीण नहीं हुआ है, जिसके रक्तपित सन्तर्पण से उत्पन्न हुआ है । और जिस मनुष्य का शरीर बलवान् है अथच वह संशोधन के योग्य है ऐसे मनुष्य के बहुत दोष युक्त निरुपद्रव पित कोसंशोधन के द्वारा संशमन करै । ऊर्ध्व भाग गामी रक्त पित में विरेचन देवै और और अधोभागगामी रक्तपित में वमन देवै ॥

रक्तपित में वैरेचनिकप्रयोग ॥

त्रिवृतामभयांमाज्ञःफलान्यारग्वधस्यवा ॥ त्रायमाणागवाक्ष्योर्वामूलमामलकानिवा विरेचनंप्रयुञ्जीतप्रभूतमधुशर्करम् ॥ रसःप्रशस्यतेतेषांरक्तपित्तेविशेषतः ।

अर्थ—निसोथ और हरडकाक्वाथ, अथवा अमलतास का गूदा, अथवा त्रायमाण और इन्द्रायण की जड अथवा आंवले का क्वाथ इन प्रयोगों में बहुत सा शहत और शर्करा डाळकर विरेचन देवै । इनका रस रक्तपित में विशेष उपयोगी है ॥

रक्तपित में वामनिक प्रयोग ॥

वमनंमदनोन्मिश्रोमन्थःसक्षौद्रशर्करः ॥ सशर्करंवासलिलमिक्षूणांरसएववा । वत्सकस्यफलंमुस्तंमदनंमधुकंमधु ॥ अधोवहेरक्तपित्तेवमनंपरमुच्यते ।

अर्थ—शहत, शर्करा और मैनफल मिलाहुआ मन्थ, अथवा मैनफल, शर्करा और जल, अथवा मैनफल और ईखका रस अथवा इन्द्रजौ, मोथा, मैनफळ, मुलहटी और शहत ये सब प्रयोग अधोगामी रक्तपित में वमन कराने के लिये अत्यन्त उत्तम है ॥

ऊर्ध्वगेशुद्धकोष्ठस्यतर्पणादिःक्रमोहितः ॥ अधोवहेयवाग्वादिर्नचेत्स्यान्मारुतोबली

अर्थ—ऊर्ध्वगामी रक्तपित में यदि रोगी का कोष्ठ शुद्ध होगया हो तो तर्पणादि क्रिया का अवलम्बन करै । इसी तरह अधोगामी रक्त पित में यवागू देवै । ऐसा करने से वायु कुपित होजाती है ।

संशमनीयरक्तपितलक्षण ॥

बलमांसपरिक्षीणंशोकभाराध्वकर्षितम् । ज्वलनादित्यसन्तप्तमन्यैर्वाक्षीणमामयैः गर्भिणींस्थविरंबालंरूक्षाल्पप्रमिताशनम् अवम्यमविरेच्यंवायंपश्येद्रक्तपित्तिनम् । शोषेणसानुबन्धंवायस्यसंशमनीक्रिया । शस्यतेरक्तपित्तस्यपुरोयातुप्रवक्ष्यते

अर्थ—जिसका बल और मांस क्षीण हो गया है, जो शोक, भारवहन और मार्ग चलने से कृश होगया है, जो अग्नि वा सूर्य्य से सन्तप्त होगया है, जो अन्य रोगों से क्षीण होगया है, गर्भिणीस्त्री, वृद्ध, बालक, रूक्षभोजी, अल्प भोजी, मि-

तभोजी है, जो वमन विरेचन के योग्य नहीं है, अथवा वह रोगी जिसको शोष का अनुबन्ध है। इन लक्षणों से युक्त रक्त पित रोगियों की संशमन क्रिया करै। अब उस क्रिया का बर्णन करते हैं ॥

रक्तपित्त में संशमनीयक्रिया।

आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्काथःसशर्करः।
मधुमिश्रःश्वासकासरक्तपित्तनिबर्हणः ॥

अर्थ—अडूसा, किसमिस, हरड, इनका क्काथ करके शहत और शर्करा मिलाकर पान करै तौ श्वाश और खांसी से युक्त ऊर्ध्वगामी रक्त पित शान्त होजाता है ॥

रक्तपित में अन्यप्रयोग ॥

अटरूषकनिर्यूहेप्रियंगुमृत्तिकाञ्जने ॥
विनीयलोध्रंक्षौद्रञ्चरक्तपित्तनुदंपिवेत्।

अर्थ—अडूसा का क्काथ, प्रियंगु, गेरू अंजन लोध और शहत मिलाकर पान करने से रक्तपित शांत होजाता है ॥

अन्यप्रयोग।

पद्मकंपद्मकिंजल्कंदूर्वावास्तुकमेवच।
नागपुष्पश्चलोध्रञ्चतेनैवविधिनापिवेत् ॥

अर्थ—पद्माख, लालकमल की केशर, दूब, बथुआ, नागकेसर, लोध इन सबको शहत में मिलाकर सेवन करै तो रक्त पित शान्त होवे ॥

अन्यप्रयोग ॥

प्रपुण्डरीकंमधुकंमधुचाश्वशकृद्रसे ॥ यवासभृङ्गरजसोर्मूलंवागोशकृद्रसे। विनीय रक्तपित्तघ्नंपेयंस्यात्तण्डुलाम्बुना ॥ युक्तंवामधुसर्पिर्भ्यांलिह्याद्वागोऽश्वशकृद्रसम्। खदिरस्यप्रियंगूनांकोविदारस्यशाल्मलेः ॥ पुष्पचूर्णानिमधुनालिह्यान्नारक्तपित्तिकः। शृङ्गाटकानांलाजानांमुस्तखर्जूरयोरपि ॥ लिह्याच्चूर्णानिमधुनापद्मानांकेशरस्यच। धन्वजानामसृग्लिह्यान्मधुनामृगपक्षिणाम् ॥ सक्षौद्रंग्रथितेरक्ते लिह्यात्पारावतंशकृत् ॥

अर्थ—पुण्डरीक, मुलहटी, शहत इन को घोडे की लीद के रसमें अथवा जवासा भांगरे की जड, इनको गौ के गोवर के रसमें मिलाकर चांवल के साथ पान करै अथवा घी और शहत मिलाकर गौ और घोडे की लीद का रस पान करै। अथवा खैर, प्रियंगु, कचनार और सेमर के फूलोंका चूर्ण शहत में मिलाकर चाटै। अथवा सिंघाडे खील, मोथा, खिजूर और कमलकेशर इनके चूर्ण को शहत के संग चाटै। अथवा धन्वज पशुपक्षियों का रुधिर शहत मिलाकर पान करै। अथवा जो रक्त में गांठ पडगई हो तौ कबूतर की वीट को शहत में मिलाकर चाटै।

दाहादियुक्तरक्तपितपर प्रयोग ॥

उशीरकालीयकलोध्रपद्मक प्रियंगुकाकट्फलशंखगैरिकाः। पृथक्पृथक्चन्दन तुल्यभागिकाः सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुताः। रक्तंसपित्तन्तमकंपिपासां दाहञ्चपीताःशमयन्तिसद्यः।

अर्थ—खस, कालीयक (पीतचन्दन) लोध, पद्माख, प्रियंगु, कायफल, शंख इन सब में पृथक् २ समान भाग रक्त चन्दन

मिलावे और इसको फांककर शर्करायुक्त तण्डुल जलका पान करै तौ रक्त पित, तमकश्वास पिपासा, दाह ये तत्काळ शान्त होजाते हैं।

अन्यप्रयोग॥

किराततिक्तंक्रमुकंसमुस्तं प्रपुण्डरीकं कमलोत्पलेच॥ ह्रीवेरमूलानिपटोलपत्र न्दुरालभापर्पटकामृणालम्। धनञ्जयोदुम्बरवेतसत्वग् न्यग्रोधजम्बूहयमारकत्वक्॥ तुङ्गालतावेतसतण्डुलीयं सशारिवम्मोचरसःसमङ्गा। पृथक्पृथक् चन्दनयोजितानि तेनैवकल्केनहितानितत्र॥

अर्थ—चिरायता, सुपारी, मोथा, पुण्डरिया, कमल, उत्पल, नेत्रवाला, पांचों पंचमूल, परवल के पत्ते, जवासा, पितपापडा कमलनाळ, अर्जुन, गूलर, वेत, बड, जामन, कनेर, (इन छःओं की छाल), बंशळोचन, लतावेत (कोई२लता से शारिवा और वेतस से वेतका ग्रहण करते हैं) चौलाई, शारिवा, मोचरस, मजीठ, इन सव में पृथक् २ समान भाग चन्दन मिलाकर शर्करा और तण्डुल जल के साथ लेवै॥

उक्तप्रयोगोंकी विधि॥

निशिस्थितावासरसीकृतावा कल्कीकृतावामृदिताशृतावा। एतेसमस्तागणशःपृथग्वा रक्तंसपित्तंशमयान्तियोगाः॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए दोनों गणों में जो द्रव्य वर्णन कियेगये हैं इन सवको वा पृथक् २ लेकर रात्रि में भिगो देवै, वा इन का रस निकाळ ले, वा पीसकर लुगदी, वना लेवै, वा मीडकररस निकाल लेवै वा क्वाथ कर लेवै। ये सव योग रक्तपित को शमन करते हैं।

रक्तपित पर अन्य प्रयोग॥

मुद्गाःसलाजाःसयवाःसकृष्णाः सोशीरमुस्ताःसहचन्दनेन। बलाजलेपर्युषितः कषायो रक्तंसपित्तंशमयन्त्युदीर्णम्॥

अर्थ—मूंग, खील, जौ, पीपल, खस, मोथा, रक्तचन्दन इनको खरैटी के क्वाथ में रात्रि में भिगो देवै और दूसरे दिन प्रातःकाल इसका पान करै तो वढाहुआ रक्तपित शान्त होजाता है।

अन्यप्रयोग॥

वैदूर्यमुक्तामणिगैरिकाणां मृच्छंखहेमामलकोदकानाम्। मधूदकस्येक्षुरसस्यचैव पानाच्छमङ्गच्छतिरक्तपित्तम्॥

अर्थ—वैदूर्य (एकप्रकार की मणि), मोती, मणि, गेरू, शंख, सुवर्ण इनको आंवले के क्वाथ के साथ वा मधुमिश्रितजल वा ईख के साथ पान करै तो रक्तपित शान्त होवै॥

अन्यप्रयोग॥

उशीरपद्मोत्पलचन्दनानां पक्वस्यलोध्रस्यचयःप्रसादः। सशर्करःक्षौद्रयुतःसुशीतोरक्तातियोगंप्रशमायदेयः॥

अर्थ—खस, पद्म, उत्पल, रक्तचन्दन, और पक्व लोध इनके ठंडे क्वाथ को छान कर शहत और मिश्री मिलाकर पान करै

तो रक्तातियोगी पित शान्त होजाय ।

अन्यप्रयोग ॥

प्रियंगुकाचन्दनलोध्रशारिवा । मधूकमुस्ताभयधातकीजलम् । सम्पत्प्रसादं सहषष्टिकाम्बुना सशर्करं रक्तनिवर्हणं परम् ॥

अर्थ—प्रियंगु, रक्तचन्दन, लोध, शारिवा, मुळहटी, मोथा, खस और धाय इनके क्वाथ को सांठी चावल के जल के साथ मिश्रीडालकर पान करै तो रक्त रोग जाता रहता है ॥

वाय्वनुवन्धी रक्त पितकीचिकित्सा ॥

कषाययोगैर्विविधैर्यथोक्तै र्दीप्तेऽनले श्लेष्मणिनिर्जितेच । यद्रक्तपित्तंप्रशमंन याति तत्रानिलःस्यादनुतत्रकार्यम् ॥ छागम्पयःस्यात्प्रथमंप्रयोगे गव्यंशृतं पञ्चगुणेजलेवा । सशर्करंमाक्षिकसम्प्रयुक्तं । विदारिगन्धादिगणैःशृतंवा ॥ द्राक्षाशृतंनागरकैःशृतंवांवलाशृतंगोक्षुरकैः शृतंवा । सजीरकंसर्षपकंससर्पिः पयःप्रयोज्यंसितयाशृतंवा ॥ शतावरी गोक्षुरकैःशृतंवा शृतम्पयोवाप्यथपर्णिनीभिः । रक्तंहिनस्त्याशुविशेषतस्तु । यन्मूत्रमार्गात्सरुजम्प्रयाति ॥

अर्थ—पूर्वोक्त विविध प्रकार के कषाय योगों से अग्नि प्रदीप्त होजाय और कफ दूर होजाय और तव भी रक्त पित शांत न हो तो वहां वायुका अनुवन्ध होता है, उसमें निम्न लिखित चिकित्सा करनी चाहिये यथा प्रथमही वकरी वा गौ के दूध को पचगुने जल में औटाकर मिश्री और शहत मिलाकर पान करावै । अथवा विदारीगन्धादिगणोक्त द्रव्य डाळकर औटायाहुआ अथवा दाख वा सोंठ, वा खरैटी, वा गोखरू डालकर अथवा जीरा, ऋषभक, घी और मिश्री डालकर औटायाहुआ दूध देवै । अथवा सितावर और गोखरू डालकर औटाहुआ दूध वा चारों प्रकारकी पर्णी, (मुद्गपर्णी माषपर्णी, पृष्णपर्णी, शालपर्णी) डालकर औटायाहुआ दूध देवै । इसरीति से सिद्ध कियाहुआ दूध रक्त को नष्ट करता है और विशेष करके उस रक्त पित के लिये हित है जो मूत्रमार्ग में होकर वेदना युक्त निकलता है ॥

रक्तपितपरअन्ययोग ॥

विशेषतोविट्प्रथमंप्रवृत्ते पयोमतम्मोचरसेनसिद्धम् । वटावरोहैर्वटशुङ्गकैर्वा ह्रीवेरनीलोत्पलनागरैर्वा ॥ कषाययोगा न्पयसापुरावा पीत्वानुदद्यात्पयसानु शालीन् । कषाययोगैरथवाविपक्क मेतैःपिवेत्सर्पिरतिस्रवेण ॥

अर्थ—रक्तके मलमार्गमें होकर बाहर निकने पर दूध के साथ मोचरस औटाकर पानकरावै । अथवा वडकी डाढी, वा वडकी कोंपल, अथवा नेत्रवाला, नीलोफर और सोंठ डालकर दूध को औटाकर पान करावै । अथवा उक्त कषायों के साथ पान कराने से पहिले जलके साथ औटाकर पान करावै और क्षुधा लगने पर शालीचांवलो का भात खाने को देवै ।

और जो रक्त अत्यन्त स्रवताहो तौ उक्त कषायों के साथ घृत सिद्ध करके पान करावै ॥

अन्यप्रयोग ॥

वासांसशाखांसपलाशमूलांकृत्वाकषायं कुसुमानिचास्य । प्रदायकल्कंविपचेद्घृ तंतत्सक्षौद्रमाश्वेवनिहन्तिरक्तम् ।

अर्थ—अडूसा की शाखा, पत्ते, जड और फूल सबको एकत्र करके क्राथ में उक्त द्रव्यों का कल्क और घृत डालकर सिद्ध करै फिर शहत के साथ चाटै तौ रक्त बहुत शीघ्र बन्द होजाता है ॥

अन्यप्रयोगाणि ॥

पलाशवृन्तस्यरसेनसिद्धंतस्यैबकल्केन मधुद्रवेण । लिह्याद्घृतंवत्सककल्कसिद्ध न्तद्वतसमङ्गोत्पलरोध्रसिद्धम् । स्यात् त्रायमाणाविधिरेषएव सोदुम्बरेचैव पटोलपत्रे ।

अर्थ—ढाक के डंठलो का रस निकालै और फिर उन्हीं का कल्क करके उसमें घृत पकावै, इस घृत को शहत मिलाकर चाटै तो रक्तपित नष्ट होय। इसी तरह इंद्रजौ का प्रयोग भी होता है। इसी तरह लज्जालू, नीलोफर और लोध से सिद्ध किया हुआ घृत रक्तपित्त पर देवै। त्रायमाण अथवा गूलर और परवल के पत्तों को घृत के साथ सिद्ध कर के पूर्वोक्त विधि से सेवन करै ॥

अन्यप्रयोग ।

सर्पींषिपित्तज्वरनाशनानि सर्वाणिशस्ता निचरक्तपित्ते ॥ अभ्यङ्गयोगाःपरिषेच नानि सेकावगाहाःशयनानिवेश्म । शीतोविधिर्वस्तिविधानमग्र्यं पित्तज्वरे यत्प्रशमायदृष्टम् ॥ तद्रक्तपित्तेनिखिले नकार्यं कालञ्चमात्राञ्चपुरासमीक्ष्य ।

अर्थ—पित्त ज्वर के नाश करने वाले जो जो घृत वर्णन किये गये हैं वे सब रक्तपित्त में हितकर है। तथा पित्तज्वरमें जो जो अभ्यंग,परिषेचन प्रसेक अवगाहन शयन, घर, शीतविधि तथा वस्ति विधान वर्णन किये गये हैं उन सबका काल और मात्राका विचार कर रक्तपित्त में प्रयोग करै

अन्यप्रयोग ।

सर्पिर्गुडायेचहिताःक्षतेभ्यः तेरक्तपित्तं शमयन्तिसद्यः ॥

अर्थ—घृत और गुड़ जो जो क्षतरोग में हित है वे सब रक्तपित्त को भी तत्काल नष्ट कर देते हैं।

कफानुबन्धीरक्तपितकी चिकित्सा ।

कफानुबन्धेरुधिरेसपित्ते कण्ठागमेस्या द्ग्रथितेप्रयोगः । युक्तस्ययुक्त्यामधुसर्पि षोश्च क्षारस्यचैवोत्पलनालजस्य ॥ मृणालपद्मोत्पलकेशराणां तथापलाश स्यतथाप्रियङ्गोःतथामधूकस्यतथासनस्य। क्षाराःप्रयोज्याविधिनैवतेन ॥

अर्थ—जो रक्तपित कफानुबन्धी होता है वह कण्ठ में आकर गांठदार होजाता है। इस में शहत और घृत मिलाकर चाटै अथवा नीलकमलकी डंडी का खार शहत घृत के साथ चाटै। अथवा कमलनाल पद्म-

केशर, उत्पल केसर की भस्म अथवा ढाक का क्षार, अथवा प्रियुंगका क्षार अथवा महुआ का क्षार अथवा असनका क्षार पूर्वोक्त विधि से शहत और घृत के साथ चाटै ।

शतावर्य्यादि घृत ।

शतावरीदाड़िमतिन्तिडीकमूकाकोलमेदोमधुकंबिदारीम् । पिष्ट्वाचमूलम्फलपूरकस्य घृतंपचेत्क्षीरचतुर्गुणेन ॥ कासज्वरानाहविबन्धशूलन्तद्रक्तपित्तञ्चघृतान्निहन्यात् । यत्पञ्चमूलैरथपञ्चभिर्वा सिद्धंघृतंतच्चतदर्थकारि ॥

अर्थ—सितावर, अनार, इमली, काकोली मेदा, मुलहटी विदारीकन्द और बिजौरे की जड़ इन को पीसकर इनके साथ घृत पकावै उसी में घृत से चौगुना दूध डालै । इसके सेवन करने से खांसी, ज्वर, आनाह विवन्ध शूल और रक्तपित शान्त होजाते हैं ।

पांचों पंचमूल से सिद्ध किया हुआ घृत भी ऊपर कहे हुए रोगों में हितकारी होता है ।

नकसीर की चिकित्सा ।

कषाययोगाश्चइहोपदिष्टाः तेचावपीड़े भिषजाप्रयोज्याः । घ्राणात्प्रवृत्तंरुधिरं सपित्तं । यदाभवेन्निःस्रुतदुष्टदोषम् ॥

अर्थ—रक्तपित के नाश करने वाले जो जो कषाय इस जगह वर्णन किये गये हैं उनका रस निकालकर सूंघने से वह रक्तपितवन्द होजाता है जो नासिका के द्वारा निकलता हैं ॥

दुष्टरक्तके वन्द होने के उपद्रव ।

रक्तेप्रदुष्टेह्यवपीड़बन्धे दुष्टप्रतिश्यायशिरोविकाराः । रक्तंसपूयंकुणपश्चगन्धः स्याद्घ्राणनाशःक्रमयश्चदुष्टाः ॥

अर्थ—जो दूषित रक्तवन्द कर दिया जायगा तौ दुष्ट प्रतिश्याय, शिरोविकार, पीवदार सडा हुआ रक्तस्राव घ्राणशक्ति का नाश ये उपद्रव होंगे तथा नासिका में दुष्ट क्रिमिरोग उत्पन्न होजायगा ।

रक्तपित में अन्यनस्य

नीलोत्पलंगैरिकशंखयुक्तं । सचन्दनंस्यात्तुसिताजलेन । नस्यन्तथाम्रास्थिरसः समङ्गा सधातकीमोचरसः सरोध्रः ॥ द्राक्षारसस्येक्षुरसस्यनस्यं । क्षीरस्यदूर्वास्वरसस्यचैव । यवासमूलानिपलाण्डुमूलं । नस्यंतथादाड़िमपुष्पतोयम् ॥

अर्थ—नीलकमल, गेरू, शंख, रक्तचन्दन और मिश्री इन को भिजोकर रस निकालकर सूंघने से रुधिरवन्द होजायगा । अथवा आमकी गुठली का रस अथवा लज्जालू, धायके फूल, मोचरस, लोध इनका रस निकाळ कर सूंघने से भी नकसीर वन्द होजाती है । अथवा दाख का रस, वा दूध दूब का रस, वा जवासे की जडका रस, वा, प्याजकी की जड़ का रस, वा अनारके फूल का रस सूंघने से भी नकसीर वन्द होजाती है ।

नस्यपर अन्य प्रयोग ।

पियालतैलंमधुकम्पयश्च ।
सिद्धंघृतंमाहिषमाजकंवा ।
आम्रास्थिपूर्वैःपयसाचनस्यं।
सशारिवैःस्यात्कमलोत्पलैश्च॥

अर्थ—पियाल का तेल मुलहटी और दूध इनको सब को पकाकर सूंघै, अथवा भैंस या बकरी का घी, (आम्रास्थिपूर्व अर्थात् पाहिले श्लोकों में कहीहुई) लज्जालू धाय के फूल, मोचरस, लोध, शारिवा, कमल और नीलोफर इन को सिद्ध करके नस्य लेवै तौ रुधिर बन्द होय ।

रक्तपित्तपर परिषेकादि प्रयोग ।

भद्रश्रियंलोहितचन्दनञ्च ।
प्रपुण्डरीकंकमलोत्पलञ्च।
उशीरवाणीरजलंमृणालं ।
सहस्रवीर्यंतृणशूल्यमृद्धिः॥
मूलानिपुष्पाणिचवारिजानां।
प्रलेपनंपुष्करिणीमृदञ्च ।
उदुम्बराश्वत्थमधूकरोध्राः ।
कषायवृक्षाःशिशिराश्चसर्वे।
प्रदेहकल्केपरिषेचनेच ।
तथावगाहेघृततैलसिद्धौ ।
रक्तस्यपित्तस्यचशान्तिमिच्छन्।
भद्रश्रियादीनिभिषक्प्रयुञ्ज्यात्।

अर्थ—सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, पुण्डरीक लालकमल, नीलकमल, उशीर, वाणीर, नेत्रवाला, मृणाल, सहस्रवीर्य (दूब) मल्लिका ऋद्धि, कमलकी जड़ और फूल तलावकी मिट्टी गूलर पीपल, महुआ, लोध तथा अन्य कषाय वृक्ष जो शीतवीर्य हैं इन सबको लेप, परिषेचन तथा अवगाहन में प्रयुक्त करै । और सफेद चन्दनसे आदि लेकर द्रव्यों में घृत वा तेल को सिद्ध करके रक्तपितकी शान्ति के लिये प्रयुक्त करैं ।

रक्तपितपपरअन्यविधि।

धारागृहंभूमिगृहञ्चशीतं ।
वनञ्चरम्यञ्जलवातशीतम् ।
वैदूर्यमुक्तामणिभाजनानां ।
स्पर्शाश्चदाहेशिशिराम्बुशीताः॥
पत्राणिशीतानिचवारिजानां।
क्षौमञ्चशीतंकदलीदलाश्च।
प्रच्छादनार्थंशयनासनानां।
पद्मोत्पलानाञ्चदलाःप्रशस्ताः॥
प्रियंगुकाचन्दनरूषितानां
स्पर्शाःप्रियाणाञ्चवराङ्गनानाम्।
दाहेप्रशस्ताःसजलाःसुशीताः।
पद्मोत्पलानाञ्चकलापवाताः।
सरिद्ध्रदानांहिमवद्दरीणा ।
श्चन्द्रोदयानांकमलाकराणाम्।
मनोऽनुकूलाःशिशिराश्चसर्वाः।
कथाःसरक्तंशमयन्तिपित्तम् ।

अर्थ—जलके किनारे के या फव्वारे दार तथा ठंडे तलघरे, रमणीकवन, ठंढे, हवा और जल, तथा वैदूर्य और मुक्तामणियों के पात्रों का देह से लगाना रक्तपित्त के दाह में हितकरहै । शीतल जल, शीतल कमल के पत्ते, शीतल रेशमी वस्त्र शीतल केलेके पत्ते भी हितकर हैं । तथा

पलंग वा आसन पर विछाने के लिये लाल कमल और नीलकमल के पत्ते हितकारी होते हैं। प्रियंगु तथा चन्दन लिप्तांगी प्रियतमा वरांगनाओं का स्पर्श। जलार्द्र शीतल कमलों और मोरछल की हवा, नदी सरोवर, हिमालयकी कन्दरा, चन्द्रमाकी चांदनी, कमलों का झुंड तथा मनोनुकूल संतोष दायिनी वातों का श्रवण रक्तपित को शमन करता है।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

भवतश्चात्र।

हेतुंवृद्धिंसंख्यांस्थानंलिङ्गंपृथक्प्रदुष्टस्य। मार्गौसाध्यमसाध्यंयाप्यंकार्य्यक्रमञ्चैव॥ पांनान्नपानमेवचवर्ज्यंसंशोधनञ्चशमनञ्च। गुरुरुक्तवान्यथावत्चिकित्सिते रक्तपित्तस्य॥

अर्थ—भगवान् पुनर्वसुने इस अध्याय में रक्तपित के हेतु, वृद्धि,संख्या,समुत्थान लक्षण तथा दूषित रक्तपित के मार्ग, रक्त पित के साध्य असाध्य और याप्य के लक्षण, चिकित्साक्रम,पथ्य,अनुपान, वर्जित अन्न, संशोधन तथा संशमन ये सब वातें यथावत् वर्णन की हैं।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने रक्तपितचिकित्सितंनाम चतुर्थोऽध्यायः। ४॥

———०———

पचमोऽध्यायः

अथातोगुल्मचिकित्सितंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय वोले कि अव हम गुल्मचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

सर्वप्रजानांपितृवच्छरण्यः।
पुनर्वसुर्भूतभविष्यदीशः।
चिकित्सितंगुल्मनिवर्हणार्थं।
प्रोवाचसिद्धंवदतांवरिष्ठः॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रजा को पिता की समान शरण देने वाले, भूत भविष्यत् के जानने वाले वक्ताओं में श्रेष्ठ पुनर्वसुजी गुल्मरोग के निवारणार्थ सिद्ध चिकित्सा का वर्णन करने लगे।

गुल्मोत्पति का हेतु।

विट्श्लेष्मपित्तादिपरिक्षयाद्वा।
तैरेववृद्धैःपरिपीड़ितोवा।
वेगैरुदीर्णैर्विहितैरधोवा।
बाह्याभिघातैरतिपूरणैर्वा।
रूक्षान्नपानैरतिसेवनैर्वा।
शोकेनमिथ्याप्रतिकर्मणावा।
विचेष्टितैर्वाविषमातिमात्रैः।
कोष्ठेप्रकोपंसमुपैतिवायुः।
कफञ्चपित्तञ्चसदूषयित्वा।
प्रोद्धूयमार्गान्विनिवध्यताभ्याम्।
हृत्प्लीहपार्श्वोदरवास्तिशूलं।
करोत्यधोयातिनवद्धमार्गः।
पक्वाशयेपित्तकफाशयेवा।
स्थितःस्वतन्त्रःपरसंश्रयोवा।

स्पर्शोपलभ्यःपरिपिण्डितत्वात्।
गुल्मोयथादोषमुपैतिनाम ॥

अर्थ—विष्टा, कफ और पित्तादि की अत्यन्त क्षीणता वा इनही की वृद्धि से वायुके अत्यन्त पीडा से, उपस्थित अधो वेगों के रोकने से, वाह्य अभिघात से, अत्यन्त सन्तर्पण से, रूक्ष अन्नपान के अत्यन्त सेवन से, शोक से वा चिकित्सा के मिथ्यायोग, अयोग वा अतियोगसे, शरीर की विषम वा अतिमात्र चेष्टाओं से वायु कोष्ठ में अत्यन्त कुपित होजाती है और फिर कफ और पितको दूषित करके उन से अपने मार्गों को रुकवालेती है और तव उतेजित होकर हृदय, प्लीहा, पार्श्व,उदर और वस्ति में शूल उत्पन्न करती है और मार्ग के वन्द होजाने के कारण नीचे होकर भी नहीं निकलने पाती है। तव वह पक्वाशय वा पितकफाशय में अकेळी वा कफपित के संसर्ग में स्थित होजाती है और उस स्थान में हाथ लगाने से गोलासा दिखाई देने लगता है तव यथा दोष इस का नाम गुल्म होजाता है, यथा-वातिक पैतिक, और श्लैष्मिक। इस कहने से यह न समझ लेना चाहिये कि केवल पैतिक वा श्लेष्मिक होता है। इस में वायु तो प्रधान होती है इसी से वायुगोला कहते हैं।

गुल्मके स्थानभेद ।

वस्तौहिनाभ्यांहृदिपार्श्वयोर्वा।
स्थानानिगुल्मस्यभवन्तिपञ्च।
पञ्चात्मकस्यप्रभवन्तुतस्य।
वक्ष्यामिलिङ्गानिचिकित्सितञ्च॥

अर्थ—वस्ति, नाभि, हृदय, और दोनों पार्श्वभाग ये गुल्म के पांच स्थान हैं। इस की उत्पति भी पांचही प्रकारसे है,अव हम इसकी चिकित्सा और लक्षणों का वर्णन करते हैं।

वातिक गुल्मका हेतु ।

रूक्षान्नपानंविषमातिमात्रं ।
विचेष्टितंवेगविनिग्रहश्च ।
शोकोऽभिघातोऽतिवलक्षयश्च।
निरन्नताचानिलगुल्महेतुः ॥

अर्थ—रूक्ष अन्नपानका सेवन, शरीर की विषम और अतिमात्र चेष्टा, मलमूत्रादि वेगों का अवरोध, शोक, अभिघात, वलकी अत्यन्त क्षीणता, भोजन न करना ये सव वातिक गुल्मकी उत्पति के हेतु हैं।

वातिक गुल्म के लक्षण ।

तत्स्थानसंस्थानरुजांविकल्पं ।
विड्वातसङ्गंगलवक्त्रशोषम्।
श्यावारुणत्वंशिशिरज्वरञ्च।
हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजञ्च ।
करोतिजीर्णेऽभ्यधिकंप्रकोपं ।
भुक्तेमृदुत्वंसमुपैतियश्च ।
वातात्सगुल्मोनचतत्ररूक्ष ।
कषायतिक्तंकटुचोपशेते ॥

अर्थ—जिस गुल्म के स्थान, स्वरूप और वेदना में थोडी थोडी देर में अन्तर पड़जाय, जिस में मलत्याग और अधोवायु का अवरोध हो, जिस के होने से गळे

और मुख में खुशकी हो, जिसका रंग कुछ काला कुछ लाल हो जिस में शीत ज्वर का वेग हो, जिस के होने से हृदय कुक्षि, पार्श्व और सिर में वेदना हो, अन्न के पचने पर जो अत्यन्त कुपित हो, जो भोजन करने पर नरम पडजाय उसे **वातजगुल्म** कहते हैं। इस में रूक्ष, कटु, तिक्त और कषाय द्रव्यों के सेवन का निषेध है।

पैतिक गुल्मका हेतु।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविरोधिरूक्षक्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा। आमाभिघातोरुधिरञ्चदुष्टं पैत्तस्यगुल्मस्यनिमित्तमुक्तम् ॥

अर्थ—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विरोधी और रूक्ष पदार्थों के सेवन से, क्रोध, अति मद्य, धूप और अग्नि में तापने से, अविदग्ध अन्नसे और रुधिर के दूषित होने से पैतिक गुल्म उत्पन्न होता है।

पैतिक गुल्मके लक्षण।

ज्वरःपिपासावदनाङ्गरागः शूलंमहज्जीर्यतिभोजनेच। स्वेदोविदाहोव्रणवच्च गुल्मः स्पर्शासहःपैत्तिकगुल्मरूपम् ॥

अर्थ—ज्वर, तृषा, मुख तथा देह में ललाई, अन्न के पचने के समय अत्यन्त शूलका होना, पसीना, विदाह, तथा घाव की तरह गुल्म में हाथका लगाना बुरा मालूम होना, ये सब पैतिकगुल्म के लक्षणहैं।

श्लैष्मिकगुल्म के हेतु ॥

शीतंगुरुस्निग्धमचेष्टनञ्च सम्पूरणंप्रस्वपनंदिवाच। गुल्मस्यहेतुःकफसम्भवस्य। सर्वस्तुदृष्टोनिचयात्मकस्य।

अर्थ—शीतळ, भारी और स्निग्ध पदार्थों के सेवन से, किसी प्रकारकी चेष्टा करने से, संतर्पण से दिन में नींद लेने से **कफजगुल्म** होता है, तथा सान्निपातिक गुल्म में तीनों दोषों के मिलेहुए कारण होते हैं ॥

श्लैष्मिक गुल्मके लक्षण ॥

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि। शैत्यंरुगल्पाकठिनोन्नतत्वं गुल्मस्यरूपाणिकफात्मकस्य ॥

अर्थ—स्तिमिता, शीतज्वर, अंगग्लानि, हृल्लास, खांसी, अरुचि, भारापन, शैत्य, वेदना की सूक्ष्मता, कडापन, ऊंचापन, ये सब **कफजगुल्म के रूप हैं ॥**

द्वन्द्वजगुल्मके लक्षण ॥

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्यगुल्मे द्विदोषजेदोषबलाबलञ्च। व्यामिश्रदोषानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥

अर्थ—उत्पत्तिके हेतु, लक्षण, दोषोंकाबलाबल, तथा दो २ दोषों के मिले हुए लक्षणों से तीन प्रकार के द्विदोषजगुल्म भी होते हैं। औषधों के प्रयोग के निमित्त इनके तीन भेद दिखाये गये हैं ॥

त्रिदोषजगुल्म के लक्षण ॥

महारुजंदाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतंशीघ्रविदाहिदारुणम्। मनःशरीराग्निबलापहारिणं त्रिदोषजंगुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥

अर्थ—त्रिदोषजगुल्म में अत्यन्त घोर वेदना, दाह, पत्थर के समान कडापन और ऊंचाई होती है यह शीघ्रही दाह उत्पन्न करनेवाला भयंकर रोग होता है, यह मन

शरीर और अग्नि के बलको दूर देता है। यह गुल्म असाध्य होता है।

रक्तगुल्मकाकारण।

ऋतावनाहारतयाभयेन विरूक्षणैर्वेगविनिग्रहैश्च । संस्तम्भनोल्लेखनयोनिदोषै गुल्मःस्त्रियरक्तभवोऽभ्युपैति ॥ यःस्पन्दतेपिण्डितएवनाङ्गैः चिरात्सशूलःसमगर्भलिङ्गः । सरौधिरःस्त्रीभवएवगुल्मो मासेव्यतीतेदशमेचिकित्स्यः ॥

अर्थ--ऋतुधर्म होने में सर्वथा भोजन न करना, भय, रूक्ष पदार्थों का सेवन, वातादिरोगविनिग्रह, स्तम्भनक्रिया, वमन और योनि दोष से स्त्रियों के रक्तगुल्म होता है। जब रक्तगुल्म पेट में उछलता है तब इस में अत्यन्त वेदना होती है और लक्षण इस में गर्भ के समान होते हैं इसकी उत्पति रक्त से है और यह केवल स्त्रियोंही के होता है। दस महीने व्यतीत होने पर इसकी चिकित्सा करना उचित है।

क्रियाक्रममतःसिद्धंगुल्मिनांगुल्मनाशनम् प्रवक्ष्याम्यतऊर्ध्वञ्चयोगानगुल्मनिवर्हणान् ॥

अर्थ--अब हम यहां से गुल्मरोगियों के गुल्मको दूर करने के लिये चिकित्साक्रम और अनुभूत प्रयोगों का वर्णन करते हैं।

वातजगुल्ममें चिकित्साक्रम।

रूक्षव्यायामजंगुल्मंवातिकंतीव्रवेदनम् । बद्धविट्मारुतंस्नेहैरादितःसमुपाचरेत् ॥ भोजनाभ्यञ्जनैःपानैर्निरूहैःसानुवासनैः। स्निग्धस्याभिषजास्वेदःकर्त्तव्योगुल्मशान्तये ॥ स्रोतसांमार्दवंकृत्वाजित्वामारुतमुल्वणम् । भित्त्वाविबन्धंस्निग्धस्यस्वेदो गुल्ममपोहति ॥ स्नेहपानंमतंगुल्मेविशेषेणोर्ध्वनाभिजे । पक्वाशयगतेवस्तिरुभयं जठराश्रये ॥

अर्थ--जो वातिकगुल्म रूक्ष भोजन तथा परिश्रम से उत्पन्न हुआ है, जिसमें तीव्र वेदना होती है और जिस में अधोवायु और विष्टा रुकगया हो उस में प्रथम स्नेहन क्रिया करै। भोजन, अभ्यञ्जन, पान, निरूहण और अनुवासन वस्ति द्वारा रोगी को स्निग्ध करने के स्वेदन कर्म करै तौ गुल्मरोग की शान्ति होती है।

रोगी को स्निग्ध करने के पश्चात् स्वेदन देने से शरीर के स्रोत मृदु होजाते हैं, वायु की प्रवलता घटजाती है, विवन्धता दूर होजाती है और तव गुल्म भी शान्त होजाता है। विशेष कर के नाभि से ऊपर होने वाले गुल्म में स्नेहपान श्रेष्ठ है। पक्वाशयगत गुल्म में वस्ति कर्म तथा जठराश्रय गुल्म में स्नेहपान और वस्तिकर्म दोनों हित हैं।

अन्यविधि ॥

दीप्ताग्नौवातिकेगुल्मेविबन्धेऽनिलवर्चसोः । बृंहणान्यन्नपानानिस्निग्धोष्णानि प्रयोजयेत् ॥ पुनःपुनःस्नेहपानंनिरूहाः सानुवासनाः । प्रयोज्यावातगुल्मेषुकफपित्तानुरक्षिणा ॥ कफेवातेजितप्रायेपित्तंशोणितमेववा । यदिकुप्यतिवातस्य क्रियमाणैश्चिकित्सितैः ॥ यथोल्वणस्य

दोषस्यतत्रकार्य्यंभिषग्जितम् । आदाव न्तेचमध्येचमारुतंपरिरक्षता ॥ वातगुल्मे कफोवृद्धोहत्वाग्निमरुचिंयदि । हृल्ला संगौरवंतन्द्रांजनयेदुल्लिखेत्तुतम् ॥

अर्थ—यदि वातिक गुल्म में अग्नि तीव्र हो, तथा अधोवायु और विष्ठा का विवन्धहो तौ वृंहणकर्त्ता, स्निग्ध और उष्ण अन्नपान का प्रयोग करै । तथा कफपित्तानुवन्धी बातज गुल्मरोग में वार बार स्नेहपान तथा निरूहण अनुवासन वस्ति देवै । कफ और बात के प्रायः दूर होने के समय अथवा वातगुल्म की चिकित्सा करने के समय यदि पित्त और रक्त कुपित होजांय तव उस समय जिस दोष की अधिकता हो उसी की चिकित्सा का उपाय करै । परन्तु चिकित्सा के आदि मध्य वा अवसान में वायुकी रक्षा करता रहै । वात गुल्म में यदि कफ उत्तेजित होकर जठराग्नि को मन्द करके अरुचि, हृल्लास, गौरव तन्द्रा उत्पन्न करै तव उस रोगी को वमन करावै ॥

अन्यविधि ॥

शूलानाहविबन्धेषुगुल्मेवातकफोल्वणे । वर्तयोगुलिकाःचूर्णकफवातहरम्मतम् ॥ पित्तंवायदिसंवृद्धंसन्तापंबातगुल्मिनः । कुर्याद्विरेच्यःसभवेत्स्नेहनैरानुलोमिकैः॥ गुल्मंयद्यनिलादीनांकृतेसम्यग्भिषज्यिते। नप्रशाम्यतिरक्तेनसस्रुतेनोपशाम्यति ॥

अर्थ—वातकफाधिक्य गुल्म में यदि शूल आनाह और विबन्ध हो तो कफवातनाशक, वर्तिका, गोली, चूर्णका प्रयोग करै । वातगुल्मरोगी के यदि पित वढकर सन्ताप उत्पन्न करे तो वायु के अनुलोमन करने वाले स्नेहन द्रव्यों से विरेचन देवै ।। यदि वातादिक को शमन करने वाली औषधों के प्रयोग से जो गुल्म शांत न हों,वे फस्त खोलने से शान्त होजाते हैं।

पैतिकगुल्म में चिकित्साक्रम ॥

स्निग्धोष्णेनोदितेगुल्मेपैत्तिकेस्रंसनंमतम् रूक्षोष्णेनतुसम्भूतेसर्पिःप्रशमनंपरम् ॥ पित्तंवापित्तगुल्मंवाज्ञात्वापक्काशयस्थितम् । कालविन्निर्हरेत्सद्यःसतिक्तैःक्षीरवस्तिभिः ॥ पयसावासुखोष्णेनसतिक्तेन बिरेचयेत् । भिषगग्निबलापेक्षीसर्पिषा तैलकेनवा ॥

अर्थ—जो पैतिकगुल्म स्निग्ध और उष्ण पदार्थों के सेवन से उत्पन्न हुआ है उस में दस्तावर औषध हित हैं । और जो रूक्षोष्णपदार्थों के सेवन से हुआ है उस में घृतपान बहुत उत्तम है । पित्त वा पित्तज गुल्म जो पक्काशय में स्थित हो उसे उचितकाल में तिक्त औषधियों से संस्कार की हुई क्षीरवस्ति द्वारा तत्काळ निकाल देवै, अथवा तिक्त औषधियों से संस्कार कियेहुए सुखोष्ण दुग्ध को पान कराके विरेचन देवैं अथवा रोगी के अग्नि बल का विचार करके तेल मिलाहुआ घी देकर विरेचन देवै ॥

गुल्म में रक्तमोक्षणविधि ॥

तृष्णाज्वरपरीदाहशूलस्वेदाग्निमार्दवे ।

गुल्मिनामरुचौचापिरक्तमेवावसेचयेत् । छिन्नमूलाविदह्यन्तेनगुल्मायान्तिचक्षयम्॥ रक्तंहिव्यम्लतांयातितच्चनास्तिनचास्ति रुक् । हृतदोषम्परिम्लानंजाङ्गलैस्तर्पि तंरसैः ॥ समाश्वस्तंचशेषार्तंसर्पिषापुन राचरेत् । रक्तपित्तातिवृद्धत्वात्क्रियाम नुपलभ्यवा ॥ यदिगुल्मोविदह्येतशस्त्रंत त्रभिषग्जितम् ।

अर्थ—यदि पितज्वर में तृष्णा, ज्वर दाह, शूल, पसीना, मन्दाग्नि और अरुचि होतौं फस्त खुलवावै । इस तरह गुल्मोंकी जडकाट लेने से बे पकने नहीं पाते हैं किन्तु नष्ट होजाते हैं, रक्तकी अम्लता जाती रहती है और रक्त के न रहने से वेदना भी नहीं रहती ॥

फस्त खोलने से दोषों के दूर होजाने पर रोगी अत्यन्त थकित होजाता है तव उसे जांगळ पशुओं के मांसरस से तर्पित करै, जव वह सावधान होजाय तव बचे-हुए रोग को घृतपान कराके दूर करै ।

रक्तपित के अत्यन्त वढजाने से वा चिकित्साकी सम्यक् अनुपळब्धि से जो गुल्म पकजाय तौ उस में शस्त्र द्वारा रक्त मोक्षणही चिकित्सा है ॥

अपक्व गुल्म के लक्षण ॥

गुरुःकठिनसंस्थानोगूढमांसोत्तराश्रयः ॥ अविवर्णःस्थिरश्चैवह्यपक्वोगुल्मउच्यते।

अर्थ—भारी, कठोराकृति, घने मांस में स्थित, जिसका रंग न विगडा हो, जो अचळ हो वह गुल्मअपक्व होता है ॥

विदह्यमानगुल्मके लक्षण ॥

दाहशूलाग्निसंक्षोभस्वप्ननाशारतिज्वरैः विदह्यमानंजानीयाद्गुल्मंतमुपनाहयेत् ।

अर्थ—जिस गुल्म में दाह, शूल, अ-ग्निसंक्षोभ, निद्रानाश, प्रलाप और ज्वर हो उस गुल्म को विदह्यमान अर्थात पक नेवाला कहते हैं । इसपर लेप करना चाहिये ।

संपक्व गुल्मके लक्षण ।

विदाहलक्षणाल्पत्वेवहिस्तुङ्गेसमुन्नते ॥ श्यावेसरक्तपर्यन्तेसंस्पर्शेवस्तिसन्निभे । निपीडितोन्नतेस्तब्धेसुप्तेतत्पार्श्वपीडना त् ॥ तत्रैवपिण्डितेशूलेसंपक्वंगुल्ममादि शेत् । तत्रधान्वन्तरीयाणामधिकारःक्रि याविधौ ॥ वैद्यानांकृतयोग्यानांव्यधशो धनरोपणैः । अन्तर्भागम्यचाप्येतत्पच्य मानस्यलक्षणम् ॥

अर्थ—विदाह लक्षणों के अल्प होने पर जब गुल्म वाहर की ओर अत्यन्त तुंग और ऊंचा होता है, रंग काला पड जाता है और इसके चारों ओर के किनारे कुछ कुछ लाल होजाते हैं, छूने में परवालसा मालूम हो, हाथ से दवाने पर फिर ऊंचा होजाय, ओरपाससे दावने पर स्तब्ध और सुप्त मालूमहो, एकही स्थान पर गोळासा रहा आवै और वेदना होती हो तव इसे संपक्व समझना चाहिये ।

ऐसे गुल्म रोग की व्यधन, शोधन और रोपण द्वारा चिकित्सा करने का अधिकार सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रों से सम्पन्न धान्वन्तरी

य चिकित्सकों को है अर्थात् उन को है जिन्हों ने धन्वन्तरिके मतके अनुसार व्रणों का चीरना फाडना आदि सीखा है ।

भीतर की ओर को पकने वाले गुल्मके भी येही लक्षण होते हैं । यह अन्तर्विद्रधि के समानही है क्योंकि अन्तर्विद्रधि पकती है और गुल्म नहीं पकता है ।

हृत्क्रोडशूनतान्तःस्थेवहिःस्थेपार्श्वनिर्गतिः पक्वःस्रोतांसिसंक्लिद्यव्रजत्यूर्ध्वमधोऽपिवा॥ स्वयंप्रवृत्तन्तंदोषमुपेक्षेताहिताशनैः । दशाहंद्वादशाहंवारक्षन्भिषगुपद्रवान् ॥ अत ऊर्ध्वमतंपानंसर्पिषःसविशोधनम् । शुद्धं सतिक्तंसक्षौद्रंप्रयोगेसार्पिरिष्यते ॥

अर्थ—अन्तःस्थगुल्म अर्थात् अन्तर्विद्रधि में हृदय और क्रोड़ में सूजन होती है और वहिस्थगुल्म अर्थात वाह्यविद्रधि में पसवाडों से निर्गमन होता है । गुल्म पक्क होकर स्रोतों को गीला कर के ऊपर की ओर वा नीचे के ओर जाता है । जो दोष अपने आप निकलने लगें तौ हितकारी पथ्य वताकर वैद्य को उचित है कि उपद्रवों की रक्षाकरता हुआ इसकी दस वारह दिवस तक उपेक्षा करै । तदुपरान्त संशोधन घृतका व्यवहार करै । इस तरह जब रोगी शुद्ध हो जाय तव तिक्त औषधियों के साथ संस्कार किया हुआ घृत शहत मिलाकर देवै ।

कफजगुल्मका चिकित्सादि वर्णन ।

शीतलैर्गुरुभिःस्निग्धैर्गुल्मेजातेकफात्मके। अवम्यस्याल्पकायाग्नेःकुर्याल्लंघनमादितः ॥

अर्थ—शीतल, भारी और स्निग्ध पदार्थों के अत्यन्त सेवन से जो कफात्मक गुल्म उत्पन्न होता है उस में रोगी वमन के अयोग्य और मन्दाग्नियुक्त होजाता है इस लिये इस में प्रथम लंघन कराना उचित है ।

वमनोपगरोगी ।

मन्दोऽग्निर्वेदनामन्दोगुरुस्तिमितकोष्ठता। सोत्क्लेशाचारुचिर्यस्यसगुल्मीवमनोपगः॥

अर्थ—जिस गुल्मरोगी की अग्नि मन्द हो वेदना भी मन्द हो जिसके कोष्ठ में भारापन और गीलापन होवै, जिसको उत्क्लेश और अरुचि होवै वह रोगी वमन के योग्य होता है ।

उष्णैरेवोपचार्यस्यकृतेवमनलंघने । योज्याचाहारसंसर्गाभेषजैःकटुतिक्तकैः ॥ सानाहंसविबन्धंचगुल्मंकठिनमुन्नतम् । दृष्ट्वादौस्वेदयेद्युक्त्यास्विन्नञ्चविनये द्भिषक् ॥ लंघनोल्लेखनेस्वेदेकृतेऽग्नौ संप्रधुक्षिते । कफगुल्मेपिवेत्कालेसक्षार कटुकंघृतम् ॥ स्थानादपसृतंज्ञात्वाकफ गुल्मंविरेचनैः । सस्नेहैर्वस्तिभिर्वाथशो धयेद्दशमूलकैः ॥

अर्थ—वमन और लंघन कराने के पश्चात् उष्ण, कटु और तिक्त औषधियों को आहार में मिलाकर देवै ॥ आनाह और विवन्धयुक्त गुल्म जो कठोर और ऊंचा हो इस में युक्ति पूर्वक स्वेदन देवै स्वेदन कर्मकेपीछे यह नीचा होजाताहै । लंघन,वमन और स्वेदन के पश्चात् जब अग्नि प्रदीप्त

होजाय तव कफजगुल्म में क्षार और कटु द्रव्यों से संस्कार कियाहुआ घृतपान करावै। ऊपर कहेहुए लंघनादि उपचारों से जो कफ गुल्म अपने स्थान से चलित होजाय तो दशमूल के क्वाथ में सिद्ध किया स्निग्ध विरेचन अथवा स्नेहन वस्ति देकर उसका संशोधन करै।

कफजगुल्म में अन्यप्रयोग ॥

मन्दाग्नावनिलेमूढेज्ञात्वासस्नेहमाशयम्। गुलिकाःचूर्णनिर्यूहाःप्रयोज्याकफगुल्मिनाम् ॥ कृतमूलंमहावास्तुंकठिनंस्तिमितंगुरुम्। जयेत्कफकृतंगुल्मंक्षारारिष्टाग्निकर्मभिः ॥

अर्थ—कफ गुल्मरोगी की जो अग्नि मन्द पड़गई हो, अधोवायु रुकगई हो और अमाशय स्निग्ध हो तो उसे गोळी, चूर्ण और क्वाथादिक देवै ॥

ऐसा कफगुल्म जो जड पकड गया हो, जो वहुत वीच में फैलगया हो, कड़ाहो, गीलाहो, भारी हो उसको क्षार, अरिष्ट और अग्निकर्म द्वारा शान्त करै।

गुल्ममें क्षारविधि।

दोषप्रकृतिगुल्मन्तुयोगंवुध्वाकफोल्वणे। वलदोषप्रमाणज्ञःक्षारंगुल्मेप्रयोजयेत् ॥ एकान्तरंद्व्यन्तरंवात्र्यहंविश्रम्यवापुनः। शरीरवलदोषाणांवृद्धिक्षपणकोविदः ॥ श्लेष्माणंमधुरंस्निग्धंमांसक्षीरघृताशिनः। भित्वाभित्वाशयान्क्षारःक्षरत्वात्क्षारयत्यधः ॥

अर्थ—कफाधिक्य गुल्म में दोष, प्रकृति, गुल्म और योग को देखकर क्षार का प्रयोग करै फिर एक दिन दो दिन अथवा तीन दिन ठहरकर देखै कि शरीर के वल और दोषों में क्या अन्तर हुआ तव उसी के अनुसार फिर प्रयोगकरै।

क्षार अपनी क्षरणशक्ति से मांस दूध और घी खाने वाले मनुष्य के आशय को भेदकर मधुर स्निग्ध कफ को अधोमार्ग द्वारा निकाल देता है ॥

गुल्म में अरिष्ट ॥

मन्देऽग्नावरुचौसात्म्येमद्येसस्नेहमश्नताम्। प्रयोज्यामार्गशुद्ध्यर्थमरिष्टाःकफगुल्मिनाम् ॥

अर्थ—स्निग्ध भोजन करने वाले कफ गुल्मरोगी की यदि अग्निमन्द पड़गई हो अरुचि हो वा मदिरापान सात्म्य हो तौ मार्ग की शुद्धि के निमित्त अरिष्ट का प्रयोग करै।

लङ्घनोल्लेखनैःस्वेदैःसर्पिष्पानैर्विरेचनैः। वस्तिभिर्गुलिकाचूर्णक्षारारिष्टगणैरपि ॥ श्लैष्मिकःकृतमूलत्वाद्यस्यगुल्मोनशाम्यति। तस्यदाहोहृतेरक्तेशरलोहादिभिर्मतः। औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याच्चशमयेदग्निर्गुल्मेकफानिलौ। तयोःशमाच्चसंघातोगुल्मस्यविनिवर्तते ॥

अर्थ—लंघन, वमन, स्वेदन, घृतपान, विरेचन, वस्तिकर्म, गोली, चूर्ण, क्षार और अरिष्ट इन में किसी का प्रयोग करने से भी वह श्लैष्मिक गुल्म शान्त न हो जो जड़ पकड़ गया है तौ प्रथम फस्त खोल-

कर फिर शर वा लोह से दग्ध करना उचित है । अग्नि अपनी उष्णता और तीक्ष्णता से गुल्मरोग में कफ और बादी को शान्त करदेती है और इन दोनों के शमन होने से गुल्म का गोला नष्ट हो जाता है ।

दाहेधान्वन्तरीयाणामत्रापिभिषजांबलम् । क्षारप्रयोगेभिषजांक्षारतन्त्रविदांबलम् ॥ व्यामिश्रदोषैर्व्यामिश्रएषएवक्रियाक्रमः । सिद्धानतःप्रवक्ष्यामियोगान् गुल्मनिवर्हणान् ॥

अर्थ—धन्वन्तरि के मत के अनुसार जो अग्नि कर्मादि जानते हैं वेही दाह कर सकते हैं और क्षार कर्म को जानने वाले क्षारका प्रयोग कर सकते हैं ।

जो गुल्म दो दो दोषों से उत्पन्न है उन में मिलीहुई क्रिया करना चाहिये।

अव हम गुल्मनाशक अनुभूत प्रयोगों का वर्णन करते हैं ।

त्र्यूषणादि घृत ।

त्र्यूषणंत्रिफलाधान्यंविडङ्गाचव्यचित्रकैः। कल्कीकृतैःघृतंसिद्धंसक्षीरंवातलमनुत् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, धनियां, वायविडंग, चव्य, चीता इन सव को पीसकर लुगदी वनावै उसको दूध में मिळाकर घृत डालकर पकावै यह घृत वातगुल्म को दूर करता है ।

त्र्यूषणादि घृत की अन्याविधि ।

एतएवचकल्काःस्युःकषायःपञ्चमूलिकः। द्विपञ्चमूलिकोवाथतद्घृतंगुल्मनुत्परम् ॥

अर्थ—ऊपर कही औषधियों का कल्क और पंचमूळ वा दशमूलके क्काथ में घृत को सिद्ध कर के देवै यह घृत भी गुल्म नाशक है ।

अन्यप्रयोग ।

षट्पलंवापिवेत्सर्पिर्यदुक्तंराजयक्ष्मणि । प्रसन्नयावाक्षीरार्थःसुरयादाड़िमेनवा । दध्नःसरेणवाकार्य्यंघृतंमारुतगुल्मिनाम् ॥

अर्थ—राजयक्ष्मा में जो षट्पल घृत कहा है उसे दूध के वदले में प्रसन्ना,सुरा, दाडिमरस वा दही की मळाई के साथ देवै तौ वातगुल्म शान्त होता है ।

हिङ्ग्वादि घृत ।

हिंगुसौवर्चलाजाजीविड्दाड़िमदीप्यकौ। पुष्करव्योषधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः ॥ शठीवचाजगन्धैलासुरसैश्चविपाचितम् । शूलानाहहरंसर्पिर्दध्नाचानिलगुल्मिनाम् ।

अर्थ—हींग, सहचलनमक, जीरा,विट्लवण, अनार, अजवायन, कूठ, त्रिकुटा,धनियां अमलवेत, जवाखार, चीता, कचूर, वच, अजगन्ध, इलायची, सुरसातुलसी इन को पीसकर घी डालकर दही के साथ पकावै यह घृत बातरोगियों के शूल और आनाह को दूर करता है ॥

हवुषादि घृत ।

हवुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः। साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद्घृतम् ॥ मातुलुङ्गदधिक्षीरकोलमूलकदाड़िमैः। रसैस्तद्वातगुल्मघ्नंशूलानाहविमोक्षणम् ॥ योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरा

न् । वातहृत्पार्श्वशूलञ्चघृतमेतद्व्यपोहति।

अर्थ—हाऊवेर, त्रिकुटा, छोटा जीरा, चव्य, चीता, सेंधानमक, कालाजीरा, पीपलामूल, अजवायन इन सब को पीस लेवै और विजौरे का रस, दही, दूध, वेरकारस, मूली का रस, अनारका रस इन सब को मिलाकर घृत पकावै यह घृत वातगुल्म शूल आनाह योन्यर्श, ग्रहणी दोष, श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर, वातरोग और पार्श्वशूल सबको नष्ट कर देता है।

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पल्याःपिचुरध्यर्धोदाडि़माद्द्विपलंप लम् । धान्यात्पञ्चघृतात्शुण्ठ्याकर्षंक्षीरंचतुर्गुणम् ॥ सिद्धमेतैर्घृतंसद्योवातगुल्मंचिकित्सिति । योनिशूलंशिरःशूलमर्शांसिविषमज्वरम् ॥

अर्थ—पीपळ तीन तोला, अनार आठ तोला, धनियां चार तोला, घृत वीस तोला, सौंठ दो तोला और दूध अस्सी तोला इन सब को सिद्ध करने से जो घृत तयार होता है वह बातगुल्म को तत्काल नष्ट कर देता है। इसी घृतके सेवन से योनिशूल, शिरःशूल, अर्श, विषमज्वर दूर होजाते हैं।

घृतानामौषधगुणायएतेपरिकीर्तिताः । तेचूर्णयोगावर्त्यस्ताःकषायास्तेचगुल्मिनाम् ॥

अर्थ—घृत सिद्ध करने के निमित्त जो औषधों के गुण ऊपर वर्णन किये गये हैं, ये ही औषधें चूर्ण, वर्त्ति और क्वाथ द्वारा गुल्म रोगियों को दी जाती है।

वर्त्तिप्रयोग ।

कोलदाडि़मघर्माम्बुसुरामण्डाम्लकाञ्जिकैः । शूलानाहनुदःपेयाबीजपूररसेन वा ॥ चूर्णानिमातुलुंगस्यभावितस्यरसेनवा । कुर्याद्वर्त्तीःसगुडिकागुल्मानाहार्तिशान्तये ॥

अर्थ—वेरका रस, अनारका रस इन को गरमजल सुरामण्ड, अम्लकांजीवा विजौरे के रस के साथ पान करने से आनाह दूर होता है। अथवा विजौरे के चूर्ण में विजौरे के रसकी भावना देकर वर्ती वा गोली बनाकर सेवन करै तौ गुल्म, आनाह और अर्त्ति ये रोग शान्त होजाते हैं।

हिङ्ग्वादि चूर्ण विधि ।

हिंगुत्रिकटुकांपाठांहबुषामभयांशटीम् । अजमोदाजगन्धेचतिन्तिडीकाम्लवेतसौ॥ दाडि़मंपुष्करंधान्यमजाजींचित्रकंवचाम्। द्वौक्षारौलवणेद्वेचचव्यंचैकत्रयोजयेत् ॥ चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनत्ययम् । प्राग्भक्तमथवापेयंमद्येनोष्णोदकेनवा ॥ पार्श्वहृद्वस्तिशूलेषुगुल्मेवातकफात्मके । आनाहेमूत्रकृच्छ्रेवाशूलेचगुदयोनिजे ॥ ग्रहण्यर्शोविकारेषुप्लीह्निपाण्डवामयेऽरुचौ । उरोविबन्धेकासेचहिक्काश्वासेगलग्रहे ॥ भावितंमातुलुङ्गस्यचूर्णमेतद्रसेनवा बहुशोगुलिकाःकार्याःकार्मुकाःस्युस्ततोऽधिकम् ॥

अर्थ—हींग, त्रिकुटा, पाठा, हाऊवेर, हरड, शटी, अजमोद, अजगंध, इमली, अमलवेत, अनार, कूठ, धनिया, कालाजीरा

चीता, वच, दोनों क्षार, दोनों नमक, और चव्य इन सबका चूर्ण कूट लेवै। इस चूर्ण को अनुपानके साथ सेवन करै अथवा भोजन करनेसे पहिले मद्यवा उष्णजलके साथलेवै इस चूर्ण के सेवन करनेसे पार्श्वशूल,हृत्शूल,वस्ति शूल,वातकफात्मक गुल्म, आनाह,मूत्रकृच्छ्र गुदशूळ, योनिशूल, ग्रहणी विकार, अर्श-विकार, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि, उरो-विवन्ध, खांसी, हिचकी, श्वास, गलग्रह दूर होजाते हैं। इसी चूर्ण को विजौरे के रस में घोटकर गोलियां वनालेवै ये गोळियां चूर्ण की अपेक्षा भी अधिक गुणकारी हैं।

वात गुल्म में अन्य प्रयोग।

मातुलुङ्गरसोहिंगुदाडिमंविड़सैन्धवे ।
सुरामण्डेनपातव्यंवातगुल्मरुजापहम् ॥

अर्थ—विजौरे का रस, हींग, अनार विडनमक, सेंधानमक इन को सुरामण्ड के साथ पान करने से वातगुल्म नष्ट होजाता है

शट्यादिचूर्ण।

शटीपुष्करहिंग्वम्लवेतसक्षारचित्रकान् ॥ धान्यकञ्चयमानीञ्चविडङ्गसैंधवंवचा म् ॥ सचव्यपिप्पलीमूलमजगन्धःसदा डिमम् । अजाजीञ्चाजमोदाश्चचूर्णं कृत्वाप्रयोजयेत् ॥ रसेनमातुळङ्गस्यमधु युक्तेनवापुनः । भावितंगुडिकांकृत्वासु पिष्टांकोलसम्मिताम् । गुल्मंप्लीहानमा नाहंश्वासंकासमरोचकम् । हिक्कांहृद्रोग मर्शांसिविविधान्शिरसोरुजान् ॥ पांडु वामयंकफोत्क्लेशंसर्वजाश्चप्रवाहिकाम्। पार्श्वहृद्वस्तिशूलश्चगुडिकैषाव्यपोहति ॥

अर्थ—शटी, पुष्कर, हींग, अमलवेत जवाखार, चीता, धनियां अजवायन, वाय विंडग, सेंधानमक, वच, चव्य पीपलामूल, अजगंध, अनार, कालाजीरा अजमोद, इन का चूर्ण बनाकर सेवन करै। अथवा विजौरे के रसकी भावना देकर शहत मिलावै और छोटे वेर की वरावर गोली वनावै यह गोली गुल्म, प्लीहा, आनाह, श्वास, खांसी, अरुचि, हिचकी, हृद्रोग अर्शरोग शिरोवेदना, पाण्डुरोग, कफोत्क्लेश, सब प्रकार के प्रवाहिका, पार्श्वशूल, हृद्शूल, वस्तिशूल रोगों को दूर करती है।

अन्यप्रयोग।

नागरार्द्धपलंपिष्ट्वाद्वेपलेलुञ्चितस्यच ।
तिलस्यैकंगुड़पलंक्षीरेणोष्णेनवापिवेत् ॥
वातगुल्ममुदावर्तयोनिशूलञ्चनाशयेत्।

अर्थ—सोंठ दो तोले, विना छिलके के तिल आठ तोले, गुड़ चार तोले इन को गरम दूध के साथ पान करै तौ वातगुल्म, उदावर्त्त और योनिशूल दूर होजाते हैं।

अन्यप्रयोग।

पिवेदेरण्डकंतैलंवारुणीमण्डामिश्रितम्॥
तदेवतैलंपयसावातगुल्मीपिवेन्नरः । श्ले ष्मण्यनुबलेपूर्वमतंपित्तानुगेपरम् ॥

अर्थ—श्लेष्मानुवंधी वातगुल्म में वारुणी मण्डामिश्रित अरंडका तेल पान करै और जो पित्तानुवन्ध होवै तौ दूध के साथ एरंड का तेल पान करै।

लहसन का दूध।

साधयेत्सिद्धशुष्कस्यलशुनस्यचतुष्पल

म् । क्षीरेजलाष्टगुणितेक्षीरशेषञ्चनापिबेत् ॥ वातगुल्ममुदावर्त्तंगृद्ध्रसींविषमज्वरम् । हृद्रोगंविद्रधींशोषंसाधयत्याशुतत्पयः ॥

अर्थ—सिद्ध कर के सुखाये हुए ल्हसन चार पल लेकर दूध और उससे अठगुना जल मिलाकर पकावै जब पानी जलजाय और दूध शेष रह जाय तव इस को छान कर पीवै तौ वातगुल्म, उदावर्त्त, गृध्रसी, विषम ज्वर, हृद्रोग, विद्रधी, शोष ये सब रोग दूर होजाते हैं।

तैलंप्रसन्नागोमूत्रमारनालंयवाग्रजः ।
गुल्मंजठरमानाहपीतमेकत्रसाधयेत् ॥

अर्थ—तेल, वारुणीमण्ड, गोमूत्र, कांजी जवाखार इन को सिद्ध करके पीवै तौ गुल्म रोग, जठररोग और आनाह दूर होजाते हैं,

शिलाजीत का प्रयोग ॥

पञ्चमूलकषायेणसक्षीरेणाशिलाजतु ।
पिवेत्तस्यप्रयोगेणवातगुल्मात्प्रमुच्यते ॥

अर्थ—पञ्चमूल के क्वाथ और दूध के साथ शिलाजीत का सेवन करै तौ इस प्रयोग से वातगुल्म नष्ट होजाते हैं।

अन्यप्रयोग ॥

वाट्यंयूषेणपिप्पल्यामूलकानांरसेनवा ।
भुक्त्वास्निग्धमुदावर्त्ताद्वातगुल्माद्विमुच्यते ॥

अर्थ—पीपल के क्वाथ वा मूली के रसके साथ खरैटी का सेवन करै तो उदावर्त और बात गुल्मादि रोग दूर होजाते हैं ॥

गुल्ममें वस्तिविधान ॥

शूलानाहविबन्धार्तंस्वेदयेद्वातगुल्मिनम् । स्वेदैःस्वेदविधावुक्तैर्नाड़ीप्रस्तरशङ्करैः ॥ बस्तिकर्मपरंविद्यात्गुल्मघ्नंतद्धिमारुतम् । स्वेस्थानेप्रथमञ्जित्वासद्योगुल्ममपोहति । तस्मादभीक्ष्णशोगुल्मानिरूहैःसानुवासनैः । प्रयुज्यमानैःशाम्यन्तिवातपित्तकफात्मकाः ॥ गुल्मघ्नाविविधादृष्टाःसिद्धाःसिद्धिषुवस्तयः ।

अर्थ—वातगुल्मरोगी यदि शूल, आनाह और विवन्ध से पीडित होतो उसे स्वेदाध्याय में कहीहुई नाडी, प्रस्तर और शंकर स्वेद द्वारा स्वेदन करै। वस्तिकर्म इस वातज गुल्म में बहुत श्रेष्ठ है, यह वायु को उसके निज स्थान में जीतकर गुल्म को दूर कर देता है। इसलिये वारवार निरूहण और अनुवासन वास्तियोंका प्रयोग करने से वातज, पित्तज और कफजगुल्म शान्त होजाते हैं। सिद्धिस्थान में अनेक प्रकार की गुल्मनाशक अनुभूत वास्तियां वर्णन कीगई हैं ॥

गुल्मपर तैलविधान ॥

गुल्मघ्नानिचतैलानिवक्ष्यन्तेवातरोगिके ॥
तानिमारुतगुल्मेषुपानाभ्यङ्गानुवासनैः ।
प्रयुक्तान्याशुसिद्धन्तितैलंह्यनिलजित्वरम् ॥

अर्थ—वातरोगाध्याय में सव प्रकार के गुल्मनाशकतैल वर्णन किये गये हैं। वात गुल्म में पान, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा इन तैलों का प्रयोग करने से वात गुल्म वहुत शीघ्र नष्ट होजाता है। ये तेल विशेष करके वातनाशक होते हैं ॥

गुल्मपर घृतविधान ॥

नीलिनीचूर्णसंयुक्तंपूर्वोक्तंघृतमेववा। समलायप्रदेयंस्याच्छोधिनंवातगुल्मिके नीलिनीत्रिवृतादन्तीपथ्याकाम्पिल्यकैः सह। शोधनार्थंघृतंदेयंसविडक्षारनागरम्।

अर्थ—उस वातगुल्मरोगी को जो मलयुक्त होता है नीलिनी का चूर्ण मिलाहुआ घृत अथवा पूर्वोक्तघृत शोधन के निमित्त देनाचाहिये ॥

नीलिनी, निसोथ, दन्ती, हरड, कवीला, विड्नमक, जवाखार और सोंठ इनकेसाथ सिद्ध कियाहुआ घृत संशोधन के निमित्त देवै ॥

नीलिन्यादिघृत ॥

नीलिनींत्रिवृतांरास्नांबलांकटुकरोहिणीम् पचेद्विडङ्गंव्याघ्रीञ्चपालिकानिजलाढके ॥ तेनपादावशेषेणघृतप्रस्थंविपाचयेत्। दध्नःप्रस्थेनसंयोज्यसुधाक्षीरपलेन च ॥ ततोघृतपलंदद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम्। जीर्णेसम्यग्विरिक्तञ्चभोजयेद्रसभोजनम् ॥ गुल्मकुष्ठोदरव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वरान्। श्वित्रंप्लीहानमुन्मादं घृतमेतद्व्यपोहति ॥

अर्थ—नीलिनी, निसोथ, रास्ना, खरैटी, कुटकी, वायविडंग, कटेरी, इन सबको एकएक पललेवै और एक आढक जल में इन्हें पकावै जब चौथाई जल रहजाय तब इसमें एकप्रस्थ दही और चार तोले सेहुंड कादूध मिलाकर एकप्रस्थ घी पकावै ॥ इस घृत में से एकपल घृत, यवागूमण्ड में मिलाकर रोगी को देवै। जब औषध पचजाय और रोगी को अच्छी तरह विरेचन होजाय तब मांसरसका भोजन करावै। यह घृत गुल्म, कोढ, उदररोग, व्यंग, शोफ, पाण्डुरोग, ज्वर, श्वित्रकुष्ठ, प्लीहा और उन्माद रोगों को शान्तकरता है।

वातगुल्म में पथ्यादि विधि ॥

कुक्कुटाश्चमयूराश्चतित्तिरिक्रौञ्चवर्त्तकाः। शालयोमदिरासर्पिर्वातगुल्मभिषग्जितम्॥ हितमुष्णंद्रवंस्निग्धंभोजनंवातगुल्मिनाम्। समण्डवारुणीपानंपक्वंवाधान्यकैर्जलम् ॥ मन्देऽग्नौवर्द्धतेगुल्मोदीप्तेचाग्नौप्रशाम्यति। तस्मान्नातिसौहित्यंकुर्यान्नातिविलंघितम् ॥ सर्वत्रगुल्मेप्रथमेस्नेहस्वेदोपपादिते। याक्रियाक्रियतेसिद्धिंसायाति नविरूक्षिते ॥

अर्थ—मुर्गा, मोर, तीतर, क्रौंच, वटेर, शालीचांवल, शराव, और घृत ये सब वात गुल्म में हित हैं। इसरोग में उष्ण, पतला और स्निग्ध भोजन हित हैं। मण्डयुक्त मदिरा वा धनियां डालकर औटाया हुआ जलभी हित है। अग्नि के मन्द होनेपर गुल्म वढता है और प्रदीप्त होनेपर शान्त होता है, इसलिये न पेटभरकर खानाही चाहिये न लंघनही करना चाहिये। गुल्मरोगों में प्रथमही स्नेहन स्वेदन कर्म करके जो क्रियाकी जाती है उससे रोग जाता है और जो क्रिया रूक्ष व्यक्ति की कीजाती है वह निष्फल होती है ॥

पित्तगुल्मकी चिकित्सा ॥

भिषगात्ययिकम्बुद्ध्वापित्तगुल्ममुपाचरेत् । वैरेचनिकसिद्धेनपयसासर्पिषापिवा ।

अर्थ—पित्त गुल्म को आत्ययिक समझकर चिकित्सा करना चाहिये इस रोग में विरेचनकर्त्ता द्रव्यों के साथ सिद्ध किया हुआ घृत वा दूध वहुत हितकारी है ।

रोहिण्यादि घृत ।

रोहिणीकटुकानिम्बंमधुकंत्रिफलात्वचः। कार्षिकात्रायमाणाचपटोलात्रिवृतापले॥ द्विपलञ्चमसूराणांसाध्यमष्टगुणेऽम्भसि घृताच्छेषंघृतसमंसर्पिषश्चचतुष्पलम् ॥ पिवेत्संमूर्च्छितंतेनगुल्मःशाम्यतिपैत्तिकः ज्वरस्तृष्णाचशूलञ्चभ्रममूर्च्छारुचिस्तथा ॥

अर्थ—कुटकी, नीम की छाल, महुआ, त्रिफळाका छिलका, और त्रायमाणा ये सब एक एक पललेवै, परवल और निशोथ दो दो पल ले दो पल मसूर इन सवको अठगुने जल में औटावै, जब घृत के समान शेष रह जाय तव छान कर इस में चारपल घृतको पकावै इस घृत को सेवन करने से पैत्तिक गुल्म, ज्वर तृष्णा, शूल, भ्रम, मूर्च्छा और अरुचि ये सव शान्त होजाते हैं ।

त्रायमाणाद्यघृत।

जलेदशगुणेसाध्यन्त्रायामाणाचतुष्पलम् । पञ्चभागस्थितंपूतंकल्कैःसंयोज्य कार्षिकैः ॥ रोहिणीकटुकामुस्तेत्रायमाणादुरालभा । कल्कैस्तामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥ रसस्यामलकानाञ्चक्षीरस्यचघृतस्यच । पलानिपृथगष्टौदत्त्वासम्यग्विपाचयेत् ॥ पित्तरक्तभवंगुल्मंवीसर्पंपैत्तिकंज्वरम् । हृद्रोगंकामलांकुष्ठंहन्यादेतद्घृतोत्तमम् ॥

अर्थ—चारपळ त्रायमाणा को दसगुने जल में औटावै, जब पांचवांभाग जलका रहजाय तव उसे उतारकर छान ले फिर इस में कुटकी मोथा त्रायमाणा, जवासा, भूय आंवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन, उत्पळ, इन को पीसकर उस में डाल दे और आंवले का रस आठ पल, दूध आठ पल, घृत आठपल ये सब मिलाकर अच्छी तरह से पकावै । इस घृत के सेवन करने से पैतिक गुल्म, रक्तजगुल्म विसर्प, पैतिक ज्वर, हृद्रोग कामला, कोढ ये सव रोग दूर होजाते हैं।

आंवलकादि घृत ।

रसेनामलकेक्षूणांघृतपादंविपाचयेत् । पथ्यापादम्पिवेत्सर्पिस्तत्सिद्धंपित्तगुल्मनुत् ॥

अर्थ—ईख और आंवले के रससे चौथाई घी और घी से चौथाई हरडका चूरण इन को मिलाकर औटावै । इस घृत का सेवन करने से पैतिकगुल्म जाता रहता है ।

द्राक्षादि घृत ।

द्राक्षांमधुकंखर्जूरंविदारींसशतावरीम् । परूषकाणित्रिफलांसाधयेत्पलसंमिताम् ॥ जलाढकेपादशेषेरसमामलकस्यच। घृतमिक्षुरसंक्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥

साधयेत्तंघृतंसिद्धंशर्कराक्षौद्रपादिकम् ॥ प्रयोगात्पित्तगुल्मघ्नंसर्वपित्तविकारनुत्॥

अर्थ—दाख, महुआ, खिजूर, विदारी कन्द, सितावर, फालसे और त्रिफला ये सब एक एक पल लेवै और एक आढक जल में भरकर अग्निपर रखदे जब चौथाई शेष रहजाय तव उतार कर छानले। फिर इस में आंवले का रस, घी, ईखकारस दूध और घृत से चौथाई हरडका कल्क डालकर सव का पाक कर ले। जब घी तयार होजाय तव उस में चौथाई चीनी और शहत डालकर सेवन करै तौ पितगुल्म तथा पितसे उत्पन्न होने वाले सम्पूर्ण विकार नष्ट होजाते हैं।

वासाघृत।

वृषंसमूलमापोथ्यपचेदष्टगुणेजले। शेषेऽष्टभागेतस्यैवपुष्पकल्कंप्रदापयेत् ॥ तेन सिद्धंघृतंशीतंसक्षौद्रंपित्तगुल्मनुत्। रक्तपित्तज्वरश्वासकासहृद्रोगनाशनम् ॥

अर्थ—अडूसाको जड़ समेत कूटकर अठगुने जल में क्काथ करै जब आठवां भाग जल का रहजाय तव उसमें उसी के फूलोंका कल्क डालै और इस में घी डालकर पकावै। फिर ठंडा होने पर शहत मिलाकर इसका सेवन करै तौ पितगुल्म, रक्तपित, ज्वर, श्वास, खांशी और हृदयरोग सब शान्त होजाते हैं।

दूसरा त्रायमाण घृत।

द्विपलन्त्रायमाणायाजलद्विप्रस्थसाधितम् अष्टभागस्थितंपूतंकोष्णंक्षीरसमंपिवेत् ॥ पिवेदुपरितस्योष्णंक्षीरमेवयथाबलम्। तेननिर्हृतदोपस्यगुल्मःशाम्यतिपैत्तिकः॥

अर्थ—दो पल त्रायमाणा को दो प्रस्थ जळ में औटावै, जब अष्टमभाग शेष रह जाय तव छानकर वरावर का दूध मिला कर कुछ गरम गरम का पान करै। फिर यथाशक्ति ऊपरसे गरम दूध पीवै, ऐसा करने से दोष दूर होकर पितजगुल्म शान्त होजाता है।

पैतिक गुल्म में अन्य उपचार।

द्राक्षाभयारसंगुल्मेपैत्तिकेसगुडंपिवेत्। लिह्यात्कम्पिल्यकंवापिविरेकार्थमधुद्रवम्॥शूलप्रशमनोऽभ्यङ्गःसर्पिषापित्तगुल्मिनाम्। चन्दनाद्येनतैलेनतैलेनमधुकस्यवा। ये चपित्तज्वरार्तानांसतिक्ताःक्षीरवस्तयः हितास्तेपित्तगुल्मिभ्योवक्ष्यन्तेयेचसिद्धिषु ॥ शालयोजाङ्गलंमांसङ्गवाजीपयसीघृतम्। खर्जूरामलकंद्राक्षादाडिमंसपरूषकम् ॥ आहारार्थेप्रयोक्तव्यंपानार्थेसलिलंशृतम् ॥ बलाविदारीगन्धाद्यैः पित्तगुल्मचिकित्सितम् ॥ आमान्वये पित्तगुल्मेसामेवाकफवातिके। यवागूभिःखडैर्यूषैःसन्धुक्ष्योऽग्निर्विलङ्घिते। शमप्रकोपौदोषाणांसर्वेषामग्निसंश्रितौ। तस्मादग्निंसदारक्ष्येन्निदानानिच वर्जयेत् ॥

अर्थ—पैत्तिकगुल्म में विरेचन के लिये किसमिस, हरड और गुडका क्वाथ पीवै, अथवा कवीले में शहत डालकर चाटै। पितगुल्म रोगियों के शूलनाश करने को घृतका अभ्यंग, तथा चन्दनाद्य तैल वा मुलहटी के तैलका अभ्यंग करै। पितज्वरा-

तेरोगियों के लिये जो तिक्त द्रव्यों की क्षीर वस्ति, तथा वे वास्तियांजो सिद्ध स्थान में बर्णन की जायँगी ये सब पितगुल्म में हितकारी होती हैं। शाळीचांवल, जांगल पशुओं का मांस, गौवकरी का दूध घी, खिजूर, आंवला, दाख, अनार, फालसा, इनका पथ्य देवै और पीने के लिये औटायाहुआ जलदेवै। खरैटी और विदारीगन्धादि गणोक्त ओषधियों द्वारा पित गुल्मकी चिकित्सा कीजाती है। आमान्वित पितगुल्म में और आमान्वित कफवात गुल्म में लंघन कराके यवागू और खड्यूषों का सेवन कराके अग्नि को प्रदीप्त करै। सम्पूर्ण दोषोंकी शान्ति वा प्रकोप अग्नि के आश्रित हैं इसलिये अग्नि की समानता के लिये सदा प्रयत्न करना चाहिये और जिनकारणोंसे रोग उत्पन्न हुआहै उन को सदा त्याग देना चाहिये।

कफगुल्मका चिकित्साक्रम ॥

वमनार्हायवमनंप्रदद्यात्कफगुल्मिने । स्निग्धस्विन्नशरीरायगुल्मेशैथिल्यमागते परिवेष्ट्यप्रदीप्तास्तुबल्वजानथवाकुशान् । भिषक्कुम्भेसमावाप्यगुल्मेघटमुखङ्क्षिपेत् ॥ सङ्गृहीतोयदागुल्मस्तदाघटमथोद्धरेत् । वस्त्रान्तरंततःकृत्वाभिन्द्याद्गुल्मप्रमाणवित्॥ विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभंप्रपीडनैः । मृद्गीयाद्गुल्ममेवैकं नत्वन्त्रहृदयंस्पृशेत् ॥

अर्थ—वमनोपयोगी कफगुल्मरोगी को बमन देवैं। स्नेहन और स्वेदन देने से जब गुल्म शिथिल पडजाय तब गुल्म स्थानपर वस्त्र लपेट देवै, फिर एक घडे में वल्वजतृण वा कुशाकी आग जलाकर गुल्म स्थान मे उस घडेका मुख लगादेवै, जब गुल्म इकट्ठा होजाय तब घडे को उठाले और वस्त्र को हटाकर गुल्मका फैलाव वा विस्तार देखकर उसका भेदन करै, तथा विमार्ग, अजपद और आदर्श इनमें से किसीएक शस्त्र से केवल गुल्मही का प्रपीडन करै, परन्तु आंतों वा हृदय पर किसी प्रकार का आघात न होने पावै।

कफगुल्म में स्वेदन विधि।

तिलैरण्डातसीवीजसर्षपैःपरिलिप्यच । श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैःसुखोष्णैःस्वेदयेद्भिषक् ॥

अर्थ—तिल, अरण्ड, अलसी और सरसों का लेप करके ऊपर से सुहाताहुआ गरम लोहे का पात्र फेर कर स्वेदन करै ॥

दशमूली घृत।

सव्योषक्षारलबणंदशमूलीशृतंघृतम् । कफगुल्मञ्जयत्याशुसहिंगुबिड़दाड़िमम् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, जवाखार, सेंधानमक, और दशमूल इन के क्वाथ में घृत को पकावै इस घृतको हींग, विडनमक और अनारके रस के साथ सेवन करै तौ कफगुल्म शीघ्र ही जाता रहता है।

भल्लातकादि घृत।

भल्लातकानांद्विपळंपञ्चमूलंपलोन्मितम् । साध्यंविदारीमन्धाद्यमापोथ्यसलिलाढकैः ॥ पादशेषेरसेतस्मिन्पिप्पलींनागरं

बचाम् । विड्ङ्गसैन्धवंहिंगुयावशूकंविडं शटीम् ॥ चित्रकंमधुकंरास्नाम्पिष्ट्वाकर्ष समंभिषक् । प्रस्थञ्चपयसःकृत्वाघृतप्र स्थंविपाचयेत् ॥ एतत्भल्लातकघृतंकफ गुल्महरंपरम् । प्लीहपाण्ड्वामयश्वासग्रह णीरोगकासनुत् ॥

अर्थ—शुद्ध किये हुए भिलाये दो पल, पञ्चमूलका प्रत्येक द्रव्य एक एक पल, और विदारीगन्धादिद्रव्य इन को कूटकर एक आढक जल में औटावै, जब चौथाई शेष रहजाय तब उस में पीपल, सोंठ, वच, वायविडंग, सेंधानमक, हींग, जवाखार, विड्नमक, शटी, चीता, मुलहटी, रास्ना, प्रत्येक एक एक कर्ष, एक प्रस्थ दूध, एक प्रस्थ घी इन सब को मिलाकर पकावै । यह भल्लातकघृत कफगुल्म के दूर करने में अत्यन्त उत्तम है तथा प्लीहा, पाण्डु रोग, श्वास और ग्रहणी रोगों को भी दूर करता है ।

पञ्चकोल घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः। पलिकैःसयवक्षारैःघृतप्रस्थंबिपाचयेत् ॥ क्षीरप्रस्थञ्चतत्सर्पिर्हन्तिगुल्मंकफात्मकम्। ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंप्लीहकासज्वरापहम् ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता सोंठ, और जवाखार एक एक पल लेवै और इस में एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, यह घृत कफगुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, खांसी और ज्वर इनको दूर करता है ।

मिश्रकस्नेह ।

त्रिवृतांत्रिफलांदन्तींदशमूलंपलोन्मितम्॥ जलेचतुर्गुणेपक्त्वाचतुर्भागस्थितंरसम् ॥ सर्पिरेरण्डजंतैलंक्षीरञ्चैकत्रसाधयेत् । ससिद्धोमिश्रकस्नेहःसक्षौद्रःकफगुल्मनु त् ॥ कफवातविबन्धेषुकुष्ठप्लीहोदरेषुच । प्रयोज्योमिश्रकःस्नेहोयोनिशूलेषुचाधि कम् ॥

अर्थ—निसोथ, त्रिफला, दन्ती और दशमूल इन को एक एक पल लेकर चौगुने जल में पकावै जब चौथाई रहजायतब इसको छानकर इस में घी, अंडीका तेल और दूध मिलाकर पकावै । इस तरह यह मिश्रक स्नेह तयार होता है,इस को शहत मिळाकर सेवन करने से कफगुल्म, कफ, वात, विवन्ध, कुष्ठ, प्लीहा और उदररोग जाते रहते हैं ।

कफगुल्ममें वैरेचनिक औषध ।

यदुक्तंवातगुल्मघ्नंस्रंसननीलिनीघृतम् । द्विगुणंतद्विरेकार्थम्प्रयोज्यंकफगुल्मिनाम्॥ सुधाक्षीरद्रवेचूर्णंत्रिवृतायाःसुभावितम् । कार्षिकंमधुसर्पिर्भ्यांलीढ्वासाधुविरि च्यते ॥

अर्थ--वातगुल्म में जोरेचनिक नीलिनी घृत वर्णन किया गया है उसकी दूनी मात्रा कफगुल्म में विरेचन के लिये देवै । अथवा त्रिवृताके चूर्ण में सेहुंड के दूधकी भावना देकर घी और शहत मिलाकर एक कर्ष चाटै तौ उस से अच्छी तरह विरेचन होजाता है ।

हरीतक्यादि प्रयोग ।

जलद्रोणेविपक्त्व्याविंशतिःपञ्चचाभयाः दन्त्याःपलानितावन्तिचित्रकस्यतथैव चअष्टभागस्थितंतञ्चरसंपूतमाधिक्षिपेत् दन्तीसमङ्गुडंपूतेत्क्षिपेत्तलाभयाश्वताः ॥ तैलार्धकुडवञ्चैवत्रिवृतायाःचतुष्पलम्। चूर्णितंपलमेकञ्चपिप्पलीविश्वभेषजम्। तत्साध्यंलेहवच्छीतेतस्मिंस्तैलममंमधु। क्षिपेच्चूर्णपलञ्चैकन्त्वगेलापत्रकेशरान् ॥ ततोलेहपलंलीढ्वाजग्ध्वाचैकांहरीतकीम्। सुखंविरिच्यतेस्निग्धोदोषप्रस्थमनामयः गुल्मंश्वयथुमर्शांसिपाण्डुरोगमरोचकम् । हृद्रोगंग्रहणीदोषंकामलांविषमज्वरम्। कुष्ठंप्लीहानमानाहंएतान्घ्नन्त्युपसेवितः। निरत्ययःक्रमश्चास्याद्द्रवोमांसरसोदनः ॥

अर्थ—पच्चीसहरड़, दन्ती पच्चीसपळ चीता पचीस पल इन को एक द्रोण जल में पकावै,आठवां भाग शेष रहने पर उसे छान लेवै,तदनन्तर गुड़ पच्चीसपल और वेसब हरड़ कूटकर उस में डालदे और आधा कुडव तेल उस में गेर देवै तथा निसोथ चारपल, पीपल और सोंठ एक एक पल डालकर धीरे धीरे पकावै जब पककर लहेई सी होजाय तब ठंढी होने पर आधाकुडव शहत दालचीनी एक पळ, इलायची एक पळ, तेजपात एक पल और केसर एक पल इन को मिला देवै। प्रति दिन एक पल इस चटनी को चाटकर ऊपरसे एक हरड़ खाले तो सुख पूर्वक एक प्रस्थमल निकल जावैगा तथा गुल्म,शोथ,अर्श,पाण्डुरोग,अरुचि, हृद्रोग,ग्रहणी दोष, कामला विषम ज्वर, कुष्ठ प्लीहा, आनाह ये सब रोग इस के सेवन से दूर होजाते हैं। इस के सेवन में मांस रस और भातका भोजन करै।

कफगुल्म में वस्ति प्रयोग ।

सिद्धाःसिद्धिषुवक्ष्यन्तेनिरूहाकफगुल्मिनाम्।

अर्थ—कफगुल्म रोगियों के लिये सिद्धि स्थान में अनुभवकी हुई निरूहण वस्तियां लिखी गई हैं।

कफगुल्म में चूर्णादि प्रयोग ।

अरिष्टयोगाःसिद्धाश्चग्रहण्यर्शचिकित्सिते ॥ यत्चूर्णगुटिकायाश्चविहितावातगुल्मिनाम्। द्विगुणक्षारहिंग्वम्लवेतसास्ताःकफेमताः ॥ यएवग्रहणीदोषेक्षारास्तेकफगुल्मिनाम्। सिद्धानिरत्ययाःशस्तादाहस्त्वन्तेप्रशस्यते ॥

अर्थ—ग्रहणी चिकित्सित अध्याय में जो अनुभव किये हुए अरिष्ट तथा वात गुल्मनाशक जो चूर्ण और गोलियां वर्णन की गई हैं वे सब कफगुल्म में हित हैं परन्तु उन चूर्णादि में जितना क्षार, हींग और अमलवेत डाला जाता है उस से दूना कफगुल्म में डालना उचित है। जो क्षार ग्रहणी दोष में वर्णन किये गये हैं वे कफ गुल्म में भी हित हैं। अन्त में कफगुल्म को दग्ध करना भी हित है।

पथ्यादि वर्णन ।

प्रपुराणानिधान्यानिजाङ्गलामृगपक्षिणः।

कौलत्थोमुद्गयूषश्चपिप्पल्यानागरस्यच ॥ शुष्कमूलकयूषश्चविल्वस्यवरुणस्यच । चिरिविल्वांकुराणाञ्चयवान्याःचित्रकस्यच ॥ वीजपूरकाहिंग्वम्लवेतसक्षार दाडिमैः । तक्रेणतैलसर्पिर्भ्याव्यञ्जनान्युपकल्पयेत् ॥

अर्थ—बहुत पुराना धान्य, जांगल पशुपक्षियों का मांस, कुलथी का यूष, मूंग का यूष पीपल, सोंठ और सूखी मूली का यूष, वेल वरना, कंजा, अजवायन; चीता, इनको डाळ कर तयार किया हुआ यूष, अथवा बिजौरा, हींग, अमळवेत, जवाखार, अनार मठा, तेल, घी इन के साथ अनेक प्रकार के पदार्थ बनाकर सेवन करै ॥

कफगुल्मपर अन्य उपचार।

पञ्चमूलीश्रितंतोयंपुराणंवारुणीरसम्। कफगुल्मीपिबेत्कालेजीर्णमाध्वीकमेव वा । यवानीचूर्णितन्तक्रंविडेनलवणीकृतम् । पिबेत्सन्दीपनंवातकफमूत्रानुलोमनम् ॥

अर्थ—पञ्चमूल का क्वाथ, पुराना वारुणी मद वा माध्वीक मदका कफगुल्म में पान करना चाहिये । अजवायन और नमक को पीस कर मठे में मिलाकर पीने से अग्नि संदीपन होती है, वात, कफ और मूत्र का अनुलोमन होता है ।

असाध्य गुल्म के लक्षण ।

सञ्चितःक्रमशोगुल्मोमहावास्तुपरिग्रहः । कृतमूलःशिरानद्धोयदाकूर्मइवोन्नतः ॥ दौर्वल्यारुचिहृल्लासकासवम्यरतिज्वरैः। तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यतेनसासिध्यति ॥ गृहीत्वासज्वरश्वासंवम्यतीसारपीड़ितम् । हृन्नाभिहस्तपादेषुशोफःकर्षतिगुल्मिनम् ॥

अर्थ—जो गुल्म धीरे धीरे बढकर बहुत वीच में फैल जाता है जो जड़ पकड कर नसों में स्थित होकर कछुए की पीठ की तरह ऊंचा होजाता है तथा जिस में दुर्वलता, अरुचि, हृल्लास, खांसी, उबकाई अरति, ज्वर तृष्णा, तन्द्रा और प्रतिश्याय ये साथ होते हैं वह अच्छा नहीं होता है । जिस गुल्मरोग में ज्वर, श्वास, वमन और अतीसार के होने से हृदय, नाभि, हाथ और पांव में शोफ होता है वह रोगी मरजाताहै ।

रक्तगुल्म की चिकित्सा का क्रम ।

रौधिरस्यतुगुल्मस्यगर्भकालव्यतिक्रमे । स्निग्धस्विन्नशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥ पलाशक्षारपात्रेद्वेद्वेपात्रेतैलसर्पिषोः। गुल्मशैथिल्यजननींपक्त्वामात्रांप्रयोजयेत् ॥ प्रभिद्येतनयद्येवंदद्याद्योनिविरेचनम् । क्षारेणयुक्तंपललंसुधाक्षीरेणवापुनः ॥ ताभ्यांवाभावितान्दद्याद्योनौकटुकमत्स्यकान् । वराहमत्स्यपित्ताभ्यांनक्रकान्वासुभावितान् ॥ अधोहरैश्चोर्ध्वहरैर्भावितान्वासमाक्षिकान् । किण्वंवासगुड़क्षारंदद्याद्योनिविशोधनम् ॥

अर्थ—रक्तगुल्म में जब गर्भ का समय अर्थात् दसवां महीना व्यतीत होजाय तब

स्नेहन स्वेदनकर्म करने के पश्चात् स्नेह बिरेचन देवै ।

ढाक के खारके दोपात्र, और एक एक पात्र घी और तेल इन सबको मिलाकर पाककरै फिर ऐसी मात्रा रोगी को देवै कि जिससे गुल्म शिथिलपडजाय । यदि ऐसा करनेपरभी गुल्म भेदको प्राप्त न हो तो योनि विरेचनकर्त्ताद्रव्य योनि के मार्ग से देवै । क्षार और तिलकल्क, अथवा सेहुंड के दूधकी भावना दियाहुआ तिल कल्क, योनि के मार्ग में रक्खै । अथवा क्षार और सेंहुड के दूधकी भावना दीहुई कटुरसयुक्त मछली योनि में प्रवेश करै अथवा सुअर के और मछली के पित्ते की भावना नक्रमांस को देकर अथवा विरेचनकारक और वमनकारक द्रव्यों की भावना दियाहुआ नक्रमांस शहत मिलाकर अथवा किण्व, गुड और क्षार मिळाकर योनि के भीतर रक्खै, इन के रखने से स्राव होता है ॥

रक्तगुल्मके अन्यउपचार ॥

रक्तपित्तहरंक्षारंलेहयेन्मधुसर्पिषा । लशुनंमदिरांतीक्ष्णंमत्स्यांश्चास्यैप्रदापयेत् ॥

अर्थ—रक्तपित्त के नाश करने वाले क्षार को शहत और घी के साथ चाटै । अथवा लहसन, तीक्ष्णमदिरा और मछली खाने को देवै ॥

अदृश्यमान रुधिर में वस्ति ॥

वस्तिंसक्षारगोमूत्रंसक्षारन्दाशमूलिकम् । अदृश्यमानेरुधिरेदद्याद्गुल्मप्रभेदनम् ॥

अर्थ—जो रुधिर न निकलता होतो उस के भेदन के लिये क्षार और गोमूत्र की अथवा क्षार और दशमूल के क्वाथ की वस्ति देवै ॥

प्रवर्त्तमान रुधिर में उपचार ।

प्रवर्तमानेरुधिरेदद्यान्मांसरसौदनम् । घृततैलेनचाभ्यङ्गंपानार्थंतरुणींसुराम् ॥ रुधिरेऽतिप्रवृत्तेतुरक्तपित्तहराःक्रियाः । कार्यावातरुगार्तायाःसर्वावातहराःपुनः ॥ घृततैलावसेकाश्चतित्तिरिश्चरणायुधः । सुरासमण्डापूर्वञ्चपानमम्लस्यसर्पिषः ॥ प्रयोजयेदुत्तरंवाजीवनीयेससर्पिषा ।

अर्थ—जो रुधिर जारी होतो मांसरस और भात खाने को देवै, घी तेलका मालिश करावै और नवीन मद्यपीनेको देवै । रक्त के अत्यन्त प्रवृत होनेपर रक्तपित्तनाशक चिकित्साकरै ओर जो वातिक वेदना उत्पन्न हो तो वायुनाशिनी क्रिया करै । इन रोगों में घृत, तेळ, रक्तावसेचन तीतर और मुर्गेकामांस, मण्डयुक्तसुरा अम्लयुक्त घृतपान हितकारी होते हैं । इसमें जीवनीय गणोक्त द्रव्यों के साथ सिद्धकियेहुये घृत की उत्तर वस्ति भी दी जाती है ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

भवन्तिचात्र ॥

सर्पिःसरिक्तसिद्धंक्षीरंस्रंसनन्निरूहाश्च ॥ रक्तस्यचावसेचनमाश्वासनसंशमनयोगाः । उपनाहनंसशस्त्रंपक्वस्याभ्यन्तरप्रभिन्नस्य ॥ संशोधनसंशमनेपित्त

प्रभवस्यगुल्मस्य । स्नेहःस्वेदोभेदोलंघन मुल्लेखनंविरेकाश्च ॥ सर्पिर्वस्तिर्गुडिकाःचूर्णमरिष्टाश्चसक्षाराः । गुल्मस्यान्ते दाहःकफजस्याग्रेपनीतरक्तस्य ॥ गुल्मस्यरौधिरस्यक्रियाक्रमःस्त्रीभवस्योक्तः । पथ्यान्नपानसेवाहेतूनांवर्जनंयथास्वञ्च॥ नित्यञ्चाग्निसमाधिःस्निग्धस्यचसर्वकर्माणि । हेतुर्लिङ्गंसिद्धिःक्रियाक्रमःसाध्यतानुयोगाश्च ॥ गुल्मचिकित्सितसंग्रह एतावानग्निवेशस्य।

अर्थ—अग्निवेश के संग्रहीत इस गुल्म चिकित्सिताध्याय में गुल्मनाशकघृत, तिक्त औषधियों से सिद्ध कियेहुए दूध, विरेचन, निरूहण, रक्तावसेचन, आश्वासन, संशमनयोग, तथा पित्तगुल्म के उपनाहन, पक्वगुल्मका शस्त्रसे भेदन, अन्तःभिन्न की चिकित्सा संशोधन और संशमन कफगुल्म के स्नेहन, स्वेदन, लंघन, वमन विरेचन, घृत, वस्ति, गोली, चूर्ण, अरिष्ट, क्षार तथा रक्त निकालकर दाह ये वर्णन किये गये हैं । तदनन्तर स्त्रियों के होने वाले रक्तगुल्म की चिकित्सिका क्रम, पथ्य, अन्नपानविधि, निदानवर्जन (जिनकारणों से रोग होता है उनका त्याग) जठराग्नि की रक्षा, स्नेहनकर्म, सब प्रकार की चिकित्सा, हेतु, लक्षण, सिद्धि, चिकित्साक्रम, साध्यता और अनुयोग ये सब वातें भी वर्णन की गई हैं ॥

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने गुल्मचिकित्सितंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातःप्रमेहचिकित्सितंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवानात्रेय वोले कि अव हम प्रमेहरोग की चिकित्साका वर्णन करेंगे ॥

निर्मोहमानानुशयोनिराशःपुनर्वसुर्ज्ञानतपोविशालः । कालेऽग्निवेशायसहेतुलिङ्गानुवाचमेहान्शमनञ्चतेषाम् ॥

अर्थ—मोह, मान, रागद्वेष और आशा से रहित, ज्ञाननिष्ट और महातपस्वी पुनर्वसुने उचितकाल में प्रमेहका निदान, लक्षण और उसकी शान्ति के उपाय अग्निवेश से कहे ॥

प्रमेहका निदान ॥

आस्यासुखंस्वप्नसुखन्दधीनिग्राम्योदकानूपरसाःपयांसि । नवान्नपानंगुडवैकृतञ्चप्रमेहहेतुःकफकृच्चसर्वम् ॥

अर्थ—आस्यासुख (जो बहुत बैठा रहता है), स्वप्नसुख (जिसको बहुत सोने में सुख होता है), जो दही, तथा ग्राम्य, आनूप और औदक पशुपक्षियों का मांस बहुत खाता है, जो दूध वहुत पीता है, जो नये अन्न पानका सेवन करता है, जो गुड़ के वने हुए पदार्थों को खाता है तथा जो और सबप्रकार के कफकारी पदार्थों

को सेवन करता रहता है उस के प्रमेहरोग होता है।

कफादिप्रमेहकीसम्प्राप्ति ॥

मेदश्चमांसञ्चशरीरजञ्चक्लेदंकफोबस्तिगतंप्रदूष्य। करोतिमेहम्समुदीर्णमुष्णैस्तान्येवपित्तंपरिदूष्यभूयः॥ क्षीणेषुदोषेष्ववकृष्यवस्तौधातून्प्रमेहाननिलःकरोति॥ दोषोहिवस्तौसमुपेत्यमूत्रंसन्दूष्यमेहान् जनयेद्यथास्वम् ॥

अर्थ—वस्ति अर्थात् मूत्रस्थान में प्राप्त हुए मेद,मांस और शरीर के क्लेदको कफ दूषित करके प्रमेहों को उत्पन्न करता है। तात्पर्य्य यह है कि जब कफ उक्त तीनों को दूषित करता हुआ वस्ति स्थान तें पहुंचता है तब **कफज प्रमेह** होते हैं, इसी तरह उष्णपदार्थों के सेवन से कुपित हुआ पित्त मेद मांसादिको दूषित करके जब वस्ति स्थान में ले जाता है तब **पित्तज प्रमेह** होते हैं। और लंघनादि द्वारा कफ पित्त मलमूत्रादि दोषों के क्षीण होनेपर वायुकुपित होकर धातुओं को वस्तिस्थान में खींच लेजाती है इससे **वातजप्रमेह** उत्पन्न होते हैं॥ दोषही वस्ति में पहुंचकर मूत्र को दूषित करके प्रमेहों को उत्पन्न करता है।

प्रमेहों की संख्या।

साध्याःकफोत्थादशपित्तजाःषड्याप्यानसाध्याःपवनाश्चतुष्काः। समाक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्चयथाक्रमन्ते ।

अर्थ—समक्रियत्व होने से दसप्रकार के कफज प्रमेह साध्य होते हैं, विषम क्रियत्व होने से छः प्रकार के पित्तज प्रमेह याप्य हैं इसी तरह महात्ययत्व होने से चार प्रकार के वातज प्रमेह असाध्य होते हैं। सम क्रियत्व का यह प्रयोजन है कि कफदोष और मेदा प्रभृति दूष्य ये समान हैं इस लिये कफनाशक औषधियों के सेवन करने ही से प्रमेह शान्त होजाते हैं। विषम क्रियत्व में यह वात है कि पित्तदोष और मेद दूष्य ये विषम हैं क्योंकि पित्तनाशक मधुर शीतादि द्रव्य मेदवर्द्धक हैं और मेदा के नाशकरने वाले उष्णकटुकादि द्रव्य पित्तवर्द्धक हैं तौ यहां क्रिया की विषमता है इससे पित्तज प्रमेह याप्य है। वातज प्रमेह इस लिये असाध्य है कि वह सम्पूर्ण धातुओं को दूषित करके खींच लेता है और विषम क्रियावाला भी है।

दोषदूष्यों की संख्या।

कफःसपित्तःपवनश्चदोषामेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः। मज्जारसौजःपिशितञ्चदूष्यम्प्रमेहिणांविंशतिरेवमेहाः॥

अर्थ—कफ, पित्त, वात ये तीन दोष हैं, तथा मेदा, रुधिर, शुक्र, जल, चर्वी, लसीका, मज्जा, रस, ओज और मांस ये दूष्य हैं, इन सब के संयोग से वीसप्रकार के प्रमेह उत्पन्न होते हैं।

वीस प्रकार के प्रमेह की पहचान।

जलोपमंवेचुरसोपमंवाघनंघनंचोपरिविप्रसन्नम्। शुक्लंसशुक्रंशिशिरंशनैर्वालाले

ववावालुकयायुंतवा॥ विद्यात्प्रमेहान्कफजान्दशैतान्त्तारोपमङ्कालमथापिनीलम् हारिद्रमाञ्जिष्ठमथापिरक्तमेतान्प्रमेहान्षडुषन्तिपित्तात् । मज्जौजसावावसयान्वितंवालसीकयावासततंविसद्धम् । चतुर्विधंमूत्रयतीववातात्शेषेषुधातुष्वपकर्षितेषु॥

अर्थ—कफज प्रमेह दस प्रकार का होता है यथा-जल के समान वर्ण वाला **उदकमेह** है । ईखके रस के समान वाला **इक्षुप्रमेह** है, गाढे मूत्र को **सान्द्रमेह** कहते हैं । जो नीचे गाढा और ऊपर मद्य के समान हो उसे **सुरामेह** कहते हैं । जो मूत्र वीर्य मिला होता है उसे **शुक्रमेह** कहते हैं । जिस में मूत्र के विन्दु धीरे धीरे टपकते हैं उसे **शनैःमेह** कहते हैं । जिस में मुखकी लारके समान तार निकलता है उसे **लालामेह** कहते हैं । जिस में वालूके कणसे होते हैं वह **सिकतामेह** है । जिस में सफेदरंग होता है वह **शुक्लमेह** है । जिस में ठंडा मूत्र वहुत उतरता है वह **शीतमेह** है इस तरह कफसे होने वाले ये दस प्रकार के प्रमेह है ।

पितजप्रमेह छः प्रकार के हैं । यथा-क्षार के समान को **क्षारमेह** काळे रंग के मूत्र को **कालमेह**, नीले रंगके मूत्र को नीलमेह, हलदी के समान रंग वाले को **हारिद्रमेह** मजीठ के समान वर्ण और दुर्गन्ध वाले को **माञ्जिष्ठमेह** और रुधिर के समान लाल वर्ण वाले को **रक्तमेह** कहते हैं । ये छः पितप्रमेह हैं ।

वातज प्रमेह चार प्रकार के हैं, यथा मज्जा के समान वर्ण वाला **मज्जामेह**, वसा के समान रंग वाळा मूत्र **वसामेह**, ओज-मिश्रित मूत्र को **ओजःप्रमेह** और लसीका युक्त को **लसीकाप्रमेह** कहते हैं । यह रुका भी रहता है । जब और सब धातु क्षीण होजाती हैं तब वात के कोप के कारण इन चार प्रकार का मूत्र निकलताहै ।

दोषानुसार प्रमेह के वर्णादि ।

वर्णरसंस्पर्शमथापिगन्धंयथास्वदोषम्भजतेप्रमेहः ।

अर्थ—प्रमेह का वर्ण, रस स्पर्श और गंध उसी दोष के अनुसार होजाता है जिस से वह उत्पन्न होता है ।

वातज प्रमेह को असाध्यत्व ।

श्यावारुणोवातकृतःसशूलोमज्जादिषाड्गुणयमुपैत्यसाध्यः ॥

अर्थ—वातज असाध्य प्रमेह का वर्ण कुछ काला और लाळ होताहै इस में वेदना होती है तथा इसमें छः ओं धातुओं के गुण आजाते हैं ॥

प्रमेह के पूर्व रूप ।

स्वेदोऽङ्गगन्धःशिथिलाङ्गताच शय्यासनस्वप्नसुखेरतिश्च । हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो घनाङ्गताकेशनखातिवृद्धिः ॥ शीतप्रियत्वङ्गलताळुशोषो माधुर्यमास्येकरपादृदाहःभविष्यतोमेहगदस्यरूपं मूत्रेऽभिधावन्तिपिपीलिकाश्च ॥

अर्थ—पसीनों का आना, देह में से दुर्गन्ध निकलना, देहका शिथल पड़जाना,

पलंग पर पडे रहने, आसन पर वैठे रहने वा निद्रा लैने में इच्छा वनी रहना, हृदय नेत्र, जिह्वा और कर्ण में मलकी लिहसावट, देह का कडा होना, केश और नखों का अत्यन्त वढ़ना, ठंडीवस्तु का प्रिय लगना, गले और तालु में खुश्की होना, मुख में मीठापन,हाथ और पांवों में जलन होना, और मूत्रपर चींटियों का आना ये प्रमेह के पूर्वरूपहैं।

स्थूल कृशप्रमेही की चिकित्सा ॥

स्थूलःप्रमेहीबलवानिहैकः कृशस्तथैकःपरिदुर्वलश्च । संबृंहणंतत्रकृशस्यकार्यं संशोधनंदोषबलाधिकस्य ॥

अर्थ—कोई प्रमेहरोगी स्थूल और वलवान् होता है, तथा कोई कृश और दुर्वल होता है, इनमें से कृशकी वृंहण चिकित्सा करना चाहिये और वलवान् को संशोधन देकर उसके दोषों को दूर करै।

प्रमेही के अन्यउपचार ॥

स्निग्धस्ययोगाविविधाप्रयोज्याः कल्पोपदिष्टामलशोधनाय । ऊर्ध्वंतथाधश्चमलेऽपनीते मेहेषुसन्तर्पणमेवकार्यम् ॥ गुल्मःक्षयोमेहनवस्तिशूलं मूत्रग्रहश्चाप्यपतर्पणेन । प्रमेहिणःस्युःपरितर्पणानिकार्याणितस्मात्प्रसमीक्ष्यवन्हिम् ॥ संशोधनंनार्हतियःप्रमेही तस्यक्रियासंशमनीप्रयोज्या ।

अर्थ—रोगी को स्नेहन देकर कल्पस्थान में वर्णन कियेहुए प्रयोगों को दोषों के शोधन के निमित्त देवै। जब वमन विरेचन कराने से दोष निकळजांय तब सन्तर्पणाविधि करना चाहिये।

जो प्रमेहरोगी संशोधन के योग्य न हो उसकी संशमन चिकित्सा करै।

प्रमेही को पथ्य ।

मन्थाःकषायाःयवचूर्णलेहाःप्रमेहशान्त्यै लघवश्चभक्ष्याः ॥ येविष्किरायेप्रतुदाविहंगास्तेषांरसैर्जांगलजैर्मनोज्ञैः । यवौदनंरूक्षमथापिवाद्यान्मद्यानसशक्तूनापि चाप्यपूपान् ॥ मुद्गादियूषैरथतिक्तशाकैः ।पुराणशाल्योदनमाददीत । दन्तींगुदीतैळ्युतंप्रमेहीतथातसीसर्षपतैलयुक्तम् ॥ सषष्टिकंस्यात्तृणधान्यमन्नंयवप्रधानस्तुभवेत्प्रमेही ॥

अर्थ—प्रमेहकी शान्तिके निमित्त मन्थ कषाय, जौ के चून का ळेह तथा हलका भोजन खाने को देवै विष्किर और प्रतुद प्रकार के जांगल पक्षियों के मांसरस के साथ रूक्ष यवोदन वा सत्तू के साथ मद्य वा अपूप भक्षण करै। मूंग आदिके यूषके साथ अथवा चरपरे सागों के संग पुराने शाली चावलों का भात खाय ॥

दंती और गोंदी का तेळ मिळाकर अथवा अलसी और सरसों का तेल मिळाकर साठी चावल तृणधान्य के अन्नका सेवन करै ॥ विशेष करके प्रमेह रोगी जौ के पदार्थों का सेवन करता रहै।

कफप्रमेह में अन्य विधि ।

यवस्यभक्ष्यान्विविधांस्तथाद्यात्कफप्रमेहीमधुसम्प्रयुक्तान् ॥ निशिस्थितानां

त्रिफलाकषायैः स्युस्तर्पणात्क्षौद्रयुतायवानाम् । तान्शीधुयुक्तान्प्रपिवेत्प्रमेही प्रायोगिकान्मेहवधार्थमेव ॥

अर्थ—कफ प्रमेही जौ के अनेक प्रकार के पदार्थ शहत के संग सेवन करता रहै। रात्रि में जौओं को त्रिफला के क्वाथ में भिगो देवै, दूसरे दिन इनका शहत के साथ सेवन करै तौ तर्पण होवै। इन्हीं जौओं को शीधु के साथ पान करै तौ प्रमेह नष्ट होजाता है ॥

येश्लेष्मप्रमेहेविहिताःकषायास्तैर्भावितानाञ्चपृथग्यवानाम् । शक्तूनपूपान्सगुडान् सधानान् भक्ष्यांस्तथान्यान्विविधांश्च खादेत् ॥ खराश्वगोधेनुकसम्भृतानां तथायवानांविविधाश्चभक्ष्याः ॥ देयास्तथावेणुयवायवानां कल्पेनगोधूममयाश्च भक्ष्याः ॥ संशोधनोल्लेखनलंघनानि कालेप्रयुक्तानिकफप्रमेहान् । जयन्तिपित्तप्रभावन्विरेकाः सन्तर्पणःसंशमनो विधिश्च ॥

अर्थ—कफ प्रमेह में जो कषाय वर्णन कियेगये हैं उनकी जौओं को पृथक् पृथक् भावना देकर उन के सत्तू अपूप, गुडमिश्रित धानी तथा और अनेक प्रकार के पदार्थ वनवाकर सेवन करता रहै ॥

गधा, घोडा, बैल वा गौ की गुदा में होकर जो विना टूटे जौ निकल आते हैं उनके तथा वेणुयव और गेहूं के अनेक प्रकारके पदार्थ वनाकर सेवन करै। इसी तरह ठीक समय पर दियेहुये संशोधन, वमन, लंघन कराने से भी कफ प्रमेह दूर होजाते हैं ॥

तथा ठीक समयपर वमन, विरेचन, लंघन, संतर्पण और संशमन देने से पित्तजं प्रमेह भी शान्त होजाते हैं ॥

प्रमेहों पर सामान्यप्रयोग ॥

दार्वींसुराह्वंत्रिफलांसमुस्तां कषायमुत्काथ्यपिवेत्प्रमेही । क्षौद्रेणयुक्तामथवाहरिद्रां पिवेद्रसेनामलकीफलानाम् ॥

अर्थ—दारुहलदी, देवदारु, त्रिफला और मोथा इन के क्वाथ को शहत मिलाकर पीवै अथवा आंवले के रसके साथ हलदीका पानकरै ॥

कफप्रमेहपर कषाय ॥

हरीतकीकट्फलमुस्तरोध्रम् पाठाविडङ्गार्जुनधन्वनश्च । उभेहरिद्रेतगरंविडङ्गं कदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ दार्वीविडङ्गं खदिरोधवश्च सुराह्वकुष्ठागुरुचन्दनानि। चव्याग्निमन्थौत्रिफलासपाठा पाठाश्वदंष्ट्रसहमूर्वयाच ॥ यवान्युशीराण्यभया गुडूची जंघाभयाचित्रकसप्तपर्णाः पादैः कषायाःकफमेहिनान्ते दशोपादिष्टामधुसम्प्रयुक्ताः ॥

अर्थ—[१] हरड, कायफल, मोथा, लोध, [२] पाठा, वायविडंग, अर्जुन, धन्वन, [३] दोनों हल्दी, तगर और वायविडंग, [४] कदम्ब, शाल, अर्जुन और अजवायन, [५] दारुहलदी, वायविडंग, खैर और धव [६] देवदारु, कूठ, अगर और चन्दन [७] चव्यअ-

रनी, त्रिफला और पाठा [८] पाठा, गोखरू और मूर्वा [९] अजवायन, उशीर हरड और गिलोय [१०] काकजंघा, हरीतकी, चीता और और सप्तपर्ण प्रत्येक श्लोक के एकएक पाद में कहेहुए ये दस क्वाथ शहत डालकर पीने से कफ प्रमेह को दूर करते हैं ॥

पित्तप्रमेह पर कषाय ॥

उशीरलोध्राञ्जनचन्दनाना मुशीरमुस्तामलकाभयानाम् । पटोलनिम्बामलकामृतानां मुस्ताभयापद्मकवृक्षकाणाम् ॥ लोध्राम्बुकालीयकधातकीनां निम्बार्जुनानान्तिनिशोत्पलानाम् । शिरीषसर्जार्जुनकेसराणां प्रियंगुपद्मोत्पलकिंशुकानाम्॥ अश्वत्थपाठासनवेतसानां कटङ्कटेय्युत्पलमुस्तकानाम् । पैत्तेषुमेहेषुदशैवदृष्टाः पादैःकषायामधुसम्प्रयुक्ताः ।

अर्थ—[१] उशीर, लोध, रसौत और चन्दन [२] उशीर, आंवला, मोथा और हरड [३] परवल, नीम, आंवला और गिलोय [४] मोथा, हरड, पद्माख और इन्द्रजौ [५] लोध्र, नेत्रवाला, पीतचन्दन और धाय के फूल [६] नीमकी छाल, अर्जुन, तिनिश और उत्पल [७] सिरस, राल, अर्जुन और नागकेशर, [८] प्रियंगु, लालकमल, नीलकमल और ढाक के फूल [९] पीपल, पाठ, असन और वेत [१०] दारुहलदी, उत्पल और मोथा । प्रत्येक श्लोक के एक २ पाद में कहेहुए ये दस क्वाथ शहत डालकर पीनेसे पित्त प्रमेह को दूर करते हैं ॥

सर्वेषुमेहेषुमतौतुपूर्वौ कषाययोगौत्रिहितास्तुसर्वे ॥ मन्थस्यपानेयवभावनायां स्युर्भोजनेपानविधौपृथक्च । सिद्धानि तैलानिघृतानिचैव देयानिमेहेष्वनिलात्मकेषु ॥ मेदःकफश्चैवकषाययोगैः स्नेहैश्चवायुःशममेतितेषाम् ।

अर्थ—सब से पहिले जो दो कषाय के प्रयोग वर्णन किये गये हैं वे सब प्रकार के प्रमेहों में उपयागी हैं । इन कषायों का प्रयोग मन्थपान, जौओं को भावना देने अथवा सब प्रकार के भोजन पानमें पृथक् २ देना चाहिये ॥

वातज प्रमेहों में औषधों से सिद्ध किया हुआ घृत और तेल देवै । कषायों से मेद और कफ तथा स्नेहन योगों से वायु शान्तहोती है ॥

कफपित्तप्रमेहपरप्रयोग ॥

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरौहीतककौटजानि ॥ कपित्थपुष्पाणिचचूर्णितानि क्षौद्रेणलिह्यात्कफपित्तमेही । पिवेद्रसेनामलकस्यवापि कल्कीकृतान्यक्षसमानिकाले ॥ जीर्णेचभुञ्जीतपुराणमन्नं मेहीरसजाङ्गलजैर्मनोज्ञैः । दृष्ट्वानुबन्धंपवनंकफस्यपित्तस्यवास्नेहविधिर्विकल्प्यः ॥ तैलंकफेस्यात्सकषायसिद्धं पित्तेघृतंपित्तहरैःकषायैः ।

अर्थ—कबीला, सप्तपर्ण, सर्जरस, बहेडा रोहीतक (रोहेडा), इन्द्रजौ, कैथकेफूल

इन सबका चूर्ण पीसकर शहत में मिलाकर चाटने से कफपित प्रमेह दूर होजाता है। अथवा इसी पूर्वोक्त चूर्ण का दो तोले कल्क आंवले के रस के साथ पान करै और औषध के पचने पर पुराने चांवलों का भात जांगलजीवों के मांसरस के साथ सेवन करै॥

इस रोग में वायु के कफानुवन्धी वा पित्तानुवन्धी होनेपर स्नेह विधि की विकल्प ना करनी चाहियै। यदि कफ का अनुवन्ध हो तौ कफनाशक द्रव्यों के क्काथ में सिद्ध किये हुए तेल का प्रयोग करै और जो पित्त का अनुबंध हो तौ पित्तनाशक कषायों में सिद्ध कियाहुआ घृत देवै॥

अन्यप्रयोग।

त्रिकण्टकाश्मन्तकसोमवल्कै भल्लातकैः सातिविषैःसरोध्रैः॥ वचापटोलार्जुननिम्बमुस्तै र्हरिद्रयापद्मकदीप्यकैश्च। मञ्जिष्ठयावागुरुचन्दनैश्च सर्वैःसमस्तैःकफवातजेषु॥ मेहेषुतैलंविपचेद्घृतं तुपैत्तेषुमिश्रं त्रिषुलक्षणेषु।

अर्थ—गोखरू, कचनार, खैर, भिलाया अतीस, लोध, बच, परवल, अर्जुन, नीमकी छाल, मोथा, हलदी, पद्माख, अजवायन, मजीठ, अगर, चन्दन, इनसबके क्काथमें सिद्ध किया हुआ तेल सेवन करने से कफवात जन्य प्रमेह दूर होता है। उन्हीं में सिद्ध कियाहुआ घृत वातपित्तजन्य प्रमेह को तथा घृत और तेल दोनों त्रिदोषजन्य प्रमेह को दूर करते हैं।

सबप्रकार के प्रमेह पर क्काथ।

फलत्रिकंदारुनिशाविशाला मुस्ताचनिःक्काथ्यनिशासकल्का। पिवेत्कषायंमधुसम्प्रयुक्तं सर्वप्रमेहेषुसमुद्धतेषु॥

अर्थ—त्रिफला, देवदारु, हलदी, इन्द्रायण, और मोथा इनका क्काथकरकै उस में हलदी पीसकर डालदेवै और इस कषाय में शहत मिलाकर पीने से सबप्रकार के उद्धत प्रमेह दूर होजाते हैं॥

मध्वासब।

लोध्रंशठींपुष्करमूलमेलां मूर्वांबिडङ्गंत्रिफलांयवानीम्॥ चव्यंप्रियंगुंक्रमुकंविशालां किराततिक्तंकटुरोहिणीञ्च। भार्गीनतंचित्रकपिप्पलीनां मूलंसकुष्ठातिविषंसपाठम्॥ कलिङ्गकान्केशरमिन्द्रसाह्वां नखंसपत्रंमरिचंप्लवञ्च। द्रोणेऽम्भसःकर्षसमानिपक्त्वापूतेचतुर्भागजलावशेषे॥ रसेऽर्धभागंमधुनःप्रदाय पक्षान्निधेयोघृतभाजनस्थः। मध्वासवोऽयंकफपित्तमेहान् क्षिप्रंविहन्याद्द्विपलप्रयोगात्॥ पाण्ड्वामयार्शांस्यरुचिंग्रहण्या दोषंकिलासंविविधञ्चकुष्ठम्।

अर्थ—लोध्र, शठी, पौहकर मूल, इळायची, मूर्वा, वायविडंग, त्रिफळा, अजवायन चव्य, प्रियंगु, सुपारी, इन्द्रायण की जड़ चिरायता, कुटकी, भाडंगी, तगर, चीता, पीपलमूला, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ नागकेशर, इन्द्रायणकी जड़। नखी, तेजपात, कालीमिरच, केवटी मोथा। इन सब को एक एक कर्ष लेकर एक द्रोण जल में

पकावै जब चौथाई शेष रहजाय तब इसे छानले, फिर इस रसका आधा शहत मिलाकर घी के चिकने पात्र में भरकर पन्द्रह दिवस तक धरा रहने देवै। यह मध्वासव है, इस में से प्रतिदिन दो पल का सेवन करने से कफपित्त जनित प्रमेह, पाण्डुरोग अर्शरोग, अरुचि, ग्रहणी दोष, किलास और सब प्रकार के कुष्ठ दूर होजाते हैं ।

अन्य आसव ।

क्वाथःसएवाष्टपलेचदन्त्याभल्लातकानाञ्चचतुष्पलेस्यात् ॥ सितोपलात्वष्टपलाविशेषःक्षौद्रञ्चतावत्पृथगासवौतौ ।

अर्थ—उसी पूर्वोक्त लोध्रादि क्वाथ से दो आसव और बनाये जाते हैं यथा (१) पूर्वोक्त क्वाथ में दंती आठपल, शहत और मिश्री आठ आठ पल डालै और (२) पूर्वोक्त उसी क्वाथ में भिलाया चार पल, मिश्री आठ पल और शहत आठ पल डालै इन दोनों के गुणभी मध्वासव के समान हैं।

प्रमेह पर अन्य चिकित्सा ।

सारोदकञ्चाथकुशोदकंवा मधूदकंवात्रिफलारसंवा ॥ शीधुंपिवेद्वानिगदंप्रमेही माध्वीकमग्र्यञ्चिरसंस्थितंवा । मांसानिशूल्यानिमृगद्विजानां खादेद्यवानांविविधांश्चभक्ष्यान् ॥ संशोधनारिष्टकषायलेहैः सन्तर्पणघ्नैःशमयेत्प्रमेहान् । भृष्टान्यवान्भक्षयतःप्रयोगात् शुष्कांश्चशक्तून्नभवन्तिमेहाः ॥ श्वित्रश्चकुष्ठञ्च कफञ्चकृच्छ्रं तथैवमुद्गामलकप्रयोगात्।

अर्थ—सारोदक वा कुशोदक, वा मधूदक वा त्रिफला क्वाथ, वा शीधु वा पुराना माध्वीक सेवन करने से प्रमेह दूर होजाता है। पशुपक्षियों का शूलपर भुना हुआ मांस, तथा जौके अनेक पदार्थों का भक्षण करै। संशोधन, अरिष्ट, कषाय, लेह और संतर्पण द्वारा प्रमेह को शमन करै। भुने हुए जौ, इन का सतू तथा मूंग और आंवला इन के प्रयोग से श्वित्रकुष्ठ कुष्ठ, कफ और मूत्रकृच्छ्र दूर होजाते हैं।

सन्तर्पणोत्थेषुगदेषुयोगा मेदस्विनांयेचमयोपदिष्टाः ॥ विरूक्षणार्थंकफपित्तजेषु सिद्धाःप्रमेहेष्वपितेप्रयोज्याः ।व्यायामयोगैर्विविधैःप्रगाढै रुद्वर्त्तनैःस्नानजलावसेकैः ॥ सेव्यत्वगेलागुरुचन्दनाद्यैर्विलेपनैश्चाशुनसन्तिमेहाः । क्लेदश्चमेदश्चकफश्चवृद्धःनाशंप्रयातिप्रसमीक्ष्यतस्मात् ॥ वैद्येनपूर्वंकफपित्तजेषु मेहेषुकार्याण्यपतर्पणानि ।

अर्थ—सन्तर्पण जन्य रोगों में तथा जिनका मेदा बढ गया है उन के लिये जो रूक्षणकर्त्ता प्रयोग वर्णन किये गये हैं इन का कफपित्तोत्थ प्रमेह में प्रयोग किया जाय तो तत्काल फलप्रद है।

अत्यन्त परिश्रम (दंडकसरत आदि) अनेक प्रकार के उबटने, स्नान, जलावसक तथा खस, दालचीनी, अगर और चन्दन का लेप करने से प्रमेह शीघ्र नष्ट होजाता है।

अपतर्पणसे क्लेद,मेद और कफ ये नष्ट होजाते हैं इस लिये कफपित प्रमेहों में प्रथम अपतर्पण दैना चाहिये।

यावातमेहानप्रतिपूर्वमुक्ता वातोल्वणानां विहिताक्रियासा । वायुर्हिमेहेष्वतिकर्षितानां कुप्यत्यसाध्यान्प्रतिनास्तिचिन्ता

अर्थ—जहां तीनों दोषों में से बातकी अधिकता हो वहां प्रथम वातज मेह की चिकित्सा के अनुसार उपाय करै क्योंकि वात प्रमेह मनुष्य को बहुत शीघ्र कृशकर के रोग को असाध्य करदेता है, तव फिर कोई चिकित्सा काम नहीं देती है।

प्रमेह में निदान परिवर्जन ॥

यैर्हेतुभिर्येप्रभवान्तिमेहास्तेषुप्रमेहषुनतोनिषेव्याः ॥ हेतोरसेवाविहितायथैव जातस्यरोगस्यभवेच्चिकित्सा ।

अर्थ—जिन २ हेतुओं से जो २ प्रमेह उत्पन्न होते हैं उन में उन हेतुओं का कदापि सेवन न करना चाहिये क्योंकि हेतुका परित्याग करदेना भी रोगकी एक प्रकार की चिकित्सा है ॥

हारिद्रवर्णरुधिरश्चमूत्रं विनाप्रमेहस्यहि पूर्वरूपैः ॥ यन्मूत्रयेत्तन्नवदेत्प्रमेहं रक्तस्यपित्तस्यहिसप्रकोपः ।

अर्थ—जो मूत्रका रंग हलदीसा लाल हो और उसमें प्रमेहका कोई पूर्वरूप न हो तो उस रोगी के प्रमेह नहीं होती है वह उसके रक्तपित्त के प्रकोप का कारण है ॥

मधुप्रमेहकालक्षण ॥

दृष्ट्वाप्रमेहंमधुरंसपिच्छं मधूपमंस्याद्विविधोपचारः ॥

अर्थ—जो प्रमेह मधुर हो वा शहत के समान गिलगिली हो उस में अनेक प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये।

प्रमेहको साध्यासाध्यात्व ॥

क्षीणेषुदोषेष्वनिलात्मकःस्यात् सन्तर्पणाद्वाकफसम्भवःस्यात् । सपूर्वरूपाः कफपित्तमेहाः क्रमेणयेवातकृताश्चमेहाः॥ साध्यानतेपित्तकृतास्तुयाप्याः साध्यास्तुमेदोयादिनप्रदुष्टम् । जातप्रमेहोमधुमेहिनावा नसाध्यरोगःसहिवीजदोषात् ॥ येचापिकेचित्कुलजाविकारा भवन्तितांश्च प्रवदन्त्यसाध्यान् ॥

अर्थ—दोषों के क्षीण होनेपर वातात्मक प्रमेह होता है और सन्तर्पण से कफज प्रमेह उत्पन्न होता है वे कफज तथा पित्तज प्रमेह जो पूर्वरूप से युक्त होते हैं अथवा जो बातकृत हैं वे असाध्य होते हैं पित्तजप्रमेह याप्य है और कफजप्रमेह जिनमें मेदा दूषित नहीं होता है वे साध्य होते हैं। मधुमेही की सन्तान बीज दोष के कारण असाध्य होती है। तथा जो रोग कुलपरम्परा से चलेआते हैं वे भी असाध्य होते हैं ॥

पिडकाओं की चिकित्सा ॥

प्रमेहिणांयाःपिडकामयोक्ता रोगाधिकारेपृथगेवसप्त । ताःशल्यहृद्भिःकुशलैश्चिकित्स्याः शस्त्रेणसंशोधनरोपणैश्चेति ॥

अर्थ—रोगाधिकार में जो प्रमेह रोगकी सात पिडका पृथक् वर्णन की गई हैं उन की चिकित्सा शल्यशास्त्र में कुशल वैद्य शस्त्र से संशोधन और रोपण द्वारा करै ।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

भवन्तिचात्र ॥

हेतुर्दोषादूष्यंमेहानांसाध्यतानुरूपञ्च । मेहीत्रिविधस्त्रिविधंभिषग्जितम्तल्लक्षणम्आद्यायवान्नविकृतिर्मन्थामेहापहाः याश्च । तैलघृतलेहयोगाभक्ष्याःप्रवरा कषासवासिद्धाः॥ व्यायामविधिर्विविधः स्नानान्युद्वर्तनानिगन्धाश्च । मेहानां प्रशमार्थंचिकित्सितेदृष्टमेतावदिति ॥

अर्थ—इस प्रमेह चिकित्सितनामक अध्याय में प्रमेहों के हेतु, दोष, दूष्य, साध्यता, अनुरूप, तीनप्रकार के रोग, उन की तीनप्रकारकी चिकित्सा, लक्षण, भक्षणीय जौके पदार्थ, मन्थ, प्रमेहनाशक कषाय, तैल, घृत, लेह, भक्ष्ययोग, अनुभूत आसव, व्यायामविधि, अनेक प्रकार के स्नान, उद्वर्त्तन, सुगंधित द्रव्यादि प्रमेहनाशक विधि वर्णन की गई हैं ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने प्रमेहचिकित्सितंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥

———०———

सप्तमोऽध्यायः ॥

अथातःकुष्ठचिकित्सितंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम कुष्ठचिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्याकरेंगे ॥

कुष्ठोत्पत्तिका हेतु ॥

हेतुंलिङ्गंविविधंकुष्ठानामाश्रयंप्रशमनञ्च । शृणुवग्निवेश ! सम्यग्विशेषतःस्पर्शनघ्नानाम् ॥ विरोधीन्यन्नपानानिद्रवस्निग्धगुरूणिच । भजतामागतांछर्दिंवेगांश्चाध्यान्प्रतिघ्नताम् ॥ व्यायाममतिसन्तापमतिभुक्त्वानिषेविणाम् । शीतोष्णलंघनाहारानक्रमंभुक्त्वानिषेविणाम् ॥ घर्मश्रमभयार्तानांद्रुतंशीताम्बुसेविनाम् । अजीर्णाध्यशिनाश्चैवपञ्चकर्मापचारिणाम् ॥ नवान्नदधिमत्स्यातिलवणाम्लनिषेविणाम् । माषमूलकपिष्टान्नगुडक्षीरतिलाशिनाम् ॥ व्यवायंचाविजीर्णेऽन्नेनिद्रांवाभजतांदिवा । विप्रान्गुरून्धर्षयतांपापंवाकर्मकुर्वताम् ॥ वातादयस्त्रयोदुष्टास्त्वग्रक्तंमांसमम्बुच । दूषयन्तिसकुष्ठानांसप्तकोद्रव्यसंग्रहः ॥अतःकुष्ठाविजायन्तेसप्तचैकादशैवच । नचैकदोषजंकिञ्चित्कुष्ठंसमुपलभ्यते ।

अर्थ—हे अग्निवेश! अब मैं तुम्हारे साम्हने कोढ के अनेकप्रकार के हेतु, लक्षण-आशयस्थान और उनके शान्ति के उपायों को वर्णन करताहूं तुम सावधान हो कर सुनो । वे ये हैं यथाः—

विरुद्ध अन्नपान; पतले, चिकने और भारी पदार्थों का अत्यन्त सेवन; उपस्थित वमन के वेग तथा अत्यन्त मलमूत्रादि वेगों का रोकना; अत्यन्त भोजन करके अत्यन्त शरीरिक परिश्रम और अत्यन्त सन्तापका सेवन; क्रमको छोडकरशीत, उष्ण, लंघनऔर

आहारका सेवन;पसीनोंमें, परिश्रम करके वा भयजन्य कर्म में शीतल जलका सेवन; अजीर्ण में अध्यशन वमनविरेचनादि पांच कर्मोंका अपचार; नयाअन्न, दही, मछली, नमक और खटाई का अत्यन्त सेवन; उरद, मूली, पिष्टान्न, गुड, दूध और तिलका अत्यन्त सेवन, अन्न के विना पचे मैथुन करना; दिन में नींद भरना विप्र और गुरुजनों का तिरस्कार; पापकर्मका करना; इन सब बातों से कुपितहुए वातादिक तीनों दोष तथा इनसे दूषित कियेहुए त्वचा, रक्त, मांस और लसीका, ये सातों सब प्रकार की कुष्ठों के कारण हैं। इस तरह सब मिलकर अठारह प्रकार के कुष्ठ उत्पन्न होते हैं। एक दोष के कुपित होने से कोई कुष्ठ नहीं होता है ॥

कुष्ठके पूर्वरूप।

स्पर्शान्यथात्वंस्वेदोतिनवावैवर्ण्यमुन्नतिः कोठानांलोमहर्षश्चकण्डूस्तोदःश्रमःक्लमः व्रणानामधिकंशूलंशीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः। दाहः सुप्ताङ्गताचेतिकुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥

अर्थ—त्वचाका अन्यथा होना, पसीनों का अत्यन्त आना वा सर्वथा न आना, विवर्णता, पित्तीका उछलना, रोमाञ्च खड़े होना, खुजली, तोद, श्रम, क्लान्ति, शरीर में घाव होकर उन में अत्यन्त वेदना होना, घावों का शीघ्र होना और बहुत दिवस तक रहना, दाह और सुप्तांगता, ये सब कोढके पूर्वरूप हैं।

कुष्ठों के नाम।

अतऊर्ध्वमष्टादशानांकुष्ठानांकपालोदुम्बरमण्डलर्ष्यजिह्वपुण्डरीकसिध्मकाकणकैककुष्ठचर्मकिटिमविपादिकालसकदद्रुचर्मदलपामाविस्फोटकशतारूविचर्चिकानांलक्षणान्युपदेक्ष्यामः।

अर्थ—अब हम यहां से कपाल, उदुम्वर मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरीक, सिध्म, काकणक, एककुष्ठ, चर्म, किटिम, विपादिका, अलसक, दद्रु, चर्मदल, पामा, विस्फोटक, शतारु और विचर्चिका, इन अठारह प्रकारकी कोढों के लक्षण बर्णन करेंगे। इन में से पहिली सात को महाकुष्ठ और पिछली ग्यारह को क्षुद्रकुष्ठ कहते हैं।

कपाल कुष्ठ के लक्षण।

कृष्णारुणकपालाभंयद्रूक्षंपरुषन्तनु। कापालन्तोदबहुलंतत्कुष्ठंविषमंस्मृतम् ॥

अर्थ—जो कुष्ठ कालापन लिए हुए कुछ लाल होता है, जो खीपड़े के सदृश रूक्ष खरखरी, तथा पतला हो और जिस में सुई के छिदने की सी अत्यन्त वेदना होती हो उसे कपाल कुष्ठ कहते हैं यह दुश्चिकित्स्य होता है।

औदुम्वर कुष्ठ के लक्षण।

कण्डूविदाहरुग्रागपरीतंलोमपिञ्जरम्। उदुम्वरफलाभासंकुष्ठमौदुम्बरंविदुः ॥

अर्थ—जिस में खुजली, जलन, वेदना और ललाई होती है, रोमो में पीलापन होता है और जिस का आकार गूलर के सदृश होता है उसे औदुम्वरकुष्ठ कहते हैं।

मंडल कुष्ठ के लक्षण ।

श्वेतंरक्तंस्थिरंस्त्यानंस्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् । कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तंकुष्ठंमण्डलमुच्यते ॥

अर्थ—जिस का वर्ण सफेद और लाल हो, जो कठोर गीला, चिकना, ऊंचा उठा हुआ मंडलाकार हो, जिस में चकत्ते एक दूसरे से मिले हुए हों, यह **मंडलकुष्ठ** कृच्छ्रसाध्य होता है ।

ऋष्यजिह्व कुष्ठ के लक्षण ।

कर्कशंरक्तपर्य्यन्तमन्तःश्यावःसवेदनं । यदृष्यजिह्वासंस्थानंऋष्यजिह्वंतदुच्यते

अर्थ—जो कुष्ठ खरस्पर्श होता है जिस के किनारे ललाई लिये होते हैं, जो बीच में कृष्णवर्ण तथा वेदनायुक्त होता है । जिसका आकार रीछ की जिह्वाके सदृश होता है उसे ऋष्यजिह्व कहते हैं ।

पुण्डरीक कुष्ठके लक्षण ।

सश्वेतंरक्तपर्य्यन्तंपुण्डरीकदलोपमम् । सोत्सेधञ्चसदाहञ्चपुण्डरीकंतदुच्यते ॥

अर्थ—जिसका श्वेत वर्ण और लाल किनारे हों, जो कमल के पत्तों के सदृश होता है, जो ऊंचा तथा दाहयुक्त होता है उसे **पुण्डरीक कुष्ठ** कहते हैं ।

सिध्मकुष्ठ के लक्षण ।

श्वेतताम्रंतनुचयद्रजोघृष्टंविमुञ्चाति । अलाबुपुष्पवर्णंतत्सिध्मंप्रायेणचोरसि॥

अर्थ—जिसका वर्ण सफेद और तांबे के समान होता है, जो पतला होता है, जिसको खुजाने से भुसीसी (धूल के सदृश) उड़ती है जिसका आकार घीयाके पुष्पके समान होता है उसे **सिध्मकुष्ठ** कहते हैं, यह हृदय में होता है ।

काकणक कुष्ठके लक्षण ।

यत्काकणन्तिकावर्णंसपाकंतीव्रवेदनम् । त्रिदोषलिङ्गंतत्कुष्ठंकाकणंनैवसिद्ध्यति॥

अर्थ—जिसका आकार चिरमिटी के सदृश होता है अर्थात् बीच में काला और किनारों पर लाल अथवा बीच में लाल और किनारों पर काला, जो किञ्चित पाक युक्त और तीव्र वेदनायुक्त होता है उसे **काकणक कुष्ठ** कहते हैं, यह त्रिदोषाश्रित होने से असाध्य होता है । यह सात प्रकार के **महाकुष्ठ वर्णन** किये गये हैं ।

अब क्षुद्रकुष्ठों का वर्णन करते हैं—

एककुष्ठ और चर्मकुष्ठ के लक्षण ।

अस्वेदनंमहावास्तुयन्मत्स्यशकलोपवम् । तदेककुष्ठंचर्माख्यंबहलंहस्तिचर्मवत् ॥

अर्थ—जिस में पसीने न आवें, जो बहुत जगह में व्याप्त हो जो मछली के टुकडों के समान हो उसे **एक कुष्ठ** कहते हैं इस के विषय में सुश्रुत लिखता है कि "कृष्णारुणं येन भवेच्छरीरं तदेक कुष्ठं प्रवदन्त्यसाध्यम्" । अर्थात् जिस से देह काला वा लाल पड़ जाता है उसे एक कुष्ठ कहते हैं और यह असाध्य होता है ।

जिस में देह की त्वचा हाथी के चमडे के समान मोटी होती है उसे **चर्मकुष्ठ** कहते हैं ।

किटिम कुष्ठ के लक्षण ।

श्यावंकिणखरस्पर्शंपरुषंकिटिमंस्मृतम्

अर्थ—जो काल,किण के सदृश खरस्पर्श और खरदरा होता है उसे **किटिम** कहतेहैं सुश्रुत कहता है कि जिस में कड़े गोल चक्र से होते हैं और जो अत्यन्त खुजली चलने के पीछे झरने लगता है उसे किटिम कहते हैं ।

वैपादिक के लक्षण ।

वैपादिकंकरेपादेस्फोटनंतीव्रवेदनम् ॥

अर्थ--हाथ पांवके फटने से जो तीव्र वेदना युक्त होता है उसे **विपादिका** कहते हैं, यहां सुश्रुत लिखता है कि "कण्डूमती दाहरुजोपपन्ना विपादिका पादगतेयमेव,, । अर्थात् खुजली दाहादि युक्त का नाम विपादिका है और यह पांवही में होती है,, ' इयमेव, ये दोनों शब्द 'पादगता' के पास ऐसे ढंग से डाले गये हैं कि इस से जाना जाता है कि यह पांवही में होती हैं इस से भाषा में इस का **बिवाई** कहा जाना संभव हो सकता है और विपादिका, इस शब्दके अर्थ से भी ' पांवका फटनाही, प्रतीति होता है, परन्तु यहां इन दोनों आचार्यों का मत भिन्न है, यदि यह 'विवाई, न भी हो तौ भी विवाई कोढ से कम नहीं होती क्यों कि इसकी वेदना को वेही जानते हैं जिनके यह होती है ।

अलसकके लक्षण ॥

सकण्डूकैःसरावैश्चगण्डैरलमकंस्मृतम् ।

अर्थ—जिसमें खुजली चलतीहो, जो लालरंग की हो तथा जिसमें वडे २ फोडे होगये हों उसे **अलसक** कहते हैं ।

दद्रुमण्डल के लक्षण ॥

सकण्डूरागपिडकंदद्रुमण्डलमुद्गतम् ॥

अर्थ—जो खुजली युक्त और लालवर्ण की फुन्सियों से युक्त हो जिसमें ऊंचे २ चकत्ते होजांय उसे **दद्रुमण्डल** कहते हैं।

चर्मदल के लक्षण ।

रक्तंसकण्डूसस्फोटंसरुग्दलतिचापियत्।
तच्चर्मदलमाख्यातंसंस्पर्शासहमुच्यते ॥

अर्थ—जिसका वर्ण लाल हो जिस में खुजली चलती हो, जो फोडे और वेदनाओं से युक्त हो, जो फट गयी हो, जिसमें हाथ का लगाना सहा न जाय उसे **चर्मदल** कहते हैं ।

पामाके लक्षण ।

पामाःश्वेतारुणाःश्यावाःपिडकाःकण्डूला भृशम् ॥

अर्थ—जिस में सफेद, लाल,काली बहुत खुजलीयुक्त फुन्सियां हों उसे **पामा** कहते हैं।

विस्फोटकके लक्षण ।

श्वेताःश्याबारुणाभासाविस्फोटाःस्युस्तनुत्वचः ।

अर्थ—जिस में सफेद, काले और लाल रंग की झलक मारती हो और जिनकी त्वचा पतली हो ऐसे फोड़ों को **विस्फोटक** कहते हैं ।

शतारु के लक्षण ।

रक्तंश्यावंसदाहार्त्तिशतारुःस्याद्बहुव्रणम्

अर्थ—जिस में लाल काले दाहयुक्त

बहुतसे व्रणहोजांय उसे शतारु कहते हैं ।

विचर्चिकाके लक्षण ।

सकण्डूःपिडकाःश्यावाबहुस्रावाविच र्चिकाः ।

अर्थ— खुजलीयुक्त काले रंग की ऐसी फुन्सियां जिन में बहुत स्राव होता हो उन्हें विचर्चिका कहते है]

कुष्ठों को दोष परत्व ।

वातेऽधिकतरेकुष्ठंकापालंमण्डलंकफे ॥ पित्तेत्वौदुम्बरंविद्यात्काकणन्तुत्रिदोष जम् । वातपित्तेश्लेष्मपित्तेवातश्लेष्म णिचाधिके ॥ ऋष्यजिह्वंपुण्डरीकंसि ध्मकुष्ठंचजायते । चर्माख्यमेकंकुष्ठश्चकि टिभंसविपादिकम् ॥ कुष्ठश्चालसकंज्ञेयं प्रायोवातकफाधिकम् । दद्रूश्चर्मदलंपामा विस्फोटाश्चशतारुषः ॥ पित्तश्लेष्माधि काःप्रायकफप्रायाविचर्चिका ।

अर्थ—कापालकुष्ठ में वात अधिक होती है । मण्डलकुष्ठ में कफकी अधिकता है । औदुम्वरकुष्ठ में पित्तकी अधिकता है । और काकणक कुष्ठ में तीनों दोषों की अधिकता है । ऋष्यजिह्व में वातपित्तकी अधिकता है । पुण्डरीक में कफपित्त की और सिध्म कुष्ठ में वातकफकी अधिकता होती है । चर्मकुष्ठ,एककुष्ठकिटिम,विपादिका औरअ-लसक इन कुष्ठों में प्रायःवातकफकी अधिकता होती है । दद्रु, चर्मदल, पामा, विस्फोटक और शतारु इन में प्रायः कफपित्त की अधिकता होती है, इसीतरह विचर्चिका में कफकी अधिकता होती है ।

कुष्ठों में चिकित्साक्रम ।

सर्वंत्रिदोषजंकुष्ठंदोषाणाञ्चबलाबलम् ॥ यथास्वैर्लक्षणैर्बुद्ध्वाकुष्ठानांक्रियतेक्रिया । दोषस्ययस्यपश्येत्कुष्ठेषुविशेषलिङ्गमुद्रि क्तम् । तस्यैवशमंकुर्यात्ततःपरञ्चानुब न्धस्य ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कुष्ठ त्रिदोष से उत्पन्न होतेहैं,इनमें लक्षणों द्वारा दोषोंका बलाबल देखकर तदनुसार चिकित्सा करना उचित है । जिसकुष्ठमें जिस दोषके बढेहुए लक्षण दिखाई दें प्रथम उसी की चिकित्सा करै । तत्पश्चात् अनुबन्धी दोषों की चिकित्सा करना चाहिये ।

कुष्ठकी पहचान ।

कुष्ठविशेषैर्दोषादोषविशेषैःपुनःकुष्ठानि । ज्ञायन्तेतैर्हेतुर्हेतुस्तांश्चप्रकाशयति ॥

अर्थ—कुष्ठ के भिन्न २ भेदों से दोष और भिन्न दोषों के लक्षणों से कुष्ठ पह चानी जाती है, इसीतरह कुष्ठसे हेतु और हेतुओं से कुष्ठ जानने में आती है, जैसे कपालकुष्ठ के लक्षणों से वाताधिक्य और वातकी अधिकता से कपालकुष्ठ की संभाव ना होती है ।

वातजादि कुष्ठों के लक्षण ।

रौक्ष्यंशोषस्तोदःशूलंसङ्कोचनंतथायासः पारुष्यंखरभावोहर्षःश्यावारुणत्वंच ॥ कुष्ठेषुवातलिङ्गंदाहोरागःपरिस्रावःपाकः विस्रोगन्धःक्लेदःतथांगपतनश्चपित्तकृत म् ॥ श्वैत्यंशैत्यंकण्डूःस्थैर्यंसोत्सेधगौर वंस्नेहाः । कुष्ठेषुतुकफलिङ्गंजन्तुभिरभि

भन्नणंक्लेदः ॥ सर्वैरेतैर्लिङ्गैर्युक्तंमतिमान्विवर्जयेदबलम् ।

अर्थ—जिस कुष्ठ में रूक्षता, शोष, तोद शूल, संकोच, आयास, कर्कशता, खरखरापन, रोमोद्गम, कालापन, और ललाई, हो उसे वातजन्यकुष्ठ समझो।

दाद, रक्तवर्ण, स्राव, पाक, विस्रगंध, क्लेद और किसी अवयव का गिर पड़ना ये पित्तकृत् कुष्ठ के लक्षण हैं सफेदाई, शीतलाता खुजली, स्थिरता, ऊंचापन, भारापन, चिकनाई ये कफकृत् कुष्ठके लक्षण हैं। जिस कुष्ठ में कीड़े पड़गये हों, क्लेद हो, तथा पूर्वोक्त तीनों दोषों के लक्षण हों और रोगी दुर्वलहो तो वह कुष्ठ दुश्चिकित्स्य होताहै।

कुष्ठ को असाध्यत्व।

तृष्णादाहपरीतंशान्ताग्निंजन्तुभिर्जग्धम् ॥ वातकफप्रवलंयद्यदेकदोषोल्वणंन तत्कृच्छ्रम् । कफपित्तवातपित्तप्रवलानि नतुकृच्छ्रकुष्ठानि ॥

अर्थ—जिसकुष्ठ में तृष्णा, दाह, मन्दाग्नि वा कीड़े पड़गये हों वह असाध्य है। वात कफाधिक वा एक दोषाधिक कुष्ठ कृच्छ्र साध्य नहीं होता है और जिन कुष्ठों में कफपित्त वा वातपित्त प्रवल होते हैं वे अत्यन्त कृच्छ्रसाध्य हैं।

दोषानुसार चिकित्साक्रम।

वातोत्तरेषुसर्पिर्वमनंश्लेष्मोत्तरेषुकुष्ठेषु। पित्तोत्तरेषुमोक्षोरक्तस्यविरेचनंचाग्रे॥ वमनविरेचनयोगाःकल्पोक्ताःकुष्ठिनांप्रयोक्तव्याः। प्रच्छनमल्पेकुष्ठेमतं शिरावेधनंमहतिचशस्तं ॥ वहुदोषःसंशोध्यःकुष्ठीवहुशोनुरक्षताप्राणान्। दोषेह्यतिमात्रहृतेवायुर्हन्यादबलमाशु॥ स्नेहस्यपानमिष्टंशुद्धेकोष्ठेप्रवाहितेरुधिरे। वायुर्हिशुद्धकोष्ठंकुष्ठिनमबलंविशतिशीघ्रम् ॥

अर्थ—वात प्रधान कुष्ठ में प्रथमही घृतपान, कफप्रधान में वमन और पित्त प्रधान में रक्तमोक्षण और विरेचन दैना चाहिये।

कुष्ठरोगियों के लिये जो वमन विरेचन के प्रयोग हैं वे कल्पस्थान में वर्णन किये गये हैं अल्पकुष्ठ में पछना लगाना और महाकुष्ठ में सिरावेधन हित है।

बहुत दोषों से युक्त कोढ़ में वहुतवार संशोधन करना चाहिये परन्तु प्राणों की रक्षा करता रहै ऐसा न हो कि संशोधन देते देते रोगी मरजाय। क्यों कि दोषों के अत्यन्त निकल जाने से दुर्वल हुए रोगी को वायु शीघ्रही मारडालती है।

संशोधन द्वारा कोष्ठ के शुद्ध होने पर और फस्त खोलने के पश्चात् रोगी को घृतपान कराना हित है क्योंकि कोष्ठ के शुद्ध होने से जब रोगी निर्वल होजाता है तव वायु उस में वहुतही शीघ्र प्रवेश करती है।

कुष्ठनाशक प्रयोग।

दोषोत्क्लिष्टेहृदयेवम्यःकुष्ठेषुचोर्द्धभागेषु। कुटजफलमदनमधुकैःसपटोलैर्निम्बरसयुक्तैः॥ शीतरसःपक्वरसोमधूनिमधु

कञ्चवमनानि । कुष्ठेषुत्रिवृतादन्तीत्रिफलाचविरचनेशस्ताः ॥ सौवीरकंतुषोदकमालोडनमासवांस्तुशीध्वादीन् । शंसन्त्यधोहराणांयथाविरेकःक्रमश्श्रेष्ठः ॥

अर्थ—हृदयके दोषों से उत्क्लिष्ट होने पर और कुष्ठरोगके शरीरके ऊपरले भाग में होनेपर इन्द्रजौ,मेनफल, मुलहठी,परवल और नीम के रसको पान कराके वमन करावै ।

कुष्ठरोगमें वमन कराने के लिये मेनफल के शीतकषाय वा कषायमें शहत और मुलहटी का चूर्ण डालै । तथा निसोथ दन्ती और त्रिफला ये विरेचन में हितकारीहैं विरेचनकर्त्ता द्रव्यों में सौवीरक, तुषोदक आसव वा शीधु लैना चाहिये तत्पश्चात् विरेचन में जो जो क्रम वर्णन किया गयाहै वह भी करना चाहिये ।

कुष्ठमें स्थापन प्रयोग ।

दार्वीबृहतीसेव्यैःपटोलपिचुमर्दमदनकृतमालैः । सस्नेहैरास्थाप्यःकुष्ठीसकलिङ्गयवमुस्तैः ॥

अर्थ—दारुहलदी, बडी कटेरी, खस, परवल,नीम,मेनफल,कंजा, इन्द्रजौ और मोथा इन के क्वाथ में सिद्ध किये हुये स्नेह से कोढी को आस्थापनवस्ति देवै ।

कुष्ठ में अनुवासन प्रयोग ।

वातोल्वणंविरिक्तंनिरूढमनुवासनार्हमालक्ष्य । फलमधूकनिम्बकुटजैःसपटोलैः साधयेत्स्नेहम् ॥

अर्थ—विरेचन और निरूहण देने के पश्चात् यदि रोग वाताधिक्य हो तौ रोगी को मेनफल, मुलहटी, नीम, कुडाकी छाल और परवल इन के साथ सिद्ध किये हुए स्नेह की अनुवासन वस्ति देवै यदि वह अनुवासन के योग्य हो ।

कुष्ठ में नस्य प्रयोग ।

दन्तीमधूकसैन्धवफणिज्झकाःपिप्पलीकरञ्जफलम् । नस्यंस्यात्सविडङ्गंक्रिमिकुष्ठकफप्रदोषघ्नम् ॥

अर्थ—दन्ती, मुलहटी, सेंधानमक,फणिज्झक, पीपल, कंजा और वायविडंग इनकी नस्य देने से क्रिमिरोग कुष्ठ और कफ दोष नष्ट होजाते हैं ।

अन्य क्रम ।

वैरोचनिकैर्धूमैःश्लोकस्थानेरितैश्चशाम्यन्ति । क्रिमयःकुष्ठाकिलासप्रयोजितैरुत्तमाङ्गस्थाः ॥ स्थिरकठिनमण्डलानांस्विन्नानांप्रस्तरप्रणालीभिः । कूर्चैर्विघट्टितानांरक्तोत्क्लेशोपनेतव्यः ॥

अर्थ—सूत्रस्थान में जो विरेचन कर्त्ता धूम वर्णन किये गये हैं उन के लैने से शिरःस्थ क्रिमिरोग, कुष्ठ और किलास शीघ्र नष्ट होजाते हैं ।

स्थिर और कठोर चकत्तों को जो प्रस्तर स्वेदनकी रीति से स्वेदित किये गये हैं अथवा कूर्चा से विघट्टित किये गयेहैं उनके उत्क्लेशित रक्त को निकाल दैना चाहिये।

रक्तमोक्षणविधि ।

आनूपवारिजानांमांसानांपटोलैःसुखोष्णैश्च । स्विन्नोत्सन्नंविलिखेत्कुष्ठंती

द्गेनशस्त्रेण ॥ रुधिरागमार्थमथवाशृङ्गा लाबूभिराहरेत्रक्तम् । प्रच्छितमल्पंकुष्ठं विरेचयेद्वाजलौकाभिः ॥ येलेपाःकुष्ठा नांयुज्यन्तेनिर्हृतास्रदोषाणाम् । संशो धिताशयानांसद्यःसिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥

अर्थ---आनूप और औदक पशु पक्षियों का मांस औ सुखोष्ण परवल स्विन्न और उत्स्विन्न कुष्ठका तीक्ष्ण शस्त्र से रुधिर निकालने के लिये लेखन करै अथवा सींगी और अलाबू से रक्तको निकालै तथा क्षुद्र कुष्ठमें पछनालगाकर जोकोंसे रुधिर को निकालै ॥

कोष्ठ के शुद्ध होने पर और रुधिर तथा दोषों के निकालने पर जो लेप किये जाते हैं वे तत्काल फलप्रद होते हैं।

येषुनशस्त्रंक्रमतेस्पर्शेन्द्रियनाशनानियानि स्युः । तेषुनिपात्यक्षारंरक्तंचदोषंचनिः स्राव्य ॥ पाषाणकठिनपरुषेसुप्तेकुष्ठे स्थिरेपुराणेच ॥ पीतागदस्यकार्योविषैः प्रदेहोऽगदैश्चानु ॥ स्तब्धानिसुप्तसुप्तानि अस्वेदनकण्डूलानिकुष्ठानि । कूर्चैर्दन्ती त्रिफलाकरवीरकरञ्जनिम्बकुटजानाम् ॥ जात्यर्कनिम्बकुटजैर्बापत्रैःशस्तैःसमुद्रफे नैर्वा । घृष्टानिगोमयैर्वाततःप्रलेपैःप्रदे ह्यानि ॥

अर्थ—जिन कुष्ठों में शस्त्र काम नहीं देता है और जिन में केवल त्वचा का नाश होता है उन में क्षार लगाकर रक्त और दोषों को निकाल डालै।

जो कुष्ठ पत्थर के समान कठोर, परुष, सुप्त; स्थिर और पुराना होता है उस में रोगी को विषनाशक औषधों का पान करावै । तत्पश्चात् विष औषधियों का लेपन करै ।

जो स्तब्ध, अत्यन्त शून्यता से फैलीहुई पसीनारहित और खुजली युक्त होती हैं उनको दन्ती; त्रिफला; कनेर; कंजा; नीम कीछाल; कुड़ाकी छाल इन की कूर्चा से अथवा चमेली; आक; नीम और कुडा के पत्तों से; अथवा शस्त्रोंसे; अथवा समुद्रफेन से अथवा गोबर से रिगड़कर प्रलेप करै ॥

पित्तकुष्ठकी चिकित्सा ।

मारुतकफकुष्ठघ्नंकर्मोक्तंपित्तकुष्ठानांकार्य म् । कफपित्तरक्तहरणंतिक्तकषायैःप्रश मनञ्चसर्पींषि ॥ तिक्तकानिचयच्चान्य द्रक्तपित्तनुत्कर्म । बाह्याभ्यन्तरमग्र्यंतत्का र्यंपित्तकुष्ठघ्नम् ॥

अर्थ—बातकुष्ठ और कफकुष्ठकी चिकित्सा कही गई है और पित्तकुष्ठ में कफ; पित्त तथा रक्तनाशककर्म करना चाहिये। तिक्तकषाय; तिक्तघृत तथा अन्य रक्त पित्तनाशक कर्म एवं पित्तकुष्ठ के नाशकरने बाले उत्तम २ बाह्य और आभ्यन्तरकर्म करने चाहियें।

दोषाधिक्यविभागादित्येतत्कर्मकुष्ठनुत् मोक्तम् । वक्ष्यामिकुष्ठशमनंप्रायस्त्वग्दो षसामान्यात् ॥

अर्थ—वातापित्तादि दोषों की अधिकता के अनुसार कुष्ठनाशक कर्मों का बर्णन किया गया है अब त्वग्दोष की समानता

से कुष्ठनाशक कर्मों का बर्णन करेंगे । सब प्रकार के कोढ़ त्वचा को बिगाड़ते हैं इस लिये सबप्रकार की कोढ़ों में त्वग्दोष साधारण धर्म है ।

कुष्ठनाशक प्रयोग ।

दार्वीरसाञ्जनंवागोमूत्रेणप्रबाधतेकुष्ठम्। अभयाप्रयोजितावामांसव्योषगुड़तैलाः॥

अर्थ—दारुहल्दी वा रसौत वा हरड़का गोमूत्र के साथ प्रयोग करने से कुष्ठ नष्ट होजाता है; इस में मांस; सोंठ; मिरच; पीपल, गुड़ और तेलका त्याग करदे ।

कुष्ठनाशक दूसरा प्रयोग ।

मूलंपटोलस्यतथागवाक्ष्याःपृथक्पलांशं त्रिफलात्वचश्च । स्यात्त्रायमाणाकटुरोहिणीच भागार्द्धिकानागरपादयुक्ता ॥ पलंत्वथैकंसहचूर्णितानां जलेशृतंदोषहरं पिबेन्ना । जीर्णेरसेधन्वमृगद्विजानां पुराणशाल्योदनमाददीत ॥ कुष्ठानिशोफंग्रहणीप्रदोषं अर्शांसिकृच्छ्राणिहलीमकश्च षड्रात्रयोगेननिहन्तिचैव हृद्बस्तिशूलंविषमज्वरश्च ॥

अर्थ—परवलकी जड़; इन्द्रायणकीजड़; त्रिफला की त्वचा [गुठली निकालकर] त्रायमाणा; कुटकी ये आधे २ पललेवै और सोंठ तोले भर लेकर सबका चूर्णकर लेवै; इस चूर्ण में से प्रतिदिन एकपल लेकर जल के साथ औटाकर पान करै । औषध के पचनेपर धन्वदेशस्थ पशुओं के मांस रस के साथ पुराने शालीचांवलों का भात सेवन करै इस प्रयोग का छः दिवस तक सेवन करने से शोक, कोढ़, ग्रहणीदोष, कृच्छ्रसाध्यअर्श; हलीमक; हृद्शूल; वस्तिशूल, और विषमज्वर ये नष्टहोजाते हैं ।

कुष्ठनाशक अन्ययोग ।

मुस्तंव्योषंत्रिफलामञ्जिष्ठादारुपञ्चमूले द्वे । सप्तच्छदनिम्बत्वक्सविशालश्चित्रकोमूर्वा । चूर्णतर्पणभागैर्नवभिःसंयोजितंसमधवाज्यम् । श्रेष्ठंकुष्ठनिवर्हणमेतत्प्रायोगिकंभक्ष्यम् ॥ श्वयथुंसपाण्डुरोगं श्वित्रंग्रहणीप्रदोषमर्शांसि । ब्रध्मभगन्दरपिड़काकण्डूकोठांश्चविनिहन्ति ॥

अर्थ—मोथा, त्रिकुटा, त्रिफला, मजीठ, दारुहल्दी, लघुपंचमूल, वृहत्पंचमूल सप्तपर्ण, नीमकीछाल, इन्द्रायण की जड़, चीता, मरोड़फली,ये सब समानभागलेकर नौगुनाजौ का सत्तू मिलाकर शहत और घृतके साथसेवन करै । यह प्रयोग कुष्ठ के नाश करने में अत्यन्त उत्तम है । यह शोथ, पाण्डुरोग, श्वित्रकुष्ठ, ग्रहणीदोष, अर्श, ब्रध्न, भगन्दर पिडका, कण्डू और कोढ़ इन सब रोगों को दूर करता है ।

सुप्तकुष्ठनाशक प्रयोग ।

त्रिफलातिविषाकटुकानिम्बकलिंगकावचापटोलानाम् । मागधिकारजनीद्वयपद्मकमूर्वाविशालानाम् ॥ भूनिम्बपलाशगानामूद्द्याद्विपलततस्त्रिवृद्द्वित्रिगुणा । तस्याश्चपुनर्ब्राह्मीतच्चूर्णंसुप्तिनुत्परमम् ॥

अर्थ—त्रिफला, अतीस, कुटकी, नीमकी छाल, इन्द्रजौ, बच, परवल, हल्दी, दारुहल्दी, पद्माख, मरोड़फली, इन्द्रायणकीजड़,

चिरायता, ढाककीछाल इन में से प्रत्येक दोदो पल लेवै, निसोथ चारपल और बारहपल, ब्राह्मी इन सबका चूर्ण बनाकर सेवन करने से सुप्रकुष्ठ नष्टहोता है ।

मध्वासवका प्रयोग ।

खदिरसुरदारुसारंश्रपयित्वातद्रसेनतोयार्थः ॥ क्षौद्रप्रस्थेकार्यःकार्येतेचाष्टपलिकेच ॥ ततश्चायश्चूर्णानामष्टपलंप्रक्षिपेत्तथामूनि । त्रिफलात्वक्मरिचम्पत्रङ्कनकञ्चकर्षांशम् ॥ मत्स्यण्डिकामधुसमातन्मांसमायसेभाण्डे । मध्वासवमाचरतः कुष्ठकिलासेशमंयाताः ॥

अर्थ—खैरकी लकड़ी और देवदारु का गूदा इनको इनही के रस में पकावै जब पकजाय तब उस में दोप्रस्थ क्षौद्र, आठ२ पल उक्त दोनों चूर्ण, आठ पल लोह चूर्ण और एक २ कर्ष त्रिफला की त्वचा, कालीमिरच,तेजपात और धतूरा,शहत के बराबर मिश्री इन सब को मिलाकर एक महीने पर्य्यंत लोहे के पात्र में भरकर रखदे,इस तरह यह मध्वासव तयार होता है, इस के सेवन करने से कुष्ठ और किलासरोग नष्ट होजाते हैं ।

श्वित्रकुष्ठनाशक प्रयोग ।

त्रिफलासवश्चगौडःसचित्रकःश्वित्ररोगकुष्ठघ्नः । क्रमुकदशमूलदन्तीवराङ्गमधुयोगसंयुक्तः ।

अर्थ—त्रिफला का आसव और गौड़ (गुड़की शराब) इनको चीते के साथ पान करने से श्वित्रकुष्ठनष्ट होजाता है अथवा सुपारी, दशमूल, दन्ती, दालचीनी इन के क्काथ में शहत मिलाकर गुड़ के मद्य के साथ पीने से श्वित्रकुष्ठ नष्ट होता है ॥

कुष्ठपर पथ्यापथ्य ।

लघूनिचान्नानिहितानिविद्यात् कुष्ठेषुशाकानिचतिक्तकानि । भल्लातकैश्चत्रिफलौसनिम्बैर्युक्तानिचान्नानिघृतानिचैव ॥ पुराणधान्यान्यथजाङ्गलानिमांसानिमुद्गाश्चपटोलयुक्ताः । शस्तानगुर्वम्लपयोदधीनि नानूपमत्स्यानगुडास्तिलांश्च ॥

अर्थ—हलकाअन्न, तिक्तशाक, भिलाया त्रिफला और नीम के साथ सिद्ध किया हुआ अन्न और घृत, पुराने चांवल, जांगलपशुओं का मांस, मूंग, परवल ये सब कुष्ठरोग पर हितकारी हैं । भारी, खट्टा अन्न, दूध, दही, आनूपजीवोंका मांस, मछली, गुड़ और तिल ये सब अहित हैं ।

कुष्ठपर लेप ।

एलाकुष्ठन्दार्वीशतपुष्पाचित्रकंविडङ्गश्च । कुष्ठेलेपनमिष्टञ्जरसाञ्जनश्चाभयाचैव ॥

अर्थ—इलायची, कूठ, दारुहलदी, सोंफ चीता, वायविडंग, रसौत और हरड इनका लेप कुष्ठ रोग पर करना चाहिये ।

दूसरा लेप ।

चित्रकमेलाबिम्बींवृषकत्रिवृदर्कनागरकम् । चूर्णीकृतमष्टाहंभावयितव्यम्पलाशस्य ॥ क्षारेणगवांमूत्रस्रुतेनतेनास्यमण्डलान्याशु । भिद्यन्तेचविशन्तिचलिप्तान्यर्काभितप्तानि ॥

अर्थ—चीता इलायची, कंदूरी, अडूसा

निसोथ, आक और सोंठ इनका चूर्ण कर ले फिर गौ के मूत्र में ढाकका क्षार मिला कर उसे छान ले, इस छने हुए मूत्रकी पूर्वोक्त चूर्ण को आठ दिन तक भावना देवै, फिर इस लेप को लगाकर सूर्यकी धूप से उस स्थान को तपावै, इस लेप से मण्डल कुष्ठ बहुत शीघ्र भिन्न होकर विलीन हो जाता है।

कुष्ठपर अन्य लेप।

मांसीमरिचंलवणंरजनीतगरंसुधागृहोद्भूमः। मूत्रंपित्तंक्षारःपालाशःकुष्ठनुल्लेपः॥ त्रपुंसीसमयश्चूर्णमण्डलनुत्चित्रकंबृहती। गोधारसःसलवणंदारुचमूत्रञ्चमण्डलनुत्॥ कदलीपलाशपाटलिनिचुलक्षाराम्भसाप्रसन्नेन। मासेषुतोयकार्यंकार्यम्पिष्टेचकिण्वेच॥ तैर्मोदकःसुजातःकिण्वैर्जनितप्रलेपनंशस्तम्। मण्डलकुष्ठविनाशनमातपसंस्थेक्रिमिघ्नञ्च॥

अर्थ—जटामासी, काली मिरच, सेंधा नमक, हलदी, तगर, सेहुड, गृहधूम, मूत्र पित्त और ढाकका खार इनका लेप करने से कुष्ठरोग जाता रहता है। अथवा रांग, सीसा, लोहचूर्ण, चीता और वडी कटेरी इनका लेप करने से मण्डल कुष्ठरोग जाता रहता है अथवा गोधारस (लताविशेष) सेंधानमक, दारुहलदी और गोमूत्र इनका लेप करने से मण्डलकुष्ठ दूर होजाता है अथवा केला, ढाक, पाटला, हिज्जल इन के क्षारके शुद्ध जल में मांसका पाक करै फिर उसी जलमें चांवलों को पीसकर उस में सुराकिण्व मिलादे। यह सब मिलकर मोदक के समान गोला सा वन जायगा इस में से सुराकिण्व मिलादे यह सब मिलकर मोदक के समान गोला सा वन जायगा, इस में सुराकिण्व निकालकर लेप करने से मण्डल कुष्ठ जाता रहता है और लेपित भाग को धूप में तपाने से क्रिमिरोग नष्ट होजाता है।

कुष्ठपर अन्य प्रयोग।

मुस्तंमदनंत्रिफलाःकरञ्जआरग्वधःकलिङ्गयवाः। दार्वीससप्तपर्णास्नानंसिद्धार्थकंनाम॥ एषकषायोवमनंविरेचनंवर्णकस्तथोद्धर्षः। त्वग्दोषकुष्ठशोफप्रवाहनःपाण्डुरोगघ्नः॥ कुष्ठंकरञ्जबीजान्येडगजःकुष्ठसूदनोलेपः। प्रपुन्नाडवीजसैन्धवरसाञ्जनकपित्थरोधाश्च॥ करवीरमूलकल्कःकुटजकरञ्जयोःफलन्त्वचन्दार्व्याः सुमनःप्रवालयुक्तोलेपःकुष्ठापहःसिद्धः॥ रोधस्यधातकीनांवत्सकबीजस्यनक्तमालस्य। कल्कश्चमालतीनांकुष्ठसूद्वर्त्तनालेपौ शैरीषीत्वक्पुष्पंकार्पास्याराजवृक्षपत्राणि। पिष्ट्वाचकाचमाचीचतुर्विधःकुष्ठनुल्लेपः॥

अर्थ—मोथा, मेनफल, त्रिफला, कंजा अमलतास, इन्द्रजौ, दारुहलदी, सप्तपर्ण और सफेद सरसों इनको डालकर गरम किये हुए जलसे स्नान करै। तथा इसी कषायके पान कराने से वमन और विरेचन होकर कुष्ठ नष्ट होजाता है तथा इन्हीं द्रव्यों के कल्क से उवटना करने पर त्वचा के दोष कुष्ठ, सूजन, प्रवाहन और पाण्डु-

रोग जाते रहते हैं ।

अथवा कूठ, कंजा के वीज, चकवड़, इन का लेप करने से कुष्टरोग शान्त होता है। अथवा चकवडके वीज, सेंधानमक, और, रसौत, कैथ, लोध, कनेर की जड़, कुडाकी छाल कंजा, दारुहलदी की छाल और फल चमेली की कोंपल इनका लेप करने से कुष्ट दूर होता है ।

लोध, धायके फूल, इन्द्रजौ, कंजा और मालती इनको पीसकर देह पर मलै और लेप करै तौ कुष्ठ दूर होता है । सिरसकी छाल, कपासके फूल, अमलतास के पत्ते और मकोय इन चार प्रकार का लेप करने से कुष्ठ रोग दूर होजाता है ।

सातप्रकार के कषायादि योग ।

दार्व्यारसाञ्जनस्यचनिम्बपटोलस्यखदिरसारस्य। आरग्वधवृक्षकयोस्त्रिफलायाः सप्तपर्णस्य। इतिषट्कषाययोगानिर्दिष्टाः सप्तमश्चतिनिशस्य । स्नानेपानेचमतास्तथाष्टमश्चास्यसारस्य॥ आलेपनंप्रघर्षणमवचूर्णनमेतएवचकषायाः । तैलघृतपाकयोगेचेष्यन्तेकुष्ठशान्त्यर्थम् ॥

अर्थ—दारुहलदी और रसौंत का क्वाथ नीम की छाल और परबलका क्वाथ, खैर सारका क्वाथ, अमलतास और इन्द्र जौ का क्वाथ, त्रिफलका क्वाथ, सप्तपर्णका क्वाथ और सातवां तिनिशका क्वाथ इन क्वाथों का स्नान और पान में प्रयोग करने से कुष्ठ जाता रहता है तथा तिनिशके सारका लेप, प्रघर्षण और अवचूर्णन (बुर्की) भी हित है, इसीतरह उक्त कषायों में सिद्ध किया हुआ तेल और घी भी कुष्टनाशक होता है ।

कुष्टपर अन्य प्रयोग ।

त्रिफलानिम्बपटोलमञ्जिष्ठारोहिणीवचारजनी । एषकषायोऽभ्यस्तोहिनस्तिकफपित्तजंकुष्ठम् ॥ एतैरेवचसर्पिःसिद्धंवातोल्वणंजयतिकुष्ठम् । एषचकल्पोदृष्टःखदिरासनदारुनिम्बानाम् ॥

अर्थ—त्रिफला, नीम, परवल, मजीठ, कुटकी, वच, हलदी इनके कषायके पीने का अभ्यास करने से कफपित्त से उत्पन्न हुआ कुष्ठ जाता रहता है । इसी कषाय में सिद्ध किया हुआ घृत वाताधिक कुष्ठ को विजय करता है । और यही विधि खैर, असन, दारुहलदी और नीम के क्वाथ की है ।

अन्यप्रयोग ॥

कुष्ठार्कतुत्थकट्फलमूलकबीजानिरोहिणीकटुका । कुटजफलोत्पलमुस्तंबृहतीकरवीरकाशीशम् ॥ एडगजनिम्बपाठादुरालभाचित्रकोबिडंगश्च । तिक्तेक्ष्वाकुबीजंकम्पिल्यकसर्षपवचादार्वी ॥ एतैस्तैलंसिद्धंकुष्ठघ्नंयोगएषवालेपः । तन्मर्दनंप्रघर्षणमवचूर्णनमेषएवेष्टः ॥

अर्थ—कूठ, आक, नीलाथोथा, कायफल, मूलीकेबीज, कुटकी, इन्द्रजौ, नीलोफर, मोथा, वडीकटेरी, कनेर, कसीस, चकवड, नीमकीछाल, पाठा, जवासा, चीता, वायविडंग, कडवीतूंवी के वीज, कबीला, स

रसों, वच, दारुहलदी, इनके कषाय में सिद्धकियाहुआ तेल कुष्ठनाशक है, तथा इन्हीं द्रव्यो के कल्कका लेप, मालिश, प्रघर्षण और अवचूर्णन भी हितकारक है ॥

कनेर का तैल ॥

श्वेतकरवीररसोगोमूत्रंचित्रकोविडंगश्च कुष्ठेषुतैलयोगाःसिद्धोयंसम्मतोभिषजाम्

अर्थ—सफेद कनेरकारस, गोमूत्र, चीता और वायविडंग इनमें सिद्ध कियाहुआ तेल कुष्ठनाशक है इसपर सब वैद्यों की सम्मति है ॥

अन्यप्रयोग ॥

श्वेतकरवीरपल्लवमूलत्वाग्वत्सकविडंगश्च कुष्ठार्कमूलसर्षपशिग्रुत्वग्रोहिणीकटुका एतैस्तैलंसाध्यंकल्कैःपादांशिकैर्गवांमूत्रम् । दत्त्वातैलचतुर्गुणमभ्यंगःकुष्ठ कण्डूघ्नः ॥

अर्थ—सफेद कनेर के पत्ते, जड, छाल इन्द्रजौ, वायविडंग, कूठ, आककीजड, सरसों, सहजनकीछाल, कूठकी छाल, कुटकी इनके कल्क में चौगुना तेल और तेलसे चौगुना गोमूत्र डालकर पकावे फिर इसकी मालिश करै तौ कोढ और खुजली दूर होती हैं ॥

अन्यतैल ॥

तिक्तेच्वाकुवीजंद्वेतुत्थेरोचनाहरिद्रेद्वे । वृहतीफलमेरण्डःसविशालःचित्रकोमूर्वा॥ काशीशहिंगुशिग्रूत्र्युषणसुरदारुतुम्बरु विडङ्गम् । लांगलकीकटजत्वक्कटुका स्याःरोहिणीचैव ॥ सर्षपकल्कैरेतैर्मूत्रेच तुर्गुणंसाध्यम् । कण्डूकुष्ठविनाशनमभ्यङ्गान्मारुतकफघ्नंतैलम् ॥

अर्थ—कडवीतूंबी के वीज, दो प्रकार का थोथा, गोरोचन, दोनों हलदी, कटेरीकाफल, अण्डी कीजड, इन्द्रायणकीजड, चीता, मरोडफली, कसीस, हींग, सहजना, त्रिकुटा, देवदारु, धनियां, वायबिडंग, लांगली, कुडाकीछाल, कुटकी, और सरसों इनके कल्कमें तेल और तेल से चौगुना गोमूत्र डालकर तेलको पकाले इस तेलका मर्दन करने से खुजली, कोढ, वात और कफनष्ट होजाते हैं ॥

कनकक्षीर तैल ॥

कनकक्षीरीशैलाभार्गीदन्तीफलानिमूलञ्च । जातीफलानिप्रवालसर्षपलशुनविडङ्गकरञ्जत्वक् ॥ सप्तच्छदार्कपल्लवमूलत्वङ्निम्बचित्रकास्फोताः । गुञ्जैरण्ड वृहतीमूलकसुरसार्जकफलानि ॥ कुष्ठंपाठामुस्तंतुम्बुरुमूर्वावचासषड्ग्रन्था । एड गजकटुजशिग्रुत्र्यूषणभल्लातकक्षवकाः॥ हरितालमवाक्पुष्पीतुत्थंकम्पिल्लकोमृतासंगः ॥ सौराष्ट्रीकासीसंदार्वीत्वक्सर्जिकालवणम् ॥ कल्कैरेतैस्तैलंकरवीरकमूलकपल्लवकषाये । सार्षपमथवातैलं गोमूत्रचतुर्गुणंसाध्यम् ॥ स्थाप्यंकटुकालावुनितत्सिद्धंतेनास्यमण्डलान्याशु । भिन्द्याद्भिषगभ्यंगात्क्रिमींश्चकण्डूंविनिहन्यात्कुष्ठम् ॥

अर्थ—स्वर्णक्षीरी, मनसिल, भाडंगी, दन्तीफल, दन्तीमूल, जायफल, चमेली के

पत्ते, सफेदसरसों, ल्हसन, वायविडंग, कंजाकीछाल, सप्तपर्णी, आक के पत्ते, जड़ और छाल, नीमकीछाल, चीता, कोयल, चिरमिठी, अरण्ड, वडीकटेरी, मूलक, सुरसातुलसी, अर्जकतुलसी, मैनफल, कूठ, पाठा, मोथा, धनियां, मूर्वा, षट्ग्रन्था, वच, चकवड, कुडा, सहजना, त्रिकुटा, भिलाया क्षवक (तुलसीभेद), हरताल, सोंफ, नीलाथोथा, कवीला, अमृतासंग (मुर्दासिंग), सौराष्ट्र देशकी मिट्टी, सीसा, दारुहलदीकीछाल, सज्जीखार, सेंधानमक, इनकाकल्क तथा कनेरकीजड़ और पत्तों के कषायमें सरसोंकातैल और उससे चौगुना गोमूत्र डालकर तैल सिद्धकरै, इस तैलको तूंबीमें भरकर रखदेवै। इस तेल के लगाने से मण्डलकुष्ठ, क्रिमिरोग, कंडू तथा सब प्रकार के कुष्ठ दूर होजाते हैं।

सिध्मलेप ॥

तमालपत्रंमरिचंसमनःशिलंसकाशीशम्। तैलेनयुक्तमुचितंसप्ताहंभाजनेताम्रे ॥ तेनालिप्तंसिध्मंसप्ताहाद्व्येतितिष्ठतोघर्मे । मासान्नरं किलासंस्नानंमुक्त्वा विशुद्ध तनोः ॥

अर्थ—तमाखूकापत्ता, कालीमिरच, मनसिल, कसीस इन सबका चूर्णबनाकर तेलमें सानकर सातदिवसतक तांवे के पात्र में रखदेवै, फिर इसको लगाकर धूप में बैठजाया करै, ऐसा करने से सिध्मकुष्ठ जाता रहता है। तथा शुद्ध देहवाला मनुष्य इसको एक महीनेतक लगावै तौ किलास कुष्ठ जातारहता है परन्तु इसमें स्नानका निषेध है ॥

अन्य तैल ।

सर्षपकरञ्जकोशातकानितैलान्यथेंगुदीनाञ्च ॥ कुष्ठेषुहितान्याहुस्तैलंयच्चापिखदिरस्यतैलानि ।

अर्थ—सरसों, कंजा, तोरई के वीज, गोंदी और खैर इन सबके जुदे जुदे तेल कुष्ठ नाशक होते हैं।

विपादिकी का चिकित्सा ।

जीवन्तीमञ्जिष्ठादार्वीकाम्पिल्लकस्तथा तुत्थम्॥ एषघृततैलपाकःसिद्धःसिद्धेचसर्जरसःक्षेप्यः । समधूच्छिष्टोविपादिका नश्यतिव्याप्ताचर्मैककुष्ठम् ॥ किटिभंकुष्ठंशाम्यत्यलसकञ्चविपादिकायाम् ।

अर्थ—जीवन्ती, मजीठ, दारुहलदी, कवीला, नीलाथोथा, इन में घृत और तेल को एक साथ पकावै फिर पकते समय राल और मोम डाल दे इसको विवाई में भरदैने से विवाई जाती रहती है, तथा एक कुष्ठ किटिम, कुष्ठ, और अलसक ये नष्ट होजाते हैं।

मण्डल कुष्ठपर लेप ।

किण्वंवराहरुधिरंपृथ्वीकासैन्धवञ्चलेपः स्यात् ॥ लेपोयोज्यःकुस्तुम्बुरूणिकुष्ठञ्चमण्डलनुत् । पूतीकादारुजटिलापक्सुराक्षौद्रमुद्गपर्ण्यौच ॥ लेपःसकाकणासोमण्डलकुष्ठापहःसिद्धः ॥

अर्थ—सुरावीज, सूअरका रुधिर, काला जीरा, सेंधानमक इनका लेप तथा इसी में

धनियां और कूठ मिलाकर लेप करने से मण्डल कुष्ठ दूर होजाता है । अथवा कंजा देवदारु, जटामांसी, पक्कमद्य, शहत, मुद्गपर्णी और काकनासा इनका लेप करने से भी मण्डल कुष्ठ नष्ट होता है ।

छःप्रकार के लेप ।

चित्रकशोभाञ्जनकौगुडूच्यपामार्गदेवदारूणि ॥ खदिरोधवश्चलेपःश्यामा दन्तीद्रवन्तीच । लाक्षारसाञ्जनैला पुनर्नवाचेतिकुष्ठिनोलेपाः ॥ दधिमण्डयुताःसर्वेदेयाःषण्मारुतकफघ्नाः ।

अर्थ—चीता और सहजना । गिलोय, ओंगा, देवदारु । खैर और धवखैर । श्यामा दन्ती और द्रवन्ती । लाख, रसौत और इलायची । तथा पुनर्नवा । इन छःओं को पृथक् पृथक् दधिमण्डल में मिलाकर लेप करने से कुष्ठ तथा वातकफ दूर होते हैं ।

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरकसर्षपैःक्रिमिघ्नैश्च ॥ क्रिमिकुष्ठमण्डलाख्यंदद्रूकुष्ठञ्चशममुपैति । एडगजःसर्जरसोमूलकबीजश्चसिध्मकुष्ठानाम् ॥ काञ्जिकयुक्तन्तुपृथङ्मतमिदमुद्वर्त्तनंक्रमशो लेपाः ।

अर्थ—चकवड़, कूठ, सेंधानमक, सौवीरक, सरसों और वायविडंग इनका लेप करने से क्रिमि, कुष्ठ, मण्डलकुष्ठ और दाद जाते रहते हैं । अथवा चकवड़, राल, मूली के बीज इन को पृथक् पृथक् कांजी में पीस कर उवटना और लेप करने से सिध्मकुष्ठ जाता रहता है ।

अन्य प्रयोग ।

वासात्रिफलापानेस्नानेचोद्वर्त्तनेप्रलेपचे बृहतीसेव्यपटोलाःसशारिवारोहिणीचैव । खदिरावघातककुभारोहीतककुटज निम्बाः ॥ सप्तच्छदकरवीराःशस्यन्ते स्नानपानेषु ॥

अर्थ—अडूसा और त्रिफला इन को पीने, स्नान करने, उबटने और लेप में प्रयुक्त करना चाहिये । अथवा बड़ी कटेरी, खस, परवल सारिवा, कुटकी, खैरसार, अर्जुन, रोहेड़ा, कुड़ा, नीम, सप्तपर्ण, कनेर इनका स्नान वा पीने में प्रयोग करना चाहिये ।

अभ्यंग प्रयोग ।

जलवाप्यलोहकेसरपत्रप्लवचन्दनंमृणालानि ॥ भागोत्तराणिसिद्धंप्रलेपनंपित्तकफकुष्ठे । यष्ट्याह्वरोध्रपद्मकपटोल पिचुमर्दचन्दनरसाश्च ॥ स्नानेपानेच हिताःसुशीतलाःपित्तकुष्ठेभ्यः । आलेपनंप्रियंगुर्हरेणुकावत्सकस्यचफलानि ॥ सातिविषाचसेव्यासचन्दनारोहिणी कटुका । तिक्तघृतैर्धौतघृतैरभ्यंगोदह्यमानकुष्ठेषु ॥ तैलैश्चन्दनमधुकप्रपुण्डरीकोत्पलयुतैश्चाभ्यंगः ।

अर्थ—नेत्रवाला, कुड़ा, लोहचूर्ण, केसर, तेजपात, केवटी मोथा, रक्तचन्दन, कमल नाल, इनका उत्तरोत्तर एक एक भाग अधिक लेकर पित्तकफ कुष्ठ में लेप करना चाहिये (नेत्रवाला एक भाग कुड़ा दो भाग लोहचूर्ण तीन भाग, इसी तरह और भी) ।

अथवा मुलहटी, लोध, पद्माख, परवल, नीम और रक्तचन्दन इनका ठंडा क्काथ स्नान और पीने में देने से पित्तकुष्ठियों को हित है। अथवा प्रियंगु, हरेणु, इन्द्रजौ, अतीस खस, रक्तचन्दन, कुटकी इन द्रव्यों का लेप अथवा तिक्त औषधियों से सिद्ध किया हुआ घी अथवा शतधौत वा सहस्र धौत घृत का लेप करने से दाहयुक्त कुष्ठ शान्त होता है। इसी तरह रक्तचन्दन, मुलहटी पुण्डरिया और नीलोफर इन से सिद्ध किये हुए तैल का मर्दन भी दाहयुक्त में कुष्ठ हित है।

घृतप्रयोग ॥

क्लेदेप्रपतातिचांगेदाहेविस्फोटकेसचर्म दले ॥ शीताःप्रदेहसेकाव्यधनविरेचकौ घृतंतिक्तम् । खदिरघृतंनिम्बघृतंदार्वी घृतमुत्तमंपटोलघृतम् ॥ कुष्ठेषुरक्तपित्त प्रबलेषुभिषज्यितंसिद्धम् ।

अर्थ—कुष्ठ में क्लेद होने से, अथवा किसी अंगके गिरपडने से, विस्फोटक वा चर्मदल में शीतल लेप, सेक तथा शिराव्यधन, विरेजन, तिक्तघृत, खदिरघृत, निम्बघृत, दार्वीघृत और पटोलघृत उत्तम होते हैं। येही प्रयोग उस कुष्ठ में हितकर हैं जिन में रक्त पित्त प्रबल होते हैं ॥

अन्यप्रयोग ॥

त्रिफलात्वचोऽर्द्धपलिकाःपटोलपत्रञ्च कार्षिकाःशेषाः ॥ कटुरोहिणीसनिम्बा यष्ट्याह्वात्रायमाणाच । एषकषायःसा ध्योदत्त्वाद्विपलंमसूराणाम् ॥ सलिलाढ केष्टऽभागेशेषेपूतोरसोग्राह्यःतेचकषाया ष्टपलेचतुष्पलंसर्पिषश्चपक्तव्यम् ॥ यावत्स्यादष्टपलंशेषेपेयंततःकोष्णम् । तद्वात पित्तकुष्ठवीसर्पवातशोणितमप्रबलम् ॥ ज्वरदाहगुल्मविद्रधिविभ्रमविस्फोटकान् हन्ति ॥

अर्थ—त्रिफला की त्वचा आधेपल, पटोलपत्र आधेपल और शेष कुटकी, नीम, मुलहटी, त्रायमाणा ये एक २ कर्ष लेवै तथा दो पल मसूर मिलाकर एक आढ्क जल में इनका क्काथ करै जब आठवां भाग शेष रहजाय तब छान लेवै। इस काथ में से आठपल लेकर चारपल के साथ पकावै जब आठपल शेष रहजाय तब गुनगुना गरम पीले इसके पान करने से वात पित्तजन्य कुष्ठ, विसर्प, प्रबल वातरक्त, ज्वर, दाह, गुल्म, विद्रधि, विभ्रम और विस्फोटक सब दूर होजाते हैं ॥

षट्पलघृत ॥

निम्बपटोलेदार्वीन्दुरालभांतिक्तरोहिणीं त्रिफलम् ॥ कुर्यादर्द्धपलांशंपर्पटकंत्राय माणाश्च । सलिलाढकसिद्धानांरसेऽष्ट भागस्थितेक्षिपेत्पूते ॥ चन्दनकिरा ततिक्तकमागधिकामूत्रायमाणाश्च । मुस्तंवत्सकवीजंकल्कीकृत्वार्द्धकार्षिकान भागान् ॥ नवसर्पिषश्चषट्पलमेतत्सि द्धंघृतंपेयम् । कुष्ठज्वरगुल्मार्शोग्रहणीपा ण्ड्वामयश्वयथुहारि ॥ वीसर्पपिडक पामाकण्डूमदगण्डनुत्तिक्तम् ।

अर्थ—नीम, परवल, दारुहलदी, जवा-

सा, कुटकी, त्रिफला, पितपापडा और त्रायमाणा इनको आधे २ पल लेकर एक आढक जलमें चढादे जब आठवांभाग शेषरहजाय तब उतारकर छान लेवै। फिर इसमें रक्तचन्दन, चिरायता, पीपल, त्रायमाणा, मोथा, इन्द्रजौ इनको आधे २ कर्ष लेकर घोटडालै और ताजी घीछःपल मिलाकर सिद्धकरके इस घृतको पानकरै तौ कुष्ठ, ज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, पाण्डुरोग सूजन, विसर्प, पिडका, पामा, कण्डू, मद तथा गलगण्ड दूरहोजाते हैं ॥

महातिक्तघृत ॥

सप्तच्छदंप्रतिविषंशम्पाकंतिक्तरोहिणींपाठाम् ॥ मुस्तमुशीरंत्रिफलांपटोलपिचुमर्दपर्पटकम्। धन्वयवाशंचन्दनमुपकुल्यांपद्मकंरजन्यौच ॥ षड्ग्रन्थांसविशालांशतावरींशारिवेचोभे । वत्सकबीजंवासांमूर्वाममृतंकिराततिक्तकञ्च ॥ कल्कान्कुर्य्यान्मतिमान्यष्ट्याह्वांत्रायमाणाञ्च। कल्कस्यचतुर्भागेजलमष्टगुणंरसोऽमृतफलानाम् ॥ द्विगुणोघृतात्प्रदेयस्तत्सर्पिःपाययेत्सिद्धम्। कुष्ठानिरक्तपित्तप्रबलान्यर्शांसिरक्तवाहीनि॥ वीसर्परक्तपित्तंवातासृक्पाण्डुरोगञ्च। विस्फोटकान्सपामातुन्मादंकामलांज्वरंकण्डूम्॥ हृद्रोगंगुल्मपिडकाअसृग्दरगण्डमालाञ्च हन्यादेतत्सर्पिःपीतंकालेयथाबलंसद्यः॥ योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम्।

अर्थ—सप्तपर्ण, अतीस, अमलतास, कुटकी, पाठा, मोथा, खस, त्रिफला, परवल, नीम, पित्तपापडा, जवासा, रक्तचन्दन, पीपल, पद्माख, दोनोंहलदी, वच, इन्द्रायणकीजड, सितावर, दोनों प्रकार के सारिवा, इन्द्रजौ, अडूसा, मरोडफली, गिलोय, चिरायता, मुलहटी और त्रायम्मणा इनका कल्क करै, इसका चौथाईघृत, घृत से अठगुना जल, घृत से दूना आंवलेकारस इनमें सिद्ध कियाहुआ घृतपानकरावै। इस घृत के पान करने से रक्तपित्ताधिक्यकुष्ठ, खूनीववासीर, विसर्प, रक्तपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, कण्डू, हृद्रोग, गुल्म, पिडका रक्तप्रदर और गण्डमाला रोग शीघ्रही दूर होजाते हैं, यदि यह बल के अनुसार उचितकाल में पान कियाजाय तौ जो रोग सैकडों योगों से भी अच्छे नहीं हुए हैं वे इस महातिक्तघृत से शीघ्र जाते रहते हैं॥

अर्थ—दोषोंके दूर होनेपर, फस्त से विगडेहुएरक्तके निकलने पर, बाह्य और आन्तरिक शमन होने से, तथा उचितकाल में स्नेह प्रयोग से जो साध्यकुष्ठ शान्त होजाता है वह फिर उत्पन्न नहीं होता है।

महाखदिरघृत ।

खदिरस्यतुलाःपञ्चशिंशपाशणयोस्तुले। तुलार्द्धासर्वएवैतेकरञ्जारिष्टवेतसाः । पर्पटःकुटजश्चैववृषःकृमिहरस्तथा। हारिद्रोकृतमालश्चगुडूचीत्रिफलात्रिवृत् । सप्तपर्णश्चसक्षुण्णादशद्रोणेषुवारिणः । धात्रीरसंचतुल्यांशंसार्पिषश्चाढकंपचेत्॥

अष्टभागावशेषन्तुकषायमवतारयेत् । महातिक्तककल्कैस्तुयथोक्तैःपलसम्मितैः॥ निहन्तिसर्वकुष्ठानिपानाभ्यङ्गानिसेवना त्महाखदिरमित्येतत्परंकुष्ठविकारनुत्॥

अर्थ--खैरकी लकडी पांचतुला; शीशम और असन एक एक तुला: कंजा,नीम की छाल, वेत, पितपापड़ा, कुड़ा, अडूसा,वाय विडंग, दोनों हलदी, अमलतास, गिलोय त्रिफला, निसोथ, सप्तपर्णी ये सब कुटीहुई आधे तुला दशद्रोण जल में चढ़ा देवै, जब अष्टमांश शेष रह जाय तब उतार कर छान लेवै फिर इस में इसके बरावर आंवले का रस और एक आढक घृत तथा महा-तिक्त घृत में कहे हुए एक एक पल सब द्रव्य लेकर उस में डालकर पाक करै। इस घृतका पान और अभ्यंग में सेवन करने से सब प्रकार के कुष्ठ दूर होजाते हैं, यह महाखदिर घृत अत्यन्त कुष्ठ नाशक होता है।

क्रिमिनाशक प्रयोग ।

दोषेहृतेऽपनीतेरक्तेबाह्यान्तरकृतेशमने ॥ स्नेहेचकालयुक्तेनकुष्ठमनुवर्ततेसाध्यम् ॥ प्रपतत्सुलसीकाप्रस्नुतेषुगोत्रषुजन्तुदग्धेषु मूत्रंनिम्बविडङ्गैस्नानंपानंप्रदेहश्च । वृष कुटजसप्तपर्णाःकरवीरकरञ्जनिम्बाश्च ॥ स्नानेपानेलेपेक्रिमिकुष्ठनुदःसगोमूत्राः । पानाहारविधानेप्रसेचनेधूपनेप्रदेहेच ॥ क्रिमिनाशनंविडंगंविशिष्यतेकुष्ठहृत्खदिरः

अर्थ—जो कोई अंगावयव गलकर गिर पड़ा हो, शरीर में से लसीका निकलती हो वा कीडे पड़ गये हों तो गो मूत्र, वाय विडंग और नीम इन को पृथक् पृथक् वा मिलाकर क्वाथ कर के पीने वा स्नान करने में प्रयुक्त करै अथवा लेप करै । अथवा अडूसा, कुड़ा, सप्तपर्ण, कनेर, कंजा, नीम, इन को गोमूत्र में सिद्ध करके स्नान, पान और लेप में प्रयुक्त करने से क्रिमिकुष्ठ जाता रहता है ।

खाने, पीने, प्रसेक, धूपन और प्रदेह में प्रयोग किये जाने से वायविडंग और खैर विशेष करके कुष्ठनाशक होते हैं ।

अन्य प्रयोग ।

एड़गजसविडंगोमूलान्यारग्वस्यकुष्ठाना म् । उद्दालनंश्वदन्तागोश्ववराहोष्ट्रद न्ताश्च ॥ एड़गजःसविडंगोरजनीद्वयरा जवृक्षमूलञ्च । कुष्ठोद्दालनमग्र्यसपिप्पली पाकलंयोज्यम् ॥

अर्थ—चकवड़, वायविडंग, अमलतास जड़ तथा कुत्ता, गौ, घोडा, सूअर और ऊंट इन के दांतों का उवटना करै। अथवा चकवडके वीज, वायविडंग, हलदी,दारुह-लदी, अमलतास की जड, पीपल और पा-टला इनका भी उवटना करै ।

श्वित्रकुष्ठपर प्रयोग ।

श्वित्राणांसविशेषंप्रयोक्तव्यंसर्वतो विशुद्धानाम् । श्वित्रेस्रंसनमग्र्यंमलपूरस इष्यतेसगुडः ॥ तंपीत्वासुस्निग्धोयथाव लंसूर्य्यपादसन्तापम् । सेवेतविरिक्तश्च त्र्यहंपिपासुःपिबेत्पेयाम् ॥ श्वित्रेऽङ्गे येस्फोटाजायन्तेकण्टकेनतान्भिन्द्यात्।

स्फोटेषुविस्रुतेषुप्रातःप्रातःपिबेत्पकम् ॥ मलयूमशनंप्रियङ्गुशतपुष्पांचाम्भसास मुत्काथ्य । पालाशंवाक्षारंयथाबलंफा णितोपेतम् ॥ यच्चान्यत्कुष्ठघ्नंश्वित्राणां सर्वमेवतच्छस्तम् । खदिरोदकसंयुक्तंख दिरोदकपानमग्र्यम्॥ समनःशिलंविडंगं कासीसंरोचनांकनकपुष्पीम्। श्वित्राणां प्रशमार्थंससैन्धवंलेपनंदद्यात् ॥

अर्थ--श्वित्रकुष्ठियों के लिये उन्हैं संशोधनादि से शुद्ध करके औषधदेवै । श्वित्रकुष्ठ में कठूमर का रस और गुड मिलाकर विरेचन देना अत्यन्त हितकारी है । इस रसको पीकर देह पर कुष्ठनाशक तैल का मर्दन करावै और फिर जितना सहसकै उतनी देर धूप में बैठै । विरेचन के पीछे प्यास लगने पर तीन दिनतक केवल पेया का पान करै ।

श्वित्रकुष्ठ में जो फुन्सियां होजाती हैं उन्हैं कांटों से वेध डालै, जब उन में से सब पीव निकलजाय तब प्रतिदिन प्रातः काल कठूमर, अशन, प्रियंगु और सोंफका क्वाथ पीवै ॥ अथवा ढाकके क्षारको बल के अनुसार गुडकी राव के साथ पान करावै। अथवा जो और २ कुष्ठनाशक प्रयोग वर्णन किये गये हैं वे भी सब श्वित्रकुष्ठ में उपयोगी होते हैं विशेष करके खैर के जल के साथ लेप वा खैरके क्वाथादिक का पान करना इस रोग में अत्यन्त हितकारक है। इस रोग में मनसिल, वायविडंग, कसीस गोरोचन, अमलतास और सेंधानमक इनका लेप करने से श्वित्रकुष्ठ जाता रहता है ।

कुष्ठपर अन्यलेप ॥

कदलीक्षारयुतंवाखदिरास्थिदग्धंगवांरुधि रयुक्तम् । हस्तिमदाध्युषितंवामालत्याः क्षारकक्षारम् ॥ नीलोत्पलंसकुष्ठंससैन्ध वंहस्तिमूत्रपिष्टंवा । मूलकवीजोवल्गुज लेपःपिष्टोगवांमूत्रे ॥ काकोदुम्बरिकावा सवल्गुजचित्रकौगवांमूत्रे । पिष्टामनः शिलावासंयुक्तावर्हिपित्तेनलेपः ॥ कि लासहन्तामूलान्यावल्गुजानिलाक्षाच। गोपित्तमञ्जनेद्वेपिप्पल्यःकालन्तोहरजः॥

अर्थ--केलाकाखार वा खैरकी लकडी काखार गौ के रुधिर में मिलाकर लगावै अथवा मालती के खार को हाथी के मद के जलमें मिलाकर लगावै, अथवा नीलोफर, कूठ, सेंधानमक इनको हाथीके मूत्र में पीसकर अथवा मूलीकेवीज और वल्गुजा के वीजका गोमूत्र में पीसकर लेप करने से श्वित्रकुष्ठ दूर होता है ।

अथवा कठूमर, अडूसा, वल्गुजा, चीता इनको गौ के मूत्र में पीसकर लेप करै अथवा मनसिल को मोर के पित्ते में पीसकर लेपकरै ।

वल्गुजाकीजड, लाख, गोपित, अञ्जन रसौत, पीपल और और कान्तिलोहका चूर्ण इनका लेप किलासको दूर करता है ।

शुद्ध्याशोणितमोक्षैर्विरूक्षणैर्भक्षणैश्चश क्तूनाम् ॥ श्वित्रंकस्यचिदेवप्रशाम्यति क्षीणपापस्य ॥

अर्थ--किसी किसी मनुष्य का जिसके

पाप क्षीण होगये हैं श्वित्रकुष्ठ संशोधन, रक्तमोक्षण, विरूक्षण, तथा सत्तूके सेवन से ही जाती रहती है ।

श्वित्रकुष्ठके भेद ।

दारुणंवारुणंश्वित्रंकिलासंनामभिस्त्रिभिः ॥ विज्ञेयंत्रिविधंतच्चत्रिदोषंप्रायशश्चतत् ॥ दोषेरक्ताश्रितेरक्तंताम्रंमांससमाश्रिते। श्वैत्यमेदःश्रितंश्वित्रंगुरुतश्चोत्तरोत्तरम् ॥

अर्थ—श्वित्रकुष्ठ प्रायः दारुण, अरुण, और किलास, इन तीन प्रकार का होता है तथा यह कुष्ठ त्रिदोषाश्रित होता है दोष जब रक्ताश्रित होते हैं तब श्वित्रका वर्ण लाल होता है, मांसाश्रित होने पर ताम्रवर्ण तथा मेदाश्रित होने पर उसका वर्ण सफेद होता है, इन तीनों प्रकार के श्वित्रों में लाल से ताम्रवर्ण और ताम्रवर्ण से श्वेत वर्ण कठिन साध्य होता है ।

श्वित्रको असाध्यत्व ।

यत्परस्परतोभिन्नंबहुयद्रक्तलोमवत् । यच्चवर्षगणोत्पन्नंतत्श्वित्रंनैवसिध्यति ॥

अर्थ—जो दूसरी से मिली हुई नहीं होती है, जिसका रंग अधिक लाल होता है जिस में बहुत रोम होते हैं और जो बहुत पुरानी होजाती है वह श्वित्रकुष्ठ असाध्य होती है ।

श्वित्रकुष्ठकी उत्पत्तिका हेतु ।

वचांस्यतथ्यानिकृतघ्नभावो निंदासुराणांगुरुधर्षणञ्च । पापक्रियापूर्वकृतञ्चकर्म हेतुःकिलासस्यविरोधिचान्नम् ॥

अर्थ—मिथ्या भाषण, कृतघ्नता, देवताओं की निन्दा, गुरुजनों का अपमान, इस जन्म के पाप, पूर्व जन्म के कर्म, तथा विरुद्ध भोजन का सेवन, इन सब कारणों से किलास कुष्ठ उत्पन्न होता है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

भवन्ति चात्र ।

हेतुर्द्रव्योलिङ्गंसमासतोदोषनिर्देशात् । साध्यासाध्यंकृच्छ्रंकुष्ठापहाश्चयेयोगाः॥ सिद्धाःकिलासहेतुर्लिंगगुरुलाघवंशांतिः। इतिसंग्रहःप्रणीतोमहर्षिणाकुष्ठनाशनेऽध्याये ॥ स्मृतिबुद्धिवर्द्धनार्थंशिष्यायहुताशवेशाय ।

अर्थ—इस कुष्ठ चित्सित नामक अध्याय में महर्षि पुनर्वसुने कुष्ठ रोगोंके हेतु,द्रव्य लक्षण, दोष निर्दोषों का संक्षिप्त वर्णन, साध्य, असाध्य और कृच्छ्रसाध्य के लक्षण कुष्ठनाशक अनुभव किये हुए प्रयोग, किलास के हेतु, लक्षण, भारापन, हलकापन शमनोपाय अपने शिष्य अग्निवेश की स्मरण शक्ति और बुद्धि वढाने के निमित्त वर्णन किये हैं ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने कुष्ठाचिकित्सितंनाम सप्तमोऽध्यायः । ७ ॥

अष्टमोध्यायः ।

अथातोराजयक्ष्मचिकित्सितंव्याख्यास्यामःइतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान आत्रेय बोले कि अब हम 'राजयक्ष्मचिकित्सितनामक, अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

राजयक्ष्मा के विषयमें प्राचीन इतिहास।

दिवौकसांकथयतामृषिभिर्वैश्रुताकथा । कामव्यसनसंयुक्तापौराणीशशिनंप्रति॥ रोहिण्यामतिसक्तस्यशरीरंनानुरक्षतः । आजगामाल्पतामिन्दोर्देहःस्नेहपरिक्षया त् ॥ दुहितॄणामसम्भोगात्शेषाणाञ्च प्रजापतेः । क्रोधोनिःश्वासरूपेणमूर्तिमा न्निःसृतोमुखात् ॥ प्रजापतेर्हिदुहितुरष्टा विंशतिरंशुमान् । भार्यार्थंप्रतिजग्राहन चसर्वास्ववर्तत ॥ गुरुणातमवध्यातंभार्या स्वसमवर्तिनम्।रजोऽन्धमबलंदीनंयक्ष्मा शशिनमाविशत् ॥

अर्थ—चन्द्रमा के विषय में कामव्यसनसे भरीहुई एक पौराणिककथा ऋषियों ने देवताओं से सुनी कि चन्द्रमा रोहिणी पर अत्यन्त आसक्तथा अतएव उसने अपने शरीर के स्वास्थपर कुछ ध्यान नहीं दिया इससे स्निग्धता के अत्यन्त क्षीणहोनेपर उसका देह अत्यन्त कृश होगया था, चन्द्रमाका रोहिणी पर अत्यन्त प्यार था इससे दक्षप्रजापतिकी शेष कन्या चन्द्रमाके सम्भोग सुख से वाध्यथीं, यह व्यवस्था सुनकर दक्ष के मुख से श्वास द्वारा क्रोध मूर्तिमान प्रकटहुआ । दक्षकी अट्ठाईस कन्या चन्द्रमाको व्याहीगईथीं परन्तु उसका वर्त्ताव सबके साथ एकसानथा और रोहिणी के अतिरिक्त किसी अन्य के पास नहीं जाताथा ॥

चन्द्रमा रजोगुण से अन्धा होकर अपनी भार्य्याओं में असम व्यवहार रखता था इस से दक्षके शाप के कारण यक्ष्मा ने उस में प्रवेश किया और इस रोग से वह अत्यन्त दीन हीन होगया था ।

चन्द्रमाकी क्षमाप्रार्थना ।

सोऽभिभूतोऽतिगुरुणागुरुक्रोधेननिष्प्रभः देवदेवर्षिसहितोजगामशरणंगुरुम्॥ अथ चन्द्रमसःशुद्धांमतिंबुध्वाप्रजापतिः।प्रसा दंकृतवान्सोमस्ततोऽश्विभ्यांचिकित्सि तः ॥ सविमुक्तग्रहश्चन्द्रोविरराजविशेषतः तेजसावर्द्धितोऽश्विभ्यांशुद्धंसत्त्वमवापच॥

अर्थ—वह अपने श्वशुर के भारी क्रोध से अभिशप्त होकर कान्तिहीन होगया था तब देवता और देवर्षियों को साथ लेकर अपने श्वशुर की शरण गया, तदनन्तर जब प्रजापति ने देखा कि चन्द्रमाकी बुद्धि शुद्ध होगई है तब वह प्रसन्न हुआ और अपने शिष्य अश्विनीकुमार को आज्ञादी तब उन्हों ने चन्द्रमा कीचिकित्साकी । चन्द्रमा ग्रहमुक्त होकर पहिले से भी अत्यन्त कान्तियुक्त होगया और अश्विनीकुमार के द्वारा तेज के बढ़जाने से अत्यन्त शुद्ध सत्वको प्राप्तहुआ ।

यक्ष्माके पर्य्यायवाचीशब्द।

क्रोधोयक्ष्माज्वरोरोगएकोऽर्थोदुःखसंज्ञि तः । यस्मात्सराज्ञःप्रागासीद्राजयक्ष्मा ततोमतः ॥

अर्थ—क्रोध, यक्ष्मा, ज्वर, रोग और दुःख ये सब एकार्थवाची हैं। यह रोग पहिलेही पहिले चन्द्रमा के हुआ था इस से इसे राजयक्ष्मा भी कहते हैं। चन्द्रमा का दूसरा नाम राजा भी है।

यक्ष्मा के मनुष्यलोक में आनेका कारण।

सयक्ष्माहुंकृतोऽश्विभ्यांमानुषंलोकमागतः।
लब्ध्वाचतुर्विधंहेतुंसमाविशतिमानवान्॥

अर्थ—यह यक्ष्मारोग अश्विनीकुमारकी फटकार से स्वर्ग को छोड़कर मनुष्यलोक में आगया और चारप्रकार के हेतुओं से मनुष्यो की देह में प्रविष्ट होनेलगा।

यक्ष्मा के चारहेतु।

अयथाबलमारम्भंवेगसन्धारणक्षयम्।
यक्ष्मणःकारणंविद्यात्चतुर्थंविषमाशनम्॥

अर्थ—१–अयथाबल आरम्भ (शक्ति के अतिरिक्त बल लगाकर कार्य करने में प्रविष्ट होना), २–वेगसंधारण (मलमूत्रादि वेगोंका रोकना), ३–क्षय और ४–विषमाशन। यक्ष्मा के ये चार हेतु हैं।

अयथाबल आरम्भका लक्षण।

युद्धाध्ययनभाराध्वलंघनप्लवनादिभिः। पतनैरभिघातैर्वा साहसैर्वातथापरैः॥ अयथाबलमारब्धैर्जन्तोरुरसिविक्षते। वायुःप्रकुपितोदोषावुदीर्य्योभौविधावति॥ सशिरःस्थःशिरःशूलंकरोतिगलमाश्रितः॥ कण्ठोध्वंसञ्चकासञ्चस्वरभेदमरोचकम्॥ पार्श्वशूलञ्चपार्श्वस्थोवर्चोभेदंगुदेस्थितः जृम्भांज्वरंचसन्धिस्थउरस्थश्चोरसोरुजम्॥ क्षणनाच्चोरसोरक्तंकासमानःकफानुगम्। जर्जरेणोरसाक्षिप्रमुरःशूलीनिरस्यति॥ इतिसाहसिकंयक्ष्मारूपैरेतैःप्रपद्यते। एकादशभिरात्मज्ञोभजेत्तस्मान्नसाहसम्॥

अर्थ—शक्तिका उल्लंघन करके युद्ध करना, पढ़ना, बोझउठाना, मार्गचलना, लांघना; छलांगमारना, गिरना, चोटखाना; वाअन्यसाहसके कर्मों के करने में प्रवृतहोना; ऐसे २ अयथाशक्ति काम करने से वक्षःस्थल में घाव होजाता है और वायु कुपित होकर दोनों कफ और पित्त को उत्तेजित करके प्रवलरूप धारण करती है।

जब वायु शिर में स्थित होती है तब शिरोवेदना करती है; जब गले में स्थित होती है तब कण्ठोध्वंस, खांसी, स्वरभंग और अरुचि होती है। पार्श्व में स्थित होकर पार्श्वशूल, गुदा में स्थित होकर मलभेद, सन्धियों में स्थित होकर जंभाई और ज्वर, वक्षःस्थल में स्थित होकर हृदय में वेदना को उत्पन्न करती है।

हृदय में जब घाव होजाता है तब खांसने में कफ के साथ रुधिर आने लगता है, वक्षःस्थल में घाव होने से हृदय में खांसी के साथ वेदनाभी होने लगती है।

साहसजन्य यक्ष्मा इन ग्यारह लक्षणों से उत्पन्न होती है, बुद्धिमान्को उचित है कि इन साहसिक कर्मों का परित्याग करदेवै।

वेगसंधारणजन्ययक्ष्मा।

ह्रीमत्वाद्वाघृणित्वाद्वाभयाद्वावेगमागतम्। वातमूत्रपुरीषाणांनिगृह्णातियदानरः॥ तदावेगप्रतीघातात्कफपित्तेसमीरयन्।

ऊर्ध्वंतिर्यगधःकुर्याद्विकारानकुपितोऽनिलः ॥ प्रतिश्यायञ्चकासञ्चस्वरभेदमरोचकम् । पार्श्वशूलंशिरःशूलंज्वरमंसावमर्दनम् ॥ अंगमर्दमुहुश्छर्दिर्वर्चोभेदंत्रिलक्षणम् । रूपाण्येकादशैतानियक्ष्मा यैरुच्यतेमहान् ॥

अर्थ—जब मनुष्य किसी प्रकार की लज्जा, घृणा, वा भय से वात, मूत्र, पुरीष के उपस्थितवेग को रोकता है, तब वायु कुपित होकर कफ पित्त को उत्तेजित कर के ऊपर, नीचे वा तिरछे अनेक प्रकार के विकारोंको उत्पन्न करती है, यथा--प्रतिश्याय, खांसी, स्वरभेद, अरुचि, पार्श्वशूल, शिरःशूल, ज्वर, कंधोंमेंदर्द, अंगमर्द, वार २ वमन, और मलभेद, ये ग्यारह वेग संधारणजन्य उपद्रव हैं, इन्ही सान्निपातिक उपद्रवों से यक्ष्मा उत्पन्न होती है ।

क्षयजन्ययक्ष्मा काहेतु ।

ईर्ष्योत्कण्ठाभयत्रासक्रोधशोकातिकर्षणात् । व्यवायानशनाभ्याश्चशुक्रमोजश्चहीयते ॥ ततःस्नेहक्षयाद्वायुर्वृद्धोदोषानुदीरयन् । प्रतिश्यायंज्वरंकासमंगमर्दंशिरोरुजम् ॥ श्वासंविड्भेदमरुचिंपार्श्वशूलंस्वरक्षयम् । करोतिचांससन्तापमेकादशमिहाङ्गहृत् ॥ लिंगान्यावेदयन्त्येतानेकादशमहागदम् । संप्राप्तंराजयक्ष्माणंक्षयात्प्राणक्षयप्रदम् ॥

अर्थ—ईर्षा, उत्कण्ठा, भय, त्रास, क्रोध, शोक, अतिकर्षण, मैथुन वा निराहारता । इन कारणों से शुक्र और ओज क्षीण हो जाते हैं तब स्नेह की क्षीणता के कारण वायु कुपित होकर दोषों को उदीरण कर के प्रतिश्याय, ज्वर, खांसी, अंगमर्द, शिरोवेदना, श्वास, मलभेद, अरुचि, पार्श्वशूल, स्वरभंग, और स्कंधसंताप ये देहको क्षीणकरनेवाले ग्यारह उपद्रव होते हैं । इन एकादश लक्षणों से युक्त धातुओं का क्षय करनेवाला राजयक्ष्मा नामक महारोग होता है, यह शीघ्रही प्राणों का नाश करनेवाला है ।

विषमाशन से उत्पन्न यक्ष्मा ।

विविधान्यन्नपानपानिवैषम्येणसमश्नतः जनयन्त्यामयान्घोरान्विषमामारुतादयः ॥ स्रोतांसिरुधिरादीनांवैषम्याद्विषमंगताः । रुद्धारोगायकल्पन्तेपुष्यन्तिचनधातवः ॥ प्रतिश्यायंप्रसेकश्चकासंछर्दिमरोचकम् । ज्वरमंसाभितापश्चछर्दनंरुधिरस्यच । पार्श्वशूलंशिरःशूलंस्वरभेदमथापिवा । कफपित्तानिलकृतंलिङ्गंविद्याद्यथाक्रमम् ॥ इतिव्याधिसमूहस्यरोगराजस्यहेतुजम् । रूपमेकादशविधंहेतुश्चोक्तश्चतुर्विधः ।

अर्थ—अनेक प्रकार के अन्नपानों के विषमरीति से सेवन करने पर विषमभावको प्राप्तहुये वातादिक तीनों दोष दारुण रोगों को उत्पन्न करते हैं, तथा विषमभावको प्राप्तहुए दोष विषमता के कारण रक्तादि के स्रोतों को रोककर रोगों को उत्पन्न करते हैं और धातुओं को पुष्ट नहीं होने देते हैं । विषमाशन से उत्पन्न ये रोग होते हैं, यथा--प्रतिश्याय, प्रसेक (कफपड़ना),

खांसी, वमन, अरुचि, ज्वर, स्कंधताप, रुधिर की वमन, पार्श्वशूल, शिरःशूल, स्वरभेद । त्रिदोषजन्य यक्ष्मा में क्रम से ये उपद्रव होते हैं ।

इसतरह व्याधियों के समूहों से युक्त रोगों के राजा राजयक्ष्मा के उत्पन्न होनेके चार हेतु और प्रत्येक हेतु के ग्यारह ग्यारह उपद्रव वर्णन कियेगये हैं ।

राजयक्ष्मा के पूर्वरूप ।

पूर्वरूपंप्रतिश्यायोदौर्वल्यंदोषदर्शनम् । अदोषेष्वपिभावेषुकायेबीभत्सदर्शनम् ॥ घृणित्वमश्नतश्चापिबलमांसपरिक्षयः । स्त्रीमद्यमांसप्रियताप्रियताचावगुण्ठने ॥ मक्षिकाघुणकेशानांतृणानांपतनानिच । प्रायोन्नपानेकेशानांनखानाञ्चाभिवर्द्धनम् । पतत्रिभिःपतंगैश्चश्वापदैश्चाभिधर्षणम् ॥ स्वप्नेकेशास्थिराशीनांभस्मनश्चाधिरोहणम्।जलाशयानांशैलानांबनानांज्योतिषामपि ॥ शुष्यतांक्षीयमाणानांपततांयच्चदर्शनम् । प्राग्रूपंबहुरूपस्यतज्ज्ञेयंराजयक्ष्मणः ॥ रूपंत्वस्ययथोद्देशंपरंशृणुसभेषजम् ।

अर्थ—इस रोग में सब से पहिले प्रतिश्याय होता है, तत्पश्चात् क्रम से दुर्वलता, अदोष भावों में दोषदर्शन, शरीर में भयानकपन, घृणोत्पत्ति, भोजन करते करते भी बल और मांसकी क्षीणता, स्त्रीप्रियता, (स्त्रियों का अच्छा लगना) मद्यमांस में स्पृहा; एकान्तवासकी इच्छा प्रायः अन्नपान में मक्खी, घुन, केश और तृणों का गिरना; केश और नखों का बहुत बढना; स्वप्न में पक्षी, पतंग और गोहादि से अभिधर्षण, स्वप्न में केश, हड्डी और भस्म के ढेर चढना; सूखे हुए जलाशय क्षीण होते हुए पर्वत और वन, तथा गिरते हुए तारा गणों का देखना, ये सब बहुरूपिया **राजयक्ष्मा में पूर्वरूप हैं ।**

अब राजयक्ष्मा के लक्षणानुसार औषधों के वर्णन को सुनो ॥

राजयक्ष्मा में पुरीषरक्षा ।

यथास्वेनोष्मणापाकंशरीरायान्तिधातवः ॥ स्रोतसाचयथास्वेनधातुःपुष्यतिधातुना । स्रोतसांसन्निरोधाच्चरक्तादीनाञ्चसंक्षयात् ॥ धातूष्मणांचापचयाद्राजयक्ष्माप्रवर्तते । तस्मिन्काले पचत्यग्निर्यदन्नंकोष्ठमाश्रितम् ॥ मलीभवतितत्प्रायःकल्पतेकिञ्चिदोजसे । तस्मात्पुरीषंसंरक्ष्यंविशेषाद्राजयक्ष्मिणः । सर्वधातुक्षयार्तस्यबलंतस्यहिविड्बलम् ॥

जैसे अपनी अपनी ऊष्मा से शरीर की सम्पूर्ण धातु पाकको प्राप्त होती हैं, इसी तरह अपने अपने स्रोतों के योग से धातु पाकको प्राप्त होती हैं इसी तरह अपने अपने स्रोतों के योग से धातु धातुद्वारा पुष्ट होते हैं । इस लिये स्रोतों के रुकने से, रक्तादिक धातुओं के क्षीण होने से तथा धातुओं की ऊष्मा के नष्ट होने से राजयक्ष्मा की उत्पत्ति होती है ।उससमय अग्नि कोष्ठस्थ जिस अन्नको पचाती है वह प्रायः मल बन जाता है और उसका

बहुत थोडा भाग ओज में परिवर्त्तित होता है। इसी हेतु से राजयक्ष्मा रोगी के मल की विशेष करके रक्षा करनी चाहिये,क्यों कि सम्पूर्ण धातुओं के क्षीण होजाने से रोगी बहुत निर्वल होजाता है और केवल विष्ठा के बलसेही वह वल प्राप्त करता है, इस से जहां तक वनै ऐसा उपाय करता रहै कि विष्टा में परिवर्त्तित हुआ सव आहार वाहर न निकल जाय।

रुद्ध स्रोतों से राजयक्ष्मा की उत्पत्ति।

रसःस्रोतःसुरुद्धेषुस्वस्थानस्थोविदह्यते॥ सऊर्द्धकामवेगेनबहुरूपःप्रवर्तते। जा यन्तेव्याधयश्चातःषडेकादशधापुनः॥ येषांसंघातयोगेनराजयक्ष्मेतिकल्प्यते॥

अर्थ—स्रोतों के रुकजाने से आहारका रस सम्पूर्ण देह में तौ फैलने नहीं पाता है और अपने स्थान आमाशयही में स्थित रहकर विदग्ध होता रहता है, वही रस खांसी के वेग के साथ ऊपर को जाकर अनेक रूप धारण करके निकलने लगता है, तव छः वा ग्यारह प्रकार की व्याधियां उत्पन्न होती हैं इन सव व्याधियों के समुदाय का नाम राजयक्ष्मा है।

उक्ति ग्यारह वा छः व्याधियों के नाम।

कासोंऽसतापोवैस्वर्यंज्वरःपार्श्वशिरोरु जौ॥ शोणितश्लेष्मणोश्छर्दिःश्वासः कोष्ठामयोऽरुचिः। रूपाण्येकादशैता नियक्ष्मिणःषडिमानिवा॥ कासोज्व रःपार्श्वशूलंस्वरवर्चोगदोऽरुचिः।

अर्थ—खांसी, स्कंधताप, स्वरभंग, ज्वर पार्श्व शूल, शिरःशूल, रुधिर की वमन, कफकी वमन; श्वास, कोष्ठामय, अरुचि ये यक्ष्मा के ग्यारह रूप हैं। खांसी,ज्वर पार्श्वशूल, स्वरभेद, मलभेद, अरुचि, ये यक्ष्मा के छः उपद्रव हैं।

यक्ष्माका साध्यासाध्य विचार।

सर्वैरंगैस्त्रिभिर्वापिलिंगैर्मांसबलक्षये॥ युक्तोवर्ज्यश्चिकित्स्यस्तुसर्वरूपोऽप्य तोऽन्यथा॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए ग्यारह वा छः लक्षणों से युक्त अथवा आगे आने वाले तीन लक्षणों से युक्त राजयक्ष्मा में यदि रोगी का मांस और वल क्षीण होजाय तौ वह असाध्य होती है और ऊपर कहे हुए सर्व लक्षणों से युक्त होने पर भी यदि मांस और वल क्षीण न हुआ हो तौ वह साध्य होती है।

प्रतिश्याय के लक्षण।

घ्राणमूलेस्थितःश्लेष्मारुधिरंपित्तमेववा॥ मारुताध्मातशिरसोमारुतंश्यायतेप्रति। प्रतिश्यायस्ततोघोरोजायतेदेहकर्शनः॥ तस्यरूपंशिरःशूलंगौरवंघ्राणविप्लवः। ज्वरःकासःकफोत्क्लेशःस्वरभेदोऽरुचिः क्लमः॥ इन्द्रियाणामसामर्थ्यंयक्ष्माचातः प्रवर्तते। पिच्छिलंवहुलंविस्रंहरितंश्वे तपीतकम्॥ कासमानोरसंयक्ष्मीनिष्ठी वतिकफानुगम्॥

अर्थ—जिस मनुष्य का सिर वायु से आघातित होता है उसकी नासिका के मूल में स्थित कफ वा पित वायुके साम्हने अ-

र्थात् सिरकी ओर दौडते हैं तब देहको कर्शन करने वाला भयंकररूप प्रतिश्याय होताहै इसीको जुकाम वा सर्दी कहते हैं, इसके होनेपर शिरमें दर्द, भारापन, नासिका से स्राव होना, ज्वर, खांसी, कफ निकलना, स्वरभंग, अरुचि, क्लान्ति, इन्द्रियों में असमर्थता ये उपद्रव होते हैं । इनसे पीछे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति होती है ॥ यक्ष्मरोगी के खांसते २ गिलगिला, गाढा, दुर्गन्धयुक्त हरे या सफेद या पीले रंगका रस कफके साथ निकलता है ॥

राजयक्ष्माके विशेष लक्षण।

अंसपार्श्वाभितापश्चतापःपादकरस्यच ॥ ज्वरःसर्वांगगश्चेतिलक्षणंराजयक्ष्मणः ।

अर्थ—कंधे और पसलियों में संताप, हाथ और पांव में संताप, सर्वांगगामीज्वर ये राजयक्ष्मा के प्रधानलक्षण हैं ।

राजयक्ष्मा में स्वरभंग ।

वातात्पित्तात्कफात्रक्तात्कासवेगात् सपीनसात् ॥ स्वरभेदोभवेत्वातात्रूक्षः क्षामश्चलःस्वरः । तालुकण्ठपरिप्लोषःपित्तादूक्तमसूयते ॥ कफान्मन्दोविवद्धश्च स्वरःखुरुखुरायते । सन्नोरक्तविवन्धत्वात्स्वरःकृच्छ्रात्प्रवर्तते । कासातिवेगात् कषणःपीनसात्कफवातिकः ॥

अर्थ—वात से, पित्त से, कफ से, रक्त से, खांसीके वेग से, पीनस से इसरोग में स्वरभंग होता है । जो स्वर वात से भंग होता है उस में स्वर रूक्ष, क्षीण और चलायमान होता है । पित्त से कण्ठ और तालु में दाह और रक्तकी असूयता होती है । कफ से स्वर में मन्दापन और विवद्धता होती है तथा खुर खुर शब्द होता है। रक्तकी विवन्धता से स्वर अवसन्न होजाता है तथा बाहर कठिनता से निकलता है । खांसी के वेग से स्वर में खरखराट होता है तथा पीनस से कफ वात के लक्षण होते हैं ।

यक्ष्मा में अन्य उपद्रव ।

पार्श्वशूलंत्वनियतंसंकोचायामलक्षणम्। शिरःशूलंससन्तापंयक्ष्मिणःस्यात्सगौरवम् ॥ अत्यभिष्यन्ददेहस्ययक्ष्मिणोविषमाशनात् । कण्ठात्प्रवर्ततेरक्तंश्लेष्माचोत्क्लिष्टसञ्चितः ॥ रक्तंबिबद्धमार्गत्वादुरसःश्वासमृच्छति ॥ दोषैरुपहतेचाग्नौ सपिच्छमभिसार्यते । पृथग्दोषैःसमस्तैर्वाजिह्वाहृदयसंश्रिते ॥ जायतेऽरुचिराहारैर्दुष्टैरर्थैश्चमानसैः ।

अर्थ—यक्ष्मा में जो पार्श्वशूल होता है वह अनियत होता है और उस में संकोच वा आयाम के लक्षण होते हैं । शिरोवेदना में सन्ताप और भारापन होता है । अत्यन्त अभिष्यन्दी देहवाले यक्ष्मारोगी के विषम भोजन के करने से कण्ठकी नलीमे होकर रक्त और उत्क्लिष्ट और संचित कफ निकलता है ॥

रक्त मार्गों के रुकजानेसे हृदय के श्वासको रोकलेता है अर्थात् श्वास बड़ी कठिनता से निकलता है । दोषों के द्वारा अग्नि के

नाश होने पर पिच्छिलता युक्त मल निकलता है।

पृथक् पृथक् दोष वा सब मिलकर जब जिह्वा और हृदय का आश्रय करलेते हैं तब अरुचि उत्पन्न होती है। दुष्ट आहार तथा मानसिक अर्थों से भी अरुचि होती है।

अरुचिकी परीक्षा।

कषायतिक्तमधुरैर्विद्यात्मुखरसैःक्रमात्॥ वाताद्यैररुचिंजातांमानसींदोषदर्शनात्। अरोचकात्सामवेगाद्दोषोत्क्लेशाद्भयादपि॥ छर्दिर्यासाविकाराणांअन्येषामप्युपद्रवः। सर्वेस्त्रिदोषजोयक्ष्मादोषाणान्तुबलाबलम्॥ परीक्ष्यावस्थितंवैद्यः शोषिणंसमुपाचरेत्। प्रतिश्यायेशिरःशूलेकासेश्वासेस्वरक्षये॥ पार्श्वशूलेच विविधाःक्रियाःसाधारणीःशृणु।

अर्थ—यदि मुख का रस कषाय हो तौ वातज अरुचि, तिक्तहो तौ पित्तज और मिष्ट हो तौ कफज अरुचि होती है इसी तरह मानसी अरुचि दोषों के देखने से जानी जाती है। अरुचि, आमवेग, दोषोत्क्लेश और भय इनसेही अन्यविकारों में भी वमन होती है।

तीनों दोषों से उत्पन्न हुई यक्ष्मा में दोषो का वलावल देखकर वैद्य को शोषरोगी की चिकित्सा करना उचित है। प्रतिश्याय शिरःशूल, खांसी, श्वास, स्वरक्षय और पार्श्वशूल रोगों की अनेक प्रकारकी साधारण चिकित्साओंको श्रवण करो।

प्रतिश्यायादिछःरोगोंकी चिकित्सा।

पीनसेस्वेदमभ्यङ्गंधूममालेपनानिच। परिषेकावगाहांश्चयावकंवास्यमेवच। लवणाम्लकटूष्णांश्चरसान्स्नेहोपसंहितान् लावतित्तिरिदक्षाणांवर्तकानाञ्चकल्पयेत्। सपिप्पलीकंसयवंसकुलत्थंसनागरम्॥ दाडिमामलकोपेतंस्निग्धमाजंरसं पिबेत्। तेनषड्विनिवर्तन्तेविकाराःपीनसादयः॥ मूलकानांकुलत्थानांयूषैर्वासूपकल्पितैः। यवगोधूमशाल्यन्नैर्यथासात्म्यमुपाचरेत्॥

अर्थ—पीनस वा प्रतिश्याय में अभ्यंग, धूमपान, आलेपन, परिषेक, अवगाहन करावै तथा जौ की रोटियां, नमक, अम्ल, कटु और उष्णरसों तथा घृत में संस्कृत लवा, तीतर, मुर्गा और वतक के मांसरस का पानकरै। अथवा पीपल, जौ, कुलथी, सोंठ, अनार, और आंबला में डालकर घी से संस्कार किया हुआ वकरे का मांसरस पानकरै। इस के सेवन करने से प्रतिश्याय से पार्श्वशूल पर्य्यन्त छः ओं उपद्रव नष्ट होजाते हैं। अथवा मूलक और कुलथीके यूष में सिद्ध कर के जौ गेंहूं और शाली चांवलोंको सात्म्य के अनुसार सेवन करै।

पिबेत्प्रसादंवारुण्याजलंवापाञ्चमूलिकम्। धान्यनागरसिद्धंवातामलक्याथवा शृतम्॥ पर्णिनीभिश्चतसृभिस्तेनचान्नानिकल्पयेत्। कृसरोत्कारिकामाषकुलत्थयवपायसैः॥ सङ्करस्वेदविधिनाकण्ठं पार्श्वमुरःशिरः। स्वेदयेत्पत्रभङ्गेनशिर

अपरिषेचयेत् ॥ बलागुडूचीमधुकशृतैर्वा वारिभिःसुखैः । वस्तमत्स्यशिरोभिर्वा नाडीस्वेदैःप्रयोजयेत् ॥ कण्ठेशिरसिपार्श्वेचपयोभिर्वासवातिकैः ॥

अर्थ—सुरामण्ड, अथवा पंचमूल से सिद्धकियाहुआ जल, अथवा धनियां और सोंठ डालकर सिद्ध कियाहुआ जल, भूय आंवला डालकर सिद्धकियाहुआ जल अथवा शालिपर्णी आदि चारोंपर्णी डालकर सिद्धकियाहुआजल पानकरावै अथवा इन्हीं जलों में सिद्धकियाहुआ अन्न देवै ।

कृशरा, उत्कारिका, माष, कुलथी, जौ, पायस इनसे संकरस्वेदकी रीति से कण्ठ पसली, हृदय और सिरमें स्वेद देवै । अथवा बातनाशक पत्तों से स्वेदन करै, अथवा खरैटी, गिलोय, मुलहटी इनसे सिद्ध किये सुखोष्ण जल से परिषेचन करै ।

अथवा बकरे का शिर, मछली का शिर इन में सिद्ध कर के जल द्वारा वा वातघ्न औषधियों के क्वाथ से नाड़ी स्वेद द्वारा कण्ठ, शिर और पसलियों मेंस्वेदनदेवै ।

औदकानूपमांसानिसलिलंपाञ्चमूलिकम्॥ सस्नेहंसारनालंवानाडीस्वेदंप्रयोजयेत्।

अर्थ—औदक और आनूप पशुओं का मांस पंचमूल से सिद्ध किया हुआ जल अथवा स्नेह युक्त कांजी से नाड़ी स्वेद द्वारा स्वेदन करै ॥

जीवन्त्याःशतपुष्पायाबलायामधुकस्यच॥ वचायावेशवारस्यविदार्यामलकस्यच । औदकानूपमांसानामुपनाहाश्चसंस्कृताः॥ शस्यन्तेचचतुःस्नेहाःशिरःपार्श्वांसशूलिनाम्।

अर्थ—जीवन्ती, सोंफ, बला, मुलहटी, वच, वेशवार, विदारीकन्द, आंवला, औदक और आनूप पशुओं का मांस और चारों प्रकार के स्नेह डालकर सिद्ध किया हुआ लेप सिर के दर्द, पसली के दर्द तथा कंधे के दर्द में हितकारक होता है ॥

शतपुष्पासमधुकंकुष्ठंतगरचन्दनम् ॥ आलेपनंस्यात्सघृतंशिरःपार्श्वांसशूलनुत्।

अर्थ—सोंफ, मुलहटी, कूठ, तगर और चन्दन इनको घृत में मिलाकर लेप करने से, शिर, पसली और कंधे का शूल नष्ट होजाता है ॥

अन्य प्रयोग ।

बलारास्नातिलाःसर्पिर्मधुकंनीलमुत्पलम्॥ पलंकषादेवदारुचन्दनंकेशरंघृतम् । वीराबलाविदारीचकृष्णगन्धापुनर्नवा ॥ शतावरीपयस्याचकतृणंमधुकंघृतम्। चत्वारएतेश्लोकार्धैःप्रदेहाःपरिकीर्तिताः ॥ शस्ताःसंबृद्धदोषाणांशिरःपार्श्वांसशूलिनाम् ॥

अर्थ—(१) खरैटी, रास्ना, तिल, घी, मुलहटी, नीलकमल । (२) गूगल, देवदारु, चन्दन, केसर, घी । (३) क्षीरकाकोली, खरैटी, विदारीकन्द, सहजना और पुनर्नवा । (४) शितावर, क्षीरकाकोली, कतृण, मुलहटी और घी । ये चारों लेप जो आधे २ श्लोक में वर्णन किये

गये हैं बढ़ेहुए दोषवाले शिरःशूल, पार्श्व शूल और अंसशूल में हितकारी हैं ।

अन्यसंशमनक्रिया ।

नावनंधूमपानानिस्नेहाश्चोत्तरभक्तिकाः॥ तैलान्यभ्यङ्गयोगानिवस्तिकर्मतथापरम्। जलौकालाबुशृङ्गैर्वाप्रदुष्टंव्यधनेनवा ॥ शिरःपार्श्वांसशूलेषुरुधिरंतस्यनिर्हरेत् । प्रदेहःसघृतश्रेष्ठःपद्मकोशीरचन्दनैः ॥ दूर्वामधुकमञ्जिष्ठाकेशरैर्वाघृताप्लुतैः । प्रपुण्डरीकनिर्गुण्डीपद्मकेशरमुत्पलम् ॥ कशेरुकापयस्याचससर्पिष्कंप्रलेपनम् ॥ चन्दनाद्येनतैलेनशतधौतेनसर्पिषा ॥ अभ्यङ्गःसर्पिषासेकःशस्तश्चमधुकाम्बुना । माहेन्द्रेणसुशीतेनचन्दनादिशृतेनवा ॥ परिषेकःप्रयोक्तव्यइतिसंशमनीक्रिया ।

अर्थ—नस्य, धूमपान, उत्तरभक्तिकाघृत, अभ्यंगोपयोगी तैल और वस्तिकर्म ये सब उत्कृष्ट हैं । जोक, अलाबू सींगी और फस्त द्वारा दुष्टरुधिर को निकालने से शिरःशूल, पार्श्वशूल और अंसशूल अच्छे होजाते हैं । पद्माख, चन्दन और खस को पीस कर घृत में मिलाकर लेप करने से अथवा दूब, मुलहटी,मजीठ और केसर को घी में सानकर लेप करने से अथवा पुण्डरिया काष्ठ, निर्गुण्डी, कमल केसर, नीलोफर, कसेरू और क्षीर काकोली को घृत में सानकर लेप करने से शिरःशूलादि दूर होजाते हैं ।

चन्दनादि तैल, वा शतधौत घृत का अभ्यंग, घृत तथा मुलहटी के जलका परिषेक,अथवा माहेन्द्रशीतल जल, वा चन्दनादि के क्वाथ का जल इन से परिषेककरै ।

इस तरह यह संशमनी क्रिया वर्णन की गई है ।

दोषाधिक्य में संशोधन विधि ॥

दोषाधिकानांवमनंशस्यतेसविरेचनम् ॥ स्नेहस्वेदोपपन्नानांसस्नेहंयन्नकर्षणम्॥

अर्थ—दोषों की अधिकता में स्नेहन और स्वेदन देकर स्निग्ध वमन विरेचन दे वै जिससे रोगी कृश न होने पावै ।

शोषीमुञ्चतिगात्राणिपुरीषस्रंसनादपि॥ अबलापेक्षिणींमात्रांकिंपुनर्योविरिच्यते। योगान्संशुद्धकोष्ठानांकासेश्वासेस्वरक्षये॥ शिरःपार्श्वांसशूलेषुसिद्धानेतान्प्रयोजयेत्। बलाविदारिगन्धाद्यैर्विदार्यामधुकेनवा॥ सिद्धंसलवणंसर्पिर्नस्यंस्यात्स्वर्यमुत्तमम्। प्रपुण्डरीकंमधुकंपिप्पल्योबृहतीबला ॥ क्षीरंसर्पिश्चतत्सिद्धंस्वर्यंस्यान्नावनंपरम्। शिरःपार्श्वांसशूलघ्नंकासश्वासनिबर्हणम्॥ प्रयुज्यमानंबहुशोघृतंचोत्तरभक्तिकम् । दशमूलेनपयसासिद्धंमांसरसेनच ॥ बलागर्भंघृतंसद्योरोगानेतानप्रबाधते । भक्तस्योपरिमध्येबायथाग्निप्रविचारितम्॥ रास्नाघृतंवासक्षीरंसक्षीरंवाबलाघृतम् ।

अर्थ—मल के निकलजाने से शोषरोगी मनुष्यका देह पतन होजाता है, इससे रोगीके बल के अनुसारही विरेचन मात्राका प्रयोग करना चाहिये ।

जब रोगीका कोष्ठ शुद्ध होजाय तथा खांसी, श्वास, स्वरभंग, शिरःशूल, पार्श्व-

शूल, अंसशूल ये शेष रहजांय तब नीचे लिखेहुए प्रयोगों को देवै ।

खरैटी, विदारीगंधादिगण, विदारीकन्द और मुलहटी, सब से सिद्ध कियेहुए नमक सहित घृतकी नस्य देने से स्वरभंग दूर हो जाता है । प्रपुण्डरीक, मुलहटी, पीपल, वडीकटेरी, खरैटी और दूध इनके साथ सिद्धकियेहुए घृतकी नस्य देने से स्वरभंग दूर होता है । अथवा भोजन के पश्चात् अनेक रीति से घृतपान करने से सिर, पसली और कन्धोंकादर्द तथा खांसी और श्वास जाते रहते हैं । अथवा दशमूल,दूध, मांसरस और खरैटी का गूदा इनसे सिद्ध किया हुआ घृत तत्काल ऊपर कहे हुए रोगों को दूर कर देता है । भोजन करने के पीछे वा बीच में जठराग्नि के अनुसार दूध और रास्नाकाघी अथवा दूध और बलाकाघी सेवन करने से पूर्वोक्त उपद्रव शान्त हो जाते हैं ॥

स्नेहवर्णन ॥

लेहानकासापहान्स्वर्यान्श्वासहिक्कानिवर्हणान् ॥ शिरःपार्श्वांसशूलघ्नान्स्नेहांश्चातःपरंशृणु । घृतंखर्जूरमृद्वीकाशर्करा क्षौद्रसं‿तम् ॥ सपिप्पलीकंवैस्वर्यकास श्वासनिवर्हणम् । दशमूलशृतात्क्षीरात् सर्पिर्यदुदियान्नवम् ॥ सपिप्पलीकंसक्षौद्रन्तत्परंस्वरबोधनम् । शिरःपार्श्वांसशूलघ्नंकासश्वासज्वरापहम् ॥ पञ्चभिःपञ्चमूलैर्वाशृताद्यदुदियाद्घृतम् । पञ्चानां पञ्चमूलानांरसेक्षीरचतुर्गुणे ॥ सिद्धंसर्पिर्जयत्येतद्यक्ष्मणःसप्तकंबलम् ।

अर्थ—अब हम यहां से कासनाशक, स्वरवर्द्धक, श्वास और हिचकी के दूर करनेवाले, शिरःपार्श्वांसशूलनाशक लेह और स्नेहों का वर्णन करेंगे । यथा--

घी, खिजूर, दाख, शर्करा और शहत तथा पीपल इनको चाटने से स्वरभंग, खांसी और श्वास नष्ट होजाते हैं अथवा दशमूल डालकर औटाहुए दूध से जो ताजी घी निकालाजाता है उस में पीपल और शहत डालकर सेवन करै तो स्वरभंग दूर होजाता है, इसीसे शिरःशूल, पार्श्वशूल और अंशशूल तथा खांसी, और श्वास और ज्वर ये भी दूर होजाते हैं ।

पांचों पंचमूल के साथ औटाये हुये दूध का घी भी पूर्वोक्त व्याधिनाशक है अथवा पाचों पंचमूल के क्वाथ तथा चौगुने दूध में सिद्ध किया हुआ घी यक्ष्मरोगी के पूर्वोक्त सातों विकारों को दूर करता है ।

लेह के चार प्रयोग ।

खर्जूरंपिप्पलीद्राक्षापथ्याशृङ्गीदुरालभा ॥ त्रिफलापिप्पलीमुस्तंशृंगाटीगुडशर्करा । वीराशठीपुष्कराख्यंसुरसःशर्करागुडः ॥ नागरंचित्रकोलाजाःपिप्पल्यामलकंगुडः श्लोकार्द्धविहितानेतान्लिह्यान्मामधुसर्पिषा ॥ कासश्वासापहान्स्वर्यान्पार्श्वशूलापहांस्तथा ॥

अर्थ—१--खिजूर, पीपल, दाख, हरड़, काकड़ासींगी और जवासा २--त्रिफला, पीपल, मोथा, सिंघाड़ा और गुड़ शर्करा

३--क्षीरकाकोली,, शटी, पुष्कराख्य (कूठ) तुलसी, शर्करा, गुड़ । ४--सोंठ, चीता, खील, पीपल, आंवला, गुड़ । आधे २ श्लोक में कहेहुये इन चार प्रयोगों को घी और शहत के साथ चाटै तो खांसी, श्वास, स्वरभेद और पार्श्वशूल दूर हो जाते हैं ॥

अन्य प्रयोग ।

सितोपलातुगाक्षीरींपिप्पलींबहुलांत्व चम् ॥ अन्त्यादूर्द्ध्वंद्विगुणितंलेहयेन्मधु सर्पिषा । चूर्णितंप्राशयेद्वातत्श्वासका सकफातुरम् ॥ सुप्तजिह्वारोचकिनम-ल्पाग्निंपार्श्वशूलिनम् । हस्तपादांगदा हेषुज्वरेरक्तेतथोर्द्धगे ॥ वासासर्पिःशता वर्याःसिद्धंवापरमंहितम् ।

अर्थ—मिश्री, वंशलोचन, पीपल,इलाय ची और दालचीनी । इनको पीछे से ऊपर को दूना २ ले अर्थात् दालचीनी से दूनी इलायची, इलायची से दूनी पीपल आदि घी और शहत में सानकर चाटै । अथवा इसी चूर्ण को श्वास, खांसी कफ जिह्वा सुप्त, अरुचि मन्दाग्नि और पार्श्वशूल में देवै ।

हाथ, पांव और शरीर के दाह में, ज्वर में ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त में वासाघृत वा श तावरी घृतका सेवन अत्यन्त हितकारी है।

दुरालभाद्यघृत ।

दुरालभांश्वदंष्ट्राश्चचतस्रःपर्णिनीर्बलाम् भागान्पलोन्मितान्कृत्वापलंपर्पटकस्य च । पचेद्दशगुणेतोयेदशभागावशेषिते॥ रसेसुपूतेद्रव्याणामेषांकल्कान्समावपेत्। शट्याःपुष्करमूलस्यपिप्पलीत्रायमाणयोः तामलक्याःकिरातानांतिक्तस्यकुटजस्य च । फलानांशारिवायाश्चसुपिष्टान्कर्ष सम्मितान ॥ ततस्तेनघृतप्रस्थंक्षीरद्विगु णितंपचेत् । ज्वरंदाहंभ्रमंकासमंसपा र्श्वशिरोरुजम् । तृष्णाञ्छर्दिरतीसारमे तान्सर्पिरपोहति ॥

अर्थ—जवासा, गोखरु, चारों पर्णी, खरैटी और पितपापडा ये आठों एक एक पल लेकर दस गुने जल में पकावै जब दसवां भाग शेष रहजाय तब उसे छानकर नीचे लिखे हुए द्रव्य एक एक कर्ष डाल देवै शठी, पौहकरमूल, पीपल, त्रायमाण, भूम्यामलक, चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ और शारिवा इनको वारीक पीसकर डाल देवै । फिर इस में एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूध डालकर पकावै । इस घृत के सेवन करने से ज्वर, दाह, भ्रम, खांसी, अंसशूल, पार्श्वशूल, शिरःशूल, तृष्णा, वमन और अतीसार दूर होजाते हैं ।

जीवन्त्यादि घृत ।

जीवन्तींमधुकंद्राक्षांफलानिकुटजस्यच। शटींपुष्करमूलञ्चव्याघ्रींगोक्षुरकम्बला म् ॥ नीलोत्पलंतामलकींत्रायमाणांदु रालभाम् । पिप्पलीश्चसमंपिष्ट्वाघृतंवै-द्योविपाचयेत् ॥ एतद्व्याधिसमूहस्य समुत्थंराजयक्ष्मणःरूपमेकादशविधंसर्पि रेकंव्यपोहति ॥

अर्थ—जीवन्ती, मुलहटी, किसमिस, इन्द्र

जौ, शटी, पौहकरमूल, कटेरी, गोखरू, खरैटी, नीलकमल, भू आंवला, त्रायमाणा, जवासा, और पीपल इन को समान भाग लेकर पीस डाले और इस में घृत को पका लेवै। इसी एक घृत के सेवन करने से राजयक्ष्मा के ग्यारह प्रकार के उपद्रव शान्त होजाते हैं।

बलाद्यघृत।

वलांस्थिरांपृश्निपर्णींवृहतींसनिदिग्धिकाम्। साधयित्वारसेतस्मिन्पयोगव्यंसनागरम्॥ दाक्षाखर्जूरसर्पिर्भिःपिप्पल्याचशृतंसह। सक्षौद्रंज्वरकासघ्नंस्वर्यञ्चैतत्प्रयोजयेत्॥

अर्थ—खरैटी शालिपर्णी, प्राश्निपर्णी वडी कटेरी छोटी कटेरी इनका काथ करले, इसमें गौ का दूध, सोंठ, दाख, खिजूर, घृत और पीपल डालकर घृत पाक करै। इस घृत को शहत के साथ सेवन करै। तौ ज्वर, खांसी और स्वर भंग दूर होजाता है।

यक्ष्मा में अन्य प्रयोग।

आजस्यपयसश्चैवप्रयोगोजांगलारसाः यूषार्थेचणकामुद्गामकुष्ठाश्चोपकल्पिता ज्वराणांशमनेयोगःपूर्वमुक्तःक्रियाविधिः यक्ष्मिणांज्वरदाहेषुससर्पिष्कःप्रशस्यते॥ कफप्रसेकेवलवान्श्लैष्मिकःछर्दयेन्नरः। पयसाफलयुक्तेनमधुरेणरसेनवा॥ सर्पिष्मत्यायवाग्वावावमनीयोपसिद्धया। वमितोद्याश्चलघ्वन्नमन्नकालेसदीपनम्॥ यवगोधूममाध्वीकशीध्वरिष्टसुरासवान्। जांगलानिचशूल्यानिसेवमानःकफञ्जयेत्॥

अर्थ—इस रोग में वकरी का दूध और जांगल जीवों का मांसरस प्रशस्त है। यूष के निमित्त चना, मूंग और मोठका प्रयोग करै। ज्वर नाशक प्रयोग तथा चिकित्सा-विधि जो पहिलै वर्णनकी गई हैं, वही विधि यक्ष्मारोगियों के ज्वर और दाह में घृत सहित देवै।

कफ दोषयुक्त और वलवान् रोगी को कफके गिरने में मेनफल के साथ दूध वा मेनफल से युक्त मधुररस वा वमनीय द्रव्यों से संस्कार की हुई घृतयुक्त यवागू पान करा के वमन करावे।

वमन होने के पश्चात् क्षुधा लगने पर लघु अन्न खाने को देवै॥ जौ गेंहू माध्वीक, शीधु, अरिष्ट, सुरा, आसव, और शूल पर भुनाहुआ जांगल पशुओं का मांस सेवन करने से कफ दूर होजाता है।

अन्य प्रयोग।

श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेतुवायुःश्लेष्माणमस्यति। कफप्रसेकन्तंविद्वान्स्निग्धोष्णेनैवनिर्जयेत्॥ क्रियाकफप्रसेकेयावम्यांसैवप्रशस्यते। हृद्यानिचान्नपानानिवातघ्नानिलघूनिच॥

अर्थ—जब कफ अत्यन्त पडता हो तव वायुही कफ को उदीर्ण करती है, उस समय स्निग्धोष्ण क्रिया द्वारा उस कफ के पड़ने को दूर करै। कफप्रसेक में जो चिकित्साकी जाती है वही वमन के रोकने

में हितकारी होती है, इस में हृद्य,वातनाशक और लघु अन्नपान हित है ।

मन्दाग्नि में कर्त्तव्य ।

प्रायेणोपहताग्नित्वात्सपिच्छमतिसार्यते । प्राप्नोत्यास्यस्यवैरस्यंनचान्नभभिनन्दति ॥ तस्याग्निदीपनान्योगानतीसारनिवर्हणान् । वक्त्रशुद्धिकरान्कुर्याद रुचिप्रतिबाधकान् ॥

अर्थ—प्रायः मन्दाग्निसेही पिच्छिल अतीसार होता है, इसी से मुखका जायका विगड़ जाता है और अन्नमें अरुचि होजाती है उस मनुष्य को अग्नि संदीपनकर्त्ता अतिसारनाशक, मुखशुद्धकारक और अरुचिनाशक योगों का सेवन करावै ।

अतिसार नाशक योग ।

सनागरानिन्द्रियवानपिवेद्वातण्डुलाम्बुना। सिद्धांयवागूञ्जीर्णेचचांगेरीतक्रदाडिमैः ॥ पाठाम्बिल्वंयवानींचपातव्यंतक्रसंयुतम् दुरालभांशृंगवेरंपाठाञ्चसुरयासह । जाम्ब्वाम्रबिल्वमध्यञ्चसकपित्थंसनानागरम् ॥ पेयामण्डेनपातव्यमतीसारनिवृत्तये । एतानेवचयोगांस्त्रीन्पाठादीन्कारयेत्खडान् ॥ ससूपधान्यान्सस्नेहान्साम्लान्संग्रहणान्परान् ॥

अर्थ—यक्ष्मारोगी अतिसार में सोंठ और इन्द्रजौ को चांवलों के जल के साथ पान करै, तथा औषध के पचजाने पर चांगेरी, मठा और अनार के रस के साथ सिद्ध कीहुई यवागू पानकरै। अथवा पाठा, बेलगिरी, अजवायन इन के क्वाथको मठा के साथ पीवै, अथवा जवासा, सोंठ, पाठा, इन के क्वाथ को मद्य के साथ पीवै । अथवा जामन और आमकीगुठली, बेलागिरी, कैथ सोंठ इन के क्वाथ को पेयामण्ड के साथ पानकरै । इन्ही अतीसार नाशक तीन योगों का दाल के साथ खडयूष बनाकर घी और खटाई डालकर सेवनकरै यह अत्यन्त संग्राहक होता है ।

अन्यप्रयोग ।

वेतसार्जुनजम्बूनांमृणालीकृष्णगन्धयोः॥ श्रीपर्ण्यामदयन्त्याश्चयूथिकायाश्चपल्लवान् । मातुलुंगस्यधातक्यादाडिमस्यच कारयेत् ॥ स्नेहाम्ललवणोपेतान्ससपिंष्कान्सदाडिमान् ॥

अर्थ—वेत, अर्जुन, जामन, कमल, सहजना, खंभारी, मल्लिका, विजौरा, आंवला अनार इनके पत्तों में खटाई, नमक, घी और अनार डालकर यूष बनावै (किसी २ में ऐसा पाठभी है("चांगेर्य्याश्चुक्रकायाश्च दुग्धिकायाश्चकारयेत् । खडान्दधिसरोपेतान् ससर्पिष्कान् सदाड़िमान्,,)

मांसानांलघुपाकानांरसाःसांग्राहिकैर्युताः व्यंजनार्थंप्रशस्यन्तेभोज्यार्थंरक्तशालयः। स्थिरादिपंचमूलेनपानेशस्तंशृतञ्जलम् ॥ तक्रसुरासचुक्रीकादाडिमस्याथवारसः दीपनंग्राहिनिर्दिष्टंभेषजंभिन्नवर्चसे ॥

अर्थ—व्यंजन के लिये सांग्राहिक द्रव्यों के साथ सिद्ध किया हुआ लघुपाकी मांसों का रस और भोजन के लिये लालशालि चांवलदेवै । शालिपर्ण्यादि पंचमूल से सिद्ध

किया हुआ जल पीने को देवै । मठा, मदिरा, चूका और अनारका रस अतीसार में अग्निसंदीपन और संग्राही होता है ।

वैरस्यनाशक प्रयोग ।

परंमुखस्यवैरस्यनाशनंरोचनंशृणु । द्वौ कालौदन्तपवनंभक्षयेन्मुखधावनैः ॥ तद्वत्प्रक्षालयेदास्यंधारयेत्कवलग्रहान् । पिवेद्धूमन्ततोभृष्टमद्याद्दीपनरोचनम् ॥ भेषजंपानमन्नञ्चहितमिष्टोपकल्पितम् ।

अर्थ—अव हम मुखकी विरसता को दूर करनेवाले प्रयोगों का वर्णन करते हैं प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय दांतनकरना, मुख में जल भर २ कर कुल्ले करना और कवलग्रह करना चाहिये, तदनन्तर धूमपान, फिर दीपनकर्त्ता और रुचिवर्द्धक द्रव्यों का सेवन करै । इच्छा के अनुसार वनाहुआ अन्नपान भी मुख की विरसता दूर करने में हित है ।

मुखधावनपांचप्रयोग ।

त्वङ्मुस्तमेलाधान्यानिमुस्तेसामलकन्त्वचम् ॥ त्वचोदार्व्यायवानीचपिप्पल्यस्तेजवत्यपि । यवानींतिन्तिडीकञ्चपञ्चैतेमुखधावनाः ॥ श्लोकपादेषुविदिताशोधनामुखरोचनाः । गुलिकाधारयेदास्ये चूर्णैर्वाशोधयेन्मुखम् । एषामालोडिता नांवाधारयेत्कवलग्रहान् ॥

अर्थ—दालचीनी, मोथा, इलायची और धनियां अथवा, दोनो मोथा, आंमला, दालचीनी, दारुहल्दी और अजवायन, पीपल और तेजवती, अथवा अजवायन और इमली, इन में चौथाई चौथाई श्लोक में वर्णन किये हुये चूर्णों का दांतन करना मुखको शुद्धकरता और रुचिवर्द्धक होता है । अथवा इनकी गोली वनाकर मुख में रक्खै अथवा इनका चूर्ण बनाकर मुखका शोधन करै अथवा जल में मिलाकर कुल्ले करै ।

सुरामाध्वीकशीधूनांतैलस्यमधुसर्पिषोः। कवलान्धारयेदिष्टान्क्षीरस्येक्षुरसस्यच॥

अर्थ—सुरा, माध्वीक, शीधु, तैल, मधु, घृत, दूध और ईख के रस के कवल धारण करै ।

यवानीषाडव ।

यवानीतिन्तिडीकञ्चनागरंसाम्लवेतसम्। दाडिमम्बदरंचाम्लंकार्षिकानुपकल्पयेत्॥ धान्यसौवर्चलाजाजीवराङ्गञ्चार्द्धकार्षिकम् । पिप्पलीनांशतञ्चैकंद्वेशतेमरिचस्यच ॥ शर्करायाश्चचत्वारिपलान्येकत्र चूर्णयेत् । जिह्वाविशोधनंहृद्यंतच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ हृत्प्लीहपार्श्वशूलघ्नंविबन्धानाहनाशनम् । कासश्वासहरंग्राहि ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ।

अर्थ—अजवायन, इमली, सोंठ अम्लवेत, अनार, वेर इन सब को एक २ कर्ष लेवै । धनियां, संचरनमक, जीरा दालचीनी ये चारों आधे २ कर्ष लेवे, एकसौ पीपल, दोसौ कालीमिरच और शर्करा चार पल इनसवका चूर्ण बनालेवै । यह चूर्ण जिह्वा को शुद्ध करनेवाला, हृदयप्रिय, भोजन में रुचि बढ़ानेवाला, हृद्रोग, प्लीहा और पार्श्वशूल को नष्टकरनेवाला तथा वि

वन्ध और आनाह नाशक है । खांसी, श्वास, ग्रहणी और अर्शविकारोंको दूरकरता है, संग्राही है ।

तालीशपत्रादि वटिका ।

तालीशपत्रंमरिचंनागरंपिप्पलीशुभा । यथोत्तरंभागवृद्ध्यात्वगेलेचार्धभागिके॥ पिप्पल्यष्टगुणाचात्रप्रदेयामितशर्करा। कासश्वासरुचिहरंतच्चूर्णंदीपनंपरम् ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीदोषशोषप्लीहज्वरापहम्। वम्यतीसारशूलघ्नमूर्द्ध्ववातानुलोमनम्॥ कल्पयेद्गुटिकाञ्चवैचूर्णंपक्त्वासितोपलैः । गुटिकाह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतराःस्मृताः ॥

अर्थ—तालीशपत्र, कालीमिरच, सोंठ, पीपल और बंशलोचन, इन सबको उत्तरोत्तर एक २ भाग अधिक लेवै । दालचीनी और इलायची आधे २ भाग लेवै । और पीपल से अठगुनी सफेदचीनी डालकर चूर्ण वनावै । यह चूर्ण खांसी, श्वास और अरुचि को दूर करता है, अत्यन्त अग्नि संदीपन है, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष शोष, प्लीहा, और ज्वरको दूर करनेवाला है । बमन, अतिसार और शूलको दूर करता है ऊर्ध्ववातानुलोमी है ।

मिश्री की चासनी में पूर्वोक्त चूर्ण को डालकर गोली वनालेवै, अग्नि के संस्कार से ये गोलियां चूर्णकी अपेक्षा हलकी होती हैं।

यक्ष्मारोग में मांसव्यवस्था ।

शुष्यतेक्षीणमांसायकल्पितानिविधानवत् । दद्यान्मांसादमांसानिबृंहणानिविशेषतः ॥ शोषिणेबार्हिणंदद्याद्बर्हिशब्देन चापरान् । गृध्रानुलूकान्चासांश्चविधिवत्सूपकल्पितान् ॥ काकांस्तित्तिरिशब्देनमत्स्यशब्देनचोरगान् । भृष्टान्मत्स्यान्त्रशब्देनदद्याद्गण्डूपदानपि॥ लोमशान्स्थूलनकुलान्विडालांश्चोपकल्पितान् । शृगालशावांश्चभिषक्शशशब्देन दापयेत् ॥ सिंहानृक्षांस्तरक्षूंश्चव्याघ्रानेवंविधांस्तथा । मांसादान्मृगशब्देन दद्यान्मांसाभिवृद्धये ॥ गजखड्गितुरङ्गाणांवेशवारकृतान्भिषक् । दद्यान्महिषशब्देन्मांसंमांसाभिवृद्धये ।

अर्थ—जिस यक्ष्मारोगी का मांस क्षीण होगया है उसे मांसाहारी जीवों कामांस देना चाहिये क्योंकि यह अत्यंत वृंहण होता है । इसरोगी को मोरकामांस खवावै अथवा मोरके शब्द से अन्य गिद्ध घुग्घू और चीलकामांस अनेक तरह से सागभाजी की तरह वनाकर सेवन करावै । तीतर के नाम से कौएकामांस, मछली के नामसे सर्पकामांस, मछलीके अंत्रके नामसे गिडोये, खर्गोश के मांस के नामसे रोमयुक्त मोटे नकुलकामांस, बिल्ली वा शृगाल के बच्चेका का मांस सागभाजी की रीति से प्रस्तुत करके देवै । हिरनमांस के नाम से सिंह, रीछ, रोझ वगैरे तथा ऐसेही अन्य मांसाहारी पशुओंकामांस मांसकी बृद्धि के लिये देवै । भैंसा के मांस के नाम से हाथी घोडे वा गेंडे के मांसका वेशवार बनाकर देवै । इन मांसों से मांसकी वृद्धि होती है।

मांसेनोपचिताङ्गानांमांसंमांसकरंपरम् । तीक्ष्णोष्णोलघुत्वाच्छस्तंविशेषान्मृगपक्षिणाम् ॥ मांसानियान्यनभ्यासादनिष्टानिप्रयोजयेत् । तेषूपधासुखंभोक्तुंतथाशक्यानितानिहि ॥ जानन्जुगुप्सन्नैवाद्याज्जग्धंवापुनरुल्लिखेत् । तस्मात्छद्मोपसिद्धानिमांसान्येतानिदापयेत् ॥

अर्थ—मांसाहारी जीवों का मांस अत्यन्त मांसवर्द्धक होता है इन में से मृग और पक्षियों का मांस तीक्ष्ण, उष्ण और लघु होने से अत्यन्त हितकारी होता है । अनभ्यास के कारण जो अनिष्ट मांसों का प्रयोग किया जाता है उनमें भी रुचिको उत्पन्न करके सुखपूर्वक भोजन करै । जो रोगी जानकर भी घृणा प्रकट करता हुआ खा लेता है वह वमन कर देता है, इस से इन मांसों को छल से सिद्ध करके देवै ।

दोषपरत्व से यक्ष्मा में मांसविधान ।

बर्हितित्तिरिदक्षाणांहंसानांशूकरोष्ट्रयोः। खरगोमहिषाणाञ्चमांसंमांसकरंपरम् । योनिरष्टविधाचोक्तामांसानामान्नपानिके। तान्परीक्ष्यभिषग्विद्वान्दद्यान्मांसानिशोषिणे ॥ प्रसहाभूशयानूपवारिजावारिचारिणः । आहारार्थंप्रदातव्यामात्रयावातशोशिणे । प्रतुदाविष्किराश्चैवधन्विजाश्चमृगाद्विजाः । कफपित्तपरीतानांप्रयोज्याःशोषरोगिणाम् ॥ विधिवत्सूपसिद्धानिमनोज्ञानिमृदूनिच । रसवन्तिसुगन्धीनिमांसान्येतानिभक्षयेत् ॥

अर्थ—मोर, तीतर, मुर्गा, हंस, सूअर, ऊंट, गधा, गौ, भैंसा इनका मांस अत्यन्त मांसवर्द्धक होता है । अन्नपानाध्याय में जो आठ प्रकार के मांस वर्णन किये गये हैं उन्हीं मांसों में से यक्ष्मा के अनुसार रोगी को मांस का सेवन कराना चाहिये, यथा-- वातशोषी रोगी को प्रसह, भूशय, आनूप देशज, जलज और जलचर पशुपक्षियोंका मांस खाने के लियेदेवै । कफ पित्त शोष रोगियों को प्रतुद, विष्किर और धन्वज पशुपक्षियों का मांस देवै ।

इन सम्पूर्ण मांसों को साग भाजी की तरह सिद्ध कराके मनोज्ञ मृदु, रसीले और सुगंधित द्रव्य डालकर देवै ॥

मांसमेवाश्नतःशोषेमाध्वीकंपिवतोऽपिच। नियतस्याल्पचित्तस्यचिरंकायेनतिष्ठति॥ वारुणीमण्डभक्तस्यवहिर्मार्जनसेविनः। अविधारितवेगस्ययक्ष्मानलभतेऽन्तरम्॥ प्रसन्नांवारुणींशीधुमरिष्टानासवान्मधु । यथेष्टमनुपानार्थंपिवेन्मांसानिभक्षयेत् ॥

अर्थ—उस नियम से चलने वाले और शान्तात्मा मनुष्य के शरीर में यह रोग वहुत दिवस तक नहीं रहने पाता है जो मांस खाता है और माध्वीक पीता है । जो सुरामण्डलको पीता है और स्नानादि वहिर्मार्जन करता है तथा मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों को नहीं रोकता है उस के यक्ष्मा भीतर प्रवेश नहीं कर सकता । यक्ष्मारोग में प्रसन्ना, वारुणी, शीधु अरिष्ट आसव और मधु इनका यथेष्ट पान करै और यथेष्ट मांस भक्षण करै ॥

यक्ष्मा में मद्यके गुण ।

मद्यंतीक्ष्णोष्णवैशद्यसूक्ष्मत्वात्स्रोतसांमुखम् ।. प्रमथ्यविवृणोत्याशु तन्मोक्षात्सप्त धातवः। पुष्यन्तिधातुयोगाच्चशीघ्रंशोषः प्रशाम्यति ॥

अर्थ—मद्य तीक्ष्ण, उष्ण, विशद और सूक्ष्महोने के कारण स्रोतों के मुखका प्रथम न करके उन्हें खोल देता है और उन के खुलनेसे सातों धातु पुष्ट होने लगती हैं और धातुओं के पुष्ट होने से शोष शीघ्र शान्त होजाता है ।

अन्य प्रयोग।

मांसादमांसस्वरसेसिद्धंसर्पिःप्रयोजयेत् । सक्षौद्रंपयसासिद्धंसर्पिर्दशगुणेनवा ॥ सिद्धंमधुकरैर्द्रव्यैर्दशमूलकषायिकैः । क्षीरमांसरसोपेतंघृतंशोषहरंपरम् ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । सयावशूकैःसक्षीरैःस्रोतसांशोधनंघृतम् ॥ रास्नबालागोक्षुरकांस्थिरावर्षान्तसाधितम् । जीवन्तीपिप्पलीभार्गीसक्षीरंशोषनुद्घृतम् ॥ यवाग्वावापिबेन्मात्रांलिह्याद्वामधुनासह । सिद्धानांसर्पिषामेषामद्यादन्नेनवासह ॥ शुष्यतामेषनिर्दिष्टोविधिराभ्यवहारिकः । बहिःस्पर्शनमाश्रित्य वक्ष्यतेऽतःपरंविधिः ॥

अर्थ—यक्ष्मा में मांसाहारी जीवों के मांसरस में सिद्ध किया हुआ घृत देवै । अथवा दसगुने दूध में घृत पकाकर शहत के साथ सेवन करै । अथवा मधुरगणोक्त द्रव्य, और दशमूल के क्वाथ में दूध और मांसरस मिलाकर उस में घृत को पकाकर देवै यह अत्यन्त शोषनाशक प्रयोग है। अथवा पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ जवाखार और दूध इन में सिद्ध किये हुए घृत का सेवन कराने से स्रोतों का मुख खुलता है । अथवा रास्ना, खरैटी, गोखरू शालिपर्णी और सांठ इन के क्वाथ में जीवन्ती, पीपल, भाडंगी और दूध डालकर घृत पकावै यह घृत शोष को दूर करता है । ऊपर कहेहुये घृतों को यवागू में मिलाकर पीवै अथवा शहत में मिलाकर चाटै । अथवा आहार के साथ सेवन करै ।

शोषरोगी के लिये यह आहार विधि वर्णन कीगई है अब यहां से बहिःस्पर्शनविधिका वर्णन करेंगे ।

अवगाहनविधि ।

स्नेहक्षीराऽम्बुकोष्ठेतंस्वभ्यक्तमवगाहयेत्। स्रोतोविबन्धमोक्षार्थंबलपुष्ट्यर्थमेववा ॥ उत्तीर्णंमिश्रकैःस्नेहैःपुनरक्तैःसुखाकरैः। मृद्नीयात्सुखमासीनंसुखंचाच्छादयेन्नरम् ॥

अर्थ—रोगी के देहपर तैलमर्दन करके घी, दूध या जलकी कोठी में विठाकर स्नान करावै, ऐसा करने से स्रोतों के मुख खुलजाते हैं तथा वल और पुष्टाई वढ़तीहै स्नान के पीछे रोगी को आराम से विठाकर पूर्वोक्त मिश्रकस्नेह का रोगी की देहपर धीरे २ मालिश कर के उसको अच्छीतरह से वस्त्र उढ़ादेवै ॥

उद्वर्त्तनविधि।

जीवन्तींशतवीर्य्याञ्चविकसांसपुनर्नवाम्। अश्वगन्धामपामार्गंतर्कारींमधुकंबलाम्॥ विदारींसर्षपंकुष्ठंतण्डुलानतसीफलम् । माषांस्तिलांश्चकिण्वञ्चसर्वमेकत्रचूर्णयेत् ॥ त्रिगुणंयवचूर्णेनदध्नायुक्तंसमाक्षिकम् । एतदुत्सादनंकार्य्यंपुष्टिवर्णबलप्रदम्

अर्थ—जीवन्ती, शतवीर्य्या (दूवभेद) मजीठ, सोंठ, असगंध, ओंगा, तर्कारी, मुलहटी, खरैटी, विदारीकन्द, सरसों, कूठ, तण्डुल, अलसी, उरद, तिल और सुरावीज इन सबको पीसलेवै इस में तिगुना जौ का चून, तथा दही और शहत मिलाकर के उबटना करै। इस से पुष्टाई, वल और वर्ण बढ़ता है।

गौरसर्षपकल्केनगन्धैश्चापिसुगन्धिभिः। स्नायादृतुसुखैस्तोयैर्जीवनीयौषधैःशृतैः॥ गन्धैःसमाल्यैर्वासोभिर्भूषणैश्चविभूषितः। स्पृश्यान्संस्पृश्यसंपूज्यदेवताःसभिषग्द्विजान् ॥ इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धवत्पानभोजनम् । इष्टमिष्टैरुपाहितंसुखमद्यात्सुखप्रदम् ॥

अर्थ—सफेद सरसों का, कल्क, और सुगंधित द्रव्योंको जीवनीयगणोक्त औषधियों में क्काथ करके ऋतु के अनुसार सुखदायक जलों से स्नान करै जैसे गरमीमें शीतल जल से सरदी में गरम जल से स्नान करै फिर अतर फुलेल लगाकर फूलमाला और स्वच्छवस्त्र धारण करै, आभूषण पहरै। मंगल द्रव्यों का स्पर्श कर देवता, वैद्य और ब्राह्मणों का पूजन करै फिर अपने इष्टमित्रों के साथ इच्छानुसार रस, वर्ण स्पर्श और गंध से युक्त सुखपूर्वक अन्नपान का सेवन करै।

पथ्यतम भोजन।

समातीतानिधान्यानिकल्पनीयानिशुष्यताम् । लघूनिहीनवीर्य्याणितानिपथ्यतमानिहि ॥

अर्थ—शोषरोगियों के लिये एक वरस के रक्खे हुए पुराने चांवलों का सेवन करावै ये लघु और हीनवीर्य होनेके कारण अत्यन्त पथ्यतम होते हैं।

यक्ष्मामें अन्यपथ्य॥

यच्चोपदेक्ष्यतेपथ्यंक्षतक्षीणचिकित्सिते। यक्ष्मिणस्तत्प्रयोक्तव्यंबलमांसाभिवृद्धये॥

अर्थ—क्षतक्षीण चिकित्सा में जो जो प्रयोग वर्णन कियेगये हैं वे सब वल और मांस वढाने के लिये यक्ष्मामें देने चाहियें।

यक्ष्मा में अन्यउपचार।

अभ्यङ्गोत्सादनैःस्नानैरवगाहैर्विमार्जनैः। वस्तिभिःक्षीरसर्पिर्भिर्मांसैर्मांसरसोदनैः॥ इष्टैर्मद्यैर्मनोज्ञानांगन्धानामुपसेवनैः । यथर्तुविहितैःस्नानैर्वासोभिरहतैःप्रियैः ॥ सुहृदांरमणीयानांप्रमदानांचदर्शनैः । गीतवादित्रशब्दैश्चप्रियश्रुतिभिरेवच ॥ हर्षणाश्वासनैर्नित्यंगुरूणांसमुपासनैः । ब्रह्मचर्येणदानेनतपसादेवतार्चनैः ॥ सत्येनाचारयोगेनमङ्गलैरविहिंसया । वैद्यविप्रार्चनाच्चैवरोगराजोनिवर्त्तते ॥

अर्थ—तेलकी मालिश करने से, उवटना

करनेसे, स्नान, अवगाहन और मार्जन करने से, वस्तिकर्म से घृत, दुग्ध, मांसके सेवन से, मांसरस के साथ भात खाने से, इष्ट मद्यपान से, मनोहारी गंधो के सूंघने से, ऋतु २ के अनुसार जलोंसे स्नान करनेसे, अखण्ड और प्यारे वस्त्रों को धारण करने से, इष्टमित्रों के दर्शन से, और कमनीय स्त्रियों के देखने से गीत वाजोंके शब्दों से, प्यारी वातों के सुनने से, हर्ष और आश्वासन से, गुरुजनों की नित्यप्रति सेवा करने से, ब्रह्मचर्य्य, दान तप और देवतार्चन नियमों के पालन से सत्यव्रतपालन, मंगलाचरण और अहिंसा से, वैद्य और बिप्रोंके पूजनसे यह रोगराज राजयक्ष्मा दूर होजाती है ॥

प्रयुक्तयाययाचेष्ट्याराजयक्ष्मापुराजितः। तांवेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थीप्रयोजयेत्॥

अर्थ—जिस प्रयोग और काम से प्राचीन काल में यह रोग दूर किया गया था उस वेदोक्तकार्य को आरोग्य प्राप्त करने के लिये करै ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानिप्राग्रूपंरूपसंग्रहः । समासव्यासतश्चोक्तंभेषजंराजयक्ष्मणः । नामहेतुरसाध्यत्वंसाध्यत्वंकृच्छ्रसाध्यता। इत्यर्थसंग्रहःप्रोक्तोराजयक्ष्मचिकित्सिते॥

अर्थ—इस राजयक्ष्मा चिकित्साध्याय में राजयक्ष्मा की प्रागुत्पत्ति, निदान, पूर्वरूप रूप और चिकित्सा विस्तार पूर्वक तथा संक्षेप से वर्णन किये गये हैं । इस रोग के अन्यनाम, हेतु, असाध्यता, साध्यता, और कृच्छ्रसाध्यता का वर्णन किया गया है ॥

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने राजयक्ष्मचिकित्सितं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ॥

अथातोऽर्शसांचिकित्सितंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम ' अर्शचिकित्सित नामक, अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

आसीनंमुनिमव्यग्रंकृतजप्यंकृतक्षणम् । पृष्टवानर्शसांयुक्तिमग्निवेशःपुनर्वसुम् ॥ प्रकोपहेतुःसंस्थानंस्थानंलिंगचिकित्सितम् । साध्यासाध्यविभागञ्चतस्मैतन्मुनिरब्रवीदिति ॥

अर्थ—जब महात्मा पुनर्वसु जपादि नित्यकर्म से निश्चिन्त होकर स्वस्थ चित्त से बैठे हुए थे इस अवकाश को देखकर अग्नि वेशने उन से अर्शरोग की युक्ति, प्रकोप हेतु, आकृति, उत्पत्तिस्थान, लक्षण चिकित्सा, साध्यासाध्य लक्षण पूछे और मुनीश्वर ने इन सब प्रश्नों का यथावत् उत्तर दिया ।

अर्श के भेद ।

इहखल्वग्निवेश! द्विविधान्यर्शांसिसहजानिकानिचित् ॥ कानिचिज्जातस्यो

त्तरकालजानि । तत्रबीजंगुदबलिबीजो पतप्तमायतनमर्शसांसहजानां । तत्राद्धि बिर्शौबीजौउपतप्तौ, हेतुःमातापित्रोर पचारःपूर्वकृतञ्चकर्म्मतथान्येषामपिस हजानांविकाराणाम् । तत्रसहजातानी तिशरीरेणार्शांसीत्यधिमांसविकाराः ।

अर्थ—हे अग्निवेश । अर्श (ववासीर) दो प्रकार के होते हैं एक **सहज** (जन्म सेही होने वाला) दूसरा **उत्तरकालज** (जन्म लैने से पीछे होने वाला) । इन में सहज अर्शों का आयतन गुदवलि वीजोप तप्त है, इन में से माता पिता के अपचार से वीज के उपतप्त होने के कारण तथा पूर्व जन्म के किये हुए कर्म से सहज अर्श होता है, तथा अन्य सहज विकारों के भी ये ही दोनों हेतु हैं । जो अर्श शरीर के साथही होते हैं वे एक प्रकार के अधिमांस विकार हैं ।

अर्श का स्थान ।

सर्वेषाञ्चार्शसांक्षेत्रंगुदस्यार्द्धपञ्चमांगुले ऽवकाशेत्रिभागान्तरास्तिस्रोगुदबलयःक्षेत्र मितिदेशः । केचित्तुभूयांसमेवदेशमुपदिश न्त्यर्शसांशिश्नमपत्यपथंगलमुखनासिकाक र्णाक्षिवर्त्मानित्वक्च । तदस्त्यधिकमांसदे शएषःगुदबलिजानांत्वर्शांसीतिसंज्ञातत्र अस्मिन्सर्वेषांचार्शसांअधिष्ठानंमेदोमां संत्वक्च ।

अर्थ—गुदा के द्वार से भीतर को साडे पांच अंगुल के वीच में प्रवाहिणी, विसर्जनी और संवरणी, ये तीन आंटी होती हैं इन में ही सब प्रकार के अर्शरोग उत्पन्न होते हैं और अर्शरोग की उत्पत्ति का यही स्थान अर्थात् क्षेत्र है । कोई २ यह कहते हैं कि केवल गुदाही अर्श का स्थान नहीं है किन्तु और भी हैं, यथा मेढ,योनि मार्ग, गला, मुख, नासिका, कान, आंख के कोए और त्वचा । परन्तु इन स्थानों में जो मांस वढता है वह अर्श नहीं कहलाता है वह तो अधिमांस है और गुदाकी आंटियों में जो मांस की वृद्धि होती है उसेही ' अर्श , कहते हैं । यहां सम्पूर्ण प्रकारकी अर्शों का अधिष्ठान मेदा, मांस और त्वचा हैं ।

सहज अर्श की आकृति ।

तत्रसहजान्यर्शांसिकानिचिदणूनि,कानिचिन्महान्ति, कानिचिद्दीर्घाणि,कानिचिद्ध्रस्वानि, कानिचिद्वृत्तानि, कानिचिद्विषमविसृतानि, कानिचिदन्तःकुटिलानि, कानिचिद्बहिः कुटिलानि, कानिचिज्जटिलानि,कानिचित्तनुमुखानि, यथास्वंदोषानुवद्धवर्णानि ।

अर्थ—इन सहज अर्शों में कोई सूक्ष्म कोई वडी, कोई दीर्घ, कोई छोटी, कोई गोल, कोई विषमरीति से फैली हुई, कोई भीतर को टेढी, कोई वाहर को टेढी कोई जटिल, कोई पतले मुखवाली होती हैं और जिस दोष की अधिकता होती है उसी के अनुसार अर्श का रंग होता है ।

सहज अर्श रोगी के लक्षण ।

तैरुपहतोजन्मप्रभृतिभवतिकृशोविवर्णः

क्षामोदीनःप्रचुरविवद्धवातमूत्रपुरीषःशा र्करीचाश्मरीवातथानियतविबद्धमुक्तप क्वामशुष्कभिन्नवर्चाः अन्तराअन्तरा मश्वेतपाण्डुहरितपीतरक्तारुणतनुसान्द्र पिच्छिलकुणपगन्धामवर्च्चउपवेशीना भिवस्तिवंक्षणोद्देशप्रचुरपरिकर्त्तिकान्वि तःसशूलगुदप्रवाहिकापरिहर्षप्रमेहप्रसक्त विष्टम्भान्त्रकूजोदावर्त्तहृदयेन्द्रियोपलेपः प्रचुरविवन्धतिक्ताम्लोद्गारः । सुदुर्वलो दुर्वलाग्निरल्पशुक्रःक्रोधनोदुःखोपचार शीलःकासश्वासतमकतृष्णाहृल्लासच्छर्दिररोचकपीनसक्षवथुपारीस्तैमिरिकःशि रःशूलीक्षामाभिन्नसन्नसक्तजर्जरस्वरःकर्ण रोगीसंशूनपाणिपादवदनाक्षिकूटःसज्व रःसांगमर्दःसर्वपर्वास्थिशूलीचान्तरान्तरा पार्श्वकुक्षिवस्तिहृदयपृष्ठत्रिकग्रहोपतप्तः प्रध्यानपरःपरमलसश्चेति

अर्थ—जिस मनुष्यके सहजअर्श होता है वह जन्मसेही कृश, विवर्ण, क्षीण और दीन होता है, उस के अधोवायु और मल मूत्र का विवन्ध नित्यप्रति रहाकरता है, उस के शर्करारोग पथरी का रोग भी रहता है । उसका दस्त सदाही विवन्धयुक्त, पक्व, आम, शुष्क और फटाहुआ होता है और वीच २ में सफेद, पीला, हरा, पाण्डु वर्ण, रक्त, अरुण, पतला, गाढ़ा, गिलगिला, सड़ीहुई दुर्गन्धियुक्त और कच्चापन लियेहुए निकलता है । वैठे रहने से इस रोगी के नाभि, वस्ति और वंक्षणों में ऐंठा होता रहताहै । इस रोगीके शूल, प्रवाहिका रोमोद्गम; प्रमेह, प्रसक्त विष्टम्भता, अंत्रकूजन उदावर्त्त, हृदय तथा इन्द्रिय समूहोंमें लिहसावट, अत्यन्त विवन्धता युक्त तिक्त और खट्टी डकार, दुर्वलता, मन्दाग्नि, अल्पवीर्य, क्रोध, दुःखोपभोग, खांसी, श्वास तमकश्वास, हृल्लास, वमन, अरुचि, पीनस, छींक, तिमिररोग जैसे रतोंध, शिरदर्द, स्वरक्षीणता, स्वराभिन्नता, स्वरसन्नता, स्वरसक्तता; स्वरजर्जरता, कर्णरोग, हाथ-पांव मुख--अक्षिकूट में सूजन, ज्वर, अंगमर्द, देह के सब पर्व्वों में दर्द, वीच २ में पसली, कूख, वस्ति, हृदय, पीठ, गर्दन के जोते इन में वेदना, और ताप, चिन्तागूस्तता, अत्यन्त आलस्य ये विकार रहेकरते हैं ।

उक्तउपद्रवोंका कारण ।

जन्मप्रभृतिअस्यगुदजैरावृतोमार्गोपरोधाद्वायुरपानःप्रत्यारोहन्समानव्यानप्राणोदानान्पित्तश्लेष्माणौचप्रकोपयति । ते प्रकुपिताःपञ्चवाताःपित्तश्लेष्माणौचार्शसामभिद्रवन्तेएतान्विकारानुपजनयन्तीत्युक्तानिसहजान्यर्शांसि ॥

जन्मसेही गुदा में उत्पन्नहुई अर्श से रुककर ऊपरको चढ़ती हुई समान, व्यान, प्राण, और उदान इन चारों वायुको तथा पित्त और कफको प्रकुपित करदेती है । इस तरह प्रकुपित हुए पांचोवायु तथा पित्त और कफ अर्श को उपद्रुत कर के पूर्वोक्त विकारों को उत्पन्न करते हैं ।

यह सहज अर्शों का वर्णन कियागयाहै।

उत्तरकालजअर्शके लक्षण ।

अतऊर्द्ध्वंजातस्योत्तरकालजानिव्याख्यास्यामः । गुरुमधुरशीताभिष्यन्दविदाहिविरुद्धाजीर्णप्रमिताशनासात्म्यभोजनाद्गव्यमत्स्यवाराहमाहिषाजाविकपिशितभक्षणात्कृशशुष्कपूतिमांसपैष्टिकपरमान्नक्षीरमोदकदधितिलगुडविकृतिसेवनान्माषयूषेक्षुरसपिण्याकपिण्डालुकशुष्कशाकशुक्तलशुनकिलाटपिण्डकाबिसमृणालशालूकक्रौञ्चादनकशेरुकाशृङ्गाटकतरुणविरूढनवधान्याममूलकोपयोगाद्गुरुफलशाकरागहरितवसाशिरस्पदपर्य्युषितपूतिशीतसङ्कीर्णान्नाभ्यवहरणान्मन्दकातिक्रान्तमद्यपानाद्व्यापन्नगुरुसलिलपानादतिस्नेहपानादसंशोधनाद्वस्तिकर्मविभ्रमादव्यायाद्दिवास्वप्नात्सुखशयनासनोपसेवनाच्चोपहताग्नेर्मलोपचयोभवत्यतिमात्रम्। अथोत्कटुकविषमकठिनासनसेवनादुद्भ्रान्तयानोष्ट्रप्रयाणादतिव्यवायाद्वस्तिनेत्रासम्यक्प्रणिधानात्गुदक्षणनादभीक्ष्णंशीताम्बुसंस्पर्शाच्चेलल्लोष्टतृणादिघर्षणात्प्रततातिनिवर्हणाद्वातमूत्रपुरीषवेगोदीरणात्समुदीर्णवेगविनिग्रहात् स्त्रीणाञ्चामगर्भभ्रंशाद्गर्भोत्पीडनाद्वहुविषमप्रसूतिभिश्चप्रकुपितोवायुरपानोमलमुपचितमधोगममासाद्यगुदवलिष्वाधत्तेततस्तास्वभिष्पन्नासुअर्शांसिप्रादुर्भवन्ति ।

अर्थ—अब जन्मके पीछे होनेवाले अर्शरोग का वर्णन करेंगे--यथा भारी, मिष्ट, शीतल अभिष्यन्दी, विदाही, विरुद्ध, अजीर्णकर्त्ता भोजन, प्रमितभोजन और असात्म्य भोजन से, गौ, मछली, सूअर, भैंसा, बकरी, भेड़ इनका मांस खाने से; कृश शुष्क और सड़ेहुये मांस के सेवन करने से, पिष्टक, परमान्न, दूध, मोदक, दही, तिल, गुड़ इन के बनेहुये पदार्थों के सेवन से, उरद का यूष ईखका रस, पिण्याक, पिण्डालू, सूखासाग, सिरका, लहसन, कीला, पिण्डक, कमलनाल, मृणाल, शालूक, क्रौञ्चादन, कसेरू, सिंघाड़ों के सेवन से, तरुण, उगेहुये, नवीन धान्यों के खाने से, कच्ची मूली के सेवन से, भारीफल, शाक, रागखाडव, हरितक, चर्वी, पक्षियों के सिर, पांव तथा, वासी, सड़ाहुआ, ठंठा, संकीर्ण भोजन करने से, मन्दक दधि और अत्यन्त मद्यपान करनेसे, दूषित और भारजिलके पीने से, अत्यन्त स्नेह पानकर ने से असंशोधन से वास्तिकर्म में उलट पुलट होने से, अव्यवाय से, दिन में सोने से, सुखासन, शय्या वा आसन पर अत्यन्त बैठे रहने से अग्निमन्द पड़जाती है और अग्नि के मन्द पड़जाने से मलकी अत्यन्त वृद्धि होंती है। इसीतरह उकडू बैठने से, विषम वा कठोर आसन पर बैठेरहने से, ऐसी सवारी पर चढ़ने से जिस में झटके बहुत लगते हों, ऊंटपर चढ़ने से, अत्यन्त मैथुन करने से वस्तिनेत्र के ठीकरन लगनेसे, गुदामें घाव होजाने से, अथवा बार २ वहुत ठंडे वा गरम जल से धोने के कारण अथवा कप

ड़ा, लोहा, मिट्टी का ढेला वा तिनुके से अत्यन्त घर्षणकरनेसे,अत्यन्त किंचनेसे अधो वायु मूत्र और पुरीष के अनुपस्थितवेग को निकालने से तथा उपस्थित वेग का निग्रह करने से, स्त्रियों के आमगर्भ के गिरपडने से, गर्भ के उत्पीड़न से, बहुत संतान होने से वा विषम रीति से होने पर अपानवायु प्रकुपित होकर पूर्व संचित मल से उस समय मिलजाती है जब वह नीचे को जाने लगता है, वह अपानवायु गुदाकी आंटी में स्थित होजाता है और वहां विकार उत्पन्न करके अर्श रोग को उत्पन्न करता है ॥

दोष परत्वसे अर्शका आकार ।

सर्षपमसूरमाषमुद्गमकुष्ठकयवकलायटिण्टिकेरखर्जूरकर्कन्दकाकणन्तिकाबिम्बीवदरकरीरोदुम्बरजाम्बवगोस्तनांगुष्ठकशेरुकाशृङ्गाटकशृङ्गीदत्तशिखिशुकतुण्डजिह्वामुकुलकर्णिकासंस्थानानिसामान्याद्वातपित्तकफप्रबलानितेषामयंविशेषः

अर्थ—सरसों,मसूर,उडद,मूंग,मौठ,जौ, कलाय, टिण्टिकेर (टेंटी) खिजूर, बेर, चिरमिठी, कंदूरी, बेर, करील, गूलर, जामन, किसमिस, अंगूठा, कसेरु, सिंघाडा, काकड़ासींगी, मुर्गा, मोर, तोता, इनकी चोंच और जिह्वा तथा फूलकी कर्णिका के समान आकार उन अर्शों का होता है जो वात, पित्त तथा कफकी प्रवलता से हुई है । इनके विशेष लक्षण नीचे लिखे जाते हैं ।

वातप्रबल अर्श के लक्षण ।

शुष्कम्लानकठिनपरुषरूक्षश्यावानितीक्ष्णाग्राणिवक्राणिस्फुटितमुखानिविषमविस्तृतानिशूलाक्षेपतोदस्फुरणाचिमिचिमासंहर्षणपरीतानिस्निग्धोष्णोपशयानिप्रवाहिकाध्मानशिश्नवृषणवस्तिवंक्षणहृद्ग्रहाङ्गमर्दहृदयद्रवप्रबलानिप्रततविबंद्धवातमूत्रवर्चांसिकठिनवर्चांस्यूरुकटीपृष्ठत्रिकपार्श्वकुक्षिवस्तिशूलंशिरोऽभितापिक्षवथूद्गारप्रतिश्यायकासायासशोषशोथमूर्च्छारोचकमुखवैरस्यतैमिर्यकण्डूनासाकर्णशंखशूलस्वरोपघातकराणिश्यावारुणपरुषनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्यवातोल्वणान्यर्शांसीतिविद्यात् ।

अर्थ—वे अर्श जो शुष्क, कुम्हलाई हुई कठोर, खरखरी, रूक्ष, श्यामवर्ण, तीक्ष्ण अग्रभागवाली, टेढी, फटेहुए मुखकी विषम रीति से फैली हुई होती है तथा जिन में शूल, आक्षेप, तोद (सुई चुभने कीसी वेदना), स्फुरण (फुरफुरी) चिमचिम और रोमोद्गम होता है,जिन में स्निग्ध और उष्णद्रव्यों के व्यवहार से शान्ति होती है जिनमें प्रवाहिका अध्मान होता है तथा मेढ़, अण्डकोष, वस्ति वंक्षण और हृदयमें वेदना होती है जिस में अंगमर्द और हृदयद्रवकी प्रवलता होती है, जिस में अधोवायु, मल और मूत्र रुकजाता है, मल कडा पड़जाता है, ऊरू, कमर, पीठ, त्रिक पसली, कूख और वस्ति में शूल होता है, शिरोवेदना छींक, डकार, जुकाम, खांसी,आयास,शोष

सूजन, मूर्च्छा, अरुचि और मुख में विरसता, तिमिर, खुजली, नाककान कनपटी में वेदना, स्वरभंग, तथा जिस में नख, नेत्र, मुख, त्वचा,मूत्र और विष्ठा काले,लाल और परुष होजाते हैं, उसे वातज अर्श कहते हैं।

भवतिचात्र ।

कषायकटुतिक्तानिरूक्षशीतलघूनिच । प्रमिताल्पाशनन्तीक्ष्णमद्यमैथुनसेवनम्॥ लंघनंदेशकालौचशीतौव्यायामकर्म्मच। तीक्ष्णोवातातपस्पर्शोहेतुर्वातार्शसामिति॥

अर्थ—कषाय, कटु, तिक्त, रूक्ष,शीतल और लघु पदार्थों का अत्यन्त सेवन, मित भोजन, अल्पभोजन,तीक्ष्णमद्यपान, अत्यन्त मैथुन, लंघन, शीतदेश, शीतकाल,व्यायाम प्रचंड पवन, तेज धूप, ये सब वातज अर्श के प्रधान हेतु हैं ।

पित्तज अर्श के लक्षण ।

मृदुशिथिलसुकुमाराण्यस्पर्शसहानिरक्त पीतनीलकृष्णानि स्वेदोपक्लेदबहुला निविस्रगन्धीनितनुपीतरक्तस्त्रावीणिरुधिरवाहीनिदाहकण्डूशूलनिस्तोदपाकवन्ति शिशिरोपशयानिसंभिन्नपीतहरितवर्चांसिपीतविस्रगन्धप्रचुरबिण्मूत्राणिपिपासा ज्वरतमकसंमोहभोजनद्वेषकराणिपीतनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्यपित्तोल्वणान्यर्शांसीतिविद्यात् ।

अर्थ—पित्तज अर्श उसे कहते हैं जो मृदु, शिथल और सुकुमार हो, जिस में हाथ लगाने से तकलीफ होती हो, जिस का वर्ण लाल, पीला, नीला वा काला हो जिस में पसीने और क्लेद की अधिकता हो, जिस में दुर्गन्ध आती हो,पतला और पीला रक्त झरताहो, रुधिर वहता हो, जो दाह, खुजली, शूल, तोद और पाकयुक्त हो, जो शीतल पदार्थों के सेवन से शान्त होजावै, जिसमें फटाफटा पीला वा हरा मल निकले, जिस में पीला, दुर्गन्धयुक्त और अधिक मल मूत्र निकले, जिसमें तृषा, ज्वर,तमक, मोह, भोजन में अरुचि ये उपद्रव हों,जिस में नख नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टा पीले पडगये हों ।

भवतिचात्र ।

कट्वम्ललवणक्षारव्यायामाग्न्यातपप्रभाः । देशकालावशिशिरौक्रोधोमद्यमसूयनम् ॥ विदाहितीक्ष्णमुष्णञ्चसर्वंपानान्नभेषजम् । पित्तोल्वणानांविज्ञेयःप्रकोपहेतुरर्शसामिति ॥

अर्थ—पित्तोल्वण अर्श के कोप के प्रधान कारण ये हैं, यथा-कटु, अम्ल, नमकीन और खारे पदार्थों का अत्यन्त सेवन,व्यायाम, अग्नि तथा धूपका अत्यन्त सेवन, उष्णदेश कालका सेवन, क्रोध, मदिरापान निन्दा तथा विदाही, तीक्ष्ण, उष्ण अन्न पान और औषधी का सेवन ।

कफजअर्श के लक्षण ॥

तत्रयानिप्रमाणवन्त्युपचितानिश्लक्ष्णानिस्पर्शसहानिश्वेतपाण्डुपिच्छिलानि स्तब्धानिगुरूणीस्तिमितानिसुप्तसुप्तानि स्थिरश्वयथूनिपततपिञ्जरश्वेतरक्तपिच्छास्त्रावीणिकण्डूबहुलानिगुरुपिच्छिलश्वे

तमूत्रपुरीषाणिरूक्षोष्णोपशयानिप्रवाहिकातिमात्रोत्थानिवंक्षणानाहपरिकर्त्तिकाहृल्लासनिष्ठीविकाकासारोचकप्रतिश्यायगौरवच्छर्दिमूत्रकृच्छ्रशोषशोथपाण्डरोगशीतज्वराश्मरीशर्कराहृदयेन्द्रियास्योपलेपास्यमाधुर्यप्रमेहकराणिदीर्घकालानुपशयान्यतिमात्रमग्निमार्दवक्लैव्यकराण्यामविकारप्रबलानिगुरूणिचशुक्लनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्यश्लेष्मोल्वणान्यर्शांसीतिविद्यात् ।

अर्थ—कफजअर्श उन्हें कहते हैं जो बड़े, मोटे, चिकने, स्पर्श के अयोग्य, सफेद, पीले पिच्छिल, स्तब्ध, भारी, स्तिमित, फैलेहुये, स्थिर सूजनयुक्त हों, जिस मेंसे पीला, सफेद, लाल और पिच्छल स्राव होता है, जिस में अत्यन्त खुजली चलती है, भारी, पिच्छिल और श्वेत वर्ण का मलमूत्र निकलता है, जो रूक्ष और उष्ण पदार्थों के सेवन से शान्त होजाता है, जिस में अत्यन्त प्रवाहिका, वंक्षणानाह, परिकर्त्तिका, हृल्लास, निष्ठीवका, खांसी, अरुचि, प्रतिश्याय, भारापन, मूत्रकृच्छ्र, वमन, शोष, शोथ, पाण्डुरोग, शीतज्वर, अश्मरी, शर्करा, हृदयोपलेप, इन्द्रियोपलेप, आस्योपलेप, मुख में मीठापन और प्रमेहरोग ये उपद्रव होते हैं, यह अर्श बहुत दिवस तक रहता है और आग्निको अत्यन्त मन्द तथा क्लीवता करता है, इस में आमविकार उत्पन्न होजाता है, यह रोग बड़ाभारी है इस के होने से नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और पुरीष सफेद पड़जाते हैं ।

भवतिचात्र ।

मन्धुरस्निग्धशीतानिलवणानिगुरूणिच ।
अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखेरतिः ॥
प्राग्वातसेवाशीतौचदेशकालावचिन्तनम् । श्लैष्मिकाणांसमुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ॥

अर्थ—कफजअर्श के प्रधानहेतु ये हैं, यथा--मीठे, चिकने, शीतल, नमकीन और भारी पदार्थों का सेवन, कसरत कुश्ती न करना, दिन में सोना, पलंग वा आसनपर सुखपूर्वक वैठेरहना, पुरवैयाहवाका खाना, शीतल देशकाल में रहना और बेफिकरी ।

द्वन्द्वजादिअर्श के लक्षण ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्वणानिच ।
सर्वोहेतुस्त्रिदोषाणांसहजैर्लक्षणैःसह ।

अर्थ—जिनमें दो दो दोषों के हेतु और लक्षण मिले हों उन्हें द्वन्द्वजअर्श कहते हैं । जिनमें तीनों दोषों के मिलेहुए लक्षण हों तथा जो सहजअर्श के लक्षणों से युक्त हो उसे त्रिदोषजअर्श कहते हैं ।

अर्शकेपूर्वरूप ।

विष्टम्भोऽन्नस्यदौर्बल्यंकुक्षेराटोपएवच ।
कार्श्यमुद्गारबाहुल्यंसक्थिसादोऽल्पविट्कता ॥ ग्रहणीदोषपाण्ड्वार्त्तिराशङ्काचोदरस्यच । पूर्वरूपाणिनिर्दिष्टान्यर्शसामतिवृद्धये ॥

अर्थ—पेट में गुड़गुड़ होना, दुर्वलता, कूखका फूलना, कृशता, डकारों का अधिक

आना, सक्थिसाद, दस्तका कमहोना, ग्रहणी दोष, पाण्डुरोग, अत्ति, उदररोग की आ शंका, ये सब अर्शरोगों के पूर्वरूप हैं ।

अर्शकेनाम विशेषका कारण ।

अर्शांसिखलुजायन्तेनासन्निपतितैःत्रिभिः । दोषैर्दोषविशेषात्तुविशेषःकल्प्यतेऽर्शसाम् ॥

अर्थ—विना तीनों दोषों के मिलने के अर्शरोग नहीं होता है परन्तु जिस दोषकी प्रबलता होती है उसी के नामसे वह पुकारा जाता है ॥

अर्शको कष्टसाध्यत्व ।

पञ्चात्मामारुतःपित्तंकफोगुदवलित्रयम्। सर्वाण्येतानिकल्पन्तेगुदजानांसमुद्भवे ॥ तस्मादर्शांसिदुःखानिवहुव्याधिकराणि च । सर्वदेहोपतापीनिप्रायःकृच्छ्रतमानिच ॥

अर्थ—प्राणादिक पांच प्रकारकी वायु पित्त, कफ और गुदाकी तीनों अंटी अर्श के उत्पन्न होने से एक साथ कुपित होजाती हैं, इस हेतु से अर्श अत्यन्त दुःख दायक, बहुत व्याधियों को करने बाली सम्पूर्ण देह को उत्तप्त करने वाली प्रायः कष्टसाध्य होती हैं ।

असाध्य अर्श के लक्षण ।

हस्तेपादेगुदेनाभ्यांमुखेवृषणयोस्तथाशोथोहृत्पार्श्वशूलीचयोऽर्शसःसनसिध्यति॥ हृद्वस्तिशूलंसंमोहच्छर्दिरङ्गस्यरुग्ज्वरः । तृणागुदास्यपाकश्चनिहन्युर्गुदजातुरम् ॥ सहजानित्रिदोषाणियानिचाभ्यन्तरावलिम् । जायन्तेऽर्शांसिसंश्रित्यतान्यसाध्यानिनिर्दिशेत् ॥ शेषत्वात्आयुषस्तानिचतुष्पादसमन्विते । याप्यन्तेदीप्तकायाग्नेःप्रत्याख्येयोऽन्यतोऽन्यथा ॥ द्वन्द्वजानिद्वितीयायांवलौयान्याश्रितानिच । कृच्छ्रसाध्यानितान्याहुःपरिसम्वत्सराणिच

अर्थ—जिस अर्शरोगी के हाथ, पांव गुदा, नाभि, मुख, अण्डकोष, इन में सोथ होता है तथा हृदय और पसली में शूल होता है वह अर्शरोग असाध्य होता है ॥ जिस रोगी के हृदय और वस्ति में शूलहो तथा वमन, संमोह, अंगवेदना, ज्वर, तृषा गुद के अग्रभागका पाक इन रोगों के होने से अर्श रोगी मरजाता है। जो सहज अर्श त्रिदोष से कुपित्त होकर गुदाकी भीतरली आंटी का आश्रय करलेती हैं वे असाध्य होती हैं; यदि आयु शेष हो, चिकित्सा के चारों पाद युक्त हों और जठराग्नि प्रदीप्त हो तौ यह रोग याप्य होजाता है, नहीं तौ असाध्य होता है।

जो शहज अर्श गुदाकी दूसरी आंटी में आश्रित रहते हैं वा जो एक वरस के पुराने होगये हैं वे कृच्छ्रसाध्य होते हैं ।

साध्यके लक्षण ।

वाह्यायान्तुवलौजातान्येकदोषोल्वणानिच । अर्शांसिसुखसाध्यानिनचिरोत्पतितानिच ॥ तेषांप्रशमनेयत्नमाशुकुर्य्याद्विचक्षणः । तान्याशुहिगुदंबद्धाकुर्य्योद्बद्धगुदोदरम् ॥

अर्थ—जो अर्श गुदाकी बाहर वाली आंटी में एक दोष से उत्पन्न होता है तथा जो बहुत पुराना नहीं होता है वह सुखसाध्य होता है । उस के शान्त करने के लिये बुद्धिमान् वैद्य को शीघ्रही यत्न करना चाहिये, क्यों कि चिकित्सा में विलंब होनेसे अर्श गुदाके मार्गको रोक कर बद्ध गुदोदर रोगको उत्पन्न करती है।

साध्य अर्श में कर्त्तव्य कर्म।

तत्राहुरेकेशस्त्रेणकर्त्तनंहितमर्शसाम् ॥
दाहंक्षारेणचाप्येकेदाहमेकेतथाग्निना ।
अस्त्येतद्भूरितन्त्रेणधीमतादृष्टकर्म्मणा॥
क्रियतेत्रिविधंकर्म्मभ्रंशस्तस्यसुदारुणः।

अर्थ—कोई २ यह कहते हैं कि मस्सों का शस्त्र से काट डालना हित है, कोई यह कहते हैं कि क्षार वा अग्नि से दग्ध कर देना चाहिये । ये तीन उपाय शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् और क्रिया कुशल वैद्यके करने के हैं इन कर्मों में विघ्न पड़ने से भयंकर उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

कर्मभ्रंस के उपद्रव ।

पुंस्त्वोपघातःश्वयथुर्गुदेवेगपरिग्रहः॥ आध्मानंदारुणंशूलंव्यथारक्तातिवर्त्तनम् ।
पुनर्विरोहोरूढानांक्लेदोभ्रंशोगुदस्यच ।
मरणंवाभवेच्छीघ्रंशस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात्।

अर्थ—शस्त्रकर्म, क्षारकर्म वा अग्निकर्म में किसी प्रकार से विभ्रम पड़ने से क्लीवता, गुदा में सूजन, मल मूत्रादि वेगका विनिग्रह, अफरा, दारुणशूल, व्यथा, रुधिर का वहना, मस्सों का फिर उत्पन्न होना, क्लेद, गुदाकी भ्रंशता अथवा मृत्यु ये उपद्रव शीघ्रही होते हैं ।

यत्तुकर्म्मसुखोपायमल्पभ्रंशमदारुणम् ॥
तदर्शसांप्रवक्ष्यामिसमूलानांनिवृत्तये ।

अर्थ—अब हम अर्श संबंधी उन उपायों का वर्णन करते हैं जो बहुत सुखसाध्य हैं, जिनमें भ्रंश होने का बहुत कम डर है और जो बहुत कठिन नहीं हैं । ऐसे ऐसे उपायों को जड़ समेत अर्श को खोदेने के निमित्त वर्णन करते हैं ।

वातश्लेष्मोल्वणान्याहुःशुष्काण्यर्शांसितद्विदः ॥ प्रस्रावीणितथार्द्राणिरक्तपित्तोल्वणानिच । तत्रशुष्कार्शसांपूर्वंप्रवक्ष्यामिचिकित्सितम् ॥

अर्थ—अर्श के पहचानने वाले वात कफोद्भव अर्श को सूखी ववासीर कहते हैं और जो रक्तपित्त जन्य है, उसे स्रावी वा गीली कहते हैं । अव हम प्रथम शुष्क अर्श की चिकित्सा का वर्णन करते हैं ।

शुष्क अर्शकी चिकित्सा ।

स्तब्धानिस्वेदयेत्तानिशोफशूलान्वितानिच । चित्रकक्षारबिल्वानांतैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् ॥ यवमाषपुलाकानांकुलत्थानांचपोटलैः । गोखराश्वशकृत्पिण्डैस्तिलकल्कैस्तुषैरपि ॥ वचाशताह्वापिण्डैर्वा सुखोष्णैःस्नेहसंयुतैः । शक्तूनांपिण्डिकाभिर्वास्निग्धानांतैलसर्पिषा ॥ शुष्कमूलकपिण्डैर्वापिण्डैर्वाकार्ष्णगन्धिकैः।रास्नापिण्डैःसुखोष्णैर्वासस्नेहैर्हपुषैरपि ॥ इष्टकस्य खराश्वायाःशाकैर्गृञ्जनकस्यच । अभ्य

ज्यकुष्ठतैलनखेदयेत्पोट्टलीकृतैः ॥

अर्थ—जो अर्श स्तब्ध, शोकयुक्त और शूलयुक्त हैं उनमें चीता, जवाखार और बेल फल के तेल की मालिश करके स्वेदन कर्म में नीचे लिखेहुये प्रयोगों को युक्तकरै, यथा--जौ, उरद, पुलाक, और कुलथी इनको उबालकर पोटली में बांधे और इस पोटली से धीरे २ सेकने पर स्वेदन होता है। अथवा गौ, गधा और घोड़े की लीद, की पोटली बनाकर सेकै । अथवा तिलका कल्क और तुष, प्रयुक्त करै। अथवा वच और सोंठ को पीसकर घी डालकर पकावै और गरम २ से सेकै। अथवा घी तेल डालकर सत्तूका गोला बनाकर सेकै। अथवा सूखी मूली का गोला वा सहजने का गोला बनाकर सेकै। रास्ना के गरम २ लुग्गद वा स्नेहयुक्त हाऊबेर के लुग्गद से सेकै अथवा कूठ का तेल लगाकर ईंट, गधे घोड़े की लीद और गाजर के सागकी पोटली बनाकर सेकै ॥

वृषार्केरण्डविल्वानांपत्रोत्क्वाथैश्चसेचयेत्। मूलकत्रिफलार्काणांवेणूनांवारणस्यच ॥ अग्निमन्थस्यशिग्रोश्चपत्राण्यश्मन्तकस्यच। जलेनोत्क्वाथ्यशूलार्त्तंस्वभ्यक्तमवगाहयेत् ॥ कोलोत्क्वाथेऽथवाकोष्णेसौवीरकतुषोदके। किण्वोत्क्वाथेऽथवातक्रे दधिमण्डाम्लकाञ्चिके ॥ गोमूत्रेवासुखोष्णेतंशूलार्त्तमुपवेशयेत् ।

अर्थ—अडूसा, आक, अंडी और बेल इन के पत्तों का क्वाथ कर के सेचन करै। शूलयुक्त अर्शरोगी को अच्छीतरह अभ्यक्त कर के मूली, त्रिफला, आक, बांस, वरना अरनी, संहजना और अश्मन्तक इन के पत्तों का क्वाथ करके स्नान करावै। अथवा बेर के क्वाथ में सौवीर वा तुषोदक में, अथवा किण्व के क्वाथ में अथवा तक्र, दधिमण्ड वा अम्लकांजी में अथवा गरम २ गोमूत्र में शूलयुक्त अर्शरोगी को विठादेवै।

अर्श में अन्यप्रयोग ।

कृष्णसर्पवराहोष्ट्रजतूकावृषदंशजम् ॥ वसामभ्यञ्जनंकुर्य्याद्धूपनंचार्शसांहितम् । नृकेशाःसर्पनिर्मोकोवृषदंशस्यचर्मच ॥ अर्कमूलंशमीपत्रंअर्शोभ्योधूपनंहितम् । तुम्बुरूणिविडंगानिदेवदार्वक्षताघृतम्। वृहतीचाश्वगन्धाचपिप्पल्यःसुरसोघृतम् ।, वराहवृषविट्चैवधूपनंशक्तवोघृतम् ॥

अर्थ—कालेसांप, सूअर, ऊंट, जतूका (चमगद्दड़) वा विल्ली की चर्वी का अर्श पर मर्दनकरै। मनुष्य के केश, सर्प की काँचली, बिल्ली का चर्म, आक की जड़, शमीपत्र इन सबकी धूप मस्सों कोदेवै। अथवा धनियां, वायविडंग, देवदारु, अक्षत और घृत। अथवा कटेरी, असगंध, पीपल, सुरसा तुलसी और घी । अथवा सूअर और बैल की विष्टा, सतू और घी इन प्रयोगों को धूप देने के लिये काम में लावै ॥

अर्शपरलेप ।

कुञ्जरस्यपुरीषन्तुघृतंसर्ज्जरसोरसःहरि

द्राचूर्णसंयुक्तंसुधाक्षीरंप्रलेपनम् ॥ गोपित्तपिष्टाःपिप्पल्यःसहरिद्राःप्रलेपनम् । शिरीषवीजंकुष्ठश्चपिप्पल्यःसैन्धवंगुडः । अर्कक्षीरंसुधाक्षीरंत्रिफलाचप्रलेपनम् ॥ पिप्पल्यःचित्रकाःश्यामाःकिण्वंमदनतण्डुलाः । प्रलेपःकुक्कुटशकृत्हरिद्रागुडसंयुतः निकुम्भःसामृतासंगःपारावतशकृद्गुडः । प्रलेपःस्याद्गजास्थीनिनिम्बोभल्लातकानिच ॥ प्रलेपःस्यादलर्केणबसन्तजवसायुतः । शूलश्वयथुहृद्रोगेचुलूकीवसयाथवा ॥ आर्कपयःसुधाकाण्डंकटुकालाबुपल्लवाः । करञ्जोवस्तमूत्रंचलेपनंश्रेष्ठमर्शसाम् । अभ्यंगाद्याःप्रदेहान्तायएतेपरिकीर्त्तिताः॥ स्तम्भश्वयथुकण्ड्वार्त्तिशमनास्तेऽर्शसांमताः ।

अर्थ—हाथीकी लीद, घी, राल, पारा, हल्दी और सेंहुड़दूध इनको सानकर अर्श पर लेप करै । अथवा पीपल और हल्दी को गौ के पित्ते में पीसकर लेप करै । अ अथवा सिरस के वीज, कूठ, पीपल, सेंधा नमक, गुड़, आकका दूध, सेंहुड़कादूध, त्रिफला इनका लेप करै । अथवा पीपल, चीता, श्यामा, सुरावीज, मेनफल, चांवल, मुर्गेकीवीट, हलद और गुड़ इन सबका मिलाकर लेप करै । अथवा दन्ती, मुर्दासिंह, कबूतर की वीट, गुड़, हार्थीदांत, नीम और भिलाया इनका लेप करै । अथवा शूल, सूजन और हृदरोग से युक्त अर्श में ऊंटकी चर्वी वा चुलूकी की चर्वी के साथ सफेद आकका लेप करै । अथवा आकका दूध, सेंहुड़ के डंठल, कड़वी तूंबी के पत्ते, कंजा, बकरे का मूत्र इनका लेप भी अर्श में हितकारक है ।

अभ्यंग से लेकर प्रदेहतक जो प्रयोग वर्णन किये गये हैं वेस्तम्भता, सूजन, खुजली, और अर्तियुक्त अर्शमें हितकारीहैं

प्रदेहान्तैरुपक्रान्तान्यर्शांसिप्रस्रवन्तिहि संश्रितंदुष्टरुधिरंततःसम्पद्यतेसुखी । शीतोष्णस्निग्धरूक्षैर्हिनव्याधिरुपशाम्यति ॥ रक्तेदुष्टेभिषक्तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत् । जलौकोभिस्तथाशस्त्रैःसूचीभिर्वा पुनःपुनः ॥ अवर्त्तमानंरुधिरंरक्तार्शोभ्यःप्रवाहयेत् ।

अर्थ—प्रदेह पर्य्यन्त उपचारों के करने से विगड़ा हुआ संचित रुधिर निकलजाता है इस के निकलजाने से सुखहोता है। दुष्ट रुधिर के विद्यमान् होनेपर शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष उपचारों के करने से व्याधि शान्त नहीं होती है इस में रुधिर का निकाल देना आवश्यकीय बातहै खूनीववासीर में जो रुधिर का निकलना वन्द होगया हो तौ जोक, शस्त्र वा सूची द्वारा रुधिर को निकालता रहै ॥

अर्शमें पेय औषध।

गुदश्वयथुशूलार्त्तंमन्दाग्निंपाययेच्चतम् ।त्र्यूषणंपिप्पलीमूलंपाठांहिंगुंसचित्रकम् । सौवर्च्चलंपुष्कराख्यमजाजींविल्वपेषिकाम् ॥ विडंयवानींहपुषांविडङ्गंसैन्धवंवचाम् । तिन्तिडीकश्चमण्डेनमद्येनो

ष्णोदकेनचतथार्शोग्रहणीदोषशूलाना
हाद्विमुच्यते ॥

अर्थ—गुदा के सूजन, शूल और मन्दाग्नि युक्त अर्श में निम्नलिखित द्रव्यों का पान करावै, यथा-त्रिकुटा, पीपलामूल, पाठा, हींग, चीता, संचलनमक, कुडा, काला जीरा, वेलगिरी, विडनमक, अजवायन, हाऊवेर, वायविडंग, सेंधा नमक, वच, इमली, इन को सुरामण्ड और उष्णजल के साथ पान करै तो अर्शरोग, ग्रहणी दोष शूल और आनाह दूर होजाते हैं।

अन्य प्रयोग।

कुर्याद्वापाचनंतस्ययदुक्तंह्यातिसारिके।
सगुड़ामभयांवाथप्राशयेत्पौर्वभक्तिकीम्॥
पाययेतत्रिवृच्चूर्णंत्रिफलायारसेनवा।
हृतेगुदाश्रयेदोषेगच्छन्त्यर्शांसिसंक्षयम्॥

अर्थ—अतिसारकी चिकित्सा में जो पाचन द्रव्य वर्णन किये गये हैं उनका प्रयोग भी इस जगह हित है। यथा भोजन करने से पहिले हरड और गुड मिला सेवन करै। अथवा त्रिफला के रस के साथ निसोथ का चूर्ण पान करै। इन प्रयोगों के द्वारा गुदाश्रित दोषों के दूर होने पर अर्श नष्ट होजाता है।

अन्य प्रयोग।

गोमूत्राध्युषितांदद्यात्सगुडांवाहरीतकीम्
हरीतकींतक्रयुतांत्रिफलांवाप्रयोजयेत्।
सनागरंचित्रकंवाशीधुयुक्तंप्रयोजयेत्॥
चव्यंवाशीधुसंयुक्तमजाजीदीप्यकंपिवेत्।
सुरांवाहपुषांपाठांयुक्तांसौवर्चलायुताम्॥
दधित्थविल्वयुक्तंवातथावाचव्यचित्रकौ।
भल्लातकयुतांवाथमद्यात्तत्रतर्पणम्॥
विल्वनागरयुक्तंवायवान्याचित्रकेणवा
चित्रकंहपुषांहिंगुंदद्याद्वातक्रसंयुतम्॥
पञ्चकोलयुतंवापितक्रमस्मैप्रदापयेत्।

अर्थ—गोमूत्र में हरड़को भिजोकर गुड़ के साथ देवै। अथवा मठे के साथ हरड़ वा त्रिफला का प्रयोग करै। अथवा सोंठ और चीते को शीधु में मिलाकर देवै अथवा शीधु के साथ चव्य वा काला जीरा और अजवायन पीवै अथवा हाऊवेर, पाठा, संचलनमक इनको सुरा के साथ पान करै। अथवा कैथ और वेलगिरी, अथवा चव्य और चीता अथवा भिलाये के साथ तर्पणका प्रयोग करै अथवा वेलगिरी और सोंठ, अथवा अजवायन और चीता अथवा चीता, हाऊवेर और हींग इन को मठेके साथ में देवै। अथवा मठाके साथ पंचकोल का चूर्ण देवै।

तक्रारिष्ट।

हपुषांकुञ्चिकांधान्यमजाजींकारवींशटीम्
पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम्
यवानींचाजमोदंचचूर्णितंतक्रसंयुतम्॥
मन्दाम्लकटुकंविद्वान्स्थापयेद्घृतभाजने
व्यक्ताम्लकटुकंजातंतक्रारिष्टंमुखप्रियम्॥
प्रपिवेन्मात्रयाकालेष्वन्नस्यतृषितस्त्रिषु।
दीपनंरोचनंवर्ण्यंकफवातानुलोमनम्॥
गुदश्वयथुकण्डूवार्तिनाशनंबलवर्द्धनम्

अर्थ—हाऊवेर, छोटाजीरा, धनियां, काला जीरा, कारवी, कचूर, पीपल पीपलामूल, चीता, गजपील, अजवायन, अजमोद इन को समान

भाग लेकर चूर्ण बनावै और मठे में मिलावै इस में कुछ खट्टा और कटु रस होगा, तदन्तर इसे घृत के पात्रमें भरकर रखदे जब इस में अम्ल और कटुरस तेज होजाय तब जानना चाहिये कि तक्रारिष्ट तयारहुआ, यह मुखको अत्यन्त प्रिय लगता है। भोजन के तीनों कालों में तृषा लगने पर इसी का मात्राके अनुसार पान करै। यह तक्रारिष्ट अग्नि संदीपन, रोचन, वर्णकारक, कफवातानुलोमन कर्त्ता, गुदाकी सूजन, कण्डू और अर्तिका नाश करने वाला तथा बलवर्द्धक होता है।

अर्श में तक्र प्रयोग।

त्वचंचित्रकमूलस्यपिष्ट्वाकुम्भंप्रलेपयेत्॥
तक्रंवादधिवातत्रजातमर्शोहरंपिबेत्। वा
तश्लेष्मार्शसांतक्रात्परंनास्तीहभेषजम्॥
तत्प्रयोज्यंयथादोषंसस्नेहंरूक्षमेववा। स
प्ताहंवादशाहंवापक्षंमासमथापिवा। बल
कालविशेषज्ञोभिषक्तक्रंप्रयोजयेत्।

अर्थ—चीतेकी जडकी छाल को पीसकर घडे के भीतर लेप कर दिया जाय तदनन्तर उस में तयार किया हुआ मठा वा दही अर्शरोग में अत्यन्त हितकारक है।

वात और कफसे उत्पन्न अर्श में तक्रसे उत्तम और कोई औषध नहीं है, दोष के अनुसार स्निग्ध वा रूक्ष तक्रका प्रयोग करै। बल और काल को जानने वाला वैद्य सात दिन दसदिन, पन्द्रह दिन वा महीने भरतक तक्र का प्रयोग कर सकता है।

अत्यर्थंमृदुपाकाग्नेस्तक्रमेवावधारयेत्।
सायंवालाजशक्तूनांदद्यात्तक्रावलेहिका
म् जीर्णेतक्रेप्रदद्याद्वातक्रेपेयांससैन्धवाम्।
तक्रानुपानंसस्नेहंतक्रौदनमथोत्तरम्।
यूषैर्मांसरसैर्वापिभोजयेत्तक्रसाधितम्॥

अर्थ—जठराग्निके अत्यन्त मन्द होजाने पर तक्रही के द्वारा चिकित्सा करै, अथवा सायंकाल के समय खीलों के सतू का तक्र के साथ अवलेह बनाकर देवै। तक्रके पच ने पर तक्र के साथ सेंधे नमक की पेया देवै। तक्रका अनुपान करावै। तक्र के साथ घृतयुक्त चांवलों का भात देवै। अथवा तक्र के साथ सिद्ध किया हुआ यूष वा मांस रस देवै।

तक्रसेवनका क्रम।

कालक्रमज्ञःसहसानचतक्रंनिवारयेत्।
तक्रप्रयोगान्मासान्तेक्रमेणोपशमोमतः॥
अपकर्षोयथोत्कर्षोनत्वन्नादपकृष्यते।
प्रत्यागमनरक्षार्थंदार्ढ्यार्थमनलस्यच॥
बलोपचयवर्णार्थंक्रमएषोपवर्ण्यते।

अर्थ—काल के क्रमको जाननेवाला वैद्य तक्र के सेवन का सहसा परित्याग न करा देवै। जो तक्र एक महीने तक सेवन कियागया है उसका त्याग एक महीने में क्रम २ से करावै। अन्न के सेवन से तक्र सेवन में कमी नहीं होती है। इस क्रम के अवलंबन कर ने से अर्शरोग फिर उत्पन्न नहीं होसक्ता, अग्नि दृढ़ होजाती है, बल, पुष्टाई और वर्ण बढ़ता है।

रूक्षमर्द्धोद्धृतस्नेहंयतश्चानुद्धृतंघृतम्।
तक्रंदोषाग्निबलवित्त्रिविधंतत्प्रयोजयेत्

हतानिनविरोहान्तितक्रेणगुदजान्युत ॥ भूमावपिनिषिक्तंतत्दहेत्तक्रतृणोलुपम् । किंपुनर्दीप्तकायाग्नेःशुष्काण्यर्शांसिदेहिनः ॥ स्रोतःसुतक्रशुद्धेषुरसःसम्यगुपैति यः । तेनपुष्टिर्बलंवर्णःप्रहर्षश्चोपजायते ॥ वातश्लेष्मविकाराणांशतंचापिनिवर्त्तते।

अर्थ—दोष, अग्नि और बलका जानने वाला वैद्य रूक्षतक्र, अर्द्धोद्धृत स्नेह और अनुद्धृत घृत इन तीन प्रकार से तक्र का प्रयोग करै। इन में से पहिली विधि कफाधिक्य अर्श में, दूसरी विधि समान वात कफार्श में और तीसरी विधि वाताधिक्य अर्श में प्रयुक्त कीजाती है।

जो अर्श तक्र के सेवन से शान्त होता है वह फिर उत्पन्न नहीं होने पाता। पृथ्वी में कांस और दाभ की जड़ों में तक्र डालने से वे नष्ट होजाते हैं। फिर दीप्ताग्नि पुरुषकी जो सूखी ववासीर जाती रहती है इस में क्याआश्चर्य है। तक्र से स्रोतों के शुद्ध होनेपर जो रस अच्छीतरहसे फैलता है उसीसे पुष्टि, बल, वर्ण और प्रहर्ष उत्पन्न होता है। तथा वह रस सौ प्रकार के वात कफ रोगों को दूरकरदेता है।

अर्शपरपेयाविधि ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम् ॥ शृंगवेरमजाजींचकारवींधान्यतुम्बुरुम् बिल्वकर्कटकंपाठांपिष्ट्वापेयांविपाचयेत् ॥ फलाम्लांयमकस्नेहान्तांदद्यादगुदजापहाम् । एतैश्चैवखडंकुर्य्यादेतैश्चैवपचेज्जलम् ॥ एतैश्चैवघृतंसाध्यमर्शसांविनिवृत्तये ।

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चीता गजपीपल, अदरख, कालाजीरा, कलोंजी, धनियां, वेलगिरी, काकड़ासींगी, पाठा इन को पीसकर इन के साथ पेया बनावै। इस पेया में अनारका रस, घी और तेल डाल कर पान करै।

इन्हीं ऊपर कहे द्रव्यों से खड़यूष, जल और घृत को पकाकर अर्शरोग की शान्ति के निमित्त सेवन करावै।

अर्शपरयवागू ।

शठीपलाशसिद्धांवापिप्पल्यानागरेणवा दद्याद्यवागूंतक्राम्लांमरिचैरवचूर्णिताम्।

अर्थ—कचूर और ढाकके साथ अथवा पीपल और सोंठ के साथ यवागू को सिद्ध करके उस में मठाकी खटाई और काली मिरच पिसी हुई मिलाकर अर्शरोगी को देवै।

शुष्कमूलकयूषंवायूषंकौलत्थमेववा ॥ दधित्थबिल्वयूषंवासकुलत्थमकुष्ठकम् । छागलंवारसंदद्याद्यूषैरेतैर्विमिश्रितम् ॥ लावादीनांफलाम्लंवासतक्रंग्राहिभिर्हृतम् ॥

अर्थ—सूखी मूली का यूष, वा कुलथी का यूष, वा कैथ और वेलगिरी का यूष, वा कुलथी और मोंठका यूष, अथवा इन्हीं यूषों से मिला हुआ वकरे का मांसरस अथवा अनार की खटाई मिला हुआ तक्र मिला हुआ वा संग्राही औषधों के साथ सिद्ध

किया हुआ लावादिक का मांस देवै ।

अर्श पर पथ्यविधि ।

रक्तशालिर्महाशालिःकलमोजाङ्गलःसितः शारदःषाष्टिकश्चैवस्यादन्नविधिरर्शसाम्। इत्युक्तोभिन्नशकृतामर्शसांचविधिक्रमः॥ योऽत्यर्थंगाढशकृतस्तेषांवक्ष्यामिभेषजम्।

अर्थ—अर्शरोग पर लाल चांवल, महाशाली, कलमी चांवल, जांगल, सित, शारद और साठीचांवल हितकारी होते हैं। यह भिन्न पुरीषवाले अर्शरोगों की चिकित्सा विधि वर्णन कीगई है। अब अत्यंत कठोर और गाढ़े विष्टावाले अर्श की चिकित्सा वर्णन करते हैं ॥

सस्नेहैःशक्तुभिर्युक्तांप्रसन्नांलवणीकृताम् दद्यान्मतस्याण्डिकांपूर्वंभक्षयित्वासनागराम् । गुडंसनागरंपाठांफलाम्लंपाययेत्तम् । गुडंघृतंयवक्षारंयुक्तंवापिप्रयोजयेत् । यमानींनागरंपाठांदाडिमस्यरसंगुडम् ॥ सतक्रंलवणंदद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनम् ।

अर्थ—पहिले सोंठ के चूर्ण और मिश्री को फांककर घृतयुक्त सतू और नमक मिलीहुई प्रसन्ना अर्थात् सुरामण्ड का पान करै। अथवा गुड़, सोंठ और पाठा वा अनार का रस पान करावै। अथवा गुड़ घृत और जवाखार का प्रयोग करै। अथवा अजवायन, सोंठ, पाठा, अनारकारस और गुड़ तथा तक्र और सेंधानमक ये सब मिलाकरदेवै। इन प्रयोगों का सेबन करने से अधोवायु तथा विष्टा का अनुलोमन होता है।

दुःस्पर्शकेनबिल्वेनयवान्यानागरेणवा । एकैकेनापिसंयुक्तापाठाहन्त्यर्शसांरुजम्। प्रागुक्तयमकेभृष्टान्शक्तुभिश्चावचूर्णितान् । करञ्जपल्लवान्दद्यात्वातवर्चोऽनुलोमनात् । मदिरांवासलवणांशीधुंसौवीरकंतथा । गुडनागरसंयुक्तंपिवेद्वापौर्वभक्तिकम् ।

अर्थ—जवासा, वेलगिरी, अजवायन, और सोंठ इन चारों में से एक २ के साथ पाठा का क्वाथ करके पीने से अर्श रोग दूर होजाता है॥ पूर्वोक्त घृत और तेल में कंजों के पत्तों को भूनकर सत्तू के साथ सेवन करै तौ अधोवायु और मलका अनुलोमन होय है॥ अथवा भोजन करने से पहिले सेंधानमक मिलाकर मदिरा, अथवा गुड़ और सोंठ मिलाकर सीधु और सौवीरक का पान करै॥

अर्शपरघृतके प्रयोग ॥

पिप्पलीनागरक्षारकारवीधान्यजीरकैः । फाणितेनचसंयोज्यफलाम्लंदापयेत्घृतम् ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलम्चित्रकोहस्तिपिप्पली । श्रृंगवेरंयवाक्षारंतैःसिद्धंवापिवेत्घृतम् ॥ चव्यचित्रकसिद्धंवांगुडक्षारसमन्वितम् । पिप्पलीमूलसिद्धंवासगुडक्षारनागरम् ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलदधिदाडिमधान्यकैः । सिद्धंसर्पिर्विधातव्यंवातवर्चोविबन्धनुत् ॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, जवाखार, कालाजी

रा, धनियां, जीरा और गुड़कीराव इन सव में अनारदाने को खटाई और घृत डालकर सेवन करै। अथवा पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, अदरख और जवाखार इन में सिद्ध कियाहुआ घृत पान करै। अथवा चव्य और चीते के साथ सिद्ध कियाहुआ, वा गुड़ और जवाखार में मिलाकर, वा पीपलामूल के साथ सिद्ध किया हुआ जिस में गुड़, जवाखार और सोंठ मिलाकर अथवा पीपल, पीपलामूल, दही, अनार, धनियां इन के साथ सिद्ध किया हुआ घृत पान करावै, अधोवायु और दस्त की रुकावट दूर होजायगी॥

चव्यादिघृत।

चव्यंत्रिकटुकंपाठाक्षारंकुस्तुम्बुरूणिच। यवानींपिप्पलीमूलमुभेचविडसैंधवे। चित्रकंबिल्वमभयांपिष्ट्वासर्पिर्विपाचयेत्। शकृद्वातानुलाम्यार्थंजातेदध्निचतुर्गुणे॥ प्रवाहिकांगुदभ्रंशंमूत्रकृच्छ्रंपरिस्रवम्। गुदवंक्षणशूलञ्चघृतमेतत्व्यपोहति॥

अर्थ—चव्य, त्रिकुटा, पाठा, जवाखार, धनियां, अजवायन पीपलामूल, विडनमक, सेंधानमक, चीता, वेलफल, हरड़ इनको पीसकर चौगुने दहीकेसाथ घृतको पकावै। इस घृत के सेवन से विष्टा और अधोवायु का अनुलोमन होता है। तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंस, मूत्रकृच्छ्र, परिस्राव, गुदशूल और वंक्षणशूल को भी दूरकरता है।

नागरादिघृत।

नागरंपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली। श्वदंष्ट्रापिप्पलीधान्यंविल्वपाठायमानिकाः। चाङ्गेरीस्वरसेसर्पिःकल्कैरेतैर्विपाचयेत्। चतुर्गुणेनदध्नाचतद्घृतंकफवातनुत्॥ अर्शांसिग्रहणीदोषंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम्। गुदभ्रंशार्त्यानाहंघृतमेतद्व्ययपोहति॥

अर्थ—सोंठ, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, गोखरू, पीपल, धनियां, बेलगिरी, पाठा, अजवायन, इनसबको पीसकर चांगेरी के रस तथा चौगुने दही के साथ घृतको पकाकर सेवन करै तौ कफवात दूर होता है। इस घृत से अर्शरोग, ग्रहणीदोष, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंस, अर्ति और अनाह ये सव रोग दूरहोजाते हैं।

पिप्पल्यादिघृत।

पिप्पलींनागरंपाठांश्वदंष्ट्राञ्चपृथक्पृथक्। भागांस्त्रिपलिकान्कृत्वाकषायमुपकल्पयेत्॥ कण्डीरंपिप्पलीमूलंव्योषंचव्यञ्चचित्रकम्। पिष्ट्वाकषायेविनयेत्पूतेद्विपलिकंभिषक्॥ पलानिसर्पिषस्तास्मिंश्चत्वारिंशत्प्रदापयेत्। चाङ्गेरीस्वरसंतुल्यंसर्पिषादधिषड्गुणम्॥ मृद्वग्निनाततःसाध्यंसिद्धंसर्पिर्निधापयेत्। तदाहारेविधातव्यंपानेप्रायोगिकेविधौ॥ ग्रहण्यर्शोविकारघ्नंगुल्महृद्रोगनाशनम्। शोथप्लीहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम्॥ कासहिक्कारुचिश्वाससूदनंपार्श्वशूलनुत्। बलपुष्टिकरंवर्ण्यमग्निसन्दीपनंपरम्॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, पाठा और गोखरू इन चारों को तीन २ पल लेकर सबका

क्वाथ करलेवै । इस क्वाथ को छानकर इस में कण्डीर (एक प्रकार की तुलसी होती है), पीपलामूल, त्रिकुटा, चव्य और चीता दो २ पल पीसकर मिलादेवै, तथा घृत चालीस पल, इतनाही चांगेरी का रस और घीसे छः गुना दही डालकर मंदी २ आग पर पकावै । इस घृतका विधिपूर्वक खाने पीने में प्रयोग कर ने से ग्रहणी, अर्श, गुल्म, हृदरोग, शोथ, प्लीहा, उदररोग, आनाह, मूत्रकृच्छ, ज्वर, खांसी, हिचकी अरुचि, श्वास और पार्श्वशूल दूर हो जाते हैं ॥

हरीतकी प्रयोग ।

सगुडांपिप्पलीयुक्तांघृतभृष्टांहरीतकीम्। त्रिवृद्दन्तीयुतांवापिभक्षयेदानुलोमिकीम्। विड्वातकफपित्तानामानुलोम्येननिर्मले। गुदेऽर्शांसिप्रशाम्यन्तिपावकश्चाभिवर्द्धते।

अर्थ—हरडको घी में भूनकर पीपल और गुड़ मिलाकर सेवन करै अथवा निसोथ और दंती मिलाकर भक्षण करै तौ बिष्टा का अनुलोमन होता है । इस के सेवन से विष्टा, अधोवायु, कफ और पित्तका अनुलोमन होता है, गुदा निर्मल होजाती है, अर्शरोग शान्त होजाता है और जठराग्नि प्रदीप्त होजाती है ॥

अर्श पर पथ्य ।

वार्हितित्तिरिलावानांरसानम्लानसुसंस्कृतान्॥दद्याणांवर्त्तकानाञ्चदद्यात्विड्वातसंग्रहे।त्रिवृद्दन्तीपलाशानांचाङ्गेर्याश्चित्रकस्यच॥सुभृष्टंयमकेदद्यात्शाकंदधिशरायुतम्। उपोदिकातण्डुलीयंवरीवास्तुकपपल्लवाः सुवर्चलांसलोणीकांयवशाकमवल्गुजम्। काकमाचींरुहापत्रंमहापत्रंतथाम्लिकाम्॥ जीवन्तींशटिशाकञ्चशाकंगृञ्जनकस्यच। दधिदाडिमसिद्धानिभृष्टानियमकेऽपिच॥ धान्यनागरयुक्तानिशाकान्येतानिदापयेत् । गोधाश्वावित्सलोपाकमार्जारोष्ट्रगवामपि ॥ कूर्मशल्यकयोश्चैवसाधयेच्छाकवद्रसान् । रक्तशाल्योदनंदद्याद्रसैस्तैर्वातशान्तये ॥

अर्थ—विष्टा और अधोवायु का अवरोध होने पर मोर तीतर मुर्गा, वतक और लवाके मांसरस में खटाई डालकर सेवन करै । अथवा निसोथ, दन्ती, ढाक, चांगेरी और चीता इन के शाक को घी तेल में भूनकर दही की मलाई के साथ सेवन करै अथवा पोई, चौलाई, काकोली, वथुआ, सांचौली, नौनिया, यवशाक, वावची, मकोय गिलोय के पत्ते, महापत्र, अम्लिका, जीवन्ती, शटी, गाजर इन के शाकको घी तेल में भूनकर दही और अनारकी खटाई डालकर तथा धनियां और सोंठ मिलाकर देवै ॥

गोह, सेह, लोपाक, विल्ली, ऊंट, गौ, कछुआ और शल्लकी इनके मांसरसको ऊपर कहे हुए शाकों की तरह सिद्ध करै और इन मांसरसों के साथ वातकी शान्ति के निमित्त लाल शाली चावलों का भात देवै ॥

अर्श पर मद्यविधि ।

ज्ञात्वावातोल्वणंरूक्षंदीप्ताग्निंगुदजातुरम् मदिरांशार्करंजातंशीधुंतक्रंतुषोदकम् ॥ अरिष्टंदधिमण्डंवाशृतंवाशिशिरंजलम् । कण्टकार्य्याशृतंवापिशृतंनागरधान्यकैः॥ अनुपानंभिषग्दद्यात्वातवर्चोऽनुलोमनम्।

अर्थ—वाताधिक्य अर्श में यदि रोगी के रूक्षता तथा अग्निसंदीपन हो तौ शर्करा से बनीहुई मदिरा, शीधु, तक्र, तुषोदक अरिष्ट, दधिमण्ड, वा औटाकर ठंडा किया हुआ जल, वा कटेरी डालकर औटाया हुआ जल, वा सोंठ और धनियां डालकर औटा या हुआ जल अनुपान में देवै तौ अधो-वायु और विष्टा का अनुलोमन होता है ।

अनुवासन के योग्य मनुष्य ।

उदावर्त्तपरीतायेयेचात्यर्थंविरूक्षिताः ॥ विलोमवाताःशूलार्त्तास्तेष्विष्टमनुवासनम्।

अर्थ—जो उदावर्त्त रोगी हैं, अत्यन्त रूक्ष हैं जिन की वायु विलोम होगई है तथा जो शूलार्त्त हैं उनको अनुवासन हित है ।

आनुवासनिक तैल ।

पिप्पलींमदनंविल्वंशताह्वांमधुकंवचाम्॥ कुष्ठंशठींपुष्कराख्यंचित्रकंदेवदारुच । पिष्ट्वातैलेविपक्तव्यंपयसाद्विगुणेनच ॥ अर्शसांमूढवातानांतच्छ्रेष्ठमनुवासनम्।गु दनिःसरणंशूलंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम् । क ट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहंवंक्षणाश्रयम् । पि च्छास्रावंगुदंशोफंवातवर्चोविनिग्रहम् ॥ उत्थानंबहुशोयच्चजयेत्तच्चानुवासनम् ।

अर्थ—पीपल, मेनफल, बेलगिरी, सौंफ मुलहटी, बच, कूठ, शठी, पुष्कर; चीता, देवदारु, इन सब को पीसकर दूना दूध डालकर तेल में पकावै । यह अनुवासन अर्शरोग तथा मूढवात में हितकारी होता है । इस से गुदाका निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका, कमर, उरू और पीठकी दुर्बल ता, वंक्षणका आनाह, पिच्छास्राव, गुदाकी सूजन तथा अधोवायु और विष्टा का विबं ध, वार बार रोग का उठना ये सब दूर होजाते हैं ।

आनुवासनिकैःपिष्टैःसुखोष्णैःस्नेहसंयुतैः। दार्वन्तैःस्तब्धशूलानिगुदजानिप्रलेपयेत् दिग्धातैःप्रस्रवन्त्याशुश्लेष्मपिच्छांसशो णिताम् ॥ कण्डूस्तम्भसरुक्शोफाःस्तुता नांविनिवर्त्तये ।

अर्थ—पीपल से लेकर देवदारु पर्य्यन्त सब आनुवासनिक द्रव्यों को पीसकर स्नेह मिलाकर कुछ गरम करले और इसका लेप करै तौ अर्श से उत्पन्न हुआ शूल और स्तब्धता दूर होजाती है । इस लेप के करने से रक्तसहित-पिच्छिल कफ तत्काल निकलजाता है और खुजली, स्तम्भता, वेदना और सूजन रक्तके निलने से दूर होजाती है ।

निरूहण प्रयोग ।

निरूहंवाप्रयुञ्जीतसक्षीरंदाशमूलिकम् ॥ समूत्रस्नेहलवणंकल्कैर्युक्तंफलादिभिः ।

अर्थ—दूध, दशमूल, गोमूत्र, स्नेह,सेंधा नमक और मेनफल इनका क्राथ करके

निरूहण वस्ति का प्रयेग करै ।

हरीतक्यारिष्ट ।

हरीतकीनांप्रस्थार्द्धंप्रस्थमामलकस्यच ॥ स्यात्कपित्थाद्दशपलंततोऽर्द्धांचेन्द्रवारुणी । विड़ङ्गंपिप्पलीरोध्रंमरिचंसैलवालुकम् । द्विपलांशंजलस्यैतच्चतुर्द्रोणेविपाचयेत् । द्रोणशेषेरसेतस्मिन्पूतशीतेसमावपेत् ॥ गुड़स्यद्विशतंतिष्ठेत्तत्सर्वंघृतभाजने । पत्तादूर्द्ध्वभवेत्पेयाततोमात्रांयथाबलम् ॥ अस्याभ्यासादरिष्टस्यनश्यन्तिगुदाजानपि । ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहागुल्मोदरापहाः ॥ कुष्ठशोफारुचिहरोबलवर्णाग्निवर्द्धनः । सिद्धोऽयमभयारिष्टःकामलाश्वित्रनाशनः ॥ क्रिमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्गराजयक्ष्मज्वरान्तकृत् ।

अर्थ—हरड़ आधाप्रस्थ, आंवला एक प्रस्थ, कैथ दशपल इन्द्रायण पांचपल, वायविडंग दो पल, लोध दो पल, कालीमिरच दो पल, एलुआदोपल इन सब को चार द्रोण जल में पकावै जब चौथाई शेष रहजाय तव उतारकर छान लेवै, जब यह ठंढा होजाय तव इस में दो सौ पल गुड़ डालकर घीके पात्रमें भरदेवै और एकपक्ष पीछे वल के अनुसार इसकी मात्रा का सेवन करै । इस अरिष्ट के सेवन का अभ्यास करने से अर्शरोग, ग्रहणी दोष पाण्डुरोग, हृदरोग, प्लीहा, गुल्मरोग, उदररोग, कुष्ठ, शोफ, अरुचि, इनको नाश करता है, वल, वर्ण और अग्नि को वढ़ाता है, यह अरिष्ट अनुभव किया हुआहै, इस से कामला और श्वित्र दूर होजाते है । तथा क्रिमिरोग, ग्रन्थिरोग, अर्बुद, व्यंग, राजयक्ष्मा और ज्वर नष्ट होजाते हैं ।

दन्त्यारिष्ट ।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोःपञ्चमूलयोः॥ भागान्पलांशानापोथ्यजलद्रोणेविपाचयेत् । त्रिफलायादलानांचप्रक्षिप्यात्रिपलंततः ॥ रसेचतुर्थशेषेतुपूतशीतेसमावपेत्। तुलांगुडस्यतत्तिष्ठेत्मासार्द्धंघृतभाजने । तन्मात्रयापिवेन्नित्यमर्शोभ्योऽपिप्रमुच्यते । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंवातवर्चोऽनुलोमनम् ॥ दीपनश्चारुचिघ्नञ्चदन्त्यारिष्टमिदंविदुः ।

अर्थ—दन्ती, चीतेकी जड़ दोनों पंचमूल इन सब को एक एक पल लेकर (सब वारह पल) तथा त्रिफला के छिलके तीन पल कूटकर एक द्रोण जल में पकावै, जब चौथाई शेष रहजाय तब उतारकर छानले और ठंडा होनेपर एक तुला गुड़ डालकर घी के चिकनेपात्र में भरकर पन्द्रह दिवस तक धरा रहनेदेवै । तदनन्तर वल के अनुसार नित्यप्रति सेवन करने से अर्श, ग्रहणीरोग पाण्डुरोग दूर होजाती हैं । अधोवायु और विष्टा का अनुलोमन होता है, यह **दन्त्यारिष्ट** अग्निसंदीन और अरुचि नाशक होता है ।

फलारिष्ट ।

हरीतकीफलंप्रस्थंप्रस्थमामलस्यच । विशालायादधित्थस्यपाठाचित्रकमूलयोः ॥ द्वेद्वेपलेसमापोथ्यद्विद्रोणेसाधयेदपाम् ।

पादावशेषपूतेचरसेतस्मिन्प्रदापयेत् ॥ गुड़स्यैकांतुलांवैद्यःसंस्थाप्य घृतभाजने॥ पक्षस्थितंपिबेदेनंग्रहण्यर्शोविकारवान् । हृत्पाण्डुरोगंप्लीहानंकामलांविषमज्वरम्॥ वर्चोमूत्रानिलकृतान्विबन्धानग्निमार्दवम् । कासंगुल्ममुदावर्त्तंफलारिष्टोऽव्यपोहति ॥

अर्थ—हरड़ एक प्रस्थ, आंवलाएक प्रस्थ, इन्द्रायणकी जड़ दोपल, कैथ दोपल पाठा दोपल, चीते की जड़ दोपल, इनसब को कूटकर दोद्रोण जल में पकावै । चौथाई शेष रहने पर उतारकर छान ले और जब वह ठंढा होजाय तब उस में एक तुला गुड़ डालकर घीके पात्र में भरकर पंद्रह दिन तक धरा रहने दे । फिर मात्रा के अनुसार ग्रहणी और अर्श विकारवाला रोगी इसका सेवन करै । इस फलारिष्ट के सेवन करने से हृद्रोग, पाण्डुरोग प्लीहा, कामला, विषमज्वर, मलविवन्ध, मूत्रविवंध अधोवायुविवंध, मन्दाग्नि, कास, गुल्म और उदावर्त्त ये सब रोग नष्ट होजाते हैं ।

दुरालभारिष्ट ।

दुरालभायाःप्रस्थःस्याच्चित्रकस्यवृषस्यच॥ पथ्यामलकयोश्चैवपाठायानागरस्यच । दन्त्याश्चद्विपलान्भागान्जलद्रोणेविपाचयेत्॥ पादावशेषपूतेचसुशीतेशर्कराशृतयम्। प्रक्षिप्यस्थापयेत्कुम्भेमासार्द्धंघृतभाजने ॥ प्रलिप्तेपिप्पलीचव्यप्रियंगुक्षौद्रसर्पिषा । तस्यमात्रांपिबेत्कालेशार्करस्ययथाबलम्॥ अर्शांसिग्रहणीदोषमुदावर्त्तमरोचकम् । शकृन्मूत्रानिलोद्गारविबन्धानग्निमार्दवम् ॥ हृद्रोगंपाण्डुरोगञ्चसर्वमेतेनसाधयेत् ।

अर्थ—दुरालभा एक प्रस्थ, चीता, अडूसा, हरड़, आंवला, पाठा, सोंठ, दन्ती, इन के दोदो पल लेकर एक द्रोण जल में पकावै। फिर चौथाई शेष रहने पर छानकर ठंढा होनेपर सौ पल शर्करा मिलाकर पन्द्रहदिन तक घी के पात्र में भरारक्खै । इस घड़े के भीतर पीपल, चव्य, प्रियंगु, शहत और घी इनका लेप करलेवै । बल के अनुसार इसकी मात्रा का सेवन करै । इस के सेवन करने से अर्शरोग, ग्रहणी दोष, उदावर्त्त, अरुचि, विष्टा मूत्र, अधोवायु, उद्गार, विवन्ध, मन्दाग्नि, हृद्रोग, पाण्डुरोग दूर होजाते हैं ॥

कनकारिष्ट ।

नवस्यामलकस्यैकांकुर्य्याज्जर्जरितांतुलाम्।कुडवांशंविडङ्गानिपिप्पलीमरिचानिच पाठामूलंचपिप्पल्यःक्रमुकंचव्यचित्रकौ ॥ मञ्जिष्ठैल्वालुकंरोध्रंपालिकान्युपकल्पयेत् कुष्ठंदारुहरिद्रांचसुराह्वंशारिवाद्वयम् ॥ इन्द्राह्वांभद्रमुस्तंचकुर्य्यादर्द्धपलोन्मिताम् । चत्वारिनागपुष्पस्यपलान्यभिनवस्यच ॥ द्रोणाभ्यामम्भसोद्वाभ्यांसाधयित्वावतारयेत् । पादावशेषपूतेचरसेतस्मिन्समावपेत् ॥ मृद्वीकाढ्याढकरसंशीतंनिर्यूहसंमितम् । शर्करायाश्चशुक्लायाद्याद्द्विगुणितांतुलाम् ॥ कुसुमस्वरस्यैकमर्द्धप्रस्थंनवस्यच । त्वगेलाप्लवपत्रा

ञ्चुसेव्यक्रमुककेसरम् ॥ चूर्णयित्वातुमतिमान्कार्षिकान्अत्रदापयेत् । ततसर्वस्थापयेत्पक्षंशुचौचघृतभाजने ॥ प्रलिप्तेसर्पिषाकिञ्चिच्छर्करागुरुधूपिते । पक्षादूर्ध्वंअरिष्टोऽयंकनकोनामविश्रुतः ॥ प्रायःस्वादुरसोहृद्यःप्रयोगाद्भक्तरोचनः । अर्शांसिग्रहणीदोषमानाहमुदरंज्वरम् ॥ हृद्रोगंपाण्डुतांशोषंगुल्मंवर्चोविनिग्रहम् । कासंश्लेष्मामयांश्चोग्रानसर्वानेवापकर्षति ॥ वलीपलितखालित्यंदोषजंचव्यपोहति ।

अर्थ—नये आंवले एक तुला;वायविडंग पीपल और कालीमिरच ये तीनों एक एक कुडव; पाठा, पीपलामूल, सुपारी, चव्य, चीता, मजीठ, एलुआ, लोध इन को एक एक पल लेवै; कूठ, दारुहलदी, देवदारु, दोनों सारिवा, कुटज, भद्रमोथा ये आधे आधे पल लेवै तथा नई नागकेसर चारपल इन सब को जौकुट करके दो द्रोण जल में पकाकै जब चौथाई शेष रहजाय तब उतार कर छान ले और उस में उस क्वाथ के समान दो आढक दाखकारस, दो तुला सफेद चीनी, नया शहत आधा प्रस्थ; दालचीनी, इलायची, तेजपात, मोथा, नेत्रवाला सुपारी, केसर, इन सब को एक एक कर्ष लेकर चूर्ण करके उस में मिला देवै ।फिर एक शुद्ध घी के वर्त्तन में भरकर पन्द्रह दिन तक धरा रक्खै । पूर्वोक्त द्रव्यों को घड़े में भरने से पहिले घी में चीनी डालकर उस के भीतर लेप कर देवै और अगरकी धूनी देवै । एक पक्ष पीछे यह कनकारिष्ट तयार होजाता है । यह स्वाद में मिष्ट, हृदयप्रिय और भोजन में रुचि बढाने वाला होता है । इसके सेवन करने से अर्श,ग्रहणी दोष, आनाह, उदररोग, ज्वर, हृद्रोग पाण्डुरोग, शोष,गुल्म, पुरीष विवन्ध,खांसी तथा सब प्रकार के उग्र कफरोग दूर होजाते हैं और वली पलित और खालित्य रोग भी नष्ट होजाते हैं ।

पत्रभङ्गोदकैःशौचंकुर्य्यादुष्णेनचाम्भसा॥ इतिशुष्कार्शसांपूर्वमुक्तमेतच्चिकित्सितम् ॥

अर्थ—वायुनाशक पत्तों का क्वाथ करके गरम २ से गुदाप्रक्षालन करता रहै । ये सब शुष्क अर्श की अनुभव की हुई चिकित्सा वर्णन की गई है ।

रक्तार्श की चिकित्सा ।

चिकित्सितमिदंसिद्धंस्राविणांशृणुवतःपरम् ॥ तत्रानुबन्धोद्विविधःश्लेष्मणोमारुतस्यच ।

अर्थ—अव खूनी ववासीर के अनुभव किये हुए प्रयोगों का वर्णन करते हैं। इस में दो दोषों का अनुवन्ध होता है एक कफ का, दूसरा वायुका ॥

वातकफानुवन्धी रक्तार्श के लक्षण ।

विट्श्यावंकठिनरूक्षंचाधोवायुर्नवर्त्तने ॥ तनुचारुणवर्णंचफेनिलंचासृगर्शसाम् । कट्यूरुगुदशूलंचदौर्बल्यंयदिवाधिकम् ॥ तत्रानुबन्धोवातस्यहेतुर्यदिविरूक्षणम् । शिथिलंश्वेतपीतंचविट्स्निग्धगुरुपिच्छिलं ॥ यद्यर्शसांघनंचासृक्तन्तुमत्पाण्डुपिच्छिलम् । गुदःसपिच्छःस्तिमितोगुरुस्नि-

ग्धश्चकारणम् ॥ श्लेष्मानुबन्धोविज्ञेयःत त्ररक्तार्शसांबुधैः ।

अर्थ—जो रोगी का दस्त काला, कडा और रूक्ष हो, और अधोवायुकी प्रवृति न होती हो,और अर्शका रक्त पतला लाल रंगका और झागदार हो, रोगी की कमर ऊरु और गुदा में शूल होता हो,दुर्वलता अधिक हो, तथा जो रूक्ष पदार्थों के सेवन से उत्पन्न हुई हो उसे **वातानुवन्धी अर्श** कहते हैं ।

जिसरोगी का विष्टा ढीला, सफेद, पीला, स्निग्ध, भारी और पिच्छिलहो, जिस अर्श का रक्त गाढा, तन्तुदार, पाण्डु वर्ण और पिच्छिलहो, गुदा पिच्छिल और स्तिमित हो, जो गुरु और स्निग्ध पदार्थों के सेवन से उत्पन्न हुआ हो उसे **कफानुवन्धी रक्तार्श** कहते हैं ॥

रक्तार्श में चिकित्सा क्रम ।

स्निग्धशीतंहितंवातेरूक्षशीतंकफेऽनुगे ॥ चिकित्सितमिदंतस्मात्सम्प्रधार्य्यप्रयो जयेत् । पित्तश्लेष्माधिकंमत्वाशोधनेनोप पादयेत्॥ स्रवणंचाप्युपेक्षेतलंघनैर्वासमा चरेत् । प्रवृत्तमादावर्शोभ्योयोनिगृह्णा त्यबुद्धिमान् ॥ शोणितंदोषमनिलंतद्रो गान्जनयेद्बहून् । रक्तपित्तंज्वरंतृष्णा मग्निनाशमरोचकम् ॥ कामलांश्वयथुंशू लंगुदवंक्षणसंश्रयम् । कण्ड्वरुःकोठपिड़ काकुष्ठंपाण्ड्वामयंगदम् ॥ वातमूत्रपुरी षाणांविबन्धंशिरसोरुजम् । स्तैमित्यंगुरु गात्रत्वंतथान्यान्रक्तजान्गदान् ॥ तस्मा त्स्रुतेदुष्टरक्तेरक्तसंग्रहणंमतम् । हेतुलक्ष णकालज्ञोबलशोणितवर्णवित् ॥

अर्थ—वातानुवंधी रक्तार्श में स्निग्ध और शीतल, तथा कफानुवंधी रक्तार्श में रूक्ष और शीतल चिकित्सा करना आव- श्यकीय है । जो रक्तार्श में कफ पित्तकी अधिकता हो तो संशोधन द्वारा चिकित्सा करै अथवा स्राव की उपेक्षा कर के लंघन द्वारा चिकित्सा करै ॥

जो मूर्ख वैद्य प्रथमही अर्श के वहतेहुये रुधिरको रोकदेता है, तब रक्त वातज दोषों से दूषित होजाता है और वायुकर्तृ- क अनेक प्रकार के उपद्रव खड़े होजाते हैं, यथा–रक्तपित्त, ज्वर, तृष्णा, मन्दाग्नि अरुचि, कामलारोग, सूजन,गुदशूल, वंक्षण शूल, खुजली, फुन्सी, पित्ती, पिडका, कोढ़, पाण्डुरोग, अधोवायु और मलमूत्र का विवन्ध शिरोवेदना, स्तिमिता, देह में भारापन,तथा और भी वहुत से रक्तजरोग उत्पन्न होजाते हैं । इस हेतु से दूषितरक्त के स्राव के हेतु, लक्षण, काल, वल और रुधिर का रंग देखकर रुधिर को वन्द करना चाहिये।

कालंतावदुपेक्षेतयावन्नात्ययमाप्नुयात् । अग्निसन्दीपनार्थंचरक्तसंग्रहणायच ॥ दोषाणांपाचनार्थश्चपरंतिक्तैरुपाचरेत् । यत्तुप्रक्षीणदोषस्यरक्तंवातोल्वणस्यच । वर्त्ततेस्नेहसाध्यंतत्पानाभ्यङ्गानुवासनैः। यत्तुपित्तोल्वणंरक्तंघर्मकालेप्रवर्त्तते ॥ स्तम्भनीयंतदेकान्तान्नचेद्वातकफानुगम्।

अर्थ—रक्तस्राव की उस समय तक

उपेक्षा करनी चाहिये जबतक किसी उपद्रव के होने की सम्भावना न हो । तदनन्तर अग्निको बढ़ाने के लिये, रक्तको रोकनेके लिये और दोषोंको पचाने के लिये तिक्त औषधियों का प्रयोग करै ॥

क्षीणदोषवाले वाताधिक्य अर्शरोगी का रक्त जो स्नेहसाध्य होता है वह स्नेहपान, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा शान्त होजाता है जो पित्ताधिक्य रक्त ग्रीष्मकाल में प्रवृत होता है, यदि उस में वातकफ का अनुवन्ध न हो, तौ उसे सर्वथा रोक दैना चाहिये ।

रक्तसंग्राही औषध ।

कुटजत्वङ्निर्यूहःसनागरःस्निग्धरक्तसंग्रहणः ॥ त्वग्दाडिमस्यतद्वत्सनागरःचन्दनरसश्चाचन्दनकिराततिक्तकधन्वयवाषाःसनागराःक्वथिताः ॥ रक्तार्शसांप्रशमनादार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च।सातिविषाकुटजत्वक्फलंचसरसाञ्जनम् ॥ मधुयुतंहिरक्तापहंप्रदद्यात्पिपासवेतण्डुलजलेन।

कुड़ाकी छाल के क्वाथ में सोंठ डालकर पीने से स्निग्ध रक्त बन्द होजाता है । इसीतरह अनार के छिलके के क्वाथ में सोंठ डालकर सेवन करने से, अथवा चन्दन के क्वाथ में सोंठ डालकर सेवन करने से रक्त वन्द होता है । अथवा चन्दन, चिरायता, जवासा, और सोंठ इनका क्वाथ कर के सेवन करने से रक्तार्श बन्द होता है । अथवा दारुहल्दी, दालचीनी, उसीरऔर नीम के क्वाथ का सेवन करै । अथवा अतीस, कुड़ाकी छाल इन्द्रजौ और रसौत इनकेचूर्ण को शहत और तण्डुल जलके साथ जव प्यास लगै तबही पान करावै तौ रक्तार्श दूरहोवै ।

कुटजादिक्वाथ ।

कुटजशकलस्यसाध्यंपलशतमार्द्रस्यमेघसलिलेन ॥ यावत्स्यात्गतरसंतद्द्रव्यंपूतोरसस्ततोग्राह्यः । मोचरसःससमङ्गःफलिनीचसमांशिकैस्त्रिभिस्तैश्च । वत्सकवीजंतुल्यंचूर्णितमत्रप्रदातव्यम् ॥ पूतःक्वथितःसरसोदार्वीलेपोततःसमवतार्य्यः। मात्राकालोपहितारसक्रियैषाजयतिरक्तम् ॥ छागलीपयसापीतापेयामण्डेनवाथाग्निबलम्। जीर्णौषधश्चशालीन्पयसा छागेनभुञ्जीतः ॥

अर्थ—हरीकुड़ा की छाल के छोटे २ टुकड़े सौ पल लेकर आन्तरीक्ष जल में पकावै, जब पकते २ उनका रस निकलआवै तब उसे उतारकर छान लेवै । इस क्वाथ में मोचरस, वाराहक्रान्ता और प्रियंगु का चूर्ण समान भाग लेकर मिलादेवै, फिर इन तीनों के वरावर इन्द्रजौ पीसकर मिलादेवै इन सवको अग्निपर चढ़ादे और चलाते २ जब यह ऐसा गाढ़ा पड़जाय कि करछी से लगने लगे तब उतारकर मात्रा और काल के अनुसार इसका सेवन करै तौ यह रक्तार्श को दूर करदेता है । इसको बकरीके दूध के साथ अथवा पेया वा मण्ड के साथ सेवन करना चाहिये औषध के पचने पर बकरी के दूध के साथ शालीचांवलों के भातका सेवन करै ॥

अन्यप्रयोग ।

नीलोत्पलंसमङ्गामोचरसश्चन्दनंतिला लोध्रम् । पीत्वाछागलं पयसाभोज्यंप यसैवशाल्यन्नं ॥ छगलीपयःप्रयुक्तंनिह न्तिरक्तंसवास्तुकरसश्च । धन्वविहंगमृगा णांरसोनिरम्लःकदम्लोवा ॥ पाठावत्स कबीजंरसाञ्जनंनागरंयवानींवा । बिल्व मितिचगुदजान्तर्विचूर्ण्यपेयानिशूलेषु ॥ दार्वीकिराततिक्तंमुस्तंदुःस्पर्शकश्चरुधिर घ्नम् । रक्तेऽतिवर्त्तमानेशूलेचघृतंविधा तव्यम् ॥

अर्थ—नीलकमल, समंगा, मोचरस, रक्त चन्दन, तिल और लोध इनको बकरी के दूध के साथ पानकरे और बकरी के दूध के साथही शाली चांवलों का भात भोजन करै । अथवा बकरी का दूध और बथुये का रस इनको मिलाकर पीने से रक्तार्श दूर होजाती है । अथवा धन्वदेशज पशुपक्षियों का मांसरस बिना खटाई का अथवा थोड़ी खटाई डालकर सेवन करै । अथवा पाठा, इन्द्रजौ, रसौत सोंठ, अजवायन और बेलगिरी इन के चूर्ण का सेवन करने से शूलयुक्त अर्श दूर होजाता है । अथवा दारुहल्दी, चिरायता, मोथा और जवासा इनका चूर्ण सेवन करने से भी रक्त बन्द होजाता है । तथा जो शूल होता है और रक्त अत्यन्त वहता हो तो इन्हीं दार्व्यादि चारों द्रव्यों के साथ सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करै ।

अर्शपरघृतप्रयोग ।

कुटजफलवल्ककेसरनीलोत्पलरोध्रधात कीकल्कैः । सिद्धंघृतंविधेयंशूलेरक्तार्श सांभिषजा । सर्पिःसदाडिमरसंसयाव शूकंजयन्त्याशु । रक्तंसशूलमथवानिदि ग्धिकादुग्धिकासिद्धम् ॥

अर्थ—कुड़ाकी छाल, इन्द्रजौ, केसर नीलकमल, लोध और धाय के फूल इन के कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ घृत शूलयुक्त अर्श में देवै । अथवा अनार के रस और जवाखार के साथ सिद्ध किया हुआ घृत अथवा कटेरी और दुद्धी के साथ सिद्ध किया हुआ घृत शूलयुक्त रक्तार्श में सेवन करै ।

रक्तार्शपरपेया ।

लाजैःपेयापीताचुक्रिकाकेसरोत्पलैःसिद्धा हन्त्याशुरक्तरोगंतथाबलापृश्निपर्णीभ्याम् । ह्रीवेरबिल्वनागरनिर्यूहेसाधितांसनवनीता म् ॥ वृक्षाम्लादाड़िमाम्लामम्लीकाम्ला सकोलाम्लाम् । गृञ्जनकसुरासिद्धांभृ ष्टांयमकेनवापिबेत्पेयाम् ॥ रक्तातिसार शूलप्रवाहिकाशोथनिग्रहणीम् ।

अर्थ—चुक्रिका, केसर, नीलकमल, तथा बला और पृष्णिपर्णी सहित सिद्ध की हुई खीलों की पेया रक्तार्श को दूर करती है, अथवा नेत्रवाला, बेलगिरी, सोंठ इनके क्वाथ में सिद्ध की हुई पेया में माखन डालकर पान करै अथवा लहसन और मद्य के साथ में सिद्धकी हुई अथवा घी तेल में भुनी हुई पेया में वृक्षाम्ल, अनार, इमली

वा वेर की खटाई डालकर पान करै। इस पेया के पान करने से रक्तातिसार, शूल प्रवाहिका और शोथ दूर होजाते हैं।

अन्य प्रयोग।

काश्मर्यामलकानाउदुम्बराणांखण्डान् फलाम्लानाम् ॥ गृञ्जनकशाल्मलीनां क्षीरिण्याःचुक्रिकायाश्च। न्यग्रोधशुङ्गकानांखण्डांस्तथाकोविदारपुष्पाणाम् ॥ दध्नःश्रेणसिद्धांदद्याद्रक्तेप्रवृत्तेऽति।

अर्थ—खंभारी, आंवला, गूलर, अनार लहसन, सेमर, क्षीरिणी, चुक्रिका, वड़की कोंपल, कचनार के फूल और दही की मलाई इन से सिद्ध किया हुआ षड्यूष सेवन करने से अत्यन्त वहता हुआ रुधिर रुकजाता है।

सिद्धंपलाण्डुशाकंचतक्रेणोपदिकांसबदरांच ॥ रुधिरस्रवेप्रदद्यान्मसूरपश्चतक्राम्लम्। पयसाश्रृतेनयूषैर्मसूरमुद्गाढकीमकुष्ठानम् ॥ भोजनमद्यादम्लैःशालिश्यामाककोद्रवजम्। शशहरिणलावमांसैःकपिञ्जलैणेयैःसुसिद्धैश्च ॥ भोजनमद्यादम्लैर्मधुरैरीषत्समरिचैर्वा। दक्षशिखितित्तिरिरसैर्द्विककुल्लोपाकजैश्चमधुराम्लैः ॥ अद्याद्रसैरतिवहेष्वर्शःस्वनिलोल्वणशरीरः। रसखडयूषयवागूसंयुक्तःकेवलोऽथवाजयति। रक्तमतिवर्त्तमानंवातंचपलाण्डुरुपयुक्तः। छागान्तरोधितरुणंसरुधिरमुपसाधितंबहुपलाण्डु। व्यत्यासान्मधुराम्लंविट्शोणितसंक्षयेदेयम् ॥

अर्थ—जो अर्श में से रुधिर वहता हो तौ प्याज का शाक, पोई का शाक, वावेर का शाक तक्रके साथ सिद्ध करके देवै, अथवा मसूरकी दाल में मठा डालकर देवै। मसूर मूंग अडहर और मैंठ इनके यूष को दूधके साथ सिद्धकरके देवै। अथवा शाली चांवल, सोखिया और कोंदों इन को मद्य और खटाई के साथ में देवै। अथवा सस्सा हिरन, लवा, सफेद नीतर और एणमृग का मांस मदिरा, खटाई, मीठा और थोडी सी काली मिरच डालकर देवै।

वातकी अधिकता वाले मनुष्य के अर्श में से यदि रक्त वहुत निकलता हो तौ मुर्गा, मोर, तीतर, ऊंट और लोपाक के मांसरस में कुछ मीठा और अम्लरस डाल कर देवै।

मांसरस वा खड्यूष वा यवागू के साथ में प्याज का खाना वा केवल प्याजही का सेवन करना अत्यन्त वहते हुए रक्त और वातको दूर कर देता है।

इस रोग में विष्टा और रुधिरके अत्यन्त क्षीण होने पर वकरे की देह के वीच का ताजी मांस रुधिर सहित वहुतसी प्याज डालकर सिद्ध करै और विपरीति क्रम से खटाई मिठाई डालकर सेवन करै ॥

नवनीतघृताभ्यासात्केसरनवनीतशर्कराभ्यासात्। दधिसरमथिताभ्यासादर्शांस्यपयान्तिरक्तानि ॥ नवनीतंघृतंछागंमांसंसषाष्ठिकःशालिः। तरुणश्चसुरामण्डःतरुणाचसुरानिहन्त्यजस्रम् ॥ प्रायेण वातबहुलान्यर्शांसिभवन्त्यतिस्रुतेरक्ते।

तस्माद्रक्तेदुष्टेऽप्यनिलःसविशेषतोजेयः। दृष्ट्वातुरक्तपित्तंप्रवलंकफवातलिङ्गमल्पञ्च। शीताःक्रियाःप्रयोज्याःयथेरितावक्ष्यतेचान्याः॥

अर्थ—मक्खन घी के सेवन करने से, केसर, मक्खन और शर्करा के अभ्यास से, तथा दही को मलाई समेत रई से मथ कर सेवन करने से रक्तार्श दूर होजाता है। मक्खन, घृत, वकरे का मांस, सांठी चांवल, शालीचांवल, नवीन सुरामण्ड, नवीन मदिरा इनके सेवनसे भी अर्श शीघ्र शान्त होजाता है।

रक्तके अत्यन्त निकल जाने पर अर्शमें प्रायः वातकी अधिकता होजाती है। इस लिये रक्तके दूषित होने पर भी विशेष करके वायुको शान्त करने का उपाय करै। अर्श में रक्तपित्तकी प्रवलता तथा कफवातकी अल्पता को देखकर पहिले कही हुई वा आगे आने वाली शीतल क्रियाओं का प्रयोग करै।

परिषेकादि प्रयोग।

मधुकंसपञ्चवल्कंवदरीत्वगुदुम्बरंन्धवपटोलम्। परिषेचनेविदध्याद्धृषककुभयवाषनिम्बांश्च॥

अर्थ—मुलहटी, पंचवल्क (गूलर, पीपल वड,पाकड और वेत की छाल) वेर की छाल उदुम्बर, धौ की छाल, परवल, अडूसा,अर्जुन, जवासा,और नीम इनका क्वाथ करके रक्तार्श में परिषेचन करै॥

अवगाहन प्रयोग।

रक्तेऽतिवर्त्तमानेदाहेक्लेदेचगाहयेच्चापि मधुकमृणालपद्मकचन्दनकुशकाशनिक्वाथे॥ इक्षुरसमधुकवेतसनिर्यूहेशीतलेपयसिवातम्। अवगाहयेत्प्रदिग्धंपूर्वंशिशिरेणतैलेन॥

अर्थ—रक्त के अत्यन्त वहनेपर तथा दाह और क्लेद के उत्पन्न होनेपर शरीर में शीतल तेलकी मालिश कर के मुलहटी कमलनाल, पदमाख, रक्तचन्दन,कुशा, कांस इन के क्काथ में स्नान करावै अथवा ईख का रस, मुलहटी और वेत के क्काथ से वा ठंडे दूध से रोगीको स्नान करावै।

दत्त्वाघृतंसशर्करमुपस्थदेशेगुदेत्रिकदेशे। शिशिरजलस्पर्शसुखाधाराःप्रस्तम्भनीमृज्याः॥ कदलीदलैरभिनवैःपुष्करपत्रैश्चशीतजलसिक्तैः। प्रच्छादनंमुहुर्मुहुरिष्टंपद्मोत्पलदलैश्च॥ दूर्वाघृतप्रदेहःशतधौतसहस्रधौतमपिसर्पिः। व्यजनपवनश्चरक्तोरक्तस्रावंजयत्याशु।

अर्थ—उपस्थेन्द्रि, गुदा और त्रिकस्थान में घी और शर्करा सानकर लेप करै, फिर धीरे २ ठंढे जल की धार डालै तौ रक्तका बहना बन्द होजाताहै। नवीन केले के पत्ते अथवा शीतल जल से छिड़ के हुये कमल के पत्ते वा नीलकमल के पत्तों से बार २ अर्श को ढकना भी हित हैं। दूब और घी का लेप अथवा सौ वार वा हजार वार धुलाहुआ घी इनका लेप, वा पंखे की हवा इन से भी बहताहुआ रक्त शीघ्रबन्द होजाता है।

अर्शपर घृत।

समङ्गामधुकाभ्यांतिलमधुकाभ्यांरसाञ्ज नघृताभ्याम् । सर्जरसघृताभ्यांवानि म्बघृताभ्यांमधुघृताभ्याम् ॥ दार्वीत्व कसर्पिभ्यांसचन्दनाभ्यामथोत्पलघृतां भ्याम् । दाहेक्लेदेभ्रंशेगुदजाःप्रतिसार णीयास्युः।

अर्थ—समंगा और मुलहटी; तिल और मुलहटी; रसौत और घी; राल और घी; नीम और घी; शहत और घी; दारुहल्दी कीछाल और घी; अथवा रक्तचन्दन, नील कमल और घृत। इनका लेप करनेसे दाह, क्लेद, गुदभ्रंश और अर्श शान्त होजाते हैं।

आभिःक्रियाभिरथवाशीताभिर्यस्यतिष्ठ तिनरक्तम् । तंकालेस्निग्धोष्णैर्मांसैस्त र्पयेन्मतिमान् । अवपीडकसर्पिर्भिःको ष्णैर्घृततैलिकैस्तथाभ्यंगैः ॥ क्षीरघृततो यसेकैःकोष्णैःसमुपाचरेदाशु । कोष्णे नवातप्रबलंघृतमण्डेनानुवासयेत्शीघ्रम्। पिछाबस्तिंदद्याद्वस्तिंकालेतस्याथवा सिद्धम् ॥

अर्थ—इन ऊपर कही हुई क्रियाओं से अथवा शीतल क्रियाओं से जिसका रुधिर वन्द न हो उसको ठीक समय में स्निग्धोष्ण मांसद्वारा तर्पण देवै, अथवा शिरोविरेचनकर्ता घृत देवै, अथवा ईषत् उष्ण घृत तेल की मालिश करावै अथवा ईषदुष्ण दूध घी वा जल से परिषेक करै। ऐसे बातप्रवलरोगी को ईषदुष्ण घृतमण्ड से शीघ्र अनुवासन देवै। पिच्छावस्ति वा सिद्धावस्ति देवै।

पिच्छावस्ति सिद्धावस्ति।

यवासकुशकाशानांमूलंपुष्पञ्चशाल्मलम्। न्यग्रोधोडुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्चद्विपलोन्मि ताः॥त्रिप्रस्थेसलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थेचसा धयेत्।क्षीरशेषंकषायचंपूतंकल्कैर्विमिश्रयेत् कल्काःशाल्मलिनिर्यासससमंगाचन्दनोत् पले । वत्सकस्यचवीजानिप्रियंगुपद्मकेस रम् । पिच्छावस्तिरयंसिद्धःसघृतक्षौद्र शर्करः ॥ प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्रावज्व रापहः ॥

अर्थ—जवासा, कुशा और कांसकीजड़, सेमरका फूल; बड़ गूलर और पीपल की कोंपल ये सब दो २ पल लेवै। तथा तीन प्रस्थ जल और एक प्रस्थ घृत में मिलाकर पकावै जब दूध शेष रहजाय तव इसको छान लेवै। फिर इस में सेमर का गोंद, बाराहक्रान्ता, चन्दन नीलकमल, इन्द्रजौ प्रियंगु, नागकेसर इनको पीसकर मिलादेवै। इसका नाम **पिच्छावस्ति** है यदि इस में घी, शहत, और चीनी भी मिलाई जाय तौ यह **सिद्धावस्ति** होजाती है। इन वस्तियों का प्रयोग करने से प्रवाहिका, गुदभ्रंश रक्तस्राव तथा ज्वर शान्त होजाताहै।

अनुवासन वस्ति प्रयोग।

प्रपौण्डरीकंमधुकंपिच्छावस्तौयथेरितम्॥ पिष्ट्वानुवासनंस्नेहंक्षीरद्विगुणितंपचेत्।

अर्थ—पुण्डरिया, मुलहटी तथा पिच्छावस्ति में कहे हुए द्रव्यों को पीसकर स्नेह

तथा दुगुना दूध डालकर सिद्ध करके अनुवासन वस्ति देवै ।

ह्रीवेरादि घृत ।

ह्रीवेरमुत्पलंरोध्रंसमंगाचव्यचन्दनम् ॥ पाठासातिविषाबिल्वंधातकीदेवदारुच । दार्वीत्वक्नागरंमासीमुस्तंक्षारोयवाग्रजः॥ चित्रकश्चेतिपेष्याणिचांगेरीस्वरसोघृतम्। एकध्वंसाधयेसर्वंतत्सर्पिःपरमौषधम् ॥ अर्शोऽतिसारग्रहणीपाण्डुरोगज्वरारुचौ। मूत्रकृच्छ्रेगुदभ्रंशेवस्त्यानाहेप्रवाहने ॥ पिच्छास्रावेऽर्शसांशूलेयोज्यमेतत्त्रिदोषनुत्।

अर्थ—नेत्रवाला,नीलकमल, लोध,लज्जालू, चव्य, चन्दन, पाठा, अतीस, वेलगिरी धाय के फूल, देवदारु,दारुहल्दी की छाल सोंठ, जटामांसी, मोथा, जवाखार, चीता इन सब को पीसकर चांगेरी के रसके साथ घृत मिलाकर सब को सानकर पकावै,यह घृत अत्यन्त गुणकारी होता है । इसके सेवन करने से अर्श, अतिसार, ग्रहणीदोष पाण्डुरोग, ज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र,गुदभ्रंस वस्तिका आनाह, प्रवाहन, पिच्छास्राव, अर्शशूल और त्रिदोषजन्य अर्श को दूर करने वाला है ॥

अवाकपुष्प्यादि घृत ।

अवाक्पुष्पीवलादार्वीपृश्निपर्णीत्रिकण्टकः न्यग्रोधोडुम्बराश्वत्थशुंगाश्चत्रिपलोन्मिताः कषायएषपेष्याणिजीवन्तीकटुरोहिणी॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंनागरंसुरदारुच । कलिंगाःशाल्मलंपुष्पंवीराचन्दनमुत्पलम् । कट्फलंचित्रकंमुस्तंप्रियंग्वतिविषा स्थिराः ॥ पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कंसमंगासनिदिग्धिका ॥ बिल्वंमोचरसःपाठाभागाःकर्षसमन्विताः । चतुःप्रस्थेश्रितंप्रस्थंकषायस्यावतारयेत् ॥ त्रिंशत् पलानिप्रस्थोऽत्रविज्ञेयोद्विपलाधिकः । सुनिषन्नकचांगेर्याःप्रस्थौद्वौस्वरसस्यच सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् । एतदर्शस्त्वतीसारेरक्तस्रावेत्रिदोषजे ॥ प्रवाहनेगुदभ्रंशेपिच्छासुविविधासुच । उत्थानेचातिवहुशःशोथशूलेगुदाश्रये ॥ मूत्रग्रहेमूढवातेमन्देग्नावरुचावपि । प्रयोज्यंविधिवत्सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ विविधेष्वन्नपानेषुकेवलंवानिरत्ययम् ।

अर्थ—सोंफ, खरैटी, दारुहलदी, प्रष्णिपर्णी, गोखरू, बड़की कोंपल,गूलरकी कोंपल, पीपलकी कोंपल इन में से प्रत्येक दो दोपल लेकर चार प्रस्थ जल में चढ़ादे जब चौथाई शेष रहै तब उतार कर छान लेवै । फिर जेंती, कुटकी, पीपल, पीपलामूल, सोंठ, देवदारु, इन्द्रजौ,सेमर का फूल काकोली, रक्तचन्दन, नील कमल,कायफल चीता, मोथा, प्रियंगु, अतीस, शालिपर्णी लालकमल की केसर, नीलकमल की केसर, लजालू, कटेरी, वेलगिरी मोचरस पाठा इन सब को एक एक कर्ष लेकर पीसकर उस में मिलादेवै (यहां ३२ पल का प्रस्थ समझना चाहिये), फिर इस में चौपातियां का रस एक प्रस्थ, चांगेरी का रस एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ इन सव को मिलाकर पाक करै । यह घृत अर्शरोग,

अतिसार, त्रिदोषज रक्तस्राव, प्रवाहिका गुदभ्रंश, अनेक प्रकार के पिच्छास्राव, अनेक प्रकार से वार वार मलका निकलना, गुदशोथ, गुदशूल, मूत्रग्रह, मूढवात, मन्दाग्नि अरुचि, इन रोगों को दूर करता है। वल वर्ण और अग्नि को बढाता है। यह घृत अकेलाही वा अनेक प्रकार के अन्नपान के साथ दिया जाता है।

भवन्ति चात्र।

व्यत्यासान्मधुराम्लानिशीतोष्णानिच योजयेत्। नित्यमग्निबलापेक्षीजयत्यर्शःकृतान्गदान् ॥ त्रयोविकाराःप्रायेण येपरस्परहेतवः। अर्शांसिचातिसारश्च ग्रहणीदोषएवच ॥ एषामग्निबलेहीने वृद्धिर्वृद्धेपरिक्षयः। तस्मादग्निबलंरक्ष्य मेषुत्रिषुविशेषतः ॥

अर्थ—अर्शरोग में विपरीत क्रमसे मधुर और अम्ल, तथा शीत और उष्ण द्रव्यों का व्यवहार करना चाहिये। अग्निवल की अपेक्षा करने वाला अर्श से उत्पन्न हुए रोगों को जीत लेता है। अर्श, अतिसार और ग्रहणी दोष ये तीन रोग ऐसे हैं कि इन में से परस्पर एक दूसरे का हेतु होता है। अग्नि के क्षीण होने से इन रोगों की वृद्धि होती है और अग्निके बढने से इन रोगों की क्षीणता होती है। इस लिये इन तीनों रोगों में विशेष करके अग्निवलकी रक्षा कर्त्तव्य है।

सेव्यासेव्यका संक्षिप्तवर्णन।

भृष्टैःशाकैर्यवागूभिर्यूषांमांसरसैःखडैः। क्षीरतक्रप्रयोगैश्चविचित्रैर्गुदजान्जयेत्॥ यद्वायोरानुलोम्याययदग्निबलवृद्धये। अन्नपानौषधंद्रव्यंतत्सेव्यंनित्यमर्शसैः॥ यदतोविपरीतंस्यान्निदानेयत्प्रदर्शितम्। गुदजैस्तत्परीतेननैवसेव्यंकथञ्चन ॥

अर्थ—अनेक प्रकार के भुने हुए साग यवागू, यूष, मांसरस, खड्यूष, दूध और मठे के प्रयोगों से अर्श रोगों का दमन करना चाहिये। जो द्रव्य वायुका अनुलोमन करते हैं, जो अग्निवल को बढाते हैं वह अन्नपान और औषध नित्यही अर्श रोगियों को सेवनीय हैं। जो इन से विपरीत हैं तथा अर्श के उत्पन्न होने के हेतुओं में जो जो द्रव्य वर्णन किये गये हैं वे अर्शरोगियों को कदापि सेवनीय नहीं हैं।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

अर्शसांद्विविधंजन्मपृथगायतनानिच। स्थानसंस्थानलिंगानिसाध्यासाध्यविनिश्चयः ॥ अभ्यंगाःस्वेदनंधूमाः सावगाहाःप्रलेपनाः ॥ शोणितस्यावसेकश्चयोगादीपनपाचनाः ॥ तक्रयोगान्नपानानिवातवर्चोऽनुलोमनानि। योगाःसंशोधनाश्चैवसर्पिर्विविधानिच॥ अन्नपानमधोभागंवस्त्यरिष्टाः सशर्कराः। शुष्काणामर्शसांशस्ताःस्राविणांलक्षणन्तथा ॥ द्विविधंसानुबन्धानांतेषांचेष्टंयथौषधम्। रक्तसंशमनायोगाश्चेष्टाश्चविविधात्मिकाः ॥ स्नेहपानविधिश्चाग्र्योविधिःपानान्नयोश्चयः। परिषेकावगाहाश्चप्रदेहाःप्रतिसारणम्॥

अतिवृत्तस्यरक्तस्यविधातव्यंयदुत्तरम् ।
तत्सर्वमिहनिर्दिष्टंगुदजानांचिकित्सितम्।

अर्थ—इस अर्शचिकित्सित अध्याय में निम्नलिखित बातें वर्णन की गई हैं, यथा अर्श की दो प्रकार की उत्पत्ति; अर्श के भिन्न भिन्न कारण, स्थान, आकृति, लक्षण साध्यासाध्य विचार,

अभ्यंग, स्वेदन; धूम अवगाह, प्रलेप फस्त खोलना, दीपनयोग, पाचनयोग, तक्रयोग, अधोवायु और पुरीष के अनुलोमन करनेवाले अन्नपान; संशोधनयोग, अनेक प्रकार के घृत; बस्तिप्रयोग, शर्करा मिलेहुए अरिष्ट, सूखीबवासीर की औषध, स्रावीअर्श के लक्षण, दो प्रकार के अनुबन्ध, अभीष्ट औषध; रक्तसंशमन कर्त्ता अनेक प्रकार के उत्तम २ प्रयोग स्नेह पानविधि, अन्नपानविधि, तथा रक्त के अत्यन्त वहने में परिषेक, अवगाह, प्रदेह और प्रतिसारण । ये सब इस अध्याय में वर्णन कियेगये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचिकित्सितस्थाने अर्शश्चिकित्सितं नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

———:※:———

दशमोऽध्यायः ।

अथातोऽतीसारचिकित्सितंव्याख्यास्यामः
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोलेकि अव हम अतीसार चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

भगवन्तंखल्वात्रेयंकृताह्निकंकृताग्निहोत्रमासीनमृषिगणपरिवृतमुत्तरेहिमवतःपार्श्वे विनयादुपेत्याभिवाद्याग्निवेशउवाच—भगवन्नतीसारस्यप्रागुत्पत्तिनिमित्तलक्षणोपशमनानिप्रजानुग्राहार्थमाख्यातुमर्हसीति ।

अर्थ—एक समय हिमालय के उत्तर की ओर जव भगवान् आत्रेय आन्हिक तथा अग्नि होत्रादिककर्म से निश्चिन्त होकर वैठेहुए थे तथा वहुत से ऋषि मुनि भी उससमय उपस्थित थे, उससमय अग्निवेश नेवहुतनम्रता पूर्वक अभिवादन करके पूछा कि हे भगवन् । प्रजा के अनुग्रह के लिये आप अतीसार की प्रथम उत्पत्ति का वर्णन, हेतु, लक्षण तथा उसके शमनोपायो का वर्णन करने के योग्य हैं ॥

अतीसारकी प्रागुत्पत्ति ॥

अथभगवानात्रेयःतदग्निवेशवचनमनुनिशम्योवाच । श्रूयतामग्निवेश ! सर्वमेतदखिलेनव्याख्यायमानमादिकाले । खलुयज्ञेषुपशवःसमालम्भनीयावभूवुर्नारम्भायप्रक्रियन्तेस्म ततोदक्षयज्ञप्रत्यवरकालंमनोःपुत्राणांमरिष्यन्नाभागेक्ष्वाकुकुविडचर्य्यात्यादीनाञ्चक्रतुषुपशूनामेवाभ्यनुज्ञानात्पशवःप्रोक्षणमवापुः । अतश्चप्रत्यवरकालंपृषध्रेणदीर्घसूत्रेणयजमानेनपशूनामलाभाद्गवामालम्भःप्रावर्त्तितः। तंदृष्ट्वाप्रव्यथिताभूतगणाःतेषाञ्चोपयो

गादुपकृतानांगवांगौरवादौष्ण्यादसात्म्यत्वादशस्तोपयोगाच्चोपहताग्नीनामुपहतमनसांअतीसारःपूर्वमुत्पन्नःपृषध्रयज्ञे ।

अर्थ—अग्निवेशके इस वचन को सुनकर भगवान् आत्रेय बोले कि हे अग्निवेश ! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तेरे साम्हने कहता हूं तू सावधान होकर श्रवणकर । प्राचीनकाल में यह प्रथा थी कि यज्ञ में पशुओं का वध नहीं कियाजाता था, परन्तु यज्ञभूमि में लायेजाते थे, तदनन्तर दक्षके यज्ञ के पीछे मरिष्यन्, नाभाग, इक्ष्वाकु, कुविडचर्य्या आदि मनु के पुत्रों के यज्ञों में पशुओंकी अनुमति से पशु छोड़ दियेजाते थे। इससे पीछे राजा पृषध्रने जो यज्ञ किये थे। उन में पशुओं के न मिलने से गोवध की प्रथा प्रचलित करदी थी। इस वातको देखकर गौओं के अत्यन्त उपयोगी होनेके कारण सम्पूर्ण प्राणी बहुत दुःखित हुये उसी पृषध्र के यज्ञ में गोमांस के भारी, उष्ण असात्म्य होने से तथा उस के अशस्त उपयोग से खानेवालों की जठराग्नि मन्द पड़गई और मन भी उत्साहहीन होगया तब ऐसे मनुष्यों के प्रथम अतीसार उत्पन्न हुआ ॥

वातातिसार के हेतु ।

अथापरंकालंवातलस्यवातातपव्यायामातिमात्रनिषेविणो रूक्षाल्पप्रमिताशिनः॥ तीक्ष्णमद्यव्यवायनित्यस्यउदावर्त्तयतश्च वेगाद्वायुःप्रकोपमापद्यतेपक्ताचोपहन्यते सवायुःकुपितोऽग्नावुपहतेमूत्रस्वेदौपुरीषाशयमुपहृत्यताभ्यांपुरीषंद्रवीकृत्यातीसारायप्रकल्पते ।

अर्थ—वातप्रकृतिवाले मनुष्य के हवा धूप और शारीरिक परिश्रम के अत्यन्त सेवन से, रूक्ष, थोड़ा और प्रमित भोजन करने से, नित्यप्रति तीक्ष्ण मदिरापान और स्त्री सम्भोग से वा मल मूत्रादि के उपस्थित वेगों के रोकने से वायु प्रकुपित होजाती है तथा जठराग्नि क्षीण पड़जाती है। इस तरह अग्नि के क्षीण होजाने पर वह प्रकुपित वायु मूल और स्वेद को पुरीषाशय में लेजाकर उन के द्वारा मलको पतला करदेती है तब अतीसार उत्पन्न होता है ।

वातातिसारकेरूप ।

तस्यरूपाणिविड्जलमामविप्लुतमवसादितंरूक्षंद्रवंसशब्दमशब्दंवाविबद्धमूत्रवातमातिसार्य्यतेपुरीषंवायुश्चान्तःकोष्ठस्य सशब्दशूलःतिर्य्यक्चरतिविबद्धइत्यामातिसारः ।

अर्थ—जिसका विष्टा जलके समान पतला पडजाता है और वह विष्टा अपक्कमल से मिश्रित होता है, तथा अवसादी, रूक्ष पतला होवै, दस्त होने में शब्द हो वा सर्वथा शब्दहीन हो, मूत्र और अधोवायु की विबन्धता के साथ दस्त हो, तथा जिस में वायु कोष्ठके भीतरही विबन्धके साथ और शूलयुक्त होकर तिरछेपन से विचरती है। यह आमातिसार है ।

वातात्पक्वंविबद्धमल्पाल्पंसशब्दंसशूलफे

नपिच्छापरिकर्त्तिकंहृष्टरोमाविनिश्वसन् शुष्कमुखःकट्यूरुत्रिकजानुशूलपृष्ठशूली भ्रष्टगुदोमुहुर्मुहुर्विग्रथितमुपवेश्यतेपुरीषं वातात्तमाहुरनुग्रन्थमित्येकेवातानुग्रन्थितवर्चस्त्वात् ॥

अर्थ—वातसे पक्व होकर विष्ठा विवद्ध युक्त, शूलयुक्त,झागदार,गिलगिला, परिकर्त्तिका (ऐंठा) युक्त निकलता है,उस, समय रोमाञ्च खडे होजातेहैं, श्वास चलने लगता है, मुख शुष्क होजाता है,कमर, ऊरू, त्रिक, जानु और पीठ में शूल होने लगता है, गुदास्थि वाहर निकल आती है तथा वार वार गांठदार मल निकलने लगता है । वात के कारण मल में गांठ पड़ जाने से कोई कोई इसे वातानुग्रन्थ कहते हैं ।

पित्तातिसार के हेतु रूपादि ।

पित्तलस्यपुनरम्ललवणकटुककक्षारोष्ण तीक्ष्णातिमात्रनिषेविणःप्रतताग्निसूर्य्यसन्तापोपहतमारुतोपहतगात्रस्यक्रोधेर्ष्याबहुलस्यपित्तंप्रकोपमापद्यते।तत्प्रकुपितंद्रवत्वादूष्माणमुपहत्यपुरीषाशयाविस्तृतमौष्ण्याद् द्रवत्वात्सरत्वाच्चभित्वापुरीषमतिसाराय प्रकल्पते । तस्यरूपाणिहरिद्रहरितनील कृष्णपित्तोपहितमतिदुर्गन्धमतिसार्य्यते पुरीषंतृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलब्रध्मसन्तापपाकपरीतइतिपित्तातिसारः ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुष का खट्टे नमकीन, कड़वे, खारी, तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थों के अत्यन्त सेवन से, अथवा अग्नि और सूर्य्य के सन्ताप द्वारा निरन्तर उपहत होने के कारण वा वायुद्वारा उपहत होने के कारण वा अत्यन्त क्रोधी ईर्ष्यायुक्त पुरुष का पित्त प्रकुपित होजाता है । वह प्रकुपित पित्त पतला होने के कारण अग्नि को मन्द करके पुरीषाशय में स्थित होजाता है और वहां अपने पतले पन, गरमी तथा सरता के कारण मल को भेदन करके अतीसारको उत्पन्न करता है इस अतिसारका रूप हलदी के समान पीला, हरा, नीला, काला, पित्त संसृष्ट होता है तथा विष्ठा में अत्यन्त दुर्गन्ध आती है । इस अतिसार में तृष्णा, दाह, स्वेद, मूर्च्छा, शूल, ब्रध्मसंताप और गुदपाक ये उपद्रव भी होते हैं ।

कफातिसार के हेतु रूपादि ।

श्लेष्मलस्यतुगुरुमधुरशीतस्निग्धोपसेविनःसम्पूरकस्याचिन्तयतोदिवास्वप्नपरस्यालस्यश्लेष्माकोपमापद्यते । सस्वभावाद्गुरुमधुरशीतस्निग्धःस्रस्तोऽग्निमुपहत्यसौम्यस्वभावात्पुरीषाशयमुपहत्योपक्लेद्यपुरीषमतिसारायकल्पते । तस्यरूपाणिस्निग्धंश्वेतंपिच्छिलंतन्तुमदामंगुरुदुर्गन्धश्लेष्मोपहितमनुबद्धशूलमल्पाल्पमभीक्ष्णमतिसार्य्यतेसप्रवाहिकंगुरूदरगुदवस्तिवंक्षणोदेशःकृतोऽप्यकृतसंज्ञोभवतिसलोमहर्षःसोत्क्लेशःनिद्रालस्यपरीतःसादनोऽन्नद्वेषीचेतिश्लेष्मातिसारः ।

अर्थ—कफ प्रकृति वाले पुरुष का कफ भारी, मीठे, शीतल और चिकने पदार्थों

के अत्यन्त सेवन से, पेटभर कर खालेने- से वा वेफिकरी से दिनमें सौने का अभ्यास वा आलस्य ग्रस्त होने से कुपित हो जाता है। यह श्लेष्मा स्वभावही से गुरु, मधुर, शीत, स्निग्ध और सूक्ष्म होता है इस लिये अग्नि को क्षीण करके अपने सौम्य स्वभाव के कारण पुरीषाशय में पहुंचकर पुरीष को क्लेदित करके अतिसार को उत्पन्न करता है। इस अतिसार में चिकना, सफेद, गिलगिला, तन्तुयुक्त, अपक भारी, दुर्गन्धित, कफ मिश्रित, शूलयुक्त थोड़ा थोड़ा वार वार दस्त होता है। प्रवाहिका भी होती है, उदर, गुदा, वंस्ति और वंक्षण इन में भारापन होता है रोम हर्ष, उत्क्लेश, निद्रा आलस्य ये भी होते हैं तथा अंग ग्लानि और अन्न में अरुचि ये उपद्रव भी होते हैं।

त्रिदोषज अतिसार के हेत्वादि।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुखरकाठिनविषमाविरुद्धासात्म्यभोजनादभोजनात्कालातीतभोजनाद्यत्किञ्चिदभ्यवहरणाद् दुष्टमद्यपानीयपानादतिमद्यपानादसंशोधनात्प्रतिकर्म्मणांविषमगमनादनुपचाराज्ज्वलनादित्यपवनसलिलातिसेवनादस्वप्नादातिस्वप्नोद्वेगविधारणादृतुविपर्य्ययादयथाबलमारम्भाद्भयशोकचित्तोद्वेगातियोगात्क्रिमिशोषज्वरार्शोविकारातिकर्शनाद्वाविपन्नाग्नेस्त्रयोदोषाःप्रकुपिताभूयएवाग्निमुपहत्यामपक्वाशयमनुप्रविश्यातीसारंसर्वदोषलिङ्गंजनयन्ति।

अर्थ—अत्यन्त साफ साफ शीतल, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, भारी, खर, कठिन भोजन विषम भोजन विरुद्ध पदार्थोंका भोजन, असात्म्य भोजन, निराहार, कालातीत भोजन, अल्पभोजन, दूषित मदिरा और जलका पीना, अत्यन्त मद्यपान, असंशोधन; विरेचनादिका विषम गमन अनुपचार, अग्नि, धूप, हवा, जल का अत्यन्त सेवन, सर्वथा न सौना, अत्यन्त सौना, मलमूत्रादि वेगों का रोकना, ऋतुविपर्य्यय (ग्रीष्म में कम गर्मी वा अधिक गर्मी पड़ना) वलसे अधिक कार्य करना, भय, शोक और चित्तोद्वेगका अतियोग, क्रिमिरोग शोषरोग, ज्वर, अर्श विकार। इन सब कर्मों से जो व्यक्ति अत्यन्त कृश होजाता है उसके तीनों दोष कुपित होकर प्रथमही दोष को प्राप्त हुई अग्नि को अधिक तर मन्द करके आमपक्वाशय में प्रविष्ट होकर तीनों दोषों के लक्षणों से युक्त अतिसार को उत्पन्न करतेहैं।

कृच्छ्रसाध्य के लक्षण।

अपिचशोणितादीन्धातूनतिप्रदुष्टानदूषयन्तोधातुदोषस्वभावकृतानतीसारवर्णानुपदर्शयन्ति। तत्शोणितादिषुधातुषु अतिप्रदुष्टेषुहारिद्रहरितनीलमाञ्जिष्ठमांसधावनसन्निकाशंरक्तंकृष्णंश्वेतंवराहमेदःसदृशमनुबद्धवेदनमवेदनंवासमासव्यत्यासादुपवेश्यतेशकृद्ग्रथितमामंसकृत्सकृदपिपक्वमनतिक्षीणमांसशोणितव

लोमन्दाग्निर्विहितमुखरसस्तादृशमातुर मृकृच्छ्रसाध्यंविद्यात् ।

अर्थ—अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातु जब तीनों तीषों के प्रकोप से अत्यन्त दूषित हो जाती हैं तब धातुओं के दोष के स्वभाव के अनुसार अतीसार के वर्ण में भेद होजाता है । यहां अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातुओं में हलदी का सा पीला हरा, नीला, मजीठ के सदृश, मांसके धुले हुए जल के समान, लाल, काला सफेद, सूअर की मेदाके सदृश, शूलयुक्त वा शूल रहित विष्टा थोड़ा थोड़ा वा विपरीत क्रम से निकलता है, कभी २ गांठदार कच्चा मल निकलता है, और कभी पक्का मल आने लगता है । इस में रोगी का मांस रुधिर और बल अत्यन्त क्षीण नहीं होता, अग्निमन्द पड़जाती है और मुखका स्वाद बिगड़ता चलाजाता है । इन लक्षणोंसेयुक्त रोगी कृच्छ्रसाध्य होता है ।

असाध्य के लक्षण ।

एभिर्वर्णैरातिसार्य्यमाणंसोपद्रवमातुरम् साध्योऽयमितिप्रत्याचक्षीतयथाक्काथ शोणिताभंयकृत्पिण्डोपमंमांसोदकसन्निकाशंदधिघृतमज्जतैलवसाक्षीरवेशवारा भमतिनीलमतिरक्तमतिकृष्णमुदकमिवा च्छंपुनर्मेचकाभंअतिस्निग्धंहरितनीलक षायवर्णंकर्बुरमाबिलंतन्तुमदामंचन्द्रको पहितमातिकुणपपूतिपूयगन्धमामत्स्यग न्धमक्षिकाक्रान्तंक्कथितबहुधातुद्रवमल्प पुरीषमपुरीषंवातिसार्य्यमाणंतृष्णादाह ज्वरभ्रमतमकहिक्काश्वासानुबद्धमतिवेद नमवेदनंवास्रस्तपक्वगुदंपतितगुदबलिमु क्तनालमतिक्षीणबलमांसशोणितवलंस र्वपार्श्वास्थिशूलिनमरोचकातिप्रलापसं मोहपरीतंसहसोपरतविकारमतिसारि णमचिकित्स्यंविद्यादितिसन्निपातातिसारः ॥

अर्थ—यदि विष्टाका रंग नीचे लिखेहुए वर्णोंके समान हो और उक्तरोग में उपद्रव भी हों तौ वह असाध्य और दुश्चिकित्स्य होता है; यथा--यदि विष्टा का रंग क्काथ, रुधिर, यकृत्पिण्ड मांसधौत जल के सदृश हो, दही, घी, मज्जा, तेल, चर्बी, दूध, वेशबार के समान हो; अत्यन्त नीला, अत्यन्त लाल, अत्यन्त काला वा अत्यन्त स्वच्छ जल के सदृश हो; मेचक (सुरमा वा मोर की चन्द्रिका) के समानहो, अत्यन्त चिकना, हरा, नीला, कषायवर्ण, कर्बुर (विचित्र वर्ण) आविल (अस्वच्छ) तन्तुयुक्त, आम चन्द्रिकायुक्त मुर्दे की गंध के समान, सडी हुई तथा पीवकी गंध के समान, आममत्स्यगंधयुक्त, जिसपर बहुत सी मक्खियां आचिपटें, क्वाथ की हुई द्रव धातुके सदृश, अल्पपुरीष (थोड़ा विष्टा और बहुत सा जल) अपुरीष (केवल पतला दस्त) इन सब लक्षणों से युक्त मलहो तथा तृष्णा, दाह, ज्वर, भ्रम, तमकश्वास, हिचकी, श्वास, अतिशूल, शूलरहित हो, गुदाढीली वा पकगई हो, गुदावलि नष्ट हो गई हो, काच निकलतीहो; वल मांस और

रुधिर का वल अतिक्षीण होगया हो, सब पसली और हड्डियों में शूल होता हो, अरुचि, अतिप्रलाप और मोह हो और यदि ये सम्पूर्ण उपद्रव एक साथ विलुप्त होगये हों, तौ ऐसा अतीसार रोगी असाध्य होता है। ये सन्निपातातिसार के लक्षण हैं।

साध्यातिसारकाचिकित्साक्रम ।

तमसाध्यतामसंप्राप्तंचिकित्सेद्यथाप्रधानोपक्रमेणहेतूपशयदोषविशेषपरीक्षया चेति ।

अर्थ—जो अतिसार असाध्य नहीं हुआ है उसकी चिकित्सा प्रधान दोष के उपचार, हेतु, उपशय और दोष विशेष की परीक्षा द्वारा कर्त्तव्य है।

आगन्तु अतीसारके लक्षण ।

आगन्तूद्वावतीसारौमानसौभयशोकजौ । तत्तयोर्लक्षणंवायोर्यदतीसारलक्षणम् ॥

अर्थ—आगन्तु अतिसार दो प्रकार के हो। हैं, यथा—भयातिसार और शोकातिसार। इन दोनों के लक्षण वातज अतिसार के सदृश होते हैं।

आगन्तुअतिसार में चिकित्साक्रम ।

मारुतोभयशोकाभ्यांशीघ्रंहिपरिकुप्यति। तयोःक्रियावातहराहर्षणाश्वासनानिच ॥

अर्थ—भय और शोक से वायु एक साथ कुपित होजाती है। इस में वातनाशक चिकित्सा कर्त्तव्य है, तथा हर्षोत्पादककर्म और आश्वासनभी विधेय है।

इत्युक्ताःषडतीसाराःअतःपरंसाध्यानांसाधनमनुव्याख्यास्यामः

अर्थ—इस तरह छः अतीसारों का बर्णन किया गया है, अब यहां से साध्यअतीसारों की चिकित्सा वर्णन करेंगे।

दोषाःसन्निचितायस्यविदग्धाहारमूर्च्छिताः अतीसारायकल्पन्तेभूयस्तान्संप्रवर्त्तयेत्॥ नतुसंग्रहणंदेयंपूर्वमामातिसारिणे।विबध्यमानाःप्राग्दोषाजनयन्त्यामयान्बहून्॥ शोथपाण्ड्वामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान्। दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोगदांस्तथा॥ तस्मादुपेक्षेतोत्क्लिष्टान्वर्त्तमानान्स्वयंमलान्। कृच्छ्रंवावहतान्दद्यादभयांसंप्रवर्त्तिनीम्॥ तयाप्रवाहितेदोषेप्रशाम्यत्युदरामयः। जायतेदेहलघुताजठराग्निश्च वर्द्धते॥

अर्थ—जिस मनुष्यके अपक्व आहार के कारण दोष संमूर्च्छित होकर इकट्ठे होजाते हैं इस तरह ये दोष अतीसार को उत्पन्न करते हैं। इन दोषों को फिर प्रवृत करावै। आमातिसार में प्रथमही संग्राही औषधों का दैना अयोग्यहै। क्योंकि प्रथमही से रोकेहुये दोष अनेकप्रकार के रोगों को उत्पन्न करदेते हैं,यथा-शोथ, पाण्डुरोग, प्लीहा, कोढ़, गुल्मरोग, उदररोग ज्वर, दण्डक, अलसक,आध्मान् , ग्रहणी और अर्शरोग उत्पन्न होजाते हैं। इसलिये अपने आप प्रवृत्त हुए उत्क्लिष्ट मलों की प्रथम उपेक्षाकरै। जो मल कष्ट से निकलता हो तौ हरड़ का सेवन करावै। हरड़के द्वारा दोषों के निकलने पर उदररोग शान्त हो-

जाते हैं, देह में हलकापन उत्पन्न होताहै और जठराग्नि भी बढ़ती है ।

प्रमथ्यांमध्यदोषाणांदद्यादीपनपाचनीम्। लंघनश्चाल्पदोषाणांप्रशस्तमतिसारिणाम्

अर्थ—मध्यवलवाले अतिसारों में दीपन और पाचन प्रमथ्या (औषध) देवै, इसी तरह अल्प दोषवालों में लंघन हित है ।

प्रमथ्या के प्रयोग ।

पिप्पलीनागरंधान्यंभूतीकमभयावचा । ह्रीवेरंभद्रमुस्तानिविल्वंनागरधान्यकम् ॥ पृश्निपर्णीश्वदंष्ट्राचसमांशाकण्टकारिका । तिस्रःप्रमथ्याविहिताःश्लोकार्द्धेष्वति सारिणाम् ॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, धनियां, अजवायन, हरड़ औरवच । नेत्रवाला, भद्रमोथा, वेलगिरी, सोंठ और धनियां । प्रष्णिपर्णी, गोखरू, और समानभाग कटेरी । आधे २ श्लोक में कहेहुए ये तीन प्रमथ्याप्रयोग अतिसार में हित हैं ।

अतिसारमें अन्नपानादिप्रयोग ।

वचाप्रतिविषाभ्यांवामुस्तपर्पटकेनवा । ह्रीवेरश्रृङ्गवेराभ्यांपक्वंवापाययेज्जलम् ॥ युक्तेऽन्नकालेक्षुत्क्षामंलघून्यन्नानिभोज येत् । तथासशीघ्रमाप्नोतिरुचिमग्निबलं बलम् ॥ तक्रेणावन्तिसोमेनयवाग्वातर्प णेनवासुरयामधुनाचादौयथासात्म्यमुपा चरेत् ॥ यवागूभिर्विलेपीभिःखडैर्यूषैर सौदनैः । दीपनग्राहिसंयुक्तैःक्रमश्चस्या दतःपरम् ॥

अर्थ—वच और अतीस, अथवा मोथा और पित्तपापड़ा, अथवा नेत्रवाला और अदरख इनको डालकर औटायाहुआ जल पान करावै । अतीसार में क्षुधा के लगने पर हल के अन्नका भोजन करावै, ऐसा करने से रोगी की रुचि, अग्निवल, शारीरिक वल शीघ्र बढ़जांयगे । अतिसार में यथा सात्म्य तक्र, कांजी, यवागू, तर्पण, मदिरा और मधु इन में से कभी किसीका और कभी किसी का सेवन कराता रहै । तत्पश्चात् दीपन और संग्राही औषधों से सिद्ध करके क्रम से यवागू, विलेपी, खड्, यूष, मांसरस और ओदन देता रहै ॥

सालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतींकण्टकारिका म् । बलांश्वदंष्ट्रांविल्वानिपाठांनागर धान्यकम् ॥ शुंठींपलाशंहपुषांवचाजीर कपिप्पलीम् । यवानींपिप्पलीमूलंचित्र कंहस्तिपिप्पलीम् ॥ वृक्षाम्लंदाडिमा म्लश्चसहिंगुविडसैन्धवम् । प्रयोजयेदन्न पानेविधिनासूपकल्पितम् ॥ वातश्लेष्म हरोह्येषगणोदीपनपाचनः । ग्राहिवल्यो रोचनश्चतस्मात्शस्तोऽतिसारिणाम् ।

अर्थ—शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, बड़ीकटेरी, छोटी कटेरी, खरैटीं, गोखरू, बेलगिरी, पाठा, सोंठ, धनियां, कचूर, ढाक, हाऊवेर, वच, जीरा, पीपल, अजवायन, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, वृक्षाम्ल, अनार, हींग, विड्नमक, सेंधानमक, इन सब को व्यंजन की तरह सिद्ध कर के अन्नपान में प्रयुक्त करै । यह गण वात कफनाशक दीपन,

१—समंगाकण्टकारिकेतिगंगाधरः ।

पाचन, संग्राही, वलकर्त्ता और रुचिवर्द्धक हैं, इसलिये अतिसार में हित है।

आमेपरिणतेयस्तुविबद्धमतिसार्य्यते। सशूलपिच्छमल्पाल्पंबहुशःसप्रवाहिकम्। तंमूलकानांयूषेणवदराणामथापिवा। उपोदकायाःक्षीरिण्यायवान्यावास्तुकस्य वा। सुवर्चलायाःचञ्चोर्वाशाकेनावल्गुजस्यवा। शठ्याःकर्कारुकाणांवाजीवन्त्याश्चिर्भटस्यवा॥ लोणीकायाःसपाठायाः शुष्कशाकेनवापुनः। दधिदाडिमसिद्धेन बहुस्नेहेनभोजयेत्॥

अर्थ—आम के परिपक्क होजाने पर जो दस्त रुक रुक कर शूलयुक्त, गिलगिला, थोड़ा २, वार २ और प्रवाहिका युक्त होवै तौ उस रोगी को मूली का यूष, वा वेर का यूष देवै अथवा पोई, क्षीरिणी, यँवानी, वथुआ, हुलहुल, चंचु, वल्गुजा, शटी, कर्करु, जीवन्ती, चिर्भट, लौनियां और पाठा इन में से किसी का सूखा शाक दही और अनारदाने की खटाई तथा वहुतसा घी डालकर भोजन के साथ देवै।

प्रवाहिकाकीचिकित्सा।

कल्कःस्याद्बालविल्वानांतिलकल्कश्च तत्समः। दध्नःशरोऽम्लस्नेहाढ्यःखडोहन्यात्प्रवाहिकाम्॥

अर्थ—कच्चीवेलगिरी और उस के समान तिल दोनों को पीसकर, दही की मलाई अनारकी खटाई और घृत के साथ खड्यूष वनाकर सेवन करै तौ प्रवाहिका दूर होजाती है।

यवानांमुद्गमाषाणांशालीनाञ्चतिलस्यच कोलानांबालविल्वानांधान्ययूषंप्रकल्पयेत्॥ ऐकध्यंयमकेभृष्टंदधिदाडिमसाधितम्। वर्चःक्षयेशुष्कमुखंशाल्यन्नं तेनभोजयेत्। दध्नःशरंवायमकेभृष्टंसगुडनागरम्॥ सुरांवायमकेभृष्टांव्यञ्जनार्थेप्रदापयेत्। फलाम्लंयमकेभृष्टंयूषं गृञ्जनकस्यवा॥ लोपाकरसमम्लंवा स्निग्धाम्लंकच्छपस्यवा। वर्हितित्तिरिदक्षाणांवर्त्तकानांतथारसः। स्निग्धाम्लः शालयश्चाग्र्यावर्चःक्षयरुजापहाः॥

अर्थ—मल के अत्यन्त क्षीण होजाने से जो रोगी का मुख सूखने लगे तव जौ, मूंग, उरद, शाली चावल, तिल, वेर, कच्ची वेलगिरी, दही, अनारदाना इन सब को मिलाकर घी तेल में भूनकर धान्ययूष की तरह सिद्ध कर के खाने को देवै। अथवा दही की मलाई, गुड़ और सोंठ इन को घी तेल में भूनकर अथवा सुराको घृत तेल में भूनकर व्यंजनार्थ प्रयुक्त करै। अथवा अनार वा ल्हसन के यूष को घी तेल में भूनकर अथवा लोपाकके मांसरस में खटाई डालकर वा कच्छप के मांसरस को स्निग्धाम्लकर के देवै अथवा मोर, तीतर, मुर्गा और वतक का मांसरस देवै, अथवा शाली चावलोंको स्निग्धाम्ल करके देवै तौ मलकी क्षीणता से उत्पन्न हुए रोग नष्ट होजाते हैं।

अन्तराधिरसंपूर्त्वारक्तंमेषस्यचोभयम्। पचेदाडिमसाराम्लंसधान्यस्नेहनागरम्॥ भोजनंरक्तशालीनांतेनाद्यात्प्रपि

वेद्यतत् । तथावर्चःक्षयकृतैर्व्याधिभिर्वि प्रमुच्यते ॥ गुदनिःसरणेशूलेपानमम्ल स्यसर्पिषः । प्रशस्यतेनिरामाणामथवा प्यनुबासनम् ॥

अर्थ—मेढ़ा की देह के बीच का मांस रस छानकर उसी के रुधिर में मिलाकर अनारदाना, धनियां और सोंठ डालकर पकावै इस के साथ लाल शाली चावलोंका भात खाय और ऊपर से उसे पी लेवै। इस प्रयोग से मलकी क्षीणता से उत्पन्न हुए रोग नष्ट होजाते हैं। गुदाके बाहर निकलने पर और वेदना होने पर अम्लयुक्त घृत का पानकरावै अथवा आमरहित रोगी को अनुवासन वस्ति देवै।

चांगेरी घृत।

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम्। घृतमुत्कथितंपेयंगुदभ्रंशरुजापहम् ॥

अर्थ—चांगेरी, वेर, दही, अनार, सोंठ, जवाखार इन को मिलाकर पकाया हुआ घी गुदभ्रंश और शूलको नष्ट करता है।

चव्यादि घृत।

सचव्यापिप्पलीमूलंसव्योषविडदाडिमम् । पेयमम्लंघृतंयुक्त्यासधान्याजाजिचित्रकम् ॥

अर्थ—चव्य, पीपलामूल, त्रिकुटा, बिडनमक, अनार, धनियां, जीरा, चीता इन से सिद्ध किया हुआ घृत पूर्वोक्त गुणकर्ता है।

दशमूलोपसिद्धंवासाविल्वमनुवासनम् । शताह्वाशटिविल्वैर्वावचयाचित्रकेणवा॥ स्तब्धभ्रष्टोगुदेपूर्वंस्नेहस्वेदौप्रयोजयेत्। सुखिन्नञ्चमृदुभूतंपिचुनासंप्रवेशयेत् ॥

अर्थ—दशमूल और कच्ची वेलगिरी को सिद्ध करके अनुवासन वस्ति देवै। अथवा सौंफ, कचूर, वेलगिरी, अथवा वच, और चीता इन को सिद्ध करके अनुवासन वस्ति देवै। इस से गुदस्तब्ध, गुदभ्रंश दूर होजाते हैं, परन्तु प्रथम स्नेहन और स्वेदन कर्म करै। पसीने देने पर जब गुदा मृदु होजाय तब रुई के फोए से प्रवेश करै ॥

विबद्धवातवर्चास्तुवहुशूलप्रवाहिकः । सरक्तपिच्छस्तृष्णार्त्तःक्षीरसौहित्यमर्हति ॥ यमकस्योपरिक्षीरंधारोष्णंवा पिबेन्नरः। शृतमेरण्डमूलेनबालविल्वेनवा पयः ॥ एवंक्षीरप्रयोगेणरक्तंपिच्छाचशाम्यति । शूलंप्रवाहिकाचैवविबन्धश्चोपशाम्यति ॥

अर्थ—अधोवायु और मल के बद्ध होनेपर, शूल और प्रवाहिका के अत्यन्त बढ जाने पर; रुधिर सहित पिच्छिल मल के निकलने पर और तृषा के अधिक होने पर दूध को पेटभरकर पान करावै। यमक स्नेह (घी तेल) के ऊपर धारोष्ण दुग्ध पान करावै। अथवा अंडी की जड़ वा कच्ची वेलगिरी डालकर दूध को औटाकर पान करावै। दूध के इन प्रयोगों से रक्त और पिच्छा शान्त होजाते हैं तथा शूल प्रवाहिका और विबन्ध भी नष्ट होजाते हैं।

पित्ता तिसारकी चिकित्सा।

पित्तातिसारंपुनर्निदानोपशयाकृतिभिरामान्वयमुपलभ्ययथाबलंलंघनपाचना

भ्यामुपाचरेत्तृष्यतस्तुमुस्तपर्पटकोशीरशारिवाचन्दनकिराततिक्तकोदीच्यवारिभिरुपचारोलंघितस्यचाहारकालेबलातिबलासूप्यशालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकाशतावरीश्वदंष्ट्रानिर्यूहसंयुक्तेनयथासात्म्यंयवागूमण्डादिनातर्पणादिनावाक्रमेणोपचारःमुद्गमसूरहरेणुमकुष्ठकयूषैःलावकपिञ्जलशशहरिणैणेयकालपुच्छकरसैरीषदम्लैरनम्लैर्वाक्रमशोऽग्निसन्धुक्षतेदनुबन्धत्वेत्वस्यदीपनीयपाचनीयोपशमनीयसंग्रहणीयान्योगान्प्रयोजयेदिति ।

अर्थ—पित्तातिसार में निदान, उपशय और आकृति द्वारा यदि यह जाना जाय कि रोग आमाचित है तौ बलके अनुसार लंघन पाचन देवै । यदि तृषा प्रबल हो तौ मोथा, पित्तपापडा, खस, शारि वा रक्त चन्दन, चिरायता और नेत्रवाला इन के साथ सिद्ध किया हुआ जल देवै । लंघन कराने के पीछे भोजन के समय बला, अतिबला, मुद्गपर्णी, शालिपर्णी, पृश्णिपर्णी, दोनों कटेरी, सितावर, गोखरू, इन के क्वाथ के साथ यवागूमण्ड और तर्पणादि का भोजन में देवै । मूंग, मसूर, हरेणु, मोंठ इन का यूष अथवा लवा, कपिंजल, खर्गोश हरिण, एण, कालपुच्छ, इनके मांसरस में खटाई डालकर वा विना खटाई देकर धीरे२ जठराग्निको उत्तेजित करै । इन उपायोंके करने परभी यदि कुछ शेषरहजायतोदीपन, पाचन, संशमनीय और संग्राही औषधोंका प्रयोग करै ।

भवति चात्र ।

सक्षौद्रातिविषंपिष्ट्वावत्सकस्यफलत्वचम् । पिबेत्पित्तातिसारघ्नंतण्डुलोदकसंयुतम् ॥

अर्थ—अतीस, इन्द्रजौ, कुडाकी छाल इन को जल में पीसकर तंडुलजल और शहत के साथ सेवन करै तौ पित्तातिसार नष्ट हो जाता है ।

पित्तातिसार पर छः प्रयोग ।

किराततिक्तकंमुस्तंवत्सकःसरसाञ्जनः ॥ बिल्वंदारुहरिद्राश्चत्वक्ह्रीवेरंदुरालभम् ॥ चन्दनञ्चमृणालश्च नागरंरोध्रमुत्पलम् । तिलामोचरसोरोध्रंसमङ्गाकमलोत्पलम् ॥ उत्पलंधातकीपुष्पंदाडिमत्वक्महौषधम् । कट्फलंनागरंपाठाजम्बाम्रास्थिदुरालभाः ॥ योगाःषडेतेसक्षौद्रास्तण्डुलोदकसंयुताः। पेयाःपित्तातिसारघ्नाःश्लोकार्द्धेननिदर्शिताः ॥

अर्थ—(१) चिरायता, मोथा, इन्द्रजौ, रसौत । (२) बेलगिरी, दारुहलदी, दालचीनी, नेत्रवाला, जवासा । (३) चन्दन, कमलनाल, सोंठ, लोध, नीलकमल, (४) तिल, मोचरस, लोध, लजालु, नीलकमल, लालकमल । (५) नीलकमल, धाय के फूल, अनारकी छाल और सोंठ ।(६) कायफल, सोंठ, पाठा, जामनकी गुठली, आमकी गुठली जवासा । आधे आधे श्लोक

में कहे हुए इन छः प्रयोगों को शहत और तण्डुल जल के साथ सेवन करने से पित्तातिसार दूर होजाता है ।

जीर्णौषधानांशस्यन्तेयथायोगंप्रकल्पितैः । रसैःसांग्राहिकैर्युक्ताःपुराणारक्तशालयः ॥

अर्थ—औषध के जीर्ण होने पर उसी उसी योग की औषधों से सिद्ध किये हुए संग्राही मांसरसों के साथ लाल शालीचांवलों का सेवन करै ।

पित्तातिसारोदीप्ताग्नेःक्षिप्रंसमुपशाम्यति आजक्षीरप्रयोगेनवलंवर्णश्चवर्द्धते ॥ वहुदोषस्यदीप्ताग्नेःसप्राणस्यनतिष्ठति । पैत्तिकोयद्यतीसारःपयसातंविरेचयेत् ॥ पलाशफलनिर्यूहंपयसापाययेततम् । ततोऽनुपाययेत्कोष्णंक्षीरमेवयथाबलम् ॥ प्रवाहितेतेनमलेप्रशाम्यत्युदरामयः । पलाशवत्प्रयोज्यावात्रायमाणाविशोधिनी

अर्थ—दीप्ताग्निवाले पुरुषका पित्तातिसार शीघ्रही शान्त होजाता है। इससमय बकरी का दूध सेवन कराने से बल और बर्ण बढ़जाते हैं । बहुत दोषों से युक्त दीप्ताग्निवाले और वलवान् पित्तातिसारी को दूधके साथ विरेचन दैने से फिर पित्तातिसार नहीं रहता है । इस रोगीको दूध के साथ ढाक के फलों का क्काथ पान करावै । फिर यथाशक्ति कुछ२ गरम दूधका अनुपान करावै । इस रीति से मल के निकलजाने पर उदररोग शान्त होजाते हैं । अथवा मलके शोधन के निमित्त पलाशफल के सदृश त्रायमाणा का प्रयोग करै ।

संसर्ग्यांक्रियमाणायांशूलंयद्यनुवर्त्तते । स्रुतदोषस्यतंशीघ्रंयथावदनुवासयेत् ॥ शतपुष्पावरीभ्याञ्चपयसामधुकेनवा । तैलपादंघृतंसिद्धंसबिल्वमनुवासनम् । कृतानुवासनस्यापिकृतसंसर्जनस्यच ॥ वर्त्तेतयद्यतीसारःपिच्छावस्तिरतःपरम् ।

अर्थ—विरेचन के पीछेवाली सम्पूर्ण क्रियाओं के करने परभी यदि उदरशूल रहजावै तौ दोषों के निकलने के पश्चात् अनुवासन कर्म करै ॥ सोंफ, सितावर, दूध, मुलहटी, घीसे चौथाई तेल, बेलगिरी इन सब को सिद्ध करके इन के द्वारा अनुवासनवस्ति देवै । अनुवासनवस्ति दैनेपरभी तथा तत्पश्चात् पेयादि क्रम के अवलंबन करने परभी जो अतीसार दूर न हो तौ नीचेलिखी हुई रीति से पिच्छावस्ति देवै ॥

पिच्छावस्ति विधान ।

परिवेष्ट्यकुशैरार्द्रैरार्द्रवृन्तानिशाल्मलेः ॥ कृष्णमृत्तिकयालिप्यस्वेदयेद्गोमयाग्निना । सुशुष्कांमृत्तिकांज्ञात्वातानिवृंत्तानिशाल्मलेः ॥ श्रितेपयसिमृद्गीयादापोथ्योलूखलेततः । पिण्डंमुष्टिसमंप्रस्थेतत्प्लुतंतैलसर्पिषा ॥ योजितंमात्रयायुक्तंकल्केनमधुकस्यच । वस्तिमभ्यक्तगात्रायदद्यात्प्रत्यागतेततः ॥ स्नात्वाभुञ्जीतपयसाजाङ्गलानांरसेनवा । पित्तातिसारज्वरशोथगुल्मा । जीर्णातिसारग्रहणीप्रदोषान् ॥

जयत्ययंशीघ्रमतिप्रवृद्धान् । विरेचनास्थापनयोश्चवस्तिः ।

अर्थ—सेमल के हरे डंठलोंको हरी कुशा से लपेटकर ऊपरसे कालीमिट्टी लपेट कर मन्दी २ आग में पकावै, जब मृत्तिका अच्छी तरह सूखजाय तब सेमर के डंठलोंको उलूखल में कूटकर चार तोले लेकर एक प्रस्थ दूध में औटावै, फिर मात्रा के अनुसार तेल, सरसों और मुलहटी में सानकर वस्ति देवै, परन्तु प्रथम रोगी के देहपर तैल की मालिश करलेवै। वस्ति के प्रत्यागमन होनेपर स्नान करके दूध अथवा जांगल पशुओं के मांसरस के साथ भोजन करावै। यह वस्ति पित्तातिसार, ज्वर, शोथ, गुल्म, अजीर्ण, अतिसार, ग्रहणीदोष, तथा विरेचनजन्म और आस्थापनजन्मरोग शीघ्रही शान्त होजाते हैं।

रक्तातिसारकावर्णन ।

पित्तातिसारीयस्त्वेतांक्रियांमुक्त्वानिषेवते ॥ पित्तलान्यन्नपानानितस्यपित्तंमहाबलम् । कुर्य्याद्रक्तातिसारन्तुरक्तमाशुप्रदूषयेत् ॥ तृष्णांशूलंविदाहञ्चगुदपाकञ्च दारुणम् । छागंतत्रपयःशस्तंशीतंसमधुशर्करम् ॥ पानार्थेव्यञ्जनार्थेचगुदप्रक्षालनं तथा । भोजनंरक्तशालीनांपयसातेनभोजयेत् ॥

अर्थ—पित्तातिसारीमनुष्य इनऊपरकहीहुई क्रियाओं को छोड़कर पित्तकर्त्ता अन्नपान का सेवन करता है उसका पित्त अत्यन्त कुपित होजाता है और रक्तको अत्यंत दूषित करके रक्तातिसार को उत्पन्न करता है। इस रोग में तृष्णा, शूल, विदाह और दारुण गुदपाक ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं इस में शहत और चीनी मिलाहुआ ठंडा दूध पान कराना अत्यन्त हित है। इसी दूध को पिलाने में, व्यञ्जन में तथा गुदा प्रक्षालन में प्रयुक्त करे। उसी दूधसे रक्त शाली चांवलों का भोजन करावै।

रक्तातिसारपर अन्यप्रयोग ।

रसैःपारावतादीनांघृतभ्रष्टैःसशर्करैः । शशपक्षिमृगाणाञ्चशीतानांवनचारिणम् ॥ रसैरनम्लैःसघृतैर्भोजयेत्तंसशर्करैः रुधिरंमार्गमाजंवाघृतभृष्टंप्रशस्यते ॥ काश्मर्य्याःफलयूषोवाकिञ्चिदम्लःसशर्करः नीलोत्पलंमोचरसोसमङ्गांपद्मकेसरम् ॥ अजाक्षीरयुतंदद्याज्जीर्णेचपयसौदनम् । दुर्बलंपाययित्वावातस्यैवोपरिभोजयेत् ॥ प्रागुक्तंनवनीतंवादद्यात्समधुशर्करम् । प्राश्यक्षीरोत्थितंसर्पिःकपिञ्जलरसाशनः । त्र्यहादारोग्यमाप्नोतिपयसाक्षीरभुक्तथा पीत्वाशतावरीकल्कंपयसाक्षीरभुक्जयेत् रक्तातिसारंपीत्वावातथासिद्धंघृतंनरः ॥ घृतंयवागूमण्डेनकुटजस्यफलैःश्रृतम् ॥ पेयंतस्यानुपातव्यापेयारक्तोपशान्तये ।

अर्थ—इस रक्तातिसार में कबूतरआदि के मांसरस को घी में छौंककर चीनी मिलाकर सेवन करै। खर्गोश तथा अन्य बनचारी शीतवीर्यवाले पशुपाक्षियोंका मांस, रस बिना खटाईका घी और चीनी मिलाकर सेवन करै। अथवा मृगका रुधिर वा

बकरी का रुधिर घी में छोंककर सेवन करै । अथवा खंभारी के फलों में कुछ खटाई और चीनी डालकर सेवन करै ।

अथवा नीलकमल, मोचरस, लजालु, पद्मकेसर इनको बकरी के दूध के साथ देवै औषध के पचने पर दूध और भात का भोजन करावै । जो रोगी दुर्वल हो तौ औषध पान करातेही भोजन करावै।अथवा बकरी के दूध का माखन घी शहत और चीनी मिलाकर देवै ।

दूध से निकाले हुए मक्खन को खाकर सफेद तीतर का मांसरस सेवन करै अथवा जल मिलाहुआ दूध सेवन करै तौ तीन ही दिवस में रक्तातिसार दूर होजाताहै ।

शतावरी के कल्क को पीकर जल मिला हुआ दूध पीवै अथवा सतावरी के कल्क में सिद्ध कियाहुआ घृत पान करै तौ रक्तातिसार दूर होजाता है ।

यवागूमंड और इन्द्रजौ के साथ सिद्ध कियाहुआ घी पीकर पेया पीने से रक्तातिसार शान्त होता है ॥

अन्यप्रयोग ।

त्वक्चदारुहरिद्रायाःकुटजस्यफलानिच। पिप्पलीशृङ्गवेरञ्चद्राक्षाकटुकरोहिणी । षड्भिरेतैर्घृतंसिद्धंपेयामण्डावचारितम् अतीसारंजयेत्शीघ्रंत्रिदोषमपिदारुणम्। कृष्णमृन्मधुकंशंखंरुधिरंतण्डुलोदकम् ॥ पीतमेकत्रसक्षौद्रंरक्तसंग्रहणंपरं । पीतः प्रियंगुकाकल्कःसक्षौद्रःतण्डुलाम्भसा ॥ रक्तस्रावंजयेच्छीघ्रंधन्वमांसरसाशिनः। कल्कास्तिलानांकृष्णानांशर्करापञ्चभागिकः । आजेनपयसापीतःसद्योरक्तंनियच्छति ॥ पलंवत्सकबीजस्यश्रपयित्वा रसंपिवेत् । योरसाशीजयेच्छीघ्रंसपैत्तं जठरामयम् ॥ पीत्वासशर्कराक्षौद्रंचन्दनंतण्डुलाम्भसा । दाहतृष्णांप्रमेहेभ्यो रक्तस्रावाद्विमुच्यते ॥

अर्थ—दारुहल्दी की छाल, इन्द्रजौ, पीपल, अदरख, दाख और कुटकी इन छः औषधियों से सिद्ध किया हुआ घी ऊपर से पेया और मण्डका अनुपान करै तौ त्रिदोषजनित दारुण अतीसार भी दूर होजाता है ।

कालीमिट्टी, मुलहटी, शंख की भस्म, कुंकुम और तंडुलजल इनसबको शहत में मिलाकर सेवन करै तौ रक्त वन्दहोजाता है, प्रियंगुका कल्क, शहत, और तण्डुल जल इनको सेवन करनेसे रक्त वन्द होजाताहै है, इस के साथही जांगल पशुओं के मांस रस का भी सेवन करता रहै ॥

एकभाग चीनी और पांचभाग काले तिल इन सबको बकरी के दूध के साथ पानकरै तौ शीघ्रही रक्तातिसार दूर होजाता है।

इन्द्रजौ एकपल के क्वाथ को पीकर मांसरस का सेवन करै तौ पित्तजनित उदररोग शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥

रक्तचन्दन, तण्डुलजल, शहत, शर्करा, इनको मिलाकर पीने से दाह, तृष्णा, प्रमेह और रक्तातिसार दूर होजाते हैं ।

गुदपाककीचिकित्सा ।

गुदोबहुभिरुत्थानैर्यस्यपित्तेनपच्यते । सेचयेत्तंसुशीतेनपटोलमधुकाम्बुना ॥ पंचवल्कमधूकानांरसैरिक्षुरसैर्घृतैः । छागैर्गव्यैःपयोभिर्वाशर्कराक्षौद्रसंयुतैः ॥ प्रक्षालनानांकल्कैर्वासमसर्पिष्कैःप्रलेपयेत् । एषांवासुकृतैश्चूर्णैस्तंगुदंप्रतिसारयेत् ॥ धातकीरोध्रचूर्णैर्वासमांशैःप्रतिसारयेत्। तथातत्रस्रवत्यस्रंगुदस्तैःप्रतिसारितः ॥ यथोक्तसेचनैःशीतैःशोणितेनिःस्रवत्यपि। गुदवंक्षणकट्यूरुसेचयेद्घृतभावितम् ॥ चन्दनाद्येनतैलेनशतधौतेनसर्पिषा। कापाससहयोगेनसेचयेद्गुदवंक्षणौ ॥

अर्थ—जिस पित्तातिसारी मनुष्य की गुदा बहुत दस्तों के होनें सें पकजाती है तप गुदा को परवल और मुलहटी के शीतळ क्वाथ से प्रक्षालन करै । अथवा पंचवल्क और महुआ के क्वाथ से, अथवा ईख के रस और घी से अथवा शहत और चीनी मिलेहुए गौ बकरी के दूध से गुदाको प्रक्षालनकरै, अथवा इन प्रक्षालनकर्त्ताद्रव्यों के कल्कको घी में सानकर गुदापर लेप करै । अथवा इन द्रव्योंकाचूर्ण करके गुदापरप्रतिसारण करै अथवा धायके फूल और लोध समान भाग लेकर इन से प्रतिसारण करै । इन द्रव्यों से प्रतिसारित किये जाने पर गुदासे रक्तस्राव होता है । रक्तके निकलने पर गुदा, वंक्षण, कमर और ऊरू इन पर घृत लगाकर पूर्वोक्त शीतल क्वाथों से सेचन करै । अथवा चन्दनाद्य तैल वा सौ-वार का धुला हुआ घी को कपास के जल में डालकर गुदा और वंक्षणको सेचन करै।

अल्पाल्पंबहुशोरक्तंसशूलमुपवेश्यते । यदावायुर्विबद्धश्चकृच्छ्रञ्चरतिवानवा॥ पिच्छावस्तिंतदातस्ययथोक्तमुपकल्पयेत् । प्रपुण्डरीकासिद्धेनसर्पिषाचानुवासयेत् ॥ प्रायशोदुर्बलगुदाःचिरकालातिसारिणः । तस्मादभीक्ष्णशस्तेषांगुदस्नेहंप्रयोजयेत् ॥ पवनोऽतिप्रवृत्तोहिस्वेस्थानेलभतेऽधिकम्। बलंतस्यसपित्तस्य जयार्थेवस्तिरुत्तमः ॥

अर्थ—जब वार वार थोड़ा थोड़ा रक्त शूल समेत निकलै और वायु रुककर कोष्ठ में कठिनता से विचरै अथवा न भी विचरै उस समय पूर्वोक्त रीति से पिच्छावस्तिका प्रयोग करै तथा पुण्डरिया डालकर सिद्ध-किये हुए घृत से अनुवासन वस्ति देवै । वहुत दिवस तक अतिसार रहने से गुदा प्रायःदुर्वल पड़ जाती है इस लिये उन मनुष्यों की गुदा पर स्नेह लगाना चाहिये। अतिसार की अत्यन्त प्रवृत्ति में वायु अपने स्थान में अत्यन्त कुपित होकर पित्त से मिलजाती है अतएव वातपित्त के मिले-हुए वल की शान्ति के निमित्त वस्तिक्रिया उत्तम होती है ।

रक्तमिश्रित मल में चिकित्सा ।

रक्तंविट्सहितंपूर्वंपश्चाद्वायोऽतिसार्य्यते। शतावरीघृतंतस्यलेहार्थमुपकल्पयेत् ॥ शर्कराद्धांशिकंलीढ्वानवनीतंनवोद्धृतम्॥ क्षौद्रपादंजयेत्शीघ्रंतंविकारंहिताशिनः।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गानापोथ्यवासयेत् ॥ अहोरात्रंजलेतस्मेच्छृतंतेनाम्भसापचेत् । तदर्द्धशर्करायुक्तंलिह्यात्सक्षौद्रपादिकम् ॥ अधोवायदिवाप्यूर्द्धंयस्यरक्तंप्रवर्त्तते । यस्त्वेवंदुर्वलोमोहात्पित्तलान्येवसेवते ॥ शीघ्रंविरद्यतेप्राप्यवलीपाकंसुदारुणम् ॥

अर्थ—जिसके प्रथमही दस्तके साथ रुधिर निकलै और फिर अधोवायु की प्रवृत्ति के साथ पतला दस्त हो उसकोसितावर का सिद्ध किया हुआ घृत चटावै अथवा ताजीमाखन घी, उस से आधी चीनी और चौथाई शहत मिलाकर सेवन करने से वह रोग शान्त होजाता है परन्तु हित आहार का सेवन करै।

वड़, गूलर और पीपल इनकी कोंपलों को लेकर कूटकर गरमजल में एक दिन रात भिजो रक्खै, उस जल से घृत पाक करै इस में आधी चीनी और चौथाई शहत मिलाकर चाटै।

जिस मनुष्य के दस्त अथवा वमन द्वारा रुधिर निकलै और वह दुर्वल यदि मोह से पित्तकर्त्ता द्रव्यों का सेवन करै तौ उस के दारुण वलीपाक होजाता है और वह शीघ्रही मरजाता है।

कफातिसारकी चिकित्सा।

श्लेष्मातिसारेप्रथमंहितंलंघनपाचनम् ॥ योज्यश्चामातिसारघ्नोयथोक्तोदीपनोगणः । लंघितस्यानुपूर्व्याश्चकृतायाम्ननिवर्त्तते ॥ कफजोयद्यतीसारःकफघ्नैस्तमुपाचरेत् ।

अर्थ—कफातिसार में प्रथमही लंघन और पाचन हित हैं तथा इस में पहिले कहा हुआ आमातिसार नाशक दीपनीय गणका प्रयोग करना चाहिये। लंघन कराने और तत्पश्चात् पेयादि आनुपूर्वी क्रम के करने पर भी यदि कफातिसार शान्त न हो तौ कफनाशक औषधियों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये।

कफातिसार पर चार योग।

विल्वकर्कटिकामुस्तमभयाविश्वभेषजम्॥ वचाविड़ङ्गंभूतीकंधान्यकंदेवदारुच। कुष्ठंसातिविषापाठाचव्यंकटुकरोहिणी॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पली योगान्श्लोकार्द्धविहितांश्चतुरस्तान्प्रयोजयेत् ॥ शृतान्श्लेष्मातिसारेषुकायाग्निवलवर्द्धनान्।

अर्थ—वेलगिरी, काकडासींगी, मोथा, हरड़, सोंठ, (२) वच, बायविडंग, अजवायन, धनियां और देवदारु, (३) कूठ- अतीस, पाठा, चव्य, कुटकी, (४) पीपल- पीपलामूल, चीता, गजपीपल। इन आधे आधे श्लोक में कहे हुए चारों प्रयोगों का क्वाथ पान करने से कफातिसार दूर होजाता है तथा कायाग्नि और वल बढता है।

अजाजींससितांपाठांनागरंमरिचानिच॥ धातकी द्विगुणंदद्यान्मातुलुंगरसाप्लुतम् रसाञ्जनंसातिविषंकुटजस्यफलानिच॥ धातकीद्विगुणं दद्यात्पातुं सक्षौद्रनागरम्

अर्थ—जीरा, मिश्री, पाठ, सोंठ, कालीमिरच इन सब से दूने धाय के फूल का चूर्ण बनाकर विजौरे के रस में घोट-देवै अथवा रसौत, अतीस, इन्द्रजौ, इनसे दूने धाय के फूल तथा शहत और सोंठ मिलाकर सेवन करै।

धातकीनागरंविल्वलोध्रंपद्मस्यकेशरम्। जम्बूत्वक्नागरंधान्यंपाठामोचरसंवला॥ समङ्गाधातकीविल्वमध्यंजम्ब्वाम्रयोस्त्वचा। कपित्थानिविडङ्गानिनागरंमरिचानिच॥

चाङ्गेरीकोलतक्राम्लांश्चतुरस्तान्कफातुरे। श्लोकार्द्धविहितानदद्यात्सस्नेहलवणान्खड़ान्।

अर्थ—(१) धाय के फूल, सोंठ, बेलगिरी, लोध, नागकेसर, (२) जामन की छाल, सोंठ, धनियां, पाठा, मोचरस, खरैटी, (३) लज्जालु, धायकेफूल, वेलगिरी, जामनकीछाल, आमकीछाल, (४) कैथ, वायविडंग; सोंठ कालीमिरच। इन आधे २ श्लोक में कहेहुए चार प्रयोगों को चांगेरी, वेर और मठा की खटाई देकर तथा स्नेह लवण डालकर खड्डूष बनाकर कफरोग में सेवन करै।

कपित्थमध्यंलीढ्वातुसव्योषक्षौद्रशर्करम्॥ कट्फलंमधुयुक्तंवामुच्यतेजठरामयात्।

अर्थ—कैथकीगिरी, त्रिकुटा, शहत और शर्करा को चाटने से अथवा कायफल में शहत मिलाकर चाटने से उदररोग दूर होजाते हैं॥

कणांमधुयुतांपीत्वातक्रंपीत्वासचित्रकं। जगध्वावाबालविल्वानिमुच्यतेजठरामयात्॥

अर्थ—शहत और पीपल चाटने से अथवा मठा में चीता डालकर पीने से अथवा कच्ची बेलगिरी खाने से उदररोग दूर होजाते हैं।

बालविल्वंगुडंतैलंपिप्पलींविश्वभेषजम्। लिह्याद्वातेप्रतिहतेसशूलःसप्रवाहिकः॥ भोज्यंमूलकषायेणवातघ्नैश्चोपसेवनैः। वातातिसारविहितैर्यूषैर्मांसरसैःखडैः॥ पूर्वोक्तमम्लसर्पिर्वाषट्पलंवायथाबलम्। पुराणंवाघृतंदद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम्॥ वातश्लेष्मविबन्धेवाकफेवातेस्रवत्यपि। शूलेप्रवाहिकायांवापिच्छावस्तिंप्रकल्पयेत्॥

अर्थ—कच्ची वेलगिरी, गुड़, तेल, पीपल, सोंठ इनका सेवन करने से वातविबन्ध, शूल और प्रवाहिका जाते रहते हैं। मूली का क्वाथ, तथा वातनाशक द्रव्य तथा वातातिसार में कहे हुए यूष, मांस रस और खडयूष, का सेवन करै। पूर्वोक्त अम्लसर्पि, षट्पल घृत, वा पुराना घृत यवागूमण्ड में मिलाकर देवै।

वातकफ जनित विबन्ध, कफस्राव, वातस्राव, शूल वा प्रवाहिका में पिच्छावस्ति का प्रयोग करै।

अनुवासनवस्ति विधान।

पिप्पलीविल्वकुष्ठानांशताह्वावचयोरपि। कल्कैःसलवणैर्युक्तंपूर्वोक्तंसन्निधापयेत्॥

प्रत्यागतेसुखस्नातंकृताहारंदिनात्यये । विल्वतैलेनमतिमानसुखोष्णेनानुवासये त् ॥ वचान्तैरथवाकल्कैस्तैलंपक्त्वानु वासयेत् । बहुशःकफवातार्त्तंतथासलभ तेसुखम् ॥

अर्थ—पीपल, वेलगिरी, कूठ, सोंफ, वच इन के कल्क में नमक डालकर पूर्वोक्त पिच्छावस्ति देवै । वस्तिके प्रत्यागत होने- पर स्नान और भोजन कराके दिनके अन्त में सुखोष्ण विल्वतैल से अनुवासन करावै। अथवा पीपल से लेकर वच पर्य्यन्त द्रव्यों के साथ तैल सिद्ध करके कफवातार्त्त रोगी को वार वार अनुवासन देवै। ऐसा करने से रोग दूर होजाता है।

स्वेस्थानेमारुतोऽवश्यंवर्द्धतेकफसंक्षये । सवृद्धःसहसाहन्यात्तस्मात्तंत्वरयाजयेत्॥ वातस्यानुजयेत्पित्तंपित्तस्यानुजयेत्कफ म् ॥ त्रयाणांवाजयेत्पूर्वंयोभवेद्बल वत्तमः ॥

अर्थ—कफ के क्षीण होने पर पक्वाशय में वायु अत्यन्त कुपित होजाती है और यह बढकर शीघ्रही प्राणों को हरण कर लेती है इससे इसका शीघ्रही उपाय करै। वातसे पीछे पित्तको और पित्तसे पीछे कफ को शान्त करै अथवा तीनों में जो बहुत बलवान् हो उसको प्रथम दूर करने का उपाय करै।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानिलक्षणंसाध्यतातथा क्रियाचावस्थिकीसिद्धानिर्दिष्टाह्यतिसा रिणाम् ॥

अर्थ—अतिसारकी पूर्वोत्पत्ति, हेतु, लक्षण साध्यता तथा अनुभव की हुई आवास्थि की चिकित्सा इस अध्याय में वर्णन की गई हैं ॥

इति श्री भाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विर- चितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां चिकित्सित स्थानेऽतीसार चिकित्सित नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः॥

अथातोवीसर्पचिकित्सितंव्याख्यास्यामः इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय वोले- कि अवहम विसर्परोग की चिकित्साका वर्णन करेंगे ।

विसर्पके विषय में अग्निवेश काप्रश्न।

कैलाशेकिन्नराकीर्णेवहुप्रस्रवणौषधे । पादपैर्विविधैःस्निग्धैर्नित्यंकुसुमसम्पदैः॥ वमाद्भिर्मधुरान्गन्धान्सर्वतःस्वभ्यलंकृ ते । विहरन्तजितात्मानमात्रेयमृषिवन्दि तम् ॥ महर्षिभिःपरिवृतंविभुंभूतहितेरत म्।अग्निवेशोगुरुंकालेविनयादिदमुक्तवान् भगवन्! दारुणंरोगमाशीविषविषोप मम् विसर्पन्तशरीरेषुदेहिनामुपलक्षये ॥ सहसैवनरास्तेनपरीताःशीघ्रकारिणः । विनश्यन्त्यनुपक्रान्तास्तत्रनःसंशयोम- हान् ॥ सनाम्नाकेनविज्ञेयःसंज्ञितःकेन

हेतुना । कतिभेदःकियद्धातुःकिंनिदानः किमाश्रयः ॥ सुखसाध्यःकृच्छ्रसाध्यो ज्ञेयोयश्चानुपक्रमः । कथंकैर्लक्षणैःकिञ्चभगवंस्तस्यभेषजम् ॥

अर्थ—एक समय कैलाश पर्वतपर जहां वहुत से किन्नर निवास करते हैं जहां अनेक झरने, अनेक प्रकार की औषधी और अनेक प्रकार के वृक्ष सदैव फलफूल से लदे रहते हैं इन पुष्पों में से अनेक प्रकार की सुगन्ध चली आतीथीं ऋषिगणपूज्य जितेंद्रिय आत्रेय ऋषि विचार रहे थे, वहुत से ऋषि, मुनि, उनके साथ थे और प्राणियों के हित में दत्तचित्त थे। इस समय को उचित समझकर अग्निवेश ने अत्यन्त मृदुभाव से पूंछा कि हे भगवन्! एक भयंकर रोगप्राणियों के शरीर में फैलताहुआ देखने में आता है यह रोग सर्प के विष से भी तीक्ष्ण है। इस रोग से मनुष्य ग्रस्त होकर शीघ्रही नष्ट होजाते हैं उनकी चिकित्सा का समय भी हाथ नहीं लगता। इसका हमको वडा संशय है। इस रोग का नाम क्या है? इस नाम पड़ने का कारण क्या है? इसके कितने भेद हैं? कौनसी धातु है? हेतु क्या है? आश्रय क्या है? यह सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य वा असाध्य है? इसके लक्षण क्या हैं? और औषधी क्या है?

तदग्निवेशस्यवचःश्रुत्वात्रेयःसुदुर्वचम् । यथावदखिलंसर्वंप्रोवाचमुनिसत्तमः ॥

अर्थ—अग्निवेश के इस प्रश्नको सुनकर मुनिसत्तम आत्रेय इस सम्पूर्ण महा कठिन विषय का पूर्ण रीति से वर्णन करने लगे।

विसर्प की निरुक्ति।

विविधंसर्पतियतोविसर्पस्तेनसस्मृतः । परिसर्पोऽथवानाम्नासर्वतःपरिसर्पणात् ॥

अर्थ—यह रोग शरीर में अनेक प्रकार से फैलता हैं अतएव विसर्प कहलाता है। अथवा चारोंओर परिसर्पण करसे परिसर्प भी कहलाता है॥

विसर्पके भेद।

सचसप्तविधोदोषैर्विज्ञेयःसप्तधातुकः । पृथक्त्रयस्त्रिभिश्चैकोविसर्पाद्वन्द्वजास्त्रयः॥ वातिकःपैत्तिकश्चैवकफजःसान्निपातिकः। चत्वारएतेवीसर्पावीक्ष्यन्तेद्वन्द्वजास्त्रयः॥ आग्नेयोवातपित्ताभ्यांग्रन्थाख्यःकफवातजः । यस्तुकर्दमकोघोरःसपित्तकफसम्भवः॥

अर्थ—दोषों के अनुसार विसर्प सात प्रकार का होता है, यह सात धातुओं का आश्रयभूत है। पृथक् पृथक् तीनों दोषोंसे तीन प्रकार का, मिलेहुए तीनों दोषों से एक प्रकार,दो दो दोषों के मिलने से तीन प्रकार का। इसतरह सब मिलकर सात प्रकार का होता है। यथा—वातिक विसर्प पैत्तिक विसर्प, कफजविसर्प और सान्निपातिक विसर्प तथा कफवातिक, कफपित्तज और कफवातज। वातापित्त जनित विसर्प आग्नेय होता है, कफबातज ग्रन्थाख्य तथा

पित्तकफजनितको कर्दमक कहता है यह बड़ा भयंकर होता है।

विसर्पके अधिष्ठान।

रक्तंलसीकात्वङ्मांसंदूष्यंदोषास्त्रयोमलाः। वीसर्पाणांसमुत्पत्तौविज्ञेयाःसप्तधातवः॥

अर्थ—रक्त, लसीका, त्वचा और मांस ये चारों दूष्य और कफ, वात, पित्त ये तीनों दोष। इसतरह ये सातों धातु विसर्प की उत्पत्ति के कारण हैं।

विसर्पकाहेतु।

लवणाम्लकटूष्णानांरसानामतिसेवनम्। दध्यम्लमस्तुशुक्तानांसुरासौवीरकस्यच॥ व्यापन्नबहुमद्योष्णरागषाडवसेवनात्। शाकानांहरितानाञ्चसेवनाच्चविदाहिनाम्। कूर्चीकानांकिलाटानांसेवनान्मन्दकस्य च। दध्नःशाण्डाकिपूर्वाणांआसुतानाञ्चसेवनात्॥ तिलमाषकुलत्थानांतैलानांपैष्टिकस्यच। ग्राम्यानपौदकानाञ्चमांसानाम्लशुनस्यच। प्रक्लिन्नानामसात्म्यानांविरुद्धानञ्चसेवनात्॥ अत्यादानादिवास्वप्नादजीर्णाध्यशनात्क्षतात्॥ वध बन्धप्रपतनाद्धर्मकर्मातिसेवनात्। विष वाताग्निदोषाच्चवीसर्पाणांसमुद्भवः॥

अर्थ—लवण, अम्ल, कटु, उष्ण रसों का अत्यन्त सेवन, दही, खटाई, तोड़, शुक्त सुरा और सौवीरका अत्यन्त सेवन, विगडे-हुए अत्यन्तमद्य और रागषाडवका सेवन हरे और विदाही शाकों का सेवन; कूर्चक किलाट और मन्दकका सेवन; दही और शाण्डा की आदि आसवों का सेवन; तिल उरद, कुलथी, तैल और पिष्टक का सेवन ग्राम्य, आनूप और औदक पशुपक्षियों के मांसका अत्यन्त सेवन; ल्हसन का सेवन प्रक्लिन्न असात्म्य और विरुद्ध अन्नका सेवन; अत्यन्त आदान, दिवानिद्रा, अजीर्ण में भोजन तथा अध्यशन; घाव, वध, वन्ध प्रपतन, धूप में फिरना, श्रमोत्पादक कर्म करना; विष, वात तथा अग्निदोष। इन कारणों से विसर्प की उत्पति होती है।

साध्यासाध्य वर्णन।

एतैर्निदानैर्व्यामिश्रैःकुपितामारुतादयः दूष्यंसंदूष्यरक्तादिविसर्पन्त्यहिताशिनाम्॥ बहिःश्रितःश्रितश्चान्तस्तथाचोभयसंश्रितः। वीसर्पोबलमेतेषांज्ञेयंगुरुयथोत्तरंबहिर्मार्गाश्रितंसाध्यमसाध्यमुभयाश्रितम्। वीसर्पंदारुणंविद्यात्स्वकृच्छ्रंत्वन्तराश्रयम्॥ अन्तःप्रकुपितादोषावीसर्पन्त्यन्तराश्रये। बहिर्बहिःप्रकुपिताःसर्वत्रोभयसंश्रिताः॥

अर्थ—इन मिले हुए हेतुओं से अपथ्य भोजी मनुष्य के वातादिक दोष कुपित होकर रक्तादि दूष्य धातुओंको दूषित करके शरीरमें फैलने लगतेहैं। विसर्प रोग शरीरके बाहर, भीतर अथवा भीतर और बाहर दोनों जगह होता है, यह पूर्वोक्त अधिष्ठानों के अनुसार बल में उत्तरोत्तर गुरु हैं, यथा वहिराश्रित से अन्तराश्रित और अन्तराश्रित से उभयाश्रित बलवत्तर हैं। वहिर्मार्गाश्रित विसर्प साध्य होता है उभयाश्रित

असाध्य होता है और अन्तराश्रित कृच्छ्र-साध्य होता है।

अन्तराश्रित दोष भीतरकी ओर कुपित होते हैं। वहिराश्रित वाहरकी ओर और उभयाश्रित भीतर वाहर सब जगह फैलते हैं

अन्तर्जादि विसर्पों के लक्षण।

मर्मोपघातात्संमोहादयनानांविघट्टनात्। तृष्णातियोगाद्वेगानांविषमञ्चप्रवर्त्तनात्॥ विद्यादिसर्पमन्तर्जमाशुचाग्निबलक्षयात्। अतोविपर्ययाद्बाह्यमन्यैर्विद्यात्स्वलक्षणैः॥ यस्यलिङ्गानिसर्वाणिबलवद्यस्य कारणम्। यस्यचोपद्रवाःकष्टामर्म्मगोयश्चहन्तिसः॥

अर्थ—मर्मदेश का अभिघात, सम्मोह मूत्रादिमार्ग का विघट्टन, तृष्णाका अतियोग मलमूत्रादि वेगों का विषमरीति से प्रवृत्त होना, अग्निवलका क्षीण होना ये सब अन्तर्जात विसर्प के लक्षण हैं। इन लक्षणों से जो विपरीत लक्षण हैं वे वहिर्जात विसर्पके हैं जो सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त हो, जिस के कारण वलवान् हों और जो अन्य उपद्रवों से युक्त हो वह मर्मगामी विसर्प प्राणन्तक होता है।

वातज विसर्प के लक्षण।

रूक्षोष्णैःकेवलोवायुःपूरणैर्वासमाचितः। प्रदुष्टोदूषयन्दूष्यंविसर्पतियथाबलम्॥

अर्थ—रुक्ष और उष्ण भोजन से अथवा बहुत भोजन करने से इकट्ठी हुई तथा दूषित हुई वायु दूष्यों को दूषित करके वल के अनुसार शरीर में फैलती है।

वातविसर्प के रूपादि लक्षण।

भ्रमदवथुपिपासानिस्तोदशूलाङ्गमर्दोद्वेष्टनाकम्पनज्वरतमकास्थिसन्धिभेदविश्लेषणवेपनारोचकाविपाकाश्चक्षुषोराकुलत्वमस्रागमनंपिपीलिकासञ्चारइवचाङ्गेषुयस्मिंश्चावकाशेविसर्पोविसर्पतिसोऽवकाशःश्यावारुणाव्भासःश्वयथुमान्निस्तोदभेदशूलायाससङ्कोचहर्षस्फुरणैरतिमात्रं प्रपीड्यते। अनुपक्रान्तश्चोपचीयतेशीघ्रंभेदैःस्फोटकस्तनुभिररुणाभैः॥ श्यावैर्वातनुविशदारुणाल्पास्रावैर्विबद्धवातमूत्रवर्चस्तानिनिदानोक्तानिचास्य नोपशेरतेविपरीतानिचोपशेरतइतिवात वीसर्पः।

अर्थ—भ्रम, दाह, तृषा, तोद (सुईचुभने की सी वेदना) शूल, अंगमर्दन, उद्वेष्टन (वांयटे आना), कम्पन, ज्वर, तमकश्वास, अस्थिभेद, सन्धिभेद, अस्थि-विश्लेषण, सन्धिविश्लेषण, वेपन, अरुचि अविपाक, नेत्रों में विकलता, रक्तस्राव, देह में चींटियों का सा चलना, जिस स्थान में विसर्प फैलता हो उस स्थानका वर्ण काला वा लाल होजाना, तथा वही स्थान सूजन तोद, भेद, शूल, परिश्रम, संकोच, रोमोद्गम फुरफुराहट, ये अधिक तर होत हैं यदि इसकी चिकित्सा शीघ्रही न की जाय तौ उस स्थान में भेद तथा पतले, लाल वा काले वहुत से फोड़े होजाते हैं। उसस्थान में से पतला, विशद, अरुण तथा थोड़ा थोड़ा स्राव होता है। अधोवायु, मूत्र और

पुरीषका विवन्ध होता है। निदानोक्त द्रव्यों के सेवन करने से यह रोग बढता है तथा विपरीत द्रव्यों के सेवन से दूर होता है। यह सब **वातजविसर्प** का वर्णन हैं।

पित्तविसर्पकेलक्षणादि।

पित्तमुष्णोपचारादिविदाह्यम्लाशनैश्चितम्। दूष्यंसंदूष्यमार्गांश्चपूरयन्वैविसर्पति॥ तस्यरूपाणिज्वरस्तृष्णामूर्च्छामोहच्छर्दिररोचकोऽङ्गभेदःस्वेदोऽतिमात्रमन्तर्दाहःप्रलापःशिरोरुक्चक्षुषोराकुलत्वमरतिभ्रमःशीतवातवारितर्षोऽतिमात्रंहरितनेत्रमूत्रवर्चस्त्वंतेषांहरितहारिद्ररूपदर्शनंयस्मिंश्चावकाशेविसर्पोऽनुसर्पतिसोऽवकाशस्ताम्रहरितहारिद्रनीलकृष्णरक्तानांवर्णानामन्यतमंपुष्याति। सोत्सेधैश्चातिमात्रंदाहसस्वेदनपरीतैः स्फोटकैरुपचीयतेतुल्यवर्णास्रावैराचिरपाकैर्निदानोक्तानिनोपशेरतेविपरीतानि चोपशेरतइतिपित्तविसर्पः॥

अर्थ—उष्णक्रिया के अवलंबन से तथा विदाही और खट्टे पदार्थों के सेवन से संचित हुआ पित्त दूष्य धातुओं को दूषित करके स्रोतों के मार्गों को रोक देता है। तब पित्तजनित विसर्प फैलने लगता है। इस विसर्प के रूप ये हैं यथा—ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, मोह, वमन अरुचि, अंगभेद, स्वेद, अत्यन्त अन्तर्दाह, प्रलाप, शिरोवेदना, नेत्रों में विकलता, अरति, भ्रम, शीतलवायु और शीतलजल की अत्यन्त तृषा, नेत्र-मूत्र-विष्ठा का हरावर्ण नेत्रों से प्रत्येक वस्तुका हरा वा हल्दी के समान दीखना। जिस स्थान में विसर्प फैलता हो उसका ताम्रवर्ण, हरा, हल्दी के समान, नीलवर्ण, कृष्णवर्ण, रक्तवर्ण इन में से किसी एक रंग का होजाता है। यह विसर्प अत्यन्त ऊंचा तथा दाह और स्वेदयुक्त फोड़ों से आच्छादित होता है इन फोड़ों में से इनकेही रंग के सदृश स्राव होता है और ये फोड़े थोड़ेही काल में पकभी जाते हैं। निदानोक्त द्रव्यों के सेवन से ये बढ़ते हैं और उन से विपरीत द्रव्यों के सेवन से घटते हैं। ये सब **पित्तज विसर्प** का वर्णन है।

कफविसर्पकेलक्षणादि।

स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वन्नस्वप्नसञ्चितः कफःसंदूषयन्दूष्यंकृच्छ्रमङ्गेविसर्पति॥ तस्यरूपाणिशीतकःशीतकज्वरोगौरवं निद्रातन्द्रारोचकोमधुरास्यत्वमास्योपलेपोनिष्ठीविकाछर्दिरालस्यंस्तैमित्यमग्निनाशोदौर्बल्यंयस्मिंश्चावकाशेविसर्पति सोऽवकाशःश्वयथुमान्पाण्डुर्मात्रातिरक्तस्नेहःसुप्तिस्तम्भगौरवैरान्वितोऽल्पवेदनः कृच्छ्रपाकैःचिरकारिभिःबहुलत्वगुपलेपैः स्फोटैःश्वेतपाण्डुभिरनुबध्यतेप्रभिन्नस्तु श्वेतंपिच्छिलंतन्तुमद्घनमनुबद्धंस्निग्धमास्रावंस्रवत्यूर्ध्वंचगुरुभिःस्निग्धैर्जलावततैः स्निग्धैर्बहुलत्वगुपलेपैर्व्रणैरनुबध्यतेऽनुशङ्गीश्वेतनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चस्त्वानि निदानोक्तानि नोपशेरतेविपरीतानिचो पशेरतइतिश्लेष्मवीसर्पः॥

अर्थ—मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध और भारी अन्न और अधिक निद्रा इन के सेवन करने से संचित हुआ कफ दूष्य-धातुओं को दूषित कर के कृच्छ्रसाध्य विसर्प को उत्पन्न करता है। इसके रूप ये हैं यथा--शीत, शीतज्वर, भारापन, निद्रा, तन्द्रा; अरुचि, मुख में मीठापन, मुख में लिहसावट, मुंह का भरना, वमन, आलस्य, स्तिमिता, अग्निनाश और दुर्बलता जिस स्थान में यह विसर्प फैलता है वह स्थान सूजन; पाण्डुता, अतिस्राव, अति स्नेह, सुप्ति, स्तम्भता, भारापन, और अल्पवेदना इन से युक्त होता है इस में कठिनता से तथा देर में पकनेवाले बहुलत्वगुपलेपी श्वेत वा पाण्डुवर्ण के फोड़े होजाते हैं इन फोड़ोंके फूटने पर सफेद गिलगिला तन्तुयुक्त, गाढ़ा, लगातार तथा स्निग्धस्राव होता रहता है। इस के ऊपरले भाग में भारी, स्निग्ध, जलयुक्त, स्निग्धगाढ़े, त्वगुपलेपी व्रणों से आच्छादित होजाता है। अनुषंगी नख, नेत्र, वदन, त्वचा, मूत्र, विष्टाका वर्ण सफेद होजाता है। यहरोग निदानोक्त द्रव्यों के सेवन से बढ़ता है और तद्विपरीत द्रव्यों के सेवन से घटता है। यह कफजविसर्प का वर्णन है।

वातापित्तजविसर्पके लक्षणादि।

वातपित्तंप्रकुपितमतिमात्रंस्वहेतुभिः। परस्परंलब्धबलंदहद्गात्रंविसर्पति ॥ तदुपतापादातुरः सर्वशरीरमंगारैरिवाकीर्य्यमाणंमन्यते। छर्द्यतीसारमूर्च्छादाहमोहज्वरतमकारोचकास्थिसन्धिभेदतृष्णाविपाकांगभेदादिभिश्चाभिभूयते। यंयं चावकाशंविसर्पोऽनुसर्पतिसोऽवकाशःशान्तांगारप्रकाशोऽतिरिक्तोवाभवत्यग्निदग्धप्रकारैश्चस्फोटैरुपचीयतेस शीघ्रगत्वादाश्वेवमर्मानुसारीभवतिमर्म्माणिचोपतप्तपवनोऽतिवलोभिनत्त्यंगान्यतिमात्रंप्रमोहयतिसंज्ञांहिक्काश्वासौजनयतिनाशयतिनिद्रां। सनष्टनिद्रःप्रमूढसंज्ञोव्यथितचेतानक्वचनसुखमुपलभते अरतिपरीतःस्थानादासनात्शय्यांक्रान्तुमिच्छतिक्लिष्टभूयिष्ठश्चाशुनिद्रांभजत्यबलोदुःखप्रबोधश्चतमेवंविधमग्निवीसर्पपरीतमचिकित्स्यंविद्यात् ॥

अर्थ—अपने २ हेतुओं से अत्यन्त कुपितहुए वातपित्त एक दूसरे के संग से अत्यन्त बलवान् होकर शरीरको दग्ध करते हुये विसर्प को उत्पन्न करते हैं। इन कफ वात के उपताप से रोगी को अपना सब शरीर जलतेहुए अंगारों के सदृश मालूम होने लगता है। वमन, अतीसार; मूर्च्छा, दाह, मोह, ज्वर, तमक, अरुचि. अस्थिभेद, सन्धिभेद, तृष्णा, अविपाक, अंगभेद आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। शरीर के जिस २ विभाग में विसर्प फैलता है। उस २ स्थान में बुझाए हुए अंगारों के सदृश कृष्णवर्ण, तथा उस से भी अधिक कालापन होता है। इस में आग से जलेहुये फफोले के सदृश फोड़े होजाते हैं यह अत्यन्त शीघ्रगामी होनेसे

मर्मों में गमन करता है मर्म्मों में वायुकी उत्तप्तता से अत्यन्त वेग से अंगो का भेदन और चैतन्यता का नाश होता है। हिचकी और श्वास उत्पन्न होते हैं, निद्रा का नाश होता, रोगी इसतरह निद्रानाश, और संज्ञानाश, और व्यथिताचित्तता से किसी तरह सुख प्राप्त नहीं करता है। अत्यन्त दुःख के कारण वह स्थान, आसन वा शय्या पर आड़ा तिरछा होना चाहता है। इसतरह अत्यन्त क्लिष्ट होकर शीघ्र सोजाता है यह रोगी अत्यन्त दुर्वलता के कारण जगाने से भी नहीं जगता है। इस अग्निविसर्प का रोगी दुश्चिकित्स्य होता है।

कफपितजविसर्पकेलक्षणादि।

कफपित्तंप्रकुपितंवलवत्स्वेनहेतुना।
विसर्पत्येकदेशंतुप्रक्लेदयतिदेहिनः॥
तद्विकाराःशीतज्वरःशिरोगुरुत्वंदाहःस्तैमित्यमंगावसादनंनिद्रातन्द्रामोहोऽन्नद्वेषःप्रलापोऽग्निनाशोदौर्बल्यमस्थिभेदोमूर्च्छापिपासास्रोतसांप्रलेपोजाड्यमिन्द्रियाणांआमोपवेशनमंगविक्षेपोऽगंमर्दोऽरतिरौत्सुक्यंचोपजायतेप्रायश्चामाशयेविसर्पत्यलसकएकदेशग्राहीयस्मिंश्चावकाशेविसर्पतिसोऽवकाशोरक्तपीतपाण्डुपिडकापकीर्णइवमेचकाभःकालोमलिनःस्निग्धोबहूष्मागुरुस्तिमितवेदनःश्वयथुमानगम्भीरपाकःनिरास्रावःशीघ्रक्लेदःस्विन्नक्लिन्नपूतिमांसत्वक्क्रमेणाल्परुक्परमृष्टोऽवदीर्य्यते। कर्दमइवापीडितोऽनन्तरंप्रयच्छत्युपक्लिन्नपूतमांसत्यागीशिरास्नायुसंदर्शीकुणपगन्धीसंज्ञास्मृतिहर्त्तातंकर्दमंवीसर्पपरीतमचिकित्स्यंविद्यात्।

अर्थ—अपने अपने हेतुओं से कफपित्त प्रकुपित होकर तथा एक दूसरे की सहायता से अत्यन्त वलिष्ठ होकर देह को क्लेदित करके शरीर के एक भाग में विचरता है। उस के विकार ये हैं यथा-शीत ज्वर सिरका भारापन, दाह, स्तिमिता, अंगग्लानि, निद्रा, तन्द्रा, मोह, अन्न में द्वेष, प्रलाप अग्निनाश, दुर्वलता, अस्थिभेद, मूर्च्छा, तृषा, स्रोतः समूह में लिहसावट इन्द्रियों में जडता, आमका निकलना, हाथ पांवका पटकना, अंगमर्द, अरति, उत्सुकता मे उपद्रव होते हैं। यह प्रायः आमाशय में उत्पन्न होकर शरीर के किसी एक भाग में फैलता चला जाता है। जिस स्थान में यह फैलता है उस स्थान में लाल पीले तथा पाण्डु वर्ण के फोड़े होजाते हैं। तथा सुरमा के सदृश काला, मलीन, स्निग्ध अत्यन्त गरम, भारी, स्तिमित, वेदनायुक्त सूजनयुक्त, गंभीरपाकी, निरास्रावी और शीघ्र क्लेदी होता है। उस स्थान का मांस स्विन्न, क्लिन्न और सड़ा हुआ सा होजाता है। इस में थोड़ा २ दर्द होता है और हाथसे रगडने पर फटजाता है। अधिक रगड़ने पर इस में कीच की तरह उंगली गढ जाती है। धीरे धीरे इस में से सड़ा हुआ दुर्गन्धित मांस निकलने लगता है और भीतर की नस, स्नायु आदि दिखाई

देने लगती हैं, इस में मुर्दे की सी गंध आने लगती है, इस से संज्ञा और स्मरण शक्ति का नाश होजाता है । यह कर्दम वीसर्प कहलाता है । यह रोग असाध्य होता है ।

ग्रन्थिविसर्पकेलक्षणादि ।

स्थिरगुरुकठिनमधुरशीतस्निग्धान्नपानाभिष्यन्दिसेविनामव्यायामासेवनामप्रतिकर्म्मशीलिनांश्लेष्मावायुश्चप्रकोपमापद्यतेतावुभौदुष्टप्रवृद्धौअतिबलौप्रदूष्यदूष्यंविसर्पायकल्पते । तत्रवायुःश्लेष्माणाविबद्धमार्गस्तमेवश्लेष्माणमनेकधाभिन्दन्क्रमेणग्रन्थिमालांकृच्छ्रपाकसाध्यांकफाशयेसंजनयत्युत्सन्नरक्तस्यवाप्रदूष्यरक्तंसिरास्नायुमांसत्वगाश्रितंग्रन्थिर्वीसर्पंकुरुतःतीव्ररुजाग्रन्थीनांस्थूलानामणूनांदीर्घवृत्तरक्तानांतदुपतापाज्ज्वरातीसारकासहिक्काश्वासशोषप्रमेहवैवर्ण्यारोचकाविपाकच्छर्दिर्मूर्च्छांगभंगानिद्रारतिसंसदनाद्याःप्रादुर्भवन्त्युपद्रवास्तैरुपद्रवैरुपद्रुतःसर्वकर्म्मणांविषयमतिपतोविवर्ज्जनीयोभवतीतिग्रन्थिवीसर्पः ।

अर्थ—स्थिर, भारी, कठोर, मधुर, शीतल और स्निग्ध अन्नपान के सेवन से, अभिष्यन्दी द्रव्यों के सेवन से, शारीरिक परिश्रम न करने से, संचित दोषों को वमन विरेचनादि द्वारा दूर न करने से कफ और वायु प्रकुपित होजाते हैं, ये दोनों दूषित होकर वृद्धि पाकर अत्यन्त बलवान् होजाते हैं तब रक्तादि दूष्य धातुओं को दूषित करके विसर्परोग को उत्पन्न करते हैं। उस समय वायु का मार्ग कफके द्वारा रुक जाने पर वह वायु उसी कफके अनेक भाग करदेती है और कफाशय में कृच्छ्रपाक और कृच्छ्रसाध्य ग्रन्थमाला को उत्पन्न कर देती है अथवा कफ और वायु ये दोनों ही उत्सन्न रक्तवाले मनुष्यके रक्तको दूषित करके सिरा, स्नायु, मांस और त्वचा में गांठदार विसर्प को उत्पन्न करते हैं । इन गाठों में बड़ी तीव्र वेदना होती है,ये गांठें मोटी, छोटी, दीर्घ, गोल होती हैं, इन में उपताप होने से ज्वर, अतीसार, खांसी हिचकी, श्वास, शोष, प्रमेह, विवर्णता,अरुचि, अविपाक, वमन मूर्च्छा, अंगभंग, निद्रा, अरति, ग्लानि आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं, उन उपद्रवों से अभिभूत होकर रोगी सम्पूर्ण कर्मों के करने के अयोग्य होजाता है, इस कारणसे ग्रन्थिवीसर्प की चिकित्सा करना वर्जनीय है ।

रोग और उपद्रव में अन्तर ।

उपद्रवस्तुखलुरोगान्तरकालजोरागाश्रयोरोगएवस्थूलोऽणुर्वारोगात्पश्चाज्जायतेत्युपद्रवसंज्ञः ॥ तत्रप्रधानोव्याधिर्व्याधेर्गुणभूतउपद्रवस्तस्यप्रायःप्रधानप्रशमेप्रशमोभवति । सतुपीडाकरतरोभवतिपश्चादुत्पद्यमानोव्याधिःपरिक्लिष्टशरीरत्वातस्मादुपद्रवंत्वरमाणोऽभिबाधेत्

अर्थ—उपद्रव रोग के उत्पन्न होने से पीछे उसी रोगका आश्रय लेकर उत्पन्न

होता है। यह रोग स्थूल वा सूक्ष्मरूप में रोग से पीछे उत्पन्न होता है इसी से इसे उपद्रव कहते हैं। यहां पहिली व्याधि प्रधान होती है और उपद्रव व्याधि का गुणीभूत होता है अर्थात् व्याधिके अनुसार ही उपद्रव में गुण होते हैं। इस उपद्रव की शान्ति प्रधानरोग की शान्तिके साथ होजाती है। शरीर में अत्यन्त क्लेश होने से यह व्याधि पीछे उत्पन्न होती हैं, परन्तु प्रधानव्याधिसे भी अधिक क्लेशकारक होती है अतएव अत्यन्त शीघ्रता से उपद्रवों के शान्ति का उपाय करै।

सान्निपातिकविसर्प।

सर्वायतनसमुत्थंसर्वलिङ्गव्यापिनंसर्वधात्वनुसारिणंमहात्ययिकमितिसन्निपातवीसर्पमचिकित्स्यंविद्यात्।

अर्थ—सम्पूर्ण कारणों से उत्पन्नहुआ सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त, सम्पूर्ण धातुओंका अनुसरणकर्ता, शीघ्रकारी, महाउपद्रवोंका करनेवाला सन्निपातिक विसर्प दुश्चिकित्स्य होता है।

विसर्पोंका साध्यासाध्यवर्णन।

तत्रवातपित्तश्लेष्मनिमित्तावीसर्पास्त्रयः साध्याभवन्त्यग्निकर्दमाख्यौपुनरनुपसृष्टेमर्म्मणिअनुपहतेवासिरास्नायुमांसक्लेदेसावधारणक्रियाभिरुपायैःतावेवाभ्यस्यमानौप्रशान्तिमापद्येयातामनादरोपक्रान्तंपुनस्तयोरन्यतरोहन्याद्देहमाश्वेवाशीविषवत्। तथाग्रन्थिवीसर्पमजातोपद्रवमारभेतचिकित्सितुमुपद्रवोपद्रुतन्त्वेनंपरिहरेत्। सन्निपातजंसर्वधात्वनुसारित्वादाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वाच्चासाध्यंविद्यात्। तत्रसाध्यानांसाधनमनुव्याख्यास्यामः।

अर्थ—इन सब विसर्पों में से वातज, पित्तज और कफज ये तीन विसर्प साध्य होते हैं। अग्नि विसर्प और कर्दम विसर्प मर्मस्थानसे विना मिले होने पर और सिरा स्नायु, मांस और क्लेद के अनुपहत होने पर साधारण क्रियाओं के द्वारा चिकित्सा किये जाने पर शान्त होजाते हैं, तथा प्रयत्नपूर्वक चिकित्सा न किये जाने पर आशीविषकी तरह देह को शीघ्रही नष्ट कर देते हैं। ग्रन्थिवीसर्प की चिकित्सा करने का प्रारम्भ उस समय करै जो उस में उपद्रव उत्पन्न न हुए हों। उपद्रवों के उत्पन्न होने पर चिकित्सा करना छोड़देवै सन्निपातज विसर्प भी असाध्य होता है क्योंकि वह सर्वधात्वानुसारी, आशुकारी होता है और इसकी चिकित्सा भी विरुद्ध उपायों से करनी पड़ती है॥

अब हम साध्य वीसर्पों की चिकित्सा का वर्णन करेंगे।

विसर्प की साधारण चिकित्सा।

लंघनोल्लेखनेशस्तेतिक्तकानांचसेवनम्। कफस्थानगतेसामेरूक्षशीतैःप्रलेपयेत्॥ पित्तस्थानगतेऽप्येतत्सामेकुर्य्याच्चिकित्सितम्। शोणितस्यावसेकञ्चविरेकंच विशेषतः॥ मारुताशयसम्भूतेऽप्यादितःस्याद्विरूक्षणम्। रक्तपित्तान्वयेऽप्या

दौस्नेहनंनाहितंमतम् ॥ वातोल्वणेतिक्तघृतंपैत्तिकेचप्रशस्यते । लघुदोषेमहादोषेपैत्तिकेस्याद्विरेचनम् ॥ नघृतंबहुदोषायदेयंयन्नविरेचयेत् । तेनदोषोह्युपस्तब्धः त्वङ्मांसरुधिरंपचेत् ॥ तस्माद्विरेकमेवादौशस्तंविद्यात्विसर्पिणः । रुधिरस्यावसेकंचतध्यस्याश्रयसंज्ञितम् ॥ इतिवीसर्पेनुत्प्रोक्तंसमासेनचिकित्सितम् । एतदेवपुनःसर्वंव्यासतःसंप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—आमयुक्त दोष के कफस्थान में जाने पर लंघन, वमन और तिक्त द्रव्यों का सेवन हित है तथा जिस स्थान पर विसर्प हुआ हो वहां रूक्ष और शीतल द्रव्यों का लेप करै । उसी आम संयुक्त दोष के पित्ताशय में जाने पर पूर्वोक्त क्रम का अवलम्बन उचित है, इस रोग में फस्त खोलना और दस्त कराना ये दो बातें अधिक कर्त्तव्य हैं । वाताशय सम्भूत रोगों में तथा रक्तपित्तान्वय में उत्पन्न होने वाले रोगों में प्रथमही से रूक्षण क्रिया करना उचित है, इस में स्नेहन क्रिया अहित होती है वाताधिक्य विसर्प में तथा अल्पदोष वाले पित्तज विसर्प में तिक्त घृत हित है, एवं महादोषों से युक्त पैत्तिक विसर्प में विरेचन उत्तम होता है । जो घृत विरेचन कर्त्ता न हो वह बहुत दोषों से युक्त विसर्प रोगी को दैना उचित नहीं हैं क्योंकि इस घृत के दैने से दोष रुककर त्वचा, मांस और रुधिर में पकावट पैदा करदेते हैं, अतएव विसर्प रोगी को सब से प्रथम विरेचनदैना चाहिये । पीछे रक्तमोक्षणभी कराता रहै क्योंकि रुधिरही विसर्पका प्रधान स्थान है । यह संक्षेप से विसर्प की चिकित्सा वर्णन की गई है ।

अब हम यहां से विसर्परोगों की चिकित्साका विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे ।

कफपित्तविसर्प की चिकित्सा ।

मदनंमधुकंनिम्बंवत्सकस्यफलानिच । वमनंसंप्रदातव्यंवीसर्पेकफपित्तजे ॥ पटोलपिचुमर्दाभ्यांपिप्पल्यामदनेनच । वीसर्पेवमनंशस्तंतथाचेन्द्रयवैःसह ॥ यांश्चयोगान्प्रवक्ष्यामिकल्पेषुकफपित्तिनाम् । विसर्पिणांप्रयोज्यास्तेदोषनिर्हरणाः परम् ॥ मुस्तनिम्बपटोलानाञ्चन्दनोत्पलयोरपि । शारिवामलकोशीरंमुस्तानांवाविचक्षणः ॥ पाययेतकषायान्हि सिद्धान्वीसर्पनाशनान् । किराततिक्तकंरोध्रंदुरालभांसचन्दनाम् ॥ नागरंपद्मकिञ्जल्कमुत्पलंसविभीतकम् । मधुकंनागपुष्पंचदद्याद्वीसर्पशान्तये ॥ प्रपुण्डरीकंमधुकंपद्मकिञ्जल्कमुत्पलम् । नागपुष्पंचरोध्रंचतेनैवविधिनापिबेत् ॥ द्राक्षांपर्पटकंशुण्ठींगुडूचींधन्वयावकम् । निशापर्युषितंदद्यात्तृष्णावीसर्पशान्तये ॥ पटोलंपिचुमर्दञ्चदार्वींकटुकरोहिणीम् । यष्ट्याह्वांत्रायमाणाञ्चदद्याद्वीसर्पशान्तये ॥ पटोलादिकषायंवापिबेत्त्रिफलयासह । मसूरविदलैर्युक्तंघृतमिश्रंप्रदापयेत् ॥ पटोलपत्रमुद्रानांरसमामलकस्यच । पाययेतघृतोन्मिश्रंनरंवीसर्पपीडितम् ॥

अर्थ—कफपित्त से उत्पन्न हुए विसर्प में मेनफल, मुलहटी, नीम, इन्द्रजौ इनका क्काथ पान कराके बमन करावै। अथवा परवल,नीम,पीपल,मैनफल,औरइन्द्र जौ इनका क्काथ पान कराके वमन करावै कल्पस्थान में कफपित्त रोगियों के लिये जो जो प्रयोग वर्णन किये जांयगे वे सब विसर्प रोग में प्रयोजनीय होते हैं, ये प्रयोग अत्यन्त दोष निःसारक हैं। मोथा, नीम और परवल अथवा रक्तचन्दन और नील कमल अथवा शारिवा, आंवला, उसीर और मोथा। इन तीन योगों के क्काथ का पान कराने से विसर्प दूर होजाता है, ये अनुभूत प्रयोग हैं।

अथवा चिरायता, लोध, जवासा, रक्तचन्दन, सोंठ, नागकेशर, नीलकमल, बहेड़ा मुलहटी,नागपुष्प इन का क्काथ विसर्पनाशक होता है।

पुण्डरियाकाठ, मुलहटी, पद्मकेशर, नीलकमल, नागपुष्प और लोध इन के क्काथ को पूर्वोक्त विधि से विसर्प रोगी को देवै। अथवा दाख, पित्तपापड़ा, सोंठ, गिलोय, जवासा, इनको रात्रि में भिजोकर प्रातः काल पान करै तौ तृषा और विसर्प दूर होवें। अथवा परवल, नीम, दारुहलदी कुटकी मुलहटी, त्रायमाणा, इनका क्काथ विसर्प की शान्ति के निमित्त देवै।

अथवा पटोलादि क्काथ का त्रिफला के साथ पान कराने से विसर्प की शान्ति होती है। अथवा घी मिलाकर मसूरकी दाल देवै अथवा परवल, मूंग और आंवले के रस में घृत मिलाकर उस मनुष्यको पान करावै जो विसर्प रोग से पीडित हो।

विसर्पनाशकअन्यप्रयोग।

यच्चसर्पिर्महातिक्तंपित्तकुष्ठनिवर्हणम्। निर्दिष्टंतदपिप्राज्ञोदद्याद्वीसर्पशान्तये॥ त्रायमाणाघृतंसिद्धंगौल्मिकेयदुदाहृतम्। वीसर्पाणांप्रशान्त्यर्थंदद्यात्तदपिबुद्धिमान्। त्रिवृच्चूर्णंसमालोड्यसर्पिषापयसातथा। घर्म्माम्बुनावासंयोज्यामृद्वीकानांरसेन वा। विरेकार्थंप्रयोक्तव्यंसिद्धंवीसर्पनाशनम्॥ त्रायमाणाशृतंवापिपयोदद्याद्विरेचनम्॥ त्रिफलारससंयुक्तंसर्पिस्त्रिवृतयासह। प्रयोक्तव्यंविरेकार्थंवीसर्पज्वरनाशनम्॥ रसमामलकानांवाघृतमिश्रंप्रदापयेत्। सएवगुरुकोष्ठायत्रिवृच्चूर्णयुतोहितः॥ दोषेकोष्ठगतेभूयएतत्कुर्य्याच्चिकित्सितम्। शाखादुष्टेतुरुधिरेरक्तमेवादितोहरेत्॥ भिषग्वातान्वितंरक्तंविषाणेनाभिनिर्हरेत्। पित्तान्वितंजलौकाभिःकफान्वितमलाबुना॥

अर्थ—पित्त कुष्ठनाशक जो महातिक्तक घृत वर्णन कियागया है वह घृत विसर्पके नष्ट करने में भी अत्यन्त उपयोगी है। गुल्मरोग में जो त्रायमाणादि घृत वर्णन कियागया है वह भी विसर्पकी शान्ति के निमित्त उत्तम है। निसोथ के चूर्ण को घी के साथ दूध के साथ, उष्णजल के साथ अथवा दाख के रस के साथ विसर्प को दूर करने के लिये पान करावै। अथवा

त्रायमाणा डालकर औटाया हुआ दूध विरेचन के लियेदेवै। त्रिफला के क्वाथ के साथ अथवा निसोथ के साथ घृत का प्रयोग करने से विरेचन के द्वारा विसर्प जनित ज्वर जाता रहता है। अथवा आंबले के क्वाथ में घृत मिलाकर देवै और जो रोगी का कोठा कड़ा हो तौ उसी में निसोथ का चूर्ण और मिलादेवै। दोषों के कोष्ठगत होने पर यही चिकित्सा फिरकरै जो रुधिर शाखा में दूषित हुआ हो उसे प्रथमही फस्त लगाकर निकाल देवै। वैद्य को उचित हैं कि वात संसृष्ट रुधिर को सींगी लगाकर निकाले, पित्तसंसृष्ट को जोकों से और कफसंसृष्ट को अलावू द्वारा निकालै ॥

यथासन्नंविकारस्यव्यधयेदाशुवासिनाम्। त्वङ्मांसस्नायुसंक्लेदोरक्तक्लेदाद्धिजायते ॥ अन्तःशरीरेसंशुद्धेदोषत्वङ्मांससंश्रिते। आदितःस्वल्पदोषाणांक्रियाबाह्यामवक्ष्यते ॥

अर्थ—विसर्प के पासवाली नसमें नश्तर लगाकर फस्त खोलै जिस से रुधिर में क्लेदता न होनेपावै क्योंकि रक्त में क्लेदता के होनेही से त्वचा, मांस और स्नायु में क्लेदता उत्पन्न होती है। इन उपायों के करने से जव शरीर भीतर से शुद्ध होजाता है और दोष केवल त्वचा और मांस में रहजाते हैं तव दोष वहुत सूक्ष्म रहजाते हैं उस समय वाह्यक्रिया कीजाती है, अव उन वाह्य उपायोंको वर्णन करतेहैं।

वातपित्तजविसर्पपरप्रलेप।

उदुम्बरत्वङ्मधुकंपद्मकिञ्जल्कमुत्पलम्। नागपुष्पंप्रियंगुश्चप्रदेहःसघृतोहितः ॥ न्यग्रोधपादास्तरुणाःकदलीगर्भसंयुताः। विसग्रन्थिःसलेपःस्यात्शतधौतघृताप्लुतः कालीयंमधुकंहेमवल्यंचन्दनपद्मकम्। एलामृणालंफलिनीप्रलेपःस्याद्घृताप्लुतः। शाद्वलश्चमृणालश्चशंखचन्दनमुत्पलम्। वेतसस्यचमूलानिप्रदेहःस्यात्सतण्डुलम्। शारिवापद्मकिञ्जल्कमुशीरंपद्मकोत्पलम् मञ्जिष्ठाचन्दनंरोध्रमभयाचप्रलेपनम् ॥ नलदश्चहरेणुश्चरोध्रंमधुकपद्मकौ। दूर्वा सर्ज्जरसश्चैवंसघृतंस्यात्प्रलेपनम् ॥ यावकाःशक्तवश्चैवसर्पिषासहयोजिताः। प्रदेहोमधुकंवीरासघृतायवशक्तवः ॥ बलामुत्पलशालूकंवीरामगुरुचन्दनम्। कुर्य्यादालेपनंवैद्योमृणालश्चविसान्वितम् ॥ यवचूर्णसमधुकंसघृतञ्चप्रलेपनम् ॥ हरेणवोमसूराश्चसमुद्गाःश्वेतशालयः। पृथक्पृथक्प्रदेहास्युःसर्वेवासर्पिषासह ॥ पद्मिनीकर्दमःशीतोमौक्तिकंपिष्टमेववा। शंखःप्रवालःशुक्तिर्वागैरिकोवाघृताप्लुतः ॥ प्रपुण्डरीकंमधुकंबलाशालूकमुत्पलम्। न्यग्रोधपल्लंदुग्धीकासघृतंस्यात्प्रलेपनम् ॥ विसानिचमृणालाश्चसघृताचकशेरुका। शतावर्य्याविदार्य्याश्चकन्दौधौतघृताप्लुतौ ॥ शैवालंनलमूलानिगोजिह्वावृषकर्णिका। इन्द्राणीशाकंसघृतंशिरीषत्वगबलाघृतम् न्यग्रोधोदुम्बरप्लक्षवेतसाश्वत्थपल्लवैः।

त्वक्कल्कैर्बहुसर्पिष्कैःशीतैरालेपनंहितम् ॥ प्रदेहाःसर्वएवैतेवातपित्तोल्वणे शुभाः । सकफेतुप्रवक्ष्यामिप्रलेपनपरान्शुभान् ॥

अर्थ—गूलरकी छाल, मुलहटी, पद्मकेशर, नीलकमल, नागपुष्प, प्रियंगु इनको पीसकर घी में सानकर लेप करै । वड़की नवीन डाढ़ी, केलेका गूदा, कमलनालकीजड़ इनको सौबार धुलेहुए घी में मिलाकर लेप करै । अथवा कालीय (पीतचन्दन) मुलहटी, धतूरा, वल्या, चन्दन, पद्माख, इलायची, कमलनाल और प्रियंगु इन को घृत में सानकर लेप करै । अथवा दूब, कमलनाल, शंखकी भस्म, रक्तचन्दन, नील, कमल, वेतकीजड़ और वायविडंग इन को पीसकर लेप करै । अथवा शारिवा, पद्मकेशर, खस, पद्माख, नीलकमल, मजीठ, रक्तचन्दन, लोध, हरड़ इनको पीसकर लेप करै । अथवा खस, हरेणु, लोध, मुलहटी, पद्माख, दूब, राल, और घी इनका लेप करै, अथवा जौ के सत्तू को घी में सानकर लेप करै । अथवा मुलहटी, क्षीरकाकोली, घी और जौका सत्तू इनका लेप करै अथवा खरैटी, नीलकमल, शालूक, (कुमुदादिकी जड़), क्षीरकाकोली, अगर, लालचन्दन, अथवा खस और लालचन्दन, इनका लेप करै अथवा जौ का चून, मुलहटी और घीका लेप करै । अथवा हरेणु, मसूर, मूंग, सफेदचावल इनको पृथक् २ वा सवको मिलाकर घी में सानकर लेपकरै अथवा कमलकीजड़की ठंडीकीच, अथवा मोतियों को जल में पीसकर अथवा शंख, मूंगा, सीपी वा गेरू को घी में सानकर लेप करै । अथवा पुण्डरिया काठ, मुलहटी, खरैटी, शालूक, उत्पल, वड़ के पत्ते और दुद्धी इनको घी में सानकर लेप करै । अथवा विस, मृणाल और कसेरूको घी में सानकर लेप करै अथवा शतावरी और विदारीकंद इनको धुलेहुए घृत में सानकर लेप करै । सिवार (तळाव के जलकी ऊपरवाली काई), सरकंडेकी जड़, गोजिह्वा, वृषकर्णी और इन्द्राणी के पत्ते इनको घी में सानकर लेप करै अथवा सिरस की छाल और खरैटी को घी में सानकर लेप करै । अथवा वड़, गूलर, पाकड़, वेत, और पीपल के पत्ते और छाल इनको पीसकर वहुत से घी में सानलेवै और ठंडे २ का लेपकर तौ विसर्परोग दूर होजातेहैं। ये जो ऊपर सम्पूर्ण लेप वर्णन किये गये हैं वे वात पित्त की अधिकतावाले विसर्प में हितकारी होते हैं । अवहम वात कफ में उपयोगी लेपोंका वर्णन करेंगे ॥

वातकफविसर्पमेंलेप ।

त्रिफलांपद्मकोशीरंसमङ्गांकरवीरकम् । नलमूलान्यनन्तंचप्रदेहमुपकल्पयेत् ॥ खदिरंसप्तपर्णञ्चमुस्तमारग्वधंधवम् । कुरण्टकंदेवदारुदद्यादालेपनंभिषक् ॥ आरग्वधस्यपत्राणित्वचंश्लेष्मान्तकस्यच इन्द्राणीशाकंकाकाह्वांशिरीषकुसुमानिचं । प्रपुडरीकंह्रीवेरंदार्वीत्वङ्मधुकंब-

लाम् ॥ पृथगालेपनंकुर्य्याद् द्वन्द्वशसः-वेशोऽपिवा । प्रदेहाःसर्वएवैतेदेयाःस्वल्पघृतायुताः । वातपित्तोल्वणेयेतुप्रदेहास्तेघृताधिकाः ॥ घृतेनशतधौतेनप्रदिह्यात्केबलेनच ॥

अर्थ—त्रिफला, पद्माख, उशीर, लज्जालु, कनेरकी जड़, सरकंडे की जड़, अनन्तमूल इनको लेप बनाकर लगावै । अथवा खैरसार, सप्तपर्णी, मोथा, अमलतास, धौ की छाल, करण्टक और देवदारु इनका लेप करै । अथवा अमलतास के पत्ते बहेड़े की छाल, इन्द्राणी शाक, मकोय, सिरस के फूल, पुण्डरियाकाठ, हाऊबेर, दारुहल्दीकीछाल, मुलहटी, खरैटी इन में से एक २ का वा दो २ का वा सबका मिलाकर लेप करै इन लेपों में घी बहुत थोड़ा मिलाया जाता है, वातपित्त के विसर्प में जो लेप कियेजाते हैं उन में घी अधिक होता है । केवल सौ वार धुलेहुये घी का लेप करै ।

विसर्पकीअन्यचिकित्सा ।

घृतमण्डेनशीतेनपयसामधुकाम्बुना ।
पंचबल्ककषायेणसेचयेत्शीतलेनवा ॥
वातास्रकपित्तबहुलंविसर्पंबहुशोभिषक् ।
सेचनास्तेप्रदेहायेतएवघृतसाधनाः ॥
तेचूर्णयोगावीसर्पचूर्णानामवचूर्णनाः ।
दूर्वास्वरससिद्धंचघृतंस्याद्व्रणरोपणम् ॥
दार्वीत्वङ्मधुकंरोध्रंकेसरञ्चावचूर्णनम् ।
पटोलःपिचुमर्दस्तुत्रिफलामधुकोत्पले ॥
एतत्प्रक्षालनंसर्पिर्व्रणचूर्णप्रलेपनम् ।

अर्थ—जो विसर्प पित्त बहुल और वातरक्त से उपद्रुत है उसपर घृतमण्ड, शीतलदूध, जलमिला हुआ शहत अथवा पंचवल्क के ठंडे क्वाथ द्वारा सेचन करै । जिन प्रयोगों का घी में लेप कियाजाताहै, उन्हीं द्रव्योंका क्वाथ सेचन में कामआता है । उन्ही द्रव्यों को पीसकर विसर्प पर वुर्की दीजाती है । दूब के रस में सिद्धकिया हुआ घी लगाने से व्रण पुरजाता है । अथवा दारुहल्दीकी छाल, मुलहटी, लोध, और केसर इनको पीसकर विसर्प पर बुरकै अथवा परवल, नीम, त्रिफला, मुलहटी, नीलकमल, इनका क्वाथ बनाकर विसर्पको धोवै । इन्हींद्रव्यों के घृत चूर्ण प्रलेपादि नियमों को काम में लावै ।

लेपलगाने की विधि ।

प्रदेहाःसर्वएवैतेकर्त्तव्याःसंप्रसादनाः ॥
क्षणेक्षणेप्रयोक्तव्याःपूर्वमुद्धृत्यलेपनम् ।
नवनीघृतेपूर्वेप्रदेहाबहुशोधनाः ॥ देयाःप्रदेहाःकफजेपर्य्यायानोद्घृतेघनाः ।
त्रिभागांगुष्ठमत्रःस्यात्प्रलेपःकल्कपेषितः
नातिस्निग्धोनरूक्षश्चनपिण्डोनद्रवःसमः ।
नचपर्युषितंलेपंकदाचिदवचारयेत् ॥ नचतेनैवलेपेनपुनर्जातुप्रलेपयेत् । क्लेदवीसर्पशूलानिसोष्णभावात्प्रवर्त्तयेत् ॥
लेपोह्युपरिपट्टस्यकृतःस्वेदयतिव्रणम् ।
स्वेदजाःपिडकास्तस्यकण्डूश्चैवोपजायते ॥
उपर्युपरिलेपस्यलेपोयद्यवचार्य्यते ।
तानेवदोषान्जनयेत्पट्टस्योपरियान्कृतः ॥
अतिस्निग्धोऽतिद्रवश्चलेपोयद्यवचार्य्यते।

त्वचिनाश्लिष्यतेसम्यङ्नदोषंशमयत्यपि॥ तन्वालिप्तंनकुर्वीतसंशुष्कोह्यपुटायते । नचौषधिरसोव्याधिंप्राप्नोत्यपिचशुष्य ति ॥ तन्वालिप्तेनयेदोषास्तानेवजनये द्भृशम्। संशुष्कःपीड़येत्व्याधिंनिस्नेहो ह्यवचारितः ।

अर्थ—ये सब लेप चित्त के प्रसन्नकर नेवाले हैं, पहिले लेप को छुड़ा छुड़ाकर थोड़ी २ देर में फिर नये करने चाहियें। पुराने घी में मिलाहुआ लेप बहुत शोधक होता है। कफज विसर्प में पहिले लेपको छुड़ाकर गाढ़ा २ लेप करै । औषधोंको पीसकर जौभर मोटा लेपकरै। लेप अत्यन्त चिकना, रूखा, पिण्डित और द्रवन हो सब जगह समान हो; वासी लेप को कभी न लगावै। जिसका एकवार लेप किया है उसका फिर लेपन करैं क्योंकि वह उष्ण भाव से क्लेद, विसर्प और शूलरोगों को उत्पन्न करता है। व्रण के ऊपरपट्टी धर कर लेप करने से व्रण में स्वेदन होता है। उन पसीनों से फुन्सियां और खुजली उत्पन्न होजाती हैं। लेप के ऊपर लेप करने से भी वही दोष उत्पन्न होते हैं जो वस्त्र के ऊपर लेप करने से होते हैं। जो लेप बहुत चिकना और बहुत पतला किया जाता है वह त्वचा में अच्छी तरह नहीं लगता है और न उस से दोष शान्त होते हैं ॥

पतला लेप कभी न करना चाहिये क्योंकि वह सूखकर पपड़ा जाता है। इस लेपकी औषध का रस व्याधि के पास भी नहीं पहुंचने पाता और पहिलेही सूखजाता है। पतले लेप के करने से पूर्वोक्त दोष बहुत बढ़जाते हैं। विना चिकनाई का लेप सूखकर व्याधिको अत्यन्त पीड़ित करता है॥

विसर्पमेंपथ्यापथ्य ।

अन्नपानानिवक्ष्यामिवीसर्पाणांनिवृत्तये॥ लंघितेभ्योहितोमन्थोरूक्षःसक्षौद्रशर्करः। मधुरःकिञ्चिदम्लोवादाडिमामलकान्वितः सपरूषकमृद्वीकःसखर्जूरःशृताम्बुना । त र्पणैर्यवशालीनांसस्नेहोवावलेहिका। यू षैर्भुञ्जीतभोजनम्।जीर्णापुराणशालानां॥ मुद्गान्मसूरांश्चणकान्यूषार्थमुपकल्पयेत् । अनम्लान्दाड़िमान्वापिपटोलामलकैः सहः ॥ जाङ्गलानाञ्चमांसानांरसांस्त स्योपकल्पयेत् । रूक्षान्परुषकद्राक्षादा डिमामलकान्वितान । रक्ताःश्वेतामहा ह्वाश्चशालयःषष्टिकैःसहः ॥ भोजना र्थेप्रशस्यन्तेपुराणाःसुपरिस्नुताः । यवो गोधूमसात्म्यानांसात्म्यान्येवप्रदापयेत्॥ येषांनात्युचितःशालिर्नरायेचकफाधिकाः

अर्थ—अब हम विसर्प की शान्ति के निमित्त अन्नपान की विधि वर्णन करते हैं विसर्प रोगी को लंघन कराने के पश्चात् शहत और चीनी के साथ रूक्ष मन्थ देवै। अथवा उसी मन्थ में अनार और आंवले की खटाई देकर वा कुछ मिष्ट करके देवै। फालसा, किसमिस, खजूर इन के साथ में औटाये हुये जल के साथ तर्पण देवै। अथवा जौ और शाली चांवलों का अवलेह

घृत मिलाकर देवै । इन के पचनेपर पुराने चांवलों का भात यूष के साथ भोजनमें देवै, मूंग,मसूर,चना इनकायूषविनाखटाईका अथवा अनारकी खटाई डालकर परवल और आंवले के साथ देवै । जांगल पशुओं का मांस रस विना चिकनाई डाले फाल से, दाख, अनार और आंवले डालकर सेवन करावै भोजन के लिये लाल चांवल, सफेद चांवल महाशालि, साठी चांवल, इन को उवालकर अच्छी तरह मांढ़ निकाल करदेवै परन्तु ये पुराने होने चाहियें । जिस रोगी को दूध और गेंहू सात्म्य हों उन को येही देवै, जिन को शालीचांवल सात्म्य नहीं है और जिन को कफकी अधिकता है उनको दूध और गेंहू देवै ।

विदाहीन्यन्नपानानिविरुद्धानिचवर्जये त् । क्रोधव्यायामसूर्य्याग्निप्रवातस्वपनं दिवा ॥ कुर्य्याच्चिकित्सितान्यस्मात्शी तप्रायाणिपैत्तिके ॥ रूक्षप्रायाणिकफजे स्नैहिकान्यनिलात्मके । वातपित्तप्रशम नमग्निवीसर्पणेहितम् ॥ कफपित्तप्रशमनं प्रायःकर्द्दमसंज्ञिते ।

अर्थ—विदाही और विरुद्ध अन्नपान का परित्याग करदेना उचित है, क्रोध, व्यायाम, धूप, अग्नि, हवा, दिवास्वप्न का भी त्याग कर देवै । पैत्तिक विसर्प में शीत प्राय चिकित्सा करै, कफज विसर्प में रूक्ष प्राय और वातज विसर्प में स्निग्धप्राय चिकित्सा करै । अग्निविसर्प में वात्तपित्त को शमन करने वाली औषधी देवै । कर्दम विसर्प में प्रायः कफ पित्तनाशक औषधियों का प्रयोग करै ॥

ग्रन्थिवि सर्प में चिकित्सा ।

रक्तपित्तोत्तरंदृष्ट्वाग्रन्थिवीसर्पमादितः॥ रूक्षणैर्लंघनैःसेकैःप्रदेहैःपाञ्चवल्किकैः। शिरामोक्षैर्जलौकोभिर्वमनैसविरेचनैः ॥ घृतैःकषायतिक्तैश्चकालज्ञैःसमुपाचरेत् । ऊर्ध्वञ्चाधश्चशुद्धायरक्तेचाप्यवसेचिते॥ वातश्लेष्महरंकर्मग्रन्थिवीसर्पिणेहितम् । उत्कारिकाभिरुष्णाभिरुपनाहःप्रशस्यते॥ स्निग्धाभिर्वेशवारैर्वाग्रन्थिवीसर्पशूलि नः । दशमूलोपसिद्धेनतैलेनपरिषेचनम्॥ सुखोष्णयाप्रदिह्याद्वापिष्टयाकृष्णगन्ध या । शुष्कमूलककल्केननक्तमालत्वचा पिवा ॥ विभीतकस्यवाग्रन्थिकल्केनो ष्णेनवापिवेत् । वलांनागवलांपथ्यांभू र्जग्रन्थिविभीतकम् । वंशपत्राण्यग्निम न्थंकुर्य्यात्ग्रन्थिप्रलेपनम् । दन्तीचित्रक मूलत्वक्सौधार्कपयसीगुडः ॥ भल्लात कास्थिकासीसंलेपोभिन्द्याच्छिलामपि। वहिर्मार्गास्थितंग्रन्थिकिंपुनःकफसम्भवम्

अर्थ—ग्रन्थिवीसर्प में जो रक्तपित्तकी अधिकता होवै तो प्रथमही से रूक्षक्रिया लंघन, पंचवल्कल के क्वाथ का परिषेक प्रदेह, फस्तखोलना, जोंक लगाना, वमन विरेचन, कषाय और तिक्त औषधियों से सिद्ध किया हुआ घी देवै । तथा इस रोग में वमन विरेचन और फस्त खोलकर शुद्ध करने के पश्चात् वातकफनाशकक्रिया का

अवलम्बन करना हित है। गरम २ लुपडी और उपनाह भी हितकारी होते हैं। जो यह रोग शूलयुक्त हो तौ स्निग्ध वेशवार का प्रयोग करै और दशमूलसे सिद्ध किये- हुए तेलद्वारा परिषेचन करै। अथवा सँहजने की छाल को पीसकर सुहाते हुए गरम गरम का लेप करै, अथवा सूखी मूली वा कंजे की छाल को पीसकर लेप करै अथवा बहेड़े के कल्क को कुछ गुनगुना करके पीवै अथवा खरैटी,नागवला,हरड़, भोजपत्र की गांठ, वहेड़ा, वांसके पत्ते, अरनी इन का ग्रन्थि विसर्प पर लेप करै। अथवा दन्ती चीते की जड़की छाल, सेंहुड़ और आक का दूध, गुड़, भिलावे की गुठली, कसीस इनका लेप करनेसे शिला भी टूट जाती है तव वाहर वाली कफकी गांठ के भिन्न हो- जाने में क्या संदेह है।

चिरकलीन ग्रन्थिकी चिकित्सा।

दीर्घकालस्थितंग्रन्थिं भिन्द्याद्वाभेषजैरिमैः मूलकानांकुलत्थानांयूषैःसक्षारदाडिमैः॥ गोधूमान्नैर्यवान्नैर्वासशीधुमधुशर्करैः। सक्षौद्रैर्वारुणीमण्डैर्मातुलुङ्गरसान्वितैः॥ त्रिफलायाःप्रयोगैश्चपिप्पलीक्षौद्रसंयुतैः। मुस्तभल्लातशक्तूनांप्रयोगैर्माक्षिकस्यच॥ देवदारुगुडूच्याश्चप्रयोगैर्गिरिजस्यच।

अर्थ—नीचे लिखी हुई औषधियों से बहुत दिनकी उत्पन्न हुई गांठके तोड़ने का उपाय करै। यथा-जवाखार और अनार डालकर कुलथी वा मूली का यूष; शीधु, शहत और चीनी मिलाकर गेंहू वा जौ के पदार्थ, विजौरे का रस डालकर शहत मिला हुआ सुरामण्ड, पीपल और शहत डालकर त्रिफला का प्रयोग, मोथा,भिलाया और शहत ये डालकर सत्तुओं के प्रयोग देवदारु और गिलोय के प्रयोग तथा गेरू के प्रयोग। इन प्रयोगों से पुरानी गांठ टूट जाती है।

ग्रन्थि नाशक अन्य विधि।

धूमैर्विरेकैःशिरसःपूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः॥ अयोलवणपाषाणहेमताम्रप्रवीडनैः। आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिर्विविधाभिर्बलीस्थिरः॥ ग्रन्थिःपाषाणकठिनोयदा नैवोपशाम्यति। अथास्यदाहःक्षारेण शरैर्लोहेनवाहितः॥ पाकिभिःपाचयित्वावापाटयित्वासमुद्धरेत्। मोक्षयेत्बहुशश्चास्यरक्तमुत्क्लेशमागतम्॥ पुनश्चापहृतेरक्तेवातश्लेष्मजिदौषधम्। धूमोविरेकःशिरसःस्वेदनंपरिमर्दनम्॥ अपशाम्यतिदाहेनपाटवंवाप्रशस्यते। प्रक्लिन्ने दाहपाकाभ्यांभिषक्शोधनरोपणैः॥ बाह्यैश्चाभ्यन्तरैश्चैवव्रणवत्समुपाचरेत्।

अर्थ—गुल्म के दूर करने के लिये जो धूमपान, शिरोविरेचन, लोह, लवण,पाषाण लोहा, तांवा और प्रपीडन पहिले वर्णन किये गये हैं उन का प्रयोग इस गांठके दूर करने के लिये करै। और यदि इन अनेक प्रयोगोंके करने परभी इस वलवान, स्थिर और पत्थर के समान कठोर गांठका शमन न हो तौ क्षार, शर और लोह से दग्ध करना हित है। अथवा पकाने वाली

औषधों से पकाकर नीर डाले तथा इस के उत्क्लेशित हुए रक्तको वार वार निकालदेवै रुधिर के निकलने के पीछे वातकफनाशक औषध, धूमपान, शिरोविरेचन, स्वेदन, परिमर्दन आदि का प्रयोग करै। जो गांठ दाह से शान्त न हो तौ उसका चीरना हित है। इस ग्रन्थि के दाह और पाक से क्लिन्न होनेपर व्रण की रीति से वाह्य और आभ्यान्तरिक शोधन रोपण द्वारा चिकित्सा करै॥

ग्रन्थिव्रणकीचिकित्सा।

कम्पिल्यर्कविडङ्गानिदार्वीकारञ्जकंफलम्॥पिष्ट्वातैलंविपक्तव्यंग्रन्थिव्रणाचिकित्सितम्। द्विव्रणीयोपदिष्टेनकर्म्मणा चाप्युपाचरेत्॥ देशकालप्रमाणज्ञोव्रण ग्रन्थिविसर्पवित्।

अर्थ—कवीला, वायविडंग, दारुहल्दीं, कंजेके फल, इनको पीसकर तैल में पकाकर ग्रन्थिव्रण पर लगावै। तथा देशकाल और प्रमाणको जाननेवाला वैद्यद्विव्रणीय चिकित्सित प्रकरण में कहेहुये प्रयोगोंको भी इस जगह प्रयुक्त करै।

गलगण्डकीचिकित्साकाक्रम।

यएवविधिरुद्दिष्टोग्रन्थीनांविनिवृत्तये॥ सएवगलगण्डानांकफजानांनिवृत्तये। सर्वेचगलगण्डास्तुयेकफानुगतानृणाम्॥ घृतक्षारकषायाणामाभ्यासान्नभवन्तिते।

अर्थ—ग्रन्थियों के दूर करने के लिये जो २ विधि यहां वर्णन कीगई हैं, वेही कफज गलगण्ड के दूर करने में उपयोगी होती हैं। कफ से उत्पन्न हुए सब प्रकार के गलगण्ड घी, क्षार और कषाय का अभ्यास करने से नहीं होने पाते।

रक्तमोक्षणकी उत्कृष्टता।

यानीहोक्तानिकर्माणिवीसर्पाणांनिवृत्तये॥ एकतस्तानिसर्वाणिरक्तमोक्षणमेकतः। विसर्पोनह्यसंसृष्टोरक्तपित्तेनजायते॥ तस्मात्साधारणंसर्वमुक्तमेतच्चिकित्सितम्। विशेषोदोषवैषम्यान्नचनोक्तःसमासतः॥ समासव्यासनिर्दिष्टांक्रियांविद्यानुपाचरेत्।

अर्थ—विसर्पों की शान्ति के निमित्त जो कर्म वर्णन किये गये हैं वे सब एक ओर हैं और रक्तमोक्षण एक ओर हैं, क्योंकि रक्तपित्तकी संसृष्टता के विना विसर्प होता ही नहीं है। इसतरह सम्पूर्ण विसर्पों की साधारण चिकित्सा वर्णन कीगई है। तथा दोषों की भिन्नता के कारण यह वर्णन सर्वथा संक्षिप्त भी नहीं है। इस संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन के अनुसारही चिकित्सा करना योग्य है।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन।

निरुक्तंनामभेदाश्चदोषादूष्याणिहेतवः। आश्रयोमार्गतश्चैवत्रीसर्पगुरुलाघवम्॥ लिङ्गान्युपद्रवायेचयल्लक्षणउपद्रवाः। साध्यत्वंनचसाध्यानांसाधनञ्चयथाक्रमम्। इतिपिप्रच्छवेसिद्धिमाग्निवेशायधीमते॥ उक्तंभगवताह्येतद्वीसर्पाणांचिकित्सिते।

अर्थ—इस विसर्प चिकित्सिताध्याय में भगवान् आत्रेय ने चतुराशिरोमाणि और

जिज्ञासु अग्निवेश को विसर्प की निरुक्ति नामभेद, दोष, दूष्य, हेतु, आश्रय, विसर्प के मार्ग, गुरुता, लघुता, लिंग, उपद्रव, उपद्रवों के लक्षण, साध्यासाध्य वर्णन, साध्य विसर्पों की यथा क्रम चिकित्सा का वर्णन सुनाया।

इति श्री भाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां चिकित्सित स्थाने वीसर्प चिकित्सितं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः ॥

अथातोमदात्ययचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले- कि अब हम मदात्ययचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

सुरैःसुरेशसहितैर्यापुराप्रतिपूजिता। सौत्रामण्यांहूयतेयाकर्म्मभिर्याप्रतिष्ठिता ॥ यज्ञेचयाययाशक्रसोमानिपिबतोभृशम्। निरुजस्तमसाविष्टःतस्माद्दुर्गात्समुद्धृतः। विधिभिर्वेदविहितैर्यायजद्भिर्महात्मभिः। दृश्यास्पृश्याप्रकल्प्याचयज्ञिया यज्ञसिद्धये ॥ योनिसंस्कारनामाद्यैर्विशेषैर्बहुधाचया। भूत्वाभवत्येकविधा सामान्यान्मदलक्षणात् ॥ यादेवानमृतंभूत्वास्वधाभूत्वापितृंश्चया। सोमोभूत्वाद्विजातीन्यायुङ्क्तेश्रेयोभिरुत्तमैः ॥ आश्विनंयामहत्तेजावीर्य्यंसारस्वतश्चया। बलमैंद्रश्चयासोमःसौत्रामण्याञ्चयामता ॥ शोकारतिभयोद्वेगनाशनीयामहाबला। यामीतिर्यारतिर्यावाग्यापुष्टिर्याचनिर्वृतिः यासुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषैः। रतिःसुरेत्यभिहितातांसुरांविधिनापिबेत् ॥

अर्थ—जिस मदिरा का अमरेश्वर इन्द्र ने पूर्वकाल में पूजन किया है, जिसकी सूत्रामणि हवन में आहुति दीजाती है जो वेद विहित कर्मों से प्रतिष्ठित होती हैं, जो सोमपान करनेवाले इन्द्र के यज्ञमे हित है। तमसाविष्ट इन्द्र जिस के पान से निरोग तथा क्लेशसे उद्धृत होगया। यज्ञ में उपयोगी यह सुरायज्ञ की सिद्धि के लिये वेदविहित कर्मोंके द्वारा यजकरनेवाले महात्माओं से दर्शन के योग्य, छूने के योग्य, और कल्पना करने के योग्य की जाती है। यह सुरा अनेक द्रव्यों से बनाये जाने के कारण वा अनेक नाम भेद से अनेक प्रकारकी होती है परन्तु 'नशा होना, यह एक साधारण धर्म सब में है इस से अनेक प्रकार के मद्य भी एकही प्रकार के माने जाते हैं। यह सुरा अमृतरूप होकर देवताओं की, स्वधा होकर पित्रीश्वरों की और सोम होकर द्विजन्माओं की शोभा और कान्ति को बढाती है। यह सुरा स्वर्ग वैद्य अश्विनी कुमार का महत्तेज है, सरस्वती का वीर्य है, इन्द्रका वल है और सूत्रामणि यज्ञ में सोम के सदृश है। यह सुरा शोक, अरति, भय उद्वेग का नाश करने वाली है, अत्यन्त वल को बढाने वाली है, यही सुरा, प्रीति, रति, वाणी,

पुष्टि और निवृत्ति की साक्षात् मूर्त्ति है । जिस सुराको देवता असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, मनुष्य रति नामसे पुकारते हैं, उस सुराको विधि पूर्वक पानकरै । (विधिपूर्वक कहने का यही तात्पर्य्य है कि इस के पान में व्यतिक्रमहोने से यह पूर्वोक्त गुणों से विपरीत फल देती है)।

सुरापानकी विधि ।

शरीरकृतसंस्कारःशुचिरुत्तमगन्धवान् ।
प्रावृतोनिर्मलैर्वस्त्रैर्यथर्तूद्दामगन्धिभिः ॥
विचित्रविविधस्रग्वीरत्नाभरणभूषितः ।
देवद्विजातीन्संपूज्यस्पृष्ट्वामङ्गलमुत्तमम् ।
देशेयथर्तुकेसृष्टेकुसुमप्रकरीकृते ॥ संवा
ससंमतेमुख्येधूपसंमोदबोधिते । सोपधा
धनेसुसंस्तीर्णेविहितेशयनासने ॥ उपा
विष्टोऽथवातिर्यक्स्वशरीरमुखेस्थितः ।
सौवर्णेराजतैश्चापितथामणिमयैरपि ॥
भाजनैर्विमलैश्चित्रैःसुकृतैश्चपिबेत्सदा ।
स्त्रीभिर्यौवनमत्ताभिःशिक्षिताभिर्यथर्तुकैः
वस्त्राभरणमाल्यैश्चभूषिताभिर्विभितः ।
शौचानुरागयुक्ताभिःप्रमदाभिरितस्ततः॥
संवाह्यमानइष्टाभिःपिबेन्मद्यमनूत्तमम् ।
पिबेन्मद्यानुकूलैर्वाफलैर्हरितकैःशुभैः ॥
लवणैर्गन्धपिशुनैर्वरदंशैर्यथर्तुकैः । भृष्टै
र्मांसैर्बहुविधैर्भूजलाम्बरचारिणाम् ॥
पौरगवजविहितैर्भक्ष्यैश्चविविधात्मकैः ।

अर्थ—वमन विरेचन के पश्चात् देह के शुद्ध होने पर पवित्र, उत्तम सुगान्धित पदार्थों से युक्त होकर सुगंधित निर्मल वस्त्रों को धारण करै अनेक प्रकार के पुष्पों की माला धारण करै, तरह तरह के रत्नजटित आभूषणों को पहरै देवता और द्विजों की पूजाकरके मंगलद्रव्यों का स्पर्श करै। तदन्तर ऋतु के अनुकूल अनेक प्रकार के पुष्पों से निर्म्मित, सुगंधित द्रव्यों से धूपित, वसने योग्य स्थान में एक शय्या विछवावै जिस पै मनोऽनुकूल तोसक तकिये लगरहे हों, उस शय्या वा आसन पर वैठकर अथवा मुख फेर कर सोने, चांदी वा मणिमय निर्मल, चित्र विचित्र और अच्छे वने हुए पात्र में मद्यको भरकर पान किया करै । यौवन के मद में चूर, सुशिक्षित, ऋतुके अनुकूल वस्त्र आभूषण, मालाओं से अलंकृत, आभूषणों से भूषित, शौच और अनुराग से युक्त, मनोहारिणी स्त्रियां देह पर इधर विधर हाथ फेरती हों । मद पानके पश्चात् मद्यानुकूल उत्तम हरे फल वा ऋतु के अनुकूल नमकीन और सुगंधित अवदंशादि (माजून, चटनी इत्यादि) का सेवन करै ॥ अनेक प्रकार के थलचर जलचर, आकाशचर जीवों का मांस भून कर उन में नमक सुगंध द्रव्य आदि मसाले डालकर अनेक प्रकार के वनाकर सेवन करै।

दोषानुसार मद्यपान विधि ।

पूजयित्वासुरान्पूर्वमाशिषःप्राक्प्रयुज्यच
प्रदायसजलंमद्यमादितोवसुधातले ।
अभ्यङ्गोत्सादनस्नानवासोधूमानुलेपनैः
स्निग्धोष्णैर्भावितैश्चान्नैर्वातिकेमद्यमा
चरेत् । शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरास्निग्ध
शीतलैः । पैत्तिकोभावितश्चान्नैःपिवे

न्मद्यंनसीदति ॥ उपचारैरशिशिरैर्यव गोधूमभुक्पिवेत् । श्लैष्मिकैर्धन्वजैर्मांसैर्मद्यंमारिचकैःसह ॥ विधिर्वसुमतामेषभविष्यद्विभवाश्चये । यथोपपत्तिकैर्मद्यैर्पातव्यंमात्रयाहितम् ॥

अर्थ—प्रथम देवताओं का पूजन कर के मंगल पाठकरै फिर मद्य में थोड़ासा जल मिलाकर पृथ्वी पर डाल देवै । तदनन्तर वातप्रकृति वाला मनुष्य अभ्यंग, उवटना स्नानकरके, कपडे पहनकर, धूमपानकरके चन्दन, लगाके स्निग्ध और उष्ण अन्नके साथ मद्यका सेवन करै । पित्तप्रकृति वाला पुरुष अनेक प्रकार के शीतल उपचारों के पीछे मधुर, स्निग्ध और शीतल अन्नों के साथ मद्यका सेवन करै । इसी तरह कफप्रकृति वाला पुरुष उष्ण उपचारों के करने के पश्चात् गेंहू के पदार्थ और काली मिरच डालकर सिद्ध किये-हुए धन्वज पशुओं के मांस के साथ मद्यपान करै ।

जो मनुष्य धनपात्र है, वा भविष्यत् में धनपात्र होना चाहते हैं वे ऊपर कही हुई विधि के अनुसार प्रमाण पूर्वक मद्य का पान करैं ।

प्रकृत्यनुसार पेयमद्य ।

वातकेभ्योहितंमद्यंप्रायोगौडिकपैष्टिकम् कफपित्ताधिकेभ्यस्तुफालमाधवशर्करम् । वहुद्रवंवहुगुणंवहुकर्म्मप्रदात्मकम् ॥ गुणैर्दोषैश्चतन्मद्यमुभयैरुपदेक्ष्यते ।

अर्थ—वातप्रकृतिवाले पुरुषों को प्रायः गुड़ से बना हुआ और पिष्टक से वना हुआ मद्यहित है, कफप्रकृति तथा पित्त प्रकृति वालों को फल, मधु और शर्करा से वना हुआ हित होता है ।

मद्य अत्यन्त पतला होता है यह अनेक प्रकार के कर्म और गुणों का करने वाला है । अव मद्य के गुण और दोष वर्णन किये जाते हैं ।

मद्यके गुणदोष ।

विधिनामात्रयाकालेहितैरन्नैर्यथावलम् ॥ प्रहृष्टोयःपिवेन्मद्यंतस्यस्यादमृतोपमम् । यथोपेतंपुनर्मद्यंप्रसंगाद्येनपीयते ॥ रूक्षव्यायामनित्येनविषवद्यातितस्यतत् । मद्यंहृदयमाविश्यस्वगुणैरोजसोगुणान् ॥ दशभिर्दशसंक्षोभ्यंचेतोनयतिविक्रियाम् ॥

अर्थ—उचित समय में विधि पूर्वक मात्रावत् और हितकारी अन्न के साथ वल के अनुसार प्रसन्न चित्त से मद्य पान करै । तौ वह मद्य अमृतके समान गुणकारक होताहै । और जो रूक्ष और परिश्रमी मनुष्य यथा प्राप्त मद्यको अत्यन्त प्रसंगसे पीलेता है उसको विष के समान है ।

मद्य हृदय में प्रवेश करके अपने दशगुणों से ओजोधातु के दशगुणों को क्षुभित करके चित्त में बिकार उत्पन्न करता है ।

मद्यकेदशगुण ।

लघूष्णतीक्ष्णसूक्ष्माम्लव्यवायाशुगमेन च ॥ रूक्षंविकासिविषदंमद्यंदशगुणंस्मृतम् ।

अर्थ—मद्य में दश प्रकार के गुण होते

हैं, यथा—हलकापन, उष्णता, तीक्ष्णता, सूक्ष्मता, खटाई, व्यवायत्व, शीघ्रगामित्व, रूक्षता, विकासित्व और विषदता ।

ओजोधातुकेदशगुण।

गुरुशीतंमृदुश्लक्ष्णंवहुलंमधुरंस्थिरम् ॥ प्रसन्नंपिच्छिलंस्निग्धंओजोदशगुणंतथा॥

अर्थ—भारीपन, शीतलता, मृदुता, श्लक्ष्णता, वहुलता, मधुरता, स्थिरता, प्रसन्नता, पिच्छिलता और स्निग्धता ये दश गुण ओजोधातु के हैं ।

मद्यगुणोंसेओजकेगुणोंकानाश ।

गुरुत्वलाघवाच्छैत्यंचौष्ण्यादम्लस्वभावतः । माधुर्यमार्दवंतैक्ष्ण्यात्प्रसादश्चाशुभावनात्॥ रौक्ष्यात्स्नेहंव्यवायित्वात्स्थिरत्वंश्लक्ष्णतामपि । विकासिभावात्पैच्छिल्यंवैशद्यात्सान्द्रतांतथा । सौक्ष्म्यान्मद्यंविहन्त्येवमोजसःस्वगुणैर्गुणान् ॥

अर्थ—मद्य के दशगुणों से ओजोधातु के दशगुणों का नाश नीचे लिखीहुई रीति से होता है । यथा—मद्य के हलकापन से ओज का भारापन उष्णता से शीतलता अम्लता से मधुरता तीक्ष्णता से मृदुता, शीघ्रगामित्व से स्वच्छता, रूखापन से चिकनाई, व्यवायिता से स्थिरता, विकासिता से श्लक्षणता, पिच्छिलता से विशव्दता और सूक्ष्मता से गाढ़ेपन का नाश होता है ॥

नशेकाकारण ।

सत्वंनदाश्रयंचाशुसंक्षोभ्यजनयेन्मदम् ।

अर्थ—मन ओजोधातु के आश्रित है अतएव ओजोधातु के नष्ट होने से शीघ्रही मद उत्पन्न होता है ।

रसधात्वादिमार्गाणांसत्वबुद्धीन्द्रियात्मनाम्॥ प्रधानस्यौजसश्चैवहृदयस्थानमुच्यते । अतिपीतेनमद्येनविहतेनोजसाचतत् ॥ हृदयंयातिवैकृत्यंतत्रस्थायेच धातवः ।

अर्थ—हृदय रसादि धातुओं का मार्ग है, मन, बुद्धि, इन्द्रियगण, आत्मा और प्रधान ओजोधातु का स्थान है । अत्यन्त मद्यपान करने से ओजोधातु नष्ट होजाती है उस ओजोधातुके नष्ट होने से हृदय विकृत होजाता है और हृदयस्थ धातु भी नष्ट होजाती हैं ।

मद्यको पूर्वापरत्व ।

ओजस्यविहितेपूर्वेहृदिचप्रतिवोधिते ॥ मध्यमोविहतेऽल्पेचविहतेतूत्तमोमदः ।

अर्थ—जितने मद्य के पान से ओज अविहित हो और हृदय में चैतन्यता हो उसको पूर्वमद कहते हैं । ओज के अल्पविहत होनेपर मध्यममद और सर्वथा विहत होनेपर उत्तममद कहाता है

पैष्टिकमद्यकेगुण ।

नैवंविधातंजनयेन्मद्यंपैष्टिकमोजसः ॥ विकासरूक्षविषदागुणास्तत्रहिनोल्वणाः

अर्थ—पैष्टिकमद्य ओजोधातुमें ऐसा विकार कभी उत्पन्न नहीं करता है, क्योंकि इस में विकासी, रूक्ष और विषद ये गुण अधिक नहीं होते हैं ॥

मद्यगुणाविष्टकेलक्षण ।

हृदिमद्यगुणाविष्टेहर्षस्तर्षोरतिःसुखम् ।

अर्थ—हृदय के मद्यगुण से आविष्ट होने पर हर्ष, तर्ष (इच्छा), रति और सुख ये उत्पन्न होते हैं ।

अतिसेवितमद्यकेउपद्रव ।

विकाराश्चयथासत्त्वंचित्राराजसतमसाः जायन्तेमोहनिद्रान्तामद्यस्यातिनिषेवणात् ॥ समद्यविभ्रमोनाम्नामदइत्यभिधीयते ।

अर्थ—मद्य के अत्यन्त पीने से जैसा मनुष्य होता है उसी के अनुसार अनेक प्रकार के रजोगुण और तमोगुण उत्पन्न होते हैं मोह तथा निद्रा की उत्पत्ति भी होती है । इसीदशा को मद्य विभ्रम वा मद कहते हैं ॥

मद्यकेभेद ।

पीयमानस्यमद्यस्याविज्ञातव्यास्त्रयोमदाः । प्रथमोमध्यमोऽन्त्यश्चलक्षणैस्तान्प्रवक्ष्यते ।

अर्थ—मद्यपान से तीनप्रकार का नशा उत्पन्न होता है, यथा-प्रथम, मध्यम और अन्त्यम । अब इनमें से प्रत्येक के लक्षण कहते हैं ॥

प्रथममदकेलक्षण ।

प्रहर्षणःप्रीतिकरःपानान्नगुणदर्शकः ॥ वाद्यगीतप्रहासानांकथानाञ्चप्रवर्त्तकः । नचबुद्धिस्मृतिहरोविषयेषुनचाक्षमः ॥ सुखनिद्राप्रबोधश्चप्रथमःससुखोमदः ।

अर्थ—प्रथममद हर्षवर्द्धक, प्रीतिकारक अन्नपान के गुणोंका दिखानेवाला, बाजा, गीत, प्रहास और अनेक प्रकारकी वार्ताओं का प्रवर्त्तक होता है, इस से बुद्धि और स्मृति का नाश नहीं होता, इन्द्रिय विषयोंमें असमर्थता नहीं होती, सोने और जागने में सुख होता है ॥

मध्यममदकेलक्षण ।

मुहुःस्मृतिर्मुहुर्मोहोव्यक्तासज्जतिवाङ्मुहुः युक्तायुक्तप्रलापश्चप्रचलायनमेवच । स्थानपानान्नसांकथ्येयोजनासविपर्यया लिङ्गान्येतानिजानीयादाविष्टेमध्यमेमदे ।

अर्थ—मध्यममद में कभी स्मृति कभी मोह, कभी वारातिकी व्यक्तता, कभी कण्ठ का विरजाना, युक्त और अयुक्त प्रलाप, कभी चलना, कभी बैठजाना, कभी खाना कभी पीना आदि विपर्य्ययकर्म होते हैं ॥

मध्यममदकानिषेध ।

मध्यमंमदमुत्क्रम्यमदमप्राप्यचोत्तमम् ॥ नकिञ्चिन्नाशुभंकुर्युर्नराराजसतामसाः । कोमदंतादृशंविद्वानुन्मादमिबदारुणम् ॥ गच्छेदध्वानमस्वन्तंबहुदोषमिवाध्वगः ॥ तृतीयंतुमदंप्राप्यभग्नदार्वीवनिष्क्रियः ॥

अर्थ—रजोगुणी और तमोगुणी मनुष्यों को जो उत्तममद प्राप्त न हो तब मध्यममद को प्राप्त कर के अनेक प्रकार के अशुभकर्म कर बैठते हैं । इस भयानक मध्यममद का इसतरह त्यागकर दैना चाहिये जैसे यात्री बहुत विघ्नों से युक्त मार्ग का परित्याग करदेतेहैं ।

तृतीय मद के लक्षण ।

मदमोहावृतमनाजीवन्नपिमृतैःसमः । रमणीयान्सविषयान्नवेत्तिनसुहृज्जनम् ॥ यदर्थंपीयतेमद्यंरतिंतांचनविन्दति । कार्य्याकार्य्यंसुखंदुःखंलोकेयच्चहिताहितम् । यदवस्थोनजानातिकोऽवस्थांतांव्रजेद्बुधः सदूष्यःसर्वभूतानांनिन्द्यश्चाग्राह्यएवच ॥ व्यसनित्वादुदर्केचसदुःखंव्याधिमश्नुते ।

अर्थ—तीसरे मद के होने से मनुष्य टूटी लकड़ी की तरह निष्काम होजाता है, उसका मन मद और मोहसे आवृत होने के कारण वह जीता हुआ भी मरे हुए के समान होता है, उस दशा में उसको भोग्य विषय और सुहृज्जनों का भी ज्ञान नहीं रहता हैं । जिस रति विलास के लिये वह मद्यपान करता है उसका आनन्द भी उस के हाथ नहीं लगता है । जिस अवस्था के प्राप्त होने से कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म, सुख दुःख और हिताहित का ज्ञान नहीं रहता है, उस अवस्था को प्राप्त करने की कोनसा बुद्धिमान् इच्छा करता है। ऐसा मद्यपापी मनुष्य सब प्राणियों की दृष्टि में दूष्य, निन्दनीय और अग्राह्य होजाता है और बुढ़ापे में पूर्व दुर्व्यसनों के कारण कृच्छ्रसाध्य व्याधियों से ग्रस्त होजाता है ।

मदकेअवगुण ।

प्रेत्यचेहचयच्छ्रेयःश्रेयोमोक्षश्चयत्परम् ॥ मनःसमाधौतत्सर्वमायत्तंसर्वदेहिनाम् । मद्येनमनसश्चास्यसंक्षोभःक्रियतेमहान् । महामारुतवेगेनतटस्थस्येवशाखिनः ।

अर्थ—इस लोक और परलोक में जो श्रेयपदार्थ हैं और जो उत्तमोक्ष है वह प्राणियों की मनकी एकाग्रता पर निर्भर हैं । यह एकाग्रता मद्यपान से नष्ट होजाती है, जैसे वायु के वेग से किनारे के वृक्ष उखड़ पड़ते हैं ।

मद के अन्य अवगुण ।

मद्यप्रसङ्गमज्ञानंमहादोषंमहागदम् ॥ सुखमित्यधिगच्छन्तिरजोमोहपराजिताः ॥ मद्योपहतविज्ञानावियुक्ताःसात्त्विकैर्गुणैः॥ श्रेयोभिर्विप्रयुज्यन्तेमदान्धामदलालसाः। मद्येमोहोभयंशोकःक्रोधोमृत्युश्चसंश्रिताः। सोन्मादमदमूर्च्छाद्याःसापस्मारापतानकाः ॥ यत्रैकःस्मृतिविभ्रंशस्तत्रसर्वमसाधुवत् । इत्येवंमद्यदोषज्ञामद्यंगर्हन्तितत्त्वतः ॥

अर्थ—मद्य में आसक्ति का होना अज्ञान, महादोष और भयंकर रोगों का उत्पन्न करने वाला है । रज और मोह से पराभव हुए मनुष्यों को इस में सुख सूझता है । मदान्ध और मद की लालसा करनेवाले मनुष्य मद्यपान से ज्ञान रहित होजाते हैं, उनके सतोगुण नष्ट होजाते हैं और श्रेयस्कर पदार्थों से वह विमुख होजाता है। मद्यपान में मोह, भय, शोक, क्रोध, मृत्यु, उन्माद, मद, मूर्च्छा, अपस्मार और अपतानक इतने उपद्रव आश्रित रहते हैं, मद्य में स्मृतिविभ्रंश एक सब में भारी दोष है इसी से सम्पूर्ण उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

इस तरह मद्य के दोषों के जानने वालों ने मद्यकी निन्दाकी है।

युक्ति वर्जित मद्यपान के दोष।

सत्यमेतेमहादोषामद्यस्योक्तानसंशयः। अहितस्यातिमात्रस्यपीतस्यविधिवर्ज्जनम्
किन्तुमद्यंस्वभावेनयथैवान्नंतथास्मृतम्। नयुक्तियुक्तंरोगाययुक्तियुक्तंतथामृतम्॥
प्राणःप्राणभृतामन्नंतदयुक्त्यानिहन्त्यसून्। विषंप्राणहरंतच्चयुक्तियुक्तंरसायनम्॥

अर्थ—विधि रहित अहितकारी मद्यका अत्यन्त पान करने से जो महादोष मद्य के कहे गये हैं वे ठीक ही हैं, उन में कोई संदेह नहीं है, परन्तु मद्य का और अन्नका स्वभाव एकसा है। विना युक्ति से युक्त किया मद्य रोगों को उत्पन्न करता है और उसीका युक्ति पूर्वक सेवन करना अमृत के समान गुणकारी है, जैसे युक्ति-पूर्वक अन्नका सेवन करनेसे प्राणोंका पोषण होता है और अयुक्ति पूर्वक सेवन करने से प्राणों का हरण कर लेता है। जो विष प्राणों का नष्ट करने वाला है उसी का युक्ति पूर्वक सेवन करने से रसायन का काम देता है।

युक्ति पूर्वक मद्यके गुण।

हर्षमूर्ज्जांमदंपुष्टिमारोग्यंपौरुषंपरम्। युक्त्यापीतंकरोत्याशुमद्यंमदसुखावहम्॥
रोचनंदीपनंहृद्यंस्वरवर्णप्रसादनम्। प्रीणनंबृंहणंबल्यंभयशोकश्रमापहम्॥ स्वापनंनष्टनिद्राणांमूकानांवाग्विबोधनम्। बोधनञ्चातिनिद्राणांविबद्धानांविबन्धनुत्॥ वधबन्धपरिक्लेशदुःखानाञ्चावमोहनम्। मदोत्थानाञ्चरोगाणांमद्यमेव प्रसाधकम्॥ रतिविषयसंयोगोप्रीतिसंयोगवर्द्धनम्। अतिप्रवयसांमद्यमुत्सवामोदकारकम्॥

अर्थ—युक्ति पूर्वक मद्य के सेवन से हर्ष, उत्साह, मद, पुष्टि, अरोगिता और अत्यन्त पुरुषार्थ वढता है, मद्यका मद सुख प्रवोधक होता है। यह रुचि वर्द्धक अग्निसंदीपन, हृदयको हितकारी, स्वर और वर्णको वढाने वाला, प्रीणनकर्त्ता, वृंहणकर्त्ता वलकर्त्ता भयनाशक, शोक हर्त्ता, श्रम नाशक है जिस की निद्रा नष्ट होगई हो उसको नींद आजाती है, गूंगों की वोली खुलजाती है, अतिनिद्रित अर्थात् गाफिलों को चेत होजाता है, जिनको दस्तकी कवजियत होती है उन का कब्ज मिट जाता है। बध बन्ध, परिक्लेश और दुःखों का इस से नाश होजाता है, मदसे उत्पन्न हुए रोगों को मदही दूर करता है, यह रति विषय में संयोजक, प्रीति के संयोग का वर्द्धक, वृद्धमनुष्यों को आल्हाद और आमोद का उत्पन्न करने वाला है॥

प्रथम मद के गुण।

पञ्चस्वर्थेषुकान्तेषुयारतिःप्रथमेपदे। यूनांवास्थविराणांवातस्यनास्त्युपमाभुवि॥
बहुदुःखकृतस्यास्यशोकेनोपहतस्यच। विश्रामोजीवलोकस्यमदंयुक्त्यानिषेवितम्॥

अर्थ—मदकी प्रथमावस्था में युवा और

वृद्ध मनुष्यों को जो आनन्द पांचों इन्द्रियों के विषयों में प्राप्त होता है उसकी उपमा पृथ्वी में नहीं है। युक्ति पूर्वक सेवन किया हुआ मद बहुत दुःखों से व्याप्त और शोक से उपहत प्राणियों के लिये विश्राम दायक है।

मद्यपान में कर्त्तव्य।

अन्नपानवयोव्याधिवलकालत्रिकाणि षट्। त्रीन्दोषांस्त्रिविधसत्त्वंज्ञात्वामद्यं पिबेत्सदा ॥

अर्थ—अन्न, पान, वय, व्याधि, बल कालकी तीन अवस्था ये सब छः और तीनों दोष, तीनों प्रकार का सत्व इनको विचार के मद्यपान करै।

तेषांत्रिकाणामष्टानांयोजनायुक्तिरुच्यते। यथायुक्त्यापिबेन्मद्यंमद्यदोषैर्नयुज्यते ॥ मद्यस्यचगुणान्सर्वान्यथोक्तान्समुपाश्नुते। धर्मार्थयोरपीडार्थैर्नरःसत्त्वगुणोच्छ्रितः ॥

अर्थ—इन आठों की तीन तीन युक्तियों के अनुसार मद्यका योग करना मद्य की युक्ति कहाती है। युक्ति पूर्वक मद्य के सेवन मद्य के दोष नहीं होने पाते,और मद्य के यथोक्त सम्पूर्ण गुण भोगने में आते हैं, तथा धर्मार्थ के अव पीड़न और सतोगुणके वढ़ने से आनन्द प्राप्त होता है।

सत्त्वानितुप्रबुध्यन्तेप्रायशःप्रथमेमदे। द्वितीयेव्यक्ततांयातिमदेचोत्तममध्ययोः ॥ सत्त्वसम्बोधकंहर्षंहेमप्रकृतिदर्शकः। यथाग्निरेवंसत्त्वानांमद्यंप्रकृतिदर्शकम् ॥

अर्थ—उत्तम और मध्यम प्रकृतिवाले मनुष्यों के प्रथम मद में सम्पूर्ण सत्व प्रवुद्ध होते हैं और मध्यम मद में सम्पूर्ण सत्व व्यक्त अर्थात् स्पष्ट होजाते हैं, जैसे अग्नि से सुवर्ण की प्रकृति दीखने लगती है उसी तरह मद्य भी सत्व सम्बोधक; हर्षवर्द्धक और प्रकृति दर्शक होता है॥

सुगन्धमाल्यगन्धैर्वासुप्रणीतमनाकुलम्। मिष्टान्नपानविशदंसदामधुरसंकथम् ॥ सुखप्रमाणंसुमदंप्रहर्षप्रीतिवर्द्धनम्। स्वन्तंसात्त्विकमापन्नंनचोत्तममदप्रदम् ॥

अर्थ—सुगंधित गंधमाला को धारण कर के, सुन्दर बनायेहुए निर्मल मिष्टान्न-पान के साथ प्रमाण से सेवन कियाहुआ मद्य तथा मिष्टवार्ताओं से युक्तिपूर्वक सेवन किया हुआ मद्य उत्तम नशा करता है, हर्ष और प्रीति को वढ़ाता है यह मद अन्त में सात्विकता उत्पन्न करता है तथा इससे उत्तम और कोई मद नहीं है।

वैगुण्यंसहसायान्तिमद्यदोषैर्नसात्त्विकाः। मद्यंहिवलवत्सत्त्वंमृद्नातिसहसानतु ॥

अर्थ—मद्य के दोषसे सत्वप्रकृति पुरुष शीघ्रही विगुणताको प्राप्त नहीं होजातेहैं। मद्य वलवान् सत्व को सहसा पराजित नहीं करसक्ता है।

राजसादिप्रकृतिमद्यकेकर्म।

सौम्यासौम्यकथाप्रायंबिषदाविषदंक्षणात्। चित्रंराजसमापानंप्रायेणास्वन्तमाकुलम् ॥ हर्षस्मृतिकथोपेतमतुष्टंपानभोज

ने । संमोहक्रोधनिद्रार्त्तमापानंतामसं स्मृतम् ॥

अर्थ—राजसप्रकृतिवाला मनुष्य मद्यके पीने से कभी सौम्य कभी असौम्य बातें करने लगता है, क्षणभरमें विशद और क्षणभर में अविशद भाव को ग्रहण करता है, उस के स्वभाव में एक तरह की विचित्रता पैदा होजाती है, अन्त में प्रायः आकुल होजाता है। इसको हर्ष, स्मरण और कथोपकथन बढ़जाता है, खाने पीने में तुष्टि नहीं होती है जिस में मोह क्रोध और निद्रा पीनेवाले को घेरलेते हैं उसे तामस आपान कहते हैं।

आपानेसात्त्विकानबुद्ध्वातथाराजसतामसान् । जह्यात्सहायान्यैःपीत्वासहदोषानुपाश्नुने ॥

अर्थ—मदिरालय में सात्विक, राजस और तामसों का विचार कर के जिन के साथ मद्यपान करने से दोष बढ़ते हों उन का परित्याग करदेवै ॥

मद्यपानकेयोग्यसाथी ।

सुखशीलाःसुसंभाषाःसुमुखाःसंमताःसताम् । कलासुबाक्यविषदाविषयप्रवणाश्रये ॥ परस्परविधेयायेयेषामैक्यंसुहृत्तया । प्रहर्षप्रीतिमाधुर्य्यैरापानंवर्द्धयन्तिये ॥ उत्सवादुत्सवतरंयेषामन्योन्यदर्शनम् ।तेसहायाःसुखाःपानैःतैःपिवन्सहमोदते ॥ रूपगन्धरसस्पर्शैःशब्दैश्चापिमनोरमैः । पिवन्तिसुसहायायेतेवैसुकृतिभिःसमाः । पञ्चभिर्विषयैरिष्टैरुपेतैर्मनसःप्रियैः । देशेकालेपिवेन्मद्यंप्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥

अर्थ—जिन मनुष्यों का स्वभाव शीलसम्पन्न हो, जो मधुरभाषी, सुमुख, सत्संगी हों जो कलाकुशल, वात कहने में प्रवीण, विषयों में लीन, परस्परस्नेही, ऐक्यतायुक्त सुहृदता सम्पन्न हों, जो मदिरालय में हर्ष प्रीति, और मधुरता को बढ़ावें। जिन के एक दूसरे से मिलने में अत्यन्त आनन्द की वृद्धि हो। ऐसे मनुष्यों के साथ मद्य पान करने से सुख बढ़ता है और इन्हींके साथ में मद्यपान करना चाहिये।

मनकोहरण करनेवाले रूप, रस, गंध, स्पर्श तथा शब्दों के बीच में उत्तम साथियों के साथ जो मद्यपान करते हैं वे वड़े सुकृती पुरूष होते हैं।

उत्तमदेश काल में अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे मनोऽनुकूल शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध इन पांच विषयों से युक्त होकर मद्यपान करना चाहिये।

स्थिरसत्त्वशरीरायेपुराणामद्यपान्वयाः। वहुमद्योचितायेचमाद्यन्तिसहसानते ॥ प्राक्मद्याःक्षुत्पिपासार्त्तादुर्बलावातपैत्तिकाः। रूक्षाल्पप्रमिताहाराविस्तब्धाःसत्त्वदुर्बलाः ॥ क्रोधिनोऽनुचिताःक्षीणाः परिश्रान्तामदक्षताः। अल्पैनापिमदंशीघ्रंयान्तिमद्येनमानवाः ॥

अर्थ—जिस मनुष्य का मन और शरीर स्थिर है, जिसके कुटुम्ब में मद्य पीतेआये हैं, जो वहुत मदिरा पीने का अभ्यास

रखते हैं उनको नशा वहुत शीघ्र नहींहोता जो क्षुधा और प्यास से आतुर हैं, दुर्बल हैं, वात पित्त की प्रकृति वाले हैं, जो रूखा थोड़ा और प्रमित भोजन करते हैं, जो विस्तब्ध हैं, जिनका मन दुर्बल है,जो क्रोधी हैं, जिनको मद्यपान का अभ्यास नहीं है, जो क्षीण, थकेहुए और मद से क्षत हैं, ऐसे मनुष्यों को थोड़ा भी मद्य पीने से वहुत शीघ्रनशा होजाता है ।

ऊर्ध्वंमदात्ययस्यातःसम्भवंस्वस्वलक्षणम् । अग्निवेश ! चिकित्साञ्चप्रवक्ष्यामियथाक्रमम् ॥

अर्थ—हे अग्निवेश ! अव यहां से मदात्यय की उत्पत्ति, लक्षण और पृथक् २ चिकित्सा का क्रम से वर्णन करेंगे ।

वातप्रायमदात्ययकीउत्पत्तिकाकारण ।

स्त्रीशोकभयभाराध्वकर्म्मभिर्योऽतिकर्षितः । रूक्षाल्पप्रमिताशीवायःपिवत्यतिमात्रया ॥ रूक्षंपरिणतंमद्यंनिशिनिद्रांविहत्यच । करोतितस्यतच्छीघ्रंवातप्रायंमदात्ययम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य अत्यन्त स्त्रीसेवन, शोक, भय, भारवहन और मार्गगमनआदि परिश्रमों से अत्यन्त कृश होगया है और रूक्ष; अल्प और प्रमित भोजन किया करता है । ऐसा मनुष्य यदि अत्यन्त मद्य पान करै तौ वह मद्य परिणाममें अत्यन्त रूक्षता को उत्पन्न करके रात्रि में निद्रा को दूर करके शीघ्रही वातजन्य मदात्यय रोगों को उत्पन्न करदेता है ।

वातिकमदात्यय के लक्षण ।

हिक्काकासशिरःकम्पपार्श्वशूलःप्रजागरैः। विद्याद्वहुप्रलापस्यवातप्रायंमदात्ययम्॥

अर्थ—हिचकी, खांसी, शिरःकम्प, पार्श्वशूल, निद्रानाश और अत्यन्त प्रलाप ये वातप्राय मदात्यय के लक्षण हैं ।

पित्तजमदात्ययका वर्णन ।

तीक्ष्णोष्णंमद्यमम्लंवायोऽतिमात्रंनिषेवते । अम्लोष्णतीक्ष्णभोजीचक्रोधनोऽग्न्यातपप्रियः ॥ तस्योपजायतेपित्ताद्विशेषेणमदात्ययः । सतुवातोल्वणस्याशुप्रशमंयातिहन्तिवा ॥ तृष्णादाहज्वरस्वेदमूर्च्छातीसारविभ्रमैः । विद्याद्धरितवर्णस्यपित्तप्रायंमदात्ययम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल मद्य का अत्यन्त सेवन करता है, तथा जो खट्टे, उष्ण और तीक्ष्ण भोजन कियाकरता है, जो अत्यन्त क्रोधी होता है तथा जिसको अग्नि और धूप अच्छे लगते हैं उसके पित्तजन्य मदात्यय उत्पन्न होता है । वातोल्वणवाले मनुष्य को पित्त जन्य मदात्यय या तौ शीघ्रही मारडालता है या अच्छा होजाता है ।

तृष्णा, दाह, ज्वर, स्वेद, मूर्च्छा. अतीसार, विभ्रम और देह का हरावर्ण ये पित्तज मदात्यय के लक्षण हैं ।

कफप्रायमदात्ययका वर्णन ।

तरुणंमधुरप्रायंगौडंपैष्टिकमेववा ॥ मधुरस्निग्धगुर्वाशीयःपिबत्यतिमात्रया । अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखेरतः॥

मद्यात्ययंकफप्रायंसशीघ्रमधिगच्छति ।
छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः॥
विद्यात्शीतपरीतस्यकफप्रायंमदात्ययम्।

अर्थ—मीठे, चिकने और भारी पदार्थों का भोजन करनेवाला मनुष्य यदि, नया, मधुरप्राय गुड़का बनाहुआ वा पैष्टिकमद्य का अत्यन्त सेवन करै और कसरत कुश्ती न करै, दिन में सोवै सुखासन वा शय्या पर पड़ारहै तौ उस के कफप्रायमदात्यय उत्पन्न होता है ।

वमन, अरुचि, हृल्लास, तन्द्रा, स्तिमिता, गौरव और शीत ये सब कफप्राय मदात्यय के लक्षण हैं ।

विषस्ययेगुणादृष्टाःसन्निपातप्रकोपणाः॥
तएवमद्येदृश्यन्तेविषेतुबलवत्तराः।हन्त्या
शुहिविषंकिञ्चित्किञ्चित्रोगायकल्प
ते॥यथाविषंतथैवान्त्योज्ञेयोमद्यकृतोमदः
तस्मात्त्रिदोषजंलिङ्गंसर्वत्रापिमदात्यये ॥
दृश्यतेरूपवैशेष्यात्पृथक्त्वंचास्यलक्ष्यते ।

अर्थ—विष के जो सन्निपात को प्रकोप करानेवाले गुण हैं वेही सम्पूर्ण गुण मद्य में दिखाई देते हैं और तब वेहीगुण विष में अत्यन्त बलवान् दिखाई देते हैं, कोई विष शीघ्रहीप्राणों का नाशकरतेहैं और कोई रोगों को उत्पन्न करते हैं । विषके सदृशही मद्यकृत अन्त्यमद्य होता है । इसी हेतु से मदात्यय रोगों में सब जगह ही त्रिदोष के लक्षण दृष्टिगतहोते हैं । केवल भिन्न २ लक्षणों के कारण उन में पृथकता दिखाई देती है ।

मदात्ययकेरूप ।

शरीरदुःखंबलवत्संमोहोहृदयव्यथा॥
अरुचिःप्रततातृष्णाज्वरःशीतोष्णलक्षणः
शिरःपार्श्वास्थिसन्धीनांविद्युत्तुल्याचवे-
दना ॥ जायतेऽतिबलाजृम्भास्फुरणंवे-
पनंश्रमः । उरोविबन्धःकासश्चहिक्काश्वा
सःप्रजागरः ॥ शरीरकम्पःकर्णाक्षिमुख
रोगस्त्रिकग्रहः । छर्द्यतीसारमुत्क्लेशोवात
पित्तकफात्मकः ॥ भ्रमःप्रलापोरूपाणा
मसतांचैवदर्शनम् । तृणभस्मलतापर्णपां
सुभिश्चावपूरणम् । प्रधर्षणंविहङ्गैश्चभ्रा
न्तचेताःसमन्यते ॥ व्याकुलानामशस्ता
नांस्वप्नानांदर्शनानिच । मदात्ययस्य
रूपाणिसर्वाण्येतानिलक्षयेत् ॥

अर्थ—अत्यन्त शारीरिक क्लेश, सम्मोह, हृदयव्यथा, अरुचि, निरन्तर तृषा की अधिकता, ज्वर, शीतज्वर, उष्णज्वर, शिर, पसली, हड्डी और जोड़ों में बिजली के समानवेदना, वेगवती, जंभाई, फड़फड़ाहट, कंपन, परिश्रम, हृदयमें रुकावट, खांसी, हिचकी श्वास, निद्रानाश, शरीरकम्पन, कर्णरोग, नेत्ररोग, मुखरोग, त्रिकग्रह, वमन, अतीसार, वातोत्क्लेश, पित्तोत्क्लेश, कफोत्क्लेश भ्रम, प्रलाप, भयंकर रूपों का दर्शन, तिनुका, भस्म, लता, पत्ते, धूल आदि से भराहुआसा दिखाई दैना, विहंगों से भयका बोध, चित्त में भ्रान्ति, घबडाहट पैदा करने वाले दुःस्वप्नों का दीखना, ये सब मदात्यय के लक्षण हैं ।

मदात्यय में चिकित्साक्रम ।

सर्वंमदात्ययंविद्यात्त्रिदोषमधिकन्तुयत् । दोषंमदात्ययेपश्येत्तस्यादौप्रतिकारयेत् ॥ कफस्थानानुपूर्व्याचक्रियाकार्य्यामदात्यये । पित्तमारुतपर्य्यन्तःप्रायेणहिमदात्ययः ॥

अर्थ—सब प्रकार के मदात्यय त्रिदोष से होते हैं, परन्तु जो दोष अधिक दीखै उसी की प्रथम चिकित्सा करना उचित है कफस्थान के आनुपूर्वीक्रमसे मदात्यय में चिकित्सा करना योग्य है जैसे प्रथम कफस्थान है, पीछे पित्तस्थान है, उस से पीछे वायुस्थान है । इसी क्रम से प्रथम कफकी, फिर पित्तकी और फिर वातकी चिकित्सा करै ॥

मिथ्यातिहीनपीतेनयोव्याधिरुपजायते । समपीतेनतेनैवसमद्येनोपशाम्यति ॥ जीर्णाममद्यदोषायमद्यमेवप्रदापयेत् । प्रकाङ्क्षालाघवेजातेयद्यद्स्मैहितंभवेत् ॥ सौवर्चलानुसंविद्धंशीतंसविडसैन्धवम् ॥ मातुलुङ्गार्द्रकोपेतंजलयुक्तंप्रमाणवित् ।

अर्थ—मद्य के मिथ्यापान, अतिपान वा हीन पान से जो व्याधि उत्पन्न होती हैं उन कोसमान मद्यपान द्वारा शमन करै जिसका आमजीर्ण होगया हो ऐसे मदात्यय रोगी को मद्यही का पान करावै । तथा शरीर में हलकापन होने पर इच्छाके अनुसार हितकारी मद्यपान करावै । मद्य में सौवर्चल नमक, विडनमक, सेंधानमक, विजौरे का रस, अदरखका रस, जल और शीतवीर्य औषध मिलाकर प्रमाणके अनुसार पान करावै ।

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेणपीतेनाम्लविदाहिना ॥ मद्येनान्नरसोत्क्लेदोविदग्धःक्षारतांगतः । अन्तर्दाहंज्वरंतृष्णांप्रमोहंविभ्रमंमदम् ॥ जनयत्याशुतच्छान्त्यैमद्यमेवप्रदापयेत् । क्षारोहियातिमाधुर्य्यंशीघ्रमम्लोपसंहितः ॥ श्रेष्ठमम्लेषुमद्यञ्चयैर्गुणैस्तान्परंशृणु ।

अर्थ—उष्ण, तीक्ष्ण, अम्ल और विदाही मद्य के अत्यन्त सेवन करने से अन्न के रसका उत्क्लेद होकर विदग्धता होती है और फिर उस में खारीपन होताहै तदनन्तर अन्तर्दाह, ज्वर, तृषा, प्रमोह विभ्रम और मद ये शीघ्रही उत्पन्न होजाते हैं इस से इनकी शान्ति के निमित्त मद्यपानही करावै । अम्लसे मिलने पर क्षार में फिर शीघ्रही मधुरता उत्पन्न होआतीहै । अब हम उन गुणों का बर्णन करते हैं जिनके कारण मद्य सब अम्ल रसों में श्रेष्ठ है ।

मद्यके चार अनुरस ।

मद्यस्याम्लस्वभावस्यचत्वारोऽनुरसास्स्मृताः ॥ मधुरश्चकषायश्चतिक्तःकटुकएवच । गुणाश्चदशपूर्वोक्तास्तैःचतुर्दशभिर्गुणैः ॥ सर्वेषांमद्यमम्लानामुपर्युपरितिष्ठति । मदोत्क्लिष्टेनदोषेणरुद्धःस्रोतःसुमारुतः ॥

अर्थ—मद्यका स्वभाव अम्ल है, इस में चार अनुरस होते हैं यथा-मधुर, तिक्त,

कटु और कषाय । और इस मद्य के दस गुण पहिले वर्णन किये हैं । इन चौदह गुणों के कारण मद्य सब अम्ल रसों में उत्तम होता है ।

करोतिवेदनांतीव्रांशिरस्यास्थिषुसन्धिषु ।

अर्थ—मदोत्क्लिष्ट दोष से स्रोतःसमूहों के रुकजाने पर वायु सिर, हड्डी और सन्धियों में अत्यन्त तीव्र वेदना को उत्पन्न करते हैं ।

दोषविष्यन्दनार्थंहितस्मैमद्यंविशेषतः ॥ व्यवायितीक्ष्णोष्णतयादेयमम्लेषुसत्स्वपि । स्रोतोविबन्धमुन्मथ्यमारुतस्यानुलोमनम् ॥ रोचनंदीपनंचाग्नेरभ्यासान्सात्म्यमेवच । रसस्रोतःस्वरुद्धेषुमारुतेचानुलोमिते ॥ निवर्त्तन्तेविकाराश्चशाम्यन्त्यास्यमदोदयाः ।

अर्थ—दोषों को निकालने के निमित्त उसको विशेष करके मद्यपान करावै । मद्य व्यवायी तीक्ष्ण और उष्ण होने के कारण स्रोतः समूहके विबन्ध को दूर करके वायु का अनुलोमन करता है तथा रुचिकर्त्ता, अग्निवर्द्धक और सात्म्य होता है ॥ रसवाही स्रोतों के खुलने पर और वायु के अनुलोमन होने पर सम्पूर्ण विकार शान्त होजातेहैं और सब प्रकार मदजन्य विकार भी दूर होजाते हैं ।

वातशमन में मद्यका प्रयोग ।

बीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम् ॥ यमानीहपुषाजाजीशृङ्गवेरावचूर्णितम् । सस्नेहैःशक्तुभिर्युक्तमर्धदंशैश्चिरोत्थितम् ॥ दद्यात्सलवणंमद्यंपैष्टिकंवातशान्तये ।

अर्थ—बिजौरा, वृक्षाम्ल, बेर, अनार इन का रस अजवायन, हाऊवेर, जीरा, अदरख इनका चूर्ण डालकर स्नेह सहित सत्तू के साथ नमक डालकर पुराना मद्यपान करावै तौ वातजन्यरोग शान्त होजाता है ।

वातोल्वणमदात्ययमें चिकित्सा ।

दृष्ट्वावातोल्वणंलिङ्गंरसैश्चैनमुपाचरेत्लावतित्तिरिदक्षाणांस्निग्धाम्लैःशिखिनामपि।पक्षिणांमृगमत्स्यानामानूपानाश्चसंस्कृतैःभूशयप्रसहानाश्चरसैःशाल्योदनेनच । स्निग्धोष्णलवणाम्लैश्चवेशवारैर्मुखप्रियैः ॥ चित्रैर्गोधूमिकैश्चान्नैर्वारुणीमण्डसंयुतैः । पिशितार्द्रकगर्भाभिःस्निग्धाभिर्धूपवर्तिभिः ॥ माषपूपलिकाभिश्चवातिकंसमुपाचरेत् । नातिस्निग्धनचाम्लेन सिद्धंसमरिचार्द्रकम् ॥ रसमल्पेपिसंपूपैः सुखोष्णैःसहसंपिबेत् ।

अर्थ—मदात्यय में यदि वात की उल्वणता के लक्षण दिखाई दें तौ लवा, तीतर मोर और मुर्गे का मांसरस चिकनाई और खटाई के साथ देकर इसकी चिकित्सा करै । तथा आनूप, भूशय और प्रसहजाति के पशु और मछलियों के मांसरस के शालीचांवल देवै । चिकने, गरम, नमकीन और खट्टे तथा मुख के जायके को सुधारनेवाले वेशवार, सुरामण्ड से युक्त अनेक प्रकार के गेहूंओं के पदार्थ, मांस और अदरख की पिट्ठी भरीहुई स्निग्ध धूमवर्त्ती और उरद के बड़े आदि को देकर वातिक

मदात्यय को दूर करै। इस पूर्वोक्त मांस रस को थोड़ी चिकनाई डालकर खटाई, कालीमिरच और अदरख डालकर देवै। अथवा सुहाता २ गरम गोधूमपिष्टक में मांसरस मिलाकर पान करावै।

भक्तेनवारुणीमण्डंदद्यात्पातुंपिपासवे ॥
दाडिमस्यरसंवाथजलंवापाञ्चमूलिकम्।
धान्यनागरतोयंचदधिमण्डमथापिवा ॥
अम्लकाञ्जिकमण्डंवाशुक्तोदकमथापिवा
कर्म्मणानेनसिद्धेनविकारउपशाम्यति ॥
मात्राकालप्रयुक्तेनबलवर्णश्चवर्द्धते।

अर्थ—मदात्यय में तृषा की प्रवलता होनेपर भातके साथ वारुणीमण्डका पान करावै। अथवा अनार का रस वा पंचमूल का क्काथ, वा धनिये और सोंठ का क्वाथ, अथवा दधिमण्ड वा अम्ल कांजीका मण्ड वा शुक्तोदक देवै। इन अनुभव कियेहुये प्रयोगों से मदात्यय के विकार शान्त होजाते हैं, तथा उचित समय पर प्रमाणके अनुसार देने से वल और वर्ण की वृद्धि होती है।

रागखाण्डवसंयोगैर्विविधैर्भक्तरोचनैः ॥
पिशितैर्बहुपिष्टान्नैर्यवगोधूमशालिभिः।
अभ्यङ्गोत्सादनैस्नानैरुष्णैःप्रावरणैर्घनैः॥
घनैरगुरुपङ्कैश्चधूपैश्चागुरुजैर्घनैः।
नारीणांयौवनोष्णानांनिर्दयैरवगूहनैः ॥
श्रोण्यूरुकुचभारैश्चसंरोधोष्णसुखावहैः॥
शयनाच्छादनैरुष्णैःरूक्षैश्चान्तर्गृहैःसुखैः
मारुतःप्रबलःशीघ्रंप्रशाम्यतिमदात्ययः ॥

अर्थ—इस वातिक मदात्यय में भोजन में रुचि बढ़ानेवाले अनेक प्रकार के रागषाडव अनेक प्रकार के मांस, अनेक प्रकार के पिष्टान्न, अनेक प्रकार के जौ, गेहूं शालीचांवल, अभ्यंग, उत्सादन स्नान, गरम और गाढ़े ओढ़ने के वस्त्र, कपूर और अगर का लेप, कपूर और अगर की धूप, यौवन के जोर से उष्ण स्त्रियों का गाढ़आलिंगन, उन स्त्रियों के श्रोणी, ऊरू कुचों के घर्षण से उत्पन्न गर्मी उष्णशय्या, उष्ण आच्छादन वस्त्र, सुखदायक रूक्ष अन्तर्गृह, इन वस्तुओंका सेवन करने से वातजन्य प्रवल मदात्यय शीघ्रही शान्त होजाता है।

पित्तमदात्ययमें चिकित्सा।

भव्यखर्जूरमृद्वीकापरूषकरसैर्युतम् ॥
सदाडिमरसंशीतंशक्तुभिःस्ववचूर्णितम्।
सशर्करंशार्करंवामाध्वीकमथवापरम ॥
दद्यात्वहूदकंकालेपातुंपित्तमदात्यये।
शशान्कपिञ्जलानेणान्लावानसितपुच्छाकान्। मधुराम्लान्प्रयुञ्जीतभोजनेशालिषष्टिकान् ॥ पटोलयूषमिश्रंवाछागलंकल्पयेद्रसम् ॥ सतीनमुद्गमिश्रंबादाडिमामलकान्वितम्। द्राक्षामलकखर्जूरपरुषकरसेनवा ॥ कल्पनान्तर्पणान्यूषानरसांश्चविविधात्मकान् ॥

अर्थ—भव्य, खजूर, किसमिस और फालसे का रस, तथा अनार का रस सत्तू के साथ मिलाकर, थोड़ीसी चीनी डालकर शर्करामद्य, वा माध्वीकमद्य अथवा और

किसी मद्य में बहुतसा जल मिलाकर पित्तजनित मदात्यय में पान करावै ।

ससा, सफेदतीतर, एण, लवा, कालीपूंछका हरिण इनके मांस को मधुराम्ल करके शाली चांवल और साठी चांवलों के भात के साथ देवै । अथवा बकरे के मांस रस में परवल का यूष मिलाकर उक्तभात का भोजन करावै । अथवा मटर और मूंग के यूष में अनार और आंवले का रस मिलाकर इनके साथ में उक्त भात देवै । अथवा दाख, आंवला, खजूर, फालसेका रस इन के साथ में अनेक प्रकार से सिद्ध किये हुए तर्पण, यूष और मांसरस देवै ।

कफपित्त मदात्यय में चिकित्सा ।

आमाशयस्थमुत्क्लिष्टंकफपित्तंमदात्यये ॥
विज्ञायवहुदोषस्यदह्यमानस्यतृष्यतः ।
मद्यंद्राक्षारसंतोयंदत्त्वातर्पणमेववा ॥
निःशेषंवामयेत्शीघ्रमेवंरोगाद्विमुच्यते ।

अर्थ—वहुत दोषों से युक्त कफपित्त मदात्यय में आमाशयस्थ आम के अत्यन्त उत्क्लिष्ट होने पर जब दाह और तृषाकी अधिकता हो तब मद्य, दाखका रस और जल को तृप्ति पर्य्यन्त पान कराके निःशेष वमन करा देवै तौ शीघ्रही रोग जाता रहता है ।

कालेपुनस्तर्पणाद्यंक्रमंकुर्यात्प्रकांक्षिते॥
तेनाग्निर्दीप्यतेतस्यदोषशेषान्नपाचनः ।
कासेसरक्तनिष्ठीवेपार्श्वेस्तनरुजोस्तथा॥
तृष्यतेसविदाहेचसोत्क्लेशेहृदयोरसि ।
गुडूचीभद्रमुस्तानांपटोलस्याथवाभिषक् ।
रसंसनागरंदद्यात्तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥
तृष्यतेचातिवलवद्वातपित्तेसमुद्धते । दद्या
द्द्राक्षारसंपातुंशीतंदोषानुलोमनम् ॥
जीर्णेसमधुराम्लेनछागमांसरसेनतम् ।
भोजनंभोजयेन्मद्यस्यानुतर्षञ्चपाययेत् ॥
अनुतर्षस्यमात्रासाययानोहन्यतेमनः ।
तृष्यतेमद्यमल्पाल्पंप्रदेयंस्याद्बहूदकम्॥
तृष्णायेनचसंशाम्येन्मदंयेनचनाप्नुयात्।
परूषकाणांपीलूनांरसंशीतमथापिवा ॥
पर्णिनीनांचतस्रणांपिवेद्वाशिशिरंजलम्।
मुस्तदाडिमलाजानांतृष्णाघ्नंवापिवेद्रसम् ॥ कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रीकाचुक्रिकारसः । पञ्चाम्लकोमुखालेपःसद्यःतृष्णांनियच्छति ॥

अर्थ—फिर उचित समय पर भूख में इच्छा उत्पन्न होने पर तर्पण क्रमका अवलम्वन करै, तिस से जठराग्नि वढजाय और दोष निःशेष होकर अन्न पचजाय ।

जो खांसी के साथ रुधिर निकलने लगे, पसली और छाती में वेदना होवै, दाहके साथ तृषा उत्पन्न होवै, हृदय और वक्षःस्थल में उत्क्लेश हो तौ गिलोय और भद्रमोथा वा परवलका क्वाथ सोंठ डालकर देवै और खाने के लिये तीतर का मांस देवै ।

जो वातपित्त के प्रवल होने पर तृषाका वेग अधिक हो तौ उसको, किसमिस का क्वाथ ठंडा करके देवै इस से दोषों का अनुलोमन होता है । औषध के पचने पर मधुराम्ल वकरी के मांसरस के साथ भोजन करावै और तृषा लगने पर मद्यका

पान करावै । तृषित को मद्यकी ऐसी मात्रा देवै कि जिस से वेहोशी न हो, तृषा के लगने पर मद्य में बहुत सा जल मिलाकर थोड़ा थोड़ा पान करावै जिससे तृषाभी शान्त होजाय और नशा भी उत्पन्न न हो। अथवा फालसा, पीलू इनका शीतल क्राथ अथवा चारों पर्णी का ठंडा क्राथ अथवा ठंडा जल अथवा मोथा, अनार, खील इन का क्राथ पान करावै । इन प्रयोगों से तृषा शान्त होती है। अथवा वेर, अनार, वृक्षाम्ल, चुक्रीका, चूका इन पांचों खटाइयों कामुख में लेप करने से तृषा तत्काल शान्त होजाती है ॥

पित्त मदात्यय में सेबनीय कर्म ।

शीतलान्यन्नपानानिशीतशय्यासनानिच। शीतवातजलस्पर्शःशीतान्युपवनानिच॥ क्षौमपद्मोत्पलानाञ्चमणीनांमौक्तिकस्य च । चन्दनोदकशीतानांस्पर्शाश्चन्द्रांशु शीतलाः ॥ हेमराजतकांस्यानांपात्राणां शीतवारिभिः । पूर्णानांहिमपूर्णानांदृता नांपवनाहताः । संस्पर्शाश्चन्दनार्द्राणांना रीणाञ्चसमारुताः॥चन्दनानाञ्चमुख्या नांशस्ताःपित्तमदात्यये ।

अर्थ—शीतल अन्नपान, शीतल शय्या और आसन, शीतल वायु, जल का स्पर्श शीतल उपवन, रेशमीवस्त्र, लालकमल, नीलकमल, मणि, मोती, चन्दन और शीतलजल का स्पर्श, चन्द्रमाकी शीतल किरणों का सेवन, शीतल जल से भरे हुए सौने, चांदी और कांसी के पात्रों का स्पर्श हिमपूर्ण पवनाहत दृति (मशक) का स्पर्श तथा हवादार स्थान में चन्दन से तर व तर स्त्रियों का स्पर्श और चन्दनका लेपन ये सब पित्तमदात्यय में श्रेयस्कर हैं।

मदात्ययजन्य दाह में कर्त्तव्यकर्म ।

कुमुदोत्पलपत्राणांसिक्तानाञ्चन्दनाम्बु ना ॥ हिताःस्पर्शामनोज्ञानांदाहेमद्यसमु त्थिते । कथाश्चविविधाःशस्ताःशब्दाश्च शिखिनांशिवाः ॥ तोयदानाञ्चशब्दाहि शमयन्तिमदात्ययम् । जलयन्त्राभिवर्षी णिवातयन्त्रवहाणिच ॥ कल्पनीयानि भिषजादाहेधारागृहाणिच । फलिनीसे व्यलोध्राम्बुहेमपत्रंकुटन्नटम् ॥ कालीय करसोपेतंदाहेशस्तंप्रलेपनम् । वदरीप ल्लवोत्थाश्चतथैवारिष्टकोद्भवाः । फेनि लायाश्चयःफेनस्तैर्दाहेलेपनंशुभम् ॥ सु रासमण्डादध्यम्लंमातुलुङ्गरसोमधु ॥ सेकप्रदेहेशस्यन्तेदाहघ्नाःसाम्लकाञ्जि काः । परिषेकावगाहेषुव्यञ्जनानाञ्चसे वने । शस्यतेशिशिरंतोयंदाहतृष्णाप्रशा न्तये ॥ मात्राकालप्रयुक्तेनकर्म्मणानेन शाम्यति । धीमतोवैद्यवश्यस्यशीघ्रंपित्त मदात्ययम् ।

अर्थ—मद्य से उत्पन्न हुए दाह में चन्दनके जल से सींचे हुए कमोदनी और कमल के मनोज्ञ पत्तों का स्पर्श हित है, अनेक प्रकारकी कथा, मोरों का मधुर शब्द, वादलों की गर्जन ये सब मदात्यय को शान्त करने वाले हैं। इस दाह में रोगी को ऐसे धारागृह में निवास करावै जिस-

में फव्वारे चलते हों और कल के पंखों की हवा आती हो।

इस दाह में प्रियंगु, खस, लोध, नेत्रवाला हेमपत्र और कुटन्नट इन को पीत चन्दन के जल में पीसकर लेप करै। अथवा बेर के पत्तोंकेझाग, नीम के पत्तों के झाग, वा रीठा के झागों का भी लेपकरने से दाह शान्त होता है। सुरामण्ड, दही, खटाई, बिजौरे का रस, शहत इन को अम्लकांजी में मिलाकर परिषेक और प्रदेह में उपयुक्त करने से दाह शान्त होजाता है। शीतल जल से परिषेक स्नान और जलार्द्र पंखों की हवाका सेवन दाह और तृषाकी शान्ति के निमित्त हैं। यथोचित काल में मात्रा के अनुसार इन कर्म्मों का प्रयोग करने से बुद्धिमान् और वैद्यानुयायी रोगी का मदात्यय शीघ्र शान्त होजाता है।

कफमद्यकी तृषा के उपाय।

उल्लेखनोपवासाभ्यांजयेत्कफमदात्ययम् ॥ तृष्यतेसलिलंचास्मैदद्याद्ध्रीबेरसाधितम्। बलायाःपृश्निपर्ण्याबाकण्टकार्य्याथवाशृतम् ॥ सनागराभिःसर्वाभिर्जलंवाशृतशीतलम्। दुःस्पर्शितेनमुस्तेनमुस्तपर्पटकेनवा ॥ जलंमुस्तैःशृतंवापिदद्याद्दोषविपाचनम्। एतदेवचपानीयंसर्वत्रापिमदात्यये। निरत्ययंपीयमानंपिपासाज्वरनाशनम् ॥

अर्थ—कफजन्य मदात्यय को वमन और लंघन द्वारा दूर करै, इस रोग में तृषाकी प्रवलता होने पर नेत्रवाला डालकर औटाया हुआ जल ठंडा करके देवै। अथवा खरैटी, पृष्णिपर्णी वा कटेरी का ठंडा क्काथ देवै, अथवा तीनों ये और चौथी सोंठ डालकर औटाया हुआ जल ठंडा करके देवै। अथवा जवासा और मोथा अथवा मोथा और पित्तपापडा अथवा केवल मोथा डालकर औटाया हुआ जल पान कराने से दोष पचजातेहैं। सब मदात्ययों में इन्हीं का प्रयोग श्रेष्ठहै। इस के पीने से किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होता है, किन्तु तृषा और ज्वर नष्ट होजाते हैं।

कफमदात्ययमेंअन्यप्रयोग।

निरामंकांक्षितंकालेसक्षौद्रंपाययेन्नुतम्। शार्करंमधुवाजीर्णमरिष्टंशीधुमेववा ॥ रूक्षतर्पणसंयुक्तंयवानीनागरान्वितम्। यवगोधूमिकंचान्नंरूक्षयूषेणभोजयेत् ॥ कुलत्थानांसुशुष्कानांमूलकानांरसेनवा। तनुनाल्पेनलघुनाकट्वम्लेनाल्पसर्पिषा ॥ व्योषयूषमयाम्लंवायूषंवासाम्लवेतसम्। छागमांसरसंरूक्षमम्लंवाजाङ्गलंरसम् ॥ स्थाल्यांवाथकपालेवाभृष्टंनीरसवार्त्तिनम्। कट्वम्ललवणंमांसंभक्षयन्तृष्णयानमधु ॥

अर्थ—जब कफमदात्यय में रोगी का आम दूर होजाय और भूख पर इच्छाहो तब उस समय उसे शहत डालकर शर्करा मद्य देवै अथवा पुराना शहत, वा अरिष्ट वा शीधु पान करावै। इस रोग में अजवायन और सोंठ डालकर रूक्षतर्पण देवै

अथवारूक्षयूषकेसाथ जौऔर गेहूं का अन्न देवै । अथवा कुलथी का यूष वा अत्यन्त सूखीहुई मूलियों का रस पतला, थोड़ा, हलका, कटु और अम्लयुक्त थोड़ा घी डालकर देवै । अथवा त्रिकुटा डालकर अम्लयूष वा अमलवेत डालाहुआ यूष वा बकरे का रूक्ष मांसरस वा अम्लजांगल पशुओं का मांसरस देवै । अथवा वटले वा मिट्टी के पात्र में भूना हुआ नीरस मांस कटु, अम्ल और नमक डालकर भोजन करै ऊपर से शहत पीवै ॥

अन्यप्रयोग ।

व्यक्तमारिचिकंमांसंमातुलुङ्गरसान्वितम् ।
भृष्टंदाडिमसाराम्लमुष्णयूषोपवेष्टितम् ॥
यथाग्निभक्षयेत्कालेप्रभूतार्द्रकपेशितम् ।
पिबेच्चानिगदंमद्यंकफप्रायेमदात्यये ॥
सौवर्चलमजाजींचवृक्षाम्लंसाम्लवेतसम् ।
त्वगेलामरिचार्द्धांशंशर्कराभागयोजितम् ॥
एतल्लवणमष्टाङ्गमग्निसन्दीपनंपरम् । मदात्ययेकफप्रायेदद्यात्स्रोतोविशोधनम् ॥
एतदेवपुनर्युक्त्यामधुराम्लैर्द्रवीकृतम् । गोधूमान्नयवान्नानांमांसानाञ्चातिरोचनम् ॥
पेषयेत्कटुकैर्युक्तांश्वेतांवीजविवर्जिताम् ।
मृद्वीकांमातुलुङ्गस्यदाडिमस्यरसेनवा ॥

अर्थ—तेजमिरच डालकर तथा विजौरे का रस मिलाकर मांस को भूने इसमें अनारदाने की खटाई डालकर गरम २ यूष का जठराग्नि के वल के अनुसार भक्षण करै इस में वहुतसी अदरख भी पीसकर डालदेवै । इस कफजन्यमदात्यय में निगद मद्य का पान करावै । अथवा संचलनमक कालाजीरा, वृक्षाम्ल, अमलवेत, दालचीनी, छोटी इलायची और नमक से आधी मिश्री डालकर चूर्ण तय्यार करै । यह चूर्ण अत्यन्त अग्निसंदीपन है, इस चूर्णको अष्टांगलवण कहते हैं, । यही चूर्ण स्रोतः समूह के मार्गों का शुद्ध करनेवाला भीहै । इसी चूर्ण को मधुराम्ल द्रव्यों से पतला कर के गेहूं और जौ के पदार्थ तथा मांस के साथ सेवन करै तो अत्यन्त रुचि बढ़ै । अथवा मिरच आदि तीक्ष्ण द्रव्यों को डालकर सफेद दूव, विनावीज की दाख को विजौरे अथवा अनार के रस में पीसकर सेवन करै ॥

अन्यप्रयोग ।

सौवर्चलैलामरिचैरजाजीभृङ्गदीप्यकैः ।
सरागःक्षौद्रसंयुक्तःश्रेष्ठोरोचनदीपनः ॥
मृद्वीकानांविधानेनकारयेत्कारवीमपि ।
युक्तमत्स्यण्डिकोपेतंरागंदीपनपाचनम् ।
आम्रामलकपेशीनांरागान्कुर्य्यात्पृथक् पृथक् । धान्यसौवर्चलाजाजीकारवीमरिचान्वितान् ॥ गुडेनमधुयुक्तेनव्यक्ताम्ललवणीकृतान् । तैरन्नंरोचतेदिग्धं सम्यक्भुक्तंविजीर्य्यति ॥

अर्थ—संचरनमक, छोटीइलायची, कालीमिरच, जीरा, भांगरा, अजवायन, इनका चूर्ण रागषाडव में मिलाकर शहत में मिलाकर सेवन करै । यह अत्यन्त उत्तम रुचिवर्द्धक और अग्निसंदीपन प्रयोग है । विधिपूर्वक दाख, कारवी और मिश्री का

रागषाडव दीपन और पाचन होता है। आम और आंवले के गूदे का जुदा२ रागषाडव बनावै। और इन में धनियां, संचरनमक, जीरा, कारवी और मिरच डालै तथा गुड और शहत भी मिलावै, खटाई और नमक तेज डालै। इन रागषाडवों से भोजन करै तौ अच्छी तरह पचजाय।

अन्यउपचार।

रूक्षोष्णेनान्नपानेनस्नानेनाशिशिरेणच।
व्यायामलंघनाभ्यांचयुक्ताभ्यांजागरेणतु
कालेयुक्तेनतीक्ष्णेनस्नानेनोद्वर्त्तनेनच ।
स्नानवर्णकवासानांप्रहर्षाङ्गणाचसेवया ॥
सेवयावमनानाञ्चगुरूणामगुरोरपि ।
सकामोष्णसुखाङ्गीनामङ्गनानाञ्चसेवया
सुखशिक्षितहस्तानांस्त्रीणांसंबाहनेनच ।
मदात्ययःकफप्रायःशीघ्रमेवोपशाम्यति।

अर्थ—रूक्ष और उष्ण अन्नपान का सेवन, उष्णजल से स्नान, व्यायाम, उपवास, जागरण, तीक्ष्ण द्रव्यों का उवटना करके स्नान करना, रूक्षवस्त्र धारण, हर्षोत्पादक कर्मों का करना, बमन करना अगर सेवन, कामवती उष्ण और सुखस्पर्शांगी स्त्रियोंका सेवन, सुशिक्षित स्त्रियों के हाथों से चरणों का दबाना इन कर्मों से कफजनित मदात्यय शीघ्रही शान्त होजाता है।

यदिदंकर्मनिर्दिष्टंपृथग्दोषवलंप्रति ॥
सन्निपातेदशविधेतद्विकल्प्यंभिषग्विदा।
यस्तुदोषविकल्पज्ञोयश्चौषधिविकल्पवित्।
ससाध्यान्साधयेद्व्याधीन्साध्यासाध्य विभागवित्।

अर्थ—जो जुदे २ दोषों से उत्पन्न हुए मदात्ययों की शान्ति के निमित्त जुदे २ कर्म वर्णन कियेगये हैं उनकी जुदी २ विकल्पना कर के दशप्रकार के सन्निपातों में प्रयुक्त करै। जो वैद्य दोषों की विकल्पना को जानता है तथा औषधियों की विकल्पना को जानता है तथा रोगों के साध्यासाध्य लक्षणों को भी जानता है उसे साध्यरोगोंकी चिकित्सा करना उचित है।

वनानिरमणीयानिपद्मिन्यःसलिलाशयाः
विशदान्यन्नपानानिसहायाश्चप्रहर्षणाः।
माल्यानिगन्धयोगाश्चवासांसिविमलानि
च ॥ गान्धर्वशब्दाःकान्ताश्चगोष्ठ्यश्चहृदयप्रियाः। सङ्कथाहास्यगीतानांविशदाश्चैवयोजनाः ॥ प्रियाश्चानुगतानार्यो नाशयन्तिमदात्ययम्। नाक्षोभ्यंहिमनो मद्यंशरीरमवहत्यच ॥ कुर्यान्मदात्ययंतस्माद्दिष्ट्याहर्षणीक्रिया। आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिःशर्मयातिमदात्ययः ॥
नचेन्मद्यविधिंहित्वाक्षीरमस्यप्रयोजयेत्।

अर्थ—रमणीयबन, कमलों से युक्त सरोवर, विषद अन्नपान, हर्षोत्पादकसंगी, फूलोंकी सुगंधित माला; निर्मलवस्त्र, गायकों के शब्द, मनको प्रसन्न करनेवाली अनोखी २ बातें, कथोपकथन, दिल्लगीकी बातें, सुन्दर गीतों की तान और प्यारी मनोनुकूला स्त्रियों का सेवन इन से मदात्यय शीघ्र नष्ट होजाता है।

जिस हेतु से मद्य मन और शरीर को बिनाही क्षुभित किये मदात्यय करता है इस से इस में हर्ष उत्पन्न करनेवाली क्रिया इष्ट है ।

जो इन ऊपर कहीहुई सिद्ध क्रियाओं से मदात्यय शान्त न हो तौ इन क्रियाओं को छोड़कर दूध का प्रयोग करै ।

मदात्ययमेंदूधकेप्रयोग ।

लंघनैःपाचनैश्चैवदोषसंशोधनैरपि ॥
विमद्यस्यकफेक्षीणेजातेदौर्बल्यलाघवे ।
तस्यमद्यविदग्धस्यवातपित्ताधिकस्यवा ॥
ग्रीष्मोपतप्तस्यतरोर्यथावर्षंतथापयः ।
पयसाभिहृतेरोगेबलेजातेनिवर्त्तयेत् ॥
क्षीरप्रयोगंमद्यञ्चक्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ॥
विच्छिन्नमद्यःसहसायोऽतिमद्यंनिषेवते ॥
ध्वंसकोविक्षयश्चैवरोगस्तस्योपजायते ।
व्याध्युपक्षीणदेहस्यदुश्चिकित्स्यतमौमतौ

अर्थ—लंघन, पाचन तथा दोषों के संशोधन करनेवाली औषधियों से मद को दूर कर के कफ के क्षीण होने पर तथा शरीर में दुर्बलता और लघुता उत्पन्न होने पर उस मद्य विदग्ध और वात पित्ताधिक्य रोगी की दूध के द्वारा चिकित्सा ऐसी गुणदायक होती है जैसे ग्रीष्म से उपतप्त वृक्ष को वर्षा गुणदायक होती है । दूध के प्रयोग से रोग के निवृत्त होने पर और बल के बढ़ने पर दूधका परित्याग कराके थोड़ा थोड़ा मद्य सेवन करावै ।

यदि वह मनुष्य जिसने मद्य को बिलकुल त्याग दिया है सहसा बहुतसा मद्य पीने लगै तौ उस के ध्वंसक और पुरीषक्षय रोग उत्पन्न होजाते हैं । ये दोनों रोग व्याधि से क्षीणहुई देह वाले पुरुष के असाध्य होजाते हैं ।

ध्वंसककेलक्षण ।

तयोर्लिङ्गंचिकित्साञ्चयथावदुपधारयेत्॥
श्लेष्मप्रकोपःकण्ठस्यशोषःशब्दासहिष्णुता । तन्द्रानिद्राभियोगश्चज्ञेयंध्वंसकलक्षणम् ॥

अर्थ—अब इन दोनों रोगों के लक्षण और चिकित्सा कहतेहैं । कफप्रकोप, कण्ठशोष, शब्दका बुरालगना, तन्द्रा, निद्रा ये ध्वंसकके लक्षणहैं ।

विक्षयकेलक्षण ।

हृत्कण्ठरोगःसम्मोहश्छर्दिरङ्गरुजाज्वरः । तृष्णाकासःशिरःशूलमेतद्विट्क्षयलक्षणम् ॥

अर्थ—हृदरोग, कण्ठरोग, मोह, मूर्च्छा, वमन, अंगरोग, ज्वर, तृषा, खांसी, सिर का दर्द ये सब विट्क्षय के लक्षण हैं ।

उक्त रोगों की चिकित्सा ।

तयोःकर्म्मतदेवेष्टंवातिकेयन्मदात्यये ।
तौहिप्रक्षीणदेहस्यजायतेदुर्बलस्यवा ॥
वस्तयःसर्पिषःपानंप्रयोगःक्षीरसर्पिषोः।
अभ्यङ्गोद्वर्त्तनस्नानान्यनुपानञ्चवातनुत्॥
ध्वंसकोविट्क्षयश्चैवकर्म्मणानेनशाम्यति।
युक्तमद्यस्यमद्योत्थोनव्याधिरुपजायते॥
निवृत्तःसर्वमद्येभ्योनरोयःस्याज्जितेन्द्रियः । शरीरमानसैर्धीमान्विकारैर्नसयुज्यते ।

अर्थ—इन दोनों रोगों की चिकित्सा वातज मदात्यय के सदृश करनी चाहिये, क्योंकि ये दोनों रोग क्षीण देह वाले तथा दुर्वल के ही होते हैं। वस्ति कर्म, घृतपान दूध और घी का प्रयोग;वातनाशक अभ्यंग उद्वर्त्तन, स्नान और अनुपान; इन प्रयोगों के करने से ध्वंसक और विट्क्षय नष्ट होजाते हैं। युक्तिपूर्वक मद्य के सेवन करने से मदात्यय रोग नहीं होते हैं। सम्पूर्ण प्रकार के मद्यों को छोड़कर जो मनुष्य जितेन्द्रियतासे रहता है उस के शारीरिक और मानसिक रोग कदापि नहीं होने पाते।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन।

यत्प्रभावाभगवतीसुरापेयायथाचसा। यद्द्रव्यायस्ययाचेष्टायोगञ्चापेक्षतेय था॥ यथायथामद्यतेयैश्चयुक्तामहागु णैः। योमदोमदभेदाश्चयेत्रयःस्वस्वलक्ष णाः॥ येचमद्यकृतादोषागुणायेंचतदा •त्मकाः। यच्चत्रिविधमापानंयथासत्त्वंच लक्षणम्॥ येसहायाःसुखायेचचिरक्षि प्रमदानराः। मदात्ययस्ययोहेतुर्लक्षणं यद्यथाचयत्॥ मद्यंमद्योत्थितान्रोगान् हन्तियश्चक्रियाक्रमः। सर्वतदुक्तमखि लंमदात्ययचिकित्सिते॥

अर्थ—इस मदात्यय चिकित्सित नामक अध्याय में भगवती मदिरादेवी का प्रभाव उसी के पीने की विधि, मदिरा के द्रव्य जिस को यह अभीष्ट है, मदिरा के भिन्न भिन्न मदों के भेद, मदिरा के महागुण,मद के तीन भेद, तीनों के पृथक् पृथक् लक्षण मद्यकृत दोष, मद्यकृत गुण, तीन प्रकारके मदिरालय, तीनों सत्वों के पृथक् पृथक् लक्षण, मद्यपानके योग्य साथी, जिन को देरमें नशा होवै और जिनको शीघ्रनशाहोवै ऐसे पुरुषों का वर्णन मदात्यय के हेतु और लक्षण, मद्य से उत्पन्न हुए रोगों की चिकित्सा, ये सब बातें पूरीरीति से वर्णन की गई हैं।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशाविरता यांचरकप्रतिसस्कृतायां संहितायां चिकि त्सित स्थाने मदात्यय चिकित्सितं- नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

———:※:———

त्रयोदशोऽध्यायः।

अथातोद्विव्रणीयचिकित्सितंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अव हम द्विव्रणीय चिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

परावरज्ञमात्रेयंगतमानमदव्यथम्। अग्नि वेशोगुरुंकालेविनयादिदमुक्तवान्॥ भ गवन्! पूर्वमुद्दिष्टौद्वौव्रणौरोगसंग्रहे। तयोर्लिंगंचिकित्साञ्चवक्तुमर्हसिशर्म्म द!॥ इत्यग्निवेशस्यवचोनिशम्यगुरुरब्र वीत्। यौव्रणौपूर्वमुद्दिष्टौनिजश्चागन्तुरे वच॥ श्रूयतांविधिवत्सौम्य! तयोर्लि ङ्गञ्चभेषजम्।

अर्थ—अग्निवेशने अवकाश पाकर अति नम्रतासे परावर के जानने वाले, मान,मद

और व्यथा से रहित अपने गुरु आत्रेय से पूछा कि हे भगवन्! जो आपने रोगों के संग्रह में दो प्रकार के व्रणों का वर्णन किया था अब आप हे कल्याणदाता! उन के लक्षण और चिकित्सा कहो। अग्निवेशके इस वचन को सुनकर गुरु वोले कि हे सौम्य? जो निज और आगन्तु दो प्रकार के व्रणों का वर्णन किया गया है, उन के विधिपूर्वक लक्षण और चिकित्साश्रवण करो।

निजागन्तु व्रणों के लक्षण।

निजःशरीरदोषोत्थआगन्तुर्वाह्यहेतुजः॥

अर्थ—जो शरीर के दोष से उत्पन्न होते हैं वे **निजव्रण** कहाते हैं, तथा जो वाहर के हेतुओं से उत्पन्न होते हैं वे **आगन्तुव्रण** होते हैं।

आगन्तुव्रण के हेतु।

वधबन्धप्रपतनाद्दंष्ट्रादन्तनखक्षतात्। आगन्तवोव्रणास्तद्वद्विषस्पर्शाग्निशस्त्रजाः॥ मन्त्रागदप्रलेपाद्यैर्भेषजैर्हेतुभिश्चते। लिङ्गैकदेशैर्निर्दिष्टाविपरीतानिजैर्व्रणाः॥

अर्थ—वध, वन्ध, प्रपतन (गिरपड़ना) डाढ़, दांत नख आदिका लगना विषका स्पर्श, अग्नि से जलना, शस्त्रका लगना, मन्त्र, औषध का लेप आदि हेतुओं से आगन्तुव्रण होते हैं। इसीतरह निज लक्षणों के एक देशद्वारा जो व्रण निर्दिष्ट होते हैं वे निज हैं उन के उत्पत्ति ऊपर कहेहुये हेतुओं से विपरीत होती है।

व्रणानांनिजहेतूनामागन्तूनामसाध्यताम्। कुर्य्याद्दोषवलापेक्षीनिजानामौषधंतथा॥

अर्थ—दोष और वल की अपेक्षा करके निज और आगन्तुव्रणों की चिकित्सा करै अव निज व्रणों की औषधियों का वर्णन करते हैं।

निजव्रणों का कारण।

यथास्वैर्हेतुभिर्दुष्टावातपित्तकफानृणाम्। वहिर्मार्गंसमाश्रित्यजनयन्तिनिजान्व्रणान्॥

अर्थ—अपने २ हेतुओं से दूषितहुये वातपित्त कफ वहिर्मार्ग का अवलम्वन कर के निज व्रणों को उत्पन्न करते हैं।

वातजव्रणकेलक्षण।

स्तब्धःकठिनसंस्पर्शोमन्दस्रावोऽतितीव्ररुक्। तुद्यतेस्फुरतिश्यावोव्रणोमारुतसम्भवः॥

अर्थ—जो व्रण वात से उत्पन्न होता है वह स्तब्ध, छूने में कठोर, धीरे २ स्रावित होनेवाला, अत्यन्त तीव्र शूलयुक्त, तोदयुक्त, स्फुरणयुक्त, कृष्णवर्ण होता है।

वातजव्रणका चिकित्साक्रम।

संपूरणैःस्नेहपानैःस्निग्धैःस्वेदोपनाहनैः। प्रदेहैःपरिषेकैश्चवातव्रणमुपाचरेत्॥

अर्थ—संपूरण, स्नेपान, स्निग्धस्वेद, स्निग्ध उपनाहन, प्रदेह परिषेक से वातजव्रण की चिकित्सा करै।

पित्तजव्रणकेलक्षणऔरचिकित्सा।

तृष्णामोहज्वरस्वेददाहावदरणौषधैः। व्रणंपित्तकृतंविद्यात्गन्धस्रावैःसपूतिकैः॥

शीतलैर्मधुरैस्तिक्तैःप्रदेहपरिषेचनैः। स-
र्पिःपानैर्विरेकैश्चपैत्तिकंशमयेद्व्रणम्।

अर्थ—पित्तजव्रण में तृष्णा, मोह, ज्वर, स्वेद, दाह, औषधियों द्वारा अवदारण, दुर्गन्ध, दुष्टस्राव होते हैं। शीतल, मधुर, तिक्त, प्रदेह परिषेक तथा घृतपान और विरेचन द्वारा इसकी चिकित्सा कीजाती है।

कफजव्रणके लक्षणादि।

बहुपिच्छोगुरुःस्निग्धःस्तिमितोमन्दवेदनः
पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरकारीकफव्रणः
कषायकटुरूक्षोष्णैःप्रदेहपरिषेचनैः॥
कफव्रणंप्रशमयेत्तथालंघनपाचनैः॥

अर्थ—कफजव्रणमें बहुत पिच्छलता, भारापन, स्निग्धता, स्तिमिता, मंदवेदना, पाण्डुवर्ण, अल्पसंक्लेद तथा चिरकारिता होती है अर्थात् इस में बहुत दिन लगते हैं। कषाय, कटु, रूक्ष, उष्ण, प्रदेह, परिषेक तथा लंघन और पाचन द्वारा कफव्रणकी चिकित्सा होती है।

दोनोंव्रणोंकेभिन्न २ भेद।

तौद्वौनानात्वभेदेननिरुक्ताविंशतिव्रणाः।
तेषांपरीक्षात्रिविधाप्रदुष्टाद्वादशस्मृताः॥
स्थानान्यष्टौतथागंधाःपरिस्रावाश्चतुर्दश
षोडशोपद्रवादोषाश्चत्वारोविंशतिस्तथा॥
तथाचोपक्रमाःसिद्धाःषट्त्रिंशत्समुदाहृ-
ताः। विभाव्यमानाःशृणुतान्सर्वानेव
यथेरितान्॥

अर्थ—निज और आगन्तु ये दोनों व्रण वीस प्रकार के होते हैं, इन व्रणोंकी परीक्षा तीन प्रकार से होती है, व्रण दूषित होने पर वारह प्रकार के होजाते हैं व्रणों के आठ स्थान हैं और इन में इतनीही प्रकार की गंध है। परिस्राव चौदह हैं। सोलह उपद्रव हैं। दोष चौवीस प्रकार के हैं अनुभव कीहुई चिकित्सा छत्तीस प्रकार की है। अब इनका सविस्तार वर्णन कियाजाता है।

व्रण के वीस भेद।

कृत्योत्कृत्यतयादुष्टोतथामर्म्मास्थितोनव।
संवृतोदारुणःस्रावीसविषोविषमास्थितः॥
तत्सङ्ख्युत्सन्नएषाञ्चव्रणान्विद्याद्विप
र्ययात्। इतिनानात्वभेदेननिरुक्ताविं-
शतिव्रणाः॥

अर्थ—कृत्योत्कृत्य, दुष्ट, मर्म्मस्थित, नवीन, संवृत (घिराहुआ), अत्यन्तस्रावी, सविष, विषमास्थित, उत्संगी और उत्सन्न, ये दस तथा इनके दस विपरीत भेद। इस तरह अनेक प्रकार के व्रण गिनती में इन वीस प्रकार के अन्तर्गत हैं।

तीन प्रकार की परीक्षा।

दर्शनप्रश्नसंस्पर्शात्परीक्षात्रिविधास्मृता।
वयोवर्णशरीराणामिन्द्रियाणाञ्चदर्शनात्
हेत्वर्त्तिसात्म्याग्निबलंपरीक्ष्यंवचनाद्बु
धैः। स्पर्शान्मार्दवशैत्येचपरीक्ष्येसवि
पर्यये॥

अर्थ—देखना, पूछना, और छूना इन तीन प्रकार से परीक्षा होती है। अवस्था वर्ण, शरीर और इन्द्रियों की परीक्षा देखने से होती है। हेतु, अर्त्ति, सात्म्य और अग्निवलकी परीक्षा प्रश्न द्वारा होती है।

मृदुता, शीतलता, तथा इन के विपर्य्यय कठोरता और उष्णता इनकी परीक्षा स्पर्श से होती है।

बारह प्रकारके दूषित व्रण।

श्वेतोपसन्नवर्त्मातिस्थूलवर्त्मातिपिञ्जरः। नीलःश्यावोऽतिपिडकोरक्तःकृष्णोऽतिपूतिकः ॥ रौप्यःकुम्भीमुखश्चेतिप्रदुष्टा द्वादशव्रणाः।

अर्थ—जब व्रण दूषित होजाता है तब उस के निम्न लिखित बारह लक्षण होजाते हैं, यथा-श्वेतवर्त्मा (सफेदमार्ग), उत्सन्नवर्त्मा, अतिस्थूलवर्त्मा,अति पिञ्जर वर्ण, नीला, काला, बहुतसी पिडकाओं से युक्त,अत्यन्त काला,अत्यन्त लाल, अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त,रौप्य और कुम्भीमुख।

कल्पेनान्येनदोषाणांचतुर्विंशतिरुच्यते॥

अर्थ—इसी ऊपर कही हुई कल्पना से दोष चौवीस प्रकार के होते हैं। इस में ऊपर कहे हुए वारह प्रकारों के वारह विपर्य्ययोंका ग्रहण है।

व्रण के आठ स्थान।

त्वक्शिरामांसमेदोऽस्थिस्नायुमर्मान्तराश्रयाः। व्रणस्थानानिनिर्दिष्टान्यष्टावेतानिसंग्रहे।

अर्थ—त्वचा, सिरा, मांस, मेदा, अस्थि, स्नायु, मर्मस्थान और अन्तराश्रय ये व्रण के आठ स्थान हैं।

व्रण की आठ गंध।

सर्पिस्तैलवसापूयरक्तश्यावाम्लपूतिकाः॥ व्रणानांव्रणगन्धज्ञैरष्टौगन्धाःप्रकीर्त्तिताः॥

अर्थ—घी, तेल, चर्वी,पीव, रुधिर, श्याव, अम्ल और सड़ाहट के सदृश आठ प्रकार की गंध होती हैं।

चौदह प्रकार के स्राव।

लसीकाजलपूयासृक्हरितारुणपिञ्जराः॥ कषायनीलहरितास्निग्धरूक्षसितासिताः॥ इतिरूपैःसमुद्दिष्टैर्व्रणस्रावाश्चतुर्दश॥

अर्थ—व्रणों में चौदह प्रकार के स्राव होते हैं, यथा—लसीका (त्वचा के और मांस के वीच का जल सदृश), जल, पूय, रुधिर, हरा, लाल, पीला, गेरुआ, नीला, हरा, चिकना, रूखा, सफेद, काला

व्रणके सोलह उपद्रव।

वीसर्पःपक्षघातश्चशिरास्तम्भोपतानकाः। मोहोन्मादव्रणरुजोज्वरस्तृष्णाहनुग्रहः॥ कासच्छर्दिरतीसारोहिक्काश्वासःसवेपथुः। षोडशोपद्रवःप्रोक्तोव्रणानांव्रणचिन्तकैः॥

अर्थ—व्रण के जानने वालों ने व्रण के सोलह प्रकार के उपद्रव वर्णन किये हैं। यथा-विसर्प,पक्षाघात,शिरस्तम्भ, अपतानक मोह, उन्माद, व्रण बेदना, ज्वर, तृष्णा, हनुग्रह, खांसी, वमन, अतीसार, हिचकी श्वास, कम्पन।

व्रण शान्त न होने के कारण।

स्नायुक्लेदात्शिराक्लेदाद्गाम्भीर्य्यात्क्रिमिदर्शनात्। अस्थिभेदात्सशल्यत्वात्सविषत्वात्चसर्पणात्॥ नखकाष्ठप्रतोदाचचर्म्मलोमातिघट्टनात्। मिथ्याबन्धादतिस्नेहादतिभैषज्यकर्षणात्॥ अजीर्णादतिभुक्ताच्चविरुद्धासात्म्यभोजनात्।

शोकात्क्रोधात्दिवास्वप्नाद्व्यवायात्चो भणादति ॥ व्रणानप्रशमंयान्तिनिष्क्रियत्वाच्चदेहिनाम् । परिस्रावाच्चगन्धाच्च दोषाश्चोपद्रवैःसह ॥

अर्थ—स्नायु क्लेद, शिराक्लेद, गंभीरता, क्रिमिपड़ना, अस्थि भेद, शल्ययुक्तत्व, सविषता, सर्पणता, नख वा लकड़ीके लगने से खालउतर जाना, वाल और त्वचा का अत्यन्तरगड़खाजाना, मिथ्यावन्धव, अतिस्नेह, अत्यन्त औषधियों के प्रयोग से कर्षण, अजीर्ण, अभुक्तता, विरुद्ध भोजन, असात्म्य भोजन, शोक, क्रोध, दिवास्वप्न, व्यवाय, क्षोभण, आचिकित्सितता, परिस्राव, गंध, इन के साथ जब उपद्रव होते हैं तब मनुष्यों के व्रण शान्त नहीं होते हैं ।

व्रणोंकासाध्यासाध्यत्व ।

व्रणानांबहुदोषाणांकृच्छ्रत्वंचोपजायते। त्वङ्मांसजःसुखेदेशेतरुणस्यानुपद्रवः ॥ धीमतोऽभिनवःकालेसुखसाध्यःसुखंव्रणः गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततःकृच्छ्रतमःस्मृतः ॥ सर्वैर्विहीनोविज्ञेयःत्वसाध्योनिरुपक्रमः।

अर्थ—वहुत दोषों से युक्त व्रण कष्टसाध्य होजाते हैं । तरुण और बुद्धिमान् रोगी के जो मर्म्मादिस्थानों को छोड़कर उपद्रव रहित त्वचा और मांस में उत्पन्न होते हैं उनकी उत्पन्न होतेही चिकित्सा कीजाय तौ वे सुखसाध्य होते हैं । इन गुणों में से यदि एक भी गुण कम होता है तौ व्रण कष्टसाध्य होता है और जो सवही गुणों का अभाव होता है तौ व्रण दुःसाध्य होता है ।

व्रणमें प्रथमकर्त्तव्य ।

व्रणानामादितःकार्य्यंयथासन्नंविशोधनम् । ऊर्ध्वभागैरधोभागैःशस्त्रैर्वस्तिभिरेव च ॥ सद्यःशुद्धशरीराणांप्रशमंयान्तिहिव्रणाः । यथाक्रममतश्चोर्ध्वंशृणुसर्वानुपक्रमान् ॥

अर्थ—व्रणकी चिकित्सा करने के आरम्भमें प्रथमही व्रण का संशोधन करना उचित है और यह संशोधन आसन्न अर्थात् समीपवर्त्ती होना चाहिये अर्थात् कफज व्रणमें ऊर्ध्वभागगामी संशोधनदेवै, पित्तज व्रण में अधोभागगामी अर्थात् दस्त करावै। रक्तजव्रणमें फस्त खोलै, और वातजव्रणमें वस्तिप्रयोग करै । इसतरह शरीर के शुद्ध होनेपर व्रण वहुत शीघ्र शान्त होजाते हैं । अब हम यहांसे यथाक्रम सवकी चिकित्सा वर्णन करते हैं ।

छत्तीसप्रकारकीचिकित्सा ।

शोफघ्नंषड्विधश्चैवशस्त्रकर्म्मावपीडनम्। निर्वापणंससन्धानंस्वेदःशमनमेषणा । शोधनौरोपणीयौचकषायौसप्रलेपनौ ॥ द्वौस्नेहौतद्गुणौपत्रच्छेदनेद्वेचवन्धने। भोज्यमुत्सादनंदाहोद्विविधःसावसादनः॥ काठिन्यमार्दवकरेधूपनालेपनेशुभे । व्रणावचूर्णनंवर्ण्यंलेपनंलोमरोपणम् ॥ इतिषड्त्रिंशदुद्दिष्टाव्रणानांसमुपक्रमाः ।

अर्थ—शोकनाशक छः प्रकार के शस्त्र कर्म, अवपीडन, निर्वापण, सन्धान, स्वेद,

शमन, एषणा; दो प्रकार के शोधनकर्त्ता कषाय, दो प्रकार के रोपणप्रलेप, शोधन प्रलेप, रोपणप्रलेप, शोधन स्नेह, रोपण स्नेह, दो प्रकार का पत्रच्छद, दो प्रकार का वन्धन, भोजन विधि, उत्सादन, दो प्रकार का दाह, अवसादन, काठिन्यकर धूपन, काठिन्यकर आलेपन, मार्दवकर धूपन मार्दवकर आलेपन, व्रणवाचूर्णन व्रण को हितकारी लेप लोमरोपण, इसतरह व्रणोंकी ये ३६ प्रकार की चिकित्सा हैं।

व्रणकेपूर्वरूपमेंकर्तव्य।

पूर्वरूपंभिषक्बुद्ध्वाव्रणानांशोफमादितः। रक्तावसेचनंकुर्य्यादजातव्रणशान्तये। शोधयेद्वहुदोषान्तुस्वल्पदोषान्विलंघयेत् ॥ पूर्वकषायैःसर्पिर्भिर्जयेद्वामारुतोत्तरम्।

अर्थ—वैद्य को उचित है कि जब उसे व्रणका पूर्वरूप विदित होनेलगे तवही अनुत्पन्न व्रण की शान्ति के निमित्त रुधिर निकाल देवै। जो व्रण बहुत दोषोंसे युक्त हो तौ शोधन करावै और जो अल्प दोषों से युक्त हो तौ लंघन करावै।

प्रथमही क्वाथ वा घृत प्रयोग से वाताधिक्य व्रण की शान्ति करै।

शोफनाशकलेप।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलाः॥ ससर्पिष्कःप्रलेपःस्यात्शोफनिर्वापणंपरम्। विजयामधुकंवीराविसग्रन्थिःशतावरी। नीलोत्पलंनागपुष्पंप्रदेहःस्यात् सचन्दनः ॥ शक्तवोमधुकंसर्पिःप्रदेहः स्यात्सशर्करः। अविदाहीनिचान्नानि शोफेभेषजमुत्तमम् ॥ सर्वदैवमुपक्रान्तः शोफोनप्रशमंव्रजेत्। तस्योपनाहैःपक्वस्य पाटनंहितमुच्यते ॥

अर्थ—वड़, गूलर, पीपल, पाकड़, और वेत इनकी छाल को पीसकर घृत में सानकर लेप करने से शोफ दूर होजाता है। अथवा हरड़, मुलहटी, काकोली, कमलनाल कीजड़, सतावर, नीलकमल, नागकेशर, रक्तचन्दन, इन को पीसकर लेप करने से शोफ जातारहता है। अथवा सत्तू मुलहटी, घी और चीनी का लेप करै। शोफ में अविदाही अन्नका भोजनभी उत्तम औषध है। जो इन लेपों से शोफ की शान्ति न हो तौ उसपर लूपड़ी वा पुलटस वांधकर उसे पकाले और पकने पर चीरा लगादेवै।

शोफ पर पुलटिस।

तैलेनवासर्पिषावाताभ्यांवाशक्तुपिण्डिका। सुखोष्णाशोफपाकार्थमुपनाहःप्रशस्यते॥ सतिलासातसीवीजदध्यम्लाशक्तुपिण्डिका। सकिण्वकुष्ठलवणाशस्ता स्यादुपनाहने ॥

अर्थ—सत्तू में तेल वा घी डालकर पुलटिस तयार करै, इस को गरम शोफ के पकाने के निमित्त वांध देवै। अथवा तिल, अलसी, दही, कांजी, सत्तू, सुरावीज, कूठ और नमक इनकी पुलटिस भी वहुत अच्छी होती हैं।

विदग्ध शोथके लक्षण।

रुग्दाहरागतोदैश्चविदग्धंशोथमादिशेत्।

अर्थ—जिस सूजन में वेदना, जलन, सूचीभेदनके समान पीड़ा होती है उसे विदग्ध कहते हैं ।

पक्व शोथ के लक्षण ।

जलवस्तिसमस्पर्शंसंपक्वंपिण्डितोन्नतम्॥

अर्थ—जो स्पर्श करने में जलकी मशक के समानहो, गोल तथा ऊंचीहो उसे पक्व समझो ।

पक्वशोथ के भेदन कर्त्ता द्रव्य ।

तमाथगुग्गुलुःसौधंपयोदक्षकपोतयोः ।
विट्पलाशभवःक्षारोहेमक्षीरीमकूलकः॥
इत्युक्तोभेषजगणःपक्वशोथप्रभेदनः ।
सुकुमारस्यकृच्छ्रस्यशस्त्रन्तुपरमुच्यते ॥

अर्थ—पकी हुई सूजन को फाडने वाले ये द्रव्य हैं, यथा—गूगल, सेंहुडकादूध, मुर्गी और कबूतरकी बीट, विड्नमक,ढाक का खार, स्वर्णक्षीरी और दन्ती ।

जो शोफ कोमल और कष्ट साध्य हो अर्थात् औषधों से न फटती हो तौ शस्त्र कर्म करै ।

छः प्रकार के शस्त्र कर्म ।

पाटनंव्यधनंचैवछेदनंलेखनंतथा। प्रच्छन्नंसेवनञ्चैवषड्विधंशस्त्रकर्म्मतत् ।

अर्थ—पाटन, व्यधन, छेदन, लेखन, प्रच्छन्न और सेवन, ये छः प्रकार के शस्त्र कर्म होते हैं ।

पाटन के योग्य शोथ ।

नाडीव्रणाःपक्वशोथास्तथाक्षतगुदोदरम्॥
अन्तःशल्याश्चयेदेशाःपाट्यास्तेताद्विधाश्चये ॥

अर्थ—नाड़ीव्रण, पक्वशोथ, क्षतगुदोदर अन्तःशल्य (जिन के भीतर शल्यहो) तथा ऐसेही और भी पाटन अर्थात् चीरा लगाने के योग्य होते हैं ।

व्यधन योग्य व्रण ।

दकोदराणिसंपक्वागुल्मायेयेचरक्तजाः॥
वध्याःशोणितरोगाश्चविसर्पपिडकादयः

अर्थ—दकोदर (जलंधर) ,पकाहुआ गुल्म, रक्तजगुल्म, तथा विसर्प और पिडकादिक अन्यरक्त के रोग व्यधन अर्थात् वेधने के योग्य होते हैं ।

छेदनीय व्रण ।

उद्वृत्तान्स्थूलपर्य्यन्तानुत्सन्नान्कठिनान् वृणान् । अर्शःप्रभृत्यधीमांसंछेदनेनोपपादयेत् ॥

अर्थ—उद्वृत्त (जिनका गोलासा बन गया हो) , स्थूलपर्य्यन्त (जिसके किनारे मोटे हों) , जो उत्सन्न और कड़ा हो, अर्श आदि रोग जिन में मांस वढ़ गया हो वे छेदन के योग्य होते हैं ।

लेखन के योग्यरोग ।

किलासानिसकुष्ठानिलिखेल्लेख्यानि बुद्धिमान् ।

अर्थ—किलास और कोढ़ आदि लेखनीय रोगों का लेखन करै ॥

प्रच्छन्न के योग्यरोग ।

वातासृग्ग्रन्थिपिडकाःसकोठारक्तमण्डलाः ॥ कुष्ठान्यभ्याहतंचाङ्गंशोथांश्चप्रच्छयेद्भिषक् ।

अर्थ—वातरक्त, ग्रन्थि, पिडका, कोठ

(पित्ती), रक्तमण्डल (खून के चकत्ते), कुष्ठ, अभ्याहत अंग और शोथ ये प्रच्छन अर्थात् पछना के योग्य होते हैं ।

सेवन के योग्य व्रण ।

सीव्यंकुक्ष्युदराद्यन्तुगम्भीरंयद्विपाटितम् ॥ इतिषड्विधमुद्दिष्टंशस्त्रकर्म्ममनीषिभिः ।

अर्थ—कूरव और उदर में जो गहरा फटगया हो वह सीवन के योग्य होताहै । ये छः प्रकार के शस्त्रकर्म पण्डितों ने वर्णन किये हैं ।

पीड़नयोग्यव्रण ।

सूक्ष्माननाःकोषवन्तोयेवूणास्तान्प्रपीडयेत् ॥

अर्थ—सूक्ष्ममुखवाले तथा कोषवान्व्रण (जो भीतर पोला पड़जाता है) प्रपीड़न के योग्य होते हैं ।

पीड़नद्रव्य ।

कलायाश्चमसूराश्चगोधूमाःसहरेणवः। कल्कीकृताःप्रशस्यन्तेनिःस्नेहाव्रणपीड़ने।

अर्थ—कलाय, मसूर, गेहूं, रेणुका इन का कल्क कर के विना चिकनाई डालेव्रण पर चिपकादेवै ।

अन्यप्रयोग ।

शाल्मलीत्वग्बलामूलंतथान्यग्रोधपल्लवाः न्यग्रोधादिकमुद्दिष्टंबलादिकमथापिवा ॥ आलेपनंनिर्वापणंतद्विधान्यैश्चसेचनम् ॥ सर्पिषाशतधौतेनपयसामधुकाम्बुना । निर्वापयेत्सुशीतेनरक्तपित्तोत्तरान्व्रणान् लम्ब ।निव्रणमांसानिप्रलिप्यमधुसर्पिषा। संदधीतसमंवैद्योबन्धनैश्चोपपादयेत् । तान्समान्सुस्थितान्ज्ञात्वाफलिनीरोध्र कट्फलैः ॥ समङ्गाधातकीयुक्तैःचूर्णितैरवचूर्णयेत् ॥ पञ्चवल्कलचूर्णैर्वाशुक्तिचूर्णसमायुतैः । धातकीरोध्रचूर्णैर्वातथा रोहन्तितेव्रणा ।

अर्थ—सेमर की छाल, खरैटी की जड़, वड़ के पत्ते, न्यग्रोधादिगणोक्त, बलादिगणोक्त अथवा ऐसेही अन्यद्रव्यों के द्वारा आलेपन वा सेचन करने से व्रण शान्त होजाता है ।

सौवार धुलेहुये घी,दूध, वा मुलहटी के शीतल क्वाथ से रक्त पित्तोतर व्रण शान्त होजाते हैं । जो व्रण का मांस लटक पड़े तो उसपर घी और शहत का लेप करके एकसा कर के वांधदेवै । जव यह समान होकर अच्छी रीति से स्थिर होजाय तव प्रियंगु, लोध, कायफल, लज्जालू; धायके फूल इनका चूर्ण वनाकर उसपर बुरकदेवै। अथवा पंचवल्कल और सीपी का समान भाग चूर्ण मिलाकर बुरक देवै । अथवा धायकेफूल और लोधका चूर्ण बुरकदे, इन प्रयोगों से व्रण शीघ्र पुरजाते हैं ।

अस्थिभग्न में कर्म ।

अस्थिभग्नंच्युतंसन्धिसंदधीतसमंपुनः । समेनसममङ्गेनकृत्वान्येनविचक्षणः ॥ स्थिरैःकवलिकाबन्धैःकुशिकाभिश्चसंस्थितम् । पट्टैःप्रभूतसर्पिष्कैर्बध्नीयादवलं सुखम् ॥ अविदाहिभिरन्नैश्चपैष्टिकैस्तमुपाचरेत् । ग्लानिर्हिनहितातस्यसान्धिवि

श्लेषकारिका ॥ विच्युताभिहताङ्गानामा नाहाद्यानुपक्रमान् । उपाचरेद्यथाकालं कालज्ञःस्वचिकित्सितान् ॥

अर्थ—हड्डी के टूटने पर वा संधि के च्युत अर्थात् किसी जोड़ के उतरजाने पर उस को समान मिलाकर कवलिका नाम दृढ़ वन्धन से कुशाओं के साथ बांधै और ऊपरसे वहुत घी में भिगोंयेहुये कपड़े की पट्टी साधारण रीति से कसकर लपेट देवै। अविदाही अन्न और पिष्टक का ऐसे रोगी को पथ्यदेवै। रोगी को किसी प्रकार से ग्लानि न होने पावै क्योंकि ग्लानि से सन्धि च्युत होजाती है। सन्धियों के स्थान भृष्ट होनेपर जो आनाहादि उपद्रव खड़े होजांय तौ यथा काल प्रथम उनकी भी उनही के अनुसार चिकित्सा करना उचित है।

वातप्रधानव्रणों में कर्म ।

शुष्कामहारुजःस्तब्धायेव्रणामारुतोत्तराः स्वेद्याःशङ्करकल्पेनतेस्युःकृशरपायसैः ॥ ग्राम्यावैलाम्बुजानूपैर्वेशवारैश्चसंस्कृतैः। उत्कारिकाभिरुष्णाभिः सुखीस्याद्व्रणितस्तदा ॥ सदाहवेदनावन्तोयेव्रणा मारुतोत्तराः। तेषांतिलानुमांचैवभृष्टान्पयसिनिर्वृतान् ॥ तेनैवपयसापिष्ट्वाकुर्य्यादालेपनंभिषक् ।

अर्थ—जो वातप्रधानव्रण शुष्क, अत्यन्त वेदनायुक्त और स्तब्ध होजाते हैं उन में शंकर स्वेदकी रीति से कृशरा (खिचड़ी), पायस (खीर), ग्राम्यजीवों का मांस, विलेशयों का मांस, औदकों का मांस, आनूप मांस, वेशवार, तथा गरम २ लुपड़ी द्वारा स्वेदन देवै। इस स्वेदन से रोगीको शीघ्रही सुख प्राप्त होता है।

जिन वातप्रधान व्रणों में दाह और वेदना इन दोनों की अधिकता होती है, उन में तिल और अलसी को भूनकर दूध में भिगो देवै। फिर उसी दूध के साथ उन्हें पीसकर लेपकरदेवै।

व्रणोंपरप्रयोग ।

बलागुडूचीमधुकंपृश्निपर्णीशतावरी ॥ जीवन्तीशर्कराक्षीरंतैलमत्स्यंवसाघृतम् । ससिद्धासमधूच्छिष्टाशूलघ्नीस्नेहशर्करा ॥ द्विपश्चमूलकाथेतेनाम्भसापयसाथवा । सर्पिषावासतैलेनकोष्णेनपरिषेचयेत् ॥ यवचूर्णसमधुकंसतैलंसहसर्पिषा । दद्यादालेपनंकोष्णंदाहशूलोपशान्तये ॥ उपनाहश्चकर्त्तव्यःसतिलोमुद्गपायसः । रुग्दाहयोःप्रशमनोव्रणेष्वेषुर्विधिर्हितः ।

अर्थ—खरैटी, गिलोय, मुलहटी, पृश्णिपर्णी, सितावर, जीवन्ती, चीनी, दूध, तेल, मछली, चर्वी, घी और मोम इन को पक्करके लेप करै तौ व्रणका शूलजाता रहता है। इस मरहम का नाम स्नेह शर्करा है।

दशमूल डालकर सिद्ध किया हुआ कुछ कुछ गरम जल वा दूध अथवा तेल मिलेहुए घृत का सेचन करै।

जौका चून, मुलहटी, तेल और घी इस को पक्क करके सुहाते हुए गरम का लेप करने से दाह और शूल शान्त होजाते हैं।

तिल और मूंग को दूध के साथ पीसकर लेप करने से वेदना और दाह शान्त होजाते हैं

एषणीय व्रण ।

सूक्ष्मानानाबहुस्रावाकोशवन्तश्चयेव्र-णाः ॥ नचमर्माश्रितास्तेषामेषणंहित मुच्यते ।

अर्थ—जो व्रण सूक्ष्म, अनेक प्रकार के बहुतस्रावयुक्त और कोशयुक्त हों परन्तु मर्म स्थान में न हों उन में सलाई डालना हित कर है ।

एषणके भेद ।

द्विविधामेषणांविद्यान्मृद्वीञ्चकठिनामपि उद्भिदैर्मृदुभिर्नालैर्लौहानांवाशलाकया । गम्भीरमांसगेदेशेपार्श्वेलौहशलाकया । एष्यंविद्याद्व्रणंनालैर्विपरीतमतोभिषक् ।

अर्थ—एषणा अर्थात् सलाई मृदु और कठिन दो प्रकार की होती है । इन में से उद्भिदकी सलाई मृदु और लोहे की कठिन होती है । जहां गहरा मांस हो वहां लोहे की सलाई डालै और जहां गहरा मांस न हो वहां मृदु सलाई डालै ।

शोधनीय व्रण ।

पूतिगन्धान्विवर्णांश्चबहुस्रावान्महा रुजः ॥ व्रणानशुद्धान्विज्ञायशोधनैःस मुपाचरेत् ॥

अर्थ—जिन व्रणों में दुर्गन्ध आती हो, जो विवर्ण, बहुस्रावी, अत्यन्त वेदनायुक्त और अशुद्ध हों उन को प्रथम शुद्ध करै ।

शोधनद्रव्य ।

त्रिफलाखदिरोदार्वीन्यग्रोधोऽतिबला कुशाः । निम्बकोलकपत्राणिकषायाः शोधनामताः ॥ तिलकल्कःसलवणो द्वेहरिद्रेत्रिवृद्घृतम् । मधुकंनिम्बपत्राणि प्रलेपोव्रणशोधनः ॥

अर्थ—त्रिफला,खैरसार,दारुहलदी, बड़ा अतिवला, कुशा, नीम के पत्ते, बेर के पत्ते इन के क्काथ से व्रण को धोवै तौ व्रण शुद्ध हो जाता है ।

तिलका कल्क, सेंधानमक, दोनों हलदी, निसोथ, घृत, मुलहटी और नीमके पत्तों का लेप करने से व्रण शुद्ध होजाता है ।

रोपणीय व्रणों की चिकित्सा ।

नातिरक्तोनातिपाण्डुर्नातिश्यावोनचाति रुक् । नचोत्सन्नोनचोत्सङ्गीशुद्धोरो प्यःपरंव्रणः ॥ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकद म्बप्लक्षवेतसाः । करवीरार्ककुटजाःक षायारोपणाःस्मृताः ॥ चन्दनंपद्मकि श्वल्कंदार्वीत्वङ्नीलमुत्पलम् । मेदांमू र्वांसमङ्गाञ्चयष्ट्याह्वांवर्णरोपणम् ॥ प्रपुण्डरीकंजीवन्तीङ्गोजिह्वांधातकींव लाम् । रोपणंसतिलंकुर्यात्प्रलेपंसघृतं व्रणे ॥ कम्पिल्लकंविडंगानिवत्सकंत्रि फलांबलाम् । पटोलंपिचुमर्दंचरोध्रंमु स्तांप्रियंगुकम् ॥ खदिरंधातकींसर्जमे लामगुरुचन्दने । पिष्ट्वासाध्यंभवेत्तैलं तत्परंव्रणशोधनम् ॥ प्रपुण्डरीकंमधुकं काकोल्यौद्वेसचन्दने । सिद्धमेतैःसमैस्तै लंतर्पणंव्रणरोपणम् ॥ दूर्वास्वरससि द्धंवातैलंकम्पिल्लकेनवा । दार्वीत्वचश्च कल्केनप्रधानंव्रणरोपणम् ॥ येनैवाविधि

नातैलंघृतंतेनैवसाधयेत् । रक्तपित्तोत्तरंदृष्ट्वारोपणीयंघृतंतथा ॥ कदम्बार्जुननिम्बानांपाटल्याःपिप्पलस्यच । व्रणप्रच्छादनेविद्वान्पत्राण्यर्कस्यचादिशेत्॥ वाल्तोऽथवादरश्चैवपट्टोव्रणहितःस्मृतः। वन्धश्चद्विविधःशस्तोव्रणानांसव्यदक्षिणः

अर्थ—जो व्रण अत्यन्त लाल, पाण्डुवर्ण श्याव, वेदनायुक्त, उत्सन्न और उत्संगी नहीं होते हैं वे रोपण करने के योग्य होते हैं।

वड़, गूलर, पीपल, कदम्ब, पाकर, वेत, कनेर, आक, कुड़ाकी छाल, इनका कषाय रोपणकर्त्ता होता है।

रक्तचन्दन, लाल कमल की केशर, दारुहलदी की छाल, नीलकमल, मेदा, मूर्वा, लज्जालू और मुलहटी ये व्रणको रोपण करने वाले हैं।

पुण्डरिया, जीवन्ती, गोभी, धायके फूल खरैटी, तिल इन के कल्क को घी में सानकर लेप करने से व्रणका रोपण होता है।

कवीला, वायविडंग, इन्द्रजौ, त्रिफला, खरैटी, परवल, नीम, लोध, मोथा, प्रियंगु, खैर, धाय के फूल, राल, इलायची, अगर, चन्दन इनको पीसकर तेल में पकावै, यह तैल व्रण को शोधनकर्ता होता है।

पुण्डरिया, मुलहटी, दोनों काकोली, चन्दन, इन के साथ में सिद्ध कियाहुआतेल तर्पणकर्त्ता और रोपणकर्त्ता है।

दूब का रस डालकर अथवा कवीला डालकर अथवा दारुहल्दी की छाल डालकर सिद्ध किया हुआ तेल व्रणरोपण के निमित्त अत्यन्त उत्तम प्रयोग है।

जिन २ द्रव्यों को डालकर तेल पकाया जाता है उनही से घृत भी सिद्ध किया जाता है। जो व्रण में रक्त पित्त की अधिकता होती है तौ घृतही प्रयुक्त किया जाता है॥

कदम्व, अर्जुन, नीम, पाटला, पीपल और आक के पत्ते व्रण के ढकने में काम आते हैं रूएंदार चर्म वा सूती कपड़े की पट्टी व्रण पर वाईं और दाहिनी दोनोंओर से बांधी जाती हैं

व्रणपर पथ्यविधि।

लवणाम्लकटूष्णानिविदाहीनिगरूणि च। वर्जयेदन्नपानानिव्रणीमैथुनमेवच॥ नातिशीतगुरुस्निग्धमविदाहियथाक्रमम्। अन्नपानंव्रणहितंहितंवास्वापनंदिवा ॥

अर्थ—नमकीन, खट्टा, कड़वा, उष्ण, विदाही और भारी अन्नपान तथा मैथुन व्रणरोग में वर्जित हैं। न अत्यन्त शीतल, न भारी, न स्निग्ध, अविदाही अन्नपान और दिन में न सौना ये व्रण में हितकर होते हैं॥

स्तन्यानिजीवनीयानिबृंहणीयानियानि च। उत्सादनार्थंनिम्नानांव्रणानांतानिकल्पयेत्॥ भूर्जग्रन्थ्यश्मकासीसमधोभागानिगुग्गुलुः। वृणावसादनंतद्वत्कलविङ्ककपोतविट्॥

अर्थ—नीचे व्रणों को ऊंचा करने के लिये स्तन्यवर्द्धक गणोक्त, जीवनीयगणोक्त

और बृहणीय गणोक्त औषधों का प्रलेप करै ।

भोजपत्र की गांठ, पारवानभेद; हीराकसीस और गूगल का लेप करने से व्रण एक होजाता है और इसीतरह मुर्गे और कबूतर की वीट का प्रयोग भी किया जाता है ॥

अग्निकर्मकेयोग्यव्रण

रुधिरेऽतिप्रवृद्धेतुछिन्नेछेद्येऽधिमांसके । कफग्रन्थिषुगण्डेषुवातस्तम्भानिलार्तिषु॥ गूढपूयलसीकेषुगम्भीरेषुस्थिरेषुच । क्लिन्नेषुचाङ्गदेशेषुकर्माग्नेःसंप्रशस्यते ॥

अर्थ—छेदन के योग्य अधिमांस के काटनेपर जो रुधिर अत्यन्त बहने लगे, तथा कफग्रंथि, गलगण्ड, वातस्तम्भ, वातजवेदना गूढ़पूय (जिस में पीव वहुत भीतरको हो) गूढ़लसी का गंभीर स्थिर और क्लिन्न अंगावयवों में अग्निकर्म श्रेठ होता है ।

मधूच्छिष्टेनतैलेनमज्जक्षौद्रवसाघृतैः । तप्तैर्वाविविधैर्लोहैर्दहेद्दाहंविशेषवित् ॥ रूक्षाणांसुकुमाराणांगम्भीरान्मारुतोत्तरान् । दहेत्स्नेहैर्मधूच्छिष्टैर्लोहैःक्षौद्रैस्ततोऽन्यथा ॥

अर्थ—मोम, तेल, मज्जा, शहत, चर्वी, घी, तथा लोहा आदि अनेक धातुओं को गरम कर कर के व्रण को दग्ध करै । रूक्ष कोमल, गम्भीर और वाताधिक्य व्रणोंको स्नेह और मोम द्वारा दग्ध करै । पित्ताधिक्य व्रण को लोह द्वारा और कफाधिक्य व्रणको शहतद्वारा दग्धकरै ।

अग्निकर्म के अयोग्यव्यक्ति ।

वालदुर्वलवृद्धानांगर्भिण्यारक्तपित्तिनाम् । तृष्णाज्वरपरीतानांप्रबलनांविषादिनाम् ॥ नाग्निकर्मोपदेष्टव्यंस्नायुमर्मव्रणेषुच । सविशेषेषुशल्येषुनेत्रकुष्ठव्रणेषुच॥

अर्थ—वालक, दुर्वल, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री रक्तपित्तरोगी, तृषारोगी; ज्वररोगी, प्रवलविषादग्रस्त, स्नायुव्रणी, मर्मव्रणी सविषरोगी, शल्ययुक्त रोगी, नेत्रव्रणी, कुष्टव्रणी आदिरोगी अग्निकर्म से वर्जित हैं ।

रोगदोषबलापेक्षीमात्राकालाग्निकोविदः। शस्त्रकर्माग्निकृत्येषुक्षारमप्यवचारयेत् ॥ कठिनत्वंव्रणायान्तिगन्धैःसारैश्चधूपिताः। सर्पिर्मज्जवसाधूपैःशैथिल्यंयान्तिहिव्रणाः रुजःस्रावाश्चगन्धाश्चक्रिमयश्चव्रणाश्रिताः। शैथिल्यंमार्दवंवापिधूपनेनोपशाम्यति ॥

अर्थ—रोग, दोष, वल, मात्रा काल और अग्नि की अपेक्षा कर के शस्त्रकर्म और अग्निकर्म के योग्य स्थलों में क्षारका प्रयोग करै ॥ गन्धद्रव्य और रालआदि की धूनी दैने से व्रण कड़ा पड़जाता है, इसीतरह घी, मज्जा और चर्वी की धूनी दैने से व्रण शिथिल पड़जाते हैं । व्रणकी वेदना, स्राव, गंध और क्रिमि तथा ढीलापन और मृदुता धूनीदैनेसे मिटजाती हैं ।

अन्यप्रयोग ।

रोध्रन्यग्रोधशुङ्गानिखदिरस्त्रिफलाघृतम्। प्रलेपोव्रणशैथिल्यंसौकुमार्य्यंप्रवोधनः॥ सरुजःकठिनाःस्तब्धानिरास्रावाश्चयेव्रणाः । यवचूर्णैःससर्पिष्कैर्वहुशस्तान्प्रले

पयेत् ॥ मुद्गषष्टिकशालीनांपायसैर्वाय थाक्रमम् । सघृतैर्जीवनीयैर्वातर्पयेत्तान भीक्ष्णशः ॥ ककुभोडुम्बराश्वत्थरोध्रजा म्ववकट्फलैः । त्वचमाश्वेवगृह्णन्तित्व क्चूर्णैश्चूर्णिताव्रणाः ॥ मनःशिलैलाम ञ्जिष्ठालाक्षाचरजनीद्वयम् । प्रलेपःसघृतः क्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरःपरः ॥ अयोरजः सकासीसंत्रिफलाकुसुमानिच । करोति लेपःकृष्णत्वंसद्यएवनवत्वाचि ॥ काली यकनताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमाः । लेपःसगोमयरसःसवर्णीकरणःपरः । क्रमु काश्वत्थनिचुलमूलंलाक्षासगैरिका । स हेमश्चामृतासङ्गाकासीसश्चेतिवर्णकृत् ॥

अर्थ—पठानी लोध, बड़की कोंपल,खैर सार, त्रिफला, घी इनका लेप व्रणकी शि-थिलता और सुकुमारताको दूर करता है जिन व्रणों में वेदना, कडापन, स्तब्धता, निरास्रावता होती है उनपर वहुत घी मिले हुए जौके चून का लेप करै । मूंग, साठी चांवल, शाली चांवल इन में से प्रत्येक को दूध के साथ सिद्ध करके लेप करै अथवा जीवनीय गणोक्त औषधियों को घृत में सानकर लेप करै तो तर्पण होता है ।

अर्जुन, गूलर, पीपल, लोध, जामन, का-यफल इनकी छाल का चूर्ण करके लेपकर ने से व्रण पर शीघ्र खाल आजाती है ।

मनसिल, इलायची, मजीठ, लाख, दोनों हलदी, घी और शहत इनका लेप त्वचा को शुद्ध करता है । लोहचूर्ण, कसीस, त्रिफला के फूल इनका लेप करने से नई त्वचा शीघ्र काली पड़जाती है ।

कालीयक, तगर, आमकी गुठली,नागके-सर, कान्तीसार इन को गोवर के रस में मिलाकर लेप करने से व्रणकी त्वचा शरीर की अन्यत्वचा के समान होजाती है ।

सुपारी, पीपल की जड़, हिंजलकी जड़, लाख, गेरू,नागकेसर, मुर्दासंग, हीराकसीस इनका लेप करनेसे व्रणका वर्ण देहकी त्वचा के समान होजाता है ।

व्रणपर वालजमने की विधि ।

चतुष्पदांहित्वग्लोमखुरशृंगास्थिभस्मना। तैलाक्ताचूर्णिताभूमिर्भवेल्लोमरुहापुनः॥ षोडशोपद्रवायेचव्रणानांपरिकीर्त्तिताः । ते षांचिकित्सानिर्दिष्टायथास्वेस्वेचिकित्सिते

अर्थ—चौपाये जानवरों की खाल,लोम-खुर, सींग और हड्डी इनकी भस्म को तेल में सानकर लगाने से व्रण की त्वचा पर वाल जमजाते हैं ।

व्रणों के जो सोलह उपद्रव निर्देश किये गये थे उनकी क्रम से चिकित्सा वर्णन की गई है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

द्वौव्रणौव्रणभेदाश्चपरीक्षादुष्टिरेवच । स्थानानिगन्धाःस्रावाश्चसोपसर्गाःक्रिया श्चयाः ॥ व्रणाधिकारेसप्रश्नमेतन्नवकमु क्तवान् । मुनिर्व्याससमासाभ्यामग्नि वेशायधीमते ॥

अर्थ—इस द्विव्रणीय चिकित्सिताध्याय में भगवान् आत्रेय ने दो प्रकार के व्रण व्रणों के भेद, परीक्षा, दूषित व्रणों के लक्ष-

ण, स्थान, गन्ध, स्राव, उपद्रव, चिकित्सा आदि सब बातें संक्षेप और विस्तार दोनों रीति से बुद्धिमान् अग्निवेशके सन्मुख वर्णनकी हैं ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सित स्थाने द्विवूणीय चिकित्सितं-नाम त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

———:*:———

चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातउन्मादचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय वोले कि अव हम उन्माद चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

बुद्धिस्मृतिज्ञानतपोनिवासः ।
पुनर्वसुःप्राणभृतांशरण्यः ।
उन्मादहेत्वाकृतिभेषजानि ।
कालेऽग्निवेशायशशंसपृष्टः ॥

अर्थ—बुद्धि, स्मृति, ज्ञान और तप के निवासस्थान और जीवधारियों के शरण्य भगवान् पुनर्वसुने अग्निवेशका प्रश्न सुनकर उचित समयमें उन्माद रोग के हेतु, आकृति और चिकित्साओं का वर्णन प्रारम्भ किया

उन्माद के हेतु ।

विरुद्धदुष्टाशुचिभोजनानि ।
प्रधर्षणंदेवगुरुद्विजानाम् ।
उन्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वो ।
मनोविकाराविषमाश्चचेष्टाः ॥
तैरल्पसत्त्वस्यमलाःप्रदुष्टा ।
बुद्धेर्निवासंहृदयंप्रदूष्य ।
स्रोतांस्यधिष्ठायमनोगमानि ॥
प्रमोहयन्तीहनरस्यचेतः ॥

अर्थ—विपरीत, दुष्ट और अपवित्र भोजन का सेवन, देवता गुरु और ब्राह्मणोंका धमकाना, भय और हर्ष से मन में विकार होना, विषमचेष्टा, ये सब उन्माद के हेतु हैं । इन्हीं कारणों से अल्पवलवाले मनुष्यके दोष दूषित होकर बुद्धि के निवास स्थान हृदय को दूषित कर के मनोगामी स्रोतों में स्थित होजाते हैं और तब मनुष्य के मन को मुग्ध करदेते हैं ।

उन्मादके सामान्य लक्षण ।

धीविभ्रमःसत्वपरिप्लवश्च ।
पर्य्याकुलादृष्टिरधीरताच ॥
अवद्धवाक्त्वंहृदयञ्चशून्यं ।
सामान्यमुन्मादगदस्यलिङ्गम् ॥

अर्थ—बुद्धि विभ्रम, मन का चलायमान् होना, नेत्रों में व्याकुलता, अधीरता, वेजोड़ वात, हृदय में शून्यता. ये उन्माद के सामान्य लक्षण हैं ।

समूढचेतानसुखंनदुःखं ।
नाचारधर्मौकुतएवशान्तिम् ॥
विन्दत्यपास्तस्मृतिवुद्धिसंज्ञ ।
भ्रमत्ययन्तेनत्वितस्ततश्च ॥

अर्थ—वह उन्माद से पीड़ित मूढ़बुद्धि किसी जगह भी सुख, दुख, आचार, धर्म और शान्ति प्राप्त नहीं करसक्ता है । उस की स्मृति बुद्धि और संज्ञा नष्ट होजातीहैं और इधर उधर डोलने लगता है ।

उन्माद के सामान्य भेद ।

समुद्भ्रमंबुद्धिमनःस्मृतीना ।
मुन्मादमागन्तुनिजोत्थमाहुः ॥
तस्योद्भवंपञ्चविधस्यभूयो ।
वक्ष्यामिलिंगानिचिकित्सितंच ॥

अर्थ—बुद्धि, मन और स्मृति के संभ्रम का नाम उन्माद है, इस के आगन्तु और निज दो भेद हैं । इसकी उत्पत्ति पांच प्रकार से है, अब हम उस के पृथक् पृथक् लक्षण और चिकित्सा बर्णन करेंगे।

वातजउन्माद का हेतु ।

रूक्षाल्पशीतान्नाविरेकधातु ।
क्षयोपवासैरनिलोऽतिवृद्धः ॥
चिन्तादिदुःखंहृदयंप्रदूष्य ।
बुद्धिंस्मृतिंचाप्युपहन्तिशीघ्रम् ॥

अर्थ—रूक्ष, अल्प और शीतल अन्न का सेवन अतिविरेचन, धातुक्षीणता और उपवास इन के कारण वायुअत्यन्त बढ़कर चिन्ताग्रस्त हृदय को अत्यन्त दूषित करके शीघ्रही बुद्धि और स्मृति को नष्ट करदेती है।

वातजउन्माद के लक्षण ।

अस्थानहासस्मितनृत्यगीत ।
वागङ्गविक्षेपणरोदनानि ॥
पारुष्यकार्श्यारुणवर्णताच ।
जीर्णेबलंवानिलजस्यरूपम् ॥

अर्थ—बिना-प्रसंग हँसना, मुसकुराना, नाचना, गाना, बोलना, हाथ पांव चलाना, रोदनकरना, देह में परुषता, कृशता,लालवर्णता, अन्नके पचनेपर रोगकी वृद्धिहोना ये सब वातजउन्मादकेलक्षण हैं ।

पित्तजउन्मादके हेतु ।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतै ।
र्भोज्यैश्चितंपित्तमुदीर्णवेगम् ॥
उन्मादमत्युग्रमनात्मकस्य ।
हृदिश्रितंपूर्ववदेवकुर्य्यात् ॥

अर्थ—अजीर्णकर्त्ता भोजन, तथा कटु, अम्ल, विदाही, उष्ण अन्नपान के सेवन से संचित हुआ पित्तउदीर्ण होकर अजितेन्द्रिय पुरुष के हृदय में स्थित होकर पूर्ववत् अत्युग्र उन्मादको उत्पन्न करताहै।

पित्तजउन्माद के लक्षण ।

अमर्षसंरम्भविनग्नभावाः ।
सन्तर्जनाभिद्रवणौष्णरोषाः ॥
प्रच्छायशीतान्नजलाभिलाषः ।
पीताचभाःपित्तकृतस्यलिङ्गम् ॥

अर्थ—अमर्ष, क्रोध, नंगा होजाना, संतर्जन, उठभागना, उष्णता, रोष, छायाकी इच्छा, शीतलअन्न और जल की इच्छा, देह का पीलावर्ण ये सब पित्तजउन्माद के लक्षण हैं ।

कफज उन्माद के हेतु ।

सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टनैश्च ।
सोष्माकफोमर्मणिसम्प्रवृद्धः ॥
बुद्धिंस्मृतिंचाप्युपहत्यचित्तं ।
प्रमोहयन्सञ्जनयेद्विकारम् ॥

अर्थ—बहुत भोजन करने से तथा शरीर के मन्द व्यवहार से ऊष्मा सहित कफ मर्मस्थान अर्थात् हृदय वृद्धि पाकर बुद्धि और स्मृतिका नाश करके चित्तको मुग्ध करता हुआ उन्मादको उत्पन्न करता है ।

कफज उन्माद के लक्षण ।

वाक्चेष्टितंमन्दमरोचकश्च ।
नारीविविक्तप्रियतातिनिद्रा ॥
छर्दिश्चलालाचबलश्चभुंक्ते ।
नखादिशौक्ल्यञ्चकफात्मकेस्यात् ॥

अर्थ—वाणी और चेष्टका मन्द पडजाना अरुचि होना, स्त्रियों में अनुराग, एकान्त की अभिलाषा, अत्यन्त निद्रा, वमन, लाला-स्राव, भोजन के पीछे रोग की वृद्धि, नख, नयन, मूत्र पुरीषादि का सफेद पड़जाना ये सब कफज उन्मादके लक्षण हैं ।

सान्निपातिक उन्माद के हेत्वादि ।

यःसन्निपातप्रभवोऽतिघोरः ।
सर्वैःसमस्तैःसतुहेतुभिःस्यात् ॥
सर्वाणिरूपाणिविभर्त्तितादृग् ।
विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः ॥

अर्थ—जो उन्माद सन्निपात से होता है वह अत्यन्त घोर होता है और वह पूर्वोक्त तीनों दोषों के मिले हुए लक्षणों से उत्पन्न होता है तथा इस के लक्षण भी मिले हुए तीनों दोषों के समान होते हैं, इस की चिकित्सा विरुद्ध होती है, इस से यह रोग वर्जित होता है ।

आगन्तु उन्माद के हेत्वादि ।

देवर्षिगन्धर्वपिशाचयक्ष ।
रक्षःपितॄणामभिधर्षणानि ॥
आगन्तुहेतूर्नियमव्रतादि ।
मिथ्याकृतंकर्म्मचपूर्वदेहे ॥

अर्थ—देवता, ऋषि, गंधर्व, पिशाच, यक्ष, राक्षस और पितृगणों की अवधर्षणा नियम और व्रतों में विक्षेप, तथा पूर्वजन्मार्जित कर्मफल से आगन्तु उन्माद होता है ।

भूतोन्मादके लक्षण ।

असत्यवाग्विक्रमवीर्य्यचेष्टा ।
ज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः ॥
उन्मादकालोऽनियतश्चयस्य ।
भूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—वाणी, पराक्रम, वीर्य, चेष्टा, ज्ञान, विज्ञान और बल के मिथ्या आचरण से जो उन्माद होता है तथा जिसकें घटनें बढने का समय नियत नही है उसे भूतोन्माद कहते हैं ।

देवादि के शरीरमें प्रविष्ट होनेमें दृष्टान्त ।

अदूषयन्तःपुरुषस्यदेहं ।
देवादयःस्वैश्चगुणप्रभावैः ॥
विशन्त्यदृश्यास्तरसायथैव ।
छायातपौदर्पणसूर्य्यकान्तौ ॥

अर्थ—देवतादिक अपने गुणों के प्रभाव से शरीर को विना दूषित किये अलक्षित रीति से मनुष्यों के देह में ऐसे प्रविष्ट होजाते हैं जैसे दर्पण और सूर्यकान्तिमणि में छाया और आतप प्रविष्ट होजाते हैं ।

अजातकालोहिसपूर्वरूपः ।
प्रोक्तोनिदानेऽस्यपरंसुराद्यैः ॥
उन्मादरूपाणिपृथग्निबोध
कालश्चगम्यंपुरुषांश्चतेषामिति ॥

अर्थ—निदानस्थान में इस उन्माद रोग में देवादि गणका शरीर में प्रवेश होने का काल, और पूर्वरूप वर्णन किया गया है । अब

हम उन्माद के पृथक् पृथक् लक्षण और शरीरमें प्रविष्ट होने का काल वर्णन करते हैं ।

देवोन्मत्त के लक्षण ।

सौम्यदृष्टिंगम्भीरमप्रधृष्यमकोपनमस्व प्नंभोजनाभिलाषिणमल्पस्वेदमूत्रपुरी षवाचंशुभगन्धंफुल्लपद्मबदनइतिदेवो- न्मत्तंविद्यात् ॥

अर्थ—सौम्य दृष्टिवाला, गम्भीर अप्रधृष्य (धर्षणके अयोग्य) अक्रोधी, निद्राहीन भोजनाभिलाषी, तथा जिसके पसीने, मूत्र मलकम होते हों, जो कम बोलता हो, देह में सुगंध आती हो, जिसका मुख प्रफुल्लित कमल के समान हो, ऐसा पुरुष देवोन्मत्त होता है ।

अभिचारोन्मादके लक्षण ।

गुरुवृद्धसिद्धर्षीणामभिचाराभिध्याना नुरूपाचाहारचेष्टाव्याहारंतैरुन्मत्तंवि द्यात् ।

अर्थ—जिस उन्माद में गुरु, वृद्ध, सिद्ध तथा ऋषियों के अभिचार और अभिध्यान के अनुरूप आहार, चेष्टा और व्यहार होता है वह उन्माद गुरुवृद्धादिकृत होता है ।

पितृगणकृतउन्माद ।

अप्रसन्नदृष्टिमपश्यन्तंनिद्रालुंप्रतिहतवाच मनन्नाभिलाषारोचकाविपाकपरीतंपितृ भिरुन्मत्तंविद्यात् ।

अर्थ—जो मनुष्य पित्रों के किये हुए उन्माद से ग्रस्त होता है उसकी दृष्टिस्वच्छ नहीं होती है वह पदार्थों को अच्छीतरह नहीं देख सक्ता है, और निद्रालु होता है उसकी वाणी यथावत् नहीं निकल सक्ती है, अन्न में अनिच्छा और भोजन में अरुचि होती है तथा वह अविपाक रोग से पीड़ित होता है ।

गंधर्वोन्माद के लक्षण ।

चण्डंसाहसिकंतीक्ष्णंगम्भीरमप्रधृष्यंमु- खवाद्यनृत्यगीतानुपानस्नानपानमाल्य धूपगन्धरक्तवस्त्रबलिकर्म्महास्यकथायो- गप्रियंशुभगन्धमितिगन्धर्वोन्मत्तंविद्यात् ।

अर्थ—जो चण्डप्रकृति, साहसिक, तीक्ष्णस्वभाव, गम्भीर, अप्रधृष्य, मुखसे बाजा बजाने का अनुरागी, नृत्य, गीत, अनुपान, स्नान, मालाधारण, धूप; गंध, लालवस्त्र, बलिकर्म, हास्य, तथा आदिकर्मों में प्रीति- रखनेवाला हो जो देह में सुगंधित पदार्थों को लगाताहो उसे गन्धर्वोन्मत्त समझो।

यक्षोन्माद के लक्षण ।

असकृत्स्वप्नरोदनहास्यंनृत्यगीतवाद्य कथान्नपानस्नानमाल्यधूपगन्धरतिंरक्त विप्लुताक्षंद्विजातिवैद्यपरिवादिनंरहस्य भाषिणमितियक्षोन्मत्तंविद्यात् ।

अर्थ—जो बार २ सोता है, रोता है, हंसता है, नाचता है, गाता है, बजाता हैं, बकता है, खाता पीता है, स्नान करता है, फूलमाला धूप गंध धारण करता है जिस की आंखें अत्यन्त लाल होती हैं जो द्विजाति और वैद्यों की निन्दा करता है जो अपनी वा और की गुह्यबातोंका प्रकाश करदेता है । उसे यक्षोन्मादी समझो ।

राक्षसोन्माद के लक्षण ।

नष्टनिद्रमन्नपानद्वेषिणमनाहारमप्रतिबलिनंशस्त्रशोणितमांसरक्तमाल्याभिलाषिणंतर्ज्जनमितिराक्षसोमत्तंविद्यात् ।

अर्थ—जिसकी निद्रा नाश होगई हो, जिसको अन्नपान से द्वेष हो, जो भोजन न करता हो, जो अतीव बलवान् हो, जो शस्त्र, रुधिर, मांस और लालपुष्पोंकीमाला धारण करनेका अभिलाषीहो उसे राक्षसोन्मत्त समझो ॥

ब्रह्मराक्षसोन्मत्त के लक्षण ।

प्रहासनृत्यप्रधानंदेवविप्रवैद्यद्वेषावज्ञाभिष्टुतिवेदमन्त्रशास्त्रोदाहरणैःकाष्ठादिभिरात्मपीडनेनचब्रह्मराक्षसोन्मत्तंविद्यात्।

अर्थ—जो अत्यन्तही हँसता वा नाचता हो, जो देवता, ब्राह्मण और वैद्यों से द्वेष रखता हो, जो अवज्ञा पूर्वक स्तुति करता हो, जो वेदमंत्र और शास्त्र के उदाहरण देता हो, जो अपनी देह में लकड़ी लाठी आदि मारता हो, वह ब्रह्मराक्षसोन्मत्त होता है ।

पिशाचोन्मत्त के लक्षण ।

अस्वस्थचित्तंस्थानमलभमानंनृत्यगीतहासिनंबद्धावद्धप्रभाषिणंसङ्कटकूटमलिनरथ्याचेलतृणेष्वारोहणरतिंसंभिन्नवर्णरूक्षस्वरंनग्नंविधावन्तंनैकत्रतिष्ठन्तंदुःखान्यावेदयन्तंनष्टस्मृतिंपिशाचोन्मत्तंविद्यात्।

अर्थ—जिसका चित्त एक ठिकाने नहीं रहता है और चंचल होता है, जो नाचता, गाता और हँसता रहता है, जो प्रसंगाप्रसंगगत बातें बकता रहताहै, जो कष्टकारक पहाड़ों की चोटियों पर चढ़जाता है, जो ऊंचे मार्गों पर, चिथड़ों के ढेरोंपर, तृणों के ढेरों पर चढ़जाता है, जिस के देह का वर्ण बिगड़जाता है, स्वर में रूखापन होता है, जो नंगा होजाता है, इधर उधर दौड़ने लगता है, एक, स्थान पर नहीं ठहरता है; दुःखों को कहता फिरता है, जिसकी स्मृति नष्ट होजाती है उसे पिशाचोन्मत्त कहते हैं ॥

देवादिकृत उन्माद की विधि ।

तत्रशौचाचारंतपःस्वाध्यायकोविदंनरंप्रायःशुक्लप्रतिपदित्रयोदश्याञ्चदेवाः । स्नानशुचिविविक्तसेविनंधर्म्मशास्त्रश्रुतिकाव्यकुशलंप्रायःपष्ठीनवम्योर्ऋषयः । मातृपितृगुरुवृद्धसिद्धाचार्योपसेविनंप्रायोदशम्याममावास्यायाञ्चपितरः । गन्धर्वास्तुस्तुतिगीतवादित्ररतिंपरदारगन्धमाल्यप्रियशौचाचारंद्वादश्याञ्चतुर्थ्याञ्च । सत्त्वबलरूपगर्वशौर्य्ययुक्तंमाल्यानुलेपनंहास्यप्रियमतिवाक्करणंप्रायःशुक्लैकादश्यांसप्तम्यांचयक्षाः । स्वाध्यायतपोनियमोपवासव्रतचर्य्यादेवयतिगुरुपूजारतिंभ्रष्टशौचंब्राह्मणमब्राह्मणंवाब्रह्मवादिनंशूरमानिनंदेवतागारसलिलक्रीडनरतिंप्रायःशुक्लपञ्चम्यांपूर्णचन्द्रदर्शनेचब्रह्मराक्षसाः । रक्षःपिशाचास्तुहीनसत्त्वपिशुनस्त्रैणलुब्धंप्रायोद्वितीयातृतीयाष्टमीषुपुरुषंछिद्रमवेक्ष्याभिधर्षयन्तीत्यपरिसंख्ये

यानांग्रहाणामाविष्कृततमाह्यष्टाबेतेव्याख्याताः ।

अर्थ—इन में से जो मनुष्य शौच, आचार, तप और स्वाध्याय में निरत है उस को छिद्र पाकर देवगण शुक्र पक्षकी प्रतिपदा वा त्रयोदशी को दवाते हैं । जो स्नानादि से पवित्र रहता है एकान्त में रहता है, जो धर्मशास्त्र, श्रुति असंख्य ग्रहों में से ये आठ वडे उग्र हैं इससे इन्हीं आठ का वर्णन किया गया है और काव्य में कुशल है उसको ऋषिगण प्रायः छट वा नवमी को दवाते हैं । जो माता, पिता, गुरु वृद्ध, सिद्ध और आचार्यों की सेवा करता है उसे पितृगण प्रायः दशमी वा अमावास्या को दवाते हैं । जो मनुष्य स्तुतिपाठ, गाने और वजाने में लीन रहता है, पर स्त्री गामी होता है, गंध, माला, शौचाचार से हित रखता है उसे गन्धर्व द्वादशी वा चतुर्थी को दवाते हैं । जो मनुष्य सत्व, वल, रूप, गर्व, शौर्य से युक्त होता है, माला और चन्दन धारण करता है, हंसी दिल्लगी करता रहता है, अत्यन्त वोलता है उसे यक्षगण प्रायः शुक्लपक्षकी एकादशी वा सप्तमी को दवाते हैं । जो स्वाध्याय, तप, नियम, उपवास, व्रतचर्या देवता यति और गुरु की पूजा में विरक्त मन है, अपवित्र है, जो ब्राह्मण को अब्राह्मण कहता है, जो ब्रह्मवादी है, जो शूरमानी है जो देवस्थान में जलक्रीड़ा करता है उसे ब्रह्मराक्षस प्रायः शुक्लपक्षकी पंचमी वा पूर्णमासी को दवाते हैं । जो मनुष्य हीन पराक्रम छली, पर स्त्री लम्पट और लोभी होता है उसे राक्षस और पिशाचगण छिद्रपाकर द्वितीया तृतीया वा अष्टमी को धर दवाते हैं

असाध्य उन्माद के लक्षण ।

सर्वेष्वपितुखल्वेषुयोहस्तावुद्यम्यरोषसंरम्भानिःसंज्ञमन्येष्वात्मनिवापातयेत् । सोह्यसाध्योज्ञेयस्तथासाश्रुनेत्रोमेढ्रप्रवृत्त रक्तःक्षतजिह्वःप्रस्नुतनासिकः । छिद्यमा नमर्मोप्रतिहन्यमानपाणिःसततंःविकूजन् दुर्वर्णस्तृषार्त्तःपूतिगन्धिश्चहिंसार्थीउन्मत्तोज्ञेयस्तंपरिवर्ज्जयेत् ।

अर्थ—इन सब रोगियों में जो रोगी अपने दोनों हाथों को ऊंचे करके रोष के आवेग में अचेत होकर और के देह पर स्वयंही गिर पड़ता है वह असाध्य होता है, तथा जिस उन्मादरोगी के नेत्रों में आंसू आते हैं, मेढ से रक्त निकलता है, जीभमें घाव होजाता है, नाक टपकती है, मर्म स्थान में छिदने की सी पीड़ा होती है, हाथों को देमारता है, कंठ में कूजन शब्द होता है, शरीर का रंग विगड़ जाता है, तृषा से पीडित होता हैं जिसके देह में दुर्गन्ध आती है जो हिंसा करने के लिये उद्यत होता है, ऐसा रोगी त्यागने के योग्य होता है ।

मंत्रादि द्वारा चिकित्स्य रोगी ।

रत्यर्चनाकामोन्मादिनीतुभिषगभिप्रायाचाराभ्यांवुद्ध्वातदङ्गोपहारवलिश्रमेणमन्त्रभैषज्यविधिनोपक्रमेत्।तत्सद्वयोरपिनिजा

गन्तुनिमित्तयोरुन्मादयोःसमासविस्तारा
भ्यांभेषजविधिंव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—देवतों की पूजा पाठ में व्यतिक्रम होने से वा काम पीडित होने से जो अभिशाय वा अभिचार द्वारा उन्माद होता है उस में उपहार, वलिदान और मंत्रमिश्रित औषधियों द्वारा चिकित्सा करै ॥

अव हम निज और आगन्तु दोनों प्रकार के उन्मादों की चिकित्सा संक्षेप और विस्तारसे कहते हैं ।

वातज उन्माद में चिकित्साक्रम ।

उन्मादेवातजेपूर्वस्नेहपानंविशेषवित् ।
कुर्य्यादावृतमार्गेतुसस्नेहंमृदुशोधनम् ॥

अर्थ—वातज उन्माद में प्रथम स्नेह पान कराना उचित है और जो स्रोतों के मार्ग रुकरहे हों तौ स्नेह मिश्रित मृदु संशोधन देवै ।

कफपित्तोन्माद में चिकित्साक्रम ।

कफपित्तभवेऽप्यादौवमनंसविरेचनम् ।
स्निग्धास्विन्नस्यकर्त्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः
निरूहणस्नेहवस्तीशिरसश्चाविरेचनम् ।
ततःकुर्य्याद्यथादोषंतेषांभूयस्त्वमाचरेत्॥

अर्थ—स्नेहन और स्वेदन कर्म कराने के पश्चात् कफज उन्माद में वमन और पित्तज में विरेचन देवै अथवा दोनों में दोनों ही देवै । इस के पीछे पूर्वोक्त क्रम से पेया आदि का सेवन करावै । फिर निरूहणवस्ति और शिरो विरेचन देवै । फिर जैसा दोष हो उसी के अनुसार वार वार वमन विरेचनादि का प्रयोग करता रहै ।

वन्मनादिकाफल ।

हृदिन्द्रियशिरःकोष्ठेसंशुद्धेवमनादिभिः ।
मनःप्रसादमाप्नोतिस्मृतिंसंज्ञाञ्चविन्दति

अर्थ—वमन विरेचनादि प्रयोगों से हृदय, इन्द्रीगण, शिर और कोष्ठ के शुद्ध होजाने पर मन में प्रसन्नता तथा स्मरणशक्ति और चैतन्यता वढ़ती हैं ।

आचारविभ्रंशमेंउपाय ।

शुद्धास्याचारविभ्रंशेतीक्ष्णंनावनमञ्जनम्।
ताडनञ्चमनोवुद्धिदेहसंतर्ज्जनंहितम् ॥
यःशक्तोविनयेत्पट्टैःसंयम्यसुदृढैःसुखैः ।
अपेतलोष्टकाष्ठाद्यैःसंरोध्यश्चतमोगृहे ॥

अर्थ—वमन विरेचनादि से शुद्धव्यक्ति के आचार विभ्रंश होने पर तीक्ष्णनस्य, अंजन और ताड़ना का प्रयोग करै । मन, बुद्धि और देह का ताड़ना भी हित होता है । जो रोगी वलवान् हो तौ लोह और काष्ठ को छोड़कर मजबूत सुखदाई पट्टियों से वांधकर अंधेरे घर में बन्दकरदेवै ।

स्मृतिवर्द्धक उपाय ।

तर्ज्जनंत्रासनंदानंसान्त्वनंहर्षणंभयम् ।
विस्मयोविस्मृतेर्हेतुर्नयन्तिप्रकृतिंमनः ॥
प्रदेहोत्सादनाभ्यङ्गधूमापानञ्चसर्पिषः ।
प्रयोक्तव्यंमनोवुद्धिस्मृतिसंज्ञाप्रवोधनम्॥

अर्थ—डराना, धमकाना, दैना, समझाना, प्रसन्नकरना, भय दिखाना और भूल में डालना इन वातों सेस्मृति बढ़ती है और मन सुस्थ होता है । प्रदेह, उत्सादन, अभ्यंग, धूमपान, घृतपान इन प्रयोगों से बुद्धि स्मृति और संज्ञा वढ़ती है ।

आगन्तुउन्माद में उपाय।

सर्पिःपानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यतेविधिः। अतःसिद्धतमान्योगान्शृणून्माद विनाशनान्॥

अर्थ—आगन्तु उन्माद में घृतपान और मंत्र प्रयोग बहुत अच्छे होते हैं। अब उन्मादको दूर करनेवाले उत्तम २ अनुभव कियेहुये प्रयोगों को लिखते हैं।

उन्मादनाशकप्रयोग।

हिंगुसौवर्चलाव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम्। चतुर्गुणेगवांमूत्रेसिद्धमुन्मादनाशनम्॥

अर्थ—हींग, संचलनमक, त्रिकुटा इनमें से प्रत्येक द्रव्य को दो २ पल लेकर एक आढक घृत और चौगुने जल में पकाकर सेवन करै, यह उन्मादनाशक प्रयोग है।

कल्याणकघृत।

विशालात्रिफलाकौन्तीदेवदार्वेलवालुकम्। स्थिरानन्तरजन्यौद्वेशारिवेद्वेप्रियंगुकम्॥ नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठादन्तीदाडिमकेसरम्। तालीसपत्रंबृहतीमालत्याःकुसुमंनवम्॥ विडङ्गंपृश्नीपर्णीचकुष्ठंचन्दनपद्मकम्। कल्कैःकर्षसमैरेतैर्विंशंत्याष्टाभिरेवच॥ चतुर्गुणेजलेपक्त्वा घृतप्रस्थंप्रयोजयेत्। अपस्मारेज्वरेकासे श्वासेमन्देऽनलक्षये॥ वातरोगेप्रतिश्यायेतृतीयकचतुर्थके। छर्द्यर्शोमूत्रकृच्छ्रेच विसर्पोपहतेषुच॥ कण्डूपाण्ड्वामयोन्मादविषमेहगरेषुच। भूतोपहतचित्तानांगद्गदानामरेतसाम्॥ शस्तंस्त्रीणाञ्च वंध्यानांधन्यमायुर्बलप्रदम्। अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नंसर्वग्रहविनाशनम्॥ कल्याणकमिदंसर्पिःश्रेष्ठंपुंसवनेषुच।

अर्थ—इन्द्रायण, त्रिफला, रेणुका, देवदारु, एलुआ, शालिपर्णी, अनन्ता, दोनोंहल्दी, दोनों शारिवा, प्रियंगु, नीलोफर, इलायची, मजीठ, दन्ती, अनार, नागकेशर, तालीसपत्र, बड़ी कटेरी; मालती के नये फूल, वायविडंग, पृष्णिपर्णी, कूठ, चन्दन, पद्माक, इन अट्ठाईस द्रव्योंके एक एककर्ष कल्क लेवै। इनको चौगुने जलमें पकाकर एक प्रस्थ घी डाल देवै। यहघृत मृगीरोग, ज्वर, खांसी, श्वास, मन्दाग्नि, वातरोग, प्रतिश्याय, तृतीयकज्वर, चतुर्थकज्वरवमन, ववासीर, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पाण्डुरोग, उन्माद, विष, प्रमेह, विषरोग, भूतोपहत चित्त, गद्गदरोग, वीर्यनाश तथा स्त्रियों के वन्ध्यापन को दूर करताहै। यह आयु और बलका बढ़ानेवाला है तथा अलक्ष्मी, पाप, राक्षस और सम्पूर्ण ग्रहों को नष्ट करनेवाला है। यह कल्याणनामक घृत पुंसवनकर्म में श्रेठ है॥

महाकल्याणकघृत।

एभ्यएवस्थिरादीनिजलेपक्त्वैकाविंशतिम्॥ रसेतस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरचतुर्गुणे वीराद्विमासाकाकोलीस्वगुप्तर्षभकर्द्धिभिः मेदयाचसमैःकल्कैस्तत्स्यात्कल्याणकं महत्। बृंहणीयंविशेषेणसन्निपातहरं परम्॥

अर्थ—शालपर्णी से आदि लेकर इक्कीस द्रव्यों को ऊपर कहेहुये प्रमाण से लेकर

जलमें औटावे, उस क्वाथमें एक बार ब्याई हुई गौ का चौगुना दूध डालकर घी पकावे, इसमें क्षीरकाकोली दोनोंप्रकारकेमाष,काकोली केंच, ऋषभक, ऋद्धि और मेदा इन सब को समान भाग लेकर कूटकर डाल देवै यह महाकल्याणक घृत है । यह घृत अत्यन्त बृंहणकर्त्ता और सन्निपात को दूर करने वाला है ।

महापैशाचिक घृत ।

जटिलांपूतनाकेशींचारटींमर्कटींवचाम् ।
त्रायमाणांजयांवीराश्चौरकंकटुरोहिणीम् ।
वयःस्थांशूकरींछत्रामतिच्छत्रांपलङ्कषाम् ।
महापुरुषदन्ताश्चवयःस्थांनाकुलीद्वयम् ॥
कटम्भरांवृश्चिकालीस्थिरांचाहृत्यतैर्घृतम् ॥
सिद्धंचतुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।
महापैशाचिकंनामघृतमेतद्यथामृतम् ॥
बुद्धिस्मृतिकरंचैवबालानांचाङ्गवर्द्धनम् ।

अर्थ—जटांमासी, हरड़, केशी (नीली-वृक्ष), चारटी, केंच,वच, त्रायमाणा, जया, क्षीरकाकोली, चोरपुष्पी, कुटकी, गिलोय, वाराहीकन्द, छत्रा,अतिक्षत्रा गूगल,शतमूली वयस्था, दोनों नाकुली (दो प्रकार की रास्ना) , कटभी, वृश्चिकाली, शालिपर्णी इन को कूटकर इनके क्वाथ में घृत पकावै यह घृत अनुभव किया हुआ है । इसके सेवन से चौथैया ज्वर, उन्माद, ग्रह अपस्मार नष्ट होजाते हैं यह महापैशाचनामक घृत अमृत के समान गुणकारी बुद्धि और स्मृति को बढाने वाला है । यह घृत बालकों के अंगों को बढाता है ।

लशुनाद्य घृत ।

लशुनानांशतंत्रिंशदभयात्र्यूषणात्पलम् ।
गवांचर्म्ममसीप्रस्थोद्व्याढकंक्षीरमूत्रयोः ॥
पुराणसर्पिषःप्रस्थमेभिःसिद्धंप्रयोजयेत् ।
हिंगुचूर्णपलंशीतेदत्वाचमधुमानिकाम् ॥
तद्दोषागन्तुसम्भूतानुन्मादान्विषमज्वरान् ।
अपस्मारांश्चहन्त्याशुपानाभ्यञ्जननावनैः ।

अर्थ—सौ गांठ ल्हसन, तीस हरड़, त्रिकुटा एक पल, गोचर्म की भस्म एक प्रस्थ, गौ का दूध और गौ का मूत्र एक एक आढक, पुराना घी एक प्रस्थ इन सब को सिद्ध कर लेवै । जब यह ठंडा हो-जाय तब इस में एक पल हींग पिसी हुई और आठ पल शहत डालकर मिलाले । इस घृत को पान अभ्यंजन और नस्यकर्म में प्रयोग करने से आगन्तुक उन्माद,विषम ज्वर और अपस्मार नष्ट होजाते हैं ।

अन्य लशुनादि घृत ।

लशुनस्याविनष्टस्यतुलार्द्धंनिस्तुषीकृतम् ।
तदर्द्धंदशमूलस्यद्व्याढकेऽपांविपाचयेत् ।
पादशेषेघृतप्रस्थंलशुनस्यरसंतथा ॥
कोलमूलकवृक्षाम्लमातुलुङ्गार्द्रकेरसैः ।
दाडिमाम्बुसुरामस्तुकांजिकाम्लैस्तदर्द्धकैः । साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्योषदीप्यकैः ॥ भवानीचव्यहिङ्ग्वम्लवेतसैश्चपलार्द्धिकैः । सिद्धमेतत्पिबेत्शूलगुल्मार्शोजठरापहम् ॥ ब्रध्मपाण्ड्वामयप्लीहयोनिदोषज्वरान्क्रिमीन् । वातश्लेष्मामयांश्चान्यानुन्मादश्चापकर्षति ॥

अर्थ—उत्तम ल्हसन की छिलका दूर

की हुई गाठ पचासपल, दशमूल पच्चीसपल इन को दो आढक जल में पकावै, जव चौथाई शेषरहजाय तव इस क्वाथ में एक प्रस्थ घी, एक प्रस्थ ल्हसन का रस, वेर, मूली, वृक्षाम्ल, विजौरा, अदरख का रस अनारका रस, ये सव एक एक प्रस्थ लेवै। तथा सुरा, मस्तु और कांजी आधे आधे प्रस्थ लेवै। तथा त्रिफला, दारुहलदी,सेंधा नमक, त्रिकुटा, दोनों अजवायन, चव्य, हींग, अमलवेत इन सब का आधे आधे पल चूर्ण मिलाकर पाक करै। इस घृत का पान करने से शूल गुल्म, अर्श, जठररोग ब्रध्म, पाण्डुरोग, प्लीहा, योनि दोष, ज्वर क्रिमिरोग, वातकफरोग तथा अन्यप्रकार के उन्मादरोग नष्ट होजाते हैं।

अन्य घृत।

हिंगुनाहिंगुपर्ण्याचसकायस्थावयस्थया।सिद्धंसापिर्हितंतद्वद्वयस्थाहिंगुरोचकैः॥ केवलं सिद्धमेभिर्वापुराणंपाययेद्घृतम्। पाययत्वोत्तमांमात्रांश्वभ्रेरुन्ध्याद्गृहेऽपिवा

अर्थ—हींग, हिंगुपर्णी, हरड़ और गिलोय इन को डालकर पुराना घी पान करै अथवा गिलोय, हींग और रोचक (राज पलांडु) डालकर पुराना घी सिद्ध करै। इस घृत की उत्तम मात्रा पान कराके रोगी को किसी श्वभ्र (तहरवाने) में वा घर में विठलाये रक्खै।

पुराने घी के गुण।

विशेषतःपुराणञ्चघृतंतंपाययेद्भिषक्। त्रिदोषघ्नंपवित्रत्वात्विशेषाद्ग्रहमोक्षणम्। गुणकर्माधिकंस्थानादास्वादात्कटुतिक्तकम्॥ उग्रगन्धंपुराणंस्यादशवर्षस्थितंघृतम्। लाक्षारसनिभंशीतंतद्धिसर्वग्रहापहम्। मेध्यंविरेचनेष्वग्र्यंप्रपुराणेष्वतःपरम्। नासाध्यंनामतस्यास्तियत्स्याद्वर्षशतस्थितम्॥ दृष्टंस्पृष्टमथाघ्रातंतद्धिसर्वग्रहापहम्। अपस्मारग्रहोन्मादवतांशस्त्रंविशेषतः॥

अर्थ—वैद्य को उचित है कि उन्माद रोग में विशेष करके पुराना घी पान करावै यह घृत त्रिदोषनाशक और पवित्र होने से ग्रहमोक्षण कर्त्ता है। पुराना घी वहुत दिवस का होने से गुण और कर्म में अधिक होता है,स्वाद में कटु और तिक्त होताहै,इसमें गंध बड़ी उग्र आती है इसतरह दसवरष का घी पुराना होता है। जो घृत लाख के रस के समान और शीतल होता है वह सर्वग्रह नाशक होता है। दश वरष से अधिक दिनका घी मेधावर्द्धक और उत्तम विरेचनकर्ता है, इसे प्रपुराण कहते हैं। सौ वरष के घी के सामने कोई भी ऐसा रोग नहीं है जो साध्य न हो। इस घृत के देखने, छूनेऔर सूंघनेसेही सम्पूर्ण ग्रह शान्त होजाते हैं। यह घृत अपस्मार और ग्रहोन्माद रोगियों को विशेष कर के उपयोगी होता है।

नस्याञ्जन प्रयोग।

एतैरौषधवर्गैर्वाविधेयत्वंसगच्छति। अञ्जनोत्सादनालेपान्नावनादिनियोजयेत् शिरीषोमधुकंहिंगुलशुनंतगरंवचाम्॥ कु

ष्ठुञ्चवस्तमूत्रेणपिष्टंस्यान्नावनाञ्जनम् ।
अर्थ—इन्हीं नीचे लिखीहुई औषधियों द्वारा उन्माद का विधान कियाजाता है, तथा अंजन, उत्सादन, आलेपन और नस्यकर्म में भी प्रयुक्त कीजाती है । उन औषधियों के नाम ये हैं, सिरस, मुलहटी, हींग, ल्हसन, तगर, वच, और कूठ इन को बकरे के मूत्र में पीसकर नस्यकर्म और अञ्जन में प्रयुक्तकरै ॥

अन्यप्रयोग ॥

तद्वद्व्योषंहरिद्रेद्वेमञ्जिष्ठाहिंगुसर्षपाः ॥ शिरीषवीजञ्चोन्मादग्रहापस्मारनाशनम्।
अर्थ—ऊपरकी रीति के अनुसारही दोनों हलदी, मजीठ, हींग, सरसों, सिरस के वीज इनको नस्यकर्म और अञ्जन में प्रयुक्तकरै । इससे उन्माद, ग्रहरोग और अपस्मार दूर होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोग ॥

पिष्ट्वातुल्यमपामार्गंहिंगुलंहिंगुपत्रिकाम् ॥ वर्त्तिःस्यान्मरिचार्द्धांशापित्ताभ्यांगोशृगालयोः । तथाजयेदपस्मारभूतोन्मादज्वरार्दितान् ॥ भूतार्त्तानमरार्त्तांश्चनरार्त्तांश्चैवगोमये । मरिचञ्चातपेमांसंसपित्तस्थितमञ्जनम् ॥ वैकृतंपश्यतःकार्य्यंदोषभूतहतस्मृतेः ॥

अर्थ—ओंगा, हींगलू और हींगपत्री, इनको समानभाग लेवै और तीनों से आधी काली मिरच डालकर गौ वा शृगाल के पित्ते के साथ वत्ती बनावै । इससे अपस्मार, भूतोन्माद, ज्वर, अर्दित, भूतार्त, देवार्त्तादिरोग नष्ट होजाते हैं ।

कालीमिरच, गोमांस और गोपित्त इन तीनों को मिलाकर धूप में रख देवै फिर इनको आखों में आंजै तौ दृष्टि की विकृति, दोषज उन्माद, भूतोन्माद तथा स्मृतिनाश ये सब जाते रहते हैं । (किसी २ पुस्तक में ' मांस ' की जगह मास पाठ करके यह अर्थ किया है कि महीने भरतक धूप में रक्खै)॥

अन्यप्रयोग ॥

सिद्धार्थकोवचाहिंगुकरञ्जोदेवदारुच । मञ्जिष्ठात्रिफलाश्वेताकटभीत्वक्कटुत्रिकम्॥ समांशानिप्रियंगुश्चशिरीषोरजनीद्वयम् । वस्तमूत्रेणपिष्टोऽयमगदःपानमञ्जनम् । नस्यमालेपनञ्चैवस्नानमुद्वर्त्तनंतथा । अपस्मारविषोन्मादकृत्यालक्ष्मीज्वरापहः॥ भूतेभ्यश्चभयंहन्तिराजद्वारेचशस्यते । सर्पिरेतेनसिद्धंवासगोमूत्रंतदर्थकृत् ॥

अर्थ—सफेदसरसों, वच, हींग, दोनों प्रकारके कञ्जा, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, सफेदकोयल, कटभीकीछाल, त्रिकुटा, प्रियंगु, सिरसकी छाल, दोनों हलदी, इन सबको समान भाग लेकर बकरे के मूत्र में पीस लेवै इस औषधका पान, अंजन, नस्य, आलेपन, स्नान, उद्वर्त्तन में प्रयोग करने से अपस्मार, विषोन्माद, कृत्या, अलक्ष्मी और ज्वर नष्ट होजाते हैं । इसका अंजन लगाने से भूतोंका डर जाता रहता है और राज द्वार में प्रशंसा कापात्र होता है ॥

इन्हीं औषधियों को गोमूत्र में पीसकर घृत पाक करके सेवन करै तौ पूर्वोक्त गुण होते हैं।

अन्य प्रयोग।

प्रसेकेपीनसेगन्धैर्धूमवर्त्तिकृतांपिवेत् । वैरेचनिकधूमोक्तैःश्वेताद्यैर्वासहिंगुभिः ॥ शल्यकोलूकमार्जारजम्बूकवृकवस्तजैः। मूत्रपित्तशकृल्लोमनखैश्चर्मभिरेवच ॥ सेकाञ्जनंप्रधमनंनस्यधूमश्चकारयेत्।

अर्थ—जो उन्माद रोग में मुखसे लार गिरती हो वा पीनसका रोग होगया हो तौ वैरेचनिक धूम में कहे हुए सुगंधित द्रव्यों की वत्ती वनाकर धूमपान करै, अथवा ऊपरके प्रयोग में कही हुई श्वेत कोयल से अदि लेकर सब द्रव्य और हींग इन की घत्ती वनाकर धूमपान।

अथवा सेह, घुग्घू, विल्ली, सिरकटा, भेड़िया और बकरा इन के मूत्र, पित्त, विष्टा लोम, नख और चर्म इन सब के द्वारा सेक अंजन, प्रधमन, नस्य और धूम ये कर्म करै।

अन्यप्रयोग॥

वातश्लेष्मात्मकेप्रायःपैत्तिकेचप्रशस्यते॥ तिक्तकंजीवतीयश्चसर्पिःस्नेहश्चमिश्रकः। शीतानिचान्नपानानिमधुराणिमृदूनिच॥

अर्थ—प्रायः वातश्लेष्मात्मक तथा पित्तज उन्माद में तिक्तकघृत, जीवनीघृत और मिश्रस्नेह तथा ठंढा मीठा और कोमल अन्नपान का प्रयोग करै।

उन्माद में फस्त।

शंखकेशान्तसन्धौवामोक्षयेत्ज्ञोभिषकशिराम् । उन्मादेविषमेचैवज्वरेऽपस्मार एवच ॥

अर्थ—उन्माद विषमज्वर और अपस्मार में कनपटी और केशान्तकी सन्धियों में फस्त खोलै।

अन्यप्रयोग।

घृतमांसवितृप्तंतानिवातेस्थापयेत्सुखम्। त्यक्त्वामतिस्मृतिभ्रंशंसंज्ञांलब्धाप्रवुध्यते। आश्वासयेत्सुहृद्वातंवाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः॥ ब्रूयादिष्टविनाशंवादर्शयेदद्भुतानिवा॥वंद्ध्वासर्षपतैलाक्तंन्यसेद्वोत्तानमातपे॥ कापिकच्छ्वाथवातप्तैर्लोहतैलजलैः स्पृशेत् । कशाभिस्ताडयित्वावासुवद्धं विजनेगृहे ॥ रुन्ध्याचेतोहिविभ्रान्तंव्रजत्यस्ययथाशमम्।

अर्थ—उन्मादरोगी को पेट भरकर पुराना घी वा मांस पान कराके सुखपूर्वक निर्वातस्थान में वैठावै ऐसा करने से रोगी की बुद्धि और स्मरणशक्ति ठीक होजाती हैं और वह होश में आजाता है।

अथवा रोगी के सुहृद्जन धर्म और अर्थ के वाक्यों द्वारा रोगी को आश्वासन देवें किसी प्यारी वस्तु के नाश होने का संवाद सुनावै अथवा कोई आश्चर्योत्पादक वस्तुओं का दर्शन करावै। कभी २सरसों का तेल लगाकर चित्त कर के तथा वांधकर धूप में डाल देवै। अथवा कैंचकीफली, गरमलोहा, गरमतेल, गरमजल रोगी के शरीर के लगावै। अथवा निर्जन घरमें रस्सियों से दृढ़ वांधकर कोड़ों की मार ल-

गावै। अथवा इसके विभ्रान्त चित्तको ऐसी रीति से रोके जिस से उसको शान्ति होवै ।

अन्यप्रयोग ।

सर्पेणोद्धृतदंष्ट्रेणदान्तैःसिंहैर्गजैश्चतम्॥ त्रासयेच्छस्त्रहस्तैर्वातस्करैःशत्रुभिस्तथा। अथवाराजपुरुषावहिर्नीत्वासुसंयतम् ॥ त्रासयेयुर्बधैनैनंतर्जयन्तोनृपाज्ञया। देह दुःखभयेभ्योहिपरंप्राणभयंमहत्॥ तेन यातिशमंतस्यसर्वतोविप्लुतंमनः। इष्ट द्रव्यविनाशात्तुमनोयस्योपहन्यते ॥ तस्यतत्सदृशप्राप्तिशान्त्याश्वासैःशमंन येत्। कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभस म्भवान्॥ परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेवशमं नयेत्।

अर्थ—दांत उखाड़े हुये शस्त्रों से उसे कठवावै, पालतू सिंह और हाथियों से डर पावै, हाथ में शस्त्र लेकर, तस्करों द्वारा वा शत्रुओं द्वारा भय दिखावै। अथवा राजा के कर्मचारी राजाकी आज्ञा लेकर उसे अच्छी तरह वांधकर वाहर ले जाकर खूब मारपीट करै क्योंकि देह के दुःखों के भय से प्राणों का भय अधिक होता है। उसी प्राणभय के कारण उसका विभ्रान्त चित्त स्थिर होजाता है।

जिस अभीष्ट वस्तु के नष्ट होने से मन चलायमान होजाता है, उस को उसी के सदृश वस्तु का दर्शन कराने से, तथा सम झाने और आश्वासन करने से चित्त शान्त होजाता है।

जिसका मन काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष ईर्ष्या और लोभ द्वारा चालित होताहै उस को उसी के विपरीत कारणसे शान्त करै, जैसे क्रोधजन्य उन्माद को हर्ष से, इसी तरह और भी।

बुद्ध्वादेशंवयःसात्म्यंदोषंकालंबलाव लम् ॥ चिकित्सितमिदंकुर्य्यादुन्मादे भूतदोषजे। देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य तुबुद्धिमान् ॥ वर्जयेदञ्जनादीनितीक्ष्णा निक्रूरमेवच। सर्पिष्पानादितस्येहमृदु भैषज्यमाचरेत्॥ पूजाम्बल्युपहारांश्चम न्त्राञ्जनविधींस्तथा। शान्तिकर्मेष्टिहोमांश्च जप्यस्वस्त्ययनानिच ॥ वेदोक्तानियमां श्चापिप्रायश्चित्यानिचाचरेत्। भूतानाम धिपंदेवमीश्वरंजगतःप्रभुम्॥ पूजयन्प्रय तोनित्यंजयत्युन्मादजंभयम्। रुद्रस्यप्र- मथानामगणालोकेचरन्तिये ॥ तेषांपू- जाञ्चकुर्वाणउन्मादेभ्योविमुच्यते।

अर्थ—भूत दोषज उन्माद में देश, वय, सात्म्य, दोष, काल, वल और अवलकी परीक्षा करके चिकित्सा करै। देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व इन से किये हुए उन्माद में तीक्ष्ण अञ्जनादि तथा क्रूरकर्म न करै। तथा घृतपान और मृदु औषध इस में हित कारी होती हैं और पूजा, वलिदान, उपहार मंत्र तथा अंजन विधिका प्रयोग करै। शान्तिकर्म, यज्ञ, होम, जप, स्वस्तिवाचन तथा वेदोक्त नियम और प्रायश्चित्त का अवलम्वन करै। जगत् के स्वामी भूतनाथ महादेवजी का विधि पूर्वक नित्य नियम से पूजन करता रहै तौ उन्मादज भय दूर हो-

जाता है। रुद्र के जो प्रमथ नामक गण संसार में विचरते रहते हैं उनका पूजन करने से उन्माद पास नहीं आता है।

वलिभिर्मंगलैर्होमैरौषध्यगदधारणैः ॥ सत्याचारतपोज्ञानप्रदाननियमव्रतैः । देवगुह्यकविप्राणांगुरूणांपूजनेनच ॥ आगन्तुःप्रशमंयातिसिद्धैर्मन्त्रौषधैस्तथा ।

अर्थ—वलिदान, मंगलपाठ, होम, अगद औषधधारण, सत्याचरण, तप, ज्ञान, दान, नियम, व्रतादि नियमों का पालन, देव, गुह्यक, विप्र, गुरु का पूजन, तथा सिद्ध मंत्र और औषधियों द्वारा आगन्तु उन्माद शान्त होजाता है।

यच्चोपदेक्ष्यतेकिञ्चिदपस्मारेचिकित्सितम् ॥ उन्मादेतच्चकर्त्तव्यंसामान्याद्धेतुदूष्ययोः ।

अर्थ—जो जो चिकित्सा अपस्मार रोग में वर्णन कीजायगी, वही चिकित्सा उन्मादरोग में भी कर्त्तव्य है क्योंकि इनदोनों रोगों के हेतु और दूष्य एकही हैं।

उन्माद के अयोग्यव्यक्ति ।

निवृत्तामिषमद्योयोहिताशीप्रयतःशुचिः॥ निजागन्तुभिरुन्मादैःसत्त्ववान्नसयुज्यते।

अर्थ—जो मद्य मांसका सेवन नहीं करता है। हित भोजन करता है, जितेन्द्रिय और पवित्र रहता है, ऐसे सत्ववान् पुरुष के निज और आगन्तु उन्माद नहीं होने पाते हैं।

उन्मादमुक्तके लक्षण ।

प्रासादश्चेन्द्रियार्थानांबुद्ध्यात्ममनसांतथा। धातूनांप्रकृतिस्थत्वंविगतोन्मादलक्षणम्।

अर्थ—इन्द्रियों के विषय, बुद्धि, आत्मा तथा मन इनकी प्रसन्नता, तथा धातुओं का प्रकृतिस्थ होना ये विगत उन्माद के लक्षण हैं।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

उन्मादानांसमुत्थानंलक्षणंसचिकित्सितम् ॥ निजागन्तुनिमित्तानामुक्तवान् भिषगुत्तमः ।

अर्थ—वैद्यवर आत्रेयने इस अध्याय में निज और आगन्तु भेद वाले उन्मादों की उत्पत्ति, लक्षण और चिकित्सा, वर्णन की हैं।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचिकित्सित स्थाने उन्माद चिकित्सितं-नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

———:*:———

पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथातोऽपस्मारचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम अपस्मार रोग की चिकित्सा का वर्णन करेंगे।

अपस्मार के निरुक्ति ।

स्मृतेरपगमंप्राहुरपस्मारंभिषग्विदः । तमःप्रवेशबीभत्सचेष्टंधीसत्त्वसंप्लवात् ॥

अर्थ—आयुर्वेदज्ञ स्मृति केनाश होजाने को अपस्मार कहते हैं। इस में बुद्धि और मनके संप्लावित अर्थात् नष्ट होने से अंध

कार में प्रवेश होने की सी दशा और भयंकर चेष्टा होजाती है ।

अपस्मार के कारण ।

विभ्रान्तवहुदोषाणामहिताशुचिभोजिनाम् । रजस्तमोभ्यांविहतेसत्त्वेदोषावृतेहृदि ॥ चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्वेगादिभिस्तथा । मनस्यभ्याहतेन्दृणामपस्मारःप्रवर्तते ॥

अर्थ—चलितचित्त, वहुदोषी, अहित और अपवित्र भोजी के तथा जिसका सतोगुण रजोगुण और तमोगुण द्वारा नष्ट होगया है, जिसका हृदय दोषों से आवृत है तथा जिसका चित्त चिन्ता,काम, भय,क्रोध शोक और उद्वेगादिसे व्याप्त है उस के अपस्मार रोग होता है ।

अपस्मारके वेगका रूप ।

धमनीभिःश्रितादोषाहृदयंपीडयन्तिहि। संपीड्यमानोव्यथतेमूढोभ्रान्तेनचेतसा॥ पश्यत्यसन्तिरूपाणिपततिप्रस्फुरत्यपि । जिह्वाक्षिभ्रुस्रवल्लालोहस्तौपादौचविक्षिपन् ॥ दोषवेगेचविगतेस्वस्थवत्प्रतिवुध्यते ।

अर्थ—हृदय में आश्रित दोष धमनियों द्वारा हृदय को पीडित करते हैं। इसतरह पीडित होकर मनुष्य व्यथित चित्त तथा भ्रान्तचित्त होकर मूढ़ की तरह होजाता है उससमय उसे विकट रूपों का दर्शन होता है इससे धरती में गिरकर फड़फड़ाने लगता है, उसकी जिह्वा आंख और भृकुटी टेढी पड़जाती हैं, मुख से लार टपकने लगती है हाथ पांवों को इधर विधार फेंकता है । उस वेग के दूर होने पर वह पूर्ववत् स्वस्थ होजाता है ।

अपस्मार के भेद ।

पृथग्दोषैःसमस्तैश्चवक्ष्यतेसचतुर्विधः ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ इन तीनों दोषों के पृथक् पृथक् होने से और तीनों के मिलने से चार प्रकार के अपस्मार हैं।

वातज अपस्मार के लक्षण ।

कम्पतेदशतेदन्तान्फेनोद्वामीश्वसित्यपि। परुषाणिचकृष्णानिपश्येद्रूपाणिचानिलात् ॥

अर्थ—वातज उन्माद में देह कांपने लगती है, रोगी दांतों को घिसता है, उस के मुख से झाग पड़ने लगते हैं, श्वास वढ़ जाता है, तथा परुष और कृष्णवर्ण के रूप रोगी को दिखलाई देने लगते हैं ।

पैत्तिक अपस्मार के लक्षण।

पीतफेनाङ्गवक्त्राक्षःपीतासृग्रूपदर्शनः । सतृष्णोष्णोनरस्तप्तलोकादर्शीचपैत्तिकः

अर्थ—पैत्तिक अपस्मार में मुख के झाग अंगावयव, मुख और नेत्र पीले पड़जाते हैं रुधिर और रूप पीले दिखाई देते हैं, रोगी को तृषा और उष्णता अधिक लगती है, सम्पूर्ण संसार तप्त दिखाई देता है ।

श्लैष्मिक अपस्मारके लक्षण ।

शुक्लफेनाङ्गवक्त्राक्षःशीतहृष्टांगजोगुरुः। पश्यन्शुक्लानिरूपाणिश्लैष्मिकोमुच्यतेचिरात् ॥

अर्थ—कफज अपस्मार में फेन, अंग,

मुख और आंख सफेद होजाते है, ठंड लगती हे, रोमाञ्च खडे होजाते हैं देह में भारापन होता है, सफेद पदार्थ दिखाई दैने लगते हैं। इस में चेत देर से होता है।

सान्निपातिक अपस्मारके लक्षण।

सर्वैरेतैःसमस्तैस्तुलिङ्गैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः।

अर्थ—जो तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण दीख पडें तौ त्रिदोषज अपस्मार होता है।

असाध्य अपस्मार।

अपस्मारःसचासाध्योयःक्षीणस्यान-वश्चयः॥

अर्थ—सान्निपातिक अपस्मार असाध्य होता है, क्षीण मनुष्य का अपस्मार वा वहुत दिनका पुराना अपस्मारभी असाध्य होता है।

अपस्मारके वेगों का काल।

पक्षाद्वाद्वादशाहाद्वामासाद्वाकुपितामलाः अपस्मारायकुर्वन्तिवेगंकिञ्चिदिहान्तरम्।

अर्थ—दोष कुपित होकर वारहवें दिन, पन्द्रहवें दिन वा महीने भरमें अपस्मार को उत्पन्न करते हैं, कभी कभी इससे विपरीत भी होता है।

अपस्मार में चिकित्साक्रम।

तैरावृतानांहृत्स्रोतोमनसांसंप्रवोधनम्। तीक्ष्णैरादौभिषक्कुर्यात्कर्मभिर्वमनादिभिः॥ वातिकंवस्तिभूयिष्ठैःपैत्तंप्रायोविरेचनैः। श्लैष्मिकंवमनप्रायैरपस्मारं समाचरेत्॥ सर्वतःसुविशुद्धस्यसम्यगाश्वासितस्यच। अपस्मारविमोक्षार्थे योगान्संशमनाञ्श्रृणु॥

अर्थ—जव हृदय और स्रोतों के समूह अपस्मार के उत्पन्न करने वाले दोषों से आवृत हों तव मन को चैतन्य करने के लिये तौ प्रथमही तीक्ष्ण वमनादिका प्रयोग करै। वातिक अस्मार में वास्तिकर्म, पैत्तिक में विरेचन और कफज में वमन प्राय चिकित्सा होती है।

रोगी को संशोधनादि कर्मों से शुद्ध कर के अच्छी तरह आश्वासन देवै फिर निम्न लिखित अपस्मार के शान्त करने वाले प्रयोगों को देवें॥

पंचगव्य घृत।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैःसमैर्घृतम्। सिद्धंपिवेदपस्मारकामलाज्वरनाशनम्॥

अर्थ—गौ के गोवरका रस, दही, मठा, दूध मूत्र, और घृत इन सब को समान भाग लेकर सिद्ध करै। इस घृतका पान करने से अपस्मार, कामलारोग और ज्वर, नष्ट होजाते हैं।

महापंचगव्यघृत।

द्वेपञ्चमूलेत्रिफलारजन्यौकुटजत्वचम्। सप्तपर्णमपामार्गनीलिनींकटुरोहिणीम्॥ सम्पाकंफल्गुमूलञ्चपौष्करंसदुरालभम्। द्विपलानिजलद्रोणेपक्त्वापादावशेषिते॥ भार्गीपाठांत्रिकटुकांत्रिवृतांनिचुलानिच। श्रेयसीमाढकींमूर्वांदन्तींभूनिम्बचित्रकौ॥ द्वेशारिवेरोहिषंचभूतीकंमदयन्तिकाम्। क्षिपेत्पिष्ट्वाक्षमात्राणितेनप्रस्थंघृतात्

पचेत् ॥ गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्च तत्समैः । पञ्चगव्यमितिख्यातंमहत्तद मृतोपमम् ॥ अपस्मारेतथोन्मादेश्वयथा बुदरेषुच । गुल्मार्शःपाण्डुरोगेषुकाम लासुभगंदरे ॥ अलक्ष्मीग्रहरोगघ्नंचातु- र्थिकविनाशनम् ।

अर्थ—दोनों पंचमूल, त्रिफला, दोनों हल्दी, कुड़ाकी छाल, सप्तपर्णी, औंगा, नीलनी, कुटकी, अमलतास, फल्गु, पौह- करमूल, जवासा इन सब को दो २ पल लेकर एक द्रोण जल में पकावै जब चौ- थाई शेष रहजाय तब उस काथ में भा- र्डंगी, पाठा, त्रिकुटा, निसोथ, हिज्जल, गजपीपल, अड़हर, मरोड़फली, दन्ती, चि- रायता, चीता, दोनोंसारिवा, रोहिषतृण, अजवायन, मल्लिका इनको दो दो तोले ले- कर पीसले इस में एकप्रस्थ घृत पकावै और उसही में घी के समान गोवर कारस, दही, मठा, दूध मूत्र डाल देवै । यह अ- मृत के समान गुणकारी महापंचगव्यनामक घृत है । यह घृत अपस्मार, उन्माद, सू- जन, उदररोग, गुल्म, अर्शरोग, पाण्डुरोग कामला भगन्दर, अलक्ष्मी, ग्रहरोग, चातु- र्थिकज्वर इन सबको नष्टकर देता है ।

अन्यप्रकारकेघृत ।

ब्राह्मीरसबचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेवच ॥ पुराणंघृतमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्माजित् घृतसैंधवहिंगुभ्यांवार्षवास्तेचतुर्गुणे ॥ मूत्रेसिद्धमपस्मारहृद्ग्रहामयनाशनम् ॥ वचासम्पाककैडर्यत्रयःस्थाहिंगुरोचकैः ॥ सिद्धंपलंकषायुक्तैर्वातश्लेष्मात्मकेघृतम् । तैलप्रस्थंघृतप्रस्थंजीवनीयैःपलोन्मितैः ॥ क्षीरद्रोणेपचेत्सिद्धमपस्मारविनाशनम् । कंसेक्षीरेक्षुरसयोःकाश्मर्येऽष्टगुणेरसे ॥ कार्षिकैर्जीवनीयैश्चघृतप्रस्थंविपाचयेत् । वातपित्तोद्भवंक्षिप्रमपस्मारंनियच्छति ॥

अर्थ—ब्राह्मीका रस, वच, कूठ, शंखा- पुष्पी इन के साथ में पुराने घृतको पककर के सेवन करै । तौ उन्माद, अलक्ष्मी, अ- पस्मार और पाप्मा दूर होजाती है ।

सेंधानमक, हींग इन से चौगुना घी, घी से चौगुना बैल वा वकरे का मूत्र इनको सि- द्ध कर के पान करने से अपस्मार, हृद्रोग, ग्रहरोग सब शान्त होजाते हैं ।

वच, अमलतास, कायफल, वहेड़ा, हींग, रोचक (राजपलांडु) और गूगल इन के साथ में घृत को पक्क कर के सेवन करने से वातश्लेष्मात्मक अपस्मार दूरहोजाती है।

एक प्रस्थ तेल, एक प्रस्थ घी, जीवनीय गणोक्तद्रव्य एक एक पल, इनको एक द्रोण दूध में पकावै। तौ अपस्मार नष्टहोवै।

दूध और ईख का रस चार २ सेर खँ- भारी का रस आठगुना, जीवनीय गणोक्त द्रव्य एक २ कर्ष, एक प्रस्थ घी इनको पकाकर सेवन करने से बातपित्तोद्भव अ- पस्मार शान्त होजाता है ।

अन्यप्रयोग ।

तद्वत्काशविदारीक्षुकुशक्वाथशृतंपयः । मधुकद्विपलेकल्केद्रोणेचामलकीरसात् । तद्वत्सिद्धोघृतप्रस्थःपित्तापस्मारभेषजम्॥

अभ्यङ्गःसार्षपंतैलंवस्तमूत्रेचतुर्गुणे । सिद्धंस्याद्गोशकृन्मूत्रेस्नानोत्सादनमेवच कटभीनिम्बकट्वङ्गमधुशिग्रुत्वचांरसे । सिद्धंमूत्रसमंतैलमभ्यङ्गार्थेप्रशस्यते ॥ पलङ्कषावचापथ्यावृश्चिकान्यर्कसर्षपैः । जटिलापूतनाकेशीनाकुलीहिंगुरोचकैः॥ लशुनातिरसाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्चपक्षिणाम् । मांसाशिनांयथालाभंवस्तमूत्रेचतुर्गुणे ॥ सिद्धमभ्यञ्जनंतैलमपस्मार विनाशनम् । एतैश्चैवौषधैःकार्यंधूपनं सम्प्रलेपनम् ॥

अर्थ—इसीतरह से कांस, विदारी कंद, ईखकी जड़, कुशा इन के क्वाथमें औटाया हुआ दूध देवै । किसी २ पुस्तक में घृत है । यह दूध वा घृत पूर्वोक्त गुणकर्त्ताहै।

मुलहटी दो पल, आंवले का रस एकद्रोण इस में एक प्रस्थ पुराना घी पकाकर सेवन कर ने से पित्तापस्मार दूर होजाता है ।

सरसों के तेल को चौगुने बकरे के मूत्र में औटाकर मालिश करै । फिर गोबरका उवटना कर के गोमूत्र से स्नान करै ।

कटभी, नीम, कट्वंग और सहजना इन की छाल का रस तथा गोमूत्र और इसके समानही तेल डालकर औटावै फिर इससे मालिश करै तौ अपस्मार दूर होवै ॥

गूगल, वच, हरड़, विछवन आक, सरसों जटामांसी,पूतना (हरड़), केशी, रास्ना, हींग, राजपलांडु, लहसन, अतिरसा (मुलहटी) चीता, कूठ, मांसाहारी पक्षियोंकी विष्टा जितना मिलसकै लाकर तेल से चौगुना बकरे का मूत्र डालकर सिद्ध करै । इस तेल का मर्दन करने से अपस्मारजाता रहता है । इन्हीं औषधियों को पीसकर अपस्मार रोगी को धूप देवै वा उस के लेप करै ।

अन्य प्रयोग ।

पिप्पलींलवणंशिग्रुंहिंगुहिंगुशिवाटिकाम्। काकोलींसर्षपान्काकनासांकैडर्यचंदने॥ शुनःस्कन्धास्थिनखरान्पर्शुकांश्चेतिपेष येत् । वस्तमूत्रेणपुष्येर्क्षेप्रदेहःस्यात्सधूपनः॥ अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिरोच कैः ॥ उत्सादनंमूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम् खरास्थिभिर्हस्तिनखैस्तथागोपुच्छलोम भिः । कपिलानांगवांमूत्रेनावनंपरमंहितम् । श्वश्रृगालविडालानांसिंहादीनां चशस्यते ॥ भार्गीवचानागदन्तीश्वेता श्वेताविषाणिका । ज्योतिष्मतीनागदन्तीपादोस्थामूत्रपेषिताः ॥ योगास्त्रयोऽतःषड्विन्दून्पञ्चवानावयेद्भिषक् । त्रिफलाव्योषपीतद्रुयवक्षारफणिज्जकैः ॥ श्यामापामार्गकारञ्जफलैर्मूत्रेऽथवस्तजे । साधितंनावनंतैलमपस्मारविनाशनम् ॥

अर्थ—पीपल, सेंधानमक, सहजना,हींग गोंदनी के पत्ते काकोली, सरसों, कौआटोंटी, कायफल, रक्तचन्दन, कुत्ते का कंधा, नख; पसली इनको पुष्यनक्षत्र में लाकर बकरे के मूत्र में पीस लेवै इसकी लेप करने से वा धूप दैने से अपस्मार दूर होजाता है।

काली तुलसी, कूठ, हरड़, केशी, राजपलाण्डु, इनको गोमूत्र में पीसकर उत्सादन

करै तथा गोमूत्र में घोलकर इन के द्वारा सेचन करै ।

चमगिद्दड़ की विष्टा का लेप करै अथवा जलेहुये वकरे के लोम, गधेकी हड्डी, हाथी के नख वा गौ की पूंछ के लोमों का लेप करै ॥

कपिला गौके मूत्र की नस्य परमहितकारी होती है । इसी तरह कुत्ता, सिरकटा, विल्ली और सिंहादिक जीवों के मूत्र की नस्य भी उत्तम होती है ।

भाडंगी, वच, नागदन्ती तथा दोनों प्रकार की अपराजिता और मेढ़ासिंगी तथा मालकांगनी और नागदन्ती इन तीनों प्रयोगों को गोमूत्र में पीसलेवै तथा फिर इस में से पांच वा छः विन्दु नाक में डालै ।

त्रिफला, त्रिकुटा, दारुहल्दी, जवाखार, फणिज्झक, निसोथ, ओंगा, कंजा के फल इनको पीसकर वकरे का मूत्र और तेल अग्निपर चढ़ादे । पक होने पर इसकी नास लेवै तौ अपस्मार दूर होजाता है ॥

पिप्पलीवृश्चिकालीचकुष्ठंचलवणानिच । भार्गीचचूर्णितंनस्तःकार्य्यंप्रधमनंपरम् ॥ कायस्थानशारदान्मुद्गानमुस्तोशीरयवास्तथा । सव्योषान्वस्तमूत्रेणपिष्ट्वावर्त्तीःप्रकल्पयेत् ॥ अपस्मारेतथोन्मादेसर्पदष्टेतथार्दिते । विषपीतेजलमृतेचैताः स्युरमृतोपमाः ।

अर्थ—पीपल, विछवन, कूठ, नमक और भाडंगी इनका चूर्ण कर के सूंघे यह परम उत्कृष्ट नस्य है ।

छोटी इलायची, शरदऋतु के मूंग, मोथा, खस, जौ और त्रिकुटा इन सव को वकरे के मूत्र में पीसकर वत्ती वनावै । इसवत्ती का प्रयोग करने से अपस्मार, उन्माद, सांपका काटाहुआ, अर्दितरोग, विषपीलैना, जल में डूव ने से मृत्युकीसी दशा होना ये सव रोग अच्छे होजाते हैं । यह वत्ती अमृत के सदृश गुणकारी होती है ।

मुस्तंवयस्थांत्रिफलांकायस्थांहिंगुशाद्वलम् । व्योषंमाषान्यवान्मूत्रैर्वस्तिमेषर्षभैस्त्रिभिः ॥ पिष्ट्वाकृत्वाचवर्त्तिमपस्मारेप्रयोजयेत् । किलासेषुतथोन्मादेज्वरेषुविषमेषुच ॥ पुष्योद्धृतंशुनःपित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम् । तदेवसर्पिषायुक्तंधूपनंपरमंमतम् ॥

अर्थ—मोथा, गिलोय, त्रिफला, छोटीइलायची, हींग, दूव, त्रिकुटा, उरद, जौ, इनको वकरे, मेंढ़े और बैल के मूत्र में पीसकर वत्ती वनावै । इस वत्तीका प्रयोग अपस्मार, किलास उन्माद और विषमज्वर में कियाजाता है ।

पुष्यनक्षत्र में कुत्ते का पित्ता निकाललेवै इसको आंखों में आंजनेसे अपस्मार दूर होजाता है । अथवा घृत में मिलाकर इसी की धूप दैने से अत्यन्त हित होता है ।

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः । तुण्डैःपक्षैःपुरीषैश्चधूपनंकारयेद्भिषक् ॥ आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिर्हृदयंसंप्रवुध्यते । स्रोतांसिचापिशुध्यन्तिततःसंज्ञांसविन्दति ॥ यस्यानुबन्धमागन्तुर्दोषलिङ्गा

धिकाकृतिम् । पश्येत्तस्यभिषक्कुर्य्यादा गन्तून्मादभेषजम् ॥

अर्थ—न्यौला, घुग्घू, विल्ली, गिद्ध, कीटाहि और कौआ इनकी चोंच, पंख,विष्टा, इनकी धूप देवै।

इन ऊपर कहीहुई क्रियाओं से हृदय में ज्ञान उत्पन्न होआता है, स्रोतःसमूह शुद्ध होजाते हैं तदनन्तर चेत भी उत्पन्न हो जाता है ॥

जिस अपस्मार में आगन्तु दोषों के लक्षणादिक अधिक होते हैं उन में आगन्तु ऊन्माद के सदृश चिकित्सा करना चाहिये।

अनन्तरमुवाचेदमग्निवेशःकृताञ्जलिः । भगवन् ! प्राक्समुद्दिष्टःश्लोकस्थानेमहागदः ॥ अतत्त्वाभिनिवेशश्चतस्यव्यक्तिरिहोच्यताम् । शुश्रूषवेवचःश्रुत्वाशिष्यायाथपुनर्वसुः ॥ महागदंसौम्य ! शृणुस हेत्वाकृतिभेषजम् ।

अर्थ—तदनन्तर अग्निवेश हाथ जोड़ कर पूछने लगे कि हे भगवन् श्लोकस्थान में जो महागद का अर्थात् जिसका तत्व विषय में अभिनिवेश नहीं होता है आपने निर्देश किया था अव इसकी चिकित्सादि वर्णन कीजिये । जिज्ञासु शिष्य के इस वचन को सुनकर पुनर्वसु ने कहा कि हे सौम्य ! मैं महागद के हेतु, आकृति और औषध का वर्णन करता हूं तुम सचेत हो कर सुनो।

महा गदकी उत्पत्ति ।

मलिनाहारशीलस्यवेगान्प्राप्तान्निगृह्णतः ॥ शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्हेतुभिश्चातिसेवितैः । हृदयंसमुपाश्रित्यमनोवुद्धिवहाःशिराः । दोषाःसंदूष्यतिष्ठन्तिरजोमोहावृतात्मनः ॥ रजस्तमोभ्यांवृद्धाभ्यां बुद्धौमनसिचावृते । हृदयेव्याकुलेदोषैरथमूढोऽल्पचेतनः ॥ करोतिविषमांबुद्धिं नित्यानित्येहिताहिते । अतत्त्वाभिनिवे शन्तमाहुराप्तामहागदम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य नित्य प्रति मलीन आहार करता है, उपस्थित मल मूत्रादिके वेगों को रोकलेता है, शीत, उष्ण, स्निग्ध और रूक्षादि पदार्थों का अत्यन्त सेवन करता है। उस के दोष हृदयका आश्रय कर के मनोवाही और बुद्धि वाही स्रोतों को दूषित करके स्थित होजाते हैं तव रजोगुण और तमोगुणसे आच्छादित आत्मा आच्छादित होजाती है । इस तरह जव बुद्धि और मन वढे हुए रजोगुण और तमोगुणों से आवृत होजाते हैं और हृदय दोषों से व्याकुल होजाता है तव अल्प चेतनायुक्त मूढ़ व्यक्ति नित्य नित्य और हिताहित कामों में विषय बुद्धि का संचार करता है, इसी को आप्तलोग अतत्त्वाभिनिवेश नामक महागद कहते हैं ।

महागद में चिकित्साक्रम ।

स्नेहस्वेदोपपन्नन्तंसंशाध्यवमनादिभिः। कृतसंसर्ज्जनंमेध्यैरन्नपानैरुपाचरेद् ॥ ब्राह्मीस्वरससंयुक्तंपञ्चगव्यमुदाहृतम् । तत्सेव्यंशंखपुष्पीचयच्चसेव्यंरसायनम्॥ सुहृदश्चानुकूलास्तंस्वाप्तधर्म्मार्थवादिभः।

संयोजयेद्गुरुर्विज्ञानधैर्यस्मृतिसमाधिभिः॥ प्रयुञ्ज्यात्तैललशुनंपयसावाशतावरीम्। ब्राह्मीरसंकुष्ठरसंवचांवामधुसंयुताम् ॥

अर्थ—इस रोग में स्नेहन और स्वेदन कर्म करने के पश्चात् वमन विरेचनादिसे संशोधन करके पूर्वोक्त विधि से पेयादिक्रम का अवलम्बन करै और मेध्य अन्नपानका सेवन करावै।

इस रोग में ब्राह्मी के रस में सिद्ध किया हुआ घी, पूर्वोक्त दोनों प्रकार के पञ्चगव्य घृत, शंखपुष्पी का रस और रसायनिक प्रयोगों का सेवन करै।

इष्ट मित्र और प्रिय सहचर गण आप्तवाक्य और धर्मार्थ का उपदेश करके ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति और समाधि (एकाग्रचित्तता) को स्थित रक्खै।

इस में तेल और लहसन, दूध और सितावर, अथवा शहत मिलाकर ब्राह्मी रस, कूठ रस वा वच का सेवन करावै।

दुश्चिकित्स्योह्यपस्मारःचिरकारीकृतास्पदः। तस्माद्रसायनैरेनंप्रायशःसमुपाचरेत् ॥ जलाग्निद्रुमशैलेभ्योविषमेभ्यश्च तंसदा। रक्षेदुन्मादिनंचैवसद्यःप्राणहराहिते ॥

अर्थ—अपस्मार रोग दुश्चिकित्स्य, बहुत दिन तक रहने वाला होता है और यह रोग जड़ पकड़ जाता है इस से इस रोग में रसायनिक औषधियों का प्रयोग करै।

अपस्मार रोगी और उन्मादरोगी की जल अग्नि, वृक्ष, पर्वत और विषम स्थानों से सदैव रक्षा करता रहै। ये उस के तत्काल प्राणनाशक होते हैं।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन।

हेतुंकुर्वन्त्यपस्मारंदोषाःप्रकुपितायथा। सामान्यतःपृथक्त्वाचलिङ्गंतेषांचभेषजम्। महागदसमुत्थानंलिङ्गंचोवाचसौषधम् ॥ मुनिर्व्याससमासाभ्यामपस्माराचिकित्सिते।

अर्थ—इस अपस्मार चिकित्सित अध्याय में पुनर्वसुने अपस्मार के हेतु, प्रकुपित दोषों के द्वारा रोग की उत्पत्ति, तथा सामान्य रीति से पृथक् पृथक् उस के लक्षण और औषध, महागद की उत्पत्ति लक्षण और औषध ये सब बातें संक्षिप्त और सविस्तर उभय प्रकार से वर्णन की हैं।

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थानेऽपस्मारचिकित्सितं नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

षोडशोऽध्यायः।

अथातःक्षतक्षीणचिकित्सितंव्याख्यास्यामः इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम क्षतक्षीण रोग की चिकित्साका वर्णन करेंगे।

उदारकीर्त्तिर्ब्रह्मर्षिरात्रेयःपरमार्थवित् ॥ क्षतक्षीणचिकित्सार्थमिदमाहचिकित्सितम् ॥

अर्थ—उदारकीर्ति, ब्रह्मर्षि और परार्थ वित, आत्रेयने क्षतक्षीण की चिकित्सा के निमित्त यह अध्याय वर्णन किया है ।

क्षतरोगकाहेतु ।

धनुषायस्यतोऽत्यर्थंभारमुद्वहतोगुरुम् ॥ पततोविषमोच्चेभ्योयुध्यमानस्यचाधिकैः। वृषंहयंवाधावन्तंदम्यंवान्यंनिगृह्णतः ॥ शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान्क्षिपतोनिघ्नतः परान् । अधीयमानस्यात्युच्चैर्दूरंवाव्रजतोद्रुतम् ॥ महानदींवातरतोगजैर्वासहधावतः । सहसोत्पततोदूरंतूर्णंचातिप्रनृत्यतः ॥ तथान्यैःकर्म्मभिःक्रूरैर्भृशमभ्याहतस्यवा । विक्षतेवक्षसिव्याधिर्बलवान्समुदीर्य्यते ॥

अर्थ—धनुष लेकर अत्यन्त डोलना, बहुत भारी बोझ को उठाना, ऊंचे नीचे स्थानों से गिर पड़ना, अधिक बलवान् के साथ युद्ध करना दौड़ते हुये बैल वा घोड़े के रोकने का प्रयत्न करना, शिला, काठ वा पत्थर का मुद्गर फेंकना और उन से शत्रुओं का मारना, बहुत चिल्ला चिल्लाकर पढ़ना, जोर से दूरतक भागते हुए चला जाना, गम्भीर बड़ी नदी में तैरना, हाथी घोड़े के साथ दौड़ना, सहसा उछलकर दूर जा पड़ना, वेग से नृत्य करना वा और और कठिन कर्मोंको करना । इन सबबातों से आहत होकर वक्षःस्थल में घाव होजाता है तब बलवान् व्याधि का उदय होता है।

क्षीणरोगकाहेतु ।

स्त्रीषुचातिप्रसक्तस्यरूक्षाल्पप्रमिताशिनः।

अर्थ—रूक्ष, अल्प और थोड़ा खानेवाला मनुष्य जो स्त्रियोंसे अत्यन्त संगम करताहै उस के क्षीणरोग होता है ।

क्षतक्षीणकेलक्षण ।

उरोनिरुज्यतेतस्यभिद्यतेऽथविदह्यते ॥ प्रपीड्यतेततःपार्श्वेशुष्यत्यङ्गंप्रवेपते । क्रमाद्वीर्य्यंबलंवर्णोरुचिरग्निश्चहीयते ॥ ज्वरोव्यथामनोदैन्यंविड्भेदोऽग्निबधादपि। दुष्टःश्यावःसदुर्गन्धःपीतोविग्नथितोबहुः । कासमानस्यचश्लेष्मासरक्तःसंप्रवर्त्तते ॥

अर्थ—जिनके क्षतक्षीण रोग होते हैं उन के हृदय में वेदना भेदन और दाह होता रहता है पसली में पीड़ा अंग का शुष्क होना और शरीर का कांपना ये बातें भी होती हैं । क्रम २ से बल, वर्ण रुचि, और अग्निक्षीण होती चलीजाती है । ज्वर, व्यथा, मन में दीनता, पुरीष भेद और अग्निमान्द्य होता है । खांसीके साथ बिगड़ा हुआ, कुछ काला, दुर्गंध युक्त, पीतवर्ण, गांठदार, बहुतसा कफ रुधिर निकलता है ॥

क्षतक्षीण के वैशेषिकलक्षण ।

सक्षतःक्षीणितश्छर्दिःकासोवैशेषिकःक्षते । क्षीणेसरक्तमूत्रत्वंपार्श्वपृष्ठकटिग्रहः॥

अर्थ—क्षतरोग में क्षत क्षीणता, वमन और खांसी होती है । क्षीणरोग में रुधिर सहित मूत्र पसली, पीठ और कमर में जकड़न होती है ।

साध्यासाध्यलक्षण ।

अल्पलिंगस्यदीप्ताग्नेःसाध्योवलवतोनरः गतेसम्बत्सरेयाप्यःसर्वलिंगंतुवर्ज्जयेत् ॥

अर्थ—दोषों का अल्पलक्षण, अग्निकी तीव्रता और रोगी का बलवान् होना जब ये वाते होती हैं तब उक्त रोग साध्य होते हैं। एक वरष के पुरानेरोग याप्य होते हैं और जिन रोगों में पूर्ण लक्षण होजाते हैं वे असाध्य होते हैं

क्षतमेंचिकित्सा ।

उरोमत्वाक्षतंलाक्षांपयसामधुसंयुताम् । सद्यएवपिवेज्जीर्णेपयसाद्यात्सशर्करम्॥ पार्श्ववस्तिरुजश्चाल्पेपित्ताग्निस्तांसुरायुताम् । भिन्नविट्कःसमुस्तातिविषांपाठांसवत्सकाम् ॥ लाक्षांसर्पिर्मधूच्छिष्टंजीवनीयगणंसिताम् । त्वक्क्षीरींसम्मितंक्षीरेपक्त्वादीप्तानलःपिवेत् ॥ इक्ष्वालिकविसग्रन्थिपद्मकेसरचन्दनैः । शृतंपयोमधुयुतंसन्धानार्थंपिवेत्क्षती ॥

अर्थ—हृदयमें घावका अनुमान होनेपर लाख को दूध और शहत के साथ तत्काल पान करावै और औषध के जीर्ण होनेपर दूध और चीनी के साथ भोजन करावै ॥

यदि पसली और वस्ति में वेदना होती हो और पित्ताग्नि अल्प पड़गई हो तौ लाख को मद्य में मिलाकर पानकरावै ।

मलकेफटनेपर मोथा, अतीस, पाठा और इन्द्रजौ का क्काथ देवै । अग्नि के तीव्र होने पर लाख, घी, मोम, जीवनीय गणोक्त द्रव्य मिश्री, वंशलोचन इन को समान भाग लेकर दूध में औटाकर पीवै । क्षत के संधान करने के लिये इक्ष्वालिक, कमल की जड़, नागकेसर, रक्तचन्दन इन को दूध में औटाकर शहत डालकर पीवै ।

यवानांचूर्णमदायक्षीरसिद्धंघृताप्लुतम् । ज्वरदाहेसिताक्षौद्रशक्तून्वापयसापिवेत् ॥ कासीपर्वास्थिशूलीचलिह्यात्सघृतमाक्षिकाः । मधूकमधुकद्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्पलीबलाः ॥

अर्थ—ज्वरदाह में जौके चून को दूध में सिद्ध करके बहुत सा घी डालकर पीवै अथवा मिश्री शहत औरसत्तूको मिलाकरदूध के साथ पीवे, जो रोगी के खांसी होवे अथवा पोरुए और हड्डियों में वेदना हो तौ महुआ, मुलहटी, दाख, वंशलोचन, पीपल और खरैटी इनके चूर्ण को घी और शहत में सानकर सेवन करै ।

एलादि वटिका ।

एलापत्रत्वचोर्द्धाक्षाःपिप्पल्यर्द्धपलंतथा सितामधुकखर्ज्जरमृद्वीकाश्चपलोन्मिताः॥ संचूर्ण्यमधुनायुक्तागुलिकाःसंप्रकल्पयेत्। अक्षतुल्यास्ततश्चैकांभक्षयेन्नादिनेदिने । कासंश्वासंज्वरंहिक्कांछर्दिंमूर्च्छांमदंभ्रमम् ॥ रक्तनिष्ठीवनंतृष्णांपार्श्वशूलमरोचकम् । शोषप्लीहाढ्यवातांश्चस्वरभेदंक्षतमृक्षयम् ॥ गुलिकातर्पणीवृष्यारक्तपित्तञ्चनाशयेत् ॥

अर्थ—छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी इन में से प्रत्येक आधे २ तोला, पीपल दो,

तोला, मिश्री, मुलहटी, खजूर और दाख प्रत्येक चार तोला, इन सब को पीसकर शहत में तोले तोले भरकी गोली बनालेवै और प्रति दिन एक गोली का सेवन करै तौ खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, वमन, मूर्च्छा, मद, भ्रम, रक्तनिष्ठीवन, तृषा, पार्श्वशूल, अरुचि, शोष, प्लीहा, आढ्यवात स्वरभंग, क्षत, क्षीणता और रक्तपित्त इतने रोग नष्ट होजाते हैं। ये गोली तृप्तिकर्त्ता और वृष्य होती हैं।

रक्तेऽतिवृद्धेदक्षाण्डंयूषैस्तोयेनवापिवेत्॥ चटकाण्डरसंवापिरक्तंवाछागजाङ्गलम्। चूर्णपौनर्नवंरक्तशालितण्डुलशार्करम्॥ रक्तष्ठीवीपिवेत्सिद्धंद्राक्षारसपयोघृतैः। मधूकमधुकक्षीरसिद्धंवातण्डुलीयकम्॥ मूढवातस्त्वजामेदःसुराभृष्टंससैन्धवम्। क्षामःक्षीणःक्षतोरस्कस्त्वनिद्रःसबलेऽनले॥ शृतक्षीररसेनाद्यात्सक्षौद्रघृतशर्करम्।

अर्थ—रुधिर के अत्यन्त निकलने पर मुर्गे के अंडे, वा चिडिया के अंडों का रस वा बकरे या जांगल जीवों का रक्त यूष वा जल के साथ पीवे।

सांठ, लाल शाली चांवल, शर्करा, द्राक्षा-क्षारस, दूध और घी इन को मिलाकर पीने से रुधिर बन्द होजाता है। महुआ और मुलहटी को दूध में औटाकर अथवा चौलाई की जड़ को दूध में औटाकर पीवै। मूढवातरोगी बकरे के मेद को सुरा में गरम करके सेंधानमक डालकर पीवै।

वातकी अधिकता से जब क्षतरोगी कृश और क्षीण होजाय और निद्रा जाती रहै तौ औटे हुए दूध के साथ मांसरसका सेवन करै उस में शहत, घी और चीनी भी डाल लेवै।

शर्कराक्षयवक्षौद्रजीवकर्षभकोमधु॥ शृतक्षीरानुपानंवालिह्यात्क्षीणःक्षतःकृशः॥ क्रव्यादमांसनिर्यूहंघृतभृष्टंपिवेच्चसः। पिप्पलीक्षौद्रसंयुक्तंमांसशोणितवर्द्धनम्॥ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षशालप्रियंगुभिः॥ तालमस्तकजम्बूत्वक्पियालैश्चसपद्मकैः॥ साश्वकर्णैःशृतात्क्षीरादद्याज्जातेनस र्पिषा। शाल्योदनंक्षतोरस्कःक्षीणशुक्रश्चमानवः। यष्ट्याह्वानागवलयोःक्काथेक्षीरसमेघृतम्॥ पयसापिप्पलीवांशीकल्कसिद्धंक्षतेशुभम्। कोललाक्षारसेतद्वत्क्षीराष्टगुणसाधितम्। कल्कैःकद्वङ्गदार्वीत्वग्वत्सकत्वक्फलैर्घृतम्।

अर्थ—जब क्षतक्षीण रोगी कृश होजाय तब उसे शर्करा, जौका चून और शहत अथवा जीवक, ऋषभक और शहत को चाटकर ऊपरसे गरम दूध पीवै। मांस और रुधिरकी वृद्धिके लिये मांसाहारी पशुओं के मांस रस को घी में छोंककर पीपल और शहत मिलाकर सेवन करै। अथवा बड़, गूलर, पीपल, कीकर, साल, प्रियंगु, ताड़कीछाल पियाल, जामनकीछाल, पद्माख, अश्वकर्ण (शालका भेद) इन को डालकर दूध औटावै, इस दूध में से घृत निकालकर शालीचांवलों का भात सेवन करै तौ वक्षःस्थल का क्षत

और शुक्रकी क्षीणता दूर होजाती है। अथवा मुलहटी और नागवलाके क्वाथ में दूध और घी समान भाग डाले तथा क्षीर काकोली पीपल और वंशलोचन डालकर पान करे तो क्षतरोग दूर होजाता है। अथवा वेर और लाक्षारस का समान भाग घी और दूध में औटाकर पूर्ववत् सेवन करे। अथवा सौनापाठा, दारुहलदी की छाल, कूड़ाकी छाल इन को घृत से अठगुने दूध में औटाकर सेवन करे।

अमृत प्राशघृत।

जीवकर्षभकौवीरांजीवन्तींनागरंशठीम्॥ चतस्रःपर्णिनीर्मेदेकाकोल्यौद्रोनिदिग्धिके। पुनर्नवेद्वेमधुकंआत्मगुप्तांशतावरीम्॥ ऋद्धिंपरुषकंभार्गींमृद्वीकांद्वीकांबृहतींतथा श्रृङ्गाटकींतामलकींपयस्यांपिप्पलींबलाम् वदराक्षोटखर्ज्जूरवातामाभिषुकाण्यपि। फलानिचैवमादीनिकल्कान्कुर्वीतकार्षिकान्। धात्रीरसविदारीक्षुछागमांसरसंपयः। कुर्य्यात्प्रस्थोन्मितंतेनघृतप्रस्थंविपाचयेत्॥ प्रस्थार्द्धंमधुनःशीतेशर्कराद्धतुलांतथा। द्विकार्षिकाणिपत्रैलाहेमत्वङ्मरिचानिच॥ चूर्णितानिविनीयास्माल्लिह्यन्मात्रांसदानरः। अमृतप्राश्यमित्येतन्नराणाममृतंघृतम्॥ सुधामृतरसंप्राश्यक्षीरमांसरसाशिना। नष्टनिद्रा क्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकर्षितान्। स्त्रीप्रसक्तान्कृशान्वर्णस्वरहीनांश्चबृंहयेत्। कासहिकाज्वरश्वासदाहतृष्णास्रपित्तनुत्॥ पुत्रदंयामिमूर्च्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम्।

अर्थ—जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, सोंठ, कचूर, चारोंपर्णी (शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी) मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली छोटी कटेरी, वड़ीकटेरी, सफेदसांठ, लालसांठ, मुलहटी, कैंच सितावर, ऋद्धि, फालसा, भाडंगी, दाख वड़ी कटेरी, सिंघाड़ा, भूम्यांवला, विदारी कन्द, पीपल, खरैटी, वेर अखरोट, खजूर वदाम पिस्ता, तथा अन्य ऐसेही फलों को एक २ कर्ष लेकर पीसलेवै॥ आंवलेका रस, विदारीकारस, ईखका रस, बकरे का मांसरस, दूध प्रत्येक एक २ प्रस्थ लेकर प्रस्थ घी डालकर पकावै, ठंडा होने पर आधा प्रस्थ शहत, आधी तुला शर्करा तथा तेजपात, इलायची, दालचीनी, काली मिरच प्रत्येक दो दो कर्ष लेकर चूर्ण करके मिलादेवै। जो मनुष्य इस अमृतप्राश नामक घृत का प्रति दिन ठीक प्रमाण से सेवन करता है, उसे यह अमृतके समान गुणकारी है। इसपर दुग्ध और मांसरस का अनुपानकरै। इस के सेवन से निद्रानाश, क्षतक्षीणता, दुर्बलता व्याधि से कर्षता, स्त्री प्रसंग से कृशता, । वर्णहीनता और स्वरहीनता ये सब नष्ट होजाते हैं। तथा खांसी, हिचकी, ज्वर, श्वास, दाह, तृष्णा, रक्तपित्त, वमन, मूर्च्छा, योनिरोग, मूत्ररोग भी नष्ट होजाते हैं। इसके सेवन से पुत्र की उत्पत्ति होती है।

स्वदंष्ट्रादिघृत।

स्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाश्मर्य्यकत्तृ

णम् ॥ दर्भमूलंपृथक्पर्णींपलाशर्षभकौ स्थिराम् । पालिकंसाधयेत्तेषांरसेक्षीर चतुर्गुणे ॥ कल्कैःस्वगुप्ताजीवन्तीमेदर्षभजीवकैः। शतावर्य्यृद्धिमृद्वीकाशर्कराश्राव णीविसैः ॥ प्रस्थःसिद्धोघृताद्वातपित्तहृद्द्रवशूलनुत् । मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापहः ॥ धनुःस्त्रीमद्यभाराध्व खिन्नानांबलमांसदः।

अर्थ—गोखरू, खस, मजीठ, खरैटी, खंभारी, कत्तृण, दाभकी जड़, पृथक्पर्णी, ढाक, ऋषभक, शालिपर्णी, इन में से प्रत्येक को एक २ पल लेकर इनका क्राथ करै । चौथाई शेष रहने पर चौगुना दूध, तथा केंच, जीवन्दी, मेदा ऋषभक, जीवक, शतावरी, ऋद्धि, दाख, शर्करा, श्रावणी, कमलनाल, इनका कल्क डालकर एकप्रस्थ घृत सिद्ध करै । यह घृत वातपित्त, हृच्छूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्शरोग, खांसी, शोष, क्षयी इनको दूर करता है । जो धनुष, स्त्रीसेवन, मद्यपान, भारवहन, मार्ग भ्रमण से व्यथित है उसको बल और मांस का बढ़ानेवाला है ।

मधुकाष्टपलंद्राक्षाप्रस्थक्वाथेघृतंपचेत् ॥ पिप्पल्यष्टपलेकल्केप्रस्थंसिद्धेचशीतले । पृथगष्टपलंक्षौद्रंशर्कराभ्यांविमिश्रयेत् ॥ समंशक्तुक्षतक्षीणेरक्तगुल्मेषुतद्धितम् ।

अर्थ—मुलहटी आठ, पल, दाख एक प्रस्थ पीपल आठपल, इन के क्राथ में एक प्रस्थ घृत पक्क करै ठंडा होने पर आठपल शहत और आठपल शर्करा मिलालेवै फिर इस में समानभाग सत्तू मिलाकर मात्रावत् सेवन करै तौ क्षतक्षीणता और रक्तगुल्म दूर होजाते हैं ।

धात्र्यादिघृत ।

धात्रीफलविदारीक्षुजीवनीयरसाद्घृतात् छागगोपयसोश्चैवसप्रप्रस्थान्पचेद्भिषक् । सिद्धशीतेसिताक्षौद्रद्विप्रस्थंविनयेत्ततः ॥ यक्ष्मापस्मारपित्तासृक्कासमोहक्षयापहम् ॥ वयःस्थापनमायुष्यंमांसशुक्रबलप्रदम् ॥

अर्थ—आंवलेका रस, विदारीकारस ईखका रस, जीवनीय द्रव्यों का रस, घृत, बकरी का दूध, गौ का दूध, ये सब एक एक प्रस्थ लेकर पकावै । जब ठंडा होजाय तब उस में एक २ प्रस्थ मिश्री और शहत- मिलादेवै । इस घृत का सेवन करने से यक्ष्मा, अपस्मार, रक्तपित्त, खांसी, मोह और क्षयरोग दूर होजाते हैं । यह घृत वयःस्थापन कर्त्ता, आयुवर्द्धक, मांसवर्द्धक शुक्रोत्पादक और बलकारक होता है ।

घृतंतुपित्तेऽभ्यधिकेलिह्याद्वातेऽधिकेपिवेत् लीढंनिर्वापयेत्पित्तमल्पत्वाद्धन्तिनानि लम् ॥ आक्रामत्यनिलंपीतमूष्माणांनिरुणद्धिच । क्षामक्षीणकृशाङ्गानामेतान्ये वघृतानिच ॥ त्वक्क्षीरीशर्करालाजचूर्णैःपानानियोजयेत् । सर्पिर्गुडान्समध्व शान्जग्ध्वाद्यात्पयोनुच ॥ रेतोवीर्य्यं बलंपुष्टिंतैराशुतरमाप्नुयात्।

अर्थ—इस क्षतक्षीण रोग में पित्त की अधिकता होने से घृत को चाटै, वातकी अधिकता में घृत का पानकरै, क्योंकि

चाटाहुआ घृत थोड़ा होने के कारण पित्त को शान्त करदेता है किन्तु वायु नष्ट नहीं करने पाता है । पियाहुआ घृत वायुको नष्ट करदेता है और ऊष्मा को रोकदेताहै। दुर्वल, क्षीण और कृश मनुष्योंको ऊपर कहेहुये घृत वंशलोचन, मिश्री और लाज चूर्ण डालकरदेवै । सर्पिर्गुड़ में मधु मिलाकर देवै ऊपर से दूध का अनुपान करावै तौ रोगी शीघ्रही शुक्र, वीर्य, वल और पुष्टि से युक्त होजाता है ॥

सर्पिर्गुड ।

वलांविदारींह्रस्वाश्चपञ्चमूलींपुनर्नवाम् । पञ्चानांक्षीरिवृक्षाणांशुङ्गामुष्ट्यंशकामपि ॥ एषांकषायेद्विक्षीरेविदार्य्याजरसांके ॥ जीवनीयैःपचेत्कल्कैरक्षमात्रैघृताढकम् ॥ सितापञ्चाानिपूतेऽस्मिन्शीतेद्वात्रिंशतंक्षिपेत् ॥ गोधूमपिप्पलीवांशीचूर्णैश्शृङ्गाटकस्यच । सक्षौद्रंकुडवांशेनतत्सर्वंखजमूर्च्छितम् । स्त्यानंसर्पिर्गुडान्कृत्वाभूर्जपत्रेणवेष्टयेत् । तान्जग्ध्वापलिकान्क्षीरंमद्यंवानुपिपेत्कफे। शोषेकासेक्षतेक्षीणेश्रमस्त्रीभारकार्षिते । रक्तनिष्ठीवनेतापेपीनसेचोरसिस्थिते ॥ शस्ताः पार्श्वशिरःशूलेविभेदेस्वरवर्णयोः ।

अर्थ—खरैटी, विदारीकन्द, लघुपंचमूल सांठ और पांचों क्षीर वृक्ष, ये प्रत्येक एक एक पल लेकर इनका क्काथ करै । फिर इस क्काथ में क्काथ से दूना दूध, विदारी का रस, वकरे का मांस रस और घृत एक एक आढक लेवै और इसी में जीवनीय गणोक्त द्रव्य दो दो तोले डाल देवै । जब पकाते पकाते घृत शेष रहजाय तब छान कर ठंढा होने पर वत्तीसपल मिश्री डाल देवै और गेहूं, पीपल, वंशलोचन, सिंघाड़ा, इनका चूर्ण और शहत एक एक कुड़व डालकर कढाई में भूनै, जब चलाते चलाते इकट्ठा होने लगे तब मोदक वनाकर भोज पत्र में लपेट कर रखदेवै। इन में से प्रत्यह एक मोदक खाकर ऊपर से दूध पीवै और जो कफकी अधिकता हो तौ मद्यका अनुपान करावै । यह मोदक शोष, खांसी, क्षत क्षीणता, श्रमकर्षित, स्त्री कार्षित, भारकार्षित रक्तनिष्ठीवन, ताप, पीनस, हृच्छूल, पार्श्वशूल, शिरःशूल, स्वरभंग और वर्ण भेद में हितकारी होता है ।

दूसरा सर्पिर्गुड ।

त्वक्क्षीरीश्रावणीद्राक्षामूर्वर्षभजीवकैः वीरर्द्धिक्षीरकाकोलीवृहतीकपिकच्छुभिः। खर्जूरविसमेदाभिःक्षीरपिष्टैःपलोन्मितैः॥ धात्रीविदारीक्षुरसप्रस्थैःप्रस्थंघृतात्पचेत्। शर्करार्द्धतुलांशीतेक्षौद्रार्द्धप्रस्थमेवच । क्षिप्त्वासर्पिर्गुडान्कुर्य्यात्कासहिक्काज्वरापहान् । यक्ष्माणन्तमकंश्वासंरक्तपित्तंहलीमकम् ॥ शुक्रनिद्राक्षयंतृष्णांहन्युः कार्श्यंसकामलाम् ।

अर्थ—वंशलोचन, श्रावणी, दाख, मूर्वा, ऋषभक, जीवक, वीरण, ऋद्धि, क्षीरकाकोली, बडी कटेरी, कैंच खजूर, कमलनाल, मेदा इन को एक एक पल लेकर दूध में पीसले फिर आंवले का रस, विदारी का

रस, ईख का रस और घृत एक एक प्रस्थ लेकर पकावै, घृत शेष रहने पर ठंढा कर के उस में आधी तुला मिश्री और आधा प्रस्थ शहत मिलावै और मोदक बना कर सेवन करै तौ खांशी, हिचकी ज्वर यक्ष्मा, तमक श्वास, श्वास, रक्तपित्त,हली मक, वीर्यनाश, निद्रानाश, तृष्णा, कृशता और कामला ये सब रोग नष्ट होजाते हैं

तीसरा सर्पिर्गुड ।

द्राक्षांनवामामलकीमात्मगुप्तांपुनर्नवाम् । शतावरीविदारीञ्चसमांशांपिप्पलींतथा पृथग्दशपलान्भागानपलान्यष्टौचनागरात् यष्ट्याह्वसौवर्चलयोर्द्विपलंमरिचस्यच । क्षीरतैलघृतानाञ्चत्र्याढकेशर्कराशते ॥ क्वथितेतानिचूर्णानिमत्त्वाविल्वसमान् गुडान् । कुर्य्यात्तान्भक्षयेत्क्षीणःक्षतः शुष्कश्चमानवः । तेनसद्योरसादीनांवृध्द्या पुष्टिंसविन्दति ।

अर्थ—दाख, नये आंवले, कैंच,पुनर्नवा सितावर, विदारी, पीपल, प्रत्येक दशपल आठ पल सोंठ, मुलहटी, संचलनमक और काली मिरच दो दो पल लेवै तथा दूध तेल और घी एक एक आढक, शर्करा सौ पल इस तरह द्रव्यों को इकट्ठे करले। फिर दाख से सोंठ पर्य्यन्त द्रव्यों का क्वाथ कर के उसक्वाथ में दूध, तेल और घी को पकावै, घृत शेष रहने पर उसको छानकर उस में मिश्री, मुलहटी,नमक,काली मिरच डालकर विल्व के समान अर्थात् चार चार तोले की मोदक बनावै। इनका सेवन करने से क्षतक्षीण और शुष्क मनुष्य रसों के वढने से शीघ्रही पुष्ट होजाता है

चतुर्थ सर्पिर्गुड ।

गोक्षीरात्त्र्याढकंसर्पिःप्रस्थमिक्षुरसाढकम् ॥ विदार्य्याःस्वरसात्प्रस्थंरसान् प्रस्थञ्चतैत्तिरात् ॥ दद्यात्सिध्यतितस्मिंस्तुपिष्टानिक्षुरसेनवा । मधूकपुष्पंकुडवं पियालकुडवंतथा । तुगाक्षीर्य्यर्द्धकुडवां खर्ज्जूराणिचविंशतिम ॥ पृथग्विभीतकान् मज्जापिप्पल्याश्चचतुर्थिकाम् । पलानि विंशतिखण्डान्मधुकात्कर्षमेवच॥तथा र्द्धपलिकान्यत्रजीवनीयानिचावपेत् । सिद्धेऽस्मिन्कुडवंचौद्रंशीतेक्षिप्त्वाथमोदकान् ॥ कारयेन्मरिचाजाजीपलचूर्णावचूर्णितान् । वातासृक्पित्तरोगेषुक्षतकासक्षयेषुच । शुष्यतांक्षीणशुक्रानांरक्तेचोरसिसंस्थिते॥कृशदुर्बलदेहानांपुष्टिवर्णबलार्थिनाम् । योनिदोषक्षातस्रावहतानांचापियोषिताम् ॥ गर्भार्थिनीनांगर्भश्चस्रवेद्यासांम्रियेतवा । धन्यावल्या हितास्ताभ्यःशुक्रशोणितवर्द्धनाः ॥

अर्थ—गौ का दूध दो आढक, घी एक प्रस्त, ईख का रस एक आढक, विदारी कन्दका रस एक प्रस्थ, तीतर का मांस रस एक प्रस्थ इन सब को मिलाकर पाक करै फिर इस पाक में महुआ के फूल एक कुडव, पियाल एक कुडव, वंशलोचन आधे कुडव खजूर नग वीस,वहेड़ेका गूदा ए पल, पीपल एक पल, खांड वीस पल, मुलहटी कर्ष भर तथा जीवनीय गणोक्त द्रव्य आधे

आधे पल पीसकर डालदे फिर इन सब को पकाकर ठंढा होने पर एक कुड़व शहत डालकर मोदक बनावै । इन में कालीमिरच जीरा एक एक पल पीसकर और मिला लेवै । इन मोदकों के सेवन करने से वात रक्त, पित्तरौक, क्षत, खांसी, क्षय, शोष शुक्र क्षीणता, छाती में रुधिर का इकट्ठा होना, इन रोगों को दूर करता है । कृश और दुर्वल देह वाले मनुष्यों के लिये पुष्टि वल और वर्ण बढाने में उपयोगी है। स्त्रियों के योनिदोषक्षत, योनिस्राव वन्ध्यत्व गर्भस्राव रोगों में हितहै । जिसके बालक होकर मरजाते हैं उस को भी हित है । यह अत्युत्तम वलवर्द्धक तथा शुक्र शोणित वर्द्धक भी है ।

स्त्रीप्रसक्त की चिकित्सा ।

वस्तिदेशेविकुर्वाणेस्त्रीप्रसक्तस्यमारुते । वातघ्नानबृंहणानवृष्यान्योगांस्तस्य प्रयोजयेत् ॥ शर्करापिप्पलीचूर्णैःसर्पिषा माक्षिकेण वा । संयुक्तंवाशृतंक्षीरंपिवेत् कासज्वरापहम् ॥ फलाम्लंसर्पिषाभृष्टं विदारीक्षुरसेश्रृतम् । स्त्रीषुक्षीणःपिवेद्यूषंजीवनंबृंहणंपरम् ॥ शक्तूनांवस्त्रपूतानांमन्थंक्षौद्रघृतान्वितम् । यवान्नसात्म्योदीप्ताग्निःक्षतक्षीणःपिवेन्नरः ॥

अर्थ—जो मनुष्य स्त्रियों से अधिक प्रसंग रखता है उसकी वायु जव वस्तिदेश में पहुंच कर विकृत भाव को प्राप्त होजाती है तव उसकी वातनाशक, बृंहणकर्त्ता और वृष्य औषधि करनी चाहिये ।

पीपल डालकर औटाया हुआ दूध मिश्री डालकर पीन से अथवा शहत और घृत डालकर पीने से खांसी और ज्वर दूर हो जाते हैं ।

अनार के रस को घी में छोंककर विदारी कन्द और ईख के रसके साथ औटाकर इस के साथ यूष का सेवन करना स्त्री द्वारा क्षिण पुरुष के लिये अत्यन्त प्राणवर्द्धक और बृंहणकर्त्ता होती है ।

सत्तू को वस्त्र में छानकर मन्थ बनावै और इस में घी और शहत मिलालेवै। इस मन्थ को वह क्षीण रोगी सेवन करै जिसकी अग्नि प्रदीप्त है और जिस को यवका अन्न सात्म्य है ।

जीवनीयोमसिद्धवात्तृतभृष्टंतुजाङ्गलम् । रसंप्रयोजयेत्क्षीणोव्यञ्जनार्थेसशर्करम्॥ गोमहिष्यश्वनागाजैःक्षीरैर्मांसरसैस्तथा। यथाग्निभोजयेद्यूषैःफलाम्लैर्वाघृताप्लुतैः दीप्तेऽग्नौविधिरेषःस्यान्मन्देदीपनपाचनः यक्ष्मिणांविहितोग्राहीभिन्नेशकृतिचोच्यते

अर्थ—जीवनीयगणके क्वाथ में जांगल मांस को उबालकर घी में छोंक लेवै, इस में शर्करा मिलाकर क्षीणरोगी के लिये व्यञ्जनके लिये देवै ।

गौ, भैंस, घोडी, हाथी, वकरी इनका दूध वा मांस रस अथवा अनारकी खटाई डाल कर घृतप्लुत यूष के साथ अग्नि के अनुसार भोजन करावै ।

यह ऊपर कही हुई विधि दीप्ताग्नि वालों के लिये है, मन्दाग्नि वालों को दीपन, पाचन औषध देनी चाहिये । तथा यक्ष्मारोगी

के लिये जो संग्राही औषधें कही गई हैं वेही मल के फटने पर इस रोग में भी देनी चाहियें।

सैंधवादि चूर्ण।

पलिकंसैन्धवंशुण्ठीद्वेचसौवर्चलात्पले॥ कुडवांशानिवृक्षाम्लंद्राडिमंपत्रसञ्ज्ञकान्। एकैकामरिचाजाज्योर्धान्यकाद्द्वेचतुर्थिके॥ शर्करायाःपलान्यत्रदशद्वेचप्रदापयेत्। कृत्वाचूर्णमतोमात्रामन्नपानेप्रयोजयेत्॥ रोचनंदीपनंबल्यंपार्श्वार्त्तिश्वासकासनुत्।

अर्थ—सेंधानमक एक पल, सोंठ दो पल संचरनमक दोपल, वृक्षाम्ल, अनारदाना, तुलसी के पत्ते एक एक तोले, कालीमिरच काला जीरा एक एक पल, धनियां दो पल शर्करा बारह पल इनका चूर्ण बनाकर अन्न पानके साथ मात्रावत् सेवन करै। यह चूर्ण रोचन, दीपन, बलकर्त्ता, पार्श्वशूलनाशक श्वासनाशक काशनाशक होता है।

षाडव चूर्ण।

एकाषोडशिकाद्धान्याद्द्वेजाज्यजमोदयोः॥ ताभ्यांदाडिमवृक्षाम्लंद्विर्द्विःसौवर्चलात्पलम्। शुण्ठ्याःकर्षंदधित्थस्यमध्यात्पञ्चपलानिच। तच्चूर्णंषोडशपलेशर्करायाविमिश्रयेत्। षाडवोऽयंप्रदेयःस्यादन्नपानेषुपूर्ववत्॥

अर्थ—धनियां एक पल, जीरा और अजमोद दो दो पल, अनार और वृक्षाम्ल चार चार पल, संचलनमक एक पल सोंठ एक कर्ष, कैथ का गूदा पांचपल इन को पीस ले इस में सोलह पल मिश्री मिलावै। इस षाडव नामक चूर्ण का सेवन पूर्ववत् अन्न पानके साथ करै।

वर्द्धमान नागवला का प्रयोग।

पिबेन्नागबलामूलस्यार्द्धकर्षाभिवर्द्धितम्। पलंक्षीरयुतंमासंक्षीरवृत्तिरनन्नभुक्॥ एषप्रयोगःपुष्ट्यायुर्बलारोग्यकरपरः। मण्डूकपर्ण्याःकल्पोऽयंमधुकेनागरतथा॥

अर्थ—नागवला की जड़ पहिले दिन आधे कर्ष पीवै फिर प्रति दिन एक एक कर्ष बढाता हुआ एक पल तक दूध के साथ महीने भर तक पीवै। इस औषध के सेवन काल में अन्न का परित्याग करके केवल दूध पीकर रहै। यह योग पुष्टि, आयु, बल और आरोग्यता को बढाने वाला है। इसी तरह मण्डूकपर्णी, मुलहटी और सोंठ का प्रयोग भी किया जाता है।

क्षतक्षीणमेंविशेषद्रष्टव्य।

यद्यत्सन्तर्पणंशीतमविदाहिहितंलघु। अन्नपानंनिषेव्यंतत्क्षतक्षीणैःसुखार्थिभिः॥ यच्चोक्तंयक्ष्मिणांपथ्यंकासिनांरक्तपित्तिनाम्। तच्चकुर्य्यादपेक्ष्याग्निंव्याधिंसात्म्यबलंतथा॥ उपेक्षितोभवेत्तस्मिन् अनुबन्धोहियक्ष्मिणाम्। प्रागेवागमनात्तस्यतस्मात्तंत्वरयाजयेत्॥

अर्थ—जो जो अन्नपान सन्तर्पण कर्त्ता, शीतल, अविदाही और लघु हैं उन्हीं का सेवन आरोग्य लाभ करने के लिये क्षत-क्षीण रोगियों को सेवन करना चाहिये। जो २ यक्ष्मा, खांसी तथा रक्तपित्त में

पथ्य वर्णन किये गये हैं उनका सेवन अग्नि, व्याधि, सात्म्य और बल के अनुसार करना चाहिये ।

इस रोग की उपेक्षा करने से यक्ष्मा उत्पन्न होता है, इसलिये यक्ष्मा के उत्पन्न होने से पहिलेही इसकी शीघ्र चिकित्सा करै ।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

क्षतक्षयसमुत्थानंसामान्यपृथगाकृतिम् । असाध्ययाप्यसाध्यत्वंसाध्यानांसिद्धिमेव च ॥ उक्तवान्ज्येष्ठशिष्यायक्षतक्षीणचिकित्सिते । तत्त्वार्थविद्वीतरजस्तमोदोषःपुनर्वसुः॥

अर्थ—इस क्षतक्षीण चिकित्सित अध्याय में तत्ववेत्ता, रजोगुण और तमोगुण से रहित भगवान् पुनर्वसु ने अपने ज्येष्ठ शिष्य पुनर्वसु को क्षत और क्षीणरोग की उत्पत्ति, सामान्य आकृति, पृथक् २ आकृति, असाध्यता, याप्यता, साध्यता, साध्य रोगों की चिकित्साआदि सब बातोंका उपदेश दिया है ।

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थानेक्षतक्षीणचिकित्सितं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

———:*:———

सप्तदशोऽध्यायः ।

अथातःश्वयथुचिकित्सितंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम श्वयथु चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

भिषग्वरिष्ठंसुरसिद्धजुष्टं ।
मुनीन्द्रमत्र्यात्मजमग्निवेशः ॥
महागदस्यश्वथोर्यथावत् ।
प्रकोपरूपप्रशमानपृच्छत् ॥
तस्मिन्जगादागदवेदसिन्धु ।
प्रवर्त्तनाद्रिप्रवरोऽत्रिजस्तान् ।
वातादिभेदाःस्त्रिविधस्यसम्यक् ।
निजानिजैकाङ्गजसर्वजस्य ॥

अर्थ—अग्निवेश ने भिषग्वर, सुरसिद्ध सेवित, मुनीन्द्र, अत्र्यात्मज पुनर्वसुसे महागद श्वयथु के यथावत् प्रकोप, रूप और शमन के उपाय पूछे । आयुर्वेद सिन्धुके ज्ञाता, प्रवर पुनर्वसु ने निज, आगन्तुक, एकांगज, सर्वांगज, शोथों के वातादि दोषों से किये हुये तीन भेद वर्णन किये ।

निजशोथकेकारण ।

शुध्यामयाभक्तकृशाबलानां ।
क्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा ।
दध्याममृच्छाकाविरोधिदुष्ट ।
गरोपसृष्टान्ननिषेवणंच ॥
अर्शांस्यचेष्टानचदेहशुद्धि ।
मर्मोपघातोविषमाप्रसूतिः ।
मिथ्योपचारःप्रतिकर्म्मणाञ्च ।
निजस्यहेतुःश्वयथोःप्रदिष्टः ॥

अर्थ—संशोधन क्रिया रोग और निराहार रहने से जो मनुष्य कृश और दुर्बल होगये हैं उन के क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और गुरु, पदार्थों के सेवन से, दही

कच्चापदार्थ, शाक, विरोधी अन्न, दुष्टभोजन, विषसंसृष्ट भोजन के अत्यन्त करने से अर्शादि रोगों से, चेष्टा न करने से देह की शुद्धि न होनेसे, मर्म में चोट लगने से, विषमरीति से प्रसूति होने के कारण, शोधन क्रियाओं के मिथ्या उपचार से **निज शोथ** उत्पन्न होता है।

आगन्तु के लक्षण।

बाह्यास्त्वचोदूषयिताभिघातः।
काष्ठाश्मशस्त्राग्न्यशनीविषाद्यैः॥

अर्थ—लकड़ी, पत्थर, शस्त्र, अग्नि, वज्र, विष आदिकी चोट बाहरकी त्वचा पर लगने से **आगन्तुशोथ** होता है।

शोफके भेद।

आगन्तुहेतुःत्रिविधोनिजश्च।
सर्वार्द्धगात्रावयवाश्रितत्वात्॥

अर्थ—आगन्तुनिमित्तक तथा तीनप्रकार की निजशोफ सर्वांग अर्द्धांग वा अर्द्धांग अंगावयव का आश्रय लेकर उत्पन्न होतीहैं।

वातिकशोथ का हेतु।

बाह्याःसिराःप्राप्ययदाकफासृक्।
पित्तानिसंदूषयतीहवायुः॥
तैर्बद्धमार्गःसतदाविसर्प।
न्नुत्सेधलिङ्गंश्वयथुङ्करोति॥

अर्थ—वायु जब बाहर की शिराओंको ग्रहण कर के कफ, रक्त और पित्त को दूषित करती है, तब कफादि के द्वारा वायु के बाहर निकलने का मार्ग बन्दहोजाता है, तब सम्पूर्ण शरीर में फैलतीहुई शोफ को उत्पन्न करती है—देह के किसी भाग के फूलजानेका नाम शोथ है।

नामपरत्वसेशोथोंके भेद।

उरःस्थितैरूर्ध्वमधस्तुवायो।
स्थानस्थितैर्मध्यगतैस्तुमध्ये॥
सर्वाङ्गगैःसर्वगतैःक्वचित्स्थै।
र्दोषैःक्वचित्स्यात्श्वयथुस्तदाख्या॥

अर्थ—दोषों के ऊर्ध्वस्थान में स्थित होने से देह के ऊपर ले भागों में सूजन होती है,इसीतरह नीचे के अवयवों में स्थित होने से नीचे और बीच में स्थित होने से मध्य देह में सूजन होती है। दोषोंके सम्पूर्ण देह में विचरने से सर्वांगगामी शोफ होती है, तथा शरीर के जिस २ विभाग में दोष स्थित होकर सूजनको उत्पन्न करते हैं वह सूजन उसी स्थान विशेष के नामसे कहलाती है।

ऊष्मातथास्याद्दवथुःशिराणा।
मायासइत्येवचपूर्वरूपं॥
सर्वस्त्रिदोषोऽधिकदोषलिङ्गै।
स्तत्संज्ञमभ्येतिभिषक्जितञ्च॥

अर्थ—सूजन उत्पन्न होनेसे पहिले देह में गरमी और दाह होता है, नसें फूलजाती हैं, सब प्रकारकी सूजन त्रिदोष से होती हैं। इन में जिस दोष की अधिकता होती है, उसी के नामसे वह सूजन कहलाती है और उसी प्रधान दोष पर दृष्टि रखकर चिकित्सा कीजाती है।

शोफकेसामान्यलक्षण।

सगौरवंस्यादनवस्थितत्वं।
सोत्सेधमुष्णाथाशिरातनुत्वम्।
सलोमहर्षाङ्गविवर्णताच।

सामान्यलिङ्गंश्वयथोःप्रदिष्टम् ॥

अर्थ—भारापन, चंचलता, ऊंचापन, गर्माई, नसों का पतलापन, लोमहर्षण, अंग की विवर्णता, ये सब सूजन के सामान्य लक्षण हैं।

वाताधिक्यशोफ के लक्षण।

चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोशितः।
सुषुप्तिहर्षार्त्तियुतोनिमित्ततः॥
प्रशाम्यतिप्रोन्नमतिप्रपीडितो।
दिवाबलीचश्वयथुःसमीरणात्॥

अर्थ—वायुकी अधिकतासे सूजन स्थानान्तर में जाती रहती है, खाल पतली पड़जाती है, और उसका वर्ण परुष लाल वा काला पड़जाता, सूजन की जगह सुन्न, रोमाञ्चित और वेदनायुक्त होती है, हेतु विपरीत औषध से ये शान्त होजाती है। दवाने पर फिर ऊंची होजाती है, दिन में इसका वेग वढ़जाता है।

पित्ताधिक्यशोफके लक्षण।

मृदुःसगन्धोऽसितपीतरागवान्।
भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः॥
यउष्यतेस्पर्शसहोऽक्षिरागकृ।
त्सपित्तशोथोभृशदाहपाकवान्॥

अर्थ—पित्ताधिक्य शोफ कोमल, गन्ध युक्त,काली,पीली वा लाल होतीहै, इसकेहोने से चक्कर,ज्वर,पसीना, तृषा,और मद होता है। इस सूजन में हाथ लगाना बुरा मालूम होता है, आंखें लाल पड़जाती हैं, दाह और पाक वहुत होता है।

कफाधिक्यशोफकेलक्षण।

गुरुःस्थिरःपाण्डुररोचकान्वितः।
प्रसेकनिद्रावमिवह्निमान्द्यकृत्॥
सुकृच्छ्रजन्मप्रशमोनिपीडितो।
नचोन्नमेद्रात्रिबलीकफान्वितः॥

अर्थ—कफाधिक्य शोफ भारी, अचंचल और पांडुरंग का होता है, इसके होने से अन्न में अरुचि, लार टपकना, निद्रा, वमन और मन्दाग्नि होती है,इसके उत्पन्न होने और शान्त होने में बड़ी कठिनता होती है, दावने पर फिर उठती नहीं हैं रात्रि के समय इसका वेग वढ़जाता है।

असाध्य शोथ के लक्षण।

कृशस्यरोगैरवलस्ययोभवे।
दुपद्रवैर्वामिपूर्वकैर्युतः॥
महार्तिमर्मानुगतोऽथराजिमान्।
परिस्रवन्भीमवलश्चसर्वशः॥

अर्थ—कृश मनुष्य की रोग से दुर्वल मनुष्य की, वमनादि उपद्रवों से युक्त सूजन मर्म स्थान की सूजन, रेखाओं की सूजन स्रावयुक्त सूजन और हीनवल पुरुषकी सूजन असाध्य होती है।

साध्य शोफ के लक्षण।

अहीनमांसस्ययएकदोषजे।
नवोबलस्थस्यसुखःससाधने॥
निदानदोषर्तुविपर्य्ययक्रमै।
रुपाचरेत्तंबलदोषकालवित्॥

अर्थ—जिसका मांस क्षीण न हुआ हो ऐसे वलवान् व्यक्ति एक दोष से उत्पन्न हुई नवीन सूजन सुख साध्य होती है।

वल, दोष और काल को जानने वाले वैद्य को उचित है कि इस की चिकित्सा निदान, दोष और ऋतु की विपरीतता से करै ।

चिकित्साक्रम ॥

अथामजंलंघनपाचनक्रमै । विंशोधनैरुल्वणदोषमादितः ॥ शिरोगतंशीर्षविरेचनैरधो । विरेचनैरूर्ध्वहरैस्तथोर्ध्वजम् ॥ उपाचरेत्स्नेहगतंविरूक्षणैः । प्रकल्पयेत्स्नेहविधिञ्चरूक्षजे ॥ विवन्धविट्केनिलजेनिरूहणं । घृतन्तुपित्तानिलजेसतिक्तकम् । पयश्चमूर्च्छारतिदाहतर्षिते । विशोधनीयेतुसमूत्रमिष्यते ॥ कफोत्थितंक्षारकटूष्णसंयुतैः । समूत्रतक्रासवयुक्तिभिर्जयेत् ॥

अर्थ—आम से उत्पन्न सूजन को लंघन और पाचन से, उल्वण दोष वाली सूजन को विशोधन द्वारा, शिरोगत शोफ को शिरो विरेचन द्वारा, अधोगामी शोफ को दस्त कराके, उर्ध्वांग शोफको वमन कराके घृत के अधिक सेवन से उत्पन्न शोथ को विरूक्षण क्रियासे, रूक्षज शोफ को स्नेह विधि से जीतने का उपाय करै। विवन्धयुक्त वातज शोफ को निरूहण वस्ति से, वात पित्तज शोफ को तिक्तक घृत से विजय करै । मूर्च्छा,अराति,दाह और तृषासे युक्त सूजन में दूधका और विशोधन के योग्य सूजन में गो मूत्र मिलाकर दूध को देवै । इसी तरह कफज शोफ में क्षार,कटु, उष्ण द्रव्यों से युक्त गोमूत्र मिले हुए तक्र वा आसव का प्रयोग करै ॥

सूजन में त्याग के योग्य पदार्थ ।

ग्राम्यानूपंपिशितलवणंशुष्कशाकंनवान्नम् । गौड़पिष्टान्नंदधितिलकृतंविज्वलंमद्यमम्लम् ॥ धानावल्लूरंसमशनमथोगुर्वसात्म्यंविदाहि । स्वप्नश्चरात्रौश्वयथुगदवान्वर्ज्जयेन्मैथुनंच ॥

अर्थ—ग्राम्य और आनूप पशुओं का मांस, लवण, सूखाशाक, नवीन अन्न गुड़ के पदार्थ, पिट्ठी के पदार्थ, दही, तिलके पदार्थ, कुछ रसीले व्यंजन, मद्य, खटाई, जौ की धानी, सूखामांस, समशन, भारी, असात्म्य और विदाही अन्न,रात्रि में सौना और मैथुन इन कर्म्मों का परित्याग शोथ रोगी को कर देना उचित है ।

कफज शोफ पर प्रयोग ।

व्योषंत्रिवृत्तिक्तकरोहिणीच । सायोरजस्कात्रिफलारसेन ॥ पीतकफोत्थंशमयेत्तुशोफं । मूत्रेणगव्येनहरीतकीवा ॥ हरीतकीनागरदेवदारु । सुखाम्बुयुक्तंसपुनर्नवंवा ॥ सर्वेपिवेत्त्रिष्वपिमूत्रयुक्तं । स्नातश्चजीर्णेपयसान्नमद्यात् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, निसोथ, कुटकी, लोह चूर्ण इन को त्रिफलाके रस के साथ पान करै अथवा हरड़ के चूर्ण कोगोमूत्रके साथ पानकरै तो कफकी सूजन दूर होजाती है। अथवा हरड़, सोंठ, देवदारु और सांठ इनके चूर्ण

को कुछ गरम जल के साथ फांकै तौ कफ की सूजन जाती रहती है अथवा इसी चूर्ण को गोमूत्र के साथ फांकै तौ तीनों प्रकार की सूजन दूर होजाती है, औषध के पचने पर दूध के साथ अन्न का सेवन करै ।

वातज शोफ के प्रयोग ।

पुनर्नवानागरमुस्तकल्कान् ।
प्रस्थेनधीरःपयसोऽक्षमात्रान् ॥
मयूरकंमागधिकांसमूलां ।
सनागरांवाप्रविवेत्सवाते ॥
दन्तीत्रिवृत्त्र्यूषणचित्रकैर्वा ।
पयःशृतंदोषहरंपिवेन्ना ॥
द्विप्रस्थमात्रश्चपलार्द्धिकैस्तै ।
रर्द्धावशिष्टंपवनेसपित्ते ॥
सशुण्ठिपीतद्रुरसंप्रयोज्यं ।
श्यामोरुवूकोषणसाधितंवा ॥
त्वग्दारुवर्षान्तमहौषधैर्वा ।
गुडूचिकानागरदान्तिभिर्वा ॥

अर्थ—साठ, सोंठ और मोथा प्रत्येक दो तोला इनको एकप्रस्थ दूधमें औटाकर आधा शेष रहने पर पान करै ।

अथवा ओंगाकी जड़, पीपल, पीपलामूल और सोंठ इन को ऊपरकी रीति से पीवै तौ वातकी सूजन जाती रहती है । अथवा दन्ती, निसोथ, त्रिकुटा, चीता इनको दूधमें डालकर औटावै और पान करै तौ सूजन के दोष दूर होजाते हैं । अथवा दन्ती, निसोथ, त्रिकुटा और चीता इन को आधे आधे पल लेकर दो प्रस्थ दूध में औटावै जब एक प्रस्थ रहजाय तव पान करै तौ वातपित्त की शोफ दूर होजाती है । सोंठ और देवदारु वा क्काथ दूध के साथ पीने से अथवा काली निसोथ, अरंडकी जड़ और काली मिरच इन सब को समान भाग लेकर अठगुने दूध और उससे चौगुने जल में चढाकर दूध शेष रहने पर छान कर पीवै तौ वातपित्त की सूजन जाती रहती है । अथवा दालचीनी, दारुहलदी, पुनर्नवा और सोंठ, अथवा गिलोय, सोंठ और दन्ती इन दोनों में से किसी को दूध में औटाकर पान करने से वातपित्त की सूजन दूर होजाती है ।

सप्ताहमौष्ट्रंयदिवापिमासं ।
पयःपिवेद्भोजनवारिवर्जी ॥
गव्यंसमूत्रंमहिषीपयोवा ॥
क्षीराशनंमूत्रमथोगवांवा ॥
तक्रंपिवेद्वागुरुभिन्नवर्चाः ।
सव्योषसौवर्चलमाक्षिकंव
गुडाभयांवागुडनागरांवा ।
सदोषभिन्नामविवद्धवर्चाः
विड्वातसङ्गेपयसारसैर्वा ।
प्राग्भुक्तमद्यादुरुवूकतैलम् ॥
स्रोतोविबन्धेऽग्निरुचिप्रणाशे ।
मद्यान्यरिष्टांश्चपिवेत्सुजातान् ॥

अर्थ—वातपित्त की सूजन में भोजन और जल को छोडकर एक सप्ताह वा एक महीने तक केवल ऊंटनी का दूध पीकर रहै अथवा इसी तरह से गोमूत्र और भैंस के दूधका सेवन करै, अथवा गो के दूध को भोजन में और पीने में प्रयुक्त करै ।

सूजन में मलका अत्यन्त भेद होनेसे त्रिकुटा, संचलनमक और शहत डालकर मठा पीवै। दोषों के द्वारा भिन्न हुए आम और विवद्ध मल में गुड़ और हरड़ अथवा गुड़ और सोंठ का पान करावै। मल और अधोवायु के रुकने पर भोजन करने से पहिले अंडी का तेल दूध वा मांस रस के साथ पान करावै। स्रोतों के वन्द होने पर जठराग्नि और रुचि के नष्ट होने पर उत्तम बने हुए मद्य और अरिष्टों का पान करै।

कण्डीराद्यरिष्ट ।

कण्डीरभल्लातकचित्रकांश्च।
व्योषंविडङ्गंबृहतीद्वयञ्च ॥
द्विप्रस्थिकंगोमयपावकेन ।
द्रोणेपचेत्काञ्जिकमस्तुनस्तु ॥
त्रिभागशेषश्चसुपूतशीतं ।
द्रोणेनतत्प्राकृतमस्तुनस्तु ।
सितोपलायाश्चशतेनयुक्तं ।
लिप्तेघटेचित्रकपिप्पलीनाम् ।
वैहायसेस्थापितमादशाहा ।
त्प्रयोजयंस्तद्विनिहन्तिशोकान् ।
भगन्दरार्शःक्रिमिकुष्ठमेहान् ।
वैवर्ण्यकार्श्यानिलहिक्कनश्च ॥

अर्थ—कण्डीर, भिलावा, चीता, त्रिकुटा वाएविडंग, दोनों कटेरी, इन सब को दो प्रस्थ लेकर जौकुट करले फिर इसे एक दोण कांजी और दही के तोड़ में गौ के गोवर के उपलों की आगपर पकावै। चौथाई जलजाने पर इस को उतारकर छान लेवै और ठंडा होने पर एक द्रोणदहीकातोड सौ पल मिश्रीइस में मिलाकर एक ऐसे घड़े मेंभर देवैजिस में चीते और पीपलों की भावना दी हो, इस घड़े को ढककर छींके पर दस दिन तक टंगा रहनेदे। फिर इसका सेवन करने से सूजन, भगन्दर, अर्श, क्रिमिरोग, कुष्ठ प्रमेह, बिवर्णता, कृशता, वातरोग और हिचकी नष्ट होजाते।

अष्टशत अरिष्ट ।

काश्मर्य्यधात्रीमरिचाभयानां ।
द्राक्षाफलानाञ्चसपिप्पलीनाम् ॥
शतंशतंजीर्णगुडात्तुलाञ्च ।
संक्षुद्यकुम्भेमधुनाप्रलिप्ते ॥
सप्ताहमुष्णद्विगुणन्तुशीते ।
स्थितंजलद्रोणयुतंपिवेत्ना ॥
शोफान्विवन्धान्कफवातजांश्च ।
सहन्त्यरिष्टोऽष्टशतोग्निकृच्च ॥

अर्थ—खंभारी के फल, आंवला, काली मिरच, हरड़, दाख और पीपल, प्रत्येक सौ सौ लेवै, पुराना गुड एक तुला इन सब को जौकुट करके गुड़ में सानकर एक ऐसे घडे में भरै जिस में भीतर शहत पोता गया हो और उस घड़े में एक द्रोण जल भी भरदेवै, इस घड़े को गरमी की ऋतु में एक सप्ताह और जाड़े में दो सप्ताह इसी तरह धरा रहने देवै। इस अरिष्टका सेवन करने से सूजन कफवातज विवन्ध दूर होजाते हैं और जठराग्नि बढती है।

पुनर्नवाद्यारिष्ट ।

पुनर्नवेद्वेचबलेसपाठे।
दन्तींगुडूचीमथचित्रकञ्च ॥

निदिग्धिकाश्चत्रिपलानिपक्त्वा ।
द्रोणार्द्धशेषेसलिलेततस्तम् ॥
पूत्वारसंद्वेचगुडात्पुराणात् ।
तुलेमधुप्रस्थयुतंसुशीतम् ॥
मासंनिदध्याद्घृतभाजनस्थं ।
पल्लेयवानांपरितस्तुमासान् ॥
चूर्णीकृतैरर्द्धपलांशिकैस्तं ।
पत्रत्वगेलामरिचाम्बुलोहैः ॥
गन्धान्वितंक्षौद्रघृतप्रदिग्धे
जीर्णे। पिबेद्व्याधिबलंसमीक्ष्य ॥
हृत्पाण्डुरोगंश्वयथुंप्रवृद्धं ॥
प्लीहभ्रमारोचकमेहगुल्मान् ॥
भगन्दरंषट्जठराणिकासं ।
श्वासंग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ।
शाखानिलंवद्धपुरीषताञ्च ।
हिक्कांकिलासञ्चहलीमकञ्च ।
क्षिप्रंजयेद्वर्णबलायुरोज।
स्तेजोन्वितोमांसरसान्नभोक्ता ॥

अर्थ—सफेद सांठ, लालसांठ, खरैटी, नागवला, पाठा, दन्ती, गिलोय, चीता और कटेरी, इन में से प्रत्येक को तीन तीनपल लेकर एक दोण जल में चढावै जब आधा शेष रहजाय तव छानकर ठंडा होने पर इस में दो तुला पुराना गुड़ और एक प्रस्थ शहत मिलाकर घीके चिकने घड़ेमें भरकर जौके ढेर में एक महीने तक गढ़ा रहनेदेवै । महीने भर पीछे इस में तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची, काली मिरच और नेत्रवाला का चूर्ण आधा २ पल डालकर सुगंध युक्त करै। पुराना होने पर इस अरिष्ट में घृत और शहत मिलाकर व्याधि और बलके अनुसार सेवन करै तौ हृद्रोग, पाण्डुरोग, बढ़ीहुई सूजन, प्लीहा, भ्रम, अरुचि, प्रमेह गुल्मरोग, भगन्दर, छः प्रकारके जठररोग खांसी, श्वास, ग्रहणीरोग, कोढ़, खुजली, शाखागत, वायु, मलकी वद्धता, हिचकी, किलास और हलीमक, ये सब रोग शीघ्र ही दूर होजाते हैं । इस अरिष्ट को सेवन कर के मांसरस और अन्नका भोजन करने से वर्ण, बल, आयु, ओज और तेज बढ़ता है ॥

त्रिफलारिष्ट ।

फलत्रिकंदीप्यकचित्रकौच ।
सपिप्पलीलोहरजोविडङ्गम् ।
चूर्णीकृतंकौडविकंद्विरंशं ।
क्षौद्रंपुराणस्यतुलांगुडस्य ॥
मासंनिदध्याद्घृतभाजनस्थं ।
यवेषुतानेवनिहन्तिरोगान् ॥

अर्थ—त्रिफला, अजवायन, चीता, पीपल, लोहभस्म, वायविडंग, प्रत्येक एक २ कुड़व, शहत दो कुड़व, पुराना गुड़ एक तुला इन सबको घी की हांड़ी में भरकर महीने भर तक जौ के ढेर में गाड़दे और फिर सेवन करै तौ पूर्वोक्त फलहोय ।

येचार्शसांपाण्डविकारिणाञ्च ।
प्रोक्ताःशुभाःशोफिषुतेऽप्यरिष्टाः ।

अर्थ—अर्शरोग और पाण्डुविकारों में जो २ अरिष्ट वर्णन कियेगये हैं वे सब शोफ में हितकारी होते हैं ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

कृष्णासपाठागजापिप्पलीच ।
निदिग्धिकाचित्रकनागरेच ॥
सपिप्पलीमूलरजन्यजाजी ।
मुस्तञ्चचूर्णंसुखतोयपीतम् ॥
हन्यात्त्रिदोषंचिरजञ्चशोफं ।
कल्कश्चभूनिम्बमहौषधस्य ॥
अयोरजस्त्र्यूषणयारशूकं ।
चूर्णञ्चपीतंत्रिफलारसेन ॥

अर्थ—पीपल, पाठ, गजपीपल, कटेरी, चीता, सोंठ, पीपलामूल, हल्दी, कालाजीरा और मोथा इन के चूर्ण को गुनगुने जलके साथ फांकनेसे त्रिदोषज पुराना शोफ दूरहो जाता है, इसीतरह चिरायता और सोंठ का चूर्ण गरमजल के साथ फांकने से पूर्वोक्त गुण होता है । अथवा लोहचूर्ण, त्रिकुटा, जवाखार इन के चूर्ण को त्रिफला के रस के साथ पीने से भी पूर्वोक्त गुण होता है ॥

क्षारादिबटिका ।

क्षारद्वयंस्याल्लवणानिचत्वा ।
र्य्ययोरजोव्योषफलत्रिकंच ॥
सपिप्पलीमूलविडङ्गसारं ।
मुस्ताजमोदामरदारुविल्वम् ।
कलिङ्गकाःचित्रकमूलपाठं ।
सयष्टिकञ्चातिविषंपलांशम् ॥
सहिंगुकर्षंत्वनुसूक्ष्मचूर्णं ।
द्रोणंयथागूलकशुण्ठिकानाम् ॥
स्याद्भस्मनस्ततसलिलेनसाध्य ।
मालोड्ययावद्घनमप्रदग्धम् ।
स्त्यानंततःकोलसमान्तुमात्रां ।
कृत्वासुशुष्कांविधिनाभजेत ॥
प्लीहोदराश्वित्रहलीमकांस्तु ।
पाण्ड्वामयारोचकशोषशोफान् ।
विसूचिकागुल्मगराश्मरीश्च ।
सश्वासकासाःप्रणुदेत्सकुष्ठाः ॥

अर्थ—दोनों प्रकार के खार, चारोंनमक, लोहचूर्ण, त्रिकुटा, त्रिफला, पीपलामूल, वायविडंगकीमींगी, मोथा, अजमोद, देवदारु, बेलगिरी, इन्द्रजौ, चीते की जड़, पाठा, मुलहटी और अतीस एक २ पल लेवै और एक कर्ष भुनीहुई हींग लेवै इन सबका महीन चूर्ण करलेवै । फिर मूली और सोंठ की भस्म को अठगुने जल में डालकर अग्निपर चढ़ादे जब चौथाई शेष रहै तब उतारकर छानले । फिर इसमें पूर्वोक्त चूर्ण डालकर अग्निपर धरकर चलाता रहै जिससे लगने न पावै । गाढ़ाहोने पर बेर की बराबर गोली बनाकर सुखालेवै । इन गोलियोंका विधिपूर्वक सेवन करने से प्लीहा, उदररोग, श्वित्रकुष्ठ, हलीमक, पाण्डुरोग, अरुचि, शोष, शोफ, विसूचिका गुल्मरोग, पथरी, श्वास, खांसी और कोढ़ शीघ्र नष्ट होजाते हैं ।

अन्यप्रयोग ।

प्रयोजयेदार्द्रकनागरंवा ।
तुल्यंगुडेनार्द्धपलाभिवृध्या ॥
मालापलंपञ्चपलानिमासं ।
जीर्णेपयोयूषरसान्नभोक्ता ॥
गुल्मोदरार्शःश्वयथुप्रमेहान् ।

श्वासप्रतिश्यालसकाविपाकान् ॥
सकामलांशोषमनोविकारान् ।
कासंकफश्चैवजयेत्प्रयोगः ॥

अर्थ—आधेपल अदरख वा सोंठ को समानभाग पुराने गुड़के साथ सेवन करै। फिर प्रतिदिन आधा २ पल वढ़ाता रहै, जव पांचपल पूरे होजांय तव महीनेभरतक प्रतिदिन पांचपल का सेवन करता रहै। औषध के जीर्ण होने पर दूध, यूष और मांसरस का सेवन करता रहै। इस औषध सेगुल्म उदररोग, अर्शविकार, सूजन, प्रमेह, श्वास, प्रतिश्याय, अलसक, अविपाक, कामला, शोष, मनोविकार, खांसी और कफ दूर होजाते हैं।

रसस्तथैवार्द्रकनागरस्य ।
पेयोऽथजीर्णेपयसान्नमद्यात् ॥
जत्वश्मजञ्चत्रिफलारसेन ।
हन्यात्त्रिदोषंश्वयथुंप्रसह्य ॥

अर्थ—ऊपर कही हुई रीति के अनुसार ही प्रति दिन आधे २ पल वढाकर अदरख का रस पान करै, जव पांचपल पर पहुंच जाय तव एक महीने पर्य्यन्त प्रति दिन पांच पल सेवन करतारहै। औषध के पचने पर दूध के साथ अन्नका भोजन करै। त्रिफला के क्वाथ के साथ शिलाजतु पीने से भी त्रिदोष की सूजन जाती रहती हैं॥

हरीतक्यादिप्रयोग ॥

द्विपञ्चमूलस्यपचेत्कषाये ।
कंसेभयानाञ्चशतंगुडस्य ॥
लेहेसुसिद्धेचविनीयचूर्णं ।
व्योषंत्रिसौगन्ध्यमुपांस्थिनेच ॥
प्रस्थार्द्धमात्रंमधुनःसुशीते ।
किञ्चिचचूर्णादपियायशूकात् ॥
एकाभयांप्राश्यततश्चलेहा ।
च्छुक्तिंनिहन्तिश्वयथुंप्रवृद्धम् ॥
श्वासज्वरारोचकमेहहिक्का ।
प्लीहत्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ॥
कार्श्यामवातानसृगम्लपित्तं ।
वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥

अर्थ—चारसेर दशमूल और सौहरड को सोलह सेर जल में भरकर अग्निपर चढा देवै जब चौथाई रहजाय तव उतारकर छान लेवै और हरडों के भीतर से गुठली निकालकर फेंकदे। फिर उस क्वाथ को हरडोंके गूदे और पुराने गुड के साथ अग्निपर चढा दे जब चाटने के योग्य गाढीहोजाय तव अग्निपरसे उतारकर त्रिकुटा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, इन को पीसकर उसमें डाल देवै तथा आधा प्रस्थ शहत और थोडासा डालकर मिलाकर उतार लेवै। फिर प्रतिदिन इन में से एक हरड खाकर आधापल चटनी चाट लेवै तौ अत्यन्त बढीहुई सूजन नष्ट होजाती है तथा श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, हिचकी, प्लीहा, त्रिदोषजन्य उदर रोग, पाण्डुरोग, कृशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष, वातदोष, शुक्रदोष ये सब रोग दूर होजाते हैं॥

पटोलादिघृत ॥

पटोलमूलासुरदारुदन्ती ।

त्रायन्तिपिप्पल्यभयाविशालाः ॥
यष्ट्याह्विकातिक्तकरोहिणीच ।
सचन्दनास्यान्निचुलानिदार्वी ॥
कर्षोत्थितैस्तैःक्वथितःकषायो ।
घृतस्यपेयःकुडवेनयुक्तः ।
वीसर्पदाहज्वरसन्निपाता
स्तृष्णांविषाणिश्वयथुंनिहन्ति ॥

अर्थ—परवलकीजड, देवदारु, दन्ती, त्रायमाणा, पीपल, हरड, इन्द्रायणकीजड, मुलहटी, कुटकी, रक्तचन्दन, निचुल और दारुहलदी, इनमें से प्रत्येक को एक २ कर्ष लेकर अठगुने जलमें चढा दे चौथाई शेष रहने पर उतारकर छान ले और इस क्वाथ में एक कुडव घृत डालकर फिर पकावै जब घृत शेषरहजाय तब नित्यप्रति मात्रा के अनुसार सेवन करै तौ विसर्प, दाह, ज्वर, सान्निपात, तृष्णा, विषरोग और सूजन, दूर होजावैगी।

चित्रकादिघृत ॥

सचित्रकंधान्ययवान्यजाजी ।
सौवर्च्चलंत्र्यूषणवेतसाम्लम् ।
बिल्वात्फलंदाडिमयावशूकौ ।
सपिप्पलीमूलमथोऽपिचव्यम् ॥
पिष्ट्वाक्षमात्राणिजलाढकेन ।
पक्त्वाघृतप्रस्थमथोविदध्यात् ॥
अर्शांसिगुल्मंश्वयथुञ्चदुःखं ।
तद्धन्तिवह्निञ्चकरोतिदीप्तम् ॥
पिबेद्घृतंवाष्टगुणाम्बुसिद्धं ।
सचित्रकक्षारमुदारवर्यम् ॥
कल्याणकंवापिसपञ्चगव्यं ।
तिक्तंमहद्वाप्यथतिक्तकंवा ॥

अर्थ—चीता, धनियां, अजवायन, कालाजीरा, संचलनमक, कालीमिरच, सोंठ, पीपल, अमलवेत, वेलफल, अनारकीछाल, जवाखार, पीपलामूल, चव्य, इन सबको दो २ तोले लेकर एक आढक जल में पकावै फिर चौथाई शेष रहनेपर छानकर पूर्वोक्तरीति से एक प्रस्थ घृत पकावै, घृतशेष रहनेपर उतार लेवै। इस घृतके सेवन करने से अर्शरोग, गुल्म, सूजन और मूत्रदोष दूर होजाते हैं और जठराग्नि प्रवल होती है। अथवा चीते और जवाखारको अठगुने जलमें चढाकर उसके साथ घृत पकाकर सेवन करै। इससे वीर्य वढता है अथवा कल्याणघृत, पञ्चगव्यघृत, महातिक्तकघृत और तिक्तघृतका सेवन भी सूजन में हित है॥

चित्रकोत्थितघृत ॥

क्षीरंघटेचित्रककल्कलिप्ते ।
दध्यागतंसाधुविमथ्यतेच ॥
तज्जंघृतंचित्रकमूलगर्भं ।
तक्रेणसिद्धंश्वयथुघ्नमग्र्यम् ॥
अर्शोऽतिसारानिलगुल्ममेहां ।
श्चैतान्निहन्त्यग्निबलप्रदञ्च ॥
तक्रेणवाद्यात्सघृतेनतेन ।
भोज्यानिसिद्धामथवायवागुम् ।

अर्थ—एक घडेके भीतर चीतेकी छाल पीसकर लेपकरदे और उस घडे में दूध जमा देवै, जब दही जमजाय तब उसे विलोकर घी निकाल लेवै। इस घृत को ची-

तेकीजड और मठेके साथ पकाकर सेवन करै तौ सूजन, अर्शरोग, अतिसार, वातगुल्म और प्रमेह दूर होजाते हैं और जठराग्नि का बल वढता है । अथवा इस घृत को मठे में मिलाकर इसके साथ भोजन करै अथवा इस घृत के साथ यवागू सिद्ध करके भोजन करै ॥

शोथपरयवागू ॥

जीवन्त्यजाजीशटिपुष्कराह्वैः ।
सकारवीचित्रकबिल्वमध्यैः ॥
सयावशूकैर्वदरप्रमाणै ।
र्वृक्षाम्लयुक्ताघृततैलभृष्टाः ॥
अर्शोऽतिसारानिलगुल्मशोफ ।
हृद्रोगमन्दाग्निहितायवागूः ॥
यापञ्चकौलैर्विधिनैवतेन ।
सिद्धाभवेत्साचसमातयैव ।

अर्थ—जीवन्ती, कालाजीरा, कचूर, कुडा, लटजीरा, चित्रक, वेलगिरी, और वेरके बरावर जवाखार इनको मिलाकर घी वा तेल में सिद्धकरके यवागू का सेवन करै इसमें इमली के कटारों की थोडीसी खटाई डाल देवै इससे अर्श, अतिसार, वातगुल्म, शोफ, हृद्रोग और मन्दाग्नि दूर होजाती है अथवा इसी यवागू को ऊपर कहीहुई विधिके अनुसार पंचकोलके साथ सिद्ध करके सेवन करै तौ गुणों में ऊपरवाली यवागू के सदृशही होजाता है ॥

कुलत्थयूषश्चसपिप्पलीको ।
मौद्गश्चसत्र्यूषणयावशूकः ॥
रसस्तथाविष्किरजांगलानाम् ।
सकूर्मगोधाशिखिशल्यकानां ॥
शाकार्थिनांशाकमतिप्रशस्तं ।
भोज्यंपुराणश्चयवःसशालिः ॥
सुवर्चिकागृञ्जनकंपटोलं ।
सवायसीमूलकनेत्रनिम्बम् ॥
आभ्यन्तरंभेषजमुक्तमेतद् ।
वहिर्हितंयच्छृणुतद्यथावत् ॥
स्नेहानप्रदेहान्परिषेचनानि ।
स्वेदांश्चवातप्रवलांश्चकुर्य्यात् ॥

अर्थ—पीपलडालकर सिद्ध कियाहुआ कुलथीकायूष, अथवा त्रिकुटा और जवाखार डालकर सिद्ध कियाहुआ मूंगकायूष, विष्किर पक्षियों का मांसरस, जांगल पशु पक्षियोंका मांसरस, तथा कछुआ, गोह, मोर वा सेहकामांसरस सूजनमें हितकारी है. शाकखाने वालों के लिये सुवर्च्चिका, गाजर, परवल, मकोय, मूली, नाडीकाशाक, नीमकाशाक तथा जौ और शालीचांवल हित होते हैं ॥

यहांतक सूजन के रोगको दूर करनेके निमित्त खानेपीने वाली औषधियोंका बर्णन कियागया है अब उन औषधियों का बर्णन करेंगे जो बाहर लगानेमें काम आती हैं, यथा बातजशोथ में स्नेह, प्रदेह, परिषेचन और स्वेदन ॥

शैलेयतैल

शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्ती ।
त्वक्पद्मकैलाम्वुपलाशमुस्तैः ॥
प्रियंगुथौणेयकहेममांसी ।
तालीसपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥

श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिः ।
स्पृक्त्वानखैश्चैयवथोपलाभम् ॥
वातान्विते ऽभ्यङ्गमुषन्तितैलं ।
सिद्धंसुपिष्टैरपिचप्रदेहम् ॥
जलेचवासार्ककरञ्जशिग्रु ।
काश्मर्यपत्रार्जकजैश्चसिद्धैः ॥
स्विन्नोमृदूष्णोरवितप्ततोय ।
स्नातश्चगन्धैरनुलेपनीयः ॥

अर्थ—शिलापुष्प, कूठ, अगर, दारुहलदी, पद्माख, इलायची, नेत्रवाला, पलाश मोथा, प्रियंगु, थूनेर, जटामांसी, तालीसपत्र, केवटीमोथा, तेजपात, धनियां, श्रीवेष्टक, ध्यामक, स्पृक्का, नखी, इनद्रव्योंमें से जितनीमिलसकें उनको लेकर उनके क्वाथमेंतेल पकाकर बादीकी सूजनपर लेपकरै ।

अडूसा, कंजा, संहजना, खंभारी, और तुलसी इनके पत्तोंको डालकर जलऔटावे और इस गरम गरम जलसे सूजनके स्थान को धोवै अथवा धूपसे कियेहुए गरम जल द्वारा पसीनेलेवै । इसजलसे स्नानकरके गन्धद्रव्यों का लेपकरै ।

पित्तज शोफपर तैलादि ।

सवेतसाःक्षीरवतान्द्रुमाणा ।
त्वचःसमाञ्जिष्ठबलामृणालाः ।
सचन्दनाःपद्मकवालकौच ।
पैत्तेप्रदेहस्तुसतैलपाकः ॥
आक्तस्यतेनाम्बुरविप्रततं ।
सचन्दनंसाभयपद्मकञ्च ॥
स्नानेमतंक्षीरवतांकषायः ।
क्षीरोदकंचन्दनलेपनंच ॥
कफेतुकृष्णासिकतापुराण ।
पिण्याकशिग्रुत्वगुमाप्रलेपः ॥
कुलत्थशुण्ठीजलमूत्रसेकः ।
चण्डागुरुभ्यामनुलेपनंच ॥

अर्थ—पित्तजशोफमें बेतऔर गूलरपीपलआदि दूधके बृक्षोंकी छाल, मजीठ, खरैटी, कमलनाल, रक्तचंदन, पद्माख, नेत्रवाला, इनको पीसकर लेपकरै अथवा इनद्रव्यों के क्वाथमें तेलपकाकर लगावै । इसतेलको लगाकर रक्तचंदन, हरड़ और पद्माखडालकर जलको धूपमें गरमकरके स्नानकरै । इसीतरह दूधिया बृक्षोंकी छालके क्वाथसे वा दूधमिलेहुए जलसेस्नान करके चन्दनका लेपकरै ।

कफजशोफपर तैलादि ।

बिभीतकानांफलमध्यलेपः ।
सर्वेषुदाहार्तिहरःप्रलेपः ॥
यष्ट्यह्वमुस्तैःसकपित्थपत्रैः ।
सचन्दनैस्तात्पिडकासुलेपः ॥
रास्नावृषार्कत्रिफलाविडंगा ।
शिग्रुत्वचोमूषिककर्णिकाच ॥
निम्बार्जकौव्याघ्रनखसदूर्वा ॥
सुवर्चलास्यात्कटरोहिणीच ॥
सकाकमाचीवृहतीसकुष्ठा ।
पुनर्नवाचित्रकनागरेच ॥
उन्मर्दनंशोफिषुमूत्रपिष्टं ।
शस्तस्तथामूलकतोयसेकः ॥

अर्थ—कफकी सूजन में पीपल का चूर्ण पुरानीखल, सहजने की छाल और राई इनको पीसकर लेप करै । कुलथी और सोंठ

के क्काथ में गोमूत्र को मिलाकर परिषेक करै । पीछे चण्डा और अगरका लेपकरै ।

बहेड़े के गूदे का लेप करने से सब प्रकार की सूजनोंका दाह शान्त होजाताहै।

जो सूजन में फुन्सियां होजांय तौ मुलहटी, मोथा, कैथ के पत्ते, और रक्तचन्दन का लेप करै ।

रास्ना, अडूसा, आक, त्रिफला, वायविडंग, सहजने की छाला, मूषिकपर्णी, नीम, तुलसी, वघनखी, दूब, सुवर्चला, कुटकी,मकोय, कटेरी, कूठ, पुनर्नवा, चीता और सोंठ इन सब को गोमूत्र में पीसकर लेप करै । अथवा सूखीमूली को जल में औटाकर इस जल से परिषेक करै ।

शोफास्तुगात्रावयवाश्रिताये ।
तेस्थानदूष्याकृतिनामभेदात् ॥
अनेकसंख्याःकतिचिच्चतेषां ॥
निदर्शनार्थंशृणुचोच्यमानान् ॥
दोषास्त्रयस्वैःकुपितानिदानैः ॥
कुर्वन्तिशोफात्शिरसःसुघोरान् ॥
अन्तर्गलेघुर्घुरिकान्वितंच ।
शालूकमुच्छासानिरोधनानि ॥
गलस्यसन्धौचिबुकेगलेच ।
सदाहरागश्वसनासुचोग्रः ॥
शोफोभृशार्तिस्तुबिडालिकाख्या ।
हन्यादनेचेद्वलयीकृतास्यात् ॥

अर्थ—जो सूजन शरीर के जुदे २ स्थानों में होती है वह स्थान, दूष्य, आकृति और नाम के भेद से अनेक प्रकार की होती है, अब हम उनमें से उदाहरण के निमित्त थोड़ीसी शोफों का वर्णन करते हैं उन्हें सुनो ।

अपने २ कारणों से कुपित होकर तीनों दोष सिर में घोर सूजन उत्पन्न करते हैं। इसमें गले के भीतर घुर्घुर शब्द होने लगता है और श्वास रुकने लगता है इसका नाम **शालूकशोफ** है । गले की संधि, ठोडी और गले में दाह, राग और श्वास से युक्त **सुचोग्रनामक शोफ** उत्पन्न होता है । जब यह सूजन गले में मंडलाकार होकर अत्यन्त वेदना उत्पन्न करके मनुष्य को मारता है तब उसे **विडालिका** कहतेहैं।

अन्यसोफोंकेनाम ॥

स्यात्तालुविद्रध्यपिदाहरोगै ॥
र्युताभवेत्तालुनिसात्रिदोषात् ॥
जिह्वोपरिष्टादुपजिह्विकास्यात् ॥
कफादधस्तादधिजिह्विकाच ॥
योदन्तमांसेषुतुरक्तपित्तात् ।
पाकोभवेत्सोपकुशःप्रदिष्टः ॥
स्याद्दन्तविद्रध्यपिदन्तमांसे ।
शोफःकफाच्छोणितसंश्रयोत्थः ॥

अर्थ— जोशोफ दाह युक्त और रक्त वर्णकी तालुमेंहोतीहै उसे **तालुविद्रधिस्माल** कहतेहैं । यह त्रिदोष से होती है जो जिह्वा के ऊपर होती है उसे **उपजिह्विका** कहते हैं । और जो कफके कारणजिह्वासे नीचे होती है उसे अधिजिह्विका कहते हैं। रक्तपित्तके कारण दांतों के मांसमें जो पाकयुक्त सोफहोती है उसे उपकुश कहतेहैं । दांतों के मांस में जो सूजन

रक्त और कफ के संचय से उठती है उसे दन्तविद्रधि कहते हैं।

गलगण्डशोफ।

गलस्यपार्श्वेगलगण्डएकः।
स्याद्गण्डमालाबहुभिस्तुगण्डैः।
साध्याःस्मृताःपीनसपार्श्वशूल।
कासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः॥

अर्थ—गले की बगल में जो एक गांठ उठती है उसे **गलगण्ड** कहते हैं और जो बहुतसी गांठ होतीहैं उन्हें **गण्डमाला** कहते। ये दोनों साध्य होती हैं परन्तु जब ये पीनस, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर और बमनसे युक्त होती हैं तब असाध्य होती हैं।

शोफोंमेंचिकित्साक्रम।

तेषांसिराकायशिरोविरेको।
धूमःपुराणस्यघृतस्यपानम्।
सलङ्घनंवक्त्रभवेषुचापि।
प्रहर्षणंस्यात्कवलग्रहश्च॥

अर्थ—इन ऊपरकी शोफों में सिरामोक्षण, कायविरेचन, शिरोविरेचन, धूमपान, पुराना घृतपान, लंघन, हितकारी है तथा मुख में होनेवाली सूजनों में सूजनके नाश करनेवाले द्रव्यों को रगड़े और उन्ही द्रव्यों से सिद्ध कियाहुआ कवल धारणकरै।

अन्यग्रन्थियोंकावर्णन।

अङ्गैकदेशेष्वनिलादिभिस्यात्।
स्वरूपधारीस्फुरणःसिराभिः॥
ग्रन्थिर्महान्मांसभवस्त्वनार्ति।
मेदोभवःस्निग्धतमश्चलश्च॥

अर्थ—वातादि दोषों की प्रबलता से शरीर के विशेष २ अंगों में मूर्तिमान् लक्षणों से युक्त सूजन होती हैं। एक सूजन तौ नसों में रुधिर का बहना बन्द होजाने से होती है। एक बड़ी गांठ मांस में होती है इस में वेदना नहीं होती है। एक गांठ मेदा में होती है यह बहुत चिकनी और चलायमान होती है।

तंशोधितंस्वेदितमश्मकाष्ठैः।
साङ्गुष्ठदण्डैर्विनयेदपक्वम्॥
विपाट्यचोद्धृत्यभिषक्सकोशं।
शस्त्रेणदग्ध्वाव्रणवच्चिकित्सेत्॥
अदग्धईषत्परिशोषितश्च।
प्रयातिभूयोऽपिशनैर्विवृद्धिम्॥
तस्मादशेषः कुशलैसमन्तात्।
छेद्योभवेद्वीक्ष्यशरीरदेशान्॥
शोषेकृतेपाकवशेनशीर्य्ये।
ततःक्षतोत्थःप्रसरेद्विसर्पः॥

अर्थ—जिस मनुष्यके ऐसी गांठ होजाय उस को विना पकेही शोधन देकर पत्थर वा काठ द्वारा स्वेदन देकर अंगूठा वा लकडी लगाकर नरम करदे। उस के पकने पर शस्त्र से चीरा लगाकर सब मवाद और गली हुई खाल को अलगकरके दग्धकरै और फिर व्रणवत् चिकित्सा करै। जो दग्धनकीजाय तौ कम शुष्क होने के कारण वह फिर धीरे धीरे बढ़जाती है। इस लिये कुशल वैद्यको उचित है कि उस उत्पत्ति के स्थान का विचारकरके उसको जड़ से दूरकर देवै। काटने पर भी शेष बच

रहै तौ पाकके कारण शीर्ण होकर उस में क्षतज विसर्प उत्पन्न होगा ।

वर्जनीय ग्रन्थि ।

उपद्रवंतंप्रतिवारयेज्ज्ञः ।
स्वैर्भेषजैपूर्वतरैर्यथोक्तैः ॥
ततःक्रमेणास्ययथाविधानम् ।
वृणंवृणघ्नस्त्वरयाचिकित्सेत् ॥
विवर्ज्जयेत्कुक्ष्युदराश्रितश्च ।
तथागलेमर्म्माणिसंश्रितश्च ॥
स्थूलःखरश्चापिभवेद्विवर्ज्जो ।
यश्चापिवालस्थविरावलानां ॥

अर्थ—इस क्षतज विसर्प नामक उपद्रव को दूर करने के लिये पहिले कही हुई विसर्प चिकित्साओं के द्वारा चिकित्सा करै फिर क्रम से यथाविधान व्रणके समान क्रियाओं का प्रारम्भ करै । जो गांठ कूख,उदर गले और मर्मस्थान में हुई हो वह त्याज्य है । जो वालक, बूढे और दुर्वल कै हुई हो वह भी वर्जनीय है ।

ग्रन्थ्यर्वुदानाञ्चयतोविशेषः ।
प्रदेशहेत्वकृतिदोषदूष्यैः ॥
ततःचिकित्सेद्भिषगर्वुदानि ।
विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥

अर्थ—देश, हेतु, आकृति, दोष और दूष्य इन के कारण ग्रन्थि और अर्वुद में कुछ अन्तर नहीं है इस लिये वैद्यको उचित है कि ग्रन्थि चिकित्सा के द्वारा अर्वुद की चिकित्सा करै ।

अलजी के लक्षण ।

ताम्रासशूलापिड़काभवेद्या ।
सात्वालजीनामपरिस्रुताग्रा ।

अर्थ—ताम्रवर्णकी शूलयुक्त एक पिडका होती है इस को अलजी कहते हैं । इसके अग्रभाग में स्राव होता रहता है ।

चिप्पशोफ के लक्षण ।

शोफःकृतश्चर्मनखान्तरेस्यात् ।
मांसस्रदूषीभृशशीघ्रपाकः ॥

अर्थ—खाल और नखों के भीतर रक्त और मांसके दूषित होने से एक प्रकार की सूजन होती है, यह वहुत जलदी पकती है । इसके लक्षण छिप्पनामक क्षुद्र रोग से मिलते हैं ।

बिदारिका के लक्षण ।

ज्वरान्वितावंक्षणकक्षजाया ।
वर्त्तिर्निरर्त्तिःकठिनायताच ॥
विदारिकासाकफमारुताभ्यां ।
तेषांयथादोषमुपक्रमस्यात् ॥
विस्रावणंपिण्डकयोपनाहः ।
पक्वेषुचैवव्रणवच्चिकित्सा ॥

अर्थ—वंक्षण और कक्षा में वत्ती के समान शूल रहित एक गांठ होती है,यह वडी कठोर होती हैं । इसके होने से ज्वर आजाता है । यह गांठ कफ और वात से उत्पन्न होती है, इसको विदारिका कहते हैं । इसकी चिकित्सा दोष की प्रवलता के अनुसार करै ।

इन शोफो में रक्तमोक्षण और पिण्डोपनाह करै तथा पकने पर व्रण के समान चिकित्सा करै ।

विस्फोटक शोफ के लक्षण ।

विस्फोटकाःसर्वशरीरजाःस्युः ।
स्फोटास्तुरागज्वरतर्षयुक्ताः ॥

अर्थ—सम्पूर्ण देह में एक विस्फोटक शोफ होती है इस में छोटे २ फोडे से हो-जाते हैं । इन के होने से रक्तवर्ण, ज्वर और तृषा की अधिकता होती है ।

कक्षा के लक्षण ॥

यज्ञोपवीतप्रतिमाःप्रभूताः ।
पित्तानिलाल्लाजनिभास्तुकक्षाः ॥

अर्थ—जो शोथ रस्से के समान शरीर में खील के आकार की पड़जाती है उसे कक्षा कहते हैं, यह वातपित्त से उत्पन्न होतीहै।

मसूरकादि के लक्षण ।

याश्चापराःस्युःपिड़काःप्रकीर्णाः ।
स्थूलाणुमध्याअपिपित्तजास्ताः ॥
सर्वत्रगात्रेषुमसूरमात्र्यो ।
मसूरिकाःपित्तकफात्प्रदिष्टाः ॥
विसर्पशान्त्यैविहिताक्रियाया ।
तांतासुकुष्टेचहितंविदध्यात् ।

अर्थ—देह में एक तरह की छोटी वड़ी और भी फुन्सी होती हैं, ये पित्त से उत्पन्न होती हैं । एक तरह की फुन्सिया मसूरके आकार की सव देह में होजाती हैं, इन्हैं मसूरिका कहते हैं, ये पित्तकफसे उत्पन्न होती हैं । इस रोग में वह चिकित्सा कर-नी चाहिये जो विसर्प और कुष्ठ दूर करने के लिये वर्णनकी गई है ।

अंत्रवृद्धिआदिकेलक्षण ।

प्रध्मानिलाद्यैर्वृषणेस्वलिङ्गैः ।
रान्त्रंनिरेतिप्रविशेन्मुहुश्च ॥
मूत्रेणपूर्णमृदुमेदसातु ।
स्निग्धश्चविद्यात्कठिनञ्चशोथम् ॥
विरेचनाभ्यङ्गनिरूहलेपाः ।
पक्वेषुचैवव्रणवच्चिकित्सा ॥
स्यान्मूत्रसेकःकफजंविपाट्य ।
विशोध्यसीव्येद्व्रणवच्चपक्वम् ॥

अर्थ—वातादि दोष अपने पूर्ण लक्षणों से युक्त होकर अंडकोश में जाकर वारवार अंडकोश को घटावढ़ा देते हैं । इसीको अंत्रवृद्धि कहते हैं । जव अंडकोश मूत्र से भरजाते हैं तव मूत्रजवृद्धि होती है यह कोमल होती है । जो सूजन मेदा के वढ़ने से होती है वह स्निग्ध और कठोर होती है ॥

इन वृद्धियों की अपक्क दशा में विरेचन, अभ्यंग, निरूहण और लेप करना आवश्यक है और पकने पर व्रण के समान चिकित्सा करनी चाहिये । कफजमूत्रवृद्धि में नश्तर लगाकर मूत्र को निकालदे और फिर शुद्ध कर के सीं देवै और जो पकजाय तौ व्रण के समान चिकित्सा करै ।

भगन्दरकावर्णन

क्रिम्यस्थिसूक्ष्मक्षणनव्यवाय ।
प्रवाहनान्युत्कुटनाश्वपृष्ठैः ॥
गुदस्यपाकेपिडकाभृशार्त्तिः ।
पक्वप्रभिन्नातुभगन्दरःस्यात् ॥
विरेचनंचैषणपाटनञ्च ।
विशुद्धमार्गेस्यचतैलदाहः ॥
स्यात्क्षारमूत्रेणसुपाचितेन ।

छिन्नस्यचास्यव्रणवच्चिकित्सा ॥

अर्थ—क्रिमि पड़ने से, हड्डी के कुछ क्षण न होने से, व्यवायसे जोर मारकर मल परित्याग करने से उकडू वैठने से घोड़े पर चढ़ने से, गुदा पर एक वड़ा फोड़ा होकर पकजाता है, इस में वड़ी वेदना होती है, जव यह पककर फटजाता है तव भगन्दर होजाता है। इस रोग में विरेचन, घाव में सलाई डालकर उसे शुद्ध करना, चीरना, उस के मार्ग के शुद्ध होनेपर क्षार और मूत्र के साथ सुपाचित तेल से दग्ध करना हित है। तथा छिन्न होनेपर व्रण के समान चिकित्सा करना चाहिये।

श्लीपदकावर्णन।

जंघासुपिण्डीप्रपदोपरिष्टात्।
स्याच्छ्लीपदंमांसकफास्रदोषात्।
सिराकफघ्नश्चविधिःसमग्र।
स्तत्रेष्यतेसर्षपलेपनंच ॥

अर्थ—जंघा, पिंडली और पांवसे ऊपर मांस, कफ और रक्त के दूषित होने से श्लीपद रोग होता है। इसपर सिरामोक्षण विधि, कफनाशक विधि तथा सरसोंका लेप हितकारी होता है।

जालगर्दभशोथकावर्णन।

मन्दास्तुपित्तप्रवलाप्रदिष्टा।
दोषाःसुतीव्रंतनुरक्तपाकं ॥
कुर्वन्तिशोथंज्वरतर्षयुक्तं।
विसर्पणंजालकगर्दभाख्यम्।
विलंघनंरक्तविमोक्षणञ्च।
विरूक्षणंकायविरेचनञ्च ॥
धात्रीप्रयोगान्शिशिरानप्रदेहान्।
कुर्य्यात्सदाजालकगर्दभस्य ॥
एवम्विधांश्चाप्यपरान्निशम्य।
शोथप्रकारानानिलादिलिङ्गैः ॥
शान्तिनयेद्दोषहरैर्यथास्व।
मालेपनच्छेदनभेददाहैः ॥

अर्थ—इसमें तीनों दोष होते हैं परन्तु पित्त प्रवल होता है। यह तीव्र पतली और रक्तपाक युक्त होती है। इसमें जो सूजन होती है उस में ज्वर और तृषा का वेग होता है। यह जालगर्दभ नामक विसर्प रोग होता है। इस में लंघन, रक्तमोक्षण विरूक्षण, कायविरेचन, आंवले का प्रयोग और शीतल लेप हितकारी होते हैं।

इसीतरह अन्य सूजनों में भी वातादि दोषों के लक्षणों की विवेचना करके यथा दोष आलेपन, भेदन, और दाहआदि कर्मों से शोथ को अच्छा करै।

आगन्तु शोफ का वर्णन।

प्रायोऽभिघातादनिलःसरक्तः।
शोथंसरागंप्रकरोतितत्र ॥
वीसर्पनुन्मारुतरक्तनुच्च।
कार्यंविषघ्नंविषजञ्चकर्म ॥

अर्थ—प्रायः चोट लगने से वातरक्त दूषित होकर लालरंगकी सूजन उत्पन्न करते हैं। इस सूजन में विसर्पनाशक और वातरक्त नाशक क्रिया करै तथा विषज शोथ में विषनाशक क्रिया करै।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

त्रिविधस्यदोषभेदात्सर्वार्द्धावयवगात्रभे

दाच । श्वयथोर्द्विविधस्यतथालिङ्गानि चिकित्सितंचोक्तम् ॥

अर्थ—इस अध्याय में भगवान् पुनर्वसुने तीन दोषों के भेद से तीन प्रकार की शोफ सर्वांग शोफ, अर्द्धांगशोफ, अवयवशोफ निजशोफ, आगन्तु शोफ इनके लक्षण और चिकित्सा वर्णन की हैं ।

इति श्री भाषाटीकान्वितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने श्वयथु चिकित्सितं नामसप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

———:*:———

अष्टादशोऽध्यायः ।

अथातउदरचिकित्सितंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय वोले कि अव हम उदर चिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

अग्निवेश का प्रश्न ।

सिद्धविद्याधराकीर्णेकैलासेनन्दनोपमे । तप्यमानंतपस्तीव्रंसाक्षाद्धर्म्ममिवस्थितम् ॥ आयुर्वेदविदांश्रेष्ठंभिषग्विद्याप्रवर्त्तकम् । पुनर्वसुंजितात्मानमग्निवेशोऽब्रवीद्वचः ॥ भगवन्नुदरैर्दुःखैर्दृश्यन्तेह्यर्दितानराः । शुष्कवक्त्राःकृशैर्गात्रैराध्मातोदरकुक्षयः ॥ प्रणष्टाग्निबलाहाराः सर्वचेष्टास्वनीश्वराः । दीनाःप्रतिक्रियाभावाज्जहतोऽसूननाथवत् ॥ तेषामायतनंसंख्यांप्राग्रुपाकृतिभेषजान । यथावत् ज्ञातुमिच्छामिगुरुणासम्यगीरितम् ॥ सर्वभूतहितायर्षिःशिष्येणैवंप्रचोदितः । सर्वभूतहितंवाक्यंव्याहर्तुमुपचक्रमे ॥

अर्थ—सिद्ध और विद्याधरों से सेवित नन्दन काननके सदृश कैलाश पर्वत में तीव्रतप में लीन, साक्षात् मूर्त्तिमान् धर्म स्वरूप, आयुर्वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठतम,आयुर्वेद प्रवर्त्तक और जितेन्द्रिय पुनर्वसु से अग्निवेशने यह प्रश्न किया कि हे भगवन्! प्रायः सब मनुष्य उदर रोगों से पीडित दिखाई देते हैं, जिनके मुखसूख गये हैं, गात्रकृश पडगये हैं, उदर और कूखफूल गये हैं जठराग्नि, वल और आहार थक गये हैं, सम्पूर्ण चेष्टाओं से हीन होगये हैं। ये दीन मनुष्य चिकित्सा के अभावसे अनाथ की तरह प्राणों का परित्याग करदेते हैं। इस से हे प्रभो ! में आप के मुख से उनका आयतन, संख्या, पूर्वरूप, आकृति और चिकित्सा यथावत् सुनना चाहताहूं ।

शिष्य से इसतरह प्रेरणा कियेजाने पर सम्पूर्ण प्राणियों के हित के निमित्त सम्पूर्ण प्राणियों के हितकारी वाक्यों के कहने में उद्यत हुए ।

उदरविषयमेंआत्रेयकावाक्य ।

अग्निदोषान्मनुष्याणांरोगसंघाःपृथग्विधाः । मलवृद्ध्याप्रवर्त्तन्तेविशेषेणोदराणितु ॥ मन्देऽग्नौमलिनैर्भुक्तैरपाकाद्दोषसञ्चयः । प्राणापानाग्निसंदूष्यमार्गान्नवद्धोत्तरोत्तरान ॥ त्वङ्मांसान्तरमागम्यकुक्षिमाध्मापयन्भृशम् । जनयत्युदरंतस्यहेतुंशृणुसलक्षणम् ॥

अर्थ—जठराग्नि के दोष से मनुष्यों के अनेक प्रकार के रोगों के समूह उत्पन्न होते हैं, तथा विशेष कर के मलकी वृद्धि से उदररोग होते हैं। मन्दाग्नि मे मलवर्द्धक भोजनों के अपाक से दोष संचित होकर प्राण और अपान वायुओं को दूषित कर के ऊपर और नीचे के मार्गों को रोक कर त्वचा और मांस के मध्य में स्थित होकर कुक्षिको अत्यन्त फुलादेते हैं और फिर उदर रोगों को पैदा करते हैं, उसके लक्षण सहित हेतुओं को सुनो।

उदररोग के हेतु।

अत्युष्णलवणक्षारविदाह्यम्लरसाशनात्। मिथ्यासंसर्ज्जनाद्रूक्षविरुद्धाशुचिभोजनात् ॥ प्लीहार्शोग्रहणीदोषकर्षणात्कर्मविभ्रमात्। क्लिष्टानामप्रतीकाराद्रौक्ष्याद्वेगविधारणात् ॥ स्रोतसांदूषणादामात्संक्षोभादतिपूरणात्। अर्शोऽबलिशकृद्रोधादन्त्रस्फुटनवेदनात् ॥ अतिसञ्चितदोषाणांपापंकर्म्मचकुर्वताम्। उदराण्युपजायन्तेमन्दाग्नीनांविशेषतः।

अर्थ—अत्यन्त उष्ण, नमकीन, खारी, विदाही और खट्टे रसों के भोजन करने से मिथ्या औरअसंसर्जनकर्मसे रूक्ष अशुचि और विरुद्धभोजनोंके करने से, प्लीहा, अर्श, ग्रहणी दोष इन के कारण शरीर के कृश होजाने से, स्वेदनादि कर्मों के यथावत् न होने से, क्लिष्ट रोगों की चिकित्सा न करने से, रूक्षता से, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों को रोकने से, स्रोतों के दूषित होने से, आम दोष से संक्षोभसे, अत्यन्त पेट भरकर भोजन करने से, अर्श की अवलि के कारण विष्ठा के रुकने से, आंतों में फटने की सी पीड़ा होने से, अति संचित दोष वाले मनुष्यों के पाप कर्मों के करने से, और विशेष करके मन्दाग्नि वालों के उदररोग उत्पन्न होते हैं।

उदररोग के पूर्वरूप।

क्षुन्नाशःस्वाद्वतिस्निग्धगुर्वन्नंपच्यतेचिरात् ॥ भुक्तंविदाह्यतेसर्वंजीर्णाजीर्णंनवेत्तिच। सहतेनातिसौहित्यंशोफरीषश्च पादयोः ॥ शश्वद्बलक्षयोऽल्पेऽपिव्यायामेश्वासमृच्छति। पुरीषनिचयेवृद्धिरुदावर्त्तकृताचरुक् ॥ वस्तिसन्धौरुगाध्मानंवर्द्धतेपाट्यतेऽपिच। आतन्यतेच जठरमापिलघ्वल्पभोजनात् ॥ राजीजन्म वलीनाशइतिलिङ्गंभविष्यताम्।

अर्थ—क्षुधा का नष्ट होना, मीठे, चिकने और भारी अन्नका देर में पचना; भुक्त अन्न से विदाह होना; जीर्ण वा अजीर्ण का ज्ञान न होना; पेट भर कर भोजन करने में असमर्थता; पांवों में कुछ सूजन होना; वल का निरन्तर नष्ट होना; थोडे परिश्रम में भी श्वास वढ़ना, मलकी वृद्धि; उदावर्त्तकृत वेदना; वस्तिसन्धि में वेदना; अफरा का वढ़ना; हलके और थोड़े भोजन से भी पेट का तन जाना, उदर में रेखाओं की उत्पत्ति और अवली का नाश, ये सब उदररोग के पूर्वरूप हैं।

उदररोग की साधारण उत्पत्ति।

रुद्ध्वास्वेदाम्बुवाहानिदोषाःस्रोतांसिसञ्चि

ताः । प्राणापानान्‌हिसंदूष्यजनयन्त्युद
रंनृणाम् ॥

अर्थ—स्वेदवाही और जलवाही स्रोतों को रोककर संचित दोष,प्राण और अपान वायुओं को दूषित कर के उदररोगों को उत्पन्न करते हैं ।

उदररोग के साधारण लक्षण ।

कुक्षेराध्मानमाटोपःशोफःपादकरस्यच ॥
मन्दोऽग्निःश्लक्ष्णगण्डत्वंकार्श्यञ्चोदर
लक्षणम् ।

अर्थ—कूख में आध्मान, अफरा, हाथ पांव में सूजन, मन्दाग्नि, गण्डस्थल में श्लक्ष्णता और देह में कृशता ये सब उदररोगों के लक्षण हैं ।

उदररोगों की संख्या ।

पृथग्दोषैःसमस्तैश्चप्लीहबद्धक्षतोदकैः ॥
संभवन्त्युदराण्यष्टतेषांलिंगंपृथक्शृणु ।

अर्थ—पृथक् पृथक् दोषों से, सम्पूर्ण दोषों से, प्लीहा, बद्ध, क्षत और उदक से आठ प्रकार के उदररोग उत्पन्न होते हैं। अब उन के पृथक् २ लक्षण सुनो ।

वात के कारण उदर रोग ।

रूक्षाल्पभोजनायासवेगोदावर्त्तकर्शनैः॥
वायुःप्रकुपितःकुक्षिहृद्वस्तिगुदमार्गगः ।
हत्वाग्निंकफमुद्धूयतेनरुद्धगतिस्तथा ॥
आचिनोत्युदरंजन्तोःत्वङ्मांसान्तरमा
श्रितः ।

अर्थ—रूक्ष और अल्पभोजन करने से आयास से, वेग धारण से उत्पन्न उदावर्त्त से, कृशता से कूख, हृदय, वस्ति और गुदामार्गों में विचरने वाली वायु कुपित होकर अग्निको मन्द कर के कफको बढा देती है । तब इस कफ से मार्ग रुकजाने के कारण त्वचा और मांसके बीच में स्थित होकर वायु उदर रोगों को उत्पन्न करती है ।

वायुजन्य उदररोगके लक्षण ।

तस्यरूपाणिकुक्षिपाणिपादवृषणश्वय
थूदरविपाटनमनियतौचवृद्धिह्रासौकु
क्षिपार्श्वशूलोदावर्त्तांगमर्दपर्वभेदशुष्क
कासकार्श्यदौर्बल्यारोचकविपाकाअधो
गुरुत्वंवातवर्चोमूत्रसङ्गःश्यावारुणत्वंनख
नयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरंतन्य
सितराजीशिरासन्ततमाहतमाध्माधृतिश
ब्दवद्भवति । वायुश्चोर्ध्वमधस्तिर्य्यक्स
चशूलशब्दश्चरत्येतद्वातोदरंविद्यात् ।

अर्थ—कूख, हाथ, पांव और अंडकोशों में सूजन, उदर में फटने की सी पीड़ा कभी उदरका बढना और कभी घटना, कुक्षिशूल, पसली में शूल, उदावर्त्त; अंगमर्द; संधियों में हड़फूटन; सूखी खांसी, कृशता; दुर्वलता; अरुचि, अविपाक; पेट के नीचे के भाग में भारापन; अधोवायु, विष्टा और मूत्र का रुकजाना; नख, नेत्र, मुख त्वचा, मूत्र और विष्टाका काला वा लाल होजाना; पतली और काली रेखाओं का उदरपर पडना; नीलीनसोंका चमकना; पेटको वजाने से फूलीहुई मशक के समान शब्दहोना, तथा वायुका ऊपर, नीचे, तिरछे शूल और शब्दयुक्त घूमना ये सब वातोदर के लक्षण हैं ॥

पित्तोदरका कारण ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णाग्न्यातपसेवनैः। विदाह्यध्यशनाजीर्णैश्चाशुपित्तं समाचितम् ॥ प्राप्यानिलकफौरुद्ध्वा मार्गमुन्मार्गमास्थितम्। निहत्यामाशये वह्निंजनयत्युदरंततः ॥

अर्थ—कडवे, खट्टे, नमकीन, अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण भोजनों के करने से; अग्नि और धूपका सेवन करने से, विदाही अन्न, अध्यशन और अजीर्णकर्त्ता अन्नके सेवन से पित्त इकट्ठा होकर कफ और वात से मिलजाता है और तव ये पित्त के मार्ग को रोकलेते हैं, इस मार्ग के रुकने से पित्त ऊपरको जाता है और आमाशयस्थ वन्हिका नाश होजाता है और तव पित्त के कारण उदररोग उत्पन्न होते हैं ॥

पित्तोदर के लक्षण ॥

तस्यरूपाणिदाहज्वरतृष्णामूर्च्छातीसारभ्रमाःकटुकास्यत्वंहरितहरिद्रत्वंनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरंनीलपीतहारिद्रहरितताम्रराजीसिरावनद्धंदह्यात् दूयतेधूप्यतेउष्मायतेस्विद्यतेक्लिद्यतेमृदूस्पर्शंक्षिप्रपाकञ्चभवत्येतत्पित्तोदरंविद्यात्।

अर्थ—दाह, ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, अतीसार, भ्रम, मुखमें कडवापन, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टाका हरा वा हलदी के समान वर्ण होजाना, पेट में नीली, पीली, हारिद्रवर्ण, हरी और तांवेकीसी रेखाओं का पडजाना, नसोंकाचमकना, तथा पेट में दाह, ऐंठा, धूमानिर्गम, ऊष्मा, स्वेदन, क्लेद, मृदुस्पर्श और शीघ्रपाक भी होता है, ये सव पित्तोदर के लक्षण हैं ॥

कफोदर के हेतु ॥

अव्यायामदिवास्वप्नस्वाद्वतिस्निग्धपिच्छिलैः। दधिदुग्धोदकानूपमांसैश्चात्युपसेवितैः ॥ क्रुद्धेनश्लेष्मणस्रोतःस्वाहतेष्वावृतोऽनिलः। तमेवपीडयन्कुर्यादुदरंबहिरन्तगः ॥

अर्थ—व्यायाम न करने से दिनमें सोने से, मीठे, अत्यन्ताचिकने, पिच्छिल भोजनों के करने से; दही, दूध, जल और आनूपमांसके अत्यन्त सेवन से कुपित कफ स्रोतः समूह में वायुको रोक देता है। तव वह वायु श्लेष्माको वाहर और भीतर पीडित कर के कफोदर को उत्पन्न करती है ॥

कफोदर के लक्षण ॥

तस्यरूपाणिगौरवारोचकाविपाकाङ्गमर्दसुप्तिपाणिपादमुष्कोरुशोफोत्क्लेशनिद्राकासश्वासाःशुक्लत्वञ्चनखेनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरंशुक्लराजीसिरासन्ततंगुरुस्तिमितंस्थिरंकठिनञ्चभवत्येतत्श्लेष्मोदरंविद्यात्।

अर्थ—भारापन, अरुचि, अविपाक, अङ्गमर्द,सुप्ति, हाथ, पांव और अंडकोषों में सूजन; उत्क्लेश, निद्रा, खांसी, श्वास; नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टाका श्वेतहोजाना पेटमें श्वेतधारियें औरनसोंका चमकना,पेटमें भारापन,स्तिमिता,स्थिरता और कठिनता ये सव लक्षण कफोदरके हैं ॥

सान्निपातिक उदर रोग के हेतु ॥

दुर्बलाग्नेरपथ्यामविरोधिगुरुभोजनात् । सभुक्तैश्चरजोरोमविण्मूत्रास्थिनखादिभिः विषैश्चमन्दैर्वाताद्याःकुपिताःसञ्चिताः त्रयः । शनैःकोष्ठेप्रकुर्वन्तोजनयन्त्युदरं नृणाम् ।

अर्थ—मन्दाग्नि वाला मनुष्य अहित कच्चा, विरोधी और भारी भोजन करै । अथवा रज, रोम, विष्टा, मूत्र, हड्डी और नख को भोजनके साथ खाजाय अथवा मन्दविषका सेवन करै तब उसके तीनोंदोष कुपित होकर शनैः २ कोष्ठमें इकट्ठे होकर उदररोगों को करते हैं ॥

सान्निपातिक उदर रोगके लक्षण ॥

सर्वेषामेवदोषाणांसमस्तानिलिङ्गान्युप लभ्यन्तेवर्णाश्चनखादिषूदरमपिनानाव र्णराजीसिरासन्ततंभवत्येतत्सन्निपातो दरंविद्यात्

अर्थ—त्रिदोषज उदररोगमें सम्पूर्ण दोषों के मिलेहुए लक्षण पाये जातेहैं । नख, न नयन, वदन, मूत्र और पुरीषमे सब प्रकार का रंग होता है । पेट में अनेक रंगों की धारियां और नसों का जाल होता है इन लक्षणों से युक्त उदरको सान्निपातोदरक हते हैं ।

प्लीहोदर के कारण ।

अशितस्यातिसंक्षोभाद्यानयानाभिचे ष्टितैः । अतिव्यवायभाराध्ववमनव्या धिकर्शनैः॥वामपार्श्वाश्रितःप्लीहाच्युतः स्थानात्प्रवर्द्धते । शोणितंवारसादिभ्यो विवृद्धन्तंविवर्द्धयेत् ॥

अर्थ—भोजन करके सवारी पर चढकर वा वैसेही कठिन चेष्टाओं के द्वारा संक्षोभ करने से; अत्यन्त व्यवाय, भारवहन, मार्गचलना, वमनादि व्याधियों से कर्षण, इन हेतुओं से वांये पसवाड़े में स्थित प्लीहा (ताप तिल्ली) अपने स्थान को छोड़कर बढने लगती है । अथवा रसादि से बढा हुआ रक्त प्लीहा को बढाने लगता है ।

प्लीहोदर की वृद्धि ।

इतितस्यप्लीहाकठिनोष्ठीलेवादौवर्द्धमानः कच्छपसंस्थानउपलभ्यतेसचोपेक्षितः क्रमेणकुक्षिंजठरमग्न्यधिष्ठानंचपरिक्षिप न्नुदरमभिनिवर्त्तयति ॥

अर्थ—इस तरह यह प्लीहा प्रथम पत्थर के समान कठोर होती है और फिर बढ़ते बढ़ते कछुएकी पीठ के समान आकृति धारण करलेती है । यदि इसकी चिकित्सा न की जाय तौ यह क्रम से कूख, जठर और अग्निस्थान को परिक्षिप्त कर के उदर रोग को उत्पन्न करती है ।

प्लीहोदर के लक्षण ।

दौर्बल्यारोचकाविपाकवर्चोमूत्रग्रतमकपि पासाङ्गमर्दच्छर्दिर्मूर्च्छाङ्गसादकासश्वास मृदुज्वरानाहाग्निनाशकार्श्यास्यवैरस्यप र्वभेदकोष्ठवातशूलान्यपिचोदरमरुणव र्णविवर्णंवानीलहरितहारिद्रराजिमद्भव त्येवमेवयकृदपिदक्षिणपार्श्वस्थंकुर्यात्तु

ल्यहेतुलिंगौषधत्वात्तस्यप्लीहजएवावरो
धइत्येतत्प्लीहोदरंविद्यात् ।

अर्थ—दुर्वलता, अरुचि, अविपाक, मूत्रग्रह, तमकश्वास, प्यास, अंगमर्द, वमन, मूर्च्छा, अंगग्लानि, खांसी, श्वास, मृदुज्वर आनाह, मन्दाग्नि, कृशता, मुख में बिरसता हड़फूटन, कोष्ठ में वात वेदना, पेटका लाल वर्ण वा विवर्णता, पेटपर नीली, हरी, हरिद्रर्ण रेखाओं का होना आदि उपद्रव होते हैं । इसी तरह दाहिनी कूख में जो यकृत् होती है वह भी ऊपर कहे हुए लक्षणों को प्रकट करती है । परन्तु यकृत् और प्लीहा हेतु, लक्षण और औषध एक सेही हैं । इससे प्लीहा से इसकी उत्पत्तिका अवरोध है । ये प्लीहोदरके लक्षण हैं ।

वद्धोदर के हेतु ।

पक्ष्मवालैःसहान्नेनभुक्तैर्वद्धायनेगुदे ।
उदावर्त्तैस्तथार्शोभिरन्त्रसंमूर्च्छनेनवा ॥
अपानोमार्गसंरोधाद्धत्वाग्निंकुपितोऽनलः।
वर्चःपित्तकफान्रुद्धाजनयत्युदरंततः ॥

अर्थ—पक्ष्म और बाल मिला हुआ भोजन कर लैने से उदावर्त्त से, अर्श से वा आतों के सुकड़ जाने से गुदाका मार्ग रुकजाने पर मार्ग संरोध के कारण कुपित हुई अपानवायु जठराग्नि को नष्ट करके पुरीष, पित्त और कफको रोकर उदर रोग को उत्पन्न करती है ।

बद्धगुदोदर के लक्षण ।

तस्यरूपाणितृष्णादाहज्वरमुखतालुशोषो
रुसादकासश्वासदौर्वल्यारोचकाविपाकव
र्चोमूत्रसंगाध्मानछर्दिःक्षवथुशिरोहृन्नाभि
गुदशूलान्यपिचोदरंमूढवातंस्थिरमरुणंनी
लराजिसिरावनद्धंमराजिकंवाप्रायोनाभ्यु
परिगोपुच्छवदभिनिवर्त्ततइत्येतद्बद्धगुदो
दरंविद्यात् ।

अर्थ—तृष्णा, दाह, ज्वर, मुखशोष, तालुशोष, ऊरूसाद, खांसी, श्वास, दुर्वलता, अरुचि, अविपाक, पुरीषवद्धता, मूत्रवद्धता, आध्मान, वमन, छींक, शिरःशूल, हृदशूल, नाभिशूल, गुदशूल, तथा अधोवात की विवन्धता, पेट में स्थिरता, लाल और नीलवर्णकी रेखा, नसाजालों को चमकना, अथवा रेखाओं का न होना, प्रायः नाभि के ऊपर गौकी पूंछ के आकारके सदृश होजाना, ये सव वद्धगुदोदर के लक्षण हैं ।

छिद्रोदर के हेतु ॥

शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्नसंयुतैः ।
भिद्येतान्त्रंयदाभुक्तैर्जृम्भयात्यशितस्यच॥
इयात्पाकरसस्तेभ्यःछिद्रेभ्यःप्रस्रवद्ब
हिः । पूरयन्गुदमतश्चजनयत्युदरंततः॥

अर्थ—भोजनके साथ में रेत, कंकर, तिनुका, काठ, हड्डी वा कांटे खालेनेसे जव आंते फटजाती हैं अथवा अत्यन्त भोजन करके जोर से जँभाई लैने के कारण जव आंते फटजाती हैं । तव उन छिद्रों में होकर पाक रस वाहर टपकने लगता है और गुदा और आंतों को पूरण करके उदररोगों को उत्पन्न करता है ॥

छिद्रोदरके लक्षण ॥

इतितदधोनाभ्याःप्रायोऽभिनिवर्त्तमानमुदकोदरस्यचयथाबलंचदोषाणांरूपाणि दर्शयत्यपिचातुरःसलोहितनीलपीतपिच्छिलकुणपगन्धामवर्च्चउपवेशतेहिक्का श्वासकासतृष्णाप्रमेहारोचकाविपाकदौर्बल्यपरीतश्च भवत्येतच्छिद्रोदरंविद्यात् ।

अर्थ—यह रोग प्रायः नाभी के नीचे उत्पन्न होता है और दोषों के वल के अनुसार इस में जलोदरके सेलक्षण दिखलाई पड़ते हैं और रोगी के लाल, नीला, पीला पिच्छिल,फुणुपगंधी और आम विष्टा निकलता है। तथा उसके हिचकी, श्वास, खांसी, तृष्णा, प्रमेह, अरुचि अविपाक,दुर्वलता ये उपद्रव होते हैं इसे ही छिद्रोदर वा दातो दर कहते हैं ॥

जलोदरके हेतु ।

स्नेहपीतस्यमन्दाग्नेःक्षीणस्यातिकृशस्यवा अत्यम्बुपानान्नष्टेऽग्नौमारुतःक्लोम्निसंस्थितः॥ स्रोतःसुरुद्धमार्गेषुकफश्चोदकमूर्च्छितः। वर्द्धयेतांतदेवाम्बुतत्स्थानादुदरायतौ॥

अर्थ—जिसने स्नेह पान कियाहै, जिसकी अग्नि मन्द है,जो क्षीण और अत्यन्त कृश है उसके अत्यन्त जल पीलेनेसे, अग्नि मंद पड़जाती है और वायु पिपासास्थानका आश्रय लेकर और जल से मूर्च्छित कफ स्रोतों के रुकेहुए मार्गोंमें ठहरकर दोनों कफ और वायु बढ़ने लगते हैं और वह जल वहांसे उदरमें आकर जलोदर उत्पन्न करता है।

जलोदरके लक्षण ॥

तस्यरूपाण्यनन्नकांक्षापिपासागुदस्रावशूलश्वासकासदौर्वल्यान्यपिचोदरंनानावर्णराजिशिरासन्ततमुदकपूर्णदृतिक्षोभसंस्पर्शंभवत्येतदुदकोदरंविद्यात् ।

अर्थ—अन्न में अनिच्छा, तृषा, गुदासे जलका स्राव, शूल, श्वास, खांसी, दुर्वलता, पेट में अनेक रंगकी रेखाओं का होना, नसोंका चमकना, तथा जलसे भरीहुई मशकके समान उदरका हाथ लगातेही थलर थलर करना, ये सब जलोदर के लक्षण हैं।

चिकित्साके योग्य उदररोग ॥

तत्राचिरोत्पन्नमनुदकप्राप्तमुदरंत्वरमाणःचिकित्सेदुपेक्षितानांह्येषांदोषाःस्वस्थानादपावृत्ताःअपरिपाकाद्द्रवीभूताःसन्धीन्स्रोतांसिचोपक्लेदयन्स्वेदश्चबाह्येषुस्रोतःसुप्रतिहतगतिस्तिर्य्यगवतिष्ठमानस्तदेवोदकमाप्याययति।

अर्थ—इनमें से जो उदररोग हालमें उत्पन्नहुआ है, उपद्रवरहित है, जिसमें जल नहीं उतरा है, उसकी शीघ्रही चिकित्सा करनी चाहिये। इसकी उपेक्षा करने से इनके दोष अपने २ स्थानों से चलित होकर, अन्न के अपरिपाक के कारण द्रवीभूत होकर सन्धि और स्रोतों को उपक्लेदित करदेते हैं और पसीना भी बाह्य स्रोतों की गति रुकजाने के कारण वाहर नहीं निकलने पाता है और तिर्य्यक रीति से वहीं ठ-

हरकर उसजलको बढाता है ॥

जलोत्पत्तिक्रम ॥

तत्रपिच्छोत्पत्तौमण्डलमुदरंगुरुस्तिमितमाकोठितमशब्दंमृदुस्पर्शमपगतराजीकमाक्रान्तंनाभ्यांसर्पतीति । ततोऽनन्तरंउदकप्रादुर्भावः । तस्यरूपाणि । कुक्षेरतिमात्रवृद्धिः शिरान्तर्द्धानगमनमुदकपूर्णदृतिसमक्षोभस्पर्शत्वञ्च ।

अर्थ—जब पेटमें पिच्छिलता उत्पन्नहोने लगतीहै तब उदरका आकार गोल होजाताहै, पेटमें भारापन, स्तिमिता, आकोठता, निःशब्दता, मृदुस्पर्शता, रेखाओंकी निवृत्ति, और नाभिके चारोंओर ऊंचापन होताजाताहै । इससे पीछे जल बढने लगताहै, उसके लक्षण ये हैं, यथा कूखका अत्यन्त बढजाना, नसों का छिपजाना, जल से भरीहुई मशक के समान हाथ लगाने से थलर २ होना ॥

जलोदर में उपद्रव ॥

तदातुरमुपद्रवाःस्पृशन्तिछर्द्यतीसारतमकतृष्णाश्वासकासहिक्कादौर्बल्यपार्श्वशूलारुचिस्वरभेदमूत्रसंगादयःतथाविधमचिकित्स्यंविद्यादिति ।

अर्थ—जब जल बढने लगता है तब वमन, अतीसार, तमकश्वास, तृष्णा, श्वास, खांसी, हिचकी, दुर्बलता, पार्श्वशूल, अरुचि, स्वरभेद, मूत्रसंग, आदि, उपद्रव, खडे होजाते हैं, तब यह रोग दुश्चिकित्स्य हो जाता है ॥

उदररोगोंकी कृच्छ्रता ॥

वातात्पित्तात्कफात्प्लीहःसन्निपातात्तथोदकात् ॥ परंपरंकृच्छ्रतरमुदाभिषगादिशेत् ॥

अर्थ—वातज से पित्तज, पित्तज से कफज, कफज से प्लीहज, प्लीहज से सन्निपातज, सन्निपातज से जलोदर ये सब उदररोग उत्तरोत्तर कृच्छ्रतर हैं ॥

उदररोगों से नष्ट होने का काल ।

पक्षाद्बद्धगुदंतूर्ध्वंसर्वंजातोदकंयथा । प्रायोभवत्यभावायछिद्रान्त्रंचोदरंनृणाम् ॥

अर्थ—बद्धगुदोदर, जलोदर और क्षतोदर ये तीन रोग मनुष्य को पन्द्रह दिन पीछे ही नष्ट करदेते हैं ।

त्याज्यात्याज्य उदररोग ।

शूनाक्षंकुटिलोपस्थमपाक्लिन्नतनुत्वचम् । बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणञ्चसंत्यजेत् ॥ श्वयथुःसर्वमर्मोत्थःश्वासोहिक्कारुचिःसतृट्मूर्च्छाछर्द्यतीसारोचनिहन्त्युदरिणंनरम् ॥ जन्मनैवोदरंसर्वंप्रायःकृच्छ्रतमंमतम् बलिनस्तदजाताम्बुयत्नसाध्यंनवोत्थितम् ॥

अर्थ—जिस उदररोगी की आंखों पर सूजन आजाती है, उपस्थेन्द्रिय टेढी पड़जातीहै, त्वचा क्लिन्न और पतली पड़जातीहै बल, रक्त, मांस और जठराग्नि क्षीण पड़जाती है, उसे त्याग देवै ।

मर्मस्थानों में सूजन, श्वास, हिचकी, अरुचि तृषा, मूर्च्छा, वमन, अतिसार आदि उपद्रवों के होने से उदररोगी मरजाता है।

उत्पन्न होतेही सब प्रकार के उदररोग प्रायः असाध्य होते हैं परन्तु इन में से वह रोग जो बलवान् पुरुष के नवीन ही हुआ

हो और जिस में जल उत्पन्न न हुआ हो वह बहुत यत्न करने से साध्य होजाता है।

अजातोदक उदर के लक्षण।

अशोथमरुणाभासंसशब्दंनातिभारिकम् सदागुड़गुड़ायान्तंशिराजालगवाक्षितम्। नाभिंविष्टभ्यपायौतुवेगंकृत्वाप्रणश्यति॥ हृन्नाभिवंक्षणकटीगुदप्रत्येकशूलिनः । कर्कशंमृजतेवातंनातिमन्देचपावके ॥ मूत्रेऽल्पेसंहतेविषिलालयाविरसेमुखे । अजातोदकमित्येतैर्लिङ्गैर्विज्ञायतत्त्वतः॥ उपक्रामेत्भिषग्दोषबलकालविशेषावित्।

अर्थ—जिस उदररोगी के पेट पर सूजन नहीं होती है, उदर का रंग लाल हो, शब्दयुक्तहो, पेट में बहुत भारापन न हो, सदा गुड़ गुड़ शब्द होता रहता हो,गवाक्ष के समान नसों के जाल से पूरित हो, वायु नाभि के पाससे गुड़ गुड़ाहट उत्पन्न कर के गुदा में वेग उत्पन्न करके नष्ट होजाती है, रोगी के हृदय, नाभि, वंक्षण, कमर और गुदा प्रत्येक स्थान में शूल होता हो कर्कश शब्द करती हुई वायु निकलै। अग्नि अति मन्द न हो, पेशाव थोड़ा हो, विष्टा कमहो, मुखसे लारटपकती हो, मुख का जायका विगड़ गया हो। ये सब लक्षण उस उदररोग के हैं जिस में जल उत्पन्न न हुआ हो। इन सब लक्षणों का विचार करके दोष, बल और काल के अनुसार उदररोगों की चिकित्सा करै।

वातोदर में चिकित्साक्रम।

वातोदरेबलवतःपूर्वंस्नेहैरुपाचरेत् ॥ स्निग्धायस्वेदितांगायदद्यात्स्नेहविरेचनम्। हृतेदोषेपरिम्लानंवेष्टयेद्वाससोदरम् ॥ तथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत्पुनः। दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतसांसन्निरोध नात् ॥ सम्भवन्त्युदराण्येवमतोनित्यं विशोधयेत्। शुद्धंसंसृज्यचक्षीरंबलार्थं पाययेत्तुतम् ॥ प्रागुत्क्लेशान्निवर्त्यं श्चवलेलब्धेक्रमात्पयः। यूषैरसैर्वामन्दाम्ललवणैरोधितानलम् ॥ सोदावर्त्तेपुनः स्निग्धंस्विन्नमास्थापयेन्नरम् ॥

अर्थ—वातोदर में वलवान् मनुष्यकी प्रथम स्नेहनकर्म द्वारा चिकित्सा करै। स्नेहन और स्वेदन के पीछे स्नेह विरेचनका प्रयोग हित है। इस तरह दोषों के दूर होने पर जब म्लानता उत्पन्न होजाय तव उदर पर वस्त्र लपेटना चाहिये, ऐसा करने से वायु प्रवेश होने का स्थान न पाकर फिर पेट को नहीं फुलासकती है। दोषों के अधिक इकट्ठे होजाने से और स्रोतोंके रुक जानेही से उदररोग हुआ करते हैं इस से उदररोग में नित्यप्रति विरेचन देना चाहिये। जब रोगी शुद्ध होजाय तव पेयादि विरेचन के उत्तरकर्मों का साधन कराके वल वडाने के निमित्त दुग्धपान करावै। वल आजाने पर दोषों के उत्क्लेश होने से पहिलेही क्रम से दुग्धका त्याग करादेवै, अग्निका रोध होजानें पर और उदावर्त्त में फिर स्नेहन करके किंचित् नमक और खटाई डालकर यूष वा मांस रस की आस्थापन वस्ति देवै।

स्फुरणाक्षेपसन्ध्यास्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्तिषु । दीप्ताग्निंवद्धविड्वातंरूक्षमप्यनुवासयेत् ॥ तीक्ष्णाधोभागयुक्तःस्यान्निरूहो दाशमूलिकः । वातघ्नाम्लमृतैरण्डाति लतैलानुवासनः ॥

अर्थ—फुरफुरी वा आक्षेप (हाथ पांव फेंकना) होंनै सें तथा सींध, अस्थि,पसली पीठ और त्रिकमें वेदना होने से उस दीप्ताग्नि पुरुष को जिसका विष्टा वन्द होगया हो और जो रूक्षभी हो उसे अनुवासन वस्ति देवै ॥

तीक्ष्ण विरेचनकर्त्ता औषधियों को मिला कर दशमूलके क्काथ से निरूहणवस्ति देवै। तथा वातनाशक अम्ल औषधियों को संयुक्त करके अरंडी के तेल की अनुवासन वस्ति देवै ।

विरेचन के अयोग्य व्यक्ति ।

अविरेच्यंतुयंविद्याद्दुर्वलंस्थविरंशिशुम् ॥ सुकुमारंप्रकृत्याल्पदोषंवातोल्वणानलम् । तंभिषक्शमनैःसर्पिर्यूषमांसरसौदनैः । वस्त्यभ्यङ्गानुवास्यैश्चक्षीरैश्चोपाचरेद्बुधः

अर्थ—दुर्वल मनुष्य, बुड्ढा, बालक, सुकुमार, प्रकृति से अल्पदोष युक्त व्यक्ति तथा वातोल्वण मनुष्यको विरेचन देना ठीक नहीं है । ऐसे रोगीका घृत, यूष, मांसरस और ओदन के संयोग से संशमन औषधियां देवै, तथा वस्ति, अभ्यंग, अनुवासन और दुग्धद्वारा चिकित्सा करै ॥

पित्तोदर में चिकित्साक्रम ॥

पित्तोदरेतुवलिनंपूर्वमेवविरेचयेत् । दुर्वलन्त्वनुवास्यादौशोधयेत्क्षीरवस्तिना ॥ संजातवलकायाग्निंपुनःस्निग्धंविरेचयेत् । पयसासत्रिवृत्कल्केनोरुवूकशृतेन वा ॥ सातलात्रायमाणाभ्यांशृतेनारग्वधेनवा । सकफेवासमूत्रेणसवातेतिक्तसर्पिषा ॥ पुनःक्षीरप्रयोगंचवस्तिकर्मविरेचनम् । क्रमेणध्रुवमातिष्ठन्युक्तःपित्तोदरंजयेत् ॥

अर्थ—पित्तोदर में वलवान् रोगी को प्रथम विरेचन देवै । और जो रोगी दुर्वल हो तौ उसे प्रथम अनुवासन देकर क्षीरवास्तिद्वारा शुद्धकरै । इस तरह वल और जठराग्नि के वढने पर स्नेहनकर्म करने के पश्चात् विरेचन देवै विरेचन देने के द्रव्य ये हैं, यथा दूध और निसोथ का कल्क, अंडी के बीज डालकर औटायाहुआ दूध, अथवा सातला और त्रायमाणा डालकर औटायाहुआ दूध अथवा अमलतास डालकर औटायाहुआ दूध देवै । कफानुवन्धी पित्तोदर में गोमूत्र मिलाकर दूध पानकरावै और वातानुवन्धी पित्तोदर में तिक्तक घृतद्वारा विरेचन देवै । इसतरह दूधका प्रयोग करने के पीछे वस्तिकर्म करके विरेचन दैने से रोगीकामल ठीक रहता है और पित्तोदरभी शीघ्रही शान्त जोजाता है ॥

कफोदर में चिकित्साक्रम ॥

स्निग्धंस्विन्नंविशुद्धंतुकफोदरिणमातुरम् । संसर्जयेत्कटुक्षारयुक्तैरन्नैःकफापहैः ॥ गोमूत्रारिष्टपानैश्चचूर्णायस्कृतिभिस्तथा ।

सक्षारैस्तैलपानैश्चशमयेत्तुकफोदरम् ॥

अर्थ—कफोदर रोगी को स्नेहन, स्वेदन और संशोधन देकर कफनाशक कटु और क्षार युक्त अन्नका पथ्यविधान करै । तथा गोमूत्र, अरिष्ट, लोहचूर्ण, क्षार, तैलपान आदि से कफोदर को दूर करै ॥

सन्निपातोदर में चिकित्साक्रम ॥

सन्निपातोदरेसर्वायथोक्ताःकारयेत्क्रियाः ॥ सोपद्रवन्तुनिर्वृत्तंप्रत्याख्येयंविजानता ॥

अर्थ—सन्निपातोदर में पूर्वोक्त सम्पूर्ण क्रियाओं का करना उचित है । यदि इस उदररोग में उपद्रव हों तौ चिकित्सा करना त्याग देवै ॥

प्लीहोदर में चिकित्साक्रम ॥

उदावर्त्तरुगानाहैर्दाहमोहतृषाज्वरैः ॥ गौरवारुचिकाठिन्यैःचानिलादीन्यथाक्रमम् । लिंगैःप्लीहोदरान्दृष्ट्वारक्तंवापि स्वलक्षणैः ॥ चिकित्सांसंप्रकुर्वीतयथा दोषंयथाबलं ॥

अर्थ—प्लीहोदर में उदावर्त्त, शूल और आनाह के होने पर वातज उदर की चिकित्सा करै । दाह, मोह, तृषा और ज्वर होनेपर पित्तकी और भारापन, अरुचि और कठिनता के होनेपर कफज उदर की चिकित्सा कर्त्तव्य है, और यदि रक्तज प्लीहा के लक्षण दिखाई दें तौ रक्त की चिकित्सा करै । इसमें दोष और बलपर अवश्य ध्यान दैना उचित है ॥

उदररोग में कर्त्तव्य कर्म ॥

स्नेहंस्वेदंविरेकञ्चनिरूहमनुवासनम् । समीक्ष्यकारयेद्बाहौवामेवाव्यधयेत्शिराम् ॥ षट्पलंवापिवेत्सर्पिःपिप्पलीर्वा प्रयोजयेत् । सगुडामभयांवापिक्षारारिष्टगणांस्तथा ॥

अर्थ—जैसा उदररोगहो उस के अनुसारही स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, निरूहण और अनुवासनादि कर्म करावै अथवा वाम वाहु में रगको वेधकर रुधिर निकाल दे । अथवा षट्पलघृत, वा पिप्पल्यादि रसायन, वागुड और हरड़ वा क्षारों और अरिष्टों का दैना उचित है ।

उदररोग में प्रयोग ॥

पिप्पलीनागरंदन्तीचित्रकंद्विगुणाभयम् विडङ्गांशयुतंचूर्णमेतदुष्णाम्बुनापिबेत् ॥ विडङ्गंचित्रकंशुंठींसघृतांसैन्धवंवचाम् । दग्ध्वाकपालेपयसागुल्मप्लीहापहंभवेत् ॥ रोहीतकलतानान्तुकाण्डिकाःसाभयाजले । मूत्रेवाशृतमेतच्चसप्तरात्रस्थितंपिबेत् कामलागुल्ममेहार्शःप्लीहसर्वोदरक्रिमीन् । तद्धन्याज्जाङ्गलरसैर्जीर्णेस्याच्चात्भोजनम् ॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, दंती और चीताये चारों समानभाग, दोभागहरड, चतुर्थांश वायविडंग इन सबका चूर्ण बनाकर गरम-जलके के साथ फांकना चाहिये ॥

वायविडंग, चीता, सोंठ, घृत, सेंधानमक और वच इन को एक कुलड़े में भरकर फूंकले फिर इनका चूर्ण बनाकर दूध के

साथ सेवन करै तौ गुल्मरोग और प्लीहा दूर होजाते हैं।

रोहेड़ाकी शाखा के अग्रभागों को लेकर और हरड़ को कूटकर जव वा गोमूत्र में औटाकर छानले और सातरात तक धरा रहने दे। तदुपरांत इसका सेवन करने से कामला, गुल्म, मेह, अर्श, प्लीहा, सब प्रकार के उदररोग और क्रिमि नष्ट होजाते हैं। इस औषध के पचने पर जांगल जीवों के मांस रसके साथ भोजन करै।

रोहीतक घृत।

रोहीतकत्वचःकृत्वापलानांपञ्चविंशतिम्। कोलद्विप्रस्थसंयुक्तंकषायमुपकल्पयेत् ॥ पालिकैःपञ्चकोलैस्तुतैःसर्वैश्चापितुल्यया। रोहीतकत्वचापिष्टैःघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ प्लीहातिवृद्धिंशमयत्येतदाशुप्रयोजितम्। तथागुल्मोदरश्वासक्रिमिपाण्डुत्वकामलाः

अर्थ—रोहेड़े की छाल पच्चीसपल, कोल दो प्रस्थ इन दोनों को अठगुने जल में चढादे और चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले। फिर इस में पंचकोलोक्त द्रव्य एक एक पल और रोहेडे की छाल पांच पल इनका चूर्ण करके उस में डाल दे और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै घृत शेष रहने पर उतार लेवै यह घृत अत्यन्त बढ़ी हुई प्लीहा को शीघ्रही शान्त करदेता है, तथा गुल्मरोग, उदररोग, श्वास, क्रिमिरोग, पाण्डुरोग और कामला इन को भी दूर करदेता है।

अन्यप्रयोग।

अग्निकर्मचकुर्वीतभिषग्वातकफोल्वणे। पैत्तिकेजीवनीयानिसर्पींषिसीरवस्तयः। रक्तावसेकः संशुद्धिःक्षीरपानंचशस्यते॥ यूषैर्मांसरसैश्चापिदीपनीयसमायुतैः। लघून्यन्नानिसंसृज्यभजेत्प्लीहोदरीनरः

अर्थ—वात और कफकी अधिकता में अग्निकर्म करना हित है। पैत्तिक उदर में जीवनीय गणोक्त द्रव्य, तिक्तादि घृत क्षीर वस्ति, रक्तमोक्षण, संशोधन और दुग्धपान हितकर होते हैं प्लीहोदर में दीपनीय औषधियों से सिद्ध यूष और मांसरस के साथ लघु अन्नका भोजन हित है।

बद्धोदर में चिकित्सा।

स्विन्नायबद्धोदारिणेमूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम्। सतैललवणंदद्यान्निरूहंसानुवासनम् ॥ परिस्रंसीनिचान्नानितीक्ष्णञ्चैवविरेचनम्। उदावर्त्तहरंकर्मकार्य्यंवातघ्नमेवच ॥

अर्थ—बद्धोदररोगी को स्वेदन देकर तीक्ष्ण औषधियों से युक्त गोमूत्र, तेल और सेंधानमक मिलाकर निरूहण और अनुवासन वस्ति देवै। तथा विरेचनकर्त्ता अन्न और तीक्ष्ण विरेचन देवै, उदावर्त्तनाशक कर्म तथा वातनाशक क्रिया का भी प्रयोग करै।

छिद्रोदर में कर्त्तव्यकर्म।

छिद्रोदरमृतेस्वेदात्श्लेष्मोदरवदाचरेत्। जातंजातंजलंस्नाव्यमेवंतद्यापयेद्भिषक्॥ तृष्णाकासज्वरार्त्तंतुक्षीणमांसाग्निभोजनम्। वर्जयेत्श्वासिनंतद्वत्शूलिनंदुर्बलेन्द्रियम्॥

अर्थ—छिद्रोदर में स्वेदनकर्म के अति-

रिक्त कफोदर के सदृश शेष चिकित्सा करनी चाहिये। जितना जितना जल पेट में उत्पन्न होता जाय उतना उतनाही निकाल देना उचित है । इस तरह इस रोग को याप्य करता रहै । जिस छिद्रोदर में तृष्णा,खांसी ज्वर, क्षीरमांस, क्षीणाग्नि, क्षीण भोजन श्वास, शूल और दुर्बलेन्द्रियता आदि उपद्रव होते हैं वह दुश्चिकित्स्य होता है।

जलोदर में चिकित्सा ।

अपांदोषेग्रहण्यादौविदध्यादुदकोदरे । मूत्रयुक्तानितीक्ष्णानिविविधक्षारवन्तिच॥ दीपनीयैःकफघ्नैश्चतमाहारैरुपाचरेत् । द्रवेभ्यश्चोदकादिभ्योनियच्छेदनुपूर्वशः॥

अर्थ—जलोदर में ग्रहणी आदि में जल का दोष होने पर गोमूत्र मिश्रित तीक्ष्णक्षार युक्त औषधियों का प्रयोग करै । दीपनीय औषधियों से संयुक्त कफनाशक आहार का सेवन करावै । इस रोग में जल आदि द्रव पदार्थों का सेवन करना बन्द रक्खै ॥

उदररोगोंमें साधारणविधि ।

सर्वमेवोदरंप्रायोदोषसंघातजंमतम् । तस्मात्त्रिदोषशमनींक्रियांसर्वेषुकारयेत् ॥ दोषैःकुक्षौहिसंपूर्णेवह्निर्मन्दत्वमृच्छति। तस्माद्भोज्यानियोज्यानिदीपनानिलघूनिच ॥ रक्तशालीन्यवान्मुद्गान्जांगलांश्चमृगद्विजान् । पयोमूत्रासवारिष्टान्मधुशीधूंस्तथासुरान् । यवागूमोदनंवापियूषैरद्याद्रसैरपि ॥ मन्दाम्लस्नेहकटुभिः पञ्चमूलोपसाधितैः ॥

अर्थ प्रायः सम्पूर्ण उदररोग त्रिदोष से उत्पन्न होते हैं इससे [illegible] नी क्रिया करना उचित है । दोषोंके कुक्षि में भरजाने से अग्नि मन्द पड़जाती है इस, लिये अग्निसंदीपन और लघु भोजन कराना चाहिये, यथा रक्तशालि, जौ, मूंग, जांगल पशुपक्षियों का मांस, दूध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु, शीधु, सुरा देवै

थोड़ीसी खटाई, चिकनाई और कटुद्रव्य डालकर लघुपंचमूल से सिद्ध कियेहुये यूष और मांसरस के साथ यवागू और भातका सेवन करावै ।

उदरमेंवर्जितकर्म

औदकानूपजंमांसंशाकंपिष्टकृतंतिलान्॥ व्यायामाध्वदिवास्वप्नंयानयानञ्चवर्ज्जयेत् । तथोष्णलवणाम्लानिविदाहीनिगुरूणिच । नाद्यादन्नानिजठरी तोयपानंचवर्ज्जयेत् ॥

अर्थ—औदक और आनूपजीवोंका मांस शाक, पिष्टपदार्थ, तिलकेपदार्थ, व्यायाम, भ्रमण, दिवानिद्रा, सवारीपर चढ़करचलना इन कर्मों का त्याग देना उचित है । तथा उष्ण, नमकीन, खट्टे, विदाही, भारीअन्नों का सेवन और जलपान भी त्याग देना चाहिये ।

उदरमेंतक्रप्रयोग ।

नापिसान्द्रंमतंपानेस्वादुतक्रमपेलवम् । त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तंतुनिचयोदरी ॥ वातोदरीपिवेत्तक्रंपिप्पलीलवणान्वितम् । शर्करामारिचोपेतंस्वादुपित्तोदरीपिवेत् ॥ यवानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं

[illegible]युतंतक्रंव्यक्ताम्लं नातिपलवम् । मधुतैलवचाशुंठीशताह्वा कुष्ठसैन्धवैः ॥ युक्तंप्लीहोदरीजातंसव्यो षन्तुदकोदरी । बद्धोदरीतुहवुषायमान्य जाजीसैन्धवैः ॥ पिबेच्छिद्रोदरीतक्रंपि प्पलीक्षौद्रसंयुतम् ॥ गौरवारोचकार्त्ता नांसमन्दाग्न्यतिसारिणाम् । तक्रंवात कफार्त्तानांअमृतत्वायकल्पते ।

अर्थ—सब प्रकारके उदररोगोंमें त्रिकुटा, क्षार और नमक डालकर ऐसा मठा पीना चाहिये जो स्वादु और स्निग्ध हो परन्तु वहुत गाढ़ा न हो । वातोदरमें पीपल और नमक डालकर मठा पीवै । पित्तोदर में शर्करा, कालीमिरच, डालकर मीठा मठापीवै। कफोदर में अजवायन, सेंधानमक कालाजीरा, और त्रिकुटा डालकर तक्रपान हित है । परन्तु इस तक्र में शहत और तेज खटाई डाललेवै । यह अत्यन्त गाढ़ा भी न होना चाहिये । प्लीहोदर में शहत, तेल, वच, सोंठ, सोंफ, कूठ और सेंधानमक डालकर तक्रका पान करै । जलोदरमें त्रिकुटा डालकर तक्र पान करै । बद्धोदर में हाऊ वेर, अजवायन, कालाजीरा और सेंधानमक डालकर तक्रपान करै । छिद्रोदर में पीपल और शहत डालकर तक्रपान करै ।

जो मनुष्य गौरव, अरुचि, मन्दाग्नि, अतिसार और वातकफ रोगोंसे पीड़ित हैं उनको मठा अमृत के समान गुणकारी होता है ।

उदरमेंदुग्धप्रयोग

दाहाशोकार्त्तितृष्णमूर्च्छापीड़ितेकारभंपयः शुद्धानांक्षामदेहानांगव्यंछागंसमाहिषम्॥

अर्थ—दाह, शोक, आर्त्ति तृषा और मूर्च्छा इन रोगोंके होने पर हथिनीका दूध पान करावै । तथा संशोधन से जो क्षीण देह होगये हैं उनको गौ, वकरी और भैंस का दूध पान करावै ॥

उदरपर लेपनादिप्रयोग ।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः ॥ साश्वगन्धैःसगोमूत्रैःप्रदिह्याद्दुदरंसमैः ॥ वृश्चिकालींवचांकुष्ठंपञ्चमूलांपुनर्नवाम्॥ भूतीकांनागरंधान्यंजलेपक्वावसेचयेत् ॥ पलाशंकतृणंरास्नातद्वदपक्त्वावसेचयेत् मूत्राण्यष्टावुदरिणांसेकेपानेचयोजयेत् ॥

अर्थ—देवदारु, ढाक, आक, गजपीपल संहजना और असगंध इन को गोमूत्र में पीसकर पेटपर लेप करै । तथा विछुवन, वच, कूठ, पंचमूल, सांठ अजवायन, सोंठ और धनियां इन को जल में औटाकर उस जल से पेट पर तराड़ा देवै । अथवा ढाक, कत्तृण और रास्ना इन को जल में औटाकर इस जलसे तराड़ा देवै । आठों प्रकार के मूत्र उदररोग में परिषेक और पान में प्रयुक्त किये जाते हैं ।

रूक्षाणांबहुवातानांतथासंशोधनार्थिनाम् स्नेहनीयानिसर्पींषिजठरघ्नानिवक्ष्यते ॥

अर्थ—रूक्ष, वहुवातपीडित और संशोधन के योग्य मनुष्यों के निमित्त उदररोग

नाशक स्नेहनीय घृतों का वर्णन किया जाता है।

पिप्पल्यादि घृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः। सक्षारैरर्द्धपलिकैस्तैःप्रस्थंसर्पिषःपचेत् ॥ कल्कैर्द्विपञ्चमूलस्यतुलार्द्धस्यरसेनच। दधिमण्डाढकोपेतंतत्सर्पिर्जठरापहत् ॥ श्वयथुंवातविष्टम्भंगुल्मार्शांसिचनाशयेत्

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार इन में से प्रत्येक आधे २ पल लेवै, घृत एक प्रस्थ, दशमूल का क्वाथ आधीतुला और दहीका तोड़ एक तुला इन सबको पकाकर घृत प्रस्तुत करै इस घृत के सेवन करने से उदररोग, सूजन, वात विष्टम्भ, गुल्म और अर्श दूर होजाते हैं।

नागरादिघृत।

नागरत्रिफलाप्रस्थंघृतंतैलात्तथाढकम् ॥ मस्तुनःसाधयित्वैतत्पिबेत्सर्वोदरापहम् ॥ कफमारुतसम्भूतेगुल्मेचैतत्प्रशस्यते।

अर्थ—सोंठ और त्रिफला एक प्रस्थ घी और तेल एक आढक इन को दही के दूने तोड़में पकावै। यह घृत सम्पूर्ण प्रकारके उदररोग, तथा कफवात से उत्पन्न गुल्मरोगों में हित है।

चित्रकघृत।

चतुर्गुणेजलेमूत्रेद्विगुणेचित्रकात्पले ॥ कल्केसिद्धंघृतप्रस्थंसक्षारंजठरीपिबेत्।

अर्थ—चीता एक पल, घृत एक प्रस्थ, जवाखार एक पल, गोमूत्र दो प्रस्थ और जल चार प्रस्थ इन का[redacted] घृत जठररोग में हित है।

यवादि घृत।

यवकोलकुलत्थानांपञ्चमूलरसेनच। सुरासौवीरकाभ्यांचसिद्धंवापिपिबेद्घृतम्।

अर्थ—जौ, बेर, कुलथी इनका कल्क पञ्चमूल का क्वाथ सुरा और सौवीर इन के साथ घृत को पकाकर सेवन करै।

एभिःस्निग्धायसंजातेबलेशान्तेचमारुते॥ स्रस्तेदोषाशयेदद्यात्कल्पदृष्टंविरेचनम्।

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए घृतों से जब रोगी स्निग्ध होजाय, उसमें बल बढ़जाय और वातभी शान्त होजाय तब दोषाशय की शुद्धिके निमित्त कल्पस्थानमें कहा हुआ विरेचन देवै।

पटोलादि चूर्ण।

पटोलमूलरजनीविडङ्गत्रिफलात्वचम्। काम्पिल्यकोनीलिनीचत्रिवृताचेतिचूर्णयेत् ॥ षड़ाद्याःकार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्चद्वित्रिचतुर्गुणान्। कृत्वाचूर्णमतोमुष्टिंगवांमूत्रेणवापिबेत् ॥ विरिक्तोमृदुभुञ्जीतभोजनंजाङ्गलैरसैः। मण्डपेयाञ्चपीत्वावासब्योषंषड़हंपयः। शृतंपिबेत्ततःचूर्णपिबेदेवपुनःपुनः ॥ हन्तिसर्वोदराण्येतच्चूर्णजातोदकान्यपि ॥ कामलांपाण्डुरोगञ्चश्वयथुंचापकर्षति ॥

अर्थ—परवलकी जड़, हलदी, वायविडंग त्रिफलाकी छाल, प्रत्येक एक एक कर्ष; कबीला दोकर्ष, नीलनी तीन कर्ष, और

इन सब का चूर्ण बना लेवे। इस में से एक पल चूर्ण गोमूत्र के साथ सेवन करै। दस्त होने के पीछे जांगल मांसरस के साथ मृदु भोजन करै अथवा मण्ड पेया को पीकर त्रिकुटा डाला हुआ दूध छः दिवस तक पान करै। इसी तरह फिर चूर्ण का सेवन करके फिर दुग्धादिका सेवन करै। यह चूर्ण उन उदररोगों को भी दूर कर देता है जिन में जलकी उत्पत्ति हो आई है, तथा कामला, पाण्डुरोग और सूजनकोभी दूर कर देता है।

गवाक्ष्यादि चूर्ण।

गवाक्षीं शंखिनीं दन्तीं तिल्वकस्यत्वचं वचाम्। पिवेद्द्राक्षाम्बुगोमूत्रकोलकर्कन्धुशीधुभिः॥

अर्थ—इन्द्रायण, शंखापुष्पी, दन्ती, लोध, वच इनके चूर्ण को दाखके क्वाथ के साथ, वा गोमूत्रके साथ वा कोल वा कर्कन्धु के क्वाथ के साथ वा शीधुके साथ पान करै।

नाराच चूर्ण।

यमानीहवुषाधान्यंत्रिफलाचोपकुञ्चिका। करवीपिप्पलीमूलमजगंधाशटीवचा॥ शताह्वाजीरकंव्योषंस्वर्णक्षीरीसचित्रका॥ द्वौक्षारौपौष्करंमूलंकुष्ठंलवणपञ्चकम्। विडङ्गञ्चसमांशानिदन्त्याभागास्त्रयस्तथा॥ त्रिवृद्विशालयोर्द्वौद्वौसातलास्याच्चतुर्गुणा। एतन्नाराचकंनाम चूर्णंरोगगणापहम्॥ नैतत्प्राप्यातिवर्त्तन्तेरोगाविष्णुमिवासुराः। तक्रेणोदरिभिःपेयंगुल्मिभिर्बदराम्बुना॥ आनद्धवातेसुरयावातरोगेप्रसन्नया। दधिमण्डेनविट्संघेदाडिमाम्बुभिरर्शसैः॥ परिकर्त्तेसवृक्षाम्लमुष्णाम्बुभिरजीर्णके। भगन्दरेपाण्डुरोगेश्वासेकासेगलग्रहे॥ हृद्रोगेग्रहणीदोषेकुष्ठेमन्देऽनलेज्वरे। दंष्ट्राविषेमूलविषेसगरेकृत्रिमेविषे। यथार्हंस्निग्धकोष्ठेनपेयमेतद्विरेचनम्॥

अर्थ—अजवायन, हाऊबेर, धनियां, त्रिफला, कालाजीरा, छोटा कालाजीरा, पीपलामूल, अजगन्ध, कचूर, वच, सौंफ, जीरा, त्रिकुटा, स्वर्णक्षीरी, चीता, दोनों प्रकारके क्षार, पुहकरमूल, कूठ, पांचों नमक और वायविडंग एक एक भाग, दंती तीन भाग, निसोथ और इन्द्रायण दो २ भाग, सातलाचारभाग। इन सबको कूटपीसकर चूर्ण बना लेवै। इस चूर्णका नाम नाराच-चूर्ण है यह सम्पूर्ण रोग समूहों का नाश करनेवाला है। इस चूर्णका सेवन करनेके पश्चात् रोग ऐसे नहीं बढनेपाते हैं। जैसे विष्णु के साम्हने असुर गण सिर नहीं उठा सक्ते हैं। इसचूर्ण के भिन्न२ अनुपान येहैं, यथा इस चूर्णको उदररोग में तक्रके साथ, गुल्मरोग में वेरके क्वाथ के साथ; आनाहमें सुरा के साथ; वातरोग में प्रसन्ना के साथ; मलकीवद्धता में दधिमण्ड के साथ; अर्श में अनार के क्वाथ के साथ; परिकर्त्तिका (ऐंठा) में वृक्षाम्लके क्वाथके साथ; अजीर्ण में गरम जलके साथ सेवन करना चाहिये। तथा इन रोगों के अतिरिक्त यह चूर्ण पाण्डुरोग, श्वास, खांसी, गलग्रह, हृद्रोग,

ग्रहणीदोष, कुष्ठ, मन्दाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविष (दांतकाविष), मूलविष, विषरोग और कृत्रिमविष को दूर करदेता है । यह विरेचनकर्त्ता औषध रोगी के कोष्ठ को स्निग्ध करने के पीछे दीजाती है ॥

ह्वुषादिचूर्ण ॥

ह्वुषाकाञ्चनाक्षीरीत्रिफलाकटुरोहिणी। नीलिनीत्रायमाणाचसातलात्रिवृतावचा सैन्धवंकाललवणंपिप्पलीचेतिचूर्णयेत्। दाडिमत्रिफलामांसरससमूत्रसुखोदकः ॥ पेयोऽयंसर्वगुल्मेषुप्लीह्निसर्वोदरेषुच । कुष्ठेश्वित्रेसरुजकेसवातेविषमाग्निषु ॥ शोथार्शःपाण्डुरोगेषुकामलासुहलीमके । वातंपित्तंकफश्चाशुविरेकात्संप्रसाधयेत्॥

अर्थ—हाऊवेर, स्वर्णक्षीरी, त्रिफला, कुटकी, नीलिनी, त्रायमाणा, सातला, निसोथ, वच, सेंधानमक, कालानोन, और पीपल इनकाचूर्ण वनालेवै। इसचूर्णको अनार वा त्रिफलाके क्वाथके साथ वा मांसरस वा गरमजलके साथ सेवनकरै । इस चूर्णसे सव प्रकारके गुल्मरोग, प्लीहारोग, उदररोग कुष्ठ,श्वित्रकुष्ठ, वातशूल, विषमाग्नि, शोथ, अर्श, पाण्डुरोग कामला और हलीमक दूर होजाते हैं, तथा इस के द्वारा विरेचन देने से वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष भी शान्त होजाते हैं ॥

नीलिन्यादिचूर्ण ॥

नीलिनींनिचुलंव्योषंद्वौक्षारौलवणानि च । चित्रकञ्चपिवेच्चूर्णंसर्पिषोदरगुल्म नुत् ॥

अर्थ—नीलिनी,निचुल,त्रिकुटा, दोनोक्षार; पांचोनमक और चीता इनके चूर्णको घृतके साथ सेनकरनेसे उदर और गुल्म रोग दूरहोजाते हैं ।

सेहुंडकेदूधका घी ।

क्षीरद्रोणंसुधाक्षीरप्रस्थार्द्धसहितंदधि । एतंविमथ्यतद्युक्त्यात्रिवृत्सिद्धंपिवेद्घृतम् ॥ तथासिद्धंघृतप्रस्थंपयस्यष्टगुणेपिवेत् । स्नुक्क्षीरपलकल्केनत्रिवृताषटपलेनच । गुल्मानांगरदोषाणामुदराणाञ्चशान्तये ॥ दधिमण्डाढकेसिद्धात् स्नुक्क्षीरपलकल्कितात् । घृतप्रस्थात्पिवेन्मात्रांतद्वज्जठरशान्तये ॥

अर्थ—आधा प्रस्थ सेहुंडका दूध और एक द्रोण दूध इन दोनोंका दही जमाकर घीनिकाल लेवै, इस घृतको निसोथ के कल्क के साथ सिद्धकर के पीवै, अथवा एक प्रस्थघी में अठगुना दूध,स्नुहीक्षीर एक पल और निसोथ छः पल इनसव को पाक करले । इन दोनो घृतोंमेंसेकिसी एक के सेवन से गुल्मरोग, गरदोष और उदर रोग शान्त होजाते हैं इसी तरह दधिमण्ड एक आढक, स्नुहीक्षीर एकपल और घृत एक प्रस्थ इन को पक्क करके जो घृत वनता है उसकोमात्राके अनुसार पीने से जठररोगकी शान्ति होजाती है ।

स्नुहीक्षीरका अनुपान ।

एषाश्चानुपिवेत्पेयांपयोवास्वादुवारसम् घृतेजीर्णेविरिक्तस्तुसूष्णमम्बुशृतंजलम्॥ शुण्ठ्याःपिवेत्ततःपेयांयूषंकौलत्थकंततः।

पिवेद्रूक्षस्त्र्यहंत्वेवंभूयोवाप्रतियोजितः॥ पुनःपुनःपिवेत्तसर्पिःस्नेहंवामिश्रकंपिवेत् घृतान्येतानिसिद्धानिविदध्यात्कुशलो भिषक्। गुल्मानांगरदोषाणामुदराणा ञ्चशान्तये ॥

अर्थ—इनघृतोंको पीकर पेया, दूध वा मधुर मांसरसकापान करै। घृतके जीर्ण होने पर दस्तहोने केपीछे सोंठका गुनगुनाक्काथ पानकरै फिर पेयाऔर कुलथीकायूष पान रूक्ष उदर रोगीको तीनदिन तक इसीक्रमका अवलंबन करनाचाहिये। वार वारघृतपान करके मिश्रकघृतका पानकरै कुशल वैद्यको उचित है कि गुल्म; गरदोष तथा उदररोगों की शान्ति के निमित्त ऊपर कहेहुए घृतों का पानकरै।

पीलुकल्कोपसिद्धंवाघृतमानाहभेदनम्। गुल्मघ्ननीलिनीसर्पिःस्नेहंवामिश्रकंपिवेत् ॥

अर्थ—पीलू के कल्कके साथ सिद्ध किया हुआ घी आनाह को दूर करता है। गुल्मनाशक नीलिनी घृत वा मिश्रक स्नेह का पान करने से भी उदररोग दूर होजाते हैं।

क्रमाग्निर्हृतदोषाणांजाङ्गलप्रातिभोजिनाम्॥ दोषशेषनिवृत्त्यर्थंयोगान्वक्ष्यतःपरम्॥

अर्थ—क्रम से विरेचनादि द्वारा दोषों के निकलने पर जांगल मांसरसादि का भोजन करना चाहिये। अव हम यहां से उन योगों का वर्णन करते हैं जो शेष दोषों की निवृत्ति के लिये उपयोगी होते हैं।

अन्यप्रयोग।

चित्रकामरदारुभ्यांकल्कंक्षीरेणवापिवेत् ॥ मासंयुक्तस्तथाहस्तिपिप्पलीविश्वभेषजात्। विडङ्गंचित्रकोदन्तीचव्यंव्योषञ्चतैःपयः ॥ कल्कैःकोलसमैःपीत्वा प्रवृद्धमुदरंजयेत्। पिवेत्कषायंत्रिफला दन्तीरोहीतकैःशृतम् ॥ व्योषक्षारयुतं जीर्णेरसैरद्यात्सजाङ्गलैः। मांसंवाभोजनंभोज्यंसुधाक्षारघृतान्वितम्॥ क्षीरानुपानंगोमूत्रमभयांवाप्रयोजयेत्। सप्ताहंमाहिषंमूत्रंक्षीरंचानन्नभुक्पिवेत्। मांसमौष्ट्रंपयःछागंत्रीन्मासान्व्योषसंयुतम्॥

अर्थ—चीता और देवदारु इन दोनों के कल्क को दूध के साथ सेवन करै। अथवा गजपीपल, सोंठ, वायविडंग, चीता, दन्ती, चव्य, इन सब को समान भाग लेकर पीस ले। इस कल्क में से वेर के वरावर दूध के साथ एक महीने तक पीवै तौ बढ़ा हुआ उदररोग शान्त होजाता है। अथवा त्रिफला, दन्ती और रोहेड़ा इनका क्काथ करके त्रिकुटा और क्षार डालकर पान करै। औषध के पचने पर जांगल पशुओं का मांसरस देवै अथवा सेहुंड के दूध के घी के साथ पकाया हुआ मांस देवै।

अथवा गोमूत्र के साथ हरड़को फांककर ऊपरसे दूध पीवै। अथवा सात दिवसतक भैंसका मूत्र पीवै और उसी का दूध पीकर रहै, अन्न छोड़ देवै। अथवा ऊंटका मांस और वकरी का दूध त्रिकुटा डालकर तीन महीने तक पीवै।

हरीतकीसहस्रंवाक्षीराशीवाशिलाजतु । शिलाजतुविधानेनगुग्गुलुंवाप्रयोजयेत् ॥ शृङ्गवेरार्द्रकरसःपानेक्षीरसमोमतः । तैलं रसेनतेनैवसिद्धंदशगुणेनवा ॥ दन्तीद्रवन्तीफलजंतैलंदूष्योदरेमतम् । शूलानाहविबन्धेषुसक्तुयूषरसादिभिः । सरलामरशिग्रूणांवीजेभ्योमूलकस्यच ॥ तैलान्यभ्यङ्गपानार्थेशूलघ्नान्यनिलोदरे । स्तैमित्यारुचिहृल्लासेष्वल्पाग्निर्मद्यपस्तथा ॥ अरिष्टान्वापिवेत्क्षारान्कफस्त्यानास्थिरोदरः ।

अर्थ—सहस्र हरड़का सेवन एक एक बढ़ाने घटाने की रीति से करै और दुग्ध पान करके रहै । अथवा शिलाजीत का सेवन करै अथवा शिलाजीत की रीतिही से गूगलका प्रयोग करै । अथवा दूध में समान भाग अदरखका रस मिलाकर पीवै अथवा दसभाग अदरखके रस में एक भाग तेल पकाकर सेवन करै । अथवा दन्ती और द्रवन्ती के फलों का तेल दूष्योदर में सेवन करै । शूल, आनाह और विवन्धरोगों में शक्तु, यूष और मांसरस के साथ इसी तेल का सेवन करै । वातोदर में शूल को नष्ट करने के लिये सरलकाष्ठ, सहजना वा मूली के वीजों के तेल अभ्यंग और पान में प्रयोग करै । कफोदर में जब उदर कफ के कारण स्निग्ध और स्थिर होजाय तव तथा स्तिमिता, अरुचि, हृल्लास, और अल्पाग्नि में मद्यपीने वाला मनुष्य अरिष्ट वा क्षारों का पान करै ।

पिप्पलींतिल्वकंहिंगुनागरंहस्तिपिप्पलीम् भल्लातकंशिग्रुफलंत्रिफलांकटुरोहिणीम् । देवदारुहरिद्रेद्वेसरलातिविषेवचाम् । कुष्ठंमुस्तंतथापञ्चलवणानिप्रकल्पयते ॥ दधिसर्पिर्वसातैलमज्जायुक्तानिदाहयेत् । अन्तर्धूमंतथाक्षारान्विडालकपदंपिवेत् । मदिरादधिमण्डोष्णजलारिष्टसुरासवैः । हृद्रोगंश्वयथुंगुल्मंप्लीहार्शोजठराणिच ॥ विसूचिकामुदावर्त्तंवाताष्ठीलाञ्चनाशयेत् ।

अर्थ—पीपल, लोध, हींग, सोंठ, गज पीपल, भिलाया, सहँजना, त्रिफला, कुटकी देवदारु, दोनों हलदी, सरला, अतीस, वच कूठ, मोथा, पाचों नमक, इन को कूटकर दही, घी, वसा, मज्जा और तेल मिलाकर ऐसी रीतिसे दग्धकरै कि धूँआं भीतरका भीही भरजाय वाहर न निकलने पावै । इस क्षार में से प्रति दिन दो तोले मदिरा, दधिमण्ड, उष्णजल, अरिष्ट, सुरा और आसव के साथ पान करै तौ हृद्रोग, सूजन, गुल्म रोग, प्लीहा, अर्श, जठर, बिसूचिका, उदावर्त्त और वातष्ठीला दूर होजाते हैं ।

आजकरीषका प्रयोग ॥

क्षारंवाजकरीषाणांस्रुतंमूत्रैर्विपाचयेत् । कार्षिकंपिप्पलीमूलंपञ्चैवलवणानिच॥ पिप्पलीचित्रकंशुण्ठीत्रिफलांत्रिवृतांवचाम् । द्वौक्षारौशतलांदन्तींस्वर्णक्षीरींविषाणिकाम् ॥ कोलप्रमाणांवटिकांपिवेत् सौवीरसंयुताम् । श्वयथावविपाकेचप्रवृद्धेचोदरोदके ॥

अर्थ—वकरीकी मेंगनियों को जलाकर

अठगुने मूत्रमें पकावै जबऔटजाय तब एक छन्ने में होकर चुआले इस तरह बीस कर्ष क्षार लावै और पीपला मूल, पांचोन मक, पीपल, चीता, सोंठ, त्रिफला, निसोथ, वच, दोनों क्षार, शातला, दन्ती, स्वर्णक्षीरी, और मेढ़ासिंगी इनको एक एक कर्ष लेकर पीसकर बेरकी बराबर गोली बनावे एक गोली खाकर ऊपरसे सौवीरका पान करले। इससे सूजन, अविपाक और बढ़ेहुए उदररोग नष्टहो जातेहैं।

उदररोग में भोजन।

भावितानांगवांमूत्रेषाष्टिकानांतुतण्डुलैः ॥
यवागूंपयसासिद्धंप्रकामंभोजयेन्नरम्।
पिवेदिक्षुरसञ्चानुजठराणांनिवृत्तये ॥
स्वंस्वंस्थानंव्रजन्त्येषांतथापित्तकफानिलाः ॥

अर्थ—साठीचांवलों को गोमूत्रकी भावना देकर दूध के साथ उनकी यवागू बनाकर यथेष्ट भोजन करावै। ऊपरसे इक्षुरस का पान करै, ऐसा करने से जठर रोग शान्त होजाते हैं और वात पित्त कफ अपने अपने स्थानों को चले जाते हैं।

शंखिनीस्नुक्त्रिवृद्दन्तीचिरिबिल्वादिपल्लवैः। शाकंगाढपुरीषायप्राग्भक्तंदापयेद्भिषक् ॥ ततोऽस्मैशिथिलीभूतवर्चोदोषायशास्त्रवित्। दद्यान्मूत्रयुतंक्षीरंदोषशेषहरंशिवम् ॥ पार्श्वशूलमुपस्तम्भं हृद्ग्रहश्चापिमारुतः। जनयेद्यस्यतैलंस बिल्वक्षारेणनापिवेत्।

अर्थ—जिस रोगी का मल गाढा पड गया हो उसे शंखाहूली, सेंहुड, निसोथ, दन्ती और कंजे के पत्तों का साग भोजन करने से पहिले देवै। जब विष्टा और दोष ढीले पडजांय तब बचे हुए दोषों को दूर करने के लिये गोमूत्र और दूधका सेवन करावै। जबवायु पार्श्वशूल, उपस्तम्भ और हृद्ग्रह उत्पन्न करै तब उसे बिल्वक्षार के साथ तैलपान कराना चाहिये।

तथाग्निमन्थश्योनाकपलाशतिलनालजैः।
बलाकदल्यपामार्गक्षारैःप्रत्येकशःस्रुतैः ॥
तैलंपक्त्वाभिषग्दद्यादुदराणांप्रशान्तये।
निवर्त्ततेचोदरिणांहृद्ग्रहश्चानिलोद्भवः।

अर्थ—अरनी, सोनापाठा, ढाक, तिलकी नाल, खरैटी, केला, ओंगा, इन सब के खारों को अलग अलग तयार करै। फिर इन क्षारों के साथ तैल सिद्ध करै। यह तेल उदररोग तथा वातज हृद्ग्रह को दूर करदेता हैं।

कफेवातेसपित्तेवाताभ्यांवाप्यावृतेऽनिले ॥
बलिनःस्वौषधयुतंतैलमैरण्डजंहितम्।
सुविरिक्तोनरोयस्तुपुनराधमतीहतम् ॥
सुस्निग्धैरम्ललवणैर्निरूहैःसमुपाचरेत्।

अर्थ—कफ, वात वा वातपित्तसे वायु के आवृत होने पर बलवान रोगी को वात नाशक वा कफनाशक औषधियों के साथ में सिद्ध किया हुआ अंडी का तेल देवै। अच्छी तरह विरेचन होने के पीछे भी जो फिर उदररोग की उत्पत्ति होवै तौ अम्ल और लवण द्वारा स्निग्ध निरूहण वस्ति देवै। जिसरोगी के वायु उपस्तम्भ के साथ

उदररोग की उत्पत्ति करै उसे क्षार और गोमूत्र द्वारा तीक्ष्ण वस्ति देवै ।

सोपस्तम्भोऽपिवावायुराध्मापयतियंनरम् तीच्णैःसक्षारगोमूत्रैर्वस्तिभिस्तमुपाचरेत्।

अर्थ—अथवा उपस्तम्भ सहित वायु जिस नरको ग्रस्त कर लेती है, उस मनुष्य का तीक्ष्ण क्षार सहित गोमूत्र और वस्ति से उपचार करै ॥

त्रिदोषज उदर में कर्त्तव्य ।

क्रियातीतेत्रिदोषेचजाठरेचाप्रशाम्यति ॥ ज्ञातीन्ससुहृद्दारान्ब्राह्मणान्नृपतीन् गुरून् । अनुज्ञाप्यभिषक्कर्म्मविदध्यात् संशयंध्रुवम् । अक्रियायांध्रुवोमृत्युक्रिया यांसंशयोभवेत् ॥ एवमाख्यायतस्येद मनुज्ञातःप्रयोजयेत् ।

अर्थ—ऊपर कही हुई सब प्रकार की चिकित्सा करने पर भी जो त्रिदोष से उत्पन्न जठररोग शान्त न होवै तव रोगी के सजातीय इष्ट, मित्र स्त्री, ब्राह्मण ,राजा, और गुरु से कह देवै कि में ने इस रोग की शान्ति के निमित्त अमुक अमुक क्रिया की तथापि रोग शान्त न हुआ, अब अमुक क्रिया शेष है इस क्रिया के न करने पर रोगी अवश्य मरजायगा और करने पर भी संशय है कि बचै वा न बचै, तब उन सब लोगों की अनुमति प्राप्त करके निम्न लिखित क्रिया का प्रयोग करै ।

उदररोग में सर्प विष प्रयोग ।

पानभोजनसंयुक्तंविषमस्मैप्रदापयेत् ॥ यस्मिन्वाकुपितःसर्पोविसृजेद्धिफलेविषम् । तेनास्यदोषसंगातःस्थिरोलीनो विमार्गगः ॥ विषेणाशुप्रमाथित्वादाशु भिन्नःप्रवर्त्तते । विषेणहृतदोषन्तंशीताम्बु परिषेचितम् । पाययेतभिषग्दुग्धंयवागूं वायथाबलम् ॥ त्रिवृन्मण्डूकपर्ण्योश्चशा कंसयववास्तुकम् । भक्षयेत्कालशाकं वास्वरसोदकसाधितम् ॥ निरम्ललव णस्नेहंस्विन्नास्विन्नमनन्नभुक् । मासमे कंततश्चैवतृषितःस्वरसंपिबेत् ॥ एवंवि निर्हृतेदोषेशाकैर्मासात्परंततः । दुर्बला यप्रयुञ्जीतप्राणभृत्कारभंपयः ।

अर्थ—ऐसे मृतः प्राय जठररोगी को पान और भोजन में विष दैना चाहिये अर्थात् उसे वह फल खाने को दे जिस में सर्प ने कुपित होकर अपना विष छोड़ा हो । इस तरह विषका प्रयोग करने से स्थिर, लीन और विमार्गगामी दोषों के समूह शीघ्रही प्रमथित और भिन्न होकर प्रवृत्तहोजातेहैं । जब विषके द्वारा दोष निकल जाय तबठंडे जलसे रोगीको स्नान करावै फिर रोगीके बल के अनुसार उसे दूध और यवागू का सेवन करावै । निसोथ, मण्डूकपर्णी, यव-शाक, बथुआ, वा काल शाकको जल में उबालकर देवै इस शाक में खटाई, नमक और चिकनाई न डालै । शाक को अच्छी तरह सिजा लेवै । एक महीने तक येही शाक खाकर रहे, अन्नका परित्याग कर देवै और प्यास लगने पर इन सागों का स्वरस पान करै ।

एक महीने पीछे जब इन शाकों के द्वारा

दोष सब दूर होजांय और रोगी दुर्बल हो-जाय तब उसे हथिनी का दूध पान करा के बलसम्पन्न करै ।

उदर रोगमें शास्त्रकर्म ।

इदन्तुशल्यहर्तॄणांकर्मस्याद्दृष्टकर्मणाम्॥ वामंकुक्षिंमापयित्वानाभ्यधश्चतुरंगुलम्। मात्रायुक्तेनशस्त्रेणपाटयेन्मतिमान्भिषक्॥ विपाट्यान्त्रन्ततःपश्चाद्वीक्ष्यबद्धक्षतान्त्रयोः । सर्पिषाभ्यज्यकेशादीनवमृद्यविमोचयेत् ॥ छिद्राण्यन्त्रस्यतुस्थूलैर्दंशयित्वापिपीलिकैः । बहुशःसंगृहीतानिमत्त्वा छित्त्वापिपीलिकान् ॥ प्रतियोगैःप्रवेश्यान्त्रंवहिःसीव्येद्व्रणंततः ।

अर्थ—जो वैद्य शस्त्रविद्या में निपुण है और जिनने वहुत सी क्रिया अपनी आखों से देखीहैं वे इस तरह शस्त्रकर्म करे कि ना॥नि से चार अंगुल नीचे नायकर वांईकूखमें चार अंगुल के शस्त्रसे चीरा लगाकर वद्ध वा क्षत आंतों की परीक्षा करै और उस आंतमें घी चुपड़कर केश आदि जो शल्य उसमें हो उनको निकालडाले । इनके निकालने से जो आंतों में छिद्र होजाय उनको वड़ी वड़ी चींटियों से कटवावै ऐसा करने से आंतें इकट्ठी होकर पुरजांयगी । पुरने पर चींटियोंको छुड़ादेवै ओर आंतों को उनके स्थान पररखकर व्रणको वाहर से सींदेवै ।

जातोदकउदरमें शस्त्रकर्म ।

तथाजातोदकंसर्वमुदरंव्यधयेद्भिषक् ॥ वामपार्श्वेत्वधोनाभेर्नाडींदत्त्वाचगालयेत् । निःस्राव्यचविमृज्यैतद्वेष्टयेद्वाससोदरम् ॥ तथावस्तिविरेकाद्यैर्म्लानंसर्वंचवेष्टयेत् । निःसृतेलङ्घितःपेयामस्नेहलवणांपिवेत् ॥ अतःपरञ्चषण्मासान्क्षीरवृत्तिर्भवेन्नरः । त्रीन्मासान्पयसापेयांपिवेत्त्रींश्चापिभोजयेत् ॥ श्यामाककोरदूष्यंवाक्षीरेणलघुभोजनः ॥

अर्थ—जिसउदररोग में जलवढ़ गयाहो उसमें भी नाभिके नीचेवांई ओरको चीरा लगाकर एक नली द्वारा सब जलको निकाल देवै । जलके निकलनेके पीछे खाल को जहां की तहां लगाकर वस्त्रसे लपेटदेवै । इसी तरह वास्ति और विरेचनादिसे म्लान उदरको वस्त्रसे लपेट देवै । जलके निकलनेके पीछे लङ्घन कराके विना चिकनाई और नमक की पेयाका सेनवन करावै इससे पीछे छः महीने पर्य्यन्त मनुष्य केवल दूधपीकर रहै । उससे पीछेतीन महीने तक दूध के साथ पेया पीवै और फिर तीन महीने तक दूधके साथ सोंखिया और कोरदूष आदि हल के अन्नका सेवन करता रहै ।

नरःसंवत्सरेणैवंजयेत्प्राप्तंजलोदरम् । प्रयोगाणान्तुसर्वेषामनुक्षीरंप्रयोजयेत् ॥ दोषानुबन्धरक्षार्थंबलस्थैर्यार्थमेवच । प्रयोगापचिताङ्गानांहितंह्युदरिणांपयः ॥ सर्वधातुक्षयार्तानांदेवानाममृतंयथा ।

अर्थ—इस तरह एक वरस तक सुपथ्य और उत्तम आहार विहार करने से मनुष्य जलोदर को विजय करसकताहै । उ-

दररोगों में सम्पूर्ण प्रयोगों के पीछे दूध का पीना अवश्य है, ऐसा करने से वातादि दोषों का अनुबन्ध दूर होजाता है और वल तथा दृढता वनी रहती है।

वहुत से प्रयोगों के कारण रोगी का देह क्षीण होजाता है और सम्पूर्ण धातु भी क्षय होजाती हैं इस से उदररोगी को दूध ऐसा गुणदायक है जैसे देवताओं को अमृत।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन।

प्राग्रूपमष्टानांलिंगंव्याससमासतः॥ उपद्रवान्गरीयस्त्वंसाध्यासाध्यत्वमेवच। जाताजाताम्बुलिंगानिचिकित्सांचोक्त वानृषिः॥ समासव्यासनिर्देशैरुदराणां चिकित्सितम्।

अर्थ—इस उदर चिकित्सित नामक अध्याय में भगवान् पुनर्वसुने आठ प्रकार के उदररोगों के हेतु, पूर्वरूप, और लिंगों का संक्षेप और विस्तार से वर्णनकिया है तथा उदररोग के उपद्रव, कृच्छ्रत-रत्व, साध्यसाध्यत्व, उत्पन्न और अनुत्पन्न जलके लक्षण, तथा उदररोगों की चिकि-त्सा संक्षेप और विस्तार दोनों रीति से वर्णन की है।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने उदर चिकित्सितं नामाष्टादशोऽध्यायः॥ १८॥

——:*:——

एकोनविंशोऽध्यायः।

अथातोग्रहणीरोगचिकित्सितंव्याख्यास्यामः॥ इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय वोले कि अव हम यहां से ग्रहणी रोग चिकि-त्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

अग्निको मूलत्व।

आयुर्वर्णोबलंस्वास्थ्यमुत्साहोपचयौप्रभा। ओजस्तेजोऽग्नयःप्राणाश्चोक्तादेहाग्निहेतुषु॥

अर्थ—आयु, वर्ण, वल, स्वास्थ्य, उत्साह पुष्टि, प्रभा, ओज, तेज, जठराग्नि और प्राण ये सब अग्नि के आधीन हैं।

अग्निकी प्रधानता का कारण।

शान्तेऽग्नौम्रियतेदीनःचिरञ्जीवत्यनामयः॥ रोगीस्याद्विकृतेमूलमग्निस्तस्मान्निरुच्यते। यदन्नंदेहधात्वोजोबलवर्णादिपोषकम्॥ तत्राग्निर्हेतुराहारान्नह्यपक्वाद्रसादयः॥

अर्थ—अग्नि के मन्द पड़जाने से मनुष्य दीन होकर मरजाता है, यथावत् रहने से निरोग रहकर वहुत दिवस तक जीता रहता है और उसके विकार को प्राप्त होने पर मनुष्य रोगी होजाता है। इन कारणों से देह का मूल अग्नि है। जो अन्न देह, धातु, ओज, वल और वर्ण आदि का पोषक है उस में भी अन्नकी पोषकता शक्ति का कारण अग्निही है, क्योंकि जवतक अग्नि आहार को नहीं पकाती तव तक उस से रसादिक नहीं वनने पाते।

अन्न से रसादि की विधि ।

अन्नमादानकर्मातुप्राणःकोष्ठंप्रकर्षति ॥
तद्द्रवैर्भिन्नसंघातंस्नेहेनमृदुतांगतम् ।
समानेनावधूतोऽग्निरुदर्यःपवनेनतु ॥
कालेभुक्तंसमंसम्यक्पचत्यायुर्विवृद्धये ।
एवंरसमलायान्नमाशयस्थमवस्थितः ॥
पचत्यग्निर्यथस्थाल्यामोदनायाम्बुतण्डु
लम् ।

अर्थ—अन्न को ग्रहण करने वाली प्राण-वायु अन्न को कोष्ठ में लेजाती है और वहां श्लेष्माकी द्रवता से अन्न द्रव हो जाता है और चिकनाई से मृदु होजाता है। तदनन्तर समानवायु जठराग्नि को वढाकर खाये हुए अन्न को समयपर पचादेती है और उस से आयु भी वढ़ती है। जठराग्नि आमाशयस्थ अन्न को पकाकर उसका रस और मल इस तरह बना देती है जैसे नीचे की अग्नि हांडी में भरे हुए जल और तंडुल को पकाकर भात वना देती है।

भोजन से दोषों की उत्पत्ति।

अन्नस्यभुक्तमात्रस्यषड्रसस्यप्रपाकतः ॥
मधुरात्प्राक्कफोद्भावात्फेनभूतउदीर्यते ।
परन्तुपच्यमानस्याविदग्धस्याम्लभावतः।

अर्थ—जैसे अन्न को पकाने से प्रथमही झाग आते हैं, उसी तरह षड्रसविशिष्ट भुक्तमात्र अन्न के मधुरपाक से प्रथमहीकफ उत्पन्न होता है। फिर पच्यमान (पचने वाले) आमाशय से क्षरण शील विदग्ध अन्न के अम्लभाव से पित्त उत्पन्न होता है तत्पश्चात् पक्वाशय में प्राप्तहुआ अन्न अग्नि से शुष्क हो जाता है और परिपिण्डित होकर विष्टारूप में होजाता है उस के कटु भाव से वायु उत्पन्न होती है।

इष्ट अन्न के गुण ।

आशयाच्च्यवमानस्यपित्तमच्छमुदीर्यते
पक्वाशयंतुप्राप्तस्यशोष्यमाणस्यवह्निना॥
परिपिण्डितपक्वस्यवायुःस्यात्कटुभावतः।
अन्नमिष्टंह्युपकृतामिष्टैर्गन्धादिभिःपृथक्॥
देहंप्रीणातिगन्धादीन्घ्राणादीनिन्द्रिया
णिच ।

अर्थ—अभीष्ट गंधादि द्वारा संस्कार किया हुआ अभीष्ट अन्न देह में गन्धादि की वृद्धि और घ्राणेन्द्रियादि इन्द्रियों की पुष्टि करता है।

पंचभूतात्मक आहार के गुण ।

भौमाप्याग्नेयवायव्याःपञ्चोष्माणःसनाभसाः। पञ्चाहारगुणान्स्वान्स्वान्पार्थिवादीनूपचान्तिहि।यथास्वंस्वञ्चपुष्यन्तिदेहद्रव्यगुणाःपृथक् ॥ पार्थिवाःपार्थिवानेवशेषाः
शेषांश्चकृत्स्नशः ।

अर्थ—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश, इन पांच गुणों वाली ऊष्मा होती है और इन्हीं पांचगुणों वाला आहार भी होता है, इन में से प्रत्येक प्रकारकी ऊष्मा आहार के प्रत्येक प्रकार के अंश को पचाती है, यथा भौम्य ऊष्मा आहार के भौम्य अंश को पचाती है, आग्नेय ऊष्मा आहार के आग्नेय अंश को पचाती है, इसी तरह और भी। तथा आहार के भौम्यादिक पांचों अंश परिपक्व होकर पंच-

भूतात्मक देह के अपने अपने भौम्यादिक गुणों की वृद्धि करते हैं, यथा आहार का जलीय गुण शरीर के रसरक्तादि द्रवगुणों की वृद्धि करता है, इसी तरह और भी समझो।

सप्तभिर्देहधातारोद्विविधाश्चपुनःपुनः॥
यथास्वमग्निभिःपाकंयान्तिकिट्टप्रसादवत्।

अर्थ—अपनी २ सात अग्नियों से देह की सातों धातु परिपक्व होकर मल और प्रसाद इन दो रूपों में विभक्त होती हैं।

रससे रक्तादिकी उत्पत्ति॥

रसाद्रक्तंततोमांसंमांसान्मेदस्ततोऽस्थिच।
अस्थ्नोमज्जाततःशुक्रंशुक्राद्गर्भःप्रजायते।
रसात्स्तन्यंततोरक्तमसृजःकण्डराःशिरा॥
मांसाद्वसात्वचःषट्चमेदसःस्नायुसन्धयः।

अर्थ—रससे रक्त, रक्तसेमांस, मांससे मेद, मेदसे अस्थि, अस्थिसे मज्जा, मज्जा से शुक्र और शुक्र से गर्भ उत्पन्न होताहै। और रससे दूध, दूध से रुधिर, रुधिरसे कण्डरा और शिरा। मांससे चर्वी और छः त्वचा और मेद से स्नायु और सन्धियां॥

अग्निवेशकाप्रश्न॥

इत्युक्तवन्तमाचार्यंशिष्यस्त्विदमचोदयत्
रसाद्रक्तंविसदृशात्कथंदेहेऽभिजायते।
रसस्यचनरङ्गोऽस्तिसकथंयातिरक्तताम्॥
रसाद्रक्तात्स्थिरंमासंकथंतज्जायतेनृणाम्।
रसाद्रक्तात्तथामांसान्मेदसःश्वेतमाकथम्॥
श्लक्ष्णाभ्यांमांसमेदोभ्यांखरत्वंकथमस्थिषु। खरेष्वस्थिषुमज्जाचकेननिग्धोमृदुस्तथा॥ मज्जश्चपरिणामेनयदिशुक्रंप्रवर्तते। सर्वेसर्वगतंशुक्रंप्रवदन्तिमनीषिणः॥
अथापिमध्येमज्जश्चशुक्रंभवतिदेहिनाम्।
छिद्रंनदृश्यतेऽस्थ्नाश्चतान्निःसरतिनुःकथम्॥

अर्थ—जब आत्रेय इस तरह कह रहेथे तब उनके शिष्यने पूछा कि हेभगवन्! रस और रक्तमें विसदृशता है फिर रससे रक्त कैसे उत्पन्न होता है? रस में ललाई नहीं होती है फिर रक्तलाल क्यों होजाता है? रस और रक्त तो पतलेहैं फिर इनसे स्थिर मांस कैसे उत्पन्न होता है? रस, रक्त तथा मांससे उत्पन्न हुआ मेद सफेद क्यों होता है? मांस और मेदा तो चिकने होते हैं फिर इनसे उत्पन्नहुई हड्डियों में खरखराहट क्यों होता है? खरदरी हड्डियों में फिर मज्जा किस कारणसे स्निग्ध और मृदु होती है। और यदि मज्जा के परिणामसे ही वीर्य की प्रवृत्ति होती है और उसी शुक्र को सब पंडित सर्वगत अर्थात् सम्पूर्ण देह में व्यापक कहते हैं, इससे वीर्य मनुष्यों की मज्जा के बीच में ही होता है परन्तु हड्डियों के बीच में उसके निकलने का कोई छिद्र नहीं दिखाई देता है फिर बाहर कैसे निकल आता है?

रससे रक्त बनने का कारण॥

एवमुक्तस्तुशिष्येणगुरुःप्राहेदमुत्तरम्।
तेजोरसानांसर्वेषामनूजानांयदुच्यते॥
पित्तोष्मणःसरागेणरसोरक्तत्वमृच्छति।

अर्थ—इस तरह शिष्य से प्रश्न किये जाने पर गुरूने उत्तर दिया कि सम्पूर्ण

मनुष्योंके आहार रसमें एक तेजनामक रस होता है वह पित्त की ऊष्मा से रक्त होजाता है ॥

मांस और मेदकी रीति ॥

वाय्वग्नितेजसारक्तमूष्मणाचाभिसंयुतम्॥
स्थिरतांप्राप्यशौक्ल्यञ्चमेदोदेहेऽभिजायते

अर्थ—वह रक्त वायु और अग्नि का तेज तथा ऊष्मा से मिलकर जमजाता है और मांस बन जाताहै एवं मांसकी ऊष्मा से उसीका सफेद मेद वनजाता है ॥

अस्थिकी विधि॥

पृथिव्यग्न्यनिलादीनांसंघातःश्लेष्मणावृतः
खरत्वंप्रकरोत्यस्यजायतेऽस्थिततोनृणाम्॥

अर्थ—कफसे आवृत पृथ्वी, अग्नि और वायु के संघात में खरखराहट पैदाहोती है, इसी से हड्डियां उत्पन्न होती हैं॥

मज्जाकी उत्पत्ति ॥

करोतितत्रसौशिर्यमस्थ्नांमध्येसमीरणः॥
मेदसस्तानिपूर्यन्तेस्नेहोमज्जाततःस्मृतः॥

अर्थ—तब वायु हड्डियों के मध्य में छिद्रों को उत्पन्न कर देती है और वे छिद्र मेदा से परिपूर्ण होजाते हैं, उससे हड्डियों में स्निग्ध मज्जा उत्पन्न होती है ॥

शुक्रकी उत्पत्ति ॥

तस्मान्मज्जस्तुयःस्नेहःशुक्रंसञ्जायतेततः
वाय्वाकाशादिभिर्भावैःसौशिर्यंजायतेऽ
स्थिषु । तेनस्रवतितच्छुक्रंनवात्कुम्भा
दिवोदकम् ॥

अर्थ—उस मज्जा की चिकनाई से शुक्र की उत्पत्ति होती है और हड्डियों में वायु और आकाशादि के भावोंद्वारा वहुत से छोटे २ छिद्र होजाते हैं उन्हीं छिद्रों में होकर वीर्य ऐसे निकलता है जैसे नये घडे में से जल चुचाता है ।

वीर्य के निकलने की रीति ।

स्रोतोभिःस्यन्दतेदेहात्समन्तात्शुक्रवा
हिभिः । हर्षेणोदीरितंरागात्संकल्पा
च्चमनोभवात् ॥ विलीनंघृतवद्व्याया
मोष्मणास्थानविच्युतम् । वस्तौसंभृत्य
निर्यातिस्थलान्निम्नादिवोदकम् ॥

अर्थ—सम्पूर्ण देह से शुक्रवाही स्रोतों द्वारा मन से उत्पन्न हुए हर्ष, राग और संकल्प से शुक्र उद्दीर्ण होता है तथा मैथुनादि परिश्रमकी ऊष्मा से घृत के समान पिघल कर अपने स्थान से च्युत होकर वस्ति में इकट्ठा होकर इस तरह निकलने लगता है, जैसे नीची जगह से जल निकलता है ।

पृथक्२मलों का वर्णन ।

किट्टमन्नस्यविण्मूत्रंरसस्यचकफोऽसृजः
पित्तंमांसस्यचमलोमलःस्वेदस्तुमेदसः ।
स्यात्किट्टंकेशलोमास्थ्नोमज्जःस्नेहोऽक्षि
विट्त्वचाम् ॥ प्रसादकिट्टेधातूनांपाका
देवम्विधःस्मृतः ॥

अर्थ—अन्नका किट्ट अर्थात् मल विष्टा और मूत्र है, रस और रक्त का किट्ट कफ हैं, मांस का किट्ट पित्त है, मेदाका स्वेद है, हड्डी का मल केश और लोम है मज्जा का किट्ट स्नेह है, त्वचा का किट्ट आंखों का मल है, इसी तरह धातुओं के पाक से प्रसाद और किट्ट उत्पन्न होते हैं।

परस्परोपसंरम्भाद्धातुस्नेहपरम्परा ॥
वृष्यादीनांप्रभावस्तुपुष्णातिबलमाशुहि।
षड्भिःकेचिदहोरात्रैरिच्छन्तिपरिवर्तनम्॥
सन्तत्याभोज्यधातूनांपरिवृत्तिस्तुचक्रवत्।

अर्थ—स्नेह परम्परा धातु आपस में एक दूसरी को पुष्ट करती हैं, परन्तु वृष्य औषधियों का यह प्रभाव है कि वे वलको ही शीघ्र बढ़ाती हैं ।

किसी २ का यह मत है कि एक धातु से दूसरी धातु के वनने में छः दिनरात लगते हैं, परन्तु वास्तव में एक धातुसे दूसरी धातु का वनना गाढी के पहिये की तरह घूमता रहता है ।

व्यानेनरसधातुर्हिविक्षेपोचितकर्मणा ॥
युगपत्सर्वतोऽजस्रंदेहेविक्षिप्यतेसदा ।
क्षिप्यमाणस्तुवैगुण्याद्रसःसज्जतियत्रसः
करोतिविकृतिंचात्रखेवर्षमिवतोयदः ।
दोषाणामपिचैवंस्यादेकदेशप्रकोपनम् ॥

अर्थ—विक्षेपकारी व्यान वायु रसधातु को निरन्तर सम्पूर्ण देह में विक्षिप्त करती रहती है । इस तरह विक्षिप्त रस विगुण होकर देह में जहां कहीं एत्रित होजाता है वहीं विकृति उत्पन्न करता है जैसे आकाश में वादल एक जगह इकट्ठे होकर वरसने लगते हैं । इसी तरह दोष एक स्थान में प्रकुपित होजाते हैं ।

जठराग्नि की उत्कृष्टता ।

इतिभौतिकधात्वन्नपक्तॄणांकर्मभाषितम्।
अन्नस्यपक्तासर्वेषांपक्तॄणामधिकोमतः॥
तन्मूलास्तेहितद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः।
तस्मात्तंविधिवद्युक्तैरन्नपानेन्धनैर्हितैः ॥
पालयेत्प्रयतस्तस्यस्थितौह्यायुर्बलस्थितिः।

अर्थ—ऊपर लिखी हुई रीति के अनुसार भौतिक धातु और पाचकाग्निके कर्म वर्णन किये गये हैं । सम्पूर्ण अग्नियों में अन्न को पचाने वाली अग्नि अधिक होती है पाचकाग्निही सम्पूर्ण अग्नियों का मूल है क्यों कि इसी के घटने वढने से औरों की भी घटती वढ़ती होती है। इस लिये ईंधनरूपी हितकारी अन्नपानके विधिवत् सेवन करने से जठराग्नि का पालन करै । पाचकाग्नि के स्थित होनेही से आयु और वल की स्थिति होती है ।

ग्रहणी दोषों का कारण ।

योहिभुंक्तेविधिंमुक्त्वाग्रहणीदोषजान्गदान् । सलौल्याल्लभतेशीघ्रंवक्ष्यन्तेऽतः परन्तुये ॥

अर्थ—जो मनुष्य विधि छोड़कर भोजन करता है, उसके जिह्वाकी लोलुपता से ग्रहणी दोष से उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के रोग होजाते हैं । अव उन्हीं का वर्णन करते हैं ।

अग्नि के दूषित होने का कारण।

अभोजनादजीर्णातिभोजनाद्विषमाशनात् । असात्म्यगुरुशीतातिरूक्षसन्दुष्टभोजनात् ॥ विरेकवमनस्नेहविभ्रमाद्व्याधिकर्षणात् । देशकालर्तुवैषम्याद्वेगानाञ्च विधारणात् ॥ दुष्यत्यग्निःसदुष्टोऽन्नंनत त्पचातिलघ्वपि । अपच्यमानंशुक्तत्वंयात्यन्नंविषताञ्चतत् ॥

अर्थ—भोजन न करने से, अजीर्ण में भोजन करने से, अति भोजन से, विषम भोजन से, विरेचन, वमन और स्नेहन कर्मों के अतियोग से, व्याधिद्वारा अत्यन्तकृश होने से; देशकाल और ऋतुकी विषमता से, मलमूत्रादि वेगोंके रोकने से, अग्नि दूषित होजाती है और दुष्ट होने से वह लघु अन्न को भी नहीं पचासकती है। और अपचमान अन्न खट्टा और विषवत् होजाता है।

अजीर्ण अन्न के लक्षण ॥

तस्यलिंगमजीर्णस्यविष्टम्भोऽगंश्चसीदति । शिरसोरुक्चमूर्च्छाचभ्रमःपृष्ठकटिग्रहः ॥ जृम्भांगमर्दस्तृष्णाचज्वरच्छर्दिः प्रवाहणम् । अरोचकोविपाकश्चघोरमन्नविषञ्चतत् ॥

अर्थ—अपच्यमान अन्न इन उपद्रवों को करता है, यथा गुडगुडाहट, अंगग्लानि सिरदर्द,मूर्च्छा,भ्रम,पृष्ठग्रह,कटिग्रहजृम्भा,अंगमर्द, तृष्णा, ज्वर, वमन, ऐंठा, अरुचि और अविपाक, इस तरह अन्न घोर विष के समान होजाता है ॥

भिन्नदोषों से संसृष्ट विषान्न ॥

संसृज्यमानेनपित्तेनदाहंतृष्णांमुखामयान् । जनयत्यम्लपित्तंचपित्तजांश्चापरान्गदान् ॥ यक्ष्मपीनसमेहादीनकफजान्कफसंगतः । करोतिवातसंसृष्टंवातजांश्चगदान्बहून् ॥ मूत्ररोगांश्चमूत्रस्थंकुक्षिरोगानशकृद्गतान् । रसादिभिश्च संसृष्टंकुर्याद्रोगान्रसादिजान् ॥

अर्थ—वही अपच्यमान अन्न पित्त से मिलकर दाह, तृष्णा, मुखरोग, अम्लपित्त तथा पित्तजन्य अन्य २ रोगों को उत्पन्न करता है। कफ से मिलकर यक्ष्मा, पीनस प्रमेह तथा अन्यकफज विकारों को करता है। वात से मिलकर अनेक प्रकार के वातरोगों को करता है। मूत्रसे मिलकर अनेक प्रकार के मूत्ररोगों को करता है, विष्ठा से मिलकर अनेक प्रकार के कुक्ष रोगों को और इसी तरह रसादि से मिलकर रसादि से उत्पन्न होने वाले रोगों को करता है ॥

भिन्नजठराग्निकेकर्म ।

विषमोधातुवैषम्यंकरोतिविषमंपचन् । तीक्ष्णोमन्देन्धनोधातून्विशोषयतिपावकः ॥ युक्तंभुक्तवतोयुक्तोधातुसाम्यंसमंपचन् । दुर्बलोविदहत्यन्नंतद्यात्यूर्द्धमधोऽपिवा ॥

अर्थ—विषम अग्नि अन्नको विषमरीति से पकाकर धातुओं को विषम करदेती है, तीक्ष्णाग्नि भोजन रूपी ईंधनको अल्पपाकर सम्यक् पक्व कर के धातुओं को शुद्ध कर देती है। समाग्नि युक्ति पूर्वक भोजन करनेके कारण धातुओं में साम्यता करती है तथा मन्दाग्नि अन्नको अच्छी तरह न पचाने से विदग्धता करती है और वह अन्न वमन द्वारा वा मलद्वारा वाहर निकल जाता है ॥

ग्रहणी रोग के लक्षण ॥

अधश्चपक्वमामंवाप्रवृत्तंग्रहणीगदः । उच्यतेसर्वमेवान्नंप्रायोह्यस्यविदह्यते ॥

अतिसृष्टंविबद्धंवाद्रवंतदुपवेश्यते ।

अर्थ—पक्व वा कच्चा अन्न जो अधोमार्गद्वारा होकर निकलता है, इसे ग्रहणी रोग कहते हैं, इसमें प्रायः सब प्रकारका अन्न विदग्ध होजाताहै । विबद्धता के साथ वा पतला होकर निकलता है ॥

ग्रहणी रोग के लक्षण ॥

तृष्णारोचकवैरस्यप्रसेकतमकान्वितः ॥ शूनपादकरःसास्थिपर्वरुक्छर्दनंज्वरः । लोहामगन्धिस्तिक्ताम्लउद्गारश्चास्यजायते ॥

अर्थ—इस रोग में तृष्णा, अरुचि, विरसता, लालास्राव, तमकश्वास, हाथपांव में सूजन, हड्डी और पर्वों में वेदना, वमन, ज्वर, लोहगन्धि, आमगन्धि, तथा तिक्त और खट्टी डकार आदि उपद्रव होते हैं ॥

ग्रहणी रोग के पूर्वरूप ॥

पूर्वरूपंतुतस्येदंतृष्णालस्यंबलंक्षयः । विदाहोऽन्नस्यपाकश्चचिरात्कायस्यगौरवम् ॥

अर्थ—तृष्णा, आलस्य, बलकीक्षीणता, अन्नका बिदाह देरमें अन्नका पाक और देहका भारापन ये सब ग्रहणी के पूर्वरूप हैं ।

ग्रहणीका विशेष वर्णन ।

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्यग्रहणाद्ग्रहणीमता। नाभेरुपरिसाह्यग्निबलोपस्तम्भबृंहिता ॥ अपक्वंधारयत्यंन्नपक्वंसृजतिपार्श्वतः । दुर्बलाग्न्यबलाद्दुष्टाद्मामेवविमुञ्चति

अर्थ—ग्रहणी अग्निका अधिष्ठान है, यह अन्न को ग्रहण करती है इस से इसे ग्रहणी कहते हैं, यह नाभि के ऊपर होती है, अग्निबलही इसके लिये उपस्तम्भ और बृंहणकर्त्ता होता है, यह अपक्व अन्न को धारण करती है और पक्व अन्न को पार्श्व द्वारा निकाल देती है । अग्निबल के दूषित होने से यह दूषित होकर अपक्व अन्न को ही निकालने लगती है ।

ग्रहणी रोग के भेद ।

वातात्पित्तात्कफात्सर्वैर्ग्रहणीदोषउच्यते । हेतुंलिंगंचिकित्साश्चशृणुतस्य पृथक्पृथक् ॥

अर्थ—ग्रहणीरोग चार प्रकार का होता है, यथा—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपाति । अब इनके पृथक् २ हेतु लक्षण और चिकित्सा वर्णन किये जाते हैं, उन्हे सुनो ।

वातिक ग्रहणी के हेतु ।

कटुतिक्तकषायातिरूक्षशीतलभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ करोतिकुपितोमन्दमाग्निंसंच्छाद्यमारुतः।

अर्थ—कड़वे, तीखे, कसीले, अत्यन्त रूखे, अत्यन्त शीतल भोजन करने से, थोड़ा भोजन करने से, वा सर्व था न करने से, अत्यन्त मार्ग चलने से, उपस्थित वेगों के रोकने से और मैथुन करने से वायु कुपित होकर अग्निको ढककर मन्द कर देती है, इसी से ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है ।

वातिक ग्रहणी के लक्षण ।

तस्यान्नंपच्यतेदुःखंशुक्तपाकःखरांगता॥

कण्ठस्यशोषः क्षुत्तृष्णातिमिरंकर्णयोः स्वनः । पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुजोऽभीक्ष्णं विसूचिका ॥ हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यंवैरस्यंपरिकर्तिका । गृद्धिःसर्वरसानांचमनसःसदनंतथा ॥ जीर्णेजीर्यतिचाध्मानंभुक्तेस्वास्थ्यमुपैतिच । सवातगुल्महृद्रोगप्लीहाशङ्कीचमानवः ॥ चिराद्दुःखंद्रवंशुष्कंतन्वामंशब्दफेनवत् । पुनःपुनःसृजेद्वर्चःकासश्वासान्वितोऽनिलात्॥

अर्थ—जिस मनुष्य के वादी से ग्रहणी रोग होता है उसका अन्न कठिनता से पचता है और अम्लपाक होता है अर्थात् खट्टी डकारें आने लगती हैं। देह में खुरदरापन, कण्ठ और मुख खुश्की, क्षुधा तृषा आंखों के साम्हने अंधेरा, कानों में शब्द, पार्श्ववेदना, ऊरुशूल, वंक्षणशूल, ग्रीवा में वेदना, वार वार विसूचिका, हृत्पीड़ा, कृशता दुर्बलता, विरसिता, ऐंठा, सम्पूर्ण रसों में स्पृहा, मन का शिथिल होना, अन्न के पचने पर वा पचने के समय अफरा, केवल भोजन करने से सुस्थता होती है। इस रोगी को यह शंका होती है कि मेरे वात गुल्म, हृद्रोग और प्लीहा होगई है। इस रोग में देर में कष्ट से पतला, सूखा थोड़ा कच्चा, शब्दयुक्त, और झागदार मल वार२ निकलता है। तथा रोगी के खांसी और श्वास भी उत्पन्न हो आते हैं।

पैतिक ग्रहणी का हेतु ।

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैःपित्तमुल्वणम् । अग्निमाप्लावयद्धन्तिजलंतप्तमिवानलम् ॥

अर्थ—कड़वा, अजीर्णकर्त्ता, विदाही, खट्टा और क्षार आदि के सेवन करने से पित्त प्रवल होजाता है। और प्रवल होकर जठराग्नि को आप्लावित करता हुआ इस तरह मन्द कर देता है जैसे गर्मजल अग्नि को बुझाता है।

पैत्तिक ग्रहणी के लक्षण ।

सोऽजीर्णंनीलपीताभम्पीताभःसार्यतेद्रवम् । पूत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृषार्दितः ॥

अर्थ—इस रोगी के अपक्व, नीलापीला वा पीलेरंग का पतला दस्त होता है, सड़ी हुई खट्टी डकार आती है, हृदय और कंठ में दाह, अरुचि और तृषा आदि उपद्रव होते हैं।

श्लैष्मिक ग्रहणी का हेतु ।

गुर्वतिस्निग्धशीतान्नभोजनादतिभोजनात् । भुक्तमात्रस्यचास्वप्नाद्धन्त्यग्निंकुपितःकफः ॥

अर्थ—भारी, अत्यन्त चिकना और अत्यन्त ठंडा भोजन करने से, सर्वथा भोजन न करने से वा वहुत भोजन करतेही सो रहने से कफ कुपित होकर अग्निको मन्द करदेता है, इस से श्लैष्मिक ग्रहणी रोग की उत्पत्ति होती है।

श्लैष्मिक ग्रहणी रोग के लक्षण ।

तस्यान्नंपच्यतेदुःखंहृल्लासच्छर्घरोचकाः। आस्योपदेहमाधुर्य्यकासष्ठीवनपीन

साः ॥ हृदयंमन्यतेस्त्यानमुदरंस्तिमि तंगुरु । दुष्टोमधुरउद्गारःसदनंस्त्रीष्वह र्षणम् ॥ भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्र वर्त्तनम् । अकृशस्यापिदौर्बल्यमालस्यं चकफात्मके ॥

अर्थ—इस रोगी का अन्न बडी कठिनता से पचता है तथा हृल्लास, वमन, अरुचि, मुखोपलेप, मुख में मीठापन, खांसी, कफ, पीनस, हृदय में स्त्यान, पेट में स्तिमिता और भारापन, विगड़ी हुई मीठी डकार, अंगसाद, स्त्री में अनिच्छा, फटाहुआ, कच्चा, कफ से लिपटा हुआ भारी मल का प्रवृत होना, विनाही कृशता दुर्वलता और आलस्य। ये सब कफात्मक ग्रहणी के लक्षण हैं।

यश्चाग्निःपूर्वमुद्दिष्टोरोगानीकेचतुर्विधः । संचापिग्रहणीदोषंसमवर्जंप्रचक्ष्महे ॥ पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिंगसमागमे । त्रिदोषंनिर्दिशेत्तेषांभेषजंशृणवतःपरम् ॥

अर्थ—विमान स्थान के रोगानीकाध्याय में जो चार प्रकार की अग्नि कही गई है उस में समाग्नि को छोड़कर शेष तीन प्रकार की अग्नि ग्रहणी दोषका कारण है।

वातादि तीनों प्रकार की ग्रहणियों के कहे हुए हेतु और लक्षणों का समागम त्रिदोषज ग्रहणी का कारण है। अब यहां से उनकी पृथक् पृथक् चिकित्सा वर्णन करते हैं।

ग्रहणी की चिकित्सा।

ग्रहणीमाश्रितंदोषंविदग्धाहारमूर्च्छितम्। सविष्टम्भप्रसेकार्तिविदाहारुचिगौरवम् ॥ आमलिंगान्वितंदृष्ट्वासुखोष्णेना म्बुनोद्धरेत् । फलानांवाकषायेणपिप्प लीसर्षपैस्तथा ॥ लीनंपक्वाशयस्थंवाप्ला व्यमामंसदीपनैः ।

अर्थ—विदग्ध आहार से मूर्च्छित होकर जब दोष ग्रहणी का आश्रय लेलेते हैं तब विष्टम्भता, लालास्राव, अर्त्ति, विदाह, अरुचि, भारापन और आम के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। उस समय सुहाता हुआ गरम जल, मेनफलका काथ वा पीपल और सरसों का कल्क देकर वमन करा देवै। तथा जो पक्वाशय में लीन होजाय तौ संदीपन औषधों के प्रयोग से आम को निकाल डाले।

शरीरानुगतेसामेरसेलंघनपाचनम् ॥ वि शुद्धामाशयायास्मैपञ्चकोलादिभिर्युतम्। दद्यात्पेयादिलघ्वन्नंपुनर्योगांश्चदीपनान्

अर्थ—जब आम रस शरीर में फैलजाय तव लंघन पाचन औषधियों का प्रयोगकरै। इस तरह आमाशय के विशुद्ध होने पर पंचकोलादि मिश्रित पेयादि लघु अन्न तथा संदीपन योगों का प्रयोग करै।

ज्ञात्वातुपरिपक्वामंमारुतग्रहणीगदम् । दीपनीययुतंसर्पिःपाययेताल्पशोभिषक्॥ किञ्चित्सन्धुक्षितेत्वग्नौसक्तविण्मूत्रमारुत म् । द्वित्रीण्यहानिसस्नेहंस्नेहाभ्यक्तंनिरू हयेत् ॥ ततएरण्डतैलेनसर्पिषातैलकेन वा । सक्षारेणानिलेशान्तेस्रस्तदोषंविरे चयेत् ॥ शुद्धरूक्षाशयंबद्धवर्चसञ्चानु वासयेत् । दीपनीयाम्लवातघ्नसिद्धतै

लेनमात्रया ॥ निरूढश्चविरिक्तश्चसम्य क्चैवानुवासितः । लघ्वन्नप्रतिसम्भुक्तः सर्पिरेवाचरेत्पुनः ॥

अर्थ—वातज ग्रहणी रोग में आम की परिपक्वता जान पड़े तौ दीपनीय औषधियों से सिद्ध किया हुआ घृत थोड़ा थोड़ा देवै । इस से अग्निके कुछ वढने पर जब विष्टा, मूत्र और अधोवायु की विवद्धता दिखाई देवै तौ दो तीन दिन तक स्नेहन कर्म और अभ्यक्त करने के पश्चात् निरूहण वस्ति देवै । इस तरह दोषों के शिथिल होने पर तथा वादी के शान्त होने पर क्षार युक्त अंडी का तेल वा विरेचन औषधियों द्वारा सिद्ध किया हुआ घृत वा तेल देकर विरेचन करावै । इस तरह संशोधन औषधों के प्रयोग से पक्वाशय के रूक्ष होने पर विष्टाकी विवन्धता में दीपनीय औषधों का क्काथ वा वातनाशक औषधियों से सिद्ध किये हुए तेल द्वारा अनुवासन वस्ति देवै । इस तरह अच्छी तरह निरूहण, विरेचन और अनुवासन होने के पश्चात् लघु अन्न का भोजन कराके नीचे लिखे हुए घृतों का सेवन करावै ।

द्विपंचमूल्यादि घृत ।

द्वेपञ्चमूलेसरलंदेवदारुसनागरम् । पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम् ॥ शणबीजंयवान्कोलान्कुलत्थान्सुरभीं तथा । पाचयेदारनालेनदध्नासौवीर केणवा ॥ चतुर्भागावशेषेणपचेत्तेनघृताढकम् । स्वर्जिकायावशूकाख्यौक्षारौ दत्त्वाचयुक्तितः ॥ सैन्धवोद्भिदसामुद्र विडानांरोमकस्यच । ससौवर्चलपाक्यानांभागान्द्विपालिकान्पृथक् ॥ विनीय चूर्णितान्सिद्धात्ततोद्वेद्वेपलेपिवेत् । करोत्यग्निंबलंवर्ण्यंवातघ्नंभुक्तपाचनम् ॥

अर्थ—दोनों पंचमूल, सरला, देवदारु, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, सन के वीज, जौ, वेर, कुलथी और सुरभी इन सवको समान भाग लेकर चौगुनी, कांजी, दही वा सौवीर के साथ पकावे, जव चतुर्थांश शेष रहजाय तव उतारकर छानले, फिर उसमें सज्जी, जवाखार, सेंधा, उद्भिद, सामुद्र, विड, रोमक, सौवर्चल और पाक्य ये सात प्रकारके नमक सवको दोदो पल डालै और एक आढक घृत डालकर पकावै । यह घृत प्रतिदिन दोपल सेवन करनेसे अग्नि, बल, और वर्ण को बढ़ाताहै, बादीको मारताहै, भोजनको पचाताहै, ।

त्र्यूषणादि घृत ।

त्र्यूषणत्रिफलाकल्कोबिल्वमात्रेगुडात्पले । सर्पिषोऽष्टपलंपक्त्वामात्रांमन्दानिलःपिवेत् ॥

अर्थ—त्रिकुटा और त्रिफला का कल्क एकएकपल, गुड एकपल, घी आठपल, और चौगुना जल डालकर पाककरै और मात्रा के अनुसार सेवनकरै तौ मन्दाग्नि दूर होजाती है ॥

पंचमूलादि घृत और चूर्ण ॥

पञ्चमूलाभयाव्योषविडङ्गशठिभिर्घृतम् । शुक्तेनमातुलुङ्गस्यस्वरसेनार्द्रकस्यच ॥ शु

ष्कमूलककोलाम्बुचुक्रिकादाडिमस्यच ।
तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुषोदकैः ॥
काञ्जिकेनचतत्पक्वमग्निदीप्तिकरंपरम् ।
शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम्॥
सबीजपूरकरसंसिद्धंवापाययेद्घृतम् ।
सिद्धमभ्यञ्जनार्थञ्चतैलमेतैःप्रयोजयेत्॥
एतेषामौषधानांवापिवेच्चूर्णंसुखाम्बुना ।
वातेश्लेष्मावृतेसामेकफेवावायुनोद्धते ॥

अर्थ—पंचमूल, हरड, त्रिकुटा, वायविडंग, कचूर, इन सब से चौगुनाघी, शुक्त, बिजौरे का रस, अदरखकारस, पृथक् २ घी के समान लेवै । सूखी मूली,बेर, नेत्रवाला चूका, अनार इनका क्वाथ घीके समान, तक्र घी के समान तथा मस्तु, सुरामंड, सौवीरक और तुषोदक ये सब घृत के समान लेकर पकावै । यह घृत अत्यन्त अग्नि को बढाने वाला है तथा शूल, गुल्म, उदररोग, श्वास, खांसी और वातकफ को दूर करता है । अथवा सम्पूर्ण द्रव्यों का कल्क और केवल बिजौरेके रसमें सिद्ध कियाहुआ घृत भी ऊपर कहे हुए गुण करताहै । उक्त द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ तेल मालिश में लगावै । अथवा इन्हीं औषधों का चूर्ण गरम जलके साथ पीवै । इससे कफावृत वात, आमयुक्त कफ वा वातकफ दूर होजाते हैं ॥

मलपरीक्षा ॥

मज्जत्यामादगुरुत्वाद्विट्पक्वातुप्लवतेजले ।
विनातिद्रवसंघातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात् ॥
परीक्ष्यैवंपुरासामंनिरामंवासदोषिणाम्।
विधिनोपाचरेत्सम्यक्पाचनेनेतरेणवा ॥

अर्थ—कच्चामल भारीहोनेके कारण जल में डूब जाता है, पक्व विष्टा जल के ऊपर तैरता रहता है, परन्तु पकाहुआ मलभी अत्यन्त पतला, गाढा, अत्यन्त शीतलता युक्त वा श्लेष्मा से दूषित होने के कारण डूबजाता है । इस तरह रोगियों की आम सहित और आम रहित मलकी परीक्षा करै, तथा विधिपूर्वक पाचन और दीपन औषधियों द्वारा चिकित्सा करै ॥

चित्रकादि चूर्ण ॥

चित्रकंपिप्पलीमूलंद्वौक्षारौलवणानिच ।
व्योषंहिंग्वजमोदञ्चचव्यंचैकत्रचूर्णयेत् ॥
गुडिकामातुलुङ्गस्यदाडिमस्यरसेनवा ।
कृताविपाचयन्त्यामन्दीपयन्त्याशुचानलम् ॥

अर्थ—चीता, पीपलामूल, दोनोंक्षार, पांचोंनमक, त्रिकुटा, हींग, अजमोद और चव्य इन सबको बिजौरे वा अनार के रस में खरल कर के गोली बनालेवै। ये गोलियां आमको पचाती हैं और अग्नि को प्रदीप्त करती हैं ।

अन्यप्रयोग ॥

नागरातिविषामुस्तक्वाथःस्यादामपाचनः।
मुस्तान्तकल्कःपथ्यावानागरंचोष्णवारिणा ॥ देवदारुवचामुस्तनागरातीविषाभयाः । वारुण्यामासुतास्तोयेकोष्णे वालवणांपिवेत् ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस और मोथेकाक्वाथ आमको पचाता है । अथवा इन्हीं तीनों

द्रव्यों का चूर्ण, अथवा हरड़ अथवा सोंठ को गरमजल के साथ फांकने से आंम पचजाता है । अथवा देवदारु, वच, मोथा, सोंठ, अतीस और हरड इनको वारुणी मद में डाले जब इनका सार उस में आजाय तब छानकर पीले अथवा इन्हीं द्रव्यों के चूर्ण को सेंधानमक मिलाकर गुनगुने जल के साथ पीवैतो आम पचजाता है ॥

पिबेत्सपरिकर्तामेमलेवादाडिमाम्बुना । विडेनलवणंपिष्ट्वाविल्वंचित्रकनागरम्॥ सामेवासकफेवातेकोष्ठशूलकरेपिबेत् । कलिङ्गहिंग्वातिविषावचासौवर्चलाभयाः छर्द्यर्शोग्रन्थिशूलेषुपिबेदुष्णेनवारिणा । पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णमरिचसंयुतम्॥ अभयांपिप्पलीमूलंवचांकटुकरोहिणीम्। पाठांवत्सकबीजानिचित्रकंविश्वभेषजम्॥ पिबेन्निष्काथ्यचूर्णानिपिष्ट्वाकोष्णेनवारिणा । पित्तश्लेष्माष्टतेवातेग्रहण्यामरुचौतथा ।

अर्थ—जो आम और ऐंठा हो तौ वेलगिरी, चीता और सोंठ तथा विड्नमक डालकर अनार के क्वाथ के साथ पीवै । कफयुक्त आम और वातज कोष्ठशूल में इन्द्रजौ, हींग, अतीस, वच, इनके चूर्ण को गरमजलके साथ पीवै । अथवा वमन अर्शरोग, ग्रन्थिशूल में हरड़, संचर नमक जीरा और काली मिरच का चूर्ण गरम जल के साथ पीवै । अथवा हरड़, पीपलामूल, वच, कुटकी, पाठा,इन्द्रजौ,चीता और सोंठ इनका क्वाथ करके पीवे,अथवा इनका चूर्ण गरम जलके साथ फांकै तौ कफ,पित्त और वातकी ग्रहणी और अरुचि दूर होजाती हैं

सामेसातिविषाव्योषलवणक्षारहिंगुवत्॥ निःकाथ्यपाचयेच्चूर्णकृत्वावाकोष्णवारिणा । पिप्पलीनागरंपाठांशारिवांबृहतीद्वयम् ॥ चित्रकंकौटजंबीजंलवणान्यथपञ्चच । तच्चूर्णंसयवक्षारंदध्यूष्णाम्बुसुरादिभिः ॥ पिबेदग्निविवृद्ध्यर्थंकोष्ठवातहरंनरः ।

अर्थ—आमयुक्त पित्त श्लेष्मावृत ग्रहणी में अतीस त्रिकुटा,नमक,क्षार और हींग इन का क्वाथ करके वा चूर्ण बनाकर गरमजल के साथ पीवै । अथवा पीपल, सोंठ, पाठा, शारिवा, दोनोंकटेरी, चीता, कुड़ा केवीज, पांचों नमक और जवाखार इनका चूर्ण वनाकर दही, गरम जल वा सुराके साथ सेवन करै तौ अग्नि की वृद्धि होती है और कोष्ठगतवायु दूर होजाती है ।

मरिचादि चूर्ण ।

मरिचःकुञ्चिकाम्बष्ठावृक्षाम्लकुडवाः पृथक् ॥ पलानिदशचाम्लस्यवेतसस्य पलार्द्धिकम् । सौवर्चलंविडम्पाक्यंयवक्षारःससैन्धवः ॥ शटीपुष्करमूलानिहिंगुहिंगुशिवाटिका । तत्सर्वमेकतःसूक्ष्मं चूर्णकृत्वाप्रयोजयेत् ॥ हितंवाताभिभूतायांग्रहण्यामरुचौतथा ।

अर्थ—कालीमिरच, कालाजीरा, पाढ, वृक्षाम्ल इनको एक एक कुड़व ले । अमलवेत दसपल, तथा संचलनमक, विडनमक, पाक्यनमक, जवाखार, सेंधानमक, कचूर,

पुहकरमूल, हींग और हिंगुपत्री ये सब आधे आधे पल लेकर चूर्ण बना लेवै। यह चूर्ण वाताभिभूत ग्रहणी और अरुचि में हित है।

चतुर्णांप्रस्थमम्लानांत्र्यूषणाच्चपलत्रयम्॥ लवणानांचचत्वारिशर्करायाःपलाष्टकम्॥ संचूर्ण्यशाकसूपान्नरागादिष्ववचारयेत्॥ कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्ड्वामयगुल्मनुत्।

अर्थ—चारों प्रकारकी खटाई एक प्रस्थ, त्रिकुटा तीनपल, चार प्रकार के लवण चार पल, शर्करा आठपल इनका चूर्ण बनाकर साग, दाल, तथा रागादि में डालकर सेवन करता रहै तौ खांसी, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, पाण्डुरोग और गुल्म दूर होजातेहैं।

यवागू विधि।

चव्यत्वक्पिप्पलीमूलधातकीव्योषाचित्रकम्॥ कपित्थंविल्वमम्बष्टांशाल्मलंहस्तिपिप्पलीम्॥ शिलोद्भेदंतथाजाजींपिष्ट्वावदरभागिकम्। परिभर्ज्यघृतेदध्ना यवागूंसाधयेद्भिषक्॥ रसैःकपित्थचुक्रीकावृक्षाम्लैर्दाडिमस्यच। सर्वातिसारमन्दाग्निगुल्मार्शःप्लीहनाशिनी॥

अर्थ—चव्य, दालचीनी, पीपलामूल, धाय के फूल, त्रिकुटा, चीता, कैथ, बेलगिरी, पाठा, सेमर, गजपीपल, शिलोद्भेद, काला-जीरा ये सब एक२ तोले लेकर पीसडालै। फिर दही, वा कैथ, वा चूका, वा वृक्षाम्ल, वा अनारके रस के साथ यवागू तयार कर के घृत में छोंक कर सेवन करै तौ सर्वातिसार, मन्दाग्नि, गुल्म, अर्श और प्लीहा दूर होजाते हैं।

भोजनादि विधि।

पञ्चकोलकयूषश्चमूलकानांचसोषणः। स्निग्धोदाडिमतक्राम्लोजाङ्गलःसंस्कृतो रसः॥ क्रव्यादस्वरसःशस्तोभोजनार्थे सदीपनः। तक्रारनालमद्यानिपानार्थेरिष्टएवच॥

अर्थ—पंचकोल के साथ सिद्ध किया हुआ मूंग का यूष, सूखी मूली का यूष, अनार वा तक्रकी खटाई डालकर सिद्ध किया हुआ जांगल पशुओं का मांसरस, अथवा मांसाहारी जीवों का मांसरस भोजन में हित है और मठा, कांजी वा मद्य पीने में हित है।

तक्रके गुण।

तक्रन्तुग्रहणीदोषेदीपनग्राहिलाघवात्। श्रेष्ठंमधुरपाकित्वान्नचपित्तंप्रकोपयेत्॥ कषायोष्णविकासित्वाद्रौक्ष्याच्चैवकफेमतम्॥ वातेस्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहि तत्॥ तस्मात्तक्रप्रयोगायेजठराणांतथार्शसाम्। विहिताग्रहणीदोषेसर्वशस्तान् प्रयोजयेत्॥

अर्थ—दीपन, संग्राही और हलका होने के कारण तक्र ग्रहणी दोषों में हित है। मधुर पाकी होने से पित्त को कुपित नहीं करता है। यह कषाय, उष्ण, विकासी और रूक्ष होने से कफ में हितकारक है। यह स्वादु, अम्ल और सान्द्रहै अतएव वात में हितहै। ताजा मठा अविदाही होता है।

इसी कारणसे तक्रके जोजो प्रयोग जठर रोग और अर्शरोगमें कहे गयेहैं वेभी ग्रहणी दोषमें प्रशस्तहैं।

तक्रारिष्ट।

यवान्यामलकेपथ्यामरिचंत्रिपलांशिकम्। लवणानिपलांशानिपञ्चचैकत्रचूर्णयेत् ॥ तक्रकंसासुतंतक्रंतक्रारिष्टंपिबेन्नरः। दीपनंशोथगुल्मार्शःक्रिमिमेदोदरापहम् ॥

अर्थ—अजवायन, आंवला, हरड़, कालीमिरच, प्रत्येक तीन तीन पल; पांचों नमक एक एक पल इन सबका चूर्ण करले फिर इनको सोलह सेर मठे में भरकर तीन चार दिन तक रक्खा रहने देवै। इसतक्रारिष्ट का पानकरनेसे शोथ, गुल्म, अर्श, क्रिमिरोग, मेदरोग, उदररोग, दूर होजातेहैं और यह दीपनभी है।

स्वस्थानगतमुत्क्लिष्टमग्निनिर्वापकंभिषक्। पित्तंज्ञात्वाविरेकेणनिर्हरेद्वमनेनवा ॥ अविदाहिभिरन्नैश्चलघुभिस्तिक्तसंयुतैः। जाङ्गलानांरसैर्यूषैर्मुद्गादीनांखडैरपि ॥ दाडिमाम्लैःससर्पिष्कैर्दीपनग्राहिसंयुतैः। तस्याग्निंदीपयेच्चूर्णैःसर्पिर्भिर्वासतिक्तकैः

अर्थ—अग्निका बुझानेवाला पित्त जब अपने स्थान में हो तब विरेचन देवै और जब वह उत्क्लिष्ट हो तब वमन द्वारा निकालडालै। इस रोग में अविदाही, हलका, तिक्त औषधियों से संस्कृत भोजन, जांगलमांसरस मूंगकायूष, अनारदाने की खटाई, घृत तथा दीपन और संग्राही औषधियों से संस्कार किया हुआ खडयूष तथा दीपनीय चूर्ण और तिक्तक घृत के प्रयोगों से जठराग्नि को उत्तेजित करना उचितहै।

चन्दनादिघृत ॥

चन्दनंपद्मकोशीरंपाठांमूर्वांकुटन्नटम्। षड्ग्रन्थाशारिवास्फोतासप्तपर्णाटरूषकान् ॥ पटोलोदुम्बराश्वत्थवटप्लक्षकपीतनान्। कटुकारोहिणींमुस्तंनिम्बञ्चद्विपलांशिकम् ॥ द्रोणेऽपांसाधयेत्पादशेषेप्रस्थंघृतान्पचेत्। किराततिक्तेन्द्रयववीरामागधिकोत्पलैः ॥ कल्कैरक्षसमैःपेयंतत्पित्तग्रहणीगदे। तिक्तकंयंघृतंचोक्तंकौष्ठिकेतच्चदापयेत् ॥

अर्थ—चन्दन, पद्माख, उसीर, पाठा, मरोडफली, केवटीमोथा, वच, सारिवा, आस्फोता, सप्तपर्ण, अडूसा, परवल, गूलर, पीपल, बड, पाकर, आमडा; कुटकी, मोथा, नीम, इनमें से प्रत्येक द्रव्य दो २ पल लेकर एक द्रोणजल में सिद्धकरै जब चौथाई शेषरहजाय तब उतारकर छान ले और उस में एकप्रस्थ घी डालकर पकावै और इसमें साथ ही चिरायता, इन्द्रजौ, शालिपर्णी, पीपल, और नीलकमल इन सबका एक २ तोलेकल्क डाल देवै। इस घृतके पान करने से पित्तग्रहणी दूर होजाती है तथा कुष्ठरोग में जो तिक्तक घृत वर्णन किया गया है वह भी हित है ॥

नागराद्यचूर्ण ॥

नागरातिविषेमुस्तंधातकींसरसाञ्जनम्। वत्सकत्वक्फलंबिल्वंपाठांकटुकरोहिणीम्। पिबेत्समांशंतच्चूर्णंसक्षौद्रंतण्डुलाम्बु

ना ॥ पैत्तिकेग्रहणीदोषेरक्तंयच्चोपवे श्यते ॥ अर्शांसिचगुदेशूलंजयेच्चैवप्रवाहिकाम् । नागराद्यमिदंचूर्णंकृष्णात्रेयेन पूजितम् ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस, मोथा, धायकेफूल, रसौत, कुडाकीछाल, इन्द्रजौ, वेलगिरी, पाठा, कुटकी इनसवको समानभागलेकर चूर्ण वनावै इसचूर्णको शहत और तंडुलजलके साथ पीवै। इससे पित्तज ग्रहणीदोष, रक्तरोग, अर्श, गुदशूल और प्रवाहिका दूर होजाती हैं । इस नागराद्य चूर्णकी कृष्णात्रेयने वडी प्रशंसाकी है ॥

भूनिंवाद्यचूर्ण ॥

भूनिम्बंकटुकंव्योषंमुस्तमिन्द्रयवान्समान् । द्वौचित्रकाद्वत्सकत्वग्भागान्षोडश चूर्णयेत् ॥ गुडशीताम्बुपीतंतद्ग्रहणीदोषगुल्मनुत् । कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारनुत् ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, त्रिकुटा, मोथा, इन्द्रजौ, ये सव समान भाग लेवै । चीता दोभाग, कुडाकी छाल सोलहभाग इनसवका चूर्ण वनाकर गुड और ठंडे जलके साथ पानकरै तौ ग्रहणी दोष, गुल्म, कामला, ज्वर, पांडुरोग, मेह, अरुचि और अतिसार दूर होजाता है ॥

वचाद्यचूर्ण ॥

वचामतिविषांपाठांसप्तपर्णरसाञ्जनम् । श्योणाकोदीच्यकट्वङ्गवत्सकत्वग्दुरालभां ॥ दार्वीपर्पटकंमूर्वांयवानींमधुशिग्रु पटोलपत्रंसिद्धार्थानयाथिकञ्जातिपल्लवान् ॥ जाम्ब्वाम्रविल्वमध्यानि निम्बपत्रफलानिच । तद्रोगशमनमिच्छन्भूनिम्बाद्येनयोजयेत् ॥

अर्थ—वच, अतीस, पाठा, सप्तपर्ण, रसौत, नेत्रवाला, श्योनाक, नेत्रवाला, सोनापाठा, कुडाकी छाल जवासा, दारुहलदी, पितपापडा, मरोडफली, अजवायन, सहजना, परवलकेपत्ते, सफेद सरसों, यूथिका, चमेली के पत्ते, जामनकी गुठली की मींगी, आम की गुठली की मींगी वेलगिरी, नीमके पत्ते, निवौली, इन सवको भूनिम्बाद्य चूर्णके द्रव्योंको एकत्रित करके चूर्ण वनावै। यह ऊपर कहेहुए चूर्णके समानगुण कर्त्ता है ॥

किराततिक्ताद्य चूर्ण ॥

किराततिक्तषड्ग्रन्थात्रायमाणाकटुत्रिकम् । चन्दनंपद्मकोशीरंदार्वीत्वक्कटुरोहिणी ॥ कुटजत्वक्फलंमुस्तंयवानीदेवदारुच । पटोलनिम्बपत्रैलासौराष्ट्रातिविषात्वचः ॥ मधुशिग्रोश्चवीजानिमूर्वापर्पटकस्तथा । तच्चूर्णंमधुनालेह्यंपेयंमद्यैर्जलेनवा ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीरोगगुल्मशूलारुचिज्वरान् । कामलांसन्निपातंचमुखरोगांश्चनाशयेत् ॥

अर्थ—चिरायता, वच, त्रायमाणा, त्रिकुटा, चन्दन, पद्माख, खस, दारुहलदीकी छाल, कुटकी, कुडाकीछाल, कुडा केवीज, मोथा, आजवायन, देवदारु, परवल, नीम के पत्ते, इलायची, सौराष्ट्रमृत्तिका, अतीस, दालचीनी, लालसहजने के वीज, मरोडफली और पितपापडा, इन के चूर्णको

शहत के साथ चाटै अथवा मद्य वा जल के साथ पीवै। इससे हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, गुल्मरोग, शूल, अरुचि, ज्वर, कामला सन्निपात, और मुखरोग दूर होजाते हैं ॥

अन्यचूर्ण ॥

ग्रहण्यांश्लेष्मदुष्टायांवमितस्ययथाविधि। कटुत्रङ्गलवणक्षारैस्तिक्तैश्चाग्निंविवर्द्धयेत्॥

अर्थ—कफसे दूषित ग्रहणीरोग में विधिपूर्वक वमन कराने के पश्चात् कटुंवग, लवण, क्षार, तथा अन्य तिक्त द्रव्यों का प्रयोग करके अग्नि को वढावै ॥

अनुपानादि वर्णन।

पलाशंचित्रकंचव्यंमातुलुङ्गंहरीतकीम्। पिप्पलींपिप्पलीमूलंपाठांनागरधान्यकम्॥ कार्षिकाण्युदकप्रस्थेपक्त्वापादावशेषितम्। पानीयार्थंप्रयुञ्जीतयवागूंतैश्चसाधिताम्॥ शुष्कमूलकयूषेणकौलत्थेनाथवा पुनः। कटुम्लक्षारतीक्ष्णेनलघून्यन्नानिचाप्नुयात्॥ अम्लंचानुपिवेत्तक्रंतक्रारिष्टमथापिवा। मदिरांमध्वरिष्टान्वानिगदंशीधुमेववा॥

अर्थ—पलाश (शटीमूल), चीता,चव्य, विजौरा,हरड़ पीपल,पीपलामूल, पाठा, सोंठ, धनियां इन सब को एक एक कर्ष लेकर एक प्रस्थ जल में चढावै जव चौथाई शेष रहजाय तव उतार कर छान ले। इस जल को पीने के पानी में देवै तथा इन्हीं द्रव्यों से सिद्ध की हुई यवागू देवै।

कटु, अम्ल, क्षार, तीक्ष्ण द्रव्यों से सिद्ध किये हुए सूखीमूली के यूष वा कुलथी के यूष के साथ हलका अन्न खाने को देवै।

अनुपान में खट्टा तक्र, तक्रारिष्ट,मदिरा, मध्वरिष्ट, निगद वा शीधु इन में से कुछ पान करै।

मध्वासव।

द्रोणंमधुकपुष्पाणांविडङ्गानांततोऽर्द्धतः। चित्रकस्यततोऽर्द्धंस्यात्तथाभल्लातकाढकम्॥ मञ्जिष्ठार्द्धपलंचैवत्रिद्रोणेऽपांविपाचयेत्। द्रोणशेषेतुतच्छीतंमध्वर्धाढकसंयुतम्॥ एलामृणालागुरुभिश्चन्दनेनचरूषिते। कुम्भेमासस्थितेजातमासवन्तंप्रयोजयेत्॥ ग्रहणींदीपयत्येषबृंहणः कफपित्तजित्। शोषंकुष्ठंकिलासञ्चप्रमेहांश्चप्रणाशयेत्॥

अर्थ—महुआ के फूल एक द्रोण,वायविडंग आधा द्रोण, चीता चौथाई द्रोण भिलाया एकआढक,मजीठ आधा पल इन सब को तीन द्रोण जल में पकावै जव एक द्रोण शेष रहजाय तव उतारकर छान ले उस में ठंडा होने पर आधा आढक मधु मिलादेवै। फिर इस को एक घीकी चिकनी हांड़ी में भर देवै जिस के भीतर इलायची, कमलनाल अगर और रक्तचन्दन का कल्क युत रहा हो। इस घड़े को एक महीने तक वन्द रहने दे। जब यह उठ आवै अर्थात् आसव वनजाय तव इसका प्रयोग करै। यह आसव ग्रहणी को दीप्त करने वाला है, बृंहणकर्त्ता, कफपित्त नाशक, शोष[illegible] किलास और प्रमेह को दूर क[illegible]

दूसरा मध्वासव।

मधूकपुष्पस्वरसंशृतमर्द्धक्षयीकृतम्। क्षौद्रपादयुतंशीतंपूर्ववत्सन्निधापयेत्। तं पिबनग्रहणीदोषान्जयेत्सर्वान्हिताशनः॥ तद्वद्द्राक्षेक्षुखर्जूरस्वरसानासुतान्पिबेत्॥

अर्थ—महुआ के फूलों के रस को औटाकर आधा रहने पर उतार ले और ठंडा होने पर चौथाई शहत डालकर पहिले की तरह एक मास तक धरा रहने देवै। यदि हिताहार सेवी मनुष्य इस का पान करै तौ ग्रहणी रोग से मुक्त होजाता है।

इसी तरह दाख, ईख का रस और खजूर का आसव पान करै।

दुरालभासव।

प्रस्थौदुरालभायाद्वौप्रस्थमामलकस्यच। मुष्टीचित्रकदन्त्योर्द्वेप्रत्यग्रंचाभयाशतम्॥ चतुर्द्रोणेऽम्भसःपक्त्वासाकंद्रोणावशेषितम। सगुडाद्द्विशतंपूतंमधुनःकुडवायुतम्॥ तद्वत्प्रियङ्गोपिप्पल्याःविडंगानांचचूर्णितैः। कुडवैर्घृतकुम्भस्थंपक्षाज्जातंततःपिबेत्॥ ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकुष्ठवीसर्पमेहनुत्। स्वरवर्णकरश्चैषगरापित्तकफापहः॥

अर्थ—दो प्रस्थ जवासा, दो प्रस्थ आंवला, चीता और दंती दो दो पल, गुठली निकाली हुई सौ हरड़, इन सब को चार द्रोण जलमें पकावै, जब आधा शेषरहजाय तब छानकर ठंडा होनेपर दोसौपल गुड़, शहत एक कुड़व, प्रियंगु एककुड़व, पीपल एक कुड़व, वायविडंग एक कुड़व, इन सब को मिलाकर घी की चिकनी हांड़ी में भरकर रखदे, एक पखवारे पीछे इसका पान करै तौ ग्रहणी दोष, पाण्डुरोग, अर्श, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, विषदोष, पित्त और कफदूर होजाते हैं तथा स्वर और वर्ण वढ़ते हैं।

मूलासव।

हरिद्रापश्चमूलेद्वेवीरकर्षभजीवकम्। एषांपञ्चपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत्॥ द्रोणशेषेरसेपूतेगुडस्यद्विशतंभिषक्। चूर्णितान्कुडबार्द्धांशान्प्रक्षिपेच्चसमाक्षिकान्॥ प्रियंगुमुस्तमञ्जिष्ठाविडंगमधुकप्लवान्। रोध्रंशावरकंचैवमासार्द्धंस्थापयेत्ततः॥ एषमूलासवःसिद्धोदीपनोरक्तपित्तजित्। आनाहकफहृद्रोगपाण्डुरोगांगसादनुत्॥

अर्थ—हलदी, दोनों पंचमूल, वीरक, ऋषभक, जीवक, प्रत्येक पांच पांच पल लेकर चार द्रोण जल में पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले और ठंडा होने पर दो सौ पल गुड़ तथा एक कुड़व शहत डाल दे और प्रियंगु, मोथा, मजीठ, वायविडंग, मुलहटी, केवटीमोथा, पठानीलोध, ये सब आधे आधे कुड़व पीसकर डाल दे एक महीने पश्चात् इसका सेवन करै यह मूलासव अनुभूत और रक्तपित्त को जीतने वाला है, इस से आनाह, कफ, हृद्रोग, पांडु रोग और अंगसाद दूर होजाते है।

पिण्डासव।

प्रास्थिकंपिप्पलींपिष्ट्वागुडंमध्यंविभीतका।

त्।उद्कप्रस्थसंयुक्तंयवपल्लेनिधापयेत् ॥
तस्मात्सुजातात्पलंसलिलाञ्जलिसंयुतम्
पिवेत्पिण्डासवोह्येषरोगानीकविनाशनः॥
स्वस्थोप्येनंपिवेन्मासंनरःसिद्धंरसायनम्।
इत्थंह्येषामनुत्पत्तिरोगाणांयेप्रकीर्तिताः।

अर्थ—एक प्रस्थ पीपल, एक प्रस्थगुड़, एक प्रस्थ वहेड़े का गूदा, एक प्रस्थ जल इन सव को घी की चिकनी हांड़ी में भर कर जौ के ढेर में गाढ़ देवै। एक महीने पीछे जव यह तयार होजाय तव इस में से एक पल आधसेर जल में मिलाकर पान करै। यह पिण्डासव रोग समूहों का नाश करने वाला है। यदि इस सिद्ध रसायन का प्रयोग स्वस्थ पुरुष भी एक महीने तक करै तौ उसके रोग होने ही नहीं पाते हैं।

मध्वरिष्ट।

नवेपिप्पलीमध्वाक्तेकलसेऽगुरुधूपिते।
मध्वाढकंजलसमंचूर्णैनीमानिदापयेत् ॥
कुड़वार्द्धंविडङ्गानांपिप्पल्याःकुड़वंतथा।
चतुर्थकांशात्त्वक्क्षीर्य्योःकेशरंमरिचानि
च ॥ त्वगेलापत्रकशटीक्रमुकातिविषा
मूलम्। हरेणवेलुकतेजोह्वापिप्पलीमूलचि
त्रकान् ॥ कार्षिकांस्तान्स्थितंमासमतऊ
र्ध्वंप्रयोजयेत्। मन्दंसन्दीपयत्यग्निंकरो
तिविषमंसमम् ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीरोगकु
ष्ठार्शःश्वयथुज्वरान्। वातश्लेष्मामयां
श्चान्यान्मध्वरिष्टोव्यपोहति ॥

अर्थ—एक नवीन मिट्टीके घडे में अगरका धुआं देकर पिसीहुई पीपल शहतमें मिलाकर उसके भीतर लेप कर दे उस घड़े में एक आढक जल और एक आढक शहत भरकर नीचे लिखेहुए द्रव्यों का चूर्ण भरदेवै, यथा वायविडंग आधाकुडव, पीपल एक कुड़व, वंशलोचन एकपल, तथा केसर, कालीमिरच, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, कचूर, सुपारी, अतीस, हरेणु, एलुआ, चव्य, पीपलामूल, चीता, इनको एक एक कर्ष डालकर एक महीने तक धरा रहने दे। पीछे इसका प्रयोग करै। यह मन्दाग्नि को संदीपन करता है विषमाग्नि को समान करता है, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी रोग, कोढ, अर्श, सूजन, ज्वर, वात श्लैष्मिकरोग तथा अन्यरोगों को भी दूर करता है ॥

पीपलामूलादिप्रयोग ॥

समूलांपिप्पलींक्षारौद्वौपञ्चलवणानिच ॥
मातुलुंगाभयारास्नाशटीमरिचनागरम्।
कृत्वासमांशंतच्चूर्णंपिवेत्प्रातःसुखाम्बु
ना ॥ श्लैष्मिकेग्रहणीदोषेवलवर्णाग्निव
र्द्धनम्। एतैरेवौषधैःसिद्धंसर्पिःपेयंसमा
रुते ॥ गौल्मिकेषट्पलंप्रोक्तंभल्लातक
घृतश्चयत्।

अर्थ—पीपलामूल, पीपल, सज्जीखार, जवाखार, पाचोंनमक, विजौरा, हरड, रास्ना, कचूर, कालीमिरच, सोंठ, इन सवको समानभाग लेकर चूर्ण वनावै, प्रतिदिन प्रातःकाल गरमजल के साथ इसका सेवन करै तौ कफकी ग्रहणी दूर होजाती और वल, वर्ण तथा अग्नि वढती है थवा इन्हीं औषधियों से सिद्ध कि

घी बातयुक्त कफकी ग्रहणी में उत्तम होता है। गुल्मरोग के प्रकरण में कहाहुआ षट्पल घृत और भल्लातक घृतभी इसरोग में हित है ॥

क्षारघृत।

स्वर्जिकाविडकालोत्थलवणंयवशूकजम्॥ सप्तलाकण्टकारीचचित्रकश्चेतिदाहयेत्। सप्तकृत्वःस्रुतस्यास्यक्षारस्यद्व्याढकेनतु॥ आढकंसर्पिषःपक्त्वापिवेदग्निविवर्द्धनम्

अर्थ—सज्जी, विडनमक, कालानमक, जवाखार, सातला, कटेरी और चीता, इन सबमेंसे पिछिले तीनों की भस्म कर लेवै। इन को दो आढक जल में घोलकर सातवार छान ले पीछे इनमें एक आढक घृत डालकर पकावै, यह घृत अग्निको वढाने वाला होता है॥

पिप्पलीमूलादिक्षार॥

समूलांपिप्पलींपाठांचव्येन्द्रयवनागरम्॥ चित्रकातिविषेहिंगुश्वदंष्ट्रांकटुरोहिणीम्॥ वचांचकार्षिकंपञ्चलवणानांपलानिच॥ दध्नःप्रस्थद्वयेतैलसर्पिषोःकुडवद्वये। चूर्णीकृतानिनिष्क्वाथ्यशनैरन्तर्गतेरसे॥ अन्तर्धूमंततोदग्ध्वाचूर्णंकृत्वाघृताप्लुतम। पिवेत्पाणितलंतस्मिन्जीर्णेस्यान्मधुराशनः॥ वातश्लेष्मामयान्सर्वान्हन्याद्विषगरांश्चसः।

अर्थ—पीपलामूल, पीपल, पाठ, चव्य, इन्द्रजौ, सोंठ, चीता, अतीस, हींग, गोखरू, कुटकी, और वच इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक एक कर्ष लेवै। पांचों नमक पांचपल, दही दो प्रस्थ, घी तेल दो कुडव इन को जौ कुट करके क्वाथ करै और क्वाथ का जल उसी में लीन होजाय। फिर इस को एक हांडी में वन्दकरके ऐसी रीति से जलावै कि धूंआं वाहर न निकलने पावै। इस में से तोले भर चूर्ण घृत में सानकर सेवन करै। औषध के पचने पर मधुर भोजन करै। यह वात श्लैष्मिक रोग और सम्पूर्ण प्रकार के विषरोगों को दूर करता है।

भल्लातकादि क्षार।

भल्लातकंत्रिकटुकंत्रिफलांलवणत्रिकम्॥ अन्तर्धूमंद्विपलिकंगोपुरीषाग्निनादहेत्। सक्षारःसर्पिषापीतोभोज्योवाप्यवचूर्णितः॥ हृत्पाण्डुग्रहणीदोषगुल्मोदावर्तशोषनुत्।

अर्थ—भिलाया, त्रिकुटा, त्रिफला, लवण त्रिक (सेंधा, संचर और विड) प्रत्येक दो दो पल लेकर गौ के गोवर की अग्नि में अन्तर्धूम रीति से जलावै। इस क्षार को घृत में मिलाकर वा भोजन के साथ सेवन करै तौ हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी दोष, गुल्म, उदावर्त्त और शोष दूर होजाते है।

दुरालभादि क्षार।

दुरालभांकरञ्जौद्वौसप्तपर्णंसवत्सकम्॥ षड्ग्रन्थांमदनंमूर्वांपाठामारग्वधंतथा। गोमूत्रेणसमांशानिकृत्वाचूर्णानिदाहयेत्॥ दग्ध्वाचतंपिवेत्क्षारंग्रहणीबलवर्द्धनम्।

अर्थ—जवासा, दोनोंकंजे, सप्तपर्ण, इन्द्रजौ, वच, मेनफल, मरोडफली, पाठा

और अमलतास इन को समान भाग लेकर खरल करै और फिर अन्तर्धूम रीति से जलाकर गोमूत्र के साथ इस क्षार को सेवन करै तौ ग्रहणी के बलकी वृद्धि होती है।

भूनिम्बादिक्षार।

भूनिम्बंरोहिणींतिक्तांपटोलंनिम्बपर्पटम् ॥ दहेन्माहिषमूत्रेणक्षारएषोऽग्निवर्द्धनः ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, पर्वल, नीम और पित्तपापड़ा इन को अन्तर्धूमा रीति से जलाकर भैंसके मूत्र के साथ सेवन करै तौ अग्नि बढती है।

हरिद्रादिक्षार।

द्वेहरिद्रेवचाकुष्ठंचित्रकःकटुरोहिणी। मुस्तंचवस्तमूत्रेणसिद्धःक्षारोऽग्निवर्द्धनः।

अर्थ—दोनों हलदी, वच, कूठ, चीता, कुटकी, मोथा इनको अन्तर्धूम रीतिसे दग्ध करके बकेरे के मूत्र के साथ सेवन करै तौ अग्नि बढ़ती है।

क्षार वटिका।

चतुष्पलंसुधाकाण्डंत्रिपलंलवणत्रयात् ॥ वार्ताकीकुडवंचार्कादष्टौद्वेचित्रकात्पले। दग्धानिवार्ताकुरसेगुलिकाभोजनोत्तराः॥ भुक्तंभुक्तंपचत्याशुकासश्वासार्शसांहिताः। विसूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगशमनाश्चताः॥

अर्थ—सेंहुड की टहनी चार पल, तीनों नमक तीन पल, वार्ताक एक कुड़व, आक की जड़ आठ पल, चीता दो पल, इन को अन्तर्धूम रीति से दग्ध करके वार्ताकुरस में गोलियां बनावै। भोजन करने से पीछे इनका सेवन करै तौ किया हुआ भोजन शीघ्र पचजाता है तथा खांसी, श्वास अर्श विसूचिका, प्रतिश्याय और हृद्रोग शान्त होजाते हैं।

वत्सकादि क्षार।

वत्सकातिविषेपाठांदुःस्पर्शांहिंगुचित्रकम्। चूर्णीकृत्यपलाशाग्रक्षारेमूत्रस्रुतेपचेत् ॥ आयसेभाजनेसान्द्रात्तस्मात्कोलंसुखाम्बुना। मद्यैर्वाग्रहणीदोषशोथार्शःपाण्डुमान्पिवेत् ॥

अर्थ—कुड़ाकी छाल, अतीस, पाठा, जवासा, हींग और चीता इनका चूर्ण करके गोमूत्र में छाने हुए ढाक के क्षार में लोहे की कढाई में पकावै गाढा होने पर उतार ले। इस में से एक तोले भर गरम जल वा मद्य के साथ पान करै तौ ग्रहणी दोष, शोथ, अर्श और पाण्डुरोग शान्त होजाते हैं।

त्रिफलादि क्षार।

त्रिफलांकटभींचव्यंविल्वमध्यमयोरजः। रोहिणींकटुकांमुस्तंकुष्ठंपाठाश्चहिंगुच ॥ यवमुष्ककयोःक्षारमधुकंत्र्यूषणंवचाम्। विडङ्गंपिप्पलीमूलंस्वर्जिकांनिम्बचित्रकौ॥ मूर्वाजमोदेन्द्रयवान्गुडूचींदेवदारुच। कार्षिकंलवणानाञ्चपञ्चानांपालिकान्पृथक् ॥ भागान्दध्निलिकुडवेघृततैलेनमूर्च्छितान्। अन्तर्धूमंशनैर्दग्ध्वातस्मात्पाणितलंपिवेत् ॥ सर्पिषाकफवातार्शोग्रहणीपाण्डुरोगवान्। प्लीहमूत्रग्रहश्वासहिक्काकासक्रिमिज्वरान् ॥ शोषातिसारौय

ग्माणंप्रमेहानाहहृद्ग्रहान् । हन्यात्सर्वविषाणाञ्चक्षारोऽग्निजननोवरः ॥ जीर्णे रसैर्वामधुरैरन्नंस्यात्पयसापिवा ।

अर्थ—त्रिफला, कटभी, चव्य, वेलगिरी, लोहचूर्ण, कुटकी, मोथा, कूठ, पाठा,हींग जवाखार,घंटापारुलका क्षार,मुलहटी,पीपलामूल,त्रिकुटा, वच, वायविडंग, सज्जी, नीम, चीता, मूर्वा, अजमोद, इन्द्र जौ, गिलोय, देवदारु, प्रत्येक एक एक कर्ष, पांचोनमक पांचपल,इनका चूर्ण करके तीनकुडव दही में सान लेवै और थोडा सा घी तेल मिलाकर अन्तर्धूम रीति से जलाकर इस क्षार में से दो तोले प्रति दिन घृत के साथ सेवन करै। इस के सेवन करने से कफवात, अर्श, ग्रहणी दोष, पाण्डुरोग, प्लीहा, मूत्रग्रह, श्वास, हिचकी, खांसी, क्रिमिरोग, ज्वर, शोष, अतिसार, यक्ष्मा, प्रमेह, आनाह हृदयग्रह,तथा सब प्रकार के विषदोष शान्त होजाते हैं और अग्नि वढती है । औषध के जीर्ण होने पर मिष्ट मांसरस वा दूध के साथ भोजन करै ।

ग्रहणी दोष में अन्य नियम ।

त्रिदोषविधिविद्वैद्यःपञ्चकर्माणिकारयेत् घृतक्षारासवारिष्टान्दद्याच्चाग्निविवर्धनान् । क्रियायायानिलादीनांनिर्दिष्टाग्रहणींप्रति ॥ व्यत्यासाच्चांसमस्तांश्चकुर्याद्दोषविशेषवित् । स्नेहनंस्वेदनंशुद्धिर्लङ्घनंदीपनञ्चयत् ॥ चूर्णानिलवणक्षारमध्वरिष्टसुरासवाः । विविधास्तक्रयोगाश्चदीपनानाञ्चसर्पिषाम् ॥

अर्थ—त्रिदोष से उत्पन्न ग्रहणी में विधि के जानने वाले वैद्य को उचित है कि पंच कर्मों का प्रयोग करै तथा अग्नि के वढाने वाले घृत, क्षार, आसव और अरिष्टों को देवै । वातादि दोष जन्य ग्रहणी रोगों में जो जो क्रिया निर्दिष्ट की गई हैं उनका दोष विशेष के अनुसार व्यत्यास क्रम से प्रयोग करै अर्थात् जिस दोष की वृद्धि हो उसही के विपरीत चिकित्सा करै । इस रोगमें स्नेहन,स्वेदन,संशोधन,लंघन, दीपन, चूर्ण, लवण, क्षार, मध्वरिष्ट, सुरा, आसव अनेक प्रकार के तक्रयोग, और दीपनकर्त्ता घृतों का प्रयोग करना उचित है ।

ग्रहणीरोगमें आवस्थिकी क्रिया ।

ग्रहणीरोगिभिःसेव्याक्रियांचावस्थिकीं शृणु । ष्ठीवनंश्लैष्मिकेरूक्षंदीपनंतिक्तसंयुतम् ॥ सकृद्रूक्षंसकृत्स्निग्धंकृशेवहुकफेहितम् । परीक्ष्यामंशरीरस्यदीपनंस्नेहसंयुतम् ॥ दीपनंवहुपित्तस्यातिक्तंमधुरसंयुतम् । वहुवातस्यसस्नेहलवणाम्लयुतंहितम् ॥ सन्धुक्षतितदावन्हिरेषांविधिवदिन्धितः ॥

अर्थ—ग्रहणीरोगियों को जोजो आवस्थिकी क्रिया कर्त्तव्यहैं अब उनको सुनो । कफाधिक्य ग्रहणीमें रूक्ष, संदीपन और तिक्त औषधियों का क्वाथ पान करके लार टपकावै । जो कफाधिक्य में रोगी कृशहो तौ कभी रूक्षण और कभी स्नेहन कर्म करै। कफके क्षीणहोने पर स्नेहयुक्त दीपन औषधियों का प्रयोग करै । पित्ताधिक्य में

मधुरयुक्त दीपनकर्त्ता तिक्त औषधियोंका प्रयोग करै । वाताधिक्य में स्नेह, लवण और अम्ल संयुक्त दीपन औषधी देवै । दीपन कर्ता औषधियों के सेवन से जठराग्नि इसतरह प्रवल होजातिहै जैसे ईंधन जलने से अग्नि ॥

स्नेहमेवपरंविद्याद्दुर्वलानलदीपनम् । नालंस्नेहसमिद्धस्यशमायान्नंसुगुर्वपि ॥ मन्दाग्निरपिपक्वन्तुपुरीषंयोऽतिसार्य्यते॥ दीपनीयौषधैर्युक्तांघृतमात्रांपिवेत्तुसः । तयासमानःपवनःप्रसन्नोमार्गमास्थितः ॥ अग्नेःसमीपचारित्वादाशुप्रक्रमतेबलम् । काठिन्याद्यःपुरीषन्तुकृच्छ्रान्मुञ्चातिमानवः ॥ सघृतंलवणैर्युक्तंनरोऽन्नावग्रहं पिवेत् ।

अर्थ—दुर्वल अग्नि को वढाने के निमित्त घृत उत्तम होता है, जो अग्नि घृत से प्रदीप्त होती है उसे भारी अन्न भी नहीं बुझा सकता है । जो मन्दाग्निव्यक्ति पक्व पुरीष को अत्यन्त निकालता है उस को उचित है कि दीपनीय औषधियों से सिद्ध कियाहुआ घृत मात्रा के अनुसार पानकरै । इसके करने से समान वायु प्रफुल्लित होकर अपने मार्ग में स्थित रहती है तथा अग्नि के पास रहने से वह वल को शीघ्र वढाती है । जिस रोगीका मल कडा होकर कठिनता से निकलता है उसे नमक मिलाकर अन्नके साथ घृत देवै ॥

रौक्ष्यान्मन्देऽनलेचैवसर्पिर्वादीपनैर्युतम् ॥ अतिस्नेहात्तुमन्देऽग्नौचूर्णारिष्टासवाहितः । भिन्नेगुदोपलेपात्तुमलेतैलसुरासवाः ॥ उदावर्त्तात्तुमन्देऽग्नौनिरूहाःस्नेहवस्तयः । दोषवृद्ध्यातुमन्देऽग्नौशुद्धोदोषविधिंचरेत् ॥ व्याधिमुक्तस्यमन्देतुसर्पिरेवाग्निदीपनम् । उपवासाध्वखेदात्तुक्षामक्षीणकृशान्नरान् ॥ प्रसहानांरसैःसाम्लैःभोजयेत्पिशिताशिनाम् । लघुतीक्ष्णोष्णशोधित्वाद्दीपयन्त्याशुतेऽनलम् ॥ मांसोपचितमांसत्वात्तथाशुतरवृंहणाः ।

अर्थ—रूक्षता से अग्नि के मन्द होने पर दीपनीय औषधियों से युक्त घृत पान करावै । जो अत्यन्त स्नेहपान से मन्दाग्नि हुई हो तौ चूर्ण, अरिष्ट और आसवों का सेवन करावै । गुदोपलेप से जो मल भिन्न होगया हो तौ तैल, सुरा और आसव देवै उदावर्त्त से मन्दाग्नि होनेपर निरूहण और स्नेहन वस्ति देवै । दोषों की वृद्धि से जो मन्दाग्नि हो तौ संशोधन औषधों का प्रयोग करै । व्याधि दूर होने पर जो मन्दाग्नि रहै तौ अग्नि संदीपन घृतका प्रयोग करै । उपवास वा मार्ग के परिश्रमसे व्यथित होने के कारण मन्दाग्नि होने पर दुर्वल, कृश और क्षीणमनुष्यों को मांसाहारी प्रसह जन्तुओं का मांसरस खटाई डालकर देवै । ये मांसरस लघु, तीक्ष्ण, उष्ण और शोधनकर्त्ता होने से शीघ्रही अग्नि को प्रदीप्त करते हैं । मांसाहारी जन्तुओं का मांसभक्षण से परिपुष्ट होने के कारण शीघ्रही वृंहण कारक होता है ।

नाभोजनेनकायाग्निर्दीप्यतेनातिभोजनात् ॥ यथानिरिन्धनोवह्निरल्पोवातीन्धनावृतः । स्नेहान्नविधिभिश्चित्रैश्चूर्णारिष्टसुरासवैः ॥ प्रयुक्तैर्भिषजासम्यग्वलमग्नेःप्रवर्द्धते । यथाहिसारदार्वग्निःस्थिरःसन्तिष्ठतेचिरम् ॥ स्नेहान्नविधिभिस्तद्वदन्तराग्निर्भवेत्स्थिरः । हितंजीर्णेमितञ्चाश्नंश्चिरमारोग्यमश्नुते ॥ अवैषम्येणदोषाणामग्निवृद्धौयतेतवा । समैर्दोषैःसमोमध्येदेहस्योष्माग्निसंस्थितः ॥ पचत्यन्नंतदारोग्यपुष्ट्यायुर्बलवृद्धये । दोषैर्मन्दोऽतिवृद्धोवाविषमैर्जनयेद्गदान्॥ पाच्यंमन्दस्यतत्रोक्तमतिवृद्धस्यवक्ष्यते ।

अर्थ—भोजन न करने से अथवा अति भोजन करने से जठराग्नि नहीं वढने पाती है, जैसे विना ईंधन के, वा अल्प ईंधन से वा अत्यन्त ईंधन से आनि नहीं जलने पाती है । अनेक प्रकार से स्नेह, अन्नपान तथा अनेक प्रकार के चूर्ण, अरिष्ट, सुरा और आसवों के सेवन करने से अग्नि का बल वढता है । जिस तरह सारयुक्त ईंधन की अग्नि वहुत देरतक ठहर सकती है उसी तरह जठराग्नि भी अनेक प्रकार के स्नेह और अन्नपान के सेवन करने से स्थिर रहती है । पूर्व आहार के पचने पर थोडा और हितकारी भोजन करने से वहुत दिवस तक आरोग्यता रहती है, दोषों में विषमता न होने पावै उस तरह अनि के बढाने में प्रयत्न करता रहै। देह में दोषों की समानता से यदि जठराग्नि समान बनीरहै तौ अन्न अच्छी तरह से पचकर पुष्टि, आयु और वल को वढाता है । विषम दोषों से अग्नि मन्द होकर वा अत्यन्त वढकर अनेक प्रकार के रोगों को उत्पन्न करती है ॥

इन में से मन्दाग्नि को वढाने वाली औषधें वर्णन करदी गई हैं और अब अति वृद्ध अग्नि की औषध कहते हैं ॥

अत्यग्नि के उपद्रवादि ॥

नरेक्षीणकफेपित्तंकुपितंमारुतानुगम् ॥ स्वोष्मणापावकस्थानेबलमग्नेःप्रयच्छति । तथालब्धबलोदेहेविरूक्षेसानिलोऽनलः॥ परिभूयपचत्यन्नंतैक्ष्ण्यादाशुमुहुर्मुहुः । पक्त्वान्नंसततंधातून्शोणितादीन्पचत्यपि ॥ ततोदौर्बल्यमातङ्कान्मृत्युञ्चोपनयेन्नरम् । भुक्तेऽन्नेलभतेशान्तिंजीर्णमात्रेप्रताम्यति । तृट्श्वासदाहमूर्च्छाद्याव्याधयोऽत्यग्निसम्भवाः ।

अर्थ—कफके क्षीण होने पर पित्तवायु का अनुगमन करके अत्यन्त कुपित होजाता है और अपनी गरमी से अग्निस्थान में जाकर अग्नि को अत्यन्त वलवान् करदेता है । इस तरह रूक्ष देह में वायुसहित अग्नि वलको पा कर अन्न को पराभव कर देती है और अपनी तीक्ष्णता के कारण अन्न को शीघ्रही बार वार पचाती है । इसतरह अन्न का पाक करके रक्तादिधातुओं का भी पाक करदेती है। तदनन्तर रोगीको दुर्वलता, रोग तथा मृत्यु पकड़ लेती है। भोजन करतेही कुछ शान्ति होजाती है और उस

के पचतेही फिर ताप होने लगता है। इस अत्यग्निके कारण तृषा, श्वास, दाह, मूर्च्छा आदि अनेक रोग होजाते हैं।

अत्यग्निकी शान्ति का उपाय।

तमत्यग्निंगुरुस्निग्धस्वादुसान्द्रहिमस्थिरैः। अन्नपानैर्नयच्छान्तिंदीप्तमग्निमिवाम्बुभिः॥ मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपिभोज्यान्यस्योपहारयेत्॥ निरिन्धनोऽन्तरंलब्धायथैनंनविपादयेत्॥

अर्थ—जैसे जलती हुई अग्नि को पानी से बुझाते हैं वैसेही गुरु, स्निग्ध, मधुर, गाढे, शीतल और कठोर पदार्थों का भोजन कराके उस अत्यग्नि को शान्त करै। वार वार अजीर्ण होने पर भी भोजन कराताही रहै, क्योंकि इन्धनरूप भोजन के न मिलने से ऐसा न हो कि अग्नि उस मनुष्यको मारडालै।

अत्यग्नि में भोजनादि क्रम।

पायसंकृशरंस्निग्धंपैष्टिकंगुड़वैकृतम् ॥ अद्यात्तथौदकानूपपिशितानिघृतानिच। मत्स्यान्विशेषतःश्लक्ष्णान्स्थिरतोयचरांस्तथा॥ आविकंसघृतंमांसमद्यादत्यग्निनाशनम्। यवागूंसमधूच्छिष्टांघृतंवा क्षुधितःपिवेत्॥ पयोवाशर्करासर्पिर्जीवनीयौषधैःशृतम्। फलानांतैलयोनीनामुत्कुञ्चाश्चसशर्कराः॥ मार्दवंजनयत्यग्ने स्निग्धान्मांसरसांस्तथा। पिवेत्शीताम्बुनासर्पिर्मधूच्छिष्टेनवायुतम्॥

अर्थ—खीर, खिचडी, स्नेहयुक्त पैष्टिक पदार्थ, गुड़ के पदार्थ औदकमांस, आनूपमांस, घृतके पदार्थ, विशेष करके बंधेहुए जलकी मछली घृतभ्रष्ट भेड़का मांस अत्यग्नि के दूर करने के लिये सेवन करै। अत्यन्त भूख लगनेपर मोम डालकर यवागू अथवा घृतका पान मिश्री और करै अथवा दूधका पान करै अथवा जीवनीय गणोक्त औषधियों के साथ सिद्ध किया हुआ घृत पान करै। अथवा जिन से तेल वनता है उन उत्कुंच फलों को शर्करा मिलाकर भक्षण करै। स्निग्ध मांसरसों का सेवन करने से अग्नि मृदु पड़जाती है। पिघला हुआ मोम घृतमें मिलाकर पीवै ऊपर से ठंडा जल पीवै।

आनूपरससिद्धान्वात्रीन्स्नेहांस्तैलवर्जितान्। गोधूमचूर्णमन्थंवाव्यधयित्वाशिरांपिवेत्॥ पयसासम्मितञ्चापिघनंत्विःस्नेहसंयुतम्। नारीस्तन्येनसंयुक्तांपिवेदौदुम्बरींत्वचम्॥ आभ्यांवापायसंसिद्धमद्यादत्यग्निशान्तये। श्यामात्रिवृद्विपक्वंवापयोदद्याद्विरेचनम्॥ असकृत्पित्तशान्त्यर्थंपायसप्रतिभोजनम्। यत्किञ्चित्मधुरंमेध्यंश्लेष्मलंगुरुभोजनम्। तदत्यग्निहितंसर्वंभुक्त्वाप्रस्वपनंदिवा॥ मेध्यान्यन्नानियोत्यग्नावप्रशान्तःसमश्नुते। नतन्निमित्तमाप्नोतिव्यसनंपुष्टिमेतिसः॥ कफेवृद्धेजितेपित्तेमारुतेचानलःसमः। समधातोःपचत्यन्नंपुष्ट्यायुर्वलवृद्धये॥

अर्थ—आनूप मांसरस में सिद्ध करके तेल को छोड़कर तीन प्रकार के स्नेह (घी, चर्वी, मज्जा) सेवन करै। अथवा

शिरा मोक्षण करके गेहूं के चूनका मन्थ देवै। दूध के साथ गेहूं के चून का पाक करके गाढा कर ले और इस में घी, चर्वी और मज्जा डालकर सेवन करे, अथवा स्त्री के दूध के साथ गूलर की छाल औटाकर पान करे। अथवा स्त्री का दूध वा गूलर की छाल के साथ खीर पकाकर सेवन करै इस से अत्यग्नि शान्त होजाती है। अथवा श्यामा निसोथ के साथ दुग्धपकाकर विरेचन देवै। पित्त की शान्ति के निमित्त रोगी को खीर का भोजन करावै। मिष्ट मेध्य, और कफकारी भोजन करके दिन में सौना भी हित है। जो नित्य प्रति मेध्य अन्नों का सेवन करता रहता है उस के अत्यग्नि नहीं होने पाती किन्तु पुष्टि होतीहै।

कफके वढनेपर और वातपित्त के दूर होने पर अग्नि समान होजाती है और वह धातुओं की समानता प्रतिपादन करके पुष्टि, आयु और बलको बढाती है।

समशन के लक्षण।

पथ्यापथ्यमिहैकत्रभुक्तंसमशनंमतम्।

अर्थ—पथ्य और अपथ्य भोजन को मिलाकर करने का नाम समशन है।

विषमभोजन के लक्षण॥

विषमंबहुवाल्पंवाप्यप्राप्तातीतकालयोः॥

अर्थ—न्यून वा अधिक, विना समय वा समय के वीतनेपर जो भोजन कियाजाता है उसे विषम भोजन कहते हैं॥

अध्यशन के लक्षण है॥

भुक्तंपूर्वान्नशेषेतुपुनरध्ययनंमतम्। त्रीण्यप्येतानिमृत्युंवाघोरान्व्याधीन्सृजन्तिवा॥

अर्थ—पहिले भोजन के विना पचेही जो भोजन किया जाताहै उसे अध्यशन कहते हैं। ये तीनों प्रकार के भोजन मृत्यु अथवा घोर व्याधियों को उत्पन्न करते हैं।

दिन के भोजन का वर्णन॥

प्रातराशेत्यजीर्णेऽपिसायमाशोनदुष्यति। दिवाप्रबुध्यतोऽर्केणहृदयंपुण्डरीकवत्॥ तस्मिन्विबुद्धेस्रोतांसिस्फुटत्वंयान्तिसर्वशः। व्यायामाच्चविचाराच्चविक्षिप्तत्वाच्चचेतसः॥ उत्क्लेदमपगच्छन्तिदिवातेनास्यधातवः। अक्लिन्नेष्वन्नमासिक्तमन्यत्तेषुनदुष्याति॥ अविदग्धइवक्षीरे क्षीरमन्यद्विमिश्रितम्।

अर्थ—प्रातःकाल के भोजन के विना पचे भी जो सायंकाल में भोजन किया जाता है वह कुछ अवगुण नहीं करता है क्योंकि दिन में मनुष्य का हृदय इस तरह विकसित रहता है जैसे सूर्य की किरणों से कमल। उस के विकसित रहने से सम्पूर्ण स्रोत भी विकसित रहते हैं, तथा दिन में मनुष्य कुछन कुछ परिश्रम करता रहताहै, विचारताहै और चित्त भी इधर विधर चलता रहता है इस से धातुओं में क्लेद नहीं होने पाता है। अक्लिन्न धातुओं में दूसरा भोजन इसतरह अवगुण नहीं करता है जैसे अविदग्ध दूध में अन्य मिलाया हुआ दूध विकृत नहीं होताहै।

रात्रीके भोजनका वर्णन ।

रात्रौतुहृदयेम्लानेसंवृत्तेष्वयनेषुच ॥
यान्तिकोष्ठेचविक्लेदंसंवृत्तेदेहधातवः ।
क्लिन्नेष्वन्यदपक्केषुतेष्वासिक्तंप्रदुष्यति॥
विदग्धेषुपयःस्वन्यत्पयस्तप्तेष्विवार्पितम्।
नैशेष्वाहारजातेषुनाविपक्केषुवुद्धिमान् ॥
तस्मादन्यत्समश्नीयातंपालयिष्यन्वला युषी ।

अर्थ—रात्रि में हृदय मलीन रहता है, स्रोतः समूह अस्फुट रहते हैं, इसी तरह कोष्ठ भी सम्वृत रहता है और देहकी सम्पूर्ण धातु क्लिन्न रहती हैं, क्लिन्न धातुओंमें प्रथम भोजन के परिपक्व हुए विना दूसरीवार भोजन करना ऐसा अवगुण कर्त्ता है जैसे जले हुए तप्त दूध में और दूध का मेल विकृत होजाता है ।

अतएव रात्रि में कियेहुए आहार के विना पचे पुनर्वार आहार करना निषिद्ध है । पुनर्वार भोजन करनेसे वल और आयु की वृद्धि होती है ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

अन्तराग्निगुणादेहंयथाधारयतेचसः ॥
यथान्नंपच्यतेयांश्चयथाहारःकरोत्यपि ॥
येऽग्नयोयांश्चपुष्यान्तियावन्तोयेपचान्तियान् । रसादीनांक्रमोत्पत्तिर्मलानांतेभ्यएवच ॥ तृष्णानामाशुकृद्धेतुर्धातुकालोद्भवक्रमः । रोगैकदेशकृद्धेतुरन्तराग्निर्यथाधिकः । सन्दुष्यतियथादुष्टोयान्रोगाञ्जनयत्यपि। ग्रहणीयायथावच्चग्रहणीदोषलक्षणम् ॥ पूर्वरूपंपृथक्चैवव्यञ्जनंसचिकित्सितम् । चतुर्विधस्यनिर्दिष्टंतथा चावस्थिकीक्रिया ॥ जायतेचयथात्यग्निर्यच्चतस्यचिकित्सितम् । उक्तवानि हतत्सर्वंग्रहणीदोषकेमुनिः ॥

अर्थ—इस ग्रहणी दोष चिकित्सित अध्याय में भगवान् पुनर्वसुने अन्तर अग्नि के गुण, अन्तरअग्नि द्वारा देह धारण की रीति, अन्नके परिपाक की विधि, आहार विधि, अग्नि के भेद, अग्नि से पुष्ट होनेवाले द्रव्य, जिनको अग्नि पकाती है, रसादि धातुओं की क्रम से उत्पत्ति, धातुओं से मलकी उत्पत्ति, तृषाके शीघ्रकारी हेतु धातुका कालोद्भव क्रम, अन्तराग्नि द्वारा रोगैक देशकारक हेतु, दुष्ट अन्तराग्नि के दूषित होने की विधि, दूषित अग्नि से उत्पन्न रोगोंका वर्णन, ग्रहणी शब्दका अर्थ ग्रहणीदोष के यथावत् लक्षण चार प्रकार की ग्रहणी के पूर्वरूप, दोष भेद से ग्रहणी के पृथक् २ लक्षण, चिकित्सा, आवस्थिकी क्रिया, अत्यग्नि का लक्षण, और उस की शान्ति के उपाय ये सव इस अध्याय में वर्णन किये गये हैं ॥

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने ग्रहणी चिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

——:*:——

विंशोऽध्यायः।

अथातःपाण्डुरोगचिकित्सितंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अव हम यहां से पाण्डुरोग चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

पाण्डुरोग के भेद।

पाण्डुरोगाःस्मृताःपञ्चवातापित्तकफैस्त्रयः चतुर्थःसन्निपातेनपञ्चमोभक्षणात्मृदः॥

अर्थ—पाण्डुरोग पांच प्रकारका होताहै, यथा-वातिक,पैत्तिक,श्लैष्मिक,सान्निपातिक, और पांचवां मृद्भक्षणोद्भव।

पाण्डुरोग की उत्पत्ति।

दोषाःपित्तप्रधानास्तुयस्यकुप्यन्तिधातुषु। शैथिल्यंतस्यधातूनांगौरवञ्चोपजायते॥ ततोवर्णबलस्नेहायेचान्येऽप्योजसोगुणाः व्रजन्तिक्षयमत्यर्थंदोषदूष्यप्रदूषणात्॥ सोऽल्परक्तोऽल्पमेदस्कोनिःसारःशिथिलेन्द्रियः। वैवर्ण्यंभजतेतस्यहेतुंशृणुसलक्षणम्॥

अर्थ—जिस मनुष्यके पित्तप्रधान दोष धातुओं में कुपित होजाते हैं और उन के कोप के कारण धातुओं में शिथिलता और भारापन होता है, तव दोषों से दूष्यों के दूषित होने से देह के वर्ण, वल,स्नेह तथा ओजधातु के अन्यगुण अत्यन्त क्षीण हो-जाते हैं और उस रोगी के रुधिर और मेदा कम रहजाते हैं तथा शरीर निःसार और इन्द्रियां शिथिल पड़जाती हैं। उसकी देह का वर्ण भी विगड़ जाता है।

अव उसरोग के हेतु और लक्षणों का वर्णन करते हैं।

पाण्डुरोग के हेतु।

क्षाराम्ललवणात्युष्णाविरुद्धासात्म्यभोजनात्। निष्पावमाषपिण्याकतिलतैलनिषेवणात्॥ विदग्धेऽन्नेदिवास्वप्नाद्व्यायामान्मैथुनात्तथा। प्रतिकर्मर्तुवैषम्याद्वेगानाञ्चविधारणात्॥ कामचिन्ताभयक्रोधशोकोपहतचेतसः। समुदीर्णंयथापित्तंहृदयेसमवस्थितम्॥ वायुनावलिनाक्षिप्तंस्रोतोभिर्दशभिःसृतम्। प्रपन्नंकेवलंदेहंत्वङ्मांसान्तरमाश्रितम्॥ प्रदूष्यकफवातासृक्त्वङ्मांसानिकरोतितत्। वर्णान्हारितहारिद्रान्पाण्डून्बहुविधास्त्वचि॥ सपाण्डुरोगइत्युक्तस्तस्यलिंगंभविष्यतः।

अर्थ—खारे, खट्टे, नमकीन, अत्यन्त उष्ण, विरुद्ध और असात्म्य भोजन के करने से; चौलाई, उरद, वल, तिल और तेल के अत्यन्त सेवन से; अन्नके विदग्ध होने से दिन में सोने से,अत्यन्त शारीरिक परिश्रम से, अत्यन्त मैथुन से; स्नेहनादि पंचकर्मों की विषमता से, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों को रोकने से; काम, चिन्ता,भय क्रोध शोकादि से चित्तका पराभव होनेसे;हृदय-स्थ पित्त उद्गीर्ण होजाता है तव वायु उसे अत्यन्त वेग से फेंकती है और वह दसों धमनियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैलकर त्वचा और मांस के वीच में स्थित होजाता है तव कफ, वात, रुधिर, त्वचा और मांस

को दूषित कर देता है तथा त्वचा में हरा, हल्दी के समान पाण्डु तथा अनेक प्रकार के वर्णों को उत्पन्न करता है। इसी को पाण्डुरोग कहते हैं।

अब इस रोग के पूर्वरूपका वर्णन करते हैं।

पाण्डुरोग का पूर्वरूप।

हृदयस्पन्दनंरौक्ष्यंस्वेदाभावःश्रमस्तथा॥

अर्थ—हृदयका फडकना, रूक्षता, पसीने का अभाव तथा श्रम ये पाण्डुरोग के पूर्व रूप हैं।

पाण्डुरोग के साधारण लक्षण।

सम्भूतेऽस्मिन्भवेत्सर्वःकर्णक्ष्वेडोहतानलः। दुर्बलःसदनोन्निद्रश्रमभ्रमनिपीडितः गात्रशूलज्वरश्वासगौरवारुचिमान्नरः। मृदितैरिवगात्रैश्चपीडितोन्माथितैरिव॥ शूनाक्षिकूटोहरितःशीर्णलोमाहतप्रभः।कोपनःशिशिरद्वेषीनिद्रालुष्ठीवनोऽल्पवाक्॥ पिण्डिकोद्वेष्टकट्यूरुपादरुक्सदनानिच। भवन्त्यारोहणायासैर्विशेषश्चास्यवक्ष्यते॥

अर्थ—इस रोग के उत्पन्न होने पर कर्णनाद, मन्दाग्नि, दुर्बलता, अंगसाद, गतनिद्रता, श्रम, भ्रम, गात्रशूल, ज्वर, श्वास, भारापन और अरुचि, होती है। सम्पूर्ण देह मृदित, पीडित और उन्माथित होजाता है अक्षिकूट में सूजन, हरावर्ण, लोमों में शीर्णता, कांति का नष्ट होना, स्वभाव में क्रुद्धता, शरदी से द्वेष, निद्रालुता, लालास्राव, वाक्निग्रह, पिंडलियों में वायटे, तथा चलने फिरने से कमर, ऊरू और पांवों में वेदना और शिथिलता उत्पन्न होती है।

अब इसरोग के विशेष लक्षणों को कहते हैं।

वातज पाण्डुरोग के लक्षण।

आहारैरुपचारैश्चवातलैःकुपितोऽनिलः। जनयेत्कृष्णपाण्डुत्वंतथारूक्षारुणाङ्गताम् अङ्गमर्दरुजन्तोदकम्पंपार्श्वशिरोरुजम्। शकृच्छोपास्यवैरस्यशोफानाहबलक्षयान्

अर्थ—वातकर्त्ता आहार विहार के सेवन से वायु कुपित होकर शरीर के बर्ण को काला, पीला, रूक्ष वा लाल करदेती है। तथा अंगमर्द, वेदना, तोद, कम्प, पार्श्ववेदना, शिरोवेदना मलशोष, विरसता, शोष, आनाह तथा बलक्षय को उत्पन्न करती है॥

पित्तजपाण्डुरोगके लक्षण॥

पित्तलस्याचितंपित्तंयथोक्तैःस्वैःप्रकोपनैः। दूषयित्वाशुरक्तादीन्पाण्डुरोगायकल्पते। सपीतोहरिताभोवाज्वरदाहसमन्वितः। तृष्णामूर्च्छापरीतस्तुपीतमूत्रशकृन्नरः। स्वेदनःशीतकामश्चनचान्नमभिनन्दति॥ कटुकास्योनचास्योष्णमुपशेतेऽम्लमेववा। उद्गारोऽम्लोविदाहश्चविदग्धेऽन्नेऽस्यजायते॥ दौर्गन्ध्यंभिन्नवर्चस्त्वंदौर्बल्यंतमएवच।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका अपने कुपितकर्त्ता द्रव्यों के सेवन से पित्त बढकर रक्तादि धातुओं को दूषित कर के पाण्डुरोग को उत्पन्न करता है। पित्त जनित पाण्डुरोग में देहका वर्ण पीला अथवा हरा होजाता है। ज्वर, दाह, तृषा और मूर्च्छा इनसे रोगी ग्रस्त होजाता है, उस

के विष्टा और मूत्रका रंग पीला पड़जाताहै, पसीना आता है, ठंडी वस्तु प्यारी लगती है, अन्न से रुचि हटजाती है, मुख में कडवापन, उष्ण और खट्टे पदार्थ का अच्छा न लगना, खट्टी डकार, विदाह, अन्न की अपरिपक्कता, दुर्गन्धि, विष्टा का फटना और दुर्वलता ये वातें होती हैं तथा आखोंके साम्हने अन्धकार छाजाता है ॥

कफजपाण्डुरोग के लक्षण ॥

विवृद्धैःश्लेष्मलैःश्लेष्मापाण्डुरोगंसपूर्ववत् करोतिगौरवंतन्द्रांछर्दिंश्वेतावभासताम्। प्रसेकंलोमहर्षश्चसादंमूर्च्छांभ्रमंक्लमम्॥ श्वासकासौतथालस्यंअरुचिंवाक्स्वरग्रहम् । शुक्लमूत्राक्षिवर्चस्त्वंकटुरूक्षोष्णकासता ॥ श्वयथुंमधुरास्यत्वमितिपाण्ड्वामयःकफात् ।

अर्थ—कफकर्त्ता द्रव्यों के सेवन से संचित कफज पाण्डुरोग उत्पन्न होता है, इस से देह में भारापन, तन्द्रा, वमन, शरीर में सफेदाई की झलक, प्रसेक, लोमहर्षण, अंगसाद, मूर्च्छा, भ्रम, क्लम, श्वास, खांसी, आलस्य, अरुचि, वाक्ग्रह, स्वरभंग, मूत्र, नेत्र और विष्टा में सफेदाई तथा कडवे, रूक्ष और उष्ण पदार्थों पर मन चलना; ये सव कफज पाण्डु के लक्षण हैं ॥

सान्निपातिक पाण्डुरोग के लक्षण ॥

सर्वान्नसेविनःसर्वेदुष्टादोषास्तिदोषजम्॥ त्रिलिङ्गंसम्प्रकुर्वन्तिपाण्डुरोगंसुदुःसहम्।

अर्थ—त्रिदोषकर्त्ता अन्नों के सेवन करने से तीनों दोष कुपित होकर सान्निपातिक शोफ उत्पन्न करते हैं इस में तीनों दोषों के कुछ २ लक्षण पाये जाते हैं । यह रोग वडा भयंकर होता है ॥

मृद्भक्षणजन्य पाण्डुरोग ॥

मृत्तिकादनशीलस्यकुप्यत्यन्यतमोमलः॥ कषायामारुतंपित्तंमूषरामधुराकफम् । कोपयेन्मृद्रसादींश्चरौक्ष्यात्भक्तंविरूक्षयेत् ॥ पूरयत्यविपक्वैवस्त्रोतांसिनिरुणद्धिच । इन्द्रियाणांबलंतेजओजोवीर्यंनिहन्त्यच ॥ पाण्डुरोगंकरोत्याशुवलवर्णाग्निनाशनम् । शूनगण्डाक्षिकूटभ्रूनाभिपादाग्रमेहनः ॥ क्रिमिकोष्ठोऽतिसार्येत मलंसासृक्कफान्वितम् ।

अर्थ—मिट्टी खाने की आदत से तीनों दोषों में से कोई सा दोष कुपित होजाता है । कसीली मिट्टी वायु को, ऊषरा पित्त को और मधुर कफको विगाडदेती है ॥

मृत्तिका रूखी होने के कारण रसरक्तादि धातुओं को कुपित करती है और भोजन को रूखा कर देती है । और परिपाक को प्राप्त न होने के कारण स्रोतों को पूरित करके रोक देती है तथा इन्द्रियों के वल, तेज, ओज, और वीर्य को नष्ट कर के वल, वर्ण, और अग्नि के नाश करने वाले पाण्डुरोग को उत्पन्न करती है । इस रोग में गंडस्थल, आंख के कोये, भृकुटी नाभि, पावों के अग्रभाग और मेहनेंद्रिय में सूजन उत्पन्न होजाती है । रोग के कोष्ठ में कीडे पड़जाते हैं, उसे दस्त व-

हुत आते हैं तथा मल के साथ रुधिर और कफ निकलता है ॥

असाध्य पांडुरोग के लक्षण ॥

पाण्डुरोगाश्चिरोत्पन्नःखरीभूतोनसिध्यति कालप्रकर्षात्शूनानांयश्चपीतानिपश्यति । बद्धाल्पविट्कंसकफंहरितंयोऽतिसार्य ते ॥ दीनःश्वेतातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्छा तृषार्दितः । सनास्त्यसृक्क्षयाद्यश्चपाण्डु श्वेतत्वमाप्नुयात् ॥ इतिपञ्चविधस्यो क्तंपाण्डुरोगस्यलक्षणम् ।

अर्थ—वहुत दिनका पुराना पाण्डुरोग जिससे देह में खरदरापन होजाता है वह असाध्य होता है । जिस में वहुत दिनका होने के कारण सूजन होआतीहै और हरिद्वर्ण होता है, जो रोगी दीन होजाता है, सब शरीर सफेद पडजाता है, जो वमन, मूर्च्छा और तृषा से पीडित होता है और जो पाण्डुरोगी रुधिर की क्षीणता से सफेद होजाता है । वोह भी असाध्य होता है । इस तरह पांचों प्रकार के पाण्डुरोगों के लक्षण वर्णन कियेगये हैं ॥

कामलरोग के लक्षण ।

पाण्डुरोगीतुयोऽत्यर्थंपित्तलानिनिषेवते तस्यापित्तमसृक्मांसंदग्ध्वारोगायकल्प ते । हारिद्रनेत्रःसभृशंहारिद्रत्वङ्नखान नः ॥ रक्तपीतशकृन्मूत्रोभेकवर्णोहतेन्द्रि यः । दाहाविपाकदौर्वल्यसदनारुचिकर्षि तः ॥ कामलावहुपित्तैषाकोष्ठशाखाश्र यामता ।

अर्थ—जो पाण्डुरोगी पित्तकर्त्ता पदार्थों का अत्यन्त सेवन करता है, उसका पित्त रक्त और मांस को दूषित करके रोग को उत्पन्न करता है । इस में रोगी के नेत्र हलदी के समान पीले होजाते हैं तथा त्वचा नख और मुख हलदी के समान होजाते हैं । उसका विष्टा और मूत्र लाल और पीला पडजाता है, उस के देह का वर्ण वर्षा के मेंडक का सा होजाता है,इन्द्रियां हतशक्ति होजाती हैं, रोगी दाह, अविपाक दुर्वलता, अंगसाद और अरुचि से कृश होजाता है, इसी को कामला रोग कहते हैं, इस में पित्तकी अधिकता होती है, कोष्ठ और शाखा इस के आश्रय स्थान होते हैं ।

कुम्भकामला के लक्षण ।

कालान्तरात्खरीभूतात्कृच्छ्रास्यात्कुम्भ कामला ॥ कृष्णपीतशकृन्मूत्रोभृशंशूनश्च मानवः । संरक्ताक्षमुखच्छर्दिविण्मूत्रोयश्च ताम्यति ॥ दाहारुचितृषानाहतन्द्रामोह समन्वितः । प्रणष्टाग्निर्विसंज्ञश्चनिर्यात्याशु कामली ॥ साध्यानामितरेषांतुभेषजंसं प्रक्ष्यते

अर्थ—यही कामला रोग कालान्तर में खरता को प्राप्त करके कष्टसाध्य कुंभकामला को उत्पन्न करता है । इस में विष्टा और मूत्र काले पीले पड़जाते हैं, सूजन वहुत होआती है, इस में आंख, मुख,वमन विष्टा और मूत्र का रंग लाल होजाता है, दाह, अरुचि, तृषा, आनाह, तन्द्रा और मोह उत्पन्न होते हैं, अग्निमंद पड़जाती

है, संज्ञा नष्ट होजाती है, यह कामलारोगी शीघ्र मरजाता है।

अब इनसे अतिरिक्त साध्य रोगों की चिकित्सा का वर्णन करते है।

पांडुरोग में चिकित्सा विधान।

तत्रपाण्डवामयीस्निग्धस्तीक्ष्णैरूर्ध्वानुलोमिकैः ॥ संसोध्योमृदुभिस्तिक्तैःकामली तुविरेचनैः। ताभ्यांसंशुद्धकायाभ्यांपथ्यान्यन्नानिदापयेत्॥ शालयोयवगोधूमपुराणाःसूपसंस्कृताः। मुद्गाडकमसूरैश्चजाङ्गलैश्चरसैर्हिताः ॥ यथादोषंविशिष्टश्चतयोर्भैषज्यमाचरेत्।

अर्थ—इन में से पाण्डुरोगी को स्निग्ध और तीक्ष्ण वमन, बिरेचन द्वारा संशोधन देवै। कामलारोगी को मृदु और तिक्त विरेचन देवै। जब इन से देह शुद्ध होजाय तब पथ्य अन्नों का सेवन करावै, यथा पुराने शालीचांवल, जौ, गेंहूं, मूंग, अडहर, मसूर तथा जांगल मांसरस का सेवन हित है। इस रोग में जिस दोष की अधिकता हो उसी के अनुसार औषधियोंका प्रयोग हितकर है।

स्नेहनघृत।

पञ्चगव्यंमहातिक्तंकल्याणकमथापिवा॥ स्नेहनार्थंघृतंदद्यात्कमलापाण्डुरोगिणे।

अर्थ—कामलारोगी तथा पांडुरोगियों को पंचगव्य, महातिक्तक और कल्याणकघृत स्नेहन करने के लिये देवै।

दाड़िमाद्यघृत।

दाडिमात्कुडवोधान्यात्कुडवार्द्धंपलंपलम् ॥ चित्रकात्शृङ्गवेराच्चपिप्पल्यष्टमिकात्तथा। तैःकल्कैर्विंशतिपलंघृतस्यसलिलाढके॥ सिद्धंहृत्पाण्डुरोगार्शःप्लीहवातकफार्तिनुत्। दीपनंश्वासकासघ्नंमूढवातेचशस्यते॥ दुःखप्रसविनीनांचवन्ध्यानांचैवगर्भदम्।

अर्थ—अनारकीछाल एक कुडव, धनियां आधा कुडव, चीता एकपल, अदरख एक पल, पीपल, आधा पल, इनका कल्क बीस पल घृत और एक आढ़क जल में सिद्ध करै यह हृद्रोग, पांडुरोग, अर्श, प्लीहा, वातकफको दूर करता है, यह दीपन है, श्वास कासको दूर करनेवाला है। और मूढ़वात में हितकारी है। जिन स्त्रियों के बालक कष्ट से होता है उनको सुखदाई है वन्ध्यास्त्रियों को गर्भ देनेवाला है।

कटुकाद्यघृत।

कटुकारोहिणीमुस्तंहरिद्रेवत्सकात्फलम्। पटोलंचन्दनंदूर्वात्रायमाणादुरालभा। कृष्णापर्पटकोनिम्बोभूनिम्बोदेवदारुच। तैःकार्षिकैर्घृतप्रस्थःसिद्धःक्षीरचतुर्गुणः। रक्तपित्तंज्वरंदाहंश्वयथुंसभगन्दरम्॥ अर्शांस्यसृक्दरंचैवहन्तिविस्फोटकांस्तथ

अर्थ—कुटकी, मोथा, दोनों हलदी, इन्द्रजौ, परवल, रक्तचन्दन, दूर्वा, त्रायमाणा, जवासा, पीपल पित्तपापड़ा, नीम, चिरायता देवदारु, प्रत्येक एक २ कर्ष, घी एक प्रस्थ दूध चार प्रस्थ इनको मिलाकर सिद्धकिया हुआ घृत रक्तपित्त, ज्वर, दाह, सूजन

भगन्दर, अर्श, रक्तप्रदर तथा विस्फोटक रोगोंको दूर करता है ॥

पथ्याघृत ।

पथ्याशतरसेपथ्यावृन्तार्द्धशतकल्कवान्॥ प्रस्थःसिद्धोघृतात्पेयःसपाण्डवामयगुल्म नुत् ।

अर्थ—सौ पल हरड़को सोलह सेर जल में औटावै चौथाई शेष रहने पर उतार कर छान ले फिर इस में पचास पल हरड़ के डंठल पीसकर मिलावै और उस में एक प्रस्थ घी सिद्ध करके पान करै तौ पांडुरोग और गुल्मरोग दूर होजाते हैं ।

दन्त्याद्य घृत ।

दन्त्याश्चतुष्पलरसेपिष्टैर्दन्तीशलाटुभिः। तद्वत्प्रस्थोघृताद्गुल्मप्लीहपाण्ड्वार्तिदोष नुत् ।

अर्थ—चार पल दन्ती को आठ सेर जल में औटावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले, फिर इस में दन्ती के कच्चे फलों का कल्क मिलाकर एक प्रस्थ घृत सिद्ध कर लेवै, इससे गुल्मरोग, प्लीहा, पांडु अर्तिदोष दूर होजाते हैं ।

द्राक्षाघृत ।

पुराणसर्पिषःप्रस्थोद्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः॥ कामलागुल्मपाण्ड्वार्तिज्वरमेहोदरापहः।

अर्थ—पुराना घी एक प्रस्थ, दाखका कल्क आधा प्रस्थ और चौगुना जल इन तीनों को पककर ले । यह घृत कामला गुल्म, पांडु, अर्ति, ज्वर, प्रमेह और उदर रोगों को दूर करता है ।

हरिद्रादि घृत ।

हरिद्रात्रिफलानिम्बबलामधुकसाधितम्। सक्षीरंमाहिषंसर्पिःकामलाहरमुत्तमम् ।

अर्थ—हलदी, त्रिफला, नीम, खरैटी और मुलहटी, दूध और भैंसका घी इन को एकत्र पाक करके घृत तयार करै यह घृत कामलारोग के दूर करने में अत्यन्त उत्तम है।

गोमूत्रेद्विगुणेदार्व्याःकल्काक्षद्वयसाधितः॥ दार्व्याःपञ्चपलक्काथेकल्केकालीयकेपरः। माहिषात्सर्पिषःप्रस्थःपूर्वःपूर्वेपरेपरः ॥ स्नेहैरेभिरुपक्राम्यस्निग्धंमत्वाविरेचयेत्। पयसामूत्रयुक्तेनबहुशःकेवलेनवा ॥

अर्थ—दारुहलदी का कल्क एक पल, भैंसका घी एक प्रस्थ, गोमूत्र दो प्रस्थ इन को सिद्ध करके इस घृत से पांडुरोगी को स्निग्ध करै । तथा पांचपल दारुहलदी का क्काथ करके उस में पीत चन्दन का एक पल कल्क डालै तथा भैंसका घी एक प्रस्थ सिद्ध करके कामलारोगी को स्निग्ध करै । जब इन घृतों से रोगी स्निग्ध होजाय तब विरेचन देवै । दूध में बहुत सा गोमूत्र डाल कर अथवा केवल गोमूत्र सेही विरेचन करावै ।

पांडुरोग में अन्य प्रयोग ।

दन्तीफलरसेकोष्णेकाश्मर्याञ्जलिमाशृतम् । द्राक्षाञ्जलिंविदित्वावाद्यात्पाण्ड्वामयापहम् ॥ द्विशर्करंत्रिवृच्चूर्णपलार्द्धंपैत्तिकःपिवेत् । कफपाण्डुस्तुगोमूत्रक्लिन्नयुक्तांहरीतकीम् ॥ आरग्वधंरसेनेक्षोर्विदार्यामलकस्यच ।

अर्थ—दन्ती के उष्णक्काथ में एक अंजली खंभारी फल वा एक अंजली दाख डालकर मात्रावत् रोगी को पान करावै,इससे विरेचन द्वारा पांडुरोग दूर होजाता है। पित्तज पांडुरोग में दो पल शर्करा,आधापल निसोथ का चूर्ण मिलाकर देवै। कफज पांडुरोग में गोमूत्र में हरड भिजोकर देवै ऊपर से थोडा सा गोमूत्र पान करावै।

अथवा अमलतासके गूदे को ईखरस,विदारी कंद के रस वा आंवले के रसके साथ पान करावै।

कामला रोग में प्रयोग।

सत्र्यूषणंविल्वपत्रंपिवेन्नाकामलापहम्॥ दन्त्यर्द्धपलकल्कंवाद्विगुडंशीतवारिणा। कामलीत्रिवृतांवापित्रिफलायारसैः पिवेत्॥

अर्थ—त्रिकुटा और विल्वपत्र को पीने से कामलारोग दूर होजाता है (किसी २ पुस्तक में " विल्वमात्रं " ऐसा पाठभी है) अथवा दन्ती का कल्क आधा पल, दोपल गुड़ इन को मिलाकर ठंडे जल के साथ पान करै। अथवा निसोथ को त्रिफलाके साथ पानकरै।

अन्य प्रयोग।

विशालाकटुकामुस्तकुष्ठदारुकलिङ्गकान्। कार्षिकानर्द्धकर्षांशान्कुर्य्यादतिविषांतथा॥ कर्षौमधुरसायाद्वौसर्वंचूर्णंसुखाम्बुना। मृद्वीयात्तंरसंपूतंपीत्वालिह्याच्चमध्वनु॥ कासंश्वासंज्वरंदाहंपाडुरोगमरोचकम्। गुल्मानाहामवातांश्चरक्तपित्तञ्चनाशयेत्॥

अर्थ—इन्द्रायणकी जड़, कुटकी, मोथा, कूठ, देवदारु, इन्द्र जौ, प्रत्येक एक २ कर्ष, अतीस आधाकर्ष, मधुरसा (दाख वा मरोड़फली) दो कर्ष। इन सब को कूटकर वहुत गरमजल में मसल डाले फिर छानकर पीवै ऊपर से थोड़ा सा शहत चाटले। इस से खांसी, श्वास, ज्वर, दाह, पांडुरोग अरुचि, गुल्म, आनाह, आमवात और रक्तपित्त दूर होजाते हैं।

अन्य प्रयोग।

त्रिफलायागुडूच्यावादार्व्यानिम्बस्यवारसम्। शीतंमधुयुतंप्रातःकामलार्त्तः पिवेन्नरः॥ क्षीरमूत्रंपिवेत्पक्षंगव्यंमाहिषमेववा। पाण्डुर्गोमूत्रसिद्धंवासप्ताहंत्रिफलारसम्॥ तरुजान्ज्वलितान्मूत्रेनिर्वाप्यामृद्यचांकुरान्। मातुलुङ्गस्यतत्पूतंपाण्डुशोथहरंपिवेत्॥ स्वर्णक्षीरींत्रिवृच्छ्यामेभद्रदारुसनागरम्। गोमूत्राञ्जलिनापिष्टंमूत्रेवाकथितंपिवेत्॥ क्षीरमेभिःशृतंवापिपिवेद्दोषानुलोमनम्॥

अर्थ—त्रिफला, गिलोय, दारुहलदी,नीम इन में से किसी द्रव्य को रात में जल में भिजोदेवै, प्रातःकाल मथकर छानकर थोडासा शहत मिलाकर पान करै तौ कामलारोग दूर होजाता है।

अथवा इसरोग में पन्द्रह दिवसतक गौ वा भैंसका दूध और मूत्र मिलाकर पीना चाहिये अथवा सात दिवस तक गो मूत्र में

सिद्ध की हुई त्रिफला का रस सेवन करै।

विजौरे के नवीन अंकुरों को भस्म करके जलते हुए अंगारों को गोमूत्र में बुझाकर मसल डालै और इन को छानकर पान करै तौ पांडुरोग की सूजन दूर होजाती है।

स्वर्णक्षीरी, काली निसोथ, देवदारु और सोंठ इन को पीसकर एक अंजली गोमूत्र के साथ पान करै अथवा इन्हींका गोमूत्र के साथ क्वाथ करके पीवै अथवा इन्हीं द्रव्यों के साथ दूध को औटाकर पीवै। इस से भी दोषों का अनुलोमन होता है।

अन्यप्रयोग।

हरीतकींप्रयोगेणगोमूत्रेणाथवापिवेत् ॥
जीर्णेक्षीरेणभुञ्जीतरसेनमधुरेणवा ।
सप्तरात्रंगवांमूत्रेभावितंवाप्ययोरजः ॥
पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थंपयसापाययेतच ।

अर्थ—गोमूत्र में भिगोई हुई हरड़ का गोमूत्र के साथ पान करै, औषध के पचने पर दूध के साथ अथवा मधुर मांसरस के साथ भोजन करै, अथवा लोह चूर्ण को सातदिन तक गोमूत्रकी भावना देकर दूध के साथ पान करै इस से पांडुरोग शान्त होजाता है।

नवायस चूर्ण।

त्र्यूषणंत्रिफलामुस्तंविडङ्गंचित्रकंसमा ॥
नवायोरजसोभागास्तच्चूर्णंक्षौद्रसर्पिषा ।
भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम् ॥
नवायसमिदंचूर्णंकृष्णात्रेयेनभाषितम् ।

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, वायविडंग और चीता ये सब समान भाग लेकर कूट ले तथा इन सब के समान भाग लोहचूर्ण मिलाकर शहत और घी के साथ सेवन करै। इस से पांडुरोग, हृद्रोग, कुष्ट, अर्श और कामला दूर होजाते हैं। यह नवायस नामक चूर्ण कृष्णात्रेयने कहा है।

गुडनागरमण्डूरतिलांशान्मानतःसमान्।
पिप्पलीद्विगुणांकुर्य्यात्गुटिकांपाण्डुरोगिणे ॥

अर्थ—गुड़, सोंठ, मंडूर और तिल चारों समान भाग, तथा पीपल ८ भाग इन की गोली बनाकर पाण्डुरोगी को देवै।

मंडूर वटिका।

त्रिफलात्र्यूषणंमुस्तंविडङ्गंचव्यचित्रकौ।
दार्वीत्वङ्माक्षिकोधातुर्ग्रन्थिकोदेवदारु च॥ एतान्द्विपालिकान्भागांश्चूर्णान्कुर्य्यात्पृथक्तथा । मण्डूरंद्विगुणंचूर्णात् शुद्धमञ्जनसंन्निभम् ॥ मूत्रमष्टगुणंपक्त्वा तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेत्ततः । उदुम्बरसमान् कृत्वाबटकांस्तान्यथाग्निच ॥ उपयुञ्जीततक्रेणसात्म्यंजीर्णेचभोजनम् । मण्डूरवटकाह्येतेप्राणदाःपाण्डुरोगिणाम् ॥ कुष्ठाण्यजीरकंशोथमूरुस्तम्भंकफामयान्। अर्शांसिकामलांमेहंप्लीहानंशमयान्तिच ॥

अर्थ—त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, मोथा, चव्य, चीता, दारुहलदी की छाल, सोनामाखी, पीपलामूल और देवदारु इन में से प्रत्येक द्रव्य दो दो पल लेकर जुदे जुदे कूट डालै और इन सब से दुगुना शुद्ध अंजनके मंडूर और मंडूरसे अठगुना गोमूत्र लेकर प्रथम गोमूत्र और मंडूर को पकावै

जब पकने पर आजाय तब त्रिफलादि पूर्वोक्त चूर्ण डालकर गूलर के समान गोलियां बनावै। इन में अग्निवल के अनुसार प्रति दिन एक गोली मठे में घोलकर पान करै। तथा औषध के पचने पर सात्म्य भोजन तक्र के साथ करै। इन मंडूर वटिकाओं का सेवन करना पांडुरोगियों का प्राणदायक है। कुष्ठ, अजीर्ण, शोथ, ऊरुस्तम्भ, कफरोग, अर्श, कामला, मेह और प्लीहा भी इसके सेवन से शान्त होजाते हैं।

ताप्यादि चूर्ण।

ताप्याद्रिजतुरूप्यायोमलाःपञ्चपलाःपृथक्। चित्रकत्रिफलाव्योषविडङ्गैःपालिकैःसह ॥ शर्कराष्टपलोन्मिश्राःचूर्णिता मधुनाप्लुताः। अभयस्यास्त्वक्षमात्राहि जीर्णेनियमिताशिना ॥ कुलत्थकाकमाच्यादिकपोतपरिहारिणा।

अर्थ—सौनामाखी, शिलाजीत, रूपामक्खी, लोहमल, प्रत्येक पांच पांच पल, चीता, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, प्रत्येक एक एक पल, शर्करा आठपल इन सबका चूर्ण करके प्रतिदिन इसमें से एक तोले लेकर शहत के साथ चाटै। औषध के पचने पर नियमित भोजन करै तथा कुलथी, मकोय और कपोतादिका परित्याग करदेवै।

योगराज वटिका।

त्रिफलायास्त्रयोभागास्त्रयस्त्रिकटुकस्यच॥ भागश्चित्रकमूलस्यविडङ्गानांतथैवच। पञ्चाश्मजतुनोभागास्तथारूप्यमलस्यच॥ माक्षिकस्यचशुद्धस्यलोहस्यरजतस्यच। अष्टौभागाःसितायाश्चतत्सर्वंसूक्ष्मचूर्णितम् ॥ माक्षिकेणप्लुतंस्थाप्यमायसेभाजनेशुभे। उदुम्बरसमांमात्रांततःखादेद्यथाग्निना ॥ दिनेदिनेप्रयुञ्जीतजीर्णेभोज्यंयदीप्सितम्। वर्जयित्वाकुलत्थानिकाकमाचीकपोतकम् ॥ योगराजइतिख्यातोयोगोऽयममृतोपमः। रसायनमिदंश्रेष्ठंसर्वरोगहरंशिवम् ॥ पाण्डुरोगंविषङ्कासंयक्ष्माणंविषमज्वरम्। कुष्ठान्यजरकंमेहंशोषंश्वासमरोचकम् ॥ विशेषाद्धन्त्यपस्मारंकामलांगुदजानिच।

अर्थ—त्रिफला तीनभाग, त्रिकुटा तीन भाग, चीते की जड़ एक भाग, वायविडंग एक भाग, शिलाजीत पांचभाग, रौप्यमल पांच भाग, शुद्धकी हुई सौनामाखी पांच भाग, शुद्ध कियाहुआ लोहचूर्ण पांचभाग, मिश्री आठ भाग, इन सबको महीन पीसकर शहत में मिलाकर लोहे के स्वच्छ पात्र में भरदे। तत्पश्चात् अग्निवल के अनुसार तोलेभर प्रतिदिन सेवन करै। औषध के जीर्ण होनेपर प्रतिदिन इच्छानुसार भोजन करै। केवल कुलथी, मकोय और कपोत का परित्याग करदेवै। यह अमृत के समान योगराजयोग है। यह रसायन वहुतश्रेष्ठ सम्पूर्ण रोगोंका नाश करनेवाला है, इससे पांडुरोग, विषरोग, खांसी, यक्ष्मा, विषमज्वर, कोढ़, अजीर्ण, प्रमेह, शोष, श्वास, अरुचि, दूर होजाते हैं, यह योगवि-

शेष कर के अपस्मार, कामला और अर्श रोग को दूर करता है।

शिलाजतु वटिका।

कौटजत्रिफलानिम्बपटोलघननागरैः॥ भावितानिदशाहानिरसैर्द्वित्रिगुणानिच। शिलाजतुपलान्यष्टौतावतींसितशर्कराम्। त्वक्क्षीरीपिप्पलीधात्रीकर्कटाख्यापलोन्मिता। निदिग्ध्याःफलमूलाभ्यां पलंयुक्त्यात्रिगन्धिकम्॥ चूर्णितंमधुरं कुर्य्यात्त्रिपलेनाक्षिकान्गुडान्। दाडिमाम्बुपयःपक्षिरसतोयसुरासवान्॥ भक्षयित्वापिवेच्चानुतान्निरन्नोभुक्तएव वा। पाण्डुकुष्ठज्वरप्लीहातमकार्शोभगन्दरम्। पूतिहृच्छुक्रमूत्राग्निदोषशोषगरोदरम्॥ कासासृग्दरपित्तासृक्शोथगुल्मगरामयान्। तेसर्वेविभ्रमान्हन्युःसर्वरोगहराःशिवाः॥

अर्थ—इन्द्रजौ, त्रिफला, नीम, परवल, मोथा, सोंठ, इन के क्वाथ में आठपल शिलाजीत को दश, वीस वा तीस दिनतक भावना देवै। फिर यह शिलाजीत, इतनी ही मिश्री, तथा एक एक पल वंशलोचन, पीपल, आंवला और काकड़ासींगी, कटेरीकी जड़ और उस के फल एक पल, त्रिगंध (इलायची, तेजपात और दालचीनी) एक पल, इन सव का चूर्ण कर के तीनपल शहत में सानकर तोले २ भरकी गोली वनावै। भोजन कर के वा विना भोजन कियेही इन गोलियों का सेवन करै और ऊपर से अनारकारस, दूध पक्षियोंका मांस रस, जल, सुरा और आसव का पान करै। इस के सेवन करने से पांडुरोग, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहा, तमक, अर्श, भगन्दर, पूतिरोग, हृद्रोग, शुक्ररोग, मूत्ररोग, अग्निदोष, शोषरोग, गरदोष, उदररोग, खांसी, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, शोथ, गुल्म तथा विषरोग दूर होजाते हैं। ये गोलियां सव प्रकार की भ्रांति और सव प्रकारके रोगोंको हरनेवाली वडी कल्याणकर्त्ता हैं।

पुनर्नवादि प्रयोग।

पुनर्नवात्रिवृद्व्योषविडंगंदारुचित्रकम्। कुष्ठंहरिद्रेत्रिफलादन्तीचव्यंकलिंगकाः। पिप्पलीपिप्पलीमूलंमुस्तश्चेतिपलोन्मितम्। मण्डूरंद्विगुणंचूर्णात्गोमूत्रेढ्याढकेपचेत्। कोलवद्गुडिकाःकृत्वातक्रेणालोड्यना पिवेत्। ताःपाण्डुरोगान्प्लीहानमर्शांसिविषमज्वरम्। श्वयथुंग्रहणीदोषंहन्युःकुष्ठं क्रमींस्तथा॥

अर्थ—सोंठ, निसोथ, त्रिकुटा, वायविडंग, देवदारु, चीता, कूठ, दोनों हलदी, त्रिफला, दन्ती, चव्य, इन्द्रजौ, पींपल, पीपलामूल, मोथा ये सव एक एक पल लेवै, इन सव से दूना मंडूर मिलाकर चूर्ण वनालेवै और दो आढ़क गोमूत्र में पकाकर वेर के बरावर गोली बनाकर तक्र में घोलकर सेवनकरै। इस से पांडुरोग, प्लीहा, अर्श, विषमज्वर, सूजन, ग्रहणीदोष, कोढ़ और क्रिमिरोग नष्ट होजाते हैं।

अवलेह प्रयोग।

दार्वीत्वक्त्रिफलाव्योषंविडङ्गमयसोरजः

मधुसर्पिर्युतंलिह्याद्गुडक्षौद्रेचवाभयाम्। त्रिफलाद्वेहरिद्रेचकटुरोहिण्ययोरिजः ॥ चूर्णितंक्षौद्रसर्पिर्भ्यांसलेहःकामलापहः।

अर्थ—दारुहल्दीकीछाल, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, लोहचूर्ण इनको शहत और घीके साथ चाटै अथवा हरडको गुड और शहत के साथ चाटै।

त्रिफला, दोनों हलदी, कुटकी और लोह चूर्ण इनको घी और शहत के साथ चाटै तौ कामलारोग जातारहता है ।

धात्र्यावलेह।

द्विपलाशन्तुगाक्षीरींनागरंमधुयष्टिकाम्॥ प्रास्थिकींपिप्पलींद्राक्षांशर्कराद्धतुलांशुभाम्। धात्रीफलरसद्रोणेसुपिष्टंलेहवत्पचेत्॥ शीतांमधुप्रस्थयुतांलिह्यात्पाणितलंततः। हन्त्येषकामलापित्तंपाण्डुकासंहलीमकम्॥

अर्थ—वंशलोचन दो पल,सोठ,मुलहटी, पीपल और दाख एक एक प्रस्थ, सफेदचीनी आधीतुला, इन सबको पीसकर एक द्रोण आंबले के रस में पकावै, जब लेहीसी होजाय तब उतार ले और ठंडा होने पर एक प्रस्थ शहत मिलाकर रखछोडै इस में से प्रतिदिन दोतोले सेवन करै तौ कामला, पित्तरोग, पांडरोग, खांसी और हलीमक दूर होजाते हैं।

मंडूरगुटिका।

त्र्यूषणंत्रिफलाचव्यंचित्रकोदेवदारुच। विडङ्गान्यथमुस्तानिवत्सकंचेतिचूर्णयेत्॥ मण्डूरतुल्यंतच्चूर्णंगोमूत्रेऽष्टगुणेपचेत्। शनैःसिद्धास्तथाशीताःकार्याःकर्षसमागुडाः यथाग्निभक्षणीयास्तेप्लीहपाण्डुवामयापहाः। ग्रहण्यर्शोनुदःजीर्णेतक्रवास्यशिनः स्मृताः॥

अर्थ—त्रिकुटा,त्रिफला,चव्य,चीता,देवदारु,वायविडंग,मोथा और इन्द्रजौ इनसबका चूर्ण बनावै इन सब के बराबर मंडूर लेकर उस से अठगुने गोमूत्र में प्रथम मंडूर को पकावै और फिर उस में उक्त चूर्ण डाल देवै फिर धीरे २ सेक कर उतारले और ठंडा होनेपर एक एककर्षकी गोलियां बनावै और अग्निबल के अनुसार सेवन करने पर प्लीहा, पांडुरोग, ग्रहणी और अर्शरोग दूर होजाते हैं। औषधके पचने पर तक्र यवमंड का सेवन करै।

गुडारिष्ट।

माञ्जिष्ठारजनीद्राक्षाबलामूलान्ययोरजः। रोध्रंचैतेषुगोडःस्यादरिष्टःपाण्डुरोगिणाम्

अर्थ—मजीठ, हलदी, दाख खरैटी की जड़, लोहचूर्ण और लोध ये सब समानभाग लेकर चूर्ण करै तथा इस सब से चौगुना गुड़ और गुड़ से चौगुना जल मिलाकर सबको एक घीकी हांडी में भर देवै। यह गुड़ारिष्ट पांडुरोगियोंको हितहै।

अन्य अरिष्ट।

द्विबीजकपलान्यष्टौत्रिफलायाश्चविंशतिः द्राक्षायाःपञ्चलक्षायाःसप्तद्रोणेजलस्यतत्॥ साध्यंपादावशेषेतुपूतशेषेसमावपेत्। शर्करायास्तुलांप्रस्थंमाक्षिकस्यचकार्षिकम्। व्योषंव्याघ्रनखोशीरंक्रमुकंसैलवालुकम्।

मधूकंकुष्ठमित्येतच्चूर्णितंघृतभाजने ॥ यवेषुदशरात्रंतद्ग्रीष्मेद्विःशिशिरेस्थितम् । पिबेत्तद्ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकामलारुचीः ॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरीकुष्ठसन्निपातांश्च नाशयेत् ।

अर्थ—विजौरा सोलहपल, त्रिफला वीस पल, दाख पांचपल, लाख सातपल, इनसब को एक द्रोण जल में पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले । ठंडा होनेपर इस में एक तुला सफेदचीनी, शहत एक प्रस्थ, तथा त्रिकुटा, व्याघ्रनखी उशीर,सुपारी, एलुआ, मुलहटी और कूठ, प्रत्येक एक २ कर्ष लेकर इनका चूर्ण बनाकर ऊपर कहेहुये क्वाथ में मिलाकर एक चिकनी हांडी में भरदेवै । इसको ग्रीष्मऋतु में दस दिवस तक जौके ढेर में गाड़ देवै और सर्दी में वीस दिनतक दवा रहनेदे, फिर निकालकर इसका सेवन करै । इससे ग्रहणीरोग, पांडुरोग, अर्श, कामला, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, अश्मरी, कोढ़ और सन्निपात दूर होजाते हैं ।

धात्र्यरिष्ट ।

धात्रीफलसहस्रेद्वेपीडयित्वारसन्तुतम् । क्षौद्राष्टांशेनसंयुक्तंकृष्णार्द्धकुडवेनच ॥ शर्कराद्धतुलोन्मिश्रंपक्वंस्निग्धेघटेस्थितं । प्रपिबेत्मात्रयाप्रातर्जीर्णेमितहिताशनः ॥ कामलापाण्डुहृद्रोगवातासृग्विषमज्वरान् कासंहिक्कारुचिंश्वासांश्चैषोऽरिष्टःप्रणाशयेत् ॥

अर्थ—दो सहस्र आंवलों का मर्दनकर के रस निकाल लेवै । इस रसका आठवां भाग शहत, आधा कुडव पीपल, शर्कराआधा तुला, इन को मिलाकर पकावै और एक चिकने घडे में भरकर रखदे । इस में से प्रति दिन प्रातः काल सेवन करै और औषध के पचने पर थोडा और पथ्य भोजन करै, इसके सेवन करने से कामला,पांडुरोग, हृद्रोग, वातरक्त, विषम ज्वर, खांसी,श्वास हिचकी और अरुचि दूर होजाती हैं ।

स्थिरादिभिःश्रृतंतोयंपानाहारेप्रशस्यते। पाण्डूनांकामलार्तानांमृद्वीकामलकीरसः॥

अर्थ—पांडुरोग में स्थिरादि औषधियों से सिद्ध किया हुआ जल वा आहार हित है तथा कामलारोग में दाख और आंवले का रस भी हित है ।

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थमितिप्रोक्तंमहर्षिणा विकल्प्यमेतद्भिषजापृथग्दोषबलंप्रति ॥ वातिकेस्नेहभूयिष्ठंपैत्तिकेतिक्तशीतलं ॥ श्लैष्मिकेकटुतिक्तोष्णंविमिश्रंसान्निपातिके ॥

अर्थ—महर्षि आत्रेयने पांडुरोगकी शान्ति के लिये जो जो औषधें यहां तक वर्णन की हैं वेही पृथक् पृथक् दोषवल के अनुसार विकल्पपूर्वक अर्थात् कमीवेशी कर के प्रयोग करना ठीकहै ।जैसे वातिक रोगमें ये औषधियां अधिक स्निग्ध द्रव्यों से संस्कार करके, पित्तजरोग में तिक्त शीतल और कफजरोग में कटु, तिक्त और उष्ण तथा सान्निपातिक में तीनों प्रकारकी मिली हुई औषधियां देनी चाहिये ।

मृत्तिका भक्षण में उपाय ।

निर्घातयेत्शरीरात्तुमृत्तिकांभक्षितांभिषक् । युक्तिज्ञःशोधनैस्तीक्ष्णैःप्रसमीक्ष्य बलाबलम् ॥ शुद्धकायस्यसर्पींषिबलाधानानियोजयेत् ।

अर्थ—मृत्तिका भक्षण से उत्पन्न हुए पांडुरोग में रोगी का वलावल देखकर तीक्ष्ण संशोधनों द्वारा रोगी के शरीर से मृत्तिका निकाल देवै । इस तरह देह के शुद्ध होने पर निम्नलिखित वलकारक घृतों का प्रयोग करै ।

मृत्तिकादोष पर घृत ।

व्योषंबिल्वंहरिद्रेद्वेत्रिफलाद्वेपुनर्नवे ॥ मुस्तान्ययोरजःपाठाविडङ्गंदेवदारुच । वृश्चिकालीचभार्गीचसक्षीरैस्तैःसमैर्घृतम् ॥ साधयित्वापिवेद्युक्त्यानरोमृद्दोषपीडितः । तद्वत्केशरयष्ट्याह्वपिप्पलीमूलशाद्वलैः ॥

अर्थ—त्रिकुटा, वेलगिरी, दोनों हलदी, त्रिफला, दोनों प्रकारकी सांठ, मोथा, लोह चूर्ण, पाठा, वायविडंग, देवदारु, विछुवन भांडंगी सव समान भाग लेकर चूर्ण करले इनसे चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध डालकर पकावै । इस घृत का युक्ति पूर्वक सेवन करने से मृद्भक्षणजन्य पांडुरोग दूर होजाता है ।

इसी तरह से केशर, मुलहटी, पीपलामूल और शाद्वल (नवीन छोटी घास) से सिद्ध किया घृत उपयोगी होता है ।

अन्यउपाय ।

मृदोनिवर्तमानायलौल्यान्मर्त्यायभक्षणात् । द्वेष्यार्थभावितांकामंदद्यात्तद्दोषनाशनैः ॥ शुक्लातिविषयानिम्बैर्विडङ्गैःकुटजेनच । वार्त्ताकैःकटुरोहिण्यापाठयामूर्वयापिवा ॥

अर्थ—जिस मनुष्य को मिट्टी खाने की बड़ी टेव है उसको मिट्टी से अरुचि बढाने के निमित्त मृत्तिका दोष नाशक द्रव्यों से भावना की हुई मृत्तिका यथेष्ट खवावै, वे द्रव्य येहैं,यथा अतीस, नीम, वायविडंग, इन्द्रजौ, वार्त्ताक, कुटकी, पाठा और मूर्वा।

यथादोषश्चकुर्वीतभैषज्यंपाण्डुरोगिणाम् । क्रियाविशेषएषोऽस्यमतोहेतुविशेषतः ॥ तिलपिष्टनिभंयस्तुवर्चःसृजतिकामली । श्लेष्मणारुद्धमार्गंतत्पित्तंकफहरैर्जयेत् ॥

अर्थ—पांडुरोग में दोष के अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये, हेतु विशेष से क्रिया में भी अन्तर होता है । जिस कामला रोगी का विष्टा तिलकी लुगदी सा होता है उसरोग में पित्तका स्रोत कफसे वन्द होजाता है, इस में कफनाशक चिकित्सा करना चाहिये ।

शाखाश्रित कामलाके लक्षण ।

रूक्षशीतगुरुस्वादुव्यायामैर्वेगनिग्रहैः । कफसंमूर्च्छितोवायुःस्थानात्पित्तंक्षिपेद्बहिः ॥ हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्श्वेतवर्चास्तदा नरः । भवेत्साटोपविष्टम्भोगुरुणाहृदयेन च ॥ दौर्बल्याल्पाग्निपार्श्वार्तिहिकाश्वा

सारुचिज्वरैः । क्रमेणाल्पेऽनुषज्येत पित्तेशाखासमाश्रिते ॥

अर्थ—रूक्ष, शीत, भारी, मिष्ट, व्यायाम और वेगनिग्रह से वायु कफसे मिलकर पित्त को उस को स्थान से बाहर निकालती है तब नेत्र, मूत्र और त्वचा हलदी के समान होजाते है और विष्टा सफेद होजाता है। अफरा, गुड़गुडाहट, हृदय में भारापन, दुर्वलता, मन्दाग्नि, पार्श्वशूल, हिचकी, श्वास, अरुचि और ज्वर ये उपद्रव होते हैं। यह पित्त क्रमक्रम से शाखाओं पर आक्रमण करता है।

पांडुरोग्यमेंअन्यउपचार ।

बर्हितित्तिरिदक्षाणांरूक्षाम्लैःकटुकैःरसैः। शुष्कमूलककौलत्थैर्यूषैश्चान्नातिभोजयेत्। मातुलुङ्गरसंक्षौद्रंपिप्पलीमरिचान्वितम्। सनागरंपिबेत्पित्तंतथास्येतिस्वमाश्रयम्॥ तृषाम्लैःकटुरूक्षोष्णैर्लवणैश्चाप्युपक्रमः। पित्तरागाच्छकृतोवायोश्चाप्रशमाद्भवेत्॥ स्वस्थानमागतेपित्तेपुरीषेपित्तराञ्जिते । निवृत्तोपद्रवस्यास्यपूर्वःकामलिकीविधिः॥

अर्थ—मोर तीतर मुर्गाके मांसरस को रूक्ष, अम्ल, और कटु द्रव्यों से संस्कार कर के देवै अथवा सूखीमूली और कुलथी के यूष के साथ भोजन करावै।

विजौरे के रस में शहत, पीपल, कालीमिरच और सोंठ डालकर पीने से पित्त अपने स्थान में चलाजाता है।

मल के पित्त रंजितन होने और वायुकी अशान्ति से जो तृषादि रोग होते हैं उन में कटु, उष्ण, रूक्ष और लवणान्वित औषधियों द्वारा चिकित्सा कीजाती है, जब पित्त अपने स्थान में आजाता है और मल पित्त से रंगजाता है तब उसके सब उपद्रव निवृत होजाते हैं उस समय कामलारोग की विधि कर्त्तव्य है।

हलीमकके लक्षण ।

यदातुपाण्डोर्वर्णःस्याद्धरितश्यावपीतकः। बलोत्साहक्षयस्तन्द्रामन्दाग्नित्वंमृदुज्वरः। स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्चसादस्तृष्णारुचिर्भ्रमः । हलीमकंतदातस्यविद्यादनिलपित्ततः ॥

अर्थ—जब पाण्डुरोगी का वर्ण हरा, काला व पीला पडजाय, बल और उत्साह क्षीण होजांय, तन्द्रा, मन्दाग्नि, मृदुज्वर, स्त्रियों में अनिच्छा, अंगमर्द, अंगसाद, तृष्णा, अरुचि, और भ्रम थे उपद्रव उत्पन्न हों तब वात पित्त के कोप से हलीमक नाम पांडरोग होता है।

हलीमकमें चिकित्सा ।

गुडूचीस्वरसक्षीरसाधितंमाहिषंघृतम् । सपिबेत्त्रिवृतांस्निग्धोरसेनामलकस्यतु॥ विरिक्तोमधुरप्रायंसेवितोऽनिलपित्तनुत्। द्राक्षालेहंसपूर्वोक्तंसर्पींषिमधुराणिच ॥ यापनात्क्षीरवस्तींश्चशीलयेत्सानुवासनान्। मार्द्वीकारिष्टयोगांश्चपिबेद्युक्त्याग्निवृद्धये ॥ कासिकञ्चाभयालेहंपिप्पलींमधुकम्बलाम् । पयसावाप्रयुञ्जीतयथा दोषंयथाबलम् ॥

अर्थ—गिलोय का रस और दूध इनमें

भैंस का घी सिद्ध कर के स्नेहन कर्म के लिये पानकरै, स्निग्ध होने के पीछे आंवले के रस के साथ निसोथ पीवै जब इस से दस्त होजांय तब वात पित्त को दूरकरने-वाली मधुर औषधियों का सेवन करै।

पूर्वोक्त द्राक्षावलेह, मधुर औषधियों से संस्कृत घृत, यापन क्षीरवस्ति और अनु-वासन वस्तियों का प्रयोग करै। जठराग्नि को वढ़ाने के लिये मृद्वीकारिष्ट आदियोगों का पान करै कासोक्त अध्याय में कहाहुआ अभयावलेह अथवा पीपल, मुलहटी और खरैटी को दोष और बल के अनुसार दूध के साथ सेवन करै।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन।

पाण्डोःपञ्चविधस्योक्तंहेतुलक्षणभेषजम्॥ कामलाद्विविधाचैवसाध्यासाध्यत्वमेव च।तेषांविकल्पोयश्चान्योमहाव्याधिर्हली मकः॥ तस्यचोक्तंसमासेनव्यञ्जनंसचि
किित्सितम्।

अर्थ—इस अध्याय में पांडुरोग के पांच भेद, उन के हेतु, लक्षण, चिकित्सा, दो प्रकार का कामलारोग, इन रोगोंके साध्या-साध्य लक्षण, औषधियों का वैकल्पिकप्रयोग, हलीमक नाम महाव्याधि, तथासंक्षिप्तसेहली-मक के लक्षण और चिकित्सा वर्णनाकियेगये हैं

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचि-तायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने पांडुरोगचिकित्सितं नामविंशोऽध्यायः॥२०॥

———:*:———

एकविंशोऽध्यायः।

अथातोहिक्काश्वासचिकित्सितंव्याख्यास्या मः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम यहांसे हिक्काश्वास चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

अग्निवेशका प्रश्न।

वेदलोकार्थतत्वज्ञमात्रेयमृषिभिःस्तुतम्॥ अपृच्छत्संशयंधीमानाग्निवेशःकृताञ्जलिः यइमेद्विविधाःप्रोक्ताःत्रिदोषास्त्रिप्रकोप नाः॥ रोगानानात्मकास्तेषांकःकोभव
तिदुर्जयः

अर्थ—बुद्धिमान् अग्निवेश ने हाथ जो-डकर वैदिक और लौकिक विषयोंके तत्वों को जाननेवाले और ऋषिगणों से स्तुति किये हुये भगवान् आत्रेयसे पूछा कि हे भगवन्! अपने द्विविधात्मक दोषोंका वर्णन किया तथा तीन दोषऔर तीनों दोषों के प्रकुपित्त करने वाले हेतु भी वर्णन किये। अब मेरी यह जानने की इच्छा है कि इन अनेक प्रकार के रोगोंमें कौन कौन रोग दुर्जय है।

आत्रेय का उत्तर।

अग्निवेशस्यतद्वाक्यंश्रुत्वामतिमताम्बरः उवाचपरमप्रीतःपरमार्थविनिश्चयः। कामंप्राणहरारोगाबहवोनतुतेतथा॥ यथाश्वासश्चहिक्काचप्राणानाशुनिरस्य तः। अन्यैरप्युपसृष्टस्यरोगैर्जन्तोःपृथग्वि धैः॥ अन्तेसञ्जायतेहिक्काश्वासोबातीव्र
वेदनः।

अर्थ—अग्निवेशके इस प्रश्न को सुनकर मति मताम्वर, परोपकार परायण आत्रेय अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले कि यद्यपि प्राण नाशक रोग वहुत हैं परन्तु वे ऐसे नहीं है जैसे हिक्का और श्वास शीघ्र प्राणनाशक होते हैं । प्राणी के अनेक प्रकार के अन्य अन्य वहुत से रोगों से पीडित होने पर भी अन्त में तीव्र वेदना वाले हिक्का और श्वासरोग उत्पन्न होते हैं अर्थात् मरते समय हिचकी आती हैं वा श्वास बढता है ।

हिक्काश्वासका स्थानादि विवर्ण ।

कफवातात्मकावेतौपित्तस्थानसमुद्भवौ॥ हृदयस्यरसादीनांधातूनांचोपशोषणौ । तस्मात्साधारणावेतौमतौसमसुदुर्जयौ

अर्थ—ये दोनों रोग कफवात से होते हैं, इनकी उत्पत्ति का स्थान पित्ताशय है ये दोनों ही रोग हृदयस्थ रसादिक धातुओं का शोषण करते हैं अतएव ये दोनों सव तरह से समान हैं और दोनोंही दुर्जेय हैं ।

हिक्वाश्वासके भेद ।

मिथ्योपरचरितौक्रुद्धौहतावाशीविषाविव॥ पृथक्पञ्चविधावेतौनिर्दिष्टौरोगसंग्रहे ॥ तयोःशृणुसमुत्थानंलिङ्गान्येकैकशस्तथा ।

अर्थ—उक्त दोनों रोग मिथ्या आहार विहार से उत्पन्न होकर क्रुद्ध आशी विष सर्प की तरह मनुष्य को मार डालते हैं । सूत्र स्थान में ये दोनों रोग पांच पांच प्रकार के वर्णन किये गये हैं अव उन में से प्रत्येक की उत्पत्ति तथा लक्षणों का वर्णन किया जाता है ।

हिक्काश्वासकी उत्पत्तिके साधारण हेतु ।

रजसोधूमवाताभ्यांशीतस्थानाम्बुसेवनात् ॥ व्यायामाद्ग्राम्यधर्माध्वरूक्षान्नविषमाशनात् ॥ आमप्रदोषादानाहाद्रौक्ष्यादत्यपतर्पणात् । दौर्बल्यान्मर्मणोघाताद्वन्धात्शुद्ध्यतियोगतः॥अतीसारज्वरछर्दिप्रतिश्यायक्षयक्षतात् । रक्तपित्तादुदावर्ताद्विसूच्यलसकादपि ॥ पाण्डुरोगाद्विषाच्चैवप्रवर्तेतेगदाविमौ ।

अर्थ—धूल, धूंआं और बुरी वायु के नासिका में प्रवेश होने से, शीतल स्थान और शीतलजल का सेवन करने से,व्यायाम, ग्राम्यधर्म (मैथुनप्रवृत्ति), मार्गभ्रमण, रूक्षान्न सेवन और विषम भोजन से; आम दोष, आनाह, रूक्षता, अत्यन्त भोजन, दुर्वलता,मर्मस्थान में चोट, वन्धन, संशोधन का अतियोग, अतिसार, ज्वर, वमन,प्रतिश्याय, क्षय, क्षत, रक्तपित्त, उदावर्त, विसूचिका, अलसक, पाण्डुरोग और वि[illegible] भक्षण से उक्त दोनों रोग उत्पन्न होते हैं।

निष्पावमाषपिण्याकतिलतैलनिषेवणा[illegible] पिष्टशालूकविष्टम्भिविदाहिगुरुभोजनात् । जलजानूपपिशितदध्यामक्षीरसेवनात् ॥ अभिष्यन्द्युपचाराच्चश्लेष्मल[illegible] श्चसेवनात् । कण्ठोरसःप्रतीघाताद्विबन्धै श्चपृथग्विधैः ॥ मारुतःप्राणवाहानिस्रोतांस्याविश्यकुप्यति । उरःस्थःकफमुद्धूयहिक्काश्वासान्करोतिसः ॥ घोरान्प्राणोपरोधायप्राणिनांपञ्चपञ्चच ।

अर्थ—चौरा,उरद, पिण्याक, तिल,तेल,

पिट्ठी के पदार्थ, शालूक, विष्टम्भी भोजन, विदाही भोजन, भारी भोजन, जलचरों का मांस, आनूपमांस, दही, कच्चे दूध के अत्यन्त सेवन करने से; अभिष्यन्दी उपचारों से, कफकर्त्ता द्रव्यों के सेवन से कंठ और वक्षः स्थल में प्रतिघात होने से, और अनेक प्रकार के विबन्धों से वायु प्राणवाही स्रोतों में प्रविष्ट होकर कुपित होजाती है तथा हृदय में पहुंचकर कफको निकालकर हिचकी और श्वास को उत्पन्न करती है। इसी से मनुष्यों के प्राणनाशक अत्यन्त घोर पांचपांच प्रकार के उक्त दोनों रोग उत्पन्न होते हैं।

हिक्काके पूर्वरूप।

कण्ठोरसोर्गुरुत्वञ्चवदनस्यकषायता ॥
हिक्कानांपूर्वरूपाणिकुक्षेराटोपएवच ।

अर्थ—कंठ और वक्षःस्थल में भारापन, मुख में कसीलापन और कुक्षिका फूलना ये हिक्काके पूर्वरूप हैं।

श्वासके पूर्वरूप।

आनाहःपार्श्वशूलञ्चपीडनंहृदयस्यच ॥
प्राणस्यचविलोमत्वंश्वासानांपूर्वलक्षणम्।

अर्थ—आनाह, पार्श्वशूल, हृदयपीड़न; प्राणवायु का उलटा फिरना ये सब श्वास के पूर्वरूप हैं।

प्राणोदकान्नवाहानिस्रोतांसिसकफोऽनिलः ॥ हिक्काःकरोतिसंरुध्यतासांलिङ्गंपृथक्शृणु ।

अर्थ—कफसंसृष्टवात प्राणवाही उदकवाही और अन्नवाही स्रोतोंको रोककर हिचकी उत्पन्न करतीहै। इन हिचकियोंके पृथक् २ लक्षणों का वर्णन कियाजाता है।

महाहिक्का के लक्षण।

क्षीणमांसबलप्राणतेजसःसकफोऽनिलः॥
गृहीत्वासहसाकण्ठमुच्चैर्घोषवतींभृशम्।
करोतिसततंहिक्कामेकद्वित्रिगुणांतथा ॥
प्राणःस्रोतांसिमर्माणिसंरुध्योष्माणमेवच।
संज्ञामुष्णानिगात्राणिस्तम्भंसञ्जनयत्यपि
मार्गंचैवान्नपानानांरुणद्ध्यपहतस्मृतेः ।
साश्रुविप्लुतनेत्रस्यस्तब्धशङ्खच्युतभ्रुवः
सक्तजल्पप्रलापस्यानिर्वृतिंनाधिगच्छतः।
महामूलामहावेगामहाशब्दामहाबला ॥
महाहिक्केतिसान्द्रणांसद्यःप्राणहरामता ।

अर्थ—जिस मनुष्य के मांस, बल, प्राण और तेज क्षीण होगये हैं उस के कंठ को कफयुक्त वायु पकड़कर अत्यन्त शब्दवाली ऊपरकी हिचकी को उत्पन्न करती है; यह हिचकी निरन्तर एक दो तीन वार आती है। उस समय रोगी के प्राणवाही स्रोत, मर्मस्थान, ऊष्मा और संज्ञा नष्ट होजाती है। देह में उष्णता और स्तम्भता उत्पन्न होती है। उस के अन्न पान के मार्ग रुकजाते हैं, स्मृति नष्ट हो जाती है, नेत्रों में जल डवडबाता है, कनपटी स्तब्ध और भृकुटी गिरीशी पड़ती हैं, मुंह से वोल नहीं निकलता है, किसी तरह चैन नहीं पडता है; यह हिक्का महामूला, महावेगा, महाशब्दा और महावला होती है, इसी से इसका नाम महाहिक्का

है, यह मनुष्यों का तत्काल प्राणनाश करनेवाली होती है।

गंभीरा हिक्काके लक्षण।

हिक्कतेयःप्रवृद्धस्तुकृशोदीनमनानरः। जर्जरेणोरसासर्वंगम्भीरमनुनादयन्॥ संजृम्भन्संक्षिपंश्चैवतथाङ्गानिप्रसारयन्॥ पार्श्वेचोभेसमायस्यकूजन्स्तम्भरुगार्दितः। नाभेःपक्वाशयाद्वापिहिक्वाचास्योपजायते॥ क्षोभयन्तीभृशंदेहंनामयन्तीचताम्यतः। रुणद्धयुच्छ्वासमार्गन्तुप्रणष्टबलचेतसः। गम्भीरनामासातस्यहिक्का प्राणान्तिकीमता॥

अर्थ—जो मनुष्य कृश और दीन मन होकर अत्यन्त हिचकी लेता है, हृदय में जर्जरता दिखाई देवै, हिचकी का शब्द गंभीर हो, यदि रोगी हाथ पांवोंको फैलाकर जम्हाई लैने लगे और इधर विधर पटकनेलगे, दोनों पसवाड़ोंको लम्बा करदेवै, कंठ में कूजन और शरीर में स्तम्भ और शूल होवै। नाभि वा पक्वाशय से हिचकी निकलती मालूम हो जिस से सम्पूर्ण देह में क्षोभ हो, देह झुकजाय, वेदना होनेलगे श्वास आनेजाने का मार्ग रुकजाय और बल तथा संज्ञा नष्ट होजांय, यह प्राणोंका नाश करनेवाली गंभीरा हिक्का होती है।

व्यपेताहिक्का।

व्यपेतेजायतेहिक्कायान्नपानेचतुर्विधे। आहारपरिणामान्तेभूयश्चलभतेबलम्॥ प्रलापवम्यतीसारतृष्णार्तस्यविचेतसः॥ सजृम्भस्यप्लुताक्षस्यशुष्कास्यस्यविनामिनः। पर्याध्मातस्यहिक्कायाजत्रुमूलादसन्तता॥ साव्यपेतेतिविज्ञेयाहिक्काप्राणोपरोधिनी।

अर्थ—जो हिचकी भक्ष्य भोज्यादि चार प्रकार के अन्नपान से उठती है और भोजन के पचने के समय जिसका बल अधिक बढ़जाता है, जिसके होनेसे प्रलाप, वमन, अतीसार, तृषा और संज्ञा नाश होजाय, जिसमें जम्हाई, नेत्रों में आंसू, मुख में शुष्कता, शरीर का झुकना, पेट में अफरा होवै, और जो जत्रु के मूल से उत्पन्न हो उसे व्यपेताहिक्का कहते हैं, यह हिचकी प्राणवाही स्रोतोंको रोकदेती है।

क्षुद्राहिक्का।

क्षुद्रवातोयदाकोष्ठाद्व्यायामपरिघट्टितः॥ कण्ठेप्रपद्यतेहिक्कांतदाक्षुद्रांकरोतिसः। अतिदुःखानसाचोरःशिरोमर्मप्रबाधिनी। नचोच्छ्वासान्नपानानांमार्गमावृत्यतिष्ठति। वृद्धिमायास्यतोयातिभुक्तमात्रेचमार्दवम्॥ यतःप्रवर्ततेपूर्वंततएवनिवर्तते हृदयंक्लोमकण्ठञ्चतालुकञ्चसमाश्रिता मृद्वीसाक्षुद्रहिक्केतिनृणांसाध्याप्रकीर्तिता

अर्थ—क्षुद्रवात अत्यन्त परिश्रम के कारण उद्घट्टित होकर जब कंठ में स्थित होजाती है तब यह क्षुद्रा हिक्का को उत्पन्न करती है, यह हिचकी अत्यन्त कष्टदायक नहीं होती और न यह वक्षःस्थल, शिर वा मर्मों में पीड़ा पहुंचाती है, न यह श्वासवाही तथा अन्नपान वाही मार्गों को रोकती है; परिश्रम से बढ़ती है और भोजन मृदु

पड़जाती है; यह जिस कारण से उत्पन्न होती है उसही से निवृत्त होजाती है। इसका आश्रयस्थान हृदय, क्लोम, कंठ और तालु है, यह मृदु होती है, इसका नाम क्षुद्राहिक्का है। यह हिचकी साध्यहोतीहै।

अन्नजाहिक्काका लक्षण ।

सहसात्यभ्यवहृतैःपानान्नैःपीडितोऽनिलः ॥ ऊर्ध्वंप्रपद्यतेकोष्ठान्मद्यैर्वातिमदप्रदैः । तथातिरोषभाष्याध्वभारातिपरिवर्तनैः ॥ वायुःकोष्ठगतोधावन्पानभोज्यप्रपीडितः । उरःस्रोतःसमाविश्यकुर्याद्धिक्कांततोऽन्नजाम् ॥ तथाशनैरसम्बद्धंक्षुवन्चातिसहिक्कते । नमर्मबाधाजननीनेन्द्रियाणांप्रबाधिनी ॥ हिक्कापीतेतथाभुक्तेशमंयातिचसान्नजा ।

अर्थ—सहसा अन्नपान के अत्यन्तसेवन से वा अत्यन्त नशीले मद्य के सेवन से वायु बढ़कर ऊपर को कोष्ठों में जाती है, तथा अत्यन्तरोष, भाषण, मार्ग भ्रमण, भारवहन वा अत्यन्त परिवर्त्तन से अन्नपान के द्वारा उत्पीडित होकर कोष्ठ गत वायु हृदयस्थ स्रोतों का अवलंबन करके अन्नजा हिचकी उत्पन्न करती है। कभी २ यह हिचकी भोजन से नहीं होती है तथा वैसेही हिचकियां आने लगती हैं, इन से मर्मस्थान वा इन्द्रियों में कुछ बाधा नहीं पहुंचती है और अन्नपान के सेवन से ये शान्त होजाती हैं।

हिक्काका साध्यासाध्यवर्णन ।

अतिसञ्चितदोषस्यभक्तच्छेदक्षतस्यच ॥ व्याधिभिःक्षीणदेहस्यवृद्धस्यातिव्यवायिनः । आमाशयात्समुत्पन्नाहिक्काहन्त्याशुजीवितम् ॥ यमिकाचप्रलापार्तितृष्णामोहसमन्विता । अक्षीणश्चाप्यदीनश्चस्थिरधात्विन्द्रियश्चयः ॥ तस्यसाधयितुंशक्यायमिकाहन्त्यतोऽन्यथा ॥

अर्थ—जिसमनुष्यके दोष अत्यन्त इकट्ठे होगये हैं जिस को भोजन में अरुचि है, जो क्षतपीडित है, व्याधियों से जिसका देह क्षीण है, जो वृद्ध और अति व्यवायी है, उस के जो हिचकी आमाशय से उत्पन्न होती है वह असाध्य होती है जिस यमिका हिचकी में प्रलाप, वेदना, तृष्णा और मोह होता है वह भी असाध्य होती है, यदि वह ऐसे पुरुष के होती है जो अक्षीण, अदीन, स्थिर धातु और स्थिरेन्द्रिय होता है वह साध्य होती है जो इस से भिन्न है वह असाध्य होती है।

श्वास की उत्पत्ति ।

यदास्रोतांसिसंरुध्यमारुतःकफपूर्वकः । विष्वग्व्रजतिसंरुद्धःतदाश्वासान्करोतिसः ॥

अर्थ—जब कफसे मिली हुई वायु प्राणवाही स्रोतों को रोक देती है, इसतरह रुकी हुई वायु सम्पूर्ण देह में गमन करती है तब श्वास उत्पन्न होता है।

महाश्वासका लक्षण ।

उद्धूयमानवातोयःशब्दवद्दुःखितोनरः । उच्चैःश्वसितिसंरुद्धोमत्तर्षभइवा

निशम् ॥प्रणष्टज्ञानविज्ञानस्तथाविभ्रान्त लोचनः । विकृताक्ष्याननोबद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥ दीनः प्रश्वसितंचास्यदूराद्विज्ञायतेभृशम् । महाश्वासोपसृष्टःस क्षिप्रमेवप्रपद्यते ॥

अर्थ—वायुके ऊपर को जाने से संरब्ध होकर जो मनुष्य मत्त बैल की तरह अत्यन्त कष्ट से शब्दयुक्त ऊंचा श्वास लेता है,तब उस के ज्ञान विज्ञान नष्ट होजाते हैं, नेत्र भ्रान्तियुक्त होते हैं,आंख और मुख विकृत होजाते हैं, मूत्र विष्ठा बन्द होजाते हैं, वाणी रुक जाती है, दीनता होजाती हैं, उसका श्वास लैना दूरहीसे दिखाई देने लगता है । इसका नाम महाश्वास है, इस के होने से रोगी शीघ्र मरजाता है ।

ऊर्ध्वश्वास का लक्षण ।

दीर्घःश्वसितियस्तूर्ध्वंनचप्रत्याहरत्यधः। श्लेष्मावृतमुखस्रोताःक्रुद्धगन्धवहार्दितः॥ ऊर्द्धदृष्टिर्विपश्यंश्चविभ्रान्ताक्षस्ततस्ततः। प्रमुह्यनवेदनार्तश्चशुष्कास्योऽतिनिपीडितः ऊर्ध्वश्वासेप्रवृत्तेचयश्चाधःश्वासरोधभाक् । ताम्यतोभ्राम्यतश्चोर्ध्वश्वासस्तस्यैषहन्त्यसून् ॥

अर्थ—जो ऊपर को मुख करके दीर्घ श्वास लेता है और नीचा मुखकर के भीतर को नहीं खींच सकता है, जिसके मुख स्रोत कफसे आच्छन्न हैं, जिसके मुख से क्रुद्ध दुर्गन्धितवायु निकलता है,जो ऊपर को दृष्टि करके भ्रान्तियुक्त नेत्रों से देखता है, वेदना से व्याकुल होकर मुग्ध होजाता है,मुख सूख जाता है वेदना अत्यन्त होती है, ऊर्ध्व श्वास के प्रवृत होनेपर जिसको अधःश्वास रुकजाता है,इस में क्लेश वहुत होता है,यह ऊर्ध्वश्वास शीघ्रही प्राणों का नाश कर देता है ।

छिन्नश्वास के लक्षण ।

यस्तुश्वसितिविच्छिन्नंसर्वप्राणेनपीडितः । नवाश्वसितिदुःखार्तोमर्मच्छेदरुगर्दितः । आनाहस्वेदमूर्च्छार्तोदह्यमानेन वस्तिना । विप्लुताक्षःपरिक्षीणःश्वसनरक्तैकलोचनः ॥ विचेताःपरिशुष्कास्योविवर्णःप्रलपन्नरः । छिन्नश्वासेनसंछिन्नःसशीघ्रंप्रजहात्यसून् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके टूटा हुआ श्वास निकलता है और सम्पूर्ण देह में। इस से कष्ट होता है अथवा कष्ट के कारण श्वास कम निकलता है, तथा मर्मस्थान में वेदना होने लगती है वेदना के कारण आनाह, स्वेद और मूर्च्छा होजाती है, वस्ति में दाह होने लगता है, नेत्रों में पानी भर आता है, क्षीणता होती है, नेत्र लाल पड़जाते हैं, संज्ञानाश होजाती है, मुख सूख जाता है, देह का वर्ण विगड़ जाता है,प्रलाप होता है, ये छिन्न श्वास के लक्षण हैं। इस रोग से पीडित मनुष्य शीघ्रही प्राणों को त्याग देता है ।

तमकश्वासकेलक्षण ।

प्रतिलोमंयदावायुःस्रोतांसिप्रतिपद्यते ।

ग्रीवांशिरश्चसंगृह्यश्लेष्माणंसमुदीर्यच ॥
करोतिपीनसंतेनरुद्धोघुर्घुरकंतथा ।
अतीवतीव्रवेगञ्चश्वासंप्राणप्रपीडकम् ॥
प्रताम्यत्यतिवेगाच्चकासतेसन्निरुध्यते ।
प्रमोहंकासमानश्चसगच्छतिमुहुर्मुहुः ॥
श्लेष्मण्यमुच्यमानेचभृशंभवतिदुःखितः।
तस्यैवचविमोक्षान्तेमुहूर्तविन्दतेसुखम्॥
अथास्योद्ध्वंसतेकण्ठःकृच्छ्रात्शक्नोतिवा
धितुं । नचापिनिद्रांलभतेशयानःश्वास
पीडितः ॥ पार्श्वेतस्यावगृह्णातिशयान
स्यसमीरणः । आसीनोलभतेसौख्यमु
ष्णंचैवाभिनन्दति ॥ उच्छ्रिताक्षोललाटेनस्विद्यताभृशमर्तिमान् । विशुष्कास्यो
मुहुःश्वासोमुहुश्चैवाधमत्यपि । मेघाम्बु
शीतप्राग्वातैःश्लेष्मलैश्चाभिवर्धते ॥ स
याप्यस्तमकःश्वासःसाध्योवास्यान्नवो
स्थितः ॥

अर्थ—जब वायु प्रतिलोम अर्थात् उलटी होकर प्राणवाही स्रोतों में स्थित होजाती है, तब वह ग्रीवा और शिरको जकडकर तथा कफको उद्गीर्ण कर के पीनस उत्पन्न करदेती है और स्वयंरुद्ध होकर कंठ में घुरघुराहट पैदा करती है तब उस समय प्राणों को कष्ट देनेवाला और बडे तीव्र वेगवाला श्वास उत्पन्न होता है । इस के उत्पन्न होनेपर रोगी अत्यन्तवेग से खांसने लगता है तथा खांसते २ कंठ रुकासा हो जाता है, खांसते २ रोगी वार वार मूर्च्छित होजाता है । और कफ के न निकलने के कारण रोगी अत्यन्तही क्लेशित होता है, कफ के निकलने पर थोड़ी देर को चैनसा पड़जाता है । गले में धूंआं सा घुमड़ता रहता है इस से वात भी काठिनता से कर सक्ता है । सोने में श्वास का वेग अधिक बढ़ता है; इस से वह सोने भी नहीं पाता है, करवट भी लेनेमें कष्ट होता है क्योंकि करवट लेने में श्वासका वेग अधिक बढ़ता है, बैठे होने पर कुछ सुख मिलता है, उष्ण द्रव्यों में इच्छा बढ़ती है,आंख फटीसी होजाती हैं, माथे पर पसीना आजाता है, वेदना अधिक होने लगती है, मुख सूख जाता है, वार वार श्वास बढ़ता है, वार वार देह में झोटे से लगते हैं बादलों के होनेपर, शीतल जल के स्पर्श पर पूर्व की वायु के चलने पर और कफकारीद्रव्यों के सेवन से श्वासकी वृद्धि होती है। यह तमकश्वास याप्य होता है, यदि नयाहोता है तो साध्य भी होता है ।

प्रतमकश्वासका लक्षण ।

ज्वरमूर्च्छापरीतस्यविद्यात्प्रतमकन्तुतम्।

अर्थ—यदि तमकश्वास में रोगीको ज्वर और मूर्च्छा होतीहो तो इसे **प्रतमकश्वास** कहते हैं ।

सन्तमकश्वासका लक्षण ।

उदावर्त्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः।
तमसावर्द्धतेऽत्यर्थंशीतैश्चाशुप्रशाम्यति
मज्जतस्तमसीवास्यविद्यात्संतमकन्तुतत्।

अर्थ—उदावर्त्त, रज, तथा अजीर्ण से देह के क्लिन्न होने से वा जठराग्निकेनिरोध

से जो श्वास होता है, तथा जो अंधकार से अत्यन्त बढ़ता है, शीतोपचारसे शान्त होता है तथा रोगी को श्वास में अंधेरा सा छायाहुआ दीखे तौ इस श्वास को **सन्तमकश्वास** कहते हैं।

क्षुद्रश्वासकालक्षण ।

रूक्षायासोद्भवःकोष्ठेक्षुद्रवातउदीरयेत्॥ क्षुद्रश्वासोनसोऽत्यर्थदुःखेनाङ्गप्रबाधकः॥ हिनस्तिनसगात्राणिनचदुःखीयथेतरे। नचभोजनपानानांनिरुणद्ध्युचितांगतिम्॥ नेन्द्रियाणांव्यथांनापिकाञ्चिदुत्पादयेद्रुजम्। ससाध्यउक्तोवलिनःसर्वेचाव्यक्तलक्षणाः॥

अर्थ—रूक्ष पदार्थों के सेवन और परिश्रम से अल्पनिदान और अल्पलक्षणों से युक्त वायु उदीर्ण होकर **क्षुद्रश्वास** को उत्पन्न करती है यह देह को अत्यन्त कष्ट नहीं देता है, वह अंगावयवों को और श्वासोंकी तरह पीड़ित नहीं करता है, न अन्नपानों की उचित गति को रोकता है इन्द्रियों को व्यथित नहीं करताहै न किसी प्रकारकी वेदना वा अन्य उपद्रवोंको उत्पन्न करता है।

यह श्वास साध्य होताहै, तथा वलवान् पुरुष के सबही श्वास जिनके पूर्ण लक्षण नहीं होते हैं साध्य होते हैं।

इतिश्वासाःसमुद्दिष्टाहिक्काश्चैवस्वलक्षणैः। एषांप्राणहरावर्ज्याघोरास्तेह्याशुकारिणः॥ भेषजैःसाध्ययाप्यांस्तुक्षिप्रंभिषगुपाचरेत्। उपेक्षितादहेयुर्हिशुष्कंकक्षमिवानलाः॥ कारणस्थानमूलैक्यादेकमेवंचिकित्सितम्। द्वयोरपियथादृष्टमृषिभिस्तन्निबोधत॥

अर्थ—इसतरह श्वास और हिचकियों के पृथक् पृथक् लक्षण वर्णन किये गये हैं, इन में से जो जो प्राणनाशक, भयंकर और शीघ्रकारी हैं उनका त्याग के योग्य होते हैं। साध्य और याप्यरोगों की चिकित्सा औषधियों द्वारा शीघ्रही करनी चाहिये। जैसे अग्नि सूखे तृणों के ढेर को शीघ्रही जलादेती है उसी तरह उपेक्षा कियेहुए उक्त रोग देह को शीघ्रही दग्ध करदेतेहैं।

हिचकी और श्वास इन दोनों रोगों के कारण, स्थान और मूल एकही हैं इस से ऋषियों ने दोनों की चिकित्सा भी एकही कही है, अब उसी का वर्णन किया जाता है।

हिक्का और श्वास में चिकित्सा।

हिक्काश्वासार्दितंस्निग्धैरादौस्वेदैरुपाचरेत्। युक्तंलवणतैलेननाडीप्रस्तरशङ्करैः॥ तैरस्यग्रथितःश्लेष्मास्रोतःस्वभिविलीयते। खानिमार्दवमायान्तिततोवातानुलोमता॥ यथाद्रिकुञ्जेष्वर्कांशुतप्तंविष्यन्दतेहिमम्। स्थिरःश्लेष्माशरीरस्थाःस्वेदैर्विष्यन्दतेतथा॥

अर्थ—हिचकी वा श्वास से पीडित मनुष्य को प्रथम स्निग्ध कर के स्वेदनदेवै, अर्थात् प्रथम लवणयुक्त तैल से स्निग्ध कर के नाड़ी, प्रस्तर वा संकर स्वेद द्वारा पसीने देवै, ऐसा करने से रोगी के स्रोतःसमूह

में जमाहुआ कफ गलजाता है, तब सम्पूर्ण स्रोत नरम पड़जांयगे और वायु अनुलोम गामी होगी। जैसे पहाड़की गुहाओं में जमाहुआ वर्फ सूर्य की तप्तकिरणोंसे पिघल जाता है उसीतरह शरीर के स्रोतोंमें जमा हुआ कफ भी स्वेदन कर्मसे पिघलजाताहै।

स्वेदनोत्तर भोजनादिक्रम।

स्विन्नंज्ञात्वाततस्तूर्णंभोजयेत्स्निग्धमोदनम्। मत्स्यानांशूकराणांवारसैर्दध्युत्तरेण वा॥ ततःश्लेष्मणिसंवृद्धेवमनंपाययेत्तु तम्॥ पिप्पलीसैन्धवक्षौद्रैर्युक्तंवाता विरोधियत्॥ निर्हृतेसुखमाप्नोतिसकफे दुष्टविग्रहे। स्रोतःसुचविशुद्धेषुचरत्यनि हतोऽनिलः॥ लीनश्चेद्दोषशेषःस्यात्तंधूपै र्निर्हरेद्बुधः। हरिद्रापत्रमैरण्डमूलंला क्षांमनःशिलाम्॥सदेवदार्वेलंमांसींपिष्ट्वा वर्त्तिंप्रकल्प्य च।तांघृताक्तांपिवेद्धूमैर्यवै र्वाघृतसंयुतैः॥ मधूच्छिष्टंसर्जरसंघृतंम ल्लकसंपुटे। कृत्वाधूमंपिवेत्छागंवा लंवास्नायुवागवाम्॥

अर्थ—स्वेदनकर्म के पश्चात् शीघ्रहीरोगी को स्निग्ध भोजन करावै अथवा दही डालकर मछली और सूअर का मांसरस देवै। ऐसा करनेसे कफकी वृद्धि होगी,कफके वढ़नेपर वमनकारक औषधियोंका पान करावै। इस वमन कारक औषध में पीपल, सेंधानमक, शहत और वातविरोधी अन्यद्रव्य डालदेवै। वमन होने से विगड़ेहुये कफ के निकलने पर रोगीको सुख प्रतीत होगा और वायु भी शुद्ध स्रोतों में बिना रुकावट के घूमने लगेगा।

यदि वमन कराने पर भी दोष शेष रहें तो निम्नलिखित धूमपान करावै। हलदी, तेजपात, अरंडकी जड़, लाख, मनसिल, देवदारु, इलायची इन सबको पीस वत्ती बनाकर घीमें भिजोकर धूमपान करै अथवा जौ पीसकर बत्ती बनाकर घी में भिजोकर धूमपान करै।

अथवा मोम, राल और घी इनको पीसकर चिलम में भरकर पीवै अथवा बकरे वा गौके वाल और स्नायुका धूमपान करै।

अन्यधूमपान।

श्योनाकवर्द्धमानानांनाडींशुष्कांकुशस्य वा। पद्मकंगुग्गुलुंलोहंशल्लकींवाघृताप्लु ताम्॥

अर्थ—श्योनाक, अरंड अथवा कसाकी सूखी नली को घी में भिगोकर धूमपान करै अथवा पद्माख, गूगल, लोह, और शल्लकी को पीस वत्ती वना घी में भिगोकर धूमपान करै।

क्षतःक्षीणातिसारासृक्पित्तदाहानुवन्ध जान्। मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिकाश्वासा नुपाचरेत्॥

अर्थ—जिस श्वास और हिचकी में क्षत, क्षीणता, अतिसार, रक्त पित्त और दाहका अनुवन्ध हो उस में मधुर, शीत और स्निग्ध क्रियाओं द्वारा चिकित्सा करै।

अस्वेद्यरोगी।

नस्वेद्याःपित्तदाहार्तारक्तस्वेदातिवर्त्ति

नः । क्षीणधातुबलारूक्षागर्भिण्यश्चाप्य पित्तला: ॥

अर्थ—पित्तरोगी, दाहरोगी, रक्तरोगी, स्वेदरोगी, क्षीणधातुरोगी, क्षीणवल, रूक्ष, गर्भिणी स्त्रियां ये सव स्वेदन कर्मके योग्य नहीं है ॥

कोष्णैः काममुरःकण्ठस्नेहसेकैःसशर्करैः उत्कारिकोपनाहैश्चतेषांमृदुभिराचरेत् ॥ तिलोमामाषगोधूमचूर्णैर्वातहरैः सह । स्नेहैश्चोत्कारिकासाम्लैःसक्षीरैर्वाकृताहिता ॥ नवज्वरामदोषेषुरूक्षस्वेदंविलङ्घनम् । समीक्ष्योल्लेखनंवापिकारयेल्लवणाम्बुना ॥

अर्थ—यदि ऊपर कहेहुए रोगियों को स्वेद दैने की आवश्यकता हो तौ उस के हृदय और कंठ पर चीनी मिलेहुये कुछ गुनगुने स्नेह सेचन द्वारा वा मृदु उत्कारिका वा उपनाह द्वारा स्वेदनदेवै । अथवा तिल, अलसी, उरद, और गेहूं का चून पिसवाकर इस में वातनाशक द्रव्य मिलावै और कांजी एवं स्नेह डालकर अथवा दूध डालकर उतकारिका बनाकर स्वेदन देवै । नवीन ज्वर और आमदोष में रूक्ष स्वेदन वा लंघन करावै । अथवा इस के साथही नमक और जल पान कराके वमन करादेवै ।

अतियोगोद्धतंवापिदृष्ट्वावातहरैर्भिषक् । रसाद्यैर्नातिशीतोष्णैरभ्यङ्गैश्चशमंनयेत् ॥ उदावर्तेतथाध्मानेमातुलुङ्गाम्लवेतसैः । हिङ्गुपीलुविडैश्चान्नंयुक्तंस्यादनुलोमनम् ।

अर्थ—वमनका अतियोग होने से जो वायुकी प्रवलता हो तौ वातनाशक मांसादि रस और न अत्यन्त उष्ण और न अत्यन्त ठंडे अभ्यंगों द्वारा उसे शान्त करै। उदावर्त्त और आध्मान के होने पर विजौरा, अमलवेत, हींग, पीलू, विडनमक के साथ भोजन कराने से अनुलोमन होता है ।

भिन्न २ अवस्थाओंमें चिकित्सा ।

हिक्काश्वासामयोह्येकोबलवान्दुर्बलोऽपरः कफाधिकस्तथैवैकोरूक्षबहुनिलोऽपरः । कफाधिकेबलस्थेचवमनंसविरेचनम् ॥ कुर्य्यात्पथ्याशिनेधूमलेहादिशमनंततः । वातिकानदुर्बलान्बालानवृद्धांश्चानिलसूदनैः ॥ तर्पयेदेवशमनैःस्नेहयूषरसादिभिः

अर्थ—हिक्का और श्वास से पीडित कोई मनुष्य तौ बलवान् और कोई दुर्वल होता है, कोई कफाधिक, कोई रूक्ष और कोई अत्यन्त वात से पीडित होता है ।

कफकी अधिकता में बलवान् रोगी को वमन और विरेचन देकर पथ्य से रक्खै और तदनन्तर धूमपान,अवलेह आदि शमन कर्त्ता औषधियों का सेवन करावै । वाताधिक्य दुर्वल, बालक और वृद्धों को वायुनाशक संशमनकर्त्ता स्नेह, यूष और मांस रसादि द्वारा सन्तर्पण देवै ।

वमनका निषेध ।

अनुत्क्लिष्टकफास्विन्नदुर्वलानांविशोधनान् ॥ वायुर्लब्ध्वास्पदोमर्मसंशोष्याशुहरेदसून् । दृष्टान्बहुकफांस्तस्माद्रसैरानूपवारिजैः ॥ तृप्तानविशोधयेत्स्विन्नान्बृंहये

दितरान्भिषक् । बर्हितित्तिरिदक्षाश्चजाङ्गलाश्चमृगद्विजाः ॥ दशमूलरसेसिद्धाः कौलत्थेवारसेहिताः ।

अर्थ—जिसको कफकी अधिकता न हो और पसीने न दिये गये हों ऐसे दुर्बलरोगी को संशोधन औषध न देवै, क्योंकि संशोधन से शुद्ध स्रोतों में वायु घुसकर तथा कुपित होकर मर्म्मों को सुखाकर प्राणोंको हर लेती है। इसी कारणसे दृढ और बहुकफयुक्त रोगियों को पसीने देने के पीछे आनूप और जलज जीवों का मांसरस देकर तर्पण करै और फिर वमन करावै तथा वाताधिक्य वृद्ध और वालकों को बृंहणकर्त्ता औषधियों का सेवन करावै। मोर, तीतर, मुर्गा, तथा जांगल पशुपक्षियों का मांसरस दशमूलके रस में वा कुलथी के रस में सिद्ध करके देवै ।

हिक्का और श्वास में यूष ।

निदिग्धिकांविल्वमध्यंकर्कटाख्यांदुरालभां ॥ त्रिकण्टकांगुडूचीश्चकुलत्थांश्च सचित्रकान् । जलेपक्त्वारसःपूतोघृतभृष्टःसनागरः ॥ सव्योषलवणश्रेष्ठःस्याद्यूषोभोजनेहितः । रास्नावलांपञ्चमूलंह्रस्वंमुद्गान्सचित्रकान् ॥ पक्त्वाम्भसिरसेतस्मिन्यूषःसाध्यश्चपूर्ववत् । पल्लवान्मातुलुङ्गस्यनिम्बस्यकुलकस्यच ॥ पक्त्वामुद्गांश्चसव्योषान्क्षारयूषानविपाचयेत् । दत्त्वासलवणंक्षारंशिग्रूणिमरिचानिच ॥ युक्त्यासस्साधितोयूषोहिक्काश्वासविकारनुत् । कासमर्दाग्रपत्राणां यूषःसौभाञ्जनस्यच ॥ शुष्कमूलकयूषश्चहिक्काश्वासनिवारणः । सदधिव्योषसर्पिष्कोयूषोवार्ताकजोहितः ॥ शालिषष्ठिकगोधूमयवान्नान्यनवानिच ॥

अर्थ—कटेरी, वेलगिरी, काकडासींगी, जवासा, गोखरू, गिलोय, कुलथी और चीता, इन में से कुलथी के सिवाय सब द्रव्यों को समान भाग लेकर जल में पकावै फिर इसे छानकर इसरस में कुलथी डालकर यूष वनावै, इस में पीपल सोंठ, मिरच और नमक डालकर घी में छोंककर भोजन के साथ सेवन करै ॥

रास्ना, खरैटी, लघु पंचमूल, और चीता इन को पूर्ववत् क्वाथकर इन में मूंग और जौ उवालकर पूर्ववत् मसाले डालकर सेवन करै ।

विजौरे, नीम और पर वल के पत्तों को जोश देकर क्वाथ करले, इस में मूंग, त्रिकुटा और क्षार डालकर यूष वनावै । फिर इस में नमक क्षार, सहजना और काली मिरच डालकर युक्ति पूर्वक सेवन करने से हिचकी और श्वास दूर होजाते हैं ।

कसोंदी, सहजना और सूखीमूली के पत्तों के क्वाथ में सिद्ध किया हुआ यूष हिक्का और श्वास को रोकता है। इसी तरह वेंगन के यूष में दही, त्रिकुटा और घी डालकर सेवन करने से भी हिक्का और श्वास दूर होते हैं । पुराने शालीचांवल, साठीचांवल, गेंहू और जौ भी उक्तरोगों में हित होते हैं।

उक्तरोगों में यवागू ।

हिंगुसौवर्चलाजाजीजीवन्तीव्योषदाडि

मैः । सकर्कटाह्वयेसिद्धायवागूःश्वास हिक्किनाम् ॥ दशमूलशटीरास्नापिप्पली मूलपौष्करैः । शृङ्गीतामलकीभार्गीगुडूची नागरर्द्धिभिः ॥ यवागूंविधिनासिद्धांक षायंवापिबेन्नरः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्ति हिक्काश्वासप्रशान्तये ॥ पुष्कराह्वश टीव्योषमातुलुङ्गाम्लवेतसैः । योजयेद न्नपानानिससर्पिर्विडहिंगुभिः ॥

अर्थ—हींग, संचलनमक, कालाजीरा, जयन्ती, त्रिकुटा, अनार और काकड़ासींगी इन के साथ में सिद्ध की हुई यवागू श्वास और हिक्कारोगियों को हित है । अथवा दशमूल, कचूर, रास्ना, पीपलामूल, कुडा, काकड़ासींगी, भूम्यांवला, भाडंगी, गिलोय, सोंठ और ऋद्धि इन से सिद्ध कीहुई यवागू वा इनका क्वाथ सेवन करनेसे खांसी हृद्ग्रह, पार्श्ववेदना, हिचकी और श्वास शान्त होजाते हैं ॥

पुष्करमूल, शटी, त्रिकुटा, विजौरा और अमलवेत इन के क्वाथ में सिद्ध कियाहुआ अन्नपान घी, विडनमक और हींग, डालकर सेवन करने से उक्तरोग दूर होजातेहैं।

उक्तरोगोंपर अन्यप्रयोग ।

दशमूलस्यवाक्काथमथवादेवदारुणः । तृषितोमदिरांवापिहिक्काश्वासीपिबेन्न रः ॥ पाठांमधुरसांरास्नांसरलंदेवदारु च । प्रक्षाल्यजर्जरीकृत्यसुरामण्डेनवास येत् ॥ तंमन्दलवणंकृत्वाभिषक्प्रसृत सम्मितम् । पाययेत्तुततोहिकाश्वासश्चैवो पशाम्यति ॥ हिंगुसौवर्चलंकोलंसमुद्गं पिप्पलींवलाम् । मातुलुङ्गरसेपिष्टमार नालेनवापिबेत् ॥ सौवर्चलंनागरञ्चभा र्गीद्विःशर्करायुतम् । उष्णाम्बुनापिबेदे तद्धिक्काश्वासविकारनुत् ॥ भार्गीनाग रयोःकल्कंमरिचक्षारयोस्तथा । पीतद्रु चित्रकास्फोतामूर्वाणांचाम्बुनापिबेत् ॥

अर्थ—दशमूल का क्वाथ अथवा देवदारु का क्वाथ अथवा मदिरा इन में से किसी एक के पीने से हिक्का और श्वास में तृषा का उपद्रव शान्त होजाता है अथवा पाठा- दाख, रास्ना, सरलकाष्ठ, देवदारु इन को धोकर कुछ कूटकर सुरामंड भिगोदेवै।इसमें थोड़ासा नमक डालकर एक पस्सा पान करावै इस से हिचकी और श्वास शान्त होजाते हैं ॥

हींग, संचलनमक, वेर, मूंग, पीपल और खरैटी, इनको विजौरे के रस में पीसकर कांजी के साथ पीवै, अथवा संचलनमक, सोंठ, भाडंगी, प्रत्येक एक २ भाग, शर्करा दो भाग, इनकी फंकी लेकर ऊपर से गरमजल पीवै तौ हिचकी और श्वास दूर होजाते हैं ।

अथवा भाडंगी और सोंठ का कल्क अ- थवा कालीमिरच और जवाखार का कल्क अथवा सरलकाष्ठ, चीता, आस्फोता, मूर्वा, इनका कल्क गरमजल के साथ पीनेसे उक्त रोग दूर होजाते हैं ।

उक्तरोगोंमेंअन्यप्रयोग ।

मधूलिकातुगाक्षीरीशर्करापिप्पलीतथा । उत्कारिकेघृतेसिद्धाश्वासेपित्तानुबन्धजे॥ श्वाविधःशशमांसश्चशशकस्यचशोणित

म् । पिप्पलीघृतसिद्धानिश्वासेवातानुबन्धजे ॥ सुवर्चलारसोदुग्धंघृतंत्रिकटुकायुतम् । शाल्योदनस्यानुपानंवातपित्तानुगेपरम् ॥ शिरीषपुष्पस्वरसःसप्तपर्णस्यवापुनः । पिप्पलीमधुसंयुक्तःकफपित्तानुगेमतः ॥ मधुकंपिप्पलीमूलंगुडोगोऽश्वशकृद्रसः । घृतंक्षौद्रञ्चतच्छ्वासे रौक्ष्याभिष्यन्दजेशुभम् ॥

अर्थ—श्वास में पित्त का अनुबन्ध होने पर गेहूंकी मैदा, वंशलोचन, चीनी और पीपल इनकी उत्कारिका बनाकर घी में सिद्ध करकेदेवै ।

वातानुबन्धी श्वासमें सेह का मांस, सस्से का मांस अथवा छोटी सेहका रुधिर पीपल डालकर घी में सिद्ध कर देवै ।

वातपित्त का अनुबन्ध होनेपर श्वास में सांचौली का रस अथवा घी, दूध और त्रिकुटा डालकर शालीचांवलका भातदेवै ।

कफपित्त का अनुबन्ध होनेपर श्वास में सिरस के फूलों का स्वरस, वा सप्तपर्णी का स्वरस पीपल और शहत मिलाकर देवै।

रूक्षता और अभिष्यन्दज श्वास में मुलहटी, पीपलामूल, गुड़,गोबरकारस, घोड़ेकी लीद का रस इनकोंघी और शहतके साथ सेवन करै ।

अन्यप्रयोग ।

खराश्वोष्ट्रवराहाणांमेषस्यचगजस्यच । शकृद्रसंबहुकफेचैकैकंमधुनापिबेत् ॥ क्षारञ्चाप्यश्वगन्धायालेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा।

अर्थ—गधा, घोड़ा, ऊंट, सूअर, मेंढ़ा, हाथी इन में से किसी एक के विष्टाकारस शहत डालकर कफकी अधिकता में पानकरै अथवा असगंध के क्षारको शहत और घी के साथ चाटै ।

कफकी अधिकता में अन्यप्रयोग ।

मयूरपादंनालंबाशकलंशल्लकस्यवा ॥ श्वाविज्जाण्डकचाषाणांरोमाणिकुररस्य वा । शृङ्ग्येकद्विशफानांवाचर्मास्थीनि खुरांस्तथा ॥ सर्वाण्यैकैकशोवापिदग्ध्वाक्षौद्रघृतान्वितान् । चूर्णलीढ्वाजयेत्कासंहिक्कांश्वासञ्चदारुणम् ॥ एतेहिकफसंरुद्धगतिप्राणप्रकोपजाः । तस्मात्तन्मार्गशुद्ध्यर्थंलेह्यायोज्याननिष्कफे

अर्थ—मोर के पंजे वा नली वा सेह के कांटे अथवा सेह, जाण्डक, नीलकंठ वा कुरर के रोम अथवा सींग वाले एक या दो खुर के पशुओं के चर्म, हड्डी और एक एक वा सब को एक साथ जलाकर इन की भस्मको शहत और घी के साथ चाटै तौ खांसी, हिचकी और दारुण श्वास दूर हो जाते हैं । कफसे प्राण वायुका मार्ग रुकजाने पर जब वह कुपित होती है तब ये प्रयोग हितकारी होते हैं, प्राणवायु के मार्ग की शुद्धिके लिये इनका सेवन हित है,यदि कफनहो तौ इनका सेवन कदापि न करै।

सुतरांमार्गसंरोधाद्वहिर्ज्जलमुदीर्य्यते । यथातथानिलस्तस्यमार्गशुद्धौयतेतना ॥

अर्थ—जैसे नदियों का वाहर का मार्ग रुकजाने से बीच में रुकाहुआ जल बढता चला जाता है, उसी तरह वायुका मार्ग

रुकने पर वह भी बढती चली जाती है इस लिये उसके मार्गकी शुद्धि यत्नपूर्वक करना चाहिये ।

तमक श्वास में प्रयोग ।

पुष्कराह्वंशटींमुस्तंजीवन्तींसुरसंत्वचम् ।
एतांतामलकींशुण्ठींचण्डामगुरुपिप्पलीम्
वालकश्चसमंचूर्णंकृत्वाष्टगुणशर्करम् ।
सर्वथातमकेश्वासेहिक्कायाश्चप्रयोजयेत्॥

अर्थ—पुहकर मूल, कचूर, मोथा, जीवन्ती, तुलसी, दालचीनी, भूयआंवला, सोंठ, चण्डा, अगर, पीपल, नेत्रवाला इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण करै और अठगुनी चीनी मिलाकर तमकश्वास और हिक्का में प्रयोग करै ।

छर्दनंकासमानस्यस्वरभेदप्रताम्यतः ।
वातश्लेष्महरैर्योज्यंतमकेतुविरेचनम् ॥

अर्थ—खांसी, स्वरभेद की अधिकता में वातकफ नाशक द्रव्यों के द्वारा वमन करावै और तमकश्वाश में उन्ही औषधियों से सिद्ध विरेचन देवै ।

मुक्तादि चूर्ण ।

मुक्ताप्रबालवैदूर्य्यशंखस्फटिकमञ्जनम् ।
ससारगन्धकाचार्कसूक्ष्मैलालवणद्वयम्॥
ताम्रायोरजसीरूप्यंससौगन्धिकमेववा ।
जातीफलंशणाद्बीजमपामार्गाश्चतण्डुलाः
एषांपाणितलाच्चूर्णात्तुल्यानांक्षौद्रसर्पिषा । हिक्कांश्वासञ्चकासञ्चलीढमाशुनियच्छति । अञ्जनात्तिमिरंकाचंनीलिकंपुष्पकंतमः ॥ पैल्ल्यंकण्डूमभिष्यन्दंमन्दश्चतत्प्रणाशयेत् ।

अर्थ—मोती, मूंगा, वैडूर्य्यमणि, शंख स्फटिक (विल्लौर), रसौत, काचमणि, गन्धक, आककी जड़, छोटी इलायची, दोनों नमक, ताम्रभस्म, लोहभस्म, रौप्य-भस्म, जायफल, सन के बीज, ओंगा के बीज । इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण बनावै । फिर दो तोले चूर्ण को घी और शहत के साथ चाटै इस के सेवन करने से हिचकी, श्वास, खांसी शीघ्रही दूर हो-जाते हैं । तथा इसी चूर्ण को आंखों में आंजने से तिमिर, काच, नीलक, फुली-तम, पैल्ल, कंडू, अभिष्यन्द, और मन्दता दूर होजाती है ।

अन्य प्रयोग ।

शठीपुष्करमूलानांचूर्णमामलकस्यच ।
मधुनासंयुतंलेह्यंचूर्णंवायोरजोमयम् ॥
सशर्करांतामलकींद्राक्षांगोऽश्वशकृद्रसम्।
तुल्यंगुडंनागरञ्चप्राशयेत्नावयेतवा ॥
लशुनस्यपलाण्डोर्वारसंगृञ्जनकस्यवा ।
नावयेच्चन्दनंवापिनारीक्षीरेणसंयुतम्॥
सुखोष्णंघृतमण्डंवासैन्धवेनावचूर्णितम्।
नावयेन्मक्षिकाविष्ठामलक्तकरसेनवा ॥
स्त्रियाःस्तन्येनसिद्धंवासर्पिर्मधुरकैरपि।
पीतंनस्तोनिषिक्तंवासद्योहिक्कांनियच्छति ॥

अर्थ—कचूर, पुहकर, मूल, आंवला, इनका चूर्ण अथवा लोहभस्म को शहत के साथ चाटै । अथवा चीनी, भूम्यांवल, दाख, गौ और घोडे के विष्टा का रस, तथा गुड़ और सोंठ समान भाग लेकर

खाने को देवै वा सुंघावै । अथवा लहसन, प्याज वा गृञ्जनका रस नस्य में देवै । अथवा चन्दन और स्त्री के दूधकी नस्य देवै । अथवा ईषदुष्ण घृत मंड में सेंधान-मक मिलाकर नस्यदेवै । अथवा मक्खी का मल महावरके रसकी नस्यदेवै, अथवा मक्खी के विष्टा को स्त्री के दूध में मिलाकर नस्य देवै । अथवा मधुरगण से सिद्ध घृत को पान कराने, वा नस्य देने से शीघ्रही हिच की दूर होजाती हैं ।

अन्य प्रयोग ।

पिप्पलीमधुयुक्तांवारसंधात्रीकपित्थयोः। लाजालाक्षामधुद्राक्षापिप्पल्यश्वशकृद्रसान् ॥ लिह्यात्कोलंमधुद्राक्षापिप्पलीनागराणिवा । शीताम्बुसेकःसहसात्रासोस्मापनंभयम् ॥ क्रोधहर्षप्रियोद्वेगाहिक्काप्रच्यवनामताः । हिक्काश्वासविकाराणांनिदानंयत्प्रकीर्तितम् ॥ वर्ज्यमारोग्यकामैस्तद्धिक्काश्वासधिकारिभिः ।

अर्थ—आंवले के रस वा कैथ के रस में पीपल और शहत मिलाकर पान करै । अथवा खील, लाख, शहत, घोडे की लीदका रस का सेवन करै । अथवा बेर, शहत, दाख, पीपल और सोंठ का सेवन करै । शीतल जलका तरड़ा, सहसा त्रास दिखाना भूल में डालना, भय दिखाना, क्रोधकराना, हर्षकराना, प्यारों का उद्वेग कराना इन सब से हिक्कादूर होती है ।

हिक्का और श्वास ये दोनों रोग जिन२ कारणों से होते हैं उनका त्यागदैना उन हिक्का और श्वास विकारियों के लिये हित है जो आरोग्यकी इच्छा करते हैं ।

उक्तरोगों में घृतविधान ।

हिक्काश्वासानुबन्धायेशुष्कोरःकण्ठतालुकाः ॥ प्रकृत्यारूक्षदेहाश्चसर्पिर्भिस्वानुपाचरेत् ।

अर्थ—जिन मनुष्योंके हिचकी और श्वास के अनुबन्ध में वक्षःस्थल, कंठ और तालु सूखगये हैं और जिनकी देह स्वाभाविक रूक्ष है उनको घृतदेवै ।

दशमूलादिघृत ।

दशमूलरसेसर्पिर्दधिमण्डेचसाधयेत् ॥ कृष्णासौवर्चलक्षारवयःस्थहिंगुचोरकैः॥ कायस्थयाचतत्पानाद्धिकाश्वासौप्रणाशयेत् ॥

अर्थ—दशमूल के क्काथ और दधिमंड में पीपल, संचलनमक, जवाखार, हरड़, हींग और चोरक डालकर घृत पाक करै । अथवा दशमूल के क्काथ में छोटी इलायची डालकर घृत सिद्ध करै । इस के पीने से हिक्का और श्वास नष्ट होजाते हैं ।

तेजोवत्यादिघृत ।

तेजोवत्यभयाकुष्टंपिप्पलीकटुरोहिणी । भूतीकंपौष्करंमूलंपलाशश्चित्रकःशठी ॥ सौवर्चलंतामलकीसैन्धवंबिल्वपेशिका। तालीसपत्रंजीवन्तीबचातैरक्षसम्मितैः॥ हिंगुपादैर्घृतप्रस्थंपचेत्तोयेचतुर्गुणे । एतद्यथाबलंपीत्वाहिकाश्वासौजयेन्नरः ॥ शाखानिलार्शोग्रहणीहृत्पार्श्वरुजएवचा।

अर्थ—तेजोबती, हरड़, कूठ, पीपल, कुटकी, अजवायन, पुष्करमूल, ढाक, चीतेकी

जड़, कचूर, संचलनमक, भूयआंवला, सेंधानमक, वेलगिरी, तालीसपत्र, जीवन्ती, वच, ये सब दो २ तोले लेवै फिर इनका क्काथ कर के चौगुने क्काथ में एक प्रस्थघी पकावै इस में भुनीहुई हींग आधा तोला डालदेवै। इस घृत को वलानुसार पीने से हिक्का और श्वास दूर होजाते हैं । शाखावात, अर्श, ग्रहणीरोग, हृद्रोग और पार्श्ववेदना ये भी सब दूर होजाते हैं ।

अन्यप्रयोग ।

मनःशिलासर्जरसलाक्षारजानिपद्मकैः॥
मञ्जिष्ठैलैश्चकर्षांशैःप्रस्थःसिद्धोघृताद्धितः।
जीवनीयोपसिद्धंवासक्षौद्रंलेहयेद्घृतम् ॥
त्र्यूषणंचाधिकंवापिपिवेद्वृषघृतंतथा ।
यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णंवातानुलोम नम्॥भेषजंपानमन्नंवाताद्धितंश्वासहिक्कि ने । वातकृद्वाकफहरंकफकृद्वानिलापहम्॥
कार्यंनैकान्तिकंताभ्यांप्रायःश्रेयोऽनिला पहम् ॥

अर्थ—मनासिल, राल, लाख, हलदी, पद्माख, मजीठ और छोटी इलायची ये सब एक २ कर्ष लेकर इन के चतुर्गुण क्काथ में घृत पाक कर के सेवन करै । यह घृत अनुभव कियाहुआ है । अथवा जीवनीय गण में सिद्ध किया हुआ घृत शहत मिलाकर सेवन करै । अथवा वासाघृतमें त्रिकुटा डालकर सेवन करै । जो जो द्रव्य कफ वात नाशक, उष्ण और वातानुलोमी हैं वे सब खाने वा पीने में श्वास वा हिचकी रोगवालेको देवै । जो द्रव्य वातकर्त्ता और कफनाशक हैं अथवा जो कफकर्त्ता और वातनाशक हैं। ऐसे द्रव्यों का सेवन ठीक नहीं है इन से तो केवल वातनाशक द्रव्यही उक्तरोगों में हित है ।

उक्तरोगोंमेंसंशमनद्रव्योंकाविधान।

सर्वेषांबृंहणोह्यल्पःशक्यश्चप्रायशोभवेत्॥
नात्यर्थंशमनोपायोभृशःशक्यश्चकर्शने ।
तस्मात्शुद्धानशुद्धांश्चशमनैर्बृंहणैरपि ॥
हिक्काश्वासार्दितान्जन्तून्प्रायशःसमु पाचरेदिति ।

अर्थ—इन संपूर्ण रोगों में बृंहणकर्त्ता द्रव्य प्रायः अल्पशक्य होते हैं, संशमनकर्त्ता द्रव्य अत्यन्त शक्य नहीं होते और कर्षन अत्यन्त शक्य होते हैं, अतएव हिक्काश्वास रोगी संशोधन द्रव्योंसे शुद्ध हुये हों वा न हुयेहों उनको शमनकर्त्ता और बृंहणकर्त्ता औषधियोंका सेवन प्रायः करावै ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

दुर्जयत्वेसमुत्पत्तौक्रियैकत्वेचकारणम् ॥
लिङ्गंपथ्यञ्चहिक्कानांश्वासानांचेहदार्शि तम् ॥

अर्थ—इस अध्याय में हिक्का और श्वास की दुर्जयता, समानोत्पत्ति, समान चिकित्सा, समान कारण, लक्षण और पथ्य वर्णन किये गये हैं ।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने हिक्काश्वासचिकित्सितं नामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथातःकासचिकित्सितंव्याख्यास्यामः ।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय वोले कि अवहम कासचिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

तपसायशसाधृत्याश्रियाचपरयान्वितः ॥ आत्रेयःकासशान्त्यर्थंसिद्धंप्राहचिकित्सितम् ।

अर्थ—तप, यश, धृति और श्री के कारण सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हुए आत्रेय ऋषि खांसीकी निवृत्ति के लिये अनुभूत चिकित्साका वर्णन करने लगे ।

कास के भेद ।

वातादिभ्यस्त्रयोयेचक्षतजःक्षयजस्तथा ॥ पञ्चैतेस्युर्नृणांकासावर्द्धमानाःक्षयप्रदाः ।

अर्थ—वातज, पित्तज कफज,क्षतज और क्षयज इन पांच प्रकार की खांसी होती है,क्रम २ से वढकर ये खांसी शरीर को क्षीण करदेती है ।

खांसी के पूर्वरूप ।

पूर्वरूपंभवेत्तेषांशूकपूर्णगलास्यता ॥ कण्ठेकण्डूश्चभोज्यानामवरोधश्चजायते ।

अर्थ—गले और मुख में शूक भराहुआ मालूम होना; कंठ में खुजली, तथा भुक्त पदार्थ का अवरोध ये सव कास के पूर्वरूप हैं।

कासका लक्षण ।

अधःप्रतिहतोवायुरूर्द्ध्वस्रोतःसमाश्रितः॥ उदानभावमापन्नःकण्ठेसक्तस्तथोरसि । आविश्यशिरसःखानिसर्वाणिप्रतिपूरयन् ॥ आभञ्जन्नाक्षिपन्देहंहनुमन्येतथाक्षिणी । नेत्रेपृष्ठमुरःपार्श्वेनिर्भज्यस्तम्भयन्ततः ॥ शुष्कोवासकफोवापिकसनात्कासउच्यते ।

अर्थ—नीचे से रुकी हुई वायु ऊपरको उठकर ऊपरवाले स्रोतों का आश्रय लेकर उदानवायु से मिलकर जव कंठ और वक्षःस्थल में प्रवृत्त होजाती है, तदनन्तर सिर के सम्पूर्ण स्रोतों को भरकर सम्पूर्ण देह को विकल कर देती है, तथा हनु, मन्या और आंखों को विचलित कर देती है। तदनन्तर वही वायु दोनों नेत्र, पीठ,वक्षस्थल और पसलियों को तोड़कर स्तम्भित करदेतीहै । सूखी वा कफके साथ खुल २ शव्द करने से खांसी कहलाती है ।

कास में विषमशव्द का हेतु ।

प्रतिघातविशेषेणतस्यवायोःसरंहसः ॥ वेदनाशव्दवैषम्यंकासानामुपजायते ।

अर्थ—नीचे से रुकने के कारण वायु के ऊपर जाने में अनेक प्रकारकी वेदना होती है उसी के अनुसार खांसी में विषम शव्द होते हैं ।

वातज कास का निदान ।

रूक्षशीतकषायाल्पप्रमितानशनस्त्रियः ॥ वेगधारणमायासोवातकासप्रवर्तकाः ।

अर्थ—रूखे, कसीले और शीतल पदार्थों के सेवन से, अल्पाहार करने से, प्रमित भोजन से वा विलकुल न खाने से,स्त्रीसंसर्ग

से, वेग धारणसे, परिश्रम से वातज खांसी की प्रवृत्ति होती है ।

बातजखांसीकेलक्षण ।

हृत्पार्श्वोरःशिरःशूलस्वरभेदकरोभृशम्॥ शुष्कोरःकण्ठवक्त्रास्यहृष्टलोम्नःप्रताम्यतः । निर्घोषीस्तनतोदैन्यदौर्वल्यक्षयमोहकृत् ॥ शुष्ककासःकफंशुष्कंकृच्छ्रान्मुक्त्वाल्पतांव्रजेत् । स्निग्धाम्ललवणोष्णैश्चभुक्तमात्रेप्रशाम्यति ॥ ऊर्द्धवातस्य जीर्णेऽन्नेवेगवान्मारुतोभवेत् ।

अर्थ—हृदय, पसली, वक्षःस्थल और शिर में शूल होता है, स्वरभंग होजाताहै, वक्षःस्थल, कंठ और मुख में शुष्कता होती है, लोम खड़े होजाते हैं, आंखों के साम्हने अंधेरा छाजाता है, शब्द वन्द होजाता है, दीनता होती है, दुर्वलता, क्षीणता और मोह होते हैं । सूखी खांसी, सूखा कफ वड़ी कठिनता से थोड़ासा निकलता है । चिकना खट्टा, नमकीन और उष्ण भोजन करनेही से शान्ति होजाती है । अन्न के पचने पर वायु फिर वलवान् होजाती है ।

पित्तजकास का निदान ।

कटुकोष्णविदाह्यम्लक्षाराणामतिसेवनम् ॥ पित्तकासकरंक्रोधःसन्तापश्चाग्निसूर्यजः ॥

अर्थ—कड़वे, ईषदुष्ण, विदाही, खट्टे और क्षारादि के अत्यन्त सेवन से, क्रोध से, अग्नि वा सूर्य के संताप से पित्तजकास उत्पन्न होता है ।

पित्तजकासकेलक्षण ।

पीतनिष्ठीवनाक्षित्वंतिक्तास्यत्वंस्वरामयः । उरोधूमायनंतृष्णादाहोमोहोरुचिभ्रमः ॥ प्रततंकासमानश्चज्योतींषीवचपश्यति । श्लेष्माणंपित्तसंसृष्टंनिष्ठीवतिच पैत्तिके ॥

अर्थ—कफका पीलापन, नेत्रों में पीलापन, मुख में कड़वापन, स्वरभंग, हृदय में धूंआंसा घुमड़ना, तृष्णा, दाह, मोह, अरुचि, भ्रम, अत्यन्त खांसनेके समय आंखों के सामने तारोंकीसी चमक दिखाई दैना तथा पित्त मिलाहुआ कफ निकलना येसव पित्तजकास के लक्षण हैं ।

कफजकासके हेतु ।

गुर्वभिष्यन्दिमधुरस्निग्धस्वप्नाविचेष्टनैः। वृद्धःश्लेष्मानिलंरुद्धाकफकासंकरोतिहि

अर्थ—भारी, अभिष्यन्दी, मधुर और स्निग्ध द्रव्यों के सेवन से, निद्रा और विचेष्टा से, वढ़ाहुआ कफ वायुको रोककर कफकी खांसी उत्पन्न करता है ।

कफजकास के लक्षण ।

मन्दाग्नित्वारुचिच्छर्दिपीनसोक्लेशगौरवैः । लोमहर्षास्यमाधुर्यक्लेदसंसदनैर्युतम् ॥ वहलंमधुरंस्निग्धंनिष्ठीवतिघनंकफम् । कासमानोऽतिरुग्वक्षःसम्पूर्णमिवमन्यते ॥

अर्थ—मन्दाग्नि, अरुचि, वमन, पीनस, क्लेश, भारापन, लोमहर्ष, मुख में मीठापन; क्लेद, अंगग्लानि, अत्यन्त मधुर, स्निग्ध और गाढ़ा कफ निकलना तथा खांसते

समय अत्यन्त वेदना होवै और वक्षःस्थल कफ से भराहुआ मालूम हो ये कफजकास के लक्षण हैं।

क्षतजकास का हेतु।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः। रूक्षस्योरःक्षतंवायुःगृहीत्वाकासमावहेत् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्त्रीगमन करने से; बोझ ढोने से, मार्ग चलने से, युद्ध करने से, घोड़े हाथियों को रोकने से रूक्ष व्यक्ति के वक्षःस्थल में घाव होजाता है इस से वायु का संसर्ग होनेसे क्षतजकास उत्पन्न होता है।

क्षतजकासकेलक्षण।

सपूर्वंकासतेशुष्कंततःष्ठीवेत्सशोणितम्। रुज्यमानेनकण्ठेनविरुग्णेनैवचोरसा ॥ सूचीभिरिवतीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेनशूलिना दुःखस्पर्शेनशूलेनभेदपीडाभितापिना ॥ पर्वभेदंज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य्यपीडितः। पारावतइवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात्।

अर्थ—इस रोग में प्रथम सूखी खांसी उठती है फिर थूक के साथ में रुधिरआने लगता है, कंठ और वक्षःस्थल में अत्यन्त वेदना होने लगती है, पैनी सुई के चुभने कासा शूल होने लगता है, वक्षःस्थल के हाथ लगाने में दर्द होता है, फटने कीसी पीड़ा तथा ताप होता है। जोड़ों में दर्द ज्वर, श्वास, तृष्णा, और स्वरभंगता ये उपद्रव भी होते हैं। इस क्षतजकास में कंठ के भीतर कबूतर के कूजने के समान शब्द होता है।

क्षयजकासका हेतु।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगानिग्रहात्। घृणिनांशोचतान्दृणांव्यापन्नेग्नौत्रयोमलाः। कुपिताःक्षयजंकासंकुर्युर्देहक्षयप्रदम्।

अर्थ—विषम भोजन, असात्म्य भोजन, अति स्त्री संसर्ग, मलमूत्रादि वेगनिग्रहादि कारणों से, घृणा से, शोच से अग्नि के मन्द होने से तीनों दोष कुपित होकर देह को क्षीण करने वाली क्षयज खांसी को उत्पन्न करते है।

क्षयजकासके लक्षण।

दुर्गन्धंहरितंरक्तंपूयवत्कफमस्यति ॥ स्थानादुत्कासमानश्चहृदयंमन्यतेच्युतम्। अकस्मादुष्णशीतार्त्तोबह्वाशीदुर्बलःकृशः ॥ स्निग्धाच्छमुखवर्णत्वक्श्रीमद्दशनलोचनैः। पाणिपादतलैःश्लक्ष्णैःसततासूयकोघृणी ॥ ज्वरोमिश्राकृतिस्तस्य पार्श्वरुक्पीनसोऽरुचिः। स्वरभेदोनिमित्तश्चभिन्नंवृत्तपुरीषता ॥ इत्येषक्षयजः कासःक्षीणानांदेहनाशनः।

अर्थ—इस खांसी में दुर्गन्धयुक्त हरा वा लाल राधके समान कफ निकलता है, खांसने में ऐसा मालूम होने लगता है कि हृदय अपने स्थान से जुदा हुआ जाता है। रोगी को अकस्मात् कभी जाड़ा और कभी गर्मी लगने लगती है, भोजन बहुत करता है इस पर भी दुर्बल और कृश रहता है। मुख के वर्ण और त्वचा में स्निग्धता और स्वच्छता होती है, दांत और नेत्रों में चमक

होती है। हथेली और पगतली में चिकनापन होता है। असूयकता और घृणा उत्पन्न होती है, ज्वर, मिश्राकृति, पार्श्व वेदना, पीनस और अरुचि होती है। मल फटजाता है, विनाही निमित्त स्वरभंग होजाता है, यह क्षीण पुरुषों की देह को नाश करने वाली **क्षयजकास** होती है।

कासका साध्या साध्यवर्णन।

याप्योवलवतांवास्याद्याप्यस्त्वेवत्ततोत्थितः॥ कदाचिदपिसिद्ध्येतामेतौपादगुणान्वितौ। स्थविराणांजराकासःसर्वोयाप्यःप्रकीर्तितः॥ त्रीन्साध्यान्साधयेत्पूर्वान्पथ्यैर्याप्यांश्चयापयेत्। चिकित्सामतऊर्ध्वन्तुश्रृणुकासानिवर्हिणीम्।

अर्थ—वलवान् रोगी के क्षतज और क्षयज कास याप्य होजाती है और यदि चिकित्साके चारों पाद ठीक हों तो ये दोनों साध्य भी हो जाती है, वृद्ध मनुष्यों की जरा कालीन खांसी याप्यही होती हैं। पहिली तीन प्रकार की साध्य खांसियों को दूर करने का उपाय करै दूसरी दो याप्य हैं इन को पथ्यद्वारा याप्य करे। अब कास नाशक चिकित्साका वर्णन करते हैं उसे श्रवण करो।

वातकास में चिकित्साक्रम।

रूक्षस्यानिलजंकासमादौस्नेहैरुपाचरेत्। सर्पिर्भिर्वस्तिभिःपेयायूषक्षीररसादिभिः। वातघ्नैःसंस्कृतैःस्निग्धैर्धूमैर्लेहैश्चयुक्तितः। अभ्यङ्गैःपरिसेकैश्चास्निग्धैःस्वेदैश्चबुद्धिमान्वस्तिभिर्वद्धविडवातंशुष्कोर्ध्वंश्चोर्ध्वभक्तिकैः। घृतैःसपित्तंसकफंजयेत्स्नेहविरेचनैः॥

अर्थ—रूक्ष व्यक्ति की वातज खांसी में प्रथम स्नेहन करै, पीछे घृत, वस्ति, पेया, यूष, क्षीर, मांसरसादि द्वारा चिकित्सा करै। वातनाशक द्रव्यों से संस्कार किये हुए स्नेहयुक्त धूमपान और अवलेहों का प्रयोग करै, तथा अभ्यंग, परिषेक और स्निग्ध स्वेदन भी करै। विष्टा और अधोवायु के वन्द होने हर वस्ति देवै और ऊर्ध्वभागके शुष्क होने पर भोजनोत्तर घृतपान करावै तथा इस खांसी में कफ वा पित्तका संसर्ग भी हो तो स्नेह विरेचन देवै।

कण्टकारी घृत।

कण्टकारीगुडूचीभ्यांपृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे प्रस्थःसिद्धोघृताद्वातकासनुद्वह्निदीपनः॥

अर्थ—कटेरी और गिलोय तीस तीस पल लेकर इनका अठगुने जल में क्वाथ करै, चौथाई शेष रहने पर इस को छानकर इस में एक प्रस्थ घृत पकावै, इस के सेवन से वातज कास नष्ट होजाती है और अग्नि वढजाती है।

पिप्पल्यादि घृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलेचव्यचित्रकनागरैः॥ धान्यपाठावचारास्नायष्ट्याह्वक्षारहिंगुभिः। कोलमात्रैर्घृतप्रस्थाद्दशमूलीरसाढके सिद्धांचतुर्थिकांपीत्वापेयांमण्डंपिवेदनु॥ तच्छ्वासकासहृत्पार्श्वग्रहणीदोषगुल्मनुत्।

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ, धनियां, पाठा, वच, रास्ना, मुलहटी,-

जवाखार और हींग इनका चूर्ण करले फिर दशमूलके एक आढक क्वाथ में एक प्रस्थ घी और उक्त चूर्ण डालकर सिद्ध करै इसघृत में से प्रतिदिन एक पल सेवन कर के ऊपर से पेया वा मंड पीवै, यह घृत श्वास, खांसी, हृच्छूल, पार्श्वशूल, ग्रहणीदोष और गुल्मरोगोंको दूर कर देता है ॥

त्र्यूषणाद्यघृत ।

त्र्यूषणंत्रिफलांद्राक्षांकाश्मर्याणिपरूषकम् द्वेपाठेसरलंव्याघ्रींस्वगुप्तांचित्रकंशठीम् । ऋद्धितामलकींमेदांकाकनासांशतावरीम् त्रिकण्टकांविदारीञ्चपिष्ट्वाकर्षसमंघृता त् । प्रस्थंचतुगुर्णक्षीरंसिद्धंकासहरंपिवेत् ज्वरगुल्मारुचिप्लीहशिरोहृत्पार्श्वरोगनु त् । कामलार्शोऽनिलाष्ठीलाक्षतशोषक्ष यापहम् ॥ त्र्यूषणंनामविख्यातमेतद्घृत मनुत्तमम् ।

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, दाख, खंभारी, फालसा, दो प्रकारकी पाठा, सरलकाष्ठ, कटेरी, कैंचके वीज, चीता, कचूर, ऋद्धि, भूआंवला, मेदा, कौआटोंटी, सितावर, गोखरू, विदारीकन्द, इनको एक एककर्ष लेकर पीसले । इस चूर्णको एकप्रस्थ घी और चारप्रस्थ दूध में पाक कर के सेवन करै तौ खांसी, ज्वर, गुल्म, अरुचि, प्लीहा, शिरःशूल, हृत्शूल, पार्श्वशूल, कामला, अर्श, वाताष्ठीला, क्षतरोग, शोष और क्षयी ये रोग दूर होजाते हैं। इसका नाम त्र्यूषणाद्य घृत है, इससे उत्तम और कोई घृत नहीं है ।

रास्नाद्यघृत ।

द्रोणेऽपांसाधयेद्रास्नांदशमूलींशतावरीम् पलिकांमानिकांशांस्तुकुलत्थान्वदरान् यवान् । तुलार्धंश्चाजमांसस्यपादशेषेण तेनच ॥ घृताढकंसमक्षीरंजीवनीयैःपलो न्मितैः । सिद्धंतद्दशभिःकल्कैःनस्यपाना नुवासनैः ॥ समीक्ष्यवातरोगेषुयथाव स्थंप्रयोजयेत् । पञ्चकासान्शिरःकम्पं शूलंवंक्षणयोनिजम् ॥ सर्वाङ्गैकाङ्गरोगां श्चसप्लीहोर्ध्वानिलान्जयेत् ।

अर्थ—रास्ना, दशमूल, सितावर ये बारह द्रव्य एक एक पल । कुलथी, वेर, जौ आठ आठ पल । वकरेका मांसआधी तुला, इन सवको एक द्रोण जल में चढ़ादे जब चौथाई रहजाय तव उतारकर छानले इस क्वाथ में एक आढ़क घृत, एक आढ़क दूध, जीवनीय गणोक्त दसद्रव्य एक एक पल पीसकर डालदेवै । इसघृतको अवस्थाके अनुकूल वातरोगों में नस्य पान और अनुवासन द्वारादेवै । यह घृत पांचों प्रकारकी खांसी, शिरः कम्प, वंक्षणशूल, योनिशूल, सर्वांगरोग, एकांगरोग, प्लीहा, और ऊर्ध्ववातरोगोंको दूर करता है ।

विडंगादिचूर्ण ।

विडङ्गनागररास्नापिप्पलीहिंगुसैन्धवैः॥ भार्गीक्षारश्चतच्चूर्णंपिवेद्वाघृतमात्रया । सकफेऽनिलजेकासेश्वासहिक्काहताग्निषु

अर्थ—वायविडंग, सोंठ, रास्ना, पीपल, हींग, सेंधानमक, भाडंगी और जवाखार इन सवका चूर्ण चौगुने घी में मिलाकर

मात्रा के अनुसार सेवन करै । इससे कफ युक्त वातजकास, श्वास हिचकी और मन्दाग्नि दूर होजाती है ।

क्षारादिचूर्ण ।

द्वौक्षारौपञ्चकोलानिपञ्चैवलवणानिच । शठीनागरकोदीच्यकल्कंवावस्त्रगालितम् पाययेतघृतोन्मिश्रंवातकासनिवर्हणम् ।

अर्थ—दोनोंक्षार, पंचकोल, पांचोनमक, कचूर, सोंठ और नेत्रवाला इनका चूर्ण बनाकर कपड़छान करले, इस चूर्णको घृत में मिलाकर सेवन करने से वातजकासदूर होजाता है ।

दुरालभादि प्रयोग ।

दुरालभांशठींद्राक्षांशृङ्गवेरांसितोपलाम्॥ लिह्यात्कर्कटशृङ्गीञ्चकासेतैलेनवातजे । दुःस्पर्शांपिप्पलींमुस्तंभार्गींकर्कटकींशठीम् ॥ पुराणगुडतैलाभ्यांचूर्णितंवापिलेहयेत् । विडङ्गंसैन्धवंकुष्ठंव्योषंहिंगुमनःशिलाम् ॥ मधुसर्पिर्युतंकासंहिक्काश्वासंजयेल्लिहन् ।

अर्थ—जवासा, कचूर, दाख, अदरख, और काकड़ासींगी इनको पीस कपड़छान कर चौगुनी मिश्री मिलाकर तेल के साथ वातकी खांसी में चटावै । अथवा जवासा, पीपल, मोथा, भाडंगी, काकड़ासींगी और कचूर इन के चूर्णको पुराने गुड़ और तेल में सानकर चाटै । अथवा वायविडंग, सेंधा नमक, कूठ, त्रिकुटा, हींग, मनसिल, इनके चूर्ण को शहत और घी में मिलाकर सेवन करने से खांसी हिचकी और श्वास दूर होजाते हैं ।

चित्रकादि घृत ।

चित्रकंपिप्पलीमूलंव्योषंहिंगुदुरालभाम् ॥ शठींपुष्करमूलञ्चश्रेयसींसुरसांवचाम् । भार्गींछिन्नरुहांरास्नांशृङ्गींद्राक्षाञ्चकार्षिकान् ॥ कल्कानर्द्धतुलाकाथेनिदिग्ध्याःपलविंशतिम् । दत्त्वामत्स्यण्डिकायाश्चघृताच्चकुडवंपचेत् ॥ सिद्धंशीतंपृथक्क्षौद्रपिप्पलीकुडवान्वितम् । चतुष्पलंतुगाक्षीर्य्याश्चूर्णितंतत्रदापयेत् । लेहयेत्कासहृद्रोगश्वासगुल्मनिवारणम् ॥

अर्थ—चीता, पीपलामूल, त्रिकुटा, हींग जवासा, कचूर, पौहकर मूल, गजपीपल तुलसी, वच, भांडंगी, गिलोय, रास्ना, काकडासींगी और दाख इनसब का चूर्ण एक एक कर्ष, कटेरी का काथ आधी तुला, मिश्री वीस पल, घृत एक कुडव इन सब का पाक करै । पकने पर ठंढा करके इस में एक कुड़व शहत, एक कुड़व पिसी हुई पीपल, चार पल वंशलोचन डालकर सेवन करै तो इसके सेवन से खांसी, हृद्रोग, श्वास और गुल्मरोग दूर होजाते हैं ।

अगस्त्योक्त रसायन ।

दशमूलींस्वयंगुप्तांशंखपुष्पींशठींबलाम् । हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ भार्गींपुष्करमूलञ्चद्विपलांशयवाढकम् । हरीतकीशतञ्चैकंजलपञ्चाढके पचेत् ॥ यवैःस्विन्नकषायन्तंपूतंतच्चाभयाशतम । पचेत्गुडतुलांदत्त्वाकुड़वञ्चपृथ

कघृतात् ॥ तैलात्सपिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीतेचमाक्षिकात् । लेहेद्द्वेचाभयेनित्यमतःखादेद्रसायनात् ॥ तद्वलीपलितंहन्तिवर्णायुर्बलवर्द्धनम् । पञ्चकासान्क्षयंश्वासंहिक्कांसविषमज्वराम् ॥ हन्यात्तथार्शोग्रहणीहृद्रोगारुचिपीनसान् । अगस्त्यविहितंश्रेष्ठंरसायनमिदंशुभम् ॥

अर्थ—दसमूल, कैंचके वीज, शंखपुष्पी, कचूर, खरैटी, गजपीपल, औंगा, पीपलामूल, चीता, भाडंगी, पौहकर मूल, ये सब दो पल, जौ एक आढक, हरड़ सौ, इन सब को पांच आढक जल में पकावै, जब जौ सीज जांय और क्वाथ भी चौथाई रहजाय तव उतार कर छानले, फिर इस क्वाथ में एक तुला गुड़, एक कुड़व घी, एक कुड़व तेल, एक कुडव पीपलीका चूर्ण डाले और पूर्वोक्त हरडों की गुठली निकालकर उसमें डाले जब ये पक जाय तव उतारले ठंडा होने पर इस में एक कुड़व शहत डालकर रख छोडे । इस में से थोड़ा सा अव लेह और दो हरड़ प्रति दिन सेवन करै । इसके सेवन करने से झुर्री और वालों का गिरना बन्द होजाता है । वर्ण, आयु और वल वढता है, पांचों प्रकारकी खांसी, क्षयी, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, अर्श, ग्रहणी रोग, हृद्रोग, अरुचि और पीनस दूर होजाते हैं । यह उत्तम रसायन अगस्तजीने वर्णनकी है । (इसी में से कुछ परिवर्तन करके यूनानी हकीम मुरव्वे की हरड़ बनाते हैं) ।

अन्यप्रयोग ।

सैन्धवंपिप्पलींभार्गींशृङ्गवेरंदुरालभाम् दाडिमाम्लेनकोष्णेनभार्गींनागरमम्बुना पिवेत्खदिरसारंवामदिरादधिमस्तुभिः । अथवापिप्पलीकल्कंघृतभृष्टंससैन्धवम् ॥

अर्थ—सेंधानमक, पीपल, भाडंगी, अदरख, जवासा, इनके चूर्ण को अनार के रस के साथ पीवै अथवा भाडंगी और सोंठ के चूर्ण को गरमजलके साथ फांकै अथवा खैर-सार को मदिरा वा दही के तोड़के साथ पीवै अथवा पीसी हुई पीपल को घी में भून कर सेंधानमक डालकर सेवन करै ।

धूमपान विधि ।

शिरसःसदनेस्रावेनासायाहृदितास्यति । कासप्रतिश्यायरसेधूमंवैद्यःप्रयोजयेत् ॥ दशांगुलोन्मितांनाडींअथवाष्टांगुलोन्मिताम् । शरावसंपुटच्छिद्रेकृत्वाजिह्मांविचक्षणः ॥ वैरोचनंमुखेनैवकासवान्धूममापिवेत् । तमुरःकेवलंप्राप्तंमुखेनैवोद्वमेत्पुनः ॥ सह्यस्यतैक्ष्ण्याद्विक्षिप्यश्लेष्माणमुरसिस्थितम् । निष्कृष्यशमयेत्कासं वातश्लेष्मोभयोद्भवम् ॥

अर्थ—खांसी और जुकाम जो शिर में वेदना नासास्राव और हृदय में वेदना होती हो तो धूमपान करावै । आठ वा दस अंगुलकी एक नली लेकर एक शराव सम्पुट के छिद्र में लगा देवै यह नली टेढी होनी चाहिये (जैसा वहुधा हुक्कों में देखने में आता है) इस शराव सम्पुट अर्थात् चिलम में वातनाशक द्रव्यों को धरकर

ऊपर से अग्नि रख दे और पूर्वोक्त नली को मुंह में लगाकर धूँआं खींचे । जब यह धूंआं वक्षःस्थल के भीतर पहुंच जाय तब इस को मुख के रस्ते सेही बाहर निकाल देवै । इस धूंएंकी तेजी से छाती में जमा हुआ कफ खिंचकर बाहर निकलजाता है। इस रीति से वातकफजन्य खांसी दूर हो-जाती है ।

धूमपान का प्रयोग और गुण ।

मनःशिलालयष्ट्याह्वमांसीमुस्तेंगुदैःपिवेत् । धूमंतस्यानुचक्षीरंसुखोष्णंसगुडं पिवेत् ॥ एषकाषान्पृथग्दोषसन्निपातोद्भवान्जयेत् । प्रसह्यपरिसंसिद्धानन्यैर्योगशतैरपि ॥

अर्थ—मनसिल, हरिताल, मुलहटी, जटामांसी,मोथा और गोंदी इन को पूर्वोक्त रीति से पीवै ऊपर से गुनगुने दूध में गुड़ डालकर पीवै । यह धूमपान पृथक् २ दोष तथा सन्निपात से उत्पन्न हुई खांसी को दूर कर देता है, तथा जो अन्य सैंकडों प्रयोगों से भी खांसी दूर नहीं हुई है वह इस से दूर होजाती है ।

धूमपानकेअन्यप्रयोग ।

प्रपुण्डरीकंमधुकंशार्ङ्गेष्टालेमनःशिलाम् । मरिचंपिप्पलींद्राक्षामेलांसुरसमञ्जरीम्॥ कृत्वावर्त्तिंपिवेद्धूमंक्षौमश्चैलानुवर्त्तिताम् ।घृताक्तामनुचक्षीरंगुडोदकमथापिवा॥ मनःशिलैलामरिचक्षाराञ्जनकुटन्नटैः । वंशलोचनशैवालक्षौमलक्तकरोहिषैः ॥ पूर्वकल्पेनधूमोऽयंसानुपानोविधीयते । आलंमनःशिलातद्वत्पिप्पलीनागरैःसह॥ त्वगैंगुदीवृहत्यौद्वेतालमूलंमनःशिला । कार्पासास्थ्यश्वगन्धाचधूमःकासविनाशनः ॥

अर्थ—पुण्डरिया, मुलहटी, शार्ङ्गेष्टा(श्वं-टारवा), हरिताल, मनसिल, कालीमिरच, पीपल, दाख, इलायची, तुलसीकी मंजरी, इन सबको पीसकर बत्तीसीवना एक रेशमी कपड़े में लपेटै फिर इसे घी में भिगोकर धूम पानकरै । पीछे दूध वा गुड़ का शर-बत पीवै ॥

अथवा मनसिल, इलायची, कालीमिरच, जवाखार, अंजन, केवटीमोथा, वंशलोचन, शैवाल, अलसी, लाख, रोहिषतृण, इनसब की पूर्वोक्त रीति से वत्ती बनाकर धूमपान करै । तथा पूर्वोक्त अनुपानका सेवनभी करै।

अथवा हरिताल, मनसिल, पीपल, और सोंठ की वत्ती बनाकर पूर्वोक्त रीति से धूमपान करै ।

अथवा गोंदीकी छाल, दोनोकटेरी, ताल-मूली, मनसिल, बिनोला और असगंध का भी पूर्वोक्त रीति से धूमपान करनेपर खांसी दूर होजाती है ।

यूषादिप्रयोग ।

ग्राम्यानूपौदकैःशालियवगोधूमषष्टिकान्। रसैर्मांसात्मगुप्तानांयूषैर्वादापयेद्धितान्॥ यवानीपिप्पलीविल्वमध्यनागरचित्रकैः। रास्नाजाजीपृथक्पर्णीपलाशशटिपौष्करैः स्निग्धाम्ललवणांसिद्धांपेयामनिलजेपिवेत् । कटीहृत्पार्श्वकोष्ठार्त्तिश्वासहिक्का

प्रणाशनीम् ॥ दशमूलरसेतद्वत्पञ्चकोलगुडान्विताम् । पिबेत्तुसमतिलांपेयांच्क्षीरेवापिससैन्धवाम् ॥ मत्स्यकौक्कुटवाराहैरामिषैर्वाघृतान्वितैः । सिद्धांससैन्धवांपेयांवातकासीपिबेन्नरः ॥ वास्तुकंवायसीशाकंमूलकंसुनिषण्णकम् । स्नेहास्तैलादयोभक्ष्याःक्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ दध्यारनालाम्लफलप्रसन्नाःपानमेवच । शस्यतेवातकासेतुस्वाद्वम्ललवणानिच॥

अर्थ—ग्राम्य, आनूप, और औदक मांस रसों के साथ अथवा केंच के वीज के यूष के साथ शालीचांवल, जौ, गेहूं, और साठी चांवल देवै ।

अजवायन, पीपल, वेलगिरी, सोंठ, चीता, रास्ना, जीरा, पृष्णपर्णी, पलास, कचूर, पोष्कर । इनसवको समानभाग लेकर इनका क्काथ करै इस क्काथ में चिकनाई, खटाई और नमक डालकर पेया सिद्ध करै यह पेया वातजकासको दूरकरती है । इस के सेवन से कमर, छाती, पसली और कोठे का दर्द मिटजाता है तथा श्वास और हिचकी भी दूर होजाते हैं ।

ऊपर लिखी रीति के अनुसारही दशमूल के क्काथ में पंचकोल और गुड़ डालकर पेया सिद्ध करै अथवा समान भाग तिल डालकर सेंधेनमक के साथ दूध में सिद्धकी हुई पेया पीवै ।

अथवा मछली, मुर्गा, सूअर, इन के मांसकी पेया घृत और सेंधानमक डालकर वातकास में पानकरै इस रोग में वथुआ, मकोय, मूली, चौपतिया, इनका साग, तैलादिक स्नेह, दूध, ईख के रस और गुड़ के पदार्थ, दही, कांजी, खट्टेफल और प्रसन्ना नामक मद्य इनका पीना तथा खट्टे, मीठे और नमकीन पदार्थों का सेवन हित है ।

पित्तजकास में चिकित्साक्रम ।

पैत्तिकेसकफेकासेवमनंसर्पिषाहितम् । तथामदनकाश्मर्य्यमधूककथितैर्जलैः ॥ यष्ट्याह्वफलकल्कैर्वाविदारीक्षुरसायुतैः॥ हृतदोषस्ततःशीतंमधुरञ्चक्रमंभजेत् ॥ पैत्तेतनुकफेकासेत्रिवृतांमधुरैर्युताम् । दद्याद्घनकफेतिक्तैर्विरेकार्थेयुतांभिषक् ॥ स्निग्धशीतस्तनुकफेरूक्षशीतःकफेघने । क्रमःकार्य्यःपरंभोज्यैःस्नेहैर्लेहैश्चशस्यते॥

अर्थ—कफानुवन्धी पित्तकी खांसी में घृतपान कराके वमन करावै, तथा मेनफल खंभारी और मुलहटीका क्काथ पान कराके वमन करावै अथवा मुलहटी और मेनफल को पीसकर विदारीकन्द के रस के साथ वा ईख के रस के साथ देकर वमन करावै । वमन के द्वारा रोग निःशेष होनेपर शीतल और मधुर पेयादिका प्रयोग करै ।

पित्तकी खांसी में जो कफ पतला हो तौ मधुरद्रव्यों के साथ निसोथ देकर दस्त करावै और यदि कफ गाढ़ा हो तौ तिक्त द्रव्यों के साथ निसोथ देकर दस्तकरावै ।

जो कफ पतला हो तौ स्निग्ध और शीतल उपचार करै, यदि कफ गाढ़ा हो तौ रूक्ष और शीतल क्रिया करै, तदनन्तर स्नेह और अवलेहादिके साथमें भोजनकरावै ।

पांचअवलेह ।

शृङ्गाटकंपद्मबीजंनीलीसाराणिपिप्पली। पिप्पलीमुस्तयष्ट्याह्वद्राक्षामूर्वामहौषधम् ॥ लाक्षामृतफलाद्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्पलीसिताः। पिप्पलीपद्मकोद्राक्षाबृहत्याश्चफलाद्रसः ॥ खर्जूरंपिप्पलीद्राक्षाश्वदंष्ट्राचेतिपञ्चते । घृतक्षौद्रयुतालेहाःश्लोकार्द्धैःपित्तकासिनाम् ॥

अर्थ—(१) सिंघाड़ा, कमलगट्टा की मींगी, नीलासार और पीपल । (२) पीपल, मोथा, मुलहटी, दाख, मरोड़फली और सोंठ । (३) लाख, आंवला, दाख, वंशलोचन, पीपल, और सफेद चीनी । (४) पीपल, पद्माख, दाख और कटेरीकारस । (५) खजूर, पीपल, दाख और गोखरू इन पांचों प्रयोगों में किसी एक का चूर्ण वनाकर घी और शहत मिलाकर पित्तकास वाले रोगियों को देवै ।

पित्तकास में अन्य प्रयोग ।

शर्कराचन्दनद्राक्षापथ्याधात्रीफलोत्पलैः । पैत्तेसमुस्तमरिचःसकफेसघृतेऽनिले ॥ मृद्वीकार्द्धशतंत्रिंशत्पिप्पलीशर्करापलम् । लेहयेन्मधुनागोर्वाक्षीरपस्य शकृद्रसम् ॥ त्वगेलाव्योषमृद्वीकापिप्पलीमूलपौष्करैः । लाजामुस्तशठीरास्नाधात्रीफलविभीतकैः ॥ शर्कराक्षौद्रसर्पिर्भिर्लेहःकासविनाशनः । श्वासंहिक्कांक्षयञ्चैवहृद्रोगञ्चप्रणाशयेत् ॥

अर्थ—शर्करा, रक्तचन्दन, दाख, हरड़ आंवला और नीलकमल, इन के चूर्ण को शहत में मिलाकर पित्तकी खांसी में सेवन करै तथा उक्त चूर्ण, मोथा और काली मिरच को शहत के साथ कफयुक्त पित्तकी खांसी में सेवन करै तथा वातयुक्त पित्तकी खांसी में उक्त चूर्ण को घृत के साथ चाटै।

किसमिस पचास, पीपल तीस, चीनी एक पल इन को शहत के साथ चाटै, अथवा गौके दूध में उसी के गोवर के रस को औटाकर उक्त चूर्ण को उस में मिलाकरचाटै।

दालचीनी, इलायची, त्रिकुटा, किसमिस, पीपल, पौहकरमूल, खील, मोथा, कचूर, रास्ना, आंवला, वहेड़ा और चीनी इन को घी और शहत के साथ चाटै, इस से खांसी दूर होजाती है, तथा श्वास हिचकी, क्षयी और हृद्रोग भी नष्ट होजाते हैं ।

अन्यप्रयोग ।

पिप्ल्यामलकंद्राक्षांलाक्षांलाजान्सितोपलाम् । पिवेद्वामधुसंयुक्तंपित्तकासहरंपरम् ॥ विदारीक्षुमृणालानांरसान्क्षीरंसितोपलाम् । पिवेद्वामधुसंयुक्तांपित्तकासहरंपरम् ॥ मधुरैर्जाङ्गलरसैःश्यामाकयवकोद्रवाः । मुद्गादियूषैःशाकैश्चतिक्तकैर्मात्रयाहिताः ॥

अर्थ—पीपल, आंवला, दाख, लाख, खील और चीनी को शहत में मिलाकर सेवन करै, यह पित्तकासनाशक उत्तम औषध है। अथवा विदारीकंद कारस, ईखरस कमलनाल कारस, इनमें मिश्री, दूध और शहतमिलाकर सेवनकरै, इससे पित्तकीखांसी जाती रहतीहै॥

मधुर जांगल जीवों का मांसरस, सोंखिया,

जौ, कोदों और मूंग आदि के यूष के साथ वा तीखे शाकों के साथ भोजन हित है।

अन्य यूषादि प्रयोग।

घनश्लेष्मणि लेहास्तु तिक्तकामधुसंयुताः। शालयः स्युस्तनुकफेषष्टिकश्चरसादिभिः॥ शर्कराम्भोऽनुपानार्थंद्राक्षेक्षूणांरसान्पयः सर्वञ्चमधुरंशीतमविदाहिप्रशस्यते ॥ काकोलीवृहतीमेदायुग्मैःसवृषनागरैः। पित्तकासेरसान्क्षीरंयूषांश्चाप्युपकल्पयेत्॥ शरादिपञ्चमूलस्यपिप्पलीद्राक्षयोस्तथा। कषायेणशृतंक्षीरंपिवेत्समधुशर्करम् ॥

अर्थ—जो कफ गाढा हो तौ तिक्त और मधु द्रव्यों से युक्त शाली चांवल देवै, जो कफ पतला हो तौ मांसादि रसके साथ साठी चांवलदेवै। ऊपरसे खांड़का शरबत पान करावै अथवा दाखका रस, ईखकारस अथवा दूध पान करावै अथवा अन्य मधुर, शीतल और अविदाही अन्न का सेवन करावै।

दोनों काकोली दोनों कटेरी, मेदा, महा मेदा, अडूसा और सोंठ इनके साथ पित्त कास में मांसरस, यूष वा दूध बनाकर देवै। शरादि पंचमूल, पीपल और दाख इनके कषाय के साथ औटाया हुआ दूध शहत और चीनी डालकर पान करावै।

स्थिरादि दूध वा घृत।

स्थिरासितापृश्निपर्णीश्रावणीवृहतीयुगैः। जीवकर्षभकाकोलीतामलक्यृद्धिजीरकैः॥ शृतंपयःपिवेत्कासीज्वरीदाहीक्षतक्षयी। तज्जंवासाधयेत्सर्पिःसक्षीरेक्षुरसंभिषक्॥

अर्थ—शालिपर्णी, चीनी, पृष्णिपर्णी, श्रावणी, महाश्रावणी, कटेरी, बड़ी कटेरी, जीवक, ऋषभक, काकोली, भूम्यांवला, ऋद्धि, जीरा इन के साथ औटाया हुआ दूध पीने से खांसी, ज्वर, दाह, क्षत और क्षय दूर होजाते हैं अथवा इन्हीं द्रव्यों के साथ दूध और ईखकारस डालकर सिद्धकियाहुआ घी हितकारी होता है।

जीवकाद्यैर्मधुरकैःफलैश्चाभिषुकादिभिः। कल्कैस्त्रिकार्षिकेसिद्धेपूतशेषेचसर्पिषि ॥ शर्करापिप्पलीचूर्णस्त्वक्क्षीर्योमरिचस्यच। शृङ्गाटकस्यचावाप्यक्षौद्रगर्भान् पलोन्मितान् ॥ गुडान्गोधूमचूर्णेनकृत्वा खादेद्धिताशनः। शुक्रासृग्दोषशोषेषुकासेक्षीणक्षतेषुच ॥ शर्करानागरोदीच्यं कण्टकारींशठींसमाम्। पिष्ट्वारसंपिवेत्पूतंवस्त्रेणघृतमूर्च्छितम् ॥ महिष्यजाविगोक्षीरधात्रीफलरसैःसमैः। सर्पिः सिद्धंपिवेद्युक्त्यापित्तकासनिवर्हणम् ॥

अर्थ—जीवकादि मधुरगणोक्त दस द्रव्य, मधुरफल तथा पिस्तादि फल ये तीन तीन कर्ष लेकर इनका क्वाथ करै और चौथाई शेष रहने पर घृत सिद्ध करै और इस में शर्करा, पीपल, वंशलोचन, कालीमिरच, सिंघाड़ा, इन सब को समानभाग लेकर उक्त घी में डालदे और इस घी में गेंहू का चून सेककर एक एक पल के ऐसे मोदक बनावै जिनके बीच में शहत भराहो। इसके सेवनसे शुक्रदोष रक्तदोष, शोष, खांसी, और क्षीण क्षतरोग शान्त होजाते हैं।

सोंठ, नेत्रवाला, कटेरी और कचूर समान भाग लेके पीसकर रस निकालले इसमें चीनी औरघृत डालकर सेवन करै ।

भैंस का दूध, बकरीका दूध, भेड़का दूध, गौका दूध, आंवले का रस, इन सबको समानभाग लेकर इन में सिद्ध किया हुआ घी युक्तिपूर्वक सेवन करने से पित्तकी खांसी दूर होजाती है ।

कफजकासमेंचिकित्साक्रम।

बलिनंवमनैरादौशोधयेत्कफकासिनम् । यवान्नैःकटुरूक्षोष्णैःकफघ्नैश्चाप्युपाचरेत् ॥ पिप्पलीक्षारिकैर्यूषैःकौलत्थंमूलकस्यच । लघून्यन्नानिभुञ्जीतरसैर्वाकटुकान्वितैः ॥ धान्वबैल्यरसैःस्नेहैःतिलसर्षपबिल्वजैः । मध्वम्लोष्णाम्बुतक्रंवामद्यंवानिगदंपिबेत् ॥

अर्थ—कफकी खांसी बालारोगी जो बलवान् हो तौ प्रथम वमन देकर संशोधन करै, फिर कफनाशक कटु, रूक्ष और उष्ण पदार्थों से संस्कार कियाहुआ यवान्न देवै । पीपल और जवाखार डालकर कुलथी वा मूली के यूष के साथ हल के अन्न का भोजन करावै । अथवा कटुरसों से तयार की हुई धान्वदेशज अथवा बिलेशयों का मांसरस देवै, अथवा तिल, सरसों और बिल्व के तेलके साथ भोजन करावै । ऊपरसे मधु, कांजी, गरमजल, छाछ, मद्य वा निगद सेवन करावै ।

कफजकास में पेयद्रव्य ।

पौष्करारग्वधंमूलंपटोलान्तंनिशास्थितम् । जलंमधुयुतंपेयंकालेष्वन्नस्यवात्रिषु॥ कट्फलंकत्तृणंभार्गीमुस्तंधान्यंवचाभयाम् । शुण्ठीपर्पटकःशृङ्गीसुराह्वञ्चशृतंजले ॥ मधुहिंगुयुतंपेयंकासेवातकफात्मके। कण्ठरोगेमुखेशूलेश्वासहिक्काज्वरेषुच ॥

अर्थ—पौहकरमूल, अमलतासकी जड़, परवल इनको रात्रि में भिगोदेवै, दूसरेदिन भोजन के समय इस जल में शहत डालकर पीवै । अथवा कायफल, गंधतृण, भाडंगी, मोथा, धनियां, वच, हरड़, सोंठ, पित्तपापड़ा, काकड़ासींगी इनका क्वाथ करके शहत और भुनीहुई हींग डालकर पीवै, इस से वातकफ की खांसी, कंठरोग, मुखरोग, शूल, श्वास, हिचकी और ज्वर दूरहोजाते हैं ।

अन्यप्रयोग ।

पाठांशुण्ठींशटींमूर्वांगवाक्षींमुस्तपिप्पलीम् पिष्ट्वाघर्माम्बुनाहिंगुसैन्धवाभ्यांयुतंपिबेत् ॥ नागरातिविषामुस्तंशृङ्गीकर्कटकस्यच । हरीतकींशटींचैवतेनैवविधिना पिबेत् ॥ तैलभृष्टंचपिप्पल्याःकल्कात्कंससितोत्पलम् । पिबेद्वाश्लेष्मकासघ्नंकुलत्थरससंयुतम्॥कासमर्दाश्वविट्भृङ्गराजोवार्ताकजारसाः । सक्षौद्राःकफकासघ्नाःसुरसस्यासितस्यच ॥ देवदारुशटीरास्नाकर्कटाख्यादुरालभा। पिप्पलीनागरंमुस्तंपथ्याधात्रीसितोपलाः ॥ मधुतैलयुतावेतौलेहौवातानुगेकफे ॥

अर्थ—पाठा, सोंठ, कचूर, मरोडफली, इन्द्रायण, मोथा, पीपल इनको पीसकर हींग और सेंधानमक मिलाकर गरमजल के

साथ पानकरै। अथवा सोंठ, अतीस, मोथा, काकड़ासींगी, हरड़ और कचूर को पीस हींग और सेंधानमक डालकर गरमजल के साथ पीवै। अथवा पीपलके तोलेभर कल्क को तेल में भूनकर मिश्री डालकर कुलथी के रस में मिलाकर पीवै इस से कफ की खांसी दूर होजाती है। अथवा कसोंदी के पत्तों का रस, घोड़े की लीद का रस, भांगरेका रस, बेंगन का रस शहत के साथ मिलाकर पीवै, अथवा काली तुलसीके पत्तों का रस शहत डालकर पीवै। अथवा(१) देवदारु, कचूर, रास्ना, काकड़ासींगी, जवासा, अथवा (२) पीपल, सोंठ, मोथा, हरड़, आंवला और मिश्री इनदोनों प्रयोगों को शहत और तेल में मिलाकर चाटनेसे वातानुबंधी कफकी खांसी दूर होजाती है।

कफजकासनाशकचारप्रयोग।

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली
पथ्यातामलकीधात्रीभद्रमुस्तानिपिप्पली
देवदार्वभयामुस्तंपिप्पलीविश्वभेषजम्।
विशालापिप्पलीमुस्तंत्रिवृताचेतिलेहयेत्।
चतुरोमधुनावैद्यःकफकासहरान्नरम्।

अर्थ—(१)पीपल,पीपलामूल, चीता,और गजपीपल। (२)हरड़, भूम्यांवला, आंवला, नागरमोथा और पीपल। (३)देवदारु, हरड़, मोथा, पीपल और सोंठ। (४) इन्द्रायण की जड़, पीपल, मोथा और निसोथ। आधे २ श्लोक में कहेहुए इन चारों प्रयोगों को शहत में मिलाकर कफकी खांसीवाले को चटावै।

सौवर्चलाभयाधात्रीपिप्पलीक्षारनागरम्।
चूर्णितंसर्पिषावातकफकासहरंपिवेत् ॥

अर्थ—सौवर्चल, हरड़, आंवला, पीपल, जवाखार और सोंठ इनका चूर्ण घी में मिलाकर चाटने से वात कफ की खांसी जाती रहती है।

दशमूलादि घृत।

दशमूलाढकेप्रस्थंघृतस्याक्षसमैःपचेत्।
पुष्कराह्वशटीविल्वसुरसैर्व्योषहिंगुभिः॥
पेयंपेयानुपानंतत्कासेवातकफात्मके ॥
श्वासरोगेषुसर्वेषुकफवातात्मकेषुच।

अर्थ—दशमूलकाक्काथ एक आढक, घृत एक प्रस्थ, तथा पुहकर मूल, कचूर,वेलगिरी, तुलसी, त्रिकुटा, हींग इन सब को एक एक तोले लेकर लुगदी करके उसी में डालदेवै। इस सब को पकाकर घृत तयार करै। इस घृत को पीकर ऊपरसे पेयापान करै इस से वातकफयुक्त खांशी,स्वासरोग तथा अन्यरोग जो वातकफ से सम्भव हैं दूर होजाते हैं।

कण्टकारी घृत।

समूलफलपत्रायाःकण्टकार्यारसाढके ॥
घृतप्रस्थंबलाव्योषविडंगशटिचित्रकैः।
सौवर्चलयवक्षारपिप्पलीमूलपौष्करैः॥
वृश्चीकवृहतीपथ्यायवानीदाडिमार्द्धिभिः।
द्राक्षापुनर्नवाचव्यदुरालम्भाम्लवेतसैः॥
शृङ्गीतामलकीभार्गीरास्नागोक्षुरकैःपचेत्। कल्कैःतत्पूर्वकासेषुहिक्काश्वासेषु शस्यते॥ कण्ठकारीघृतंह्येतत्कफव्याधि निसूदनम्।

अर्थ—कटेरी के पत्ते, फल और जड के एक आढक रस में एक प्रस्थ घृत को पकावै । इस में पकते समय खरैटी, त्रिकुटा, वायविडंग, कचूर, चीता, संचलनमक, जवाखार, पीपलामूल, पौहकर मूल, विछवन, वडी कटेरी, हरड़, अजवायन, अनार, ऋद्धि, दाख, सांठ, चव्य, जवासा, अमलवेत, काकड़ासीगी, भूय आंवला, भांडंगी, रास्ना, गोखरू इन का कल्क एक एक तोले उस में डालदेवै । इस धृत के सेवन करने से खांसी, हिचकी, श्वास और कफकी व्याधियां नष्ट होजाती हैं । इसे **कण्टकारी** घृत कहते हैं ।

कुलत्थादि घृत ।

कुलत्थरसयुक्तंवापञ्चकोलशृतंघृतम् ॥ धूमांस्तानेवदद्याच्चयेप्रोक्तावातकासिनाम्। कोशातकीफलान्मध्यंपिवेद्वासमनःशिलैः

अर्थ—कुलथी का क्वाथ एक आढक इस में एक प्रस्थ घृत पकावै और पकते समय पंच कोल का कल्क डालदेवै । यह पूर्वोक्त रोगों में हितकर होता है ।

वातकास में जो जो धूमपान वर्णन कियेगये हैं वेभी इस जगह उपयोगी हैं । अथवा घी या तोरई की गिरी में मनसिल मिलाकर पीवै ।

कफज कास में अन्य विधि ।

तमकःकफकासेतुस्याच्चेत्पित्तानुबन्धजः पित्तकासक्रियांतत्रयथावस्थंप्रयोजयेत्॥ वातेकफानुबन्धेतुकुर्यात्कफहरांक्रियाम्। पित्तानुबन्धयोर्वातकफयोःपित्तनाशनी म् ॥ आर्द्रेविरूक्षणंशुष्केस्निग्धंवातकफात्मके । कासेऽन्नपानंकफजेसपित्तेतिक्तसंयुतम् ॥

अर्थ—कफकी खांसीमें उत्पन्नहुआ तमकश्वास जो पित्तानुवन्धी हो तौ अवस्था के अनुसार पित्तकास में कही हुई चिकित्सा करै । कफानुबन्धी वात में कफनाशिनी क्रिया करै । पित्तानुवंधी वातजकास वा पित्तानुवंधी कफज कास में पित्तनाशिनी कियाकरै । वातकफकी खांसी में जो कफ तर हो तौ रूक्ष अन्न पान देवै और जो कफ सूखा हो तौ स्निग्ध अन्नपान देवै इसी तरह पित्तानुवंधी कफकी खांसी होने पर तिक्त द्रव्यों से संस्कार किया हुआ अन्नपान देवै ।

क्षतजकास में चिकित्साक्रम ।

कासमात्ययिकंमत्वाक्षतजंत्वरयाजयेत्। मधुरैर्जीवनीयैश्चबलमांसाविवर्द्धनैः ॥

अर्थ—क्षतजकास प्राणनाशक होता है इस से वल और मांस को वढाने वाले मधुर और जीवनीय गणोक्त द्रव्यों द्वारा शीघ्रही इसकी चिकित्सा करै ।

पिप्पल्यादि अवलेह ।

पिप्पलीमधुकंपिष्टंकार्षिकंससितोपलम्। प्रास्थिकंगव्यमाजन्तुक्षीरामिक्षुरसस्तथा ॥ यवगोधूममृद्वीकाचूर्णमामलकीरसः । तैलञ्चप्रसृतांशानितत्सर्वंमृदुनाग्निना ॥ पचेल्लेहंघृतक्षौद्रयुक्तःसक्षतकासनुत् । श्वासहृद्रोगकार्श्येषुहितोवृद्धाल्परेतसे ॥

अर्थ—पीपल, मुलहटी, प्रत्येक एक एक

कर्ष पीसले और इन से दूनी मिश्री लेवै तथा एक एक प्रस्थ गौ का दूध, बकरी का दूध, ईखका रस, तथा जाकैं चून, गेंहू का चून, दाख, आंवलेका रस और तेल ये दोनों चार चार पल लेवै। इन सब को मिलाकर मन्दी आगपर सेकै फिर इस लेह में शहत और घी मिलाकर सेवन करै। इसके सेवन करने से क्षतकास दूर होजाती है। और श्वास हृद्रोग, कृशता, तथा क्षीण वीर्य्यता भी नष्ट होजाती है।

क्षतकासाभिभूतानांवृत्तिःस्यात्पित्तकासिकी।क्षीरसर्पिर्मधुप्रायासंसर्गेतुविशेषणम्॥ वातपित्तार्दितेऽभ्यंगोगात्रभेदेघृतैर्हितः। तैलैर्मारुतरोगघ्नैःपीड्यमानेचवायुना॥ हृत्पार्श्वार्तिषुपानंस्याज्जीवनीयस्यसर्पिषः सदाहंकासिनांरक्तंष्ठीवतःसबलेऽनिले॥ मांसोचितेभ्यःकासिभ्योलावादीनांरसाहिताः। तृष्णार्तानांपयश्छागंशरमूलादिभिःश्रृतम्॥ रक्तेस्रोतोभ्यआस्याद्वागतेक्षीरघृतंहितम्। नस्यंपानंयवागूर्वाश्रान्तेक्षामेहतानले॥ स्तम्भायामेषुमहतींमात्रांवासर्पिषःपिवेत्। कुर्याद्वावातरोगघ्नंपित्तरक्ताविरोधियत्॥

अर्थ—जो रोगी क्षतकास से पीड़ित हैं उनको पित्तकास में कहाहुआ पथ्य देना चाहिये। तथा इस पथ्य में दूध, घी और मधु का अधिक भाग होना चाहिये। परन्तु उन खांसियों में जो दो २ दोषों के मेल से उत्पन्न हुई हैं उन में कुछ विशेषता होती है, यथा—वातपित्त की खांसी में शरीर में भेदनवत् पीड़ा होनेपर घृत से अभ्यंग करावै। वायुकी अधिकता होनेपर वातनाशक तैलों को काम में लावै, जो हृदय और पसली में वेदना की अधिकता होतौ जीवनीय द्रव्यों से सिद्ध कियाहुआ घृत हितकर होता है। ऐसे खांसीवालोंको जिनके दाह हो, कफके साथ रुधिर आता हो, जठराग्नि प्रबल हो और उनको मांस भक्षण अनुकूल हो तौ लावादिक पक्षियोंका मांसरस पान करावै।

जो तृषाकी प्रबलता हो तौ शरमूलादि द्रव्यों को डालकर औटाया हुआ बकरी का दूधदेवै। जिस के नाक वा मुख के रस्ते से रुधिर जारी हो। उसे दूध से निकलाहुआ दूध पानकरावै वा उसकी नस्य देना हितकर होता है, जो रोगी थकगया हो, क्षीण होगया हो वा उसकी अग्नि मन्द पड़गई हो तौ उसे यवागू पान करावै। देही की स्तम्भता वा आयाम के होने पर घीकी उत्तम अर्थात् बड़ी मात्राका पान करावै। इस में पित्तरक्त से अविरोधी वात नाशक क्रिया भी हितकर होती है।

धूमपान के द्रव्य।

निवृत्तेक्षातदोषेतुकफेवृद्धतरःशिरः। दाल्यतेकासिनोयस्यसधूमान्नापिवेदिमान्॥ द्वेमेदेमधुकंद्वेचबलेतैःक्षौमलक्तकैः। वर्तिं तैर्धूममापीयजीवनीयघृतंपिवेत्॥ मनःशिलापलाशाजगन्धात्वक्क्षीरिनागरैः। भावयित्वापिवेत्धूमंशर्करेक्षुगुडोदकम्॥ पिष्ट्वामनःशिलांतुल्यामार्द्रयावटशुंगया

ससर्पिष्कंपिवेद्धूमंतित्तिरिप्रतिभोजनम्॥ भावितंजीबनीयैर्वाकुलिङ्गाण्डरसायुतैः। क्षौमंधूमंपिवेत्क्षीरंशृतंचायोगुडैःपिवेत्॥

अर्थ—जो छाती का क्षत मिटजाय और उसके उत्तेजक वातपित्त दोषभी शान्त होजांय। परन्तु कफ बढ़जाय और उस कफ के बढ़ने से शिर में दलने कीसीपीड़ा हो तौ निम्न लिखित धूमपान हितकर होते हैं।

मेदा, महामेदा, मुलहटी, बला, नागवला, इनको पीसकर रेशमी वस्त्र में और चिथड़े में लपेटकर घी में भिगोकर धूमपान करै। धूमपान करने के पीछे जीवनीय घृत का सेवन करै।

मनसिल, पलाश, अजगन्ध वंशलोचन और सोंठ इनको पीसकर पूर्वोक्त रीति से वत्ती तयार कर के धूमपान करै। तदनन्तर गुड़का शरवत वा शर्करेक्षु (चीनी का शरवत—ईखकारस) पानकरै।

वड़की हरी कोंपलऔर मनसिल ये दोनों समानभाग लेकर पीसले और घीमें सानकर पूर्ववत् धूमपान करै, पीछे, तीतर के मांस रस के साथ पथ्य लेवै।

अथवा जीवनीय गणोक्त द्रव्य और चिरोंटे के अण्डे इन के रसकी रेशमीवस्त्रमें भावना देकर सुखाले और इसकी वत्ती बनाकर धूमपान करै और ऊपरसे गरम गरम लोहे के गोले डालकर गरम किया हुआ दूध पान करावै।

क्षयज कास में चिकित्साक्रम।

सम्पूर्णरूपंक्षयजंदुर्बलस्यविवर्जयेत्। नवोत्थितंबलवतःप्रत्याख्यायाचरेत्क्रियाम्॥ तस्मैबृंहणमेवादौकुर्यादग्नेश्चवर्द्धनम्। बहुदोषायसस्नेहंमृदुदद्याच्चशोधनम्॥

अर्थ—यदि क्षयकी खांसी अपने पूर्ण रूप पर पहुंच गई हो और रोगी दुर्वल हो तौ उसकी चिकित्सा न करै। और जो रोग नया हो और रोगी भी बलवान् हो तौ यह कहकर चिकित्सा करै कि "आराम होगा तौ होजायगा और न होगा तौ खैर," ऐसे रोगी को प्रथमही बृंहणकर्त्ता और अग्निवर्द्धक औषध देनी चाहिये और जो वहुत दोषों से रोगी युक्त हो तौ मृदु स्निग्ध विरेचन देवै।

क्षयजकास में विरेचन।

शम्याकेनत्रिवृतयामृद्वीकारसयुक्तया। विल्वकस्यकषायेणविदारीस्वरसेनच॥ सर्पिःसिद्धंपिबेद्युक्त्याक्षीणदेहोविशोधनम्। हितंतद्देहवलयोरस्यसंवरणंमतम्॥

अर्थ—अमलतासका गूदा और निसोथ इन में दाखका रस डालकर घी सिद्ध कर के पान करावै अथवा निसोथ और विदारी कन्द के कषाय में घृत सिद्ध करके देवै। यह क्षीण देहवालोंके लिये उत्तम विरेचन है। इस रोग में देह के बलकी रक्षाकरना आवश्यकीय है॥

पित्तेकफेचसंक्षीणेपरिक्षीणेषुधातुषु॥ घृतंकर्कटकीक्षीरद्विवलासाधितंपिवेत्।

विदारीभिःकदम्बैर्वातालशस्यैस्तथाशृतम्॥ घृतंपयश्चमूत्रस्यवैवर्ण्येकृच्छ्रएवच॥ शूलेसवेदनेमेढ्रेपायौसश्रोणिवंक्षणे ॥ अनुवास्योघृतमण्डेनमधुनामिश्रकेणवा॥

अर्थ—पित्त और कफके क्षीण होनेपर तथा धातुओंके क्षीण होने पर काकड़ासींगी, खैरेटी; नागवाला इन को पीसकर इन में इन से चौगुना दूध औरचौथाई घी डालकर सिद्ध करै ॥

अथवा मूत्रकी विवर्णता और मूत्रकृच्छ्र में विदारीकन्द, अथवा कदंब अथवा ताड़ के अंकुरों के साथ पाक किया हुआ घी दूध देवै।

मेढ,गुदा,श्रोणी और वंक्षण में शूल तथा वेदना होने पर शहत मिले हुए घृतमंड की अनुवासन वस्ति देवै अथवा घी और तेल मिलाकर अनुवासन देवै।

जाङ्गलैःप्रतिभुक्तस्यवर्तकाद्याबिलेशयाः॥ क्रमशःप्रसहाश्चैवप्रयोज्याःपिशिताशिनः औष्ण्यात्प्रमाथिभावाच्चस्रोतोभ्यःच्यावयन्तिते। कफैःशुद्धैश्चतैःपुष्टिंकुर्यात्सम्यग्वहन्रसः ॥

अर्थ—जांगल,वर्त्तकादिक विलेशय तथा मांसाहारी प्रसहों का मांस क्रम से देवै,इन का मांस उष्ण और प्रमाथी होने से स्रोतों से कफ को निकाल देता है। जव सव स्रोत शुद्ध होजाते हैं तव उन में अच्छी तरह वहता हुआ रुधिर शरीर को पुष्ट कर देता है।

दशमूलादि घृत।

चविकात्रिफलाभार्गीदशमूलैःसचित्रकैः। कुलत्थपिप्पलीमूलपाठाकोलयवैर्जले॥ शृतैर्नागरदुःस्पर्शापिप्पलीशटिपौष्करैः। कल्कैःकर्कटशृङ्ग्याचसमैःसर्पिर्विपाचयेत्॥ सिद्धेऽस्मिंश्चूर्णितेक्षारौद्वौपञ्चलवणानिच । दत्त्वायुक्त्यापिवेन्मात्रांक्षयकासनिपीडितः॥

अर्थ—चव्य, त्रिफला, भाडंगी, दशमूल, चीता, कुलथी, पीपलामूल, पाठा, वेर और जौ इन के क्वाथ में सोंठ, जवासा, पीपल, कचूर, पौहकर मूल और काकडासींगी इन सव का समान समान कल्क डालकर घृत पकावैं घृत पकने पर दोनों क्षार और पांचों नमक डाल युक्ति पूर्वक मात्राके अनुसार पीवै। इस से क्षयकी खांसी दूर होजाती है।

गुडूच्यादि घृत।

गुडूचींपिप्पलींमूर्वांहरिद्रांश्रेयसींवचाम्। निदिग्धिकांकासमर्दपाठांचित्रकनागरम्॥ जलेचतुर्गुणेपक्त्वापादशेषेणतत्समम्। सिद्धंसर्पिःपिवेद्गुल्मश्वासार्तिक्षयकासनुत्॥

अर्थ—गिलोय,पीपल,मरोड़फली,हलदी, गजपीपल, वच, कटेरी, कसोंदी,पाठा,चीता, सोंठ इनसवका चौगुने जल में क्वाथ करै, चौथाई शेष रहने पर इस में घृत पकाकर सेवन करै। इस घृत से गुल्म,श्वास, और क्षयजकास दूर हो जाती हैं।

कासमर्दादि घृत।

कासमर्दाभयामुस्तपाठाकट्फलनागरैः।

पिप्पल्याकटुरोहिण्याकाश्मर्यैःसुरसेन च ॥ अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थंक्षीरद्राक्षारसाढके । पचेत्शोषज्वरप्लीहसर्वकासहरंशिवम् ॥

अर्थ—कसोंदी, हरड़, मोथा, पाठा, कायफल, सोंठ, पीपल, कुटकी, खँभारी और तुलसी इन सब को एक २ लेकर इन का क्काथ करै । इस में दूध और दाखका रस एक आढक डालकर एक प्रस्थ घी पकाकर सेवन करै तौ शोष, ज्वर, प्लीहा और सम्पूर्ण प्रकारकी खांसी दूर होजाती है।

धात्री फलादि घृत ।

धात्रीफलैःक्षीरसिद्धैःसर्पिवाप्यवचूर्णितम् । द्विगुणेदाडिमरसेविपक्कंव्योषसंयुतम् ॥ पिवेदुपरिभक्तंवायवक्षारघृतंनरः । पिप्पलीगुडसिद्धंवाछागक्षीरयुतंघृतम् ॥ एतान्यग्निविवृद्ध्यर्थंसर्पींषिक्षयकासिनाम् । स्युर्दोषबद्धकण्ठोरःस्रोतसांचविशुद्धये ॥

अर्थ—दूध में आंवलों को पकाकर उन की गुठलीनिकाल डाले फिर इनकी लुगदी वना घृत में पकावै अथवा घी से दुगुना अनारका रस इस में त्रिकुटा डालकर पकावै। तथा भोजन करने के पीछे जवाखार के साथ सिद्ध किये हुए घृत का पान करै अथवा पीपल, गुड़, वकरी का दूध और घृत इन को सिद्ध करके देवै। ये घृत क्षयकासवाले रोगी की अग्नि वढाने में उपयोगी होते हैं। तथा इन के सेवन करने से दोषों की विवद्धता, कंठ, उरः स्रोत शुद्ध होजाते हैं।

हरीतक्यावलेह ।

हरीतकीयवकाथद्व्याढकेविंशतिंपचेत् । स्विन्नामृदित्वातास्तस्मिनपुराणंगुडषट्पलम् ॥ दद्यान्मनःशिलाकर्षंकर्षार्द्धंचरसाञ्जनात् । कुडवार्द्धञ्चपिप्पल्याःसलेहःश्वासकासनुत् ॥

अर्थ—हरड नग वीस लेकर जौ के दो आढक क्काथ में पकावै सीजने पर गुठलियां निकाल कर पीस डाले उन में छः पल पुराना गुड डालकर तथा एक कर्ष मनसिल, आधा कर्ष रसौत, आधा कुडव पीपल ये सव पीसकर डाल देवै । इस लेह का सेवन करने से श्वास और खांसी दूर होजाते हैं

अन्य अवलेह।

श्वाविधःसूचयोदग्धाःसघृतक्षौद्रशर्कराः। श्वासकासहरावर्हिपादोवाक्षौद्रसर्पिषा॥ एरण्डपत्रक्षारंवाव्योषतैलगुडान्वितम् । सुरसैरण्डपत्राणांविधिनानेनलेहयेत् । द्राक्षापद्मकवार्ताकपिप्पलीःक्षौद्रसर्पिषा । लिह्यात्त्र्यूषणचूर्णंवापुराणंगुडसर्पिषा॥ चित्रकंत्रिफलाजाजीकर्कटाख्यंकटुत्रिकम् । द्राक्षाञ्चक्षौद्रसर्पिर्भ्यांलिह्यादद्याद्गुडेनवा ।

अर्थ—सेह के कांटो की भस्म को घी, शहत और चीनी मिलाकर चाटै अथवा मोर के पंजों की भस्म को घी और शहत के साथ चाटने से श्वास और कास दूर होजाते हैं,अथवा अरंडी के पत्तों का क्षार त्रिकुटा मिलाकर गुड़ और तेल के साथ चाटै

अथवा इसी रीति से तुलसी और अरंडी के पत्तों का क्षार चाटै ।

दाख, पद्माख, बेंगन, पीपल इनके चूर्ण को घी और शहत के साथ चाटै, अथवा उस में त्रिकुटा का चूर्ण, पुराना गुड़ और घी मिलाकर चाटै ।

चीता, त्रिफला, जीरा, काकडासींगी, त्रिकुटा और दाख इन को घी, शहत और गुड़ के साथ चाटै ।

पद्मकाद्यव लेह ।

पद्मकंत्रिफलाव्योषंविडङ्गंसुरदारुच ॥
बलारास्नायुतंसूक्ष्मंशर्कराक्षौद्रसर्पिषा ।
विमथ्यलेहयेल्लेहंसर्वकासहरंशिवम् ॥

अर्थ—पद्माख, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, देवदारु, खरेटी, रास्ना, इनसब को महीन पीसले और इन में चीनी, शहत और घी मिलाकर चाटै । इस से सम्पूर्ण प्रकार की खांसी दूर होजाती हैं ।

जीवन्त्याद्यवलेह ।

जीवन्तींमधुकंपाठांत्वक्क्षीरींत्रिफलांश टीम् । मुस्तैलेपद्मकंद्राक्षाद्बृहत्यौवितुन्न कम् ॥ शारिवापौष्करंमूलंकर्कटाख्यांर साञ्जनम् । पुनर्नवांरजोलोहंत्रायमाणां यवानिकाम् ॥ भार्गीतामलकींऋद्धिंवि डङ्गंधन्वयावकम् । क्षारचित्रकचव्याम्ल वेतसव्योषदारुच ॥ चूर्णीकृत्यसमांशा निलेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा । चूर्णात्पाणितलं पञ्चकासानेषव्यपोहति ॥

अर्थ—जीवन्ती, मुलहटी, पाठा, वंशलोचन, त्रिफला, कचूर, मोथा, छोटी इलायची, पद्माख, द्राक्षा, दोनों कटेरी, धनियां, शारिवा, पुष्करमूल, काकड़ासींगी, रसौत, सांठ, लोहचूर्ण, त्रायमाणा, अजवायन, भाडंगी, भूम्यामलक, ऋद्धि, वायविडंग, जवासा, जवाखार, चीता, चव्य, अमलवेद, त्रिकुटा और देवदारु इन को समान भाग लेकर चूर्ण कर लेवै । इस चूर्ण में से प्रति दिन दो तोले चूर्ण को घी और शहत के साथ चाटै तौ पांचों प्रकारकी खांसी दूर होजाती हैं ।

अन्यप्रयोग ।

लिह्यान्मरिचचूर्णंवासघृतक्षौद्रशर्करम् । बदरीपत्रकल्कंवाघृतभृष्टंससैन्धवम् ॥ स्व रभेदेचकासेचलेहमेतत्प्रयोजयेत् । पत्र कल्कंघृतैर्भृष्टंविल्वकस्यसशर्करम् ॥ पेया चोत्कारिकाच्छर्दिस्तृट्कासासातिसारनु त् । गौरसर्षपगण्डीरविडङ्गव्योषचित्रका न् ॥ साभयान्साधयेत्तोयेयवागूंतेनचा म्भसा । ससर्पिर्लवणांकासेहिक्काश्वासे मपीनसे ॥ पाण्ड्वामयेक्षयेशोथेकर्णशू लेचशस्यते ।

अर्थ—काली मिरच का चूर्ण घी, शहत और चीनी के साथ में हित है । वेर के पत्तों को पीसकर घी में भूनकर सेंधानमक डालकर चाटै इससे स्वरभंग और खांसी दूर होजाती है । वेल के पत्तों को पीसकर घी में भूनकर चीनी के साथ हलवा वनावै इससे वमन, तृषा, खांसी और अतिसार दूर होजाते हैं । अथवा सफेद सरसों, गण्डीर, वायविडंग, त्रिकुटा, चीता और हरड़ इन

को दो दो तोले लेकर क्काथ करै, इस क्काथ के साथ यवागू सिद्ध करै, इस में नमक और घी डालकर पान करै। इस के सेवन से खांसी हिचकी, श्वास, पीनस, पांडुरोग, क्षयी,शोथ, और कर्ण शूल दूर होजाते हैं।

अन्य यूषादि प्रयोग।

कण्टकारीरसेसिद्धोमुद्गयूषःसुसंस्कृतः॥ सगौरामलकःसाम्लःसर्वकासभिषग्जितम्। वातघ्नौषधनिष्काथेक्षीरंयूषान् रसानपि। विष्किरान्प्रतुदान्वैलानदापयेत्क्षयकासिने॥ क्षतकासेचयेधूमाः सानुपानानिदर्शिताः। क्षयकासेऽपिता नेवयथावस्थंप्रयोजयेत्॥

अर्थ—कटेरी के क्काथ के साथ मूंग का यूष तयार करै; इस यूष में कपूर और आंवले की खटाई डालकर सेवन करै तो सब तरह की खांसी दूर होजाती है।

इस क्षयकी खांसी में वातनाशक औषधियों के क्काथ में सिद्ध किया हुआ दूध,यूष, तथा विष्किर, प्रतुद और विलेशय जन्तुओं का मांस रस देवै।

क्षतकी खांसीमें जो जो धूमपान अनुपान सहित वर्णन कियेगयेहैं वे सब अवस्था के अनुसार क्षयकी खांसी में भी काम लाये जाते हैं॥

दीपनंबृंहणञ्चैवस्रोतसाञ्चविशोधनम्। व्यत्यासात्क्षयकासिभ्योवल्यंसर्वमितंहितम्॥ सन्निपातभवोऽप्येषक्षयकासःसुदारुणः। सन्निपातहितंतस्मात्सदाकार्यंभिषक्जितम्॥ दोषानुवलयोगाच्च हरेद्रोगवलावलम्। कासेष्वेषुगरीयांसं जानीयादुत्तरोत्तरम्॥

अर्थ—क्षयकासवालों के लिये दीपन, बृंहण, स्रोतःविशोधन और बलकारक सम्पूर्ण औषध व्यत्यासक्रम से हितकारी होती हैं॥

यह दारुण क्षयकास सन्निपात से भी होता है इसलिये इसरोग में सन्निपात नाशक औषधियों का प्रयोग करै। दोषों के बल के अनुसार रोगों के बलाबल को दूरकरै। इन पांचों प्रकारकी खांसियों में उत्तरोत्तर खांसी बलवान् होती है।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

भोज्यंपानानिसर्पींषिलेहाःपाचनकानि च। क्षीरंसर्पिगुडाधूमाःकासभैषज्यसंग्रहः॥ संख्यानिमित्तंरूपाणिसाध्यासाध्यत्वमेवच। कासानांभेषजंप्रोक्तंगरीयस्त्वञ्चकासिनः॥

अर्थ—इस कास चिकित्सिताध्याय में भोज्य, पान, घृत, अवलेह, पाचन, दूध, सर्पिगुड़,धूम प्रयोगआदि खांसीकी चिकित्साओंका संग्रह है तथा खांसी की संख्या, निमित्त, रूप, साध्यासाध्य लक्षण, खांसी की चिकित्सा और उत्तरोत्तर गुरुत्व भी वर्णन कियागयाहै॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेकासचिकित्सितंनाम द्वाविंशोऽध्यायः॥ २२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथातःछर्दिचिकित्सितंव्याख्यास्यामः।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वमनकी चिकित्सा का वर्णन करेंगे ॥

यशस्विनंब्रह्मतपोद्युतिभ्यां ।
ज्वलन्तमग्न्यर्कसमप्रभावम् ।
पुनर्वसुंभूतहितेनिविष्टं ॥
पप्रच्छशिष्योऽत्रिजमग्निवेशः ।
छर्दींषिमेयानिपुरोदितानि ॥
रोगाधिकारेभिषजांवरिष्ठ!।
तेषांचिकित्सांसनिदानलिंगां॥
यथावदाचक्ष्वनृणांहितार्थम् ॥

अर्थ—अग्निवेश ने यशस्वी, ब्रह्मज्ञान, तप और द्युति से जलती हुई अग्नि और सूर्य के समान देदीप्यमान् एवं प्राणियों के हित में सन्निविष्ट आत्रिकुमार पुनर्वसु से पूछा कि हे भिषक्श्रेष्ठ ! आपने रोगाधिकार में जो मेरेसाम्हने वमन रोगों का वर्णन किया था अब हे प्रभो ! मनुष्यों के हितके लिये उनकी चिकित्सा, निदान और लक्षण यथावत् वर्णन कीजिये ।

छर्दि के भेद ।

तदग्निवेशस्यवचोनिशम्य ।
प्रीतोभिषक्श्रेष्ठइदंजगाद ॥
छर्दींषितेयानिपुरोदितानि ।
बिस्तारतस्तानिनिवोधसम्यक् ॥
विद्यात्पृथक्त्रिप्रभवाणिदोषै ।
द्विष्टार्थयोगेनचपञ्चतानि ॥

भिषक्श्रेठपुनर्वसु अग्निवेशकी यह बात सुनकर प्रसन्न हुये और कहने लगे कि वमनों का वर्णन मैंने तुझ से कहा था उसे अब विस्तारपूर्वक सुन ।

वमन पांच प्रकारकी होती है इन में से एक वातज, दूसरी कफज, तीसरी पित्तज, चौथी सन्निपातज और पांचवीं द्विष्टार्थयोगज अर्थात् विषयों के विगड़ेहुए योग से ।

वमन के पूर्वरूप ।

तेषांहृदुत्क्लेशकफप्रसेको ।
द्वेषेऽशनेचैवहिपूर्वरूपम् ॥

अर्थ—हृदयका उत्क्लेश, कफप्रसेक और भोजन में अरुचि ये तीन वमन के पूर्वरूप हैं ॥

वातजवमनकानिदान ।

व्यायामतीक्ष्णौषधशोकरोग ।
भयोपवासाद्यतिकार्षितस्य ॥
क्रुद्धोमहास्रोतसिमातरिश्वा ।
दोषानसमुत्क्लिश्यतदूर्द्ध्वमस्यन् ।
आमाशयोद्रेककृतश्चमर्म ।
प्रपीडयेच्छर्दिरुदीरयेच्च ॥

अर्थ—व्यायाम, तीक्ष्ण औषध, शोक, रोग, भय और उपवास से अत्यन्त कृश हुए मनुष्य के महास्रोतों में वायु कुपित होकर दोषोंको उत्क्लिष्ट करके ऊपर को फेंकती है तथा हृदयादि मर्मस्थानोंको पीड़ित करके वमनको करतीहै । यह वमन आमाशयके उद्रेकसे भी होती है ॥

वातजवमन के लक्षण ।

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषमूर्द्ध ।
नाभ्यर्त्तिकासस्वरभेदतोदैः ॥
उद्गारशब्दप्रबलंसफेनं ।
विच्छिन्नकृष्णंतनुकंकषायम् ॥
कृच्छ्रेणचाल्पंमहताचवेगे ।
नार्त्तोऽनिलाच्छर्दयतीसदुःखम् ॥

अर्थ—हृदय और पसली में वेदना, मुखशोष, नाभि के ऊपर पीडा, खांसी, स्वरभेद, तोद, डकार में अत्यन्त शब्द होता है। झागदार, फटीहुई, कष्टकर पतली कसीली, अत्यन्त कष्ट से थोड़ी, अत्यन्त वेगवती वमन होती है। वातज वमन वड़ी दुखदाई होती है।

पित्तजवमनका निदान ।

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतै ।
रामाशयेपित्तमुदीर्णवेगम् ॥
रसायनीभिर्विसृतंप्रपीड्य ।
मर्मोर्द्धमागम्यवमिंकरोति ॥

अर्थ—अजीर्ण में कड़वे, खट्टे, विदाही और उष्ण पदार्थों के अत्यन्त सेवन से आमाशय में पित्त अत्यन्त उदीर्ण होकर रस वाही स्रोतों के द्वारा फैलकर मर्मस्थान को पीड़ित कर के ऊपर को उठकर वमन करता है।

पित्तजवमनके लक्षण ।

मूर्च्छापिपासामुखमूर्द्धकण्ठ ।
ताल्वक्षिसन्तापतमोभ्रमार्त्तः ॥
पित्तंभृशोष्णंहरितंसतिक्तं ।
धूम्रञ्चपित्तेनवमेत्सदाहम् ॥

अर्थ—पित्तज वमन में मूर्च्छा, पिपासा, मुख, मूर्द्धा, कंठ, तालु, अक्षि, इनमें संताप, अंधकार छाना, चक्कर आना, ये लक्षण होते हैं। तथा इस में अत्यन्त उष्ण, तीखे, धूंआं और दाहयुक्त पित्त निकलते हैं।

कफजवमनका निदान ।

स्निग्धातिगुर्वामविदाहिभोज्यैः ।
स्वप्नादिभिश्चैवकफोऽतिवृद्धः ॥
उरःशिरोमर्मरसायनीश्च ।
सर्वाःसमावृत्यवमिंकरोति ॥

अर्थ—स्निग्ध, भारी, आम और विदाही भोजनों के करने से अथवा बहुत सोने से कफ अत्यन्त वृद्धिपाकर हृदय, शिर, मर्मस्थान और रसवाही स्रोतों को घेरकर वमन उत्पन्न करताहै।

कफजवमनका लक्षण ।

तन्द्रास्यमाधुर्य्यकफप्रसेक ।
सन्तोषनिद्रारुचिगौरवार्त्तः ॥
स्निग्धंघनंस्वादुकफंविशुद्धं ।
सलोमहर्षोऽल्परुजंवमेत्तु ॥

अर्थ—कफज वमन में तन्द्रा, मुख में मीठापन, कफप्रसेक, सन्तोष, निद्रा अरुचि, भारापन और वेदना होती है। तथा वमन में चिकनाई, गाढ़ापन, मिष्टता, कफयुक्तता और निर्मलता भी होती है वमन करते समय रोमांच खड़े होजाते हैं और वेदना थोड़ी होती है।

सन्निपातजवमनका निदान

समश्नतःसर्वरसान्प्रसक्त ।
मामप्रदोषर्त्तुविपर्य्ययैश्च ॥

सर्वेप्रकोपंयुगपत्प्रपन्ना ।
श्छर्दिस्त्रिदोषंजनयन्तिदोषाः ॥

अर्थ—सम्पूर्ण रसों का बराबर बरावर समशन अर्थात् हिताहित आहार को मिलाकर सेवन करना, वा आमदोष, वा ऋतुविपर्य्यय से तीनों दोष एक साथ कुपित होकर त्रिदोषज वमन को उत्पन्न करते हैं।

सन्निपातजवमनकेलक्षण ।

शूलाविपाकारुचिदाहतृष्णा ।
श्वासप्रमोहप्रबलंप्रसक्तम् ॥
छर्दिस्त्रिदोषंलवणाम्लनील ।
सान्द्रोष्णरक्तंवमतांनृणांस्यात् ॥

अर्थ—सन्निपातज वमन में शूल, अविपाक, अरुचि, दाह, तृषा, श्वास, मोह, अत्यन्त प्रवलता होती है और वमन किया-हुआ द्रव्य नमकीन, खट्टा, नीला, गाढा गरम और रक्तयुक्त होता है ।

प्राणनाशक वमन के लक्षण ।

विट्स्वेदमूत्राम्बुवहानिवायुः ।
स्रोतांसिसंरुध्ययदोर्द्ध्वमेति ॥
उत्सन्नदोषस्यतदाचितन्तं ।
दोषंसमुद्धूयनरस्यकोष्ठात् ॥
विण्मूत्रयोस्तत्समवर्णगन्धं ।
तृट्श्वासहिक्कार्त्तियुतःप्रसक्तम् ॥
दुष्टंनरश्छर्दयतीयवेगा ।
तेनार्दितश्चाशुविनाशमेति ॥

अर्थ—जब वायु पुरीषवाही, स्वेदवाही मूत्रवाही और जलवाही स्रोतों को रोककर ऊपर को जाती है और उत्सन्न दोष वाले मनुष्य के संचित दोष को कोष्ठ से उदीर्ण कर देती है तब वान्त द्रव्यकी गंध और उसका वर्ण विष्टा और मूत्र के गंध और वर्ण के समान होजाता है, तथा तृषा, श्वास, हिक्का और वेदना की अधिकता होती है । इसतरह मनुष्य दूषित वमन वडे वेग से करता है उस के वेग से पीडित होकर मनुष्य शीघ्रही मरजाता है ।

द्विष्टार्थ संयोगज वमन के लक्षण ।

द्विष्टप्रतीपाशुचिपूत्यमेध्य ।
वीभत्सगन्धाशनदर्शनैस्तु ॥
यत्रावमेत्तप्तमनामनोघ्नै ।
द्विष्टस्थसंयोगभवंमतंतत् ॥

अर्थ—दूषित, विपरीत, अपवित्र, सडे-हुए, अमेध्य, भयानक गन्ध युक्त मन को विगाड़नेवाले पदार्थों के भोजन वा दर्शन से मन के उत्तप्त होजाने के कारण जो वमन होती है वह द्विष्टार्थ संयोगज होती है ।

असाध्यवमनके लक्षण ।

क्षीणस्ययच्छर्दिरतिप्रवृद्धं ।
सोपद्रवंशोणितपूययुक्तम् ॥
सचन्द्रकंतत्प्रवदन्त्यसाध्यं ।
साध्यंचिकित्सेदनुपद्रवञ्च ॥

अर्थ—क्षीण मनुष्य के वमन का वेग अत्यन्त वढने पर यदि वह उपद्रवों से युक्त तथा रुधिर और पीव से मिला हो और उस में मोर पंखके चंदोये से पडते हो तो वह असाध्य होती है । उपद्रवों से रहित साध्य होती है उसी की चिकित्सा भी करनी चाहिये

वमन चिकित्सा का क्रम ।

आमाशयोत्क्लेशभवंहिसर्वं ।
छर्दिर्मतंलंघनमेवतस्मात् ॥
प्राक्कारयेन्मारुतजांविमुच्य ।
संशोधनंवाकफपित्तहारि ॥

अर्थ—सब प्रकार की वमन आमाशय के उत्क्लेश से उत्पन्न होती है इससे वमन में प्रथम लंघन कराना हित है। तत्पश्चात् कफपितनाशक संशोधन देवै। परन्तु वातज वमन में ऐसा नहीं किया जाता है।

कफपित्तनाशक वमन विरेचन ।

चूर्णानिलिह्यान्मधुनाभयानां ।
हृद्यानिवायानिविरेचनानि ॥
मद्यैःपयोभिश्चयुतानियुक्ता ।
नयन्त्यधोदोषमुदीर्णमूर्द्धम् ॥
वल्लीफलाद्यैर्वमनंपिवेद्वा ।
योदुर्बलस्तंशमनैश्चिकित्सेत् ॥
रसैर्मनोज्ञैर्लघुभिर्विशुष्कै ।
भक्ष्यैःसभोज्यैर्विधिःसपानैः ॥

अर्थ—हरड़ का चूर्ण शहत के संग चाटै, अथवा अन्य द्रव्य भी जो हृदयप्रिय और विरेचन कर्त्ता हों उन्है मद्य वा दूध के संग सेवन करै, ऐसा करने से ऊपरको उठे हुए दोष फिर नीचे को चले जाते हैं। अथवा वल्लीफलादि द्वारा वमन करावै। दुर्वल मनुष्यको संशोधन देवै उसकी संशमन क्रिया करना उचित है। दुर्वल मनुष्य को मन के अनुकूल लघु मांसरस शुष्क भोजन तथा अनेक प्रकार के पेय द्रव्य देवै।

सुसंस्कृतास्तित्तिरिवर्हिलावा ।
रसाव्यपोहन्त्यनिलप्रवृत्तम् ॥
छर्दिस्तथाकोलकुलत्थमाष ।
बिल्वादिमूलाम्बुयवैश्चयूषाः ॥

अर्थ—अच्छी तरह संस्कार किये हुए तीतर, मोर, लावा इन के मांसरस बढ़ी हुई वातज वमन को शान्त करदेते हैं इसी तरह वेर, कुलथी, उरद, विल्वादि पंचमूलका क्वाथ और जौ का यूष भी वातजवमनको दूर करता है।

वातज वमन की चिकित्सा ।

वातात्मकेहृद्द्रवकासयुक्तो ।
नरःपिवेत्सैन्धववद्घृतन्तु ॥
सिद्धंतथाधान्यकनागराभ्यां ।
दध्नाचतोयेनचदाड़िमस्य ॥
व्योषेणयुक्तांलवणैस्त्रिभिश्च ।
घृतस्यमात्रामथवाविदध्यात् ॥
स्निग्धानिहृद्यानिचभोजनानि ।
रसैःसयूषैर्दधिदाड़िमाम्लैः ।

अर्थ—वातज वमन में जो हृदय में फड़फड़ाहट हो तथा खांसी हो तो उसे सेंधानमक मिलाकर घृतपान करावै अथवा सोंठ और धनिये को पीसकर दही के साथ सिद्ध किये घृत में डालकर पानकरै, अथवा अनार के रस में घृत को सिद्ध कर ले अथवा उक्त घृत में त्रिकुटा और तीनों नमक डालकर मात्राके अनुसार पान करै और दही तथा अनारकी खटाई डालकर मांसरस और यूष के साथ स्निग्ध और हृद्यभोजन देवै।

पित्तजवमनमेंचिकित्सा ।
पित्तातिमकायामनुलोमनार्थं ।
द्राक्षाविदारीक्षुरसैस्त्रिवृत्स्यात् ।
कफाशयस्थन्त्वतिमात्रवृद्धं ।
पित्तंहरेत्स्वादुभिरूर्द्ध्वमेव ॥
शुद्धायकालेमधुशर्कराभ्यां ।
लाजैश्चमन्थंयदिवापिपेयाम् ॥
प्रदापयेनमुद्गरसेनवापि ।
शाल्योदनंजांगलजैरसैर्वा ॥
सितोपलामाक्षिकपिप्पलीभिः ।
कुल्माषलाजायवसक्तुगृञ्जान् ॥
खर्जूरमांसान्यथनारिकेलं ।
द्राक्षामथोवावदराणिलिह्यात् ॥
स्रोतोजलाजोत्पलकोलमज्ज ।
चूर्णानिलिह्यान्मधुनाभयाश्च ॥
कोलास्थिमज्जाञ्जनमाक्षिकाविड् ।
लाजासितामागधिकांकणान्वा ॥

अर्थ—पित्तजवमन में अनुलोमन के लिये दाखरस, विदारी रस वा ईखरस के साथ निसोथ देवै और जो अत्यन्त वढ़ा हुआ पित्त कफाशय में स्थित हो तौ स्वादु औषधियों द्वारा वमन करावै । इस तरह शुद्ध होनेपर खीलोंके मन्थ में शहत और शर्करा डालकर पान करावै अथवा शहत और शर्करा डालकर पेयादेवै अथवा मूंग के यूप के साथ वा जांगल मांसरसके साथ शाली चांवलों का भात देवै । अथवा कुल्माष, खील और जौ का सत्तू गृंजनचूर्ण, खजूर का गूदा नारियल, दाख, अथवा वेर में शहत, पीपल और मिश्री मिलाकर सेवन करै । अथवा रसौत, खील, नीलकमल और वेर इन के चूर्ण को शहत और हरड़ के साथ चाटै अथवा वेर की गुठली का गूदा, रसौत, मक्खी का विष्टा, खील, मिश्री और पीपल के वीज लेकर शहतके साथ चाटै ॥

द्राक्षारसंवापिपिवेत्सुशीतं ।
मृद्भृष्टलोष्ट्रप्रभवंजलंवा ॥
जम्वाम्रयोःपल्लवजंकषायं ।
पिवेत्सुशीतंमधुसंयुतंवा ॥
निशिस्थितंवारिसमुद्गकृष्णं ।
सोशीरधान्यश्चणकोदकंवा ।
गवेधुकामूलजलंगुडूच्या ।
जलंपिवेदिक्षुरसंपयोवा ॥
सेव्यंपिवेत्काञ्चनगैरिकंवा ।
सवालकंतण्डुलधावनेन ।
धात्रीरसेनोत्तमचन्दनंवा ॥
तृष्णावमिघ्नानिसमाक्षिकाणि ॥
कल्कंतथाचन्दनचव्यमांसी ।
द्राक्षोत्तमावालकगैरिकाणाम् ॥
शीताम्वुनागैरिकशालिचूर्णं ।
मूर्वातथातण्डुलधावनेन ॥

अर्थ—दाखके क्वाथको ठंडा करके पान करै अथवा मिट्टी के डेले को आग में तप्त करके जल में बुझावै और उस जलको ठंडा होनेपर पीवै और जामन और आम के पत्तों का क्वाथ ठंडा करके शहत मिलाकर पीवै । अथवा मूंग और पीपल रात्रि में जल में भिजो देवै । और प्रातःकाल छानकर पीवै अथवा रात्रि में चने, खस, और

धनियां जल में भिजोवै प्रातकाल उसी जल को छानकर पीवै अथवा गवेधुकाकी जड़ और गिलोय भिजोकर प्रातःकालपीवै अथवा ईखका रस और दूध पीवै। अथवा खस, कांचनगेरू और नेत्रवाला को भिजोकर चांवलके जलके साथ पीवै अथवा आंवले के रस में सफेद चन्दन घिसकर पीवै अथवा तृषानाशक और वमननाशक औषधियों में शहत डालकर पीवै । अथवा रक्तचन्दन, चव्य, जटामांसी, दाख, प्रियंगु,, नेत्रवाला, गेरू इनके कल्क को शीतल जल के साथ पीवै अथवा गेरू, शालीचूर्ण दोनों को मिलाकर ठंडे जल के साथ पीवै अथवा मरोड़फलीको चांवलके जलके साथ पीवै ।

कफकी वमन में चिकित्सा ।

कफात्मिकायांवमनंप्रशस्तं ।
सपिप्पलीसर्षपनिम्बतोयैः ।
पिण्डीतकैःसैन्धवसम्प्रयुक्तै ।
र्वम्यांकफामाशयशोधनार्थम् ॥
गोधूमशालीन्सयवान्पुराणान् ।
यूषैःपटोलामृतचित्रकाणाम् ॥
व्योषस्यनिम्बस्यचतक्रसिद्धै ।
र्यूषैःफलाम्लैःकटुभिस्तुवाद्यात् ॥
रसांश्चशूल्यानिचजाङ्गलानां ।
मांसानिजीर्णान्मधुशीधुरिष्टान् ॥
रागांस्तथाखाडवपानकानि ।
द्राक्षाकपित्थैःफलपूरकैश्च ॥

अर्थ—कफात्मक वमन में कफाशय और आमाशय का शोधन करने के निमित्त पीपल, सरसों, नीमका क्वाथ, मेनफल और सेंधानमक मिलाकर वमन देवै । पुराने गेहूं शाली धान्य और जौ को परवल, गिलोय और चीते के यूष के साथ देवै अथवा त्रिकुटा डालकर मठाके साथ वा नीम के क्वाथ के साथ सिद्ध किये हुए मठे के साथ अथवा फलाम्ल और कटुद्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए यूष के साथ देवै । जांगल मांस रस वा जांगल मांस शूलपर भुना हुआ पुराना शहत, शीधु, अरिष्ट, रागषाडव और दाख, कैथ वा विजौरे के रस के साथ सिद्ध किये हुए पानक सेवन करावै ।

मुद्गान्सगोधूमयवान्कलायान् ।
भृष्टान्युतान्नागरमाक्षिकाभ्याम् ॥
अद्यात्तथैवत्रिफलाविडङ्ग ।
चूर्णंविडङ्गप्लवयोरथोवा ॥
सजाम्बवंवावदरस्यचूर्णं ।
मुस्तायुतांकर्कटकस्यशृंगीम् ॥
दुरालभांवामधुसम्प्रयुक्तां ।
लिह्यात्कफच्छर्दिविनिग्रहार्थम् ॥
मनःशिलायाःफलपूरकस्य ।
रसैःकपित्थस्यचपिप्पलीनाम् ॥
क्षौद्रेणचूर्णंमरिचैश्चयुक्तं ।
लिहन्जयेत्छर्दिरुदीर्णवेगम् ॥

अर्थ—मूंग, गेहू, जौ और मटर इन को घी में तलकर सोंठ और शहत मिलाकर सेवन करै अथवा त्रिफला और वायविडंग का चूर्ण शहत के साथ चाटै अथवा वायविडंग और केवटी मोथा को शहत के साथ चाटै अथवा जामनकी मींगी और वेरकी मींगी का चूर्ण वनाकर शहत के साथ

सेवन करै अथवा मोथा और काकडासींगी वा जवासा इनके चूर्ण को शहत के साथ सेवन करै । इनसे कफकी वमन शान्त होजाती है ॥ बिजौरे वा कैथ के रसके साथ मनसिल का चूर्ण सेवन करने से वा पीपल और काली मिरच का चूर्ण शहत में मिलाकर सेवन करने से उदीर्ण वेगवाली वमन दूर होजाती है ।

सान्निपातिक वमन में चिकित्सा ।

यैषापृथक्त्वोनमयाक्रियोक्ता ।
तांसन्निपातेऽपिसमीक्ष्यबुद्ध्या ॥
दोषर्तदेहाग्निबलान्यवेक्ष्य ।
प्रयोजयेत्शास्त्रविदप्रमत्तः ॥

अर्थ—जुदे २ दोषोंसे उत्पन्न हुई वमन की जो जो जुदी जुदी क्रिया वर्णन कीगई हैं । वेसम्पूर्ण क्रिया दोष ऋतु, देह अग्नि और बल की परीक्षा करके अत्यन्त सावधानी से सन्निपातज वमन के दूर करने के लिये प्रयुक्त करै ।

दुष्टसंयोगजवमन में उपाय ।

मनोभिघातेतुमनोनुकूला ।
वाचःसमाश्वासनहर्षणानि ।
लोकप्रसादाःश्रुतयोवयस्याः ।
शृङ्गारिकाश्चैवहिताविहाराः ॥
गन्धाविचित्रामनसोऽनुकूला ।
मृतपुष्पशुक्लाम्लफलादिकानाम् ॥
शाकानिभोज्यान्यथपानकानि ।
सुसंस्कृताःखाडवरागलेहाः ॥
यूषारसाकाम्बलिकाःखडाश्च ।
मांसानिधानाविविधाश्चभक्ष्याः ॥
फलानिमूलानिचगन्धवर्णैः ।
रसैरुपेतानिवमिञ्जयन्ति ॥
गन्धंरसंस्पर्शमथापिशब्दं ।
रूपञ्चयद्यत्प्रियमप्यसात्म्यम् ॥
तदेवकुर्यात्प्रशमायतस्या ।
स्तज्जोहिदोषःसुखएवजेतुम् ॥

अर्थ—जो वमन मन में किसी प्रकार की घृणा उत्पन्न होने से होती है उसमें मन के अनुकूल वाणी, संतोषदायक वचन, प्रसन्न करनेवाली वातें मनुष्यों को प्रसन्न करनेवाली कहानियां समानवयवाली स्त्रीसे संगमन, तथा शृंगारादि हिताहार विहार उत्तम होते हैं ।

मन के अनुकूल अनेक प्रकारके सुगंधित द्रव्य, खिलेहुए फूलों की सुगन्धि, स्वेत फूल, नवीन खट्टे फलोंकी सुगन्धि, शाक, भोजन के पदार्थ, पानक अच्छी तरह से संस्कार कियेहुए षाडव, मुरब्बे, अवलेह अनेक प्रकार के यूष, रस, कांबलिक यूष, खडयूष, मांस, धान अनेक प्रकार के भक्ष्य पदार्थ, अनेक प्रकार के गंध, वर्ण और रसों से युक्त फल मूल का सेवन वमन को दूर करता है ।

जो जो गंध, रस, स्पर्श, शब्द और रूप रोगी को प्रियहों यद्यपि ये गंधादि असात्म्य भी हों तौ भी रोग की निवृत्ति के लिये इनका प्रयोग करै क्योंकि मन की घृणासे उत्पन्न हुए रोग मनोऽनुकूल पदार्थों के सेवन से ही सुखपूर्वक दूर करनेमें आतेहैं ।

वम्युत्थितानांचचिकित्सितंस्यात् ।

चिकित्सितंकार्यमुपद्रवाणाम् ।
अतिप्रवृत्तासुविरेचनस्य ।
कर्मातियोगेविहितंविधेयम् ॥
वमिप्रसङ्गात्पवनोऽप्यवश्यं ।
धातुक्षयाद्वृद्धिमुपैतितस्मात् ॥
चिरप्रवृत्तास्वनिलापहानि ।
कार्याण्युपस्तम्भनबृंहणानि ॥
सर्पिर्गुडाःक्षीरविधिर्घृतानि ।
कल्याणकत्र्यूषणजीवनानि ॥
वृष्यास्तथामांसरसाःसलेहाः
चिरप्रसक्ताश्चवमिंजयन्ति ॥

अर्थ—जो चिकित्सा वमन के दूर करने की होती है वही चिकित्सा वमनसे उत्पन्न हुए उपद्रवों में भी कीजाती है तथा विरेचन के अतियोग होनेमें जो जो चिकित्सा निरूपण कीगई हैं वेही वेही चिकित्सा वमनके अतियोग में भी होती हैं।

वमन के प्रसंग से धातुओं के क्षीण होजानेपर वायु अवश्यही बढ़जातीहै अतएव पुराने वमन रोग में वातनाशक, स्तम्भन और बृंहण क्रिया करै।

इस रोग में सर्पिर्गुड़, क्षीरविधि, कल्याण घृत, त्र्यूषणघृत, जीवनीय घृत, वृष्यप्रयोग मांसरस और अवलेह इन से बहुत दिन की पुरानी वमि दूर होजाती है।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।
संख्यांहेतुंलक्षणमुपद्रवान् ।
साध्यतांनयोगांश्चछर्दीनाम् ॥
प्रशमार्थंप्राहाचिकित्सितम् ।
मुनिवर्यइतिछर्दिचिकित्सितम् ।

अर्थ—इस वमन चिकित्सिताध्याय में पुनर्वसु ने वमन रोगों की संख्या, हेतु, लक्षण, उपद्रव, साध्यासाध्य विचार और औषध वर्णन की हैं।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेछर्दिचिकित्सितंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथातस्तृष्णाचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम तृषाचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

ज्ञानप्रशमतपोभिःख्यातोऽत्रिसुतोजगद्धितेऽभिरतः । तृष्णानांप्रशमार्थंचिकित्सितंप्राहपञ्चानाम् ॥

अर्थ—जो भगवान् आत्रेय अपने ज्ञान शान्ति और तपोगुण से जगत् में विख्यात हैं और संसार के हित में दत्तचित्त हैं वे पांचप्रकार के तृष्णारोगों की शान्ति का उपाय वर्णन करने लगे।

तृषा रोग का हेतु ।

क्षोभाद्भयाच्छ्रमादपिशोकात्क्रोधाद्विलंघनान्मद्यात् । क्षाराम्ललवणकटुकोष्णरूक्षशुष्कान्नसेवाभिः ॥ धातुक्षयगदकर्षणवमनाद्यतियोगसूर्य्यसन्तापैः । पित्तानिलौप्रवृद्धौसौम्यान्धातूंश्चशोषयतः

रसवाहिनीश्चनालीर्जिह्वामूलगलतालु क्लोम्नः। संशोष्यनृणांदेहेकुरुतःतृष्णांमहाबलावेतौ ॥ पीतंपीतंहिजलंशोषयतस्तमतोनयातिशभम्। घोरव्याधिकृशानांप्रभवत्युपसर्गभूतासा ॥

अर्थ—क्षोभ, भय, श्रम, शोक, क्रोध, लंघन, मद्यपान के करने से, खारे, खट्टे, नमकीन, कडवे, गरम, रूखे और सूखे अन्न के सेवन से, धातुकी क्षीणता, रोग के कारण कृशता, वमनातियोग और सूर्य सन्ताप से पित्त और वात वढकर ये दोनों महावली सौम्यधातुओं को सुखाते हुए रसवाहिनी नाडी, जिह्वामूल, गला, तालु और पिपासास्थान इन को सुखाकर मनुष्य की देह में तृष्णा को उत्पन्न करते हैं,जल पीते पीते सूखता चला जाता है और किसी तरह से तृषाकी शान्ति नहीं होती। जो मनुष्य घोर व्याधि के कारण कृश होगये हैं उन के उपद्रव सहित तृष्णा उत्पन्न होती है।

तृषाका प्राग्रूप।

प्राग्रूपंमुखशोषंस्वलक्षणंमर्वदाम्बुकामित्वम् ॥

अर्थ—मुखशोष, तृषाका लक्षण और सदैव जलपान की इच्छा ये तृषा के पूर्वरूप हैं।

तृष्णानांसर्वासांलिङ्गानांलाघवमपायः॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार की लक्षणवाली तृष्णाओं का लाघवही अपाय है।

तृषा के लक्षण।

मुखशोषस्वरभेदभ्रमसन्तापप्रलापसंस्तम्भान्। ताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाकर्कशतांचित्तनाशञ्च ॥ जिह्वानिर्गममरुचिंबाधिर्यंमर्माणान्दवंसादम्। तृष्णोद्भूतान् जयेत्पञ्चविधांलिङ्गतःशृणुताम् ॥

अर्थ—मुखशोष, स्वरभंग, भ्रम, संताप, प्रलाप, संस्तम्भ, तालु, ओष्ठ, कंठ और जिह्वा में कर्कशता, चित्तनाश, जिह्वा का वाहर निकलना, अरुचि, वधिरता, मर्मों में ताप और शिथिलता ये लक्षण तृषा रोग में होते हैं। तृषा पांच प्रकार की होती है अव इनके पृथक् पृथक् लक्षणों का वर्णन किया जाता है।

बातजतृषाकाहेतु॥

अब्धातुंदेहस्थंकुपितःपवनोयदाविशोषयति। तस्मिन्शुष्केशुष्यत्यबलस्तृष्यथविशुष्यन् ॥

अर्थ—पवन कुपित होकर जब देहस्थ जलधातु को सुखा देती है, उस के सूखने पर दुर्वल मनुष्य शुष्क होजाता है और शुष्क होने से उसे तृषा उत्पन्न होती हैं।

वातज तृषाका लक्षण।

निद्रानाशःशिरसोभ्रमस्तथाशुष्कविरसमुखता। श्रोत्रोपरोधइतिचस्याल्लिङ्गं वाततृष्णायाः॥

अर्थ—निद्रानाश, सिरका घूमना,मुख में सूखापन और विरसता, कानों में सुन्नता ये लक्षण वातकी तृष्णा में होते हैं।

पित्तज तृषाका हेतु ।

पित्तंमतंकुपितमाग्नेयंकुपितंचेत्तापयत्य पांधातुम् । सन्तप्तःसहिजनयेत्तृष्णांदाहोल्वणांनृणाम् ॥

अर्थ—प्रथम कह चुकेहैं कि पित्त आग्नेय होता है और जब यह कुपित होजाता है तब जल धातु को तप्त करता है और जल धातु तप्त होकर मनुष्यों के दाहाधिक्य तृषा को उत्पन्न करती है ।

पित्तजतृषा के लक्षण ।

तिक्तास्यत्वंशिरसोदाहःशीताभिनन्दितामूर्च्छा । पीताक्षिमूत्रवर्चस्त्वमाकृतिः पित्ततृष्णायाः ॥

अर्थ—मुख में कडवापन, सिर में दाह, शीतलवस्तु में स्पृहा, मूर्च्छा, नेत्र, मूत्र और विष्टा में पीलापन ये पितजतृषा के लक्षण हैं ।

कफज तृषा ।

तृष्णायामप्रभवासाप्याग्नेय्यामपित्तजनितत्वम् । लिङ्गंतस्याश्चारुचिराध्मापकफप्रसेकौच ॥

अर्थ—जो तृषा आम से उत्पन्न होती है वह आग्नेय होती है, क्योंकि वह आमाश्रित पित्त से उत्पन्न होती है । अरुचि, आध्मान् और कफप्रसेक इसके लक्षण हैं ।

देहोरसजोऽम्बुभवारसाश्चतस्यक्षयाच्च । तृष्येत्तुदीनस्वरःप्रताम्यनदीनःसंशुष्कहृदयगलतालुः ॥ भवतिखलुसोपसर्गान्तृष्णसाभवतिशोषणीकष्टा । ज्वरमेहक्षयशोषश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ॥ सर्वास्त्वतिप्रसक्तारोगकृशानांवामिप्रसक्तानाम् । घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णामरणाय विज्ञेया ॥

अर्थ—रससे देह उत्पन्न होता है और रस जल से होता है, इस से रसधातु के क्षीण होने से तृषा उत्पन्न होती है । इस तृषा में स्वरक्षीण होजाता है, दीनता होजाती है, हृदय, गला और तालु शुष्क होजाता है ।

ज्वर, प्रमेह, क्षयी, शोष और श्वासादि उपद्रवोंसे युक्त मनुष्य के जो तृषा उत्पन्न होती है वह सोपद्रव होती है, इसे शोषणी कहते हैं, यह कष्टसाध्य होतीहै।

सब प्रकार की अत्यन्त प्रसक्त तृषा, तथा रोग से कृश पुरुषोंकी तृषा, वमन रोगियोंकी तृषा तथा घोर उपद्रवोंसे युक्त पुरुषोंकी तृषा मनुष्यकी मृत्युकारक होती है।

अग्नि और पवनको तृषाकाकारणत्व ।

नाग्निंविनाहितर्षःपवनाद्वातौहिशोषणेहेतू अब्धातोरतिवृद्धावपांक्षयेतृष्यतिनरोहि

अर्थ—अग्नि और पवन के विना तृषा उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि येही जलधातु को सुखानेवाली है इसतरह जल धातु के अत्यन्त क्षीण होनेही से तृषारोग उत्पन्न होता है ।

तृषा के अन्यकारण ।

गुर्वन्नपयःस्नेहैःसंमूर्च्छछर्दिर्विदाहकालेच। यस्तृष्येद्धृतमार्गौतत्राप्यनिलानलौहेतू ॥ तीक्ष्णोष्णरूक्षभावान्मद्यंपित्तानिलौप्रकोपयति । शोषयतोऽपांधातुंतावाशुमद्य

शीलानाम् ॥ तप्तास्विवसिकतासुहितदा शुमद्यतोयंविशुष्याति । क्षिप्रंतेषांसन्तप्ता नांहिमजलपानाद्भवतिमर्म । शिशिरस्ना तस्योष्मारुद्धःकोष्ठंप्रपद्यतर्षयति । तस्मा न्नोष्णाक्लान्तोभजेतसहसाजलंशीतम् ॥ लिङ्गंसर्वास्वेतास्वनिलक्षयात्पित्तजम्भ वत्यथतु । पृथगागमाचिकित्सितमतः प्रवक्ष्यामितृष्णानां ॥

अर्थ—परिपक्क होते हुए भारीअन्न, दूध और घृतादि पदार्थों के विदाहकाल में तृषा उत्पन्न होती है । इस में भी रुकेहुए मार्ग वाले जल और अग्निही हेतु हैं ।

तीक्ष्ण,उष्ण और रूक्ष भावों के कारण मद्य पित्त और वायु को कुपित करता है । येही पित्त और वायु मद्यप मनुष्यकी जलधातु को शुष्क कर देते हैं । गरमवालू में जल डालने से जैसे शुष्कहोजाता है उसी तरह मद्यजल को शुष्क करदेता है । मद्य से संतप्त मनुष्यों के ठंडा जलपान शुष्कहोकर मर्म को सुखादेता है । सहसा ठंडे जलके स्नान से ऊष्मा रुककर कोष्ठ में पहुंचकर तृषा उत्पन्न करती है इसलिये गरमी का माराहुआ मनुष्य शीघ्रही शीतल जल से स्नान न करै ।

इन ऊपर वर्णन कियेहुए सम्पूर्ण कारणों में वायु के क्षीण होने से पित्तज तृषा के लक्षण होते हैं । अव हम सब प्रकार की तृषाओं की पृथक् पृथक् चिकित्सा वर्णन करते हैं ॥

तृषारोगमें चिकित्सा ।

अपांक्षयाद्धितृष्णासंशोष्यनरंप्रणाशये दाशु । तस्मादैन्द्रंतोयंसमधुपिबेत्तद्गुणं वान्यत् ॥ किञ्चित्तुकषायानुरसंतत्तनुलघुशी तंसुगन्धिसुरसम् । अनभिष्यन्दिचयत्त त्क्षितिगतमप्यैन्द्रवज्ज्ञेयम् ॥ शृतंशीतं ससितोपलमथवाशरपूर्वपञ्चमूलेन । ला जासक्तुसिताक्तान्मधुयुतमैन्द्रेणवामन्थं ॥ वाट्यवामयवानांशीतंमधुशर्करायुतंदद्या त् । पेयांवाशालीनांदद्याद्वाकोरदूषाणाम् ॥ पयसाशृतेनभोजनमथवामधुशर्करायुतंभो ज्यम् । पारावतादिकरसैर्घृतभृष्टैर्वाप्य लवणाम्लैः ॥ तृणपञ्चमूलमुञ्जातकैःपि यालैश्चजांगलाः । सुकृताःशस्ताःरसाः पयोवातैःसिद्धंशर्करामधुमत् ॥

अर्थ—जलधातु के क्षीण होनेसेही तृष्णा मनुष्य को सुखाकर शीघ्र मारडालती है । इसलिये तृषारोग में आन्तरीक्षजल शहत मिलाकर वा तद्गुण विशिष्ट अन्य जल पीना चाहिये । पृथ्वी में गिराहुआ जल भी जिस में कुछ कसीलापन और हलका- पन, ठंडापन, सुगन्धि, सुरसता और अन- भिष्यन्दता होती है वह आन्तरीक्ष जल के समानही होता है । जल को औटाकर वा शरादि पंचमूल का क्काथ करके मिश्री डाल- कर पीवै । खील का सत्तू मिश्री मिलाकर वा शहत और मन्थको आन्तरीक्ष जल में घोलकर देवै । अथवा जौ की वाट्य में ठंडा होनेपर शहत और चीनी मिलाकर देवै अथवा शालिचांवल वा कोदों की पेया

देवै अथवा औटेहुए दूध में शहत और चीनी डालकर उस के साथ भोजन करै अथवा पारावतादि पक्षियों के मांसरस को घी में भूनकर विना नमक और खटाई के सेवन करै। अथवा तृण पंचमूल, मूंज और पियाल के क्वाथ के साथ जांगल मांसरस अच्छीतरह पक्व करके सेवन करै। अथवा उन्ही तृणपंचमूलादि में दूध औटाकर शहत और चीनी डालकर पीवै।

शतधौतघृतेनाक्तःपयःपिवेत्शीततोयमत्र गाह्य। मुद्गमसूरचणकजारसास्तुभृष्टाघृते देया॥ मधुरैःसजीवनीयैःशीतैश्चसतिक्तकैः शृतंक्षीरं। पानाभ्यञ्जनसेकेष्विष्टंमधुश र्करायुक्तंतज्जं॥ वाघृतमिष्टंपानाभ्यङ्गेषुन स्यमपिचस्यात्। मारीपयःसशर्करमुष्ट्या अपिनस्यमिक्षुरसः॥

अर्थ—सौवार धुले हुए घीकी देह पर मालिश करके ठंडे जल से स्नान करके दूध पीवै। मूंग, मसूर और चने के यूष को घी में भूनकर देवै। अथवा मधुरगण, जीवनीय गण और शीतल तिक्तद्रव्यों के साथ में औटाया हुआ दूध शहत और चीनी मिला हुआ पान, अभ्यंग और सेक में हित है अथवा इसी दूध से निकाला हुआ घी पान, अभ्यंग और नस्य में हित होता है। चीनी मिलाकर स्त्री का दूध, ऊंटनी का दूध, अथवा ईखका रस नस्य में हित है

क्षीरेक्षुरसगुडोदकसितोपलाद्यैःक्षौद्रसी धुमाध्वीकैः। वृक्षाम्लमातुलुङ्गैर्गण्डूषा स्तालुशोषघ्नाः॥ जम्बाम्रातकबदरी नडवेतसपञ्चपल्लवञ्चाम्लैः। हृन्मुखशि रःप्रलेपाःसघृतामूर्च्छाभ्रमतृषांस्युः॥ दा डिमदधित्थलोध्रैःसविदारीवीजपूरकैः। शिरसःप्रलेपोगौरामलकैर्घृतारनालायुतै श्चहितः॥

अर्थ—दूध, ईखका रस, गुडोदक, (गुड़ का शरवत), मिश्री का शर्वत, शहत, शीधु, माध्वीक, वृक्षाम्ल, विजौरा, इनके रसके कुल्ले तालुशोष को दूर करते हैं। जामन, अंबाडा, वेर, जलवेतस और वेल फल इनके कल्कका घृत मिलाकर हृदय मुख और सिर पर लेप करने से मूर्छा, भ्रम और तृषा नष्ट होजाती हैं। अनार खैर लोध विदारी और विजौरा इनके कल्क का सिर पर लेप करने से अथवा कपूर और आंवले को घी और कांजी में मिलाकर लेप करने से तृषा शान्त होजाती है।

शैबालपङ्कजलजैःसाम्लैःसघृतैश्चसक्तु भिर्लेपः। मस्त्वारनालकमलार्द्रवसनम णिहारसंस्पर्शाः॥ शिशिराम्बुचन्दनार्द्राः स्तनतटपाणितलसंस्पर्शाः। क्षौमार्द्रवसना नांवराङ्गनानांप्रियाणाञ्च॥ हिमवद्दरी वनसरित्सरोम्बुजपवनेन्दुपादशिशिरा णाम्। रम्याशिशिरोदकानांस्मरणञ्चक थाश्चतृष्णाघ्न्यः॥

अर्थ—शैवाल, कीचड़ और कमलका लेप अथवा घी और खटाई मिलाकर सत्तू कालेप तृषाको शान्त करता है। अथवा दही का तोड़, कांजी, गीलावस्त्र, मणियों के हारका स्पर्श करने से भी तृषाशान्त होती

है। शीतल जल से आर्द्र वा चन्दन लगी हुई नववालाओंके स्तनों का और हाथों का स्पर्श करने से तृषा शान्त होजाती है। रेशमी गीले वस्त्रों को धारण करने वाली मनोहारिणी स्त्रियों का स्पर्श करने से भी तृषा शान्त होती है। हिमालय की शीतल गुहा, वन, नदी, सरोवर, कमल, पवन, चन्द्रमाकी शीतल किरण, शिशिर ऋतु और रमणीक शीतल जलों के स्मरण करने से भी तृषा शान्त होती है।

वातघ्नमन्नपानंमृदुलघुशीतञ्चवाततृष्णायाः। क्षतकासनुत्घृतक्षीरमूर्ध्ववातक्षयतृषांस्यात्॥ स्याज्जीवनीयसिद्धंक्षीरघृतंवातपित्तजेतर्षे। पैत्तेद्राक्षाचन्दनखर्जूरोशीरमधुयुतंतोयम्॥ लोहितकशालितण्डुलखर्जूरपरूषकोत्पलद्राक्षाः॥ मधुपक्वलोष्ठमेवचजलेशृतंशीतलंपेयम्। लोहितशालिप्रस्थःसलोध्रमधुकाञ्जनोत्पलः॥ पक्वामलोष्ट्रमधुजलसमायुतोमृण्मयेपेयः॥

अर्थ—वातनाशक, मृदु, लघु और शीतल अन्नपान वातजतृष्णा का नाश करने वाला होता है। क्षत कास को नाश करने वाले घी को पीकर ऊपरसे दूध पी लैने से वातजतृषा क्षय होजाती है। वातपित्तकी तृषा में जीवनीयगणोक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत और दूध हितकारक है। पित्तकी तृषा में दाख, चन्दन, खजूर, खस इनके शीतल क्वाथ में शहत मिलाकर पीना चाहिये। लालशाली चांवल, खजूर, फालसा, नीलकमल, दाख इन को पीसकर जलमें छानले और एक मिट्टी के डेले को अग्नि में अच्छी तरह गरम करके उस में बुझादे फिर ठंडा होने पर शहत मिलाकर पीवै। लालशाली चांवल एक प्रस्थ, लोध, मुलहटी, रसौत और नीलकमल इन को पीसकर एक मिट्टी के पात्र में छान ले और गरम मिट्टी का डेला उस में बुझाकर ठंडा होने पर शहत मिलाकर पीवै।

वटमातुलुङ्गवेतसपल्लवकुशकाशमूलयष्ट्याह्वैः॥ सिद्धेऽम्भस्यग्निनिभाःकृष्णमृदःकृष्णसिकतावा। तप्तानिनवकपालान्यथवानिर्वाप्यपाययेताच्छम्॥ सपाकशर्करंवामृतवल्ल्युदकंतृषंहन्ति। क्षीरवतांमधुराणांशीतानांशर्करामधुविमिश्राः॥ शीतकषायामृद्भृष्टसंयुताःपित्ततृष्णाघ्नाः॥

अर्थ—वड़, बिजौरा, वेतके पत्ते, कुश, कांसकी जड़, मुलहटी, इन को डालकर सिद्ध किये हुए जल में काली मिट्टी वा काली वालू वा नवीन खीपडों को अग्नि के समान गरम करके बुझा दे, इस जल को पीने से तृषा शान्त होजाती है। अथवा गिलोय को घोट छान शर्करा मिलाकर पीने से भी तृषा शान्त होजाती है। अथवा दूध वाले शीतल मधुर द्रव्यों के शीतकषाय में गरम मिट्टी का डेला बुझाकर उस में चीनी और शहत डालकर पीने से भी पित्तज तृषा शान्त होजाती है॥

व्योषवचाभल्लातकतिक्तकषायास्तथासतृष्णायाम्॥ यच्चोक्तंकफजायांवम्यांतच्चैवकार्य्यंस्यात्। स्तम्भारुच्यविपा

कालस्यच्छर्दिषुकफानुगांतृष्णाम् ॥ ज्ञात्वा दधिमधुतर्पणलवणोष्णजलैर्वमनमिष्टम् । दाडिममदनफलश्चवाप्यन्यतमकषायमथ लेह्यंवा ॥ पेयमथवाहारिद्राम्बुशर्कराक्षौद्रसंयुक्तम् ।

अर्थ—त्रिकुटा, वच, भिलाया और तिक्तक द्रव्य इनका कषाय तृषानाशक होता है । जो चिकित्सा कफकी वमन दूर करने में कही गई है वह भी हितकर है । जो तृषा के साथ स्तम्भ, अरुचि, अविपाक आलस्य और वमन भी हो तौ वह तृषा कफानुगत होती है उस में दही, शहत, तर्पण लवण और उष्ण जल द्वारा वमन दैनी चाहिये । इसमें वमन कराने के लिये अनार और मैनफल का क्वाथ देवै वा और कोई वमनकारक क्वाथ वा वमनकारक अवलेह सेवन करना चाहिये अथवा हलदी के क्वाथमें शहत और चीनी मिलाकर पीवै ।

क्षयकासनतुतुल्यात्क्षयतृष्णागरीयसीया नृणाम् ॥ क्षीणक्षतशोषहितैःतस्मात्तांभेषजैःशमयेत् । पानंतृषार्तःपानन्त्वर्धोदकमम्लंलवणगन्धाढ्यम् ॥ शिशिरस्नातःपानंमद्याम्बुगुडाम्बुवातृषितः । भक्तोपरोधतृषितःस्नेहतृषार्तोऽथवातनुयवागूम्॥ अपिबेद्गुरुणातृषितोभुक्तेनोद्धरेद्भुक्तम् । मद्यार्धाम्बुचोष्णंबलवांस्तृषितःसमुल्लिखेत् ॥ पीत्वामागधिकाविषदमुखःसशर्करंवापिबेन्मन्थम् ।

अर्थ—क्षयकास के समानही क्षय से उत्पन्न हुई तृषा दुस्तर होती है और चिकित्सा भी दोनों की समानही होती है, इसलिये क्षीणरोगी क्षतरोगी और शोषरोगी के लिये जो जो औषधें हित हैं उन से उनकी चिकित्सा करनी चाहिये । मद्यजन्य तृषार्त्तरोगी को मद्य में आधाजल, खटाई, नमक तथा कुछ सुगंधित द्रव्य डालकर पान करावै । तथा ठंडे जल से स्नानकराके आधाजल और मद्य मिलाकर देवै अथवा गुड़का शर्वत पान करावै भोजन के समय पर न मिलने से अथवा स्नेह पान से जो तृषा उत्पन्न होती है उस में पतली यवागू पान करावै । गुरुभोजन करने से जो तृषा उत्पन्न हुई हो उसे वमन द्वारा निकाल देवै । इस में जो रोगी वलवान् हो तौ जलमिश्रित मद्य वा उष्णजल पान कराके वमन करादे । वमन के पीछे दो एक पीपल चबाकर मुख में विषदता उत्पन्न करै फिर शर्करा डालकर मन्थ पीवै ।

बलवांस्तुतालुशोषेपिवेद्घृतंवृष्यमन्नमद्याच्च ॥ सर्पिर्भृष्टंक्षीरंमांसरसांश्चाबलःस्निग्धान् । अतिरूक्षदुर्बलानांतर्षंशमयेन्नृणामिहाशुपयः ॥ छागोवाघृतभृष्टःशीतोमधुरोरसोहृद्यः । स्निग्धेऽन्नेभुक्तेयातृष्णास्यात्तांगुडाम्बुनाशमयेत् ॥ तर्षंमूर्च्छाभिहतस्यरक्तपित्तापहैर्हन्यात् ।

अर्थ—तालुशोष में तृषायुक्त रोगी जो वलवान् हो तौ वृष्य घृतपान करै ऊपर से चांवलों का भोजन करै । तथा जो रोगी निर्वल हो तौ दूध और घी में तले हुए स्निग्ध मांसरस देवै । अत्यन्त रूक्ष और

दुर्वल मनुष्यों की तृषा दूध से शीघ्रही शान्त होजाती है अथवा बकरेका मांसरस वा अन्य हृदयप्रिय शीतल मधुर मांसरस सेवन करने से भी तृषा शान्त होजातीहै। स्निग्ध अन्न के भोजन करने से जो तृषा उत्पन्न होती है वह गुड़का शर्वत पीने से मिटती है। मूर्च्छारोगी की तृषा रक्त पित्तनाशक औषधियों से दूर होती है।

शीतोष्णजलकीविधि।

वम्युष्णादाहमूर्च्छातमःक्लममदात्यया स्रविषपित्ते ॥ शस्तंस्वभावशीतंशृतशीतंसन्निपातेऽम्भः। हिक्काश्वासनवज्वरपीनसघृतपीतपार्श्वगलरोगे ॥ कफवातकृतेस्त्यानेसद्यःशुद्धेचहितमुष्णम्। पाण्डूदरपीनसमेहगुल्ममन्दानिलातिसारेषु ॥ प्लीहनिचयेतोयमशुभंकाममशक्ये पिबेदल्पम् ॥

अर्थ—वमन, उष्णता, दाह, मूर्च्छा, तम, क्लान्ति, मदात्यय, रक्तपित्त और विषरोगों में स्वभावशीतल जल हितकर होताहै और सन्निपातमें औटाकर ठंडाकिया हुआ जल हितावह है ॥ हिचकी, श्वास, नवीनज्वर, पीनस, घृतपानजरोग, पार्श्ववेदना, गलरोग, कफवातरोग कफका गाढ़ापन और संशोधन के पीछे तत्कालही उष्णजल हित होता है ॥ पांडुरोग, उदर रोग, पीनस, प्रमेह, गुल्मरोग, मन्दाग्नि, अतिसार और प्लीहा इन में जल पीना अच्छा नहीं है। जो जल पिये विना काम न चलसके तो वहुत थोड़ा पीना चाहिये।

पूर्वामयातुरःसंदीनस्तृष्णार्दितोजलंकाङ्क्षन् ॥ नलभेतुसचेन्मरणमाश्वेवाप्नुयाद्दीर्घरोगंवा। तस्माद्धान्याम्बुपिबेत्तृष्यन्रोगीसशर्कराक्षौद्रम् ॥ यद्वातस्यान्यत्स्यात्सात्म्यंरोगस्यतच्चेष्टम्। तस्यांविनिवृत्तायांतज्जन्योपद्रवःसुखञ्जेतुम् ॥ तस्मात्तृष्णापूर्वंजयेद्बहुभ्योऽपिरोगेभ्यः

अर्थ—रोग से पीड़ित तृषार्त्तमनुष्य यदि पानी चाहै और उसे न मिलै तौ वह शीघ्रही मरजाता है वा उस के कोई बड़ारोग होजाता है, इसलिये उसे धनियें का जल शहत और चीनी डालकर पान करावै अथवा रोग के अनुसार और कोई सात्म्य द्रव्य हो तौ उसे देवै। तृषा के शान्त होनेपर उस से उत्पन्न हुए अन्य उपद्रव भी सुखपूर्वक दूर होजाते हैं, इसलिये सब रोगों से पहिले तृषा का उपाय करना उचित है।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन।

हेतूयथाग्निपवनौकुरुतःसोपद्रवांचपञ्चानांतृष्णानां। पृथगाकृतिरसाध्यतासाध्यतासाधनंचोक्तम् ॥

अर्थ—इस तृषा चिकित्सित अध्याय में पांचो प्रकारकी तृषा के हेतु अग्नि और वायु हैं और येही तृषा के साथ उपद्रवों को भी उत्पन्न करते है। इस अध्याय में तृषाकी पृथक् २ आकृति,साध्यता,असाध्यता तथा साधन के उपाय वर्णन किये गये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचि-

तायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचि-
किल्सितस्थानेतृषाचिकित्सितंनाम
चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

—❁—

पंचविंशोऽध्यायः ।

अथातोविषचिकित्सितंव्याख्यास्याम
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम विष चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

विष की उत्पत्ति ।

प्रागुत्पत्तिंगुणान्योनिंवेगान्लिङ्गान्युप क्रमान् ॥ विषस्यब्रुवतःसम्यगग्निवेशनिबोधमे ॥ अमृतार्थंसमुद्रेतुमथ्यमानेसुरासुरैः । जज्ञेप्रागमृतोत्पत्तेःपुरुषोघोरदर्शनः ॥ दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रोहरित्केशोऽनलेक्षणः । जगद्दृष्ट्वाविषण्णंतंविषंसतुविषादनात् ॥

अर्थ—आत्रेय बोले कि हे अग्निवेश! मैं तेरे साम्हने विषकी उत्पत्ति, गुण, योनि-वेग, लक्षण और चिकित्सा को वर्णन करता हूं तू सावधानी से सुन । जब देवता और राक्षसों ने मिलकर अमृत के लिये समुद्र को मथा था तब अमृत के उत्पन्न होने से पहिले एक ऐसा पुरुष निकला जिसका वड़ा भयंकर रूप था, उस में वड़ा तेजथा, चार डाढ थीं, हरे केश थे और उसकी आंखे अग्निके समान थीं, उस पुरुष को देखकर सम्पूर्ण जगत् विषण्ण अर्थात् विषाद युक्त होगया, इस विषाद के कारणही से उस को विष कहने लग गये ॥

विषकी योन्यादि संख्या ।

जङ्गमस्थावरायांतद्योनौब्रह्मान्ययोजयत् तदम्बुसम्भवंतस्माद्द्विविधंपावकोपमम् अष्टवेगंदशगुणंचतुर्विंशत्युपक्रमम् ।

अर्थ—ब्रह्माने इस विष को स्थावर और जंगम दो योनियों में स्थापित कर दिया इसी हेतु से अग्निके समान तीक्ष्ण यह जलसे उत्पन्न हुआ विषदो प्रकारका होता है । विष में आठ वेग, दस गुण और चौवीस प्रकारकी चिकित्सा होती है ।

तद्वर्षास्वम्बुयोनित्वात्सक्लेदंगुडवद्गतम् सर्पत्यम्बुधरापायेतदगस्त्योहिनस्तिच । प्रयातिमन्दवीर्यत्वंविषंतस्माद्घनात्यये ।

अर्थ—विषकी योनि जल है इससे यह वर्षाऋतु में क्लेदताको प्राप्त होकर गुड़की तरह पतला पड़जाता है और पृथ्वी में वहने लगता है तथा वर्षा के अन्त में जब अगस्त्य का उदय होता है तब विष नष्ट होजाता है और इसी हेतु से वर्षा के पीछे बिष मन्दवीर्य पडजाता है ।

जंगम विषकी योनि ।

सर्पाःकीटोन्दुरालूतावृश्चिकागृहगोधिकाः जलौकामत्स्यमण्डूकाःशलभाःसकृकण्टकाः । श्वसिंहव्याघ्रगोमायुतरक्षुनकुलादयः ॥ दंष्ट्रिणोयेविषंतेषांदंष्ट्रोत्थंजगङ्गमंमतम् ।

अर्थ—सर्प, कीट, चूहा, मकडी, वीछू, छपकली, जोक, मछली, मेंडक, चींटी, किर

केंटा, कुत्ता, सिंह, व्याघ्र, सिरकटा, तरक्षु और नकुल आदि ये दंष्ट्री अर्थात् दांत वाले होते हैं इनकी डाढ़ लगने से जो विष उत्पन्न होता है उसे जंगम विष कहते हैं।

स्थावर विषका वर्णन ।

मुस्तकंपौष्करंक्रौञ्चंवत्सनाभंवलाहकम् । कर्कटंकालकूटेन्द्रकरवीरकसंज्ञकम् । गालवेन्द्रायुधंतैलंमेढ्यकंकुशपुष्पकम् ॥ रोहिषंपुण्डरीकाक्षंलाङ्गलव्यञ्जनाभकम् । सङ्कोचमर्कटंशृङ्गिविषहालाहलंतथा ॥ एवमादीनिचान्यानिमूलजानिस्थिराणिच ।

अर्थ—मुस्तक, पौष्कर, क्रौंच, वत्सनाभ, वलाहक, कर्कट, कालकूटेन्द्र, करवीरक, गालव, इन्द्रायुध, तेल, मेढ्यक, कुशपुष्पक, रोहिष, पुण्डरीकाक्ष, लांगलवी, अंजनाभक, संकोच, मर्कट, शृंगीविष, हालाहल तथा ऐसेही और भी मूलज और धातुज विष होते हैं।

गरविष का वर्णन ।

गरसंयोगजंचान्यद्गरसंज्ञकम् ॥ कालान्तरविपाकित्वान्नतदाशुहरत्यसून् ।

अर्थ—विष के संयोगसे उत्पन्न हुआ संयोगी विष होता है इसे गरविष कहते हैं यह रोगों को उत्पन्न करता है इसका विपाक वहुत दिन के पीछे होता है इससे वह प्राणों को शीघ्र नष्ट नहीं करता है।

जंगम विष के कार्य ।

निद्रांतन्द्रांक्लमंदाहंसपाकंलोमहर्षणम् ॥ शोफंचैवातिसारञ्चजनयेज्जंगमंविषम् ।

अर्थ—निद्रा, तन्द्रा, क्लान्ति, दाह, पाक, रोमहर्षण, सूजन और अतिसार ये सब जंगम विष के कर्म हैं।

स्थावर विष के कर्म ।

स्थावरंतुज्वरंहिक्कांदन्तहर्षंगलग्रहम् ॥ फेनवम्यरुचिश्वासमूर्छाश्चजनयेद्विषम् ।

अर्थ—ज्वर, हिक्का, दन्तहर्ष, गलग्रह, झाग, वमन, अरुचि, श्वास, और मूर्च्छा। इनको स्थावरविष उत्पन्न करता है।

दोनोंविषोंका परस्पर विरोध ।

जंगमंस्यादधोभागमूर्द्ध्वभागंतुमूलजम् ॥ तस्माद्दंष्ट्रिविषंमौलंहन्तिमौलंचदंष्ट्रिजम् ।

अर्थ—जंगमविष अधोगामी होता है और स्थावर विष ऊर्ध्वगामी होता है, इस से जंगम विष स्थावरविष को और स्थावर विष जंगमविषको मारता है।

सातोंवेगोंके कर्म ।

तृण्मोहदन्तहर्षप्रसेकवमथुक्लमाभवन्त्याद्यौवेगेरसप्रदोषादसृक्प्रदोषात्द्वितीयेच॥ वैवर्ण्यभ्रमवेपथुमूर्च्छाजृम्भांगचिमिचिमातमकाः॥ दुष्टपिशितात्तृतीयमण्डलकण्डूश्वयथुकोठाः । वातादिजाश्चतुर्थेछर्दिर्दाहांगशूलमूर्च्छाद्याः ॥ नीलादीनांतमसश्चदर्शनंपञ्चमवेगेन । षष्ठेहिक्काभंगःस्कन्धस्यतुसप्तमेऽष्टमेमरणंनृणां॥ चतुष्पदादीनांस्याच्चतुर्विधःपक्षिणांत्रिविधाः ।

अर्थ—विष के प्रथम वेग में रसधातु के दूषित होने से तृषा, मोह, दन्तहर्ष, लालास्राव, वमन और क्लान्ति होती है। दूसरे वेग में रक्त के दूषित होने से विवर्णता,

भ्रम, कंपन, मूर्च्छा, जंभाई, अंगचिमचिम और तमकश्वास होता है। तीसरे वेग में मांस के दूषित होनेसे देह में चकत्ते, खुजली सूजन और पित्ती होती है। चौथे वेग में वातादि दोषों के दूषित होने से वमन, दाह, अंगशूल, और मूर्च्छादिक होते हैं। पांचवें वेग में नीलादि तथा अंधकार दिखाई दैनें लगते हैं। छटे वेग में हिचकी, सातवें में स्कन्धभंग और आठवें में मनुष्यों की मृत्यु होती है।

इसीतरह चौपायों के विषके चार वेग होते हैं और पक्षियोंके तीनही वेग होतेहैं।

चौपायोंकेवेगकावर्णन।

सीदत्याद्येभ्रमतिचचतुष्पादोवेपतेततः शूनः॥ मन्दाहारश्चततोम्रियतेश्वासेन हिचतुर्थे।

अर्थ—चौपाया विष के प्रथम वेग में शिथिल पड़जाता है, दूसरे में चक्कर खाता है और कांपने लगता है, तीसरे में सूजन और मन्दाहार होता है और चौथेमें श्वास द्वारा प्राणपरित्याग करदेता है।

पक्षियोंके विषवेग।

ध्यायतिविहगःप्रथमेवेगेप्रभ्राम्यतिद्वितीयेतु॥ स्रस्तांगश्चतृतीयेविषवेगेयातिपञ्चत्वम्।

अर्थ—पक्षी विषके प्रथमवेग में ध्यानावस्थितसा होजाता है, दूसरे में भ्रमताहुआ शिथिल होजाताहै और तीसरे में मरजाताहै।

विषके दशगुण।

लघुरूक्षमाशुविशदंव्यवायितीक्ष्णंविकासिसूक्ष्मञ्च॥ उष्णमनिर्देश्यरसंदशगुणमुक्तंविषंतज्ज्ञैः।

अर्थ—लघुता, रूक्षता, आशुकारिता, विशदता, व्यवायिता, तीक्ष्णता, विकासित्व, सूक्ष्मता, उष्णता और अनिर्देश्यरसत्व ये दस विष के गुण हैं।

ऊपरहुयेगुणोंकेकर्म।

रौक्ष्याद्वातमशैत्यात्पित्तंसौक्ष्म्यादसृक्प्रकोपयति॥ कफमव्यक्तरसत्वादन्नरसांश्चानुवर्त्ततेशीघ्रम्। शीघ्रंव्यवायिभावादाशुव्याप्नोतिकेवलंदेहं। तीक्ष्णत्वान्मर्मप्राणघ्नंतद्विकासित्वात्॥ दुरुपक्रमंलघुत्वाद्वैशद्यात्स्यादसक्तगतिदोषम्।

अर्थ—विष रूक्ष होने के कारण वात को, उष्ण होने के कारण पित्तको और सूक्ष्म होनेके कारण रक्तको प्रकुपित करता है अव्यक्त रस होने से कफको प्रकुपित करता है। और शीघ्रही अन्नका अनुगामी होता है। आशुकारी और व्यवायि होने के कारण सम्पूर्ण देह में शीघ्रही फैलजाता है। तीक्ष्ण होने से मर्मों का और प्राणों का नाशक है। विकासी होने से दुश्चिकित्स्य और लघु तथा विशद होने से इसकी गति अनिवार्य होती है।

विष को त्रिदोषानुगामित्व।

**दोषस्थानप्रकृतीःप्राप्यान्यतमंह्युदीरयति॥ स्याद्वातिकस्यवातस्थानेकफपित्तलिंगमीषत्तु। तृण्मूर्च्छारुचिमोहगलग्रहछर्दिफेनादिपित्ताशयिस्थितंपैत्तिकस्या कफवातयोर्विषंतद्वत्। तृट्कासज्वरवम

थुक्लमदाहतमोऽतिसारादि ॥ कफदेश गतश्चकफस्यदर्शयेद्वातपित्तयोश्चैतत् । लिंगंश्वासगलग्रहकण्डूलालावमथ्वादि॥ दूषीविषंतुशोणितदुष्टकिटिभकोठादिरक्त लिंगश्च । विषमेकैकंदोषंसन्दूष्यहरत्य सून्नेत्रम् ॥

अर्थ—विष दोष के स्थान और प्रकृति को प्राप्त करके एक दोष को उदीर्ण कर देता है अर्थात् जौनसा दोष अधिक होता है उसको स्थान और प्रकृति को प्राप्तकर के उसी दोष को वढाता है जैसे वात प्रकृति वाले मनुष्यके वातस्थान में जाकर वातज तृष्णा, मूर्च्छा, अरुचि, मोह, गलग्रह छर्दि और फेनादि उत्पन्न करता है और उस समय कफपित्त के लक्षण कम पाये जाते हैं । पित्त प्रकृति वाले के पित्ताशय में जाकर पित्तज तृषा, खांशी, ज्वर, वमन क्लान्ति, दाह, अन्धकार और अतिसारादि उत्पन्न होते हैं तथा कफ वात के लक्षण कम पाये जाते हैं । इसी तरह विषके कफ स्थान में जाने से कफजन्य श्वास, गलग्रह, कण्डू, लालास्राव और वमथु आदि होते हैं तथा वातपित्तके लक्षण कम पाये जाते हैं । तथा दूषीविष रक्तको दूषित कर के किटिभ, पित्ती आदि रक्तज उपद्रवों को करता है । इस तरह विष एक एक दोष को दूषित करके प्राणों को नष्ट करदेता है ॥

विष से मरने के हेतु ।

क्षरतिविषतेजसास्रकतत्खानिनिरुध्यमारयतिजन्तून् । पीतंमृतस्यहृदिदष्टाविद्धयोर्दंशदेशेस्यात् ॥

अर्थ—विष के तेजसे रक्त क्षरित होकर अर्थात् झड़कर रोम के छिद्रों को रोककर मनुष्यों को मार डालता है । पान किया हुआ विष मृतक के हृदय में स्थित होजाता है और काटे हुए वा विषसे बुझे तीर आदि के घायल हुए मनुष्य के विष दंश स्थान में स्थित होता है ।

विषद्वारा मृत्युलक्षण ।

नीलौष्ठदन्तशैथिल्यकेशपतनांगभंगविक्षेपाः । शिशिरैर्नलोमहर्षोनाभिहतेदण्डराजीच ॥ क्षतजंक्षताच्चनायात्युक्तान्येतानिमरणलिंगानि ।

अर्थ—ओष्टों पर नीलपन, दांतों में शिथिलता, वालों का गिरना, अंगभंग, अंगविक्षेप, शीतल वस्तु से रोमाञ्च न होना लकडी से चोट मारने पर शरीर पर दाग न पड़ना तथा घाव से रुधिर न निकलना ये सब विष द्वारा मरने के लक्षण हैं ।

विष में चिकित्सा भेद ।

एभ्योऽन्यथाचिकित्स्यास्तेषांश्चोपक्रमान्शृणुमे ॥ मन्त्रारिष्टोत्कर्त्तननिष्पीडनचूषणाग्निपरिषेकाः । अवगाहनरक्तमोक्षणवमनविरेकोपधानानि । हृदयावरणाञ्जननस्यधूमलेहौषधप्रशमनानि।प्रतिसारणंप्रतिविषंसंज्ञासंस्थापनंलेपः ॥ मृतसञ्जीवनमेवचविंशतिरेतेचतुर्भिरभ्यधिकाः स्युरुपक्रमायथायत्रयोज्याःशृणुतथातान्

अर्थ—ऊपर कहे हुए लक्षणों से विपरीत

लक्षण वाला चिकित्साके योग्य होता है अवहम उनकी चिकित्सा का वर्णन करते हैं।

मन्त्र, अरिष्ट (दष्ट स्थान का बांधना) उत्कर्त्तन (दष्ट स्थानका किसी पैनी छुरी आदि से कतरना वा खुरचना), निष्पीड़न (भींचकर मवाद निकालना), चूषण (दंश स्थान को चूसकर थूकदेना), अग्निकर्म (जलादेना), परिषेक, अवगाहन, रक्तमोक्षण, वमन विरेचन, उपधान हृदयावरण, अंजन, नस्य, धूम, अवलेह, औषध, प्रशमन, प्रतिसारण, प्रतिविष, संज्ञा स्थापन, लेप और मृत संजीवन। ये चौवीस प्रकारकी चिकित्सा हैं।

जहां जहां ऊपर कही हुई चिकित्साओं का प्रयोग किया जाता है उसका वर्णन करते हैं।

विष में बन्धनादि विधि।

दंशात्तुविषंदष्टस्यानिसृतंवेणिकाम्भिषकूबद्धा। निष्पीडयेद्भृशंदंशमुद्धरेन्मर्मवर्जवातंदंशंवाचूषेन्मुखेनयवचूर्णपांशुपूर्णेनप्रच्छन्नवेधजलौकःशृंगैःस्राव्यंततोरक्तम्

अर्थ—काठे हुए मनुष्यके दंश स्थान से जो विष न निकलाहो और यदि वह दंश हाथ वा पांव ऐसी जगह में हो जो बंधने के योग्य हो तौ जहां तक विष फैल गया हो वहांतक ऊपर और नीचे वेणिका नामक बंधन से बांधकर चारों ओर से खूब भींचे और फिर दंशस्थानकोकिसीपैनी छुरीसे खुरच डालै परंतु मर्मस्थानपर ऐसा न करै। जो वह दंशस्थान बांधने वा काटने के योग्य न हो तौ मुख में जौ का चून वा धूल भरकर दंशस्थान को चूसै, फिर उसे चीरकर पछना लगाकर वा वेधकर वा सींगियाजोक वा सींगी लगाकर रुधिर को निकालडालै।

विषदूषितरक्तका परिणाम।

रक्तेविषप्रदुष्टेदुष्येत्प्रकृतिःततस्त्यजेत्प्राणान् ॥ तस्मात्प्रघर्षणैरसृग्मवर्तमानं प्रवर्त्यंस्यात्।

अर्थ—विषसे रक्त के दूषित होने पर प्रकृति दूषित होजाती है और प्रकृति के दूषित होनेपर प्राणजाते रहतेहैं, अतएव जो ऊपर कहीहुई रीतों से भी रक्त न निकला हो तौ निम्नलिखित घर्षणों का प्रतोग करने से रक्त प्रवृत होजाता है अर्थात् निकलने लगता है।

घर्षणप्रयोग।

त्रिकटुगृहधूमरजनीपञ्चलवणाःसवार्ताकाः ॥ घर्षणमतिप्रवृत्तेवटादिभिःशीतलैर्लेपः।

अर्थ—त्रिकुटा, घरकाधूमसा, हलदी, पांचो नमक और बेंगन इनसबको पीसकर काटने की जगहपर धीरे २ रिगड़ने से वन्द हुआ रुधिर वहने लगता है, जो रुधिर अत्यन्त वहने लगे तौ वटादि शीतल वृक्षों की छाल को पीसकर लेप करदेवै॥

विषके लैलने में रक्तकी प्रधानता।

रक्तंहिविषाधानंवायुरिवाग्नेःप्रदेहमेकैस्तत् ॥ शीतैःस्कन्दतितस्मिन्स्कन्नेव्ययं यातिविषवेगः।

अर्थ—रक्तही विषका आधान है जैसे पवन के लगने से अग्नि बढ़तीहै इसीतरह रुधिर के संसर्ग से विष बढ़ता है। शीतल लेप से रक्त के जमजानेपर विष फैल नहीं सक्ता है। कारण यह है कि रुधिर दिन रात सब देह में घूमता है तौ विष भी उस के साथ में फैलता चलाजाता है और जब रुधिरही बहनेसे बन्द होगया तौ विष कैसे फैलसक्ता है।

विषवेगकेलक्षण।

विषवेगान्मदमूर्च्छाविषादहृदयद्रवाःप्रवर्तन्ते॥ शीतैर्निर्वर्तयेत्तान्वीज्यैश्चलोमहर्षःस्यात्।

अर्थ—विष के वेग से मद, मूर्च्छा, विषाद और हृदय में कम्पन होती हैं, शीतल उपचारसे ये उपद्रव शान्त होजाते हैं तथा पंखे की हवा करने से रोमाञ्च भी खड़े होजाते हैं।

तरुरिवमूलच्छेदाद्दंशच्छेदान्नवृद्धिमुपयातिविषम्॥ आचूषणमानयनञ्जलस्यसेतुर्यथारिष्टा। त्वङ्मांसगतोदाहोदहतिविषंस्रावणंहरतिरक्तात्॥

अर्थ—जड़ के काटने से जैसे वृक्ष नहीं बढ़ता है, उसीतरह दंशस्थान के छेदन करनेसे विष नहीं बढ़ने पाता है। दंशस्थान के चूसने से विष निकलजाता है और जैसे जलपर पुल बांधने से जल का वेग रुकजाता है उसी तरह दंशस्थान पर ऊपर नीचे जोर से बांध देनेपर विषका वेग रुकजाता है। जब विष त्वचा और मांस में पहुंच जाता है उस समय अग्निकर्म से दंशस्थान को दग्ध करना हित है। जब विष रुधिर में पहुंच जाता है उस समय रुधिर को निकाल देने से विष क्षीण होताहै।

प्रथमद्वितीयवेगमेंचिकित्सा।

पीतंवमनैःसद्योहरेद्विरेकैर्द्वितीयेतु। आदौहृदयंरक्ष्यंतस्यावरणंपिबेद्यथालाभम्॥ मज्जानंमधुघृतगैरिकमथगोमयरसंवा। तद्धंसपक्षमथवाकाकंनिष्पीड्यतद्रसंवमनम्॥ छागादीनांवासृक्भस्ममृदंवापिबेदाशु॥

अर्थ—पिया हुआ विष वमन कराने से तत्काल निकलजाता है। द्वितीय वेग में पहुंचने पर विरेचन कराना उत्तमहै। पीत विष में सब से पहिले हृदयकी रक्षा करना उचित है। विष द्वारा हृदयका आवरण होनेपर मज्जा, शहत, घी, गेरू, गोवरका रस, हंस वा कौए का मांसरस पान कराके वमन करावै। अथवा बकरे का रुधिर अथवा मिट्टी वा भस्म इन में से जो जो मिलसकें शीघ्रपान करावै (किसी२ पुस्तक में 'तद्धंहपक्षादि' की जगह 'इक्षुसुपक्कमथवाकाकंनिष्पीड्यतद्रसंवलम्' पाठ भी है)

तृतीयादि वेगों में चिकित्सा।

क्षारागदस्तृतीयेशोफहरैर्लेखनंसमध्वम्बु॥ गोमयरसश्चतुर्थेवेगेसकपित्थमधुसर्पिः। काकाण्डशिरीषाभ्यांस्वरसेनाऽऽश्च्योतनमञ्जनेनस्यम्॥ स्यात्पञ्चमेऽथषष्ठेसंज्ञायाःस्थापनंकार्यम्। गापित्तयुतारजनीमञ्जिष्ठामरिचपिप्पलीपानम्॥

अर्थ—विषके तीसरे वेग में क्षार गद, शोफनाशक औषध और मधु मिश्रित जल पान कराके वमन करावै। चौथे वेग में गोवर के रस मे कैथ, शहत और घी मिलाकर देवै। पांचवें वेग में कृष्णशिम्वी और सिरस का रस निकालकर उसे आंख में टपकावै, उसी का अंजन लगावै और उस की नस्य देवै। और छटे वेग में होश कराने वाली औषधों का पान कराना हित है। जैसे गौके पित्त में मिलाकर हलदी, मजीठ, कालीमिरच और पीपल का चूर्ण पान करावै, इस से चैतन्यता होती है।

विषपानंदष्टानांविषपीतेदंशनंवान्ते। शिखिपित्तार्द्धयुतंस्यात्पलाशवीजमगदे मृतेषुमतः॥ वार्ताकुफाणितागारधूमगो पित्तनिम्बंवा। गोपित्तयुतैर्गुलिकाःसुर साग्रन्थिद्विरजनीमधुककुष्टैः॥ शस्तामृते नतुशिरीषपुष्यकाकाण्डकरसैर्वा। का काण्डसुरसगवाच्यापुनर्नवावायसीशि रीषफलैः॥ उद्बन्धविषजलमृतेलेपौषध नस्यपानानि।

अर्थ—जब और उपायों से कुछ फल न हो तब काटे-हुए रोगियों को विषपान करावै और जिसने विषपान किया है उसे सर्प से कटवावै।

जो रोगी मुर्दे के सदृश होजाय उस को मोरका पित्ता एक भाग, ढाकके वीज दो भाग मिलाकर देवै। तथा वार्त्ताकु, गुडकी राव, ग्रहधूम, गौका पित्ता और नीम इन का प्रयोग करै अथवा गौके पित्ते में तुलसी, वच, दोनों हलदी, मुलहटी और कूठ मिलाकर गोली वनाकर देवै। अथवा सिरसका फूल, काकशिम्वीका रस इन को गौके पित्ते में मिलाकर देवै अथवा जो मनुष्य उद्वन्धन, विष और जल से मृतप्राय होजाय उसे काकसिम्वी, तुलसी, इन्द्रायण, सांठ, मकोय, और सिरस के वीज इनका लेप औषध और पान में प्रयोग करै।

मृत संजीवनी वटिका।

स्पृकाप्लवथौणेयककाच्छीशैलेयरोचना स्तगरम्॥ ध्यामककुंकुममांसीसुरसाग्रै लालकुष्ठघनाः। वृहतीशिरीषपुष्पंश्रीवे ष्टकपद्मचाराटिविशालाः। सुरदारुपद्म केशरसावरेकमनःशिलाकौन्त्यः। जात्य र्कपुष्परसरजनीद्वयहिंगुपिप्पलीलाक्षाः॥ जलमुद्गपर्णिचन्दनमधुकमदनसिंधुवाराश्च शम्पाकलोध्रमयूरकगन्धफलीनाकुलीविड ङ्गञ्च॥ पुष्येसंभृत्यसमंपिष्ट्वागुलिका विधेयाःस्युः। सर्वविषघ्नोजयकृद्विषमृ तसञ्जीवनोज्वरनिहन्ता॥ पेयविलेपन धारणधूमश्रवणैर्गृहस्थश्च। भूतविषज न्त्वलक्ष्मीकार्मणमन्त्र्याग्न्यशल्यरीन्दो षान्॥ दुःस्वप्नस्त्रीदोषानकालमरणाम्बु चौरभयम्। धनधान्यकार्यसिद्धिःश्रीपु ष्ट्यायुर्विवर्द्धनोधन्यः॥ मृतसञ्जीवनए षगागमृताद्ब्रह्मणाविहितः।

अर्थ—स्पृक्का (असवरग) केवटीमोथा, थूनेर, काच्छी (सौराष्ट्र देशकी मिट्टी) शिलापुष्प, गोरोचन, तगर, गन्धतृण, कुंकुम, जटामांसी, तुलसीकी मंजरी, इलायची, हरि

ताल, कूठ, मोथा, वडीकटेरी, सिरस के फूल, श्रीयेष्टक, पद्मचारिटी (पद्मचारिणी, अथवा पद्म = कमल, चारिटी = भूयआंवला) , इन्द्रायण की जड, देवदारु, पद्मकेशर, लोध, मनसिल, रेणुका, जाती के फूलका रस, आके के पुष्पका रस दोनों हलदी, हींग, पीपल, लाख,नेत्रवाला,मुद्गपर्णी, चन्दन, मुलहटी, मेनफल, संभालू, अमलतास, लोध, ओंगा, प्रियंगु, रास्ना, वायविडंग, इन सबको समान २ पुष्यनक्षत्र में लाकर गोली वना लेवै । इन गोलियों को पीने, लेप करने, धारण करने और धूमपान करने के प्रयोग में लाने से सम्पूर्ण प्रकार के विषों को दूर करके जय श्री को वढाती हैं और ज्वर को नष्ट करती हैं । इस औषध को घर में रखने से भूत, विषैलेजन्तु, अलक्ष्मी, कार्मण, मन्त्र, अग्नि, अशनि, शत्रु, दुःस्वप्न, स्त्री दोष, अकालमरण, जलभय और चोरभय,दूर होजाते हैं । इसके सेवन से धन, धान्य, कार्यासिद्धि,श्री पुष्टि और आयुवृद्धि होती है । यह औषध धन्य हैं । ब्रह्माने इस औषध को अमृत के उत्पन्न होने से पहिले निर्माण किया था ।

मन्त्रैर्धमनीबन्धावमार्जनंकार्य्यमात्मरक्षा च ॥ दोषस्यविषंयस्यस्थानेस्यात्तंजयेत् पूर्वम् । वातस्थानेस्वेदोदध्नानतकुष्ठेक ल्कपानश्च ॥ घृतमधुपयोऽम्बुपानावगा हसेकाश्चपित्तस्थे । क्षारागदःकफस्था नगतेस्वेदस्तथाशिरावेधः ॥ दूषीविषेऽ थरक्तास्थितेशिराकर्मपञ्चविधम् । भेषजम् एवंकल्प्यंभिषग्विदासर्वदालक्ष्यंसर्वम् ॥ स्थानजयेनचपूर्वंस्थानस्थस्याविरुद्धश्च ।

अर्थ—दंश स्थानके ऊपर नीचे धमनी को बांधकर मन्त्रद्वारा मार्जन और आत्म रक्षा करै । विष जिस दोष के स्थान में हो पहिलै उसकी चिकित्सा करै । यदि विष वातस्थान में हो तौ पसीने देकर दही के साथ तगर और कूठ का कल्क पान करावै । जो विष पित्तस्थान में हो तौ घृत, मधु, दुग्ध और जलका पीने तथा स्नान करने में प्रयोग करै । विषके कफस्थान में जाने-पर क्षारागद, स्वेदन तथा शिराव्यध करै । दूषी विषके रक्तस्थान में पहुंचने पर पांच प्रकारका शिराव्यध करना चाहिये । इस तरह सम्पूर्ण प्रकार का पूर्ण विचार करके औषध दैना चाहिये । प्रथम विषके दोष स्थान को विजय करै परन्तु स्थानके विरुद्ध चिकित्सा करना ठीक नहीं है ।

विषदूषितकफमार्गःस्रोतः संरोधरुद्धवा युश्च ॥ मृतइवचेन्मर्त्यःस्यादसाध्यलिंङ्गै र्विहीनश्च । चर्मकषायाःकल्कंविल्वसमं मूर्ध्निकाकपदमस्य ॥ कृत्वाकुर्य्यात्कट भींकटुकोटफलाप्रधमनञ्च । छागगव्यमा हिषाविककौक्कुटाजमांसम् । दद्यात्का कपदोपरिमत्तेविषेणैवसहसा ॥ घ्राणा क्षिकर्णजिह्वाकण्ठनिरोधेषुकर्मनस्तः ॥ स्यात्वार्त्ताकुवीजपूरज्योतिष्मत्यादिभिः पिष्टैः । दारुव्योषहरिद्राकरवीरकरञ्जसु रसैस्तु ॥ अञ्जनमक्ष्युपरोधेकर्त्तव्यंवस्त मूत्रपिष्टैस्तु ॥

अर्थ—विष के कारण कफका मार्ग दूषित होजाता है और स्रोत रुकजाते हैं इस से वायु के रुकजाने के कारण मनुष्य मृतक के समान होजाता है यदि इसदशा में उस के असाध्य लक्षण न हों तौ ऐसे रोगी के मस्तक पर कौए के पद के समान चिन्ह कर के तोलेभर चर्मकषाको पीसकर लेपकर देना चाहिये तथा नासिका द्वारा कटभी, कुटकी और कायफल का प्रधमन देवै। विष के द्वारा सहसा मत्त होनेपर पूर्ववत् मस्तक पर काकपद का चिन्ह कर के वकरा, गौ, भैंस, भेड़ और मुर्गे का मांस रखदेवै। नाक, आंख, कान, जिह्वा और कंठ के रुकने पर वेंगन, विजौरा, और मालकांगनी इनके रसकी नस्यदेवै। आंखों के मिचने पर दोनों हलदी, त्रिकुटा, कनेर, कंजा और तुलसी इनको वकरे के मूत्र में पीसकर आंखों में आंजे।

अगदगंध हस्ती।

श्वेतांवचांविडङ्गंहिंग्वमृतांकुष्ठसैन्धवेलशुनम्। सर्षपकापित्थमध्यंटुण्टूककरञ्जवीजानि। वृहतीशिरीषपुष्पंद्वेरजनीवंशलोचनश्चसमम्। पिष्ट्वाह्यजस्यमूत्रेणगोऽश्वपित्तेनसप्तकृत्वः॥ व्यत्यासभावितोऽयंनिहन्तिशिरसिस्थितंविषक्षिप्रम्। सर्वज्वरभूतग्रहविसूचिकाजीर्णमूर्च्छार्त्ती॥ उन्मादापस्मारौकाचपटलनीलिकाशिरोदोषान्। क्षयदौर्वल्यमदात्ययपाण्डुगदांश्चाञ्जनात्तथामोहान्॥ लेपाद्दिग्धक्षतलीढदष्टविषपीतविषघाती। अर्शःस्वारुद्वेषुचगुदलेपोयोनिलेपनंस्त्रीणाम्॥ मूढगर्भेदुष्टललाटलेपःप्रतिश्याये। दद्रुकण्डूकिटिभेकुष्ठश्वित्रेषुचविचर्चिकादिषु लेपः॥ गजइवतरून्निगदान्निहन्त्यगदगन्धहस्त्येषः।

अर्थ—सफेद कोयल, वच, वायविडंग, हींग, गिलोय, कूठ, सेंधानमक, लहसन, सरसों, कैथ का गूदा, श्योनाक, कंजा के वीज, वड़ीकटेरी, सिरसके फूल, दोनोंहलदी, वंशलोचन, इन सब को समानभाग लेकर वकरे के मूत्र में पीसडालै फिर गौ और घोड़े के पित्त की सात २ भावना देकर इसका सिरपर लेप करने से विषरोग को तत्काल दूर करदेती है। तथा सर्वज्वर, भूतग्रह, विसूचिका, अजीर्ण, मूर्च्छा, अरति, उन्माद, अपस्मार, काच, पटल, नीलिका, शिरोरोग, क्षय, दुर्बलता, मदात्यय, पाण्डुरोग और मोह ये अंजन लगाने से दूर होजाते हैं। इसका लेप करने से दिग्ध, क्षत, लीढ दष्टविष और पीतविष नष्ट होजाते हैं। अर्श, गुदा, स्त्रियों की योनि, दुष्ट मूढ़गर्भ, प्रतिश्याय में ललाटपर तथा दाद, खुजली, किटिभ, कुष्ठ, श्वित्रकुष्ठ और विचर्चिका आदि पर लेप कियाजाता है यह अगदगंध हस्ती ऊपर कहेहुए रोगों को ऐसे उखाड़कर फेंकदेती है जैसे हाथी वृक्षों को उखाड़कर फेंकदेता है।

महागंधहस्ती।

पत्रागुरुमुस्तैलानिर्यासाःपञ्चचन्दनंस्पृका॥ त्वङ्नलदोत्पलवालकहरेणुको

शीरक्न्यनखाः। सुरदारुकनककुंकुमध्यामककुष्ठप्रियङ्गवस्तगरम् ॥ पञ्चाङ्गानिशिरीषाद्व्योषैलामनःशिलाजाज्यः । श्वेतकटभीकरञ्जौरक्षोघ्नीसिन्धुकारिकारजनी ॥ सुरसरसाञ्जनगैरिकमञ्जिष्ठानिम्बुनिर्यासाः। वंशत्वगश्वगन्धाहिंगुदधित्थाम्लवेतसंलाक्षा॥ मधुमधुकसोमराजीवचारुहारोचनाचगवाम्। अगदोऽयंवैश्रवणायाख्यातःत्र्यम्बुकेणषष्ट्यङ्गः ॥ अप्रतिहतप्रभावःख्यातोमहागन्धहस्तीति। पित्तेनगवांपोष्येगुलिकाःकार्य्यास्तुपुष्ययोगेन।पानाञ्जनप्रलेपैःप्रसाधयेत्सर्वकर्माणि।पैल्ल्यंकण्डूंतिमिरंराज्यन्धंकाचमर्बुदंपटलम्॥हन्तिसततंप्रयोगाद्धितामियपथ्याशिनांपुंसाम्। विषमज्वरानजीर्णंदद्रूंसविसूचिकांपामाम् ॥ कुष्ठंकिटिभंश्वित्रंत्रिचर्चिकांचोपहन्तिनृणाम्। विषंमूषिकलूतानांसर्वेषांपन्नगानाञ्च ॥ आशुविषंनाशयतिसगूलमथकन्दजंसर्वम्। एतेनलिप्तगात्रःसर्पात्गृह्णातभक्तयेच्चविषम् ॥ कालातीतोऽपिनरोजीवतिकिञ्चिन्निरातङ्कः। आरुद्धेगुदलेपोयोनिलेपश्चमूढगर्भाणाम्। मूर्द्धार्तिपुचललाटेप्रलेपमाहुःप्रधानतमम् ॥ भेरीमृदङ्गपटहाश्छत्राण्यमुनातथाध्वजपताकाः ॥ लिप्तानिविषनिरस्त्यैप्रध्वनयेद्दर्शयेन्मतिमान्। यत्रचसन्निहितोऽयंनतत्रबालग्रहानखार्खोटाः ॥ नचकार्मणवेतालावहन्तिनाथर्वणामन्त्राः सर्वग्रहानतत्रप्रभवन्तिनचाग्निशस्त्रनृपचौराः ॥ लक्ष्मीश्वतत्रभजतेयत्रमहागन्धहस्त्यस्ति। पिष्यमाणइमञ्चात्रासिद्धंमन्त्रमुदीरयेत् ॥ ममामाताजयानामाविजयोनाममेपिता। सोऽहंजयोजयापुत्रोविजयोऽथजयामिच ॥ नमःपुरुषसिंहायविष्णवेविश्वकर्मणे। सनातनायकृष्णायभवायविभवायच ॥ तेजोवृषाकपेसाक्षात्तेजोब्रह्मेन्द्रयोर्यमे। यथाहंनाभिजानामिवासुदेवपराजयम् ॥ मातुश्चपाणिग्रहणंसमुद्रस्यचशोषणम्। अनेनसत्यवाक्येनसिध्यतामगदोह्ययम् ॥ हिलिमिलिसंस्पृष्टेरक्ष सर्वभेषजेतुमेस्वाहा ॥

अर्थ—तेजपात, अगर, मोथा, इलायची, पांच प्रकार के निर्यास (राल, गूगल, अफीम सिल्हक और लोबान) चन्दन, असवरग, दालचीनी, जटामांसी, नीलकमल, नेत्रवाला, हरेणुका, खस, वननखी, देवदारु, नागकेसर, कुंकुम, गंधतृण, कूठ, प्रियंगु, तगर, सिरस के फल, फूल, पत्ते जड़ और छाल, त्रिकुटा, हरिताल, मनसिल, कालाजीरा, सफेद कोयल, कटभी, दोप्रकार के कंजे, सरसों, सम्हालू, हलदी, तुलसी, रसौत, गेरू, मजीठ, नीम का निर्यास, बांसकीछाल, असगंध, हींग, कैथ अमलवेंत, लाख, महुआ, मुलहटी, सोंमराजी, वच, दूब, गोरोचन । यह षष्ट्यंग औषध त्र्यम्बक ने वैश्रवण से कही थी । इसका प्रभाव अनिवार्य है । इसे महागंधहस्ती कहते हैं । इन साठ औषधियों को इकट्ठी करके गौके पित्त के साथ पुष्य नक्षत्रमें गोलियां बनावै । इन गोलियोंका पान, अंजन और

लेप द्वारा प्रयोग करने से सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धि होती है हितकारी अल्प और पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्य के निरन्तर सेवन करने से यह औषध पैल्ल खुजली, तिमिर, रतोंध, काच, अर्बुद और पटलरोग दूर होजाते हैं। तथा विषमज्वर, अजीर्ण, दाद, विसूचिका, पामा, कोढ़, किटिभ, श्वित्रकुष्ठ और विचर्चिका जाते रहतेहैं। मूषकाविष, मकड़ी का विष, सब प्रकार के सर्पों का विष, मूलजविष और कन्दजविष सब शीघ्रही दूर होंजातेहैं। इस औषध का शरीर पर लेप करके मनुष्य सर्प को पकड़सक्ता है, विष खा सक्ता है। कालातीत मनुष्य भी इस औषध के धारण करनेसे निरातंक रहसक्ता है। इस औषध का आनाहरोग गुदरोग, मूढ़गर्भा स्त्री की योनि, मूर्द्धा, तथा अर्तिरोग में ललाट इन स्थानों पर लेप करना अत्यन्त उत्तम है। जो रोगी विष से मूर्च्छित होगया हो उस के कान पर भेरी, मृदंग और ढोलक पर इस औषध का लेप कर के बजावै। तथा इसी औषध का लेप करके छत्र, ध्वजा और पताका विषरोगी को दिखावै। जहां यह औषध होती है वहां वालग्रह, राक्षस कार्मण, वेताल, और अथर्वणोक्त मंत्र नही चल सकते हैं। सम्पूर्ण ग्रह, अग्नि, शस्त्र, राजा और चोर अपनी दुश्चेष्टा नहीं कर सकते हैं। जहां यह औषध होती है वहां लक्ष्मी निवास करती है। इस औषध को पीसते समय इस मंत्रका पाठ करना चाहिये, यथा-- "मम माता जया नाम विजयो नाम मे पिता। सोऽहं जयो जयापुत्रो विजयोऽथ जयामिच। नमः पुरुष सिंहाय विष्णुवे विश्वकर्म्मणे। सनातनाय कृष्णाय भवाय विभवायच। तेजो वृषाकपेः साक्षात् तेजो ब्रह्मेन्द्रयोर्यमे। यथाहं नाभि जानामि वासुदेव पराजयम्। मातुश्च पाणिग्रहणं समुद्रस्यच शोषणम्। अनेन सत्यवाक्येन सिध्यतामग दोऽध्ययम्। हिलिमिलि संस्पृष्टेरक्ष सर्वभेषजे तुभे स्वाहा „ ॥ यह सिद्ध मंत्र है।

बिषरोगनाशक अन्यप्रयोग।

ऋषभकजीवकभार्गीमधुकोत्पलधान्यकेसराजाज्यः ॥ ससितगिरिकोलमध्याः पेयाःश्वासज्वरादिहराः। हिंगुचकृष्णायुक्तंकपित्थरसमग्र्यूलवणंच। समधुसितेपातव्योज्वरहिक्काश्वासकाशघ्नैः ॥ लेहःकोलास्थ्यञ्जनलाजोत्पलमधुघृतैर्वेश्याम्। बृहतीद्वयाढकीपत्रधूमवर्त्तिस्तु हिक्काघ्नी ॥ शिखिवर्हबलाकास्थीनिसर्षपाश्चन्दनेचघृतयुक्तः। धूमोगृहशयनासनवस्त्रादिषुशस्यतेविषनुत ॥ घृतयुक्तेनतकुष्ठेभुजगपतिशिराःशिरीषपुष्पंच। धूमागदःस्मृतोऽयंसर्वविषघ्नःश्वयथुहृच्च जतुसेव्यपत्रगुग्गुलुभल्लातककुभपुष्पसर्जरसाः। श्वेताएवधूमउरगाखुकीटवस्त्र कृमिनुदग्र्यूः।

अर्थ—ऋषभक, जीवक, भाडंगी, मुलहटी, नीलकमल, धनिया, केसर, कालाजीरा, चीनी, गेरू, और वेर की गुठली की मींगी इन को पान करने से श्वास और ज्वरादिक दूर हो-

जाते हैं । हींग, पीपल, कैथका रस, संचल नमक इनका शहत और चीनी मिलाकर पान करने से ज्वर, हिचकी, श्वास और खांसी दूर होजाती है । वेरकीमींगी, रसौत, खील, कमल, इन को घृत और शहत मिलाकर सेवन करनेसे वमनवन्द होजातीहै । वडीकटेरी, छोटी कटेरी, अडहरकेपत्ते, इन को पीसकर वत्ती वनाकर धूमपान करै तो हिचकी वन्द होजाती है । मोर की पंख, वगुले की हड्डी, सफेद सरसों, रक्तचंदन इन को कूटकर घी मिलाकर धूनी देने से घर, शय्या, आसन और वस्त्रादिक का विष नष्ट होजाता है । तगर और कूठ को घी में सानकर, अथवा सर्पका फण और सिरसका फूल इन को एकत्र करके धूनी देवै । यह धूनी सम्पूर्ण विषरोग तथा सूजन को नष्ट करती है । लाख, खस, तेजपात, गूगल, भिलाया, अर्जुन का फूल, राल और सफेद कोयल इन सब को कूटकर इन की धूनी देने से सांप, चूहा, कीड़ा और वस्त्रके कीड़े दूर होजाते हैं ।

क्षारागद ।

तरुणपलाशक्षारस्रुतंपचेच्चूर्णितैःसहसमांशैः । लोहितमृद्रजनीद्वयशुक्लसुरसमञ्जरीमधुकैः ॥ लाक्षासैन्धवमांसीहरेणुहिंगुद्विशारिवाकुष्ठैः । सव्योषवाह्लिकैर्दर्विविलेपनाद्घट्टयेद्यावत् ॥ सर्पविषशोफगुल्मत्वग्दोषार्शोभगन्दरप्लीहघ्नः । शोषापस्मारक्रिमिभूतस्वरभेदपाण्डुगदान् ॥ मन्दाग्नित्वंकासंसोन्मादंनाशयेत्नृणामाशु । गुलिकाश्छायाशुष्ककोलसमाताःसमुपयुक्ता ।

अर्थ—नवीन पलाश के खार को जल में घोलकर छान लेवै उस जल में नीचे लिखे द्रव्य समान भागडालै, यथा—गेरू, दोनों हलदी, सफेद तुलसीकी मंजरी, मुलहटी, लाख, सेंधानमक, जटामांसी, हरेणु, हींग, दोनों प्रकार के सारिवा, कूठ, त्रिकुटा और हींग । इन सबको मिलाकर अग्निपर चढ़ादेवै । जबतक यह करछी से न लगै तबतक चलाता रहै । फिर इसकी तोले २ भरकी गोलियां बनाकर छाया में सुखाकर रखछोड़ै इन गोलियों के सेवन करने से सर्पविष वा सब प्रकार के विष, सूजन, गुल्म, त्वग्दोष, अर्श, भगन्दर, प्लीहा, शोष, अपस्मार, क्रिमिरोग, भूत, स्वरभंग, पांडुरोग, मन्दाग्नि, खांसी, और उन्माद शीघ्रही नष्ट होजाते हैं ।

विषपीतदष्टविद्धेष्वेतद्दिग्धेचवाच्यमुद्दिष्टम् ॥ सामान्यतःपृथक्त्वान्निर्देशमतःशृणु यथावत् ।

अर्थ—इसतरह से यहांपर जिसने विष पिया है, जिसको किसी विषैल जन्तु ने काटखाया है, जिसके विष का बुझाहुआ कोई अस्त्रशस्त्र लगा है तथा जो विष से दिग्धहैं ऐसे रोगियोंकी चिकित्सा सामान्य से वर्णन कीगई है अब पृथक् २ सबकी चिकित्सा वर्णन करते हैं ।

रिपुयुक्तेभ्योनृभ्यःस्वेभ्यःस्त्रीभ्योऽथवा

नृपतेः ॥ आहारविहारगतःतस्मात्प्रेष्या
नूपरीक्षेत ।

अर्थ—शत्रुता रखनेवाले राजाओं द्वारा और अपनी स्त्री द्वारा राजा के आहार विहार में विषका प्रयोग किया जाता है इससे प्रेष्य अर्थात् सेवकोंकी परीक्षा अच्छी तरह करनी चाहिये ।

विषदाताप्रेष्यकी परीक्षा ।

अत्यर्थशङ्कितःस्याद्बहुवागपिजल्पवाग्वि
गतलक्ष्मीः ॥ प्राप्तःप्रकृतिविकारंविषप्र
दातानरोज्ञेयः ।

अर्थ—जो मनुष्य अत्यन्त शंकितचित्त, स्वाभाविक बहुत बोलनेवाला भी जानबूझ कर कम बोलनेवाला, हत श्री तथा जिस की प्रकृति विकृत होगई हो ऐसे मनुष्य को विषदाता समझना चाहिये ।

अग्निद्वाराअन्नकीपरीक्षा ।

दृष्ट्वैवंनतसहसाभोज्यंकुर्य्यात्तदग्रमग्नौ
तु ॥ सविषंहिप्राप्यान्नंबहुन्विकारान्
भजत्यग्निः । शिखिबर्हविचित्रार्चिस्ती
क्ष्णाक्षमरूक्षकुणपधूमश्च ॥ स्फुटतिच
सशब्दमशब्दमेकावर्तोविहितार्चिरपि
स्यात् ।

अर्थ—ऊपरकहे हुए लक्षणों से युक्त सेवक को देखकर उस के लायेहुए वा उस के हाथ के बनाये हुए भोजनों को सहसा न खालेवै किन्तु उनकी अग्नि द्वारा परीक्षा करै । इस लायेहुए अन्न में से थोड़ासा अग्नि में डालकर देखै, यदि उस में विष मिलाहुआ है तौ अग्नि अनेक प्रकार के रंग बदलेगी । अग्नि की लोय वा शिखामें मोरपंख केसे अनेक रंग दिखाई देने लगेंगे और उस में से तीक्ष्ण, असहम, रूक्ष, और मुर्दे कीसी दुर्गन्धयुक्त धूंआं उठने लगेगा । इस में फट् २ शब्द होने लगेगा अथवा इसमें से लोय न उठेगी ।

पात्रस्थभोजनकीपरीक्षा ।

पात्रस्थंचविवर्णभोज्यंस्यान्मक्षिकाश्चमा
रयात । क्षामस्वरांश्चकाकान्कुर्य्याद्विर
जेच्चकोराक्षि ॥

अर्थ—विष मिलाहुआ भोजन पात्र में रखने पर विवर्ण होजाता है उसपर जो मक्खियां बैठती हैं वे मरजाती हैं उसको देखकर कौओं का स्वर क्षीण पड़जाता है और चकोरके नेत्रलाल पड़जाते हैं ।

विषयुक्तपेयद्रव्यकीपरीक्षा ।

पानेनीलाराजीवैवर्ण्यस्याश्चनेक्षतेछायां
पश्यति । विकृतामथवालवणाक्तेफेनमा
लास्यात् ॥

अर्थ—यदि जल वा किसी अन्य पीने के द्रव्य में विष मिला होता है तौ उस में नीली लकीरेंसी पड़जाती हैं,उसका रंग बिगड़जाता है उस में प्रतिविम्ब नहीं पड़ता है अथवा विकारयुक्त दिखाई देता है । तथा उस में नमक डालनेपर झाग उठने लगते हैं ।

विषयुक्त अन्नपानसेवनका फल ।

पानान्नयोःसविषयोःशिरसोगन्धेनरुक्ह
दिचमूर्च्छा । स्पर्शेनपाणिशोथःसुप्त्यंगु
लिदाहनखभेदाः ॥ मुखताल्वोष्ठचिमि

चिमाजिह्वाशूलवतीजडाविवर्णास्यात्। द्विजहर्षहनुस्तम्भास्यदाहलालागलविकाराः। आमाशयंप्रविष्टेवैवर्ण्यंस्वेदसदनगुत्क्लेदः॥ दृष्टिहृदयविरोधोविन्दुशतैश्चीयतेचांगम्। पक्वाशयंतुयातेमूर्च्छामदमोहदाहबलनाशाः॥ तन्द्राकार्श्यंचविषे पाण्डुत्वश्चोदरस्थेवास्यात्।

अर्थ—विषयुक्त पानान्नकी गंध से सिर में वेदना, हृदय में पीड़ा और मूर्च्छा होती है। उसको छू लेने से हाथों में सूजन, उंगलियों में शून्यता और दाह तथा नख-भेद होता है। इस को मुख में धारण करने से मुख तालु और ओष्ट में चिमचिमाहट, जिह्वा में शूल, जडता और विवर्णता, दन्त-हर्ष, हनुस्तम्भ, मुखदाह लालास्राव और कंठ विकार होजाते हैं। विषयुक्त अन्नपान के आमाशय में पहुंचने पर विवर्णता, पसीने अंगसाद और उत्क्लेद होता है, दृष्टिनाश तथा हृदयविरोध भी होता है और देह पर सैंकड़ों विन्दु के समान फुन्सियां होजाती हैं। विषयुक्त अन्न के पक्वाशय में पहुंचने पर मूर्च्छा, मद, मोह, दाह और बलनाश होता है। विषके उदर में स्थित होजाने से तन्द्रा, कृशता और पांडुरोग होते हैं।

दन्तपवनस्यकूर्चः विशीर्यतेहिदन्तोष्ठमांसशोथश्च॥ केशच्युतिःशिरोग्रन्थयश्च सविषे[illegible]रोऽभ्यङ्गे। दुष्टेऽञ्जनेऽक्षिदाहः स्रावाद्युपदेहशोथरागाश्च॥

अर्थ—विषयुक्त दन्तधावनकी कूंची को दांतों पर फेरने से मसूड़े और होठों पर सूजन होजाती है, दांतनकी कूंची विशीर्ण होजाती है। विषयुक्त द्रव्यका शिर पर अभ्यंग करने से बाल गिर पड़ते हैं और सिरपर फुन्सियां होजाती हैं। अंजन में विष होने से आंखों में दाह, स्राव, उपदेह, सोथ और ललाई होती है।

आद्यैरादौकोष्ठःस्पृश्यैस्त्वग्दुष्यतेदुष्टैः। स्नानाभ्यङ्गोत्सादनवस्त्रालङ्कारकैर्दुष्टैः॥ कण्ड्वार्तिलोमहर्षाःकोठपिडकचिमिचिमाशोथाः। एतेकरचरणदाहतोदक्लमविकाराश्च॥ भूपादुकाश्वगजकेतुचर्मशयनासनैर्दुष्टैः। माल्यमगन्धंम्लायतिशिरसोरुकोथलोमहर्षकरम्॥ स्तम्भयतिखानिदर्शनमुपहन्तिचनासिकांधूमः। कूपतडागादिजलंदुर्गन्धंसकलुषंविवर्णञ्च॥ पीतंश्वयथुंकोठान्पिडकांश्चकरोतिमरणञ्च। आदावामाशयगेवमनंत्वक्स्थेप्रदेहसेकादि॥ कुर्य्याद्विषकृचिकित्सांदोषबलञ्चैवहिसमीक्ष्य। इतिमूलविषविशेषाःप्रोक्ताःशृणुजङ्गमस्यातः॥

अर्थ—विषयुक्त भोजनके करनेसे प्रथम ही कोष्ठ में दाह होता है। विषयुक्त छूने के द्रव्य से प्रथमही त्वचा में दाह होता है। इसी तरह विषयुक्त स्नान, अभ्यंग, उतसादन, वस्त्र, और अलंकार धारण करने से खुजली, अर्ति, रोमोद्गम, पित्ती, पिडका चिमचिमाहट और सूजन होती है। पृथ्वी खडाम, हाथी घोडों के जीन, शय्या और आसनों के विषसे दूषित होने पर हाथ और पांव में दाह, तोद, क्लान्ति और अन्य

विकार उत्पन्न होजाते हैं। विषयुक्त पुष्प गंधहीन, मलीन, शिर पीडाकारक और रोमोद्गमकारक होते हैं। विषयुक्त धूंआं के नासिकामें प्रवेश होने से नासिका के छिद्र रुकजाते हैं और नेत्रों में पीड़ा होती है। कूए वा तालाव आदि का जल विष के संसर्ग से दुर्गन्धित, कलुषित और विवर्ण होजाता है। इस जल के पीने से सूजन पित्ती, फुन्सी तथा मृत्यु भी होजाती है।

विषके आमाशय में प्रवेश करतेही प्रथम वमन करावै तथा त्वचा में स्थित होने पर प्रदेह और परिषेक करावै। इस में वैद्य को उचित है कि रोगी के दोष और बल की परीक्षा करके चिकित्सा करै।

इस तरह मूलजविषों के भेद वर्णन किये गये हैं अव हम जंगमविषों का वर्णन करते हैं।

सर्पों के भेदादि वर्णन।

इहदर्वीकरःसर्पोमण्डलीराजिमानिति ॥ त्रयोयथाक्रमंवातपित्तश्लेष्मप्रकोपणाः।

अर्थ—यहां दर्वीकर, मण्डली और राजिमान् तीन तरह के सर्प होते हैं इन में से दर्वीकर वातप्रकोपक, मण्डली पित्त-प्रकोपक और राजमान् होते हैं।

सर्पों की परीक्षा।

दर्वीकरःफणीज्ञेयोमण्डलीमण्डलाफणः॥ विन्दुलेखोविचित्रांगःपन्नगःस्यात्तुरा जिमान्।

अर्थ—जिस सर्प का फण करछी के सदृश होता है उसे दर्वीकर कहते हैं। जिसका फण गोल होता है वह मण्डली होता है और जिसके देह पर अनेक प्रकार के विन्दु और रेखा होती है वह राजिमान् कहाता है।

उक्तसर्पों के विष के गुण।

विशेषाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णंस्वादुशीतलम् ॥ विषंयथाक्रमंतेषांतस्माद्वातादिकोपनम्।

अर्थ—दर्वीकर सर्प का विष विशेष करके रूक्ष और कटु है, मण्डलीका विष अम्ल और उष्ण है तथा राजिमान् का विष स्वादु और शीतल है और इसी हेतु से ये क्रम से वात, पित्त और कफके प्रकोप कर्त्ता हैं।

दर्वीकरके दंशका लक्षण।

दर्वीकरकृतोदंशःसूक्ष्मदंष्ट्रापदोषितः ॥ निरुद्धरक्तःकूर्म्माभोवातव्याधिकरोमतः।

अर्थ—दर्वीकर सर्पका दंशस्थान अर्थात् काटने की जगह सूक्ष्म और काली होती है, उस में से रुधिर नहीं बहता है, देखने में कछु ऐसी दिखाई होती है तथा उस मनुष्य में वातव्याधि के लक्षण दृष्टिगत होने लगते हैं।

मण्डली के दंश का लक्षण।

पृथ्वर्पितःसशोफश्चदंशोमण्डलिनाकृतः॥ पीताभःपीतरक्तश्चसर्वपित्तविकारकृत्॥

अर्थ—मंडली सर्प का दंशस्थान बड़ा सूजनयुक्त, पीतवर्ण और पीतरक्त से युक्त होता है इस में सब तरह के पित्तविकार दिखाई देते हैं।

राजिमान के दंशका लक्षण ।

कृतोराजिमतादंशःपिच्छिलःस्थिरशोफकृत् । स्निग्धःपाण्डुश्चसान्द्रासृक्श्लेष्मव्याधिसमीरणः ॥

अर्थ—राजिमान् का दंश पिच्छिल, स्थिर, शोफकृत्, स्निग्ध, पांडुवर्ण होता है इसके घावका रुधिर जमजाता है और विशेष करके कफके लक्षण दिखाई देते हैं तथा कुछ २ वात के भी होते हैं ।

सर्पोंकेलिंगभेद ।

वृत्तभोगोमहाकायःफणऊर्द्धेक्षणःपुमान्। स्थूलमूर्धासमांगश्चस्त्रीततःस्याद्विपर्य्ययात् ॥ क्लीवःस्रस्तस्त्वधोदृष्टिःस्वरहीनःप्रकम्पते । स्त्रियादष्टोविपर्यस्तैरेतैःपुंसानरोमतः ॥ व्यामिश्रलिङ्गैरेतैस्तुषण्डदष्टंनरंवदेत् ।

अर्थ—जिस सर्प का फण गोल और दिखनौट हो, जिस सर्प का देह वड़ा और दृष्टि ऊंची हो वह पुरुषजाति का सर्प होता है । जिसकी मूर्द्धास्थूल और शेष सव अंग समान होता है वह स्त्रीजाति सर्प है और जिस में स्त्रीजाति और पुरुषजाति दोनों के लक्षण मिलते हैं वह नपुंसकजाति का होता है । किसी किसी ने ऐसा भी अर्थ किया है कि ऊपर कहेहुये लक्षणों से युक्त स्थूल मूर्द्धा और समांग पुरुषजाति है तथा इस से विपरीत लक्षणवाला अर्थात् जिसके फणादि तद्वत् गोल वड़े आदि नहों वह स्त्रीजाति और उभय लक्षण मिश्रित को क्लीव कहते हैं । जिसको स्त्रीजाति का सर्प काटताहै उसका अंग शिथिल होजाता है, दृष्टिनीची पड़जाती है, स्वरहीन होजाता है और देह कांपने लगता है । जिस के लक्षण इस से विपरीत होते हैं अर्थात् देह में कड़ापन, ऊर्ध्वदृष्टि, स्वर में प्रवलता और देह का न कांपना होता है वह पुरुषजाति के सर्प से काटाहुआ समझा जाता है । तथा जिस में दोनों के लक्षण मिलते हैं वह क्लीवदष्ट समझाजाता है ।

गर्भिण्यादिसर्पिणीकेलक्षण ।

पाण्डुवक्त्रस्तुगर्भिण्याशूनोष्ठोप्यसितेक्षणः जृम्भाक्रोधोपजिह्वार्त्तःसूतयारक्तमूत्रवान् ।

अर्थ—गर्भिणी सर्पिणी के काटनेसे मुख पर पांडुता, ओष्ठों में सूजन, नेत्रों में कालापन, जंभाई का वेग और उपजिह्विका ये लक्षण होतेहैं । प्रसूती सर्पिणीके काटने से पेशाव रुधिर के समान होता है ।

गोहदष्टकालक्षण ।

सर्पोगोधेरकोनामगोधाख्यःस्याच्चतुष्पदः ॥ कृष्णसर्पेणतुल्यःस्यान्नानास्युर्मिश्रकादयः।

अर्थ—एक प्रकारका गोधेरक सर्प होता है उसे संस्कृत भाषा में गोधा और प्रचलित भाषा में गोह कहते हैं यह चौपाया होता है । इसका विष कालेसर्पके समान होता है । और वहुत से मिश्रक जाति के सर्प होते हैं ।

भयंकरदंशकेलक्षण।

गाढसम्पादितोद्धूतंपीडितंलम्बितार्पितम् ॥ सर्पितश्चभृशावाधंदंशायेन्येनते भृशाः।

अर्थ—जो दंश गहरा होता है, जो उद्धूत होता है, जो पीड़ित और लम्बा होता है, जो सर्पित अर्थात् फैलता चला-जाता है वह अत्यन्त भयंकर होता है। इन लक्षणों से विपरीत भयंकर नहीं होता है।

अवस्थानुसारदंशकेलक्षण ।

तरुणाःकृष्णसर्पास्तुगोनसाःस्थविरास्तथा ॥ राजिमन्तोवयोमध्येभवन्त्याशीविषोपमाः।

अर्थ—तरुण काले सर्प का विष, बुड्ढे मंडली सर्प का विष और मध्यावस्था के राजिमान् सर्प का विष आशीविषके सदृश होता है ॥

सर्पकेदांतोंकावर्णन।

सर्पदंष्ट्राश्चतस्रस्तुतासांवामधरासिताः॥ पीतावामोत्तरादंष्ट्रेरक्तश्यावेत्वधोत्तरे।

अर्थ—सर्प के चार दांत होते हैं इन में से वांई ओर के नीचेवाले काले होते हैं। वांई ओर के पीले, दाहिनी ओर के नीचे के लाल और ऊपर के श्यावर्णहोते हैं।

दांतोंमेंविषकाप्रमाण।

यन्मात्रःपततेविन्दुर्गोवालात्सलिलोद्धृतात् ॥ वामाधरायांदंष्ट्रायांतन्मात्रंस्याद्हेर्विषम् । एकद्वित्रिचतुर्वृद्धिविषभागोत्तरोत्तरा ॥

अर्थ—गौकी पूंछ के वाल के अग्रभाग से जल का जितना विन्दु टपकता है उतना विष सर्प की वांई ओर के नीचे के दांत में होता है, उस से दूना वांई ओरके ऊपर के में तिगुना दाहिनी ओर नीचे में और चौगुना दाहिनी ओर के ऊपरवाले में होता है।

दंशकावर्ण ।

सवर्णास्तत्कृतादंशायथावद्घ्युत्तराभृशाः

अर्थ—जिस दांत से सर्प काटता है उसी दांत के वर्ण के समान दंशकाव्रण होता है और इन दांतोंका दंश उत्तरोतर भयंकर होता है।

कीटोंका वर्णन ॥

सर्पाणामेवविण्मूत्राःकीटाःस्युःकिट्टजाइति ॥ दूषीविषाःप्राणहराइतिसंक्षेपतो मताः।

अर्थ—सर्पोंके विष्टा और मूत्रसे उत्पन्न हुए कीड़े किट्टज होते हैं, ये संक्षेप से दूषी विष और प्राणनाशक होतेहैं।

दूषीविषकेलक्षण।

गात्रंरक्तंसितंकृष्णंश्यामंवापिंडकान्वितम् ॥ सकण्डूदाहवीसर्पपाकिस्यात्कोथनंतथा । कीटैर्दूषीविषैर्दष्टेलिंगंप्राणहरं शृणु ॥

अर्थ—दूषी विषके काटने से देहका सफेद, लाल, काला, वा श्याम पडजाना, पिडिकाओंका होना, खुजली, दाह, विसर्प, पाक और सड़ाहट होना, ये लक्षण होते हैं, अब प्राणहर दंशोंको कहते हैं,।

प्राणहरदृष्टकेलक्षण ।

सर्पदष्टेयथाशोफेवर्द्धतेसोऽग्रगन्ध्यसृक् ।

अर्थ—प्राणहर के काटने से सर्प के काटने के समान सूजन बढ़ती है और रुधिर में बड़ी तेजगंध उठती है ॥

दूषीविषकेदंशकेलक्षण ।

दंशोऽक्षिगौरवंमूर्च्छासरुगार्तःश्वसित्यपि ॥ तृष्णारुचिपरीतश्चभवेद्दूषीविषार्दितः ।

अर्थ—दूषी विष के काटने से आंखोंमें भारापन, मूर्च्छा, वेदना, श्वासवृद्धि, तृष्णा और अरुचि होते हैं ।

मकड़ीकेदंशलक्षण ।

दंशस्यमध्येयत्कृष्णंश्यावंवाजालकावृतम् । दग्धाकृतिभृशंपाकिक्लेदशोफज्वरान्वितम् ॥ दूषीविषाभिर्लूताभिस्तंदष्टमितिनिर्दिशेत् ।

अर्थ—जो दंश के बीच में काला, भूरा, जालसा घिराहुआ, दग्धाकृति, अत्यन्त पाकोन्मुख, क्लेद, शोफ और ज्वरान्वितता, इन लक्षणों के होने से दूषी विषमकड़ीके दंश के लक्षण होते हैं ।

लूतादष्टमनुष्यकेलक्षण ।

शोफाःश्वेतासितारक्ताःपीतावापिडकाज्वरः ॥ प्राणान्तिकीभवेत्श्वासोदाहहिक्काशिरोग्रहः ।

अर्थ—मकड़ी के काटने से सूजन, सफेद काली, लाल और पीली फुन्सियां, ज्वर, तथा प्राणनाशक श्वास, दाह, हिचकी और शिरोग्रह होता है ।

चूहेकेदंशऔरविषकेलक्षण ।

आदंशात्शोणितंपाण्डुमण्डलानिज्वरोऽरुचिः ॥ लोमहर्षश्चदाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते । मूर्च्छांगशोफवैवर्ण्यक्लेदशब्दाश्रुतिज्वराः ॥ शिरोगुरुत्वंलालासृक्छर्दिश्चासाध्यदूषिकैः ।

अर्थ—विषैल चूहे के काटनेसे डंक के चारोंओर खून में पांडुता, चकत्ते, ज्वर, अरुचि, लोमहर्ष और दाह होता है । चूहे के विष से पीड़ित मनुष्य को यदि मूर्च्छा अंग शोफ, विवर्णता, क्लेदता, शब्द का न सुनना, ज्वर, सिर में भारापन, लालास्राव और रुधिर की वमन होने से असाध्यता होती है ।

किरकेंटाके दंशके लक्षण ।

श्यावत्वमथकार्ष्ण्यंवानानावर्णत्वमेववा॥ मोहःपुरीषभेदोवादष्टस्याप्यकृकण्टकैः ।

अर्थ—किर कट के काटने से दष्टस्थान में कालापन वा अनेक प्रकार के रंग होते हैं उस के मोह तथा मलभेदभी होता है ।

वीछूके दंशके लक्षण ।

दहत्यग्निरिवादौतुभिन्दतीवोर्द्धमाशुच॥ वृश्चिकस्यविषंयातिदंशेपश्चात्तुतिष्ठति । दष्टोऽसाध्यस्तुदृग्घ्राणरसनोपहतोनरः॥ मांसैःपतद्भिरत्यर्थंवेदनार्तोजहात्यसून् ।

अर्थ—वीछूके काटने से प्रथम अग्निके समान जलन होती है, यह भेदन करती हुई ऊपर को उठती है परन्तु फिर दंश स्थान में आकर ठहर जाती है ।

जो वीछू के काटने से आंख, नाक, जिह्वा

उपहत हो, दंशस्थान का मांस गिर पडै और वेदना वहुत हो तौ यह दंश असाध्य होता है इस में रोगी मरजाता है।

कणभ के लक्षण।

विसर्पःश्वयथुःशूलोज्वरश्छर्दिरथापिवा॥ लक्षणंकणभैर्दष्टेदंशश्चैवविशीर्यते।

अर्थ—कणभ (एक प्रकार का भौंरा) के काटने से विसर्प, सूजन, शूल, ज्वर, वमन, ये लक्षण होते हैं और दंशस्थान विशीर्ण होजाता है।

उच्चिटिंगके दंशके लक्षण।

हृष्टरोमोच्चिटिंगेनस्तब्धलिंगोभृशार्तिमान् दष्टःशीतोदकेनेवसिक्तान्यंगानिमन्यते।

अर्थ—उच्चिटिंगके काटने से रोमोद्गम स्तब्धलिंगता, अत्यन्त वेदना, और शीतल जल में डूबने के समान लक्षण होते हैं।

मंडूकदंश के लक्षण।

एकदंष्ट्रार्दितःशूनःसरुक्स्यात्पीतकःसतृट् ॥ छर्दिर्निद्राचमण्डूकैःसविषैर्दष्टलक्षणम्।

अर्थ—मेंडक अपनी एक डाढसे काटता है, इस से दंश स्थान में सूजन और वेदना वहुत होती है। वर्ण कुछ पीला पडजाता है, तथा तृषा, वमन और निद्राये उपद्रव होते हैं।

मत्स्यदंश के लक्षण।

मत्स्यास्तुसविषाःकुर्युर्दाहंशोफरुजंतथा॥

अर्थ—विषैल मछली के काटने से दाह, शोफ और वेदना वहुत होती है।

जोक दंश के लक्षण।

कण्डूंशोफंज्वरंमूर्च्छांसविषास्तुजलौकसः

अर्थ—विषैल जोक के काटने से खुजली शोफ, ज्वर और मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं।

गलगोडिका के लक्षण।

दाहतोदस्वेदशोफकरीतुगलगोडिका ॥

अर्थ—छिपकली के काटने से दाह, तोद, स्वेद और शोफ होते हैं।

शतपदी के लक्षण।

दंशेस्वेदंरुजंदाहङ्करोतिचशतापदी ॥

अर्थ—कातर के काटने से स्वेद, वेदना और दाह होता है।

मशकदंशके लक्षण।

कण्डूमान्मशकैरेतच्छोफःस्यान्मर्मवेदनः॥ असाध्यकीटसदृशमसाध्यमशकार्दितम्।

अर्थ—मच्छरके काटने से खुजली सूजन और मर्म वेदना होती है किसी २ मच्छरका काटना ऐसा असाध्य होता है जैसा असाध्य कीट का काटना।

मक्षिका दंश का लक्षण।

सद्यःप्रस्राविणीश्यावादाहमूर्च्छाज्वरान्विता ॥ पीडकामाक्षिकादंशेतासान्तुस्थगिकासुहृत्।

अर्थ—मक्खी के काटने से तत्काल स्राव होता है, दंशस्थान काला पडजाता है, उस में दाह, मूर्च्छा और ज्वर भी हो आता है तथा छोटी २ फुन्सियां भी उत्पन्न हो आती हैं। मक्खी कई प्रकारकी होती हैं इन में से स्थगिका मक्खी का दंश असाध्य होता है।

कालानुसार दंश को साध्यासाध्यत्व ।

श्मशानचैत्यवल्मीकयज्ञाश्रयसुरालये ॥
पक्षसन्धिषुमध्याह्नेष्वर्द्धरात्राष्टमीषुच ।
नसिध्यन्तिनरादष्टाःपाषण्डायतनेषुच ॥
दृष्टिश्वासमलःस्पर्शविषैराशीविषैस्तथा ।
विनश्यन्त्याशुसम्प्राप्तादष्टाःसर्वेषुमर्मसु॥
भीतमत्तावलोष्णक्षुत्तृषार्त्तेवर्धतेविषम् ।
विषंप्रकृतिकालौचतुल्यौप्राप्याल्पमन्यथा

अर्थ—श्मशान, चैत्य, वल्मीक, यज्ञाश्रम और देवालयादि स्थानों में, अमावास्या वा पूर्णिमा को, मध्यान्ह, आधीरात और अष्टमी में और पाषण्डी सन्यासियों के घर में काटा हुआ मनुष्य असाध्य होता है । दृष्टि विष श्वास विष, मलविष और स्पर्श विष भी आशीविषके समान असाध्य होता है । मर्म स्थान में डंक लगने से मनुष्य शीघ्रही प्राण परित्याग करदेता है । भयातुर, मत्त, निर्वल, उष्ण, क्षुधार्त्त और तृषार्त्त मनुष्य के विष शीघ्र वढता चला जाता है । प्रकृति और काल के समान होने से भी विषका वेग वढ़ता चला जाता है। इन से विपरीत होने पर विष का वेग कम होता है ।

मन्द विष सर्प के लक्षण ।

वारिविप्रहताःक्षीणाभीतानकुलनिर्जिताः
वृद्धाबालास्त्वचोमुक्ताःसर्पामन्दाविषाः
स्मृताः ॥

अर्थ—पानी का मारा हुआ, क्षीण, भीत न्यौले से पराजय किया हुआ, वृद्ध, वालक जिसने अभी काचली छोड़ीहो ऐसे सर्प मन्द विष होते है ।

विषको सर्व देहाश्रितत्व ।

सर्वदेहाश्रितंक्रोधाद्विषंसर्पोविमुञ्चति ।

अर्थ—सर्प क्रोधावेश में अपने सम्पूर्ण देह से विष को निकालता है परन्तु आहार हेतु वा भय से नहीं निकाल सकता है ।

अन्य विषाक्त कीडों की प्रकृति ।

तदेवाहारहेतोर्वाभयाद्वानप्रमुञ्चति ॥
वातोल्वणविषाःप्रायउच्चिटिङ्गाःसवृश्चिकाः । वातपित्तोल्वणाःकीटाःश्लैष्मिकाः कणभादयः ॥ यस्ययस्यहिदोषस्यालिङ्गाधिक्यानिलक्षयेत् । तस्यतस्यौषधैःकुर्यात्द्विपरीतगुणैःक्रियाम् ॥

अर्थ—उच्चिटिंग और वीछू इन दोनों के विष प्रायः वाताधिक्य होते हैं, कीटों का विष वातापित्ताधिक्य और कणभ का विष कफाधिक्य होता है ।

जिस जिस दोष के विशेष लक्षण दिखाई पड़े उसी दोष के विपरीत गुणवाली औषधों द्वारा चिकित्सा करना उचित है ।

वातिकविषकेलक्षण ।

हृत्पीडोर्ध्वानिलस्तम्भःशिरायासोऽस्थिपर्वरुक् । घूर्णनोद्वेष्टनंगात्रश्यावतावातिकेविषे ॥

अर्थ—वातिक विष में हृत्पीड़ा, ऊर्ध्व-वात, स्तम्भ, शिरायास, अस्थि और पर्व में वेदना, घूर्णन, उद्वेष्टन (अंगड़ाई) और शरीर में कालापन ये लक्षण होते हैं ।

पैत्तिकाविष के लक्षण ।

संज्ञानाशोष्णनिश्वासोहृद्दाहःकटुकास्य

ता । मांसावदारणंशोफोरक्तपीतश्चपैत्तिके ॥

अर्थ—पैत्तिक विष में बेहोशी उष्णश्वास, हृदय में दाह, मुख में कड़वापन, मांसका विदीर्ण होना और लाल पीली सूजन ये लक्षण होते है ।

श्लैष्मिक विष के लक्षण ।

वम्यरोचकहृल्लासप्रसेकोत्क्लेशगौरवैः । सशैत्यमुखमाधुर्य्यैर्विद्यात्श्लेष्माधिकं विषम् ॥

अर्थ—वमन, अरुचि, हृल्लास, प्रसेक, उत्क्लेश, भारापन, शीतलता, मुख में मीठापन ये श्लैष्मिक विष के लक्षण हैं ।

वातिकविषमेंचिकित्सा ।

खण्डेनचव्रणालेपस्तैलाभ्यङ्गश्चवातिके । स्वेदोनाडीपुलाकाद्यैर्बृंहणश्चाविधिर्हितः ॥

अर्थ—वातिकविष में खांड़कालेप, तैलमर्दन, नाड़ीस्वेद, पुलाकादिस्वेद और बृंहणविधि हित है ।

पैत्तिकविषमेंचिकित्सा ।

सुशीतैःस्तम्भयेत्सेकैःप्रदेहैश्चापिपैत्तिकम्

अर्थ—पैत्तिक विष में शीतल परिषेक और प्रदेहादि द्वारा स्तम्भन करै ।

श्लैष्मिकविष में चिकित्सा ।

लेखनच्छेदनस्वेदवमनैःश्लैष्मिकंजयेत् ॥

अर्थ—श्लैष्मिक विषको लेखन, छेदन, स्वेदन और वमनद्वारा दूरकरना चाहिये।

शीतक्रियोपयोगीविष ।

विषेष्वपिचसर्वेषुसर्वस्थानगतेषुच । अवृश्चिकोच्चिटिङ्गेषुप्रायःशीतोविधिर्हितः ॥

अर्थ—बीछू और उच्चिटिंगको छोड़कर सब प्रकार के सर्वस्थानगत विषों में शीत क्रिया हित है ।

बीछूके विष में चिकित्सा ।

वृश्चिकेस्वेदमभ्यंगंघृतेनलवणेनच । सेकांश्चोष्णान्प्रयुञ्जीतभोज्यंपानञ्चसर्पिषः

अर्थ—बीछू के विष में घृत और नमक से पसीनादेवै, मालिश करावै, उष्णपरिषेक, घृतमिश्रित भोजन और घृतपान हित हैं ।

उच्चिटिंगके विष में चिकित्सा ।

एतदेवोच्चिटिंगेऽपिप्रतिलोमञ्चपांशुभिः । उद्वर्त्तनंसुखाम्भूष्णैस्तथावच्छादनंघनैः ॥

अर्थ—उच्चिटिंग के काटनेपर बीछू के समानही चिकित्सा करनी चाहिये । जहां डंक लगा हो वहां धूलि लगाकर प्रतिलोमन करै, उद्वर्त्तन करै और सुहाते हुए गरमजल में भिगेहुए कपड़े की कई तह कर के दंशस्थान पर रखदेवै ।

त्रिदोषजविषकेलक्षण ।

स्यात्त्रिदोषप्रकोपात्तुतथाधातुविपर्य्ययात् । शिरोऽभितापीलालास्राव्यधोवक्त्रस्तथा भवेत् ॥

अर्थ—त्रिदोष के प्रकोप और धातुओं के विपर्य्यय से काटेहुए मनुष्य के सिर में ताप लारका गिरना और मुख का नीचा होजाना ये लक्षण होते हैं ।

अन्यसर्पों के लक्षण ।

अन्येऽप्येवंविधाव्यालाःकफवातप्रकोपनाः । हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भतृषामूर्च्छाकरामताः ॥

अर्थ—इनसे अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के व्याल हैं जो कफवात को प्रकुपित करते हैं इन के काटनें सें हृदय में वेदन, शिरःशूल, ज्वर, स्तम्भ, तृषा, और मूर्च्छा होती है।

सविषशरीरकेलक्षण।

कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्लेदोपशोषणम्। विदाहरागरुक्पाकाःशोफोग्रन्थिर्निकुञ्चनम् ॥ दंशावदरणंस्फोटाःकर्णिकामण्डलानिच। ज्वरश्चसविषेलिंगंविपरीतन्तुनिर्विषे॥

अर्थ—खुजली, निस्तोद, विवर्णता, शून्यता, क्लेद, उपशोषण, विदाह, राग वेदना, पाक, शोफ, ग्रन्थि, निकुंचन, दृष्टस्थान का फटना, फोड़े, कर्णिका, चकत्ते, और ज्वर ये सविष शरीर के लक्षण हैं। इन से विपरीत निर्विष शरीर के लक्षण होते हैं।

तत्रसर्वेयथावस्थंप्रयोज्याःस्युरुपक्रमाः। पूर्वोक्तंविधिमन्यञ्चयथावद्ब्रुवतःशृणु॥

अर्थ—सविष शरीर में अवस्थाके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये इन चिकित्साओं में से थोड़ीसी पहिले कहचुके हैं और कुछ अब कहते हैं।

विषरोग में चिकित्सा।

हृद्विदाहेप्रसेकेवाविरेकवमनंभृशम्। यथावस्थंप्रयोक्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः॥ शिरोगतेविषेनस्तःकुर्यान्मूलानिबुद्धिमान्। बन्धुजीवस्यभार्ग्याश्चसुरसस्यासितस्यच दत्तकाकमयूराणांमांसास्क्मस्तकेक्षते। मूर्द्धिनदेयमथोदष्टस्योर्द्धेदष्टस्यपादयोः॥ पिप्पलीमरिचक्षारवचासैन्धवशिग्रुकाः। पिष्ट्वारोहितपित्तेनघ्नन्त्याक्षिगतमञ्जनात्॥

अर्थ—विष के कारण जो हृदय में विदाह और लालास्राव होता है तो अवस्था के अनुसार तीक्ष्ण वमन विरेचनदेवै और शुद्ध होने के पीछे ससर्जनक्रम का प्रयोग करै। जो विष शिरोगत हो तो वन्धूक, भाडंगी और कालीतुलसी इन तीनोंकी जड़ों को पीसकर नस्य देवै। जो मस्तकमें काटा हो तौ उस जगह मुर्गा, मोर और कौए का मांस और रुधिर लगावै और जो पांवों के ऊपर काटाहो तौ भी यही चिकित्सा करै। जो विष नेत्रों में पहुंचगया हो तौ पीपल, कालीमिरच, जवाखार, वच, सेंधानमक और संहजने के वीज इन सबको पीसकर रोहूमछली के पित्ते में मिलाकर आंजे।

विषेकण्ठगतेमांसंकपित्थंसासितामधु। आमाशयगतेलिह्यात्ताभ्यांचूर्णपलंनतात् विषेपक्वाशयप्राप्तेपिप्पलींरजनीद्वयम्। मञ्जिष्ठाचसमंपिष्ट्वागोपित्तेननरःपिबेत्॥ मांसंरक्तञ्चगोधायाःशुष्कंचूर्णीकृतंहितम्॥ विषेरसगतेपानंकापित्थरससंयुतम्॥ शेलुमूलत्वगग्राणिबादरौदुम्बराणिच। कटभ्याश्चपिबेद्रक्तगतेमांसगतेपिबेत्॥ सक्षौद्रंखादिरारिष्टकाटजमूलमम्भसा। सर्वेपुचवलेद्वेतुमधुकंमधूकंनतम्॥ पिप्पलींनागरंक्षारंनवनीतेनमूर्च्छितम्।कफेभिषगुदीर्णेतुविदध्यात्प्रतिसारणम्॥

अर्थ—जो विष कंठ में पहुंचा हो तौ कैथ का गूदा, मिश्री और शहत मिलाकर देवै। आमाशयगत विष में तगर का एक पल चूर्ण चीनी और शहत मिलाकर सेवन करै विष के पक्काशय में पहुंचनेपर पीपल दोनों हलदी और मजीठ ये सब समान भाग लेकर गौके पित्ते के साथ पान करै। विष के रस में पहुंचनेपर गोह के मांस और रक्त को सुखाकर पीसकर कैथ के रस के साथ पान करै। विष के रक्त में पहुंचनेपर शेलू की जड़ छाल तथा वेर, गूलर और कट भी की डालियों का अग्रभाग पीसकर जल के साथ पींवै। विषके मांसगत होनेपर खैर के अरिष्ट में शहत डालकर पीवै अथवा कुटकी की जड़ को पानीके साथ पीसकर पींवै। विष के सर्व धातुगत होनेपर वला, अतिवला, मुलहटी, महुआ और तगर इनको जल में पीसकर देवै विष में कफका प्रकोप होनेपर पीपल, सोंठ, जवाखार, इन सब को मक्खन में सानकर प्रतिसारण करावे।

सर्वशोथनाशकयोग ॥

मांसीकुंकुमपत्रत्वक्रजनीनतचन्दनैः।
मनःशिलाव्याघ्रनखसुरसैरम्बुपेषितैः॥
पाननस्याञ्जनालेपाःसर्वशोथविषापहाः

अर्थ—जटामांसी, कुंकुम, तेजपात, दालचीनी, हलदी, तगर, चन्दन, मनसिल, व्याघ्रनख और तुलसी इन को जल के साथ में पीसकर पान, नस्य, अंजन और लेपन में प्रयोग करै। इस से सब प्रकार की सूजन और विष नष्ट होजाते हैं।

अन्यप्रयोग।

चन्दनंतगरंकुष्ठंहरिद्रेद्वेत्वगेवच। मनःशिलातमालश्चरसःकेसरएवच॥ शार्दूलस्यनखश्चैवसुपिष्टंतण्डुलाम्बुना। हन्ति
सर्वविषाण्येववज्रिवज्रमिवासुरान्॥

अर्थ—चन्दन, तगर, कूठ, दोनों, हलदी, दालचीनी, मनसिल, तमाल, रस, केसर, व्याघ्रनख इन सब को चांवलके जल के साथ अच्छी तरह पीस लेवै। इसका पान करने से सम्पूर्ण विष ऐसे नष्ट होजाते हैं जैसे इन्द्रका वज्र असुरों को नष्ट करता है।

रसोसिरीषपुष्पस्यसप्ताहंमरिचंसितम्।
भावितंसर्पदष्टानांनस्यपानाञ्जनेहितम्॥
गृहधूमंहरिद्रेद्वेसमूलंतण्डुलीयकम्। अपि वासुकिनादष्टःपिवेद्दधिघृतायुतम्॥ द्विपलंनतकुष्ठाभ्यांघृतक्षौद्रचतुष्पलम्। अपितत्तकदष्टानांपानमेततसुखप्रदम्॥
सिन्धुवारस्यमूलञ्चश्वेताचगिरिकर्णिका।
पानंदर्वीकरैर्दष्टेनस्यंमधुसपाकलम्॥ मञ्जिष्ठामधुयष्ट्याह्वाजीवकर्षभकौसिता काश्मर्यवटशुङ्गानिपानंमण्डलिनांविषे॥ व्योषंप्रतिविषाकुष्ठंगृहधूमोहरेणुका। तगरंकटुकाक्षौद्रंहन्तिराजीमताविषम्॥
क्षीरिवृक्षत्वगालेपःशुद्धेकीटविषापहः।
मुक्तालेपोवरःशोफदाहतोदज्वरापहः॥

अर्थ—सहजने के वीजों को सात दिवस तक सिरस के फूलों के रसकी भावन देवै। इसका नस्य, पान और अंजन में प्रयोग

करने से सर्प के काटने में गुणकारक है। गृहधूम, दोनों हलदी, चौलाई जड समेत इन सब को पीसकर दही और घी में सान कर पीवै तौ वासुकी का काटाहुआ भी अच्छा होजाता है। तगर और कूठ दो पल, घृत दो पल, शहत दो पल इन सब को मिलाकर पीने से तक्षक का काटा हुआ भी अच्छा होजाता है। संभालू की जड़,सफेद कोयलकी जड़ और गिरकर्णिका की जड़ का क्वाथ करके पीवै तथा शहत और पाकलाकी नस्य लेवै। ये कर्म दर्वीकर सर्प के काटने में हित हैं। मंडलीसर्प के विष में मजीठ, शहत मुलहटी, जीवक, ऋषभक,चीनी,खंभारी और वडकी कोंपल का घोट कर पीना हित है। राजिमान् सर्प के विष में त्रिकुटा, अतीस, कूठ,गृहधूम, हरेणु, तगर, कुटकी इन को जल में पीसकर शहत के साथ पान करै। वमन विरेचन कराके वड़ आदि दूध वाले वृक्षकी छालका लेप करने से कीट विष दूर होजाता है। तथा इन्ही के दंश पर जल में पीसकर रास्ना का लेप करने से शोफ,दाह तोद और ज्वर दूर होजाते हैं।

लूताविष की चिकित्सा।

चन्दनंपद्मकोशीरंपाटलिःसिन्धुवारिका। क्षीरशुक्लानतंकुष्ठंशिरीषोदीच्यशारिवाः शेलुस्वरसपिष्टोऽयंल्लूतानांसार्वकार्मिकः।

अर्थ—चन्दन, पद्माख, उसीर, पाटला संभालू, बिदारीकन्द का दूध, तगर, कूठ, सिरस, नेत्रवाला और शारिवा इन सब को शेलू के रस में पीसकर पीने और लेप करने में प्रयुक्त करै तौ मकडी का विष दूर होजाता है।

मकडीअन्य चिकित्सा॥

मधुकंमधुकंकुष्ठंशारिबोदीच्यपाटलैः। सनिम्बशारिवाक्षौद्रंपानंल्लूताविषापहम्।

अर्थ—मुलहटी, महुआ, कूठ, शारिवा, नेत्रवाला, पाटला, नी और शारि वा इनको जल में पीसकर शहत मिलाकर पीने से लूताविष दूर होजाता है।

कसुम्भपुष्पंगोदंताःस्वर्णक्षीरीकपोतविट्। दन्तीत्रृट्त्सैन्धवैलाकर्णिकापातनंतयोः। कटभ्यार्जुनकुष्ठानिशेलुक्षीरीद्रुमत्वचम्। कषायकल्कचूर्णाःस्युःकाटल्लूताप्रलापहाः त्वचञ्चनागरञ्चैवसमांशंश्लक्ष्णपेषितम्। पेपमुष्णाम्बुनासर्वंमूषिकाणांविषापहम्॥

अर्थ—कसूम के फूल, गोदन्तीहरिताल, स्वर्णक्षीरी, कबूतर की बीट, दन्ती,निसोथ सेंधानमक और बड़ी इलायची इनको पीसकर लेप करने से लूताविष और कीटविष नष्ट होजाते हैं। कटभी, अर्जुन, कूठ,शेलु, वटादिदुग्ध वृक्षों की छाल इनका कषाय, कल्क और चूर्ण द्वारा प्रयोग करनेसे कीट विष का और लूताविष का प्रलाप नष्ट होजाता है।

अथवा दालचीनी और सोंठ समानभाग लेकर महीन पीस डाले और फिर इसको गरम जल के साथ पान करै तौ मूषकाविष दूर होजाता है।

कुटजस्यफलंपिष्टंतगरंजालमालिनी ।
तिक्तेक्ष्वाकुकयोगोयंपानप्रधमनादिभिः ॥
वृश्चिकोन्दुरलूतानांसर्पाणाश्चविषाहहम्
समानममृतेनेदंगराजीर्णाश्चनाशयेत् ॥

अर्थ—इन्द्रजौ, तगर, घीयातोरई, कटुतुम्बी इनका पीसकर पान और प्रधमनादि द्वारा प्रयोग करै तौ बीछू, चूहा, मकड़ी और सर्पों का विष दूर होजाता है यह योग अमृत के समान है इसके सेवन से विषदोष और अजीर्ण दूर होजाते हैं ।

किरकटविषचिकित्सा ।

सर्वागदायथादोषंप्रयोज्याःस्युःकृकण्ठके

अर्थ—रोगी की अवस्था के अनुसार सब प्रकार की औषधियों के करने से किरकेंटेका विष दूर होजाता है ।

वृश्चिकविषचिकित्सा ।

कपोतविट्मातुलुङ्गंशिरीषकुसुमाद्रसः ।
शंखिन्यार्कम्पयःशुण्ठीकरश्चमधुवार्श्चिके॥

अर्थ—कबूतर की बीट, बिजौरा, सिरस के फूलका रस, शंखिनी, आककादूध, सोंठ, कंजा, शहत इन सबको समानभाग लेकर पीसकर लेप करै तौ बीछूका विष दूर होजाता है ।

मंडूकविषचिकित्सा ।

शिरीषस्यफलंपिष्टंस्नुहीक्षीरेणदार्दुरे ।

अर्थ—सिरस के बीजों को सेंहुड़ के दूध में पीसकर लेप करने से मेंडक का विष दूर होजाता है ।

मतस्यविषचिकित्सा ।

मूलानिश्वेतभिण्डायाव्योषसर्पिश्चमत्स्यजे

अर्थ—सफेद अपराजिता की जड़ और त्रिकुटा को पीसकर लेप करने से मछली का विष दूर होजाता है ।

जोकविषचिकित्सा ।

कीटदष्टक्रियासर्वासमानास्याज्जलौकसाम् ।

अर्थ—क्रीटदष्टकी जो जो चिकित्साकहीं गई हैं उनहीके समान जोककी चिकित्साहै।

वातपित्तहरीप्रायःक्रियाप्रायःप्रशस्यते ।
वार्श्चिकस्तूच्चिटिङ्गश्चकणभस्योन्दुरोगदः॥

अर्थ—बीछू, उच्चिटिंग, कणभ और उन्दुर के विष में प्रायः वातनाशिनी क्रिया हित है ।

विश्वम्भरादि विष चिकित्सा ।

वचावंशत्वचंपाठानतंसुरसमञ्जरीम् ।
द्वेवलेनाकुलंकुष्ठंशिरीषंरजनीद्वयम्॥गृहाम
तिगुहांश्वेतामजगन्धांशिलाजतु । कत्तृ
णंकटभींक्षारंगृहधूममनःशिलाम् ॥ रोही
तकस्यपित्तेनपिष्ट्वातुपरमोगदः । नस्या
ञ्जनाद्यलेपेषुहितोविश्वम्भरादिषु ॥

अर्थ—वच, वांसकी छाल, पाठा, तगर, तुलसीकी मंजरी, दोनों बला, रास्ना, कूठ, सिरस, दोनों हलदी, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, श्वेत अपराजिता, अजगंध, शिलाजीत, कत्तृण, कटभी, जवाखार, गृहधूम, मनसिल, इन सब को पीसकर रोहू मछली के पित्ते में सानकर नस्य, अंजन और प्रलेपादि द्वारा प्रयोग करने से विश्वम्भरादि कीडों का विष दूर होजाता है ।

कांतर की चिकित्सा ।

स्वर्जिकाजशकृत्क्षारःसुरसोथाक्षपीडकः। मदिरामण्डसंयुक्तोहितःशतपदीविषे ॥

अर्थ—सज्जीखार, बकरीकी मेंगनींका खार इन को तुलसी के पत्ते के रस में मिलाकर आंखों पर लगावै और इन्ही द्रव्यों को सुरामण्ड में मिलाकर शतपदी के दंश पर लेप करै तो आराम होता है ।

छपकली विषकी चिकित्सा ।

कपित्थमक्षिपीडोऽर्कबीजंत्रिकटुकंतथा। करञ्जोद्वेहरिद्रेचगलगोड्याविषंजयेत् ॥

अर्थ—कैथ का रस, आक के बीज और त्रिकुटा इन को पीसकर रस निकालकर आंखों पर लगावै अथवा कंजा और दोनों हलदी इनका रस भी आंखपर लगाने से छपकली का विष दूर होजाता है ।

काकाण्डरससंयुक्तोविषाणांतण्डुलीयकः। सर्वेषांवर्हिपित्तेनतद्वद्रायसपीलुकः ॥ शिरीषफलमूलत्वक्पुष्पपत्रैःसमैर्घृतैः। श्रेष्ठः पञ्चशिरीषोऽयंविषाणांप्रवरोवधे ॥

अर्थ—कृष्णशिम्वी और चौलाई इन दोनों का रस सब विषों में हितकर है । मकोय और पीलू भी मोरके पित्ते के साथ में तद्वत् गुणकारक है ॥

सिरस के फल, मूल, छाल, फूल और पत्ते इन को समान भाग लेकर घी में पीस कर लगावै यह औषध विषनाशक प्रयोगों में हितकारी है । इसे पंचशिरीष कहते हैं ।

दंत और नख में चिकित्सा ।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वानखदन्तक्षतंतुयत् ॥ शूयतेपच्यतेत्रापिस्रवतिज्वरयत्यपि । सोमवल्कोऽश्वकर्णाचगोजिह्वाहंसपद्यपि रजन्यौगैरिकंलेपोनखदन्तविषापहः ।

अर्थ—चौपाये वा द्विपाये जीवों के दांत वा नख लगने से जो घाव होजाते हैं उन में सूजन, पाक, स्राव और ज्वर हो आता है । इस में सफेद खैर, अश्वकर्ण, गोभी हंसपादी, दोनों हलदी और गेरू इन का लेप करने से नख और दांतों का विष दूर होजाता है ।

शंकाविष में उपाय ।

दुर्गान्धकारेविद्धस्यकेनचिद्दृष्टशङ्कया ॥ विषोद्वेगाज्ज्वरछर्दिर्मूर्च्छादाहोऽपिवाभवेत् । ग्लानिर्मोहोऽतिसारोवाप्येतच्छङ्काविषंमतम् ॥ चिकित्सितंमिदंतस्यकुर्यादाश्वासयन्बुधः । सितावैगन्धिकाद्राक्षापयस्यामधुकंमधु ॥ पानंसमन्त्रपूताम्बुप्रोक्षणंसान्त्वहर्षणम् ।

अर्थ—दुर्गम अन्धकार में चीटी आदि क्षुद्र जन्तु के काटने से सर्प की शंका हो कर विष के वेग से ज्वर, वमन, मूर्च्छा और दाह भी होता है तथा ग्लानि, मोह और अतिसार ये भी विषकी शंका से हो आते हैं । इन में शान्ति प्रदायक वचनों द्वारा रोगी को आश्वासन देवै और यह औषधी देवै चीनी, गोंदी, दाख, क्षीरकाकोली, मुलहटी, शहत, इनका पान करावै । मंत्र पढ़े हुए जल से प्रोक्षण करै और शान्ति प्रदायक वचनों से प्रसन्न करता रहे ।

विषरोग में पथ्यविधान ।

शालयःषष्टिकाश्चवकोरदूषाःप्रियङ्गवः॥ भोजनार्थेप्रशस्यन्तेलवणार्थेचसैन्धवम् । तण्डुलीयकजीवन्तीवार्ताकुसुनिषणकाः॥ चुच्चुमण्डुकपर्णीचशाकञ्चकुलकंहितम् । धात्रीदाडिममम्लार्थेयूषामुद्गहरेणुभिः॥ रसाश्चैणशिखिश्चाविलावतैत्तिरिपार्षताः विषघ्नौषधसंयुक्तारसायूषाश्चसंस्कृताः॥ अविदाहीनिचान्नानिविषार्तानांभिषज्जितम् ।

अर्थ—शालीचांवल, साठी चांवल,कोदों प्रियंगु, ये भोजन के लिये देवै, नमक में सेंधानमक देवै । शाक में चौलाई, जीवन्ती वेंगन, चौपातिया, चुच्चू, मंडूकपर्णी, और परवल का साग हित है। खटाई में आंवला और अनार,यूष में,मूंग और हरेणु,मांसरस में मोर, मेंढा,लवा, तीतर और पृषत हिरण, इन मांस और यूषों को विषनाशक औषधियों में सिद्ध करके देवै तथा अविदाही अन्न का सेवन भी विषरोगियों के लिये हित है ।

विषमें वर्जितकर्म ।

विरुद्धाध्यशनक्रोधक्षुद्भयायासमैथनम्॥ वर्जयेद्विषमुक्तोऽपिदिवास्वप्नंविशेषतः ।

अर्थ—विरुद्धादि भोजन, क्रोध, क्षुधा के वेग को सहन करना, भय, परिश्रम, मैथुन और दिन में सोना इन बातोंको विष दूर होनेपर भी त्याग देवै ।

चतुष्पददष्टके लक्षण ।

मुहुर्मुहुःशिरोन्यासःशोफःस्रस्तौष्ठकर्णता॥ ज्वरस्तम्भश्चाक्षिगात्रत्वंहनुकम्पोऽङ्गमर्दनम् । रोमोद्गमग्लानिररतिर्वेपथुर्ग्रहः॥ चतुष्पदांभवत्येतद्दष्टानामिहलक्षणम् ।

अर्थ—चौपाये जीव के काटने से ये लक्षण होते हैं कि दष्ट व्यक्ति वार वार सिर को फेंकता है,सूजन, ओष्ठोंमें शुष्कता, कानों में स्तब्धता, ज्वर, आंखोंका पथराना गात्र में स्तब्धता, हनुकम्प, अंगमर्द, रोमोद्गम, ग्लानि, अरति, कम्पन और जकड़न ये लक्षण भी होते हैं ।

चतुष्पददष्टमेंउपाय ।

देवदारुहरिद्रेद्वेसरलंचन्दनागुरु ॥ रास्ना गोरोचनाजाजीगुग्गुल्विक्षरकोनताम् । चूर्णंससैन्धवानन्तगोपित्तमधुसंयुतम्॥ चतुष्पदांहिदष्टानामगदःसार्वकार्मिकः॥

अर्थ—देवदारु, दोनोंहल्दी, सरलकाष्ठ, चन्दन, अगर, रास्ना, गोरोचन, कालाजीरा,गूगल, तालमखाना, तगर, सेंधानमक और अनन्तमूल इनसबका चूर्ण बनाकर शहत और गौ के पित्ते के साथ खाने, पीने, लगाने आदि सब कामों में देवै इससे चौपायों का विष दूर होजाता है ।

गरविषकेलक्षण ।

सौभाग्यार्थंस्त्रियःस्वेदरजोनानाङ्गजान्मलान् । शत्रुप्रयुक्तांश्चगरान्प्रयच्छन्त्यन्नमिश्रितान् ॥ तैःस्यात्पाण्डुःकृशोऽल्पाग्निर्ज्वरश्चस्योपजायते । मर्मप्रमथनाध्मानहस्तपादशोफलक्षणाः ॥ जठरं ग्रहणीदोषंयक्ष्मागंश्वयथुंज्वरम् । एवं विधस्यचान्यस्यव्याधेर्लिङ्गानिदर्शयेत्॥

अर्थ—वशीकरणादि प्रयोगों के लिये स्त्री अपने भिन्न २ अंगोंके स्वेद, रजआदि मलों को खाने पीने की वस्तु में देदेती हैं इसीतरह शत्रु भी गरविष मिलाकर अन्न वा पानी दे देते हैं। इन से पांडुरोग, कृशता, मन्दाग्नि, ज्वर, मर्मप्रपीड़न, आध्मान्, हाथ पांव में सूजन, उदररोग ग्रहणीदोष, यक्ष्मा, श्वयथु और क्षयरोग तथा ऐसेही और और उपद्रव भी होते हैं।

गरविष के अन्यलक्षण ।

स्वप्नेमार्जारगोमायुव्यालान्सनकुलान् कपीन् ॥ प्रायःपश्यतिनद्यादीन्शुष्कांश्च सवनस्पतीन् ॥ कालश्चगौरमात्मानंस्व प्नेगौरश्चकालकन् । विकर्णनासिकंवापि पश्येत्तद्विहतेन्द्रियः ॥

अर्थ—गरविष से पीड़ित स्वप्न में बिल्ली, सिरकटा, सर्प, नकुल, वन्दर नदी और सूखी वनस्पतियों को देखता है । उसे अपना कालाशरीर गोरा और गोरा शरीर काला दिखाई देता है । उस के कान और नाक विरूप दिखाई देते हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियों में विकलता होती है ।

गरविष में वैद्यकाकर्त्तव्य ।

समवेक्षभिषक्प्राज्ञपृच्छेत्किङ्कैःकदासह । जग्धमित्यवगम्याशुप्रदद्याद्वमनंभिषक् । सूक्ष्मताम्ररजस्तस्मैसक्षौद्रंहृद्विशोधनम् ॥ शुद्धेहृदिततःशाणंहे ःचूर्णस्यदापयेत् । हेमसर्वविषाण्याशुगरांश्चाविनियच्छति । हेमपस्यसजत्यङ्गेनाहिपद्मेऽम्बुवद्विषम् ।

अर्थ—ऊपर कहे लक्षणों से युक्त देखकर बुद्धिमान् वैद्य को पूछना चाहिये कि तुमने किस के साथ कब क्या खाया है । यह पूछकर शीघ्रही तांबेकी भस्म में शहत मिलाकर वमन करावै । ऐसा करने से हृदय शुद्ध होजायगा । हृदय के शुद्धहोने पर एक शाणशुद्ध हेमचूर्ण देवै । सुवर्ण सम्पूर्ण विष और गरविषों को शीघ्रही दूर करदेता है । जैसे । कमल के पत्तेपर जल की बूंद नहीं ठहरसक्ती है उसी तरह सुवर्ण के पीनेवाले के विष नहीं ठहर सक्ता है ।

अन्यप्रयोग ।

नागदन्तीत्रिवृद्दन्तीद्रवन्तीस्नुक्पयःफलैः। साधितंमाहिषंसर्पिःसगोमूत्राढकंहितम् । सर्पकीटविषार्तानांगरार्तानाञ्चशान्तये ॥

अर्थ—नागदन्ती, निसोथ, दन्ती, द्रवन्ती, सेहुंड़ का दूध, मेनफल इन सबका कल्क करके एक आढक गोमूत्रमें एकप्रस्थ भैंसके घी के साथ पकावै । इसके सेवनसे सर्पविष, कीटविष तथा गरविष दूर होजातेहैं ।

अमृतघृत ।

शिरीषत्वक्त्रिकटुकंत्रिफलाचन्दनोत्पले द्वेबलेशारिवास्फोतासुरभीनिम्बपाटला, बन्धुजीवाढकीमूर्वावासासुरसवत्सकान्। पाठाकोलाश्वगन्धार्कमूलयष्ट्याह्वपद्म कान् ॥ विशालांबृहतींलाक्षांके विदारं शतावरीम् । कटभीदन्त्यपामार्गानपृश्नि पर्णीरसाञ्जनम ॥ श्वेतभिण्डाश्वखुरकौ कुष्ठदारुप्रियंगुकाम् । विदारींमधुकात् सारंकरञ्जस्यफलम्वचाम । रजन्यौलो

धमत्तांशंपिष्ट्वासाध्यंघृताढकम् ॥ तुल्याम्बुछागगोमूत्राढकेतद्विषापहम् । अपस्मारत्तयोन्मादभूतग्रहगरोदरम् ॥ पाण्डुरोगानक्रिमीन्गुल्मान्प्लीहोरुस्तम्भकामलाः हनुस्कन्धग्रहादींश्चपानभ्यञ्जननावनैः ॥ हन्यात्सञ्जीवयेच्चापिविषोद्धद्धमृतान्नरान नाम्नेदममृतंसर्वविषाणांस्यादघृतोत्तम मिति ॥

अर्थ—सिरस की छाल, त्रिकुटा, त्रिफला चन्दन, नीलकमल, दोनों वला, सारिवा, आस्फोता, सुरभी, नीम, पाटला, वन्धूक का फूल, अड़हर, मूर्वा, अडूसा, तुलसी, इन्द्र जौ, पाठा, वेर, असगंध, आककी जड़ मुलहटी, पद्माख, इन्द्रायण की जड, वृहती, लाख, कनेर, शतमूली, कटभी, दन्ती, ओंगा, प्रष्णिपर्णी, रसौत, श्वेत अपराजिता, अश्वखुरक, कूठ, देवदारु, प्रियंगु, बिदारीकन्द महुआ का गूदा, कंजाके फल, वच, दोनों हलदी, और लोध ये सब एक एक तोले लेकर पीसलेवै और घृत एक आढक, जल एक आढक, वकरे का मूत्र एक आढक, गोमूत्र एक आढक इन सब को पकाकर सेवन करनेसे विष दूर होजाता है। तथा अपस्मार, क्षयी, उन्माद, भूतग्रह, गरविष, उदररोग, पांडुरोग, क्रिमिरोग, गुल्म, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, कामला, हनुग्रह, स्कन्धग्रह, पान, अभ्यंजन और नस्यकर्म ये नष्ट होजाता है। विषसे मृतप्राय मनुष्यभी इसके सेवन से जी उठता है इसका नाम अमृतघृत है। यह सम्पूर्ण घृतों में उत्तम है।

अध्याय का उपसंहार।

छत्रीजर्जरपाणिश्चचरेत्रात्रौतथादिवा। तच्छायाशब्दवित्रस्ताःप्रणश्यन्त्याशुपन्नगाः ॥ दष्टमात्रोदशेदाशुतंसर्पलोष्टमेववा। उपर्य्यरिष्टांबध्नीयाद्दंशंछिन्द्यादहेत्तथा ॥ वज्रंमरकतंसारंपिचुकोविषमूष्टिका। कर्कोटकमणिःसर्पाद्वैदूर्यगजमौक्तिकम् ॥ धार्य्यङ्गरमणिर्य्याश्चवरौषध्यो। विषापहाः। खगाश्चशारिकाक्रौंश्चशिखिहंसशुकादयः ॥

अर्थ—चाहै रातहो चाहै दिन मनुष्य को उचित है कि हाथ में छत्री वा छडी लेकर निकलै, क्योंकि सर्पादिक छत्री की छाया से और छडी के शब्द से डरकर भाग जाते हैं।

ज्योंही सर्प काटै त्योंही उसी सर्प को काट खाय वा लोहेमें दांतमारै, दंशस्थानसे चारअंगुल ऊपर नीचे वन्द वांधदेवै वा दंशस्थान को काटडालै वा जलादेवै।

हीरा, मरकतमणि, सार, पिचुकी, विषमुष्टिका, कर्कोटक, सर्पकी मणि, वैडूर्यमणि, गजमुक्ता, तथा अन्य अन्य विषनाशक मणियों के धारण करने से भी विष नष्ट होताहै। मेना, क्रौंच, मोर, हंस और तोते आदि पक्षियों का पालना भी हित है।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

इतीदमुक्तंद्विविधस्यविस्तरै।
बहुप्रकारंविषरोगभेषजम्।
अधीत्यविज्ञायतथाप्रयोजयेत्।
व्रजेद्विषाणामविषह्यतांबुधः ॥

अर्थ—इस तरह स्थावर और जंगम दो प्रकार के विषरोगों की बहुतसी चिकित्सा वर्णन की गई हैं। जो इन सब बातों को अच्छी तरह समझकर चिकित्सा करताहै, वह विषरोगों में कभी पराजित नहीं होता है।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेविषचिकित्सितंनाम पञ्चविंशोऽध्यायः॥ २९ ॥

—++—

षटविंशोऽध्यायः।

अथातस्त्रिमर्मीयंचिकित्सितंव्याख्यास्यामः इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अबहम त्रिमर्मीय नामक चिकित्सिताध्यायकी व्याख्या करेंगे।

मर्मसंख्या।

सप्तोत्तरंमर्मशतंयदुक्तं।
शरीरसंख्यामधिकृत्यतस्मात्॥
मर्माणिवस्तिंहृदयंशिरश्च।
प्रधानभूतानिवदन्तितज्ज्ञाः॥
प्राणाशयान्तानिहपीडयन्तो।
वातादयोऽसूनपिपीडयन्ति॥
तत्संश्रितानामनुपालनार्थं।
महागदेभ्यःशृणुसौम्य! रत्ताम॥

अर्थ—शरीरसंख्या के अधिकार एकसौ सात मर्म वर्णन कियेगये हैं, उनमें से वस्ति हृदय और शिर ये तीन प्रधान मर्म हैं। वातादिक दोष इनप्राणाशय मर्म्मों को पीड़ित करते हुए प्राणों को नष्ट कर देते हैं। अबे हे सौम्य! मैं उन महारोगों का निदान और उनकी चिकित्साका वर्णन करता हूं जो इन मर्म्मों के आश्रित हैं।

कुपितवातकेकर्म

कषायतिक्तोषणरूक्षभोज्यैः।
सन्धारणाभोजनमैथुनैश्च॥
वायुर्विवृद्धःप्रकरोतितीव्रं।
विण्मूत्रवातग्रहमेत्यवस्तिम्॥
स्रोतांस्यधोवर्त्तमधोगमानि।
बद्धाह्यपावृत्यकरोत्यपानः॥

अर्थ—कषाय, तिक्त, कटु और अत्यन्त रूक्ष भोजनों के करने से, मलमूत्रादि वेगों के रोकने से, उपवास करने से वा अत्यन्त मैथुन करने से वढ़ीहुई अपानवायु अधोगामी स्रोतों को बद्ध कर के ऊपरको लौटतीहै और वस्तिमें पहुंचकर घोर विडग्रह, मूत्रग्रह और अधोवातग्रह रोगोंको उत्पन्न करती है ('वायुर्विवृद्धः' से 'करोत्यपानः' तक पाठान्तर भी है यथा "पक्वाशयेकुप्यतिचेदपानः स्रोतस्यधोगानिबलीसरुद्धा। करोतिविण्मारुतमूत्रसंगं क्रमादुदावर्त्तमतःसुघोरम्")॥

उदावर्त्तजन्यरोग।

रुग्वस्तिहृत्कुच्युदरेष्वभीक्ष्णं।
सपृष्ठपार्श्वेष्वतिदारुणास्यात्॥
आध्मानहृल्लासविकर्त्तिकाश्च।
तोदोविपाकश्चसवस्तिशोथः।
दोषाःप्रवृद्धजठरेचगण्डान्।
ऊर्द्ध्वञ्चवायुर्विहितोगुदेस्यात्॥

कृच्छ्रेणशुष्कस्यचिरात्प्रवृत्तिः ।
स्याद्वातनुःस्यात्खररूक्षशीता ॥
ततश्चरोगाज्वरमूत्रकृच्छ्र ।
प्रवाहिकाहृद्ग्रहणीप्रदोषाः ॥
वम्यान्ध्यवाधिर्य्यशिरोऽभिताप ।
वातोदराष्ठीलमनोविकाराः ॥
तृष्णास्रपित्तारुचिगुल्मकास ।
श्वासप्रतिश्यार्दितपार्श्वरोगाः ॥
अन्येचरोगाबहवोऽनिलोत्था ।
भवन्त्युदावर्त्तकृताःसुघोराः ॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए व्यतिक्रमसे उदावर्त्त रोग के होनेपर वस्ति, हृदय, कूख, और उदर में निरन्तर वेदना होती है। पीठ और पसलियों में दारुणशूल होने लगता है। तथा आध्मान, हृल्लास, विकर्त्तिका (ऐंठा), तोद, विपाक, और वस्तिशोथ उपस्थित होते हैं और बढ़ेहुए दोष, जठर में गण्ड और ऊर्ध्ववात को प्रवृत करते हैं जो दस्त होता भी है तौ पतला, रूखा, शीतल, कठिनतासे, देरमें सूखाहुआ थोड़ा थोड़ा होता है। तदनन्तर ज्वर, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका, हृद्दोष, ग्रहणीदोष, वमन, अन्धता, बहरापान, शिरमें जलन, वातोदर, वातष्ठीला, मनोविकार, तृष्णा, रक्तपित्त, अरुचि, गुल्म, खांसी, श्वास, प्रतिश्याय, अर्दित, पार्श्वरोग तथा और और भी वहुत से वातजरोग उत्पन्न होते हैं।

वातजरोगोंमें चिकित्सा ।

तंतैलशीतज्वरनाशनोक्तं ।
स्वेदैर्यथोक्तैःप्रविलीनदोषम् ॥
उपाचरेद्वर्त्तिनिरूहवस्ति ।
स्नेहैर्विरेकैरनुलोमनान्नैः ॥

अर्थ—ऐसे रोगी को प्रथमही शीतज्वर नाशक तैल का अभ्यंग और यथोक्त पसीने देकर दोषों को दूरकर देवै और फिर वर्त्ति, निरूहणवस्ति, स्निग्धविरेचन और अनुलोमनकर्त्ता औषधियों द्वारा उपचारकरै।

उदावर्त्त में वर्त्ति विधि ।

श्मामात्रिवृन्मागधिकाग्निचूर्णं ।
गोमूत्रपीतंदशभागमाषम् ॥
सनीलिकंद्विर्लवणंगुडेन ।
वर्त्तिकरांगुष्ठनिभांविदध्यात् ॥

अर्थ—कालीनिसोथ, पीपल, चीता और नीलिका ये सब दस दस माशे लेवै और इन से दूना नमक मिलाकर गौकेमूत्र में घोट डालै फिर गुड़ मिलाकर अंगूठे के बराबर बत्ती बनाकर गुदा में प्रवेश करके वांधदेवै और थोड़ीदेर पीछे वत्ती निकालकर फेंक देवै ऐसा करने से उदावर्त्त दूर होजाता है।

अन्यप्रयोग ।

पिण्याकसौवर्चलहिंगुभिर्वा ।
ससर्षपत्र्यूषणयावशूकैः ॥
क्रिमिघ्नकम्पिल्लकशंखिनीभिः ।
सुधार्कजक्षीरगुडैर्युताभिः ॥
स्यात्पिप्पलीसर्षपराठवेश्म ।
धूमैःसगोमूत्रगुडश्चवर्त्तिः ॥

अर्थ—तिलका कल्क, संचलनमक, हींग सफेद सरसों, त्रिकुटा और जवाखार इनकी गुड़ के साथ वत्ती बनाकर गुदा वें प्रवेश

करै । अथवा वायविडंग, कवीला, शंखिनी सेंहुडका दूध, आकका दूध इनकी गुड़ के साथ वत्ती वनाकर गुदा में रक्खै । अथवा पीपल, सफेद सरसों, मैंनफल, गृहधूम इन की गोमूत्र और गुड के साथ वत्ती वनाकर गुदा में लगावै ।

श्यामाबलालाबुकपिप्पलीनां ।
नाड्याथवाचप्रधमेत्तुचूर्णम् ॥
रक्षोघ्नतुम्बीकिरहाटकृष्णा ।
चूर्णंसजीमूतकसैन्धवंवा ॥
स्निग्धेगुदेतान्यनुलोमयन्ति ।
नरस्यवर्चोऽनिलमूत्रसङ्गम् ॥

अर्थ—कालीनिसोथ, खरैटी, घीया के वीज, पीपल इनके चूर्ण को एक नल के में भरकर गुदामें लगाकर फूंक मार देवै (कहीं २ ऐसा पाठभी है " श्यामाफलेक्ष्वाकुसपिप्पलीकं ,,) ।

सरसों, तुम्बी, मेनफल, पीपल, तोरई और सेंधानमक इस चूर्ण का भी पूर्वोक्त रीति से प्रधमन करै । प्रथम गुदा को स्निग्ध करके ऊपर कहे हुए वार्ति और चूर्ण प्रयोगों के करने से विष्ठा, वायु और मूत्र इनके विवन्ध का अनुलोमन होता है ।

निरूहण वस्तिविधान ।

तेषांविघातेतुभिषग्विदध्यात् ।
स्वभ्यक्तसुस्विन्नतनोर्निरूहम् ॥
ऊर्ध्वानुलोमौषधमूत्रतैल ।
क्षाराम्लवातघ्नयुतंसुतीक्ष्णम् ॥
वातेऽधिकेऽम्लंलवणंसतैलं ।
क्षीरेणपित्तेतुकफेसमूत्रम् ॥
समूत्रवर्चोऽनिलसङ्गमाशु ।
शिरागुदञ्चप्रगुणीकरोति ॥

अर्थ—वत्ती और चूर्ण द्वारा कुछ लाभ न होने पर रोगी को अच्छी तरह तैल मर्दन और पसीने देकर निरूहणवस्तिदेवै । यह निरूहण वस्ति ऊर्ध्वानुलोमनकर्त्ता औषध मूत्र, तैल, क्षार, अम्ल तथा वातनाशक औषधियों के संयोग से अत्यन्त तीक्ष्ण होनी चाहिये ॥ वाताधिक्य उदावर्त में खटाई, नमक और तेल होना चाहिये । पित्ताधिक्य में दूधयुक्त तथा कफाधिक्य में गोमूत्रयुक्त निरूहणवस्ति देवै । इन प्रयोगों के करने से विष्ठा, मूत्र और अधोवायु का विवन्ध दूर होजायगा और शिरा तथा गुदा अपने निजगुण को प्राप्तहोंगी ।

अन्यकर्तव्य कर्म ।

त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाकं ।
ग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम् ॥
अन्यैश्चसृष्टानिलमूत्रविड्भि ।
रद्यात्प्रसन्नागुडशीधुपायी ॥
भूयोऽनुबन्धेतुभवेद्विरेच्यो ।
मूत्रप्रसन्नादधिमण्डयुक्तैः ॥

अर्थ—इस रोग में निसोथके पत्ते, सेंहुड के पत्ते और तिलादिका शाक हित है ग्राम्य आनूप और औदक मांस रसके साथ जौ के पदार्थों का भोजन करै । तथा मल, मूत्र और अधोवायु के निकालने वाले अन्यद्रव्यों के साथ भी यवान्न भक्षण करै । ऊपरसे प्रसन्ना, और गौरीय शीधुका अनुपान करै । यदि इन उपायों के करनें पर मल मूत्रादि

की विवन्धता एक वार दूर होकर फिर उत्पन्न हो तौ गौमूत्र,प्रसन्ना और दधिमंड के संयोगसे फिर विरेचन देवै।

गुलमोदरब्रध्नार्शःप्लीहोदावर्तयोनिशुक्र गदे ॥ मेदःकफसंसृष्टमारुतरक्तेऽवगाढे च। गृद्ध्नसिपक्षवधादिषुविरेचनार्हेषु वातरोगेषु ॥ वातेनिबद्धमार्गेमेदःकफपित्तरक्तेन। पयसामांसरसैर्वात्रिफलारस यूषमूत्रमदिराभिः॥ दोषानुबन्धयोगात् प्रशस्तमेरण्डजंतैलम्। तद्वातनुत्स्वभा वात्संयोगवशाद्विरेचनाच्चजयेत्॥ मेदोऽसृक्पित्तकफान्मिश्रानिलवरोगजित्स्यात्

अर्थ—गुल्मरोग, उदररोग, ब्रध्न, अर्शरोग, प्लीहा, उदावर्त, योनिरोग, शुक्ररोग मेदा से संसृष्ट वा कफसे संसृष्ट अवगाठ वातरक्त, गृध्रसी, पक्षाघात, तथा अन्य विरेचन के योग्य वातरोग, मेद वा कफ वा पित्तरक्त द्वारा निवद्ध मार्गवाला वातरोग इन सब रोगों में दोष के अनुवन्धके अनुसार दूध, मांसरस, त्रिफला का क्वाथ, यूष, गोमूत्र वा मदिरा के साथ अंडी के तेल का विरेचन देवै। यह अंडी का तेल स्वभाव से वातनाशक है और औषधियों के संयोग वश से विरेचन कर्त्ता भी है इससे यह मेद रोग, रक्तपित्त और कफवातरोगों को नष्ट कर देता है।

अण्डीके तेलकी मात्राका प्रमाण ॥

बलकोष्ठव्याधिवशादापञ्चपलाभवेन्मात्रा। मृदुकोष्ठावलानांसहभोज्यंतंप्रयोज्यंस्यात्॥

अर्थ—शरीर के वल, कोष्ठ और व्याधि के प्रसंगसे अंडी के तेलकी मात्रा पांचपल पर्य्यन्त है। मृदुकोष्ठवाले और दुर्वलों के लिये यह भोजन में मिलाकर देना चाहिये।

विरेचनकापश्चात् कर्म ॥

स्वस्थन्तुपश्चादनुवासयेत्तम्।
रौक्ष्याद्विसङ्गोऽनिलवर्चसोश्चेत्॥

अर्थ—स्वस्थ होनेपर विरेचन के पीछे रूक्षता के कारण यदि वातप्रकोप से विष्टा का विवन्ध हो तौ अनुवासन वस्ति देवै॥

उदावर्त्तमेंचिकित्साकेप्रयोग।

द्विरुत्तरंहिंगुवचासकुष्ठा।
सुवर्चिकाचैवविडङ्गचूर्णम्॥
सुखाम्बुनाऽऽनाहविषूचिकार्ति।
हृद्रोगगुल्मोर्द्ध्वसमीरणघ्नम्॥
वचाभयाचित्रकयावशूकान्।
सपिप्पलीकातिविषान्सकुष्ठान्॥
उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्।
पीत्वाजयेदाशुरसौदनाशी॥

अर्थ—हींग, वच, कूठ, संचलनमक,और वायविडंग इनको उत्तरोत्तर द्विगुण लेकर चूर्ण करले और गरम जल के साथ फांकै तौ इससे आनाह, विसूचिका, अर्त्ति हृद्रोग, गुल्म और ऊर्ध्ववात दूर होजाते हैं।

वच, हरड़, चीता, जवाखार, पीपल, अतीस और कूठ इन के चूर्ण को गरम जल के साथ फांकै तौ आनाह और मूढ़ वात दूर होजातेहैं। इसपर मांसरस और चांवल का पथ्य होता है।

स्थिरादिवर्गस्यपुनर्नवायाः।

शम्याकपूतीककरञ्जयोश्च ॥
सिद्धःकषायेद्विपलांशिकानां ।
प्रस्थोघृतात्स्यात्प्रतिरुद्धवाते ॥

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूल, सांठ,श्यामाक, पूतिकंजा इनको दो दो पललेकर क्वाथ करै, चौथाई, शेष रहनेपर उतार कर छान लेवै और इस में एक प्रस्थ घृत डालकर पकावै यह घृत रुद्धवात में हित है ॥

फलञ्चमूलञ्चविरेचनोक्तं ।
हिंग्वर्कमूलंदशमूलमग्र्यम् ॥
स्नुक्चित्रकौचैवपुनर्नवाच ।
तुल्यानिसर्वैर्लवणानिपञ्च ॥
स्नेहैःसमूत्रैःसहजर्जराणि ।
शरावसन्धौविपचेत्सुलिप्ते ॥
पक्वंसुपिष्टंलवणंतदन्नैः ।
पानैस्तथानाहरुजघ्नमग्र्यम् ॥

अर्थ—विरेचनोक्त फलमूल, हींग,आक की जड़, दशमूल, चीता, सेंहुड़, चीता, सांठ ये सब समानभाग लेवै और इनसब के बराबर पांचों नमक मिलाकर कूटडाले इस में स्नेह और गोमूत्रादिक मिलाकर शराब संपुट में रखकर कपड़मिट्टी करके फूंक लेवै । पक्व होनेपर पीसकर इस नमक को अन्नपान के साथ सेवन करै । यह आनाह के दूर करने में सर्वोत्कृष्ट है ।

हृत्स्तम्भमूर्धाशयगौरवार्त्या ।
चोद्गारसङ्गेनसपीनसेन ॥
आनाहमामप्रभवञ्जयेत्तं ।
प्रच्छर्दनैर्लंघनपाचनैश्च ॥

अर्थ—हृत्स्तम्भ,शिरोरोग, भारापन, डकार का बन्द होना, पीनस इन रोगों से युक्त आम से उत्पन्न हुए आनाह रोगमें, वमन, लंघन और पाचन प्रयोग करै ॥

हिंगूग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजी ।
हरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् ॥
यथोत्तरंभागविवृद्धमेतम् ।
प्लीहोदराजीर्णविसूचिकासु ॥

अर्थ—हींग, वच, विडनमक, सोंठ, कालाजीरा, हरड़, पौहकरमूल, कूठ, इनसब औषधों को उत्तरोत्तर एक एक भाग बढ़ाकर चूर्ण बनाकर सेवन करै तो प्लीहा, उदररोग, अजीर्ण, और विसूचिका नष्ट होजाते हैं ।

मूत्रकृच्छ्रका निदान ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्य ।
प्रसङ्गनित्यद्रुतपृष्ठयानात् ॥
आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात् ।
स्युर्मूत्रकृच्छ्राणिनृणामिहाष्टौ ॥

अर्थ—शारीरिक परिश्रम,तीक्ष्ण औषध रूक्षसेवन, मद्यप्रसंग, स्त्री संसर्ग,शीघ्रगमन उछल उछल कर चलने वाले उष्ट्रादि की पीठ पर सवारी, आनूप और मत्स्यमांस का अतिशय सेवन, अध्यशन, अजीर्ण में भोजन इत्यादि हेतुओं से मनुष्यों के आठ प्रकार के मूत्रकृच्छ्र होते हैं ।

कृच्छ्रतासे प्रस्राव का कारण ।

पृथङ्मलाःस्वैःकुपितानिदानैः ।
सर्वेऽथवाकोपमुपेत्यवस्तौ ।
मूत्रस्यमार्गंपरिपीडयन्ति ॥

यदातदामूत्रयतीहकृच्छ्रात् ॥

अर्थ—अपने अपने करणों से एक एक दोष अथबा सब एक साथ कुपित होकर वस्ति में पहुंचकर मूत्रमार्ग को पीडित करते हैं तब वहुत थोडा थोडा बडी कठिनता से प्रस्राव होता है ।

वातजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण ।

तीव्राहिरुग्वंक्षणवस्तिमेढ्रे ।
स्वल्पंमुहुर्मूत्रयतीहवातात् ॥

अर्थ—वातज मूत्रकृच्छ्र में प्रस्राव करने के समय वंक्षण, वस्ति और मेढ़ में वडी तीव्र वेदना होती है और प्रस्राव थोड़ा थोडा वड़ी कठिनता से उतरता है ।

पित्तजमूत्र कृच्छ्रके लक्षण ।

पीतासृक्कृष्णंहिसरुक्सदाहं ।
कृच्छ्रान्मुहुर्मूत्रयतीहपित्तात् ॥

अर्थ—पित्तजमूत्रकृच्छ्र में पीला,लाल वा काला प्रस्राव वड़ी वेदना और दाह के साथ वार वार होता है ।

कफजमूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

वस्तेःसलिंगस्यगुरुत्वशोफौ ।
मूत्रंसपिच्छंकफमूत्रकृच्छ्रे ।

अर्थ—कफजमूत्रकृच्छ्र में वस्ति और लिंग में भारापन और सूजन होती है और मूत्र गिलगिला उतरता है ।

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात् ।
भवन्तिततकृच्छ्रतमन्तुकृच्छ्रम् ॥

अर्थ—सन्निपातजमूत्रकृच्छ्र में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं । यह वहुतही कृच्छ्रसाध्य होता है ।

अश्मरीनिदान ।

विशोषयेद्वस्तिगतन्तुशुक्रं ।
मूत्रंसपित्तंपवनःकफंवा ॥
यदातदाश्मर्युपजायतेतु ।
क्रमेणपित्तेष्विवरोचनागौः ॥

अर्थ—जब वायु किसी कारणसे वस्ति में पहुंचे हुए शुक्र को सुखा देती है वा पित्त सहित कफको सुखा देती है तब क्रम २ से वर्द्धमान अश्मरी (पथरी) उत्पन्न होती है जैसे गौके पित्ते में गोरोचन उत्पन्न होता है ।

अश्मरी की आकृति ।

कदम्बपुष्पाकृतिरश्मतुल्या ।
श्लक्ष्णात्रिपुट्याप्यथवापिमृद्वी ॥

अर्थ—अश्मरी कदम्ब के फूलके सदृश वा पत्थर के तुल्य चिकनी, तिखूंटी वा कोमल भी होती है ।

अश्मरी के कर्म ।

मूत्रस्यचेन्मार्गमुपैतिरुंघा ।
मूत्रंरुजांतस्यकरोतिवस्तौ ॥
ससीवनीमेहनवस्तिशूलं ।
विशीर्णधारञ्चकरोतिमूत्रम् ॥
मृद्नातिमेढ्रंसतुवेदनार्तो ।
मुहुःशकृन्मुञ्चतिमेहतेच ॥
क्षोभात्क्षतेमूत्रयतीहसासृक् ।
तस्याःसुखंमेहतिचव्यवायात् ॥

अर्थ—जब अश्मरी मूत्रमार्ग में पहुंच जाती है तब मूत्रके मार्ग को रोकदेती

है और वस्ति में अत्यन्त वेदना उत्पन्न करती है। सीवनीसे लेकर मेढ़ पर्य्यंत वस्ति में वड़ा शूल होता है, उस समयमूत्र की धर फटजाती है और वेदना के कारण रोगी मेढ़ को पकड़कर मसल डालता है और वार २ रोगी पुरीषोत्सर्ग और मूत्र करता है। मसल ते २ मेढ़के भीतर घाव होजाता है तव उसमें से रुधिर आने लगता है, तथा उस के व्यवाय से सुखपूर्वक प्रसाव होने लगता है।

शर्करा के लक्षण।

एषाश्मरीमारुतभिन्नमूर्त्तिः।
स्याच्छर्करामूत्रपथात्क्षरन्ती॥

अर्थ—जब यह अश्मरी वायु के कारण छिन्न भिन्न होकर मूत्रमार्ग के साथ निकलती है तव इसे शर्करा कहते हैं। * ॥

शुक्रंमलाश्चेदपृथक्पृथग्वा।
मूत्रायनस्थाःप्रतिवारयन्ति॥
तद्व्याहतंमेहनवस्तिशूलं।
मूत्रंसशुक्रंहिकरोतिबद्धम्॥
स्तब्धश्चशूनोभृशवेदनश्च।
तुद्येतवास्तिर्वृषणौचतस्य॥

अर्थ—जब दोष पृथक् २ वा सब मिलकर मूत्रमार्ग का अवलम्वन करके शुक्र को निकलने से रोकदेते हैं और वीर्यके कारण मूत्र भी रुकजाता है उस समय मेढ़ और वस्ति में अत्यन्त शूल होता है। तथा वस्ति और मेढ़ में स्तब्धता, सूजन और अत्यन्त वेदना होती है और वस्ति तथा अंडकोशोंमें सुई छिदने कीसी पीड़ा होतीहै।

अन्यअश्मरीका कारण।

क्षताद्विघातात्क्षतजंक्षयाद्वा।
प्रकोपितंवस्तिगतंविवद्धम्॥
तीब्रार्तिमूत्रेणमहाल्पमल्प।
मायातितस्मिन्नतिसञ्चितेच॥
आध्मातताविन्दातिगौरवश्च।
वस्तेर्लघुत्वञ्चविनिःसृतेऽस्मिन्॥

अर्थ—मेढ़ के भीतर घाव होने से वस्ति में चोट लगने से अथवा रक्तादि धातुओं के क्षीण होने से रक्तादि द्रव्योंको कुपित कर के वस्ति में लेजाकर रोकदेते हैं और तव अत्यन्त वेदना से युक्त होकर मूत्र के साथ धीरेधीरे वाहर निकलती है और जो यह भीतर वहुत संचित होजाय तौ वस्ति में आध्मान और भारापन होता है और जो निकलजाय तौ हलकापन रहता

---

* किसी २ पुस्तक में यह पाठ अधिक है यथा–रेतोऽभिघाताभिहतस्य पुंसःप्रवर्त्तयेत्तस्यतुमूत्रकृच्छ्रम्। स्यात्वेदनावंक्षणवस्ति मेढे तस्यातिशूले वृषणातिवृत्ते। शुक्रेणसंरुद्ध गतिः प्रवाहो मूत्रं सकृच्छ्रेण विमुञ्चतीह। तमाण्डयोः स्तब्धमिति ब्रवन्ति रेतोऽभिघाते प्रवदन्ति कृच्छ्रम्॥ अर्थात् मूत्र के अभिघात से जो अश्मरी होता है वह पुरुषों केही होती है और वीर्य के अभाव से स्त्री और वालकों के नहीं होती। इस में वंक्षण,वस्ति और मेढ़ में अत्यन्त वेदना होती है। वीर्य से मूत्रका मार्ग रुक जाने के कारण मूत्र कठिनतासे होता है। इस रेतोऽभिघात मूत्र कृच्छ्र को अण्डस्तब्ध कहते हैं।

है (गंगाधर शास्त्री ने 'महाल्पमल्पमायाति' की जगह "महाश्मरीत्वमायाति" ऐसा पाठ किया है परन्तु प्रसंग विरुद्ध मालूम पड़ता है ॥

वातजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्ति ।
स्नेहोपनाहोत्तरवस्तिसेकान ।
स्थिरादिभिर्वातहरैश्चसिद्धान् ।
युञ्ज्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥
पुनर्नवैरण्डशताबरीभिः ।
पत्तुरवृश्चीबलाश्मभिद्भिः ॥
द्विपञ्चमूलेनकुलत्थकोलं ।
यवैश्चतोयोत्क्वथितेकषाये ॥
तैलंवराहर्क्षवसाघृतञ्च ।
तैरेवकल्कैर्लवणैश्चसाध्यम् ।
तन्मात्रयाशुप्रतिहन्तिपीतं ।
शूलान्वितंमारुतमूत्रकृच्छ्रम् ॥

अर्थ—वातजमूत्रकृच्छ्रमेंअभ्यंजन,स्नेह, निरूहणवस्ति, स्नेहोपनाह, उत्तरवस्ति, परिषेक तथा शालिपर्णी से आदि लेकर वातनाशक द्रव्यों से सिद्ध कियेहुए मांसरसका प्रयोग करै ।

पुनर्नवा, एरण्ड,शतावरी, पत्तूर,वृश्चीर, खरैटी, पाखान भेद, दशमूल, कुलथी, वेर, जौ इन सबके क्वाथ में इन्ही का कल्क और पांचों नमक डालकर तेल, वराह की चर्वी,रीछकीचर्वी और घीकोसिद्धकरै। इसका मात्रावत् सेवन करने से शूलान्वित वातज मूत्रकृच्छ्र शीघ्रही दूर होजाता है॥ यहां गंगाधर शास्त्री यह लिखते हैं कि पुनर्नवादि पहिले तीन द्रव्यों में उन्हीका कल्क और पांचोंनमक डालकर घी, वसाआदि सिद्ध करै। दूसरा घृत पत्तूरादि चार द्रव्यों से करै, तीसरा दशमूल में सिद्ध करै और चौथा कुलत्थादि शेष द्रव्यों में करै ।

एतानिचान्यानिवरौषधानि ।
सर्वाणिशस्तान्यपिचोपनाहे ॥
स्युर्लोभतस्तैलफलानिचैव ।
स्नेहाम्लयुक्तानिसुखोष्णवन्ति ॥

अर्थ—ऊपर कहीहुई औषधें तथा अन्य उत्तम उत्तम औषधों को तैलफल (तिल वा अलसी) स्नेह और अम्लद्रव्यों के साथ पीसकर गरम गरम उपनाह में प्रयोग करै ॥

पित्तजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ।

सेकावगाहाःशिशिराःप्रदेहा ।
ग्रैष्मोविधिर्वस्तिपयोविरेकाः ॥
द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च ।
कृच्छ्रेषुपित्तप्रभवेषुकार्याः ॥
शतावरीकाशकुशाश्वदंष्ट्रा ।
विदारिशालीक्षुकशेरुकाणाम् ॥
क्वाथंसुशीतंमधुशर्कराभ्यां ।
युक्तंपिवेत्पैत्तिममूत्रकृच्छ्री ॥
पिवेत्कषायंकमलोत्पलानां ।
शृङ्गाटकानामथवाविदार्याः ॥
दण्डोत्पलानामथवापिमूलं ।
पूर्वेणकल्केनतथासुशीतम् ॥
एर्वारुवीजन्त्रपुषात्कुसुम्भान् ।
सकुंकुमंस्याद्वृषकश्चपेयः ॥
द्राक्षारसेनाश्मरिशर्करासु ।

सर्वेषुकृच्छ्रेषुप्रशस्तएषः ॥
एर्वारुबीजंमधुकंसदार्वि ।
पैत्तेपिबेत्तण्डुलधावनेन ॥
दार्वींतथैवामलकीरसेन ।
समाक्षिकांपित्तकृतेतुकृच्छ्रे ॥

अर्थ—पित्तजमूत्रकृच्छ्र में सेक,अवगाह, शीतल प्रदेह, ग्रैष्मिक क्रिया, तथा दाख, विदारीकन्द का रस, ईखकारस और घृत द्वारा वस्ति प्रयोग,दूध और विरेचन देवै ।

सितावर कांस, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द ईख और कसेरू इन के क्वाथ को ठंडा कर के शहत और शर्करा मिलाकर पीने से पैत्तिकमूत्रकृच्छ्र अच्छा होजाताहै।

कमल और नीलकमल का क्वाथ अथवा सिंघाडे का क्वाथ अथवा विदारीकन्द का क्वाथ अथवा दंडोत्पलकी जड़का कषाय ठंडा होने पर शहत और चीनी डालकर पान करे ।

ककडी के वीज, खीराके वीज, कसूमके वीज, कुंकुम और अडूसा इन को पीसकर दाख के रस के साथ सेवन करै तौ अश्मरी शर्करा तथा सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र दूर होजाते हैं ।

ककड़ी केवीज, मुलहटी और दारुहलदी इन को पीसकर तंडुल जल के साथ पान करै ।

दारुहलदी को पीसकर आंवले के रसके साथ शहत मिलाकर पीवै तौ पित्तज मूत्र कृच्छ्र दूर होजाता है ।

कफजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं ।
स्वेदोयवान्नंवमनंनिरूहा ॥
तक्रंसतिक्तौषधसिद्धतैल ।
मभ्यङ्गपानंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥
व्योषंश्वदंष्ट्रात्रुटिसारसास्थि ।
कोलप्रमाणोमधुमूत्रयुक्तम् ॥
पिबेत्त्रुटिंक्षौद्रयुतांकदल्या ।
रसेनकैडर्यरसेनवापि ॥
तक्रेणयुक्तंसितमारकस्य ।
बीजंपिबेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः ॥
पिबेत्तथातण्डुलधावनेन ।
प्रवालचूर्णंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥
सप्तच्छदारग्वधकेम्बुकैला ।
धवंकरञ्जंकुटजंगुडूचीम् ॥
पक्त्वाजलेतेनपिबेद्यवागूं ।
सिद्धंकषायंमधुसंयुतंवा ॥

अर्थ—कफज मूत्रकृच्छ्र में क्षार, उष्ण और औषध, उष्ण और तीक्ष्ण अन्नपान, स्वेदन, जौ का अन्न, वमन निरूहण, तक्र तथा तिक्त औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए तेल का अभ्यंग और पान हित है ।

त्रिकुटा, गोखरू, छोटी इलायची, कमलगट्टाकी मिंगी इनको एक एक तोले लेकर शहत और गोमूत्र के साथ पान करै । अथवा छोटी इलायची और शहत को केला के रस के साथ अथवा केवटी मोथाके रस के साथ पान करै । अथवा शालिंचकेबीजों को तक्र के साथ पान करै अथवा तंडुल जल के साथ मूंगाकी भस्म को पानकरै ।

सप्तपर्ण, अमलतास का गूदा, केवुक, छोटी इलायची, धव, कंजा, कुड़ाकी छाल और गिलोय इनसबके क्वाथ में यवागू सिद्ध कर के सेवन करै अथवा इन के कषाय में शहत डालकर पीवै।

सान्निपात्तिकमूत्रकृच्छ्रमेंचिकित्सा।

सर्वैत्रिदोषप्रभवेतुवायोः।
स्थानानुपूर्व्याप्रसमीक्ष्यकार्यम् ॥
त्रिभ्योऽधिकेप्राग्वमनंकफेतु।
पित्तेविरेकःपवनेतुवस्ति ॥

अर्थ—सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्रमें जो तीनों दोष समान हों तौ वायु को प्रधान समझकर चिकित्सा करै। यदि तीनों दोषों में कफकी अधिकता हो तौ प्रथम वमन करावै। पित्त की अधिकतामें विरेचन और वातकी अधिकता में वस्ति देवै ॥

क्रियाहितात्वश्मरिशर्कराभ्यां।
कृच्छ्रेयथैवेहकफानिलाभ्याम्।
कफाश्मनांभेदनिपातनाय।
विशेषयुक्तंशृणुकर्मसिद्धम् ॥

अर्थ—कफवात के मूत्रकृच्छ्र में जो जो चिकित्सा कही गई हैं वेही अश्मरी और शर्करा में हित होती हैं अब कफजन्य अश्मरी के टुकड़े करके निकालने के लिये जो विशेष युक्तियां हैं उन को वर्णन करते हैं।

अश्मरी में चिकित्सा।

पाषाणभेदंवृषकंश्वदंष्ट्रा।
पाठाभयाव्योषशटीनिकुम्भाः॥
हिंस्रीखराश्वासितिमारकाभ्या।
मैर्वारुकाणांत्रपुषस्यबीजम् ॥
उत्कुञ्चिकाहिंगुसवेतसाम्लं।
स्याद्द्वेबृहत्यौहपुषावचाच।
चूर्णपिबेदश्मभिदापिबकं।
सर्पिश्चगोमूत्रचतुर्गुणन्तैः।

अर्थ—पारवान भेद, अडूसा, गोखरू, पाठा, हरड़, त्रिकुटा, कचूर, दन्ती, हिंस्री खुरासानी अजवायन, शालिंचबीज, ककड़ीके बीज, खीराकेबीज, कालाजीरा, हींग, अम्लवेत, दोनों कटेरी, हाऊबेर, वच, इनके चूर्ण को पीनेसे अश्मरी नष्ट होजातीहै। अथवा इसी के कषाय में इनका कल्क और चौगुना गोमूत्र डालकर घी पकावै। इस घृत के सेवन करने से भी अश्मरी दूर हो जाती हैं।

अन्यप्रयोग।

मूलंश्वदंष्ट्रेचुरकोरुबूकात्।
क्षीरेणपिष्टंबृहतीद्वयञ्च ॥
आलोड्यदध्नामधुरेणपेयं।
दिनानिसप्ताश्मरिभेदनाय।
पुनर्नवायोरजसीश्वदंष्ट्रा।
फल्गुप्रवालाश्चसदर्भपुष्पाः ॥
क्षीराम्बुमद्येक्षुरसैःसुपिष्टं।
पेयंभवेदश्मरिशर्करासु ॥

अर्थ—गोखरू, तालमखाने, अरंडकी जड़, इन को पीसकर दूध के साथ पान करै दोनों कटेरियों को पीसकर मीठे दही में मिलाकर सात दिन तक पीवै तौ अश्मरी दूर होजाती है।

पुनर्नवा, लोहभस्म, गोखरू, कठूमर, मूंगा और दर्भपुष्प इन को पीसकर दूध, जल,

मद्य वा इक्षुरस के साथ पीवै, इसके पीने से अश्मरी और शर्करा दूर होजाती हैं ।

त्रुटिंसुराह्वंलवणानिपञ्च ।
यवाग्रजंकुन्दुरुकाश्मभेदौ ॥
काम्पिल्लकंगोक्षुरकस्यवीज ।
मेर्वारुवीजंत्रपुषस्यवीजम् ॥
चूर्णीकृतंचित्रकहिंगुमांसी ।
यमानितुल्यंत्रिफलाद्विभागम् ।
अम्लैसशुक्तैःरसमद्ययूषैः ।
पैयंहिगुल्माश्मरिभेदनार्थम् ॥

अर्थ—छोटी इलायची, देवदारु, पांचों नमक, जवाखार, कुन्दरू, पाखान भेद, कबीला गोखरू के वीज, ककडी के वीज, खीराके वीज इन सब का चूर्ण कर लेवै तथा चीता हींग, जटामांसी, अजवायन और त्रिफला इनका चूर्ण पहिले चूर्ण से दूना इन सब को मिलाकर अम्ल, शुक्त, रस, मद्य और यूष के साथ पान करने से गुल्म और अश्मरी दूर होजाते हैं ।

शिग्रोस्तुयूषोमृदुमूलकल्का ।
द्विल्वप्रमाणाद्घृततैलभृष्टात् ॥
शीतोष्मभित्स्याद्दधिमण्डसिद्धः ।
पेयःप्रकामंलवणेनयुक्तः ।
जलेनशोभाञ्जनमूलकल्कः ।
श्रृतोहितश्चाश्मरिशर्कराभ्याम् ॥

अर्थ—सहजन के जडका कल्क दो तोले लेकर उसका क्वाथ करै और उस में कुलत्थादि यूष तयार करके घी वा तेल में छोंक देवै और दधिमंड के साथ सिद्ध करके नमक मिलाकर शीतल होने पर यथेष्ट पान करै इससे अश्मरी नष्ट होजाती है ।

जलके साथ सहजने की जड़का कल्क सिद्ध करके सेवन करने से अश्मरी और शर्करा दूर होजाते हैं ।

सितोपलावासमयावशूकाः ।
कृच्छ्रेषुसर्वेष्वपिभेषजंस्यात् ।
पीत्वाचमद्यंनिगदंरथेन ।
हयेनवाशीघ्रजवेनयायात् ॥
तैःशर्कराप्रच्यवतेऽश्मरीतु ।
शाम्येन्नचेच्छल्यविदुद्धरेत्ताम् ॥

अर्थ—सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्रों में समान भाग मिश्री और जवाखार हित हैं। निगद नामक मद्यका पान करके शीघ्रगामी रथ वा घोडे पर वैठकर फिरने से अश्मरी टूटजाती है यदि इन सम्पूर्ण उपायों से शर्करा च्युत न हो और अश्मरी न टूटै तौ किशल्लय चिकित्सक अर्थात् जर्राह द्वारा उसको तुड़वावै ।

रेतोविघात कृच्छ्रमें चिकित्सा ।

रेतोविघातप्रभवेतुकृच्छ्रे ।
दोषानुसारंप्रतिकर्मकुर्य्यात् ॥
कार्पासमूलंवृषकाश्मभेदौ ।
बलास्थिरादीनिगवेधुकाच ॥
वृश्चीनुऐन्द्रीचपुनर्नवाच ।
शतावरीमध्वशनाखुपर्ण्यौ ॥
तत्क्वाथसिद्धःपवनेरसःस्या ।
त्पित्तेऽधिकेक्षीरमथापिसर्पिः ॥
कफेचयूषादिकमन्नपानं ।
संसर्गजेसर्वहितःक्रमःस्यात् ॥

एवंनचेच्छाम्यतितस्ययुञ्ज्यात् ।
सुरांपुराणांमधुकासवंवा ॥
विहङ्गमांसानिचबृंहणाय ।
वस्तींश्चशुक्राशयशोधनार्थम् ॥

अर्थ—रेतो विघात से उत्पन्न हुए मूत्र कृच्छ्र में दोषों के अनुसार चिकित्सा करै। कपासके पोदे की जड़, अडूसा, पाखान भेद, खरैटी, शालिपर्णी का गण, गवेधु का सफेद सांठ, इन्द्रायण, लालसांठ, मुलहटी, अशन, आखुपर्णी, इन के क्वाथ में सिद्ध किया हुआ मांसरस वा दूध वात की अधिकता में देवै, पित्तकी अधिकता में इसी क्वाथ में सिद्ध किया हुआ घृत वा दूध देवै, कफकी अधिकता में इन्हीं के क्वाथ में सिद्ध किया हुआ यूषादिक अन्न पान देवै और संसर्गज में सब प्रकारकी क्रिया हित होती हैं।

जो इन उपायों से शान्त न होवै तौ पुराना मद्य वा मध्वासव देवै। बृंहण के लिये पक्षियों का मांस और शुक्राशय के शोधन करने के निमित्त वस्तिप्रयोग करै।

शुद्धस्यतृप्तस्यचवृष्ययोगैः ।
प्रियानुकूलाःप्रमदाविधेयाः ॥

अर्थ—इन उपायोंसे रोगीके शुद्ध और तृप्त होनेपर वृषताकारक औषध और प्रियानुकूल प्रमदाओं का सहवास करावै।

रक्तोद्भवमूत्रकृच्छ्रमें उपाय ।

रक्तोद्भवेतूत्पलनालताल ।
काशेक्षुवालेक्षुकुशोदकानि ॥
पिबेत्सिताक्षौद्रयुतानिखादे ।
दिक्षुंविदारींत्रपुषाणिचैव ॥
घृतंश्वदंष्ट्रास्वरसेनसिद्धं ।
क्षीरेणचैवाष्टगुणेनपेयम् ॥
स्थिरादिकानांकतकादिकान ।
मेकैकशोवाविधिनैवतेन् ॥
क्षीरेणवस्तिर्मधुरौषधैःस्या ।
त्तैलेनवास्वादुफलोत्थितेन ॥
यन्मूत्रकृच्छ्रेविहितंतुपैत्ते ।
कार्यंतुतत्शोणितमूत्रकृच्छ्रे ॥

अर्थ—रक्तोद्भव मूत्रकृच्छ्र में नीलकमल की डंडी, तालमूल, कांसकी जड़, ईख की जड़, और कुशा इन के क्वाथ में शहत और मिश्री मिलाकर पीवै अथवा ईख, विदारीकन्द और खीरा के वीज इन के क्काथ में शहत और चीनी डालकर पीवै।

अथवा गोखरूकारस आठभाग दूध आठ भाग और घी एकभाग इनको पाककर के सेवनकरै। अथवा शालिपर्ण्यादि पंचमूलका रस वा निर्मलीकारस इनमें ऊपर कहीहुई रीति से घृत पकाकर सेवन करै। अथवा दूध की, वा मधुर औषधियों के क्वाथकी वा मधुरफलों के तैलकी बस्ति देवै।

जो जो चिकित्सा पित्तजमूत्रकृच्छ्र में वर्णन कीगई हैं वेही सब रक्तज मूत्रकृच्छ्र में भी हित हैं।

मूत्रकृच्छ्रमेंवर्जितकर्म ।

व्यायामसन्धारणशुष्करूक्ष ।
पिष्टान्नवातार्ककरव्यवायान ॥
खर्जूरशालूककपित्थजम्बु ।
बिषंकषायंचरसंभजेत्ना ॥

अर्थ—व्यायाम, मलमूत्रादि वेगधारण, शुष्क, रूक्ष, पिष्टान्न, वातसेवन, धूप, व्यवाय, खिजूर, शालूक, कैथ, जामन, विष और कषाय रस ये सब उक्तरोगों में निषेध कियेगये हैं।

हृद्रोगकीउत्पत्तिकाकारण।

व्यायामतीक्ष्णातिविरेकवस्ति।
छर्द्यामसंधारणकर्षणानि॥
हृद्रोगकारीणितथाभिघातः।
चिन्ताभयत्रासमदाभिचाराः॥

अर्थ—व्यायाम तीक्ष्णविरेचन, तीक्ष्णवस्ति, वमन, मलवेग का रोकना, उपवासादि कर्षण, अभिघात, चिन्ता, भय, त्रास मत्तता और अभिचार ये सब हृद्रोगी की उत्पत्ति के कारण हैं।

हृद्रोगकेउपद्रव।

वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वरकासहिक्का।
श्वासास्यवैरस्यतृषाःप्रमोहाः॥
छर्दिःकफोत्क्लेशरुजोरुचिश्च।
हृद्रोगजाःस्युर्विविधास्तथान्ये॥

अर्थ—हृद्रोग से विवर्णता, मूर्च्छा, ज्वर, खांसी हिचकी, श्वास, मुखका जायका विगड़ना, तृषा, प्रमोह, वमन, कफोत्क्लेश वेदना, अरुचि तथा और भी ऐसेही बहुत से अन्य उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

वातज हृद्रोगके विशेष लक्षण॥

हृच्छून्यभावद्रवशोषभेद।
स्तम्भःसमोहःपवनाद्विशेषः॥

अर्थ—वातजहृद्रोग में हृदय में शून्यता धक धक, शोष, भेद, स्तम्भता और मोह ये विशेष लक्षण होते हैं॥

पित्तज हृद्रोग के लक्षण॥

पित्तात्तमोदूयनदाहमोह।
सन्त्रासतापज्वरपीतभावाः॥

अर्थ—पित्तज हृद्रोग में अन्धकार दिखाई दैना, ग्लानि, दाह, मोह, त्रास सन्ताप, ज्वर और वस्तुओं का पीला दिखाई दैंना ये लक्षण होते हैं॥

कफज हृद्रोग के लक्षण।

स्तब्धंगुरुस्यात्स्तिमितञ्चमर्म।
कफात्प्रसेकज्वरकासतन्द्राः॥

अर्थ—कफज हृद्रोग में स्तब्धता, भारापन, मर्ममे स्तिमिता, लालास्राव, ज्वर, खांसी और तन्द्रा ये लक्षण होते हैं।

सान्निपातिक हृदोग के लक्षण।

विद्यात्त्रिदोषन्त्वपिसर्वलिङ्गं।
तीव्रार्तिभेदंकृमिजंसकण्डूम्॥

अर्थ—सान्निपातिक हृद्रोग में तीनों दोषों के लक्षण होते है तथा कृमिज हृद्रोग में तीव्र वेदना, भेद और खुजली होतीहै।

वातज हृद्रोग में चिकित्सा।

तैलंससौवीरकमस्तुतक्रं।
वातेप्रपेयंलवणंसुखोष्णम्॥
मूत्राम्बुसिद्धंलवणैश्चतैल।
मानाहगुल्मार्तिहृदामयघ्नम्॥
पुनर्नवांदारुसपञ्चमूलां।
रास्नांयवान्बिल्वकुलत्थकोलम्।
पक्त्वाजलेतेनविपाच्यतैल।
मभ्यङ्गपानेऽनिलहृद्गदघ्नम्॥

अर्थ—सौवीर, दही का तोड़ और मठा इनके साथ तेल पीवै अथवा गोमूत्र और जल के साथ नमक को सिद्ध कर के सुहाता हुआ गरम पीवै अथवा पांचों नमकके साथ सिद्ध किया हुआ तेल पीवै। इसके पीने से वातज हृद्रोग, आनाह और गुल्म दूर होजाते हैं।

सांठ, देवदारु, पंचमूल, रास्ना, जौ, वेल की छाल, कुलथी और वेर इनका क्वाथ करैं, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छान लेवै और इस में तेल को पकाकर अभ्यंग और पान में प्रयुक्त करै तौ वातजहृद्रोग जाता रहता है।

हरीतकीनागरपुष्कराह्वै ।
र्वयःकयस्थालवणैश्चकल्कैः ॥
सहिंगुभिःसाधितमग्र्यसर्पि ।
र्गुल्मेसहृत्पार्श्वगदेऽनिलोत्थे ॥
सपुष्कराह्वंफलपूरमूलं ।
महौषधंशट्यभयाचकल्काः ॥
क्षाराम्बुसर्पिःलवणैर्विमिश्राः
स्युर्वातहृद्रोगविकार्तिकाघ्ना ॥

अर्थ—हरड़, सोंठ, पौहकर मूल, काकोली छोटी इलायची, सेंधानमक और हींग इन के कल्क के साथ चौगुना जल चढाकर घृत पकावै, इस घृत के सेवन करने से वातज गुल्म, हृद्रोग और पसलीका दर्ददूरहोजाताहै।

पौहकरमूल, विजौरे की जड़, सोठ, कचूर हरड़, इन सब का कल्क, जवाखार का जल, घी और सेंधा नमक इन सब को पकाकर सेवन करने से वातज हृद्रोग और विकर्ति का का नाश होजाता है।

क्काथःकृतःपौष्करमातुलुङ्ग ।
पलाशभूतीकशटीसुराह्वैः ॥
सशुण्ठ्यजाजीद्विवचायमानिः ।
सक्षारउष्णोलवणश्चपेयः ॥
पथ्याशटीपुष्करपश्चकोलान् ।
समातुलुङ्गायमकेनकल्कः ॥
गुडप्रसन्नालवणैश्चभृष्टो ।
हृत्पार्श्वगुल्मोदरयोनिशूले ॥

अर्थ—पुष्करमूल, विजौरा, पलास, अजंवायन, कचूर, देवदारु इन का क्काथ कर के इस में सोंठ, कालाजीरा, दो प्रकार की वच, अजवायन, जवाखार और नमक डाल कर गरम गरम पीने से वातजहृद्रोग दूर होजाते हैं।

हरड़, कचूर, पौहकरमूल, पंचकोल और विजौरा इनका कल्क इस में गुड़, प्रसन्ना और नमक डालकर घी और तेल में भून कर सेवन करने से हृत्शूल, पार्श्वशूल, गुल्म उदररोग और योनिशूल दूर होजाते हैं।

त्र्यूषणादि घृत ।

स्यात्त्र्यूषणंद्वेत्रिफलेसपाठे ।
निदिग्धिकागोक्षुरकोबलेद्वे ॥
ऋद्धिस्त्रुटिस्तामलकीस्वगुप्ता ।
मेदेमधूकंमधुकंस्थिराञ्च ॥
शतावरींजीवकपृश्निपर्ण्यौ ।
द्रव्यैरिमैरक्षसमैःसुपिष्टैः ॥
प्रस्थंघृतस्येहपचेद्विधिज्ञः ।
प्रस्थेनदध्नस्त्वथमाहिषस्य ॥

मात्रांपलंचार्द्धपलंपिचुम्वा ।
प्रयोजयेन्माक्षिकसंप्रयुक्तम् ॥
श्वासेसकासेत्वथपाण्डुरोगे ।
हलीमकेहृद्ग्रहणीप्रदोषे ॥

अर्थ—त्रिकुटा, दोनों प्रकार की त्रिफला (एकहरड़) वहेड़ा, आंवला, दूसरी दाख, गंभारी और फालसा), पाठा कटेरी, गोखरु, वला, अतिवला, ऋद्धि, छोटी इलायची, भूय आंवला, कैंच, मेदा, महामेदा, मुलहटी शालिपर्णी, सितावर, जीवक और पृष्णिपर्णी इन सब द्रव्यों को दो दो तोले लेकर महीन पीसले इस में भैंस का घी एक प्रस्थ और दही एक प्रस्थ डालकर पाक करै । इस घृत की मात्रा वल के अनुसार एक पळ, आधा पल वा एक तोला प्रतिदिन सेवन करने से श्वास, खांसी, पांडुरोग, हलीमक, हृद्रोग और ग्रहणीदोष दूर होजाते हैं ।

पित्तजहृद्रोगमेंचिकित्सा ।

शीताःप्रदेहाःपरिषेचनञ्च ।
तथाविरेकोहृपित्तदुष्टे ॥
द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैःस्यात् ।
शुद्धेतुपित्तापहमन्नपानम् ॥
यष्ट्याह्वविकातिक्तकरोहिणीभ्यां ।
कल्कंपिवेच्चापिसिताजलेन ॥
क्षतेपुसर्पींषिचतद्गुडाश्च ।
येतेचशस्ताहृदिपित्तदुष्टे ॥
दद्याद्भिषक्धन्वरसांश्चगव्य ।
क्षीराशिनाञ्चप्रसमीक्ष्यसम्यक् ॥

अर्थ—पित्तज हृद्रोग में शीतल प्रदेह, परिषेचन और विरेचन देना हित है । इस तरह शुद्ध होनेपर दाख, मिश्री, शहत और फालसे के साथ अन्नपान देवै ।

मुलहटी और कुटकी को घोटकर मिश्री के जल में छानकर पीने से भी पित्तज हृद्रोग दूर होजाते हैं ।

क्षतरोग में जो जो घृत और गुड़ वर्णन किये हैं वे सब रोग की परीक्षा कर के पित्तज हृद्रोग में भी हित हैं परन्तु इन के साथ में रोगी को धन्वज मांसरस और गौ के दूध का सेवन कराता रहै ॥

द्राक्षावलाश्रेयसिशर्कराभिः ।
खर्जूरवीरर्षभकोत्पलैश्च ॥
काकोलिमेदायुगजीवकैश्च ।
क्षीरेचसिद्धंमहिषीघृतंस्यात् ॥
कशेरुकाशेवलशृङ्गवेर ।
प्रपुण्डरीकंमधुकंविसस्य ॥
ग्रन्थिश्चसर्पिःपयसापचेत्तैः ।
क्षौद्रान्वितंपित्तहृदामयघ्नम् ॥
स्थिरादिकल्कैःपयसाचसिद्धं ।
द्राक्षारसेनेक्षुरसेनवापि ॥
सर्पिर्हितंस्वादुफलेक्षुजाश्च ।
रसाःसुशीताःहृदिपित्तदुष्टे ॥

अर्थ—दाख, खरैटी, गजपीपल और शर्करा । अथवा खिजूर क्षीरकाकोली ऋषभक और नीलकमल अथवा काकोली, मेदा, महामेदा और जीवक इन तीन प्रयोगों में से किसी एक के कल्क के साथ गौके दूध में भैंस का घी सिद्ध करकेदेवें।

कसेरू, शैवल, अदरख, पुंडरिया, मुलहटी, कमलनाल की गांठ इन के कल्कको

चौगुने दूध में चढ़ाकर इस के साथ घृत पाककर के शहत मिलाकर सेवन करनेसे पित्तज हृदयरोग शान्त होजाते हैं शालिपर्ण्यादि के कल्क के साथ दूध में घृतको पकाकर अथवा दाख के रस वा ईख के रस के साथ पकाकर सेवन करना पित्तज हृदयरोग में हित हैं अथवा द्राक्षादि मिष्ट फलों का क्वाथ भी शीतल करने पर हित होता है ।

कफजहृद्रोग में चिकित्सा ।

स्विन्नस्यवान्तस्यविलंघितस्य ।
क्रियाकफघ्नीकफमर्मरोगे ॥
कौलत्थधान्यैश्चरसैर्यवान्नैः ।
पानानितीक्ष्णानिचशर्कराणि ॥
मूत्रेश्रिताःकट्फलशृङ्गवेर ।
पीतद्रुपथ्यातिविषाःप्रदेयाः ॥
कृष्णाशटीपुष्करमूलरास्ना ।
वचाभयानागरचूर्णकश्च ॥
उदुम्बराश्वत्थवटार्जुनाख्ये ।
पलाशरोहीतकखादिरेच ॥
क्वाथेत्रिवृत्त्र्यूषणचूर्णसिद्धो ।
लेहःकफघ्नोऽशिशिराम्बुयुक्तः॥

अर्थ—कफजहृदय के रोग में स्वेदन, वमन, और लंघन क्रिया हित होती हैं । कुलथी और धनिये के क्वाथ के साथ जौ की रोटियां वा शर्कराके साथ तीक्ष्ण अन्नपान सेवन कराना हित है ।

कायफल, अदरख, सरलकाष्ठ, हरड़ और अतीस इनको गोमूत्र में क्वाथ करके छान कर पीवै अथवा पीपल, कचूर, पुहकरमूल रास्ना, वच, हरड़ और सोंठ इन सबका चूर्ण वनाकर सेवन करै ।

गूलर, पीपल, बड़, अर्जुन, पलास, रोहेड़ा और खैर की लकड़ी इनका क्वाथ कर के उस में निसोथ और त्रिकुटा का चूर्ण डालकर पकावै । इस लेह को गरमजल के साथ सेवन करने से कफज हृद्रोगजाता रहता है ॥

सान्निपातिकहृद्रोगमें चिकित्सा ।

त्रिदोषजेलंघनमादितःस्या ।
दन्नञ्चसर्वत्रहितंविधेयम् ।
हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्यचैव ।
कार्यंत्रयाणामपिकर्मशस्तम् ॥
भुक्तेऽधिकञ्जीर्य्यतिशूलमल्पं ।
जीर्णेस्थितंचेत्सुरदारुकुष्ठम् ॥
सनिल्वकंद्वेलवणेविडङ्गं ।
उष्णाम्बुनासातिविषंपिवेत्सः ॥
जत्वश्मजंवाभिषगप्रमत्तः ।
प्रयोजयेत्कल्पविधानदृष्टम् ॥
प्राश्यंतथागस्त्यमथापिलेहं ।
रसायनंब्राह्ममथामलक्याः ॥

अर्थ—सान्निपातिक हृद्रोग में प्रथमही लंघन कराके तीनों दोषों में कहेहुए हित पदार्थों का सेवन करावै। दोषों की हीनता अधिकता और मध्यता देखकर ऐसी चिकित्सा करै जो तीनों दोषों में हित हो । जो हृद्रोग में भोजन करतेही अधिक और पचने के समय कम हो तौ देवदारु कूठ, लोध, सेंधानमक, संचरनमक, वायविडंग और अतीस इन के चूर्ण को गरम

जल के साथ पीवै। अथवा बहुत सावधानी से कल्पविधानोक्त शिलाजतु रसायन, अगस्त्यावलेह, ब्राह्मरसायन वा आमलकी रसायन का प्रयोग करना चाहिये।

जीर्णेऽधिकेस्नेहविरेचनंस्यात्।
फलैर्विरेच्योयदिजीर्य्यमाणे।
त्रिष्वेवकालेष्वधिकेतुशूले।
तीक्ष्णंहितंमूलविरेचनंस्यात्॥

अर्थ—जो भोजन के पचने पर हृदय में शूल अधिक हो तौ स्नेह विरेचन देवै। भोजन के पचने के काल में जो शूलहो तौ फल विरेचन देवै और जो तीनों समय में हीं अर्थात् भोजनके करते ही, वा भोजन पचने पर वा पाचनकाल में शूल अधिक हो तौ तीक्ष्ण मूलविरेचन हित है।

क्रिमिजन्य हृद्रोग में चिकित्सा।

प्रायोऽनिलोरुद्धगतिःप्रकुप्य।
त्यामाशयेशोधनमेवतस्मात्॥
कार्यंतथालंघनपाचनञ्च।
सर्वंकिमिघ्नंक्रमिहृद्गदेच॥

अर्थ—प्रायः वायुका मार्ग रुकने पर वह आमाशय में जाकर कुपित होजाती है इस लिये प्रथम शोधन कर्म करै पीछे क्रिमिनाशक लंघन पाचन क्रिया करै। यह क्रिमिजन्य हृदयरोग की चिकित्सा है।

पीनसरोग का निदान।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्य।
क्रोधर्त्तुवैषम्यशिरोऽभितापैः॥
प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतै।
रवश्ययामैथुनवाष्पधूमैः॥
संस्त्यानदोषेशिरसिप्रवृद्धो।
वायुःप्रतिश्यायमुदीरयेत्तु॥ ॥

अर्थ—मलमूत्रादि वेग संधारण, अजीर्ण, रज, अतिभाषण, क्रोध, ऋतु वैषम्य, शिरोऽभिताप, जागरण, अतिनिद्रा, शीतलजलविहार, ओस, मैथुन, वाष्प और धूंआं इन सब कारणों से सिर में अत्यन्त आर्द्रता होती है और इसी कारण से बायु वृद्धि पाकर प्रतिश्याय उत्पन्न करती है।

वातज पीनस के लक्षण।

घ्राणार्त्तितोदौश्वयथुर्जलाभः।
स्रावोऽनिलातसस्वरमूर्द्धरोगः॥

अर्थ—वातज प्रतिश्याय में नासिका में अर्ति और सुई भेदने के समान पीड़ा, सूजन, जलके समान नाक टपकना, स्वरभंग और शिर में दर्द ये लक्षण होते हैं।

पित्तजपीनसके लक्षण।

नासाग्रपाकज्वरवक्त्रशोष।
तृष्णोष्णपीतस्रवणानिपित्तात्॥

अर्थ—पित्तज प्रतिश्याय में नासिका के अग्रभाग का पाक, ज्वर, मुख में सूखापन, तृषा, गरम और पीलेरंग का स्राव होताहै।

कफजपीनस के लक्षण।

कामारुचिस्रावघनप्रसेकात्।
कफाद्गुरुःस्रोतसिचापिकण्डूः॥

अर्थ—कफजप्रतिश्याय में खांसी अरुचि, स्राव, गाढ़ामवाद निकलना, स्रोतोंमें भारापन और खुजली होती है।

सान्निपातिकपीनसकेलक्षण।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात्।

स्युःपीनसेतीव्ररुजेऽतिदुःखे ॥

अर्थ—सान्निपातिक प्रतिश्याय में तीनों दोषों के लक्षण पाये जाते हैं, इसमें तीव्र-वेदना और कष्ट होता है ॥

प्रतिश्याय के दूषितहोने का कारण।

सर्वोऽतिवृद्धोऽहितभोजनात्तु।
दुष्टप्रतिश्यायउपेक्षितःस्यात् ॥

अर्थ—तीनों दोषों के अत्यन्त बढ़जाने से, अहित भोजन करने से वा उपेक्षा करने से प्रतिश्याय बिगड़जाता है।

दूषितप्रतिश्याय के लक्षण।

ततश्चरोगाःक्षवथुःसनासा।
शोषःप्रतीनाहपरिस्रवौच ॥
घ्राणास्यपूतित्वमपीनसश्च।
सपाकशोथार्बुदपूयरक्ताः।
श्रवंषिमूत्रश्रवणाक्षिरोग।
खालित्यहर्यर्जुनलोमभावाः ॥
तृट्श्वासकासज्वररक्तपित्त।
वैस्वर्यशोषाश्चततोभवन्ति ॥
रोधाभिघातस्रवशोषपाकै।
र्घ्राणंयुतंयश्चनवेत्तिगन्धम् ॥
दुर्गन्धिचास्यंबहुशःप्रकोपि।
दुष्टप्रतिश्यायमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—प्रतिश्याय (जुकाम) के विगड़ने पर छींक, नाक का सूखना, प्रतीनाह (नाकका रुकजाना) परिस्राव, नाक और मुख में दुर्गंधि, अपीनस नासापाक, सूजन, अर्बुद, पीव, रक्त, फुन्सियां, मूत्रस्राव, कर्णरोग, नेत्ररोग, खालित्य, रोमोंका पीला वा सफेदहोना, तृषा, श्वास, खांसी, ज्वर, रक्तपित्त, स्वरभंग और शोष ये उपद्रव होते हैं ॥

जिस रोग में नाक रुकजाती है, उस में अभिघात, स्राव, शोष और पाक होता है जिस में गंध का ज्ञान नहीं होता है और मुख में दुर्गंध होजाती है, यह वारवार कुपित होनेवाला दुष्ट प्रतिश्याय होता है।

छींककाकारण।

संस्पृश्यमर्माण्यनिलस्तुमूर्ध्नि।
विश्वक्पथस्थःक्षवथुंकरोति ॥

अर्थ—संपूर्णमर्मों का स्पर्श करके मस्तक के समस्त मार्गों में स्थितवायु क्षवथुनामक रोग को उत्पन्न करती है।

शोषकाकारण।

बलीतुसंशोष्यकफन्तुनासा।
शृङ्गाटकेघ्राणविशोषणंच।

अर्थ—प्रवलहुई वायु कफ को सुखाकर नासिका के पुट और घ्राणमार्ग में शोष उत्पन्न करती है।

प्रतीनाहकालक्षण।

उच्छ्वासमार्गन्तुकफःसवातो।
रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—कफवायु से मिलकर जव श्वास के मार्ग को रोकलेताहै तब उसे प्रतीनाह कहते हैं।

स्रावकालक्षण।

घ्राणाद्घनःपीतसितस्तनुर्वा।
दोषःस्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—नासिकासे जो गाढ़ा पीला सफेद

अथवा पतला विगड़ाहुआ मल निकलता है उसे स्राव कहते हैं ।

अपीनसकालक्षण ।

योमस्तुलुङ्गाद्धनपीतपक्वः ।
कफःस्रवेद्गाढमपीनसःसः ॥

अर्थ—मस्तक से जो घन, पीला, पक्क और गाढ़ा कफ निकलता है उसे अपीनस कहते हैं ।

पूतिनासाकेलक्षण ।

वैवर्ण्यदौर्गन्ध्यमुपेक्षयात्तु ।
स्यात्पूतिनासंश्वयथुर्भ्रमश्च ॥

अर्थ—इस रोग की उपेक्षा करने से जो विवर्णता, दुर्गन्धि, सूजन और भ्रम होता है उसे पूतिनासा कहते हैं ।

घ्राणपाककालक्षण ।

सदाहरागहःश्वयशुःसपाकः ।
स्याद्घ्राणपाकोऽपिचरक्तपित्तात् ।

अर्थ—जिस में दाह, राग, सूजन और पाक होताहै उसे घ्राणपाक कहतेहैं। यह रक्तपित्त से भी होता है ।

नासाशोथ का हेतु ।

घ्राणाश्रितास्रक्प्रभृतीन्प्रदूष्य ।
कुर्वन्तिनस्तःश्वयथुंमलाश्च ॥

अर्थ—जववातादि दोष नासिका में स्थित रक्तादि को दूषित करता है तव नासिका में सूजन होती है ।

अर्वुदकाकारण ।

घ्राणेतथोच्छ्वासगतिंनिरूध्य ।
मांसास्रदोषादपिचार्वुदानि ॥

अर्थ—श्वास के रुकजाने से मांस और रक्त के दूषित होने से नासिका में अर्बुदरोग होता है ।

पूयरक्त का कारण ।

घ्राणात्स्रवेद्वाश्रबणान्मुखाद्वा ।
पित्ताक्तमस्रन्त्वपिपूयरक्तम् ॥

अर्थ—जो नाक, कान वा मुखसे पित्तयुक्त रक्तका स्राव होता है उसे पूयरक्त कहते हैं ।

अरुः का कारण ।

कुर्यात्सपित्तःपवनस्त्वमादीन् ।
सन्दूष्यचारूंषिसपाकबन्ति ॥

अर्थ—पित्त से मिली हुई वायु त्वचा आदि को दूषित करके जो फुन्सियों को उत्पन्न करती है उसे अरुः कहते हैं ।

शिरोरोग का निदान ।

भृशार्तिशूलंस्फुरतीहवातात् ।
पित्तात्सदाहार्तिकफाद्गुरुस्यात् ॥
सर्वैस्त्रिदोषंक्रिमिभिस्तुकण्डू ।
दौर्गन्ध्यतोदार्तियुतंशिरःस्यात् ॥

अर्थ—वातज सिरके रोग में अत्यन्त बेदना, शूल और फडफडाहट होती है । पित्तज सिर के रोग में दाह और अर्त्ति होती है । कफके सिररोग में भारापन होता है । सान्निपातिक शिरोरोग में तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण होते हैं और क्रिमिजन्य शिरोरोग में खुजली, दुर्गंधि, तोद और अर्ति होती है ।

वातज मुखरोग का लक्षण ।

मुखामयेमारुतजेतुशोष ।
कार्कश्यरौक्ष्याणिचलारुजश्च ॥
कृष्णारुणंनिष्पतनंसुशीतं ।

प्रस्रंसनस्पन्दनतोदभेदाः ॥

अर्थ—वातज मुखरोग में शोष, कर्कशता, रूक्षता, चलायमान वेदना, काला लाल और शीतल स्राव, प्रस्रसन, स्यन्दन, तोद और भेद ये उपद्रव होते हैं।

पित्तजमुख रोग का लक्षण।

तृष्णाज्वरस्फोटकतालुदाहा।
धूमायनंचाप्यबदीर्णताच ॥
पित्तात्समूर्च्छाविविधारुजश्च।
वर्णश्चशुक्लारुणवर्णवर्ज्याः ॥

अर्थ—पित्तज मुखरोग में तृष्णा, ज्वर स्फोटक, तालुदाह, धुंआं सा घुमड़ना, फटना मूर्च्छा अनेक प्रकार की वेदना, तथा सफेद और लाल के अतिरिक्त और रंग होजाना। ये उपद्रव होते हैं ॥

कफज मुख रोग का लक्षण।

कण्डूर्गुरुत्वंसितविज्जलत्वं।
स्नेहोरुचिर्जाड्यकफप्रसेकौ ॥
उत्क्लेशमन्दानिलताथतन्द्रा।
रुजश्चमन्दाःकफवक्त्ररोगे ॥

अर्थ—कफज मुखरोग में खुजली, भारापन, सफेदाई, गिल गिलापन, चिकनाई, अरुचि, जड़ता, कफप्रसेक, उत्क्लेश, मन्दाग्निता, तन्द्रा और मन्दवेदना होती है।

सान्निपातिक मुखरोग के लक्षण।

सर्वाणिरूपाणितुवक्त्ररोगे।
भवन्तियस्मिन्सतुसर्वजःस्यात् ॥

अर्थ—जिसमें तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं उसे त्रिदोषज मुखरोग कहते है।

मुखरोग के अन्य भेद।

संस्थानदूष्याकृतिनामभेदा।
चैतेचतुःषष्टिविधाभवन्ति ॥
शालाक्यतन्त्रेविहितानितेषां।
निमित्तरूपाकृतिभेषजानि ॥
अशून्यतार्थंतुचतुर्विधस्य।
क्रियांप्रवक्ष्यामिमुखामयस्य ॥

अर्थ—संस्थान, दूष्य, आकृति और नामभेद से मुखरोग चौंसठ प्रकार के होते हैं। इनके विशेष २ हेतुरूप, आकृति और चिकित्सा शालाक्यतंत्र में सविस्तर वर्णन की गई हैं। कुछ वर्णन किये जाने के निमित्त इस जगह वातजादि चार प्रकार के मुखरागों की चिकित्सा वर्णन कीजायगी (इस ग्रन्थ में शालाक्यतंत्र नहीं है हमारे छापे हुए सुश्रुतग्रन्थ मे इन रोगो का वर्णन है)।

अरुचि के भेद।

वातादिभिःशोकभयातिलोभ।
क्रोधाद्यहृद्याशनगन्धरूपैः ॥

अर्थ—अरुचि रोग वात, पित्त, कफ और सन्निपात के कारण उत्पन्न होने से चार प्रकार का है तथा इसका एक प्रकार और भी है कि वह शोक, भय, अत्यन्त लोभ, क्रोध, तथा अहृद्य भोजन, गंध और रूपादि दर्शन से होता है।

वातजअरुचिकेलक्षण।

अरोचकःकर्कशशीतदन्त।
कषायवक्त्रस्यमतोऽनिलेन ॥

अर्थ—वातज अरुचि में कर्कशता, दांतों

में शीतलता और मुख में कसीलापन होता है।

पित्तज अरुचि के लक्षण।

कट्वम्लमुष्णंविरसंचपूति।
पित्तेनविद्याल्लवणञ्चवक्त्रम्॥

अर्थ—पित्तज अरुचि में मुख कड़वा, खट्टा, उष्ण, विरसत, दुर्गन्ध युक्त और नमकीन होजाता है।

कफजअरुचिकेलक्षण।

माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्ये।
विबन्धसंस्तम्भयुतंकफेन॥

अर्थ—कफजअरुचि में मुख मीठा, गिलगिला, भारी और शीतल होता है तथा विबन्धता और स्तम्भता भी होती है।

शोकादिजन्यअरुचिकेलक्षण।

अरोचकेशोकभयातिलोभ।
क्रोधाद्यहृद्याशनगन्धजेस्यात्॥
स्वाभाविकश्चस्यरसोरुचिश्च।
त्रिदोषजेनैकरसम्भवेत्तु॥

अर्थ—शोक, भय, लोभ, क्रोध, अहृद्य भोजन और गंध आदिसे जो अरुचि होती है उस में मुख का रस स्वाभाविक होता है और त्रिदोषज अरुचि में मुख का रस एक प्रकार का नहीं रहता है।

वातजकर्णरोगकेलक्षण।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्यशोषः।
स्रावस्तनुश्चास्रवणञ्चवातात्॥

अर्थ—वातजकर्णरोग में कानोंमें नाद वेदना, मैल का सूखजाना, पतला स्राव वा स्राव न होना ये लक्षण होते हैं॥

पित्तजकर्णरोगकेलक्षण।

शोफःसरागोदरणंविदाहः।
सपीतपूतिस्रवणञ्चपित्तात्॥

अर्थ—पित्तजकर्णरोग में लालवर्ण की सूजन, दरण, दाह और पीले रंगकी पीव निकलती है॥

कफजकर्णरोगकेलक्षण।

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोफशुक्ल।
स्निग्धाश्रुतिःश्लेष्मभवेऽल्परुक्च॥

अर्थ—कफजकर्णरोग में सुनाईन देना खुजली, कड़ी सूजन, सफेद और चिकना स्राव तथा अल्पवेदना होती है।

सान्निपातिककर्णरोगकेलक्षण।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात्।
स्रावश्चतत्राधिकदोषवर्णः।

अर्थ—त्रिदोषज कर्णरोग में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं तथा इस में स्राव दोष और वर्णकी अधिकता होती है।

वातजनेत्ररोगका लक्षण।

अल्पास्रुरागानुपदेहताच।
सस्पन्दतोदातिरुजश्चवातात्।

अर्थ—वातजनेत्ररोग के होने से आंखों में आंसुओं का न आना, ललाई का कम होना, कम लिहसावट होना, फड़कन, चवका और तीव्र वेदना होती है।

पित्तजनेत्ररोग के लक्षण॥

पित्तात्तुदाहार्तिरुजोऽतिरागाः।
पीतोपदेहःसुभृशोष्णमस्रु॥

अर्थ—पित्तज नेत्र रोग में दाह, यातमा, वेदना, अत्यन्त ललाई पीतोपलिप्तता, ब-

हुत और गरम आंसू ये लक्षण होते हैं ॥

कफजनेत्ररोगकेलक्षण ॥

शुक्लोपदेहोवहुपिच्छिलाश्रु ।
नेत्रस्यखेठादुगुरुतासकण्डूः ॥

अर्थ—कफज नेत्ररोग में शुक्लोपलिप्तता बहुत और गीलेगीले आंसू, गुरुता और खुजली होती है ।

सन्निपातिकनेत्ररोगकेलक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातान्न ।
त्रामयाषण्णवतिस्तुभेदात् ॥

अर्थ—त्रिदोषज नेत्ररोग में तीनो दोषो के लक्षण मिलते हैं । नेत्ररोग सव मिलकर छियानबे प्रकारके होतै है ।

तेषामभिव्यक्तिरभिप्रदिष्टा ।
शालाक्यतन्त्रेषुचिकित्सितञ्च ॥
पराधिकारेतुनविस्तरोक्तिः ।
शस्तेतितेनात्रनानाःप्रयासः ॥

अर्थ—इन रोगों का विस्तारपूर्वक वर्णन शालाक्यतंत्र में है और चिकित्सा पराधिकार में विस्तापूर्वक ठीक नहीं कहीगई है, इससे हमारा यहां प्रयासनहीं है ।

खालित्यनिदान ।

तेजोऽनिलाद्यैःसहकेशभूमिं ।
दग्ध्वाशुकुर्य्यात्खलतिंनरस्य ।
किञ्चित्तुदग्ध्वापलितानिकुर्य्या ।
द्धरिन्प्रभत्वंचशिरोरुहाणाम् ॥
इत्यूर्द्धजत्रूत्यगदैकदेशः ।
प्रोक्तश्चिकित्सान्तुपरांनिबोध ॥
विस्तारतःसंग्रहतश्चसम्यग्य ।
थाक्रमंसौम्य! मयोच्यमानाम् ॥

अर्थ—वातादिक दोषों से मिलितहोकर तेज केशभूमिकाजलाकर खालित्य (वालों का गिरना) रोग को उत्पन्न करता है और जो पूर्णरीति से केशभूमि दग्ध नहीं होती है तो सफेद वाहेर होजाते हैं। जत्रु से ऊपर होने वाले रोगों का वर्णन इस प्रकार से किया गया है अब हम संक्षेप और विस्तार से उनकी चिकित्सा का वर्णन करते हैं ।

वातजपीनस में चिकित्सा ।

वातात्मकासवैस्वर्य्येसक्षारंपीनसेघृतम् । पिवेद्रसंपयोवोष्णःस्नेहिकंधूममेववा ॥ शताह्वात्वग्वलामूलंश्योनाकैरण्डविल्व जम् । साएवधात्पिवेद्वर्त्तिंमधूच्छिष्टवसा घृतैः॥अथवासघृतान्शक्तूम्कृत्वामल्लक संपुटे । नवप्रतिश्यायवतांधूमंवैद्यःप्रक ल्पयेत् ॥ संखमूर्धललाटार्तैपाणिस्वेदो पनाहनम् । स्वभ्यक्तेक्षवथुस्रावरोधादौ सङ्करादयः ॥ग्रेयाश्चरौहिषाजाजीवचात रिकारिचोरकाः । त्वक्पत्रमरिचैलानां चूर्णोवासोपकुञ्चिकः ॥

अर्थ—वातज पीनस में खांसी और स्वरभंग होनेपर जवाखार मिलाहुआघी, मांसरस, गरमदूध वांस्निग्ध धूमपान हितहै। अथवा सोंफ, दालचीनी खरैटीकी जड़, श्यौनाक, अरंडकीजड़ और वेलकी छाल और अमलतास इनको पीस कर मोम चर्वी और घी में सानकर वत्ती वनाकर धूमपान करै । अथवा नवीन प्रतिश्याय में घी और जौ का सत्तू इनको चिलम में धर

कर पीवै । कनपटी, मूर्द्धा और ललाट में वेदना होनेपर हाथों को गरम करै और गरम उपनाह अर्थात् पुल्टस बांधै । जो छींक वा नाक का वहना वन्द होजाय तौ शरीर पर अच्छी तरह से तैलादि मर्दन करके शंकर स्वेद देवै । अथवा रोहिषतृण, कालाजीरा, वच, तर्कारी और चोरक इन को पीसकर सूंघै अथवा दालचीनी, तेजपात, कालीमिरच और छोटी इलायची और जीरा इनके चूर्ण को सूंघै ।

तैलप्रयोग ।

स्रोतःशृङ्गाटनासाक्षिशोषेतैलंसनावनम्॥ प्रभाव्याजेतिलान्क्षीरेतेनपिष्टांस्तदूष्मणा । मन्दास्विन्नान्सयष्ट्याह्वचूर्णांस्तेनैवपीडयेत् ॥ दशमूलस्यनिष्कार्थेरास्नामधुककल्कवत् । सिद्धंससैन्धवंतैलंदशकृत्याणुतत्स्मृतम् ॥ स्निग्धस्यास्थापनैर्दोषंनिर्हरेद्वातपीनसे ।

अर्थ—स्रोत, नासापुट, नासिका और आंखों में शोष होनेपर नीचे लिखेहुए तेल की नस्य देवै । यथा-तिलों को वकरी के दूध की भावना देकर वकरी के दूधमेंही तिलों को पीसलेवै और एकहांड़ी में दूध भरकर उसपर एक कपड़ा ढककर उसपर उस पिसीहुई लुगदीको रखदेवै और हाड़ी के नीचे आग जलावै जिससे दूधकी गरमाई से तिल सीज जांयगे । फिर उस में मुलहटी का चूर्ण मिलाकर ऊपरवाले दूधमेंही उसे निचोड़ लेवै । इसको दशमूल के क्वाथ में पकावै और इसमें रास्ना, मुलहटी और सेंधानमक डालकर पकावै । इसतरह दश वार सिद्ध करने से अणुतैल सिद्ध होताहै रोगी को प्रथम आस्थापन देकर स्निग्ध करै फिर वातज पीनस में उक्त तैल की नस्य देवै ॥

स्निग्धाम्लोष्णैश्चलघ्वन्नंग्राम्यादीनां रसैर्हितम् ॥ उष्णाम्बुस्नानपानश्चनिवातोष्णप्रतिश्रयः । चिन्ताव्यायामवाक्चेष्टाव्यवायविरतोभवेत् ॥

अर्थ—स्निग्ध, अम्ल और उष्ण ग्राम्य जीवों के मांसरस के साथ लघु अन्न देवै । स्नान करने में और पीने में उष्ण जलका व्यवहार करै, वातरहित गरम मकान में रहै तथा चिन्ता, व्यायाम, भाषण, चेष्टा तथा व्यवाय को त्याग देवै ।

पित्तज पीनस में चिकित्सा ।

पैत्तेसर्पिःपिवेत्सिद्धंशृङ्गवेरशृतम्पयः । पाचनार्थेपिवेत्पक्केकार्यमूर्धविरेचनम् ॥ पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः । दन्त्याचसाधितंतैलंनस्यंसम्पक्वपीनसे ॥ पूयास्रेरक्तपित्तघ्नाःकषायानावनानिच। पाकदाहाद्यरुक्केषुशीतालेपाःससेचनाः। स्नेहनस्योपचारश्चकषायाःस्वादुशीतलाः मन्दपित्तेप्रतिश्यायेस्निग्धैःकुर्याद्विरेचनम् घृतंक्षीरंयवाःशालिगोधूमाजाङ्गलारसाः। शीताम्लास्तिक्तशाकानियूषामुद्गादिभिर्हिताः ॥

अर्थ—पित्तज पीनस में तिक्तादि घृत अथवा सोंठ डालकर औटाया हुआ दूध पीवै । पक्क पीनस में दोष के के पचाने के

ऊर्ध्वविरेचन का व्यवहार करै । इस पक्क पीनस में पाठा, दोनों हलदी, मरोड़ फली, पीपल, जातिपत्र और दन्त इन को डालकर सिद्ध किये हुए तेल की नस्य देवै । पूयरक्त में रक्तपित्त नाशक कषाय और नस्यों का प्रयोग करै । पाक, दाहादि और फुन्सियां होने पर शीतल लेप और सेचन करै । इस में स्नैहिक और नस्य उपचार तथा स्वादु और शीतल कषाय हित हैं । मन्द पित्तवाले प्रतिश्यायमें स्निग्ध विरेचन देवै । घी, दूध, जौ, शालिचांवल, गेंहूं, जांगल मांसरस, शीताम्ल तिक्तशाक और मूंग आदि का यूष हितकर होता है ॥

कफज पीनस में चिकित्सा ।

गौरवारोचकेष्वादौलंघनंकफपीनसे । स्वेदाःसेकाश्चपाकार्थंलिप्तेशिरसिसर्पिषा॥
लशुनंमुद्गचूर्णेनव्योषक्षारघृतैर्युतम् ॥
देयंकफघ्नंवमममुत्क्लिष्टश्लेष्मणेहितम् ।
अपीनसेपूतिनस्येघ्राणस्रावसकण्डुके ॥
धूमःशस्तोऽवपीडश्चकटुभिःकफपीनसे॥

अर्थ—कफजन्य पीनस में जो भारापन और अरुचि होवै तौ प्रथमही लंघन करावै, फिर कफके पकाने के लिये सिर पर घृत कालेपन करके स्वेद और परिषेक करै । कफकी पीनस में कफके उत्क्लिष्ट होने पर मुद्गचूर्ण, त्रिकुटा, क्षार और घृत में लहसन मिलाकर कफनाशक वमन देवै। कफपीनस में अपीनस, पूतिनस्य, घ्राणस्राव और खुजली होने पर धूमपान तथा कटु द्रव्यों द्वारा अव पीड़न देना हित है ।

नस्यादि प्रयोग ।

मनःशिलाबचाव्योषविडङ्गहिंगुगुग्गुलु ॥
चूर्णप्रधमनंघ्रेयंकटुभिश्चफलैःकफे ।
भार्गीमदनतर्कारीसुरसादिविपाचितं ॥
तलंसर्षपजंवल्यंकफपीनसशान्तये ।
आर्त्तेकालवचालम्बाविडङ्गकुष्ठपिप्पली॥
कल्कंकृत्वाकरञ्जंचतैस्तैलंसार्षपंपचेत् ।
पाकोन्मुखेघनैनस्यमेतन्मेदोनिभेकफे ॥
स्निग्धस्तव्याहतेवेगेछर्दनंकफपीनसे ।
वमनीयशृतक्षीरतिलमाषयवागुना। वार्ताककुलकव्योषकुलत्थाढकिमुद्गजाः । यूषाः कफघ्नमन्नञ्चशस्तमुष्णाम्बुसेचनम् ॥
सर्वजित्पीनसेदुष्टेकार्यंशोफेचशोफजित्।
क्षारोर्बुदाधिमांशेषुक्रियाशेषेष्ववेक्ष्यच ॥

अर्थ—मनसिल, बच, त्रिकुटा, वायविडंग, हींग और गूगल इन के चूर्णका प्रधमन करै अथवा सुंघावै ।

अथवा भाडंगी, मेनफल, तर्कारी और सुरसादि गणं इन के साथ पकाया हुआ सरसोंकातेल कफ पीनसमें हितकारी होता है ॥

अथवा जो वेदना अधिक होती हो तौ कालागुरु, वच, हरिताल, वायविडंग, कूठ, और पीपल तथा कंजा लेकर इनका कल्क करले फिर इसको सरसों के तेल में पकाकर व्यवहार में लावै । यह तैल पाकोन्मुख गाढ़े और मेद के समान कफ में नस्यदेने के लिये उपयोगी है । कफ पीनसमें कफ के रुकजाने पर रोगीको स्नेहन देकर वमन करावै ॥

वमनीय गणोक्त द्रव्यों के साथ औटाया हुआ दूध तिल उरद और यवागू के साथ देकर वमन करावै । इस रोग में बैंगन, परवल, त्रिकुटा, कुलथी, अड़हर और मूंग के यूष, कफनाशक अन्न और गरमजल से सेचन हित हैं ॥

विगड़ेहुये पीनस में त्रिदोषनाशिनी क्रिया करै, शोफ में शोफनासिनी क्रियाकरै तथा शेष अर्बुद और अधिमांसादिक रोगों में अच्छीतरह विचारकर चिकित्सा करै ।

शिरोरोग में चिकित्सा ।

वातिकेशिरसोरोगेस्नेहान्स्वेदान्सनाब नान् । पानान्नमुपनाहांश्चकुर्याद्वातामयाप हान् ॥ तैलभृष्टैरगुर्वाद्यैः सुखोष्णैश्चो पनाहनम् । जीवनीयैश्यपुष्पैश्चमत् स्यैर्मांसैश्चेशस्यते ॥ रास्नास्थिरादिभिः सिद्धंसक्षीरंनस्यमर्तिनुत् । तैलंरास्नाद्वि काकोलीशर्कराभिरथापिवा ॥

अर्थ—वातज शिरोरोग में स्नेहन,स्वेदन नस्य, पानान्न, उपनाह तथा अन्य वात-नाशक प्रयोगों का व्यवहार करै । ज्वर प्रकरणोक्त अगुर्वादि औषधों को तेल में भूनकर गरम गरम का सिर पर लेप करै । इसी तरह जीवनीय गणोक्त औषधों का तथा चमेली आदि के फूलों का अथवा मछली के मांस का उपनाह भी हित है । इसी तरह रास्ना और शालि पर्ण्यादि लघु पंचमूल में सिद्ध किये हुए दूध की नस्य देने से सिर की यातना दूर होजाती है । अथवा रास्ना, काकोली, क्षीर काकोली और शर्करा इनका कल्क, दूध और तेल को पकाकर नस्य देवै ।

वातपित्तज शिरोरोगमें उपाय ।

वलामधूकयष्ट्याह्वाविदारीचन्दनोत् पलैः । जीवकर्षभकद्राक्षाशर्कराभिश्चसा धितः ॥ प्रस्थस्तैलस्यसक्षीरोजांगलार्ध तुलारसे । नस्यंसर्वोर्ध्वजत्रूत्थवातापि त्तामयपहम् ॥

अर्थ—खरैटी, महुआ, मुलहटी,विदारी-कन्द, रक्तचंदन, नीलकमल, जीवक, ऋष भक, दाख और शर्करा दो कुडव, तेल एक प्रस्थ, दूध एक प्रस्थ और जांगल मांसरस आधी तुला इन सब को सिद्ध कर के नस्य में प्रयोग करने से वातपित्त से उत्पन्न जत्रु से ऊपर होने वाले सब प्रकार के रोग शान्त होजाते हैं ।

मायूर घृत ।

दशमूलवलारास्नात्रिफलामधुकःसह । मयूरपक्षपित्तान्त्रशकृत्तुण्डाघ्रिवर्जितम्॥ जलेपक्त्वाघृतप्रस्थंतस्मिन्क्षीरसमंपचेत्। मधुरैःकार्षिकैःकल्कैःशिरोरोगार्दितैःपिबे त् ॥ कर्णाक्षिनासिकाजिह्वाताल्वास्य गलरोगनुत् । मायूरमितिविख्यातमर्ध्व जत्रुगदापहम् ॥

अर्थ—दशमूल, खरैटी, रास्ना, त्रिफला और मुलहटी तथा मोर के (पंख, पित्ता, आंत, वीट, चोंच और उंग लियों को छोड़ कर) मांस, रक्तादि इन सब का क्वाथ कर के एक प्रस्थ घी और उतनाही दूध तथा जीवनीय औषधियों का कल्क एक एक

कर्ष डालकर पकावै । इस घृत के पीने से सिर के रोग, कान के रोग, आंखके रोग नाकके रोग, जिह्वा के रोग, तालु के रोग मुखके रोग और गले के रोग दूर होजाते हैं । यह ऊर्ध्वजत्रु गदनाशक मायूरनामक घृत है ॥

महामायूर घृत ।

एतेनैवकषायेणघृतप्रस्थंविपाचयेत् । चतुर्गुणेनदुग्धेनकल्कैरेभिश्चकार्षिकैः ॥ जीवन्तीत्रिफलामेदामधुकर्द्धिपरूषकैः । समंगाचविकाभार्गीकाश्मरीसुरदारुभिः ॥ आत्मगुप्तामहामेदातालखर्जूरमस्तकैः । मृणालबिसखर्जूरशृङ्गीजीवकपद्मकैः ॥ शतावरीविदारीक्षुबृहतीशारिवायुगैः । मूर्वाश्वदंष्ट्रर्षभकशृङ्गाटककशेरुकैः ॥ रास्नास्थिरातामलकीसूक्ष्मैलाशटिपुष्करैः। पुनर्नवातुगाक्षीरीकाकोलीधन्वयासकैः॥ मधूकाक्षोटवाताममुञ्जाताभिषुकैरपि । द्रव्यैरेभिर्यथालाभंपूर्वकल्केनसाधितम् ॥ तत्पक्वंनावनेऽभ्यङ्गेपानेबस्तौप्रयोजयेत्। शिरोरोगेषुसर्वेषुकासेश्वासेचदारुणे ॥ मन्यापृष्ठग्रहेशोषेस्वरभेदेतथार्दिते । योन्यसृक्शुक्रदोषेषुशस्तंवन्ध्यासुतप्रदम्॥ ऋतुस्नातातथानारीपीत्वापुत्रंप्रजायते । महामायूरमित्येतद्घृतमात्रेयपूजितम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त कषायके साथ एक प्रस्थ घी चारप्रस्थ दूध और नीचे लिखेहुए द्रव्यों का कल्क एक एक कर्ष डालकर पकावै, यथा जीवन्ती त्रिफला, मेदा, ऋद्धि, फालसा, समंगा, चव्य, भाडंगी, खंभारी, देवदारु, कैंचकेवीज, महामेदा, ताल, खजूर, मृनाल, कमलकीगांठ, खजूर, काकड़ासींगी, जीवक, पद्माख, सितावर, विदारीकन्द, ईख, वडी कटेरी, दोनों सारिवा, मरोडफली, गोखरू ऋषभक, सिंघाड़ा, कसेरू, रास्ना, शालिपर्णी भूय आंवला छोटी इलायची, शठी पुष्कर मूल, सांठ, वंशलोचन, काकोली, जवासा, मुलहटी, अखरोट, वादाम, मुंजात, पिस्ता इन द्रव्योंमें से जितने मिलसकें उनको पूर्वोक्त कल्कके साथ पकावें । इसघृतको नस्य, अभ्यंग, पान और वस्तिद्वारा प्रयोगकरै इसके प्रयोग से सम्पूर्ण प्रकार के शिरोरोग दारुण खांसी और श्वास, मन्यग्रह, पृष्ठग्रह, शोष स्वरभेद, अर्दितरोग, योनिरोग, रक्तदोष शुक्रदोष, दूर होजाते हैं । इसके सेवन से वन्ध्या स्त्री के पुत्र होता है । ऋतु स्नान करके जो स्त्री इसे पीती है उस के पुत्र होता है । इसकी भगवान् आत्रेय ने महामायूर घृत नामसे प्रशंसा की है ।

आखुभिःकुक्कुटैर्हंसैःशशैश्चापिहिबुद्धिमान्। कल्कैनानेनविपचेत्सर्पिरूर्द्धगदापहम्॥

अर्थ—पूर्वोक्त रीति के अनुसारही मयूर मांस की जगह चूहे, हंस, मुर्गे वा खर्गोश का मांस इस कल्क के साथ घृत पकाकर सेवन करना ऊर्ध्वजत्रुरोगों को दूर करता है।

पित्तजशिरोरोगमेंचिकित्सा ।

पैत्तेघृतंपयःसेकाःशीतालेपाःसनावनाः। जीवनीयानिसर्पींषिपानान्नंचापिपित्तनुत् ॥ चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः । क्षीरपिष्टैःप्रदेहःस्यात्शृतैर्वा

परिषेचनम् ॥ त्वक्पत्रशर्कराकल्कःसुपिष्टस्तण्डुलाम्बुना । कार्योऽवपीडःसर्पिश्च नस्यंतत्स्यात्तुपैत्तिके ॥ यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताक्षीरसिद्धंघृतंशुभम् । नावनं शर्कराद्राक्षामधुकैर्वापिपित्तजे ॥

अर्थ—पित्तज शिरोरोगमें घृत,दूध,शीतल परिषेक, शीतल लेप, नस्य, जीवनीय गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत तथा पित्तनाशक अन्नपान को सेवन करना चाहिये । रक्तचन्दन, खस, मुलहटी, खैरटी वघनखा, नीलकमल इन सबको दूध के साथ पीसकर सिरपर लेपकरै अथवा इनका क्वाथ करके सिरपर परिषेक करै । अथवा दालचीनी, तेजपात और शर्करा इनको तंडुल जल के साथ पीसकर नाकमें निचोड़ै ऊपर से घृत की नस्य लेवै । अथवा मुलहटी, चन्दन, अनन्तमूल इनके कल्कको दूध और घी में पाक कर के इस घृत की नस्य देवै इसीतरह से शर्करा, मुलहटी और दाख इनमें दूध के साथ घृत पकाकर नस्य देवै । इस से पित्तज शिरोरोग शान्त होजाते हैं ।

कफजशिरोरोगकीचिकित्सा ।

कफजेस्वेदितंधूमनस्यप्रधमनादिभिः । शुद्धंप्रलेपपानान्नैःकफघ्नैःसमुपाचरेत् ॥ पुराणसर्पिषःपानैस्तीक्ष्णैर्वस्तिभिरेवच । कफानिलोत्थितेदाहःशेषयोरक्तमोक्षणम्

अर्थ—कफजशिरोरोग में स्वेदन करके धूम, नस्य और प्रधमन आदि के प्रयोगों से शुद्ध हुए मनुष्यको कफनाशक प्रलेप तथा अन्नपानका सेवन करावै , कफवातज शिर के रोगमें पुराने घृतका पान कराना, तीक्ष्ण वस्तियोंका प्रयोग श्रेष्ठ है शेष दोनों अर्थात् सान्निपातिक और क्रिमिज हृद्रोगों में फस्त खोलना हित है ।

उक्तरोगोंकीचिकित्सा ।

एरण्डनलदक्षौमगुग्गुल्वगुरुचन्दनैः । धूमवर्तिःपिवेद्गन्धैःसकुष्ठतगरैस्तथा ॥ सन्निपातभवेकार्यासन्निपातहिताक्रिया । क्रिमिजेचैवकर्त्तव्यंतीक्ष्णमूर्द्धविरेचनम् । त्वङ्मधूकोनखोदन्तीविडङ्गंनवमालिका अपामार्गफलंबीजंनक्तमालशिरीषयोः । क्षवथोश्मन्तकोविल्वंहरिद्राहिंगुयूथिका ॥ फणिज्यकयुतैस्तैलममिमूत्रेचतुर्गुणे । सिद्धंस्यान्नावनंचूर्णंचैषांप्रधमनंभवेत् ॥ फलंशिग्रुकरञ्जाभ्यांसव्योषंचावपीडकम् । कषायारुग्धराःक्षारचूर्णोकल्कोऽवपीडकः ॥

अर्थ—अरंडकी जड़,खस, गूगल, अगर, रक्तचन्दन, इनको पीसकर रेशमीवस्त्र के टुकड़ेपर लगाकर वत्ती बनाकर धूमपान करै । अथवा अगर, कूठ और तगर की पूर्वोक्तरीति से बत्ती बनाकर धूमपान करै। सन्निपातज शिरोरोग में सन्निपातनाशिनी क्रिया करै । क्रिमिज शिरोरोग में तीक्ष्ण शिरोविरेचन देवै ।

दालचीनी, महुआ, नखी, दन्ती, वायविडंग, नवमालिका, ओंगा के वीज, कंजा की मिंगी, सिरस के चींआं, क्षवक, अश्मन्तक, बेल, हलदी, हींग, यूथिका और फणिज्झक, इन सब से चौगुना तेल और

तेल से चौगुना मेंढे का मूत्र इनसबको एक साथ पाक करके इस तेल की नस्य देवै। अथवा इन्ही औषधियों का चूर्ण करके प्रधमन करै।

सहजने के वीज, कंजे की मिंगी और त्रिकुटा इनका चूर्ण करके नाकमें रिगडै। तथा रोगनाशक कषाय, क्षार, चूर्ण और कल्क द्वारा भी अवपीड़न करै।

मुखरोगचिकित्सा।

शुक्ततिक्तकटुक्षौद्रैर्वर्षणंकवलग्रहः। धूमः प्रधमनंशुद्धिरधश्छर्दनलंघनम् ॥ भोज्यंचमुखरोगेषुयथास्वन्दोषनुद्धितम्।

अर्थ—मुखरोगों में जैसा दोष हो उसी के अनुसार शुक्त, तिक्त, कटु और क्षौद्र द्वारा अवघर्षण, कवलग्रह, धूमपान, प्रधमन, विरेचन, वमन, लंघन और भोजन करना उचित है।

मुखरोगमेंकवलग्रह।

पिप्पल्यगुरुदार्वीत्वग्यवक्षारोरसाञ्जनम्। पाठामृतेजोवतींपथ्यांसमभागंसुचूर्णितम्। मुखरोगेषुसर्वेषुसक्षौद्रंतद्विधारयेत् ॥ शीधुमाधवमाध्वीकैःश्रेष्ठोऽयंकवलग्रहः।

अर्थ—पीपल, अगर, दारुहल्दी, दालचीनी, जवाखार, रसौत, पाठा, तेजोवती और हरड़ इनको समान भाग लेकर चूर्ण करले और इस में शहत, शीधु। माधव वा माध्वीक मिलाकर मुख में धारण करै। इससे सब प्रकार के मुखरोग शान्त होजाते हैं। यह उत्तम कवलग्रह है।

दन्तमञ्जन ॥

तेजोह्वामभयामेलांसमङ्गांकटुकाघनम्। पाठांज्योतिष्मतींलोध्रंदार्वींकुष्ठञ्चचूर्णयेत् दन्तानांघर्षणाद्रक्तस्रावकण्डूरुजापहम् ॥

अर्थ—चव्य, हरड, छोटी इलायची, लज्जालु, कुटकी, मोथा, पाठा, मालकांगनी लोध, दारुहलदी और कूठ इन सब को समान भाग लेकर चूर्ण वनाकर दांतों पर रिगडै तौ रक्तस्राव, कण्डू और वेदना वन्द होती है।

कंठरोगकी चिकित्सा।

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः। पलाशमुष्ककक्षारयवक्षाराश्चचूर्णिताः ॥ गुडेपुराणेद्विगुणेक्वथितेगुडिकाःकृताः। कर्कन्धुमात्राःसप्ताहंस्थित्वामुष्ककभस्मनि कण्ठरोगेषुसर्वेषुधार्य्याःस्युरमृतोपमाः ॥

अर्थ—पंचकोल, तालीसपत्र, इलायची, कालीमिरच, दालचीनी, पलास, मुष्कक-क्षार, जवाखार इन सब को पीसकर दूने पुराने गुड में पकाकर झाडी वेर की वरावर गोली वनाकर सात दिवसतक मुष्ककको राख में धर देवै। इन गोलियों को मुखमें पडी रखने से सव प्रकार के कंठरोगों में अमृत के समान गुण होता है ॥

गृहधूमोयवक्षारपाठाव्योषंरसाञ्जनम्। तेजोह्वात्रिफलालोध्रंचित्रकश्चेतिचूर्णितम् ॥ सक्षौद्रंधारयेदेतंगलरोगबिनाशनम्। कालकंनामतच्चूर्णंदन्तास्यगलरोगनुत् ॥

अर्थ—गृहधूम, जवाखार, पाठा, त्रिकुटा,

रसौत, चव्य, त्रिफला, लोध, और चीता इन को महीन पीसकर शहत में मिलाकर गोलियां वना लेवै इन को मुख में रखने से गलरोग दूर होजाते है । यह कालकनाम चूर्ण दांत, मुख और गले के रोगों को दूर करता हैं ।

पीतक चूर्ण ।

मनशिलायवक्षारोहरितालंससैन्धवम् । दार्वीत्वक्चेतितच्चूर्णंमाक्षिकेणसमायुतम् । मूर्च्छितंघृतमंडेनकण्ठरोगेषुधारयेत् । मुखरोगेषुचश्रेष्ठंपीतकंनामकीर्तितम् ॥

अर्थ—मनसिल, जवाखार, हरिताल, सेंधानमक, दारुहलदी, दालचीनी, इनके चूर्ण में शहत और घृत मिलाकर मुख में रखने से कण्ठरोग दूर होजाते हैं । इस चूर्ण का नाम पीतक है । यह मुखरोगों में हित है ॥

मृद्वीकादि चूर्ण ।

मृद्वीकाकटुकाव्योषंदार्वीत्वक्त्रिफलाघनम् । मूर्च्छितंघृतमण्डेनकण्ठरोगेषुधारयेत् ॥

अर्थ—दाख, कुटकी, त्रिकुटा, दारुहलदी दालचीनी, त्रिफला और मोथा इनका चूर्ण करके घृत में गोली वनाकर मुख में धारण करै तौ कण्ठरोग दूर होजाते हैं ।

पाठांरसाञ्जनंमर्वातेजोह्वेतिचचूर्णितम् क्षौद्रयुक्तंविधातव्यङ्गलरोगभिषज्यितम् ॥ योगास्त्वेतेत्रयःप्रोक्तावातपित्तकफापहाः स्वरसःक्वथितोदार्व्याघनीभूतोरसक्रिया॥

अर्थ—पाठा, रसौत, मरोडफली और चव्य इन के चूर्ण में शहत मिलाकर मुख में रक्खै । इस से गलरोग दूर होजाते हैं । ये जो तीन योग ऊपर कहे गये हैं ये वातपित्त और कफनाशक हैं ॥

कटुकातिविषापाठादार्व्वीमुस्तकलिङ्गकाः गोमूत्रक्वथिताःपेयाःकण्ठरोगविनाशनाः

अर्थ—कुटकी, अतीस, पाठा, दारुहल्दी, मोथा, इन्द्रजौ इनका गोमूत्र में क्वाथ कर के पीने से कंठरोग दूर होजाते हैं ।

सक्षौद्रमुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा । तालुशोषत्वतृष्णास्यसर्पिरौत्तरभक्तिकम् ॥ नावनंमधुराःस्निग्धःशीताश्चैवरसाहिताः । मुखपाकेशिराकर्मशिरःकायविरेचनम् ॥ मूत्रतैलघृतक्षौद्रक्षीरैश्चकवलग्रहः सक्षौद्रास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः ॥ कषायतिक्तकाःशीताःक्वाथाश्च मुखधावनाः ।

अर्थ—दारुहल्दी के क्वाथ के नीचे आग जलाकर चलाता रहै जव गाढा पड़जाय तव उस में शहत मिलाकर सेवन करै तौ मुखरोग रक्तदोष और नाड़ीव्रण दूर होजाते हैं । तालुशोष और तृषा के होनेपर भोजन के पीछे घृतपान करै । इस में नस्य तथा मधुरा, स्निग्ध और शीतल मांसरस भी हित है । मुखपाक में शिराकर्म शिरोविरेचन और काम विरेचन देवै तथा गोमूत्र, तेल, घी, शहत और दूध के साथ कवलग्रह भी उत्तम है । मुखपाकमें त्रिफला, पाठा, दाख, चमेली के पत्ते इन के क्वाथ में शहत डालकर अथवा कषाय और तिक्त

शीतल क्वाथ भी मुखके धोनेमें उत्तम है ।

खदिरादिवटिका

तुलांखदिरसारस्यद्विगुणामरिमेदसः ॥ प्रक्षाल्यजर्जरीकृत्यचतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत् द्रोणशेषंकषायन्तंपूत्वाभूयःपचेच्छनैः ॥ ततस्तस्मिन्घनीभूतेचूर्णीकृत्याक्षभागिकम् । चन्दनंपद्मकोशीरंमञ्जिष्ठाधातकीघनम्॥प्रपुण्डरीकंयष्ट्याह्वत्वगेलापत्रकेशरम् । लाक्षारसाञ्जनंमांसींत्रिफलालोध्रबालकम्॥रजन्यौफलिनीमेलांसमङ्गांकटफलंवचाम्।यवाषागुरुपत्तङ्गगैरिकाञ्जनमावपेत्।लवंगनखकक्कोलजातिकोशान्पलोन्मितान् । कर्पूरकुडवंचापिपुनःशीतेऽवतारिते ॥ ततस्तुगुलिकाःकार्याःशुष्काश्वास्येनधारयेत् । तैलंचानेनकल्केनकषायेणचसाधयेत् ॥ दन्तानांचलनंभूंशंशौषिर्यंक्रिमिरोगनुत् । मुखपाकास्यदौर्गन्ध्यजाड्यारोचकनाशनम् ॥ स्रावोपलेपपैच्छिल्यवैस्वर्यगलरोगनुत् ॥ दन्तस्य गलरोगेषुसर्वेषांतत्परायणम् ।

अर्थ—सफेद खैरसाल एक तुला, विटखैर दो तुला इनको अच्छी तरह धोकर कूट लेवै और फिर इस सबको चार द्रोण जल में चढ़ाकर पकावै जब एक द्रोण जल रहजाय तब इसे छानकर छने हुए को फिर धीरै २ पकावै । इसतरह पकते पकते जब गाढ़ा पड़जाय तब इस में निम्न लिखित द्रव्यों को दो दो तोले लेकर चूर्ण करके मिलादेवै । द्रव्य यथा—रक्तचन्दन, पद्माख, खस, मजीठ, धाय के फूल, मोथा, पुंडरिया, मुलहटी, दालचीनी, इलालची, तेजपात, केसर, लाख, रसौत, जटामांसी, त्रिफला, लोध, नेत्रवाला, दोनों हलदी, प्रियंगु, बड़ी इलायची, लज्जालू, कायफल, वच, जवासा, अगर, पतंग, गेरू, और अंजन ये द्रव्य डालै फिर शीतल होने पर अग्नि के ऊपर से उतारकर लौंग, नखी, कक्कोल और जावित्री एक एक पल डालै और एक कुडव कपूर गेरै । फिर इसकी गोलियां वनाकर सुखालेवै । एक एक गोली मुख में डालता रहै । अथवा इन्हीं द्रव्यों के कल्क और कषाय में तेल को पकाकर मुख में धारण करै । इन प्रयोगों से दांतों का हिलना, टूटना, छिद्र होजाना, कीड़े लगना, मुखपाक, मुखदुर्गन्ध, जड़ता, अरुचि, स्राव, उपलेप, पिच्छिलता, विस्वरता और गलरोग दूर होजाते हैं । दांत और गले के जितने रोग हैं वे सब इस से दूर होजाते हैं ।

अरोचकचिकित्सा ।

अरुचौकवलग्राहाधूमाःसमुखधावनाः ॥ मनोज्ञमन्नपानञ्चहर्षणाश्वासनानिच ।

अर्थ—अरुचिरोग में कवलग्रह,धूमपान, मुखधावन, मनोज्ञ अन्नपान, हर्षण और आश्वासन कर्त्तव्य हैं ।

कवलग्रहकेचारप्रयोग ।

कुष्ठसौवर्चलाजाजीशर्करामरिचंबिडम् ॥ धात्र्येलापद्मकोशीरपिप्पल्युत्पलचन्दनम् लोध्रंतेजोवतीपथ्यात्र्यूषणंसयवाग्रजम्॥ आर्द्रादाडिमनिर्यासाश्चाजाजीशर्करायुतः

सतैलमाक्षिकास्त्वेतेचत्वारःकवलग्रहाः॥ चतुरोरोचकान्हन्युर्वाताद्येकजसर्वजान।

अर्थ—(१) कूठ, संचरनमक, कालाजीरा, शर्करा, कालीमिरच, विडनमक। (२) आंवला, छोटी इलायची, पद्माख, खस, पीपल नीलकमल और चन्दन (३) लोध, चव्य, हरड़, त्रिकुटा और जवाखार (४) अदरख और अनारका रस, कालाजीरा और शर्करा ये चार प्रकार के कवलग्रह तेल और शहत मिलाकर सेवन करनेसेवातज, पित्तज, कफज, और सन्निपातज अरुचिको क्रम से दूर करते हैं।

कारवीमरिचाजाजीद्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम् ॥ सौवर्चलंगुडंक्षौद्रंसर्वारोचकनाशनम्। वस्तिंसमीरणेपित्तेविरेकंवमनंकफे ॥ कुर्याद्धृद्यानुकूलानिहर्षणंचमनोघ्नजे।

अर्थ—कालाजीरा, कालीमिरच, दूसरा जीरा, दाख, वृक्षाम्ल दाडिम, संचलनमक गुड़ और शहत इन सब को समान समान भाग मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार की अरुचि दूर होजाती हैं।

वातज अरुचि में वस्तिप्रयोग, पित्तज में विरेचन और कफज में वमन करावै। एवं मन के विकार से उत्पन्न हुई अरुचि में हृदयाप्रिय और मनोकूलहर्षणादि क्रियाकरै।

वातज स्वर भेद की चिकित्सा।

सर्पीष्युपरिभक्तानिस्वरभेदेऽनिलात्मके॥ तैलैश्चतुष्प्रयोगश्चबलारास्नामृताह्वयैः। बर्हितित्तिरिदक्षाणांपञ्चमूलशृतानरसान् ॥ मायूरंक्षीरसर्पिर्वापिबेत्त्र्यूषणमेववा।

अर्थ—वातात्मक स्वर भेद में भोजन के पीछे घृतपान करना चाहिये। इसमें बला-तैल, रास्ना तैल, गुरुचीतैल, तथा क्वाथ, चूर्ण, लेह और कवल ये चार प्रकार के प्रयोग करना उचित है। पंचमूल के क्वाथ के साथ सिद्ध किये हुए मोर, तीतर और मुर्गे का मांसरस पान करै अथवा मायूर क्षीर, मायूर सर्पि वा त्रिकुटादि घृत का सेवन हित है।

पित्तजस्वर भेद की चिकित्सा।

पैत्तिकेतुविरेकःस्यात्पयस्तुमधुरैःशृतम्॥ सर्पिर्गुडाद्वृतंतिक्तंजीवनीयंवृषस्यच।

अर्थ—पित्तात्मक स्वरभेद में विरेचन, मधुर द्रव्यों से सिर सिद्ध किया हुआ दुग्ध सर्पिर्गुड़, तिक्तक घृत, जीवनीय घृत, और वासाघृत हित हैं।

कफज स्वर भेद में चिकित्सा।

कफजेस्वरभेदेतुतीक्ष्णंमूर्द्धविरेचनम् ॥ विरेकोवमनंधूमोयवान्नकटुसेवनम्। चव्यभार्ग्यभयाव्योषक्षारमाक्षिकचित्रकान् ॥ लिह्याद्वापिप्पलीपथ्येतीक्ष्णंमद्यंपिवेच्चस।

अर्थ—कफात्मक स्वरभेद में तीक्ष्णशिरोविरेचन, वमन, धूमपान, यवान्न, कटुद्रव्य सेवन उचितहैं। चव्य, भाडंगी, हरड, त्रिकुटा, जवाखार, शहत और चीता इनका लेहन करै अथवा पीपल और हरड़ को शहत के साथ चाटै अथवा तीक्ष्ण मद्यपान करै।

रक्तजस्वरभेदकीचिकित्सा।

रक्तजेस्वरभेदेतुसघृताजांगलारसाः ॥

द्राक्षाविदारीक्षुरसाःसघृतक्षौद्रशर्कराः ॥ यच्चोक्तंक्षयकासघ्नंतच्चसर्वंचिकित्सितम् ॥ पित्तजस्वरभेदघ्नंशिरावेधश्चरक्तजे।

अर्थ—रक्तजस्वर भेद में घृत सहित जांगलमांसरस देवै । दाखविदारीकन्द और ईख का रस घी, शहत और चीनी मिलाकर देवै तथा क्षयकास में जो जो चिकित्सा कहीगई है वह भी सब हित है। इस रोग में पित्तजस्वरभेदनाशकचिकित्सा और सिरावेध कराना भी हित है ।

सन्निपातजस्वरभेदकी चिकित्सा ।

सन्निपातेहिताःसर्वाःक्रियानतुशिराविधिः

अर्थ—सिराव्यधन, को छोड़कर और सब चिकित्सा सन्निपातज स्वरभेद में उपयोगी होती है ।

कर्णरोग में चिकित्साविधि ।

कर्णशूलेतुवातघ्नीहितापीनसवत्क्रिया । प्रदेहःपूरणंनस्यंपाकस्रावेव्रणक्रियाः ॥ भोज्यानिचयथादोषंकुर्यात्स्नेहांश्चपूरणान् ।

अर्थ—कर्णशूल में पीनसके सदृश वातनाशिनी क्रिया हित होती है । इसमें प्रदेह तैल से पूरण और नस्य भी देना उचित है। कर्णपाक अथवा कर्णस्राव में व्रण के मान क्रिया कीजाती है । दोष के अनुसार कर्णरोग में भोजन तथा कर्णपूरण और स्नेह हितकर होते हैं ।

कर्णपूरणप्रयोग ।

हिंगुतुम्बुरुशुण्ठीभिस्तैस्तैलंसार्षपंपचेत् । एतद्धिपूरणंश्रेष्ठंकर्णशूलनिवारणम् ॥

अर्थ—हींग, धनियां और सोंठ डालकर सरसोंक तेल पकाकर कान में डाले । यह कर्णशूलके दूरकरने में उत्तम है ।

देवदारुवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः। तैलंसिद्धं वस्तमूत्रे कर्णशूलनिवारणम्॥

अर्थ—देवदारु, वच, सोंठ, सोंफ, कूठ, सेंधानमक और वकरे का मूत्र इन में सिद्ध किया हुआ तेल कर्णशूल को दूर करता है।

वराटकान्समाहृत्यदहेत्मृद्भाजनेनवे । तद्भस्मच्योतयेत्तेनगन्धतैलंविपाचयेत् ॥ रसाञ्जनस्यशुण्ठ्याश्चकल्काभ्यांकर्णशूलनुत् ॥

अर्थ—पीली कौडी लाकर उन्हे मिट्टी के एक नये पात्र में जला लेवै । इस भस्म को चौगुने जल में स्रावित करै । इस जल में सुगंधित तेल पकावै और इस में रसौत और सोंठ पीसकर डालदेवै । इस तेल को कान में डालने से कर्णशूल जाता रहता है।

क्षार तैल ।

शुष्कमूलकशुण्ठीनांक्षारोहिंगुमहौषधम् । शतपुष्पावचाकुष्ठंदारुशिग्रुरसाञ्जनम् ॥ सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम्। भूर्जग्रन्थिविडंमुस्तंमधुशुक्तंचतुर्गुणम् ॥ रसश्चमातुलुङ्गस्यकदल्यारसएवच । स वैरेतैर्यथोद्दिष्टैःक्षारतैलंविपाचयेत् ॥ बाधिर्यंकर्णनादश्चपूयस्रावश्चदारुणः। क्रिमयःकर्णशूलञ्चपूरणादस्यनश्यति ॥ मुखकर्णाक्षिरोगेषुयथोक्तंपीनसेविधिम् ।

कुर्याद्भिषक्समीक्ष्यादौदोषकालबलाबलम् ॥

अर्थ—सूखी मूली और सोठ का खार, हींग, सोंठ, सोंफ, वच, कूठ, दारुहलदी, सहजनेकीछाल, रसौत, संचलनमक, जवाखार, सज्जीखार, उद्भिद नमक, सेंधानमक, भूर्ज ग्रन्थि, विडनमक और मोथा, इन सबका समान भाग कल्क और उससे चौगुना शहतका शुक्त * इतनाही विजौरे का रस, इतनाही कदली का रस और चौथाई तेल डालकर पकावै। इस तेल को कान में डालने से बहरापन, कर्णनाद, दारुण पूयस्राव, क्रिमि, कर्णशूल दूर होजाते है। वैद्य को उचित है कि रोगी के दोष, काल और बलाबल को देखकर मुखरोग, कर्णरोग और नेत्र रोगों में भी इसका प्रयोग करै।

नेत्ररोग में चिकित्सा क्रम।

नेत्ररोगेसमुत्पन्नेतरुणेतुविडालकः। कार्योदाहोपदेहास्तुशोफरागनिवारणः॥

अर्थ—नेत्ररोग के उत्पन्न होने परही विडालक नाम लेप करने से जलन, उपलिप्तता, सूजन और ललाई दूर होजाती है।

दोषानुसारनेत्रचिकित्सा॥

नागरंसैन्धवंसर्पिर्मण्डेनचरसक्रिया। निघृष्टंवातिकेतद्वन्मुस्तसैन्धवगैरिकम्॥ तथाशावरकंरोध्रंघृतयुक्तंविडालकः। कार्योहरीतकीतद्वद्घृतभृष्टारुजापहा। पैत्तिकेचन्दनानन्तामञ्जिष्ठाभिर्विडालकः॥ कार्यःपद्मकयष्ट्याह्वमांसीकालीयकैस्तथा गैरिकंसैन्धवंमुस्तंरोचनासारसक्रिया। कफेकार्यस्तथाक्षौद्रप्रियंगुसमनःशिलम्॥ सन्निपातेतुसर्वैःस्याद्बहिरक्षिप्रलेपनम्। पक्ष्मण्यस्पृश्यताकार्यसम्पक्केत्वञ्जनंत्र्यहात्॥

अर्थ—सोंठ और सेंधानमक समानभाग लेकर घी में सानले। और इसीतरह से मोथा, सेंधानमक और गेरू इनको घी में सानले। इन दोनों प्रयोगोंको वातज नेत्र रोग में रसक्रिया के अनुसार उपयोग में लावै। इसीतरह पठानी लोध को घी में सानकर अथवा हरड़ के कल्क को घी में तप्त करके विडालक देवै। पित्तज नेत्ररोग में रक्तचन्दन, अनन्तमूल और मजीठ का विडालक देवै अथवा पद्माख, मुलहटी, जटामांसी और पीतचन्दन का विडालक देवै। और गेरू, सेंधानमक, मोथा और गोरोचन इनकी रसक्रिया करै। कफजनेत्र रोग में शहत, प्रियंगु और मनसिल का विडालक देवै। सान्निपातिक नेत्ररोग में तीनों दोषोंकी कहीहुई औषधियोंका आंखों के बाहर बाहर लेप करै। रोग के पक होनेपर तीनदिन पीछे अंजन आंखोंके भीतर लगाना चाहिये पक्ष्म अर्थात् बरौनियों में न लगावै।

*—शहत का शुक्त अर्थात् सिर का बनाने की यह रीति है कि विजौरेका रस एक प्रस्थ शहत एक कुड़व, पीपल पिसीहुई एक पल इन सबको मिलाकर शहत के वर्त्तन में भरकर एक महीने तक धानके ढेर में गाड़देवै।

आश्च्योतनंमारुतजेक्ाथोविल्वादिभिः शुभः । कोष्णःसैरण्डतर्कारीबृहतीमधुशिग्रुभिः ॥ द्राक्षादार्वीसमञ्जिष्ठालाक्षाद्विमधुकोत्पलैः । काथःसशर्करःशीतःपूरणं रक्तपित्तनुत् ॥ नागरंत्रिफलामुस्तानिम्ब वासारसःकफे । कोष्णमाश्च्योतनंमिश्रैरौषधैःसान्निपातिके ॥

अर्थ—वातजनेत्र रोग में विल्वादि पंचमूल, एरंडकी जड़, तर्कारी, वड़ी कटेरी और मीठे सहजने को जल में जोश देकर छानले और इस जल को धीरे धीरे सुहाते हुए गरमको आंखों में टपकावै ।

दाख,दारुहलदी,मजीठ,लाख,मुलहटी,महुआ नीलकमल इन के क्वाथमें चीनी डालकर ठंडा होनेपर नेत्रों को पूरण करै तौ रक्तपित्त से उत्पन्न ललाई दूर होजाती है ।

कफज नेत्ररोग में सोंठ, त्रिफला, मोथा, नीमकी छाल, अडूसे का रस कुछ गरम करके नेत्रों में टपकावै । इसी तरह सान्निपातिक रोग में तीनों दोषों का मिला हुआ आश्च्योतन करै ।

नेत्ररोग में वर्त्ति क्रिया ।

बृहत्येरण्डमूलत्वक्शिग्रोःपुष्पंससैन्धवम् । अजाक्षीरेणपिष्टंस्याद्वर्तिर्वाताक्षिरोगनुत् ॥ सुमनःक्षारकाःशंखाःत्रिफलामधुकंवला । पित्तरक्तापहावर्तिःपिष्टादिव्येनवारिणा ॥ सैन्धवंत्रिफलाव्योषंशंखनाभिःसमुद्रजः । फेनशैलेयकंसर्जोवर्तिःश्लेष्माक्षिरोगनुत् ॥

अर्थ—वडी कटेरी, अरंडकी जडकी छाल, सहजने के फूल, सेंधानमक इन को वकरी के दूध में पीसकर वत्ती बनालेवै । इस वत्ती को दूध वा जल में घिसकर आंखों पर लगाने से वातरोग दूर होजाता है । चमेली का क्षार, शंख की भस्म, त्रिफला मुलहटी और खरैटी इन को आन्तरीक्ष जल में पीसकर वर्त्ती वनालेवै । इससे रक्तपित्तजनित नेत्ररोग दूर होजाता है । सेंधा नमक, त्रिफला, त्रिकुटा, शंखभस्म, समुद्रफेन, शिलापुष्प, और राल इनकी वत्ती कफज नेत्ररोगों को दूर करती है ।

सर्व दोष नाशिनी वर्त्ती ।

प्रपुण्डरीकंयष्ट्याह्वंदार्वीचाष्टपलांशिकम् । जलेपक्त्वारसेपूतेपुनःपक्वे रसेघने ॥ कर्षश्चश्वेतमरिचाद्रोणीपुष्पानवोत्पलम् । चूर्णंक्षिप्त्वाकृतावर्तिःसर्वघ्नीदृक्प्रसादनी

अर्थ—पुंडरियाकाठ, मुलहटी, दारुहलदी प्रत्येक आठ२ पल लेकर अठगुने जल में चढावै । चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले और फिर इस को अग्निपर चढादे। जब पकते२ गाढा पडजाय तव सहजने के वीज द्रोणीपुष्प और कच्चा नीलकमल प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर चूर्ण पीसकर डाल देवै और वत्ती वना लेवै इस वत्ती के लगाने से सम्पूर्ण दोष दूर होजाते हैं और दृष्टि स्वच्छ होजाती है ।

दूसरा प्रयोग ।

अमृतामधुकंनिम्बपटोलंछागलंशकृत् । वासाप्रपुण्डरीकञ्चदार्वीकालानुसारिणी । एषामष्टपलान्भागानसुधौतानजर्जरीकृतान् ॥ तोयेपक्त्वारसेपूतेभूयःपक्वेघने

रसे । सितामरिचयोःकर्षजातिपुष्पान्न वोत्पलम्॥ चूर्णकृत्वाकृतावर्तिःसर्वघ्नी दृक्प्रसादनी ।

अर्थ—गिलोय, मुलहटी, नीमकी छाल, परवल, वकरी की मेंगनी, अडूसा, पुंडरिया-काठ, दारुहलदी और अनन्तमूल प्रत्येक आठ आठ पल लेकर अच्छी तरह धोकर कूट लेवै । इन सव को अठगुने जल में चढाकर चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले फिर इसको पकावै जव पकते पकते गाढा होजाय तव इस में चीनी और काली मिरच एक कर्ष, चमेली के फूल एक कर्ष कच्चा नीलकमल एक कर्ष इन सव को पीसकर उस में डांल देवै । इसकी वत्ती वनाकर नेत्रों पर लगाने से संपूर्ण दोष दूर होजाते हैं और दृष्टि भी स्वच्छ हो जाती है ।

अन्यप्रयोग ।

शंखप्रवालवैदूर्यलोहिताक्षप्लवास्थिभिः॥ स्रोतोजश्वेतमरिचैर्वर्तिःसर्वाक्षिरोगनुत्।

अर्थ—शंख की भस्म, मूंगेका चूर्ण, वैदूर्य का चूर्ण, लोहिताक्ष (पक्षी विशेष) और प्लव की हड्डियां, सौवीरांजन, सहजने के वीज इन सव की वत्ती वनाकर प्रयोग करने से सव प्रकार के नेत्ररोग दूर होजाते हैं । (किसी२ पुस्तकमें लोहिताक्ष की जगह लौहताम्र पाठहै अर्थात् लोहभस्म और ताम्र भस्म। प्लव एकप्रकारका फुदक फुदक के च-लने वाला पक्षी है । गंगाधर शास्त्रीने प्लव की जगह भेक पाठ लिखा है अर्थात् मेंढक की हड्डी)

शाणार्धमरिचाद्द्वौचपिप्पल्यार्णवफेनयोः शाणार्द्धात्सैन्धवाच्छाणान्नवसौवीरकाञ्जनात् । पिष्टंसुसूक्ष्मंचित्रायांचूर्णाञ्जनमिदंशुभम् ॥ कण्डूकाचकफार्तानांमलानाञ्चविशोधनम् । वस्तमूत्रेत्र्यहंस्विन्नमेलाचूर्णसुभावितम् ॥ चूर्णाञ्जनश्चतैमिर्यक्रिमिपैल्लयमलापहम् ।

अर्थ—कालीमिरच आधाशाण, पीपल एक शाण, समुद्र फेन एक शाण, सेंधा नमक आधाशाण, सौवीरांजन एक शाण इन सब को चित्रानक्षत्र में वहुत महीन पीसकर अंजन वनालेवै । इसके लगाने से खुजली काचरोग, कफ और नेत्रों का मल दूर होजाता है । यह चूर्णाञ्जन है ।

वकरे के मूत्र में इलायची के वीजों को तीन दिन तक अच्छी तरह भिगोकर सुखा कर पीस लेवै । यह चूर्णांजन तिमिर, क्रिमि-रोग, पैल्य और मल को दूर करता है ।

सौवीरमञ्जनन्तुत्थन्ताप्योधातुर्मनःशिला चक्षुष्यंमधुकंलोहामणयःपौष्पमञ्जनम् । सैन्धवंशौकरीदंष्ट्राकतकंचाञ्जनंशुभम् ॥ तिमिरादिषुचूर्णवावर्तिर्वेयमनुत्तमा । कतकस्यफलंशंखःसैन्धवंत्र्यूषणंसिता ॥ फेनोरसाञ्जनंक्षौद्रंविडंगानिमनःशिला । कुक्कुटाण्डकपालश्चवर्तिरेषाव्यपोहति ॥ तिमिरंपटलंकाचंमलंचाशुसुखावती ।

अर्थ—सौवीरांजन, नीलाथोथा, सौना-माखी, मनसिल, मुलहटी, लोहमणि, कुसु-

मांजन इन सबको पीसकर आंखों में लगाने से नेत्रों को हित होता है । अथवा सेंधा-नमक, सूअरका दांत और निर्मली इनको पीसकर अंजन वनावै वा वत्ती वनाकर आंखों में आंजै तौ तिमिरादिरोग दूर हो-जाते हैं । अथवा निर्मलीफल, शंख, सेंधा-नमक, त्रिकुटा, मिश्री, समुद्रफेन, रसौत, शहत, वायविडंग, मनसिल और मुर्गे के अंडे के छिलके इन सवको पीसकर अंजन वा बत्ती वनाकर प्रयुक्त करै तौ तिमिर पटल, काच और मल दूर होजाते हैं। इस का नाम सुखावती है ।

दृष्टिप्रदावर्त्ती ।

त्रिफलाकुक्कुटाण्डत्वक्कासीसमयसोरजः ।
नीलोत्पलंविडंगानिफेनश्चसरितांपतेः ।
आजेनपयसापिष्ट्वाभावयेत्ताम्रभाजने ॥
सप्तरात्रंस्थितंभूयःपिष्ट्वाक्षीरेणवर्तयेत् ।
एषादृष्टिप्रदावर्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ।

अर्थ—त्रिफला, मुर्गे के अंडों के छिलके, कसीस, लोहभस्म, नीलकमल, वायविडंग, समुद्रफेन, इन सवको वकरी के दूध में पीसकर ताँवे के वरतन में वकरी का दूध भरकर सात दिवस तक भावना देवै फिर वत्ती वना बनाकर नेत्रों में लगावै ।

अन्यअंजन ।

वदनेकृष्णसर्पस्यनिहितंमासमञ्जनम् ॥
ततस्तस्मात्समुद्धृत्यसशुष्कंचूर्णयेत्सह ।
सुमनःक्षारकैःशुष्कैरर्द्धांशैःसैन्धवेनच ॥
एतन्नित्याञ्जनंकार्यंतिमिरघ्नमनुत्तमम् ।

अर्थ—कालेसांप के सिरको काटकर उस के मुख में रसांजन भरकर एक महीनेतक धरा रहने देवै । एक महीने पीछे उसे निकालकर सुखाकर पीसलेवै । इसमें माल-ती का खार और सेंधानमक आधा आधा मिलाकर नेत्रों में आंजै यह अंजन तिमिर रोग के दूर करने में वहुत उत्तम है ।

सुरसःकिंशुकस्याहेर्वसाकृष्णस्यसैन्धवम् ।
जीर्णघृतश्चसर्वाक्षिरोगघ्नीस्यादुपक्रिया
कृष्णसर्पवसाक्षौद्रंरसोधात्र्यारसक्रिया ॥
शस्तावाताक्षिरोगेषुकाचार्बुदमलेषुच ।
धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तुरसक्रिया ॥
पित्तरक्ताक्षिरोगघ्नीतैमिर्यपटलापहा ।
धात्रीसैन्धवपिप्पल्यःस्युरल्पमरिचाःस
माःक्षौद्रयुक्तानिहन्त्यान्ध्यंपटलञ्चरसक्रि

अर्थ—पलासकी जड़ का रस, कालेसर्प की चर्वी, सेंधानमक और पुरानाघी इन सबको मिलाकर पीसकर नेत्रों में लगावै । इससे सम्पूर्ण प्रकार के नेत्ररोग शान्त होजाते हैं । कालेसर्प की चर्वी, शहत, और आंवले का रस इनको घोटकर आंखों में डालने से वज्र वातजनेत्ररोग तथा काच अर्बुद और मल दूर होजाते हैं । आंवले का रस, रसौत, शहत और घी इसका रस-क्रिया द्वारा प्रयोग करने से पित्तरक्तज नेत्ररोग, तिमिर और पटल दूर होजाते हैं आंवला, सेंधानमक, पीपल, और काली-मिरच ये सव समान भाग लेकर शहत के साथ घोटकर रसक्रिया द्वारा प्रयुक्त करै तौ अन्धता और पटलरोग दूर होजातेहैं

खालित्यचिकित्सा ।

या।खालित्येपलितेवल्ल्यांहरिलोम्निच साधितम्।।नस्यैस्तैलैःशिरोवक्त्रप्रलेपैश्चाप्युपाचरेत् । सिद्धंविदारिगन्धाद्यैर्जीवनीयैरथापिच ॥ नस्यंस्यादणुतैलंवा खालित्यपलितापहम् । क्षीरात्सहचराद्भृंगरजसःसौरसाद्रसात् ॥ प्रस्थैस्तुकुडवस्तैलाद्यष्ट्याह्वपलकल्कितः । सिद्धःशैलासनेभाण्डेमेषशृंगेचसंस्थितः ॥ नस्यंस्यात्क्षीरयुक्तंवादुग्धिकाकरवीरकौ । उत्पाट्यपलितंदेयाताबुभौपलितापहौ ॥ मार्कवस्वरसात्क्षीराद्द्विप्रस्थंमधुकात्पलम् । तैःपचेत्कुडवंतैलात्तन्नस्यं पलितापहम् ॥

अर्थ—खालित्य (खल्वाट) पालित्य (श्वेतकेश होना) वली (झुर्री पड़ना) और रोमोंका हरा होना इनमें नस्य, तैल, शिरःप्रलेप, मुखप्रलेपादि द्वारा चिकित्सा करै । विदारीगन्धादि गण वा जीवनीयादि गण से सिद्ध कियाहुआ तेल वा पूर्वोक्त अणुतैल की नस्य का प्रयोग करने से खालित्य और पालित्य दोनों रोग दूर होजाते हैं । दूध, सहचरीका रस, भांगरेका रस, तुलसीका रस प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेकर, तेल एक कुड़व और मुलहटी एक पल इन सबको एक साथ पकाकर पत्थर वा काच के वर्तन वा मेढ़ा के सींग में रक्खै । इसकी नस्य देवै ।

सफेद बालों को उखाड़कर दूधमें दुद्धी पीसकर वा कनेर पीसकर सिरपर लेप करै तौ पालित्य दूर होजाता है । भांगरे का रस दो प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ, मुलहटी एक पल, एक कुडव तैल । इन सबको एक साथ पकाकर नस्य देनेसे पलितरोग दूर होजाता है ।

महानीलाख्यघृत ।

आदित्यवल्ल्यामूलानिकृष्णशैरेयकस्य च । सुरसस्यचपत्राणिफलंकृष्णशणस्य च ॥ मार्कवःकाकमाचीचमधुकंदेवदारु च । पृथग्दशपलांशानिपिप्पल्यस्त्रिफलाञ्जनम् ॥ प्रपुण्डरीकंमञ्जिष्ठालोध्रंकृष्णागुरूत्पलम् । आम्रास्थिकर्दमःकृष्णोमृणालीरक्तचन्दनम् ॥ नीलंभल्लातकास्थीनिकासीसमदयन्तिका । सोमराज्यसनःशस्त्रंकृष्णापिण्डीतचित्रकौ ॥ पुष्पाण्यर्जुनकाश्मर्याण्याम्राजम्बूफलानिच । पृथक्पञ्चपलांशानितैःपिष्टैराढकंपचेत् ॥ वैभीतकस्यतैलस्यधात्रीरसचतुर्गुणम् । कुर्यादादित्यपाकंवायावत्शुष्कोभवेद्रसः लोहपात्रेततःपूतंसंशुद्धंउपयोजयेत् । पानेनस्तःक्रियायाश्चशिरोऽभ्यङ्गेचसंयतः एतच्चक्षुष्यमायुष्यंशिरसःसर्वरोगनुत् । महानीलमितिख्यातंपलितघ्नमनुत्तमम्॥

अर्थ—आदित्यवल्ली की जड़, कृष्णसैरेयक, तुलसी के पत्ते, कालेसन के फल, भांगरा, मकोय, मुलहटी, देवदारु, पृथक् पृथक् दस पल । पीपल, त्रिफला, रसौत, पुण्डरियाकाठ, मजीठ, लोध, कृष्णागुरु, नीलकमल, आमकी गुठली, कर्दम, मृणाल, रक्तचंदन, नील, भिलायेकी गुठली, हीरा-

कसीस, मल्लिका, सोमराजी, अशन, लोह-भस्म, पीपल, मेनफल, चीता, अर्जुनकेफूल (किसी २ में पुहकरमूल अर्जुन), खंभारी के फल, आम, जामन, इन में से प्रत्येक पांच पांच पल लेकर इन सबको पीस लेवै इन के साथ एक आढ़क बहेड़े का तेल, आंवले का रस चार आढक इनको अग्नि पर चढाकर वा सूर्य की धूप में पकाकर गाढ़े होनेपर छानकर लोहे के पात्रमें रख-देवै इस तेल को पान, नस्य और सिरपर मालिश करने में प्रयुक्तकरै। यह तेल नेत्रों को हितकारी, आयुवर्द्धक, और सिर के सम्पूर्ण रोगों का नाश करनेवाला महानील नामक है। यह तेल पलित दूर करने में वहुत उत्तम है।

प्रपुण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः। कार्षिकैस्तैलकुडबः द्विगुणामलकीरसः॥ सिद्धःसपरिमर्शःस्यात्सर्वमूर्द्धगदापहः। क्षीरंपियालयष्ट्याह्वेजीवकाद्योगणस्तिलाः॥ कृष्णाबक्तप्रलेपःस्याद्धरिल्लोम निवारणः। यष्ट्याह्वतिलकिञ्जल्कक्षौद्रमामलकानिच ॥ बृंहयेद्रञ्जयेच्चैतत्के शान्मूर्द्धप्रलेपनम्। पचेत्सैन्धवशुक्ताम्लैरसश्चूर्णसतण्डुलम् ॥ तेनालिप्तंशिरःशुद्धस्निग्धमुषितंनिशि। तत्प्रातस्त्रिफलाधौतंस्यात्कृष्णमृदुमूर्द्धजम् ॥ अयश्चूर्णोऽम्लपिष्टश्चरागःसत्रिफलोवरः।

अर्थ—पुण्डरियाकाठ, मुलहटी, पीपल, चन्दन, नीलकमल, प्रत्येक एक एक कर्ष, तेल एक कुडव, आंवले का रस दो कुडव इन सवको सिद्ध करके प्रयोग करने से सिर के सम्पूर्ण रोग दूर होजाते हैं। दूध, पियाल, मुलहटी, जीवनीय गणोक्त द्रव्य और काले तिल इनको पीसकर लेप करने से रोमोंका हरापन दूर होजाता है।

मुलहटी, तिल, पद्मकेसर, शहत और आंवला इनका मस्तकपर लेप करनेसे केश दृढ़ तथा काले होजाते हैं। सेंधानमक, शुक्त, कांजी, लोहचूर्ण, तंडुल, इन सवको पीसकर विना चिकनाई डाले सिरको शुद्ध कर के पहिले दिन रात में लेप करै। दूसरे दिन प्रातःकाल त्रिफला के जल से धोडाले तो वालकोमल और कालेपड़जातेहैं। लोहचूर्ण और त्रिफला इनको कांजी के साथ पीसकर लेप करने से वाल काले पड़जाते हैं॥

कुर्याच्छेषेषुरोगेषुक्रियांस्वांस्वाच्चिकित्सितात् ॥ शेषेष्वादौचनिर्दिष्टासिद्धौ चान्याप्रवक्ष्यते।

अर्थ—जत्रु से ऊपर होनेवाले रोगों में जो रोग है उसकी वैसीही चिकित्सा करै। उन में से वहुत से रोगों की चिकित्सा पहिले वर्णन करचुके हैं और शेषरोगोंकी चिकित्सा सिद्धिस्थान में वर्णन कीजायगी।

अध्यायकाउपसंहार।

वातपित्तकफान्दृणांवस्तिहृन्मूर्द्धसंश्रयाः॥ तस्मात्तुस्थानसामीप्याद्धर्तव्यावमनादिभिः। अध्यात्मलोकेवाताद्यैर्लोकोवातरवीन्दुभिः॥पीड्यतेधार्यतेचैवविकृताविकृतैःसच। विरुद्धैरपिनत्वेतेगुणैर्घ्नन्तिपरस्प

रम् ॥ दोषाःसहजसात्म्यत्वाद्विषंघोरम
हीनिव ।

अर्थ—वात, पित्त और कफ के प्रधानस्थान मनुष्यके वस्ति, हृदय और मूर्द्धा हैं इसलिये स्थानकी समीपता के कारण वमनादि द्वारा उनका संशोधन करे। जैसे विकृत वायु, सूर्य और चन्द्रमा संसारको पीडित करते हैं और अविकृत संसार को धारण करते हैं उसीतरह विकृत वात, पित्त, कफ, देह को पीडित करते हैं और अविकृत देहको धारण करते हैं।

वात पित्त और कफ ये तीनों दोष यद्यपि गुणों में परस्पर विरुद्ध हैं तथापि एक दूसरे को नष्ट नहीं करते हैं, क्योंकि ये साथ उत्पन्न हुए हैं और सात्म्य भीहैं। जैसे सर्प का विष सर्प को नष्ट नहीं करसक्ता है ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

त्रिमर्मजानांरोगाणांनिदानाकृतिभेषजम्॥
विस्तरेणपृथग्दृष्टंत्रिमर्मीयेचिकित्सिते।

अर्थ—इस त्रिमर्मीय चिकित्सित नामक अध्याय में रोगों के निदान आकृति और चिकित्सा पृथक् २ विस्तारपूर्वक वर्णन की गई है।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचिकित्सितस्थानेत्रिमर्मीयाचिकित्सितंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

——⊛——

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथातऊरुस्तम्भचिकित्सितंव्याख्यास्यामः
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम ऊरुस्तम्भ चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

श्रियापरमयाब्राह्म्यापरयाचतपःश्रिया।
अहीनंचन्द्रसूर्याभ्यांसुमेरुमिवपर्वतम् ॥
धीधृतिस्मृतिविज्ञानज्ञानकीर्तिक्षमालयम्।
अग्निवेशोगुरुंकालेसंशयंपरिपृष्टवान् ॥
भगवन्! पञ्चकर्माणिसमस्तानिपृथक्तथा। निर्दिष्टान्यामयानान्तुसर्वेषामेवभेषजम् ॥ दोषजोऽस्त्यामयःकश्चिद्यस्यैतानिभिषग्वर!। नस्युःशक्तानिशमनेसाध्यस्यक्रिययाततः ॥

अर्थ—जैसे सुमेरु पर्वत चन्द्रमा और सूर्य दोनों से सुशोभित है उसी तरह जो परा ब्राह्मी श्री और परातपः श्री इन दोनों से युक्त है और जो धी धृति, स्मृति, विज्ञान, ज्ञान, कीर्ति और क्षमा का स्थान है ऐसे गुरु आत्रेय से अग्निवेशने उचित समय पर अपने संशय को दूर करने के हेतु प्रश्न किया कि हे भगवन्! आपने वमन विरेचनादि पांचों कर्मों का पृथक् २ वर्णन किया है और सम्पूर्ण रोगों की औषधियां भी कही हैं। परन्तु हे वैद्यवर! क्या कोई ऐसा भी दोषजरोग है जो साध्य होने पर भी उक्त सम्पूर्ण क्रियाओं द्वारा दूर करने में न आ सकता हो।

अस्त्युरुस्तम्भइत्युक्तेगुरुणातस्यकारणम्
सलिंगभेषजंभूयःपृष्टस्तेनाब्रवीद्गुरुः ॥

अर्थ—यह सुनकर आत्रेय बोले कि ऊरुस्तम्भ एक ऐसा रोग है जो वमन विरेचनादि पंचकर्म्मों से अच्छा नहीं हो-सकता है तब अग्निवेशके फिर प्रश्न करने पर आत्रेयने ऊरुस्तंभ का निदान, लक्षण और चिकित्सा वर्णन की।

ऊरुस्तम्भका हेतु ।

स्निग्धोष्णलघुशीतानिजीर्णाजीर्णेसमश्नतः । द्रवशुष्कदधिक्षीरग्राम्यानूपौदकामिषैः ॥ पिष्टव्यापन्नमद्यातिदिवास्वप्नजागरैः । लंघनप्लवनाद्यैश्चभयवेगविधारणैः ॥ स्नेहांश्चामश्चितंकोष्ठेवातादीन्मेदसासह । रुद्धाशुगौरवादूरुस्रोतोभिर्यात्यधोगतैः ॥ पूरयन्सक्थिजंघोरुदोषोमेदोबलोत्कटः । अविधेयंपरिस्पन्दं जनयत्यल्पविक्रमम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, उष्ण, लघु और शीतल अन्न के अत्यन्त सेवन से, विषम भोजन अजीर्ण में भोजन वा समशन से, पतले वा सूखे दही, दूध, ग्राम्यमांस, आनूपमांस और औदक मांस के अत्यन्त सेवन से, पिट्ठी के पदार्थों के अत्यन्त सेवन से, दूषित मद्य से, दिन में सोने से वा रात्रि में अत्यन्त जागनेसे,लाँघनेसे,कूदनेसे,भयसे,वेग संधारणसे, और अत्यन्त स्नेह के सेवन करने से कोष्ठ में संचित हुआ आम मेदा के साथ वातादिक दोषोंको रोककर भारापन के कारण शीघ्रही अधोगामी स्रोतों द्वारा ऊरू में जाता है तब दोष मेद के साथ मिलने से बलोत्कट होकर सक्थि, जंघा और ऊरू को भर देता है और ये चलने फिरने से रहित होकर अल्प बलयुक्त होजाती हैं।

ऊरुस्तम्भकी उत्पत्ति ।

महासरसिगम्भीरेपूर्णेऽम्बुस्तिमितेतथा । तिष्ठतिस्थिरमक्षोभ्यंतद्वदूरुगतःकफः ॥ गौरवायाससङ्कोचदाहरुक्सुप्तिकम्पनैः। भेदस्फुरणतोदैश्चयुक्तोदेहंनिहन्त्यसून् ॥ ऊरुश्लेष्मासमेदस्कोदोषौद्वावभिभूयतु । स्तम्भयेत्स्थैर्यशैत्याभ्यामूरुस्तम्भस्ततस्तु सः ॥ वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्यस्यात् स्नेहनात्पुनः। पादयोःसदनंसुप्तिःकृच्छ्रा दुद्धरणंतथा ॥

अर्थ—जैसे बडे सरोवर के पूर्ण भरजाने पर उस में जल ठहरजाता है उसी तरह से कफ ऊरू में जाकर स्थिर और अक्षुभित होकर ठहर जाता है। जिस ऊरुस्तम्भ में भारापन,आयास,संकोच,दाह,वेदना,सुन्नता, कम्पन, भेद, फडकन और तोद होता है उस में प्राण शीघ्रही निकल जाते हैं। मेद से संयुक्तकफ वात और पित्तका पराभव करके स्थिरता और शीतलताके कारण ऊरुओं को स्तम्भित कर देता है। तब यह रोग ऊरुस्तम्भ कहाता है। इस रोग में वात विकार की शंका करके अज्ञान से मनुष्य वातनाशक तैलादि का मर्दन करते हैं,इस से पांवों में शिथिलता और शून्यता होती है तथा पांव बडी कठिनता से उठता है।

ऊरुस्तम्भ के लक्षण ।

जंघोरुग्लानिरत्यर्थंशश्वच्चादाहवेदना।
पदश्चव्यथतेन्यस्तंशीतस्पर्शनवेत्तिच ॥
संस्थानेपीडनेगत्यांचलनेचाप्यनीश्वरः।
अन्यप्रणेयःसम्भग्नावूरुपादौचमन्यते॥

अर्थ—जंघा और ऊरू में अत्यन्त ग्लानि निरन्तर दाह और वेदना, पांव के धरने में व्यथा, शीतस्पर्श का मालूम न होना, तथा पांव के एक जगह रक्खे रहने में, चलाने में पीडा होती है तथा यह मालूम होता है कि ऊरू और पांव दोनों टूटे जातेहैं।

ऊरुस्तम्भका पूर्वरूप ।

प्राग्रूपंध्याननिद्रातिस्तैमित्यारोचकज्वराः
लोमहर्षश्चछर्दिश्चजंघोर्वोःसदनंतथा ॥

अर्थ—ध्यान, निद्रा, अत्यन्त स्तिमिता, अरुचि, ज्वर, लोमहर्ष, वमन, जंघा का सदन वा ऊरुसदन ये ऊरुस्तम्भ के पूर्वरूप हैं।

साध्यासाध्यऊरुस्तम्भका लक्षण ।

यदादाहार्तितोदार्तोवेपनःपुरुषोभवेत् ।
ऊरूस्तम्भस्तदाहन्यात्साधयेदन्यथा नवम् ॥

अर्थ—जब ऊरुस्तम्भके पुराने पड़नेपर रोगी दाह, यातना और तोद से पीड़ित हो और उसे कम्पन भी होता हो तो ऊरुस्तम्भ असाध्य और प्राणनाशक होताहै। ऊपर कहेहुए लक्षणों से विपरीत और नवीन ऊरुस्तम्भ साध्य होता है ।

ऊरुस्तम्भमें अकर्त्तव्यकर्म ।

तस्यनस्नेहनंकार्यंनवस्तिर्नाविरेचनम् ॥
नचैववमनंयस्मात्तन्निबोधतकारणम् ॥

अर्थ—ऊरुस्तम्भ में स्नेहन, वस्ति, विरेचन वा वमन नहीं कराना चाहिये । जिन हेतुओं से ये कर्म नहीं कियेजाते हैं उसका कारण यह है कि—

अकर्त्तव्यकर्म्मोंकाहेतु ।

वृद्धयेश्लेष्मणोनित्यंस्नेहनंवस्तिकर्मच ।
तत्स्थस्योद्धरणेचैवनसमर्थंविशोधनम् ।
कफंकफस्थानगतंपित्तंवावमनात्सुखम् ॥
हन्तुमामाशयस्थौचस्रंसनात्तावुभावपि ।
पक्काशयस्थाःसर्वेचवस्तिभिर्मूलनिर्जयात्
शक्यानत्वाममेदोभ्यांस्तब्धजंघोरुसंस्थिताः ।

अर्थ—स्नेहनकर्म और वस्तिकर्म कफ को सदा बढ़ातेही हैं । तथा वमन विरेचनादि संशोधन भी ऊरू में स्थित कफ को निकालने में समर्थ नहीं होतेहैं कारण यह है कि वमन विरेचनका ऊरूसे कोई साक्षात् संबंध नहीं हैं ।

कफस्थानगत कफ और पित्तस्थानगत पित्त वमन द्वारा सुखपूर्वक दूर होसक्ता है और आमाशयस्थ पित्त और कफ दोनों स्रंसनद्वारा दूर होसक्ते हैं । पक्काशय में स्थित वातपित्त कफ ये तीनों दोष वस्तिकर्म से सुखपूर्वक दूर होजाते हैं परन्तु आम और मेदा से स्तब्ध जंघा और ऊरु में स्थित दोष वस्तिकर्म से दूर नहीं होसक्तेहैं ।

वातस्थानेहितेशैत्याद्द्वयोःस्तम्भाश्चतद्गताः ॥ नशक्याःसुखमुद्धर्तुंजलंनिम्नादिवस्थलात् ।

अर्थ—ऊरु और जंघा वात के स्थान हैं और वायुकी शीतलता के कारणही ऊरुस्तम्भ और जंघास्तम्भ उत्पन्न होते हैं इस से इनको दूर करदेना सहजबात नहीं है। जैसे नीचे स्थलों से जल निकालने में कठिनता पड़ती है उसीतरह शरीर के नीचेके भाग में स्थित जंघा और ऊरु से दोषों के दूरकरने में कठिनता होती है।

ऊरुस्तम्भमेंचिकित्साविधि।

तस्यसंशमनंनित्यंक्षपणंशोषणंतथा ॥ युक्त्यपेक्षीभिषक्कुर्यादधिकत्वात्कफामयोः। सदारूक्षोपचारायययवश्यामाककोद्रवान् ॥ शाकैरलवणैरद्याज्जलतैलोपसाधितैः। सुनिषणकनिम्बार्कवेत्रारग्वधपल्लवैः ॥ वायसीवास्तुकैरन्यैस्तिक्तैश्चकुलकादिभिः। क्षारारिष्टप्रयोगाच्च हरीतक्यास्तथैवच ॥ मधूदकस्यपिप्पल्याऊरस्तम्भविनाशनाः।

अर्थ—कफ और आमकी अधिकता का विचार कर के युक्तिपूर्वक ऊरुस्तम्भमें संशमन क्रिया करना उचित है जिससे इस रोग का नाश और शोषहोवै। तथा सदा रूक्ष उपचार के निमित्त जौ, सोंखिया, कोदों का सेवन कराना हित है और बिना नमकके जल और तेल के साथ पकातेहुए चौपतिया, नीम के पत्ते, आक के पत्ते, बेत के पत्ते, अमलतास के पत्ते, मकोय, बथुआ और परवलआदि अन्य तिक्तशाकों का सेवन करै। इसीतरह क्षार, अरिष्ट, हरड़, मधूदक और पीपल ऊरुस्तम्भ को दूर करदेते हैं।

ऊरुस्तम्भमें अन्यऔषध।

समङ्गांशाल्मलीविल्वमधुनासहनापिवेत्। तथाश्रीवेष्टकोदीच्यदेवदारुनतान्यपि। चन्दनंधातकीकुष्ठंतालीशंनलदंतथा ॥

अर्थ—लज्जालू, सेमरकी छाल और बेल की छाल इन के क्वाथ में शहत डालकर पानकरै। तथा श्री वेष्टक, नेत्रवाला, देवदारु और तगर का क्वाथ मधु के साथ पान करै अथवा रक्तचन्दन, धाय के फूल, कूठ, तालीसपत्र और खस इन के क्वाथको मधु के साथ पानकरै।

ऊरुस्तम्भ पर पांच प्रयोग।

मुस्तंहरीतकींरोध्रंपद्मकंतिक्तरोहिणीम्। देवदारुहरिद्रेद्वेवचांकटुकरोहिणीम् ॥ पिप्पलींपिप्पलीमूलंसरलंदेवदारुच। चव्यचित्रकमूलानिदेवदारुहरीतकीम् ॥ भल्लातकंसमूलाश्चपिप्पलींपञ्चतान्पिवेत्। सक्षौद्रानर्द्धश्लोकोक्तान्कल्कान् रुग्रहापहान् ॥

अर्थ—(१) मोथा, हरड़, लोध, पद्माख और कुटकी। (२) देवदारु, दोनों हलदी, वच और कुटकी। (३) पीपल, पीपलामूल, सरलकाष्ठ, देवदारु (४)। चव्य, चीता की जड, देवदारु और हरड़ (५)। भिलाया; पीपल, पीपलामूल। आधे २ श्लोकों में कहे हुए ये पांच प्रयोग हैं इन में से किसी एक का कल्क शहत डालकर पीने से ऊरुस्तम्भ का नाश होता है।

शार्ङ्गेष्टांमदनंदन्तींवत्सकस्यफलंवचाम् ।
मूर्वामारग्वधांपाठांकरञ्जंकुलकंतथा ॥
पिबेन्मधुयुतंतुल्यंचूर्णंवावारिणाप्लुतम् ।
सक्षौद्रंदधिमण्डंवाप्यूरुस्तम्भविनाशनम्॥

अर्थ—शार्गेष्टा, मेनफल, दन्ती, इन्द्रजौ, वच, मूर्वा, अमलतास, पाठा, कंजा, परवल इनके क्काथ में शहत डालकर पीवै अथवा इनके चूर्ण को जल में घोलकर शहत वा दधिमंडके साथ पीवै । इससे ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है ।

मूर्वामतिविषांकुष्ठंचित्रकंकटुरोहिणीम् ।
पूर्ववद्वापिवेत्तोयेरात्रिस्थितमथापिवा ॥
स्वर्णक्षीरीमतिविषांमुस्तंतेजोवतींवचाम्।
सुराह्वंचित्रकंकुष्ठंपाठांकटुकरोहिणीम्॥
लेहयेन्मधुनाचूर्णंसक्षौद्रंवाजलान्वितम्।
फलींव्याघ्रनखंहेमपिबेद्वामधुसंयुतम् ॥
त्रिफलांपिप्पलींमुस्तंचव्यंकटुकरोहिणीम् । लिह्याद्वामधुनाचूर्णमुरुस्तम्भार्दितो नरः ॥

अर्थ—मूर्वा, अतीस, कूठ, चीता, कुटकी इनके क्काथ वा चूर्ण को पहिले की तरह पीवै अथवा इन सब द्रव्यों को रात्रि के समय जल में भिगो देवै और प्रातःकाल इस जल को पीवै । अथवा स्वर्णक्षीरी, अतीस, मोथा, चव्य, वच, देवदारु, चीता, कूठ, पाठा और कुटकी इनके चूर्ण को शहत के साथ अथवा शहत मिले हुए जल के साथ सेवन करै । अथवा प्रियंगु, व्याघ्रनख और नागकेशर इनके चूर्ण को शहत के साथ पीवै । अथवा त्रिफला, पीपल, मोथा चव्य, और कुटकी इनके चूर्ण को शहत के साथ चाटै ।

ऊरुस्तंभके उद्रपवोंकी चिकित्सा ।

अपतर्पणजश्चेत्स्याद्दोषःसन्तर्पयेद्धितम्।
युक्त्याजांगलजैर्मांसैःपुराणैश्चैवशालिभिः
रूक्षाणांवातकोपश्चेन्निद्रानाशार्तिपूर्वकः ।
स्नेहस्वेदक्रमस्तत्रकार्योवातामयापहः ॥
पीलुपर्णींपयस्याचरास्नागोक्षुरकोवचा ।
सरलंदारुकुष्ठंचतैलमेभिर्विपाचयेत् ।
सक्षौद्रात्प्रसृतंतस्मादञ्जलिंवापिनापिबेत्
कुष्ठंश्रीवेष्टकोदीच्यंसरलंदारुकेसरम् ।
अजगन्धाश्वगन्धाचतैलन्तैःसार्षपंपचेत्
सक्षौद्रंमात्रयातच्चाप्यूरुस्तम्भार्दितःपिबेत्

अर्थ—जो ऊरुस्तम्भ अपतर्पण से उत्पन्न हुआ हो तौ उस में सन्तर्पण हितहै । इस में जांगल मांस और पुराने शालिचांवल दैना उचित है । रूक्ष व्यक्ति के यदि निद्रानाश और यातना पूर्वक वातका कोप होवै तौ वातरोग नाशक स्नेहन और स्वेदन क्रिया का अवलंवन करै । मरोडफली, क्षीरकाकोली, रास्ना, गोखरू, वच, सरल, देवदारु और कूठ इन को डालकर तेल पकावै । इस तैल में से एक प्रसृत वा एक अंजली शहत डालकर पीना चाहिये । अथवा कूठ, श्रीवेष्टक, नेत्रवाला, सरलकाष्ठ, देवदारु, नागकेशर, अजगंध, असगंध इन को डालकर सरसों का तेल पकावै । इस तेल में मात्रा के अनुसार शहत डालकर पीने से ऊरुस्तम्भ दूर होजाता है ।

द्वेपलेसैन्धवात्पञ्चशुण्ठ्याग्रन्थिकचित्र

कात् ॥ द्वेद्वेभल्लातकास्थीनिविंशतिर्द्वे तथाढके । आरनालात्पचेत्प्रस्थंतैलस्यै तैरपत्यदम् ॥ गृध्रस्यूरुग्रहार्शोर्तिसर्ववा तविकारनुत् । पलाभ्यांपिप्पलीमूलना गरादष्टकट्वरः ॥ तैलप्रस्थःसमोदध्ना गृध्रस्यूरुग्रहापहः । इत्याभ्यन्तरमुदिष्टमू रुस्तम्भस्यभेषजम् ॥ श्लेष्मणःक्षपणंत्व न्यद्बाह्यंश्रुणुचिकित्सितम् ।

अर्थ—सैंधानमक दो पल, सोंठ पांचपल, वच और चीता दो दो पल, भिलाये की गुठली बीस, कांजी दो आढक, इन सब के साथ एक प्रस्थ तैल पकावै। यह तेल संतान कारक होता है। इसके सेवन करने से गृध्रसी, उरुग्रह, अर्शयातना, तथा सब प्रकार के वातरोग दूर होजाते हैं।

पीपलामूल एक पल, सोंठ एक पल, आठ प्रस्थकट्वर, एक प्रस्थ तेल और एक प्रस्थ दही इन सब को पकाकर सेवन करने से गृध्रसी और ऊरुग्रह दूर होजाते हैं।

इस तरह ऊरुस्तम्भकी आभ्यन्तर चिकित्सा वर्णनकी गई है, अब हम यहां से श्लेष्मक्षपण वाह्य चिकित्सा का वर्णन करते हैं।

ऊरुस्तम्भ पर लेप ।

वल्मीकमृत्तिकामूलंकरञ्जस्यफलंत्वचम् पिष्ट्वासर्षपंमूत्रेऽप्युषितंस्यात्प्रलेपनम् इष्टकानांततश्चूर्णैःकुर्यादुत्सादनंशुभम् ॥

अर्थ—वांबी की मिट्टी, कंजाकी जड, फल और छाल और रातभर गोमूत्र में में भिगोई हुई सरसों इन सब को पीसकर लेप करै अथवा ऊपर से ईंटका चूर्ण धीरे २ मसलै ।

अन्यलेप ।

मूलैर्वाप्यश्वगन्धायामूलैरर्कस्यवाभिषक् पिचुमर्दस्यवामूलैरथवादेवदारुणः । क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकाद्वयुतैर्भिषक् । गाढमुत्सादनंकुर्यादुरुस्तम्भेप्रलेपनम् ॥ द्रवन्त्यासुरसैर्दन्त्यासर्षपैश्चापिबुद्धिमान्। तर्कारीविश्वशिग्रुसुरसवत्सकनिम्बजैः ॥ पत्रमूलफलैस्तोयंशृतमुष्णञ्चसेवनम् । वत्सकःसुरसंकुष्टंगन्धास्तुम्बुरुशिग्रुकौ ॥ हिंस्रार्कमूलवल्मीकमृत्तिकाःसकठेरुकाः । दधिसैन्धवसंयुक्तंकार्य्यमेतैःप्रलेपनम् ॥

अर्थ—असगंध की जड़, अथवा आक की जड़, वा नीमकी जड़, अथवा देवदारु की जड़, इनके चूर्ण में शहत, सरसों, वांबीकी मिट्टी मिलाकर ऊरुस्तम्भ पर गाढ़ उत्सादन करै। अथवा द्रवन्ती, सुरसा, तुलसी, दन्ती और सफेद सरसोंका लेप करै अथवा जयन्ती, सोंठ, संहजना, कालीतुलसी, इन्द्रजौ इनके पत्ते, जड़ और फलों को औटाकर उष्णजल का ऊरुस्तम्भ पर तरड़ा देवै। अथवा इन्द्रजौ, तुलसी, कूठ, असगंध, धनियां, संहजना, हींसकी जड़, आककी जड़, वांबीकी मिट्टी और कुठेरक तुलसी इनमें दही और सैंधानमक मिलाकर लेप करै।

श्योनाकंखदिरंविल्वंबृहत्यौसरलासनौ। अग्निमन्थाढकीशिग्रुश्वदंष्ट्रासुरसार्जकान्। तर्कारींनक्तमालञ्चजलेनोत्क्वाथ्यसेचयेत्

प्रलेपौमूत्रपिष्टैर्वाप्यूरुस्तम्भनिवारणः । कफक्षयार्थंसहेषुव्यायामेष्वनुयोजयेत् ॥ स्थलान्याक्रामयेत्कल्पंशर्कराःसिकतास्तथा ॥ प्रतारयेत्प्रतिस्रोतांनदींशीतजलांशिवाम् । सरश्चविमलंशीतंस्थिरतोयंपुनःपुनः ॥ तथाकफेविशुष्कस्यशान्तिमूरुग्रहीव्रजेत् । श्लेष्मणःक्षपणंयत्स्यात्नच मारुतमावहेत् । तत्सर्वंसर्वदाकार्य्यमूरुस्तम्भस्यभेषजम् ॥ शरीरंबलमग्निञ्चकार्य्येषारक्षताक्रिया ॥

अर्थ—श्योनाक, खैर, वेलछाल, दोनों कटेरी, सरल, असन, अरनी, संहजना, गोखरू, तुलसी, अर्जक, तर्कारी और कंजा इनका क्वाथ कर के गरम २ का तरड़ा देवै । अथवा इनसब औषधियोंको गोमूत्र में पीसकर लेप करै तौ भी ऊरुस्तम्भ दूर होजाता है ।

कफ के क्षीण करने के लिये रोगी जितना परिश्रम सहन करसकै उतना उससे शारीरिक परिश्रम करावै । रोगीको वालू वा कंकरों के ढेरपर वा ऊंचे स्थान पर चढ़ावै । शीतलजलवाली, उपद्रव रहित नदियों के स्रोतकी तरफ तैराकर चढ़ावै। तथा निर्मल, शीतल और ठहरेहुएजलों के सरोवरों में तैरावै । इसतरह कफ के सूखने पर ऊरुस्तम्भ शान्त होजाता है । जो जो औषध कफ को दूर करें और वायु को प्रकुपित न करें वे सब ऊरुस्तम्भ के दूरकरने में उपयोगी होती हैं । परन्तु इस चिकित्सामें शारीरिक वल और अग्नि की रक्षा का पूर्ण विचार रक्खै ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

हेतुःप्राग्रूपलिंगानिकर्मायोग्यत्वमेवच । द्विविधंभेषजंचोक्तंऊरुस्तम्भचिकित्सिते॥

अर्थ—इस ऊरुस्तम्भ चिकित्सित अध्याय में ऊरुस्तम्भ के हेतु, पूर्वरूप, लक्षण, और वमनादि पांचों कर्म्मोंकी अयोग्यता और दो प्रकार की चिकित्सा वर्णन की है ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेऊरुस्तम्भचिकित्सितंनाम सप्तविंशोऽध्यायः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथवातव्याधिचिकित्सितंव्याख्यास्यामः इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वातव्याधि चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

वायु की उत्कृष्टता ।

वायुरायुर्बलंवायुर्वायुर्धाताशरीरिणाम् । वायुर्विश्वमिदंसर्वंप्रभुर्वायुश्चकीर्त्तितः ॥ अव्याहतगतिर्यस्यस्थानस्थःप्रकृतौस्थितः । वायुर्हिसोऽधिकंजीवेत्नीरोगःशरदांशतम् ॥

अर्थ—वायुही देह धारियों की आयु है, वायुही उनका वल है, वायुही उनका

विधाता है, वायुही यह सम्पूर्ण विश्व है और वायुही प्रभु वर्णन किया गया है ।

जिस मनुष्य के देह में वायुकी अव्याहत (अदूषित) गति है और अपने स्थान में स्थित और प्रकृतिस्थ है वह मनुष्य सौ वर्ष पर्यन्त निरोग रहकर जीता है ।

वायु के भेद ॥

प्राणोदानसमानाख्यव्यातापानैःसपञ्चधा । देहंतन्त्रयतेसम्यक्स्थानेष्वव्याहतश्चरन् ॥

अर्थ—प्राणवायु, उदानवायु, समानवायु, व्यानवायु, और अपानवायु, ये वायु के पांच भेद हैं । ये पांचों वायु अपने अपने स्थान में अव्याहत रीति से विचरण करती हुई शरीर को सम्यक्रूप से नियमित रखती है ॥

प्राणवायु के स्थान और कर्म ॥

स्थानंप्राणस्यशीर्षोरःकर्णौजिह्वाक्षिनासिकाः ॥ ष्ठीवनक्षवथूद्गारश्वासाहारादिकर्म्मच॥

अर्थ—प्राणवायु के स्थान सिर, वक्षःस्थल, दोनोंकान, जिह्वा, आंख और नासिका हैं । थूकना, छींकलैना, डकार, श्वास और आहारादि ग्रहण इसके कर्म हैं ॥

उदानवायुके स्थान और कर्म ॥

उदानस्यपुनःस्थानंनाभ्युरःकण्ठएवच । वाक्प्रवृत्तिःप्रयत्नोर्जाबलवर्णादिकर्मच॥

अर्थ—उदानवायु के स्थान नाभि, हृदय और कण्ठ हैं । बोलना, शरीरसंचालन, ऊर्जा, बल और वर्णादि इसके कर्म हैं ॥

समानवायुके स्थान और कर्म ॥

स्वेददोषाम्बुवाहानिस्रोतांसिसमधिष्ठितः । अन्तरग्नेश्चपार्श्वस्थःसमानोऽग्निबलप्रदः ॥

अर्थ—समानवायु के स्थान स्वेदवाही, दोषवाही और अम्बुवाही स्रोत हैं । यह जठराग्नि के पसवाडे में स्थित रहकर अग्नि के बलको बढाती है ॥

व्यान वायु के स्थान और कर्म ॥

देहंव्याप्नोतिसर्वंतुव्यानःशीघ्रगतिंनृणाम् । गतिप्रसरणाक्षेपनिमेषादिक्रियासदा ॥

अर्थ—व्यान वायु मनुष्यके सम्पूर्ण देह में रहती है, इसकी गति वडी शीघ्र है । गति, प्रसारण, आक्षेपण और निमेषादि इसके कर्म हैं ॥

अपान वायु के स्थान और कर्म ॥

वृषणौवस्तिमेढ्रञ्चश्रोण्यूरूवंक्षणौगुदः । अपानस्थानयन्त्रस्थःशुक्रमूत्रशकृन्तिसः॥ सृजत्यार्त्तवगर्भौचयुक्ताःस्थानस्थिताश्चते । स्वकर्मकुरुतेदेहोधार्यतेतैरनामयः ॥

अर्थ—अपानवायु के स्थान अंडकोश, वस्ति, मेढ, श्रोणी, ऊरू, वंक्षण और गुदा हैं । इसका मुख्य स्थान आंत हैं । आंत में स्थित होकर वीर्य, मूत्र, विष्टा, रजःसम्बन्धी रुधिर और गर्भ का परित्याग करती है ॥

ये पांचों प्रकार की वायु अपने २ स्थानों में स्थित और नियुक्त रहकर अपना २

कर्म करती हैं और देह को स्वस्थावस्था में रखती हैं ॥

विमार्गस्थ पंचवायु के कर्म ॥

विमार्गस्थाह्ययुक्तावारोगैःस्वस्थानकर्मजैः । शरीरंपीडयन्त्येतेप्राणानाशुहरन्तिच ॥

अर्थ—जब ये वायु कुमार्गगामी होजाती हैं और यथावत् नियुक्त नहीं रहती है तब अपने २ स्थान और कर्मों से उत्पन्न होने वाले रोगों द्वारा शरीर को पीडित करती है और प्राणोंको भी शीघ्रही नष्ट कर देती हैं ॥

संख्यामप्यतिवृत्तानांतज्जानांहिप्रधानतः अशीतिर्नखभेदाद्यारोगाःसूत्रेनिदर्शिताः॥ तानुच्यमानान्पर्यायैःसहेतूपक्रमान्शृणु॥ केवलंवायुमुद्दिश्यस्थानभेदात्तथावृतम्।

अर्थ—सूत्रस्थान में असंख्य वायुरोगों में मुख्यकरके अस्सी प्रकारके नखादिरोग वर्णन कियेगये हैं । अब हम पर्य्यायक्रम से उन के हेतु और चिकित्सा का वर्णन करते हैं । उसे सुनो । स्थान भेदसे केवल वायु का तथा आवृत वायुको उद्देश्य करके उनका वर्णन कियाजाता है

सर्वाङ्गादि व्याधियों का हेतु ।

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः॥ विषमादुपचाराच्चदोषासृक्स्रवणादति लंघनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टितैः॥ धातूनांसंक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्शनात् । दुःखशय्यासनात्क्रोधात्दिवास्वप्नाद्भयादपि ॥ वेगसन्धारणादामादभीघातादभोजनात् । मर्माबाधाद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानाबतंसनैः ॥ देहेस्रोतांसिरिक्तानिपूरयित्वाऽनिलोवली । करोतिविविधान्व्याधीन्सर्वाङ्गैकांगसंश्रितान् ।

अर्थ—रूक्ष, शीतल, अल्प और लघु अन्नके सेवन से, स्त्री संगम से, अत्यन्त जगनेसे, विषम उपचारोंसे, दोष औररक्तके अत्यन्तस्रावसे, कूपादि गर्त्तों के लंघन से, छलांग मारने से, मार्ग चलने से, शारीरिक परिश्रम के करने से अत्यन्त चेष्टा करने से, धातुओं के क्षीण होने से, चिन्ता, शोक और रोग द्वारा अत्यन्त कर्षण से, दुःख देने वाली शय्या वा आसन पर बैठने से, क्रोधसे, दिन में सोने से, भय से, मलमूत्रादि वेगों के रोकने से, आम से, चोट खाने से, भोजन न करने से, मर्म में आघात होने से, हाथी, ऊंट और घोडे पर चढकर शीघ्र गमन करने से, वा हाथी घोडा आदि के ऊपर से गिर पडने से देह के स्रोत खाली होजाते हैं और इस अवकाश को पाकर वायु प्रवल होकर उन में भरजाती है और सर्वांग संश्रित वा एकांग संश्रित अनेक प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न करदेती है ।

वायु के रूपादि ।

अव्यक्तंलक्षणंतेषांपूर्वरूपमितिस्मृतम् ॥ आत्मरूपंतुतद्व्यक्तमपायोलघुतापुनः ।

अर्थ—वायुका अप्रकट लक्षण उसका पूर्वरूप है व्यक्त लक्षण उसकारूपहै और वायुका लघु होजाना उसका नाशहै(क्योंकि

वायु सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती है, प्रकुपित का लघु होजानाही अपाय है)

व्यक्त वायु के लक्षण ।

सङ्कोचः पर्वणांस्तम्भो भंगोऽस्थ्नांपर्वणामपि ॥ लोमहर्षः प्रलापश्चपाणिपृष्ठशिरोग्रहः । खाञ्ज्यपांगुल्यकुब्जत्वंशोषोऽङ्गानामनिद्रता ॥ गर्भशुक्ररजोनाशःस्पन्दनं गात्रसुप्तता । शिरोनासाक्षिजत्रूणांग्रीवायाश्चावगूर्णनम् ॥ भेदस्तोदार्तिराक्षेपमोहश्चायासएवच । एवंविधानिरूपाणिकरोतिकुपितोऽनिलः ॥ हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत् ।

अर्थ—जोडों का सुकडना और जकड़ जाना, हड्डी और पोरुओं में भंग होना, रोमोद्गम, प्रलाप, पाणिग्रह, पृष्ठग्रह और शिरोग्रह, खंजता, पांगलापन, कूवडापन, अंगशोष, निद्रानाश, गर्भनाश, वीर्यनाश आर्त्तवनाश, अंगों का फड़कना, देह का शून्य पडजाना, सिर नासिका आंख और ग्रीवा का विकृत होजाना, भेद, तोद, यातना आक्षेपण, मोह और आयास तथा ऐसेही अन्नरूप वायु के कुपित होने से होते हैं । तथा हेतु भेद और स्थान भेद से इन रोगों में विशेषता होती है ।

कोष्ठाश्रित वायु के कर्म ।

तत्रकोष्ठाश्रितेदुष्टेनिग्रहेमूत्रवर्चसोः ॥ ब्रध्नहृद्रोगगुल्मार्शःपार्श्वशूलंचमारुते ।

अर्थ—कोष्ठाश्रित वायुके कुपित होने पर मलमूत्रका निग्रह, ब्रध्न, हृद्रोग, गुल्म, अर्श, और पार्श्वशूल होता है ।

सर्वाङ्गगत वायु के कर्म ।

सर्वाङ्गकुपितेवातेगात्रदूयनमीरणम् ॥ वेदनाभिःपरीतस्यस्फुटन्तीवास्यसन्धयः ।

अर्थ—वायुके सर्वांग में कुपित होने पर शरीर में वेदना और स्फुरण होता है, वेदना के कारण देह के जोड़ फटते से मालूम होने लगते हैं ।

गुदस्थ वायु के कर्म ।

विण्मूत्रवातग्रहणं शूलाध्मानाश्मशर्कराः । जंघोरुत्रिकपात्पृष्ठरोगशोषागुदस्थिते ।

अर्थ—वायुके गुदा में स्थित होने पर मलमूत्र और अधोवायु रुकजाते हैं, शूल, अफरा, पथरी और शर्करा ये उपद्रव उत्पन्न हो आते हैं जंघा, ऊरू, त्रिक, पांव और पीठ में वेदना और शोष ये भी उत्पन्न होते हैं ।

आमाशयस्थवायुकेकर्म ।

हृन्नाभिपार्श्वोदररुक्तृष्णोद्गारविसूचिकाः ॥ कासःकण्ठास्यशोषश्चश्वासश्चामाशयस्थिते ।

अर्थ—वायु के आमाशय में स्थित होने पर हृदय, नाभि, पसली और उदर में वेदना होती है, तृषा, डकार, विसूचिका, खांसी, कंठशोष, मुखशोष और श्वास ये उपद्रव भी होते हैं ।

पक्काशयस्थवायुकेकर्म ।

पक्काशयस्थोऽन्त्रकूजंशूलाटोपौकरोतिच । कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहंत्रिकवेदनम् । श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधंकुर्य्याद्दुष्टसमीरणः ।

अर्थ—वायु के पक्काशय में स्थित होने

पर आंतोंका कूजना, शूल, आटोप, मलमूत्रका कठिनता से होना, आनाह, त्रिकस्थान में वेदना, श्रोत्रादि इन्द्रियों की शक्तिका नष्ट होना ये लक्षण होते हैं।

त्वक्स्थवायुकेकर्म।

त्वग्रूक्षास्फुटितासुप्ताकृशाकृष्णाचतुद्यते। आतन्यतेसंदाहश्चपर्वरुक्त्वक्स्थितेऽनिले

अर्थ—वायुके त्वचामें स्थित होनेपर त्वचा में रूखापन, फटना, सुप्ति, कृशता, कालापन तथा सूचीवेध के समान पीड़ा ये लक्षण होते हैं। त्वचा फैलीसी होजाती है, उस में दाह होता है और पोरुओं में वेदनाभी होती है॥

रक्तगतवायु के कर्म।

रुजस्तीव्राःससन्तापावैवर्ण्यंकृशताऽरुचिः।गात्रेचारूंषिभुक्तस्यस्तम्भश्चासृक्गतेऽनिले।

अर्थ—वायु के रुधिर में कुपित होने से तीव्रवेदना, संताप, विवर्णता, कृशता, अरुचि, देह में फुन्सियां और भोजन करने के पीछे शरीर में स्तब्धता ये लक्षण होतेहैं।

मांसमेदोगतवायुकेकर्म।

गुर्वङ्गंतुद्यतेस्तब्धंदण्डमुष्टिहतंयथा॥ सरुक्श्वसितमत्यर्थंमांसमेदोगतेऽनिले।

अर्थ—मांस और मेद में वायु के कुपित होनेसे शरीर में भारापन, तोद, स्तब्धता, लाठी वा मुक्कों की चोट के समान वेदना तथा वेदनायुक्त श्वासोत्पत्ति होतीहै।

मज्जास्थिगतवायुके कर्म॥

मेदोऽस्थिपर्वणांसन्धिशूलंमांसबलक्षयः। अस्वप्नःसन्ततारुक्चमज्जास्थिकुपितेनिले।

अर्थ—मज्जा और अस्थि में वायु के कुपित होनेपर अस्थि और संधियों में भेद संधिशूल, मांस और बलकी क्षीणता, निद्रानाश और निरन्तर वेदना ये लक्षण होते हैं॥

शुक्रस्थवायु के लक्षण॥

क्षिप्रंमुञ्चतिबध्नातिशुक्रंगर्भमथापि वा॥ विकृतिजनयेच्चापिशुक्रस्थःकुपितोऽनिलः।

अर्थ—शुक्रस्थ कुपितवायु वीर्य वा गर्भ का शीघ्रही मोक्षण कर देती है वा उन्हें बद्ध कर देती है अथवा वीर्य और गर्भ दोनों में विकृति उत्पन्न करती है॥

स्नायु गतवायुके कर्म॥

वाह्याभ्यन्तरमायामंखल्लिंकुब्जत्वमेव च॥ सर्वाङ्गैकांगरोगांश्चकुर्य्यात्स्नायुगतोऽनिलः।

अर्थ—स्नायुगतवायु वाह्यायाम, अभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुबडापन उत्पन्न करती है और इसी से सर्वांगघात वा पक्षाघत उत्पन्न होते हैं।

शिरागतवायुके कर्म॥

शरीरंमन्दरुक्शोफंशुष्यतिस्पन्दतेऽपिवा॥ सुप्तास्तन्व्योमहत्योवाशिरावातेशिरागते।

अर्थ—शिरागत वायु के कुपित होने पर शरीर में मन्द वेदना, सूजन, शोष, स्पन्दन होता है तथा सम्पूर्ण शिराओं में सुप्तता, पतलापन वा दीर्घता होती है॥

संधिगत वायु के कर्म ॥

वातपूर्णदृतिस्पर्शः शोफः सन्धिगतेऽनिले ॥
प्रसारणाकुञ्चनयोरप्रवृत्तिसवेदना ।

अर्थ—सन्धिगत वायुके कुपित होने पर हवा से भरी हुई मशक के समान स्पर्शवाली सूजन होती है, सन्धियों का पसारना वा सकोड़ना बन्द होजाता है और वेदना भी होने लगती है ।

अर्द्धांगगत वायु के कर्म ।

अतिवृद्धः शरीरार्धमेकंवायुः प्रपद्यते ॥ यदातदोपशोष्यासृग्बाहुंपादंचजानुच ।
तस्मिन्सङ्कोचयत्यर्द्धंमुखंजिह्मंकरोतिच ॥
वक्रीकरोतिनासाग्रंललाटाक्षिहनुन्तथा ।
ततोवक्त्रंव्रजत्यस्य भोजनंवक्रदर्शिनः ॥
स्तब्धंनेत्रंकथयतः क्षवथुश्चनिगृह्यते । दीनाजिह्वासमुत्क्षिप्ताजिह्वासज्जतिचास्यवाक् ॥ दन्ताश्चलन्तिवाध्यन्तेश्रवणौ भिद्यतेस्वरः । पार्श्वहस्ताक्षिजंघोरुशंखश्रवणगण्डरुक् ॥ अर्धेतस्मिन्मुखार्धेवा केवालेस्यात्तदार्दितम् ।

अर्थ—जब वायु अत्यन्त कुपित होकर शरीर के दक्षिण वा वाम अर्द्धभाग का आश्रय करती है तब उसी ओर के रुधिर, वाहु, पांव और जानु को शुष्क कर देती है और फिर वही भाग संकुचित होजाता है तथा उसी ओर का आधामुख टेढा पड-जाता है । तथा नासिका का अग्रभाग, ललाट, आंख और ठोडी भी टेढी पडजाती हैं । और इस रोगी के मुख में भोजन भी टेढा करके प्रवेश करता है । वात कहने के समय नेत्र पथरा जाते हैं । छींक रुक जाती है, जिह्वा दीन, टेढी होकर वाहर निकल आती है, वाणी रुकजाती है, दांत चलित होजाते हैं, कान वहरे होजाते हैं, स्वर क्षीण पडजाता है, पसली, हाथ, आंख, जंघा, ऊरू, कनपटी, कान और गंडस्थल में वेदना होती है । यह रोग आधे अंग में होता है वा केवल आधे मुखही में होता है । इसे अर्दितरोग कहते हैं ।

मन्याश्रित वायु के लक्षण ।

मन्येसंश्रित्यवातोऽन्तर्यदानाडीः प्रपद्यते ॥
मन्यास्तम्भंतदाकुर्यादन्तरायामसञ्ज्ञितम् ॥

अर्थ—जब वायु मन्या अर्थात् गले के भीतर की नसों पर आक्रमण करती है तब अन्तरायाम नामक मन्यास्तंभ उत्पन्न होतीहै

अन्तरायामके लक्षण ।

अन्तरायस्यतेग्रीवामन्याचस्तभ्यतेभृशम् ॥
दन्तानांदशनंलालापृष्ठाक्षेपः शिरोग्रहः ॥
जृम्भावदनसंगाश्चाप्यन्तरायामलक्षणम् ॥

अर्थ—जब ग्रीवाके भीतर अन्तरायाम होता है तब मन्या अत्यन्त स्तब्ध होजाती है । दंतदंशन, लालास्राव, पृष्ठाक्षेप और शिरोग्रह होता है तथा जँभाई और मुख में स्तब्धता भी होती है ये अन्तरायाम के लक्षण हैं ।

पृष्ठमन्याश्रित वायु के लक्षण ।

पृष्ठमन्याश्रिताबाह्याः शोषयित्वाशिरावलीः । श्रितः कुर्याद्धनुस्तम्भंबहिरायाम संज्ञकम् ॥

अर्थ—वायु पीठ और मन्याका आश्रय

लेकर वाहर की नसों को सुखाकर धनुस्तम्भ नामक वहिरायाम रोग को उत्पन्न करती है ।

वहिरायाम के लक्षण ।

चापवत्नाम्यमानस्यपृष्ठतोहृनियतेशिरः। उरउत्क्षिप्यतेमन्यास्तब्धाग्रीवाचमृद्यते॥ दन्तानांदशनंजृम्भालालाश्रावश्ववाग्ग्रहः जातवेगोनिहन्त्येषवैकल्यंवामयच्छति ॥

अर्थ—इस रोग में शरीर पीठकी ओर से धनुषकी तरह झुक जाता है । सिर टेढा पड़जाता है । वक्षःस्थल ऊंचा होजाता है, मन्यास्तब्ध होजाती है, ग्रीवा मृदित होती है, दांत एक दूसरे से लगजाते हैं, जंभाई, लालास्राव; वाग्ग्रह होता है । यह रोग अत्यन्त उग्रहोने पर मारडालता है वा अत्यन्त विकलता उत्पन्न करता है ।

हनुग्रह के लक्षण ।

हन्वायासोत्थितोवायुर्बन्धात्स्रंसयतेहनूम् । विवृतास्यत्वमथवाकुर्यात्स्तब्धमवेपनम् ॥ हनुग्रहञ्चसंस्तभ्यहनूसंवृतवक्त्रताम् । हनुमूलेस्थितोवायुःकरोतिबहुकष्टदम् ।

अर्थ—ठोडी के आयाससे उठीहुई वायु कुपित होकर हनुवन्धों को ढीलाकर देती है, इस से मुंहखुला रहजाताहै वा कम्पन रहित स्तब्ध होजाता है । हनु के मूल में स्थितवायु हनु को स्तम्भित करके अत्यन्त कष्टकारक हनुग्रह वा संवृत वक्त्रता (जिसमें मुखवन्द रहजाता है) उत्पन्न करती है ।

आक्षेपक के लक्षण ।

मुहुराक्षिपतिक्रुद्धोगात्राण्याक्षेपकोऽनिलः। पाणिपादञ्चसंशोष्यशिराःसस्नायुककण्डराः ॥

अर्थ—जिसमें रोगी क्रुद्ध होकर अंगोको वारम्वार फेंकता है और हाथ, पांव, शिरा, स्नायु और कण्डरा शुष्कहो जाती है उसे आक्षेपक वायु कहते हैं ॥

दण्डापतानक के लक्षण ॥

पाणिपादशिरःपृष्ठश्रोणीःस्तभ्नातिमारुतः ॥ दण्डवत्स्तब्धगात्रस्यदण्डकःसोऽनुपक्रमः ।

अर्थ—जिस रोग में लकडी के समान हाथ, पांव, सिर, पीठ और श्रोणी अडक जाती हैं उसे दण्डक कहते हैं । यह रोग दुश्चिकित्स्य होता है ॥

अर्दितरोग के लक्षण ॥

स्वस्थःस्याददिंताद्यानांमुहुर्वेगगतेगते ॥ पीड्यतेपीडनैस्तैस्तैर्भिषगेतान्विवर्जयेत्॥

अर्थ—अर्दितादि वातरोगोंके वेगके शान्त होनेपर रोगी स्वस्थ होजाय और वेग के आने पर वेदना होने लगे ऐसा रोगी त्याज्य होता है ॥

पक्षाघातके लक्षण ॥

हत्त्वैकंमारुतःपक्षंदक्षिणंवाममेवच । कुर्य्याच्चेष्टानिवृत्तिंहिरुजंवाग्भङ्गमेवच ॥ गृहीत्वावाशरीरार्द्धंशिराःस्नायुंविशोष्य च । पादंसङ्कोचयत्येकंहस्तंवातोदशूलनुत् ॥ एकाङ्गरोगंतंविद्यात्सर्वाङ्गंसर्वदेहजम् ।

अर्थ—वायु कुपित होकर दाहिने वा वांये किसी अंग को मारकर क्रियाहीन करदेती है इससे देह में बडी वेदना होती है और वाणी रुकजाती है । अथवा शरीर के अर्द्ध भागपर आक्रमण करके शिरा और स्नायुको सुखा देती है यदि ऊपरके भागपर आक्रमण करती है तौ हाथको संकुचित करती है और यदि नीचे के भाग पर आक्रमण करती है तौ एक पांवको मार देती है । इसमें सूची वेध के समान अत्यन्त वेदना और शूल होता है । इसे एकांगरोग वा पक्षाघात कहते हैं और सम्पूर्ण देह में व्याप्तरोग को सर्वांगघात कहते हैं ।

गृध्रसीके लक्षण ॥

स्फिक्पूर्वाकटिपृष्ठोरुजानुजंघापदंक्रमात्॥ गृध्रसीःस्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णातिस्तम्भतेमुहुः वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचकान्विता

अर्थ—गृध्रसी रोगमें वायु प्रथम नितम्ब स्थान पर आक्रमण करके क्रम से कटि, पीठ, ऊरु, जानु, जंघा और पांव पर आक्रमण करती है इन स्थानों में स्तम्भता, वेदना और तोद होता है । यह रोग केवल वात से वा वातकफसे उत्पन्न होता है। इस में तन्द्रागौरव और अरुचि होती है ॥

खल्लीकालक्षण ॥

खल्लीतुपादजंघोरुकरमूलावमोटनी ।

अर्थ—जिसरोग से पांव, जंघा, ऊरू, और करमूल में अवमोटन होता है उसे खल्लीरोग कहते हैं ॥

स्थानानामनुरूपैश्चलिङ्गैःशेषान्विनिर्दिशेत् ॥ सर्वेष्वेतेषुसंसर्गंपित्ताद्यैरुपलक्षयेत् । वायुर्धातुक्षयात्कोपोमार्गस्यावरणेनच ॥

अर्थ—शेष वात रोगों के नाम उन के स्थान और लक्षणों के अनुसार जाने जाते हैं । इन सब वातरोगों में कफपित्त का संसर्ग होता है ॥

धातु के क्षीण होने से अथवा मार्गों के आवरण से वायु कुपित होती है ॥

वातपित्तकफादेहेसर्वस्रोतोऽनुसारिणः। वायुरेवहिसूक्ष्मत्वाद्द्वयोस्तत्राप्युदीरणः॥ कुपितस्तौसमुद्धूयतत्रतत्राक्षिपन्गदान्। करोत्यावृतमार्गत्वात्रसादींश्चोपशोषयन् ॥

अर्थ—वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष देह के सम्पूर्ण स्रोतों में जाते हैं । परन्तु वायु अत्यन्त सूक्ष्मता के कारण दिखाई नहीं पडती है और वह कफ और पित्त को उदीर्ण कर देती है । कुपित हुई वायु कफपित्त को उत्तेजित कर के स्रोत मार्गों में लेजाकर मार्गों को रोक देती है और रसों को सुखादेती है ॥

पित्तावृत वायु मार्ग के लक्षण ॥

लिंगंपित्तावृतेदाहस्तृष्णाशूलंभ्रमस्तमः। कट्वम्ललवणोष्णैश्चविदाहःशीतकामिता ॥

अर्थ—पित्तद्वारा वायुका अवरोध होने से दाह, शूल, भ्रम और क्लान्ति होती है । तथा कटु, अम्ल, लवण और उष्ण

पदार्थों के सेवन से विदाह होता है और शीतल वस्तुओं पर इच्छा होती है ॥

कफावृत वायु मार्ग के लक्षण ॥

शीतगौरवशूलानिकट्वाद्युपशयोऽधिकम् । लंघनायासरूक्षोष्णकामिताचकफावृते ॥

अर्थ—कफवाही स्रोतों में वायु कफसे अवरुद्ध होकर शीत, भारापन, शूल, कट्वादि द्रव्यों के सेवन से अत्यन्त उपशय उत्पन्न करती है । लंघन, परिश्रम तथा उष्ण द्रव्यों पर इच्छा भी उत्पन्न होती है ॥

रक्तावृत वायु के लक्षण ॥

रक्तावृतेसदाहार्तिस्त्वङ्मांसान्तरजोभृशम् । भवेत्सरागःश्वयथुःजायन्तेमण्डलानिच ॥

अर्थ—रक्तवाही स्रोतों में रक्तद्वारा वायु के रुकने पर दाह, यातना, त्वचा और मांसके बीच में अत्यन्त दारुण रक्तवर्ण युक्त सूजन और चकत्ते उत्पन्न होते हैं ॥

मांसावृतवायु के लक्षण ।

कठिनाश्चविवर्णाश्चपिडकाःश्वयथुस्तथा । हर्षःपिपीलिकानांचसञ्चारइवमांसगे ॥

अर्थ—मांसवाही स्रोतों में मांसद्वारा वायुके रुद्ध होने पर कठोर विवर्ण फुन्सियां और सूजन उत्पन्न होती है तथा चींटी चलने के समान देह में सुरसुराहट होती है ।

मेदसावृत वायु के लक्षण ।

चलःस्निग्धोमृदुःशीतःशोफोऽङ्गेष्वरुचिस्तथा । आढ्यवातइतिज्ञेयःसकृच्छ्रोमेदसावृतः ॥

अर्थ—मेदोवाही स्रोतों में मेद के द्वारा वायुके रुद्धहोने पर चंचलता, स्निग्धता, मृदुता, शीतलता, अंगों में सूजन और अरुचि होती है । इसे आढ्यवात कहते है यह कृच्छ्रसाध्य होता है ।

हड्डी से आवृत वायु के लक्षण ।

स्पर्शमस्थ्न्यावृतेतूष्णंपीडनंचाभिविंदति । सूच्येवतुद्यतेगाढंतद्रच्छूलयतिसीदति ॥

अर्थ—अस्थिधातु से वायुमार्ग के आवृत होने पर उष्ण पदार्थ का स्पर्श और पीड़न अच्छा लगता है, सूची बेधने के समान अत्यन्त पीडा और शूल होता है तथा देह शिथिल पडजाती है ।

मज्जावृत वायु के लक्षण ।

मज्जावृतेविनामःस्याज्जृम्भणंपरिवेष्टनम् । शूलंतुपीड्यमानेचपाणिभ्यांलभतेसुखम् ॥

अर्थ—वायुके मज्जाद्वारा आवृत होने से विनाम (टेढा पडना) , जृम्भण और ऐंठन होती है तथा शूल भी होता है हाथसे मसलने पर कुछ सुखसा होता है ।

शुक्रावृतवायुके लक्षण ।

शुक्रावेगोऽतिवेगोवानिष्फलत्वंचशुक्रगे।

अर्थ—शुक्रद्वारा वायु मार्ग के रुद्ध होने पर शुक्रके वेग का अवरोध वा अतिवेग वा शुक्र की निष्फलता होती है ।

अन्नावृतवायु के लक्षण ।

भुक्तेकुक्षौचरुग्जीर्णेशाम्यत्यन्नावृतेऽनिले ॥

अर्थ—अन्नवाही मार्ग में अन्नद्वारा वायु

के रुकने पर भोजन किये पीछे कूख में वेदना होती है और अन्न के पचने पर शान्त होजाती है ।

मूत्रावृतवायु के लक्षण ।

मूत्राप्रवृत्तिराध्मानं वस्तौमूत्रावृतेऽनिले ।

अर्थ—वायुमार्ग के मूत्रावृत्र होने से मूत्रकी अप्रवृत्ति और वस्ति में आध्मान होता है ।

वर्चोवृत वायु के लक्षण ।

वर्चोवृतेविबद्धोऽधःस्वेस्थानेपरिकृंतति । व्रजत्याशुजरांस्नेहो भुक्तेचानह्यतेनरः ॥ चिरात्पीडितमन्येनदुःखंशुष्कंशकृत्सृजेत् । श्रोणीवंक्षणपृष्ठेषुरुग्विलोमश्चमारुतः ॥ अस्वस्थंहृदयंचैवसचवर्चोवृतेनिलः ।

अर्थ—जव पक्वाशय में स्थितवायु के मार्ग को विष्टा रोक लेता है तव मल रुक जाता है पक्वाशय में कैंची से कतरने की सी पीडा होती है । स्नेह द्रव्य शीघ्र जीर्ण होजाता है, भोजन करने पर आनाहकी उत्पत्ति होती है । अन्य द्वारा उदर के पीडित करने पर कष्ट से सूखा हुआ विष्टा निकलता है । श्रोणी, वंक्षण और पीठ में वेदना होती है, वायुका प्रतिलोम होता है तथा हृदय में अस्वस्थता भी होती है ये सव वर्चोवृत वायु के लक्षण हैं ॥

साध्यासाध्य बातरोगों के नाम ॥

संधिच्युतिर्हनुस्तम्भःकुञ्चनंकुब्जतार्दितम् पक्षाघातोऽगसंशोषःपंगुत्वंखुडवातता । स्तम्भनंचाढ्यवातश्चरोगामज्जास्थिगेचये ॥ एतेस्थानस्यगाम्भीर्याद्यत्नात्सिध्यन्तिवानवा । नवान्वलवतस्त्वेतान्साधयेन्निरुपद्रवान् ॥ क्रियामतःसिद्धतमांवातरोगापहांशृणु ।

अर्थ—सन्धिच्युति, हनुस्तम्भ, आकुञ्चन, कुब्जता, अर्दित, पक्षाघात, अंग शोष, पंगुलापन, खुड्वातता, स्तम्भन, आढ्यवात, मज्जागतवायु, अस्थिगतवायु, ये सव रोग अपने होने के स्थान की गंभीरता से वहुत प्रयत्न करने पर साध्य भी होजाते हैं और नहीं भी होते हैं। जो ये रोग बलवान् मनुष्य के नवीन उत्पन्न हुए हों और उपद्रव रहित भी हों तौ उनकी चिकित्सा करना उचित है। अव हम वात रोगों के नाश करने वाली अत्यन्त अनुभव की हुई चिकित्सा लिखते हैं । उसे सुनो ॥

बातरोग में चिकित्साक्रम ॥

केवलंनिरुपस्तम्भमादौस्नेहैरुपाचरेत् ॥ वायुंसर्पिर्वसातैलमज्जपानैर्नरंततः । स्नेहक्लान्तसमाश्वास्यपयोभिःस्नेहयेत्पुनः॥ यूषैर्ग्राम्याम्बुजानूपैःरसैर्वास्नेहसंयुतैः । पायसैःकृशरैरम्लल वणैःसानुवासनैः॥ नावनैस्तर्पणैश्चान्नैःसुस्निग्धंस्वेदयेत्ततः। स्वभ्यक्तस्नेहसंयुक्तैर्नाडीप्रस्तरसंकरैः॥ तथान्यैर्विविधैःस्वेदैर्यथायोगमुपाचरेत्।

अर्थ—निरुपस्तंभ अर्थात् पित्तादि द्वारा अनावृत बातरोग में प्रथम स्नेहन देवै फिर उसे घृत, वसा, तेल और मज्जाका पान करावै । स्नेह के अत्यन्त सेवन से रोगी

के क्लान्त होने पर उसे आश्वासन देकर दुग्ध द्वारा स्नेहन देवै । अथवा स्नेहयुक्त ग्राम्य, जलज और आनूप पशुओंके मांस रस वा स्नेह युक्त यूष वा पायस, वा अम्ललवण युक्त कृशरा द्वारा अनुवासन और नस्य देवै तथा अन्नद्वारा तर्पित करै । इस तरह अच्छी रीति से स्निग्ध होने पर शरीरपरस्नेहमर्दन करकेस्नेहयुक्त नाडीस्वेद, प्रस्तरस्वेद, वा संकर स्वेद देवै अथवा जैसा योग हो उसी के अनुसार अन्य स्वेदों द्वारा स्वेदितकरै ॥

स्नेहार्द्रैःस्विन्नमङ्गन्तुवक्रंस्तब्धमथापि वा ॥ यथेष्टमानामयितुंशक्यतेशुष्कदारुवत् । हर्षतोदरुगायासशोषस्तम्भोग्रहादयः ॥ स्विन्नस्याशुप्रशाम्यन्तिमार्दवंचोपजायते ॥ स्नेहश्चधातूनसंशुष्कान्पुष्णात्याशुप्रयोजितः । बलमग्निबलं पुष्टिंप्राणंचाप्यभिवर्धते ॥ असकृत्तंपुनः स्नेहैःस्वेदैश्चाप्युपपादयेत् । तथास्नेहमृदौदेहेनतिष्ठन्त्यनिलामयाः ॥ यद्यनेन सदोषत्वात्कर्मणानप्रशाम्यति । मृदुभिः स्नेहसंयुक्तैरौषधैस्तंविशोधयेत् ॥ घृतंतिल्वकंसिद्धंवासातलासिद्धमेववा । पायसैरण्डतैलंवापिबेद्दोषहरंशिवम् ॥

अर्थ—जैसे सूखी लकडी पर तेल चुपड कर सेकने से इच्छानुकूल उसे नवा सकते हैं, इसी तरह स्नेहार्द्र मनुष्य को स्वेदन करने पश्चात् वह चाहै जैसा वक्र वा स्तवध क्यों न हो सीधा कर लिया जा सकता है । स्नेहन करने से वातरोगी के हर्ष, तोद वेदना, आयास, शोष, स्तम्भ और ग्रहादिरोग शीघ्र शान्त होजाते हैं और देह भी मृदु पडजाती है । स्नेह का प्रयोग करने से सूखी हुई धातु शीघ्रही पुष्ट होजाती हैं वल, अग्निवल, पुष्टि तथा प्राण भी वढते हैं । इन्हीं हेतुओं से स्नेह और स्वेद का प्रयोग वार वार करना चाहिये क्योंकि स्नेह से मृदु हुई देह में वातरोग नहीं ठहर सकते हैं । दोषों की अधिकता के कारण यदि इस कर्म से वातरोग शान्त न हो तो स्नेह संयुक्त मृदु औषधियों द्वारा विरेचन देवै । लोध वा सातला में सिद्ध किया हुआ घी देकर विरेचन करावै अथवा गरम दूध में अंडी का तेल मिलाकर विरेचन देवै यह दोष नाशक और उत्तम होता है।

स्निग्धाम्ललवणोष्णाद्यैराहारैर्हिमलश्चितः । स्रोतोबद्धानिलंरुन्ध्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत् ॥ दुर्बलोयोविरेच्यःस्यात्तंनिरूहैरुपाचरेत् । पाचनैर्दीपनीयैर्वाभोज्यैर्वातयुतंनरम् । शुद्धस्यचोत्थितेचाग्नौ स्नेहस्वेदौपुनर्हितौ ॥ स्वाद्वम्ललवणस्निग्धैराहारैःसततंपुनः । नावनैर्धूमपानैश्च सर्वानेवोपपादयेत् ॥

अर्थ—स्निग्ध, अम्ल, लवण और उष्णादि पदार्थों के अत्यन्त सेवन से दोष वढकर स्रोतों में वद्ध वात को रोकदेते हैं इस लिये वायु का अनुलोमन करावै । जो विरेचन देने पर दुर्वल होजाय उसे निरुहण वस्ति देवै । अथवा पाचनकर्त्ता वा दीपनकर्त्ता औषध देवै । संशोधन देने के पश्चात् यदि

अग्नि उठखडी होवै तौ फिर स्नेहन स्वेदन देवै। संपूर्ण प्रकार के वातरोगों में स्वादु, अम्ल, लवण और स्निग्ध आहार निरन्तर देवै तथा नस्यकर्म और धूमपान का भी प्रयोग करै।

विशेषतस्तुकोष्ठस्थेवातेक्षारंपिबेन्नरः । पाचनैर्दीपनीयैस्तैरन्नैर्वापाचयेन्मलान्॥ गुदपक्वाशयस्थेतुकर्मोदावर्तनुद्धितम्। आमाशयस्थेशुद्धस्ययथादोषहराःक्रियाः ॥ सर्वाङ्गकुपितेऽभ्यङ्गोवस्तयःसानुवासनाः। स्वेदाभ्यंगानिवातानिहृद्यंचान्नंत्वगाश्रिते ॥ शीतालेपस्तुरक्तस्थेविरेकोरक्तमोक्षणम्। विरेकोमांसमेदःस्थेनिरूहाःवमनानिच ॥ बाह्याभ्यन्तरतःस्नेहैरस्थिमज्जगतंजयेत्। हर्षोऽन्नपानंशुक्रस्थेबलशुक्रकरंहितम्॥ विबद्धमार्गंदृष्ट्वावाशुक्रंदद्याद्विरेचनम्। विरिक्तप्रतिभुक्तस्यपूर्वोक्तांकारयेत्क्रियाम्॥ गर्भेशुष्केतुवातेन बालानांचापिशुष्यताम्। सिताकाश्मर्य मधुकैर्हितमुत्थापनंपयः ॥

अर्थ—अब विशेष चिकित्सा का वर्णन करते हैं। कोष्ठस्थ वात में विशेष करके क्षार का पान हित है तथा पाचक और अग्नि संदीपन अन्न का प्रयोग करके मल को पचावै। गुदस्थ वा पक्वाशस्थ वात में उदावर्त्तनाशिनी क्रिया हित है। आमाशयस्थ वात में संशोधन देनेके पश्चात् यथा दोष चिकित्सा करना उचित है। सर्वांग कुपित वायु में अभ्यंग और अनुवासन वस्तियो का प्रयोग करै त्वगाश्रित वायु में स्वेद, अभ्यंग, निवातस्थान सेवन और हृदय प्रिय अन्न हित हैं। रक्तस्थवात में शीतल प्रलेप, विरेचन और रक्तमोक्षण करना उचित है। मांसस्थ और मेदःस्थवात में विरेचन, निरूहणवस्ति और वमन का प्रयोग करै। अस्थिगत और मज्जागत वायुको बाह्य और आभ्यन्तर स्नेह का प्रयोग करै। शुक्रस्थ वातमें हर्ष तथा बल और वीर्य बढ़ानेवाला अन्न हित है। यदि शुक्र का मार्ग रुकगया हो तौ प्रथम विरेचन देवै और विरेचन के पीछे फिर भोजन कराके पूर्वोक्त क्रिया को करै। यदि वायुसे गर्भ शुष्क होजाय वा बालक शुष्क होजांय तो उन के पुष्ट करने के लिये चीनी, खंभारी और मुलहटी डालकर औटाया हुआ दूधदेवै।

हृदिप्रकुपितेसिद्धमंशुमत्यापयोहितम् । मत्स्यान्नाभिप्रदेशस्थेसिद्धान्बिल्वशलाटुभिः ॥ वायुनावेष्ट्यमानेतुगात्रेस्यादुपनाहनम्। तैलंसंकुचितेऽभ्यङ्गोमाषसैन्धवसाधितम्॥ बाहुशीर्षगतेनस्यंपानञ्चोत्तरभक्तिकम्। वस्तिकर्मत्वधोनाभेःशस्यतेचावपीडकः ॥

अर्थ—वायुके हृदय में कुपित होने पर शालिपर्णी डालकर औटाया हुआ दूधपान करावै। नाभि के ओर पास वायुके स्थित होनेपर बेलगिरी डालकर पकाईहुई मछली देवै। वायु से सम्पूर्ण देह के रस्सी से बंधेहुए होने पर उपनाहन देवै। वायुसे अंगों के संकुचित होने पर उरद और सेंधानमक

डालकर सिद्ध किये हुए तेल का मर्दन करै। वाहु और सिर में वायु के स्थित होने पर नस्य तथा भोजन के पीछे घृतपान करावै। नाभिके नीचे वायुके कुपित होने पर वस्ति कर्म वा अव पीडन हित है।

अर्दितरोग में चिकित्सा।

अर्दितेनावनंमूर्ध्नितैलंतर्पणमेववा। नाडीस्वेदोपनाहाश्चआनूपपिशितैर्हिताः॥

अर्थ—अर्दितरोग में नस्य, मस्तक में तैल, तर्पण और आनूपमांसद्वारा नाडीस्वेद और उपनाह देवै।

पक्षाघात में चिकित्सा॥

स्वेदनंस्नेहसंयुक्तंपक्षाघातेविरेचनम्। अंतराकण्डारांगुल्योःशिरावस्त्यग्निकर्मच॥

अर्थ—पक्षाघात में स्नेहस्वेद स्नेहयुक्त विरेचन तथा कंडरा और उँगलीके वीचमें शिरावस्ति और अग्निकर्म करै॥

गृध्रसी में चिकित्सा॥

गृध्रसीषुप्रयुञ्जीतखल्ल्यांतूष्णोपनाहनम्।पायसैःकृशरैश्चैवशस्तैतैलघृतान्वितैः

अर्थ—गृध्रसी में भी कण्डरा और उँगली (अथवा टकने) के वीच में शिरावस्ति और अग्निकर्म करै। खल्लीरोग में घृत और तैल से युक्त पायस वा कृशरा द्वारा उष्ण उपनाहन करै॥

हनुरोग में चिकित्सा॥

व्यात्ताननेहनुंस्विन्नामंगुष्ठाभ्यांप्रपीड्य च। प्रदेशिनीभ्यांचोन्नाम्यचिवुकोन्नामनंहितम्॥ स्रस्तांस्वंगमयेत्स्थानंस्तब्धांस्विन्नांविनामयेत्। प्रत्येकंस्थानदूष्यादिक्रियावैशेष्यमाचरेत्॥

अर्थ—मुख के फटे रहजाने में ठोडी को स्वेदित करके अंगूठे से मसलकर तर्जनी उंगली से ठोडी को उठावै। जो हनु अपने स्थानसे हटगईहो उसे उसके स्थान पर ले जावै और जो जकड गई हो तौ स्वेदित करके नवावै। रोगके स्थान और दूष्यादि भेद से प्रत्येक रोगों की चिकित्सा ऊपर कहीहुई रीति से करै॥

वातरोग में चिकित्सा॥

सर्पिस्तैलवसापानसेकाभ्यञ्जनवस्तयः स्निग्धाःस्वेदानिवातंचस्थानंप्रावरणानिच। रसाःपयांसिभोज्यानिस्वाद्वम्ललवणानिच। वृंहणंयच्चतत्सर्वंप्रशस्तं वातरोगिणाम्॥

अर्थ—वातरोग में सर्पि, तैल, वसा और मज्जा का पान परिषेक, अभ्यंग, वस्ति, स्निग्ध, स्वेद, वातरहित स्थान, मोटा गरम वस्त्र धारण करना, मांसरस, दुग्ध, मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थों का सेवन, हित है तथा जो जो द्रव्य वृंहणकर्त्ता हैं वे सव वातरोग में हित हैं।

वातरोग में वृंहणद्रव्य।

बलायाःपञ्चमूलस्यदशमूलस्यवारसे। अजशीर्षाम्बुजानूपमांसादपिशितैःपृथक्॥ साधयित्वारसान्स्निग्धान्दध्यम्लव्योषसंस्कृतान्। भोजयेद्वातरोगार्त्तंतैर्व्यक्तलवणैर्नरम्॥

अर्थ—वातरोगी को वृंहण करने के लिये

खरैटी अथवा पंचमूल,अथवा दशमूलके क्काथ में बकरे का सिर,औदकमांस आनूपमांस का मांसाहारियों का मांस सिद्ध करके उस रस को निकालले । इन में से किसी के रस को घी में छौंककर दही की खटाई और त्रिकुटा तथा तेज नमक डालकर वातरोगी के लिये देवै ।

एतैरेवोपनाहांश्चापिशितैःसंप्रकल्पयेत्। घृततैलयुतैःसाम्लैःक्षुण्णस्विन्नैरनस्थिभिः ॥ पत्रोत्क्वाथमयस्तैलद्रोण्यःस्युरवगाहने । स्वभ्यक्तानांप्रशस्यन्तेसेकाश्चानिलरोगिणाम् ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए मांसों में से हड्डी निकालकर कूटकर सिजाले फिर इसे घी तेल और खटाई के साथ छौंककर उपनाह तयार करै ।

वातरोगी को अच्छी तरह तेल लगाकर एक तेल की द्रोणी अर्थात् कठउए में वात नाशक पत्तों का क्काथ भरके उस में स्नान करावै अथवा इसक्काथ से सेचन करै ।

आनूपौदकमांसानिदशमूलंशतावरीम् । कुलत्थान्बदरान्माषांस्तिलान्रास्नांयवान्बलाम् । वसान्दध्यारनालाम्लैसहः कुम्भ्यांविपाचयेत् ॥ नाडीस्वेदंप्रयुञ्जीतपिष्टैश्चोपनाहनम् । तैश्चसिद्धंघृतंतैलमभ्यङ्गःपानमेवच ॥

अर्थ—आनूपमांस,औदकमांस, दशमूल, सितावर, कुलथी, वेर,उरद, तिल, रास्ना, जौ, खरैटी इन सब द्रव्यों को चर्वी, दही, कांजी और खठाई के साथ एक घडे में पकावै । इस से रोगी को नाडी स्वेद देवै। तथा इन्हीं द्रव्यों को पीसकर उपनाह तयार करै । तथा इन्ही द्रव्यों के साथ घी वा तेल सिद्ध करके अभ्यंग और पान में प्रयुक्त करै।

उपनाह प्रयोग ।

मुस्तकिण्वन्तिलाःकुष्ठंसुराह्वंलवणंनतम् । दधिक्षीरचतुःस्नेहैःसिद्धंस्यादुपनाहनम् ॥

अर्थ—मोथा, सुरावीज,तिल,कूठ,देवदारु, नमक, तगर, दही, दूध, तेल, घी, वसा और मज्जा इन सब को एक साथ पकाकर उपनाह देवै ।

उत्कारिकारिकावेशबारक्षीरमाषातिलोदनैः । एरण्डबीजेगोधूमयवकोलस्थिरादिभिः । सस्नेहैःसरुजंगात्रमालिप्यबहुलम्भिषक् ॥ एरण्डपत्रैःप्रच्छाद्यरात्रौकल्पंविमोक्षयेत् । क्षीराम्बुनाततःसिक्तं पुनश्चैवोपनाहितम् ॥ मुञ्चेद्रात्रौदिवाबद्धचर्म्मभिश्चसुलोमभिः ।

अर्थ—उत्कारिका, वेशवार,दूध, उरद, चांवल, अंडी के वीज,गेहूं, जौ, वेर, शालिपर्ण्यादि पंचमूल इन सब को पीसकर स्नेह मिलाकर शरीर पर गाढा गाढा लेप करै। रात्रि के समय इस लेप पर अंडी के पत्ते बांध देवै और दूसरे दिन प्रातःकाल खोल डाले और दूध तथा जल से उसे धोकर फिर लेप करें इस दिन के लेप पर रोमयुक्त चमडा बांध देवै । इस लेप को सायंकाल के समय दूर कर देवै ।

फालानान्तैलयोनीनामम्लपिष्टानशीत

लान् ॥ प्रदेहानुपनाहांश्चगन्धैर्वातहरैर पि । पायसैःकृशरैश्चैवकारयेत्स्नेहसंयुतैः रूक्षशुद्धानिलार्तानामतःस्नेहान्प्रवक्ष्यते। विविधान्विविधव्याधिप्रशमायामृतोप मान् ॥

अर्थ—सरसों से आदि लेकर द्रव्यों को जिनसे तेल निकलता है पीसकर गरम करके लेप और उपनाह बनावै । तथा वात नाशक गंधद्रव्य, पायस और कृशरा इन को घृत के साथ सिद्ध करके लेप और उपनाहन करै ।

अवहम रूक्ष और शुद्ध वातरोगियों के निमित्त अनेक प्रकारकी व्याधियों को शान्त करने वाले अनेक प्रकार के अमृत के समान गुणकारक स्नेहों का बर्णन करते हैं ।

द्रोणेऽम्भसःपचेद्भागान्दशमूलांश्चतुष्प लान् । यवकोलकुलत्थानांभागैःप्रस्थो न्मितैःसह ॥ पादशेषेरसेपिष्टैर्जीवनीयैः सशर्करैः । तथाखर्जूरकाश्मर्यद्राक्षाबदर फल्गुभिः ॥ सक्षीरैःसर्पिषःप्रस्थःसिद्धः केवलवातनुत् । निरत्ययःप्रयोक्तव्यःपा नाभ्यञ्जनवस्तिषु ॥

अर्थ—दशमूलके प्रत्येक द्रव्य चार चार पल, जौ एक प्रस्थ, कुलथीं एक प्रस्थ, वेर एक प्रस्थ इन सबको एक द्रोण जल में पकावै चौथाई शेष रहने पर उतार कर छान लेवै फिर जीवनीय गण के दस द्रव्य, शर्करा, खजूर, खंभारी, दाख, वेर और गूलर सब मिलाकर एकसेर, दूध एकप्रस्थ,घी एक प्रस्थ इन सब को उस क्वाथ में डाल कर पकावै । यह घृत पान, अभ्यंग और वस्तिद्वारा प्रयोग किया जाताहै और वातरोग को जड़ से दूर कर देताहै ।

चित्रकादि घृत ।

चित्रकंनागरंरास्नांपौष्करंपिप्पलींशटीम्। पिष्ट्वाविपाचयेत्सर्पिर्वातरोगहरंपरम् ॥

अर्थ—चीता, सोंठ, रास्ना, पुहकरमूल, पीपल, कचूर इन सबको पीसकर घृत पकावै यह घृत वातरोग को नाश करने वाला है ।

बलाबिल्वशृतेक्षीरेघृतमण्डंविपाचयेत् । तस्यशुक्तिःप्रकुश्चोवानस्यंमूर्धगतेऽनिले॥

अर्थ—खरैटी और बेलछाल डालकर अठगुने दूध और चौगुने जलमें पकावै जब दूध शेष रहजाय तब उतार कर छानले और उस दूधमें घृतमंड पकावै । इस घृत मेंसे चार वा आठ तोले को नस्यद्वारा प्रयोग करने पर शिरोगत वात दूर होजातीहै

ग्राम्यानूपौदकानान्तुभित्वास्थीनिपचे ज्जले । तंस्नेहंदशमूलस्यकषायेणपुनःप चेत् ॥ जीवकर्षभकास्फोताविदारीकपि कच्छुना । वातघ्नैर्दीपनीयैश्चकल्कैर्द्वि क्षीरभागिकम् ॥ तत्सिद्धंनावनाभ्यङ्गा त्तथापानानुवासनात् । शिरापर्वास्थिको ष्ठस्थंप्रणुदत्याशुमारुतम् ॥ येस्युःप्रक्षीण मज्जानःक्षीणशुक्रौजसश्चये । बलपुष्टिक रंतेषामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥

अर्थ—ग्राम्य, आनूप और औदक जीवोंकी हड्डियां कूटकर जलमें पकावै । पकने पर इसे उतार ले और धरा रहने देवै

इस जलके ऊपर चिकनी २ मलाई सी जमजातीहै उसे उतार कर उसमें दुगुना दूध, चौगुना दसमूल का क्काथ तथा चौथाई वातनाशक और जीवनीय द्रव्य यथा जीवक, ऋषभक, आस्फोता, विदारी और केंच इनका कल्क । इन सब को मिला कर पकावै । इस घृत का नस्य, अभ्यंग, पान और अनुवासन द्वारा प्रयोग करै । जिन मनुष्यों की मज्जा, शुक्र और ओज क्षीण, होगये हैं उनकी पुष्टाई तथा बल बढ़ानेके निमित्त यह घृत अमृतके समान गुण कारक है ।

तद्वत्सिद्धावसानक्रमत्स्यकूर्मवुलूकजाः। प्रत्यग्राविधिनानेननस्यपानेषुशस्यते ॥

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिसे ही मगर, मछली, कछुआ और सूसकी चर्वी को पकाकर नस्य और पीनेमें प्रयोग करने से तद्वत् गुण कारक होता है ।

प्रस्थःस्यात्त्रिफलायास्तुकुलत्थकुडवद्वयम् । कृष्णगन्धात्वगाढक्योःपृथक्पञ्च पलंभवेत् ॥ रास्नाचित्रकयोर्द्वेद्वेदशमूलं पलोन्मितम् । जलद्रोणेपचेत्पादशेषेप्रस्थोन्मितंपृथक् ॥ सुरारनालदध्यम्लसौवीरकतुषोदकम् ॥ कोलदाडिमवृक्षाम्लरसांस्तैलंवसांघृतम् । मज्जानञ्चपयश्चैवजीवनीयपलानिषट् ॥ कल्कीकृत्यमहास्नेहंसम्यगेनंविपाचयेत् । शिरामज्जास्थिगेवातेसर्वाङ्गैकांगरोगिषु ॥ वेपनाक्षेपशूलेषुतदभ्यङ्गेप्रयोजयेत् ।

अर्थ—त्रिफला एक प्रस्थ, कुलथी दो कुड़व, सहजने की छाल पांच पल, अड़हर की छाल पांच पल, रास्ना दो पल, चीता दो पल, दशमूलके प्रत्येक द्रव्य एकएक पल इन सबको जौ कुटकरके एक द्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले, उस क्काथमें सुरा, कांजी, दही, खटाई, सौवीरक, तुषोदक, बेरकारस, अनारकारस, वृक्षाम्लकारस, तेल, चर्वी, घी, मज्जा और दूध पृथक् पृथक् एक एक प्रस्थ, जीवनीय गणका कल्क छः पल । इन सबको पकावै । यह महास्नेह शिरागत, मज्जागत, अस्थिगत, सर्वांगगत, एकांगगत, कम्पन, आक्षेपण और शूल इन रोगों में अभ्यंग द्वारा प्रयोग किया जाताहै ।

निर्गुंडी तैल ॥

निर्गुण्ड्यामूलपत्राभ्यांगृहीत्वास्वरसंततः॥ तेनसिद्धंसमंतैलंनाडीकुष्ठानिलार्तिषु । हितंपामापचीनांचपानाभ्यञ्जनपूरणम्॥

अर्थ—निर्गुंडीकी जड और पत्तोंकारस निकालकर, उसी के समान तेल मिलाकर पकावै । इस तेल का अभ्यंग और पान द्वारा प्रयोग करने से नाडीरोग, कुष्ठ, वातरोग, पामा और अपची दूर होजाते हैं ।

कर्पासास्थिकुलत्थानांरसेसिद्धश्चवातनुत्।

अर्थ—ऊपर कहीहुई रीति से बिनौले और कुलथी के क्वाथ में पकायाहुआ तेल वातनाशक होता है ।

मूलकस्वरसेक्षीरंसमेस्थाप्यंत्र्यहंदधि ॥ तस्याम्लस्यत्रिभिःप्रस्थैस्तैलप्रस्थंविपाचयेत् । यष्ट्याह्वशर्करारास्नालवणार्द्रक

नागरैः । सुपिष्टैःपालिकैःपानात्तदभ्य ङ्गाच्चवातनुत् ।

अर्थ—मूलीकारस और उस के समान दूध मिलाकर तीन दिन तक दही थोडा-सा डालकर रखछोडै जब यह जमजाय और खट्टा पडजाय तब इसमें इसका तिहाई तेल डालकर पकावै और इस में मुलहटी, शर्करा, रास्ना, नमक, अदरख, और सोंठ एक एक पल पीसकर डालदेवै । इस तैलका पान और अभ्यंग द्वारा प्रयोग करने से बातरोग दूर होजाता है।

पञ्चमूलकषायेणपिण्याकंवहुवार्षिकम्॥ पक्त्वातस्यरसंपूत्वातेनतैलंविपाचयेत् । पयसाष्टगुणेनैतत्सर्ववातविकारनुत् ॥ संसृष्टेश्लेष्मणाचैतद्वातेशस्तंविशेषतः ।

अर्थ—पंचमूलका क्वाथ और बहुत बरसों की रक्खीहुई तिलकी खल इनको जल में पकाकर छानले फिर इस में एक प्रस्थ तैल पकावै, पकाते समय इसमें अठगुना दूधभी डाल दे यह तेल सब प्रकार के बातरोगों को दूर करता है और विशेष करके कफान्वित बातरोग में बहुत हितकारी है ॥

यवकोलकुलत्थानांश्रेयस्याःशुष्कमूलकात् ॥ विल्वाच्चाञ्जलिमेकैकंद्रवैरम्लैर्विपाचयेत् । तेनतैलंकषायेणफलाम्लैःकटुभिस्तथा । पिष्टैःसिद्धंमहावातैरार्तःशीतेप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—जौ, वेर, कुलथी, रास्ना की जड और वेल छाल एक एक अंजली लेकर अठगुनी खट्टी कांजी में पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार ले । फिर इस क्वाथ में तेल तथा कटु और अम्ल फल पीसकर मिलाकर पकावै । यह तेल महावात से पीडित रोगी के शीतकाल में लगावै ।

सर्ववातविकाराणांतैलान्यन्यान्यतःशृणु । चतुष्प्रयोगाण्यायुष्यवलवर्णकराणिच ॥ रजःशुक्रप्रदोषघ्नान्यपत्यजननानिच । निरत्ययानिसिद्धानिसर्वदोषहितानिच ॥

अर्थ—अब हम सम्पूर्ण प्रकार के वातरोगों को दूर करने वाले अन्य तेलों का वर्णन करते हैं जिनका पान, नस्य, अभ्यंग और वस्ति इन चार रीति से प्रयोग किया जाता है, जो आयु वल और वर्ण को वढाने वाले हैं, जो आर्त्तव और शुक्र दोषों को दूर करते हैं, सन्तान कारक हैं, ये सब निर्दोष, सिद्ध और सम्पूर्ण दोषों में हित हैं ।

महाचरतुलायाश्चरसैस्तैलाढकंपचेत् । मूलकल्काद्दशपलंपक्त्वाक्षीरेचतुर्गुणम्॥ सिद्धेऽस्मिन्शर्कराचूर्णादष्टादशपलंभिषक् । विनीयदारुणेष्वेतद्वातव्याधिषुयोजयेत् ॥

अर्थ—महाचर (लहसुन) एक तुला के क्वाथ में एक आढक तेल पकावै, इस में उसी की जड़का कल्क दस पल और दूध चौगुना डाल देवै । जब पकजाय तव इस में अठारह पल चीनी मिलावै इस तेल का उक्त चार रीति से प्रयोग करने पर सब प्रकार की वातव्याधि दूर होजाती हैं ।

श्वदंष्ट्रास्वरसप्रस्थौद्वौसमौपयसासह ।
षट्पलंशृङ्गवेरस्यगुडस्याष्टपलंतथा ॥
तैलप्रस्थंविपक्वंतैर्दद्यात्सर्वानिलार्तिषु ।
जीर्णेतैलेचदुग्धेनपेयाकल्पःप्रशस्यते ।

अर्थ—गोखरू का रस दो प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ, अदरख छः पल, गुड़ आठ पल और तेल एक प्रस्थ इनसब को एकत्र पकाकर सब प्रकार के वातरोगों में देवै । इस तेल के पचनेपर दूध के साथ पेया का सेवन करावै ।

बलातैल ।

बलांशतंगुडूच्याश्चपादंरास्नानाष्टभागिकम् ॥ जलाढकशतेपक्त्वादशभागस्थितेरसे। दधिमस्त्विक्षुनिर्यासशुक्तैस्तैलाढकं समैः ॥ पचेत्साजपयोर्धांशंकल्कैरेभिः पलोन्मितैः । शटीसरलदार्वेलामञ्जिष्ठागुरुचन्दनैः ॥ पद्मकातिबलामुस्तसूर्प्यपर्णीहरेणुभिः । यष्ट्याह्वसुरसव्याघ्रनखर्षभकजीवकैः ॥ पलाशरसकस्तूरीनलिकाजातिकोषकैः । स्पृक्काकुंकुमशैलेयजातीकटुफलाम्बुभिः । त्वक्कुन्दुरुककर्पूरतुरुष्कश्रीनिवासकैः॥लवंगनखकंकोलकुष्ठमांसीप्रियंगुभिः। थौणेयतगरध्यामवचादमनकप्लवैः ॥ सनागकेसरैःसिद्धे क्षिपेच्चात्रावतारिते । पत्रकल्कंततःपूतं विधिनातत्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—खरैटी सौ पल, गिलोय पच्चीस पल, रास्ना साडे वारह पल, इन सव को सौ आढक जल में पकाकर दशांस शेष रहने पर उतार कर छान लेवै। इस क्वाथ में दही का तोड,ईख का रस, शुक्त, तेल एक आढक तथा आधा वकरी का दूध डालकर पकावै और नीचे लिखे द्रव्यों का कल्क भी डालदेवै, यथा कचूर,सरलकाष्ठ, देवदारु, छोटी इलायची, मजीठ, अगर, रक्तचंदन,पद्माख,अतिवला,मोथा,मुद्गपर्णी माषपर्णी, हरेणु, मुलहटी, तुलसी, व्याघ्रनख ऋषभक, जीवक, पलासका गोंद, कस्तूरी नलिका,जायफल,स्पृक्का, कुंकुम, शैलेयपुष्प, जायफल, कायफल, दालचीनी, कंदूरी, कपूर, तुरुष्क, श्री निवास, लौंग, नखी, कंकोल, कूठ, जटामांसी, प्रियंगु, थूनेर, तगर, गंधतृण, वच, मेनफल, कंवटी, मोथा और नागकेसर इनका कल्क डाल देवै पकने पर उतार कर सुगंधित द्रव्यों को डालकर विधि पूर्वक सेवन करै ।

उक्त तैल के गुण ॥

श्वासंकासंज्वरंहिक्कांछर्दिंगुल्मान्क्षतं क्षयम् । प्लीहशोषावपस्मारमलक्ष्मीञ्चप्रणाशयेत् ॥ वलातैलमिदंश्रेष्ठंवातव्याधिविनाशनम् ।

अर्थ—ऊपर कहाहुआ बला तैल श्वास खांसी, ज्वर, हिचकी, वमन, गुल्म, क्षत, क्षय, प्लीहा, शोष, अपस्मार, और अलक्ष्मी को दूर करता है, यह सव प्रकारकी वात व्याधियों को भी दूर करता है ॥

अमृतादि तैल ॥

तुलाःपञ्चगुडूच्यास्तुद्रोणेष्वष्टास्वपांपचेत् । पादशेषेसमंक्षीरंतैलस्यद्व्याढकंपचेत् । एलामांसीनतोशीरशारिबाकुष्ठचन्दनैः । बलातामलकीमेदाशतपुष्पर्द्धिजी

वकैः ॥ काकोलीक्षीरकाकोलीश्रावण्य तिवलानखैः । महाश्रावणिजीवन्तीविदारीकपिकच्छुभिः॥ शतावरीमहामेदाकर्कटाख्याहरेणुभिः । वचागोक्षुरकैरण्डरास्नाकालासहाचरैः ॥ वीराशल्लकिमुस्तत्वक्पत्रर्षभकवालकैः । महेलाकुंकुमस्पृकात्रिदशाह्वैश्चकार्षिकैः ॥ मञ्जिष्ठायास्त्रिकर्षेणमधुकाष्टपलेनच । कल्कैस्ततः क्षीणवीर्याग्निबलसंमूढचेतसः ॥ उन्मादारत्यपस्मारैरार्तश्चप्रकृतिंनयेत् । वातव्याधिहरंश्रेष्ठंतैलाग्र्यममृताह्वयम् ॥

अर्थ—गिलोय पांच तुलाको आठद्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले । तव उस शेष क्वाथ के समान दूध, दो आढक तेल और नीचे लिखेहुए द्रव्योंका कल्क डालदेवै । यथा छोटी इलायची, जटामांसी, तगर, खस, शारिवा, कूठ, चन्दन, खरैटी, भूआंवला, मेद, सौंफ, ऋद्धि, जीवक, काकोली, क्षीरकाकोली, श्रावणी, अतिबला, नखी, महाश्रावणी, जीवन्ती, विदारीकन्द, कैंच, सितावर, महामेदा, काकडासींगी, हरेणु, वच, गोखरू, अरण्ड, रास्ना, असगन्ध, सहचर, वीरा, शल्लकी, मोथा, दालचीनी, तेजपात ऋषभक, नेत्रवाला, वडी इलायची, कुंकुम स्पृका, देवदारु ये सब द्रव्य एक एक कर्ष लेवै । मजीठ तीनकर्ष, मुलहटी आठपल इन सवका कल्क डाल देवै । इस तेल के सेवन करने से वीर्य की क्षीणता, अग्निवल, मूढचित्तता, उन्माद, अरति, अपस्मार ये दूर होकर मनुष्य अपनी प्रकृति पर आजाता है । यह तेल वात व्याधियों के दूर करने में अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥

रास्नातैल ॥

रास्नासहस्रनिर्यूहेतैलद्रोणंविपाचयेत् । गन्धैर्हैमवतैःपिष्टैरेलाद्यैश्चानिलार्तिनुत्॥

अर्थ—एक सहस्र पल रास्ना को अठगुने जल में पकाकर चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले इसमें पूर्वोक्त एलादि चूर्ण और एकद्रोण तेल डालकर पकावै । पकने पर उतारकर सफेद वचका चूरा बुरक दे । यह तैल वातरोग को दूर करने वाला है ॥

कल्पोऽयमश्वगन्धायांप्रसारण्यांवलाद्वये। क्वाथकल्कपयोभिर्वाबलादीनांपचेत्पृथक् ।

अर्थ—असगन्ध, प्रसारिणी, दोनोंवला इनका तेल भी ऊपर कहीहुई रीति से तयार कियाजाता है । अथवा वलादि के पृथक् २ क्वाथ, कल्क, और दूध के साथ तेल पकाकर प्रयुक्तकरै ॥

मूलकादितैल ॥

मूलकस्वरसंक्षीरंतैलंदध्यम्लकाञ्जिकम्। तुल्यंविपाचयेत्कल्कैर्बलाचित्रकसैन्धवैः॥ पिप्पल्यतिविषारास्नाचविकागुरुशिग्रुकैः॥ भल्लातकवचाकुष्ठश्वदंष्ट्राविश्वभेषजैः ॥ पुष्कराह्वशठीबिल्वशताह्वानतदारुभिः। तत्सिद्धंपीतमत्युग्रान्हन्तिवातात्मकान् गदान् ॥

अर्थ—मूलीकारस, दूध, तेल, दही,

और कांजी इन सबको समान भाग तथा तेल से चौथाई खरैटी, चीता, सेंधानमक, पीपल, अतीस, रास्ना, चव्य, अगर, संहजना, भिलाया, वच, कूठ, गोखरू, सोंठ, पुहकरमूल, कचूर, वेलछाल, सौंफ, तगर और देवदारु इनका कल्क डालकर सब को एक साथ पकावै । इस तेलके पान करने से अत्यन्त उग्र वातरोग भी दूर होजाते हैं ॥

वृषमूलादि तैल ॥

वृषमूलगुडूच्योश्चद्विशतस्यशतस्यच । अश्वगन्धाचित्रकयोःक्वाथेतैलाढकंपचेत्॥ सक्षीरंवायुनाभग्नेदद्याज्जर्जरितेतथा । प्राक्तैलाचापसिद्धञ्चस्यादेतद्द्विगुणोत्तरम् ॥

अर्थ—अडूसाकी जड सौपल, गिलोयसौपल,असगन्धसौपल,चीतासौपल इनकाक्काथ करके चौथाई शेष रहनेपर उसे उतारकर उसमें एक आढक तेल पकावै,इसमें क्वाथ के समानही दूधभी मिलालेवै, यह तैल वायु से भग्न अथवा जर्जरित देह में प्रयोग किया जाता है इस को पूर्वोक्त वलादि कल्क डालकर सिद्ध किया हुआ यह तैल दुगुना गुणदायक होता है ।

रास्नातैल ॥

रास्नाशिरीषयष्ट्याह्वशुण्ठीसहचरामृताः। श्योनाकदारुसम्पाकाहयगन्धात्रिकण्टकाः ॥ एषांदशपलान्भागान्कषायमुपकल्पयेत् । ततस्तेनकषायेणसर्वगन्धैश्चकार्षिकैः ॥ दध्यारनालमाषाम्बुमूलकेक्षुरसैःशुभैः । पृथक्प्रस्थोन्मितैःसार्द्धं तैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ प्लीहमूत्रग्रहश्वासकासमारुतरोगनुत् । एतन्मूलकतैलाग्र्यं वर्णायुर्वलवर्द्धनम् ।

अर्थ—रास्ना, सिरस, मुलहटी, सोंठ, सहचर, गिलोय, श्यौनाक, देवदारु, अमलतास, असगंध, गोखरू इन में से प्रत्येक दस दस पल लेकर क्काथ करले । और इस क्काथ में एक २ कर्ष सर्व गंधका कल्क तथा दही, कांजी, उरदका क्काथ, मूलीकाक्काथ, ईखका रसप्रत्येक एक एक प्रस्थ तथा तेलएक प्रस्थ डालकर पकावै । इस तेल के सेवन करने से प्लीहा, मूत्रग्रह, श्वास, खांसी, वात रोग दूर होजाते हैं, यह मूलक तेल से भी उत्तम है, इस के सेवन से वर्ण, वल और आयु वढ़ते है ।

यवकोलकुलत्थानांमत्स्यानांशिग्रुविल्वयोः । रसेनमूलकानांचतैलंदधिपयोऽन्वितम् ॥ साधयित्वाभिषग्दद्यात्सर्ववातामयापहम् । लशुनस्वरसेसिद्धंतैलमेभिश्चवातनुत् ॥ तैलानेतानृतुस्नाताम ङ्गनांपाययेतच । पीत्वान्यतममेषांहिवन्ध्यापिजनयेत्सुतम् ॥

अर्थ—जौ, वेर, कुलथी,मछली,सहजना, वेल छाल और मूली, इनका क्काथ तथा दही, दूध और तेल इन को एकत्र सिद्ध करके देवै तो सम्पूर्ण प्रकार के वातरोग दूर होजाते हैं । अथवा ऊपर कहे हुए द्रव्यों के साथ ल्हसन के रस में सिद्ध किया हुआ तेल भी वातनाशक है ।

इन ऊपर कहे हुए तेलों में से कोईसा तेल ऋतु का स्नान करने के पीछे स्त्री को पान करावै तौ वन्ध्या के भी सन्तान की उत्पत्ति होती है ।

यच्चशीतज्वरेतैलमगुर्वाद्यमुदाहृतम् । अनेकशतशस्तच्चसिद्धंस्याद्वातरोगनुत्॥ वक्ष्यन्तेयानितैलानिवातशोणितकेऽपिच। तानिचानिलशान्त्यर्थंसिद्धिकामप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—जो अगुर्वादि तैल से आदि लेकर शीत ज्वर में वर्णन किये गये हैं, वह अनेक वार सिद्ध किये जाने पर वातरोग को दूर करता है अथवा अनेक वार इस तेल का अनुभव किया गया है। इस से अतिरिक्त वातरक्त में जो तेल कहे जायँगे वे भी आरोग्यता के निमित्त वातरोग के दूर करने के लिये दिये जा सकते हैं ।

तैल की उत्कृष्टता ।

नास्तितैलात्परंकिञ्चिदौषधंमारुतापहम्। व्यवाय्युष्णगुरुस्नेहात्संस्काराद्बलवत्तरम् ॥ गुणैर्वातहरैस्तस्मात्शतशोऽथसहस्रशः । सिद्धंक्षिप्रतरंहन्तिसूक्ष्ममार्गस्थितान्गदान् ॥

अर्थ—तेल से अधिक वातनाशक और कोई औषध नहीं है क्योंकि यह व्यवायी, उष्ण, गुरु और स्निग्ध है। तथा वातनाशक द्रव्यों के संस्कार से यह अत्यन्त वलवान् होजाता है। तथा वातनाशक द्रव्यों के साथ शत सहस्र वार सिद्ध करने पर यह सूक्ष्म स्रोतों में स्थित रोगों को शीघ्रही दूर करदेता है ।

क्रियासाधारणीसर्वासंसृष्टेचापिशस्यते। वातपित्तादिभिःस्रोतःस्वावृतेषुविशेषतः ॥

अर्थ—केवल वायु में जो साधारणी क्रिया कही गई है वह संसृष्ट दोषों में भी हितकारी होती है और विशेष करके जव स्रोतों का मार्ग वातपित्त, वा वातकफ वा पित्तकफसे रुका होता है तव वातनाशिनी क्रिया बहुत उपयोगी होती है ।

पित्तावृतवायुमार्ग में चिकित्सा ।

पित्तावृतेविशेषेणशीतामुष्णांतथाक्रियाम् । व्यत्यासात्कारयेत्सर्पिर्जीवनीयञ्च शस्यते ॥ धन्वमांसंयवाशालिर्यापनाः क्षीरवस्तयः । विरेकःक्षीरपानञ्चपञ्चमूलबलाश्रितम् ॥ मधुयष्टिबलातैलंघृतक्षीरैश्चसेचनम् । पञ्चमूलकषायेणकुर्याद्वाशीतवारिणा ॥

अर्थ—जव वायुका मार्ग पित्तसे आवृत होता है तव व्यत्यास क्रम से शीत क्रिया और उष्णक्रिया करना हित है । इस में जीवनीय गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घृत भी उपयोगी है । धन्वजमांस, जौ, शालीचांवल, यापनकर्त्ता क्षीर वस्ति, विरेचन, तथा पंचमूल वा वला डालकर औटायाहुआ दूध हित है । मुलहटी का क्काथ, वलातैल, घी, दूध, पंचमूल का क्काथ वा ठंडा जल इन से सेचन करना भी हित है ।

कफावृतवायु मार्ग में चिकित्सा ।

कफावृतेयवान्नानिजाङ्गलामृगपक्षिणः । स्वेदास्तीक्ष्णानिरूहाश्चवमनंसविरेचनम्॥जीर्णंसर्पिस्तथातैलंतिलसर्षपजंशुभम्।

अर्थ—कफसे वायुके रुकने पर जौ, जांगल पशुपक्षियों का मांस, स्वेद, तीक्ष्ण निरुहण, वमन, विरेचन, पुराना घी, तिल का तेल और सरसों का तेल हित होता है।

कफपित्तावृत वायुमार्ग में चिकित्सा ॥

संसृष्टेकफपित्ताभ्यांपित्तमादौविनिर्जयेत् ॥ आमाशयगतंदृष्ट्वाकफंवमनमाचरेत् । पक्वाशयेविरेकन्तुपित्तेसर्वत्रगेतथा॥

अर्थ—कफपित्त मिलेहुए दोषों से वायु का मार्ग रुकने पर प्रथम पित्त को जीतने का उपाय करै, जो कफ आमाशय में स्थित दिखाई दे तौ वमन देवै, पक्वाशयस्थ कफ में विरेचन देवै । तथा जो पित्त सर्व देहगत दिखाईदे तौभी विरेचनही देवै।

स्वेदैर्विष्यन्दितःश्लेष्मायदापक्वाशयाच्च्युतः । पित्तंवादर्शयेल्लिंगंवस्तिभिस्तं विनिर्हरेत् ॥

अर्थ—स्वेदनकर्म से श्लेष्मा यदि पिघल कर पक्वाशय को छोडदे और यदि पित्त के चिन्ह भी दिखाई दें तौ वस्तिद्वारा उसके दूर करने का उपाय करै ॥

श्लेष्मणानुगतंवातंउष्णैर्गोमूत्रसंयुतैः । निरूहैःपित्तसंसृष्टंनिर्हरेत्क्षीरसंयुतैः ॥ मधुरौषधसिद्धैश्चतैलैस्तमनुवासयेत् ।

अर्थ—कफसंसृष्ट वात में उष्ण गोमूत्र संयुक्त निरूहण वस्ति देवै । पित्त संसृष्ट में क्षीरसंयुक्त निरूहण देवै तथा मधुर औषधियों से सिद्ध कियेहुए तैल की अनुवासन वस्ति देवै ॥

शिरोगतवात में चिकित्सा ।

शिरोगतेतुसकफेधूमनस्यादिकारयेत् ॥

अर्थ—कफयुक्त वात के सिर में प्रवेश करने पर धूमपान और नस्यादि कर्म करै ॥

उरःस्थवात में चिकित्सा ॥

हृतेपित्तेकफेयःस्याद्दुरःस्रोतोऽनुगोऽनिलः । सशेषःस्यात्क्रियातत्रकार्याकेवल वातिकी ॥

अर्थ—पित्त और कफ के दूर होने पर जो वक्षःस्थल के स्रोतों में वात गमन करै तौ इस में केवल वात के नाश करनेवाली चिकित्साकरै ॥

रक्तावृतवातमें चिकित्सा ।

शोणितेनावृतेकुर्याद्वातशोणितकींक्रियाम्

अर्थ—रक्तावृत वात में वातरक्तनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥

आढ्यवात में चिकित्सा ॥

प्रमेहवातमेदोघ्नीमाढ्यवातेप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—आढ्यवात में प्रमेह, वायु और मेद को दूर करने वाली क्रिया करनी चाहिये ॥

मांसावृत वात में चिकित्सा ॥

स्वेदाभ्यंगारसाःक्षीरेस्नेहामांसावृतेमताः।

अर्थ—मांसावृत वातरोग में स्वेद, अभ्यंग, मांसरस, दूध और स्नेहका प्रयोग करना चाहिये ॥

महास्नेहोऽस्थिमज्जस्थेपूर्ववद्रेतसावृते ॥

अर्थ—आस्थि और मज्जामें स्थितवातरोगमें महास्नेहका प्रयोग करै और शुक्रावृत वात में भी पूर्वोक्त शुक्रस्थ वातकीसी चिकित्सा करै ॥

अन्नावृतवातमें चिकित्सा ।

अन्नावृतेतदुल्लेखःपाचनंदीपनंलघु ।

अर्थ—अन्नावृत वात में वमन, पाचन, दीपनकर्ता और लघु अन्न देना चाहिये ॥

मूत्रस्थवात में चिकित्सा ।

मूत्रलानितुमूत्रेणस्वेदाःसोत्तरवस्तयः ॥

अर्थ—मूत्रस्थ वात में मूत्रकारक औषध, स्वेदन और उत्तरवस्ति का प्रयोग करै ।

पुरीषस्थ वातकी चिकित्सा ।

शकृतातैलमैरण्डंवस्तिस्नेहाश्चभेदिनः ।

अर्थ—पुरीषावृत वात में अंडी का तेल और स्नेहन वस्ति तथा भेदकर्त्ता औषध श्रेष्ठ हैं ।

स्वस्थानस्थदोष की चिकित्सा ।

स्वस्थानस्थोवलीदोषःप्राक्तंस्वैरौषधैर्जयेत्।वमनैर्वाविरेकैर्वावस्तिभिःशमनेनवा ।

अर्थ—यदि दोष अपने ही स्थान में स्थित हो परन्तु कुपित होजाय तव उसी दोष के शमन करने वाली औषध का प्रयोग करै । अर्थात् अपने स्थान में स्थित कफ को वमन से, पित्त को विरेचन से और वातको वस्ति से शमन करै ।

मारुतानांहिपञ्चानामन्योन्यावरणेशृणु॥ लिङ्गंव्याससमासाभ्यामुच्यमानंमयाऽनघा ।

अर्थ—पूर्वोक्त पांचों प्रकार की वायु जब परस्पर एक दूसरे के मार्ग को आच्छादित कर लेती हैं तव जो लक्षण उत्पन्न होते हैं उनका संक्षेप से तथा सविस्तर वर्णन करतेहैं।

पंचवायु का परस्पर आवरण ।

प्राणोवृणोत्यपानादीन्प्राणंवृण्वन्त्यथापिते ॥ उदानाद्यास्तथान्योऽन्यंसर्वएव यथाक्रमम् । विंशतिर्वरणान्येतान्युल्वणानांपरस्परम् ॥ मारुतानांहिपञ्चानां तानिसम्यक्प्रतर्कयेत् ।

अर्थ—प्राणवायु अपानादिक वायुओं का अवरण करती है और ये अपानादिक भी प्राणवायु का आवरणा करती हैं, इसी तरह सम्पूर्ण उदानादिक वायु भी आपस में एक दूसरे का आवरण करती है । इसी तरह इन पांचों वायुओं के परस्पर आवरण करने के वीस आवरण हैं अव उनका सम्यक् वर्णन करते हैं ।

प्राणावृतव्यान वायु के लक्षण ।

सर्वेन्द्रियाणांशून्यत्वंज्ञात्वास्मृतिवलक्षयम् । व्यानेप्राणावृतेलिङ्गंकर्म्मतत्रोर्द्ध्वजत्रुकम् ॥

अर्थ—जव प्राणवायु व्यानवायुका आवरण करलेतीहै तव सम्पूर्णइन्द्रियां शून्य होजाती हैं, स्मरण शक्ति और वल घटजाता है, इस में ऊर्ध्वजत्रु क्रिया करना हित है ।

व्यानावृतप्राण वायु के लक्षण ।

स्वेदोऽत्यर्थंलोमहर्षस्त्वक्दोषःसुप्तगात्रता । प्राणेव्यानावृतेतत्रस्नेहयुक्तंविरेचनम् ॥

अर्थ—जव व्यानवायुप्राणवायुका आवरण

करलेतीहै तव पसीने वहुत आते हैं, रोमाञ्च खडे होजाते हैं, त्वचा विगड जाती है और देह सुन्न पडजाती है, इस में स्नेह युक्त विरेचन देवै ।

प्राणावृत समानवायु के लक्षण ॥

प्राणावृतेसमानेस्याज्जडगद्‌गदमूकताः । चतुष्प्रयोगाःशस्यन्तेस्नेहास्तत्रसयापनाः

अर्थ—जब प्राणवायु समान वायुका आवरण करलेती है तव जडता, गदगदता और मूकता होती है, इस में चार प्रकार के पान अभ्यंग, अनुवासन और नस्य कर्म हित हैं तथा क्षीर वस्ति भी उपयोगी होती है ।

समानावृत प्राणवायु के लक्षण ।

समानेनाऽवृतेप्राणेग्रहणीपार्श्ववेदना । शूलेचामाशयेतत्रदीपनंसर्पिरिष्यते ॥

अर्थ—जव समानवायु प्राणवायु का आवरण कर लेती है तब ग्रहणी दोष और पार्श्व वेदना होती है, तथा आमाशय में शूल होने लगता है, इस में संदीपन घृत उपयोगी होता है ।

प्राणावृतउदानबायु के लक्षण ।

शिरोग्रहःप्रतिश्यायोनिःश्वासोच्छ्वाससंग्रहः ॥ हृद्रोगोमुखशोषश्चाप्युदानेप्राण संवृते । तत्रोर्द्धभागिकंकर्मकार्यमाश्वास नंतथा ॥

अर्थ—जव प्राणवायु उदानवायुका आवरण करलेती है तब सिर में जकड़न, प्रतिश्याय, निःश्वास का रोध, उच्छ्वासका रोध, हृद्रोग और मुखशोष ये उपद्रव होते हैं, इस में वमनादि ऊर्ध्वदेहिक चिकित्सा तथा आश्वासन हितहै ।

उदानावृत प्राणवायुके लक्षण ।

कर्मौजोवलवर्णानांनाशोमृत्युरथापिवा । उदानेनावृतेप्राणेतंशनैःशीतवारिणा ॥ सिञ्चेदाश्वासयेच्चैवसुखंचैवोपपादयेत् ।

अर्थ—जब उदानवायु प्राण वायु का आवरण कर लेतीहै तब कर्म, ओज, बल और वर्ण का नाश होकर मृत्युभी होजाती है, इसमें धीरे २ शीतल जलके छींटे मारै, आश्वासन करै और सुखदायक कर्मों का उपयोग करै ।

प्राणावृत अपान वायुके लक्षण ।

ऊर्द्धगेनावृतेप्राणेछर्दिश्वासादयोगदाः॥ स्युर्बातेतत्रवस्त्यादिभोज्यंचैवानुलोमनम्

अर्थ—जब प्राण वायु अपान बायु का आवरण करलेतीहै तव वमन और श्वासादिक रोग उत्पन्न होतेहैं । इसमें वस्तिकर्म और अनुलोमन कर्त्ता भोजन हितहैं ।

अपानावृत प्राणवायु के लक्षण ॥

मोहाल्पोग्निरतीसारऊर्द्धगेऽपानसंवृते॥ वातेस्युर्वमनंतत्रदीपनंग्राहिचाशनम् ।

अर्थ—जब अपानवायु प्राण वायु का आरवण करलेती है तव मोह, मन्दाग्नि और अतीसार होते हैं । इस में वमन तथा दीपन संग्राही भोजन हित हैं ।

व्यानावृत अपान वायु के लक्षण।

वम्याध्मानमुदावर्तगुल्मान्तपरिकर्तिकाः॥ लिंगंव्यानावृतेपानेतंस्निग्धैरनुलोमयेत्।

अर्थ—जब व्यान वायु अपान बायुका

आवरण कर लेती है तब वमन, आध्मान, उदावर्त, गुल्म और परिकर्त्तिकादि उपद्रव होते हैं, इस में स्निग्ध अनुलोमन करना चाहिये ।

अपानावृतव्यान के लक्षण ।

अपानेनावृतेव्यानेभवेद्विण्मूत्ररेतसाम् ॥ अतिप्रवृत्तिस्तत्रापिसर्वंसंग्रहणंमतम् ।

अर्थ—अपान वायु जब व्यान वायुका आवरण कर लेती है तब विष्टा, मूत्र और वीर्य की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है, इस में सब तरह की संग्राही औषध हित होती हैं।

समानावृत व्यान वायु के लक्षण ॥

मूर्च्छातन्द्राप्रलापोऽङ्गसादोऽग्न्योजोवल क्षयः ॥ समानेनावृतेव्यानेव्यायामोल घुदीपनम् ।

अर्थ—जब समान वायु व्यानवायु का आवरण करलेती है तब मूर्च्छा,तन्द्रा, प्रलाप अंगसाद, अग्निक्षय, तेजक्षय और बलक्षय होता है इसमें शारीरिक परिश्रम तथा लघु और दीपन भोजन हित हैं ।

उदानावृत व्यान वायु के लक्षण ।

स्तब्धताल्पाग्नितास्वेदश्चेष्टाहानिर्निमील नम् ॥ उदानेनावृतेव्यानेतत्रपथ्यंमितं लघु ।

अर्थ—जब उदानवायु व्यान वायु का आवरण कर लेती है तब स्तब्धता, मन्दाग्नि, पसीनों का बन्द होजाना, चेष्टा का नाश और निमीलन होता है, इस में थोडा और हलका भोजन हित होता है ।

पञ्चान्योन्यावृतानेवंवातांल्लिङ्गैर्निशाम येत् । एषांस्वकर्मणांहानिर्वृद्धिर्वावरणं मतम् । यथास्थूलंसमुद्दिष्टमेतदावरणा ष्टकम् ॥ सलिङ्गभेषजंसम्यग्बुधानांबु द्धिवृद्धये । स्थानान्यवेक्ष्यवातानांवृद्धिं हानिश्चकर्मणाम् ॥ द्वादशावरणान्यन्या न्याभिलक्ष्यभिषग्जियतम् । कुर्यादभ्यञ्ज नस्नेहपानवस्त्यादिसर्वशः ॥ क्रममु ष्णमनुष्णंवाव्यत्यासादवधारयेत् ।

अर्थ—प्राणादिक पंचवायु जब आपस में एक दूसरे का आवरण करलेती हैं तब उनके ऊपर कहेहुए लक्षण होते हैं, इन पंच वायु के निज२ कर्मों की वृद्धि वा हानिही का नाम आवरण है अथवा यों कहो कि आवरणही से इनके निज कर्मों की घटती बढती होती है स्थूल रीत से इन आठ प्रकार के आवरणों का वर्णन कियागया है तथा, पंडितों के बुद्धि की वृद्धि के लिये उनके लक्षण और चिकित्सा भी कही गई हैं ॥

इनके अतिरिक्त बारह आवरण और भी हैं उन में वायु के पृथक् २ स्थान और उनके कर्मों की वृद्धि वा हानि का अच्छी तरह विचार करके अभ्यंजन, स्नेह पान और वस्तिकर्म आदि सब प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये, तथा इसकी शान्ति के लिये व्यत्यासक्रम से उष्ण और शीतल क्रियाभी करनी चाहियें ॥

उदानादि वायु में चिकित्साक्रम ।

उदानंयोजयेदूर्द्धमपानंचानुलोमयेत् ॥ समानंशमयेच्चैवत्रिधाव्यानन्तुयोजयेत् ।

अर्थ—उदान वायुके आवृत होने पर वमन और नस्यादि ऊर्ध्व क्रिया कर्त्तव्य हैं अपान वायुके आवृत होने पर विरेचनादि अनुलोमन क्रिया करनी चाहिये। समान वायुकी शंशमन चिकित्सा करै तथा व्यान वायुके आवृत होने पर उक्त तीनों प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये।

प्राणवायु में कर्त्तव्य।

प्राणोरक्ष्यश्चतुर्भ्योपिस्थानेह्यस्यस्थिति र्ध्रुवा ॥ स्वंस्थानंगमयेदेवंवृतानेतान्वि मार्गगान्।

अर्थ—चारों प्रकारकी वायुसे प्राणवायु की रक्षा करना अत्यन्त अवश्यकीय पहिला काम है। इसकी निज स्थान में स्थिति होना भी अत्यन्तही आवश्यकीय है। प्राण वायुकी इस तरह रक्षाकर के आवृत और विमार्गगामी शेष चारों प्रकारकी वायु को अपने अपने स्थान में लेजाने का यत्न करना चाहिये।

पित्तावृत प्राणवायु के लक्षण।

मूर्च्छादाहोतमःशूलंविदाहःशीतकामता॥ छर्दनञ्चविदग्धस्यप्राणेपित्तसमावृते।

अर्थ—जब पित्त प्राणवायु को आवृत कर लेता है तब मूर्च्छा, दाह, अंधकार दर्शन, शूल, विदाह और शीतल वस्तुओं पर इच्छा होती है तथा विदग्ध भोजन की वमन भी होती है॥

कफावृत प्राण के लक्षण॥

ष्ठीवनंक्षवथूद्गारानिःश्वासोच्छ्वाससंग्रहः॥ प्राणेकफावृतेरूपाण्यरुचिश्छर्दिरेवच।

अर्थ—कफावृत प्राणवायु में थुकथुकी, छींक, डकार, निःश्वासरोध, उच्छ्वासरोध, अरुचि और वमन होते हैं॥

पित्तावृत उदान के लक्षण॥

मूर्च्छाद्यानिचरूपाणिदाहोनाभ्युरसोर्भ्रमः॥ ऊर्जोभ्रंशश्चसादश्चाप्युदानेपित्त संवृते।

अर्थ—पित्तावृत उदानवायु में मूर्च्छादिक उक्त लक्षण तथा नाभि और वक्षःस्थल में दाह, भ्रम, ऊर्जाभ्रंश और अंगसाद होता है॥

कफावृत उदान के लक्षण॥

आवृतेश्लेष्मणोदानेवैवर्ण्यंवाक्स्वरग्रहः॥ दौर्बल्यंगुरुगात्रत्वमरुचिश्चोपजायते।

अर्थ—कफावृत उदानवायु में विवर्णता वाक्निग्रह, स्वरभंग, दुर्बलता, गुरुगात्रता और अरुचि होती है॥

पित्तावृत समान वायु के लक्षण॥

अतिस्वेदस्तृषादाहोमूर्च्छाचारुचिरेवच॥ पित्तावृतेसमानेस्युरुपघातस्तथोष्मणः।

अर्थ—पित्तावृत समानवायु में पसीनों का अत्यन्त आना, तृषा, दाह, मूर्च्छा, अरुचि और ऊष्माका उपघात होता है॥

कफावृत समान वायु के लक्षण॥

अस्वेदोवह्निमान्द्यञ्चलोमहर्षस्तथैवच॥ कफावृतेसमानेस्युर्गात्राणांचातिशीतता।

अर्थ—कफावृत समानवायु में पसीनों का बन्दहोना, मन्दाग्नि, रोमोद्गम तथा शरीरका अत्यन्य ठंडा होना ये लक्षण होते हैं॥

पित्तावृतव्यान के लक्षण ॥

व्यानेपित्तावृतेतुस्याद्दाहःसर्वाङ्गगःक्लमः॥ गात्रविक्षेपसङ्गश्चससन्तापःसवेदनः।

अर्थ—पित्तावृत व्यान वायु में सम्पूर्ण देह में दाह, क्लान्ति, गात्रविक्षेप, संग, संताप और वेदना होती हैं ॥

कफावृत व्यान के लक्षण ॥

गुरुतासर्वगात्राणांपर्वसन्ध्यस्थ्यवग्रहः॥ व्यानेकफावृतेलिंगगतिसङ्गस्तथाधिकः।

अर्थ—कफावृत व्यान वायु में सम्पूर्ण अंगावयवों में गुरुता, पर्वावरोध, संध्यवरोध, अस्थ्यवरोध तथा अत्यन्त गतिरोध होता है

पित्तावृत अपान के लक्षण ।

हारिद्रमूत्रवर्चस्त्वंतापश्चगुदमेढ्रयोः॥ लिंगंपित्तावृतेऽपानेरजसःसंप्रवर्त्तनम् ॥

अर्थ—पित्तावृत अपान वायु में मूत्र और विष्टा हलदी के से रंगका होजाता है,गुदा और मेढ में ताप होता है, और रज की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है ।

कफावृत्त अपान के लक्षण ।

भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् । श्लेष्मणासंवृतेऽपानेकफमेहस्यचागमः॥

अर्थ—कफावृत अपान बायु में फटा हुआ और आम कफसे मिला हुआ भारी विष्टा निकलता है तथा कफमेह का आगम होता है ।

कफपित्तावृतके लक्षण ।

लक्षणानांतुमिश्रत्वंपित्तस्यचकफस्यच। उपलभ्यभिषग्विद्वान्मिश्रमावरणंवदेत्॥ यत्रस्यवायोर्निर्दिष्टंस्थानंतत्रेतरौस्मृतौ। दोषौवहुविधान्व्याधीन्दर्शयेतांयथा निजान् ॥

अर्थ—जब वायु पित्त और कफ दोनों से आवृत होती है तव दोनों के मिले हुए लक्षण होते हैं । जब वायु कफ और पित्त से आवृत होकर जिस जिस स्थान में विचरण करती है उसी उसी स्थान में कफ और पित्त अपने अपने लक्षणों वाली व्याधि उत्पन्न करते हैं ।

प्राणोदान बायु को गुरुता ।

आवृतंश्लेष्मपित्ताभ्यांप्राणंचोदानमेवच। गरीयस्त्वेनपश्यन्तिभिषजःशास्त्रचक्षुषः॥ विशेषाज्जीवितंप्राणेउदानेसंश्रितंबलम् । स्यात्तयोःपीडनाद्धानिरायुषश्चवलस्यच ॥

अर्थ—पित्त और कफसे आवृत प्राण और उदान वायु को शास्त्रज्ञ वैद्य वहुत भारी समझते हैं, कारण ये है कि जीवन प्राण वायुके आधीन है और वल उदानवायु के आधीन है । इस लिये इनके पीडित होने से आयु और वल दोनों की हानि होजातीहै।

सर्वेऽप्येतेपरिज्ञेयाःपरिसंवत्सरास्तथा। उपेक्षणादसाध्याःस्युरथवादुरुपक्रमाः॥

अर्थ—इन सब को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, क्योंकि इनकी उपेक्षा करने से ये एक वरस पीछे असाध्य वा दुश्चिकित्स्य होजाती हैं ।

उपेक्षित वायु के उपद्रव ॥

हृद्रोगोविद्रधिःप्लीहागुल्मातीसरएवच। भवन्त्युपद्रवास्तेषामावृतानामुपेक्षणात्॥

अर्थ—इन आवृत वायुकी उपेक्षा करने से हृद्रोग, विद्रधि, प्लीहा, गुल्मरोग, अतिसार आदि उपद्रव होते हैं ॥

वैद्यकोउपदेश ॥

तस्मादावरणंवैद्यःपवनस्योपलक्षयेत् । पञ्चात्मकस्यवातेनपित्तेनश्लेष्मणापिवा॥ भिषज्यितैरतःसम्यगुपलक्ष्यसमाचरेत्। अनभिष्यन्दिभिःस्निग्धैःस्रोतसांशुद्धिकारिभिः॥

अर्थ—इसलिये वैद्यको उचित है कि वायु के आवरणों पर दृष्टि रक्खै कि ये पांचों प्रकार की वायु वात, पित्त अथवा कफ से आवृत हैं, इसका अच्छी तरह विचार करके अनभिष्यन्दी, स्निग्ध और स्रोतों के शुद्ध करने वाली औषधियों से चिकित्साकरै ॥

आवृत वायु में चिकित्सा ॥

कफपित्ताविरुद्धंयद्यच्चवातानुलोमनम्। सर्वस्थानावृतेप्याशुतत्कार्यमारुतेशुभम् ॥ यापनावस्तयःप्रायोमधुराःसानुवासनाः। प्रसमीक्ष्यवलाधिक्यंमृदुवास्रंसनंहितम्॥ रसायनानांसर्वेषामुपयोगःप्रशस्यते । शैलस्यजतुनोऽप्यर्थंपयसागुग्गुलोस्तथा॥ लेहंवाभार्गवप्रोक्तमभ्यस्येत्क्षीरभुग्ध्रुवम् । अभयामलकीयोक्तमेकादशसिताशतम् ।

अर्थ—सर्वस्थानावृत वायु में वह चिकित्सा करनी चाहिये जो कफपित्त के अविरुद्धहो और वात के अनुलोमन करने वाली हो। इस में क्षीरवस्ति (यापनवस्ति) मधुरवस्ति और अनुवासन हित है तथा वल के अनुसार मृदुविरेचन देवै। इसमें सम्पूर्ण रसायनिक प्रयोग भी उपयोगी होते हैं, वहुत दूध के साथ शिलाजीत और गूगल का सेवन भी हित है। केवल दुग्धका आहार करके प्रथमाध्याय में कहे हुए च्यवन प्राशका सेवन करै अथवा ग्यारह प्रकार की अभयामल की योक्त रसायन भी हित हैं ॥

अपानावृत प्राणवायुमें चिकित्सा॥

अपानेनावृतेसर्वंदीपनंग्राहिभेषजम् । वातानुलोमनंयच्चपक्वाशयविशोधनम् ॥ इतिसंक्षेपतःप्रोक्तमावृतानांचिकित्सितम् प्राणादीनांभिषक्कुर्याद्वितर्क्यस्वयमेव तत् ॥

अर्थ—अपानावृत प्राणवायु में दीपन, संग्राही वातानुलोमनकर्त्ता और पक्वाशय को शुद्ध करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥

इस तरह आवृतवायुकी चिकित्सा संक्षेप रीति से वर्णन कीगई है, इनमें वैद्य अपनी बुद्धि से भी अन्य औषधों का प्रयोग करै।

पित्तऔरकफावृतवायुकी चिकित्सा ।

पित्तावृतेतुपित्तघ्नैर्मारुतस्याविरोधिभिः कफावृतेकफघ्नैस्तुमारुतस्यानुलोमनैः ॥

अर्थ—पित्तावृतवायु में पित्तनाशक और वायुके अविरोधी चिकित्सा करै । कफावृतवायु में कफनाशक और वायुका अनुलोमन करनेवाली चिकित्सा करना चाहिये ॥

लोकेवाय्वर्कसोमानांदुर्विज्ञेयायथागतिः।
तथाशरीरेवातस्यपित्तस्यचकफस्यच ॥
क्षयंवृद्धिंसमत्वंवातथैवातरणंभिषक् ।
विज्ञायपवनादीनांनप्रमुह्यतिकर्मसु ॥

अर्थ—संसारमें जिसतरह पवन, सूर्य और चन्द्रमा की गति समझमें नहीं आती है उसीतरह देह में वात, पित्त और कफ की गति समझ में नहीं आती है। जो वैद्य वातादिककी क्षय, वृद्धि, समता और आवरण को जानकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होता है वह घवडाता नहीं है॥

अध्यायकासंक्षिप्त वर्णन ॥

पञ्चात्मनःस्थानवशात्शरीरे ।
स्थानानिकर्माणिचदेहधातोः ॥
प्रकोपहेतुःकुपितश्चरोगान् ।
स्थानेषुवान्येषुवृतोऽवृतश्च ॥
प्राणेश्वरःप्राणभृतांकरोति ।
क्रियाचतेषामखिलानिरुक्ता ॥
तान्देशसात्म्यर्तुवलान्यवेक्ष्य ।
प्रयोजयेच्छास्त्रमतानुसारि ॥

अर्थ—इस वात व्याधि चिकित्सित अध्याय में पंचात्मक वायु के शरीर में भिन्न भिन्न स्थानादि, देह धातु के कर्म, प्रकोप के हेतु, तथा कुपित होकर अपने स्थान में वा अन्य स्थानों में जिन २ रोगों को करती है, पृथक् २ वायु के आवरणों के लक्षण, और उनकी सब क्रिया वर्णन की गई हैं वैद्यको उचितहै कि इन सब वातों को देखकर तथा देश, सात्म्य ऋतु, और बलको देखकर औषध करने में प्रवृत्त होवै॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेवातव्याधिचिकित्सितंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

—※—

एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातोवातशोणितचिकित्सितंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनंतर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वातरक्त नामक चिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

हुताग्निहोत्रमासीनमृषिमध्येपुनर्वसुम् ।
पृष्टवान्गुरुमेकाग्र्यमाग्निवेशोऽग्निवर्चसम्॥
अग्निमारुततुल्यस्यसंसर्गस्यानिलासृजोः।
हेतुलक्षणभैषज्यान्यथास्मैगुरुरब्रवीत् ॥

अर्थ—जब गुरु पुनर्वसुजी अग्निहोत्रकर्म से निश्चिन्त होकर एकाग्रचित्त से ऋषियों के बीच में अग्निकी शिखा के समान बिराजित होरहे थे तबही अग्निवेश ने पूछा कि हे गुरुदेव! अग्नि और वायु के समान मिलेहुए वातरक्त के हेतु, लक्षण और चिकित्सा का उपदेश कीजिये, यह सुनकर गुरुजीने उस से कहा ॥

वातरक्त के हेतु ।

लवणाम्लकटुक्षारास्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः । क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोध

दिवास्वप्नप्रजागरैः । प्रायशःसुकुमराणां पिष्टान्नरसभोजिनाम् ॥ अचंक्रमणशीलानांकुप्यतेवातशोणितम् । अभिघातादशुद्ध्याचप्रदुष्टेशोणितेनृणाम् ॥ कषायकट्वतिक्ताल्परूक्षाहारादभोजनात् । हयोष्ट्रयानयानाम्बुक्रीडाप्लवनलंघनात् । उष्णेचात्यध्ववैषम्याद्व्यवायाद्वेगनिग्रहात् ॥ वायुर्विवृद्धोवृद्धेनरक्तेनावारितःपथि । क्रुद्धस्तद्दूषयेद्रक्तंतज्ज्ञेयंवातशोणितम् ॥ खुडंवातबलासाख्यमाढ्यंरोगंचनामाभिः ।

अर्थ—नमकीन, खट्टे, कड़वे, खारे, स्निग्ध, उष्ण और दुष्पाच्य द्रव्योंके अत्यन्त सेवन से, गीले वा सूखे औदकमांस और आनूपमांस के अत्यन्त सेवन से, पिण्याक वा मूली के अत्यन्त सेवन से, कुलथी, उरद, चौलाआदि शाक तथा पलल और ईख के अत्यन्त सेवन से; दही, कांजी, सौवीर, शुक्त, तक्र, सुरा और आसव के अत्यन्तसेवन से; विरुद्धभोजन, अध्यशन, क्रोध, दिवास्वप्न और अत्यन्त जागरण से; प्रायःसुकुमार और पिष्टान्न रस भोजन करनेवालों के (प्रायशःसुकुमाराणांमिथ्याहारविहारिणाम्), तथा जो डोलते फिरते नहीं हैं एकही जगह बैठे रहते हैं उन के वात रक्त कुपित होता है तथा चोट लगने से इकठे हुए मल को न निकालने से रक्त दूषित होजाता है । कषाय, कटु, तिक्त, अल्प और रूखा आहार करने से वा बिना भोजन करने से, अथवा घोड़े वा ऊंटकी सवारीपर चढ़कर जाने से, वा जलक्रीड़ा, प्लवन और लंघन कर ने से वा गरमी के समय अत्यन्त विषम मार्ग पर चलने से, व्यवाय से, वेगनिग्रह से बढ़ीहुई वायुमार्ग में बढ़ेहुए रक्तसे रुककर कुपित होजातीहै और रक्तको दूषित करदेतीहै इसेही वातरक्त कहतेहैं । इसीके पर्य्याय वाची नाम गुडवात, वातबलास और आढ्यवात भी हैं ॥

वातरक्त के स्थान ॥

तस्यस्थानंकरौपादावंगुल्यःपर्वसन्धयः ॥ कृत्वादौहस्तपादेतुमूलंदेहेविधावति ।

अर्थ—वातरक्त के स्थान दोनोंहाथ, दोनोंपांव, अंगुलियां और पर्वसंधियां हैं । यह प्रथम हाथ और पांव में उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण देह में फैलजाता है ॥

सौक्ष्म्यात्सर्वसरत्वाच्च देहंगच्छन्शिरायनैः । पर्वस्वभिहतंक्षुब्धंवक्रत्वादवतिष्ठते ॥ स्थितंपित्तादिसंसृष्टंतास्ताःसृजति वेदनाः । करोतिदुःखंतेष्वेवतस्मात्प्रायेणसन्धिषु ॥

अर्थ—वायुकी सूक्ष्मता और रक्तकी सर्वत्र गमन करनेवाली शक्ति से कुपितहुए वातरक्त सम्पूर्ण देह में गमन करते हैं, परन्तु जब पोरुओं में जाते हैं तब उनकी टेढाई के कारण वहीं रुककर ठहर जाते हैं, तब पित्तादि दोषों से मिलकर वैसी २ ही वेदना उत्पन्न करते हैं और इसीलिये उनही संधियों में अत्यन्त पीडा होती है।

वातरक्तके पूर्वरूप ।

स्वेदोऽत्यर्थंनवाकार्श्यंस्पर्शाज्ञत्वंक्षतेऽति

रुक् । सन्धिशैथिल्यमालस्यंसदनंपिड कोद्गमः ॥ जानुजंघोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु । निस्तोदःस्फुरणंभेदोगुरुत्वं सुप्तिरेवच ॥ कण्डूःसंधिषुरुग्भूत्वाभूत्वान श्यतिचासकृत् । वैवर्ण्यंमण्डलोत्पत्ति वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥

अर्थ—अत्यन्त पसीने आना वा सर्वथा न आना, कृशता, स्पर्श का ज्ञान न होना, क्षत में अत्यन्त वेदना होना, संधियों में शिथिलता, आलस्य, अंगसाद, फुन्सियोंका होना; जानु, जंघा, ऊरु, कटि, कंधा, हाथ, पांव तथा देह की संधियों में सूची भेदन के समान पीडा होना; स्फुरण, भेद, भारापन, सुप्ति, खुजली संधियों में वेदना हो होकर मिटजाना, विवर्णता, चकत्तों का होना । ये सब वातरक्त के पूर्वरूप हैं ॥

वातरक्त के भेद ॥

उत्तानमथगम्भीरंद्विविधंतत्प्रचक्षते । त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानंगम्भीरंत्वन्तराश्रयम् ॥

अर्थ—वातरक्त दो प्रकार का होता है, यथा—उत्तान और गंभीर । जो त्वचा और मांस में आश्रित होता है वह उत्तान है और जो मांससे भी भीतर का आश्रय लेकर उत्पन्न होता है, वह गंभीर है ॥

उत्तान वातरक्तके लक्षण।

कण्डूदाहरुगायासतोदस्फुरणधूपनैः । अन्विताश्यावरक्तात्वग्बाह्येताम्रातथेष्यते ॥

अर्थ—जिसमें खुजली, दाह, वेदना, तोद, स्फुरण और जलनहो और चमड़ा श्याववर्ण वाताम्रवर्ण होजाय उसे **उत्तान वात रक्त** कहते हैं ।

गम्भीर वातरक्तके लक्षण ।

गम्भीरःश्वयथुःस्तब्धःकठिनोऽन्तर्भृशार्तिमान् । श्यामस्ताम्रोऽथवादाहतोदस्फुरणपाकवान्॥

अर्थ—जिसमें सूजन, स्तब्धता, कठोरता हो, जिसमें भीतर अत्यन्त वेदना हो, जिस में त्वचा श्यामवर्ण वा ताम्रवर्ण होजाय, जिसमें दाह, तोद, स्फुरण होता हो और जो पाकाभिमुख हो वह **गंभीर वातरक्त है ।**

रुग्विदाहान्वितोऽभीक्ष्णंवायुःसन्ध्यस्थिमज्जसु । छिन्दन्निवचरत्यन्तर्वक्रीकुर्वंश्चवेगवान् ॥ करोतिखञ्जंपङ्गुंवाशरीरेसर्वतश्चरन् ।

अर्थ—वेदना और दाह से मिली हुई वायु संधि, अस्थि और मज्जा में छेदनवत् पीडा करती हुई विचरती है और अपने वेग से उंगली आदि अंगों को टेढा करदेती है और सम्पूर्ण शरीर में विचरती हुई खञ्जता और पांगलापन भी करदेती है ।

उभयाश्रित वातरक्त के लक्षण ।

सर्वैर्लिङ्गैश्चविज्ञेयंवातासृगुभयाश्रयम् ॥ तत्रवातेऽधिकेवास्याद्रक्तेपित्तेकफेऽपिवा। संसृष्टेषुसमस्तेषुयच्चतच्छृणुलक्षणम् ॥

अर्थ—जिसमें उक्त दोनों प्रकार के वातरक्त के मिले हुए लक्षण दीख पडते हैं वह **उभयाश्रित वातरक्त है** । इनमें से दोनों प्रकार का वातरक्त वाताधिक, रक्ताधिक,

पित्ताधिक वा कफाधिक होता है। अथवा दो दो दोषों से मिलाहुआ वा सब दोषों से मिला हुआ भी होता है अब इस के पृथक् पृथक् लक्षण सुनो।

वाताधिक वातरक्त के लक्षण।

विशेषतःशिरायासशूलस्फुरणतोदनम्। शोथस्यकार्श्यरूक्षत्वश्यावतावृद्धिहानयः धमन्यंगुलिसन्धीनांसङ्कोचोऽङ्गग्रहतोऽति रुक्। कुञ्चनस्तम्भनेशीतप्रद्वेषश्चानि लेऽधिके॥

अर्थ—वाताधिक्य वातरक्त में विशेष करके शिरा में यातना, शूल, स्फुरण, तोद शोथ में कालापन, रूक्षता, श्यावता, कभी वढाव, कभी घटाव, धमनी, उंगली और संधियों में संकोच, अंगग्रह, अत्यन्त वेदना, कुंचन,स्तंभन और शीतल वस्तु में अनिच्छा ये लक्षण होते हैं।

रक्ताधिक वातरक्त के लक्षण।

श्वयथुर्भृशरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते। स्निग्धरूक्षैःशमंनैतिकण्डूक्लेदान्वितोऽसृजि॥

अर्थ—रक्ताधिक वातरक्त में सूजन, अत्यन्त वेदना, त्वचा का ताम्रवर्ण और चिमिचिमापन होता है। किसी प्रकार की स्निग्ध वा रूक्ष औषधियों से शान्ति नहीं होती,इस में खुजली और क्लेदभी होता है।

पित्ताधिक वातरक्त के लक्षण।

विदाहोवेदनामूर्च्छास्वेदस्तृष्णामदोभ्र मः। रागःपाकश्चभेदश्चशोफश्चोक्तानि पैत्तिके॥

अर्थ—पित्ताधिक वातरक्त में दाह, वेदना, मूर्च्छा, स्वेद, तृषा, मद, और भ्रम होता है इस में राग, पाक, शोफ और भेद भी होता है।

कफाधिकवातरक्तके लक्षण।

स्तैमित्यंगौरवंस्नेहःसुप्तिर्मन्दाचरुक्कफे।

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में स्तिमिता, भारापन, स्निग्धता, सुप्तता अरुचि और मन्द वेदना होती है।

संसृष्टवातरक्तकेलक्षण।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वात्रिदोषजम्॥

अर्थ—पूर्वोक्त हेतु और लक्षणों के संसर्ग से द्विदोष वा त्रिदोषज वातरक्त होता है अर्थात् जिस में दो दोषों के हेतु और लक्षण मिलेहुए पायेजाते हैं उसे द्वंद्वज कहते हैं और जिसमें सब दोषोंके मिलित लक्षण होते हैं वह सर्व दोषज होता है॥

वातरक्तको साध्यासाध्यत्व।

एकदोषानुगंसाध्यंनवंयाप्यंद्विदोषजम्। त्रिदोषजमसाध्यंबायस्यचस्युरुपद्रवाः॥

अर्थ—जो वातरक्त एकदोषसे युक्त और नवीन होता है वह साध्य है, जो दो दोषों से उत्पन्न है वह याप्य है जो तीन दोषों से उत्पन्न है अथवा उपद्रवों से युक्त है वह असाध्य होता है।

सोपद्रववातरक्त के लक्षण॥

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्र हाः। मूर्च्छाचमदरुक्छर्दिज्वरमोहप्रवे पकाः॥ हिक्कापांडुत्ववीसर्पपाकतोदभ्र मक्लमाः। अंगुलीवक्रतास्फोटदाहम

मेग्रहार्बुदाः ॥ एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यमोहेनैकेन वापियत् । सप्रस्राविविवर्णञ्चस्तब्धमर्बुदकञ्चयत् ॥ वर्जयेद्यःससंकोचकरमिन्द्रियतापनम् ।

अर्थ—नींद न आना, अरुचि, श्वास, मांस में गलावट, शिरोग्रह, मूर्च्छा, मद, वेदना, वमन, ज्वर, मोह, कम्पन, हिचकी पाण्डुरोग (पांगुल्यमपिपाठः), विसर्प, पाक, तोद, भ्रम, क्लान्ति, अंगुलियों में टेढ़ापन, फोड़े, दाह, मर्मग्रह, अर्बुद, इनसब उपद्रवों के होनेपर वातरक्त वर्जनीय होता है अथवा इन में से कोई उपद्रव न हो और केवल एक मोहही हो तौभी वर्जनीय है । जिस वातरक्त में स्राव होता हो, विवर्णता हो, स्तब्धता हो, जिस में अर्बुद, संकोचता और इन्द्रियताप हो वह भीवर्जनीय है ।

सुचिकित्स्य वातरक्त के लक्षण ।

अकृत्स्नोपद्रवंयाप्यंसाध्यंस्यानिरुपद्रवम्॥

अर्थ—जिस में उक्त सम्पूर्ण उपद्रव एक साथ नहीं होते हैं वह याप्य है और जिसमें एक भी उपद्रव नहीं होता वह साध्य होता है ।

वायुप्रकोप में चिकित्साक्रम ।

रक्तमार्गंविहत्याशुशाखासन्धिषुमारुतः । निविश्यान्योन्यमावार्यवेदनाभिर्हरेदसून् ॥ तत्रमुञ्चेदसृक्शृङ्गजलौकःसूच्यलाबुभिः । प्रच्छन्नैर्वाशिराभिर्वायथादोषं यथाबलम् ॥ रुग्दाहशूलतोदार्तादसृक्स्राव्यंजलौकसा । शृङ्गैःस्तम्भैर्हरेत्सुप्तिकण्डूचिमिचिमायनात् ॥ देशाद्देशंव्रजन्स्राव्यंशिराभिःप्रच्छनेनवा । अङ्गग्लानेनतुस्राव्यंरूक्षेर्वातोत्तरञ्चयत् ॥

अर्थ—वायु हाथ पांवों की संधियों में प्रवेश कर के रक्त वाही मार्गों को रोक देती है, तब रक्त और वायु परस्पर एक दूसरे को रोकते हुए प्राणों को शीघ्र हर-लेते हैं, ऐसे स्थल में सींगी, जोंक, सूची, अलाबू, पछना वा शिराव्यध (फस्त)का यथाबल प्रयोग कर के रुधिरको निकलवा डाले । वातरक्त में जो वेदना, दाह, शूल और तोद हो तौ जोंक लगाकर रुधिर निकाल डाले । जो सुप्ति, कण्डूपन और चिमचिमाहट हों तौ सींगी लगाकर रुधिर निकाले । जो बातरक्त एकस्थान से दूसरे स्थानपर सरकजाता हो तौ शिराव्यध वा पछना द्वारा रुधिर निकाले । परन्तु जो देहमें किसी प्रकार का क्लेश और ग्लानता हो वा रूक्ष पुरुष के वाताधिक्य वातरक्त में रुधिर निकालने का निषेध है ।

गम्भीरंश्वयथुंस्तम्भंकम्पंस्नायुशिरामयान् । ग्लानिंचास्यससङ्कोचांकुर्याद्वायुरसृक्क्षयात् ॥ खञ्जादीन्वातरोगांश्च मृत्युंवात्यपसेचितम् । कुर्यात्तस्मात्प्रमाणेनस्निग्धाद्रक्तंनिवारयेत् ॥

अर्थ—रक्तके अत्यन्त क्षीण होजाने से गंभीर सूजन, स्तम्भता, कम्पन, स्नायुरोग शिरारोग, ग्लानि और संकोच उत्पन्न होते हैं तथा अत्यन्त रक्तमोक्षण से खंजादिक वातरोग उत्पन्न होकर मृत्यु भी होजाती

है । इसी हेतु से प्रथम स्नेहन करके प्रमाण से रक्तमोक्षण करे ।

वातरक्त में चिकित्साक्रम ।

विरेच्यः स्नेहयित्वादौ स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः। रूक्षैर्वामृदुभिः शस्तं असकृद्बस्तिकर्म च ॥ सेकाभ्यङ्गप्रदेहान्नस्नेहाः प्रायोऽविदाहिनः वातरक्ते प्रशस्यन्ते विशेषं तु निबोध मे ॥

अर्थ—वातरक्त में प्रथम स्नेहन कराके स्नेहयुक्त विरेचन देवै अथवा रूक्ष वा मृदु विरेचन देवै और वस्ति कर्म भी बार बार करता रहै। वातरक्त में प्रथम प्रायः अविदाही परिषेक, अभ्यंग, प्रलेप, अन्न और स्नेह का प्रयोग करना चाहिये। अब जो विशेषता है उसका वर्णन किया जाता है ।

बाह्यवात रक्त में कर्म ।

बाह्यमालेपनाभ्यङ्गपरिषेकोपनाहनैः ॥

अर्थ—बाह्यवात रक्तमें आलेपन, अभ्यंग, परिषेक और उपनाहन करना चाहिये ।

गंभीर वातरक्त में कर्त्तव्यकर्म ।

विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥

अर्थ—गंभीर वातरक्त में विरेचन, आस्थापन और स्नेहपान करना चाहिये ।

वातोत्तर वातरक्त की चिकित्सा ।

सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनवस्तिभिः । सुखोष्णैरुपनाहैश्च वातोत्तरमुपाचरेत् ॥

अर्थ—वातोत्तर वातरक्त में घृत, तैल, वसा, मज्जा, पान, अभ्यंजन, वस्ति और सुखोष्ण उपनाह का प्रयोग करना चाहिये।

रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।

विरेचनैर्घृतक्षीरपानैः सेकैः सबस्तिभिः । शीतैर्निर्वापनैश्चापि रक्तपित्तोत्तरं जयेत् ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में विरेचन घृतपान, क्षीरपान, परिषेक, वस्तिकर्म और शीतल निर्वापण करना उचित है ।

कफोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।

वमनं मृदु नात्यर्थं स्नेहसेकादि लंघनम् । कोष्णलेपाश्च शस्यन्ते वातरक्ते कफोत्तरे ॥

अर्थ—कफोतर वातरक्त में अत्यन्त मृदु वमन, स्नेहसेक, लंघन और सुहाता हुआ गरम लेप हित है ।

कफवातोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।

कफवातोत्तरे शीतैः प्रलिप्ते वातशोणिते । विदाहशोफरुक्कण्डूविवृद्धिः स्तम्भनाद्भवेत् ॥

अर्थ—कफवातोत्तर वातरक्त में शीतल लेप करने से स्तम्भन होने के कारण विदाह, सूजन, वेदना और खुजली की वृद्धि होती है।

रक्तपित्तोतर वातरक्त में कर्म ।

पित्तरक्तोत्तरे दाहः क्लेदोऽवदरणं भवेत्। उष्णैस्तस्माद्भिषग्दोषबलं बुद्ध्वाचरेत् क्रियाम् ॥

अर्थ—रक्तपित्तोतर वातरक्त में उष्ण उपचार करने से दाह, क्लेद और अवदरण होता है इस से इस में दोष का बल देख कर चिकित्सा करनी चाहिये ।

वातरक्त में वर्जितकर्म ।

दिवास्वप्नं ससन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा । कटूष्णं गुर्वभिष्यन्दि लवणाम्लं च वर्जयेत्॥

अर्थ—दिवानिद्रा, संताप, व्यायाम, मै-

थुन तथा कटु, उष्ण, भारी, अभिष्यन्दी, नमकीन और खट्टे पदार्थोंका सेवन उचित नहीं है ॥

वातरक्त में सेवनीयद्रव्य ।

पुराणयवगोधूमनीवाराःशालिषष्टिकाः। भोजनार्थेरसार्थेवाविष्किरप्रतुदाहिताः। आढक्याश्चणकामुद्रामसूराःसमकुष्टकाः। यूषार्थेवहुसर्पिष्काःप्रशस्तावातशोणिते॥

अर्थ—पुराने जौ, गेहूं, नीवार, शालीचांवल, साठीचांवल भोजन में हित हैं । विष्किर और प्रतुद पक्षियों का मांसरस हित है । अड़हर, चना, मूंग, मसूर, मोंठ इनका बहुत घी डालाहुआ यूष वातरक्त में हित है ।

सुनिषण्णकवेत्राग्रकाकमाचीशतावरीः । वास्तुकोपोदकाशाकंशाकंसौवर्चलंतथा। घृतमांसरसैर्भृष्टंशाकसात्म्यायदापयेत् ॥ व्यञ्जनार्थंतथागव्यंमाहिषाजंपयोहितम्।

अर्थ—जो वातरक्तवाला शाकको अधिक चाहता हो और वह उसके अनुकूल भी हो तौ चौपातिया, वेंतकी कोंपल, मकोय सितावर, बथुआ, पोई, हुलहुल इनके साग को घी में भूनकर मांसरस के साथ सेवन करै तथा इस रोगमें गौ, भैंस और बकरी का दूध हित है ।

इतिसंक्षेपतःप्रोक्तंवातरक्तचिकित्सितम्॥ एतदेवपुनःसर्वंव्यासतःसंप्रवक्ष्यये। श्रा

अर्थ—यह वातरक्त की संक्षेपसे चिकित्सा कहीगई है, अब फिर इस सबको विस्तारपूर्वक कहते हैं ।

श्रावण्यादिघृत ।

वणीक्षीरकाकोलीक्षीरिकाजीवकैःसमैः॥ सिद्धंसर्षभकैःसर्पिःसक्षीरंवातरक्तनुत् ।

अर्थ—श्रावणी, क्षीरकाकोली, क्षीरिका, जीवक और ऋषभक इन सब को समान भाग लेकर कल्क बनावै, इस से चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध डालकर पाक करै यह घृत वातरक्त नाशक है ।

वलादि घृत ।

बलामतिबलांमेदांआत्मगुप्तांशतावरीम्॥ काकोलींक्षीरकाकोलींरास्नामृद्धिञ्च पेषयेत् । घृतञ्चतुर्गुणंक्षीरंतैःसिद्धंवात रक्तनुत् ॥ हृत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलादा हनाशनम् ।

अर्थ—वला, अतिवला, मेदा, कैंच के वीज, सितावर, काकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना और ऋद्धि इनके समान भाग कल्क में पूर्वोक्त क्रम से घी दूध डालकर पकावै। यह घृत वातरक्त, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और दाह इन रोगों को दूर करदेता है ।

तमालक्यादि घृत ।

तामलक्याद्विकाकोल्याःपिप्पलीत्रायमा णयोः ॥ कशेरुकाकषायेणकल्कैरेभिःप चेद्घृतम् ।

अर्थ—भूम्यांवला, काकोली, क्षीरकाकोली, पीपल, त्रायमाण और कसेरू इन सब के कषाय और कल्क में घृत पाक करके सेवन करने से वातरक्त दूर होजाता है ।

पारूषक घृत ।

द्रव्यापरूषकद्राक्षाकाश्मर्येक्षुरसान्समान् ॥ पृथग्विदार्याश्चरसंतथाक्षीरश्चतुर्गुणम् । एतत्प्रायोगिकंसर्पिःपरूषकमितिस्मृतम् ॥ वातरक्तेक्षतेक्षीणेवीसर्पेपैत्तिकेज्वरे ।

अर्थ—फालसा, दाख, खंभारी, और ईख इन चारों का रस समान भाग विदारी का रस इन चारों के समान,इन से चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध इन सब को पकाने से पारूषक नाम घृत बनता है। इसके सेवन करने से वातरक्त, क्षतरोग, क्षीणरोग, विसर्प और पैत्तिक ज्वर दूर होजाते हैं ।

द्विपञ्चमूलादिघृत ।

द्विपञ्चमूलेवर्षाजमैरण्डंसपुनर्नवम् ॥ मुद्गपर्णीमहामेदांमाषपर्णीशतावरीं । शंखपुष्पीमवाक्पुष्पींरास्नामतिबलांबलाम्॥ पृथग्द्विपलिकंकृत्वाजलद्रोणेविपाचयेत् । पादशेषेसमक्षीरंधात्रीचुक्षागलान्रसान्॥ घृताढकेनसंयोज्यशनैर्मृद्वग्निनापचेत् । कल्कानावाप्यमेदेद्वेकाश्मर्यफलमुत्पलम्॥ त्वक्क्षीरींपिप्पलींद्राक्षांपद्मबीजंपुनर्नवाम् । नागरंक्षीरकाकोलींपद्मकंबृहतीद्वयम्॥ वीरांशृङ्गाटकंभव्यमुरुमाणंनिकोचकम् । वदराक्षोटवातामम‌ुञ्जाताभिषुकांस्तथा॥ एतैर्घृताढकेसिद्धेक्षौद्रंशीतेप्रदापयेत् । सम्यक्सिद्धञ्चविज्ञायस्वनुगुप्तंनिधापयेत् रक्षाकर्मकृतश्चाचःसेवेताक्षमतःसदा । पाण्डुरोगंज्वरंहिक्कांस्वरभेदंभगन्दरम् ॥ पार्श्वशूलंक्षयंकासंप्लीहानंवातशोणितम्। क्षतशोषमपस्मारमश्मरींशर्करान्तथा ॥ सर्वाङ्गैकांगरोगांश्चमूत्रसङ्गांश्चनाशयेत् । बलवर्णकरंधन्यंवलीपलितनाशनम् ॥ जीवनीयमिदंसर्पिर्वृष्यंवन्ध्यासुतप्रदम् ।

अर्थ—दशमूल, सफेद सांठ, अरंडकी जड़, लालसांठ, मुद्गपर्णी, महामेदा, माषपर्णी, शतमूली, शंखपुष्पी, सौंफ, रास्ना, अतिवला और बला इन सबको दो दो पल लेकर कूट डालै और एक द्रोण जल में भरकर पकावै, जब जलते २ चौथाई रहजाय तब उतारकर छान लेवै । फिर उस क्वाथ के समानही दूध, आंवले का रस, ईख का रस और बकरे का मांसरस तथा एक आढ़क घृत इन सबको मिलाकरमन्दी मन्दी आग से पकावै । पकते समय इसमें नीचे लिखेहुए द्रव्यों का कल्क डाल देवै, यथा—मेदा, महामेदा, गम्भारीफल, नीलोफर, वंशलोचन, पीपल, दाख, कमलगट्टा की मिंगी, सांठ, सोंठ, क्षीरकाकोली, पद्माख, दोनों कटेरी, काकोली, सिंघाड़ा, भव्य, उरुमाण, निकोचक, वेर, अखरोट, बादाम, मुंजात और पिस्ता, इन, सबका कल्क डाल देवै, जब पकजाय तब घृत के ठंडा होने पर उस में शहत डालकर किसी घड़े में भरकर छिपाकर रखदेवै । रक्षाकर्म करने के पश्चात् इस घृत में से प्रतिदिन दोतोले सेवन करै तौ पांडुरोग, ज्वर, हिचकी, स्वरभंग, भगन्दर, पार्श्वशूल, क्षयी, खांसी, प्लीहा, वातरक्त, क्षतशोष,अपस्मार,अश्मरी,

शर्करा, सर्वांगरोग, एकांगरोग और मूत्र-संग दूर होजाते हैं। इस के सेवन से वल और वर्ण बढ़ता है। वली और पलित दूर होजाते हैं। यह जीवनीय, वृष्य और धन्य है, इसके सेवन करने से वंध्या स्त्री के-भी पुत्रोत्पत्ति होजाती है॥

द्राक्षादिघृत।

द्राक्षामधूकतोयाभ्यांसिद्धंवासासितोप लम्॥

अर्थ—दाख और मुलहटी के क्काथ में सिद्ध किया हुआ घृत मिश्री मिलाकर सेवन करने से वातरक्त को दूर करता है॥

गुडूच्यादिघृत।

पिबेद्घृतंतथाक्षीरंगुडूचीस्वरसेशृतम्।

अर्थ—गिलोयके रसमेंदूध और घीपककर के सेवन करने से वातरक्त दूर होजाताहै॥

जीवकादिघृत।

जीवकर्षभकौमेदामृष्यप्रोक्तांशतावरीम्॥ मधुकंमधुपर्णींचकाकोलीद्वयमेवच। मुद्ग माषाख्यपर्णिन्यौदशमूलंपुनर्नवे॥ वला मृताविदार्यौश्च साश्वगन्धाश्मभेदकाः। एषांकषायकल्काभ्यांसर्पिस्तैलञ्चसाध येत्॥

अर्थ—जीवक, ऋषभक, मेदा, केंच के बीज, सितावर, मुलहटी, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, दसमूल, सफेदसांठ, लालसांठ, वला, गिलोय विदारीकन्द, असगंध और पाखानभेद इन सब के कषाय और कल्क में तेल और घृत पाक करना चाहियें॥

लाभतश्चवसामज्जाधान्वप्रातुदवैष्किरान्। चतुर्गुणेनपयसातत्सिद्धंवातशोणितम्॥ सर्वदेहाश्रयंहन्तिव्याधीन्घोरांश्चवात जान्।

अर्थ—धन्वज, प्रतुद और विष्किर जन्तुओं की चर्बी और मज्जा जितनी मिल सके उन को चौगुने दूध में सिद्ध करके पान करे। इससे वातरक्त और सर्वदेहाश्रित वातजघोर व्याधियां दूर होजाती हैं।

स्थिराश्वदंष्ट्राबृहतीशारिवाशतावरी॥ काश्मर्याण्यात्मगुप्ताचवृश्चीरंदेवलेतथा। एषांक्काथेचतुःक्षीरेपृथक्तैलंपृथग्घृतम्॥ मेदाशतावरीयष्टीजीवन्तीजीवकर्षभैः। पक्त्वामात्राततःक्षीरंत्रिगुणाद्धंशर्करा॥ खजेनमथितापेयावातरक्तेत्रिदोषजे।

अर्थ—शालिपर्णी, गोखरू, वडी कटेरी, सारिवा, सितावर, खंभारी, आत्मगुप्ता (केंच के वीज), सांठ, वला, अतिवला, इन के क्काथ में मेदा, सितावर, मुलहटी, जीवन्ती, जीवक और ऋषभक इनका कल्क डालकर घृत और तेल को अलग पकावै। फिर उन दोनों को तीन भाग दूध और अर्द्ध भाग चीनी के साथ मिलाकर रई से मथकर सेवन करै तो त्रिदोषज वातरक्त दूर होजाता है।

अन्यप्रयोग।

तैलंपयःशर्कराञ्चपाययेद्वासुमूर्च्छितम्॥ सर्पिस्तैलसिताक्षौद्रैर्मिश्रंवापिपिवेत्पयः। श्रतोंऽशुमत्यापयसःप्रस्थोवासासितोपलः॥ पानेप्रशस्यते तद्वत्पिप्पलीनागरैःश्रृतम्।

बलाशतावरीरास्नादशमूलैःसपीलुभिः॥
श्यामैरण्डस्थिराभिश्चवातार्तिघ्नंश्रृतंपयः।
धारोष्णंमूत्रयुक्तंवाक्षीरंदोषानुलोमनम् ॥
पिवेद्वासत्रिवृच्चूर्णंपित्तरक्तावृतानिलः ।
क्षीरेणैरण्डतैलंवाप्रयोगेणपिवेन्नरः ॥
बहुदोषोविरेकार्थंजीर्णेक्षीरोदनाशनः ।

अर्थ—त्रिदोषज वातरक्त में तेल, दूध और चीनी मिलाकर पान करै अथवा घी, तेल, चीनी और शहत इनको दूध में मिलाकर पीवै । शालिपर्णी के साथ एक प्रस्थ दूध को चतुर्गुण जल के साथ औटाकर दूध शेष रहने पर छानकर मिश्री मिलाकर पीवै, इसीतरह पीपल और सोंठ डालकर औटायाहुआ दूध भी हितकारी है । अथवा बला, सितावर, रास्ना, दशमूल, पीलू, श्यामलताकी जड़, अरंडकी जड़ और शालिपर्णी इन के साथ पूर्वोक्त नियम से दूध को औटाकर पीवै । धारोष्ण दूध में गोमूत्र मिलाकर पीने से दोषों का अनुलोमन होता है पित्तरक्त से आवृत वात में भी धारोष्ण दूध में निसोथ का चूर्ण मिलाकर पिया जाता है । जो वातरक्त में वहुत से दोष हों तो विरेचन के लिये दूध में अंडी का तेल मिलाकर देवै, पचने पर दूध भात खाने को देवै ।

कषायमभयानांवाघृतभृष्टंपिवेन्नरः ॥
क्षीरानुपानंत्रिवृताचूर्णंद्राक्षारसेनवा ।
काश्मर्यंत्रिवृतांद्राक्षांचूर्णंद्राक्षारसेनवा ।
काश्मर्यंत्रिवृतांद्राक्षांत्रिफलांसपरूषकाम्
श्रृतांपिवेद्विरेकायलवणक्षौद्रसंयुताम् ।
त्रिफलायाःकषायंवापिवेत्क्षौद्रेणसंयुतम्
धात्रीहरिद्रामुस्तानांकषायंवाकफाधिके ॥

अर्थ—हरड़ के क्काथ को घी में छोंककर विरेचन के लिये पीवै, ऊपर से दुग्धपान करै अथवा दाख के रस के साथ निसोथ का चूर्ण पान करै । अथवा खंभारी, निसोथ और दाख के चूर्ण को दाख के रसके साथ पीवै अथवा खंभारी, निसोथ, दाख, त्रिफला और फालसा इन के क्काथ में सेंधानमक और शहत मिलाकर विरेचन के लिये पीवै। अथवा त्रिफला के क्काथ में शहत मिलाकर पीवै । तथा कफाधिक वातरक्त में आंवला, हलदी और मोथा इनका क्काथ पीवै ।

योगैश्चकल्पविहितैरसकृत्तंविशोधयेत् ।
मृदुभिःस्नेहसंयुक्तैर्ज्ञात्वावातंमलावृतम् ॥
निर्हरेद्वामलंतस्यसघृतैःक्षीरवस्तिभिः ।
नहिवस्तिसमंकिञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम्

अर्थ—जो वात मल से आवृत हो तौ कल्पस्थानोक्त मृदु योगों में स्नेह मिलाकर देवै अथवा घृत मिलाकर क्षीर वस्ति द्वारा मल को निकालै । वातरक्त में वस्ति के समान और कोई चिकित्सा नहीं है ।

वस्तिवंक्षणपार्श्वोरुपर्वास्थिजठरादिषु ।
उदावर्तेचशस्यन्तेनिरूहाःसानुवासनाः ॥
दद्यात्तैलानिचेमानिवस्तिकर्म्मणिवुद्धिमान् । नस्याभ्यञ्जनसेकेषुदाहशूलोपशान्तये ॥

अर्थ—यदि वातरक्त में रोगी की वस्ति, वंक्षण, पसली, ऊरू, पर्व, अस्थि और जठर

के शूलो में वा उदावर्त्त में निरूहण वस्ति देकर अनुवासन वस्ति देवै ।

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि वातरक्त के दाह और शूल की शान्ति के निमित्त वस्तिकर्म, नस्य, अभ्यंजन और परिषेक में नीचेलिखेहुए तेल देवै ॥

यष्ट्यादि तैल।

मधुयष्ठ्यास्तुलायास्तुकषायेपादशेषिते । तैलाढकंसमक्षीरंपचेत्कल्कैःपलोन्मितैः ॥ शतपुष्पावरीमूर्वापयस्यागुरुचन्दनैः ॥ स्थिराहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः ॥ काकोलीक्षीरकाकोलीतामलक्यृद्धिपद्म कैः । जीवन्तीजीवकर्षभत्वक्पत्रनखवा लकैः ॥ प्रपुण्डरीकमञ्जिष्ठाशारिबैन्द्रीवि तुन्नकैः । चतुःप्रयोगाद्धन्तितैलंमारुत शोणितम् । सोपद्रवंसाङ्गशूलंसर्वगात्रा नुगंतथा ॥ वातासृक्पित्तदाहार्त्तिज्वर घ्नंबलवर्द्धनम् ॥

अर्थ—एक तुला मुलहटी को अठगुने जल में चढ़ाकर क्काथ करै, जब चौथाई शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवै, फिर उस में एक आढक तेल और उतना दूध मिलावै और एक एक पल नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क मिलाकर पाककरै । द्रव्य, यथा—सौंफ, सितावर, मरोड़फली, विदारी-कन्द, अगर, चन्दन, शालिपर्णी, हंसपदी, जटामांसी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकोली, क्षीरकाकोली, भूआंवला, ऋद्धि, पद्माख, जीवन्ती, जीवक, ऋषभक, दालचीनी, तेज-पात, नखी, नेत्रवाला, पुंडरिया, मजीठ, सा-रिवा, इन्द्रायण की जड़ और घनियां । ये द्रव्य डाले । इस तेल का नस्य, अभ्यंग, वस्ति और पान इन चार रीति से प्रयोग करने पर सर्व देहानुगामी सोपद्रव वातरक्त, अंगशूल, पित्त, दाह, और यातना दूर हो-जाती हैं, ज्वर भी जाता रहता है । यह बल का बढ़ानेवाला है ।

सुकुमारकतैल ॥

मधुकस्यशतंद्राक्षाखर्जूराणिपरूषकम् । मधुकौदनपाक्यौचप्रस्थंमुञ्जातकस्यच ॥ काश्मर्य्याढकमित्येतच्चतुर्द्रोणैःपचेदयम् शेषेऽष्टभागेपूतेचतस्मिन्तैलाढकंपचेत् ॥ तथामलककाश्मर्य्यबिदारीक्षुरसैःसमैः । चतुर्द्रोणेनपयसाकल्कंदत्वापलोन्मितम् ॥ कदम्बामलकाकोटापद्मबीजकशेरुकम् । शृङ्गाटकंशृङ्गवेरंलवणंपिप्पलींसिताम् ॥ जीवनीयैश्चसंसिद्धंक्षौद्रप्रस्थेनसंसृजेत् । नस्याभ्यञ्जनपानेषुवस्तौचापिनियोजयेत् वातव्याधिषुसर्वेषुमन्यास्तम्भेहनुग्रहे । सर्वाङ्गैकांगवातेचक्षतक्षीणेक्षतज्वरे ॥ सुकुमारकमित्येतत्वातास्रामयनाशनम् । स्थिरवर्णकरंतैलमारोग्यबलपुष्टिदम् ॥

अर्थ—मुहलटी सौ पल, दाख एक प्रस्थ, खजूर एक प्रस्थ, फालसे एक प्रस्थ, महुआ एक प्रस्थ, खरैटी एक प्रस्थ, मूज एक प्रस्थ और खंभारी एक आढक इन सब को चार द्रोण जल में पकावै, जब जलते जलते आठवां भाग रह जाय तब उतार कर छान ले फिर उस क्काथ में आंवले का रस, खंभारी का रस, विदारीकन्द का रस, ईख का रस

समान भाग मिलावै और चार द्रोण दूध मिलाकर एक आढक तेल को इन सब के साथ पकावै और नीचे लिखे हुए द्रव्यों का एक एक पल कल्क भी इस में डाल देवै, यथा-कदमकी छाल, आंवला, अखरोट, कमलगट्टा के बीज, कसेरू, सिंघाडा, अदरख, नमक, पीपल और चीनी तथा जीवनीय गणकी औषध इन सबका कल्क उस में डाल देवै और पकने पर उतारकर रखलेवै जब ठंडा होजाय तब उस में एक प्रस्थ शहत मिलावै। इसका नस्य अभ्यंजन पान और वस्ति चार प्रकार से प्रयोग करै। इसके सेवन से सब प्रकारकी बातव्याधि मन्यास्तम्भ, हनुग्रह, सर्वांगवात, एकांगवात, क्षतक्षीण, क्षतज्वर, तथा वातरक्तसंबंधी अन्य उपद्रव दूर होजाते हैं। इसका नाम सुकुमारक तैल है। यह तैल स्थिरकर्त्ता, वर्णोत्तेजक, आरोग्यदायक, बलवर्द्धक और पुष्टिकारक होता है।

अमृताख्य तैल।

गुडूचींमधुकंह्रस्वंपञ्चमूलंपुनर्नवाम्। रास्नामैरण्डमूलञ्चजीवनीयानिलाभतः॥ पलानांशतिकैर्भागैर्बलापञ्चशतंतथा। कोलंविल्वंयवान्माषान्कुलुत्थांश्चाढकोन्मितान्॥ काश्मर्याणांसुशुष्काणांद्रोणंद्रोणशतेऽम्भसः। साधयेज्जर्जरंधौतं चतुर्द्रोणञ्चशेषयेत्॥ तैलद्रोणंपचेत्तेनद्त्वापञ्चगुणंपयः। पिष्ट्वात्रिपलिकैश्चैवंचन्दनोशीरकेसरम्॥ पत्रैलागुरुकुष्ठानितगरंमधुयष्टिकाम्। मञ्जिष्ठाष्टपलञ्चैवतत्सिद्धंसार्वयौगिकम्॥ वातरक्तेक्षतेक्षीणेभाराक्रान्तेक्षीणरेतसि। वेदनाक्षिप्तभग्नानांसर्वाङ्गैकांगरोगिणाम्॥ योनिदोषमपस्मारमुन्मादंखञ्जपंगुताम्। हन्यात्पुंसवनंचैतत्तैलाग्र्यममृताह्वयम्॥

अर्थ—गिलोय, मुलहटी, लघुपंचमूल, सांठ, रास्ना, एरंडकी जड और जीवनीय गणकी जो जो औषध मिलसकें उन सब को पृथक् पृथक् सौ पल लेवै- खरैटी पांच सौ पल, सूखा बेर, कच्चा बिल्व, जौ, उरद और कुलथी प्रत्येक एक एक आढक, खंभारी के फल सूखे हुए एक द्रोण, इन सब को अच्छी तरह से कूटकर धोकर सौ द्रोण जल में पकावै जब चार द्रोण शेष रहजाय तब उतारकर छान ले। इस क्वाथ में एक द्रोण तेल और पचगुना दूध डालकर पकावै और नीचे लिखेहुएद्रव्यों का कल्क तीन तीन पल उस में डाल देवै, द्रव्य, यथा चन्दन, खस, केसर, तेजपात, इलायची, अगर, कूठ, तगर, मुलहटी ये सब तीन तीन पल, मजीठ आठ पल। इस तरह इस तेल को सिद्ध करके सेवन करने से वातरक्त क्षत, क्षीण, अत्यन्त बोझ ढोने से उत्पन्न हुए रोग, क्षीणवीर्यता, वेदना, आक्षेपक, भग्नता, सर्वांग रोग, एकांगरोग, योनिदोष, अपस्मार, उन्माद, खंजता और पंगुता दूर होजाते हैं। यह अमृताख्य तैल, पुंसवन उत्कृष्ट और अमृतके समान गुणकर्त्ता है।

महापद्म तैल।

पद्मवेतसयष्ट्याह्वफेनिलापद्मकोत्पलैः।

पृथक्पञ्चपलैर्दर्भबलाचन्दनकिंशुकैः ॥
जलेशृतैःपचेत्तैलप्रस्थंसौवीरसम्मितम्।
लोध्रपद्मोत्तरोशीरजीवकर्षभकेसरैः ॥
मदयन्तीलतापत्रपद्मकेसरपत्रकैः। प्रपु
ण्डरीककालीयमांसीमेदाप्रियंगुभिः ।
कुंकुमद्विगुणैःकर्षैर्मञ्जिष्ठायाःपलेनच ॥
महापद्ममिदंतैलंवातासृग्ज्वरनाशनम्।

अर्थ—पद्म के फूल, वेत, मुलहठी फेनिला (वेर) पद्माख, नीलोफर, दाभ, खरैटी, चन्दन और ढाकके फूल प्रत्येक पांचपल लेकर अठगुने जल में चढादे, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले फिर इस क्काथ में एक प्रस्थ तैल, एक प्रस्थ सौ वीर तथा नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क डालकर पाक करले। द्रव्य, यथा-लोध, पद्माख, उसीर, जीवक, ऋषभक, केसर, मल्लिका की छाल और पत्ते, कमल केसर, तेजपात, पुंडरिया काठ, कालीयक, जटामांसी, मेदा और प्रियंगु ये सब एक एक कर्ष, कुंकुम दो कर्ष और मजीठ एक पल डालकर तेल पकावै। इस तेल का नाम महापद्म तैल है इसके सेवन से वातरक्त और ज्वर दूर होजाता है।

खुड्डाकपद्मतैल।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीकाथसाधित
म् ॥ स्यात्पिष्टैःसर्जमञ्जिष्ठावीराकाको
लिचन्दनैः। खुड्डाकपद्मकमिदंतैलंरु
ग्दाहनाशनम् ॥

अर्थ—पद्माख, उसीर, मुलहटी और हलदी के क्काथ में राल, मजीठ, काकोली, क्षीर काकोली और चन्दन का कल्क डाल कर तेल को पकावै यह तैल खुड्डाकपद्म कहाता है। इसका प्रयोग करने से वातरक्त में वेदना और दाह शान्त होजाती हैं।

बलादि तैल।

बलाकषायकल्काभ्यांतैलंक्षीरसमन्तथा।

अर्थ—खरैटी के क्काथ में उसीका कल्क और समान भाग तेल और दूध चढाकर पाक करै यह पूर्ववत् गुणकर्त्ता है।

सहस्रपाक तैल।

सहस्रशतपाकंवावातासृग्वातरोगनुत् ॥
रसायनंश्रेष्ठतममिन्द्रियाणांप्रसादनम्।
जीवनंबृंहणंस्वर्य्यंशुक्रासृग्दोषनाशनम्॥

अर्थ—इस ऊपर कहे हुए तेल को सहस्र वार वा सौ वार पाक करै यह वात रक्त और वातरोगों को दूर करने वाला है। यह उत्तम रसायन और इन्द्रियों को प्रफुलित करने वाला है। यह जीवन, बृंहण, स्वर वर्द्धक, वीर्यदोष नाशक और रक्तदोष नाशक है।

आरनालादि तैल।

आरनालाढकेतैलंपादसर्जरसाशृतम्।
प्रभूतेमथितंतोयेज्वरदाहार्तिनुत्परम् ॥

अर्थ—एक आढक कांजी, कांजी से चौथाई तेल, तेल से चौथाई राल इन में वहुत सा पानी डालकर पकावै फिर रई से मथकर शरीर पर लगावै तो ज्वर, यातना और दाह दूर होजाता है।

पिंड तैल।

समधूच्छिष्टमाञ्जिष्ठंससर्जरसशारिवम्।

पिण्डतैलंतदभ्यंगाद्वातरक्तरुजापहम् ॥

अर्थ—मोम, मजीठ, राल और शारिवा इनसे चौगुना तेल और सोलह गुना जल मिला कर पाक करै । इस पिंड तैल के लगाने से वातरक्त की बेदना दूर होजाती है ।

शतपाकमधुपर्णी तैल ॥

शतेनयष्टिमधुकांसाध्यंदशगुणंपयः । तैलेचतुर्द्रोणेतस्मिन्मधुकस्यपलेनतु ॥ सिद्धंमधुरकाश्मर्य्यरसैर्वावातरक्तनुत् । मधुपर्ण्याःपलंपिष्ट्वातैलप्रस्थंचतुर्गुणे ॥ क्षीरेसाध्यंशतकृत्वस्तदेवमधुकाच्छृतैः । सिद्धंदेयंत्रिदोषेस्यात्वातास्रश्वासकासनुत् । हृत्पाण्डुरोगबीसर्पकामलादाहनाशनम् ॥

अर्थ—सौ पल मुलहटी को अठगुने जल में क्वाथ कर के चौथाई शेष रहनेपर छान ले फिर इस में दसगुना दूध डालकर एक प्रस्थ तेल के साथ पकावै अथवा मुलहटी और खंभारी के रस के साथ पकावै यह वातरक्त नाशक है ।

एकपल गिलोयको एक प्रस्थ तेल और चौगुने दूध के साथ सिद्ध करै फिर उस तेल को सौवार मुलहटी के क्वाथमें सिद्ध करै । यह तेल त्रिदोष, वातरक्त, श्वास, खांसी, हृद्रोग, पांडुरोग, विसर्प, कामला, और दाह को दूर करता है ।

गुडूच्यादि तैल ॥

गुडूचीरसदुग्धाभ्यांतैलंद्राक्षारसेनवा । सिद्धंमधुककाश्मर्य्यरसैर्वावातरक्तनुत् ॥

अर्थ—गिलोय के क्वाथ और दूध के साथ, अथवा दाख के रस के साथ अथवा मुलहटी और खंभारी के रस के साथ सिद्ध किया हुआ तेल वातरक्त को दूरकरता है।

दशमूलशृतंक्षीरंसद्यःशूलनिवारणम् । परिषेकोऽनिलप्रायेतद्वत्कोष्णेनसर्पिषा॥ स्नेहैर्मधुरसिद्धैर्वाचतुर्भिःपरिषेचयेत् । स्तम्भाक्षेपकशूलार्तंकोष्णैर्दाहेतुशीतलैः॥ तद्वद्गव्याविकच्छागैःक्षीरैस्तैलविमिश्रितैः । निष्क्वाथैर्जीवनीयानांपञ्चमूलस्यवाभिषक् ॥ द्राक्षेक्षुरसमद्यानिदधिमस्त्वम्लकाञ्चिकम् । सेकार्थेतण्डुलक्षौद्रशर्कराम्बुचशस्यते ॥

अर्थ—दशमूलके साथ औटायाहुआ दूध तत्काल शूल नाश करनेवाला है,इसी तरह सुहातेहुए गरम घृतसे वाताधिक वातरक्त में परिषेक हित है । मधुर द्रव्योंके साथ सिद्ध कियेहुए ईषदुष्ण घृत, तैल, वसा और मज्जा इन चार प्रकार के स्नेहों से परिषेक करने पर स्तम्भ, आक्षेपक, और शूलार्त्तता दूर होजाती है और दाह हो तो शीतल परिषेक हित है । इसी तरह से गौ भेड़ और बकरी के दूध के साथ सिद्ध कियाहुआ तेल अथवा जीवनीय औषधियों के क्वाथ के साथ अथवा पंचमूल के क्वाथ के साथ औटायाहुआ तेल हित है । वातरक्त में परिषेक के लिये दाख का रस, ईख का रस, मद्य, दहीका तोड़, कांजी, तंडुलजल शहतका जल और खांडका जल हित है ॥

कुमुदोत्पलपद्माद्यैर्मणिहारैःसचन्दनैः ।

शीततोयानुगैर्दाहेप्रोक्षणंस्पर्शनंहितम् ॥ चन्द्रपादाम्बुसंसिक्तैःक्षौमपद्मदलच्छदे । शयनेपुलिनस्पर्शेशीतमारुतयोजिते ॥ चन्दनार्द्रकरार्द्राग्यप्रियानार्यःप्रियंवदाः। स्पर्शात्शीतसुखस्पर्शाघ्नन्तिदाहंरुजंक्लमम् ॥

अर्थ—दाहकी शान्तिके लिये कमोदनी, नीलकमल, पद्म से आदि लेकर अन्यकमल, मणियों के हार, चन्दन इनको शीतल जल में भिगोकर दाहवाले के छींटे मारता रहै वा इनका उसे स्पर्श करावै ।

चन्द्रमाकी किरण और शीतल जल से संसिक्त, रेशमीवस्त्र और कमलपत्र से आच्छादित पुलिनों के बीच में ठंडी ठंडी हवा चली आती हो, शय्यातलपर चंदन से भीगीहुई देहवाली प्रियभाषिणी स्त्रियों के शीतल सुखदायक स्पर्श से वातरक्त की दाह वेदना और क्लान्ति दूर होजातेहैं ।

सरागसरुजेदाहेरक्तंमुक्त्वाप्रलेपयेत् । मधूकाश्वत्थसंमांसावीरोदुम्बरशाद्वलैः॥ जलजैर्यवचूर्णैर्वासुयष्ट्याह्वपयोघृतैः । सर्पिषाजीवनीयैर्वापिष्टैर्लेपोऽतिदाहनुत्॥ तिलाःपियालंमधुकंबिसंमूलंचवेतसाम्। सघृतःपयसापिष्टप्रदेहोदाहरागनुत् ॥ प्रपुण्डरीकमञ्जिष्ठादार्वीमधुकचन्दनैः । सितोत्पलैरकासक्तुमसूरोशीरपद्मकैः ॥ लेपोंगदाहवीसर्परागशोफनिवर्हणः । पित्तरक्तोत्तरेत्वेतेलेपावातोत्तरेशृणु ॥

अर्थ—वातरक्त में जो ललाई,दाह और वेदना हो तो रक्त निकाल कर मुलहटी, पीपल की छाल, जटामांसी, क्षीरकाकोली गूलरकी छाल और हरी दूब का लेप करै अथवा कमल और जौका चूर्ण अथवा मुलहटी, दूध और घी का लेपकरना चाहिये। अथवा जीवनीय गणकी औषधियों को घीके साथ पीसकर लेप करने से भी दाह दूर होजाता है । तिल, पियाल, मुलहटी, कमलनाल और वेतकी जड़ इनको दूध और घी के साथ पीसकर लेप करै तौ दाह और ललाई दूर होजाती है । पुण्डरिया काठ, मजीठ, दारुहलदी, मुलहटी और चन्दन तथा चीनी, नीलकमल, सरकंडे की जड़, सक्तू, मसूर उशीर, और पद्माख इनका लेप करने से दाह, विसर्प, ललाई और शोफ दूरहोजातेहैं।

अब उन लेपोंका वर्णन कियाजाता है जो वातप्रधान पित्तरक्त में हित हैं ।

वातघ्नैःसाधितःस्निग्धःकृसरोमुद्गपायसः तिलसर्षपपिष्टाश्चाप्युपनाहारुजापहाः॥ औदकप्रसहानूपवेषवाराःसुसंस्कृताः । जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताःस्युरुपनाहनैः ॥ स्तम्भतोदरुगायासशोथाङ्गग्रहनाशनाः। जीवनीयौषधैःसिद्धवाःसपयस्कावसापिया ॥ घृतंसहचरान्मूलंजीवन्तीछागलंपयः । लेपाःपिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाःपयसिनिर्वृताः ॥ क्षीरपिष्टमुमालेपमेरण्डस्यफलानिवा । कुर्यात्शूलनिवृत्त्यर्थंशताह्वामनिलेऽधिके ॥

अर्थ—वातनाशक औषधियों के साथ सिद्ध कियाहुआ कृसरा, मूंग, पायस अथवा तिल और सरसों के पिष्टक का उपनाह

वेदना को दूर करता है। अथवा, जलज, प्रसह और आनूप इन के मांस का वेशवार अच्छीतरह मसाले डालकर तयार किया हुआ तथा जीवनीय गणोक्त औषध और स्नेह से संस्कार कियाहुआ उपनाह स्तम्भ, तोद, वेदना, यातना, शोथ और अंगग्रह को दूरकरता है अथवा जीवनीय औषधों के साथ सिद्ध कीहुई दूध और चर्वी भी हित है। घृत, सहचरी की जड़, जीवन्ती और बकरी का दूध इनका लेपभी हितकारी है। इसीतरह घी में भुनेहुए तिलों को दूध के साथ पीसकर लेप करनेपर दाह शान्त होता है। इसीतरह वाताधिक वातरक्त में शूलकी शान्ति के लिये दूध में पिसीहुई अलसी, दूध में पिसेहुए अंडी के बीज अथवा दूध में पिसीहुई सौंफका लेप हितकर है।

समूलाग्रच्छदैरेरण्डक्काथेद्विमास्थिकंपृथक्। घृततैलंवसामज्जासानूपंमृगपक्षिणाम् ॥ कल्कार्थेजीवनीयानिगव्यंक्षीरमथाजकम् हरिद्रोत्पलकुष्ठैलाशताह्वावरुणच्छदान् बिल्वमात्राःपृथक्पुष्पंकाकुम्भंचापिसा धयेत्। मधूच्छिष्टपलान्यष्टौदद्यात्सिद्धे ऽवतारिते ॥ शूलेनैषोऽर्दिताङ्गानांलेपः सन्धिगतेऽनिले। वातरक्तेस्रुतेभग्नेखञ्जे कुब्जेचशस्यते ॥

अर्थ—अरंड की जड, डाली और पत्तों का क्वाथ दो प्रस्थ, घृत, तेल, और आनूप पशुपक्षियों की वसा और मज्जा, गौ और बकरी का दूध तथा, कल्क के लिये जीवनीयगणकी औषध और हलदी, नीलोफर कूठ, इलायची, सौंफ, बरनाके पत्ते, और अर्जुनके फूल, पृथक् पृथक् एक एक पल डालकर पकावै, जब पकजाय तब उतार कर उसमें आठ पल मोम डाल देवै। यह शूलार्दित अंग, संधिगत वायु, स्रावयुक्त वातरक्त, भग्न, खंज और कुब्जरोग में हित होताहै।

कफप्रधान वातरक्त में चिकित्सा।

शोफगौरवकण्ड्वाद्यैर्युक्तेत्वस्मिन्कफो त्तरे। मूत्रक्षारसुरापक्वघृतमभ्यञ्जनेहितम् पद्मकंत्वक्समधुकंशारिवाचेतितैर्घृतम्। सिद्धंसमधुशुक्तंस्यात्सेकाभ्यङ्गःकफोत्तरे क्षीरस्तैलङ्गवांमूत्रंजलश्चकटुकैःशृतम्। परिषेकाःप्रशस्यन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥

अर्थ— कफाधिक वातरक्त में जिसमें सूजन, भारापन और खुजली आदि उपद्रव भी हों उसमें गोमूत्र, क्षार और सुराके साथ सिद्ध कियेहुए घृतका परिषेक और अभ्यंग हितहै। इसरोगमें पद्माख, दालचीनी, मुलहटी, और शारिवा तथा मधुशुक्त केसाथ सिद्ध किया हुआ घृत परिषेक और अभ्यंगमें हितहै। दूध, तेल, गोमूत्र, और त्रिकुटा इन से औटायाहुआ जल कफप्रधान वातरक्त में परिषेक के लिये हित है।

लेपःसर्षपनिम्बार्कहिंस्राक्षीरतिलैर्हितः। श्रेष्ठःसिद्धःकपित्थत्वग्घृतक्षीरैःसशक्तु भिः ॥ द्वेहरिद्रेवचागारधूमकुष्ठशताह्वि काः। प्रलेपःशूलनुद्वातरक्तेवातकफोत्तरे तगरंत्वक्शताह्वैलाकुष्ठंमुस्तंहरेणुकाः।

दारुव्याघ्रनखश्चाम्लपिष्टंवातकफार्तिनुत् ॥ मधुशिग्रोर्हितंतद्वद्बीजंधान्याम्लसंयुतम् मुहूर्तंलिप्तमम्लैश्चासिञ्चेद्वातकफोत्तरम् ॥ त्रिफलाव्योषपत्रैलास्त्वक्क्षीरंचित्रकं वचाम् । विडङ्गंपिप्पलीमूलंलोमशंवृषक त्वचम् ॥ ऋद्धिंतामलकींञ्चव्यंसमभा गानिपेषयेत् । कल्कंलिप्तमयस्पात्रेमध्या न्हेभक्षयेत्ततः ॥

अर्थ—सफेद सरसों, नीमकी छाल, आक, हींस, दूध और तिल इनका लेप हित है, अथवा कैथ, दालचीनी और जौ का सत्तू इन के साथ में घी और दूध मिलाकर लेप करै । अथवा दोनों हल्दी, वच, धूमसा, कूठ और सौंफ इन का लेप भी वातकफोत्तर वातरक्त में शूल को दूर करता है । अथवा तगर, दालचीनी, सौंफ, इलायची, कूठ, मोथा, हरेणु, देवदारु और व्याघ्रनख इन को कांजी में पीसकर लेप करने से वात कफकी अधिकता वाले वातरक्त का शूल दूर होता है । अथवा लाल सहजने के बीजों को धान्याम्ल के साथ पीसकर दो घड़ी तक लेप लगा रहने देवै पीछे कांजी से धो डालै । अथवा त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात, इलायची, वंशलोचन, चीता, वच, वायविडंग, पीपलामूल, जटामांसी, अडूसे की छाल, ऋद्धि, भूयआंवला, और चव्य इन को समान भाग लेकर पीस डालै फिर इस कल्क का एक लोहे के पात्रपर लेपकर देवै और दुपहर के समय इसको खा लेवै ।

वातरक्त में पथ्य विधि ।

वर्जयेद्दधिशुक्लानिक्षारंवैरोधकानिच । वातास्रेसर्वदोषेऽपिमतंशूलार्दितेपरम् ॥ बुद्ध्वास्थानविशेषांश्चदोषाणाञ्चबलाबलम् ॥ चिकित्सितमिदंकुर्य्यादूहापोह विकल्पवित् ॥

अर्थ—वातरक्त में दही, शुक्त, क्षार और विरोधकर्त्ता द्रव्यों का परित्याग कर देना चाहिये । संपूर्ण दोषों से युक्त वातरक्त और शूल में स्थान और दोषों के बलाबल की अच्छी तरह परीक्षा करके उक्तगणों में प्रयोजन के अनुसार औषधियों को घटा बढाकर चिचित्सा करने में प्रवृत होवै ।

कुपितेमार्गसंरोधान्मेदसोवाकफस्यवा । अतिवृद्ध्याऽनिलेनादौशस्तंस्नेहनबृंहणम् ॥ व्यायामशोधनारिष्टमूत्रपानैर्विशोधितैः । तक्राभयाप्रयोगैश्चक्षपयेत्कफमेदसी ॥ बोधिवृक्षकषायस्तुपिबेत्तंमधुनासह । वातरक्तंजयत्याशुत्रिदोषमपिदारुणम् ॥ पुराणयवगोधूमशीध्वरिष्टासवैस्तथा । शिलाजतुप्रयोगैश्चगुग्गुलोर्माक्षिकस्यच ॥ पश्चाद्वातेक्रियांकुर्याद्याचरक्तप्रसाधनीम् ।

अर्थ—मेद और कफ के मार्ग के रुकजाने से जब वायु अत्यन्त कुपित होकर अत्यन्त बढजाय तब स्नेहन वा बृंहण क्रिया हित होती है । व्यायाम, शोधन, अरिष्ट गोमूत्रपान, विरेचन तथा मठा और हरड के प्रयोगों से कफ और मेदा को दूर करने का उपाय करै । अश्वत्थ की छाल के क्वाथ

में शहत डालकर पीने से त्रिदोषजन्य दारुण वातरक्त भी दूर होजाता है।

पुराने जौ, गेंहू, शीधु, अरिष्ट और आसव का प्रयोग करै अथवा शिलाजीत गूगल वा शहत का प्रयोग करके कफ और मेद को शान्त करै पीछे वातरक्त को दूर करने वाली क्रिया करै।

गम्भीरेरक्तमाक्रान्तंस्याच्चेतद्वातवर्ज्जयेत्॥
रक्तपित्तातिवृद्ध्यातुपाकमाशुनियच्छति।
भिन्नंस्रवतिवारक्तंविदग्धंपूयमेववा॥
तयोःक्रियाविधातव्याव्यधशोधनरोपणौ
कुर्यादुपद्रवाणांचक्रियांस्वात्स्वाच्चिकित्सितात्॥

अर्थ—गंभीर वातरक्त में जो रक्त वायु से आक्रान्त हो तौ उस में चिकित्सा न करै। रक्तपित्त के अधिक बढ जाने से वातरक्त में तत्काल पाक होता है तव उस के भिन्न होने पर विदग्धरक्त और पीव निकलने लगता है। ऐसे समय में पके हुए को वेधन करके भिन्न में शोधन और रोपणकर्त्ता क्रिया करनी चाहिये। और इस में जो कोई उपद्रव खडे हों तौ उनकी चिकित्सा रोग रोग के अनुसार करनी चाहिये।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

हेतुस्थानानिमूलञ्चयस्मात्प्रायश्चसन्धिषु। कुप्यतिप्राक्चयंरूपंद्विविधस्यचलक्षणम्॥ पृथग्भिन्नस्यलिङ्गञ्चदोषाधिक्यमुपद्रवाः। साध्यंयाप्यमसाध्यञ्चक्रियासाध्यस्यचाखिला॥ वातरक्तस्यनिर्दिष्टा समासव्यासतस्तथा। महर्षिणाग्निवेशाय तथैवावस्थिकीक्रिया॥

अर्थ—इस वातरक्त चिकित्सित नामक अध्याय में वातरक्त के हेतु, उत्पत्ति के स्थान, मूल, प्रायः संधियों में उत्पन्न होने का कारण, प्राग्रूप, गंभीर और आभ्यंतर दो प्रकार के भेद, भिन्न वातरक्तके लक्षण दोषों की, अधिकता, उपद्रव, साध्यता, याप्यता और असाध्यता के लक्षण, साध्य वातरक्त की सब तरह की चिकित्सा तथा अवस्थानुसार चिकित्सा आदि सब बातें संक्षेप और विस्तार दोनों प्रकारसे वर्णन की गई हैं। इन सब बातों का उपदेश महर्षि आत्रेयने आग्निवेश को कियाहै।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विराचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेवातरक्तचिकित्सितंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः॥ २९॥

त्रिंशोऽध्यायः।

अथातोयोनिव्यापच्चिकित्सितंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम योनिव्यापच्चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

दिव्यौषधिजलस्वादुधातुचित्रशिलावति।
पुण्येहिमवतःपार्श्वेसुरसिद्धर्षिसेविते॥
विहरन्तंतपोयोगात्तत्त्वज्ञानार्थदर्शिनम्।
कृष्णात्रेयंजितात्मनंअग्निवेशोऽनुपृष्टवान्॥

भगवन् ! रत्यपत्यानांमूलंनायःपरंनृणाम् । तद्विघातोगदैश्चासांक्रियतेयोनिमाश्रितैः ॥ तासांतेषांसमुत्पत्तिमुत्पन्नानांचलक्षणम् । औषधंश्रोतुमिच्छामिप्रजानुग्रहकाम्यया ॥ इतिशिष्येणपृष्टस्तुप्रोवाचर्षिवरोऽत्रिजः ।

अर्थ—पुण्यवान् हिमालयके उच्चशिखर पर जहां अनेक प्रकारकी दिव्य औषधियां उगी हुईथीं, मिष्टजल बह रहाथा, जहां अनेक प्रकारकी धातुमय शिला सुशोभित थीं और जहां अनेक देवता, सिद्ध और ऋषिमुनि निवास करतेथे वहां विचरतेहुए तपोयोग सम्पन्न और तत्वज्ञानार्थदर्शी, जितेंद्रिय कृष्णात्रेयसे अग्नि वेशने प्रश्न किया कि हे भगवन् ! मनुष्यों के लिये स्त्रियां विषयभोग और संतानोत्पात्ति की मूल कारणहैं, परन्तु जब उनकी योनियोंमें रोग होजाता है, तब दोनों बातों का नाश होजाता है अतएव हे प्रभो ! मैं प्रजाकी भलाईके हेतु स्त्रियोंके योनिरोगोंकी उत्पत्तिके कारण, उत्पन्न हुए रोगोंके लक्षण और उनकी औषध श्रवण करनेकी इच्छा करताहूं । शिष्यके इस प्रश्नको सुनकर महर्षि आत्रेय ने व्याख्या करनेका प्रारम्भ किया ।

योनि रोगोंकी संख्या ।

विंशतिर्व्यापदोयोनेर्निर्दिष्टारोगसंग्रहे॥ मिथ्याचारेणताःस्त्रीणांप्रदुष्टेनार्तवेनच । जायन्तेबीजदोषाश्चदैवाच्चशृणुताः पृथक् ॥

अर्थ—रोगसंग्रहाध्यायमें यह बात बर्णन करचुके हैं कि योनिरोग बीसप्रकारके होते हैं । इन सब रोगोंकी उत्पत्ति स्त्रियोंके मिथ्या आहार विहार दुष्ट आर्त्तव, बीज दोष और दैवप्रकोप इन चार कारणों से होतेहैं ।

वातल योनिरोगोंके लक्षण ।

वातलाहारचेष्टायावातलायासमीरणः । विवृद्धोयोनिमाश्रित्ययोनेस्तोदंसवेदनम्॥ स्तम्भंपिपीलकासृप्तिमिबकर्कशतांतथा । करोतिसुप्तिमायामंवातजांश्चापरान्गदान्। सास्यात्सशब्दरुक्फेनंतनुरूक्षार्तवानिलात् ॥

अर्थ—वातल प्रकृति वाली स्त्रीके वातोत्पादक आहार, विहार और चेष्टा करने के कारण वायु अत्यन्त कुपित होकर योनिका आश्रय लेकर योनिमें वेदनायुक्त सुई छेदनेके समान पीड़ा उत्पन्न करतीहै तथा स्तम्भता, चींटी चलने का सा अनुभव, कर्कशता, सुप्ति, आयाम, और अन्य वातजरोग भी उत्पन्न होतेहैं । तथा वातके कारण उस स्त्रीकी योनिमेंसे पतला, रूखा, शब्द करता हुआ झागदार रक्तनिकलताहै

पित्तल योनिरोगोंके लक्षण ।

व्यापत्तथाम्ललवणक्षाराद्यैःपित्तजाभवेत् ॥ दाहपाकज्वरोष्णार्तानीलपीतासितार्तवा । भृशोष्णकुणपस्रावायोनिस्यात्पित्तदूषिता ॥

अर्थ—खट्टे, नमकीन और क्षारादि मिश्रित पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे पित्तज यो-

निरोग होतेहैं, उनरोगोंके होनेसे योनिमें दाह, पाक, ज्वर, उष्णता, और यातना होतीहै तथा योनिमेंसे नीला, पीला, काला आर्त्तव निकलताहै और अत्यन्त उष्ण मुर्देकीसी गंधका स्राव होता रहताहै।

श्लैष्मिक योनिरोगोंके लक्षण।

कफोऽभिष्यन्दिभिर्वृद्धोयोनिंचेत्दूषयेत् स्त्रियाः। सशीतांपिच्छिलांकुर्यात्कण्डूग्रस्तांसवेदनाम् ॥ पाण्डुवर्णतथापाण्डुपिच्छिलार्त्तववाहिनीम्।

अर्थ—अभिष्यन्दी आहारके सेवनसे कफ बढकर स्त्रीकी योनिमें कफज रोगोंको उत्पन्न करताहै, इन रोगोंके कारण योनि में शीतलता, पिच्छिलता, खुजली, वेदना और पांडुता होतीहै और योनिमेंसे पीला पीला गिलगिला आर्त्तव निकलता है।

सान्निपातिक योनिरोगों के लक्षण।

समश्नत्यारसान्सर्वान्दूषयित्वात्रयोमलाः ॥ योनिगर्भाशयस्थैःस्वैर्योनिंयुञ्जन्तिलक्षणैः। साभवेदाहशूलार्ताश्वेतपिच्छिलवाहिनी ॥

अर्थ—त्रिदोषकारक आहार के सेवन से सम्पूर्ण रसों को दूषित करके योनि और गर्भाशयका आश्रय लेकर अपने २ लक्षणों को प्रकट करते हैं, इन रोगों के होने से दाह, शूल और यातना अधिक होती है तथा योनि में से सफेद और गिलगिला आर्त्तव निकलता है।

रक्तपित्तजन्य योनिरोग।

रक्तपित्तकरैर्नार्यारक्तंपित्तेनदूषितम्। अतिप्रवर्ततेयोन्यालब्धेवीजेऽपिसाप्रजा॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्पादक आहारादि सेवन करने से रक्त पित्त के कारण दूषित होकर योनिमेंसे अत्यन्त रक्त निकलने लगताहै और वीजके ग्रहणकरने परभी स्त्रीके संतान नहीं होतीहै।

अरजस्का योनि लक्षण।

योनिगर्भाशयस्थंचेत्पित्तंसंदूषयेदसृक्। सारजस्कामताकार्श्यवैवर्ण्यजननीभृशम्॥

अर्थ—योनि और गर्भाशय में स्थित पित्त जब रक्त को दूषित करदेता है तब रजोधर्म होना वन्द होजाता है और स्त्री अत्यन्त दुर्वल और विवर्ण होजाती है, ऐसी योनि को **अरजस्का** कहते हैं।

अचरणा योनि के लक्षण।

योन्यामधावनात्कण्डूंजाताःकुर्वन्तिजन्तवः। सास्यादचरणाकण्ड्वातयातिनरकांक्षिणी ॥

अर्थ—योनि को न धोने से उस में एक प्रकार के अदृश्य छोटे कीडे पडकर खुजली उत्पन्न करते हैं, उस खुजली के कारण योनि पुरुषकी अत्यन्त इच्छा करती है, ऐसी योनिको **अचरणा** कहते हैं।

अति चरणा योनि के लक्षण।

पवनोऽतिव्यवायेनशोफसुप्तिरुजःस्त्रियाः करोतिकुपितोयोनौसाचातिचरणामता॥

अर्थ—अत्यन्त मैथुन करने के कारण वायु कुपित होकर योनि में सूजन, सुप्ति और वेदना करदेती है ऐसी योनि को **अतिचरणा** कहते हैं।

प्राक्चरणा योनि के लक्षण ।

मैथुनादतिबालायाःपृष्ठजंघोरुवंक्षणम् । रुजयन्दूषयेद्योनिंवायुःप्राक्चरणातुसा॥

अर्थ—अत्यन्त बाला स्त्री के साथ मैथुन करने से उसकी पीठ, जांघ, ऊरू और वंक्षण में वेदना उत्पन्न करके वायु योनि को दूषित कर देती है, ऐसी योनि को **प्राक्चरणा** कहते हैं (प्राक्चरणा नियमित समय से पूर्व संगम की हुई) ।

उपप्लुतायोनिके लक्षण ।

गर्भिण्याःश्लेष्मलाभ्यासाच्छर्दिःश्वास विनिग्रहात् । वायुःक्रुद्धःकफंयोनिमुपनी यप्रदूषयेत् ॥ पाण्डुंसतोदंतमास्रावंश्वेतं स्रवतिवाकफम् । कफवातामयव्याप्तासा स्याद्योनिरुपप्लुता ॥

अर्थ—कफजन्य आहार के अत्यन्त सेवन करने से, तथा वमन, श्वास आदिवेगों के रोकने से गर्भिणी स्त्री के वायु दूषित होकर कफको योनि में लाकर योनि को दूषित करदेती है तब योनि मेंसे सुई छिदनेके समान वेदना से युक्त पाण्डुवर्ण का स्राव होता है अथवा सफेद२कफ निकलता है । कफवात रोगों से युक्त ऐसी योनिको **उपप्लुता** कहते हैं ।

परिप्लुतायोनि के लक्षण ।

पित्तलायानृसंवासेक्षवथूद्गारधारणात् । पित्तसंमूर्च्छितोवायुर्योनिंदूषयतिस्त्रियाः॥ शूनास्पर्शाक्षमासार्तिर्नीलपीतमसृक्स्रवेत् श्रोणीवंक्षणपृष्ठार्तिज्वरार्तायाःपरिप्लुता

अर्थ—पित्तप्रकृतिवाली स्त्री के मैथुनके समय छींक वा डकार आवै और यदि वह उनको रोकले तो पित्त युक्त वायु कुपित होकर स्त्रीकी योनि को दूषित करदेती है उस समय योनि ऐसी सूजजाती है कि हाथ नहीं लगाया जासक्ता है और उस में से वेदना युक्त नीला पीला स्राव होने लगता है । तथा स्त्री की कमर, वंक्षण, और पीठ में वेदना और ज्वर होता है । ऐसी योनि को **परिप्लुता** कहते हैं।

उदावृतायोनिके लक्षण ।

वेगोदावर्तनाद्योनिमुदावर्तयतेऽनिलः । सारुगार्तोरजःकृच्छ्रेणोदावृत्तांविमुञ्चति॥

अर्थ—अधोवेगों के रोकने से वायु के कारण योनि का वेग ऊपर को होता है, इस से बड़े कष्ट के साथ रजःसंबंधी आर्त्तव निकलता है इसे **उदावृता** योनि कहते हैं।

उदावर्तिनी योनि के लक्षण ।

आर्तवेयाविमुक्तेतुतत्क्षणंलभतेसुखम् । रजसोगमनादूर्द्ध्वंज्ञेयोदावर्तिनीबुधैः ।

अर्थ—आर्त्तव के निकलने से जिस में तत्काल चैन पड़जाता है, उस योनि को रजके ऊपर जाने के कारण **उदावार्त्तिनी** कहते हैं ॥

कर्णिनीयोनिके लक्षण ।

अकालेवाहमानायागर्भेणपिहितोऽनिलः। कर्णिकाञ्जनयेद्योनौश्लेष्मरक्तेनमूर्च्छितः रक्तमार्गावरोधिन्यासातयाकर्णिनीमता।

अर्थ—छोटी अवस्था में गर्भ धारण करने से गर्भ के कारण आच्छादित वायु कफ और रक्त से मिलीहुई एक प्रकारकी

कर्णिका योनि के मुख में उत्पन्न करदेती है, यह रक्त के मार्ग को रोकदेती है,इससे इस योनि को कर्णिनी कहते हैं ॥

पुत्रघ्नी के लक्षण ।

रौक्ष्याद्वायुर्यदागर्भजातंजातंविनाशयेत् ॥ दुष्टशोणितजंनार्याःपुत्रघ्नीनामसामता ।

अर्थ—जो गर्भ स्त्री की दूषित रक्त से उत्पन्न होता है उसको जब जब वह उत्पन्न होता है तब तबही वायु रूक्षता के कारण उसे नष्ट करदेती है । ऐसी योनि को पुत्रघ्नी कहते हैं ।

अन्तर्मुखी योनि के लक्षण ।

व्यवायमतितृप्ताया भजन्त्यास्त्वन्नपीडितः। वायुर्मिथ्यास्थिताङ्गाया योनिस्रोतसिसंस्थितः । वक्रयत्याननंयोन्याःसास्थिमांसानिलार्तिभिः ॥ भृशार्तिर्मैथुनासक्ता योनिरन्तर्मुखीमता ।

अर्थ—जब स्त्री अत्यन्त पेट भरकर खाने के पीछे अन्याय रीतिसे पुरुष संगम में प्रवृत्त होती है तब वायु उसकी योनि के स्रोत में स्थित होकर योनि के मुखको टेढ़ा करदेती है उसकी हड्डी और मांस में अत्यन्त वेदना होती है, ऐसी स्त्री मैथुन में असमर्थ होजाती है, इसे अन्तर्मुखी योनि कहते हैं ॥

सूची मुखी के लक्षण ।

गर्भस्थायाःस्त्रियारौक्ष्याद्वायुर्योनिंप्रदूषयन् ॥ मातृदोषादणुद्वारात्कुर्यात्सूचीमुखीतुसा ।

अर्थ—माताके दोष के कारण वायु रूक्ष होकर गर्भस्थ कन्याकी योनि को दूषित करके उस के योनिद्वारको छोटा करदेती है। ऐसी योनि को सूचीमुखी कहते हैं ।

शुष्का योनि के लक्षण ।

व्यवायकालेरुन्धन्त्यावेगात्प्रकुपितोऽनिलः ॥ कुर्याद्विण्मूत्रसङ्गार्तिशोषंयोनिमुखस्यतु ।

अर्थ—मैथुन के समय जब स्त्री मलमूत्र के वेगों को रोक लेती है तब वायु कुपित होकर विष्ठा और मूत्र को रोककर योनि को शुष्क करदेती है, ऐसी योनि को शुष्का कहते हैं ।

वामिनी के लक्षण ।

षडहात्सप्तरात्राद्वाशुक्रंगर्भाशयंगतम् ॥ सरुजंनीरुजंवापियास्रवेत्साचवामिनी।

अर्थ—जिस स्त्री की योनि में से गर्भाशय में पहुंचा हुआ वीर्य वेदना से वा विनाही वेदना छः सात दिन के भीतर निकल पडता है उसे वामिनी कहते हैं ।

षण्डी के लक्षण ।

बीजदोषात्तुगर्भस्थामारुतोपहताशया ॥ नृद्वेषिण्यस्तनीचैवषण्डीस्यादनुपक्रमा ।

अर्थ—वीज दोष के कारण जिस गर्भस्थ कन्याका गर्भाशय नष्ट होजाता है वह पुरुषकी इच्छा नही करती है, न उस के कुच निकलते है, ऐसी स्त्री षण्डी वा हींजडी कहाती है । इसकी चिकित्साही नहीं होती है ।

महायोनि के लक्षण ।

विषमंदुःखशय्यायांमैथुनात्कुपितोऽनि

लः ॥ गर्भाशयस्ययोन्याश्चमुखंविष्टम्भयेतुस्त्रियाः । असंवृतमुखासार्तिरूक्षफेनास्रवाहिनी ॥ मांसोत्सन्नामहायोनिःपर्ववंक्षणशूलिनी । इत्येतेलक्षणैःप्रोक्ताविंशतिर्योनिजागदाः ॥

अर्थ—टूटे हुए कष्टोत्पादक पलंग पर विषमरीति से सोकर जो पुरुष संगम में प्रवृत्त होती है, उसकी वायु कुपित होकर गर्भाशय और योनि मुख को स्तंभित कर देती है, इसकारण से योनि असंवृत मुखा, वेदनायुक्त, रूखा और झागदार आर्त्तव निकालने वाली और मांसोपचिता होजाती है, इस स्त्री के संधि और बंक्षण में शूल होने लगता है, यह महायोनि होती है । वीसप्रकार के योनिरोग और उन के लक्षण इस प्रकार से वर्णन किये गये हैं ।

नशुक्रंधारयत्येभिर्दोषैर्योनिरुपद्रुता । तस्माद्गर्भंनगृह्णातिस्त्रीगच्छत्यामयान्बहून्॥ गुल्मार्शःप्रदरादींश्चवाताद्यैश्चातिपीडनम्।

अर्थ—इन दोषों से उपद्रुत योनि वीर्य धारण नहीं कर सकती है, न गर्भ को ग्रहण कर सकती है तथा गुल्म,अर्श और प्रदरादिक अनेक प्रकार के उपद्रव हो आते हैं और वह वातरोगों से सदाही पीडित रहती है ।

योनिरोगों में दोष परत्व ।

आसांषोडशयास्तासांमध्येद्वेपित्तदोषजे॥ परिप्लुतावामिनीचवातपित्तात्मकेमते । कर्णिन्युपप्लुतेवातकफात्शेषास्तुवातजाः। देहंवातादयस्तासांस्वैर्लिङ्गैःपीडयन्तिहि।

अर्थ—इन वीस प्रकार के योनि दोषों में पहिले चार वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातिक हैं । शेष सोलह में से पहिले दो (रक्तपित्तजा और अरजस्का) पित्त से उत्पन्न हैं । परिप्लुता और वामिनी वात-पित्तसे उत्पन्न हैं, कर्णिनी और उपप्लुता बातकफ से उत्पन्न हैं और शेष आठ केवल वात से उत्पन्न हैं । इन में से वातादिक दोष अपने अपने लक्षणों से देह को पीडित करते हैं ।

वातजरोगों में चिकित्सा ।

स्नेहनस्वेदवस्त्यादिवातलास्वनिलापहम् ॥

अर्थ—वातज योनि रोगों में स्नेहन स्वेदन और बस्त्यादि उपचारों से वात शान्त होजाती है ।

पित्तजरोगों में क्रिया ।

कारयेद्रक्तपित्तघ्नंशीतंपित्तकृतासुच ।

अर्थ—पित्तजनित योनिरोगों में रक्त पित्त नाशिनी शीतक्रिया हित है ।

कफजयोनिरोगों में क्रिया ।

श्लेष्मलासुचरूक्षोष्णंकर्मकुर्याद्विचक्षणः ॥

अर्थ—कफजयोनि रोगों में रूक्ष और उष्णकर्म करना हित है ।

सान्निपातिक योनिरोग में चिकित्सा ।

सन्निपातेविमिश्रन्तुसंसृष्टासुचकारयेत् ।

अर्थ—त्रिदोषज और द्विदोषज योनि-रोगोंमें तीनों प्रकार की मिलीहुई चिकित्सा करनी चाहिये ।

वायुजन्ययोनिरोग में चिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नांतथायोनिंदुःस्थितांस्थापयेत् पुनः।पाणिनानामयेज्जिह्मांनिःसृतांसंप्रवेशयेत्।वर्धयेत्संवृताञ्चैवविवृतांपरिवर्तयेत्। योनिःस्थानापवृत्ताहिशल्यभूतास्त्रिया मता ॥

अर्थ—वायुजन्य योनिरोगों में योनिको स्निग्ध और स्वेदित करके जो योनि अपने ठीक स्थान में न हो उसे ठीक स्थानपर लावै । जो योनि टेढ़ी हो उसे हाथ से नवावै, जो बाहर निकल आईहो उसे भीतर को फिर प्रवेश करै, सुकड़ी हुई योनिको चौड़ी करै और चौड़ीहुई को सुकड़ी करै। जो योनि अपने निज स्थान से हटजाती है वह स्त्रियों के शल्यस्वरूप है ।

सर्वांव्यापन्नयोनिन्तुकर्म्मभिर्वमनादिभिः। मृदुभिःपञ्चभिर्नारींस्निग्धस्विन्नामुपाचरेत् ॥ सर्वतःसुविशुद्धायाःशेषंकर्म्मविधीयते । वातव्याधिहरंकर्म्मवातार्तानां सदाहितम् ॥ औदकानूपजैर्मांसैःक्षीरैः सतिलतण्डुलैः । सवातघ्नौषधैर्नाडीकुम्भीस्वेदैरुपाचरेत् ॥ युक्तांलवणतैलेन साश्मप्रस्तरशङ्करैः । स्विन्नांकोष्णाम्बुसिक्तांगींवातघ्नैर्भोजयेद्रसैः ।

अर्थ—सब प्रकार के योनिरोगोंमें स्त्रीं को प्रथम स्नेहन और स्वेदन कर्म कराके मृदु वमन विरेचनादि पांचों कर्मोंका प्रयोग करै, इस तरह जब योनि सब तरहसे शुद्ध होजाय तब शेष कर्मों का विधान करै । वायु से उत्पन्न योनि रोगों में सदैव वात व्याधि नाशक कर्म हित होते हैं । वातज योनि रोगमें औदक और आनूपमांस, दूध, तिल, चांवल और वातनाशक औषधियां इन सब का पाक करके नाडी स्वेद वा कुम्भीस्वेद द्वारा उपचार करै । अथवा लवण और तैल का योग करके अश्मघन प्रस्तर स्वेद और संकर स्वेद द्वारा स्वेदित करके गरम जल का परिषेक करै पीछे वातनाशक मांसरसों का भोजन करावै ।

अन्य प्रयोग ।

बलाद्रोणद्वयक्वाथेघृततैलाढकद्वयम् । स्थिरापयस्याजीवन्तीवीरर्षभकजीवकैः ॥ श्रावणीपिप्पलीमूलपीलुमाषाख्यपर्णिभिः। शर्कराक्षीरकाकोलीकाकनासाभिरेवच ॥ पिष्टैश्चतुर्गुणक्षीरंतथैवचयथाबलम् । वातपित्तकृतान्रोगान्हत्वागर्भं दधातितत् ॥

अर्थ—बलाके दो द्रोण क्वाथमें घी और तेल प्रत्येक एक एक आढक डालै, तथा सालपर्णी, क्षीर विदारी, जीवन्ती, क्षीरकाकोली, ऋषभक, जीवक, श्रावरति, पीपलामूल, पीलू मांसपर्णी, शर्करा, क्षीरकाकोली, कौआटोंटी इन सब का कल्प चार सेर और सोलह सेर दूध इन सब को पकावै । इस घृत तैल का यथा बल सेवन करने से वात पित्तरोगों के दूर होने पर स्त्री गर्भधारण कर लेती है ॥

काश्मर्य्यादि घृत ।

काश्मर्यत्रिफलाद्राक्षाकासमर्दपरूषकैः। पुनर्नवाहरिद्राभ्यांकाकनासासहाचरैः॥

शतावर्यागुडूच्याश्चप्रस्थमक्षसमैर्घृतात्। साधितंयोनिवातघ्नंगर्भदंपरमंपिबेत् ॥

अर्थ—खंभारी, त्रिफला, द्राक्षा, कसोंदी, फालसा, सांठ, दोनों हलदी, कौआटोंटी, सहचर, सितावर और गिलोय इन सब में से प्रत्येक का कल्क दो दो तोले इन सब के समान घृत मिलाकर चौगुने जल के साथ पाककरै। यह घृत सब प्रकार वातजन्य रोगों को दूर करके गर्भधारण कराने वाला है।

अन्य प्रयोग।

पिप्पल्यःकुञ्चिकाजाजीवृषकंसैन्धवंव चाम्। यवक्षाराजमोदौचशर्करांचित्रकं तथा ॥ पिष्ट्वासर्पिषिभृष्टानिपाययेतप्र सन्नया। योनिपार्श्वार्तिहृद्रोगगुल्मार्शो विनिवृत्तये ॥

अर्थ—पीपल, कालाजीरा, सफेद जीरा, अडूसा, सेंधानमक, वच, जवाखार, अजमोद शर्करा, चीता, इन सब का कल्क कर के घी में भूनकर प्रसन्ना के साथ सेवन करै तौ योनि शूल, पार्श्वशूल, यातना, हृद्रोग, गुल्मरोग और अर्श दूर होजाते हैं।

वृषकंमातुलुङ्गस्यमूलानिमदयन्तिकाम्। पिबेत्सलवणैर्मद्यैःपिप्पल्यौकुञ्चिकेतथा॥ श्वदंष्ट्रांवृषकंरास्नांपिबेच्छूलेपयःशृतम्। गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्चपरिषेचयेत्। सैन्धवंतगरंकुष्ठंवृहतीदेवदारुणः। समां शैःसाधितंकल्कैस्तैलंधार्यंरुजापहम् ॥

अर्थ—अडूसे की जड़, बिजौरे की जड, मल्लिका की जड, इन को पीसकर सेंधे नमक और मद्यके साथ पान करै, इसी तरह से पीपल और जीरा पीसकर सेंधे-नमक और मद्य के साथ पीवै। जो योनि में शूल होता हो तौ गोखरू, अडूसा और रास्ना पीसकर दूध के साथ पाक कर के पान करै अथवा गिलोय, त्रिफला और दन्ती के क्वाथ से योनि का प्रक्षालनकरै। अथवा सेंधानमक, तगर, कूठ, कटेरी, देवदारु, इनको समान भाग लेकर इनके कल्क के साथ तेल पकावै फिर इस तेल में रुईका फोआ भिगोकर योनि में रखदेवै इस से वेदना जाती रहती है।

अन्य पिचु।

गुडूचीमालतीव्याघ्रीश्रेयसीसुरदारुभिः॥ बलाचित्रकयष्ट्याव्हयूथिकाभिश्चकार्षि कैःतैलप्रस्थंगवांमूत्रेक्षीरेणद्विगुणंपचेत् ॥ वातार्तायैपिचुंतस्माद्योनौचप्रणयेत्सदा।

अर्थ—गिलोय, मालती, कटेरी, रास्ना, देवदारु, खरैटी, चीता, मुलहटी और चमेली की जड़ इन को एक एक कर्ष लेवै। इन के कल्क के साथ एक प्रस्थ तेल, दोप्रस्थ गोमूत्र और इतनाही दूध मिलाकर पाक करै। इस तेल में एक फोआ भिजोकर वातरोग से पीड़ित स्त्री की योनि में रखदेवै इस से योनि सदा प्रणिहित रहती है।

अन्यप्रयोग।

हिंस्राकल्कन्तुवातार्ताकोष्णमभ्यज्यधा रयेत् ॥

अर्थ—हिंस्रा को पीसकर घीमें सानकर उसकी लुगदी को वातार्त्ता योनि में रख देवै।

कफपित्तरोगों में क्रिया ।

पञ्चवल्कस्यपित्तार्तांश्यामादीनांकफा तुरा । पित्तलानान्तुयोनीनांसेकाभ्यङ्ग पिचुक्रिया ॥ शीताःपित्तहराःकार्याःस्ने हनानिघृतानिच ।

अर्थ—पित्तजयोनिरोगों में पंचवल्कलका कल्क तथा कफजन्य योनिरोगों में अनंतमूल का कल्क योनिमें रक्खै। पित्तलायोनिवाली स्त्रियों की योनि में परिषेक, अभ्यंग, पिचुक्रिया, पित्तनाशिनी शीतलक्रिया, तथा स्नेहनकर्ता घृतोंका प्रयोग हित है ।

शतावरी घृत ।

शतावरीमूलतुलाःचतस्रःसंप्रपीडयेत् ॥ रसेनक्षीरतुल्येनपचेत्तेनघृताढकम् । जीवनीयैःशतावर्यामृद्वीकाभिःपरूषकैः ॥ पियालैश्चात्तकैःपिष्टैर्द्वियष्टीमधुकैःपचेत् । सिद्धेशीतेचमधुनःपिप्पल्याश्चपलाष्ट कम् ॥ सितादशपलोन्मिश्रांल्लिह्यात्पा णितलंव्रतः । योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नंवृष्यं पुंसवनञ्चतत् ॥ क्षतंक्षयंरक्तपित्तंकासं श्वासंहलीमकम् । कामलांवातरक्तञ्च वीसर्पंहृच्छिरोग्रहम् ॥ उन्मादायामसं न्यासंवातपित्तात्मकंजयेत् ।

अर्थ—सितावरकी जड़ को चार तुला लेकर कूट डालै और उसे कपड़े में निचोड़ कर रस निकाल ले। फिर इस रस में इतनाही दूध और एक आढ़क घृत डाल कर पकावै तथा जीवनीय गणोक्त द्रव्यों का कल्क, सितावर, किसमिस, फालसा, पियाल, दोनों प्रकारकी मुलहटी सब दो दो तोले डालकर पकावै। पकने के पीछे टंडा होने पर इस घृत में शहत आठ पल, पीपल आठ पल और मिश्री दस पल इन सब को मिलाकर प्रति दिन दो तोले सेवन करै तो योनिदोष, रक्तदोष, वीर्यदोष, क्षत, क्षय, रक्तपित्त, खांसी, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्रोग, शिरोग्रह, उन्माद, आयास, सन्यास और अन्य वातपित्तात्मक रोग दूर होजाते हैं। यह घृत पुष्टिकारक और पुंसवन है ।

अन्यउपाय ।

एवमेवक्षीरसर्पिर्जीवनीयोपसाधितम् ॥ गर्भदंपित्तलानांचयोनीनांस्याद्भिषग्जि तम् ।

अर्थ—इसीतरह से जीवनीयगणके साथ सिद्ध किया हुआ दूध का घी गर्भकारक और पित्तलयोनिरोगोंको दूर करनेवालाहै।

कफजयोनिरोगों में चिकित्सा ।

योन्याःश्लेष्मप्रदुष्टायावर्तिःसंशोधनीहि ता ॥ वाराहेबहुशःपित्तेभावितैर्नक्तकैःकृ ता । भावितंपयसार्कस्यमाषचूर्णससैन्ध वम् ॥ वर्तिःकृतामुहुर्धार्याततःसेव्यासुखा म्बुना । पिप्पल्यामरिचैर्माषैःशताह्वा कुष्ठसैन्धवैः ॥ वर्तिस्तुल्याप्रदेशिन्याधा र्यायोनिविशोधनी ।

अर्थ—कफदूषित योनियों में संशोधनी वत्ती का प्रवेश करना हित है । पुराने कपड़ेकी वत्ती बनाकर उसे शूकर के पित्ते की कई भावना देकर योनि में रखदेवै । उरद का चून और उस के समान सेंधा-

नमक पीसकर एक बत्ती बनावै इसको आक के दूधकी भावना देकर योनिमें थोड़ी देर रक्खै फिर उसे गरमजल से धोडाले। अथवा पीपल, कालीमिरच, उरद, सौंफ, कूठ, सेंधानमक इन सबकी तर्जनी उंगली के समान वत्ती वनाकर योनि में रखने से योनि शुद्ध होजाती है।

योनिशोधक तैल।

उदुम्बरशलाटूनांद्रोणमब्द्रोणसंयुतम् ॥ सपञ्चवल्ककुलकनिम्बमालतिपल्लवम्। निशांस्थाप्यंजलेतस्मिंस्तैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ लाक्षाधवपलाशत्वङ्निर्यासैःशाल्मलेनच। पिष्टैःसिद्धञ्चतत्तैलंपिचुयोनौनिधापयेत् ॥ सशर्करैःकषायैश्चशीतैः कुर्वीतसेचनम्। पिच्छिलाविवृताकालन्दुष्टयोन्यथदारुणम् ॥ सप्ताहात्शुध्यति क्षिप्रंअपत्यञ्चापिविन्दति।

अर्थ—कच्चे गूलर के एकद्रोण छिलके तथा इतनेही पञ्चवल्क, परवलके पत्ते, नीम के पत्ते, मालती के पत्ते इनसब को दूने जल में रात्रिके समय भिगोदेवै। प्रातःकाल इसे मसलकर रस छानले, इस रसमें एकप्रस्थ तैल पकावै, पकते समय इसमें लाख, धौकानिर्यास, पलासका निर्यास, सेमरकागोंद पीसकर डालदे। जब पकजाय तब इसमें रुईका एकफोआ भिगोकर योनि में रखदेवै, तदनंतर पूर्वोक्त उदुम्बरादि द्रव्यों के शीतल क्वाथ में शर्करा मिलाकर योनि को धोवै। इस प्रयोग से पिच्छला, विवृता, दूषिता, दारुणा, कैसीही योनि क्यों न हो सातदिन में शुद्ध होजाती है और शीघ्र उस के सन्तान भी होती है।

अन्यप्रयोग।

उदुम्बरस्यदुग्धेनषट्कृत्वोभावितांस्तिलान् ॥ तैलंक्वाथेचतस्यैवसिद्धंधार्यञ्च पूर्ववत्।

अर्थ—गूलरके दूध में तिलों को छः भावना देकर उनका तेल निकाले। इस तेल को गूलरकी छाल के क्वाथ में पकावै, इसमें रुई का फोआ भिगोकर योनिके भीतर रखने से पूर्वोक्त गुण होते हैं।

धातक्यादि तैल।

धातक्यामलकीपत्रस्रोतोजमधुकोत्पलैः॥ जम्ब्वाम्रमध्यकासीसलोध्रकट्फलतिन्दुकैः ॥ सौराष्ट्रिकदाडिमत्वगुदुम्बरशलाटुभिः ॥ अक्षमात्रैरजामूत्रेक्षीरेचद्विगुणे पचेत्। तैलप्रस्थंपिचुंतस्माद्योनौचप्रणयेत्ततः ॥ कटीपृष्ठत्रिकाभ्यङ्गंस्नेहोवस्तिंचदापयेत्। पिच्छिलस्राविणीयोनिर्विप्लुतोपप्लुतातथा ॥ उत्तानाचोन्नताशूनासिध्येत्सस्फोटशूलिनी।

अर्थ—धायके पत्ते, आंवलेके पत्ते, शंखनाभि, मुलहटी, नीलकमल, जामनकीमिंगी, आमकीमिंगी, हीराकसीस, लोध, कायफल, तेंदू, सौराष्ट्रमृत्तिका, अनार के छिलके कच्चागूलर ये सब दो २ तोले लेकर पीसले, इन में एक प्रस्थ तेल, बकरी का मूत्र दो प्रस्थ और चार प्रस्थ दूध डालकर पकावै। इस तेल में एक रुई का फोआ भिगोकर योनि में रक्खै, तथा, कमर, पीठ और

त्रिक में इस तेल की मालिश करावै। स्नेहन वस्ति में इसका प्रयोग करे। इस तेल से पिच्छिलस्राविणी, विप्लुता, उपप्लुता, उत्ताना, उन्नता, शोथयुक्ता, स्फोटयुक्ता और शूलयुक्तायोनि अच्छी होजाती है।

अन्यप्रयोग।

करीरधवनिम्बार्कवेणुकोशाम्रजाम्बवैः॥ जिङ्गिणीवृषमूलानांक्वाथमार्द्वीकशीधुभिः॥ सशुक्तैर्धावनंमिश्रैर्योन्यास्रावविनाशनम्॥ कुर्यात्सतक्रगोमूत्रशुक्तैर्वात्रिफलारसैः।

अर्थ—करील, धौकी लकडी, नीमकी, छाल, आककी जड़, वेणु, कोशाम्र, जामन की गुठली, मजीठ और अडूसेकी जड, इन सब का क्वाथ, दाखका मद्य और शुक्त इन को मिलाकर योनि को धोने से उस का स्राव मिटजाता है, इसी तरह से तक्र, गोमूत्र और शुक्त मिलाकर अथवा केवल त्रिफला के रससे योनि को धोवै।

योनिरोग में अवलेह।

पिप्पल्ययोरजःपथ्याप्रयोगामधुनाहिताः॥

अर्थ—योनिरोग में पीपल, लोहचूर्ण, हरड इनका चूर्ण शहत के साथ चाटनेसे वहुत उपयोगी होता है।

योनिरोग में वस्ति कर्म।

श्लेष्मलायांकटुप्रायाःसमूत्रावस्तयोहिताः। पित्तेसमधुरक्षीरावातेतैलाम्लसंयुताः॥ सन्निपातसमुत्थायाःकर्म्मसाधारणंमतम्।

अर्थ—श्लेष्मला योनि में कटुद्रव्यों से युक्त गोमूत्रकी वस्ति हित है। पित्तल योनि में मधुर क्षीर युक्त वस्ति तथा वातलायोनि में तेल और खटाई की वस्ति उपयोगी होती है। इसी तरह त्रिदोषज योनि रोगों में तीनों दोषोंकी मिली हुई चिकित्सा हित कर होती है।

रक्त प्रदर में चिकित्सा।

रक्तयोन्यामसृग्वर्णैरनुबन्धंसमीक्ष्यच॥ ततःकुर्याद्यथादोषंरक्तस्थापनमौषधम्।

अर्थ—जिस योनि में से रक्त वहता हो उस में रक्तका रंग देखकर दोषके अनुसार रक्तको रोकने की औषध देवै।

वातज रक्त प्रदर में चिकित्सा।

तिलचूर्णंदधिघृतंफाणितंशौकरीवसा॥ क्षौद्रेणसंयुतंपेयंवातासृग्दरनाशनम्। वराहस्यरसोमेध्यःसकौलत्थोऽनिलाधिके॥ शर्करातैलयष्ट्याह्वनागरैर्वायुतं दधि।

अर्थ—तिलका चूर्ण, दही, घी, राव, और शूकरकी चर्वी इन को शहत के साथ सेवन करने से वातज रक्तप्रदर दूर होजाता है। अथवा कुलथी के क्वाथ में सिद्ध किया हुआ शूकर का मांसरस देवै अथवा चीनी, तेल, मुलहटी और सोंठ इन के साथ में दहीदेवै।

पैत्तिक रक्तप्रदर में चिकित्सा।

पयस्योत्पलशालूकबिसकालीयकाम्बुजान्॥ सपयःशर्करांक्षौद्रंपैत्तिकेऽसृग्दरे पिवेत्।

अर्थ—पैत्तिक रक्तप्रदरमें क्षीरकाकोली, नीलकमल, शालूक, कमलनाल, कालीयक और पद्मकमल इनके कल्क को दूध, चीनी

और शहत के साथ सेवन करने से पैत्तिक रक्तप्रदर दूर होजाता है ।

पुष्यानुग चूर्ण ।

पाठाजम्ब्वाम्रयोर्मध्यंशिलाभेदंरसाञ्जनम् ॥ अम्बष्ठकींमोचरसंसमङ्गांवत्सकत्वचम् । वाह्लीकातिविषेबिल्वंमुस्तंलोध्रंसगैरिकम् ॥ कट्फलंमरिचंशुण्ठींमृद्वीकांरक्तचन्दनम् । कट्वङ्गवत्सकानन्तांधातकींमधुकार्जुनम् । पुष्येणोद्धृत्यतुल्यानिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत् ॥ तानिक्षौद्रेणसंयोज्यपिबेन्नातण्डुलाम्बुना। अर्शःसुचातिसारेषुरक्तंयच्चोपवेश्यते ॥ दोषागन्तुकृतायेचबालानांतांश्चनाशयेत् । योनिदोषंरजोदुष्टंश्वेतंनीलंसपीतकम् ॥ स्त्रीणांश्यावारुणंयच्चप्रसह्यविनिवर्तयेत् । चूर्णपुष्यानुगंनामहितमात्रेयपूजितम् ॥

अर्थ—पाठा, जामनकी गुठली, आमकी गुठली, पाखानभेद, रसांजन, पाठा, मोचरस, लज्जालू, कुडाकी छाल, हींग, अतीस, वेलगिरी, मोथा, लोध, गेरू, कायफल, कालीमिरच, सोंठ, दाख, रक्तचंदन, श्यौनाक, इन्द्र जौ, अनन्तमूल धायके फूल, मुलहटी और अर्जुन इन सब को पुष्य नक्षत्र में इकट्ठे करके समान समान भाग मिलाकर चूर्ण बना लेवै । इस चूर्ण में शहत मिलाकर तंडुल जल के साथ सेवनकरै । इस के सेवन से अर्श, अतिसार, जमाहुआ रुधिर, बालकोंके आगन्तुकदोष, योनिदोष, रजोदोष, सफेद नीला पीला श्याव और अरुणप्रदर ते अवश्यही दूर होजाते हैं। महर्षि आत्रेयसे प्रशंसित इसचूर्ण का नाम पुष्यानुग है ।

प्रदरमें अन्यचिकित्सा ।

तण्डुलीयकमूलञ्चसक्षौद्रंतण्डुलाम्बुना। सरसाञ्जनलाक्षंवाछागेनपयसापिबेत्॥ पत्रकल्कौघृतेभृष्टौराजादनकपित्थयोः। पित्तानिलहरौपैत्तेसर्वंचैवास्रपित्तजित् ॥ मधुकंत्रिफलांलोध्रंमुस्तंसौराष्ट्रिकांमधु । मद्यैर्निम्बगुडूच्यौतुकफजेऽसृग्दरे पिबेत् ॥ विरेचनंमहातिक्तंपित्तजेऽसृग्दरेपिबेत् । शुभंगर्भपरिस्रावेचोक्तंसर्वंषुकारयेत् ॥

अर्थ—चौलाईकी जड़को घोटकर शहत और तडुलजलके साथ पान करै, अथवा रसांजन और लाखको बकरीके दूधके साथ पीवै । अमलतास और कैथके पत्तों को पीसकर घीमें भूनकर सेवन करै तौ पैत्तिक प्रदर में वात पित्त और सब प्रकारके रक्त पित्त दूर होजातेहैं । कफज प्रदरमें मुलहटी, त्रिफला, लोध, मोथा, सौराष्ट्रमृत्तिका, इनके कल्कको शहतके साथ सेवन करै । अथवा नीमकी छाल और गिलोय के कल्क को मद्य के साथ पान करै । पित्तज प्रदर में कुष्ठाध्यायोक्त महातिक्तक घृत से विरेचन देवै तथा गर्भस्राव के रोकने के लिये जो जो औषधें वर्णनकी गई हैं वेभी इस में हित हैं ।

रक्तयोन्यादि की चिकित्सा ।

काश्मर्यकुटजक्काथसिद्धमुत्तरबस्तिना। रक्तयोन्यरजस्कानांपुत्रघ्न्याश्चहितेघृत

म् ॥ मृगाजाविवराहासृग्दध्यम्लफल सर्पिषा । अरजस्कापिबेत्सिद्धंजीवनीयैःपयोऽपिवा ॥

अर्थ—कुडाकी छाल और खंभारी इनके क्राथ में चौथाई घृत पकाकर उत्तर वस्ति द्वारा प्रयोग करने से रक्तयोनि, अरजस्का और पुत्रघ्नी के दोष दूर होजाते हैं। हिरण बकरा, भेड़ और सूअर इन के रुधिर में दही, खटाई और घी डालकर सेवन करै अथवा जीवनीय गण की औषधियां डालकर सिद्ध किया हुआ दूध पान करने से अरजस्का योनिका दोष दूर होजाता है।

कर्णिन्यचरणाशुष्कयोनिप्राक्चरणासु तु । कफवातेचयोक्तव्यंतैलमुत्तरवस्तिना ॥

अर्थ—कर्णिनी, अचरणा, शुष्कयोनि, प्राक्चरणा और कफवात से दूषित योनि में वातनाशक औषधियों से सिद्ध किये हुए तेल की उत्तर वस्ति देवै।

गोपित्तमत्स्यपित्तेवाक्षौमंत्रिः सप्तभावितम् । मधुनाकिण्वचूर्णवादद्यादचरणापहम् ॥ स्रोतसांशोधनंकण्डूक्लेदशोफहरश्चतत् ।

अर्थ—गौका पित्ता मछलीकापित्ता इनमें रेशमीवस्त्रके टुकडे को इक्कीस भावना देकर योनिमें रखदेवै अथवा सुराबीजकेचूर्णमें शहत मिलाकर योनि में रक्खै। इससे अचरणा दोष दूर होजाता है, स्रोत शुद्ध होजाते हैं तथा खुजली, क्लेद और शोथ दूर हो जाता है।

वातघ्नैःशतपाकैस्तुतैलैःप्रागभिचारणे ॥ आस्थाप्येचानुवास्येचस्वेद्येचानिलसूदनैः । स्नेहद्रव्यैस्तथाहारैरुपनाहैश्चयुक्तितः ॥ शताह्वायवगोधूमकिण्वकुष्ठप्रियंगुभिः । बलाखुपर्णिकाश्वाह्वैःसंयाप्योधारणःस्मृतः ॥

अर्थ—प्राक्चरणा और अचरणा इनदोनों योनियों में वातनाशक शतपाक तैलों द्वारा आस्थापन और अनुवासन वस्तिदेवै और वातनाशक द्रव्यों द्वारा स्वेदन करावै। वायुनाशक द्रव्यों का आहार तथा वायुनाशक उपनाह करना चाहिये। सौंफ, जौ, गेहूं, सुराबीज, कूठ, प्रियंगु, खरैटी, मूषिकपर्णी और असगंध इनका कल्क योनि में धरै।

वासिनीऔर आप्लुतायोनिमेंचिकित्सा

वासिन्याप्लुतयोन्याश्चकर्तव्यःस्वेदनोऽपिवा । क्रमःकार्यस्ततःस्नेहःपिचुभिस्तर्पणंभवेत् ॥ शल्लकीजिंगिनीजम्बूधवत्वक्पञ्चवल्कलैः । कषायैःसाधितःस्नेहः पिचुःस्याद्विप्लुतापहः ॥

अर्थ—वासिनी और आप्लुता योनि में प्रथम स्वेदन करके पीछे संस्कार किये हुए स्नेह का फोआ रखकर संतर्पण करै शल्लकी, मजीठ, जामनकी छाल धौकी छाल और पंचवल्कल इन के क्राथ में सिद्ध किये हुए तेल का फोआ विप्लुता योनि में रखने से रोग की शान्ति होती है।

कर्णिनीयोनिमेंचिकित्सा।

कर्णिन्यांवर्तिकाकुष्ठपिप्पल्याकाग्रसैन्धवैः वस्तिमूत्रकृताधार्यासर्वंच श्लेष्मनुद्धितम्॥

अर्थ—कर्णिनीयोनिमें कूठ, पीपल, आक की डाली का अग्रभाग और सेंधानमक इनको वकरे के मूत्र के साथ पीसकर कल्क करलेवै, फिर इसकी वत्तीसी बनाकर योनि में रक्खै तथा इस में कफनाशक सब प्रकार की क्रिया भी हित हैं।

उदावृत्तायोनिकीचिकित्सा।

त्रैवृतंस्नेहनंस्वेदोग्राम्यानूपौदकारसाः। दशमूलपयोवस्तिश्चोदावृत्तानिलार्तिषु॥ त्रैवृतेनानुवास्याचवस्तिश्चोत्तरसंज्ञितः। तदेवचमहायोन्यांस्रस्तायांश्चविधीयते॥ बसाऋक्षवराहाणांघृतञ्चमधुरैःश्रृतम्। पूरयित्वामहायोनिंवन्धीयात्क्षौमनर्तकैः॥

अर्थ—वाताधिक्य उदावृतायोनि में निसोथ का विरेचन, स्नेहन, स्वेदन, ग्राम्य, आनूप और जलज पशुपक्षियों का मांसरस और दशमूल के क्वाथ में सिद्ध किये हुए दूध की वस्ति देवै। इसमें निसोथके साथ सिद्ध किये स्नेह की वस्ति और उत्तर वस्ति भी हित होती है। शिथिल हुई महायोनि में भी यही क्रिया हितहोती है। रीछ और सूअर की चर्बी और घृत मधुर गण के क्वाथके साथ सिद्ध कर के योनि में भरकर ऊपर से रेशमीवस्त्रकी पट्टी बांधदेवै।

वहिःनिष्क्रान्तियोनिकीचिकित्सा।

प्रस्थस्तांसर्पिषाभ्यज्यक्षीरस्विन्नांप्रवेश्य च। वध्नीयाद्वेशवारस्यपिण्डेनामूत्रकालतः॥

अर्थ—जो योनिवाहर निकलआई हो उसपर घृत चुपड़कर दूध से स्वेदित कर के भीतर को प्रवेश करदेवै। और वेशवार का पिण्डा उस के मुखपर रखकर बांधदेवै जिस से फिर बाहर न निकलने पावै, और मूत्र की आशंका होनेपर उसे खोलदेवै।

यच्चवातविकाराणांकर्मोक्तंतच्चकारयेत्। सर्वव्यापत्सुमतिमान्महायोन्यांविशेषतः

अर्थ—वातविकारों में जो जो चिकित्सा शुभ फलदायक हैं वे सब भी इस जगह सब प्रकार के योनिरोगों में करनी चाहियें परन्तु महायोनि में वातनाशक चिकित्सा का विशेषध्यान उचित है।

नहिवाताद्दृतेयोनिर्नारीणांसंप्रदुष्यति। शमयित्वातमन्यस्यकुर्य्याद्दोषस्यभेषजम्।

अर्थ—वातके अतिरिक्त और किसी कारण से योनिरोग नहीं हुआ करते हैं, इससे प्रथम वातको शमन करके और दोषों की चिकित्सा करनी चाहिये।

पांडुप्रदरमें चिकित्सा।

मूलकल्कंतुरोहीतात्पाण्डुरेप्रदरेपिवेत्। जलेनामलकाद्बीजकल्कंवाससितामधु॥ मधुनामलकाच्चूर्णंरसंवालेहयेत्सिते। न्यग्रोधत्वक्कषायेणलोध्रकल्केनवापिवेत्॥

अर्थ—पांडुप्रदर में रोहेड़े की जड़का कल्क करके जल के साथ पीवै, अथवा आंवले के बीजों को पीसकर चीनी और शहत के साथ पीवै, अथवा आंवले का चूर्ण वा रस शहत के साथ पीवै। अथवा

वड़की छाल के काथ में लोध का कल्क मिलाकर पीवै ।

योनिस्रावमें चिकित्सा ।

आम्रावेक्षौमपट्टंवाभावितंतेऽनुधारयेत् । प्लक्षत्वक्चूर्णपिण्डंवाधारयेन्मधुनाक्षतम् ॥ योन्यांस्नेहाक्तयांलोध्रप्रियंगुमधुकस्यच । धार्यामधुयुतावर्तिःकषायाणाञ्चसर्वशः ॥ स्रावच्छेदार्थमभ्यक्तांधूपयेद्वाघृताप्लुतैः । सरलागुग्गुलुयवैःसतैलकटुमत्स्यकैः ॥

अर्थ—योनिस्राव में वड़की छाल के क्वाथ अथवा लोध की छाल के क्वाथ में रेशमी वस्त्र के एक टुकड़ेको भावना देकर योनि में रखकर वांधदेवै अथवा पाकड़की छाल का चूर्ण वा कल्क का पिंडा शहत के साथ वनाकर योनि में रखदेवै। अथवा योनि में स्नेह लगाकर लोध, प्रियंगु, मुलहटी इन के कल्क को शहत में सानकर वत्ती वनाकर योनि में रखदेवै अथवा सब प्रकार के कषाय रस वाले द्रव्यों के कल्क में शहत मिलाकर योनि में रख देवै । अथवा स्राव को दूर करने के लिये सरलकाष्ट, गूगल, जौ, कटु तेल और मछली इन के कल्क को घी में सानकर योनि में धूप देवै ।

पिच्छिलायोनिकी चिकित्सा ।

कासीशत्रिफलाकाङ्क्षीसाम्रजम्बुस्थि धातकी । पैच्छिल्येक्षौद्रसंयुक्तःचूर्णोवै शद्यकारकः ॥ पलाशसर्जजम्बूत्वक्समं गामोचधातकीः । सपिच्छिलपरिक्लिन्ना स्तम्भनःकल्कइष्यते ॥

अर्थ—पिच्छिल योनिमें कसीस, त्रिफला, अडहरकी जड, आमकी गुठली, जामनकी गुठली, धायके फूल इन के चूर्ण को शहत में सानकर रखने से विशदता होती है । ढाककी छाल, राल, जामनकी छाल, लज्जालू, मोचा और धाय के फूल पीसकर योनि में रखने से गिलगिलापन और क्लिन्नता दूर होजाती है ।

योनिके अन्यदोषों की चिकित्सा ।

स्तब्धानांकर्कशानाञ्चपिण्डोमार्दवकारकः । धारयेद्वेशवारंवापायसंकृशरंतथा ॥ दुर्गन्धानांकषायःस्यात्तैलंवाकल्कएववा चूर्णवासर्वगन्धानांपूतिगन्धापकर्षणम् ॥

अर्थ—योनि की स्तब्धता और कर्कशता दूर करने के निमित्त वेशवार, पायस वा कृशरा का गोला वनाकर योनि में रक्खै योनि की दुर्गन्धि दूर करने के लिये सुगंधित द्रव्यों का तेल, वा कल्क वा सर्वगंध का चूर्ण लगाने से दुर्गन्धि जाती रहती है।

योनि चिकित्साका उपसंहार ।

एवंयोनिषुशुद्धासुगर्भंविन्दन्तियोषितः । अदुष्टेप्राकृतेबीजेजीवोपक्रमणेसति ॥ पञ्चकर्मविशुद्धस्यपुरुषस्यापिचेन्द्रियम् । परीक्ष्यवर्णैर्दोषाणांदुष्टंतद्घ्नैरुपाचरेत् । सलिङ्गाव्यापदोयोनेःसनिदानचिकित्सकाः ॥ उक्ताविस्तरतःसम्यक्मुनिनातत्त्वदर्शिना ।

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए प्रयोगों से योनियों के शुद्ध होने पर तथा प्राकृतकर्म और वीज के निर्दोष होने से गर्भ में जीव

का संचार होने पर स्त्रियों के गर्भ रहजाता है। इसी तरह जो पुरुषों का वीर्य दूषित हो तौ उसे वमन विरेचनादि पंचकर्मों से शुद्ध करके विगडे हुए वीर्य के वर्णकी परीक्षा करके उस दोष के दूर करने वाली चिकित्सा करै।

तत्वदर्शी भगवान् पुनर्वसुने योनि के भिन्न भिन्न रोग, उन के लक्षण, निदान और चिकित्सा विस्तार पूर्वक वर्णन की हैं।

शुक्रदोष का प्रकरण।

पुनरेवाग्निवेशस्तुपप्रच्छभिषजांवरम् ॥ आत्रेयमुपसङ्गम्यशुक्रदोषास्त्वयानघ ! । रोगाध्यायेसमुद्दिष्टाह्यष्टौपुंसामशेषतः ॥ तेषांहेतुंभिषक्श्रेष्ठदुष्टादुष्टस्यचाकृतिम् । चिकित्सितञ्चकार्त्स्न्येनक्लैव्यंयच्चचतुर्विधम् ॥ उपद्रवेषुयोनीनांप्रदरोयश्चकीर्तितः । तेषांनिदानंलिङ्गञ्चचिकित्सांचैवतत्त्वतः ॥ समासव्यासयोगेनप्रब्रूहि भिषजांवर ! । तस्मैशुश्रूषमाणायप्रोवाचमुनिपुङ्गवः ॥ वीजंयस्माद्व्यवायाच्चहर्षयोनिसमुत्थितम् । शुक्रंपौरुषमित्युक्तं तस्माद्वक्ष्यामितच्छृणु ॥

अर्थ—अग्निवेश ने भिषग्वर पुनर्वसु से फिर पूछा कि हे भगवन् ! आपने अष्टोदरीय रोगाध्याय में पुरुषों के आठ प्रकार के शुक्र दोष वर्णन किये थे,सो हे प्रभो! वीर्य के दूषित होने के हेतु, दूषित और निर्दूषित वीर्यकी आकृति, दूषित वीर्य की चिकित्सा, चार प्रकार के क्लैब्यरोग, तथा योनिरोगों में वर्णन किये हुए प्रदररोग का निदान, लक्षण और चिकित्सा संक्षेप और विस्तार दोनों रीति से वर्णन कर दीजिये। यह सुनकर मुनिपुंगव आत्रेयवोले कि पुरुष का वीज अर्थात् शुक्र मैथुन में हर्ष और योनि के स्पर्श से उठता है यह वात प्रथम वर्णन कर दीगई है, अव जिस तरह उस वीर्य में दोष उत्पन्न होते हैं, उसका वर्णन करता हूं।

वीजके विगड़ने में दृष्टान्त।

यथावीजमकालाम्बुकृमिकीटाग्निदूषितम्। नविरोहतिसन्दुष्टंतथाशुक्रंशरीरिणाम् ॥

अर्थ—जैसे कुसमयकी वर्षा, कीडे,कीट वा अग्नि के कारण विगडाहुआ वीज अंकुरित नहीं होता है इसी तरह मनुष्यों का विगडा हुआ वीर्य भी संतान के उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहता है।

वीर्य के दूषित होने का कारण।

अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्म्यानाञ्च सेवनात् । अकालेचाप्ययोनौवामैथुनं नचगच्छतः ॥ रूक्षतिक्तकषायातिलवणाम्लोष्णसेवनात् । मधुरस्निग्धगुर्वन्नसेवनाज्जरयातथा ॥ चिन्ताशोकादविस्रम्भाच्छस्त्रक्षाराग्निभिस्तथा । भयात् क्रोधादभीचारात्व्याधिभिःकर्षितस्यच॥ वेगाघातात्क्षयाच्चापिधातूनांसंप्रदूषणात्। दोषाःपृथक्समस्तावाप्राप्यरेतोवहाःशिराः। शुक्रंसंदूषयन्त्याशुतद्वक्ष्यामिविभागशः ॥

अर्थ—अत्यन्त मैथुन, अत्यन्त शारीरिक परिश्रम, अत्यन्त असात्म्य द्रव्यों का

सेवन, कुसमय मैथुन वा अयोनि से मैथुन, अगम्य योनि में मैथुन, रूक्ष तिक्त और कषाय द्रव्यों का अत्यन्त सेवन, अत्यन्त नमकीन, खट्टे और उष्ण पदार्थों का सेवन, अत्यन्त मीठे, चिकने और भारी अन्न का सेवन (नारीणामरसज्ञानांसरणादित्यपि पाठः), बुढापा, चिन्ता, शोक, प्रकाश स्थानमें स्त्रीगमन, शस्त्रकर्म, अग्नि कर्म और क्षार कर्मका अयोग्य प्रयोग, भय, क्रोध, अभिचार, रोगादि द्वारा कर्षण, मलमूत्रादि वेगों का अवरोध, धातुकी क्षीणता, तथा धातुओं कादूषित होना इन कारणों से संम्पूर्ण दोष पृथक् पृथक् वा मिलकर वीर्यवाही शिराओं में पहुंचकर शुक्र को शीघ्रही दूषित कर देते हैं, अव उन के पृथक् पृथक् लक्षण कहते हैं ।

दूषित शुक्र के भेद ।

फेनिलंतनुरूक्षञ्चविवर्णंपूतिपिच्छिलम् ॥
अन्यधातूपसंसृष्टंअवसादितथाष्टमम् ।

अर्थ—दूषित वीर्य आठ प्रकार का होता है यथा—झागदार, पतला, रूखा, विवर्ण, दुर्गन्धित, गिलगिला, अन्यधातु से मिलाहुआ और अवसादी ।

वात दूषित शुक्र के लक्षण ।

वातेनफेनिलंशुष्कंकृच्छ्रेणपिच्छिलंतनु ॥
भवत्युपहतंशुक्रंनतद्गर्भायकल्पते ।

अर्थ—वातके कारण शुक्र झागदार, शुष्क, पिच्छिल, पतला और कठिनतासे बाहर निकलने वाला होजाता है, वात से विगडा हुआ शुक्र गर्भ उत्पन्न करने के योग्य नहीं होता है ।

पित्त दूषित शुक्र के लक्षण ।

सनीलमथवापीतमत्युष्णंपूतिगन्धिच ॥
दहल्लिङ्गंविनिर्यातिशुक्रंपित्तेनदूषितम् ।

अर्थ—पित्त से बिगडा हुआ शुक्र कुछ नीला, पीला, अत्यन्त उष्ण और दुर्गंधित होता है तथा वाहर निकलने के समय वडा दाह होता है ।

कफ दूषित शुक्र के लक्षण ।

श्लेष्मणावद्धमार्गंतुभवत्यत्यर्थपिच्छिलम् ।

अर्थ—कफदूषित वीर्य का कफके कारण मार्ग रुकजाता है और वह अत्यन्त गिलगिला होजाता है ।

अन्य हेतुओं से दूषित शुक्र के लक्षण ।

स्त्रीणामत्यर्थगमनादभीघातात्क्षयादपि ।
शुक्रंप्रवर्ततेजन्तोःप्रायेणरुधिरान्वयम् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्त्री गमनसे, अभिघातसे वा क्षीण होनेसे जो शुक्र निकलताहै उस में रुधिर मिलारहताहै ।

अवसादी शुक्र के लक्षण ।

वेगसन्धारणात्शुक्रंवायुनाविहितंपथि ।
कृच्छ्रेणयातिग्रथितमवसादितथाष्टमम् ॥
इतिदोषाःसमाख्याताःशुक्रस्याष्टौसलक्षणाः ।

अर्थ—मल मूत्रादि के उपस्थित वेगों के रोकने से शुक्र मार्ग में विहत होकर वडी कठिनता से गांठदार होकर निकलता है, इसेही अवसादी शुक्र कहते हैं ।

इस तरह शुक्र के सलक्षण आठों दोषों की व्याख्या की गई है ।

शुद्ध शुक्र के लक्षण ।

स्निग्धंघनंपिच्छिलञ्चमधुरञ्चाविदाहिच रेतःशुद्धंविजानीयात्श्वेतंस्फटिकसन्निभम् ।

अर्थ—स्निग्ध, घन, पिच्छिल, मधुर, अविदाही और स्फटिकके समान श्वेत शुक्र शुद्ध होता है ।

वाजीकरणयोगोक्तैरुपयोगैःसुखैर्हितैः ॥ रक्तपित्तहरैर्योगैर्योनिव्यापादिकैस्तथा । दुष्टंयथाभवेद्रेतःततस्तत्समुपाचरेत् ॥

अर्थ—वाजी करण योगोक्त सुखदाई प्रयोग, रक्तपित्त नाशक योग, योनिरोग नाशक योग, इन से जो शुक्र बिगड़ जाता है उसकी चिकित्सा निम्न लिखित रीति से करै ।

घृतञ्चजीवनीयंयच्चच्यावनःप्राशएवच । गिरिजश्चप्रयोगश्चरेतोदोषानपोहति ॥ वातान्वितेहिताःशुक्रेनिरूहाःसानुवासनाः । ब्राह्ममामलकीयञ्चपैत्तेशस्तंरसायनम् ॥ मागध्यमृतलोहानांत्रिफलायारसायनैः । कफोत्थितंशुक्रदोषंहन्याद्भल्लातकस्यच । अन्यधातूपसंसृष्टंशुक्रंवीक्ष्यभिषक्कमैः । यथादोषंप्रयोज्यंस्याद्दोषधातुभिषज्यितम् ॥

अर्थ—जीवनीय घृत, च्यवनप्राश और शिलाजतु प्रयोग वीर्य दोषों को दूर करते हैं । वातान्वित शुक्र में निरूहण और अनुवासन वस्ति हित हैं । पित्तान्वित शुक्र में ब्राह्मरसायन और अभयामलकीय रसायन हित हैं । कफान्वित शुक्र में पिप्पली रसायन गुडूचीलौह, त्रिफला रसायन और भल्लातक प्रयोग हित हैं । यदि शुक्र में अन्य धातुका संसर्ग हो तो उसकी परीक्षा कर के यथा दोष उसकी चिकित्सा करने में प्रवृत्त होना चाहिये ।

शुक्रदोष में साधारण प्रयोग ।

सर्पिःपयोरसाःशालिर्यवगोधूमषष्टिकम् । प्रशस्तंशुक्रदोषेषुवस्तिकर्मविशेषतः ॥

अर्थ—शुक्र दोषों में घी, दूध, मांसरस, शालीचांवल, जौ, गेंहू और सांठी चांवल हित है और वस्ति कर्म विशेष करके उपयोगी होती है ।

क्लीवता के अन्यकारण ।

रेतोदोषोद्भवंक्लैव्यंयस्मात्शुद्ध्यैवासिद्ध्यति । अतोवक्ष्यामितेसम्यगग्निवेश ! यथातथम् ॥ बीजध्वजोपघाताभ्यांजरयाशुक्रसंक्षयात् । वैक्लव्यसम्भवस्तस्यशृणु सामान्यलक्षणम् ॥

अर्थ—हे अग्निवेश! शुक्रके दोष से जो क्लीवता होती है वह शुक्रके शुद्ध होनेही पर मिट जाती है । अब मै यथा रीति से तेरे साम्हने कहता हूं । क्लीवताके चार कारण हैं, यथा-वीर्यदोष, ध्वजभंग, वृद्धावस्था और वीर्य की क्षीणता । अब में इन के सामान्य लक्षणों का वर्णन करता हूं ।

क्लीवता के साधारण लक्षण ।

सङ्कल्पप्रणवोनित्यंप्रियांवश्यामपिस्त्रियम् । नयातिलिङ्गशैथिल्यात्कदाचिद्याति

वापुमान् ॥ श्वासार्तःस्विन्नगात्रांसोमोघ संकल्पचेष्टितः । म्लानशिश्नश्चनिर्बीजः स्यादेतत्क्लैब्यलक्षणम् ॥ सामान्यलक्षणं ह्येतद्विस्तरेणप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—यदि मनुष्य इच्छा उत्पन्न होने पर भी लिंग की शिथिलताके कारण अपनी प्रिया और वशीभूता स्त्री के पास भी नहीं जा सक्ता है और जो जाता भी है तो श्वास चलने लगता है, पसीने आजाते हैं, उसका संकल्प व्यर्थ होजाता है, चेष्टा व्यर्थ होजाती है,शिश्नेन्द्रिय शिथिल पड जाती है निर्वीज होजाती है, तब इसी को क्लीवता वा नामर्दी कहते हैं, क्लीवताके ये सामान्य लक्षण हैं अब विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं।

वीजोपघातज क्लीवता के लक्षण ।

शीतरूक्षाल्पसंक्लिष्टविरुद्धाजीर्णभोजनात् शोकचिन्ताभयत्रासात्स्त्रीणांचात्यर्थसेव नात् । अभीचारादविस्रम्भाद्रसादीनांच संक्षयात् ॥ वातादीनामोजमश्चतथैवानश नात्श्रमात् । नारीणामरसज्ञत्वात्पञ्चक र्मापचारतः । वीजोपघातोभवतिपाण्डु वर्णःसुदुर्बलः ॥ अल्पप्राणोल्पहर्षश्चप्रम दासुभवेन्नरः । हृत्पाण्डुरोगतमककामला श्रमपीडितः । छर्द्यतीसारशूलार्त्तःकास ज्वरनिपीडितः । वीजोपघातजंक्लैब्यंध्व जभग्नकृतंशृणु ॥

अर्थ—शीतल, रूखा, अल्प, गृष्ट,विरुद्ध और दुष्पाच्यभोजन, शोक, चिन्ता, भय, त्रास, स्त्रियोंका अत्यन्त सेवन, अभिचार, अविस्रंभ, रसादि धातुओं की क्षीणता, वातादिक धातुओं की विषमता, ओज की क्षीणता, उपवास, श्रम, अरसज्ञस्त्री गमन, वमनादि पंचकर्मों का योगातियोग, इन कारणों से शुक्र का नाश होता है, इससे पुरुष पांडुवर्ण, और अत्यन्त दुर्बल हो-जाता है, उसकी प्रमदा स्त्रियों में अनिच्छा और निश्चेष्टिता होती है, इससेपीछे हृद्रोग, पांडुरोग, तमकश्वास, कामला और श्रम होता है। उस के वमन, अतिसार, शूल और कासज्वर की उत्पत्ति होती है। ये वीजोपघातज क्लीवता के लक्षण हैं । अब ध्वजभंग से हुई क्लीवता के लक्षण कहते हैं ।

ध्वजभंगके हेतु ।

अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धाजीर्णभोजना त् । अत्यम्बुपानाद्विषमपिष्टान्नगुरुभोज नात् ॥ दधिक्षीरानूपमांससेवनाद्व्याधि कर्शणात् । कन्यानाश्चैवगमनादयोनिग मनादपि ।। दीर्घरोम्नींचिरोत्सृष्टांतथैव चरजस्वलाम् । दुर्गन्धांदुष्टयोनिंचतथैव चपरिस्नुताम् ॥ ईदृशींप्रमदांमोहादतिह र्षात्प्रगच्छतः । चतुष्पदाभिगमनाच्छे फसश्चाभिघाततः ॥ अधावनाद्वामेढ्रस्य शस्त्रदन्तनखक्षतात् । काष्ठप्रहारनिष्पेष शूकानांचातिसेवनात् ॥ रेतसश्चप्रतीघा ताद्ध्वजभङ्गःप्रवर्त्तते ।

अर्थ—अत्यन्तखट्टे, नमकीन, क्षारयुक्त, विरुद्ध और दुष्पाच्य भोजन, अत्यन्त जलपान, विषम भोजन, पिष्टान्नभोजन, गुरु-भोजन, दही, दूध और मांसका अत्यन्त

सेवन, व्याधि द्वारा कर्षण, कम उमरकी स्त्री से गमन, अयोनिगमन, दीर्घरोमावली स्त्रीसेगमन, वहुत दिनसे जिसने पुरुषसंसर्ग त्यागदियाहो ऐसी स्त्रीसे गमन, रजस्वला से गमन, दुर्गन्धयोनि गमन, दुष्टयोनि गमन, स्रावयुक्त योनि गमन,ऐसीस्त्रीमें मोह वा हर्ष से गमन करना, गौ भेंस आदि चौपायों से गमन करना, लिंग में चोट लगना, लिंग का प्रक्षालन न करना, उस्तरा, दांत वा नख से घाव होना, लकड़ीकी चोटलगना निष्पेषण (हस्त मैथुन) शूकप्रयोगों का अत्यन्त सेवन और वीर्य का नाश । इन सब कारणों से ध्वजभंग होता है ।

ध्वजभंगके लक्षण ।

श्वयथुर्वेदनामेढ्रेरागश्चैवोपलक्ष्यते ॥ स्फोटाश्चतीव्राजायन्तेलिङ्गपाकोभवत्यपि । मांसवृद्धिर्भवेच्चास्यव्रणाःक्षिप्रंभवन्त्यपि॥ पुलाकोदकसङ्काशःस्रावःश्यावारुणप्रभः। वलयीकुरुतेचापिकठिनश्चपरिग्रहम् ॥ ज्वरस्तृष्णाभ्रमोमूर्च्छाच्छर्दिश्चास्योपजायते ॥ रक्तंकृष्णंस्रवेच्चापिनीलमाविललोहितम् । अग्निनेवचदग्धस्यतीव्रोदाहःसवेदनः ॥ वस्तौवृषणयोर्वापिसीवन्यांवंक्षणेषुच । कदाचित्पिच्छिलोवापिपाण्डुस्रावश्चजायते ॥ श्वयथुश्चभवेन्मन्दस्तिमितोऽल्पपरिस्रवः । चिरात्सपाकंव्रजतिशीघ्रंवाथप्रपद्यते ॥ जायन्ते क्रिमयश्चापिक्लिद्यतेपूतिगन्धिच । प्रशीर्यतेमणिश्चास्यमेढ्रंमुष्कावथापिच ॥ ध्वजभङ्गकृतंक्लैव्यंइत्येतत्समुदाहृतम् । एवंपञ्चविधंकेचित्ध्वजभंगंवदन्त्यपि ॥

अर्थ—मेढ़ में सूजन, वेदना और ललाई उत्पन्न होआती है । बड़े तीव्र फोड़े और लिंगपाक भी होता है, लिंगका मांस बढ़जाताहै, घाव जल्दी २ होजाते हैं, पुलाक के जल के सदृश श्याव और अरुणरंग का स्राव होने लगता है, लिंग में टेढ़ापन, कठिनता और स्तब्धता होती है, ज्वर, तृष्णा, भ्रम, मूर्च्छा, और वमन ये उपद्रव होआते हैं । नीला, लाल, काला, मैला और लोहितवर्ण का स्राव होता है, अग्नि द्वारा जलने के समान तीव्रदाह और वेदना वस्ति, वंक्षण, अंडकोष और सीवनी में होने लगती है, कभी कभी पिच्छिल और पांडुवर्ण का स्राव भी होता है, मन्द स्तिमित और अल्पस्राववाली सूजन होती है, पाक देर में होताहै और कभी २ शीघ्र भी होजाता है, कीड़े पड़जाते हैं, सड़ीहुई गंध आनेलगती है, मणि, मेढ़ और मुष्क विशीर्ण होजाते हैं । यह ध्वजभंग की क्लीवता के लक्षण हैं । कोई कोई ध्वजभंग के पांचभेद होते हैं ।

जरासंभवक्लीवताकेलक्षण ।

क्लैव्यंजरासम्भवंहिप्रवक्ष्याम्यथतच्छृणु । जघन्यमध्यप्रवरंवयस्त्रिविधमुच्यते॥ अथप्रवयसांशुक्रंप्रायशःक्षीयतेनृणाम् । रसादीनांसंक्षयाच्चतथैवावृष्यसेवनात्॥ वलवर्णेन्द्रियाणांचक्रमेणैवपरिक्षयात् । परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहारात्श्रमात्क्लमात् ॥ जरासम्भवजंक्लैव्यंइत्येतैर्हेतुभि

नृणाम् । जायतेतेनसोऽत्यर्थंक्षीणधातुःसु दुर्बलः ॥ विवर्णोविह्वलोदीनःक्षिप्रंव्या धिमथाश्नुते । एतज्जरासम्भवंहिचतु र्थंक्षयजंशृणु ॥

अर्थ—अबहम वृद्धावस्थासे उत्पन्नहुई क्लीवता के लक्षण कहते हैं। मनुष्य की तीन प्रकारकी अवस्था होती हैं, यथा जघन्य (वालापन), मध्य (यौवन) और प्रवर (बुढ़ापा)। बढ़ी हुई अवस्था वाले मनुष्यों का शुक्र प्रायःक्षीण होजाता है क्योंकि रसादि धातु क्षीण होती चली जाती हैं और पुष्टिकारक द्रव्यों का सेवन नहीं करते हैं इस से वल वर्ण और इन्द्रियों का पराक्रम क्रमसे क्षीण होता चला जाता है। आयु के क्षीण होने से आहार की शक्ति न रहने से और श्रम से जरासंभव क्लीवता होती है,इससे मनुष्य की धातु अत्यन्त क्षीण पडजाती हैं और वह दुर्वल होजाता है,वह विवर्ण, विह्वल दीन और शीघ्रही व्याधिग्रस्त होजाता है, यह जरासंभव क्लीवता है अव चौथी क्षयज क्षीणता को सुनो।

क्षयज क्लीवता।

अतिप्रचिन्तनाच्चैवशोकात्क्रोधाद्भयाद पि । ईर्ष्योत्कण्ठात्उद्वेगात्समाविशति योनरः ॥ कृशोवासेवतेरूक्षमन्नपानमथौ षधम् । दुर्वलप्रकृतिश्चैवनिराहारोभवेद्य दि ॥ अथाल्पभोजनाच्चापिहृदयेयोव्य वस्थितः ॥ रसःप्रधानधातुर्हिक्षीयेताशु नरस्ततः। रक्तादयश्चक्षीयन्तेधातवस्त स्यदेहिनः ॥ शुक्रावसानास्तेभ्योहिशु क्रंधामपरंमतम् । चेतसोवातिहर्षेणव्य वायंसेवतेतुयः ॥ शुक्रंतुक्षीयतेतस्यततः प्राप्नोतिसंक्षयम्। घोरांवाव्याधिमवाप्नो तिमरणंवासमृच्छति ॥ शुक्रंतस्माद्विशे षेणरक्ष्यमारोग्यमिच्छता । एतन्निदा नलिंगाभ्यांउक्तंक्लैव्यंचतुर्विधम् ।

अर्थ—जो मनुष्य अत्यन्त चिन्ता,शोक, भय, क्रोध, ईर्ष्या, उत्कंठा और उद्वेग से सदा ध्यानावस्थित रहता है, जो कृश मनुष्य सदा रूक्ष अन्नपान और औषध सेवन करता रहता है, जो मनुष्य दुर्वल प्रकृतिका है, उपवास वहुत करता है, वा अल्प (वा असात्म्य) भोजन करता है उसका हृदयस्थ प्रधान धातुरस शीघ्रही क्षीण होजाता है, उस मनुष्यके रक्तादिक शुक्र पर्य्यन्त सब धातु क्षीण होजाते हैं। और शुक्रही सव धातुओं का तेजस्वरूप है अथवा जो मनुष्य चित्त की अत्यन्त हर्षता से मैथुन में प्रवृत होता है, उसका शुक्र क्षीण होजाता है और क्षयीरोग उपस्थित होता है, अथवा घोर व्याधियों के होने के कारण वह मृत्युका ग्रास होजाता है। इसी हेतु से मनुष्य आरोग्यता की इच्छा करता है उसे शुक्र की अत्यन्त सावधानी से रक्षा करनी चाहिये।

इस तरह चारों प्रकार की क्लीवता के निदान और लक्षण वर्णन किये गये हैं।

असाध्य क्लीवता।

केचित्क्लैव्येत्वसाध्येद्वेध्वजभङ्गक्षयोद्भ

वे॥ वदन्तिशेफसश्छेदाद्वृषणोत्पाटनेनवा।

अर्थ—कोई २ यह कहते हैं कि ध्वजभंगज और क्षयज क्लीवता असाध्य होती हैं और कोई यह कहते हैं कि शेफ में छिद्र होने वा अंडकोशों के फटने से जो क्लीवता होती है वह भी असाध्य होती है।

अन्य क्लीवताओं को असाध्यत्यत्व।

मातापित्रोर्वीजदोषादशुभैश्चकृतात्मनः॥ गर्भस्थस्ययदादोषाःप्राप्यरेतोवहाःशिराः शोषयन्त्याशुतन्नाशाद्रेतश्चाप्युपहन्यते। तत्रसम्पूर्णसर्वाङ्गःसभवत्यपुमान्पुमान्॥ एतेत्वसाध्याव्याख्याताःसन्निपातसमुच्छ्रयात्। चिकित्सितमतस्तूर्द्ध्वंसमासव्यासतःश्रृणु॥

अर्थ—मातापिता के वीज दोष से,अपने पूर्व जन्म के किये हुए अशुभकर्मों से जब गर्भस्थ दोष शुक्रवाही स्रोतों में पहुंचकर उन्हें शुष्क कर देते हैं और उन के शुष्क होने से शुक्र भी नष्ट होजाता है। ऐसा पुरुष सम्पूर्ण अंगोंपाग समेत जन्म लेने पर भी क्लीव होता है। यह क्लीवता सन्निपातकी उदीर्णता के कारण दुश्चिकित्स्य असाध्य होती हैं।

अब यहां से संक्षेप और विस्तार दोनों रीति से क्लीवताकी चिकित्सा का वर्णन करते हैं।

क्लैव्य की संक्षिप्त चिकित्सा।

शुक्रदोषेषुनिर्दिष्टंभेशजंयत्मयानघ!। क्लैव्योपशान्तयेकुर्यात्क्षीणक्षतहितश्चयत्। वस्तयःक्षीरसर्पींषिवृष्ययोगाश्चयेमताः॥ रसायनप्रयोगाश्चसर्वानेतान्प्रयोजयेत्। समीक्ष्यदेहदोषाग्निवलभेषजकालवित्॥ व्यवायहेतुजंक्लैव्यंयत्स्याद्धेतुविपर्य्ययात्। दैवव्यपाश्रयैश्चैवभेषजैश्चाभिचारजम्॥ समासेनैतदुद्दिष्टंभेषजंक्लैव्यशान्तये। विस्तरेणप्रवक्ष्यामिक्लैव्यानांभेषजंपुनः॥

अर्थ—हे अनघ! शुक्रदोष के दूर करने के लिये जो जो चिकित्सा में ने कही हैं तथा क्षीणक्षत में जो जो चिकित्सा उपयोगी है वे सब क्लीवताको दूर करने में उपयोगी हैं। देह, दोष, अग्नि वल औषध और काल का विचार करके वस्ति, दूध घृत वृष्ययोग और रसायन के प्रयोग करने चाहियें। व्यवायहेतुज विपरीतहेतुसे उत्पन्न और अभिशापज क्लीवताको दैवव्यपाश्रय औषधियों से दूर करने का प्रयत्न करै।

क्लीवता दूर करने के ये संक्षिप्त उपाय वर्णन कियेगये हैं अब इसकी चिकित्सा का सविस्तार वर्णन कियाजाता है।

वीजोपघातकीचिकित्सा।

सुस्विन्नस्निग्धगात्रस्यस्नेहयुक्तंविरेचनम्। प्रदद्यान्मतिमान्वैद्यस्ततस्तमनुवासयेत्।पलाशैरण्डमुस्ताद्यैःपश्चादास्थापयेत्ततः॥ वाजीकरणयोगाश्चपूर्वंये समुदाहृताः। भिषजातेप्रयोज्याः स्युः क्लैव्येवीजोपघातजे॥

अर्थ—क्लीवरोगी को अच्छी तरह अ-

भ्यक्त करके पसीने देवै फिर स्नेह युक्त विरेचन देवै, तत्पश्चात् अनुवासन वस्ति देवै। पीछे ढाक, अरंड और मोथाके क्वाथ आदि से आस्थापन देवै और पहिले जो बाजीकरण प्रयोग वर्णन करदिये गये हैं वे सब इस वीजोपघातज क्लीवता में हितहैं।

ध्वजभंग में चिकित्सा।

ध्वजभंगकृतंक्लैव्यंज्ञात्वातस्याचरेत्क्रियाम्। प्रदेहान्परिषेकांश्चकुर्य्याद्वारक्तमोक्षणम्॥ स्नेहपानश्चकुर्वीतसस्नेहंवाविशोधनम्। अन्वासनंततःकुर्य्यादथवास्थापनंपुनः॥ व्रणवच्चक्रियाःसर्वास्तत्रकुर्याद्विचक्षणः।

अर्थ—ध्वजभंगज क्लीवता में प्रदेह, परिषेक, रक्तमोक्षण, स्नेहपान और स्नेह युक्त विरेचन हित है। पीछे अनुवासन और आस्थापन करके व्रणवत् क्रियाकरै।

जरासंभवक्लैवकीचिकित्सा।

जरासम्भवजेक्लैव्येक्षयजेचैवकारयेत्।
स्नेहस्वेदोपपन्नस्यसस्नेहंशोधनंहितम्॥
क्षीरसर्पिर्वृष्ययोगावस्तयश्चैवयापनाः।
रसायनप्रयोगाश्चतयोर्भेषजमुच्यते॥
विस्तरेणैतदुद्दिष्टंक्लैव्यानांभेषजंमया।

अर्थ—जरासंभव और क्षयज क्लीवतामें स्नेहन स्वेदन करके स्नेहयुक्त विरेचन देवै। दूध, घी, वृष्ययोग, क्षीरवस्ति और रसायन प्रयोग इन रोगों में हित हैं।

यह क्लीवरोगोंकी विस्तारपूर्वक चिकित्सा वर्णन कीगई है।

प्रदरवर्णन।

यःपूर्वमुक्तःप्रदरःशृणुहेत्वादिभिस्तुतम्॥ यात्यर्थंसेवतेनारीलवणाम्लगुरूणिच। कटून्यथविदाहीनिस्निग्धानिपिशितानिच॥ ग्राम्यौदकानिसेव्यानिकृसरंपायसंदधि। शुक्तमस्तुसुरादीनिभजन्त्याःकुपितोऽनिलः॥ रक्तंप्रमाणमुत्क्रम्यगर्भाशयगताःशिराः। रजोवहाःसमाश्रित्यरक्तमादायतद्रजः॥ यस्माद्विवर्द्धयत्याशुरक्तपित्तंसमारुतम्। तस्मादसृग्दरंप्राहुरेतत्तन्त्रविशारदाः॥ रजःप्रदीर्यते यस्मात्प्रदरस्तेनसस्मृतः।

अर्थ—जो प्रथम प्रदररोग वर्णन किया गया है अब उस के हेतु आदिका वर्णन करते हैं। जो स्त्री अत्यन्त खेद, नमकीन और भारी पदार्थों का सेवन करती हैं,जो कटु, बिदाही, स्निग्ध तथा ग्राम्य और औदक पशुओं का मांस सेवन करती है, जो खिचड़ी, खीर, दही, शुक्त और सुरा- आदिका अत्यन्त सेवन करती हैं, उनकी वायु कुपित होकर रक्तको प्रमाण से अ- धिक निकालने लगती है, उस समय रजोवाही शिराओं में वायु रक्त के साथ पहुंचकर रजको बढ़ादेती है। शास्त्रज्ञ लोग इस वायुसंसृष्ट रक्तपित्त को रक्तप्रदर कहते हैं। रजके प्रदीर्ण होनेसे इसे प्रदर कहते हैं।

प्रदरके भेद।

सामान्यतःसमुद्दिष्टंकारणंलिङ्गमेवच॥
चतुर्विधंव्यासतस्तुवाताद्यैःसन्निपाततः।
अतःपरंप्रवक्ष्यामिहेत्वाकृतिभिषग्जितैः॥

अर्थ—प्रदर के कारण और लक्षण संक्षेप से कहेगये हैं। यह वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातक चार प्रकार का होता है, अब इन के हेतु, लक्षण और चिकित्सा का विस्तारपूर्वक वर्णन कियाजाता है।

वातजप्रदर के हेतु।

रूक्षादिभिर्मारुतस्तुरक्तमादायपूर्ववत्।
कुपितःप्रदरंकुर्यालिङ्गंतस्यावधारयेत् ॥

अर्थ—पूर्वोक्तरूक्षादि द्रव्योंके अत्यन्त सेवन से कुपित हुई वायु रक्त को ग्रहण करके प्रदर उत्पन्न करती है अब इसके लक्षणों को सुनो।

वातजप्रदर के लक्षण।

फेनिलंतनुरूक्षञ्चश्यावंचारुणमेवच।
किंशुकोदकसङ्काशंसरुजंवाथनीरुजम् ॥
कटीवंक्षणहृत्पार्श्वपृष्ठश्रोणिषुमारुतः।
करोतिवेदनांतीव्रांएतद्वातात्मकंविदुः ॥

अर्थ—वातज प्रदर में रक्त झागदार, पतला, रूखा, श्याववर्ण, अरुण और टेसू के फूलों के जल के समान होता है इसमें वेदना होती भी है और नहीं भी होती। इस रोग में वायु के कारण कमर, वंक्षण, हृदय, पसली, पीठ और श्रोणी में तीव्र वेदना होने लगती है।

पित्तजप्रदर के हेतु।

अम्लोष्णलवणक्षारैःपित्तंप्रकुपितंयदा।
पूर्ववत्प्रदरंकुर्याल्लक्षणंतत्कृतंशृणु ॥

अर्थ—खट्टे, गरम, नमकीन और क्षार पदार्थों के सेवन से पित्त प्रकुपित होकर जब पूर्ववत् प्रदररोग को उत्पन्न करता है तब उस के लक्षणोंको सुनो।

पित्तजप्रदर के लक्षण।

सनीलमथवापीतमत्युष्णमासितंतथा।
नितान्तरक्तंस्रवतिमुहुर्मुहुरथार्तिमत् ॥
विदाहरागतृण्मोहज्वरभ्रमसमायुतम्।
असृग्दरंपैत्तिकंतुश्लैष्मिकंतुप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—पित्तजप्रदर में नीला, पीला, अत्यन्त उष्ण काला और वेदनायुक्त बार बार बहुतसा रक्त निकलता है इसमें दाह, राग, तृषा, मोह, ज्वर और भ्रम ये उपद्रव होते हैं ये पित्तज प्रदर के लक्षण हैं अब कफज प्रदरका वर्णन कियाजाताहै।

कफज प्रदरके हेतु।

गुर्वादिभिर्हेतुभिश्चपूर्ववत्कुपितःकफः।
प्रदरंकुरुतेतस्यलक्षणंतत्त्वतःशृणु ॥

अर्थ—गुरु आदि पदार्थों के सेवन करने से कुपित हुआ कफ प्रदररोग को उत्पन्न करता है अब इसके लक्षणों का वर्णन करते हैं।

कफज प्रदरके लक्षण।

पिच्छिलंपाण्डुवर्णंचगुरुस्निग्धंचशीतलम्
स्रवत्यसृक्कफनेद्धतथामंदरुजाकरम् ॥
छर्द्यरोचकहृल्लासश्वासकाससमन्वितम्

अर्थ—कफज प्रदर में गिलगिला, पांडु वर्ण, भारी, स्निग्ध, शीतल और झागदार रक्त निकलता है, इस से मर्म स्थानों में वेदना होती है। तथा वमन, अरुचि, हृल्लास, श्वास और खांसी ये भी उस में होते हैं।

सान्निपातिक प्रदरको हेतु ।

वक्ष्यतेक्षीरदोषाणांसामान्यमिहकारणम् यत्तदेवत्रिदोषस्यकारणंप्रदरस्यतु ।

अर्थ—स्तन्यदोष के जो सामान्य कारण कहे जांयगे वेही सान्निपातिक प्रदर के कारण हैं ।

सान्निपातिक प्रदरके लक्षण ।

त्रिलिङ्गसंयुतंविद्यात्नैकावस्थमसृग्दरम् ॥

अर्थ—सान्निपातिक प्रदर में तीनों दोषों के मिलित लक्षण होते हैं, इसकी एकसी अवस्था नहीं रहती है ।

दुश्चिकित्स्यस्त्री ।

नारीत्त्वतिपरिक्लिष्टायदाप्रक्षीणलोहिता सर्वहेतुसमाचारादतिवृद्धस्तथानिलः ॥ रक्तमार्गेणसृजतिप्रत्यनीकगुणंकफम् । दुर्गन्धंपिच्छिलंपीतंविदग्धंपित्ततेजसा ॥ वसांमेदश्चयावद्धिसमुपादायवेगवान् ॥ सृजत्यपत्यमार्गेणसर्पिर्मज्जावसोपमम् ॥ शश्वत्स्रवत्यथास्रावंतृष्णादाहज्वरान्विताम् । क्षीणरक्तांदुर्बलाश्चतामसाध्यांविवर्जयेत् ॥

अर्थ—जब स्त्री अत्यन्तरक्तस्रावके कारण परिक्लिष्ट और अत्यन्त क्षीणरक्त होजाती है तब तीनों दोष अपना प्रभाव जमालेते हैं इन में से वायु अत्यन्त कुपित होकर रक्त मार्ग द्वारा विपरीत गुण कफ को निकालती है, उस समय पित्त के तेज के कारणरक्त दुर्गन्धित, पिच्छिल, पीला और विदग्ध होजाता है । तब बलवान् वायु शरीर की सम्पूर्ण वसा और मेद को ग्रहण करके योनि द्वारा घी, मज्जा और चर्बी के सदृश निरन्तर निकालती रहती है । इस रोग में स्त्री तृषा, दाह और ज्वर से भी पीड़ित रहती है । ऐसीक्षीण-रक्ता और दुर्बला स्त्री चिकित्साके योग्य नहीं होती है ।

विशुद्धऋतुकेलक्षण ।

मासान्निष्पन्नदाहार्तिपञ्चरात्रानुबन्धिच । नैवातिबहुनात्यल्पमार्तवंशुद्धमादिशेत् ।

अर्थ—जो स्त्री महीने के महीने ऋतु-वती होती है और ऋतुकाल में दाह वा यातना कुछ नहीं होता और रजोदर्शन पांचराततक रहता है और रुधिर भी न बहुत अधिक न बहुत थोड़ा निकलता है, उसे शुद्ध कहते हैं ॥

विशुद्धआर्तव के लक्षण ।

गुञ्जाफलसमानञ्चपद्मालक्तकसन्निभम् ॥ इन्द्रगोपकसङ्काशमार्तवंशुद्धमेवतत् ।

अर्थ—जो रुधिर चिरमिठी, लालकमल, महावर वा वीरबहुटी के रंग के समान लाल लाल होता है वह शुद्ध आर्तव है ।

योनीनांवातलाद्यानांयदुक्तंइहभेषजम् ॥ चतुर्णांप्रदराणाञ्चतत्सर्वंकारयेद्भिषक् । रक्तातिसारिणाञ्चैवतथालोहितपित्तिनाम् ॥ रक्तार्शसाञ्चयत्प्रोक्तंभेषजंतच्च कारयेत् ।

अर्थ—वातलादि योनियों की जो जो चिकित्सा कहीगई हैं वेही चारों प्रकार के प्रदरों में करना श्रेठ है । रक्तातिसार, रक्तपित्त और खूनी बवासीर में जो जो

चिकित्सा कहीगई हैं वे भी सब यहां करनी चाहियें ।

धात्रीस्तनस्तन्यसम्पदुक्ताविस्तरतःपुरा । स्तन्यसञ्जननञ्चैवस्तन्यस्यचविशोधनम् वातादिदुष्टेलिङ्गञ्चक्षीणस्यचचिकित्सितम् ॥ तत्सर्वमुक्तंयेत्वष्टौक्षीरदोषाःप्रकीर्तिताः । वातादिष्वेबतान्विद्यात्शास्त्रचक्षुर्भिषक्तमः ॥ त्रिविधास्तुयतःशिष्यास्ततोवक्ष्यामिविस्तरम् ।

अर्थ—जातिसूत्रीय अध्याय में धात्रीके स्तनसंबंधी दूध के गुण विस्तारपूर्वक वर्णन करदिये गये हैं तथा उसीस्थल में दूध के उत्पन्न करनेवाले और शुद्ध करनेवाले उपायभी वर्णन कियेगये हैं । वातादिदोषों से दूषित स्तन्य के लक्षण और चिकित्सा भी वर्णन कीगई हैं । तथा अष्टोदरीय अध्याय में दूध के दोषोंका वर्णन भी किया गया है । विद्वान् वैद्य स्तन्य में वातादि दोषों को देखकर उस के अनुसारही चिकित्सा करै । परन्तु शिष्य तीन प्रकार के होते हैं, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट अतएव इसका विस्तारपूर्वक वर्णन कियाजाता है जिस से प्रत्येक प्रकार के शिष्य को उपयोगी होवै ॥

अजीर्णासात्म्यविषमविरुद्धात्यर्थभोजनात् ॥ लवणाम्लकटुक्षारप्रक्लिन्नानाञ्च सेवनात् । मनःशरीरसन्तापादस्वप्नान्निशिचिन्तनात् ॥ प्राप्तवेगप्रतीघातादप्राप्तोदीरणेनच । परमान्नंगुडकृतंकृसरंदधितत्स्यकम् ॥ अभिष्यन्दीनिमांसानि ग्राम्यानूपौदकानिच । भुक्त्वाभुक्त्वा दिवास्वप्नान्मद्यस्यातिनिषेवणात् ॥ अनायासादभीघातात्क्रोधाच्चातङ्ककर्शनैः दोषाःक्षीराशयाःप्राप्याशिराःस्तन्यंप्रदूष्य तत् ॥ कुर्युरष्टविधंभूयोदोषास्तत्तन्निबोधत ।

अर्थ—दुष्पाच्य, असात्म्य, विषम, विरुद्ध और अत्यन्त भोजन करने से, नमकीन, खट्टे, खारे, प्रक्लिन्न अन्न के अत्यन्त सेवन से, मानसिक ताप, शारीरिक संताप, रात्रिजागरण, चिन्ता, मलमूत्र के उपस्थित वेगों का अवरोध, अप्राप्तवेगों के जोर मारकर करने का प्रयत्न, गुड़का अन्न (धानीआदि) खिचड़ी, दही, मछली, अभिष्यन्दी ग्राम्य, आनूप, और औदकजीवों का मांस भोजन करतेही दिन में सो रहना, अत्यन्त मद्यपान, शारीरिक परिश्रम का अवरोध, चोट, क्रोध और व्याधियोंसे कृश होना, इन संपूर्ण कारणों से दोष क्षीराशय में पहुंचकर, क्षीरवाहिनी शिराओंको दूषित कर के स्तन्य को दूषित करदेते हैं । इस से आठ प्रकार के स्तन्यदोष उत्पन्न होते हैं । अब उन सबका वर्णन करते हैं ।

स्तन्यदोष के लक्षण ।

वैरस्यंफेनसंघातोरौक्ष्यंचेत्यानिलात्मकम् ॥ पित्ताद्वैवर्ण्यदौर्गन्ध्येस्नेहपैच्छिल्यगौरवम् कफाद्भवतिरूक्षाद्यैरनिलःस्वैःप्रकोपणैः ॥ क्रुद्धःक्षीराशयंप्राप्यरसंस्तन्यस्यदूषयेत् । विरसंवातसंसृष्टंकृशीभवतितत्पिबन् ॥ नचास्यस्वदतेक्षीरंकृच्छ्रेणचविवर्द्धते ।

अर्थ—वात से दूषित स्तन्य बिरस, झागदार, रूखा होता है। पित्त से दूषित स्तन्य विवर्ण, दुर्गन्धयुक्त होता है, तथा कफदूषित स्तन्य चिकना, गिलगिला और भारी होता है।

इस तरह रूक्षादि हेतुओं से वायु कुपित होकर क्षीराशय में अपना अधिकार जमाकर स्तन्यरस को दूषित करदेती है। ऐसे विरस और वात दूषित दुग्धको पीने वाला वालक कृश होजाता है। इस वालक को दूध अच्छा नहीं लगता है और वह वडी कठिनता से वढता है।

वात दूषित दुग्ध के अवगुण।

तथैववायुःकुपितःस्तन्यमन्तर्विलोडयन् ॥
करोतिफेनसङ्घातंतत्तुकृच्छ्रात्प्रवर्तते।
तेनक्षामस्वरोबालोबद्धविण्मूत्रमारुतः ॥
वातिकंशीर्षरोगंवापीनसंबाधिगच्छति।
पूर्ववत्कुपितःस्तन्येस्नेहंशोषयतेऽनिलः॥
रूक्षंतत्पिवतोरौक्ष्याद्बलह्रासश्चजायते।

अर्थ—इसी तरह से वायु कुपित होकर दूध को भीतरही भीतर विलोडित करके दूध को झागदार करदेती है और यह दूध वहुत थोडा२ वाहर निकलता है। इस दूध के पीने से वालक का शव्द क्षीण पडजाता है, विष्ठा, मूत्र और अधोवायु रुकजाते हैं, फिर वातज सिर के रोग, और पीनस रोग उत्पन्न होते हैं। पूर्ववत् कुपित हुई वायु स्तन्य की चिकनाई को सोखलेती है। इस रूक्ष दूध के पीने वाले वालकका दूध की रूक्षता के कारण वल क्षीण होजाता है।

पित्त दूषित दुग्ध के अवगुण।

पित्तमुष्णादिभिःक्रुद्धंस्तन्याशयमभिप्लुतम् ॥ करोतिस्तन्यवैवर्ण्यंनीलपीतासितादिकम्। विवर्णगात्रःस्विन्नःस्यात्तृष्णालुर्भिन्नविट्शिशुः॥ नित्यमुष्णशरीरश्च नाभिनन्दतितत्स्वयम्। पूर्ववत्कुपितेपित्तेदौर्गन्ध्यंक्षीरमृच्छति॥ पांड्वामयस्तद्वतःकामलाचभवेच्छिशोः।

अर्थ—उष्णादि पदार्थों के सेवन से पित्त कुपित होकर दुग्धाशय में उत्पात कर के दूध में नीलापन, पीलापन और कालापन आदि विवर्णताओंको करता है।

ऐसे दूधको पीनेवाले वालकका देह विवर्ण, पसीनों से युक्त होता है। उसे तृषा वहुत लगती है, उसका मल फटजाताहै और शरीर सदा गरम रहता है और उस दूध में वालक की रुचि नहीं होती है इसी तरह पित्तके कुपित होने पर दूध में दुर्गन्ध आने लगती है और पीछे उस वालक के पांडुरोग और कामला रोग होजाते हैं।

कफदूषित दुग्ध के अवगुण।

स्निग्धगुर्वादिभिः श्लेष्माक्षीराशयगतः स्त्रियाः॥ स्नेहान्वितत्वात्तत्क्षीरमतिस्निग्धंकरोतितु। छर्दनःकुथनस्तेनलालालुर्जायतेशिशुः॥ नित्योपदिग्धैःस्रोतोभिर्निद्रालस्यसमान्वितः। श्वासकासपरीतस्तुप्रसेकतमकान्वितः॥ अभिभूय कफःस्तन्यंपिच्छिलंकुरुतेयदा। लालालुःशीनवक्त्राक्षिर्जडःस्यात्तुपिवन्शिशुः॥

कफःक्षीराशयगतोगुरुत्वात्क्षीरगौरवम्। अतिस्नेहान्वितंपीत्वाबालोहृद्रोगमृच्छति अन्यांश्चविविधान्रोगान्कुर्यात्क्षीरसमाश्रितान्। क्षीरेवातादिभिर्दुष्टेसम्भवन्तितदात्मकाः ॥

अर्थ—स्निग्ध और भारी पदार्थो के सेवन करने से कफ दुग्धाशय में जाकर स्वयं स्नेहान्वित होनेके कारण दूध को अत्यन्त चिकना करदेता है। इस दूध के पीने से वालक बमन करने लगता है किंचता है और उसकी लार टपकने लगती है। कफके कारण वालक के स्रोतों के अत्यन्त लिहसजाने से निद्रा,आलस्य, श्वास, खांसी, प्रसेक और तमककी अधिकता होती है। जब कफ दूध को विगाड कर गिलगिला कर देता है तव उस दूध के पीने वाले वालक के लार पडती है, उस के मुखपर सूजन होती है और आंखें पथराईसी होजाती हैं। दुग्धाशय में कफ जाकर भारी होने के कारण दूध को भारी कर देता है, उस अति स्निग्ध दूध के पीने से वालक के हृद्रोग होजाता है। तथा क्षीर संबंधी और भी अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं। तथा वातादि दोषों से दूषित दुग्ध में वात से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं।

स्तन्यशोधनमेंवमन।

तदादौस्तन्यशुध्यर्थंधात्रींस्नेहोपपादिताम्। संस्वेद्यचघृताभ्यक्तांवमनेनोपपादयेत् ॥ वचाप्रियंगुयष्ट्याह्वफलवत्सकसर्षपैः। कल्कैर्निम्बपटोलानांकाथैर्वालवणैर्वमेत् ॥ सम्यग्वान्तांयथान्यायंकृतसंसर्जनांपुनः।

अर्थ—दूध के शुद्ध करने के निमित्त प्रथमही धात्री को स्निध करै और फिर घृतकी मालिश कराके पसीने देकर नीचे लिखी वमनकारक औषध देवै, यथा—वच, प्रियंगु, मुलहटी, इन्द्रजौ, सरसों, इनका कल्क अथवा नीम और परवल के क्काथ में नमक मिलाकर गरम २ देवे। जब अच्छीतरह वमन होचुकै तव पेयादि क्रमका पालन करै।

विरेचनविधि।

दोषकालबलापेक्षीस्नेहंपीत्वाविरेचयेत्। त्रिवृतामभयांवापित्रिफलारससंयुताम्॥ पाययेत्मधुसंयुक्तामभयाञ्चापिकेवलाम्। पाययेन्मूत्रसंयुक्तंविरेकञ्चापिशास्त्रवित्॥ अथसम्यग्विरिक्तांचकृतसंसर्जनांततः।

अर्थ—फिर दोष, काल और बल का विचार कर के स्नेहन कराके विरेचन देवै। निसोथ अथवा हरड़ के कल्कको त्रिफला के रस के साथ देवै अथवा केवल त्रिफला के क्काथ में शहत मिलाकर पान करावै, अथवा केवल हरड़ को गोमूत्र के साथ देवै। जब अच्छीतरह विरेचन होजाय तब पेयादि क्रमका पालन करावै।

स्तन्यदोषमें पथ्य।

ततोदोषावशेषघ्नैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥ शालयःषष्टिकावास्युःश्यामाकोभोजने हिताः। प्रियङ्गवःकोरदूषायवावेणुयवा

स्तथा ॥ वंशवेत्रकडायाश्चसस्नेहायूषसं स्कृताः । मुद्गान्मसूरान्यूषार्थेकुलत्थांश्च प्रकल्पयेत् ॥ निम्बवेत्राग्रकुलकवार्ताका मलकैःशृतान् । सव्योषसैन्धवान्यूषान् कारयेत्स्तन्यशोधनान् ॥ शशान्कपिञ्ज लानेणान्संस्कृतांश्चप्रकल्पयेत् । शार्ङ्ग ष्टासप्तपर्णत्वगश्वगन्धाशृतंजलम् ॥

अर्थ—तदनन्तर शेष दोषोंके दूर करने के लिये दोषनाशक अन्नपान देवै । शाली-चांवल, साठी चांवल, सोंखिया इनका भोजन हितहै । प्रियंगु, कोदों, जौ, वेणु-यव, वांसकी कोंपल, वेतकीकोंपल इनका घी में छोंकाहुआ शाक, मूंग, मसूर और कुलथी का यूष देवै । नीम के पत्ते वेत, की कोंपल, परवल, बेंगन और आंवला इन के साथ सिद्ध किये हुए यूषोंमें सोंठ, मिरच, पीपल और सेंधानमक डालकर सेवन करने से स्तन्य शुद्ध होता है । खर्गोश, तीतर और हिरण के अच्छी-तरह सिद्ध कियेहुए मांसरस देवै । शार्ङ्गष्टा, सप्तपर्णकी छाल और असगंध डालकर औटाया हुआ जल पीनेको देवै ॥

स्तन्यशोधकअन्यप्रयोग ।

पाययेताथवास्तन्यशुद्धयेकटुरोहिणीम् । अमृतासप्तपर्णत्वक्काथंचैवसनागरम् ॥ किराततिक्तकक्काथंश्लोकपादेरितान्पिवे त् । त्रीनेतान्स्तन्यशुध्यर्थमितिसामान्य भेषजम् ॥ कीर्तितंस्तन्यदोषाणांपृथग न्यांनिबोधत ।

अर्थ—स्तन्य की शुद्धि के निमित्त कुटकी का क्काथ भी हित है । अथवा गि-लोय और सप्तपर्णी की छाल के क्काथको सोंठ डालकर पान करावै अथवा चिरायते का क्काथ पान करावै । इसतरह आधे २ श्लोक में लिखेहुए तीन प्रयोगों मेंसे किसी को दूध के शुद्ध करने के निमित्त देवै । ये संक्षिप्त योग कहे गये हैं अब विस्तृत योगों को कहते हैं ॥

स्तन्यदोषमेंविशेष चिकित्सा ।

प्रपिबेद्विरसक्षीराद्राक्षामधुकशारिबाः ॥ श्लक्ष्णपिष्टांपयस्याञ्चसमालोड्यसुखा म्बुना ।

अर्थ—जिस स्त्री का दूध विरस हो वह दाख, मुलहटी, शारिवा अथवा क्षीरकाकोली को महीन पीसकर गरम गरम जल में मिलाकर पीवै ॥

स्तन्यशोधक लेप ।

पञ्चकोलकुलत्थैश्चपिष्टैरालेपयेत्स्तनौ ॥ शुष्कौप्रक्षाल्यनिर्दुह्यात्तथास्तन्यंविशुध्यति

अर्थ—पंचकोल और कुलथी को पीस कर स्तनों पर लेप करै, सूखने पर खूब धोकर साफ कर देवै ।

फेनिल स्तन्यका उपाय ।

फेनसंघातवत्क्षीरंयस्यास्तांपाययेतच ॥ पाठानागरशार्ङ्गष्टामूर्वाःपिष्टासुखाम्बुना अञ्जनंतगरंदारुबिल्वमूलंप्रियंगवः ॥ स्तनयोःपूर्ववत्कार्यंलेपनंक्षीरशोधनम् ।

अर्थ—झागदार दूध होवे तौ पाठा, सोंठ, शार्ङ्गष्टा, मरोड़फली इनको पीसकर सुहाते हुए गरम जलके साथ पान करावै। अथवा

अंजन, तगर, देवदारु, बिल्वमूल और प्रियंगु इन को पीसकर स्तनो पर लेप करै।

किराततिक्तकंशुंठीमामृताक्काथयेद्भिषक्। तत्काथंपाययेत्धात्रींस्तन्यदोषनिवर्हणम्। स्तनौचालेपयेत्पिष्टैर्यवगोधूमसर्षपैः।

अर्थ—चिरायता, सोंठ और, गिलोय का क्काथ करके स्तन्य शोधन के निमित्त धात्री को पान करावै, तथा जौ, गेंहूं और सरसों को पीसकर स्तनों पर लेप करै।

रूक्षतानाशक प्रयोग।

षड्विरेकाश्रितीयोक्तैरौषधैःस्तन्यशोधनैः रूक्षक्षीरापिवेत्क्षीरंतैर्वासिद्धंघृतंपिवेत्। पूर्ववज्जीवकाद्यञ्चपञ्चमूलंप्रलेपनम्॥ स्तनयोःसंविधातव्यंसुखोष्णंस्तन्यशोधनम्।

अर्थ—जो दूधा रूखा पडजाय तौ सूत्र स्थान के षडविरेकाश्रितीय अध्याय में कहीं हुई स्तन्य शोधक औषध के साथ सिद्ध किया हुआ दूध वा घी पान करावै। तथा जीवकादि गणोक्त द्रव्य वा लघु पंचमूल को पीसकर सुहाते हुए गरम जल के साथ स्तनों पर लेप करै।

विवर्णतानाशक प्रयोग।

यष्टीमधुकमृद्वीकापयस्यासिन्धुवारिका॥ शीताम्बुनापिवेत्कल्कंक्षीरवैवर्ण्यनाशनम्। द्राक्षामधुककल्केनस्तनौवास्याःप्रलेपयेत्॥ प्रक्षाल्यवारिणाचैवनिर्दुह्यात्तौपुनःपुनः।

अर्थ—मुलहटी, दाख, क्षीरकाकोली और संभालू इनके कल्क को सुहाते हुए गरम जल के साथ पान करै, तौ दूधकी विवर्णता दूर होती है। इस में दाख और मुलहटी के कल्क का लेप स्तनों पर करै और सूखने पर खूब धो डालै।

दुर्गंधिनाशक प्रयोग।

विषाणिकाजशृंग्यौचात्रिफलांरजनींवचाम्। पिवेत्क्षीराम्बुनापिष्ट्वाक्षीरदौर्गन्ध्यनाशनम्॥ लिह्याद्वाप्यभयाचूर्णंसव्योषंमाक्षिकाप्लुतम्। क्षीरदौर्गन्ध्यनाशार्थंधात्रीपथ्याशिनीतथा॥ शारिवोशीरमंजिष्ठाश्लेष्मान्तकसचन्दनैः। पत्राम्बुचन्दनोशीरैःस्तनौवास्याःप्रलेपयेत्॥

अर्थ—जो दूध में दुर्गन्ध आती हो तो मेंढासिंगी, अजशृंगी, त्रिफला, हलदी, वच इन को दुग्ध और जल के साथ पीसकर पीवै अथवा हरड त्रिकुटा इन के चूर्ण को शहत में मिलाकर चाटै, इस में स्त्रीको पथ्य से रहना उचित है। तथा शारिवा, खस, मजीठ, लिहसोडे की जड़ और रक्त चन्दन अथवा तेजपात, नेत्रबाला, रक्तचन्दन और खस इनका लेप स्तनों पर करै।

दूधकी स्निग्धताका उपाय।

स्निग्धक्षीरादारुमुस्तपाठाःपिष्ट्वासुखाम्बुना। पीत्वाससैन्धवाःक्षिप्रंक्षीरशुद्धिमवाप्नुयात्॥

अर्थ—जो दूध में चिकनाई हो तौ देवदारु, मोथा, पाठा, इन को सेंधे नमकके साथ पीसकर सुहाते हुए गरम जल के साथ पीवै॥

दूधकी पिच्छिलता का उपाय ।

अपिबेत्पिच्छिलक्षीराशार्ङ्गष्टामभयांव चाम् । मुस्तनागरपाठाश्चपीताःस्तन्याविशोधनम् ॥ तक्रारिष्टान्पिबेदर्शसांयानिदर्शिताः । विदारीविल्वमधुकैःस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में पिच्छिलता हो तौ शार्ङ्गष्टा, हरड़, वच, मोथा, सोंठ और पाठा इन को घोटकर पीवै । अर्शरोग में कहे हुए तक्रारिष्ट भी इस रोग में हित है । विदारीकंद, वेल और मुलहटी का स्तनों पर लेप करना चाहिये ।

दूधकी गुरुताका उपाय ।

त्रायमाणामृतानिम्बपटोलत्रिफलाशृतम् । गुरुक्षीरापिबेदेतत्स्तन्यदोषविशुद्धये । पिबेद्वापिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम । बलानागरशार्ङ्गष्टामूर्वाभिर्लेपयेत् स्तनौ ॥ पृष्णिपर्णीपयस्याभ्यांस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में भारापनहो तौ त्रायमाणा, गिलोय, नीमकी छाल, परवल और त्रिफला का क्काथ पीवै । अथवा पीपलामूल चव्य, चीता, सोंठ का क्काथ पान करै अथवा खरैटी, सोंठ, शार्ङ्गष्टा और मूर्वा अथवा पृष्णिपर्णी और क्षीरकाकोली का लेप करै ।

अष्टावेतेक्षीरदोषाहेतुलक्षणभेषजैः । निर्दिष्टाःक्षीरदोषोत्थास्तथोक्ताःकोचिदामयाः ॥

अर्थ—ये आठ प्रकार के क्षीर दोष हेतु, लक्षण और चिकित्सा के साथ वर्णन किये गये हैं, तथा दूषित दूध के पीने से जो वालकों के उपद्रव होते हैं, उन का वर्णन भी किया गया है ।

वालकों की मात्रा का विचार ।

दोषदूष्यमलाश्चैवमहतांव्याधयश्चये । तएवसर्वेबालानांमात्रात्वल्पतरामता । निवृत्तिर्वमनादीनांमृदुतांपरतन्त्रताम् ॥ वाक्चेष्टयोरसामर्थ्यंवीक्ष्यबालेषुशास्त्रवित् । भेषजंचाल्पमात्रन्तुयथाव्याधिप्रयोजयेत् ॥ मधुराणिकषायाणिक्षीरवन्तिमृदूनिच । प्रयोजयेद्भिषग्बालेमतिमानप्रमादतः ॥

अर्थ—दोष, दूष्य, मल और वडे मनुष्यों के होने वाली सम्पूर्ण व्याधियां वालकों के भी होती हैं परन्तु वालकको औषधकी मात्रा वहुत कम दीजाती है, क्यों कि ये कोमल और परतंत्र होते हैं । और वोलकर अपने मनका हाल प्रगट नहीं कर सकते हैं और न किसी प्रकार की चेष्टा कर सकते हैं इस से बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि व्याधि के अनुसार अल्पमात्रा का प्रयोग करै । चिकित्सक को उचित है कि वालकों को मधुर, कषाय और मृदु औषध दूध के साथ में अत्यन्त सावधानी से देवै ।

शिशुपक्ष में गर्हितकर्म ।

अत्यर्थस्निग्धरूक्षोष्णमम्लंकटुविपाकिच गुरुचौषधपानान्नमेतद्बालेषुगर्हितम् ।

अर्थ—अत्यन्त स्निग्ध, अत्यन्त रूक्ष, उष्ण, अम्ल, कटुविपाकी और भारी औ-

षध तथा अन्नपान बालकों को देना ठीक नहीं है।

भवतिचात्र।

समासात्सर्वरोगाणामेतद्बालेषुभेषजम्। निर्दिष्टंशास्त्रबुध्यातत्प्रविभज्यप्रयोजये त्॥ सलिङ्गंव्यापदोयोनेःसनिदानचि कित्सिता। उक्ताविस्तरतःशम्यक्मुनि नातत्त्वदर्शिना॥

अर्थ—इस तरह बालकों के रोगों की सम्पूर्ण प्रकार की चिकित्सा वर्णन कीगई है। इनका शास्त्र के अनुकूल विचारकर के प्रयोग करै।

इस तरह भगवान् पुनर्वसुने योनिरोगों के लक्षण निदान और चिकित्साका सविस्तर वर्णन किया है।

इतिसर्वविकाराणामुक्तमेतच्चिकित्सितम् स्थानमेतद्धितन्त्रस्यरहस्यंसारमुत्तमम्॥

अर्थ—इसतरह सम्पूर्ण विकारों की चिकित्सा वर्णन कीगई है, यह चिकित्सितस्थान इस ग्रन्थका सारभाग और परम रहस्य स्वरूप है।

अस्मिन्सप्तदशाध्यायाःकल्पाःसिद्धयए वच। नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्यतन्त्रेचरक संस्कृते॥ तानेतान्कापिलबलिःशेषान् दृढबलोऽकरोत्। तन्त्रस्यास्यमहार्थस्य पूरणार्थंयथातथम्॥

अर्थ—चरकप्रति संस्कृत अग्निवेश के रचेहुए ग्रन्थ में शेष सत्रह अध्याय और कल्पस्थान तथा सिद्धिस्थान इन दोनों के बारह बारह अध्याय नहीं हैं। इन शेषों को दृढ़बल ने इकट्ठे करके इस ग्रन्थिकी पूर्त्ति के लिये लगादिये हैं।

रोगायेऽप्यत्रनोद्दिष्टाबहुत्वात्नामरूपतः तेषामप्येतदेवस्याद्दोषादीन्वीक्ष्यभेषजम्। दोषदूष्यनिदानानांविपरीतंहितंध्रुवम्॥ उक्तानुक्तान्गदान्सर्वान्सम्यग्युक्तांनि यच्छति।

अर्थ—रोगों के नाम और रूप असंख्य हैं, इससे जिन रोगोंका यहां वर्णन नहीं कियागया है उन के भी दोषादिकों को देखकर तदनुसार उनकी चिकित्सा करनी चाहिये। सम्पूर्ण प्रकार के उक्त और अनुक्तरोगों में दोष, दूष्य, और निदानके विपरीत औषध करना हित है।

पथ्यापथ्यकालक्षण॥

देशकालप्रमाणानांसात्म्यासात्म्यस्यचै वहि॥ सम्यग्योगोऽन्यथान्येषांपथ्यम प्यन्यथाभवेत्।

अर्थ—देश, काल, प्रमाण, सात्म्य और असात्म्य का विचार कर के जो अन्नपानका सेवन कियाजाता है वह पथ्य है। इससे विपरीत अपथ्य होता है।

आस्यादामाशयस्थान्हिरोगान्नस्तःशिरो गतान्॥ गुदात्पक्वाशयस्थांश्चहन्त्याशु तरमौषधम्।

अर्थ—मुख से आमाशय तक, नासिका से मस्तक तक और गुदा से पक्वाशयतक के रोग औषध के आभ्यन्तर प्रयोगों से शीघ्र दूर होजाते हैं।

प्रलेपादिजन्यरोग ।

शरीरावयवोत्थेषुविसर्पपिडकादिषु ॥
यथादेशंप्रदेहादिशमनंस्याद्विशेषतः ।

अर्थ—शरीर के बाहर के अंगोंमें जो विसर्प और पिडकादिक उत्पन्न होते हैं उनपर उन के उत्पन्न होने के स्थान के अनुसार लेप आदिका प्रयोग करने से वे शीघ्र अच्छे होजाते हैं ।

चिकित्सा विचार ।

दिनातुरौषधव्याधिजीर्णलिंगर्त्ववेक्षणम्

अर्थ—दिन, रोगी, औषध, व्याधि, जीर्ण लक्षण और ऋतु इन सबका विचार करके चिकित्सा करना उचित है ।

दिन विचार ।

कालंविद्यादिनापेक्षःपूर्वाह्णेवमनंयथा ।

अर्थ—काल का विचार दिनापेक्ष है, जैसे पूर्वान्ह में वमनकारक औषधों का प्रयोग करना चाहिये ।

रोगी विचार ।

रोग्यपेक्ष्योयथाप्रातर्निरन्नोबलवान्पिबेत् । भेषजंलघुपथ्यान्नैर्युक्तमद्यात्तुदुर्बलः

अर्थ—बलवान् रोगी प्रातःकाल विना कुछ खाये ही औषधों का सेवन करै और दुर्बल मनुष्य थोडा पथ्य अन्न सेवन करके औषध का सेवन करै ।

औषध विचार ।

भैषज्यकालाभुक्त्वादौमध्येपश्चान्मुहुर्मुहुः ।
सामुद्रभुक्तसंयुक्तंग्रासग्रासान्तरेदश ॥

अर्थ—औषध सेवन के दस समय हैं, यथा-भोजन के पहिले, भोजन के वीचमें भोजन के पीछे, वार वार थोडी देर ठहर के, सामुद्र, भक्तसंयुक्त (आहार के साथ मिलाकर), ग्रासग्रास में, ग्रासान्तर में विना कुछ खाये वा पथ्य में मिलाकर ।

पंचवायु में औषध सेवन ।

अपानेविगुणेपूर्वंसमानेपथ्यभोजनम् ।
व्यानेतुप्रातराशान्तंउदानेभोजनोत्तरम् ॥
वायौप्राणेप्रदुष्टेतुग्रासेग्रासान्तरिष्यते ।
श्वासकासपिपासासुत्ववधार्यंमुहुर्मुहुः ॥
सामुद्रंहिक्कनेभुक्तंलघुनान्नेनसंयुतम् ।
सम्भोज्यंत्वौषधंभोज्यैर्विचित्रैररुचौ मतम् ।

अर्थ—अपान वायुके दूषित होने पर भोजन से पहिले, समान वायुके दूषित होने पर भोजन के वीच में, व्यान वायु के दूषित होने पर प्रातःकाल, उदानवायु के दूषित होने पर भोजन के पीछे और प्राण वायुके दूषित होने पर ग्रास ग्रास में अथवा ग्रासान्तर में औषध सेवन करै । श्वास खांसी और पियासा रोग में औषध को वार वार मुखमें धारण करै, हिचकी रोग में हल के भोजन के साथ सामुद्र औषध देवै । तथा अरुचि में अनेक प्रकार के भोजनों के साथ औषध मिलाकर देवै ॥

व्याधि विचार ।

ज्वरेपेयाःकषायाश्चक्षीरसर्पिर्विरेचनम् ।
षडहेषडहेदेयंकालंवीक्ष्यामयस्यतु ।

अर्थ—ज्वरमें प्रति छटे दिन पेया, कषाय, दूध, सर्पि (घी) और विरेचन देवै । जैसे प्रथम दिन लंघन कराके सातवें दिन

तक पेया, आठवें दिन से चौदहवें दिनतक दूध आदिका प्रयोग करे, इसी तरह व्याधि के अनुसार चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिये ।

जीर्ण लक्षण ।

क्षुद्वेगमोक्षौलघुताविशुद्धिर्जीर्णलक्षणम् ।
तदाभेषजमादेयंस्याद्धिदोषवदन्यथा ।

अर्थ—भूख लगना, मलमूत्र का स्वच्छ होना, शरीर में हलकापन, डकार, अधोवायु आदि का शुद्ध होना ये जीर्ण के लक्षण हैं । ऐसे समय में औषध देना चाहिये, इससे अन्यथा दोषोत्पादक होती है ।

ऋतु विचार ।

चयादयश्चदोषाणांवर्ज्यंसेव्यश्चतत्रयत् ॥
ऋतावपेक्ष्यंयत्कर्मपूर्वंसर्वमुदाहृतम् ।

अर्थ—प्रथम सूत्रस्थान में जहां ऋतुचर्य्या वर्णन की गई है वहां दोषों का संचय और प्रकोप तथा उनकी शांति का वर्णन हो चुका है । तथा सेवनीय और असेवनीय कर्म्मों का वर्णन भी होचुका है ।

उपक्रमाणांकरणंप्रतिषेधेचकारणम् ।
व्याख्यातमबलानांसाविकल्पानामवेक्षणे
मुहुर्मुहुश्चरोगाणामवस्थामातुरस्यच ।
अवेक्ष्यमाणस्तुभिषक्चिकित्सायांनमुह्यति ॥

अर्थ—सुचिकित्स्य व्याधियों का कारण वर्जनीय व्याधियों का कारण, और दुर्वल रोगियों के लिये औषधों का विकल्प ये सब बातें भी प्रथम वर्णन कर दी गई है । जो वैद्य रोग और रोगी की अवस्था को देखकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होता है, वह मोह को प्राप्त नहीं होता है ।

इत्येवषड्विधंकालमनपेक्ष्यभिषज्यितम्
प्रयुक्तमहितायस्यात्शस्यस्यकालवर्षवत् ।

अर्थ—इस तरह रोगों के विषय में इन छः कालों पर विना विचार किये औषध प्रयोग करता है उसकी औषध खेती में कुसमयकी वर्षा की तरह हानिकारक होती है ।

कालविचार ॥

व्याधीनामृत्वहोरात्रवयसांभोजनस्यतु ।
विशेषोभिद्यतेयस्तुकालापेक्षःसउच्यते ॥
वसन्तेश्लेष्मजारोगाःशरत्कालेतुपित्तजाः
वर्षासुवातजाश्चैवप्रायःप्रादुर्भवन्तिहि ॥
निशादौदिवसान्तेचवयोऽन्तेवातजागदाः । प्रायःक्षपान्तेकफजास्तयोर्मध्येतु पित्तजाः ॥ जीर्णान्तेवातजारोगाजीर्य्यमाणेतुपित्तजाः । श्लेष्मजाभुक्तमात्रेतुलभन्तेप्रायशोबलम् ॥

अर्थ—सब व्याधियां ऋतु, दिन, रात, अवस्था और भोजन कालकी अपेक्षा भिन्न भिन्न दोषों से उत्पन्न होती हैं । यथा वसन्त ऋतु में कफजरोग, शरत्काल में पित्तजरोग और वर्षा में प्रायः वातजरोग होते हैं । रात्रि के प्रथम प्रहर में, दिन के पिछले प्रहर में और बुढापे में वातजरोग होते हैं । रात्रि के अन्त में और प्रातःकाल कफजरोग होते हैं, तथा पित्तज रोग दुपहर और आधीरात के समय होते हैं । भोजन पचने पर वातजरोग, पचनकाल में पित्तजरोग

तथा भोजन करते ही कफजरोगों की वृद्धि होती है ।

औषधकी मात्राका प्रमाण ।

नाल्पंहन्त्यौषधंव्याधिंयथापोऽल्पामहानलम् ॥ दोषवच्चातिमात्रंस्यात्शस्यस्यात्युदकंयथा । संप्रधार्यबलंतस्मादामयस्यौषधस्यच । नैवातिबहुलात्यल्पंभैषज्यमवचारयेत् ॥

अर्थ—अल्पमात्रा रोग को ऐसे दूर नहीं कर सकती है जैसे थोडासा जल वडी अग्नि को नहीं बुझा सकता है और दीर्घमात्रा दोषों को उदीर्ण करदेती है जैसे वहुत जल के वरसने से खेती नष्ट होजाती है । इस लिये औषध और रोगी के वलका विचार कर के न वहुत थोडी और न वहुत अधिक औषध देनी चाहिये ।

औचित्याद्यस्ययत्सात्म्यंदेशस्यपुरुषस्यच । अपथ्यमपिनैकान्तात्तत्त्याज्यंलभतेसुखम् ॥

अर्थ—जिस देश में जो औषध प्रचलित है,वा जिस देश के मनुष्यों को जो वस्तु सात्म्य है । और यदि वह शास्त्र से विरुद्ध भी है, उस को एक दमसे छोड दैने से सुख नही मिलता है किन्तु स्वास्थ्य विगड जाता है ।

देशानुकूलसात्म्यद्रव्य ।

बाह्लीकाःपल्हवाश्चीनाःसूलीकायवनाःशकाः । मांसगोधूममाध्वीकशस्त्रवैश्वानरोचिताः ॥ क्षीरसात्म्यास्तथाप्राच्यामत्स्यसात्म्याश्चसैन्धवाः । अश्मकावन्तिकानांतुतैलाम्लंसात्म्यमुच्यते ॥ शाकमूलफलंसात्म्यंविद्यान्मलयवासिनाम् । सात्म्यंदक्षिणतःपेयामन्थश्चोत्तरपश्चिमे ॥ मध्यदेशेभवेत्सात्म्यंयवगोधूमगोरसाः । तेषांतत्सात्म्ययुक्तानिभैषज्यान्यवचारयेत् । सात्म्यंह्याशुबलंधत्तेनातिदोषंचबह्वपि । योगैरेवंचिकित्सन्हिदेशाद्यज्ञोऽपराध्यति ॥

अर्थ—वाल्हीक (वलख देशवासी), पल्लव, चीनी, सूलीक, यवन, शक (तातारी) इन लोगोंको मांस, गेंहूं, मद्य, शस्त्रकर्म और अग्निकर्म सात्म्य हैं । पूर्वदेशवासियों को दूध और सिंधियों को मत्स्य सात्म्य हैं (यहां पाठ में गड़वड़ मालूम होती है हमारी समझ में पूर्वदेश वासियोंको मछली और सिंधियों का दूध सात्म्य है) पहाड़ी तथा अवन्तिका देशियों को तेल और खटाई सात्म्य है । मलयवासियों को शाक, फल और मूल सात्म्य हैं । दक्षिणीयों को पेया और उत्तर पश्चिम के लोगोंको मन्थ सात्म्य है । मध्यदेश वासियोंको जौ,गेंहूं, और दुग्धादि सात्म्य हैं । इन भिन्न भिन्न देशवासियों के भिन्न २ सात्म्योंको देखकर चिकित्सा करै । सात्म्यद्रव्य शीघ्रही वल को वढ़ाते हैं और दैवात् सात्म्य द्रव्यका मात्रा से अधिक सेवन करलेना भी विशेष हानिकारक नहीं है । विना देशके विचार के जो शास्त्रलिखित औषधों से चिकित्सा करता है वह दोषोंका अपराधी है ।

वयोबलशरीरादिभेदाहिवह्वोमताः ॥

तथान्तःसन्धिमार्गाणांदोषाणांगूढचारिणाम्।

अर्थ—रोगियों के वय, बल और शरीर के भेद नानाप्रकार के हैं, इसी तरह भीतर संधियों में, स्रोतों में तथा गुप्त रहने वाले दोषों में अनेक प्रकार के रोग हैं।

शास्त्रविरुद्धक्रियाकानिर्देश।

भवेत्कदाचित्कार्यापिविरुद्धाभिमताक्रिया॥ अन्तर्गतंपित्तधातुंस्वेदसेकोपनाहनैः। नयन्तोबहिरुष्णैर्हितथोष्णंशमयन्तितम्॥ बाह्यश्चशीतैःसेकाद्यैरूष्मान्तर्यातिपीडितः। सोऽन्तर्गूढंकफंहन्ति शीतैःशीतंतथाजयेत्। श्लक्ष्णःपिष्टघनोलेपश्चंदनस्यापिदाहकृत्॥ त्वग्गतस्योष्मणोरोधात्शीतकृच्चान्यथागुरुः। छर्दिघ्नीमक्षिकाविष्टामक्षिकैवतुवामयेत्॥ द्रव्येषुस्विन्नदग्धेषुचैवंतेष्वेवविक्रिया। तस्माद्दोषौषधादीनिपरीक्ष्यदशतत्त्वतः। कुर्याच्चिकित्सितंप्राज्ञोनयोगैरेवकेवलैः॥

अर्थ—कभी २ शास्त्रविरुद्ध क्रिया भी हित होती है। जैसे जब पित्तकी ऊष्मा देह के भीतर बढ़जाती है तब उष्णसेक, स्वेद और उपनाह द्वारा भीतरकी ऊष्मा को बाहर लाकर शान्त करते हैं, यहां ऊष्मा से ऊष्मा दूर होती है। यदि यहां शीतल सेक, स्वेद और उपनाह करें तौ ऊष्मा शरीर के भीतर घुसकर पीडा को और भी बढ़ादेवै। दूसरी बात यह है कि व्रण के भीतर जब कफ पीव का रूप धारण कर के गुप्त रहता है तब ऊपर शीतल लेप करने से ऊष्मा भीतरको प्रवेश कर के उसे सुखादेती है यहां शीत द्वारा शीतकी शान्ति है। यदि शरीरपर चन्दन को बारीक पीसकर गाढ़ा गाढ़ा लेप करदें तौ उससे दाह बढ़ता है, क्योंकि वह त्वचाकी ऊष्मा को रोकलेता है। और अगर यद्यपि उष्ण है तौ भी इसे बारीक पीसकर पतला लेप करने से दाहकीशांति होजाती है। जैसे मक्खी का विष्टा वमन को रोकता है परन्तु मक्षिका के प्रयोग करने से वमन होती है। इसतरह सम्पूर्ण द्रव्य स्विन्न और दग्ध होनेपर अन्यगुणों का अवलम्बन करलेते हैं। अतएव उक्त दस रीति से औषधादिककी परीक्षा करके चिकित्सा करै, केवल शास्त्रलिखित प्रयोगों परही भरोसा करना ठीक नहीं है (यहां चरकने 'विषस्यविषमौषधं' इस चिकित्सा की संक्षिप्त सूचनादी है। डाक्टर हैनीमान् ने इस विद्या को बहुत उन्नति दी है, यह चिकित्सा होमियोपैथी के नाम से सब भूमंडल पर अपना प्रभाव बढ़ाती जाती है।

निवृत्तरोगमेंऔषधसेवन।

निवृत्तोऽपिपुनर्व्याधिःस्वल्पेनायातिहेतुना। क्षीणेमार्गीक्लेदेहेशेषःसूक्ष्मइवानलः तस्मात्तमनुबन्धीयात्प्रयोगेणानपायिना

अर्थ—निवृत्तहुई व्याधि थोडेही कारण से फिर उदय होआती है, दोष क्षीणहोने और अपने मार्गपर चलने पर भी अग्नि के पतंगकी तरह सूक्ष्मरूप में शेष रहजाते हैं। अतएव रोग के निवृत्त होने पर भी

दोषों की शमन करनेवाली औषधोंका कुछ कालतक प्रयोग करता रहै ॥

पथ्यान्तरविधि

सिद्ध्यर्थंप्राक्प्रयुक्तस्यसिद्धस्याप्यौषधस्यतु।काठिन्यादूनभावाद्वादोषोन्तःकुपितोमहान्।पथ्यैर्मृद्वल्पतांनीतोमृदुदोषकरो भवेत्। पथ्यमप्यश्नततस्माद्योव्याधिरुपजायते ॥ ज्ञात्वैवंवृद्धिमभ्यासंअथवान्यस्य कारयेत् ।

अर्थ—सिद्धि के लिये जो प्रथम औषध का प्रयोग कियागया है उस के सिद्धहोने पर भी उसकी कठिनता वा स्वल्पता के कारण अन्तःकुपित महान् दोष पथ्यसेवन द्वारा मृदु और अल्प होकर मृदु दोषकारक होता है । पथ्य सेवन करने पर भी जो व्याधि की वृद्धि हो तौ अन्यपथ्य का सेवन करावै ।

सातत्यात्स्वाद्वभावाद्वापथ्यंद्वेषत्वमागतम् कल्पनाविधिभिस्तैस्तैःप्रियत्वंगमयेत्पुनः मनसोऽर्थानुकूल्याद्धितुष्टिरूर्जारुचिर्बलम् सुखोपभोगताचस्याद्व्याधेश्चातोबलक्षयः

अर्थ—एकही वस्तु के निरन्तर सेवन करने से वा स्वादु के अभाव से जो पथ्य दोषकारक होजाय तौ विविधि प्रकारकी कल्पनाओं से पथ्यका सेवन करावै जिससे रोगी को प्रिय लगे । विषयों में मनकी अनुकूलताही से तुष्टि, ऊर्ज्जा, रुचि, वल, और सुखोपभोगता की वृद्धि होती है तथा व्याधि का वलक्षीण होता है ।

अरुचिमेंपथ्यविधि ।

लौल्याद्दोषक्षयाद्व्याधेर्वैधर्म्याच्चापियारुचिः । तासुपथ्योपचारःस्याद्योगेनाद्यं विकल्पयेत् ।

अर्थ—जिह्वा की लोलता से, वातादिदोषों के क्षय होने से वा व्याधिके विधर्म से जो अरुचि होती है उस में पथ्य वस्तुका सेवन करै । तथा उस पथ्य को योगान्तरसे संस्कृत करलेवै ।

अध्याय का संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकाः—विंशतिर्व्यापदोयोनेर्निदानं लिङ्गमेवच । चिकित्साचापिनिर्दिष्टाशिष्याणांहितकाम्यया ॥ शुक्रदोषास्तथा चाष्टौनिदानाकृतिसाधनैः । क्लैब्यान्युक्तानिचत्वारिचत्वारःप्रदरास्तथा ॥ तेषां निदानलिङ्गश्चभैषज्यञ्चैवकीर्तितम् । क्षीरदोषास्तथाचाष्टौहेतुलिङ्गभिषज्यितैः। तेषांचिकित्सानिर्दिष्टासमासव्यसतोमया ॥ रेतसोरजसश्चैवकीर्तितंशुद्धिलक्षणम् । उक्तानुक्तचिकित्साचसम्यग्योगायथैवहि ॥ देशादिगुणशंसाचकालः षड्विधएवच । देशेदेशेचयत्सात्म्यंयथा वैद्योऽपराध्यति ॥ चिकित्साचापिनि र्दिष्टादोषाणांगूढचारिणाम् ।

अर्थ—इस योनिव्यापत चिकित्सित नामक अध्याय में वीस प्रकार के योनिरोग, उन के निदान,लक्षण और चिकित्सा शिष्यों के हित की इच्छा से वर्णन की हैं । आठ प्रकार के शुक्रदोष, उन के निदान, लक्षण और चिकित्सा, चार प्रकार के

क्लीवरोग, चारप्रकार के प्रदररोग तथा इन के निदान, लक्षण और चिकित्सा वर्णनकी गई हैं। आठ प्रकार के स्तन्यदोष, इनके निदान, लक्षण, औषध और चिकित्सा संक्षेप से और विस्तार से वर्णन कीगई हैं। वीर्य और रज की शुद्धि के लक्षण भी वर्णन कियेगये हैं। इसीतरह उक्त अनुक्त रोगोंकी चिकित्सा, सम्यक्‌योग, देशविशेष के गुण, छः प्रकार का काल, भिन्न भिन्न देशवासियों के सात्म्यद्रव्य, वैद्य के अपराधी होने के कारण तथा गूढ़चारी रोगों की चिकित्सा भी वर्णन कीगई है।

अध्यायकाउपसंहार।

योहिसम्यङ्नजानातिदोषंदोषार्थमेवच। नकुर्य्यात्सत्क्रियांचित्रमचक्षुरिवाचित्रकृत्॥

अर्थ—जो वैद्य अच्छी रीति से दोष और दोषों के विषयों को (पाठान्तर "शास्त्रंशास्त्रार्थमेवच) अथवा शास्त्र वा शास्त्र के विषयों को नहीं जानता है, वह अच्छी रीति से चिकित्सा करने में ऐसा असमर्थ होता है, जैसा नेत्रहीन चित्रकार अच्छे चित्रको नहीं खींचसक्ता है।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेयोनिव्यापचिकित्सितंनामत्रिंशोऽध्यायः॥ ३०॥

इतिचिकित्सितस्थानंषष्ठं समाप्तम्॥

—❀—

॥ ओ३म्॥

॥ श्रीहरिम्वन्दे॥

॥श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः॥

॥अथकल्पस्थानम्॥

॥ प्रथमोऽध्यायः॥

अथातोमदनकल्पंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अव हम मदनकल्पनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

अथखलुवमनविरेचनार्थमदनफलादित्वृतादीनांवमनविरेचनद्रव्याणांसुखोपभोज्यतमैःसहान्यैर्द्रव्यैर्विविधैःप्रकल्पनार्थं तद्योगानांचक्रियाविधेः सुखोपायस्यसम्यगुपकल्पनार्थंकल्पस्थानमुपदेक्ष्यामोऽग्निवेश!।

अर्थ—हे अग्निवेश! वमन विरेचन कराने वाले जो मेनफल और निसोथ से आदि लेकर द्रव्य हैं उनका दिग्दर्शनमात्र वर्णन सूत्रस्थान में हो चुका है परन्तु अव इस कल्पस्थान में उन वातों का वर्णन किया जायगा कि जिन सुखोपसेवनीय द्रव्यों के इन में मिलाने से अनेक भेद होजाते हैं, और अनेक प्रकार के योग और सुखकारी चिकित्साविधि यहां वर्णन की जांयगी।

वमनादिकी निरुक्ति।

तत्रदोषहरणमूर्द्धभागंवमनसंज्ञमधोभागं

विरेचनसंज्ञमुभयंवाशरीरमलरेचनाद्विरेचनशब्दंलभते ।

अर्थ—जो दोष मुखकी ओर से निकाले जाते हैं उस क्रिया का नाम **वमन** है । अधोमार्ग द्वारा दोषों के निकालने का नाम **विरेचन** हैं, अथवा शरीरस्थ मल के रेचन अथवा निकालने के कारण वमन विरेचन दोनोंही को **विरेचन** कहते हैं ।

तत्रोष्णतीक्ष्णसूक्ष्मव्यवायिविकाशीन्यौषधानिस्ववीर्येणहृदयमुपेत्यधमनीरनुसृत्यस्थूलाणुस्रोतोभ्यःकेवलंशरीरगतंदोषसंघातमाग्नेयत्वाद्विष्यन्दयतितैक्ष्ण्याद्विच्छिन्दन्ति । सविच्छिन्नःपरिप्लवःस्नेहभावितकायेस्नेहाक्तभाजनस्थमिवक्षौद्रमसजदनुप्रवणभावादामाशयमागत्योदानप्रणुन्नोग्निवाय्वात्मकत्वादूर्द्धभागप्रभावादौषधस्योर्द्धमुत्क्षिप्यते । सलिलपृथिव्यात्मकत्त्वादधोभाग ॥ प्रभावाच्चौषधस्याधःप्रवर्त्तते ।उभयतःचोभयगुणत्वादिति लक्षणोद्देशः ॥

अर्थ—इनमें से उष्ण,तीक्ष्ण,सूक्ष्म,व्यवायी और विकाशी औषध अपने बीर्य के प्रभाव से सेवन करतेही हृदय में पहुंचकर वहांसे धमनियों का अनुसरण करके आग्नेयत्व होने के कारण स्थूल और सूक्ष्म स्रोतों से शरीरगत केवल दोष समूह को विष्यान्दित अर्थात् पतला कर देती हैं और तीक्ष्णता के कारण उन को अपने अपने स्थानों से अलग कर देती है यदि स्नेहन कर्म करने के पश्चात् वमन विरेचन का प्रयोग किया जाय तब वह औषधें शरीरस्थ दोषों को विच्छिन्न और द्रवीभूत करने के पश्चात् शरीर में इस तरह नही लगती हैं जैसे चिकने पात्र में शहत नहीं चिपक सकता है । फिर अनुप्रवण भावसे आमाशय में पहुंचकर बमनकारक द्रव्यों के अग्निवाय्वात्मक तथा ऊर्ध्वगामी प्रभाव युक्त होने के कारण उदानवायु से प्रेरित होकर आमाशयस्थ दोषों को ऊपर के मार्गसे वमन द्वारा निकालती हैं । इसी तरह से वैरेचनिक द्रव्य जल और पृथिव्यात्मक होने के कारण अधोगामी प्रभाव रखने के कारण दोषों को अधोमार्ग से विरेचन द्वारा निकालते हैं । इसी तरह से उभयगुण विशिष्ट वमन विरेचन द्रव्यों के संयोग से वमन विरेचन दोनों होते हैं ।

तत्रफलंजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकृतवेधनानां, श्यामात्रिवृच्चतुरंगुलतिल्वकमहावृक्षसप्तलाशंखिनीदन्तीद्रवन्तीनाञ्चनानाविधदेशकालसम्भवास्वादुरसवीर्यविपाकप्रभावग्रहणादेहदोषप्रकृतिवयोबलाग्निभुक्तिसात्म्यरोगावस्थादीनांनानात्मकत्वाच्च विचित्रगन्धवर्णरसस्पर्शानामुपयोगसुखार्थमसंख्येयसंयोगानामपिसतांद्रव्याणांविकल्पमार्गदर्शनार्थंषड्विरेचनयोगशतानिव्याख्यास्यामः ।

अर्थ—इन में से मैनफल, जीमूत, कटुतुम्बी, धामार्गव, कुटज और कृतवेधन, तथा श्यामनिसोथ, अमलतास, लोध, सेहुंड, सातला, शंखिनी, दंती और द्रवंती । वे

औषधें अनेक तरह के देशों में उत्पन्न होती हैं और अनेक प्रकार के स्वादु,रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव को धारण करती हैं तथा मनुष्यों के देह,दोष, प्रकृति,वय, बल, अग्नि, भोजन, सात्म्य रोग और अवस्था अनेक प्रकार की है, इन सब के सुख पूर्वक उपयोग में लाने के निमित्त छः सौ प्रकार के भिन्न भिन्न विरेचनों की कल्पना का वर्णन करेंगे, यद्यपि इन के गंध, वर्ण, रस और स्पर्श तथा संयोग वे गिनती हैं ।

तानितुद्रव्याणिदेशकालगुणभाजनसम्पद्वीर्यबलाधानात्क्रियासमर्थतमानि भवन्ति ।

अर्थ—ये संपूर्ण द्रव्य देश, काल, गुण और पात्रकी उत्कर्षता और वीर्य बल के यथावत् होने से चिकित्सा में अपना प्रभाव दिखाने को समर्थ होते हैं ।

देशभेद ।

त्रिविधिःखलुदेशोजांगलोऽनूपःसाधारणश्चेति ।

अर्थ—देश तीन प्रकारके होते हैं,यथा जांगल, आनूप और साधारण ।

जांगलदेशकेलक्षण ।

तत्रजांगलःपर्य्याकाशभूयिष्ठः । तरुभिरपिकदरखदिराशनाश्वकर्णधवातिनिशशल्लकीसालसोमवल्कवदरीतिन्दुकाश्वत्थवटामलकीवनगहनः । अनेकशमीककुभशिंशपाप्रायःस्थिरशुष्कपवनबलाविधूयमानप्रणृत्युत्तरुणविटपः । प्रततमृगतृष्णाकूपोपगूढस्तनुखरपरुषासिकताशर्कराबहुलः । लावतित्तिरचकोरानुप्राचितभूमिभागोवातपित्तबहुलस्थिरकठिनमनुष्यप्रायोजांगलोज्ञेयः ।

अर्थ—इन में से जांगलदेश के चारों ओर भूमि विस्तृत और स्वच्छ आकाश से युक्त होती है । इस में कदर, खैर,अशन, पीतसाल, धव तिनिश, शल्लई, साल, सोमवल्क, वेर, तेंदू, पीवल, बड़, आंबला इन के गहनवन होते हैं । जगह जगह शमी, अर्जुन और शिंशपा वृक्षों की बहुतायत होती है । बृक्षों की शाखा बड़ी दृढ़ होती हैं और पवन के बल से हिलती रहती हैं, सूर्य की तीक्ष्ण किरणों से शुष्कस्थलमेंजल दिखाई देता है, कूए बड़े गहरे गहरे होते हैं, पतली, खरदरी और कर्करी वालू की अधिकता होती है, लवा, तीतर, चकोर आदि पक्षी बहुत होते हैं, यहां वातपित्त की अधिकता होती है और यहांके मनुष्य दृढ़ और कठोर होते हैं । ये जांगलदेश के लक्षण होते हैं ।

आनूपदेशकेलक्षण ।

अथानूपोहिन्तालतमालनारिकेलकदलीवनगहनः । सरित्समुद्रपर्य्यन्तप्रायः । शिशिरपवनबहुलोबञ्जलवानीरोपशोभिततीराभिःसरिद्भिरुपगतभूमिभागःक्षितिधरोनकुञ्जोपशोभितोमन्दपवनानुवीजितः । क्षितिरुहगहनोऽनेकवनराजीपुष्पितवनगहनोभूमिभागः । स्निग्धतरुप्रतानोपगूढहंसचक्रवाकबलाकानन्दीमुख

पुण्डरीककादम्बमद्गुभृङ्गराजशतपत्रमत्त कोकिलमुदिततरुणविटपःसुकुमारपुरुषः पवनकफप्रायोज्ञेयः ॥

अर्थ—आनूपदेश में हिन्ताल, तमाल, नारियल और केले क गहनवन होते हैं। इसके चारोंओर समुद्र और वीच २ में बहुतसी नदियां होती हैं, शीतल पवन अधिक चलती है, वंजल और वानीर के वनों और नदियों से उपशोभित होते हैं। इस में पर्वत और कुंज नहीं होतीहैं परंतु मन्दमन्द पवन से चलायमान वृक्षों के समूह वहुत होते हैं। अनेक प्रकार की वेल और अनेक प्रकार के फूलों से यह देश सुशोभित होता है, तरह तरहकी सचिक्कण लताओं से यह भूमि आकीर्ण होती है, यहां चकवे, वलाका, नन्दीमुख, पुंडरीक, कादम्ब, मद्गु, भृंगराज और शतपत्र पक्षियों के समूह वृक्षों की शाखाओं में वैठे हुए आनन्द से कुहकते हैं, मतवाली कोयल नवीन वृक्षों की शाखाओं में वैठकर मुदितमन से अपने राग आलापती हैं। यहां के मनुष्यों के देह कोमल होते हैं और उनकी प्रकृति वातकफ प्राय होती है।

साधारणदेशके लक्षण।

अनयोरेवद्वयोर्देशयोर्वीरुद्वनस्पतिवरन स्पत्यशकुनिमृगगणयुतःस्थिरसुकुमारवर्ण संहननोपपन्नसाधारणगुणयुक्तपुरुषःसा धारणोज्ञेयः।

अर्थ—जिस भूमि में जांगल और आनूप दोनों देशों के लक्षण मिलते हैं उसे साधारण देश कहते हैं। इस देश में दोनों देशों के लता, वनस्पति, वानस्पत्य, पशु और पक्षी होते हैं। यहां के मनुष्य दृढ, सुकुमार, वर्ण और सहननयुक्त होते हैं।

उत्कृष्ट देशजात औषध।

तत्रदेशेजाङ्गलेसाधारणेवायथाकालंशिशिरातपपवनसलिलसेकसेवितेसमेशुचौ प्रदक्षिणेश्मशानचैत्यदेवयजनागारश्व भ्रारामवल्मीकोपरविरहितेकुशरोहिषा स्तीर्णेस्निग्धकृष्णसुवर्णवर्णमधुरमृत्तिके मृदावफालकृष्टेऽनुपहतेऽन्यैर्बलवत्तरैर्द्रुमै रौषधानिजातानिप्रशस्यन्ते।

अर्थ—इन में से नीचे लिखे हुए गुणों से विशिष्ट जांगल वा साधारण देश में उत्पन्न हुई तथा ठीक समय में लाई हुई औषधियां उत्तम होती हैं। स्थान के गुण यथा--जहां अपने अपने समय पर सर्दी गर्मी, हवा और जल आते रहते हैं। जहां की भूमि समान पवित्र और ठीक होती है जहां श्मशान, चैत्य, देवालय, यज्ञशाला, खाई, वगीचा, वांवी और ऊसर भूमि नहीं होती है। जहां कुशा और गंध तृण वहुतायत से होते हैं। जहां की मृत्तिका चिकनी काली, पीली और मिष्ट होती है। जहां की मृत्तिका मृदु होती है, जहां वडे वडे जंगली वृक्ष नहीं होते हैं, जहां की भूमि कीडों से खाई हुई नही है ऐसे स्थान की औषधियां उत्तम होती हैं।

औषध संग्रह विधि।

तत्रयानिकालजातान्युपगतसम्पूर्णप्रमाणरसवीर्यगन्धादिकालातपाग्निसलिलपवनजन्तुभिरनुपहतगन्धवर्णरसस्पर्शप्रभावाणिप्रत्यग्राणिउदीच्यांदिशिस्थितानितेषांशाखापलाशमाचिरप्ररूढंवर्षावसन्तयोर्ग्राह्यंग्रीष्मेमूलानिशिशिरेवाशीर्णप्ररूढपर्णानांशरदित्वक्कन्दक्षीराणिहेमन्तेसाराणियथर्तुपुष्पफलमितिमङ्गलाचारःकल्याणवृत्तःशुचिःशुक्लवासाःसंपूज्यदेवताअश्विनौगोब्राह्मणांश्चकृतोपवासःप्राङ्मुखउदङ्मुखोवागृह्णीयात्।

अर्थ—इन में से जो औषध अपने ठीक समय पर उत्पन्न हुई हैं, जो संपूर्ण प्रमाण, संपूर्ण रस, संपूर्ण वीर्य और संपूर्णादि गंधयुक्त हैं। काल, आतप, अग्नि, सलिल, वायु और कीडों से जिनके गंध, वर्ण, रस, स्पर्श और प्रभाव नही विगडे हैं, जो उत्तम और उत्तर दिशा में उत्पन्न हुई हैं। ऐसी थोडे काल की उत्पन्न हुई औषधों के शाखा और पत्ते वर्षा और वसन्तऋतु में ग्रहण किये जाते हैं, ग्रीष्मऋतु वा शिशिर ऋतु में औषधियों की जड लावै जब उन के पत्ते पककर गिर पडें। शरद ऋतु में छाल, कन्द और दूध लावै तथा हेमन्त में निर्यास, पुष्प और फल इकट्ठे करने चाहिये। जिस दिन औषध लाने का विचार करै उस दिन स्नानादि द्वारा पवित्र होकर मंगलाचार करके श्वेतवस्त्र धारण करै देवता अश्विनी कुमार और गौ ब्राह्मण का पूजन करके उस दिन उपवास करै, फिर पूर्व वा उत्तर की ओर मुखकर के औषधी का ग्रहण करै।

औषधियों की रक्षाविधि।

गृहीत्वाचानुरूपगुणवद्भाजनेसंस्थाप्यागारेषुप्रागुदग्द्वारेषुनिवातप्रवातैकदेशेषुनित्यपुष्पोपहारवलिकर्मवत्स्वग्निसलिलोपस्वेदधूमरजोमूषिकचतुष्पदामनभिगमनीयानिस्ववच्छिन्नानिशिक्येष्वासज्यास्थापयेत्तानिचयथादोषंप्रयुञ्जीत।

अर्थ—ऊपर कही हुई रीति से औषधियां लाकर उन्हें अपने अपने गुण के अनुरूप पात्रों में रखकर ऐसे स्थान में जिसका मुख पूर्व वा उत्तर की ओर हो, जिस में वायु प्रवेश न करती हो और एक स्थान उस में ऐसा हो जहां हवा आती हो और जिस में नित्य प्रति पुष्प उपहार, वलि और कर्म होता हो ऊंचे छींकों पर लटका देवै और उन पात्रों को ऐसी रीति से ढकदेवै जिस में अग्नि, जल, ताप, धूंआं और रज, तथा मूसे और चौपाये आदि न पहुंच सकें। इन औषधियों का दोष के अनुसार प्रयोग करना उचित है।

दोषानुसारप्रयोगविधि।

सुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकधान्यफलदध्यम्लादिभिर्वाते। मृद्वीकामलकमधुमधुकपरुषकफाणितक्षीरादिभिःपित्ते। श्लेष्मणितुमधुमूत्रकषायेभावितान्यालोडितानिचेत्युद्देशस्तंविस्तारेणद्रव्य

देहदोषसात्म्यादीनिप्रविभज्यव्याख्या स्यामः ।

अर्थ—वातरोग में इन औषधोंको सुरा, सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, धान्याम्बु, फलाम्बु, दही और खटाई के साथ में देवै पित्तजरोगों में दाख, आंवला, शहत, मुलहटी, फालसा, फाणित और दूध आदि के साथ देवै, तथा कफ रोगों में शहत, गोमूत्र और क्वाथों में मिलाकर देवै। अब इन्हीं को द्रव्य, देह, दोष और सात्म्यादिक के अनुसार विभाग करके विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं।

मेनफलकावर्णन ।

वमनद्रव्याणांमदनफलानिश्रेष्ठानिआचक्षतेऽनपायित्वात्तानिवसन्तग्रीष्मयोरन्तरेपुष्याश्वयुग्भ्यांमृगशिरसावागृह्णीयात्मैत्रेमुहूर्तेयानिपक्वानिप्रहरितानिपाण्डून्यक्रिमीण्यकुशान्यहूस्वानिअजग्धानितानिप्रमृज्यकुशपुटेवद्ध्वागोमयेनालिप्ययवबुसमाषशालिव्रीहिकुलत्थमुद्गपर्णानामन्यतमेनिदध्यादष्टरात्रमतऊर्द्धंमृदुभूतानिमधिवष्टगन्धान्युद्धृत्यशोषयेत्। सुशुष्कंतुफलपिप्पलीरुद्धरेत्तासांदधिमधुपललविमृदितानांपुनःशुष्काणांनवकलशंसुप्रमृष्टबालुकमरजस्कमाकण्ठंपूरयित्वास्ववच्छन्नमनुगुप्तंशिक्येऽवसज्यस्थापयेत् ।

अर्थ—वमनकारक द्रव्यों में मेनफल सब से उत्तम होता है क्योंकि यह किसी प्रकारकी हानि नहीं पहुंचाता है। इसको वसन्त और ग्रीष्मऋतुओं के संधिकाल में पुष्य, अश्विनी, मृगशिरा नक्षत्र में मैत्री मुहूर्त्त में लाना चाहिये। इन में से जो जो फल पककर हरे वा पांडुवर्ण के होगये हों, जिन में कीड़े न लगे हों, जो पिचके हुए वा छोटे न हों वा किसी पक्षी ने न विगाड़े हों उनको लाकर कुशा में लपेट कर वांध देवै ऊपरसे गोवर लपेटदेवैं फिर उसे जौ का भुस, उरद का ढेर, शाली वा व्रीहि चांवल काढेर कुलथी वा मूंगके पत्तोंके ढेर में से किसी एक में आठ दिवस तक गढ़ा रहने देवै। फिर यह जब मुलायम पड़जाय वा इस में मीठी २ उत्तम गंध आनेलगे तब निकालकर सुखाले। अच्छी तरह सूखने पर फलों के बीज बाहर निकाल लेवै और दही, मधु वा तिल कल्क के साथ फिर मर्दन कर के फिर सुखाकर वालू वा रेतसे अच्छीतरह मजेहुए स्वच्छ नवीन कलसे में कंठ तक भरदेवै और अच्छी तरह ढक दावकर छींके पर लटका देवै ॥

वमनकरानेकीविधि ।

अथच्छर्दनीमातुरंद्व्यहंत्र्यहंवास्नेहस्वेदोपपन्नंश्वश्छर्दयितव्यइति । ग्राम्यानूपोदकभूतमांसरसक्षीरदधिमाषतिलशाकादिभिःसमुत्क्लेशितश्लेष्माणंव्युषितंजीर्णाहारंपूर्वाह्णेकृतबलिहोममङ्गलप्रायश्चित्तंनिरन्नमनतिस्निग्धंयवाग्वाघृतमात्रांपीतवन्तम्। तासांफलपिप्पलीनामन्तर्नखंमुष्टिंयावद्वासाधुमन्यतेजर्जरीकृत्ययष्टीमधुक

षायेणकोविदारकर्बूदारनीपविदुलविम्बी शणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्यक्पुष्पकषायाणा मन्यतमेनवारात्रिमुषितंविमृद्यपूतंमधुसै न्धवयुक्तंसुखोष्णंकृत्वापूर्णंशरावमन्त्रेणा नेनाभिमन्त्रयेत् ।

अर्थ—वमन कराने के योग्य रोगी को वमन कराने से दो तीन दिन पहिले स्नेहन स्वेदन करा के वमन करावै। वमन कराने की विधि यह है कि ग्राम्य, आनूप और औदक जन्तुओं का मांसरस, दूध, दही, उरद तिल आदि के भक्षण से कफ को उत्क्लेशित करावै, दूसरे दिन आहार पचने पर दुपहर से पहिले वलि होम, मंगलाचार और प्रायश्चित कराके विना भोजन करायेही अनतिस्निग्ध पुरुषको यवागू के साथ घृत की मात्रा का सेवन करावै । वमन करानेकी रात्रिको अन्तर्नखमुष्टि मेनफल के वीजों को महीन पीसकर मुलहटी के क्काथ के साथ अथवा कोविदार ( ) कर्बुदार ( ) कदम्ब, वेत, कंदूरी, शणपुष्पी आक, वा ओंगा में से किसी के क्काथ में भिगोदेवै । प्रातःकाल होतेही सबको मसल कर छानलेवै फिर इसमें शहत और सेंधानमक मिलाकर गुनगुना कर के प्याले में भरकर नीचे लिखे हुए मंत्र से अभिमंत्रित करै ॥

वमन कराने के मंत्र ।

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः ऋषयःसौषधिग्रामाभूतसंघाश्चपान्तुते ॥ रसायनमिवर्षीणांदेवानाममृतंयथा । सुधेवोत्तमनागानांभैषज्यमिदमस्तुते ॥

अर्थ—ब्रह्मदेव, दक्ष, अश्विनीकुमार रुद्र, इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु, ऋषिगण, औषध समूह और भूत समूह तेरी रक्षाकरें । जैसे ऋषियों को रसायन, देवताओं को अमृत और नागों को सुधा गुणकारक है इसी तरह यह औषध तुझ को फलप्रद होवै ।

इत्येवमभिमन्त्र्योदङ्मुखमातुरंपाययेत । श्लेष्मज्वरगुल्मप्रतिश्यायान्तंविशेषेणपु नरापित्तागमनात्तेनसाधुवमति ।

अर्थ—इस तरह मंत्र पढकर रोगी का मुख उत्तर की ओर कराके औषध पान करावै । विशेष करके कफ ज्वर, गुल्मरोग और प्रति श्याय में यह वमन कराई जाती है । इस में पित्तका आगमन होवै तौ समझना चाहिये अच्छी होती है ।

हीनवेगंतुपिप्पल्यामलकसर्षपकल्कलव णोष्णोदकैःपुनःपुनःप्रवर्तयेदित्येषसर्व छर्दनयोगविधिः । सर्वेषुतुमधुसैन्धवंक फविलायनच्छेदार्थंवमनेषुविदध्यात् । नचोष्णविरोधोमधुनश्छर्दनयोगयुक्तस्या विपकप्रत्यागमनाद्दोषहरणाच्च ।

अर्थ—जो वमन का हो तौ पीपल, आंवला और सरसों इन के कल्क में सेंधा नमक डालकर गरम जल के साथ वार वार पान करावै । इस से वमन का वेग वढ जायगा । यह काम हर प्रकारकी वमन में करना ठीक हैं । कफके पतले करने और

दूर करने के निमित्त सब प्रकारकी वमनों में शहत और सेंधानमक देना चाहिये। इस स्थल में शहत को उष्ण द्रव्य के साथ देने में कोई दोषापत्ति नहीं है, क्योंकि शहत पाकको प्राप्त होने से पहिलेही दोषों को निकालता हुआ आप भी निकल आता है।

फलपिप्पलीनांद्वौभागौकोविदारादिकषायेणात्रिःसप्तकृत्वःभावयेत्तेनरसेनतृतीयंभागंपिष्ट्वामात्रांहरीतकीभिर्बिभीतकैरामलकैर्वातुल्यांवर्त्तयेत्तासामेकांद्वेवापूर्वोक्तानांकषायाणामन्यतमस्याञ्जलिमात्रेणप्रमृद्यबलवत्श्लेष्मप्रसेकग्रन्थिज्वरोदरारुचिषुपाययेतेतिसमानंपूर्वेण।

अर्थ—मेनफल के वीज दो भाग, इन को पीसकर कोविदारादि आठ द्रव्यों में से किसी एक के क्वाथ की इक्कीस भावना देवै। फिर एक भाग और लेकर उसी क्वाथ में पीसकर उस को पूर्वोक्त चूर्ण से मिलावै। फिर इस में से हरड वहेडे और आंवले की वरावर गोली वनाकर तयार करले। फिर इस में एक वा दो गोलियों को पूर्वोक्त कोविदारि के क्वाथों में से किसी एक के आध सेर क्वाथ के साथ सेवन करै। इस के द्वारा वमन कराने से कफप्रसेक, ग्रन्थि, ज्वर, उदररोग और अरुचि ये रोग दूर होजाते हैं। शेष क्रिया पूर्व के समान हैं।

फलपिप्पलीक्षीरंतेनवाचारियवागूमधोभागेरक्तपित्तेहृद्दाहेतज्जस्यवादध्नउत्तरकंकफच्छर्दिस्तमकप्रसेकेषुतस्यैवपयसःशीतःससन्तानिकाञ्जलिंपित्तेप्रकुपितेउरःकण्ठहृदयेतनुकफोपदिग्धइतिसमानंपूर्वेण

अर्थ—मेनफल के वीज डालकर औटाया हुआ दूध अथवाउस दूधकी यवागू अधोगामी रक्तपित्त और हृद्दाह में देवै। और उसी दूध को दही पर से मलाई उतार कर कफकी वमन, तमकश्वास और कफप्रसेक में देना चाहियै। उसी दूध को ठंडाकरके उसकी मलाई उतार कर एक अंजली भर प्रकुपित पित्त में देवै। तथा जो वक्षःस्थल, कंठ और हृदय में पतला कफ लिप्त हो रहा हो तौ उक्त संतानिका पान कराके वमन करावै। शेषक्रिया पूर्व के समान है।

मेनफल का घृत।

फलपिप्पलीक्षीरान्नवनीतमुत्पन्नंफलादिकल्ककषायसिद्धंकफाभिभूताग्निविशुष्कदेहश्चमात्रयापाययेतेतिसमानंपूर्वेण

अर्थ—मेनफल के वीज के साथ सिद्ध किये हुए दूध का मक्खन निकालकर मेनफलादि के कल्क के साथ सिद्ध करके मात्रानुसार पान करावै। इस विरेचन से कफाभिभूत अग्नि और विशुष्क देह शुद्ध होजाते है। शेषक्रिया पूर्व के समान है।

फलपिप्पलीनांफलादिकषायेणत्रिःसप्तकृत्वःपरिभावितेनपुष्परजःप्रकाशेनचूर्णेनसरसिवृहत्सरोरुहंसायाह्नेऽवचूर्णयेत्तद्रात्रिमुषितंप्रभातेपुनरवचूर्णितमुद्धृत्यहरिद्राकृसरक्षीरियवागूनामन्यतमंसैन्धवगुडफाणितयुक्तमाकण्ठंपीतवन्तमाघ्रा

पयेत् । सुकुमारमुत्क्लिष्टपित्तकफमौषधद्विषमितिसमानंपूर्वेण ॥

अर्थ—मेनफल के बीजों को मेनफलादि द्रव्यों के क्काथ की इक्कीस भावना देकर फूल की रज के समान महीन चूर्ण करले, फिर इस चूर्ण को सायंकाल के समय तलाव में एक बडे से कमल के फूल में रखदेवै । प्रातःकाल इस चूर्ण को लाकर हलदी, कशारा, दूध और यवागू इन में से किसी एक के साथ सेंधानमक, गुड़ और राव मिलाकर कंठ पर्य्यन्त पान करै और उस फूल को सूंघै । इस रीति से वमन करना सुकुमार, उत्क्लिष्ट कफ और पित्तवाले और औषध सेवन से द्वेष रखनेवाले को हित है । शेष क्रिया पूर्वके समान है ।

फलपिप्पलीनांभल्लातकविधिपरिस्रुतंस्वरसंपक्त्वाफाणितमावर्तुलीभावाल्लेहयेदातपशुष्कंवाचूर्णीकृतंजीमूतादिकषायेणापित्तेकफस्थानगतेपाययेतेतिसमानंपूर्वेण । फलपिप्पलीचूर्णानिपूर्ववत्फलादीनांषण्णामन्यतमकषायस्रुतानिवर्तिक्रियाःफलकषायोपसर्जनाःपेयाइतिसमानंपूर्वेण ॥

अर्थ—भिलायेकी तरह मेनफल केबीजों का रस निकालकर राव के सदृश पकाकर चाटै । अथवा इन बीजों को धूप में सुखाकर जीमूतादि के क्काथके साथ पान कराके उस समय वमन करावै जब पित्त कफके स्थान में चलागया हो । अथवा मेनफलके बीजों को मेनफलादि छः द्रव्यों में से किसीएक के क्काथ के साथ परिस्रुत कर के वटिका बनावै, इन वटिकाओं को पूर्वोक्त कषायों के साथ पानकरै ।

फलाद्यवलेह ।

फलपिप्पलीष्वारग्वधवृत्तकस्वादुकण्ठकपाठापाटलीशार्ङ्गष्टामूर्वासप्तपर्णनक्तमालपिचुमन्दपटोलसुषवीगुडूचीसोमवल्कद्वीपिकानांपिप्पलीपिप्पलीमलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेराणांचान्यतमकषायेणसिद्धोलेहइतिसमानंपूर्वेण ।

अर्थ—अमलतास, इन्द्रजौ, स्वादुकंटक पाठा, पाटला, शार्ङ्गष्टा, मरोड़फली, सप्तपर्णी, कंजा, नीम, परवल, सुषवी, गिलोय सफेदखैर, अजवायन की जड़, पीपल, पीपलामूल, गजपीपल, चीता और सोंठ इन बीस द्रव्यों में से किसी एक के क्काथ के साथ मेनफल के बीजों को सिद्ध करके लेह बनावै । शेष क्रिया पूर्वके समान हैं ।

फलपिप्पलीष्वेलाहरेणुकाशतपुष्पाकुस्तुम्बुरुतगरकुष्ठत्वक्चोरकमरुवकागुरुगुग्गुलुवालकश्रीवेष्टकपरिपेलवमांसीशैलेयकस्थौणेयकसरलपारावतपद्यशोकरोहिणीनांविंशतेरन्यतमस्यकषायेणसाधितोत्कारिकाकल्पेनयथामोदकीवामोदककल्पेनयथादोषरोगभक्तिप्रयोज्यइतिसमानंपूर्वेण । फलपिप्पलीस्वरसकषायपरिभावितानितिलशालितण्डुलपिष्टानितत्कषायोपसर्ज्जनानिषष्कुलीकल्पेनवापूपाइतिसमानंपूर्वेण ।

अर्थ—छोटी इलायची, हरेणु, सोंफ,

धनियां, तगर, कूठ, दालचीनी, चोरक, मरुआ, अग (?), गूगल, नेत्रवाला, श्रीवेष्टक, मोथा, जटामांसी, शैलेय, थूनेर, सरलकाष्ठ, पारावतपदी, अशोक और कुटकी इनवीसद्रव्यों में से किसी एकके क्काथके साथ मेनफलके दानों की उत्कारिका वा मोदक बनावै। इनको रोग के अनुसार वमन करानेमें देवै। शेष क्रिया पूर्व के समान हैं।

मेनफल के रस और उस के बीजों के क्वाथ में तिल और शाली चांवल के चूर्ण को भावना देकर मेनफल के क्वाथ के साथ पूरी वा पूए बनावै। शेष क्रिया पूर्व के समान हैं।

एतेनैवचकल्पेनसुमुखसुरसकुठेरकगण्डीरकालमालकपर्ण्यासकक्षवकफणिज्जकशृङ्गवेरगृञ्जनभूस्तृणककासमर्दभृङ्गराजानामिक्षुवालिकाकतकेक्षुकाण्डेक्षुणांचान्यतमस्यकषायेणकारयेत्। तथावदरषाडवरागलेहमोदकोत्कारिकातर्पणपानकमांसरसयूषमद्यानांसदनफलान्यन्यतमेनोपसृज्यतथादोषरोगदोषभक्तिदद्याचैःसाधुवमतीति।

अर्थ—इसीतरह सुमुख, सुरस, कुठेरक, गंडीर, कालमालक, पर्णास, फणिज्झक (ये सब तुलसी के भेद हैं) गाजर, सोंठ, गंधतृण, कसोंदी, भांगरा, इक्षुवालिका, ईख और काण्डेक्षु इन सत्रह द्रव्योंमेंसे किसी एक के क्वाथ के साथ मेनफल के बीजों की पूरी वा पूए बनावै।

इसीतरह से षाडव, राग, लेह, मोदक, उत्कारिका, तर्पण, पानक, मांसरस, यूष और मद्य मेनफल के साथ पाक कर के उसी के क्वाथ के साथ दोष के अनुसार पान करावै। तो अच्छी तरह से वमन होती है॥

मेनफल के नामान्तर।

मदनःकरहाटश्चराठःपिण्डीतकःफलम्। श्वसनश्चेतिपर्यायैरुच्यतेतस्यकल्पना॥

अर्थ—मदन, करहाट, राठ, पिंडीतक, फल और श्वसन ये मेनफल के नामान्तर हैं॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन।

नवयोगाःकषायेषुवर्त्तिस्वष्टौपयोघृते। पञ्चफाणितचूर्णेद्वौघ्रेयोवस्तिक्रियासुषट्॥ विंशतिर्विंशतिर्लेहमोदकोत्कारिकासुच। षष्कुलीयूपयोश्चोक्तायोगाःषोडशषोडश॥ दशान्येषाडवान्येषुत्रयस्त्रिंशदिमंशतम्। योगानांविधिवद्दृष्टंकफकल्पेमहर्षिणेति॥

अर्थ—इस अध्याय में क्वाथ के नौ वर्ति आठ, दूध के पांच, फाणित का एक चूर्ण का एक, सूंघने का एक, वर्तिक्रिया के छः, लेहबीस, मोदक बीस, उत्कारिका बीस, पूरी के सोलह, पूये के सोलह, और षाडवादि में दस। इस तरह सब मिलकर मेनफल के एकसौ तेतीस कल्प हैं।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां कल्पस्थाने मदनकल्पो नाम प्रथमोऽध्यायः॥ १ ॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथातोजीमूतकल्पंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम जीमूतकल्पकी व्याख्या करेंगे।

जीमूत के पर्य्याय शब्द ।

कल्पंजीमूतकस्येमंफलपुष्पाश्रयंशृणु । खरागरीचवेणीचतथास्याद्देवतालकः ॥

अर्थ—जीमूत के पुष्प और फल दोनों वमन कराने में प्रयुक्त किये जाते हैं । खरा, गरी, वेणी और देवतालक ये इसके पर्य्यायवाची नाम हैं ।

जीमूत के गुण ।

जीमूतकंत्रिदोषघ्नंयथास्वौषधकल्पितम्। प्रयोक्तव्यंज्वरश्वासहिक्काद्येष्वामयेषुच ॥

अर्थ—यथानुरूप औषधों के साथ कल्पना किया हुआ जीमूत त्रिदोषनाशक तथा ज्वर, श्वास और हिचकी रोगों में हित है ।

जीमूत के प्रयोग ।

यथोक्तगुणयुक्तानांदेशजानांयथाविधि। पयःपुष्पेस्यनिर्वृत्तफलेपेयापयश्रता ॥ लोमनेक्षीरसन्तानंदध्युत्तरमलोमने । शृते पयसिदध्यम्लंजातेहरितपाण्डुके ॥

अर्थ—(१) यथोक्त गुण वाले देशों में उत्पन्न हुए जीमूत के पुष्पों को दूध में औटाकर पान करै । (२) इसके फलों को दूध में औटाकर पीवै । (३) दोषों के अनुलोम में जीमूत डालकर औटाये हुए दूध की मलाई देवे (४) दोषों का प्रतिलोम होने पर जीमूत द्वारा सिद्ध दूध का दही देवै । (५) हरितपाण्डुरोग में जीमूत डालकर औटाये हुए दूध का अम्ल दही देवै ।

अन्य प्रयोग ।

जीर्णानांचसुशुष्काणांन्यस्तानांभाजने शुचौ । चूर्णस्यपयसाशुक्तिंवातपित्तार्दितःपिबेत् ॥ आसुत्यचसुरामण्डेमृदित्वाप्रस्रुतंपिबेत् । कफजेऽरोचकेकासे पाण्डुरोगेसयक्ष्मणि ॥ द्वेवापोध्याथ वात्रीणिगुडूच्यामलकस्यवा । कोविदारादिकानांवानिम्बस्यकुटजस्यवा । कषायमासुतंपूत्वातेनैवविधिनापिबेत् ॥ अथ वारग्वधादीनांसप्तानांपूर्ववत्पिबेत् । एकैकशःकषायेणपित्तश्लेष्मज्वरार्दितः ॥

अर्थ—(६) अच्छी तरह पके हुए और सूखे हुए जीमूत के फलों को एक स्वच्छ पात्र में रक्खे । इनका आधे पल चूर्ण दूध के साथ फांकने से वातपित्तरोग दूर होजाता है । (७) जीमूत के फलों को सुरामण्ड में भिगोकर उन्हें सुरा में मर्दन करके छान कर पीले तो इससे कफज अरुचि, खांसी, पाण्डुरोग और यक्ष्मा दूर होजाते हैं । (८) जीमूत के दो वा तीन फलों को कूटकर गिलोय, आंवला, कोविदारादिगण, नीम वा कुडा इन द्रव्यों में से किसी के क्वाथ में भिगोकर मर्दन करै और फिर छानकर पीवै तो पूर्वोक्त गुण करने वाला है । (९) अथवा आरग्वधादि सात

द्रव्यों में से किसी एक के क्वाथ में पूर्ववत् फलों को भिगोकर और छानकर पीवे इस से पित्तकफ ज्वर दूर होजाता है ।

अन्यप्रयोग ।

वर्त्तयःस्युःफलवच्चाष्टौकोलमात्रास्तुताम ताः ॥ जीमूतकस्यवाकल्कंचूर्णवाशिशि राम्बुना । ज्वरेपित्तभवेवातदुष्टेश्लेष्मणि चानुगे ॥ जीवकर्षभकेचूर्णांशतावर्या रसेनवा । पित्तश्लेष्मज्वरेदद्याद्वातपित्त ज्वरेऽथवा । तथाजीमूतकक्षीरात्समुत् पन्नंपचेद्घृतम् ॥ फलादीनांकषायेणश्रे ष्ठंतद्वमनंमतम् ।

अर्थ—(१०) मेनफलके सदृश कोवि-दारादि गण के क्वाथ के साथ आठ प्रकार की बत्तियां प्रस्तुत करै ।(११) जीमूत के कल्क वा चूर्ण को ठंडे जल के साथ वृद्ध पित्त, वात मध्यम और हीन कफके ज्वर में पान करै। (१२) जीमूत के कल्क को जीवक, ऋषभक, ईख वा सितावर के रस में सेवन करने से पित्तकफज्वर वा वात पित्तज्वर दूर होजाता है ।(१३) जीमूत डालकर औटाये हुए दूध को जमा कर घी निकाले । इस घी को मेंनफलादि के कषायके साथ पान करै तो बहुत उत्तम वमन होती है ।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

पट्क्षीरेमदिरायोगएकंद्वादशचापरे ॥ सप्तचारग्वधादीनांकषायेऽष्टौचवर्तिषु । जीवकादिषुचत्वारोघृतश्चैकंप्रकीर्त्तितम् ॥ कल्पेजीमूतकानांयेयोगास्त्रिंशन्नवाधिकाः

अर्थ—जीमूत के उन्तालीस कल्प इस तरह वर्णन किये गये हैं, यथा—दूध के छः मदिरा का एक, आस्नुत के बारह, आर-ग्वधादि के सात, बत्ती आठ जीवकादि के चार और जीमूत का घृत एक प्रकार का

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविर-
चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहिता
यां कल्पस्थाने जीमूतकल्पो नाम
द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातइक्ष्वाकुकल्पंव्याख्यास्यामः ॥ इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम इक्ष्वाकुकल्प की व्याख्या करेंगे ॥

सिद्धंवक्ष्याम्यथेक्ष्वाकुकल्पंयेषांप्रशस्य ते । पञ्चचत्वारिंशदुक्तायोगाअस्मिन्म हर्षिणा ॥

अर्थ—कटुतुम्वी के कल्प सिद्ध हैं इन में महर्षि आत्रेय ने उत्तम उत्तम पैंतालीस योगों का वर्णन किया है ।

इक्ष्वाकुकेपर्य्यायशब्द ।

लम्बापिण्डफलातुम्बीकटुकालाबुनीचतत् इक्ष्वाकुःफलिनीचैवप्रोच्यतेतस्यकल्पना

अर्थ—इक्ष्वाकुके पर्य्यायवाची शब्द ये हैं, यथा—लम्बा, पिण्डफला, तुम्बी, कटुका, अलाबू, इक्ष्वाकु और फलिनी ।

इक्ष्वाकुकेगुण ।

कासश्वासविषच्छर्दिज्वरार्तेकफक्षाशिते

प्रताम्यतिनरेचैवावमनार्थंतदिष्यते ।

अर्थ—खांसी, श्वास, विष, वमन,ज्वर और कफ में तथा पित्तज मूर्च्छा में इस की वमन हित है ।

इक्ष्वाकुकेकल्प ।

अपुष्पस्यप्रवालानांमुष्टिंप्रादेशसंमिताम् ॥
क्षीरप्रस्थेश्रृतंदद्यात्पित्तोद्रिक्तेकफज्वरे ।
पुष्पादिपुचचत्वारःक्षीरेजीमूतकेयथा ॥
योगाहरितपाण्डूनांसुरामण्डेनपञ्चमः ।
फलस्वरसभागञ्चत्रिगुणक्षीरसाधितम् ॥
उरःस्थितेकफेदद्यात्स्वरभेदेसपीनसे ।
जीर्णमध्योद्धृतेक्षीरंप्रक्षिपेत्तद्यदादधि ॥
जातंस्यात्कफजेकासेश्वासेवम्यांञ्चत
तिपवेत् ।

अर्थ—कटुतुंवी की लताकी जिसमें फूल न आये हों नवीन वारह वारह अंगुल की टहनी एक पल लेकर एक प्रस्थ दूध में औटावै । इस दुग्ध के पान करने से पित्तोल्वण कफज्वर दूर होजाता है । जिस तरह जीमूत के फल पुष्प संबंधी दूध के चार प्रयोग हैं । उसी तरह इस के भी चार प्रयोगहैं इनचार प्रयोगोंसे हरितपांडु आदि रोग अच्छे होजातेहैं । जिस तरहसुरामंडमेंजीमूत भिगोकर एककल्प बनता है इसी तरह एक प्रयोग इसका भी है । इक्ष्वाकु के फल का रस निकालकर तिगुने दूध के साथ औटाकर पीनेसे हृदय में स्थित कफ स्वर भेद और पीनस दूर होजाती । एक कटुतुम्वी के वीच का गूदा निकालकर पोली करले और उसमें दूध भर देवै, जब उसका दही जमजाय तव कफज खांसी श्वास, और वमन में इस दही के द्वारा वमन करावै ।

अजाक्षीरेणवीजानिभावयेत्पाययेतच ॥
विषगुल्मोदरग्रन्थिगण्डेषुश्लीपदेषुच ।
दधिमण्डैःफलान्मध्यंपाण्डुकुष्ठज्वरार्दितः ।
तेनतक्रंविपक्वंवासक्षौद्रलवणंपिवेत् ।
तुम्व्याःफलरसैःशुष्कैःसपुष्पैरवचूर्णितम्
छर्दयेन्माल्यमाघ्रायगन्धसम्पत्सुखोचितः
भक्षयेत्फलमध्यंवागुडेनपललेनच ॥
इक्ष्वाकुफलतैलंवासिद्धंवापूर्ववद्घृतम् ।

अर्थ—कटुतुंवी के बीजोंको वकरी के दूध कीभावना देकर चूर्ण बनालेवै । इस चूर्ण का सेबन कराने से विषरोग, गुलमरोग उदररोग, ग्रन्थि, गंडमाला और श्लीपद दूर होजाते हैं । कटुतुम्वी की गिरी का दही के तोड़ के साथ पकाकर पान करने से पांडुरोग,कुष्ठ और विष दूरहोजाते हैं।अथवा उसीके साथ तक्र को पकाकर सेंधानमक और शहत डालकर पीना चाहिये । कटुतुंवी के पुष्पों को तूंवीही के रसकी भावना देकर सुखाकर चूर्णकर लेवै । फिर इस चूर्ण को सुगंधित पुष्प में लपेट कर सूंघने से सुख पूर्वक वमन होती है । कटुतुंवी के गूदे को गुड अथवा तिलके कल्कके साथसेवन करै अथवा कटुतुंवी डालकर सिद्ध किया हुआ तेल अथवा जीमूत की तरह सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करने से वमन होती है ।

पञ्चाशद्दशवृद्धानिफलादीनांयथोत्तरम् ॥
पिवेद्विमृद्यबीजानिकषायेष्वासुतंपृथक् ।

यष्ट्याह्वकोविदाराद्यैर्मुष्टिमन्तर्नखंपिबेत् ॥ कषायैःकोविदाराद्यैर्मात्राश्चफलवत् स्मृताः ।

अर्थ—मेनफलादिक वमनकारक द्रव्यों के क्वाथ में कटुतुम्वी के वीजों को मर्दन करके और छानकर नीचे लिखे क्रम से पान करै, यथा--पहिले दिन दस वीज, दूसरे दिन वीस तीसरे दिन तीस चौथे दिन चालीस और पांचवें दिन पचास वीज लेवै। कटुतुंवी के अन्तर्नख मुष्टि (अंगुठे का नख भीतर करके भरी हुई मुट्ठी) वीज लेकर मुलहटी और कोविदारादि आठ द्रव्यों के क्वाथ में पीसकर मेनफल के सदृश मात्राका प्रयोग करै।

विल्वमूलकषायेणतुम्बीवीजाञ्जलिंपचेत्
पूतस्यास्यत्रयोभागाःचतुर्थःफाणितस्यतु
सघृतंबीजभागश्चपिष्टमर्धांशिकांस्तथा ॥
महाजालिनिजीमूतकृतवेधनवत्सकान् ।
लेहयेत्साधयेद्दर्व्याघट्टयन्मृदुनाग्निना ॥
यावत्स्यात्तन्तुमत्तोयेपतितंचनशीर्यते ।
तंलिह्यान्मात्रयालेहंमन्थंचापिपिबेदनु ॥

अर्थ—वेलकी जड के क्वाथ में एक अंजली भर तूंवी के वीजों को पकावै। फिर इस को छानकर तीन भागलेवै, एक भाग फाणित, एक भाग घृत तथा अर्द्धभग तोरई, जीमूत, घीयातोरई और इन्द्रजौ इनके वीजों को पीसकर डालदे और मन्दी मन्दी अग्निसे पकावै और करछी से चलाता रहै, जव इस में तार से छूटने लगे और पानी में डालने से यह शीर्ण नहो तव तक पकाता रहै पीछे उतार कर मात्राके अनुसार इसका पान करै ऊपरसे मन्थ पीवै।

कल्पएषोऽग्निमन्थादौचतुष्केपृथगुच्यते।
शक्तुभिर्वापिवेन्मन्थंतुम्बीस्वरसभावितैः
कफजेऽथज्वरेकासेकण्ठरोगेष्वरोचके।
गुल्ममेहेप्रसेकेचकल्कंमांसरसैःपिवेत् ॥
नरःसाधुवमत्येवंनचदौर्बल्यमश्नुते।

अर्थ—इसी तरह अग्निमन्थादि अवलेह की चार कल्पना हैं। अथवा तूंवी के रस की भावना देकर जौ के सत्तूका मन्थ पान करै। कफज ज्वर, खांसी, कंठरोग, अरुचि गुल्म, प्रमेह, लालास्राव आदि रोगों में इस के कल्क को मांसरस के साथ पान करै। इससे वमन वहुत अच्छी होती है और दुर्वलता भी नहीं होने पाती है।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

पयस्यष्टौसुरामण्डेमस्तुतक्रेचतेत्रयः ।
प्रेयंसपललंतैलंवर्द्धमानाःफलेषुषद् ॥
घृतमेकंकषायेषुनवान्येमधुकादिषु ।
अष्टौवर्तिक्रियालेहाःपञ्चमन्थोरसस्तथा
योगाइक्ष्वाकुकल्पेतेचत्वारिंशच्चपञ्चच।
उक्तामहर्षिणासम्यक्प्रजानांहितकाम्यया ॥

अर्थ—इस अध्याय में महर्षि पुनर्वसुने प्रजा की भलाई के लिये इक्ष्वाकु के पैंतालीस प्रयोग वर्णन किये हैं। यथा दूध के आठ सुरामंड, दही के तोड और तक्र के एक एक, सूंघने का एक, गुड, तिलकल्क, तेल और घी के एक एक, वर्द्धमान् छः मुलहटी आदि के क्वाथ के नौ, आठ प्रकार की

वर्ति, पांच प्रकार के अवलेह, मन्थानुपान का एक और मांसरस का एक।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने इक्ष्वाकुकल्पो नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

—❀—

चतुर्थोऽध्यायः।

अथातोधामार्गवकल्पंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम धामार्गव कल्पकी व्याख्या करेंगे।

धामार्गवके पर्य्यायवाची शब्द।

कर्कोटकीकटुफलामहाजालिनिरेवच। धामार्गवस्यपर्य्यायाराजकोशातकीतथा॥

अर्थ—कर्कोटकी,कटुफला,महाजालिनी, धामार्गव और राजको शातकी ये धामार्गव के पर्य्यायवाची शब्द हैं। इसे भाषामें घीयातोरई कहत हैं।

धामार्गव के गुण।

गरेगुल्मोदरेकासेवातेश्लेष्मामयस्थिते कफेचकण्ठवक्त्रस्थेकफसञ्चयजेषुच। रोगेश्वेतत्प्रयोज्यंस्यात्शिराःस्युर्गुरवश्चये

अर्थ—गरदोष, गुल्मरोग, उदररोग, खांसी, वातरोग, कफरोग, कंठस्थ वा मुख स्थकफ तथा अन्य कफसंचय कारकरोगों में, एवं वद्धमूल और गुरुरोगोंमें धामार्गव के प्रयोगों से वमनकरना हित है।

धामार्गवकीकल्पना।

फलंपुष्पंप्रवालञ्चविधिनातस्यसंहरेत्। प्रवालस्वरसंशुष्कंकृताश्चगुलिकाःपृथक् ॥ कोविदारादिभिःपेयाःकषायैर्मधुकस्यच। पुष्पादिषुपयोयोगाःचत्वारःपञ्चमीसुरा॥ पूर्ववज्जीर्णशुष्काणामतःकल्पःप्रवक्ष्यते। मधुकस्यकषायेणवीजकण्टोद्धृतंफलम् ॥ सगुडव्युषितंरात्रिंकोविदारादिभिस्तथा दद्याद्गुल्मोदरार्तेभ्योयेचाऽप्यन्येकफामयाः ॥ दद्यादम्लेनवायुक्तोछर्दिहृद्रोग शान्तये।

अर्थ—धामार्गव के फूल,फल और पत्तों को विधिपूर्बक लावे। धामार्गव के पत्तों के रस को सुखाकर गोली वना लेवै, इस गोली को विदारादि आठ द्रव्यों से पृथक् २ और मुलहटी इन के क्काथ के साथ पान करै। पूर्वोक्त विधि से धामार्गव के पुष्पादिकों के दूध के साथ चार प्रयोग हैं। पांचवां सुरा में भिगोकर मसलकर उसको पान करना है। इन प्रयोगों में पकेहुये फल सुखाकर काममें लाये जाते हैं। धामार्गव के वीज,छिलकेआदि दूर कर के मुलहटी के क्वाथ में अथवा कोविदारादि आठ द्रव्यों के क्काथ में से किसी एक में भिगोदेवै। प्रातःकाल इसको छान कर थोड़ा सा गुड डालकर पीवै, इस से गुल्मरोग, उदररोग, वा अन्य कफरोग दूर होजाते हैं। अथवा इसमें खटाई मिलाकर देने से वमन और हृद्रोग शान्त होजातेहैं।

चूर्णैर्वाप्युत्पलादीनिभावितानिप्रभूतशः

रसक्षीरयवाग्वादितृप्तोघ्रात्वावमेत्सुखम्।
चूर्णीकृतस्यवर्तिवाकृत्वाबदरसम्मिताम्॥
विनीयाञ्जलिमात्रेतुपिवेद्गोशकृतोरसे।
पृषतर्क्षकुरङ्गाश्वगजोष्ट्राश्वतराविके ॥
श्वदंष्ट्रीखरखड्गानांचैवंपेयाशकृद्रसे ।
जीवकर्षभकौवीरामात्मगुप्तांशतावरीम् ॥
काकोलींश्रावणींमेदांमहामेदांमधूलिकाम् । एकैकशोऽभिसंचूर्ण्यसहधामार्गवेण ते ॥ शर्करामधुसंयुक्तालेह्याहृद्दाहकासिनाम् ।

अर्थ—धामार्गव के चूर्ण में नीलकमल आदि के पुष्पों को खूब धरा रहने देवै। मांसरस,दूध और यवागू आदि को तृप्ती पर्य्यन्त भोजन करके इन पुष्पोंके सूंघने से बहुत सुखसे वमन होती है। अथवा तोले भर धामार्गव के फूल के चूर्ण को गौ के गोवर के एक अंजली रस के साथ पान करै। इसी तरह चितकवरा हिरन, रीछ, काला-हिरन, घोड़ा, हाथी, ऊंट, खिच्चर, भेडा, श्वदंष्ट्रा, गधा और गेंडा इन में से किसी के विष्टाके रसके साथ धामार्गव का चूर्ण पान करै। अथवा जीवक, ऋषभक,क्षीर-काकोली, आत्मगुप्ता, सितावर, काकोली श्रावणीं, मेदा, महामेदा और मुलहटी इन में से किसी एक के चूर्ण को धामार्गव के चूर्ण के साथ मिलाकर शहत और मिश्री के साथ चाटने पर हृदयका दाह और खांसी दूर होजाती है।

सुखोदकानुपानाःस्युःपित्तोष्मसहितेकफे धान्यतुम्बुरुयूषेणकल्कःसर्वविषापहः। जात्याःसौमनसायिन्यारजन्याश्चोरकस्य वा ॥ पुनर्नवाकासमर्दविम्बीहैमवतस्यच महासहाक्षुद्रसहावृश्चीराणांपृथक्पृथक्॥ एवंधामार्गवंद्वेवाकषायेपरिमृद्यतु ॥ पृतंमनोविकारेषुपिवेद्वमनमुत्तमम् । तत्शृतंक्षीरजंसर्पिःसाधितंवाफलादिभिः ॥

अर्थ—पित्तकीऊष्मायुक्त कफमेंधामार्गव का चूर्ण फांककर ऊपरसे गरम जलपीवै। धनियां, तुम्वुरू धनियां और यूषके साथ पान करै तो सब प्रकार के विष दूर होजाते हैं। मालती के फूल,हलदी,चोरक,पुनर्नवा कसोंदी, कंदूरी, वच, महासहा, क्षुद्रसहा और रक्त पुनर्नवा इन के पृथक् पृथक् कषाय में एक वा दो धामार्गव को मसल कर छानकर पीवै। अथवा उस के साथ औटाये हुए दूध के घी को मेनफलादि के कल्कके साथ सिद्ध करके सेवन करने से उत्तम वमन होती है।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन।

पल्लवेनचचत्वारःक्षीरएकःसुरासवे।
कषायाःविंशतिःकल्कौदशद्वौचशकृद्रसे॥
अन्नएकस्तथाघ्रेयेदशलेहास्तथाघृतम्।
कल्पेधामार्गवस्योक्ताःषष्टियोगामहर्षिणा

अर्थ—इस अध्यायमें धामार्गवपत्तोंकेचार प्रयोग, दूध का एक प्रयोग, सुरासवका एक, क्वाथ के बीस, गौ आदिके पुरीषरस के बारह, अन्न का एक, सूंघने का एक, अवलेह दस तथा घृत के दस। इस तरह

धामार्गवके साठ प्रयोग वर्णन कियेगये हैं।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने धामार्गवकल्पोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

—❀—

पञ्चमोऽध्यायः ।

अथातोवत्सककल्पंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वत्सककल्प की व्याख्या करेंगे।

अथवत्सकनामानिभेदंस्त्रीपुंसयोस्तथा। कल्पश्चास्यप्रवक्ष्यामिविस्तरेणयथातथम्।

अर्थ—अब हम वत्सक के नाम तथा उस के स्त्रीजाति और पुरुषजाति के भेद तथा इस के कल्पों की व्याख्या करेंगे।

वत्सक के नाम ।

वत्सकःकुटजश्चैववृक्षकोगिरिमल्लिका । बीजानीन्द्रयवास्तस्यतथोच्यन्तेक लिङ्गकाः ॥

अर्थ—वत्सक, कुटज, वृक्षक, गिरिमल्लिका इस के पर्य्यायवाची नाम हैं। इस के बीजों को इन्द्रजौ और कालिंग भी कहते हैं।

वत्सक के भेद ।

बृहत्फलःश्वेतपुष्पःस्निग्धपत्रःपुमान्भवेत् । श्यामारुणाचपुष्पीस्त्रिफलवृन्तैस्तथाणुभिः ॥

अर्थ—जिस वत्सक के बड़े फल,सफेदफूल और चिकने पत्ते होते हैं वह पुरुष जाति है जिस के फल काले वा लाल और जिस के फल और वृन्त छोटे होते हैं वह स्त्री जाति है ॥

वत्सककेगुण ।

रक्तपित्तकफघ्नस्तुसुकुमारेष्वनत्ययः । हृद्रोगज्वरवातासृग्विसर्पादिषुशस्यते ॥

अर्थ—वत्सक रक्तपित्त नाशक, कफनाशक, सुकुमारों को अनुपद्रवकर्त्ता, हृद्रोग, ज्वर, वातरक्त और विसर्प आदिरोगोंमें हित होता है।

वत्सक के कल्प ।

कालेफलानिसंगृह्यतयोर्वेश्मनिनिक्षिपेत् तेषामन्तर्नखंमुष्टिंजर्जरीकृत्यवामयेत् ॥ मधुकस्यकषायेणकोविदारादिभिस्तथा । निशास्थितंतमामृद्यलवणक्षौद्रसंयुतम् ॥ पिबेतद्वमनंश्रेष्ठंपित्तश्लेष्मनिबर्हणम् । अष्टाहंपयसार्केणतेषांचूर्णानिभावयेत् ॥ जीवकस्यकषायेणततःपाणितलंपिबेत् । फलजीमूतकेक्ष्वाकुजीवन्तीनांपृथक्तथा ॥ सर्षपाणांमधूकानांलवणस्याथवाम्बुना । कृशरेणाथवायुक्तंविदध्याद्वमनंभिषक् ॥

अर्थ—ठीक समयपर दोनों प्रकार के वृक्षों के फल लाकर सुखाकर घर में रख लेवै। इन में से अन्तर्नख मुष्टिभर लेकर चूर्ण करले। इस चूर्णको मुलहटी अथवा कोविदारादि आठ द्रव्यों के क्वाथ में से किसी एक के साथ रात्रि में भिगो देवै, प्रातःकाल इसे मसलकर छानले और इसमें सेंधानमक और शहत मिलाकर पीवै

पित्तरोग में इसकी वमन बहुत अच्छी होती है और यह पित्त कफको नष्ट भी करता है। अथवा इन के चूर्ण को आठ दिनतक आकके दूधकी भावनादेवै औरफिर इसमेंसे दो तोले जीवक के कषाय के साथ पीवै। अथवा आक के दूध में भावना दिया हुआ उक्तचूर्ण मेनफल, जीमूत, इक्ष्वाकु वा जीवन्ती के क्वाथ के साथ पान करे अथवा सरसोंका क्वाथ,वा मुलहटी का क्वाथ, वालवणकाजल, वाकुशरा के साथ इन्द्रजौ के कल्कका पानकरै तौ वमन होवै।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

तत्रश्लोकः। कषायैर्नवचूर्णैश्चपञ्चोक्ताः सलिलैस्त्रयः। कृशराष्टादशायोगावत्स कस्यनिदर्शिताः॥

अर्थ—इस अध्याय में क्वाथ के नौ, चूर्ण के पांच, जल के तीन वा कृशरा का एक इस तरह वत्सक के अठारह कल्प वर्णन किये गये हैं।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने वत्सक कल्पो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

——❀——

षष्ठोऽध्यायः।

अथातःकृतवेधनकल्पंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम कृतवेधन कल्प की व्याख्या करेंगे।

कृतवेधन के पर्य्यायवाचीनाम।

कृतवेधननामानिकल्पञ्चास्यनिबोधत। क्ष्वेडःकोशातकीचोक्तंमृदङ्गफलमेवच॥

अर्थ—अब हम कृतवेधन के नाम और उसके कल्पोंकी व्याख्या करते हैं। नाम, यथा, क्ष्वेड, कोशातकी और मृदंगफल ये कृतवेधन के नाम हैं, भाषा में इसे तोरई कहते हैं।

कृतवेधनके गुण।

अत्यन्तकटुतीक्ष्णोष्णगाढेष्विष्टङ्गदेषुतु। कुष्ठपाण्ड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु॥

अर्थ—तोरई अत्यन्त कटु, तीक्ष्ण और उष्ण होती है। यह गाढरोगों में उपयोगी होती है, कुष्ठ, पाण्डुरोग,प्लीहा,शोफ, गुल्मरोग और बिषरोग इसके सेवन से दूर होजाते हैं।

कृतवेधन के कल्प।

क्षीरादिकुसुमादीनिसुराचैतेषुपूर्ववत्। सुशुष्काणान्तुजीर्णानामेकंद्वेवायथाबलम्॥ कषायैर्मधुकादीनांनवभिःफलवत्पिबेत्। क्वाथंपीत्वाफलंतस्यपूत्वालेहंनिधापयेत्। कृतवेधनकल्काच्चफलाद्यर्द्धांशसंयुतम्॥ पृथक्चारग्वधादीनांत्रयोदशभिरासुतम्॥ शाल्मलीमूलग्रन्तानांपिच्छाभिर्दशभिस्तथा। वर्तिक्रियाषट्फलवत्फलादीनांघृतंतथा॥

अर्थ—कृतवेधन के पत्ते, फूल और फल आदि के दूध पकाकर वमन के लिये दिया जाता है, इस के पुष्प फलादिकों को रात्रि में सुरा में भिगोकर प्रातःकाल

छानकर पीने से वमन होती है। कृत-वेधनके एक वा दो पकेहुए सूखेवीज मुलहटी और कोविदारादि आठ द्रव्यों के क्राथ में किसी के साथ मेनफल की तरह लेवै। कृतवेधन का क्वाथ करके छान लेवै और फिर उसे लेह की तरह पकाकर सेवन करै। कृतवेधन का कल्क दो तोले इस में मेनफल का कल्क एक तोले मिलाकर सेवन करै। आरग्वधादि तेरह द्रव्यों के भिन्न भिन्न क्वाथ में कृतवेधन को भिगोकर और छान कर सेवन करै। सेमर की जड और डंठल का पिच्छा आदि दस द्रव्यों के साथ पृथक् पृथक् सिद्ध करके सेवन करै। इसी तरह कोविदारादि भिन्न २ छः द्रव्यों के साथ कृतवेधन की छः प्रकार की वर्ती वनाई जातीहैं। तथा मेनफल के सदृश ही कृत-वेधन का घृत भी तयार किया जाता है।

कोशातकानिपञ्चाशत्कोविदाररसेपचेत्। तत्कषायंफलादीनांकल्केर्लेहंहिसाधयेत्॥ च्वेडस्यतत्रभागःस्यात्शेषाण्यर्द्धांशिकस्यच। कषायैःकुद्दाराद्यैरेवन्तत्कल्पयेत्पृथक्॥ कषायेषुफलादीनांमानूपंपिशितंपृथक्। कोशातकीफलंपक्त्वातद्रसंलवणंपिबेत्॥ फलादिपिप्पलीतुल्यन्तद्रत्क्ष्वेडरसंपिवेत्। च्वेडक्राथेभवेत्सिद्धंमिश्रमिक्षुरसेनच॥

अर्थ—पचासकृत वेधन फलों को कोविदार के रस में पकावै। इसक्राथमें मदन फलादि द्रव्यों का कल्क डालकर लेह बनावै। जितनी कृतवेधन डाली जांय उस से आधे अन्य द्रव्य डालने चाहियें। फिर इन सबको कोविदारादि द्रव्यों के पृथक् २ क्वाथ में पकाकर सेवन करै। मेनफलादि के क्राथ में आनूपमांस और कोशातकीको पकाकर उस रस को नमक के साथ पीना चाहिये। उक्त कोशातकी और आनूपमांस इनके पकेहुए रसको मेनफलादि पीपल पर्य्यन्त द्रव्यों के क्वाथ में पकाकर सेवन करै अथवा मेनफलादि के क्वाथ में सिद्ध कीहुई कोशातकी को ईख के रस के साथ पीना चाहिये।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन।

क्षीरेद्वौद्वौसुराचैकाक्काथाद्वाविंशतिस्तथा दशपिच्छाघृतंचैकंषट्चवर्तिक्रियाःशुभाः। लेहेऽष्टौसप्तमांसेचयोगइक्षुरसेऽपरः। कृतवेधनकल्पेऽस्मिन्षष्ठियोगाःप्रकीर्तिताः

अर्थ—इस अध्याय में दूध के चार सुरा का एक,क्वाथके वाईस,पिच्छाके दस, घी का एक, वर्त्ति छः, लेह आठ, मांस के सात और ईख के रस का एक इस तरह कोशात की के साठ प्रयोग वर्णन किये गये हैं॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांकल्पस्थानेकृतवेधनकल्पोनाम षष्ठोऽध्यायः॥ ६॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातःश्यामात्रिवृत्कल्पंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अवहम श्यामात्रिवृत कल्प की व्याख्या करेंगे ।

विरेचनेत्रिवृन्मूलंश्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥ तस्याःसंज्ञागुणःकर्मभेदःकल्पश्चवच्यते

अर्थ—पण्डितोंने विरेचन के लिये निसोथ की जड़ वहुत उत्तम कही है इसी से अव हम उस के नाम, गुण, क्रियाभेद और कल्पों की व्याख्या करते हैं ॥

त्रिवृताकेनाम ।

त्रिभण्डीत्रिवृताश्यामाकुवहाकोटरातथा ॥ त्रिवृत्सर्वानुभूतिश्चशब्दैःपर्यायवाचकैः ।

अर्थ—त्रिभंडी, तृवृता, श्यामा, कोटरा (कुटरुणा) और सर्वानुभूति ये इस के पर्य्यायवाची शब्द हैं, इसे भाषामें निसोथ कहते हैं ।

निसोथकेगुण ।

कषायामधुरारूक्षाविपाकेकटुकाचसा । कफपित्तप्रशमनीरौक्ष्याच्चानिलकोपनी ॥ सेदानीमौषधैर्युक्तावातपित्तकफापहैः ॥ कल्पावशेष्यमासाद्यसर्वरोगहराभवेत् ।

अर्थ—निसोथ कसीली, मिष्ट, रूक्ष और कटुपाकी होती है यह कफ पित्त को दूर करतीहै, रूखी होनेके कारण वात को प्रकुपित करतीहै । परन्तु वात, पित्त तथा कफ नाशक औषधियों के योगसे अनेक कल्पनाओं के द्वारा सम्पूर्ण प्रकारके रोगों को दूर करतीहै ।

निसोथकेभेद ।

मूलन्तुद्विविधंतस्याःश्यामंचारुणमेवच ॥ तयोर्मुख्यतरंविद्धिमूलंयदरुणप्रभम् ॥

अर्थ—निसोथ की जड़ लाल और काली दो तरह की होतीहै, इनमें से लालजड़ वाली निसोथ वहुत उत्तम होतीहै । यह सुकुमार, वालक, वृद्ध और मृदु कोष्ठ वालोंके लिये उत्तम होतीहै ।

श्यमात्रिवृतकेगुण ।

सुकुमारेशिशौवृद्धेमृदुकोष्ठेचतत्शुभम् ॥ मोहयेदाशुकारित्वात्श्यामाकण्ठंक्षिणोत्यपि । तैक्ष्ण्यात्कर्षतिहृत्कण्ठमाशुदोषंहरत्यपि ॥ शस्यतेबहुदोषाणांक्रूरकोष्ठाश्चयेनराः ।

अर्थ—श्यामानिसोथ आशुकारी होने से मोह और कंठमें क्षीणता करतीहै । तीक्ष्ण होनेसे हृदय और कंठको कर्षित करतीहै, तथा दोष को शीघ्रही दूर करदेती है । यह निसोथवहुत दोषवाले और कडेकोठेवालों के पक्ष में हित है ।

गुणवत्यान्तयोर्भूमौजातंमूलंसमुद्धरेत् ॥ उपोष्यप्रयतःशुक्लेशुक्लवासाःसमाहितः । गम्भीरानुगतंश्लक्ष्णंअतिर्यग्विसृतञ्चयत् । गृहीत्वाविसृजेत्काष्ठंत्वचंशुष्कांनिधापयेत् ॥

अर्थ—श्रेष्ट गुणवाली भूमिमें उत्पन्न हुई दोनों प्रकारकी निसोथकीजड़ लावै, लाने के दिन उपवास करै और पवित्रता से स्वच्छ

वस्त्र धारण कर के शुक्लपक्ष में लाने का प्रयत्न करै । निसोथकीजड़ जो सीधी और फैलतीहुई वहुत नीचे को चली गई हो और चिकनी हो उसे निकाल कर छाल को सुखाकर रखलेवै और काठको त्यागदेवै ।

निसोथकी मात्रा ।

स्निग्धस्विन्नोविरेच्यस्तुपेयामात्राशितः सुखम् । अक्षमात्रन्तयोःपिण्डंविनीयाम्लेननापिवेत् ॥ गोव्यजामहिषीमूत्रसौवीरकतुषोदकैः । प्रसन्नयात्रिफलयाश्रृतयाचपृथक्पिवेत् ॥ एकैकंसैन्धवादीनांद्वादशानांसनागरम् । त्रिवृद्द्विगुणसंयुक्तंचूर्णमुष्णाम्बुनापिवेत् ॥

अर्थ—जिसको विरेचन देना हो उसे स्निग्ध और स्वेदित करके दोनों प्रकारकी निसोथ में से किसी को तोले भर कांजी में मिलाकर पीवै विरेचन के पीछे पेया आदि का सेवन करै ।इसी तरह से तोले भर निसोथ की जड़ को गौ, भेड़, वकरी, भैंसका मूत्र, सौवीर, तुषोदक, प्रसन्ना वा त्रिफला के क्राथ के साथ पीवै । अथवा चार सैंधवादिक और आठ प्रकारके मूत्र इन में से किसी के साथ, निसोथ से दुगुनी सोंठ डालकर पीवै ऊपर से गरमजल पीलेवै ।

मरिचंपिप्पलीमूलंमगधागजपिप्पली । सरलःकिलिमंहिङ्गुभार्गीतेजोवतीतथा । मुस्तंहैमवतीपथ्याचित्रकोरजनीवचा । स्वर्णक्षीर्यजमोदाचश्रृङ्गवेरञ्चतैःपृथक् ॥ एकैकार्धांशसंयुक्तंपिवेद्गोमूत्रसंयुतम् । मधुकार्द्धांशसंयुक्तंशर्कराम्बुयुतंपिवेत् ॥

अर्थ—कालीमिरच, पीपलामूल, पीपल, गजपीपल, सरलकाष्ठ, देवदारु, हींग, भाडंगी,चव्य, मोथा, वच,हरड़,चीता,हल्दी, वच, स्वर्णक्षीरी, अजमोद और सोंठ इन सब द्रव्यों से दूनी निसोथ मिलाकर गोमूत्र के साथ पान करै । अथवा एक भाग मुलहटी और दो भाग निसोथ मिला कर शर्करा के जल के साथ पीवै ॥

कर्कटाह्वाश्रावणीचमेदर्षभकजीवकौ ॥ मुद्गमाषाख्यपर्णीचमहतीश्रावणीतथा । काकोलींक्षीरकाकोलींछित्रांछिन्नरुहांतथा क्षीरशुक्लांपयस्याश्चयष्ट्याह्वांविधिना पिवेत् ॥ वातपित्तहितान्येतान्यन्यानि तुकफानिले ।

अर्थ—काकड़ा सींगी, श्रावणी, मेदा, ऋषभक, जीवक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, महाश्रावणी, काकोली, क्षीरकाकोली, छत्रा, गिलोय, क्षीरशुक्ला, विदारीकन्द और मुलहटी इन के समान निसोथ मिलाकर पीवै। ये प्रयोग वात पित्त में हित हैं तथा अन्य प्रयोग वात कफ में हित हैं ॥

क्षीरमांसेक्षुकाश्मर्याद्राक्षापीलुरसैःपृथक् ॥ सर्पिषावातयोश्चूर्णमभयार्धांशिकं पिवेत् । लिह्याद्द्राामधुसर्पिर्भ्यांसंयुक्तंससितोपलम् ॥ अजगन्धातुगाक्षीरीविदारीशर्करात्रिवृत् । चूर्णितंक्षौद्रसर्पिर्भ्यांलीढ्वासाधुविरिच्यते ॥ सन्निपातज्वरस्तम्भदाहतृष्णार्दितोनरः ।

अर्थ—दूध, मांसरस, ईख का रस, खंभारी, दाख, पीलू का रस वा घीके साथ

आधा भाग हरड़ का मिलाकर दोनो प्रकार की निसोथ में से कोई सी पीवै। अथवा निसोथ के चूर्ण में शहत, घी और चीनी मिलाकर चाटै। अजगन्ध, वंशलोचन, विदारीकन्द, चीनी और निसोथ इन के चूर्ण को शहत और घी में सानकर चाटने से अच्छी तरह विरेचन होता है। सन्निपातज ज्वर, स्तम्भ, दाह और तृष्णा में यह विरेचन हित होता है॥

श्यामात्रिवृत्कषायेणकल्केनचससशर्करम्॥ साधयेद्विधिवल्लेहंलिह्यात्पाणितलंततः। सक्षौद्रांशर्करांपक्त्वाकुर्यान्मृद्भाजनेनवे॥ क्षिपेत्शीतंत्रिवृच्चूर्णंत्वक्पत्रमरिचैःसह। मात्रयालेहयेदेतदीश्वराणांविरेचनम्॥ कुडवांशान्रसानिक्षुद्राक्षापीलुपरूषकात्। सितोपलापलेक्षौद्रात्कुडवार्द्धञ्चसाधयेत्॥ तंलेहंयोजयेत्शीतंत्रिवृच्चूर्णेनशास्त्रवित्। एतदुत्सन्नपित्तानामीश्वराणां विरेचनम्॥

अर्थ—श्यामा निसोथ का क्वाथ, कल्क और चीनी मिलाकर लेह की तरह पकावै और इस में से दो तोले चाटै। शर्करा को पकाकर ठंडा होने पर शहत मिलाकर मिट्टी के नये पात्र में रखदेवै। इसी में निसोथ का चूर्ण, दालचीनी, तेजपात, काली मिरच इनका चूर्ण भी उस में डाल देवै इस को मात्रावत् सेवन करै। यह विरेचन सेठसाहूकार राजा महाराजाओंको उपयोगी है। अथवा ईखका रस, दाखका रस, पीलू का रस और फाल से का रस एक एक कुडव और चीनी दो पल इन सबको पकाकर ठंडा करले ठंडा होने पर आधाकुडव शहत मिलाकर धरलेवै इसलेह में निसोथ का चूर्ण मिलाकर सेवन करै। यह विरेचन धनवान् उदीर्ण पित्तवालों के लिये हित कर है।

पैत्तिक प्रकृति वालों का विरेचन।

शर्करामोदकान्वर्तींगुलिकामांसपूपकान्। अनेनविधिनाकुर्यात्पैत्तिकानांविरेचनम्

अर्थ—पित्तप्रकृति वालों के लिये निसोथ के बूरे के लड्डू, वर्त्ति, गुलगुला, मांसके पुआ आदि वनाकर विरेचनके लिये देवै।

कफप्रकृति के लिये विरेचन।

पिप्पलींनागरंक्षारंश्यामांत्रिवृतयासह। लेहयेन्मधुनासार्द्धंश्लेष्मलानांविरेचनम्॥

अर्थ—कफप्रकृति वालों के लिये पीपल, सोंठ, क्षार और श्यामातृवृत इन को शहत के साथ चटाने से विरेचन होता है।

कफाधिक्य में राजाओं के योग्य विरेचन

मातुलुङ्गाभयाधात्रीश्रीपर्णीकोलदाडिमात्। सुभृष्टान्स्वरसांस्तैलेसाधयेत्तत्रचावपेत्॥ सहकारान्कपित्थांश्चसाध्यमम्लञ्चयत्फलम्। पूर्ववद्लेहलीभूतेत्रिवृच्चूर्णंसमावपेत्॥ त्वक्पत्रकेसरैलानांचूर्णञ्चमधुमात्रया। लेहोऽयंकफमूलानामीश्वराणांविरेचनम्॥

अर्थ—बिजौरा, हरड, आंवला, श्रीपर्णी, वेर और अनार इन सब का समान भाग रस और इतनीही शर्करा लेकर मिला देवै और पाक करै। पीछे इसे तेल में भून लेवै

और फिर इस में निसोथ डाल देवै। इसी तरह से आम कैथ, तथा अन्य खट्टे फलों के क्वाथ को पकाकर गाढा करले और फिर उस में निसोथ का चूर्ण डाले और दालचीनी, तेजपात, केसर और इलायची इस में डालदेवै, फिर इस को शहत के साथ चाटै। यह विरेचन कफ प्रधान राजा महाराजाओं के लिये वहुत हित है।

पानकानिरसान्यूषान्मोदकान्रागषाडवान्। अनेनविधिनाकुर्याद्विरेकार्थेकफाधिके॥ त्वगेलाभ्यांसमंनीतंतैस्त्रिवृत्तैश्चशर्करा। चूर्णफलरसक्षौद्रशक्तुभिस्तर्पणंपिवेत्॥ वातपित्तकफोत्थेषुरोगेष्वल्पानलेषुच। नरेषुसुकुमारेषुनिरपायंविरेचनम्॥ शर्करात्रिफलाश्यामात्रिवृन्मागधिकेमधु। मोदकःसन्निपातोर्द्ध्वरक्तापित्तज्वरापहः।

अर्थ—इसी तरह से पानक, रस यूष मोदक और रागषाडव वनाकर कफाधिक व्यक्तियों के लिये विरेचन के निमित्त देवै एक भाग दालचीनी, एक भाग इलायची दो भाग निसोथ और चार भाग चीनी को मिलाकर अम्लफल के रस, शहत और जौ के सत्तू के साथ तर्पण पान करै। यह विरेचन बात, पित्त और कफके रोगों में, मन्दाग्नि में और सुकुमार मनुष्यों के लिये हित है। अथवा चीनी, त्रिफला, दोनों प्रकार की निसोथ, पीपल और शहत इन सव के मोदक वनावै। ये मोदक सन्निपात ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त और ज्वर को दूर करता है।

त्रिवृच्छाणामृतास्तिस्रस्तिस्रश्चत्रिफलात्वचः॥ विडङ्गपिप्पलीक्षारशाणास्तिस्रश्चचूर्णिताः। लिह्यात्सर्पिर्मधुभ्याञ्चमोदकंवागुडेनच॥ भक्षयेन्निष्परीहारमेतच्छोधनमुत्तमम्। गुल्मंप्लीहोदरंश्वासंहलीमकमरोचकम्॥ कफवातकृतांश्चान्यान्व्याधीनेतद्व्यपोहति।

अर्थ—निसोथ तीन शाण, गिलोय तीन शाण, त्रिफलाकी छाल तीन शाण, वायविडंग एक शाण, पीपल एक शाण और जवाखार एक शाण इनका चूर्ण करके घी और शहत के साथ चाटै अथवा इस में गुड मिलाकर मोदक वनालेवै। इन मोदकों के सेवन में आहारादि के त्यागने की कुछ आवश्यकता नहीं है, यह विरेचन वहुत उत्तम है। इस से गुल्म, प्लीहा, उदररोग, श्वास, हलीमक, अरुचि, तथा कफवात कृत अन्य व्याधियाँ दूर होजाती हैं।

कल्याणक गुटिका।

विडङ्गपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्यचित्रकम्॥ मरिचेन्द्रयवाजाजीपिप्पलीहस्तिपिप्पली। लवणान्यजमोदाच्चचूर्णितंकार्षिकंपृथक्॥ तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौचाष्टपलोन्मितौ। धात्रीफलरसप्रस्थांस्त्रीन्गुडार्द्धतुलान्तथा पक्त्वामृद्वग्निनाखादेद्दद्रोदुम्बरोपमान्। गुडान्कृत्वानचास्यस्याद्विहाराहारयन्त्रणा कुष्ठार्शःकामलामेहगुल्मोदरभगन्दरम्। ग्रहणीपाण्डुरोगांश्चहन्युःपुंसवनाश्चते।

कल्याणकाइतिख्याताःसर्वेष्वृतुषुयौगिकाः

अर्थ—वायविडंग, पीपलामूल, त्रिफला, धनियां, चीता, कालीमिरच,इन्द्रजौ, जीरा, पीपल, गजपीपल, सैंधानमक, अजमोद, इन में से प्रत्येक एक एक पल लेकर चूर्ण कर लेवै तथा तिलका तेल आठ पल,निसोथ का चूर्ण आठ पल, आंवले का रस तीन प्रस्थ और पुराना गुडआधीतुला, इकट्ठेकरै। प्रथम आंवले के रस में गुडकी चासनी करै फिर इसमें उक्त द्रव्यों का चूर्ण और सुपक्क तैल डालदेवै, फिर इस में से वेर वा गूलर की वरावर गोलियां बनावै। इन गोलियों के सेवन करने में किसी प्रकार के आहार विहार का निषेध नहीं है। इसके सेवन से कुष्ठ, अर्श, कामला,प्रमेह, गुल्म, उदररोग,भगन्दर,गृहणी रोग, पांडुरोग, दूर होजातेहैं। यह पुंसवनभी है। इसका नाम कल्याणक गुटिका है। यह संपूर्ण ऋतुओंमें उपयोगी होती है।

व्योषादि विरेचन।

व्योषत्वक्पत्रमुस्तैलाविडङ्गामलकाभयाः समभागाभिषगदध्याद्द्विगुणञ्चमुकूलकम्। त्रिबृतोऽष्टगुणंभागंशर्करायाश्च षड्गुणम्। चूर्णितङ्गुलिकान्कृत्वाक्षौद्रेणपलसम्मितान्। भक्षयेत्काल्यमुत्थाप्यशीतं चानुपिवेज्जलम्॥ मूत्रकृच्छ्रज्वरेवम्यां कासेश्वासेभ्रमेक्षये। तापेपाण्ड्वामयेऽल्पेऽग्नौशस्तानियन्त्रिताशिनः॥ योगः सर्वविषाणाञ्चमतःश्रेष्ठंविरेचनम्।

अर्थ—त्रिकुटा, दालचीनी, तेजपात, मोथा,इलायची,वायविडंग,आंवला,हरड,इन सवकाचूर्ण समानभागलेवै,दंतीदोभागलेवे,निसोथ आठभाग और शर्कराछःभाग इनसवका चूर्णकरके शहतमें सानकर एक २ पल की गोली वनावै। इन में से प्रातःकाल एक गोली को खाकर ऊपरसे ठंडा जल पी लेवै। इस के सेवन से मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, वमन खांसी, श्वास, भ्रम, क्षयरोग,ताप,पांडुरोग और मन्दाग्नि दूर होजाते हैं, इस में आहार विहार की कुछ यंत्रणा नहीं है। यह सव प्रकार के विषरोगों में भी श्रेष्ठ है।

दशमोदकोंका प्रयोग।

त्रिवृत्पलंद्विप्रसृतंपथ्याधान्योर्वूकयोः। दशैतान्मोदकान्कुर्य्यादीश्वराणांविरेचनम्॥

अर्थ—निसोथ एक पल, हरड़, धनियां और अरंड की जड दो प्रसृत इन सव का चूर्ण वनाकर शहत वा गुड के साथ दस मोदक वनावै। यह विरेचन राजा वा धनी लोगों के पक्ष में वहुत हित है।

त्रिवृद्धर्मवतीश्यामानीलिनीहस्तिपिप्पली समूलापिप्पलीमुस्तमजमोददुरालभा। अर्द्धांशिकंपलंशुण्ठ्यागुडस्यपलविंशतिम् चूर्णितंमोदकान्कुर्यादुदुम्बरफलोपमान्। हिंगुसौवर्चलव्योषयवानीविडजीरकैः॥ वचाजगन्धात्रिफलाचव्याचित्रकधान्यकैः मोदकान्वेष्टयेच्चूर्णैस्तान्सतुम्बुरुदाडिमैः॥ तिक्वंक्षणहृद्वस्तिकोष्ठार्शःप्लीहशूलिनाम्। हिक्काकासारुचिश्वासकफोदावर्तिनां शुभाः।

अर्थ—लाल निसोथ, सफेदवच, श्यामा-निसोथ, नीलिनी, गजपीपल, पीपल, पीपलामूल, मोथा, अजमोद, जवासा, ये सब आधे आधे पल लेवै। सोंठ एक पल और गुड़ बीस पल इन सबका चूर्ण करके गूलर के बराबर मोदक बनालेवै। पीछे हींग, संचरनमक, त्रिकुटा, अजवायन, वाय विडंग, जीरा, वच, अजगंध, त्रिफला, चव्य, चीता, धनियां इन सब का चूर्ण कर के ऊपरके मोदकोंको इस चूर्ण में लपेट देवै, अथवा तुम्वरू और अनार के छिलके के चूर्ण में लपेट देवै। इस के सेवन करने से त्रिक्, वंक्षण, हृदय, वस्ति, कोष्ठ, अर्श और प्लीहा इनका शूल दूरहोजाता है। हिचकी, खांसी, अरुचि, श्वास, कफ और उदावर्त्त वालों के लिये भी ये हित है।

शुण्ठीमरिचपिप्पल्यःकार्षिकाःस्युःपृथक् पृथक् ॥ द्विगुणेशर्करैलेचसातलास्यात्चतुर्गुणा। नीलिनीमष्टगुणितांद्विरष्टगुणितांतथा॥ दन्तींद्रवन्तींत्वक्छाणमेकंचात्र प्रदापयेत्। अस्मादर्द्धपलंचूर्णाल्लिह्यात्माक्षिकसंयुतम्॥ शीतोदकानुपानन्तुनिरपायंविरेचनम्।

अर्थ—सोंठ, कालीमिरच, पीपल, ये तीनों एक २ कर्ष लेवै, शर्करा दो कर्ष इलायची दोकर्ष, सातला चारकर्ष, नीलिनी आठ कर्ष, दन्ती बत्तीसकर्ष, द्रवन्ती और दालचीनी एक एक शाण लेकर सब का चूर्ण बनालेवै, इस चूर्ण में से आधापल शहत के साथ सेवन करे, ऊपर से ठंडा पानी पीले तौ उपद्रव रहित विरेचन होता है॥

भिन्न भिन्न ऋतु के विरेचन।

त्रिवृतांकौटजंबीजंपिप्पलीविश्वभेषजम् समार्द्वीकरसक्षौद्रंवर्षास्वेतद्विरेचनम्। त्रिवृद्दुरालभामुस्ताशर्करोदीच्यचन्दनम् द्राक्षाम्बुनासयष्ट्याह्वशीतलंजलदात्यये। त्रिवृतांचित्रकंपाठांअजाजींसरलंबचाम्। स्वर्णदुग्धींचहेमन्तेपिष्ट्वातूष्णाम्बुनापिबेत्॥ शर्करात्रिवृतातुल्याग्रीष्मकालेविरेचनम्। हपुषांसप्तलांश्यामांद्रवन्तीं कटुरोहिणीम्। स्वर्णक्षीरीश्चसंचूर्ण्यगोमूत्रेभावयेत्त्र्यहम्। एषसर्वर्तुकोयोगः स्निग्धानांमलदोषहृत्॥

अर्थ—निसोथ, इन्द्रजौ, पीपल, सोंठ इनके चूर्ण को दाख के रस और शहतके साथ लेवै यह विरेचन वर्षाऋतु में हितहै निसोथ, जवासा, मोथा, शर्करा, नेत्रवाला, रक्तचन्दन, और मुलहटी इनके चूर्ण को द्राक्षा के शीतल कषाय के साथ पानकरै तौ शरदऋतु में अच्छा विरेचन होता है। हेमन्तऋतु में निसोथ, चीता, पाठा, जीरा, सरलकाष्ठ, वच और स्वर्णक्षीरी इनके चूर्ण को गरमजल के साथ पानकरै। ग्रीष्मऋतु में विरेचन के लिये निसोथ और चीनी को समानभाग मिलाकर देवै। हाऊबेर, सातला, श्यामनिसोथ, द्रवन्ती, कुटकी और स्वर्णक्षीरी इन सब का चूर्ण कर के तीन दिनतक गोमूत्र में भिगो देवै। इसका सेवन सब ऋतुओं में होसक्ता है, स्निग्ध

कर के इस विरेचन को देने से मलके दोष दूर होजाते हैं ॥

त्रिवृत्तश्यामेदुरालम्भावत्सकंहस्तिपिप्पली । नीलिनीत्रिफलामुस्तंकटुकाच सुचूर्णितम् । सर्पिर्मांसरसोष्णाम्बुयुक्तं पाणितलंततः ॥ पिबेत्सुखतमंह्येतद्रूक्षाणामपिशस्यते । त्र्यूषणंत्रिफलांहिंगुकार्षिकंत्रिवृतांपलम् । सौवर्चलार्द्धकर्षश्चपलार्धंचाम्लवेतसात् ॥ तच्चूर्णंशर्करातुल्यंमद्येनाम्लेननापिबेत् । गुल्मपार्श्वार्तिनुत्सिद्धंजीर्णेचाद्याद्रसौदनम् ॥

अर्थ—दोनों प्रकारकी निसोथ, जवासा, इन्द्रजौ, गजपीपल, नीलनी, त्रिफला, मोथा और कुटकी इन सब का चूर्ण करके, घृत मांसरस वा उष्णजल के साथ दो तोले सेवन करै । यह विरेचन रूक्ष व्यक्तियों को भी सुखपूर्वक होता है । त्रिफला, त्रिकुटा और हींग एक २ कर्ष, निसोथ एक पल, संचलनमक आधाकर्ष, अम्लवेतआधा पल, इस सब के बराबर चीनी मिलाकर मद्य वा अम्ल के साथ पानकरै । इस के सेवन से गुल्मरोग और पार्श्ववेदना दूर हो जाती है । औषध के पचनेपर मांसरस और भातका भोजन करै ।

सप्तलांत्रिफलांदन्तींत्रिवृतांव्योषसैन्धवे । कृत्वाचूर्णंतुसप्ताहंभाव्यमामलकीरसे ॥ तद्योज्यंतर्पणेयूषेपिशितेरागयुक्तिषु ॥ तुल्याम्लंत्रिवृताकल्कंसिद्धंगुल्महरंघृतम् । मूल्यंश्यामात्रिवृतयोःपचेदामलकैःसह ॥ जलेतेनकषायेणपक्त्वासर्पिःपिबेन्नरः । निर्यूहेणतयोर्युक्त्यासिद्धसर्पिःपिबेत्तथा ॥ साधितंवापयस्ताभ्यांसुखंतेनाविरिच्यते ।

अर्थ—सातला, त्रिफला, दन्ती, निसोथ त्रिकुटा, सेंधानमक इनका चूर्ण कर के सात दिवसतक आंवले के रस में भिगोवै । इसका तर्पण, यूष, मांस और रागषाडवादि द्वारा प्रयोग करै । कांजी और घृत समान भाग तथा चतुर्थांश निसोथ मिलाकर पाक करै यह घृत गुल्मनाशक है । दोनों प्रकार की निसोथ को आंवलों के साथ अठगुने जल में पाक करै चौथाई शेष रहने पर छानकर उस क्काथ में घृत पकावै । अथवा इन दोनों के निर्यूह में केवल दूध वा घी पकाकर सेवन करने से सुखपूर्वक विरेचन होता है ।

जलद्रोणेपचेदष्टौत्रिवृन्मुष्टीतुसन्नखात् ॥ पादशेषंकषायंतंशीतंगुडतुलायुतम् । स्निग्धंस्थाप्यंघटेक्षौद्रापिप्पलीफलचित्रकैः ॥ प्रलिप्तेविधिनामासज्ञातंतन्मात्रयापिबेत् । ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंगुल्मश्वयथुनाशनम् ॥

अर्थ—नखसहित आठ मुट्ठी निसोथ को एक दोण जल में पकावै, जब चौथाई शेष रह जाय तब छानले । जब वह क्काथ ठंढा होजाय तब उस में एक तुला गुड मिलावै । फिर एक चिकने घडे के भीतर शहत, पीपल, मेनफल और चीते का लेप करके उस में इसे भर दे एक महीने पीछे मात्राके अनुसार इसका सेवन करै तो ग्रहणी पांडुरोग, गुल्म और सूजन दूर होजाती है ।

सुरांवात्रिवृतांपादकिएवांतत्क्काथसंयुताम्

म् । यवैःश्यामात्रिवृत्क्वाथेस्त्रिग्धैःकुल्माषमम्भसा ॥ आसुतंषडहंपल्लेजातंसौवीरकंपिबेत् ।भृष्टान्वासतुषान्शुद्धान्यवांस्तच्चूर्णसंयुतान् ॥ आसुतानम्भसातद्धत्पिबेज्जातंतुषोदकम् । तथामदनकल्पोक्तान्षाडवादीन्पृथग्दश ॥ त्रिवृच्चूर्णेनसंसृज्यविरेकार्थंप्रयोजयेत् ।

अर्थ—सुरा, त्रिवृता और चतुर्थांश सुरा बीज इन को पकाकर सेवन करै । अथवा दोनों प्रकार की निसोथ के क्वाथ में जौओं को अच्छी तरह सिजाकर छानलेवै फिर इस क्वाथ में कुलमाष मिलाकर छःराततक जौके ढेर में गाढ देवै। यह सौवीर विरेचन में हित होता है । अथवा छिलकों समेत जौ को भुनवाकर इतनीही निसोथ मिलाकर जल में भरकर जौ के ढेरमें गाढ देवै । छः दिन पीछे ये तुषोदक तयार होता है । इसी तरह मदन कल्पोक्त दस प्रकार के षाडवादि निसोथ के चूर्ण में मिलाकर विरेचन के लिये देवै । वे ये हैं यथा षाडव राग, अवलेह, मोदक, उत्कारिका, तर्पण, पानक, मांसरस, यूष और मद्य ।

उपसंहार ।

त्वक्केसराम्रातकदाडिमैला ।
सितोपलामाक्षिकमातुलुङ्गैः ॥
मद्यैस्तथान्यैश्चमनोऽनुकूलै ।
र्युक्तानिदेयानिविरेचनानि ॥
शीताम्बुनापीतवतश्चतस्य ।
सिञ्चेन्मुखंछर्दिविघातहेतोः ॥
हृद्यांश्चमृत्पुष्पफलप्रवाला ।
न्म्लंचदद्यादुपजिघ्रणार्थम् ॥

अर्थ—दालचीनी, नागकेशर, आमडा, अनार, इलायची, चीनी, शहत, बिजौरा और मद्य अथवा अन्य मनोऽनुकूल द्रव्यों में मिलाकर विरेचन दैना चाहिये। विरेचन कारक द्रव्य के पान करने से पीछे वमन न होने पावै, इस लिये ठंडे जल से मुख को धोता रहै। तथा सूंघने के लिये हृदय प्रिय मिट्टी फूल, फल और पत्ते देता रहै

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

एकोम्लादिभिरष्टौचदशद्वौसैन्धवादिभिः।
मूत्रेऽष्टादशयष्ट्यांद्वौजीवकादौचतुर्दश ॥
क्षीरादौसप्तलेहेऽष्टौचत्वारःसितयापिच।
पानकादिषुपञ्चैवषडृतौपंचमोदकाः ॥
चत्वारश्चघृतक्षीरेद्वौचूर्णेतर्पणौतथा ।
द्वौमद्येकाञ्जिकेद्वौचदशान्येषाडवादिषु॥
श्यामायास्त्रिवृतायाश्चकल्पेऽस्मिन्समुदाहृतम् । शतंदशोत्तरसिद्धंयोगानांपरमर्षिणा ॥

अर्थ—इस अध्याय में निसोथ के एक सौ दस कल्पवर्णन किये हैं । अम्लादि के नौ, सेंधवादिके बारह, मूत्र के अठारह, मुलहटी के दो,जीवकादि के चौदह,क्षीरादि के सात, लेह आठ, शर्करा के चार, पानकादि के पांच, ऋतुओं के छः, मोदक पांच, घृत और दूध चार, चूर्ण और तर्पण दो, मद्य के दो और कांजी के दो और षाडवादि के दस । इस तरह एक सौ दस प्रयोग वर्णन किये गये हैं ।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचि-

तायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने श्यामात्रिवृत्कल्पो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातश्चतुरंगुलकल्पंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम चतुरंगुल कल्प की व्याख्या करेंगे ।

चतुरंगुलके अन्यनाम ।

आरग्वधोराजवृक्षःशम्याकश्चतुरंगुलः । प्रग्रहःकृतमालश्चकर्णिकारोऽवघातकः ॥

अर्थ—आरग्वध, राजवृक्ष, शम्पाक, चतुरंगुल, प्रग्रह, कृतमाल, कर्णिकार और अविघातक ये अमलतास के संस्कृत नाम है ।

अमलतासके गुण ।

ज्वरहृद्रोगवातासृगुदावर्तादिरोगिषु ॥ राजवृक्षोऽधिकंपथ्योमृदुर्मधुरशीतलः । वालेवृद्धेक्षतेक्षीणेसुकुमारेचमानेवे ॥ योज्योमृद्वनपायित्वाद्विशेषाच्चतुरंगुलः ।

अर्थ—ज्वर, हृदयरोग, वातरक्त और उदावर्तादि रोगों में राजवृक्ष अधिकपथ्य है, यह मृदु, मधुर और शीतल है । यह मृदु और अनपायी (निरुपद्रवकर्त्ता) है इस से इसका विरेचन वालक, वृद्ध, क्षतक्षीण और सुकुमारों के लिये वहुत हित हैं ।

अमलतासके रखने की विधि ।

फलकालेफलंतस्यग्राह्यंपरिणतञ्चयत् ॥ एषांगुणवतांभारंसिक्तासुनिधापयेत् । सप्तरात्रात्समुद्धृत्यशोषयेदातपेभिषक् । ततोमज्ञानमुद्धृत्यशुचौभाण्डेनिधापयेत् ॥

अर्थ—जिस ऋतु मे इसके फल लगते हों उस में पके हुए फलों को लाकर वालू में गाढ देवै । सात दिन पीछे निकाल कर धूपमें सुखालेवै तदनन्तर इनका गूदा निकाल करएक शुद्ध पात्र में भर देवै ॥

अमलतासके कल्प ।

द्राक्षारसयुतोदेयोदाहोदावर्त्तपीडिते ॥ चतुर्वर्षसुखंबालेयावदद्वादशवार्षिके । चतुरंगुलमज्जस्तुप्रसृतंवाथवाञ्जलिम् ॥ सुरामण्डेनसंयुक्तमथवाकोलशीधुना । दधिमण्डेनवायुक्तंरसेनामलकस्यवा ॥ कृत्वाशीतकषायंतंपिबेत्सौवीरकेणवा । त्रिवृन्मज्जस्तथाकल्कंतत्कषायेणवापिबेत् । तथाविल्वकषायेणलवणक्षौद्रसंयुतम् ॥

अर्थ—दाह और उदावर्त्त से पीडित चार वर्ष के वालकसे लेकर वारह वर्ष के वालक तक द्राक्षारस के साथ सिद्ध किया हुआ अमलतास का गूदा वहुत हित है । अमलतासके दो पल वा आधसेर गूदे को सुरामण्ड, वा कोलशीधु, वा दधिमण्ड वा आंवले के रसके साथ पान करै । अथवा इस के शीतकषाय को सौवीरक के साथ पान करै । अथवा अमलतास के गूंद को घोटकर उस के क्काथ के साथ पीवै । अथवा बेलके क्काथ के साथ सेंधानमक और शहत मिलाकर पीवै ॥

कषायेणाथवातस्यात्रिवृच्चूर्णगुडान्वितम्॥ साधयित्वाशनैर्लेहंलेहयेन्मात्रयानरम् । चतुरंगुलसिद्धाद्धिक्षीराद्यदुदियाद्घृतम्। मज्जःकल्केणधात्रीणांरसेतत्साधितंपिबेत् तदेवदशमूलस्यकुलत्थानांयवस्यच ॥ कषायेसाधितंकल्कैःसर्पिःश्यामादिभिः पिबेत् ॥ दन्तीक्काथोञ्जलिमज्जःशम्पाक स्यगुडस्यच । कृत्वामासार्धमासस्थम रिष्टंपाययेतच ॥ यस्ययत्पानमन्नश्चहृद्यं स्वाद्वपिवाकटु । लवणंवाभवेत्तेनयुक्तंद द्याद्विरेचनम् ॥

अर्थ—अमलतास के क्काथ में निसोथ का चूर्ण और गुड डालकर लेहवत् धीरे धीरे पाक कर के चटावै । अमलतास से अठगुना दूध और चौगुना जल मिलाकर पाक करै जब पानी जलजाय तब उतारकर छान लेवै और इस दूध को जमादेवै फिर इसका घी निकालकर अमलतास के गूदे और आंवले के रस के साथ सिद्ध कर के पानकरै । अथवा उसी घृतकोदशमूल, कुलथी और जौ के क्काथ में श्यामादि निसोथ का कल्क डालकर सिद्ध करके पान करै। अथवा दन्ती का क्काथ एक अंजली, अमलतासका गूदा और गुड़ इनको मिलाकर पन्द्रह दिनतक एक पात्र में भरारहने दे फिर इस अरिष्ट का पान करावै । जिस मनुष्य को जैसा अन्नपान मधुर, कटु वा नमकीन अच्छा लगता हो, उसको उसीमें मिलाकर विरेचन देना चाहिये ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकाः ॥

द्राक्षारसेसुराशीध्वोर्दध्निचामलकीरसे । सौवीरककषायाभ्यांविल्वशम्पाकयोस्त था ॥ लेहोऽरिष्टोघृतेद्वेचयोगाद्वादशकी र्तिताः । चतुरंगुलकल्पेऽस्मिन्सुकुमाराः प्रकीर्त्तिताः ॥

अर्थ—इस अध्याय में अमलतास के बारह कोमल प्रयोग वर्णन कियेगये हैं, यथा— दाख के रस, सुरा, कोलशीधु, दही, आंवले का रस, सौवीरक, निसोथ, विल्व और शम्पाक इन के एक एक कल्प, लेह एक अरिष्ट एक और घृत दो । इस तरह ये बारह कल्प हैं ।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विराचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने चतुरंगुलकल्पो नामा ष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातस्तिल्वककल्पंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम तिल्वक कल्पकी व्याख्या करेंगे ।

लोधकेनाम ।

तिल्वकस्तुमतोरोध्रोबृहत्पत्रस्तिरीटकः ।

अर्थ—तिल्वक, लोध्र वा रोध्र, वृहत्पत्र और तिरीटक ये लोध के संस्कृतनाम हैं ।

लोधकेकल्प।

तस्यमूलत्वचंशुष्कामन्तर्वल्कलवर्जिताम्। चूर्णयेतत्रिधाकृत्वाद्वौभागौश्च्योतयेत्त तः ॥ लोध्रस्यैवकषायेणतृतीयंतेनभाव येत् । भागंतंदशमूलस्यपुनःक्काथेनभावये त् ॥ शुष्कंचूर्णंपुनःकृत्वाततऊर्द्धंप्रयोज येत् । दधितक्रसुरामण्डमूत्रैर्वदरशीधुना॥ रसेनामलकानांवाततःपाणितलंपिवेत् ॥

अर्थ—लोध की जड में से काठ को छोडकर केवल छाल निकालर उस के तीन भाग करै । एक भाग को सुखाकर चूर्ण करलेवै, और शेष दो भागोंका क्वाथकरै । फिर इस क्काथ की उक्त चूर्ण में भावना देवै । फिर दशमूल के क्वाथ की भावना देवै । फिर इसको सुखाकर चूर्ण बनाकर रखछोड़ै इस में से दो तोले दही, मठा, सुरामन्ड, गोमूत्र, कोलशीधु वा आंवले के रस के साथ पानकरै ॥

मेषशृंग्यभयाकृष्णाचित्रकैःसलिलेशृते । मरूजानख्नुयात्तचजातंसौवीरकंयदा ॥ भवेदञ्जलिनातस्यलोध्रकल्कंपिवेत्तदा । सुरांलोध्रकषायेणजातांपक्षस्थितांपिबे त् ॥ दन्तींचित्रकयोर्द्रोणेसलिलस्याढ कंपृथक् । समुत्क्वाथ्यगुडस्यैकांतुलां रोध्रस्यचाञ्जलिम् ॥ आवपेत्तत्परंपक्षा न्मद्यपानाद्विरेचनम् ।

अर्थ—मेंढासिंगी, हरड़, पीपल और चीता इन के क्वाथ में जौ को उबालकर टपका ले इससे सौवीरक बनताहै । यह सौवीरक आधसेर तथा इसमें मात्राके अनुसार लोध मिलाकर पानकरै अथवा सुरा और लोध का क्वाथ मिलाकर पन्द्रह दिनतक धरा रहने देवें । पीछे इसका सेवनकरै। अथवा एक एक आढ़क दन्ती और चीतेको अलग अलग एक एक द्रोण जल में क्वाथ करै, फिर इस क्वाथ में एक तुला गुड़ और आधसेर लोध मिलाकर धरारहने दे इस मद्य के पान करनेसे विरेचन होता है ।

तिल्वकस्यकषायेणदशकृत्वःसुभाविताम् मात्रांकम्पिल्लकस्यैवकषायेणपुनःपिवेत्॥ चतुरंगुलकल्पेनलेहोऽन्यःकार्यएवच । त्रिफलायाःकषायेणससर्पिर्मधुफाणितः॥ लोध्रचूर्णयुतःसिद्धोलेहःश्रेष्ठंविरेचनम् । अष्टाष्टौत्रिवृतादीनांपृथङ्मुष्टींस्तुसन्नखान्। द्रोणेऽपांसाधयेत्पादशेषेप्रस्थंघृतात्पचेत्। पिष्टैस्तैरेवबिल्वांशैःसमूत्रलवणैरथ ॥ ततोमात्रांपिवेत्कालेश्रेष्ठमेतद्विरेचनम् । लोध्रकल्केनमूत्राम्ललवणैश्चपचेद्घृतम्। चतुरंगुलकल्पेनसर्पिषीद्वेचसाधयेत् ॥

अर्थ—लोध के क्वाथ में लोध के चूर्ण को दस भावनादेवै फिरइसी चूर्ण में कवीले के क्वाथ की दस भावना देवै फिर इसे पान करै । अथवा अमलतास के लेह की तरह इस का भी लेह बनाकर चाटै। अथवा त्रिफला के क्वाथ में घी, शहत, राव और लोध का चूर्ण डालकर लेह बनालेवै । यह विरेचन बहुत अच्छा है । तृवृतादि द्रव्यों की सनख आठ आठ मुट्ठी लेकर एक द्रोण जल में पकावै चौथाई शेष रहने पर इस क्वाथ में घृत पकावै । अथवा उनही

तृवृतादि द्रव्यों को एक एक तोले पीसकर गोमूत्र और सेंधे नमकके साथ सिद्ध करके पान करै। अथवा चतुरंगलकी तरह लोध का कल्क, गोमूत्र, खटाई और नमक के साथ दो रीति से पाक करै (अमलतास के कल्पका पिछला प्रकरण देखो)।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

पञ्चदध्यादिभिस्त्वेकासुरासौवीरिकेणच एकोऽरिष्टस्तथायोगएकःकम्पिल्यकेन च॥ लेहास्त्रयोघृतेनापिचत्वारःसम्प्र दर्शिताः। योगास्तेलोध्रमूलानांकल्पेषो डशसंमताः॥

अर्थ—इस अध्याय में लोध के सोलह कल्प वर्णन किये गये हैं, यथा दही तक्र सुरामण्ड, गोमूत्र,कोलशीधु और आंवले के रस का एक एक,सुराका एक सौवीर का एक,अरिष्ट का एक कवीले का एक, लेह के तीन और घी के चार।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविर-
चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहिता
यां कल्पस्थाने लोध्रकल्पो नाम
नवमोऽध्यायः॥ ९॥

—※—

दशमोऽध्यायः।

अथातोमहावृक्षकल्पंव्याख्यास्यामः।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम महावृक्ष कल्पकी व्याख्या करेंगे।

विरेचनानांसर्वेषांसुधातीक्ष्णतमामता।
संघातंतुभिनत्याशुदोषाणांकष्टविभ्रमा॥
तस्मान्नैषामृदौकोष्ठेप्रयोक्तव्याकदाचन।
नदोषनिचयेचाल्पेसतिचान्यपरिक्रमे॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार के विरेचन कर्त्ता द्रव्यों में सेहुंड अत्यन्त तीक्ष्ण है। यह दोषों के संघात को शीघ्रही नष्ट करदेता है, यह अत्यन्त कष्टकारक विभ्रम उत्पन्न करता है, इस लिये इसे मृदु कोष्ठ वाले को कभी न देना चाहिये, अल्पदोषों में भी इसका देना ठीक नहीं है जो रोग अन्य विरेचन से साध्य हैं उन में भी इसका देना ठीक नहीं है॥

सेंहुड साध्य रोग।

पाण्डुरोगोदरेगुल्मेकुष्ठेदूषीविषार्दिते।
श्वयथौमधुमेहेचदोषविभ्रान्तचेतसि॥
रोगैरेवम्विधैर्ग्रस्तंज्ञात्वासप्राणमातुरम्।
प्रयोजयेन्महावृक्षंसम्यक्सह्यवचारितः॥
सद्योनुदतिदोषाणांमहान्तमपिसञ्चयम्।

अर्थ—पांडुरोग, उदररोग, गुल्म, कुष्ठ दूषीविषरोग, सूजन, मधुमेह,उन्माद, तथा ऐसेही अन्यरोगों से पीडित मनुष्य यदि बलवान् हो तो सेंहुंड का प्रयोग करै। सेंहुड के अच्छी तरह प्रयोग किये जाने पर दोषों का बडा संचय भी शीघ्रही दूर होजाता है।

सेहुड के भेद।

द्विविधःसमतोयैश्चबहुभिश्चैवकण्टकैः॥
सुतीक्ष्णैःकण्टकैरल्पैःप्रवरोबहुकण्टकः।

अर्थ—सेहुंड दो तरह का होता है

एक प्रकार का वहुत काटों से युक होता है, दूसरी तरह के में वहुत पैने थोडे कांटे होते हैं, परन्तु इन दोनों में वहुत से कांटों से युक्त अच्छा होता है।

सेंहुडकेनाम।

सनामास्नुग्गुडानन्दासुधानिस्त्रिंशपत्रकः॥

अर्थ—स्नुक्, गुड़ा, नन्दा, सुधा और निस्त्रिंशपत्र ये सेहुंड के संस्कृत नाम हैं।

सेहुंडकेलानेकीविधि।

तंविपाट्याहरेत्क्षीरंशस्त्रेणमतिमान्भिषक्। द्विवर्षंवात्रिवर्षंवाशिशिरान्तेविशेषतः विल्वादीनांबृहत्यावाकण्टकार्यापिचैकशः कषायंतंसमांशेनकृत्वाङ्गारेषुशोषयेत्। ततःकोलसमांमात्रांपिवेत्सौवीरकेणवा तुषोदकेनकोलानांरसेनामलकस्यवा॥ सुरयादधिमण्डेनमातुलुङ्गरसेनवा।

अर्थ—दो वा तीन वर्ष के पुराने सेहुंड को शस्त्र से चीरकर उस में से दूध निकाले। दूध निकालने का समय विशेष करके शिशिरऋतु का अन्त है। दूध को निकालकर वेल, वृहती और कटेरी क्रम से इन के क्वाथ में उसका समानभाग मिलाकर अंगारों पर सुखावे। पीछे से इस में से झाडीवेर की वरावर सौवीरक के साथ पान करै, अथवा तुषोदक, वा वेर के रस वा आंवले के रस के साथ पान करै, अथवा सुरा दधिमंड वा विजौरे के रस के साथ पानकरै॥

सातलांकाञ्चनक्षीरींश्यामादीनिकटुत्रिकम्। यथोपपत्तिसप्ताहंसुधाक्षीरेणभावयेत्। कोलमात्रंघृतेनातःपिबेन्मांसरसेनवा॥ त्र्यूषणंत्रिफलांदन्तींचित्रकंत्रिवृतांतथा। स्नुक्क्षीरभावितंसम्यग्विदद्याद्गुडपानके॥ त्रिवृतारग्वधंदन्तींशङ्खिनींसप्तलांसमाम्। गोमूत्रे रजनींकृत्वाशोषयेदातपेततः॥ सप्ताहं भावयेत्वैवस्नुक्क्षीरेणापरंपुनः। सप्ताहं भावयेत्शुष्कंततस्तेनापिभावितम्॥ गन्धमाल्यंतदाघ्रायप्रावृत्यपटमेवच। सुखमाशुविरिच्यन्तेमृदुकोष्ठानराधिपाः॥

अर्थ—सातला, स्वर्णक्षीरी, श्यामादि द्रव्य और त्रिकुटा इनको विधिपूर्वक सात दिनतक सेहुंड के दूध की भावनादेवै। फिर वेर की वरावर उस में से गोली वनाकर घी वा मांसरस के साथ पानकरै। अथवा त्रिकुटा, त्रिफला, दन्ती, चीता, निसोथ, इनको सेंहुड के दूध की भावना देकर गुड़ के शरवत के साथ पान करावै। अथवा निसोथ, अमलतास, दंती, शंखिनी और सातला इन सवको समानभाग लेकर रात्रिके समय गोमूत्र में भिगो देवै। प्रातकाल धूप में सुखालेवै। इस तरह सातदिन तक भावना देकर पीछे सात दिवस तक सेंहुड के दूधकी भावना देवै इस चूर्ण को सुगंधित फूल में रखकर सूंघै, सूंघते समय शरीर पर मोटा वस्त्र धारण करले। इस के सेवन से कोमल कोष्ठवाले राजालोगोंको भी सुखपूर्वक विरेचन होता है।

श्यामात्रिवृत्कषायेणस्नुक्क्षीरघृतफाणितैः। लेहंपक्त्वाविरेकार्थंलेहयेन्मात्रया

नरम् ॥ पाययेंतसुधाक्षीरंयूषैर्मांसरसैर्धृतैः भावितान्शुष्कमत्स्यान्वामासंवाभक्षये न्नरः ॥ क्षीरेणामलकैःसार्पिःचतुरंगुलव त्पचेत् । सुरांवाकारयेत्क्षीरंघृतंवापूर्ववत् पचेदिति ॥

अर्थ—श्यामानिसोथ के क्काथ में सेंहुड का दूध, घी और राव पकाकर मात्राके अनुसार लेहन करै तो विरेचन होता है। सेहुंड के दूध को घी, मांसरस वा यूष के साथ पानकरै अथवा सेंहुड के दूधकी सूखी मछली वा मांस में भावना देकर सेवनकरै। अथवा अमलतास की तरह सेहुंड के साथ पकायेहुए दूध का घी निकालकर उस में चौथाई सेहुंड का दूध, और चौगुनाई आंवले का रस मिलाकर पकावै । अथवा सेहुंडका दूध और सुरा समान भाग मिलाकर रक्खै अथवा पूर्वकी तरह घृत पकाकर सेवन करै ॥

अध्यायका संक्षिप्त बर्णन ॥

सौवीरकादिभिःसप्तसर्पिषाचरसेनच। पानकङ्घ्रेयलेहौचयोगायूषादिभिःस्त्रयः द्वौशुष्कमत्स्यमांसानांसुरैकाद्वेचसर्पिर्षी । महावृक्षस्ययोगास्तेविंशतिःसमुदाहृताः॥

अर्थ—इस अध्याय में सेहुंड के वीस प्रयोग वर्णन किये गये हैं। सौवीरक के सात, घीकाएक, मांसरसका एक, गुडपानकका एक, सूंघने का एक, लेहका एक, यूष के तीन सूखी मछली और मांस के दो तथा घी के दो, इस तरह सब मिलकर वीस कल्प हैं॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहिता यांकल्पस्थानेमहावृक्षकल्पोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः॥

अथातःसप्तलाशंखिनीकल्पंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम सप्तलाशंखनी कल्पकी व्याख्या करेंगे ॥

सप्तलाशंखनी के नामान्तर ॥

शंखिनीतिक्तलात्रेयायवतिक्ताक्षिपीडकः सप्तलाचर्मसाह्वाचवहुफेनरसाचसा ।

अर्थ—शंखनी, तिक्तला, यवतिक्ता, अक्षपीडिक ये शंखनीके नाम हैं । तथा सप्तला, चर्मसाह्वा और वहुफेनसा ये सप्तला के नाम हैं ॥

तेगुल्मगरहृद्रोगकुष्ठशोफोदरादिषु । विकासितीक्ष्णरूक्षत्वाद्योज्येश्लेष्माधिकेषुतु ।

अर्थ—सातला और शंखनी और विकाशी, तीक्ष्ण और रूक्ष होने के कारण गुल्मरोग, गरदोष, हृद्रोग, कुष्ठ, शोफ और उदररोगों को नष्ट करती हैं तथाकफाधिक रोगोंमें ये वहुत गुण कारी होतीहैं।

उक्तदोनोंकीकल्पना ।

नातिशुष्कंफलंग्राह्यंशंखिन्यानिस्तुषीकृतम् ॥ सप्तलायाश्चमूलानिगृहीत्वाभाजनेक्षिपेत् । अक्षमात्रंतयोःपिण्डंप्रसन्नां

लवणायुतम् ॥ हृद्रोगेकफवातोत्थेगुल्मे चैवप्रयोजयेत् । पियालपीलुकर्कन्धुकोलाम्रातकदाडिमैः ॥ द्राक्षापनसखर्जूर वदराम्लपरूषकैः । मेदकेदधिमण्डेऽम्ले सौवीरकतुषोदके ॥ शीधौचाप्येषकल्पः स्यात्सुखंशीघ्रविरेचनः ।

अर्थ—शंखिनी फलोंके छिलके दूर करके ऐसे फल लेवै जो वहुत सूखे हुए नहों और सातलाकी जड़ लाकर दोनों को एक पात्रमें रखदेवै । फिर इनमें से दो तोले प्रसन्ना वा सेंधे नमक के साथ हृद्रोग तथा कफवात जनित गुल्म रोगमें सेवन करै अथवा पियाल, पीलू, वेरकारस, अंवाड़ा, खट्टाअनार, दाख, पनस, खजूर, वेरका क्वाथ, फालसा, मैरेय, दधिमंड, कांजी, सौवीरक, तुषोदक वा शीधूके साथ सेवन करै । इससे सुख पूर्वक शीघ्र विरेचन होता है ।

तैलंविदारिगन्धादिपयसापीडितंपचेत् ॥ सप्तलाशंखिनीकल्केत्रिवृत्श्यामार्द्धभागिके । दधिमण्डेनसन्नीयसिद्धन्तम्पाययेतच शंखिनीचूर्णभागौद्वौनीलीचूर्णस्यचापरः। हरीतकीकषायेणतैलंतत्पीडितंपिवेत् ॥ अतसीसर्षपैरण्डकरञ्जेष्वेषसम्विधिः । शंखिनीसप्तलासिद्धात्क्षीरात्यदुद्धियाघृतम् । कल्कभागंतयोरेवत्रिवृत्श्यामार्द्ध संयुतम् । क्षीरेणालोड्यसम्पक्कंपिवेत्तच्च विरेचनम् ॥

अर्थ—तेल चार सेर, शालिपर्ण्यादि पंच मूल के साथ सिद्ध किया हुआ दूध सोलह सेर, इसी तरह सातला, शंखिनी और दोनों प्रकार की निसोथ का कल्क एकत्र पाक करके तेल तयार करै इस तेल को दधिमंड में मिलाकर पान करै । अथवा शंखिनी का चूर्ण दो भाग, नीलिनी का चूर्ण एक भाग इन को मिलाकर कोल्हू में पिलवाकर तेल निकलवा लेवै । इस तेल को हरड के क्वाथ के साथ पान करे । इसी-तरह से अलसी, सरसों, अरण्ड और कंजा मींगी मिलाकर तेल निकलवाकर हरड के क्वाथ के साथ पीते हैं । शंखनी और सप्तला डालकर सिद्ध किये हुए दूध में से घी निकालकर उन्हीं दोनों का कल्क दोनों प्रकार की निसोथ का कल्क और चौगुना दूध मिलाकर पाक करै यह घृत विरेचक होता है ।

तथादन्तीद्रवन्त्योःस्यादजशृंग्यजगन्धयोः क्षीरिण्यानीलिकायाश्चतथैवचकरञ्जयोः मसूरविदलायाश्चप्रत्यकश्रेण्यास्तथैव च॥ विडङ्गार्द्धांशकल्केनतद्वत्साध्यंघृतंपुनः । शंखिनीसप्तलाधात्रीकषायेसाधयेद्घृतम्॥ त्रिवृत्कल्केनसर्पिश्चत्रयोलेहाश्चलोध्रवत्। सुराकाम्पिल्ययोर्योगःकार्योलोध्रवदेवच॥ दन्तीद्रवन्त्योःकल्केनसौवीरकतुषोदके। अजगन्धाजशृंग्योश्चतद्वत्स्यातांविरेचने॥

अर्थ—इसी रीति से दन्ती द्रवन्ती के साथ औटाये हुए दूध काघी निकाल कर दन्ती, द्रवन्ती और दोनों प्रकार की निसोथ का कल्क और दूध मिलाकर पाक करै । इसी तरह सें शंखनी और सातला

के साथ सिद्ध किये हुए दूध का घी निकाल कर इन्ही दोनों का कल्क दो भाग, तथा मेंढासिंगी और अजगंध का कल्क एक भाग मिलाकर तथा दूध डालकर घी पकावै, इसीतरह उक्त दुग्धोद्धृत घृत में क्षीरिणी और नीलिनी का कल्क मिलाकर अथवा दोनों प्रकार के कंजों का कल्क मिलाकर घी सिद्ध करै । इसी तरहसे मसूर की दाल प्रत्यक श्रेणी वा वायविडंग का कल्क डाल कर घृत सिद्ध करै । अथवा शंखनी,सातला और आंवले के रस में घृत पाक करै । सप्तला और शंखनी के साथ तीन प्रकार के घी निसोथ की तरह तयार करै और लोधकी तरह लेह वनावै । तथा लोध की ही तरह सुरा और कवीले के कल्प तयार करै । तथा दन्ती द्रवन्ती के कल्पकी तरह अजगंध और मेढासिंगी के सौवीर और तुषोदक वनाकर सेवन करै ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

कषायादशषट्चैवषट्तैलेऽष्टौचसर्पिषि । पञ्चमद्येत्रयोलेहायोगःकम्पिल्लकेतथा ॥ सप्तलाशंखिनीभ्यांतेत्रिंशदुक्तानवाधिका योगाः सिद्धाः समस्ताभ्यामेकशोऽपिच तेहिताः ॥

अर्थ—इस अध्याय में सप्तला और शंखनी के उन्तालीस योग वर्णन किये गये हैं । यथा, क्वाथ के सोलह, तेल के छः, घी के आठ, मद्य के पांच, लेह तीन और कवीले का एक । ये सव योग सिद्ध किये हुए हैं ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने सप्तला शंखनी कल्पोनाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

—*—

द्वादशोऽध्यायः ॥

अथातोदन्तीद्रवन्तीकल्पंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय वोले कि अव हम दन्ती, द्रवन्ती के कल्पकी व्याख्या करेंगे ।

दन्ती द्रवन्ती के नामान्तर ।

दन्त्युदुम्बरपर्णीस्यान्निकुम्भोऽथमुकूलकः । द्रवन्तीनामतश्चित्रान्यग्रोधामूषिकाह्वया ॥

अर्थ—उदुम्वरपर्णी, निकुम्भ और मुकूलक ये दन्ती के नामान्तर है । चित्रा न्यग्रोधा और मूसिका ह्वया द्रन्वती के नाम हैं ।

उक्त द्रव्यों के कल्प ।

तयोर्मूलानिसंगृह्यास्थिराणिवहलानिच । हस्तिदन्तप्रकाराणिश्यावताम्राणिबुद्धिमान् । पिप्पलीमधुलिप्तानिस्वेदयेत्मृत्कुशान्तरा ॥ शोषयेदातपेऽग्न्यर्कौहतेह्येषांविकाषिताम् । तीक्ष्णोष्णान्याशुकारीणिविकाशिनीगुरूणिच ॥ विलापयन्तिदोषौद्वौमारुतंकोपयन्तिच ।

अर्थ—दन्ती द्रवन्ती की जड जो दृढ, पुष्ट, हाथी के दांतके सदृश हो तथा श्याववर्ण वा ताम्रवर्ण हो उसे लाकर शहत

और पीपलमें लपेट देवै और उस के ऊपर कुशा बांधकर कपडमिट्टी करदे इस को धूप में सुखाकर अग्नि में स्वेदित करै। ऐसा करने से इस की तीव्रता दूर होजायगी। दन्ती और द्रवन्ती तीक्ष्ण, उष्ण, आशुकारी, विकाशी और भारी होती हैं ये दोनों कफ और पित्त को विलीन करती हैं और वायु को प्रकुपित करती हैं (वायुकारक होने से पेट में ऐंठा उत्पन्न करती हैं इस से निम्न लिखित द्रव्यों के साथ में इन का सेवन हित है)।

दधितक्रसुरामण्डैःपिण्डमच्चसमन्तयोः ॥ पियालकोलवदरपीलुशीधुभिरेवच। षि पिवेद्गुल्म्युदरदोषैराभिष्यण्णश्चयोनरः गोमृगाजरसःपाण्डुःक्रिमिकुष्ठीभगन्दरी। तयोःकल्केकषायेचदशमूलरसायुते ॥ क च्यालजीविसर्पेषुदाहेचविपचेद्घृतम्। तैलंमेहेचगुल्मेचसोदावर्तेकफानिले ॥ च तुःस्नेहंशकृत्शुक्रवातसङ्गानिलार्तिषु। रसोदन्त्यजशृंग्योश्चगुडक्षौद्रघृतान्वितः ॥ लेहःसिद्धोविरेकार्थेदाहसन्तापमेहनुत्। वाततर्षेज्वरेपैत्तेस्यात्सएवाजगन्धया ॥

अर्थ—दन्ती द्रवन्ती का कल्क तो ले दही, तक्र, सुरामण्ड, पियाल, बेर, झाडी बेर, पीलू, शीधु, इनके साथ में पीने से गुल्मरोग, उदररोग, अभिष्यन्दरोग दूर होजाते हैं, तथा गौ, हिरन और बकरे के मांसरस के साथ पीने से पांडुरोग, क्रिमिरोग, कुष्ठ और भगन्दर जाते रहते हैं। दन्ती द्रवन्ती का कल्क एक सेर, क्वाथ आठ सेर, दशमूल का क्वाथ आठ सेर और घृत चार सेर इनको पकाकर घृत तयार करै। यह घृत कखराई, विसर्प और दाह में हित होता है। अथवा घृत की जगह तेल चार सेर पकाने से यह तेल गुल्म, उदावर्त्त और वातकफ में हित है अथवा घृत वा तेल दोनों के बदले में चार प्रकार के स्नेह पकाकर सेवन करने से मलवद्धता, वीर्यवद्धता, वायुविवद्ध और वायुरोग दूर होजाते हैं। अथवा दंती और मेंढासिंगी की जड़ समानभाग लेकर आठ गुने जल में पकावै जब चौथाई शेष रह-जाय तब गुड और घृत के साथ पकाकर लेह करले फिर ठंडा होनेपर शहत मि-लाकर पास रखछोडे। इस के सेवन से विरेचन द्वारा दाह, संताप और प्रमेह दूर होजाते हैं।

इसी रीति से अजगंध और दन्तीकीजड़ समानभाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ करै चौथाई शेष रहनेपर छानकर चतुर्थांश घी, गुड के साथ पकाकर लेह करै। उस में शहत मिलाकर रख छोडे, इसका सेवन करने से तृषा और पित्तज्वर शान्त हो-जाते हैं ॥

मूलंदन्तीद्रवन्त्योश्चपचेदामलकीरसे। त्रींस्तस्यचकषायेऽस्यभागान्द्वौफाणित स्यच ॥ तप्तेसर्पिषितैलेवाभर्जयेत्तत्रचाव पेत्। कल्कंदन्तीद्रवन्त्योश्चश्यामादीना ञ्चभागशः ॥ तत्सिद्धंप्राशयेल्लेहंसुखं तेनविरिच्यते। रसेचदशमूलस्यतथावै

भीतकीरसे ॥ हरीतकीरसेनैवलेहानेव पचेत्पृथक् । तयोर्बिल्वसमंचूर्णंतद्रसेनैव भावितम् ॥ असृष्टविषिवातोत्थेगुल्मेचा म्लयुतंशुभम् ।

अर्थ—दंती द्रवन्तीकी जड़ को आंवले के रस में पकावै चौथाई शेष रहनेपर यह क्काथ तीन भाग, फाणित दोभाग मिलाकर तप्त घी वा तेल में छौंक देवै । पीछे इसमें दन्ती द्रवन्ती और अपामार्ग तंडुलीय अध्यायोक्त त्रिवृतादि पन्द्रह द्रव्योंका कल्क पूर्वोक्त कषाय और फाणित से चतुर्थांश डाले । इस लेह को पान करने से सुखपूर्वक विरेचन होता है । अथवा इसी तरह से आंवले के रसकी जगह दशमूल का क्वाथ, वा बहेड़े का क्वाथ वा हरड़ का क्वाथ इन में दंती द्रवन्ती की जड़को पकाकर पूर्वोक्त त्रिवृतादि द्रव्योंको डालकर लेह तयार करै । दंती द्रवन्ती की जड़ का एक पल चूर्ण में इनही के क्वाथ की भावना देकर कांजी के साथ सेवन करै । तौ मलका विवंध और वातज गुल्म दूर होजाते हैं ।

पाटयित्वेक्षुकाण्डंवाकल्केनालिप्यचान्त रा ॥ स्वेदयित्वाततःखादेत्सुखंतेनविरि च्यते । मूलंदन्तीद्रवन्त्योश्चसहमुद्गैर्विपा चयेत् ॥ लावर्तीरकाणांचतेरसाःस्युर्वि रेचनम् । तयोर्वापिकषायेणयवागूंजांग लंरसम् ॥ माषयूषांश्चसंस्कृत्यदद्यात्ते नविरिच्यते । तत्कषायात्त्रयोभागाद्वौ सितायास्तथैवच ॥ एकोगोधूमचूर्णा नांकार्यैश्चोत्कारिकाशुभा । मोदकोवा स्वकल्केनकार्यस्तच्चविरेचनम् ॥ तयो र्वापिकषायेणमद्यान्यस्यापिकल्पयेत् ॥ दन्तीक्वाथेनचालोड्यदन्तीतैलेनसाधि तम् ॥ गुडलावणिकान्भक्ष्यान्विविधा न्भक्षयेन्नरः ।

अर्थ—ईखकी एक पोई को वीच में से चीर कर उस दन्ती द्रवन्ती के कल्क को भरदे फिर उसका मुंह वन्द करके डोर से वांध देवै । फिर उस पोई को अग्नि में गरम चूसले तौ सुखपूर्वक विरेचन होता है दन्ती और द्रवन्ती की जड समान भाग मूंग के साथ, लवाके मांस रसके साथ वा वटेर के मांसरसके साथ पाक करके पीवै तौ विरेचन होता है । अथवा दन्ती द्रवन्ती की जड़ के क्वाथ के साथ यवागू,वा जांगल मांसरस वा उरद के यूष के साथ संस्कार करके देने से विरेचन होता है । अथवा दन्ती द्रवन्ती की जड का क्वाथ तीन भाग चीनी दो भाग और गेहूं का चून एक भाग मिलाकर मोहन भोग वा मोदक वनावै । इन के सेवन से विरेचन होता है । अथवा इन्हीं दोनों के क्वाथ से मद्य वनाकर सेवन करै । दन्ती के क्वाथ में सानकर गुड और सेंधानमक डालकर वनाये हुए भक्ष्य पदार्थ दन्ती के तेलही में सेककर सेवन करने से सुखपूर्वक विरेचन होता है. ।

वैरेचनिकचूर्ण ॥

द्रवन्तींमरिचंदन्तींयवानीमुपकुञ्चिकाम्॥ नागरंहेमदुग्धींचचित्रकंचेतिचूर्णितम् ।

सप्ताहंभावयेन्मूत्रेगवांपाणितलंततः ॥
पिबेद्घृतेनजीर्णेतुविरिक्तश्चापितर्पणम् ।
सर्वरोगहरंह्युल्यंसर्वेष्वृतुषुशोभनम् ॥
चूर्णतदनपायित्वाद्बालवृद्धेषुपूजितम् ।
दुर्भुक्तजीर्णपार्श्वार्तिगुल्मप्लीहोदरेषुच ॥
गण्डमालासुवातेचपाण्डुरोगेचशस्यते ।

अर्थ—द्रवन्ती, कालीमिरच, दन्ती, अजवायनकी जड, कालाजीरा, सोंठ, स्वर्णक्षीरी और चीता इनका चूर्ण करके सातदिन तक गोमूत्र की भावना देवै । फिर इसका चूर्ण करके दो तोले घी में मिलाकर चाटै, विरेचन के पीछे तर्पण सेवन करै । यह योग सम्पूर्ण रोगों को दूर करने वाला और सम्पूर्ण ऋतुओं में हित है । यह चूर्ण किसी प्रकार का उपद्रव नहीं करता है इससे वृद्ध और बालकों को भी उपयोगी है । इसके सेवन से विपरीत भोजन के कारण उत्पन्न हुआ अजीर्ण, पार्श्वशूल, गुल्मरोग, प्लीहा, उदररोग, गंडमाला वातरोग और पांडरोग दूर होजाते हैं ॥

पलंचित्रकदन्त्योश्चहरीतक्योश्चविंशतिः
पिप्पलीत्रिवृतात्तौद्रगुडस्याष्टपलेनतत् ।
विनीयमोदकान्कुर्याद्दशैकंभक्षयेत्ततः ॥
उष्णांबुचपिबेच्छेषान्दशमेदशमेऽह्निच।
एतेनिष्परिहार्याःस्युःसर्वरोगनिवर्हणाः॥
ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकण्डूकोठानिलापहाः

अर्थ—चीता एक पल, दन्ती एक पल, हरड़ नग बीस, पीपल दो तोला, निसोथ दो तोला, और गुड आठ पल इन सबको पाककर दशमोदक बनावै । इन मोदकों को उष्ण जल के साथ दसवें २ दिन एक एक खाय । इन मोदकों के सेवन करते समय आहार विहार की विशेष यंत्रणा नहीं है । यह सर्व रोगों का दूर करने वाला है और विशेष कर के इसके सेवन से ग्रहणी, पाण्डुरोग, अर्श, खुजली, कोढ और वायुरोग नष्ट होजाते हैं ॥

दन्तीद्विपलनिर्यूहोद्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः॥
शोधनंपित्तकासेचपाण्डुरोगेचशस्यते ।
दन्तीकल्कंसमगुडंशीतवारियुतंपिबेत् ॥
विरेचनंमुख्यतमंकामलाहरमुत्तमम् ।

अर्थ—दन्ती की जड को अठगुने जल में क्वाथ करके चौथाई शेष रहने पर इस में एक प्रस्थ दाख को पकावै । फिर इस मिले हुए द्रव्यको लेह की तरह पाक करके सेवन करै तौ पित्तज कास और पाण्डुरोग दूर होजाते हैं । अथवा दन्ती के कल्क में बराबर का गुड मिलाकर शीतल जलके साथ पान करै तौ उत्तम विरेचन होता है । इससे कामलारोग दूर होजाताहै।

श्यामादन्तीरसेगौडःपिप्पलीफलचित्रकैः ॥ लिप्तेऽरिष्टोऽनिलकफप्लीहपाण्डूदरापहः । तथादन्तीद्रवन्त्योश्चकषायेणाजगन्धया ॥ गौडःकार्योऽजशृंग्याबारसैःसुखविरेचनः । तच्चूर्णक्वाथिमाषाम्बुकिण्वतोयसुरोद्भवा ॥ मदिराकफगुल्माल्पवह्निपार्श्वकटिग्रहे । अजगन्धाकषायेणसौवीरकतुषोदके ॥ सुराकम्पिल्लकेयोगालाधूवच्चलयोःस्मृताः ।

अर्थ—एक पात्रके भीतर पीपल, मैनफल और चीते का लेप करके कालीनिसोथ और दन्ती का क्वाथ तथा गुड भरकर रख दे। एक महीने पीछे अरिष्ट वनने पर सेवन करने से वात कफ, प्लीहा, पाण्डुरोग, और उदररोग दूर होजाते हैं। इसी तरह से दन्ती द्रवन्ती की जड और अजगन्ध के क्वाथ में गुड डालकर अरिष्ट तयार करै। इसीतरह से मेढासिंगी और दंती द्रवन्ती के क्वाथ में गुड़ डालकर सुखपूर्वक विरेचन देवै। दन्ती द्रवन्ती का चूर्ण और क्राथ, उरद का क्राथ, सुरावीज और जल इनको एक पात्र में भरदेवै। यह मद्य कफज गुल्म रोग, मन्दाग्नि, पार्श्वग्रह और कटि रोग दूर करता है। अजगन्ध के क्राथ के साथ दन्ती द्रवन्ती के सौवीरक और तुषोदक तथा लोध के समान सुरा और कम्पिल्लक योग प्रस्तुत करके सेवन करै। (सौवीरक और तुषोदक वनाने की यह रीति है कि अजगन्ध का क्वाथ, विना छिलके के जौ और इतनी ही दन्ती द्रवन्ती का कल्क और कांजी एक पात्र में छः दिन तक धरे रखने से सौ वीरक वनता है। तथा छिल के समेत जौ और भुनेहुए जौओं को कूटकर उक्त रीति से मिश्रित करने पर तुषोदक होता है)। दन्ती द्रवन्ती के क्वाथ और समान भाग सुरा को मिलाकर पन्द्रह दिवस तक तक धरा रखने से सुरा वनती है। दन्ती द्रवन्ती के कल्क में दन्ती द्रवन्ती के चूर्ण को दस वार भावना देकर फिर दस वार कवीले के क्वाथ की भावना देने से काम्पिल्लक योग वनता है॥

दन्तीद्रवन्तीकल्पका संक्षिप्तवर्णन।

दध्यादिषुत्रयःपञ्चपियालाद्यैस्त्रयोरसे।
स्नेहेषुवैत्रयोलेहाःषट्चूर्णैत्वकएवच॥
इक्षावेकस्तथामुद्गमांसानाश्चरसास्त्रयः।
यवाग्वादौत्रयश्चैवउक्तउत्कारिकाविधौ
एकश्चमोदकेमद्येचैकंतत्काथतैलिके। चूर्णमेकंपुनश्चैकोमोदकःपञ्चचासवे।एकः
सौवीरकेऽथैकयोगःस्यात्तुतुषोदके॥
एकासुराकम्पिल्लकचैकःपञ्चघृतेस्मृताः॥
दन्तीद्रवन्तीकल्पेऽस्मिन्प्रोक्ताःषोडशका
स्त्रयः।नानाविधानांभयोगानांभक्तिदो
षामयान्प्रति॥

अर्थ—इस अध्याय में दही के तीन पियाल के पांच, क्वाथ के तीन, स्नेह के तीन, लेह छः, चूर्ण एक, ईख का एक, मुद्गमांसरस के तीन, यवागू के तीन, उत्कारिका का एक, मोदक एक, मद्य का एक, क्वाथ और तेल का एक, चूर्ण का फिर मोदक एक, आसव पांच, सौवीरक एक, तुषोदक एक, सुरा एक, काम्पिल्लक एक, और घृत पांच। इस तरह सव अड़तालीस योग हैं। इन प्रयोगों से अनेक प्रकार के भोजन के दोष और रोग शान्त होजाते हैं।

त्रिशतंपञ्चपञ्चाशत्योगानांवमनेस्मृतम्॥
द्वेशतेनवकाःपञ्चयोगानान्तुविरेचने।
ऊर्द्धानुलोमभागानामित्युक्तानिशतानि

षट् ॥ प्राधान्यतःसमाश्रित्यद्रव्याणिद शपञ्चच । यद्द्वियेनप्रधानेनद्रव्यंसमुप सृज्यते ॥ तत्संज्ञकःससंयोगोभवतीति विनिश्चितम् । फलादीनांप्रधानानांगु णभूताःसुरादयः ॥ तेहितान्यनुवर्तन्ते मनुजेन्द्रामिवेतरे ।

अर्थ—इस कल्पस्थान में तीनसौ पच्चपन वमनयोग और दोसौ पैंतालीस विरेचन के योग वर्णित हैं । इसतरह त्रिवृतादि पन्द्रह द्रव्यों का आश्रय लेकर वमन और विरेचन के सब मिलकर छ सौ प्रयोग हैं । जो द्रव्य जिस प्रधान द्रव्य से संयोजित कियाजाता है उस प्रयोगमें उसी के गुण प्रधान होतें हैं जैसें मैनफलादि प्रधान द्रव्य के गुण से युक्त सुरादिक मेनफलादि के गुणोंकाही अनुवर्त्तन करती हैं जैसे प्रजा राजा की अनुगामिनी होती है ।

विरुद्धवीर्यमप्येषांप्रधानानामवाधकम् ॥ अधिकेतुल्यवीर्येऽपिक्रियासामान्यमिष्य ते । इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धार्थप्रतिचामय म् ॥ अतोविरुद्धवीर्याणांप्रयोगइतिनि श्चितम् ।

अर्थ—अप्रधान द्रव्य वीर्य विरुद्ध होने पर भी प्रधान द्रव्य के गुण का बाधक नहीं होसक्ता है । तथा समान वीर्यवाला अप्रधान द्रव्य भी प्रधान द्रव्य के वीर्यको वढ़ाता है क्योंकि उनकी क्रिया समान है । मनोऽनुकूल वर्ण, रस, स्पर्श और गंध के कारणही विरुद्ध वीर्य द्रव्यों का संयोग कियाजाता है, तथा रोग के अनुसार भी विरुद्धवीर्य द्रव्य मिलायेजाते हैं ।

स्वरससेभावितकरनेकाकारण ।

भूयश्चैषांबलाधानंकार्यंस्वरसभावनात् ॥ सुभावितंह्यल्पमपिद्रव्यंस्याद्बहुकर्म्मकृत् ॥ स्वरसैतुल्यवीर्यैर्वातस्माद्द्रव्याणिभाव येत् ।

अर्थ—एक द्रव्य को उसी के रस की भावना देनेका कारण यह है कि उसद्रव्य का वल अधिक वढ़जाता है । अल्पवीर्य वाला वा अल्प द्रव्य भी अच्छी तरह भावना दियेजाने पर वहुत से कर्मों का करनेवाला होजाता है । इसलिये उसीद्रव्य के रस से अथवा समान वीर्यवाले अन्य द्रव्य के रस से भावना देनी चाहिये ।

अल्पस्यापिमहार्थत्वंप्रभूतस्यापिकर्म्मता म् । कुर्यात्संयोगविश्लेषकालसंस्कार युक्तिभिः ॥

अर्थ—संयोग, वियोग, काल और संस्कार द्वारा अल्पद्रव्य का महार्थत्व और प्रभूतद्रव्य का अल्पार्थत्व होजाता है ।

प्रदेशमात्रमेतावद्द्रष्टव्यमिहषट्शतम् । सुबुध्यैवंसहस्राणिकोटीर्वापिप्रकल्पयेत् ॥ बहुद्रव्यविकल्पत्वाद्योगसंख्यानविद्यते । तीक्ष्णमध्यमृदूनान्तुतेषांशुणुतलक्षणम् ॥

अर्थ—इस जगह छः सौ प्रकार के वमन विरेचनों का आंशिक वर्णन किया गया है । अच्छी बुद्धिवाला वैद्य इन को सहस्र क्या करोड प्रकार से देसक्ता है । वहुत

द्रव्यों से विकल्प होने के कारण इनकी संख्या नहीं हो सकती है।

अव हम तीक्ष्ण, मध्यम और मृदु भेद से वमन विरेचनों के लक्षण कहते हैं।

तीक्ष्ण विरेचन के लक्षण।

सुखंक्षिप्रंमहावेगमसक्तंयत्प्रवर्तते। नातिग्लानिकरंपायौहृदयेनचरुक्करम्॥ अन्तराशयमक्षिण्वनकृत्स्नंदोषंनिरस्यति। विरेचनंनिरूहोवातत्तीक्ष्णमिति निर्दिशेत्॥

अर्थ—जिसके प्रयोग करने से मल असक्त होकर वडे वेग से निकलने लगता है जो ग्लानि वहुत नहीं करता है परन्तु मल के निकलने के समय गुदा और हृदय में वेदना करने लगता है और आमाशय को क्षीण करके सम्पूर्ण दोष को दूर कर देता है। उस विरेचन वा निरूहको तीक्ष्ण कहते हैं।

औषध की तीक्ष्णता का कारण।

जलाग्निकीटैरस्पृष्टंदेशकालगुणान्वितम्। ईषन्मात्राधिकंयुक्तंतुल्यवीर्यैःसुभावितम्॥ स्नेहस्वेदोपपन्नस्यतीक्ष्णत्वंयातिभेषजम्।

अर्थ—जो औषध जल, अग्नि वा कीडे से दूषित नहीं हुई है, जो देश और काल के गुण से युक्त है। जो समान वीर्य वाली औषधों से भावना दीगई है और मात्रासे कुछ अधिक दी भी गई है तथा स्नेहन और स्वेदन कर्मों के पश्चात् प्रयुक्त हुई है वह औषध तीक्ष्ण होजाती है।

मध्य औषधके लक्षण।

किञ्चिदेभिर्गुणैर्हीनंपूर्वोक्तैर्मात्रयातथा। स्निग्धस्विन्नस्यवासम्यङ्मध्यंभवतिभेषजम्॥

अर्थ—जो औषध ऊपर कहे हुए गुणों से कुछ कम गुण वाली होती है वा उक्त मात्रासे कम स्नेहन स्वेदन के पश्चात् दीजाती है वह मध्यवल वाली होती है।

हीन औषध का लक्षण।

मन्दवीर्यंविरूक्षस्यहीनमात्रन्तुभेषजम्। अतुल्यवीर्यैःसंयुक्तंमृदुस्यान्मन्दवेगवत्। अकृत्स्नदोषहरणादशुद्धौतेवलीयसाम्। मध्यावरबलानान्तुप्रयोज्यंसिद्धिमिच्छता

अर्थ—रूक्ष रोगी को मन्दवीर्य वाली औषध अतुल्य औषधों के संयोग में हीन मात्रासे प्रयोग की जाती है वह मृदु और मन्द वेग वाली होती है। ऐसी औषधदोषों को अच्छी तरह दूर नहीं कर सकती है इस से अगर इसका प्रयोग वलवान् मनुष्य के साथ किया जाय तौ अशुद्धि को वढाती है। इस हेतु से जो इस औषध को सिद्ध किया चाहै उन्हें उचित है कि मध्यवल और हीनवल वालों को यह औषधी देवै।

तीक्ष्णोमध्योमृदुर्व्याधिः सर्वमध्याल्पलक्षणः। तीक्ष्णादीनिबलापेक्षीभेषजान्येषुयोजयेत्॥

अर्थ—सर्वलक्षण युक्त व्याधि तीक्ष्ण, मध्यलक्षण वाली मध्य और अल्पलक्षण वाली मृदु होती है। इन सब का विचार कर तीक्ष्णादि औषधादि को प्रयोग करे।

देयन्त्वनिर्हृतेपूर्वंपूतेपश्चात्पुनःपुनः । भेषजंवमनार्थीयंप्रायआपित्तदर्शनात् ॥
वलंत्रैविध्यमालम्ब्यदोषाणामातुरस्यच। पुनःप्रयोज्यभैषज्यंसर्वशोहिविवर्जयेत् ॥

अर्थ—यदि वमनकारक औषध के सेवन करने परभी दोष न निकलें तौ जब तक पित्त न निकलें तब तक वार वार औषधी पान कराता रहे । रोग और रोगी के तीनों प्रकार के वलों की विवेचना करके वार वार औषध का प्रयोग करै और जो समय न रहा हो तौ सर्व था औषध न देवै ।

निर्हृतेवापिजीर्णेवादोषनिर्हरणेवुधः । भैषजेऽन्यत्प्रयुञ्जीतप्रार्थयन्सिद्धिमुत्तमाम् ॥ अपक्वंवमनंदोषात्पच्यमानंविरेचनम् । निर्हरेद्वमनस्यातःपाकंनप्रतिपालयेत् ॥ पीतेप्रसंसनेदोषान्निर्हरत्यजराङ्गो । वमितेचौषधेधीरःपाययेतातुरंपुनः॥

अर्थ—जो वमनकारक औषध निकल गई हो, वा पचगई हो वा दोष को न निकालसक्ती हो तौ सिद्धि की इच्छा करनेवाला वैद्य फिर औषधदेवै । वमन औषध पचने से पहिले दोषों को निकालदेती है और विरेचक औषध पचनावस्था तक दोषों को निकालती है । इस से वमन औषधके पाक की प्रतीक्षा न करै । विरेचक औषध के पीने पर वह दोषों को विना निकाले हुएही पचगई हो वा उसकी वमन होगई हो तौ फिर औषध पान करावै ।

सुखासुखसाध्यरोगी ।

दीप्ताग्निंवहुदोषश्चदृढस्नेहगुणंनरम् । दुःशोध्यंतदहर्भुक्तोश्वोभूयःपाययेततत् ॥
दुर्वलोवहुदोषश्चदोषपाकेनयोनरः । विरिच्यतेसरैर्भोज्यैर्भूयस्तमनुसारयेत् ॥
वमनैश्चविरेकैश्चाविशुद्धस्याप्रमाणतः । भोजनान्तरपानाभ्यांदोषशेषंशमंनयेत् ॥

अर्थ—दीप्ताग्निवाला, बहुत दोषों से युक्त और अतिशय स्निग्ध मनुष्य का शोधन कठिनता से होता है, क्योंकि दीप्ताग्नि के कारण औषध को वह शीघ्रही पचालेता है। वहुदोष युक्त होनेके कारण अल्प औषध कुछ काम नहीं करसक्ती है तथा वमन द्रव्य रूक्ष होनेके कारण अति स्निग्ध मनुष्यपर कुछ काम नहीं करसक्ती हैं । इससे जो वमनकारक औषध के पान कराने पर उसे वमन न हुई हो तौ उस दिन भोजनादि करा के दूसरे दिन फिर वमनकारक औषध पान करावै ॥

वहुत दोषों से युक्त दुर्वल मनुष्य का मल सहजही में नहीं निकलसक्ता है किन्तु दोष के पचने पीछे मल निकलता है । ऐसे रोगी को विरेचक औषध देनेपर भी विरेचन न हो तौ फिर विरेचन न देवै परन्तु दस्तावरआहार देकर मलको निकालै। जो रोगी वमन विरेचन द्वारा यथा प्रमाण शुद्ध न हुआ हो तौ फिर वमन विरेचन न देकर पान भोजन के किसी प्रकारान्तर से शेष दोषों का निवारण करै।

मृदुऔषधकाविधान ।

दुर्वलंशोधितंपूर्वमल्पदोषञ्चमानवम् । अपरिज्ञातकोष्ठञ्चपाययेतौषधंमृदु ॥

श्रेयोमृद्वमकृत्पीतमल्पबाधंविरेचनम् । नचातितीक्ष्णंयत्क्षिप्रंजनयेत्प्राणसंशयम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य दुर्बल हो, वा पूर्व में शुद्ध कियाहुआ हो, वा अल्प दोष युक्त हो वा जिस के कोष्ठ का हाल मालूम न हो उसे मृदु औषध पान करावै । थोड़ी थोड़ी औषध का बार २ पीना अच्छा है जिस से किसी प्रकार की वाधा वा अपकार न हो अत्यन्त तीक्ष्ण औषधका पान कराना ठीक नहीं है जो शीघ्रही प्राणोंका हरण करलेवै ॥

दुर्बलोऽपिमहादोषोविरेच्योबहुशोऽल्पशः । मृदुभिर्भेषजैर्दोषान्हन्युर्ह्येनमनिर्हृताः ॥ यस्योर्द्ध्वंकफसंसृष्टंपीतंयात्यनुलोमिकम् । वमितंकवलैःशुद्धैर्लंघितंपाययेततम् ॥ निबद्धेऽल्पेचिरादोषेस्रवत्युष्णंपिवेज्जलम् । तेनाध्मानंसतृट्छर्दिर्विबन्धश्चैवशाम्यति ॥ भेषजंदोषरुद्धंचेन्नोर्द्धंनाधःप्रवर्तते । सोद्गारंसांगशूलंवास्वेदंतत्रावचारयेत् ॥ सुविरिक्तस्तु सोद्गारमाशेवत्रौषधमुल्लिखेत् । अतिप्रवर्तनंजीर्णेसुशीतैस्तम्भयेद्भिषक् ॥

अर्थ—महा दोष वाले दुर्बल रोगी को थोडा २ विरेचन कई वार करके पान करावै । क्योंकि औषध की मृदुता के कारण दोष न निकल कर प्राणों को नष्ट कर देते हैं । ऊर्ध्व मार्ग के कफावृत होने से बेग ऊपर को न जाय और अनुलोमगती को प्राप्त हो तो कवल द्वारा वमन की इच्छाको रोककर लंघन कराके कफके क्षीण होनेपर वमन करावै । जो दोष थोडा२विवद्धतासे वा देरमें निकलै तौ उष्ण जलका पान करावै । इससे अफरा, तृषा, वमन और विवन्ध सब दूर होजाते हैं ॥

दोषों से रुकीहुई औषध जो न ऊपर को जा सकै न नीचे को जा सकै तथा डकार और अंगशूल होने लगै तौ पसीने देवै । अच्छी तरह विरेचन होने के पीछे जो डकार में औषध की गंध आती हो तो शीघ्रही आमाशयस्थ औषधको वमन द्वारा निकालदे जो औषध के पचने पर अधिक दस्त आने लगें तौ शीतल क्रिया से शान्त करै ॥

कदाचित्श्लेष्मणारुद्धंतिष्ठत्युरसिभेषजम् । क्षीणेश्लेष्मणिसायाह्नेरात्रौवातत्प्रवर्तते ॥ रूक्षानाहारयोर्जीर्णेविष्टभ्योर्द्धंगतेऽपिवा । वायुनाभेषजेत्वन्यत्सस्नेहलवणंशृतम् ॥ तृण्मोहभ्रममूर्च्छाद्याःस्युर्जीर्यतिहिभेषजे । पित्तघ्नंस्वादुशीतश्चभेषजंतत्रशस्यते ॥

अर्थ—यदि औषध कफसे रुककर बक्षःस्थल में ठहर जाय और सन्ध्या के समय वा रात्रि में कफके क्षीण होने पर निकलै रूक्षता के कारण वा भोजन न करने के कारण, औषध के जीर्ण होने पर वा विना जीर्ण हुएही गुडगुडाहट करके वायुके कारण ऊपर को जाय तौ फिर उसी औषध को स्नेह और लवण के साथ पान करावै । औषध के पचने पर यदि तृषा, मोह,भ्रम

और मूर्च्छादिक हों तौ स्वादु शीतल और पित्तनाशक औषध पान करावै ।

लालाहृल्लासविष्टम्भशीतहर्षाःकफात्ते ॥ भेषजंतत्रतीक्ष्णोष्णंकट्वादिकफनुद्धितम् । सुस्निग्धंक्रूरकोष्ठञ्चलंघयेदविरेचितम् ॥ तेनास्यस्नेहजःश्लेष्मासंगश्चोपशाम्यति ।

अर्थ—कफावृत रोग में लालास्राव, हृल्लास, विष्टब्धता, रोमहर्षण और शीत हो तौ तीक्ष्ण, उष्ण और कफनाशक कटुवादि औषध देवै । अच्छी तरह से स्निग्ध हुए मनुष्य को विरेचन न देकर लंघन करावै इस से उसका स्नेह जन्य कफ और मल की विवन्धता दूर होजायगी ।

वस्ति कर्म के योग्यरोगी ।

रूक्षवह्वनिलक्रूरकोष्ठव्यायामशालिनाम् दीप्ताग्नीनाञ्चभैषज्यमविरेच्यैवजीर्यति। तेभ्योवस्तिंपुरादत्त्वापश्चाद्दद्याद्विरेचनम् ॥ वस्तिप्रवर्तितंदोषंहरेत्शीघ्रंविरेचनम् ।

अर्थ—जो मनुष्य रूक्ष, अत्यन्त वात प्रकृतिवाला, क्रूरकोष्ठ, व्यायामशील (कसरत कुशती करने वाला) शूलरोगी और दीप्ताग्निवालाहो तौ विरेचनकर्त्ता औषध उस को विना विरेचन कराये हीपच जाती है। इस लिये उसे पहिले वास्ति कर्म कराके पीछे विरेचन देवै । वास्तिसे प्रवृत्त हुए दोषों को विरेचन शीघ्रही निकाल देता है ।

स्नेहन के योग्य रोगी ।

रूक्षाःशनाःकर्मनित्यायेनरादीप्तपावकाः॥ तेषांदोषाः क्षयंयान्तिकर्मवातातपाग्निभिः । विरुद्धाध्यशनाजीर्णदोषानपिसहन्तिते ॥ स्नेह्यास्तेमारुताद्रक्ष्यानाव्याधौतान्विशोधयेत् ।

अर्थ—रूक्षभोजी, नित्यप्रति परिश्रम करने वाले, दीप्ताग्नि वाले मनुष्यों के दोष परिश्रम, वायु, धूप और अग्निसे क्षय होजाते हैं । तथा इन्हीं कारणों से विरुद्ध भोजन, अध्यशन और अजीर्ण भोजनादि से उत्पन्न हुए दोष भी मिटजाते हैं ।ऐसे मनुष्यों को स्नेहन दैना उचित है क्योंकि वायु से इनकी रक्षा कर्त्तव्य है । तथा किसी विशेष रोग के विना हुए विरेचन दैना भी ठीक नहीं है ।

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम्। स्नेहोत्क्लिष्टशरीरायरूक्षंदद्याद्विरेचनम् ।

अर्थ—जिसका शरीर अति स्निग्ध नहो अर्थात् रूक्षहो उसे स्नेह विरेचन देवै अथवा यों कहो कि अति स्निग्ध देह वाले को स्नेह विरेचन न देवै । जो स्नेह से उत्क्लिष्ट हो उसे रूक्ष विरेचन देवै ।

एवंज्ञात्वाविधिंधीरोदेशकालप्रमाणवित्॥ विरेचनंविरेच्येभ्यःप्रयच्छन्नापराध्यति। विभ्रंशोविषवद्यस्यसम्यग्योगोयथामृतम् ॥ कालेष्ववश्यंपेयश्चतस्माद्यत्नात्प्रयोजयेत् ।

अर्थ—इन सब ऊपर लिखी हुई बातों को अच्छी तरह समझकर देश काल और प्रमाण के अनुसार जो वैद्य विरेचन के योग्य

मनुष्यको विरेचन देता है वह अपराध का भागी नहीं होता है ।

जो औषध अन्यथा प्रयुक्त किये जाने पर विषके समान और सम्यक् प्रयोग किये जाने पर अमृत के समान फल दिखाती है ऐसी औषध को ठीक समय पर बहुत सोच विचार के साथ पान करना चाहिये ।

उपसंहार ।

द्रव्यप्रमाणन्तुयदुक्तमस्मिन् ।
मध्येषुतत्कोष्ठवयोबलेषु ।
तन्मूलमालम्ब्य भवेद्विकल्प्यं ।
तेषांविकल्प्योऽभ्यधिकोनभावः॥

अर्थ—इस ग्रन्थ में जिस द्रव्य का जो प्रमाण कहा गया है । कोष्ठ, वय और वल के अनुसार उसका प्रयोग करना चाहिये इसी कोष्ठ, वय और वल के भेद से मात्रा में घटा वढी होती है ।

मान परिभाषा ॥

षड्वंश्यस्तुमरीचिःस्यात्षण्मरीच्यस्तुसर्षपः॥अष्टौतेसर्षपारात्तिस्तण्डुलश्चापितद्द्वयम्।धान्यमाषोभवेदेकोधान्यमाषद्वयंयवः
अण्डिकास्तेतुचत्वारस्ताश्चतस्रस्तुमाषकः
हेमश्चधानकश्चोक्तोभवेच्छाणन्तुतेत्रयः।
शाणौद्वौद्रंक्षणंविद्यात्कोलंवदरमेवच ।
विद्यात्द्वौद्रंक्षणंकर्षसुवर्णञ्चाक्षमेवच ॥
विड़ालपदकन्तच्चपिचुम्पाणितलन्तथा ।
तिन्दुकञ्चविजानीयात्कवलग्रहमेवच ॥
द्वेसुवर्णेपलार्धस्याच्छुक्तिरष्टमिकातथा ।
द्वेपलार्धेपलंमुष्टिःप्रकुञ्चेऽथचतुर्थिका ॥
विल्वंषोडशिकश्चाम्रंद्वेपलेप्रसृताम्विदुः ।
अष्टमानन्तुविज्ञेयङ्कुडवौद्वौतुमानिका ॥
पलश्चतुर्गुणंविद्यादञ्जलिङ्कुडवन्तथा ॥
चत्वारःकुडवाःप्रस्थश्चतुष्प्रस्थमथाढकम्
पात्रंतदेवविज्ञेयंकंसःप्रस्थाष्टकन्तथा ॥
कंसश्चतुर्गुणोद्रोणःचार्मणंलल्वनश्चतत् ।
सएवकलशःख्यातोघटमुन्मानमेवच ॥
घटन्तुद्विगुणंसूर्पोविज्ञेयः कुम्भएवच ।
गोणीशूर्पद्वयंविद्यात्खारींभारन्तिथैवच॥
द्वात्रिंशतंविजानीयाद्वाहंशूर्पाणिबुद्धिमान्।
तुलांशतपलंविद्यात्परिमाणविशारदः ।
शुष्कद्रव्येष्विदंमानमेवमादिप्रकीर्तितम्॥
द्विगुणंतद्द्रवेष्विष्टंतथासद्योद्धृतेषुच ।
यद्विमानन्तुलाप्रोक्तापलंवाततप्रयोजयेत्॥
अनुक्तेपरिमाणेतुतुल्यंमानंप्रकीर्तितम् ।

अर्थ—छः वंशी की एक मारीचि होती है (घर के जाली झरोखों में जो धूप आती है उस धूप में जो रज के कण से उडते दिखाई देते हैं उसे वंशी वा त्रसरेणु कहते हैं, तीस परिमाणु की एक वंशी वा त्रसरेणु होता है) छः मरीची की एक सरसों होती है । आठ सरसों की एक रत्ती वा तण्डुल । दो तण्डुल का एक धान्य माषक, दो धान्य माषक का एक जौ, चार जौ का एक अण्डका चार अंडका का एक मासा वा हेम, वा धानक होता है । तीन माषक का एक शाण, दो शाण का एक द्रंक्षण, वा कोल वा वदर होताहै । दो द्रंक्षण का एककर्ष वा सुवर्ण, वा अक्ष, वा विडालपदकवापिचु वा पाणितल, वा तिंदुक, वा कवलग्रह होता है । दो सुवर्ण का एक पलार्द्ध, वा शुक्ति

वा अष्टमिका होता है। दो पलार्ध का एक पल, वा मुष्टि, वा प्रकुञ्च, वा चतुर्थिका, वा विल्व, वा षोडशिका, वा आम्र होता है। दो पलका एक प्रसृत, दो प्रसृत का एक अष्टमान वा कुडव, दो कुडव का एक मानिका, चार पलका एक अञ्जली वा कुडव, चार कुडव का एक प्रस्थ, चार प्रस्थ का एक आढक, वा पात्र, आठ प्रस्थ का एक कंस। चार कंस का एक द्रोण, वा अर्मण, वा लस्वन, वा कलश, वा घट, वा उन्मान होता है। दो घटका एक सूर्प वा कुम्भ होता है। दो सूर्प का एक गोणी, वा खारी, वा भारी होता है। बत्तीस सूर्प का एक वाह और सौपल की एक तुला होती है॥

यह शुष्क द्रव्यों का मान वर्णन किया गया है। द्रव अथवा ताजी लाये हुए द्रव्य इस तोल से दुगुने लिये जाते हैं। परन्तु जिनकी तोल पल से तुला पर्य्यन्त लिखी है वे उतनीही ली जाती हैं जहां द्रव्यों का परिमाण नहीं लिखा गया है वहां औषध समान भाग लैनी चाहियें। (एक कुडव अर्थात् आधसेर तक गीले द्रव्यों का द्विगुण ग्रहण न करै। कुडव से ऊपर गीले द्रव्य दूने लैने चाहियें। घी, खांड, गुड, शहत, दूध, तैल, और मद्य आदि के पक्ष में कुडव आठ पलका ग्रहण किया जाता है। नारियल के सम्बन्ध में भी यह बात है)।

द्रवकार्थेऽपिचानुक्तेसर्वत्रसलिलंस्मृतम्। यतश्चपादनिर्देशश्चतुर्भागस्ततश्चसः॥ जलस्नेहौषधानान्तुप्रमाणंतत्रनेरितम्। तत्रस्याद्दौषधात्स्नेहःस्नेहात्तोयंचतुर्गुणम्॥

अर्थ—पाचनादि स्थलमें जो द्रव द्रव्यों का नाम न लिखा गया हो तौ जल ग्रहण करना चाहिये। पादनिर्देश से चौथाई ग्रहण किया जाता है। जिस स्थान पर जल, औषध और स्नेह का प्रमाण न दिया गया हो वहां औषध से चौगुना स्नेह और स्नेह से चौगुना जल डालै॥

स्नेह पाक के भेद॥

स्नेहपाकस्त्रिधाज्ञेयोमृदुर्मध्यःखरस्तथा॥ तुल्येकल्केननिर्य्यासेभेषजानांमृदुःस्मृतः। सम्पाकइवनिर्य्यासेमध्योदर्वींविमुञ्चति॥ शीर्य्यमाणेतुनिर्य्यासेवर्त्तमानेखरस्तथा।

अर्थ—स्नेह पाक तीन प्रकार का होता है, यथा-मृदु, मध्य और खर। जहां स्नेह की गाद कल्क की तरह पतली होती है, वह मृदुपाक होता है। जहां स्नेह की गाद अमलतास के गूदे के सदृश गाढी होती है वह मध्यपाक है। जो गाद कलछी से दूर होजाय परन्तु कुछ चिपचिपाहट सा रहैं वह खरपाक है॥

स्नेहपाकोंकी प्रयोग विधि॥

खरोऽभ्यङ्गेस्मृतःपाकोमृदुर्नस्तःक्रियासु च॥ मध्यपाकन्तुपानार्थेवस्तीचविनियोजयेत्।

अर्थ—स्नेह का खरपाक अभ्यंगमें, मृदुपाकनस्यक्रियामें और मध्यपाक पीने और

वस्ति कर्म में प्रयुक्त किया जाता है।

मानके भेद

मानञ्चद्विविधंप्राहुःकालिङ्गंमागधंतथा।
कालिङ्गान्मागधंश्रेष्ठमेवंमानाविदोविदुः॥

अर्थ—मान दो प्रकारका होताहै, यथा-कालिंग और मागध। परन्तु इन दोनों में मागध मान श्रेष्ठ है।

इस ग्रन्थमें कालिंग मान नहीं लिखा है इसे हम भावप्रकाश से उद्धृत करते हैं।

कालिंग मान।

यवोद्वादशभिर्गौरसर्षपैःप्रोच्यतेबुधैः।
यवद्वयेनगुंजास्यात्त्रिगुंजोवल्यउच्यते॥
माषोगुंजाभिरष्टाभिःसप्तभिर्वाभवेत्क्वचित्। चतुर्भिर्माषकैःशाणःसनिष्कष्टंक एवच। गद्याणोमाषकैःषड्भिःकर्षःस्याद्दशमाषकः। चतुःकर्षैःपलंप्रोक्तंदशशाणमितंबुधैः। चतुःपलैश्चकुडबःप्रस्थाद्याः पूर्ववन्मताः।

अर्थ—बारह सफेद सरसों का एक जौ होता है। दो जौकी एक गुंजा वा रत्ती होती है। तीन रत्ती की एक बल्ली, आठरत्तीका एक माषा, तथा कोई२ सातरत्ती का भी माषा मानतेहैं। चार मासेका एक शाण होता है उसी को निष्क वा टंक भी कहते हैं। छः मासेका एक गद्याणक होता है। दस मासे का एक कर्ष,चार कर्ष का एक पल अर्थात् दस शाण होते हैं। तथा चार पलका एक कुड़व होता है। प्रस्थ से ऊपर की तोल मागध परिभाषा के सदृश होती है।

कल्पस्थान का संक्षिप्तवर्णन।

तत्रश्लोकौ।

कल्पार्थःशोधनसंज्ञापृथग्घेतुःप्रवर्तने। देशादीनांफलादीनांगुणायोगशतानिषट्॥ विकल्पहेतुर्नामानितीक्ष्णमध्याल्पलक्षणम्। विधिश्चावस्थिकोमानंस्नेहपाकश्चदर्शितम्॥

अर्थ—इस कल्पस्थान में कल्प के विषय, शोधनकी संज्ञा, शोधन के पृथक् २ हेतु, देशादि के गुण, मैनफलादि द्रव्यों के गुण, विरेचन के छः सौ योग, विकल्प के हेतु, नाम, तीक्ष्ण, मध्य और अल्प विरेचन के लक्षण आवस्थिक विधि, द्रव्योंका मान तथा स्नेह पाक का वर्णन किया गया है।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां कल्पस्थानेदन्तीद्रवन्तीकल्पोनाम द्वादशोऽध्यायः॥ १२॥

इतिकल्पस्थानं समाप्तम्॥

—❀—

॥ श्रीहरिम्वन्दे ॥

॥श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः॥

॥अथसिद्धिस्थानम्॥

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथातःकल्पनासिद्धिंव्याख्यास्यामः ।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय वोले कि अव हम कल्पनासिद्धिनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

अग्निवेश का प्रश्न ।

काकल्पनापञ्चसुकर्मसूक्ता । क्रमश्चकः किञ्चकृताकृतेषु ॥ लिङ्गंतथैवातिकृतेषु संख्या । कार्किगुणाःकेषुचकाचवस्तिः॥ किंवर्जनीयं प्रतिकर्मकाले । कृते कियान्वापरिहारकालः ॥ प्रणीयमानश्चनयातिवस्तिः । साध्यागदाःश्चैःशमनैश्चकेचित् ॥ कस्मात्प्रयुक्तैर्न शमं व्रजन्ति । प्रचोदितः शिष्यवरेणसम्यक् ॥ इत्यग्निवेशेन भिषग्वरिष्ठः । पुनर्वसुस्तन्त्रविदाह तस्मै ॥ सर्वप्रजानां हितकाम्ययेदम् ।

अर्थ—अग्निवेशने नीचे लिखे हुए वारह प्रश्न आत्रेय भगवान् से किये यथा–(१) वमन, विरेचन, स्वेदन, नस्य और वस्ति इन पांचकर्मों की प्रक्रिया क्या है ? (२) इन सब कर्मों में आहारादि का नियम क्या है ? (३) सम्यक् प्रयुक्त असम्यक् प्रयुक्त अति-प्रयुक्त पंचकर्मों के लक्षण क्या हैं ? (४) संख्या क्या है ? (५) गुण क्या हैं ? (६) वस्ति क्या है ? (७) प्रतिकर्म काल में वर्जनीय क्या है ? (८) वमन विरेचन के पीछे स्वाभाविक आहार विहार का कितने दिनतक परित्याग करना चाहिये? (९) वस्ति किस तरहसे प्रवेश नहीं कर सक्ती है ? (१०) वस्तिकिसतरह शीघ्र प्रत्यागमन करती है ? (११) किसतरह देर में प्रत्यागमन करती है ? (१२) कोन कोन से साध्यरोग उन के नष्ट करने वाली औषधियों से भी शान्त नहीं होते है?। अग्निवेश के इन प्रश्नों को सुनकर महर्षि आत्रेय ने संसार के हित की कामना से नीचे लिखा हुआ उत्तर दिया ।

स्वेदनकालका निर्णय ।

त्र्यहावरंसप्तदिनंपरन्तु ।
स्निग्धोनरःस्वेदयितव्यउक्तः ॥
नातःपरंस्नेहनमादिशन्ति ।
सात्म्योभवेत्सप्तदिनात्परन्तु ॥

अर्थ—यह वात सूत्रस्थान के स्नेहाध्याय में वर्णन करदी गई है कि मृदु कोष्ठ वाला मनुष्य थोडा साही स्नेह सेवन करने से तीन दिन में स्निग्ध होजाता है, यह स्नेह की मात्रा अधम है। तथा क्रूर कोष्ठवाला मनुष्य सात दिन तक स्नेह सेवन करने से स्निग्ध होता है यह स्नेह की उत्तम मात्रा है । सात दिवस से पीछे रोगी को स्वेदन देना चाहिये इससे पीछे स्नेहन कर्म करना ठीक नहीं

है क्योंकि सात दिन पीछे स्नेह सात्म्य होजाता है ॥

स्नेहन स्वेदन का फल ॥

स्नेहानिलंहन्तिमृदूकरोति ।
देहंमलानांविनिहन्तिसङ्गम् ॥
स्निग्धस्यसूक्ष्मेष्वयनेषुलीनं ।
स्वेदस्तुदोषंनयतिद्रवत्वम् ॥

अर्थ—स्नेह वात को नष्ट करता है, देह को मृदु करता है, और मलकी विबद्धता को दूर करता है। स्वेदन स्निग्ध व्यक्ति के सूक्ष्म स्रोतः समूहों में लीन दोषों को द्रव कर देता है ॥

ग्राम्योदकानूपरसैःसमांसै ।
रुत्क्लेशनीयःपयसाचवम्यः ॥
रसैस्तथाजाङ्गलजैःसयूषैः ।
स्निग्धःकफाद्दृद्धिकरैर्विरेच्यः ॥
श्लेष्मोत्तरश्छर्दयतिह्यदुःखं ।
विरिच्यतेमन्दकफस्तुसम्यक् ।
अधःकफेऽल्पेवमनंविगच्छे ।
द्विरचेनंवृद्धकफेतथोर्ध्वम् ॥

अर्थ—जिसको वमन करानी हो उसे पहिले ग्राम्य, औदक, और आनूप मांस और मांसरस तथा दूध का सेवन करा के कफको उत्क्लेशित करना चाहिये जिससे अपने आप वमन होजाय। इसी तरह जिसे विरेचन देना हो उसे कफको न बढानेवाले जांगल मांसरस और यूष द्वारा स्निग्ध करना चाहिये। क्योंकि ग्राम्यादिके मांस सेवन से कफ के वढ जाने के कारण वमन सहज में होजाती है और मन्द कफ वाले को विरेचन सहज में होजाता है, कफ के थोडे होने पर वमन कारक औषध नीचे को जाती है। इसी तरह से कफ के अधिकहोने पर विरेचन कर्ता औषध ऊपर को जाती है ॥

स्निग्धायदेयंवमनंयथोक्तं ।
वान्तश्चपेयादिरनुक्रमश्च ॥
स्निग्धस्यचस्विन्नवतश्चकार्यं ।
विरेचनंयोग्यतमंततश्च ॥

अर्थ—जिस मनुष्य को वमन देना होय उसको प्रथम स्निग्ध करले पीछे अच्छी तरह वमन होने पर पेयादि क्रम का पालन करावै। इसी तरह जिसको विरेचन देना होय उसे प्रथम स्नेहन और पीछे स्वेदन देकर योग्यतम विरेचन देवै ॥

पेयांविलेपीमकृतंकृतंच ।
यूषंरसंत्रिर्द्विरथैकशश्च ॥
क्रमेणसेवेतविशुद्धकायः ।
प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम, और अधम तीन प्रकार का शोधन होता है। इन तीनों प्रकार से शुद्ध शरीर वाला मनुष्य क्रम से पेया, विलेपी, कृताकृत यूष और मांसरस का तीन बार, दोबार, वा एक बार करके सेवन करै ॥

पेयादि से अन्तराग्नि की ॥
वृद्धि का दृष्टान्त ॥

यथाणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः ।
सन्धुक्ष्यमाणोभवतिक्रमेण ॥
महान्स्थिरःसर्वसहस्तथैव ।

शुद्धस्यपेयादिभिरन्तरग्निः ॥

अर्थ—जैसे अणुमात्र अग्नि प्रथम तिनुके, फिर ऊपले और फिर काठ में लग कर महान् दृढ और सर्वसह होजाती है उसी तरह शुद्ध मनुष्य की अन्तराग्नि क्रम से पेयादि द्वारा बढाई हुई महान् दृढ और सबको पचाने वाली होजाती है ('सर्वसहः' और 'सर्वपच,ः दोना पाठ है॥

वमन विरेचन के वेग ॥

जघन्यमध्यप्रवरेतुवेगाः ।
चत्वारइष्टावमनेषडष्टौ ॥
दशैवतेद्वित्रिगुणाविरेके ।
प्रस्थस्तथाद्वित्रिचतुर्गुणश्च ।

अर्थ—वमन के अधम वेग चार, मध्यम छः और उत्तम वेग आठ होते हैं, इसी तरह विरेचन के अधम वेग दस, मध्यम बीस और उत्तम तीस वेग होते हैं, वान्त द्रव्य का प्रमाण एक प्रस्थ होने से उत्तम, पौन प्रस्थ होने से मध्यम और आधा प्रस्थ होने से अधम मात्रा होती है । इसी तरह विरेचन द्वारा निकले हुए मलका प्रमाण दो प्रस्थ हो तौ अधम, तीन हो तौ मध्यम और चार प्रस्थ हो तौ उत्तम होता है (शिव दास लिखते हैं कि प्रस्थ साढे तेरह पल का होता है)

वमनविरेचनकीअवधि ।

पित्तान्तमिष्टंवमनंतथोर्ध्व ।
मधःकफान्तंचविरेकमाहुः ॥

अर्थ—जबतक वमन में पित्त न आने लगे तबतक वमन कराना ठीक है और जबतक मल में कफ का दर्शन न हो तब तक विरेचन कराना उचित है ।

वमनविरेचनमेंप्रथमवेगोंकानिषेध ।

द्वित्रीन्सविट्कानपनीयवेगान् ॥
मेयंविरेकेवमनेतुपीतम् ॥

अर्थ—विरेचन के वेगोंकी उक्त संख्या में औषध के पीतेही जो दो तीन वेग होते हैं वे गिनेनहीं जाते हैं इसीतरह वमनवेगों में भी पहिले दो तीन वेग नहीं गिनेजाते हैं जिन में पीहुई औषध निकलती है ।

सम्यग्वमितकेलक्षण ।

क्रमात्कफःपित्तमथानिलश्च ।
यस्येतिसम्यग्वमितःसतुस्यात् ॥
हृत्पार्श्वमूर्द्धेन्द्रियमार्गशुद्धौ ।
तथालघुत्वेऽपिचलक्ष्यमाणे ॥

अर्थ—क्रम से कफ, पित्त और डकार आवें तौ समझना चाहिये कि वमन ठीक हुई है । तथा वमन के ठीक होनेपर हृदय पसली, मूर्द्धा, इन्द्रियगण ओर स्रोतः समूह शुद्ध होजातेहैं और देहभी हलकी हो जाती है ।

असम्यग्वमनके लक्षण ।

दुश्छर्दितेस्फोटककोठकण्डू ।
हृत्खाविशुद्धिर्गुरुगात्रताच ॥

अर्थ—जो वमन ठीक नहीं हुई हो तो फोड़े, पित्ती, खुजली, हृदय की अशुद्धि, इन्द्रियों की अशुद्धि और देह में भारापन होता है ॥

अतिवमन के लक्षण ।

तृण्मोहमूर्च्छानिलकोपनिद्रा ।
बलादिहानिर्वमनेऽतिचस्यात् ॥

अर्थ—वमन के अत्यन्त होने से तृषा, मोह, मूर्च्छा, वातकोप, निद्रा हानि, और बलहानि ये लक्षण होते हैं ॥

सम्याग्विरिक्त के लक्षण ॥

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसंप्रसादो ।
लघुत्वमूर्जोऽग्निरनामयत्वम् ॥
प्राप्तिश्चविट्पित्तकफानिलानाम् ।
सम्यग्विरिक्तस्यभवेत्क्रमेण ॥

अर्थ—सम्याग्विरेचन होने पर स्रोतः समूह की विशुद्धि, इन्द्रियोंमें प्रफुल्लता, देह में हलकापन, बलवृद्धि, अग्निकी तीक्ष्णता, आनरोग्यत्व, तथा विष्टा, पित्त, कफ और अधोवायु का अच्छी तरह निःसरण होता है ।

असम्यग्विरिक्तके लक्षण ।

स्यात्श्लेष्मपित्तानिलसंप्रकोपः ।
सादस्तथाग्नेर्गुरुताप्रतिश्या ॥
तन्द्रातथाछर्दिररोचकश्च ।
वातानुलोम्यंनचदुर्विरिक्ते ।

अर्थ—सम्यग्विरेचन न होनेपर कफ, पित्त और वात का प्रकोप होता है। अग्नि की मन्दता, देह का भारीपन, प्रतिश्याय, तन्द्रा, वमन, अरुचि और वात का प्रतिलोम होता है ।

अतिविरिक्तके लक्षण ।

कफास्रपित्तक्षयजाऽनिलोत्थाः
सुप्त्यङ्गमर्दक्लमवेपनाद्याः ॥
निद्राबलाभावतमःप्रलापः ।
सोन्मादहिक्काश्चविरेचितेऽति ॥

अर्थ—अत्यन्त विरेचन होने पर कफ, रक्तपित्त, क्षय और वात से उत्पन्न होने वाले रोग होते हैं । तथा सुप्ति, अंगमर्द, क्लान्ति, कम्पन, निद्राभाव, बलाभाव, तमः प्रवेश, उन्माद और हिचकी ये उपद्रव होते हैं ।

संसृष्टभक्तंनवमेऽह्निसर्पिः ।
स्तंपाययेताप्यनुवासयेद्वा ॥
दद्यात्त्र्यहान्नातिबुभुक्षिताय ।
तैलाक्तगात्रायततोनिरूहम् ॥
प्रत्यागतेमांसरसेनभोज्यः ।
समीक्ष्यवादोषबलंयथार्हम् ॥
नरस्ततोनिश्यनुवासनार्हो ।
नात्याशितःस्यादनुवासनीयः ।

अर्थ—सम्यक् वमन विरेचन के पीछे क्रम से पेयादि का सेवन कराके नवें दिन भात का भोजन कराके घृत पान करावै अथवा अनुवासन देवै। तदनन्तर तीन दिन पीछे शरीर को अच्छी तरह से तैल से सिक्त करके कुछ खवाकर निरूहण बस्ति देवै। निरूहण के प्रत्यागमन करने पर दोष और बलकी परीक्षा करके जांगल मांसरस का भोजन करावै । और अनुवासन के योग्य होने पर उसीदिन रात्रि के समय थोडा भोजन कराके अनुवासन बस्ति देवै ॥

शीतेवसन्तेचदिवानुवास्यो ।
रात्रौशरद्ग्रीष्मघनागमेषु ॥
तानेवदोषान्परिरक्षिताये ।

स्नेहस्यपानेपरिकीर्त्तिताःप्राक् ॥

अर्थ—शीत और वसन्त ऋतु में दिनके समय और शरद, गीष्म और वर्षा में रात्रि के समय अनुवासन देनी चाहिये। स्नेह पान में जो २ दोष निरूपण किये गये हैं वेही सब अनुवासन में भी त्यागने चाहियें ॥

प्रत्यागतेचाप्यनुवासनीये।
दिवाप्रदेयंव्युषितायभोज्यम् ॥
सायञ्चभोज्यंपरतस्त्र्यहेवा।
त्र्यहेऽनुवास्योऽहनिपञ्चमेवा ॥

अर्थ—अनुवासनीय तेल के प्रत्यागमन करने पर रात्रि में उपवास कराके प्रातः काल भोजन करावै। और अनुवासनीय तैल के दिन में प्रत्यागमन करने पर रात्रि में भोजन करावै, पश्चात् तीन दिन पीछे वा पांच दिन पीछे अनुवासन देवै ॥

त्र्यहेद्व्यहेवाप्यथपञ्चमेवा।
दद्यान्निरूहादनुवासनंवा ॥
एकंतथात्रीन्कफजेविकारे।
पित्तात्मकेपञ्चतुसप्तवापि ॥
वातेनवैकादशवापुनर्वा।
बस्तीनयुग्मान्कुशलोविदध्यात् ॥

अर्थ—इस तरह दोषों के अनुसार निरूहण से दो दिन पीछे, तीन दिन पीछे अथवा पांच दिन पीछे अनुवासन वस्ति देवै। कफज विकार में एक वा तीन वस्ति, पित्तज विकार में पांच वा सात, वातज विकार में नौ वा ग्यारह वस्ति देवै। इस तरह ऊना बस्ति देवै जैसे एक, तीन, पांच, सात। परन्तु दो, चार, छः आठ आदि न देवै ॥

नरोविरिक्तस्तुनिरूहदानम्।
विवर्जयेत्सप्तदिनान्यवश्यम् ॥
शुद्धोविरेकेननिरूहदानम्।
तद्यस्तशून्यंविकृपेच्छरीरम् ॥

अर्थ—विरेचन कराने के पीछे सात दिन तक निरूहण वस्ति देना ठीक नहीं है क्योंकि विरेचन द्वारा शुद्ध हुए मनुष्य को निरूहण का देना उस के शून्य शरीर का आकर्षण कर लेता है ॥

वस्ति के गुण ॥

वस्तिर्वयस्थापयितासुखायु।
र्बलाग्निमेधास्वरवर्णकृच्च।
सर्वार्थकारीशिशुवृद्धयूनाम्।
निरत्ययःसर्वगदापहश्च ॥
विट्श्लेष्ममूत्रानिलपित्तकर्षी।
स्थिरत्वकृत्शुक्रसुतप्रदश्च ॥

अर्थ—वस्ति वय को स्थापित करती है, सुख, आयु, बल, अग्नि, मेधा, स्वर और वर्ण को बढाती है। बालक, वृद्ध और युवा पुरुषोंके सम्पूर्ण कार्य करनेवाली है। इसमें कोई उपद्रव नहीं होता है यह संपूर्ण रोगों के नाश करनेवाली है। विष्टा पित्त, मूत्र, वायु और कफ को निकालती है, दृढता बढाती है, वीर्य और सन्तानके देनेवाली होती है।

निरूहणवस्तिकेगुण।

बिश्वक्स्थितंदोषचयंनिरस्य।
सर्वान्विकारान्शमयेन्निरूहः ॥

देहेनिरूहेणविशुद्धमार्गे ।
संस्नेहनंवर्णबलप्रदश्च ॥

अर्थ—निरूहवस्ति संपूर्ण देहके दोषों को निकालकर संपूर्ण विकारों को शान्त करदेती है । निरूहण द्वारा स्रोतःसमूह के शुद्ध होनेपर स्नेहन कर्म कियेजाने पर वर्ण और बल वढता है ।

अनुवासन के गुण ॥

नान्वासनात्किञ्चिदिहास्तिकर्म ।
परंविशेषेणसमीरणान्ते ॥
स्नेहेनरौक्ष्यंलघुतांगुरुत्वा ।
दौष्ण्याच्चशैत्यंपवनस्यहत्वा ॥
तैलंददत्याशुमनःप्रसादं ।
वीर्यंबलंवर्णमथाग्निपुष्टिम् ।
मूलेनिषिक्तोहियथाद्रुमःस्या ।
न्नीलच्छदःकोमलपल्लवाग्रः ॥
कालेमहान्पुष्पफलप्रदश्च ।
तथानरःस्यादनुवासनेन ॥

अर्थ—वायु के दूर करने के लियेअनुवासन से अधिक और कोई उत्तम कर्म नहीं है । क्योंकि तेल की चिकनाई से वायुकी रूक्षता, भारापन से लघुता और उष्णता से शीतलता दूर हो जाते हैं ॥ तेल शीघ्रही मन को प्रसन्न करता है और वीर्य वल, अग्नि और पुष्टाई को बढाता है। जैसे वृक्षकी जड में जल सींचने से उस के पत्ते हरे, शोभायुक्त और पत्तों के अग्रभाग कोमल होजाते हैं और समय पाकर वडा होकर वहुत से फल पुष्प देने लगता है। इसीतरह मनुष्यों के लिये अनुवासन क्रियाहै

स्तब्धाश्चयेसंकुचिताश्चयेऽपि ।
येपङ्गवोयेऽपिचरुग्णभग्नः ॥
येषांश्चशाखासुचरन्तिवाताः ।
शस्तोविशेषेणचतेषुवस्तिः ॥
आध्मापनेविग्रथितेपुरीषे ।
शूलेचभक्तानभिनन्दनेच ॥
एवंप्रकाराश्चभवन्तिकुक्षौ ।
येचामयास्तेषुचबास्तिरिष्टः ।

अर्थ—जो मनुष्यवायुसे स्तब्ध,संकुचित, पंगु तथा रोगों से भग्न हैं, जिनके हाथ पांवों में वायुविचरती है,उन के लिये वस्ति वहुत हितकारी होती है । जिसको अफरा हो, जिसके विष्टा में गुठले पड गये हों, जिस के शूलहो, जिसकी भोजन में अरुचि हो, तथा जिसकी कुक्षि में अन्यवातज रोग हों उन सब के लिये वस्ति अत्यन्त हित है।

याश्चस्त्रियोवातकृतोपसर्गा ।
गर्भंनगृह्णन्तिनृभिःसमेताः ॥
क्षीणेन्द्रियायेचनराःकृशाश्च ।
वस्तिःप्रशस्तःपरमश्चतेषु ॥
उष्णाभिभूतेषुवदान्तिशीतान् ।
शीताभिभूतेषुतथासुखोष्णान् ॥
तत्प्रत्यनीकौषधसंप्रयुक्तान् ।
सर्वत्रवस्तीन्प्रविभज्ययुञ्ज्यात् ॥

अर्थ—जिन स्त्रियों के वातजरोगों के कारण पुरुष के सहवास से गर्भ नहीं रह सकता है और जो पुरुष क्षीणेन्द्रिय और कृश हैं, उन के लिये वस्ति वहुतही हित है । उष्ण प्रधानरोगों में शीत वीर्य वाली औषधों के योग से और शीताभिभूत रोगों

में उष्ण औषधों के योग से वस्ति देवै। अर्थात् जैसा रोग हो उसके प्रतिकूल औषधों के संयोग से वस्ति देवै।

बृंहणवस्ति के अयोग्य व्यक्ति।

नबृंहणीयान्विदधीतवस्ती।
न्विशोधनीयेषुगदेषुवैद्यः॥
कुष्ठप्रमेहादिषुमेदुरेषु।
नरेषुयेचापिविशोधनीयाः॥

अर्थ—वैद्य को उचित है कि जो रोग संशोधन के योग्य हैं उन में बृंहण वस्ति न देवै। कुष्ठ और प्रमेहादि रोगों में, मेद संसृष्टरोग में तथा अन्य संशोधनीय रोगों में बृंहण वस्ति न देवै।

संशोधन वस्ति का निषेध।

क्षीणक्षतानाञ्चविशोधनीया।
नशोषिणांनोभृशदुर्बलानाम्॥
नमूर्च्छितानांनविशोधितानाम्।
येषांश्चदोषेषुनिबद्धवायुः॥

अर्थ—क्षीणक्षत रोगी, शोषरोगी, अत्यन्त दुर्बल, मूर्च्छाग्रस्तरोगी, तथा संशोधित मनुष्य को संशोधन वस्ति न देवे। तथा जिनके दोषों में वायु निबद्धहों उन्हें भी संशोधन वस्ति न देवै।

वायुजन्य रोगों में वस्ति को प्रधानता।

शाखागताःकोष्ठगताश्चरोगा।
मर्मोर्ध्वसर्वावयवांगजाश्च॥
येसन्तितेषांनतुकश्चिदन्यो।
वायोःपरंजन्मनिहेतुरस्ति॥
विण्मूत्रपित्तादिमलाचयानाम्।
विक्षेपसंहारकरःसयस्मात्॥
तस्यातिवृद्धस्यशमायनान्य।
द्वस्तेनृतेभेषजमस्तिकिञ्चित्॥
तस्माच्चिकित्सार्द्धमितिब्रुवन्ति।
सर्वांचिकित्सामपिवस्तिमेके॥

अर्थ—जो रोग हाथ पांवों में होते हैं। जो रोग कोष्ठ में हैं, जो मर्म स्थान में हैं, जो ऊर्ध्वगामी हैं, जो सम्पूर्ण अंगों में होते है वा अवयवों में होते हैं, ऐसे सब रोगों की उत्पत्ति का कारण वायु ही है। वायुही विष्ठा, मूत्र और पित्तादि दोषों का संचय और विक्षेप करती है। इस बढी हुई वायु के शमन करने के लिये वस्तिके अतिरिक्त और कोई औषध ही नहीं है, इस लिये वस्ति को चिकित्सार्द्ध कहते हैं किसी किसी के मत में वस्ति को संपूर्ण चिकित्साही कहते हैं।

सम्यक् प्रयुक्त वस्ति के लक्षण।

नाभिप्रदेशेकटिपार्श्वकुक्षिं।
गत्वाशकृद्दोषचयंविपोत्थ्य॥
संस्नेह्यकायंसपुरीषदोषः।
सम्यक्सुखेनेतिचयःसवस्तिः॥

अर्थ—नाभि प्रदेश में कमर, पसली और कूख में जाकर मलदोषके समूह को मथित करके तथा शरीर को स्निग्ध करके पुरीष दोष को साथ लेकर लौटती है उसे सम्यक् प्रयुक्त वस्ति कहते हैं। (यहां पाठान्तर भी है (नाभिप्रदेशंचकटीञ्चगत्वा कुक्षिं समालोड्य पुनश्चपार्श्वम्। संस्नेह्य कायं शिथिलांश्चकृत्वा दोषान्पुरीषं ग्रथितं

विमथ्य ॥ स्वसक्तवेगः सपुरीष दोषःप्रत्यागतो वस्तिरति प्रशस्तः ।)

सम्यक्प्रयुक्तनिरूहके लक्षण ।

प्रसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्वं ।
रुच्यग्निवृध्याशयलाघवानि ॥
रोगोपशान्तिःप्रकृतिस्थताच ।
बलञ्चतत्स्यात्सुनिरूढलिङ्गम् ॥

अर्थ—निरूहणवस्ति के सम्यक् प्रयोग होनेपर मल, मूत्र और अधोवायु का परित्याग होता है रुचि और अग्निकी वृद्धि होती है । आमाशय, ग्रहणी, मलाशय और मूत्राशय में हलकापन होता है । रोगों की शान्ति होती है, दोष प्रकृतिस्थ होजाते हैं और बल भी बढता है ।

असम्यक्निरूहितकेलक्षण ।

स्याद्रुक्छिरोहृद्गुदकुक्षिलिङ्गे ।
शोफःप्रतिश्यायविकर्त्तिकाच ॥
हृल्लासिकामारुतमूत्रसंगः ।
श्वासोनसम्यक्चनिरूहितस्य ॥

अर्थ—निरूहणवस्तिका सम्यक् प्रयोग न होनेपर शिर, हृदय, गुदा, कूख और लिंग में शूल होता है । सूजन, प्रतिश्याय और विकर्तिका होती है । तथा हृल्लास, वातविबन्ध, मूत्रविबन्ध, और श्वास भी उत्पन्न होते हैं ।

अतिनिरूहितकेलक्षण ।

लिंगंयदेवाभिविरेचितस्य ।
भवेत्तदेवातिनिरूहितस्य ॥

अर्थ—जो लक्षण विरेचन के अतियोग के होते हैं, वेही अत्यन्त निरूहित के होते हैं ॥

सम्यक्अनुवासितकेलक्षण ।

प्रत्येत्यसक्तंसशकृच्चतैलं ।
रक्तादिशुद्धीन्द्रियसंप्रसादः ॥
स्वप्नानुवृत्तिर्लघुताबलञ्च ।
सृष्टाश्चवेगाःस्वनुवासितेस्युः ॥

अर्थ—सम्यक् अनुवासन होनेपर तेल बिना रुकावट के विष्टा को लेकर बाहर आजाता है । रक्तादिधातु और पांचों बुद्धीन्द्रिय प्रफुल्लित होजाती है, निद्रा आजाती है । देह में हलकापन और बल बढता है और मलमूत्रादिकी प्रवृत्ति अच्छी रीति से होती है ।

असम्यक्अनुवासितकेलक्षण ।

अधःशरीरोदरबाहुपृष्ठ ।
पार्श्वेषुरुग्रूक्षस्वरञ्चगात्रम् ॥
ग्रहाश्चविण्मूत्रसमीरणानाम् ।
असम्यगेतान्यनुवासितस्य ॥

अर्थ—अनुवासनवस्ति के ठीक न होनें पर शरीर के नीचे के भाग में, उदर में, बाहु में, पीठ में, और पसलियों में दर्द होता है । शरीर रूखा और खरदरा होजाता है । विष्टा, मूत्र और वायु का विबन्ध होता है ॥

अत्यनुवासितकेलक्षण ॥

हृल्लासमोहक्लमसादमूर्च्छा ।
विकर्त्तिकाचात्यनुवासितस्य ।

अर्थ—अनुवासन वस्ति का अतियोग होने से हृल्लास, मोह, क्लान्ति, अवसाद,

मूर्च्छा और पेट में मरोड़ा होता है ॥

यस्येहयामाननुवर्ततेत्रीन् ।
स्नेहान्नरःस्यात्सविशुद्धदेहः ॥
आश्वागतोऽन्यस्तुपुनर्विधेयः ।
स्नेहोनसःस्नेहयतेह्यतिष्ठन् ॥

अर्थ—अनुवासन का तेल शरीरमें तीन पहर तक रहने से देह शुद्ध होती है।तेल के शीघ्र निकलआने पर फिर अनुवासन देना चाहिये, जो तेल शरीर में नहीं ठहरता है वह स्निग्ध नहीं करसक्ता है।

वस्तियों की संख्या ॥

त्रिंशन्मृताःकर्म्मसुबस्तयोहि ।
कालस्ततोऽर्द्धेनततश्चयोगः ॥
सान्वासनाद्वादशवैनिरूहाः ।
प्राक्स्नेहएकःपरतश्चपञ्च ॥
कालेत्रयोन्तःपुरतस्तथैकः ।
स्नेहानिरूहान्तरिताश्चषट्स्युः ॥
योगेनिरूहास्त्रयएवदेयाः ।
स्नेहाश्चपञ्चैवपरादिमध्याः ॥

अर्थ—कर्मवस्ति तीस हैं, कालवस्ति पन्द्रह हैं। अनुवासन और निरूहण बारह २ हैं। इन वास्तियों के देने का क्रम यह है कि ये वस्तियां स्वेदन, वमन, विरेचन और नस्य कर्म के भीतरही इस रीति से दी जाती हैं कि स्नेहन और स्वेदन के पीछे एक स्नेह वस्ति देकर वमन करावै, फिर एक स्नेहन वस्ति देकर विरेचन करावै पीछे एक बार स्नेह वस्ति और एक बार निरूहवस्ति देकर इस क्रम से बारह निरूह वस्ति और बारह स्नेह वस्ति देकर नस्यकर्म करावै। पीछे पांच स्नेहन वस्ति देवै तथा एक स्नेहनवस्ति पहिले दी गई थी इसतरह सब मिलकर तीसवस्ति हुई इनको कर्म वस्ति कहते हैं। वस्ति के ऊपर वस्ति न देनी चाहियें, एक २ वस्ति के पीछे पेयादि क्रम का पालन कराता रहै। कालवस्ति पन्द्रह होती हैं, ये वर्षा ऋतु में वायु की शान्ति के लिये दी जाती हैं। कालवस्ति के प्रयोग करने की यह रीति है कि प्रथमही एक स्नेह वस्ति देवै, फिर एक निरूह इसी क्रम से बारह वस्ति देवै, अन्त में तीन स्नेहन वस्ति एक के ऊपर एक देवै। योग वस्ति आठ होती हैं, ये वाजीकरण के लिये दी जाती हैं। इस में पहिले और पीछे एक एक अनुवासन वस्ति देवै बीच में तीन निरूहण और तीन अनुवासन देवै ॥

त्रीन्पञ्चवाहुश्चतुरोऽथषड्वा ।
वाताधिकेभ्यस्त्वनुवासनीयान् ॥
स्नेहान्प्रदायाशुभिषग्विदध्या ।
त्स्रोतोविशुध्यर्थमतोनिरूहम् ॥

अर्थ—वाताधिक्य रोगों में तीन, पांच, चार वा छः अनुवासन वस्ति देकर स्रोतों के शुद्ध करने के लिये निरूहण वस्ति देवै ॥

शिरो विरेचन की विधि ॥

विशुद्धकायस्यततःक्रमेण ।
स्निग्धंतुतैस्वेदितमुत्तमांगम् ॥
विरेचयेत्त्रिर्द्विरथैकशोवा ।
बलंसमीक्ष्यत्रिविधंमलानां ॥

अर्थ—वमन विरेचनादि से शरीर के शुद्ध होने पर शिरोविरेचन के लिये पूर्वोक्त तेल से मस्तक को स्निग्ध और स्विन्न करै, इस तरह रोगी का वल और तीनों दोषों को देखकर तीन, दो वा एक बार शिरोविरेचन देवै ॥

सम्यक् प्रयुक्त शिरोविरेचन के लक्षण ॥

उरःशिरोलाघवमिन्द्रियाणाम् ।
स्रोतोविशुद्धिश्च भवेद्विशुद्धे ॥

अर्थ—सम्यक् रीति से शिरो विरेचन होने पर वक्षःस्थल, सिर और इंन्द्रियों में हलकापन होता है और सब स्रोत शुद्ध होजाते हैं ॥

असम्यक् शिरोविरेचन के लक्षण ॥

गलोपलेपःशिरसोगुरुत्वं ।
निष्ठीवनंचाप्यथदुर्विरिक्ते ॥

अर्थ—अच्छी तरह शिरोविरेचन न होने पर कंठ में कफकी लिहसावट, सिर में भारापन और मुख में थूक भरना यह लक्षण होते हैं ॥

शिरो विरेचन का अति योग ॥

शिरोऽक्षिशंखश्रवणार्त्तितोदा ।
दत्यर्थशुद्धास्तिमिरेचपश्येत् ॥

अर्थ—शिरोविरेचन का अति योग होने पर माथा, आंख, कनपटी और कान में सुई छिदने की सी पीडा होती है और रोगी की आखों के साम्हने अँधेरा सा छाजाता है ॥

वस्तिप्रयोग के अन्य नियम ।

स्यात्तर्पणंतत्रमृदुद्रवश्च ।
स्निग्धस्यतीक्ष्णन्तुपुनर्नयोगे ॥
इत्यातुरस्वस्थसुखप्रयोगे ।
बलायुषोर्वृद्धिकृदामयघ्नः ॥
कालस्तुवस्त्यादिषुयातियावां ।
स्तावान्भवेद्द्विःपरिहारकालः ॥

अर्थ—शिरोविरेचनके अतियोगादि में रोगी को स्निग्ध करके मृदु और द्रव तर्पण देवै । इस मे तीक्ष्ण द्रव्यों का संयोग न करै ।

रोगी और स्वस्थ पुरुष को ऐसे प्रयोग होने से वल और आयुकी वृद्धि होती है और रोग का नाश होजाता है । वस्त्यादिक कर्मों में जितना समय लगता है उस से दुगुना काल पेयादि क्रमके पालन में लगना चाहिये ।

पंचकर्म के पीछे वर्जित कर्म ।

अत्याशनंस्थानवचांसियानम् ।
स्वप्नंदिवामैथुनवेगरोधान् ॥
शीतोपचारातपशोकरोषां ।
स्त्यजेदकालाहितभोजनञ्च ॥

अर्थ—पंचकर्मसे पीछे अतिभोजन,अत्यन्त वैठना अत्यन्त वोलना,अत्यन्त चलना,दिनमें सोना, मैथुन, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों का अवरोध, शीतोपचार, धूप, शोक,रोष, अकाल भोजन और अहित भोजन ये सव त्याग देने चाहिये ।

बद्धप्रणीतेविषमेचनेत्रे ।
मार्गेतथार्शःकफविड्विबन्धे ॥
नयातिवस्तिंनसुखंनिरेति ।
दोषावृतोऽल्पोयदिवाल्पवीर्यः ॥

अर्थ—वस्तिके नल का मुख वद्ध वा विषम प्रणीत हो अथवा अर्श का मार्ग कफ वा विष्ठा से वन्दहो, उस में वस्ति न सहज में प्रवेशही कर सकती है और न आही सकती है। वस्ति का मार्ग यदि दोषों से आवृत हो वा वस्ति का द्रव्य अल्प वा निर्वीर्य तैलादि से वनाहो तौ भी ऊपर कही हुई दशा होती है।

प्राप्तेतुवर्चोऽनिलमूत्रवेगे ।
वातेविवृद्धेऽल्पबलेगुदेवा ॥
अत्युष्णतीक्ष्णश्चमृदौमकोष्ठे ।
प्रणीतमात्रःपुनरेतिवस्तिः ॥
मेदःकफाभ्यामनिलोनिरुद्धः ।
शूलांगसुप्तिश्वयथूनूकरोति ॥
स्नेहन्तुयुञ्जन्नबुधस्तुतस्मै ।
सम्बर्धयत्येवहितानाविकारान ॥

अर्थ—विष्ठा, अधोवायु और मूत्रका वेग उपस्थित हो, वायुकी वृद्धि हो, गुदा अल्प वलयुक्त हो, कोष्ठ मृदु हो और वस्तिद्रव्य अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण हो तौ वस्ति प्रवेश करते ही लौट आती है। मेद और कफसे रुकी हुई वायु शूल'अंग-सुप्ति (सुन्नता) और सूजन उत्पन्न करती हैं। इसको अवुध वैद्य वात विकार समझ कर अनुवासनादि प्रयोग करता है। तौ इससे रोगों की वृद्धिही होती है ॥

रोगास्तथान्येऽप्यावितर्क्यमाणाः ।
परस्परेणाव्रगृहीतमार्गाः ॥
सन्दूषिताधातुभिरेवचान्यैः ।
स्वैर्भेषजैर्नोपशमंव्रजन्ति ॥
सर्वेश्चरोगप्रशमायकर्म्म ।
हीनातिमात्रंविपरीतकालम् ॥
मिथ्योपचारश्चनतंविकारं ।
शान्तिनयेत्पथ्यमपिप्रयुक्तमिति ॥

अर्थ—इस तरह एक दोष द्वारा दूसरे दोष का मार्ग रुक जाने पर अन्य २ रोग प्रकट होजाते हैं। अन्य धातुओं से दूषित दोष रुद्ध मार्ग होकर अपनी २ औषधों से शान्त नहीं होते हैं। रोगी के पथ्य सेवन करने पर भी यदि रोग की औषध अच्छी तरह से प्रयुक्त न हुई हो, हीन, वा अधिक वा मिथ्या प्रयुक्त हुई हो वा विपरीत काल में प्रयुक्त हुई हो तौ रोग की शान्ति नहीं होती है ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ॥

प्रश्नानिमान्द्वादशपञ्चकर्मा- ।
ण्युद्दिश्यसिद्धाविहकल्पनायाम् ॥
प्रजाहितार्थंभगवान्महार्थान् ।
सम्यक्जगादर्षिवरोऽत्रिपुत्रः ॥

अर्थ—इस कल्पना सिद्धि नामक अध्याय में भगवान् आत्रेय ने प्रजा के हित के लिये वमन विरेचनादि पंच कर्म सम्बन्धी वारह गूढ प्रश्नों का उत्तर दिया है ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां सिद्धिस्थानेकल्पनासिद्धिर्नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथातःपञ्चकर्मीयांसिद्धिंव्याख्यास्यामः।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम पञ्चकर्मीय सिद्धिकी व्याख्या करेंगे।

येषांयस्मात्पञ्चकर्माण्याग्निवेशनकारयेत्
येषांचकारयेद्यानितत्सर्वंसंप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—हे अग्निवेश ! जिन के विषयमें पंचकर्म करने के योग्य नहीं है और जिन के विषय में पंचकर्म करने के योग्य हैं अब हम उनकी व्याख्या करेंगे।

पंचकर्मकेअयोग्यव्यक्ति।

चण्डःसाहसिकोभीरुःकृतघ्नोव्यग्रएवच।
सद्वैद्यनृपतिद्वेष्टातद्विष्टःशोकपीडितः ॥
यादृच्छिकोमुमूर्षश्चविहीनःकरणैश्चयः।
वैरीवैद्यविदग्धश्चश्रद्धाहीनःसुशङ्कितः ॥
भिषजामविधेयश्चनक्रम्याहिभिषग्विदा।
एतानुपचरन्वैद्योबहूनदोषानवाप्नुयात्।
एभ्योऽन्येसमुपक्रम्यानराःसर्वैरुपक्रमैः ॥
अवस्थांप्रविभज्यैषांवर्ज्यंकार्यंचवक्ष्यते।

अर्थ--चण्ड, साहसी, भीरु, कृतघ्न, व्यग्र, सद्वैद्यद्रोही, राजद्रोही, विद्विष्ट, शोकपीड़ित, यदृच्छाचारी, मुमूर्षु, करणहीन, वैरी, वैद्याभिमानी, श्रद्धाहीन, शंकितचित्त, वैद्य की बताई हुई बात का न करने वाला ये सब पंच कर्म के योग्य नहीं हैं। ऐसों की चिकित्सा करने से वैद्य अत्यन्त पापका भागी होता है।

इनको छोड़कर अन्य मनुष्य सम्पूर्ण चिकित्साओं के योग्य होतेहैं। इनमें अवस्था भेद से जो जो कार्य वर्जनीय हैं उन की व्याख्या करते हैं।

वमनेकअयोग्यव्यक्ति।

अच्छर्दनीयास्तावत्क्षतक्षीणातिस्थूल कृशबालवृद्धःदुर्बलश्रान्तपिपासितक्षुधितकर्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्यायामचिन्ताप्रसक्तक्षामगर्भिणीसुकुमारसंवृतकोष्ठदुश्छर्दनोर्ध्वरक्तपित्तप्रसक्तच्छर्दिनूर्ध्ववातास्थापितानुवासितहृद्रोगोदावर्त्तमूत्राघातःप्लीहगुल्मोदराष्ठीलास्वरोपघाततिमिरशिरः शंखकर्णाक्षिपार्श्वशूलार्ताः।

अर्थ—क्षतक्षीण, अतिस्थूल, कृश, बालक, वृद्ध, दुर्बल, श्रान्त, तृषार्त्त, क्षुधार्त्त, परिश्रम से थकाहुआ, बोझ से थकाहुआ, मार्ग से थकाहुआ, उपवाससेक्लान्त, मैथुन, अध्ययन, व्यायाम, चिन्ता इन से थकाहुआ, क्षाम, गर्भिणी, सुकुमार संवृतकोष्ठ (जिसको सहज में वमन न होसक्ती हो) दुश्छर्दनीय, ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त से पीडित, वमनरोगी, ऊर्ध्ववातरोगी, आस्थापित (जिसको आस्थापन वस्ति दीगई हो) अनुवासित, हृद्रोगी, उदावर्त्तरोगी, मूत्राघातग्रस्त, प्लीहारोगी, गुल्मरोगी, उदररोगी अष्ठीलारोगी, स्वरभंगरोगी, तिमिर रोगी, शिरोरोगी, कनपटी के रोगवाला, कर्णरोगी, नेत्ररोगी और पसली के दर्दवाला। ये सब वमन कराने के अयोग्य होते हैं।

उक्तरोगियोंकेअवम्यहोनेकाहेतु ॥

तत्रक्षतस्यचभूयःक्षणनात्रक्तातिप्रवृत्तिः स्यात् । क्षीणातिस्थूलकृषबालवृद्धदुर्बलानामौषधबलासहत्वात्प्राणोपरोधः । श्रान्तपिपासितक्षुधितानांचतद्वत् । कर्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्यायामचिन्ताप्रसक्तक्षामाणांरौक्ष्याद्वातरक्तच्छेदक्षतक्षयभयंस्यात् । गर्भिण्यागर्भव्यापदामगर्भभ्रंशाच्चदारुणारोगप्राप्तिः । सुकुमारस्यहृदयविकर्षणादूर्द्ध्वअधोवारुधिरातिप्रवृत्तिः । संवृतकोष्ठदुश्छर्दनयोरतिमात्रप्रवाहनाद्दोषाःसमुत्क्लिष्टाःकोष्ठेजनयन्त्यन्तर्विसर्पस्तम्भंजाड्यंवैचित्यंमरणंवा । ऊर्द्ध्वरक्तपित्तिनसुदानमुत्क्षिप्यप्राणान्हरेद्रक्तंचातिप्रवर्तयेत् । प्रसक्तछर्दिषस्तद्वदूर्द्ध्ववातास्थापितानुवासितानामूर्द्ध्ववातातिप्रवृत्तिः । हृद्रोगिणेहृदयोपरोधः । उदावर्तिनांघोरतरउदावर्तः स्यात्शीघ्रतरहन्ता । मूत्रघातादिभिरार्तानांतीव्रतरःशूलप्रादुर्भावः। तिमिराणांतिमिरातिवृद्धिः । शिरःशूलादिषुशूलातिवृद्धिः । तस्मादेतेनवम्याः ।

अर्थ—क्षतरोगी को वमन कराने से उरःक्षत और भी अधिक बढजाता है जिस से रक्त अधिक निकलने लगता है क्षीण, अतिस्थूल, कृश, बालक वृद्ध और दुर्बल वमन के वेग को सहनहीं सक्ते हैं, इससे इनको वमन कराने से प्राणों का अवरोध होता है । श्रान्त, पिपासित और क्षुधितको भी इन्हीं कारणोंसे वमन नहीं कराईजाती है । परिश्रम से व्यथित, भारवहन से थकित, मार्ग से थकित, उपवासहत, मैथुनशील, अध्ययनशील, व्यायामशील, चिन्ताग्रस्त और क्षामरोगियों को वमन करानेसे रूक्षता के कारण वात और रक्त प्रकुपित होते हैं,कण्ठनाली आदिमें छिद्र होना और उरःक्षत होना इनका भय रहता है। गर्भिणी को वमन कराने से गर्भ व्यापत् गर्भस्राव तथा गर्भसंबंधी अन्य अन्य रोग भी होते हैं । सुकुमार को वमन कराने से उसका हृदय विकर्षित होजाता है इस से ऊर्ध्वमार्ग वा अधोमार्ग से रुधिर अत्यन्त निकल ने लगता है । संवृत कोष्ठ और दुश्छर्दनीय मनुष्य को वमन कराने से वमन तो ठीक होती नहीं है और वह जो मारकर वमन करने की चेष्टा करता है इससे दोष कोष्ठ उत्क्लेशित होकर विसर्प, स्तम्भता, जडता, वैचित्ति (मन में उद्वेग) और मृत्यु आदि रोग उत्पन्न करते हैं । ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त वाले को वमन कराने से उदानवायु ऊपर को उठती है और उस से प्राणों का नाश और रक्तकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है । जिसको वमन रोग हो उसको वमन कराने से भी उक्त दशा होती है । ऊर्ध्व बात रोगी, अनुवासित और अस्थापित को वमन कराने से ऊर्ध्ववात की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है । हृद्रोगी को वमन कराने से हृदय का उपरोध होता है ॥

उदावदावर्त्त रोगी को वमन कराने से घोरतर उदावर्त्त होता है जिससे रोगी शीघ्रही मरजाता है। मूत्राघात, प्लीहा, गुल्म, उदर, अष्ठील और स्वरभंग वाले को वमन कराने से अत्यन्त तीव्र शूल उत्पन्न होता है। तिमिर रोगी को वमन कराने से तिमिर की वृद्धि होती है। शिरःशूल, शंखशूल, और पार्श्वशूल वाले को वमन कराने से शूल की अत्यन्य वृद्धि होती है इससे ऊपर लिखे सब रोगों में वमन कराने का निषेध है ॥

वमनका अप्रतिषेध ॥

सर्वेष्वपिखल्वेतेष्वपिविषगरविरुद्धाभ्यवहारामकृतेष्वप्रतिसिद्धं शीघ्रतरकारित्वादेषाम् ।

अर्थ—ऊपर लिखेहुए सम्पूर्ण रोगों के होने पर भी यदि विषजनित, विरुद्ध भोजन जनित गर जनित वा आम दोष जनित उपद्रव का प्रादुर्भाव होतो वमन करानेका निषेध नहीं है। कारण ये हैं कि ये रोग आशुकारी होते हैं ॥

वमनीय व्यक्ति ॥

शेषास्तुवम्याःपीनसकुष्ठनवज्वरराजयक्ष्मकासश्वासगलग्रहगलगण्डश्लीपदमेहमन्दाग्निविरुद्धजीर्णान्नविसूचिकालसकविषगरपीतदष्टदिग्धविद्धाधःशोणितपित्तप्रसेकहृल्लासारोचकाविपाकापच्यपस्मारोन्मादातिसारशोफपाण्डुरोगमुखपाकदुष्टस्तन्यादयःश्लेष्मव्याधयो विशेषेणरोगाध्यायोक्ताश्चैतेषुहिवमनंप्रधानतमामित्युक्तंकेदारसेतुभेदेशाल्यादिशोषदोषविनाशवत् ।

अर्थ—ऊपर कहेहुए रोगियों से अन्य वमन के योग्य होते हैं। पीनस, कोढ, नवीन ज्वर, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, गलग्रह, गलगण्ड, श्लीपद, मेह, मन्दाग्नि, विरुद्ध भोजन, दुष्पाच्यभोजन, विसूचिका, अलसक, विषपान, गरपान, काटने का विष, दिग्ध शिराआदि का व्यध, अधोगत रक्त पित्त, कफप्रसेक, अर्श, हृल्लास, अरुचि, अविपाक, अपची, अपस्मार, उन्माद, अतिसार, सूजन, पांडुरोग, मुखपाक, दुष्टस्तन्यादि धात्रीरोग, और विशेष करके महारोगाध्याय में कहेहुए बीस प्रकार के कफविकार। ये सब वमन साध्य हैं। जैसे खेत की मेंढ तोड देने से जल के निकल जाने के कारण खेती सूखजाती है, इसी तरह से वमन द्वारा दोषों के निकल जाने के कारण सब रोग नष्ट होजाते हैं ॥

अविरेच्य रोगी ॥

अविरेच्यास्तुसुभगक्षतगुदमुक्तनालाधोभागरक्तपित्तविलंघितदुर्बलेन्द्रियाल्पाग्निनिरूढकासादिव्यग्राजीर्णिनवज्वरमदात्ययिताध्मानशल्यार्दिताभिहतातिस्निग्धरूक्षदारुणकोष्ठाःक्षतादयश्चगर्भिण्यन्ताः ॥

अर्थ—नीचे लिखे हुए रोगी विरेचन के योग्य नहीं होते हैं। यथा—सुकुमार, क्षतगुद (जिनकी गुदा में घावहों), मु-

क्तनाल (जिनका मलद्वार शिथिल हो-गया हो), अधोगामी रक्त पित्त रोगी, उपवास कर्षित, दुर्बलेंद्रिय, मन्दाग्नि, निरूहित (जिसे निरूहवस्ति दी गई हो), जो कामादि हेतुओं से व्यग्रमन हो, जो अजीर्ण रोग से पीडित हों, जिसको नवीन ज्वर हो, जिसको मदात्यय रोग हो जिसको अफरा हो,जो शल्यसे पीडितहो, जिसकेचोटलगीहो,जो अतिस्निग्ध वा अतिरूक्ष हो जिसका कोष्ठ दारुणहोतथा वमनप्रकरण में कहे हुए क्षत से गर्भिणी पर्य्यन्त अर्थात् क्षतरोगी, क्षीणरोगी, अतिस्थूल, अतिकृश, बालक, वृद्ध, दुर्बल, थकित, पिपासित, क्षुधित, श्रमक्रान्त, भाराक्रान्त, मार्गक्रान्त, उपवास कर्षित, मैथुनरत, अध्ययनरत, व्यायामशील, चिन्ताग्रस्त,क्षाम और गर्भिणी इन सब को विरेचन न देना चाहिये ।

उक्तव्यक्तियोंकेअविरेच्यहोनेकाकारण।

तत्रसुभगस्यसुकुमारोक्तोदोषःस्यात् । क्षतगुदस्यक्षतेगुदेवायुःप्राणोपरोधकरीं बरांरुजांजनयेत् । मुक्तनालमतिप्रवृत्त्या हन्यात् । अधोभागरक्तपित्तिनांतद्वदेव । बिलंघितदुर्बलेद्रियाऽल्पाग्निनिरूढाऔषधवेगंनसहेरन् । कामादिव्यग्रमनसो नप्रवर्ततेकृच्छ्रेणवाप्रवर्तमानमधोगदोषान्कुर्य्यात् ।अजीर्णिनआमदोषःस्यात् नवज्वरस्याविपक्वान्दोषाननिर्हरेत् वातमेवचकोपयेत् । मदात्ययितस्यमद्यक्षीणेदेहेवायुःप्राणोपरोधंकुर्य्यात् । आध्मातस्याध्मायमानस्यवापुरीषकोष्ठेनिचितोवायुर्विसर्पन्सहसानाहंतीव्रतरंमरणंवाजनयेत् । सशल्यार्दिताभिहतयोः क्षतेवायुराश्रितोजीवितंहिंस्यात् । अतिस्निग्धस्यातियोगभयंभवेत् । रूक्षस्य वायुरंगग्रहंकुर्य्यात् । दारुणकोष्ठस्य विरेचनोद्धतादोषाहृच्छूलपर्वभेदानाहाङ्गमर्दछर्दमूर्च्छाक्लमानजनयित्वाप्राणान्हन्युः । क्षतादीनांगर्भिण्यन्तानांछर्दनोक्तोदोषःस्यात् । तस्मादेतेनविरेच्याः

अर्थ—सुकुमार मनुष्य को विरेचन देने से हृदय कार्षित होता है । गुदा में घाव वाले को विरेचन देने से प्राणोपरोधकारी अत्यन्त तीव्र वेदना होती है । मुक्तनाल मनुष्य को अत्यन्त विरेचन देने से प्राणो की हानि होती है । अधोगामी रक्तपित्त वाले को विरेचन देने से रक्तकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है । उपवास कार्षित,दुर्बलेन्द्रिय मन्दाग्नियुक्त और निरूहित औषध के वेग को नहीं सह सकते हैं । जो मनुष्य कामादि वेगों से दुचित्ते हो रहे हैं उन को विरेचन से दस्तनहीं आतेहैं और जो कठिनता से दस्त आते हैं । तो अधोमार्ग में संपूर्ण दोष कुपित होजाते हैं । अजीर्ण वाले को विरेचन देने से आमदोष की उत्पत्ति होती है । नवीन ज्वर में विरेचन देने से आमदोष नहीं निकलते हैं किन्तु वात कुपित होजाती है मदात्ययरोगी की मद्य से क्षीण देह में विरेचन देने से वायु प्राणों को रोक देती है । जिसके अफरा हो वा जो आध्मायमानहो उसे विरेचन देने से मलाशय में

संचित वायु फैलकर शीघ्रही अत्यन्त तीव्र आनाह वा मृत्यु को उपस्थित करती है। शल्यार्दित और आहत व्यक्ति के घाव में वायु रहती है उस दशा में यदि विरेचन दियाजाय तौ प्राणनष्टहोजाते हैं। अत्यन्त स्निग्ध मनुष्य को विरेचन देने से उसका अति योग होता है। रूक्ष व्यक्ति को विरेचन देने से वायु अंग को पकड लेती है। कडे कोठे वाले को विरेचन देने से दोष उदीर्ण होकर हृदय में शूल, पर्वभेद आनाह, अंगमर्द,वमन,मूर्च्छा और क्लान्ति उत्पन्न करके प्राणों को नष्ट कर देती है। क्षतरोगी से लेकर गर्भिणी पर्यन्त को विरेचन देने से वमन प्रकरण मे कहे हुए रोग होते हैं। इस से ये सब विरेचन के अयोग्य हैं।

विरेचन के योग्य व्यक्ति।

शेषास्तुविरेच्याः। कुष्ठज्वरमेहोर्द्धरक्तपित्तभगन्दरोदरार्शोवध्नप्लीहगुल्मार्बुदगलगण्डग्रन्थिविसूचिकालसकमूत्राघातक्रिमिकोष्ठविसर्पपाण्डुरोगशिरपार्श्वशूलोदावर्तनेत्रास्यदाहहृद्रोगव्यङ्गनीलीकानेत्रनासिकास्यश्रवणरोगहलीमकश्वासकासकामलापस्मारोन्मादवातरक्तयोनिरेतोदोषतैमिर्यारोचकाविपाकच्छर्दिश्वयथ्वपचीविस्फोटकादयःपित्तव्याधयोविशेषणरोगाध्यायोक्ताश्चाएतेषुहिविरेचनंप्रधानतममित्युक्तमग्न्युपशमेऽग्निगृहवत्।

अर्थ—ऊपर कहे हुए रोगियोंको छोड कर शेष सब रोगी विरेचन के योग्य होते हैं। कोढ, ज्वर, प्रमेह, ऊर्ध्वरक्तपित्त,भगन्दर, उदररोग, अर्श, ब्रध्न, प्लीहा, गुल्मरोग, अर्बुद, गलगण्ड, ग्रन्थि, विसूचिका, अलसक, मूत्राघात,क्रिमिकोष्ठ, विसर्प,पाण्डुरोग, शिरोवेदना, पार्श्वशूल, उदावर्त्त, नेत्रदाह, मुखदाह, हृद्रोग, व्यंग, नीली का नेत्ररोग,नासिका रोग, मुखरोग, कर्णरोग हलीमक, श्वास, खांसी, कामला, मृगीरोग उन्माद, वातरक्त, योनि दोष, शुक्रदोष, तिमिर, अरुचि, अविपाक, वमन, सूजन, उदररोग, बिस्फोटकादिरोग, तथा महारोगाध्याय में कही हुई चालीस प्रकार की पित्तज व्याधियां विशेष कर के विरेचन से दूर होजाती हैं। इन सब रोगो में विरेचन ही प्रधान है। जैसे अग्निके बुझन से घर अपने आप शान्त होजाता है इसी तरह विरेचन द्वारा दोषों के निकलने से शरीर के रोग अपनें आप शान्त होजाते हैं।

अनास्थाप्यरोग।

अनास्थाप्यास्तुअजीर्ण्यतिस्निग्धपीतस्नेहोत्क्लिष्टदोषाल्पाग्नियानक्लान्तातिदुर्बलक्षुत्तृष्णाश्रमार्तातिकृशभुक्तभक्तपीतोदकवमितविरिक्तक्षतकृतनस्तःकर्म्मक्रुद्धभीतमत्तमूर्च्छितप्रसक्तछर्दिर्निष्ठीबिकाश्वासकासहिक्काबद्धछिद्रोदकोदराध्मातालसकविसूचिकामप्रजामातिसारमधुमेहकुष्ठाः।

अर्थ—नीचे लिखे हुए रोगी आस्थापन के योग्य नहीं होतेहैं। यथा—अजीर्ण रोगी, अतिस्निग्ध, पीतस्नेह, उत्क्लिष्टदोष,

मन्दाग्नि, यानक्लान्त, (सवारीसे थकाहुआ) अतिदुर्वल, क्षुधार्त्त, तृषार्त्त, श्रमार्त्त, अत्यन्तकृश, भुक्तभक्त (जिसने भात खायाहो) पीतोदक, वमित, विरिक्त, क्षत, कृतनस्यकर्मा (जिसने नस्यकर्मका सेवन कियाहो) क्रुद्ध, डराहुआ, मतवाला, मूर्च्छित, वमनरोगी, जिसके मुहंमें थूक भरताहो, श्वासरोगी, कासरोगी, हिक्कारोगी, वद्धोदरी, छिद्रोदरी, दकोदरी, अलसकरोगी, विसूचिकारोगी, आमगर्भा (जिसका गर्भ सातमहीने के भीतरहों) अतिसारी, मधुमेही और कुष्ठरोगी ये सव आस्थापन के योग्य नहींहैं ।

अनास्थापनकाकारण ।

तत्राजीर्णयतिस्निग्धपीतस्नेहानांदूष्योदरंमूर्च्छाश्वयथुर्वास्यात् । उत्क्लिष्टदोषमन्दाग्न्योररोचकस्तीव्रः । यानक्लान्तस्यक्षोभमापन्नोबस्तिराशुदेहंशोषयेत् । अतिदुर्वलक्षुत्तृष्णाश्रमार्तानांपूर्वोक्तोदोषःस्यात् । अतिकृशस्यकार्श्यंपुनर्जनयेत् । पीतोदकभुक्तभक्तेभ्योत्क्लेश्योर्द्धमधोवावायुर्वास्तिमुत्क्षिप्यक्षिप्रंवस्तौघोरान्विकारान्जनयेत् । बमितविरिक्तयोस्तुरूक्षशरीरंनिरूहःक्षतक्षारइवदहेत् । कृतनस्तःकर्म्मणोविभ्रंशंभृशसंरुद्धस्रोतसःकुर्यात् । क्रुद्धभीतयोर्बस्तिरूर्द्धमुपप्लवेत् । मत्तमूर्च्छितयोर्भृशंविचलितायांसंज्ञायांचित्तोपघाताद्व्यापत्स्यात् । प्रसक्तछर्दिनिष्ठीविकाश्वासकासहिक्कार्त्तानामूर्द्धीकृतोवायुरूर्द्धंवस्तिंनयेत् । बद्धछिद्रोदकोदराध्मातानांभृशतरमाध्मापयन्बस्तिः प्राणान्हिंस्यात् । अलसकविसूचिकामगर्भजातिसारिणामामकृतोदोषःस्यात् । मधुमेहकुष्ठिनोव्याधेःपुनर्वृद्धिःतस्मादेते नास्थाप्याः ।

अर्थ—इनम से अजीर्णरोगी, अति स्निग्ध और पीतस्नेह वाले रोगीयों को आस्थापन देनेसे उदररोग मूर्च्छा और सूजन उत्पन्न होती है उत्क्लिष्ट दोष और मन्दाग्नि वालेको आस्थापन देनेसे तीव्र अरुचिहोतीहै। सवारीसे थके हुएको आस्थापन देनेसे क्षोभको प्राप्त हुई वस्ति शीघ्रही उसके देहको सुखा देती है । अति दुर्वल, क्षुधार्त्त, तृषार्त्त और श्रमार्त्त को आस्थापन वस्ति देने से पूर्वोक्त दोष होते हैं । अत्यन्त कृशको वस्ति देने से और भी कृशता हो जाती है । जल पीने और भोजन कर लेने के पीछे बस्ति देने से उसकी वायु ऊपर वा नीचे उत्क्लेशित होकर और वस्ति को उत्क्षिप्त कर के शीघ्रही वस्ति में घोर विकारों को उत्पन्न कर देती है। वमित और विरिक्त का शरीर पहिलेही रूक्ष होता है, इस पर भी यदि निरूह दी जाय तो क्षतक्षार की तरह दग्ध कर देता है । जिस मनुष्य ने नस्य कर्म किया है उसको आस्थापन देने से स्रोतः समूह रुककर नस्य कर्म के फल को नष्ट कर देते हैं । क्रुद्ध और भीत को अस्थापन वस्ति देने से वस्ति ऊपर को चली जाती है । मत्त और मूर्च्छित को अत्यन्त विगडी

हुई दशा में वस्ति देने से चित्तोपघात होता है। वमनरोग, श्वास, खांसी और हिचकी वाले को आस्थापन देने से इस आस्थापन को वायु ऊपर को लेजाती है। बद्धोदर, छिद्रोदर दकोदर और आध्मानमें वस्ति देने से उदर में बहुत अफरा उत्पन्न होता है और प्राण जाते रहते हैं। अलसक, विसूचिका, आमगर्भ और अतिसार में आस्थापन देने से आमकृत दोष होते हैं। मधुमेह और कुष्ठ में आस्थापन देने से रोग की वृद्धि होती है, इस से ऊपर लिखे हुए रोगों में आस्थापन वस्ति न देनी चाहिये।

आस्थाप्यरोग।

शेषास्त्वास्थाप्याःसर्वाङ्गैकांगकुक्षिरोगवातवर्चोमूत्रशुक्रसंगवलवर्णमांसरेतःक्षयदोषाध्मानांगसुप्तिक्रिमिकोष्ठोदावर्त्ताऽतिसारपर्वाभितापप्लीहगुल्महृद्रोगभगन्दरोन्मादज्वरवध्मशिरःकर्णशूलहृदयपार्श्वपृष्ठकटीग्रहवेपनाक्षेपकगौरवातिलाघवरजःक्षयानार्त्तवविषमाग्निस्फिग्जानुजंघोरुगुल्फपाण्णिप्रपदयोनिबाह्वंगुलितलांसदन्तपार्श्वास्थिशूलशोषस्तम्भान्त्रकूजनपरिकर्तिकादयःवातव्याधयोविशेषेणरोगाध्यायोक्ताश्च।एतेष्वास्थापनंप्रधानतममित्युक्तंवनस्पतिमूलच्छेदवत्।

अर्थ—ऊपर कहे हुए रोगों से अन्यरोग आस्थापन के योग्य होते हैं। यथा-सर्वांग वात, एकांग वात, कुक्षिरोग, अधोवायु,मूत्र और वीर्य के विवन्ध, वलक्षय, वर्णक्षय, मांसक्षय, वीर्यक्षय, आध्मान, अंगसुप्ति, क्रिमिकोष्ठ, उदावर्त्त, अतिसार, हडफूटन प्लीहा, गुल्म, हृद्रोग,भगन्दर,उन्माद,ज्वर, वृध्न, शिराशूल, कर्णशूल, हृदयग्रह, पार्श्व ग्रह, पृष्ठग्रह, कटिग्रह, कम्पन, आक्षेप, अंगगौरव, देह का अत्यन्त हलकापन,रजःक्षय, रजस्वला होने का अभाव, विषमाग्नि, नितम्बशूल, जानुशूल, जंघाशूल, ऊरुशूल, टकनें का दर्द, ऐंडी का दर्द, पंजे का दर्द, योनिशूल, वाहुशूल, अंगुलिशूल, हस्ततल में शूल, स्कन्धशूल, दन्तशूल, पार्श्वशूल अस्थिशूल, शोष, स्तम्भ, अंत्रकूजन, परिकर्त्तिका, तथा विशेष करके महारोगाध्याय में कही हुई अस्सी प्रकार की वात व्याधियां आस्थापन से दूर होजाती हैं। इन रोगों में आस्थापन प्रधान है, जैसे जड काट डालने से वनस्पति एक साथही नष्ट होजाती हैं उसी तरह आस्थापन देने से भी सम्पूर्ण रोग जड से मिटजाते हैं।

अनुवासन के अयोग्य रोगी।

यएवानास्थाप्यास्तएवाननुवास्या। विशेषतस्त्वभुक्तभक्तनवज्वरपाण्डुरोगकासकामलाप्रमेहार्शःप्रतिश्यायारोचकमंदाग्निदुर्बलप्लीहकफोदरोरुस्तम्भवर्चोभेदविषगरपीतकफाभिष्यन्दगुरुकोष्ठश्लीपदगलगण्ड। पचिक्रिमिकोष्ठिनः।

अर्थ—जो जो रोग आस्थापन योग्य वर्णन नहीं किये हैं उनही में अनुवासन भी न देवै। विशेष करके अभुक्तभक्त, नवज्वर, पांडुरोग, खांसी, कामला, प्रमेह, अर्श, प्रतिश्याय,अरुचि, मन्दाग्नि,दुर्बलता,

प्लीहा, कफोदर, ऊरुस्तम्भ, मल भेद, पीत विष, पीतगर, कफाभिष्यन्द, भारी कोष्ठ श्लीपदरोग, गलगंडरोग, अपची और क्रिमिकोष्ठ । इन सब रोगों में अनुवासन न देनी चाहिये ।

उक्तरोगों में अनुबासनके न देनेका कारण।

तत्राभुक्तभक्तस्यानावृतमार्गत्वादूर्द्ध्वमतिवर्ततेस्नेहो । नवज्वरपाण्डुरोगकामलाप्रमेहिणांदोषानुत्क्लेश्योदरंजनयेदर्शस्यर्शांस्यभिष्यन्द्याध्मानमरोचकार्तस्यान्त्रवृद्धिंपुनर्हन्यात् । मन्दाग्निदुर्बलयोर्मन्दतरमग्निंकुर्यात् । प्रतिश्यायप्लीहादिमतांभृशंचोत्क्लिष्टदोषाणांभूयएवदोषंवर्द्धयेत्तस्मादेतेनानुवास्याः।

अर्थ—विना भोजन कराये अनुवासन देने से वस्ति का मार्ग खुला रहने से तेल ऊपरको चला जाता है। नव ज्वर, पांडुरोग, कामला और प्रमेह में अनुवासन देने से दोष उत्क्लेशित होकर उदररोग उत्पन्न करते हैं। अर्शरोग में अनुवासन देने से स्नेह अर्श को अभिष्यन्दी करके आध्मान उत्पन्न करता है । अरुचि में अनुवासन देने से अन्त्रवृद्धि होकर प्राणों को नष्ट कर देती है (अन्न में अनिच्छा होती है ऐसा पाठभी है) मन्दाग्नि और दुर्वलको अनुवासन देने से अग्नि अत्यन्त मन्द होजाती है । प्रतिश्याय और प्लीहा में अनुवासन देने से सम्पूर्ण दोष और भी वढ जाते हैं । इस लिये इन सम्पूर्ण रोगों में अनुवासन न देना चाहिये ।

अनुवासन के योग्य व्यक्ति।

यएवास्थाप्यास्तएवानुवास्याः । विशेषतस्तुरूक्षतीक्ष्णाग्नयःकेवलवातरोगार्ताश्च । एतेषुह्यनुवासनंप्रधानतममित्युक्तंवनस्पतिमूलच्छेदनवत्मूलेद्रुमप्रसिक्तवच्च ।

अर्थ—जिन जिन रोगों में आस्थापन दी जाती है उन्ही में अनुवासन भी दी जाती है । विशेष करके रूक्ष,तीक्ष्णाग्नि और केवल वातरोग पीडित को तौ अवश्य ही अनुवासन देना चाहिये । इन सब रोगों में अनुवासन ही प्रधान औषध है । जैसे जड के काटने से वनस्पति नष्ट होजाती है वैसेही अनुवासन से सब रोग जड से मिट जाते हैं और जैसे वृक्षकी जड में जल देने से वह ऊपरसे नीचे तक हरा होजाता है उसी तरह अनुवासन देने से उसकी सब धातु पुष्ट होजाती हैं ।

शिरोविरेचन के अयोग्यरोगी।

अशिरोविरेचनार्हाःअजीर्णिभुक्तभक्तपीतस्नेहमद्यतोयपातुकामःस्नातशिरःस्नातुकामःक्षुत्तृष्णाश्रमार्तमत्तमूर्छितशस्त्रदंडाहतव्यवायव्यायामपानक्रान्तक्लांतनवज्वरशोकाभितप्तविरक्तानुवासितगर्भिणीनवप्रतिश्यायार्ताःअनृतादुर्दिनश्च ।

अर्थ—नीचे लिखेरोगी शिरोविरेचन के योग्य नहीं होते हैं । यथा—अजीर्ण रोगी, भुक्तभक्त, पीतस्नेह, मद्यपान वाजलपान की इच्छारखने वाला, स्नातशिरः (सिरस मेतन्हानेवाला,) स्नातुकाम (स्नान की

इच्छारखनेवाला), क्षुधार्त्त, तृषार्त्त,श्रमार्त्त, मूर्च्छित, शस्त्राहत, दंडाहत, मैथुनक्रान्त, व्यायामक्लान्त, मद्यपान से थका हुआ, नव ज्वर पीडित, शोकाभितप्त, विरिक्त, अनुवासित, गर्भिणी, और नवीन प्रतिश्या से पीडित। इन को शिरो विरेचन न देवै। इसके अतिरिक्त कुऋतु और जिस दिन बादल हो रहे हों उस दिन भी शिरो विरेचन न देवै।

शिरोविरेचन न देने का कारण।

तत्रार्जीर्णिभुक्तभक्तयोर्दोषऊर्द्धवाही स्रोतांस्यावृत्त्यकासश्वासछर्दिप्रतिश्यायान्जनयेत्। पीतस्नेहमद्यतोयपातुकामानांकृतेचपिबतांमुखनासास्रावाक्ष्युपदेहतिमिरशिरोरोगान्जनयेत्। स्नातशिरसःकृतेचस्नानाच्छिरसःप्रतिश्यायं। क्षुधार्तस्यवातप्रकोपं। तृष्णार्तस्यपुनस्तृष्णाभिवृद्धिंमुखशोषञ्च। श्रमार्तमत्तमूर्छितानामास्थापनोक्तंदोषं। शस्त्रदण्डहतस्यतीव्रतरांरुजंजनयेत्। व्यवायग्लानव्यायामक्लान्तानांशिरःस्कन्धनेत्रोरःपीडनं। नवज्वरशोकाभितप्तयोरूष्मानेत्रनालीभिरनुसृत्यातिमिरंज्वरवृद्धिंच। विरिक्तस्यवायुरिन्द्रियोपघातमनुवासितस्यकफःशिरोगुरुत्वकण्डूक्रिमिदोषान्। अन्तर्वत्न्यागर्भस्तम्भयेत्सकाणःकुणिःपक्षहतः पीठसर्पीवाजायेत। नवप्रतिश्यायस्यस्रोतांसिव्यापादयेदनृतदुर्दिनशीतदोषान्पूतिनासिकाशिरोदोषश्चस्यात्।तस्मादेतेनशिरोविरेचनार्हाः।

अर्थ—इन में अजीर्ण रोगी को और भुक्तभक्त को शिरो विरेचन देने से दोष ऊर्ध्व वाही स्रोतों को रोककर खांसी, श्वास, वमन और प्रतिश्याय उत्पन्न करते हैं। पीत स्नेह, जलपातुकामी और मद्यपातुकामी को शिरो विरेचन देने से मुखस्राव, नासिकास्राव, आंखों में लिहसावट, तिमिर और शिरो रोग उत्पन्न होते हैं। शिरःस्नात वा न्हाये हुए मनुष्य को शिरो विरेचन देने से प्रतिश्याय होता है। क्षुधार्त्त को देने से वायु कोप, तृषार्त्त को देने से तृषाकी वृद्धि और मुखशोष, श्रमार्त्त को देने से तथा मत्त और मूर्च्छित को देने से आस्थापनमें कहे हुए दोष होते हैं। शस्त्राहत और दंडाहत को देने से वेदना तीव्र होती है। व्यवाय और व्यायाम से थके हुओं को देने से सिर, कंधा, नेत्र और वक्षःस्थल में पीडा होती है। नव ज्वर वाले को देने से ज्वर की वृद्धि होती है। शोक पीडित को देने से दोष नेत्रकी नालियों में प्रवेश करके तिमिर रोग को उत्पन्न करते हैं। विरिक्त को देने से वायु कुपित होकर इन्द्रियों को चेष्टाहीन करती है। अनुवासित को देने से कफ बढकर सिर में भारापन, खुजली और क्रिमिरोग उत्पन्न करता है। गर्भिणी को देने से गर्भ बढने से रुकजाता है और काना, कुनख, पक्षाघाती और पांगला होजाता है। नवीन प्रतिश्याय वाले को देने से स्रोत निष्काम होजाते हैं। कुसमय वा दुर्दिन में देने से शीत, पूतिनासिका और

शिरोरोग होते हैं। इस से इन रोगियों को शिरोविरेचन न देवै।

शिरोविरेचन के योग्य रोगी।

शेषाअर्हाः। शिरोदन्तमन्यागलहनुग्रहपीनसगलशुण्डिकाशालूकशुक्रतिमिरवर्त्मरोगव्यंगोपजिह्विकार्धावभेदकग्रीवास्कन्धासास्यनासिकाकर्णाक्षिमूर्धकपालरोगार्दितापतन्त्रकापतानकगलगण्डदन्तशूलहर्षचालाक्षिरागार्बुदस्वरभेदवाग्ग्रहगद्गदकथनादयऊर्द्ध्वजत्रुगतावातादिविकाराः परिपक्वाश्चैतेषुशिरोविरेचनंप्रधानतमामित्युक्तमुस्तुद्ध्युत्तमांगमनुप्रविश्यमज्ञयेषीकासक्तंदोषंविकारकरमपकर्षति

अर्थ—इन से अन्यरोगों में शिरोविरेचन देनाहित है। यथा शिरो रोग, दन्तरोग, मन्यास्तम्भ, गलग्रह, हनुग्रह, पीनस, गलशुण्डिका, शालूक, शुक्र, तिमिर, वर्त्मरोग व्यंग, उपजिह्विका, अर्द्धावभेदक, ग्रीवा रोग, स्कंधरोग, आस्यरोग, नासिकारोग, कर्णरोग, नेत्ररोग, मूर्द्धारोग, कपालरोग, मस्तक रोग, अर्दित, अपतंत्रक, अपतानक, गलगंड, दंतशूल, दन्तहर्ष, दंतचल, अक्षिरोग, अर्वुद, स्वर भेद, वाग्ग्रह, गद्गदता, ऊर्ध्वजत्रुगतरोग, और वातादिरोग इन सब रोगों में शिरोविरेचन प्रधान है। इसकारण से शिरोविरेचन शिर में प्रवेश करके मज्जा और पेशी में स्थित विकार करने वाले दोषों को निकाल देता है।

नस्यकर्म विधि।

प्रावृट्शरद्वसन्तेष्वितरेषुआत्ययिकेषुरोगेषुनावनंकुर्याद्ग्रीष्मेपूर्वाह्णशीतेमध्यान्हेवर्षास्वदुर्दिनेचेति।

अर्थ—वर्षा, शरद और वसन्त ऋतु में नस्यदेवै। यदि कोई आत्ययित रोग उत्पन्न हो जाय तौ ग्रीष्म ऋतु में दुपहरसे पहिले शीतऋतु में दुपहरके समय, और वर्षा में जिस दिन वादल न हो उसदिन नस्य देवै।

अध्यायका उपसंहार।

इतिपंचविधंकर्मविस्तरेणनिदर्शितम्। येभ्योयत्रहितंयस्मात्कर्मयेभ्यश्चयद्धितम्। नचैकान्तेननिर्दिष्टेतत्राभिनिवेशत् बुधः॥ स्वयमप्यत्रवैद्येनतर्क्यंबुद्धिमता भवेत्। उत्पद्येतहिसावस्थादेशकालवलम्भति॥ यस्यांकार्यमकार्यंस्यात्कर्मकार्यञ्चवर्जयेत्। छर्दिहृद्रोगगुल्मार्तेवमनंस्वेचिकित्सिते॥ अवस्थांप्राप्यनिर्दिष्टंकुष्ठिनाम्बस्तिकर्म च। तस्मात्सत्यपि निर्दिष्टेकुर्यादूहंस्वयन्धिया॥ बिनावितर्काद्यासिद्धिर्यदृच्छासिद्धिरेवसा।

अर्थ—इसतरह वमन विरेचनादि पंचकर्म की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीगई है। जिस कारण से जिसके लिये जो हितकारी और जो अहितकारी है उसका भी वर्णन कियागया है। जो ये संपूर्ण नियम वर्णन कियेगये हैं वैद्य को केवल इन्हींपर भरोसा न रखना चाहिये, उसे अपनी बुद्धि भी लगानी चाहिये, यदि किसी नियममें परिवर्त्तन की आवश्यकता दिखाई दे तौ परिवर्त्तन भी करदेवै देश, काल और बलके विषयमें कभी कभी ऐसी दशा होजातीहै

कि उसमें करने योग्य कामअकार्य होजाता है और न करने के योग्य काम अच्छा और करने के योग्यहोजाताहै । वमनरोग, हृद्रोग औरगुल्मरोग में वमन नहीं कराई जाती है पर कभी २ ऐसा होता है कि वमन करानी ही पड़ती है। कुष्ठरोग में वस्ति नहीं दीजाती है परन्तु विशेष अवस्था में इस में भी वस्ति दीजाती है। अतएव यद्यपि सम्पूर्ण नियम वर्णन किये भी गये हैं तौभी अपनी बुद्धि को काम में लाना आवश्यकीय है। अपनी बुद्धि को बिनाकाम में लाये जो कार्य सिद्धि होजाती है। वह यदृच्छा सिद्धि होती है।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां सिद्धिस्थानेपञ्चकर्म्मीयसिद्धिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः ।

अथातोवस्तिसूत्रीयांसिद्धिंव्याख्यास्यामः इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वस्ति सूत्रीय सिद्धिकी व्याख्या करेंगे ।

कृतक्षणंशैलवरस्यरम्ये ।
स्थितंधनेशायतनस्यपार्श्वे ।
महर्षिसंघैर्वृतमग्निवेशः ।
पुनर्वसुम्प्राञ्जलिरन्वपृच्छत् ॥
वस्तिर्नरेभ्यःकिमपेक्ष्यदत्तः ।
स्यात्सिद्धिमान्किम्मयमस्यनेत्रम् ॥
कीदृक्प्रमाणाकृतिकिंगुणश्च ।
केषाञ्चकिंयोनिगुणञ्चवस्तिः ॥
निरूहकर्मप्रणिधानमात्राः ।
स्नेहस्यवाकाःशमनेविधिःकः ॥
केवस्तयःकेषुमताइतीदं ।
श्रुत्वोत्तरंप्राहवचोमहर्षिः ॥

अर्थ—हिमालयके कैलाशनामक रमणीक शिखर पर कुवेर के घरके पासही ऋषियों के समूह से परिवेष्टित पुनर्वसु अवकाश पाकर बैठे हुए थे उस समय अग्निवेशने हाथ जोडकर पूछा कि हे भगवन् ! किस अवस्था में किस तरह से वस्ति का प्रयोग करने पर सफलता हो सकती है। वस्ति नेत्र का प्रमाण क्या है ? वस्ति किस द्रव्य से बनाई जाती है, इसका प्रमाण, आकृति और गुण क्या है ? किस को किस द्रव्य की बनी हुई वस्ति क्या गुण करती है ? निरूहण कर्म की कल्पना क्या है ? अनुवासन की मात्रा कितनी है ? रोगों के शमन करने के निमित्त वस्ति देने के समय कोन सी विधि ग्रहण करनी चाहिये ? किस के लिये कोनसी वस्ति हित कर है ? भगवान् आत्रेय अग्निवेसके इन प्रश्नों को सुनकर कहने लगे ।

अपेक्ष्यदोषौषधदेशकाल ।
सात्म्याग्निसत्त्वौजवयोवलानि ।
वस्तिःप्रयुक्तोनियतंगुणाय ।
स्यात्सर्वकर्माणिचसिद्धिमन्ति ॥
सुवर्णरूप्यत्रपुताम्यरीति ।

कांस्यास्थिशस्त्रद्रुमवेणुदन्तैः ॥
नेत्राणिशृङ्गैर्मणिभिर्नलैश्च ।
सुकर्णिकानिप्रवदन्तितज्ज्ञाः ॥

अर्थ—दोष, औषध, देश, काल, सात्म्य, अग्नि, सत्व, ओज, वय और बल की विशेष रूप से परीक्षा करके बस्ति प्रयोग करने से निश्चयही फलदायक होती है और इस तरह प्रयोग करने से सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि होती है । बस्ति का नेत्र सोना, चांदी, सीसा, तांबा, पीतल, कांसी, हड्डी, लोहा, काठ, बांस, दांत, सींग और मणि वा नल इनमें से किसी एक द्रव्यसे वनसकता है । बस्तिके मुखपर एककर्णिका होनीचाहिये ।

बस्ति का प्रमाण ।

षड्द्वादशाष्टांगुलसम्मितानि ।
षड्विंशतिर्द्वादशवर्षजानाम् ॥
स्युर्मुद्गकर्कन्धुसतीनवाहि ।
छिद्राणिवर्त्यापिहितानिचापि ॥

अर्थ—छः वीस और वारह वर्ष की अवस्था वाले के लिये बस्ति क्रम से छः वारह और आठ अंगुल लम्बी होनी चाहिये और नल के भीतर का छिद्र मूंग, मटर और छोटे झाडी वेर के सदृश क्रम से होना चाहिये । बस्ति के छिद्र में कुछ घुस ने न पावै इस लिये उस के मुख में वत्ती लगी रहनी चाहिये ।

बस्तिकी परिधि का प्रमाण ।

यथावयोऽगुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां ।
मूलाग्रयोःस्युपरिणाहवन्ति ॥
ऋजूनिगोपुच्छसमाकृतीनि ।
श्लक्ष्णानिचस्युर्गुलिकामुखानि ॥
स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्थभागे ।
मूलाश्रितेवर्तिनिवन्धनेद्वे ॥
जरद्गवोमाहिषहारिणोवा ।
स्यात्सौरकोवस्तिरजस्यवापि ॥
दृढस्तनुर्नष्टशिरोविगन्धः ।
कषायरक्तःसुमृदुःसुशुद्धः ॥
नृणांवयोवीक्ष्ययथानुरूपं ।
नेत्रेषुयोज्यस्तुसुबद्धसूत्रः ॥

अर्थ—जितनी अवस्था के मनुष्य को वस्ति देनी होय, उतनीही अवस्था के मनुष्य के अगूंठे की मुटाई के समान वस्ति की नली के नीचे की परिधि होनी चाहिये और मुखकी परिधि कनिष्ठका उंगली की मुटाई के समान होनी चाहिये। वस्ति की नली सीधी, गौ की पूंछके समान आकृति वाली, चिकनी और गोलमुखकी होनी चाहिये । उसी नल के चौथे भागमें मुखकी ओर एक कर्णिका और नीचे की ओर दो कर्णिका होनी चाहिये । वृद्ध बैल, भैंसा, हरिण, अथवा वकरे की वस्ति(मूत्राशय) लाकर एक चौंगा वनवावै । यह वहुत दृढ, शिराहीन, गन्धरहित, कषाय वर्ण से रंगा हुआ, मृदु और शुद्ध होनी चाहिये । रोगी की अवस्था का विचार करके वस्तिपुट छोटा वा वडा होना चाहिये और यह पुटक वल के साथ डोर से अच्छी तरह बांध देना चाहिये ।

वस्तेरभावेप्लवजोगलोवा ।
स्यादंकपादःसुघनःपटोवा ॥

अर्थ—यदि वृषादिक की वस्ति उपलब्ध न हो तो मेंडकआदि के चमड़े की वस्ति बनावै अथवा चौपाये पशुओंके पेट के भीतर का चमड़ा ग्रहण कर के बनावै और जो कुछ भी न होसके तो गाढ कपड़े सेही काम चलालेवै ॥

आस्थापनार्हंपुरुषंविधिज्ञः ।
समीक्ष्यपुण्येऽहनिशुक्लपक्षे ॥
प्रशस्तनक्षत्रमुहूर्तयोगे ।
जीर्णान्नमेकाग्रमुपक्रमेत ॥

अर्थ—आस्थापन के योग्य रोगी को अन्न पचने के पीछे शुक्लपक्ष में शुभदिन नक्षत्र, मुहूर्त्त और योग देखकर सावधानी से आस्थापन देवै ॥

बलांगुडूचींत्रिफलांसरास्नां ।
द्वेपञ्चमूलेचपलोन्मितानि ॥
अष्टौपलान्यर्द्धतुलांचमांसा ।
च्छागानपचेदप्सुचतुर्थशेषम् ॥
पूतंयवानीफलाबिल्वकुष्ठ ।
वचाशताह्वाघनपिप्पलीनाम् ॥
कल्कैर्गुडक्षौद्रघृतैःसतैलै ।
र्युतंसुखोष्णंतुपिचुप्रमाणैः ॥
गुडात्पलंद्विप्रसृतान्तुमात्रां ।
स्नेहस्ययुक्त्यामधुसैन्धवादि ॥
प्रक्षिप्यवस्तौमथितंखजेन ।
सुबद्धमुच्छ्वास्यचनिर्व्यलीकं ॥
अंगुष्ठमध्येनमुखंनिधाय ।
नेत्राग्रसंस्थामपनीयवर्त्तिम् ॥
तैलाक्तगात्रंकृतमूत्रविट्कं ।
नातिक्षुधार्तंशयनेमनुष्यम् ॥
समेऽथवेषन्नतशीरसेवा ।
नात्युच्छ्रितेस्वास्तरणोपपन्ने ॥
सव्येनपार्श्वेनसुखंशयानं ।
कृत्वर्जुदेहंस्वभुजोपधानम् ॥
निकुञ्च्यसव्येतरमस्यसक्थि ।
वामंप्रसार्यप्रणयेत्ततस्तं ॥
स्निग्धेगुदेनेत्रचतुर्थभागं ।
स्विन्नंशनैर्ऋज्ववनुपृष्ठवंशं ॥
अकम्पनावेपनलाघवादीन् ।
पाण्योर्गुणांश्चापिविदर्शयन्हि ॥
प्रपीड्यचैकग्रहणेनदत्ते ।
नेत्रंशनैरेवततोऽपकर्षेत् ॥

अर्थ—खरैटी, गिलोय, त्रिफला, रास्ना दोनों, पंचमूल, ये सब एक एक पल, बकरे का मांस आधीतुला और आठ पल, इन को अठगुने जल में पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार ले और छान ले, इस क्काथ में अजवायन, मेनफल, बेल, कूठ, वच, सौंफ, नागरमोथा, पीपल, इन सबका कल्क दो दो तोले, गुड एक पल, तेल और घी दो प्रसृत तथा युक्ति पूर्वक शहत और सेंधानमक मिलाकर अच्छी तरह से मथै जिस से सब मिलकर एक होजाय पीछे वस्ति को बांये हाथ में पकड़कर उस में ये सब द्रव्य डाल देवै और अच्छी तरह से बांध देवै, पीछे अंगूठे के बीच में वस्ति का मुख कर के उस से वत्ती को दूर करदेवै। फिर रोगी के शरीर में तेल लगावै और विष्टा और मूत्र का परित्याग कराके थोड़ा भूखा रक्खै। इस मनुष्य को

सा भूमि पर अथवा सिरकी ओर कुछ झुकी हुई भूमिपर शयन करादे । रोगीकी शय्या वहुत ऊंची न हो और उसपर कोमल विछौने भी बिछेहुये हों । रोगी को बाई करवट से इसतरह लिटावै कि देह सीधी रहै और बांयां हाथ उस के सिर के नीचे तकिये की जगह लगा देवै । इस मनुष्य की दाहिनी सक्थि सुकड़वाकर बाई को पसरवा देवै । पीछे गुदा पर चिकनाई लगाकर और वस्ति के चतुर्थ भागपर चिकनाई लगाकर गुदा में धीरे २ प्रवेश करै वस्तिका मुख गुदा में पीठ के बांसे की ओर होना चाये । वस्ति को प्रवेश करते समय दोनों हाथ स्थिर रहे, कांपने न पावें और हाथ में हलकापनभी रहै । फिर वस्ति द्रव्यको गुदामें धीरे २ प्रवेशित करै । पीछे वस्ति केनल को धीरे धीरे निकाल लेवै ॥

तिर्यक्प्रणीतेतुनयातिधारा ।
गुदेव्रणःस्वाञ्चलितेचनेत्रे ॥
दत्तःशनैर्नाशयमेतिवस्तिः ।
कण्ठंप्रधावत्यतिपीडितश्च ॥

अर्थ—यदि वस्ति का नल गुदामें तिरछा जाय तौ औषध की धारा अंत्र के वीच में प्रवेश न करसकैगी, और जो वस्तिमुख गुदा में जाकर इधर विधर हटजायगा तौ गुदा के भीतर व्रण होजायगा । जो वस्ति बहुतही धीरे प्रवेशकी जायगी वह पक्काशय के ठीक स्थानपर न पहुंच सकैगी तथा जो वहुत वेग से चलाई जायगी तौ वस्तिका द्रव्य कंठतक पहुंचैगा ॥

भिन्न २ वस्तियोंके गुणभेद ।

शीतस्त्वतिस्तम्भकरोविदाहं ।
मूर्च्छाञ्चकुर्यादतिमात्रमुष्णः ॥
स्निग्धोऽतिजाड्यपवनन्तुरूक्ष ।
स्तन्वल्पमात्रालवणस्त्वयोगं ॥
करोतिमात्राभ्यधिकोऽतियोगं ।
क्षामन्तुसान्द्रःसुचिरेणचैति ॥
दाहातिसारौलवणोऽतिकुर्या ।
त्तस्मात्सुयुक्तंसममेवदद्यात् ॥

अर्थ—अतिशीतलवस्ति देह में स्तम्भता करती है, अत्यन्त उष्णवस्ति दाह और मूर्च्छा उत्पन्न करतीहै ।अत्यन्त स्निग्ध वस्ति जड़ता करतीहै,इसीतरह अत्यन्त रूक्षवस्ति वायु को कुपित करती है । अत्यन्त कम नमक वाली वस्ति का अयोग होता है वस्ति की मात्रा अधिक होने पर अतियोग होता है । हीनमात्रा वाली वा घन वस्ति देर में प्रत्यागमन करती है । अत्यन्त नमक युक्त वस्ति दाह और अतिसार उत्पन्न करती है, इस लिये वस्ति में नमक युक्ति पूर्वक मिलाना चाहिये ।

पूर्वंहियोज्यंमधुसैन्धवन्तु ।
स्नेहंविनिर्मथ्यततोऽनुकल्कम् ॥
विमथ्यसंयोज्यपुनर्द्रवैस्तद् ।
वस्तौनिदध्यान्मथितंखजेन ॥

अर्थ—प्रथमही शहत, सेंधानमक और स्नेह मिलाकर मथै, पीछे उस में कल्क मिलाकर रई से मथ कर इस में पतलाद्रव्य मिलाकर वस्ति में भरै ।

वामपार्श्व से वस्ति प्रणिधान का कारण ।

आमाशयोऽग्निर्ग्रहणीगुदश्च ।
तत्पार्श्वसंस्थस्यसुखोपलब्धिः ॥
लीयन्तएवंवलयश्चतस्मा ।
त्सव्यंशयानोऽर्हतिवस्तिदानम् ॥

अर्थ—आमाशय, अग्नि, ग्रहणी, और स्थूल अंत्रका शेष भाग मनुष्य के वामभाग में होता है और गुदाकी तीनों अवली भी वाईं ओर को लीन होती हैं,इस लिये वाईं करवट लिवाकर वस्ति का प्रयोग करने से वस्ति विना रुकावट गमन करती है। इस से वाईं करवट शयन कराके वस्ति देना ठीक है ।

विड्वातवेगौयदिचार्द्धदत्ते ।
निष्कृष्यमुक्तेप्रणयेदशेषम् ॥

अर्थ—यदि अधिक वस्ति के प्रवेश होनेपरमल और अधोवायुका वेगहो तो वस्ति को निकालकर मल और अधोवायुका त्याग-कराके फिरसम्पूर्ण वस्ति को प्रवेश करै ।

उत्तानदेहश्चकृतोपधानः ।
स्याद्वीर्यमाप्नोतितथास्यदेहम् ॥
एकोऽपकर्षत्यनिलंस्वमार्गा ।
त्पित्तंद्वितीयस्तुकफंतृतीयः ॥
प्रत्यागतेकोष्णजलावसिक्तः ।
शाल्यन्नमद्यात्तनुनारसेन ॥
जीर्णेतुसायंलघुचाल्पमात्रं ।
भुक्तेऽनुवास्यःपरिबृंहणार्थम् ॥

अर्थ—वस्ति प्रयोग के पीछे तकिया लगाकर रोगी को चित्त शयन करा देवै जिस से औषध का वीर्य रोगी के शरीर में पहुंचै ।

प्रथम वस्ति से वायु, दूसरी से, पित्त और तीसरी से कफ स्वमार्ग होकर वाहर निकलते हैं। वस्ति के प्रत्यागत होने पर कुछ गरम जलसे शरीर को सिक्तकर के पतले मांसरस के साथ शाली चांवलों का भात देवै । इस आहार के पचने पर सायंकाल के समय लघु अन्न का थोडासा भोजन करावै। फिर वृंहण के लिये अनुवासन वस्ति देवै ।

निरूहपादांशसमेनतैले ।
नाम्लानिलघ्वौषधसाधितेन ॥
दत्त्वास्फिजौपाणितलेनहन्यात् ।
स्नेहस्यशीघ्रागमरक्षणार्थं ॥
ईषत्पदांगुष्ठयुगश्चकर्षे ।
दुत्तानदेहस्यतलौप्रमृज्यात् ॥
स्नेहेनपार्ष्ण्यंगुलिपिण्डिकाश्च ।
येचास्यगात्रावयवारुगार्ताः ॥
तांश्चावमृज्यात्सुसुखंततश्च ।
निद्रामुपासीतकृतोपधानः ॥

अर्थ—निरूहकी मात्रासे चौथाई तेल अनुवासन में दिया जाता है,यह तेल कांजी और लघु औषध द्वारा सिद्ध किया जाता है । तेल शीघ्रही वाहर न आजाय इस लिये हथेलियों से चूतडों को धीरै धीरै कूटता रहै । दोनों पांवों के दोनों अंगूठों को कुछ खींचै । तथा चित्त शयन कराके पगतलियों को धीरे धीरै मलता रहै । एडी, उंगली दोनों पिंडली और पीडित अंगावयवों को तेल से मसलता रहै, जब उसको कुछ चैन सा होने लागै तब सिरके नीचे तकिया

लगा दे जिस से सुखपूर्वक निद्रा आजाय ॥

निरूहण द्रव्यका प्रमाण ।

भागाःकषायस्यतुपञ्चपित्ते ।
स्नेहस्यषष्ठःप्रकृतौस्थितेच ॥
वातेविवृद्धेतुचतुर्थभागो ।
तथानिरूहेषुकफेऽष्टभागः ॥

अर्थ—पैत्तिकरोगमें यदि वायु प्रकृतिस्थहोतौ पांचभाग क्वाथ और छटाभाग स्नेहका लेवै । यदि वायु बढ़ी हुई हो तौ कषायसे चौथाई तेल देवै और कफमें निरूहण दैनी होय तौ आठवां भाग तेल डालना चाहिये ।

निरूहमात्राप्रसृतार्द्धमाद्ये ।
वर्षेततोऽर्द्धप्रसृताभिवृद्धिः ॥
आद्वादशात्स्यात्प्रसृताभिवृद्धि ।
रष्टादशाद्द्वादशतःपरंस्युः ॥
आसप्ततेस्तद्विहितंप्रमाणं ।
वालेचवृद्धेचमृदुर्विशेषः ॥

अर्थ—एकवर्षके वालकके लिये निरूहकी मात्रा एक पलहै, उससे आगे प्रतिवर्ष एक एक पलमात्रा अधिक बढानी चाहिये । इसतरह वारहवर्षकी अवस्थातक यही क्रम रक्खै । वारहवर्ष की अवस्थासे अठारहवर्ष की अवस्थातक प्रतिवर्ष दो २ पल बढावै। फिर अठारह वर्ष से सत्तरवर्षकी अवस्था तक यही प्रमाण होना चाहिये । बालक और वृद्ध के पक्ष में मृदु वस्तिका ध्यान रखना चाहिये । (किसी २ पुस्तक में ऐसा पाठभी है कि "अतःपरंषोडशवाद्धिधेयम्" यहां से आगे सोलह वर्षकी अवस्था तक जो प्रमाण होता है वह होना चाहिये अर्थात् २० पलकी वस्ति सत्तर से ऊपर की अवस्था में देवै ।

शयनका नियम ।

नात्युच्छ्रितंनात्यतिनीचपादं ।
सपादपीठंशयनंप्रशस्तं ॥
प्रधानमृद्वास्तरणोपपन्नं ।
प्राक्छिरसंशुक्लपटोत्तरीयम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यको वस्ति दीगई हो उस के पलंग के पाये न बहुत ऊंचे और न बहुत नीचे होने चाहिंये । पांव रखने के लिये उन के नीचेभी तकिये होने चाहियें । पलंग पर वहुत कोमल बिछौने बिछावै, खाट का सिरहाना पूर्वकी ओर रक्खै । ओढने बिछानेके कपडे सफेद होवै।

भोजनादि नियम ।

भोज्यंपुनर्व्याधिमपेक्ष्यतत्तत् ।
प्रकल्पयेद्यूषपयोरसाद्यैः ॥
सर्वेषुविद्याद्विधिमेतदाद्यं ।
वक्ष्यामिवस्तीनतउत्तरीयान् ॥

अर्थ—वस्ति देने के पीछे व्याधि के अनुसार दूध, यूष और मांसरसादिक द्वारा भोजन वनाकर देवै । सब प्रकारकी वस्तियोंमें प्रथम नियम भोजन का यही है। अब अन्य वस्तियों का वर्णन करते हैं ।

वातनाशकनिरूहणप्रयोग ।

द्विपञ्चमूलस्यरसोऽम्लयुक्तः ।
सच्छागमांसस्यसपूर्वपेष्यः ॥
त्रिस्नेहयुक्तःप्रवरोनिरूहः ।
सर्वानिलव्याधिहरःप्रदिष्टः ॥

अर्थ—बकरे का मांस और दशमूल इन को अठगुने जल में सिद्ध कर के चौथाई शेष रहने पर छानले तीनभाग यह क्राथ और एक भाग तेल मिलाकर कुछ कांजी डालकर मिलाले । यह निरूहण प्रयोग सब प्रकारके वातरोगोंके दूर करने में बहुत उत्तम है ॥

स्थिराद्यवर्गस्यबलापटोल ।
त्रायन्तिकैरण्डयवैर्युतस्य ॥
प्रस्थोरसश्छागरसार्धयुक्तः ।
साध्यःपरःप्रस्थरसश्चयावत् ॥
प्रियंगुकृष्णाघनकल्कयुक्तः ।
सतैलसर्पिर्मधुसैन्धवश्च ॥
स्याद्दीपनोमांसबलप्रदश्च ।
चक्षुर्बलंचापिददातिवस्तिः ॥

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूल, खरैट, परवल, त्रायमाणा, अरंडकी जड़ और जौ इन को अठगुने जल में सिद्ध कर के चौथाई शेष रहने पर छानले । यह क्राथ चारसेर बकरे का मांसरस दो सेर मिलाकर पाक कर जब दो सेर बच रहै, तव प्रियंगु, पीपल और मोथा इनका कल्क तथा तेल घी शहत और सेंधानमक मिलाकर अच्छी तरह से मथडाले । यह निरूहण वस्ति दीपन मांसबर्द्धक वलकारक और नेत्रों में वल की बढानेवाली है ।

एरण्डमूलात्त्रिपलंपलानि ।
ह्रस्वानिमूलानिचयानिपञ्च ॥
रास्नाश्वगन्धाथबलागुडूची ।
पुनर्नवारग्वधदेवदारु ॥
भागाःपलांशामदनाष्टयुक्ता ।
जलद्विकंसक्वथितेऽष्टशेषे ॥
पेष्यंशताह्वाहपुषाप्रियंगु ।
सपिप्पलींकंमधुकम्वचाच ॥
रसाञ्जनंवत्सकबीजमुस्तं ।
भागाक्षमात्रंलवणांशयुक्तम् ॥
समाक्षिकस्तैलयुतःसमूत्रे ।
वस्तिर्नृणांदीपनलेखनीयः ॥

अर्थ—अरंडकी जड़ तीन पल, लघु पंचमूल एक एक पल, रास्ना, असगंध, खरैटी गिलोय, पुनर्नवा, अमलतास, देवदारु, ये सव एक एक पल, मेनफल आठ पल, इन सब को दो कंस जल में सिद्ध करके आठवां भाग रहने पर क्वाथ को छान लेवै फिर इस में सोंफ, हाऊबेर, प्रियंगु, पीपल, मुलहटी, वच, रसौत, इन्द्र जौ और मोथा दो दो तोले सेंधानमक दो तोले तथा शहत, तेल और गोमूत्र मिलाकर वस्ति देवै। यह वस्ति दीपनीय और लेखनीय होती है ।

अरंडतेल की वस्ति के गुण ।

जंघोरुपादत्रिकपृष्ठशूलं ।
कफावृतिंमारुतनिग्रहंच ॥
विण्मूत्रवातग्रहणंसशूलं ।
आध्मानतामश्मरिशर्करंच ॥
आनाहमर्शोग्रहणीप्रदोषा ।
नेरण्डवस्तिःशमयेत्प्रयुक्तः ॥

अर्थ—अरंड के तेल की वस्ति देने से जंघा, ऊरू, पांव, त्रिक और पीठ का दर्द मिटजाता है । यह कफावृत वायुको नष्ट कर देती है । मल, मूत्र और अधोवायु का

शूलयुक्त विवन्ध दूर होजाता है। आध्मान अश्मरी और शर्करा दूर हो जाती है। इसी तरह आनाह, अर्श और ग्रहणी दोष दूर होजाते हैं।

चतुष्पलेतैलघृतस्यभृष्ट।
छागाच्छतार्धोदधिदाडिमाम्लः॥
रसःसपेष्योबलवर्णमांस।
रेतोग्निदैतमिर्यशिरोर्तिशस्तः॥

अर्थ—बकरे का मांस पचास पल अठगुने जल में पकाकर चौथाई शेष रहने पर रस को छान ले। इस मांसरस को दही और अनार रसकी खटाई डालकर दो पल तेल और दो पल घी में तलकर इस में सेंधानमक और मेनफल डालकर निरूहण देवै। इस से वल, वर्ण और मांसकी वृद्धि होती है। वीर्य और अग्नि की वृद्धि होती है। तिमिर रोग और शिरः पीडा भी दूर होजाती है।

जलद्विकंसेष्टपलंपलाशान्।
पक्त्वारसोऽर्धाढकमात्रशेषः॥
कल्कैर्वचामागधिकापलाभ्यां।
युक्तःशताह्वाद्विपलेनचापि॥
ससैन्धवक्षौद्रयुतःसतैलो।
देयोनिरूहोबलवर्णकारी॥
आनाहपार्श्वामययोनिदोषान्।
गुल्मानुदावर्तरुजंचहन्यात्॥

अर्थ—आठ पल ढाककी छाल दो कंस जल में पाक करके आधा शेष रहने पर छान लेवै पीछे बच और पीपल एक एक पल, सौंफ दो पल, सेंधानमक शहत और तेल मिलाकर निरूहण वस्तिदेवै। इससे बल, वर्ण वढ़ताहै। आनाह, पार्श्वशूल, योनिदोष, गुल्म, उदावर्त्त और वेदना ये सब शान्त होजाते हैं।

यष्ट्याह्वयस्याष्टपलेनसिद्धं।
पयःशताह्वाफलपिप्पलीभिः॥
युक्तंससर्पिर्मधुवातरक्त।
वैस्वर्यवीसर्पहतोनिरूहः॥

अर्थ—आठ पल मुलहटी, अठ गुना दूध और दूधसे चौगुना जल डालकर पकावै। जब दूध शेष रहजाय तब इसमें सोंफ, मेनफल, पीपल, शहत और घी मिलाकर निरूहवस्ति देवै। यह वस्ति वातरक्त, स्वरभंगता और विसर्प को दूर कर देती है।

पित्तरोगनाशकनिरूहवस्ति।

यष्ट्याह्वलोध्राभयचन्दनैश्च।
शृतंपयोग्र्यूंकमलोत्पलैश्च॥
सशर्कराक्षौद्रयुतैःसुशीतः।
पित्तामयानहन्तिसजीवनीयः॥

अर्थ—मुलहटी, लोध, हरड, रक्तचन्दन, कमल और नीलोफर इनको डालकर दूध पकावै ठंडा होने पर जीवनीय गण का कल्क, चीनी और शहत डालकर पान करै तो पित्तरोग दूर होजाते हैं।

पित्तरोगनाशकअन्यविधि।

द्विकार्षिकाश्चन्दनपद्मकर्द्धि।
यष्ट्याह्वरास्नावृषशारिवाश्च॥
मलोध्रमञ्जिष्ठबलायवाशाः।
स्थिराशरादिद्वयपञ्चमूलम्॥

निःक्वाथ्यतोयेनरसेनतेन ।
शृतंपयोऽर्द्धाढकमम्बुहीनम् ॥
जीवन्तिमेदर्द्धिशतावरीभिः
वीराद्विकाकोलिशतावरीभिः ॥
सितोपलाजीवकपद्मरेणु ।
मपुण्डरीकैःकमलोत्पलैश्च ॥
लोध्रात्मगुप्तामधुकैर्विदारी ।
मूञ्जातकैःकेशरचन्दनैश्च ॥
पिष्टैर्घृतक्षौद्रयुतैर्निरूहं ।
ससैन्धवंशीतलमेवदद्यात् ॥
प्रत्यागतेधन्वरसेनशालीन् ।
क्षीरेणवाद्यात्परिषिक्तगात्रः ॥
दाहातिसारप्रदरास्रपित्त ।
हृतपाण्डुरोगान्विषमज्वरंच ॥
सगुल्ममूत्रग्रहकामलादीन् ।
सर्वामयान्पित्तकृतान्निहन्ति ॥

अर्थ—रक्तचन्दन, पद्माख, ऋद्धि, मुलहटी, रास्ना, अडूसा, अनन्तमूल, लोध, मजीठ, खरैटी, जवासा, शालिपर्ण्यादि पंचमूल, तृणपंचमूल इनसब द्रव्योंको दो दो कर्ष लेकर अठगुने जलमें क्वाथकरै, चौथाई शेष रहने पर छान ले, फिर इस क्वाथके साथ आधा आढक दूध पकावै जब जलते जलते दूध शेष रहजाय तब नीचे लिखे हुए जीवन्त्यादि द्रव्योंका कल्क, घी, शहत, और सेंधानमक डालकर ठंडा कर के निरूहण वस्ति देवै। जीवन्त्यादिद्रव्य यथा जीवन्ती, मेदा, ऋद्धि, शतावर, वृहत्सतावर, काकोली, क्षीरकाकोली, सितावर, मिश्री, जीवक, पद्मरेणु, पुंडरियाकाठ, कमल, नीलोफर, लोध, केंचकेबीज, मुलहटी, विदारीकन्द, मूज, केसर, चन्दन इन सब द्रव्यों को पीसकर उसमें डाल देवै। वस्तिके प्रत्यागत होने पर कुछ गरम जलसे देह धोकर जांगल मांसरस वा दूधके साथ शाली चांवलोंका भोजनकरै। इस वस्तिसे दाह, अतिसार, प्रदर, रक्तपित्त, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विषमज्वर, गुल्म, मूत्रग्रह, विबन्ध, तथा कामलादिक सम्पूर्ण प्रकारकी पित्त व्याधियां शान्त होजाती हैं।

द्राक्षादिकाश्मर्यमधूकसेव्यैः।
सशारिवाचन्दनशीतपाक्यैः ॥
पयःशृतंश्रावणिमुद्गपर्णी ।
तुगात्मगुप्तामधुयष्टिकल्कैः ॥
गोधूमचूर्णैश्चतथाक्षमात्रैः ।
सक्षौद्रसर्पिर्मधुयष्टितैलैः ॥
पथ्याविदारीक्षुरसैर्गुडेन ।
वस्तिंयुतंपित्तहरंविदध्यात् ॥
हृत्नाभिपार्श्वोत्तमदेहदाहे ।
दाहेऽन्तरस्थेचसकृच्छ्रमूत्रे ॥
क्षीणेक्षतेरेतसिचापिनष्टे ।
पैत्तेऽतिसारेचनृणांप्रशस्तः ॥

अर्थ—द्राक्षादि द्रव्य, खंभारी, महुआ, उसीर, शारिवा, रक्तचंदन, और खरैटी इनके कल्क में चौगुना जल और अठगुना दूध डालकर औटावै जब दूध शेष रहजाय तब उसमें श्रावणी, मुद्गपर्णी, केंचके बीज, मुलहटी, का कल्क मिलादेवै। फिर इसमें दोतोले गेंहू का चूर्ण, शहत, घी, मुलहटी कातेल, हरड़, बिदारीकन्द, ईख का रस

और गुड़ मिलादेवै। यह वस्ति पित्तनाशक होतीहै। इससे हृदय, नाभि, पसली और मस्तक का दाह, अन्तरस्थ दाह, मूत्रकृच्छ्र कीजलन, क्षीणक्षत रोग, नष्टशुक्ररोग, और पित्तज अतिसार दूर होजाते हैं।

कफनाशकवस्ति।

कोशातकारग्वधदेवदारु।
शार्ङ्गष्टमूर्वाकुटजार्कपाठाः॥
पक्वाकुलत्थान्बृहतींचतोये।
रसस्यतस्यप्रसृतादशस्युः॥
तांसर्षपैलामदनैःसकुष्ठै।
रक्षप्रमाणैःप्रसृतैश्चयुक्तान्॥
फलाह्वतैलस्यसमाक्षिकस्य॥
क्षारस्यतैलस्यचसार्षपस्य॥
दद्यान्निरूहंकफरोगिणेऽज्ञो।
मन्दाग्नयेचाप्यशताद्विषेच॥

अर्थ—कोशातकी, अमलतास, देवदारु, मरोड़फली, शार्ङ्गष्टा,कुड़ा की छाल,आक, पाठा, कुलथी और बड़ी कटेरी इनको अठगुने जलमें पकावै जब इसमें से दस प्रसृत रहजाय तब क्काथ को निकाल ले फिर इसमें सरसों, इलायची, मेनफल और कूठ इनसब द्रव्यों का दोदोपल कल्क, मेनफल का तेल दोपल, शहतदोपल,जवाखार दोपल और सरसोंकातेल दोपल मिलाकर निरूहण वस्ति देवै। इससे कफजन्यरोग, मन्दाग्नि और अन्नमें अरुचि होना ये सब मिट जाते हैं।

पटोलपथ्यामरदारुभिर्वा।
सपिप्पलीकैःक्वथितैर्जलाख्यैः॥

अर्थ—परवल, हरड़, देवदारु और पीपल इनका क्काथ पान कराने से भी उक्तरोग दूर होजाते हैं।

द्विपञ्चमूलेत्रिफलासविल्वा।
फलानिगोमूत्रयुतःकषायः।
कलिङ्गपाठाफलमुस्तकल्का।
ससैन्धवःक्षारमधुःसतैलः॥
निरूहमुख्यःकफजान्विकारान्।
सपाण्डुरोगालसकामदोषान्॥

अर्थ—दोनों पंचमूल, त्रिफला, वेलगिरी और मेनफल इनका अठगुने जल में क्काथ करले। फिर इस क्काथ में गोमूत्र, इन्द्रजौ, पाठा, मेनफल और मोथा का कल्क,सेंधानमक, जवाखार, शहत और तेल मिलाकर निरूहण देने से कफरोग, पांडुरोग, अलसक और आमदोष दूर होजाते हैं।

वायुनाशक वस्ति।

रास्नामृतैरण्डविडङ्गदारु।
सप्तच्छदोशीरसुराह्वनिम्बैः॥
श्यामाकभूनिम्बपटोलपाठा।
तिक्ताखुपर्णीदशमूलमुस्तैः॥
त्रायन्तिकाशिग्रुफलत्रिकैश्च।
क्काथःसपिण्डीतकतोयमूत्रः॥
यष्ट्याह्वकृष्णाफलिनीशताह्वा।
रसाञ्जनस्वेतवचाविडङ्गैः॥
कलिङ्गपाठाम्बुदसैन्धवश्च।
कल्कैःससर्पिर्मधुतैलमिश्रः॥
अयंनिरूहःक्रिमिकुष्ठमेह।
ब्रन्धोदराजीर्णकफातुरेभ्यः॥
रूक्षौषधैरत्यपितर्पितेभ्यः।

एतेषुरोगेष्वपिसत्सुदत्तः ॥
निहत्यवातंज्वलनंप्रदीप्य ।
विजित्यरोगांश्चवलंकरोति ॥
हन्यात्तथामारुतमूत्रसङ्गम् ।
वस्तेस्तथाटोपमथापिघोरम् ॥

अर्थ—रास्ना, गिलोय, अरंड की जड वायविडंग, देवदारु,सप्तच्छद, खस,देवदारु नीम की छाल, सोंखिया, चिरायता,परवल, पाठा, कुटकी, मूषकपर्णी, दशमूल, मोथा, त्रायन्त्री, संहजना और त्रिफला इन को अठगुने जल में चढादे, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छान ले। फिर इस क्काथ में मेनफल का क्काथ, गोमूत्र, मुलहटी,पीपल, प्रियंगु सोंफ, रसौत, सफेद वच,वायविडंग, इन्द्रजौ, पाठा, मोथा और सेंधानमक इन का कल्क तथा घी, शहत और तेल मिला देवै। यह निरूह वस्ति क्रिमिरोग, कुष्ठ, प्रमेह, ब्रध्न, उदररोग, अजीर्ण और कफको दूर करती है। जो रूक्ष औषधों के सेवन से अपतर्पित हुआ हो, उसको भी उपयोगी होती है। इससे वायु नष्ट होती है, जठराग्नि वढती है, यह रोगों को दूर करके देह में वल बढाती है, अधोवायु और मूत्र के विवन्ध को दूर करके वस्ति के घोर आटोप को भी दूर करता है।

पुनर्नवैरण्डवृषाश्मभेद ।
वृश्चीवभूतीकवलापलाशाः ॥
द्विपञ्चमूलञ्चपलांशिकानि ।
क्षुण्णानिधौतानिपलानिचाष्टौ ॥
विल्वंयवानकोलकुलत्थधान्यं ।
फलानिचैवप्रसृतोन्मितानि ॥
पयोजलद्व्याढकयोःशृतंतत् ।
क्षीरावशेषंसितवस्त्रपूतम् ॥
वचाशताह्वामरदारुकुष्ठ ।
यष्ट्याह्वसिद्धार्थकपिप्पलीनाम् ॥
कल्कैर्यवान्यामदनैश्चयुक्तं ।
नात्युष्णशीतंगुडसैन्धवाक्तम् ॥
क्षौद्रस्यतैलस्यचसार्पिषश्च ।
तथैवयुक्तंप्रसृतंत्रिभिश्च ॥
दद्यान्निरूहंविधिनाविधिज्ञः ।
ससर्वसंसर्गकृतामयघ्नः ॥

अर्थ—सांठ, अरंड की जड, अडूसा, पाखान भेद,सफेद सांठ, अजवायन, खरैटी, ढाक, दसमूल, ये सव एक एक पल, वेलगिरी आठ पल, तथा जौ, वेर, कुलथी, धनियां और मेनफल पृथक् २ दो दो पल अच्छी तरह कूटकर धोकर एक आढक जल और एक आढक दूध में सिद्ध करके दूध शेष रहने पर सफेद वस्त्र में छान ले फिर उसी दूध में वच, सोंफ, देवदारु,कूठ मुलहटी, सरसों, पीपल, अजवायन और मेनफल का कल्क, गुड, सेंधानमक, शहत दो पल, दो पल तेल, और दो पल घी मिलाकर न वहुत गरम, न वहुत ठंडा कर के निरूहण देवै। यह वस्ति द्वन्द्वज रोगों को दूर करती है।

स्निग्धोष्णएकःपवनेसमानौ ।
द्वौस्वादुशीतौपयसाचपित्ते ॥
त्रयःसमूत्राःकटुकोष्णतीक्ष्णाः ॥
कफेनिरूहानपरंविधेयाः ॥

रसेनवातेप्रतिभोजनंस्यात् ।
क्षीरेणपित्तेतुकफेचयूषैः ॥
तथानुवासेषुचबिल्वतैलं ।
स्याज्जीवनीयंफलसाधितंच ॥

अर्थ—वातज व्याधि में एक समय में एक स्निग्धोष्ण निरूहण वस्ति देवै। पित्तज व्याधि में दूध के साथ स्वादु और शीतल दो वस्ति एक साथ देवै। कफ व्याधि में गोमूत्र के साथ कटु, उष्ण और तीक्ष्ण तीन वस्ति एक समय में देवै।

वायुरोग में निरूह देने के पीछे मांसरस पित्त में दूध और कफ में यूष के साथ पथ्य देवै। इन सब रोगों में अनुवासन देने के निमित्त वायुरोग में बिल्वतैल, पित्तरोग में जीवनीय गण से सिद्ध किया हुआ तेल और कफरोग में मैनफलादि से सिद्ध किया हुआ तेल देना चाहिये।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

इतीदमुक्तंनिखिलंयथाव ।
द्वस्तिप्रदानस्यविधानमग्र्यम् ॥
योऽधीत्यविद्वानिहवस्तिकर्म ।
करोतिलोकेलभतेससिद्धिम् ॥

अर्थ—इस तरह इस अध्याय में वस्ति देने की युक्तियां यथावत् वर्णन की गई हैं, जो विद्वान् इन को सोच समझकर वस्ति कर्म करने में प्रवृत्त होता है वह संसार में सिद्धि पाता है।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां सिद्धिस्थानेवास्तिसूत्रीयसिद्धिर्नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः।

अथातःस्नेहव्यापादिकांसिद्धिंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम स्नेह व्यापादिका सिद्धि की व्याख्या करेंगे।

स्नेहवस्तीन्निबोधेमानवातपित्तकफापहान्। मिथ्याप्रणिहितानाञ्चव्यापदःसचिकित्सिताः ॥

अर्थ—अबहम वात,पित्त और कफको दूर करने वाली स्नेह वस्तियों का वर्णन करतेहैं। इन वस्तियों के मिथ्या प्रयोग से जो २ दुर्घटना होती हैं,उनका और उनकी चिकित्साओं का वर्णनभी करेंगे।

वातनाशक अनुवासनविधि।

दशमूलंबलांरास्नामश्वगन्धांपुनर्नवाम्। गुडूच्येरण्डभूतीकभार्गीवृषकरोहिषम् ॥ शतावरींसहचरंकाकनासांपलांशिकम्। यवमाषातसीकोलकुलत्थान्प्रसृतोन्मितान् ॥ चतुर्द्रोणेऽम्भसःपक्त्वाद्रोणशेषेण तेनच। पचेत्तैलाढकंक्षीरेजीवनीयैःपलोन्मितैः ॥ अनुवासनमेतद्धिसर्ववातविकारनुत्।

अर्थ—दसमूल, खरैटी, रास्ना, असगंध, सांठ, गिलोय, अरंडकीजड़, अजवायन, भाडंगी, अडूसा, रोहिषतृण, सितावर, सहचरी, कौआटोंटी, ये सब एक२पल, जौ, उरद,अलसी,वेर,कुलथी प्रत्येक दो २ पल इन सबको चारद्रोण जलमें पकावै।पकते२ जब एक द्रोण रहजाय तब उसे छानले

फिरउस क्वाथमें एकआढकदूध ,एक आढक तेलऔर एक२पल जीवनीय गणके द्रव्योंका कल्क मिलाकर पकावै । इस तेलके अनुवासन वस्ति देनेसे सब प्रकारकी वात व्याधियां दूर हो जातीहैं ।

वसाप्रयोग ।

आनूपानांवसातद्वज्जीवनीयोपसाधिता ॥

अर्थ—उक्त दस मूलादि द्रव्यों के क्वाथ में दूध, जीवनीय गणोक्त द्रव्योंका कल्क और तेलके बदलेमें एक आढक आनूप जीवों की चर्वी पका कर अनूवासन देनेसे भी वात रोग दूर होते हैं ।

अन्यतैल ।

शताह्वायवबिल्वाम्लैःसिद्धंतैलंसमीरणे।

अर्थ—सोंफ, जौ और बेलगिरी इनका कल्क, कांजी और तेलको मिलाकर पकावै। फिर इस तेलकी अनुवासन वास्ति देवै तौ उक्तफल होता है ॥

अनुवासनीयघृत ।

सैन्धवेनाग्निवर्णेनतप्तंचानिलनुद्घृतम् ॥

अर्थ—सेंधेनमक को आगमे देकर लाल गरम करले फिर इसे घीमे डालदे । इस सुहाते हुए गरम घीकी अनुवासनवास्ति देवै तौ उक्तफल होता है ।

जीवन्तींमदनंमेदांश्रावणींमधुकंबलाम् । शताह्वर्षभकौकृष्णांकाकनासांशतावरीम् ॥ स्वगुप्तांक्षीरकाकोलींकर्कटाख्यांशटींवचाम् । पिष्ट्वातैलंघृतंक्षीरेसाधयेत चतुर्गुणे ॥ बृंहणंवातपित्तघ्नंबलशुक्राग्निवर्द्धनम् । मूत्रेरेतोरजोदोषान्हरेत्तदनुवासनम् ॥

अर्थ—जीवन्ती, मेनफल, मेदा, श्रावणी, मुलहटी, खरैटी, सोंठ, ऋषभक, पीपल, कौंआटोंटी, सितावर, केंच के बीज, क्षीरकाकोली, काकडासींगी, कचूर, वच, इन सबको पीसकर मिलाहुआ तेल और घी चार सेर, दूध सोलहसेर इन सबकापाक करे। यह अनुवासन बृंहणकर्त्ता, वातपित्तनाशक बल, वीर्य और अग्निको बढानेवाली है । इस से मूत्रदोष वीर्यदोष और रजोदोष दूर होजाते हैं ॥

लाभतश्चन्दनाद्यैश्चपिष्टैःक्षीरचतुर्गुणम् । तैलपादंघृतंसिद्धंपित्तघ्नमनुवासनम् ॥

अर्थ—ज्वर चिकित्सा में जो चन्दनादिक तैल के द्रव्य वर्णन कियेगये हैं उन में से जो जो मिलसकें उनको पीसकर समान तेल, तेल से चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध डालकर पाक करै यह वस्ति पित्तरोगों को दूर करती है

सैन्धवंमदनंकुष्ठंशताह्वांनिचुलंबलाम् । ह्रीवेरंमधुकंभार्गींदेवदारुसकट्फलम् । नागरंपुष्करंमेदांचविकांचित्रकंशटीम् ॥ विडङ्गातिविषश्यामांहरेणुंनीलिनींस्थिराम् । विल्वाजमोदौकृष्णांचदन्तींरास्नांच पेषयेत् ॥ साध्यमेरण्डतैलंवातैलंवाकफरोगनुत् । वर्ध्मोदावर्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान् ॥ आनाहमश्मरींचैवहन्यात्तदनुवासनम् ।

अर्थ—सेंधानमक, मेनफल, कूठ, सोंफ,

हिज्जल, खरैंटी, हाऊबेर, मुलहटी, भाडंगी, देवदारु, कायफल, सोंठ, पौहकरमूल, मेदा, चव्य, चीता, कचूर, बायविडंग, अतीस, श्यामानिसोथ, रेणुका, नीलिनी, शालिपर्णी, विल्व, अजमोद, पीपल, दन्ती, रास्ना इन सबको समानभाग लेकरपीस लेवै। इस कल्क के साथ अरंडका तेल वा सरसोंआदि का तेल सिद्ध करके अनुवासन देवै तौ कफरोग, वर्ध्म, उदावर्त्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा, प्रमेह, आढ्यवात, आनाह और अश्मरी, ये सबरोग दूर होजाते हैं ॥

मदनैर्वाम्लसंयुक्तैर्बिल्वाद्येनगणेनवा ॥
तैलंकफहरैर्वापिकफघ्नंकल्पयेद्भिषक् ।

अर्थ—मेनफल का कल्क और कांजी अथवा विल्वादि पंचमूल का क्वाथ और कल्क अथवा कफनाशक पिप्पल्यादि गण के क्वाथ के साथ तेल पकाकर अनुवासन देने से कफ दूर होता है ।

विडंगैरण्डरजनीपटोलत्रिफलामृताः ।
जातिप्रवालानिर्गुण्डीदशमूलाखुपर्णिकाः॥
निम्बपाठासहचरसम्पाककरवीरकम् ।
एषांक्वाथेनविपचेत्तैलमेभिश्चकल्कितैः ॥

अर्थ—वाय विडंग, अरंडकीजड़, हल्दी परवल, त्रिफला, गिलोय चमेली के पत्ते, निर्गुंडी, दशमूल, मूषिकपर्णी, नीम, पाठा, सहचर, अमलतास करवीर की छाल इनके क्वाथ में इनही का कल्क डालकर तेल पकाकर अनुवासन देवै तौ कफरोग दूर होजाते हैं ॥

फलबिल्वत्रिवृत्कृष्णारास्नाभूनिम्बदारुभिः । सप्तपर्णवचोशीरदार्वीकुष्ठकलिंगकैः ॥ लतायष्टिशताह्वाग्निशटीचोरकपौष्करैः । तत्कुष्ठानिक्रमीनमेहानर्शांसि ग्रहणीगदम् ॥ क्लीवतांविषमाग्नित्वंमलंदोषत्रयंतथा । प्रयुक्तंप्रणुदत्याशुपानाभ्यंगानुवासनैः ॥

अर्थ—मेनफल, वेलगिरी, निसोथ, पीपल, रास्ना, चिरायता देवदारु, सप्तपर्ण, वच, खस, दारु हलदी, कूठ, इन्द्रजौ, प्रियंगु, मुलहटी, सोंफ, चीता, कचूर, चोरक और पुहकर मूल इन द्रव्यों के कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ तेल पान, अभ्यंग और अनुवासन में देने से कोढ, क्रिमि प्रमेह अर्श, ग्रहणीरोग, क्लीवता, विषमाग्नि और त्रिदोष को दूर करता है ॥

स्नेह वस्ति के गुण ।

व्याधिव्यायामकर्माध्वक्षीणाबलनिरौजसाम् ॥ क्षीणशुक्रस्यचातीवस्नेहवस्तिर्बलप्रदः । पादजंघोरुपृष्ठस्यकट्याश्चस्थिरतांपराम् ॥ जनयेत्प्रजानांचप्रजांस्त्रीणांतथानृणाम् ।

अर्थ—जो मनुष्य व्याधि, व्यायाम, कर्म मार्ग भ्रमण से क्षीण होगये हैं । वा और किसी कारणसे क्षीण होगये हैं, वा जिन के हृदय का ओजो धातु नष्ट होगया है, वा जिन का शुक्र क्षीण पडगया है उन के पक्ष में स्नेह वस्ति वहुतही वल वढाने वाली है । पांव, जांघ, ऊरू, पीठ और कमर को अत्यन्त दृढ करदेती है । जिन स्त्री पुरुषों

के सन्तान नहीं होती है उन के सन्तान होने लगती है ।

स्नेह वस्ति में छः आपत्ति ।

वातपित्तकफान्यन्नपुरीषैराष्टतस्यच ॥ अभुक्तेचप्रणीतस्यस्नेहवस्तेःषडापदः ।

अर्थ—यह वात, पित्त, कफ, अन्न और पांचवें पुरीष से आवृत होजाती है तथा विना भोजन किये भी इसका प्रयोग करने से आपत्ति होती है । इसतरह स्नेह वस्ति में छः विघ्न हैं ।

वस्ति में विघ्न के कारण ।

शीतोऽल्पोवाधिकेवातेपित्तेत्युष्णःकफेमृदुः ॥ अतिभुक्तेगुरुवर्चःसञ्चयेऽल्पबलस्तथा । दत्तस्तैरावृतःस्नेहोनयात्यभिभवादपि ॥ अभुक्तेनावृतत्वाच्चयात्यूर्द्धंतस्य लक्षणम् ।

अर्थ—अत्यन्त कुपित वात में शीतल वा अल्प वस्ति देने से वह प्रत्यागमन नहीं कर सकती है, इसी तरह पित्तकी अधिकता में अत्युष्ण वस्ति, कफकी अधिकता में अत्यन्त मृदु वस्ति प्रत्यागमन नहीं कर सकती है । वहुत भोजन करलेने पर भारी वस्ति और विष्टा की अधिकता में अल्प- वस्ति प्रत्यागमन नहीं कर सकी है । तथा जो अभुक्त अवस्था में वस्ति दीजाती है उसका कोई रोकने वाला नहीं होता है इस से वह ऊपरको चली जाती है ।

वातावृत स्नेह वस्ति के लक्षण ।

अङ्गमर्दज्वराध्मानशीतस्तम्भोरुपीडनैः॥ पार्श्वरुग्वेष्टनैर्विद्वान्स्नेहंवातावृतंभिषक् ।

अर्थ—अंगमर्द, ज्वर, आध्मान, शीत, स्तम्भता, ऊरुओं में पीडा, पसली में दर्द और शरीर में अंगडाई आती हों तो यह समझना चाहिये कि स्नेह वस्ति वायुद्वारा आवृत है ।

वातावृत स्नेह वस्ति में उपाय ।

स्निग्धाम्ललवणोष्णैस्तंरास्नापीतद्रुतिल्वकैः॥सौवीरकसुराकोलकुलत्थयवसाधितैः । निरूहैर्निर्हरेत्सम्यक्समूत्रैःपञ्चमूलिकैः ॥ ताभ्यांमेवचतैलाभ्यांसायंभुक्तेऽनुवासयेत् ॥

अर्थ—वातवृत स्नेह के निकालने के लिये रास्ना, सरल काष्ट, लोध का कल्क, तथा सौवीरक, सुरा, वेर, कुलथी औरजौ इनके क्वाथ के साथ सिद्ध करके स्नेह, कांजी, सैंधा नमक डालकर उष्ण निरूहण वस्ति देवै । अथवा गोमूत्र और पंचमूलके क्वाथके साथ निरूहण देवै । अथवा उक्त दोनों प्रकारके द्रव्यों के साथ तेल सिद्ध करके भोजन करने के पीछे अनुवासन वस्ति देवै ।

पित्तावृतवस्तिकेलक्षण ।

दाहरागतृषामोहतमकज्वरदूषणैः । विद्यात्पित्तावृतंस्वादुतिक्तैस्तंवस्तिभिर्हरेत् ।

अर्थ—स्नेहवस्ति देनेके पीछे शरीर में दाह, ललाई, तृषा, मोह, तमक और ज्वर हो तो समझना चाहिये कि स्नेह पित्तावृत है । इस में स्वादु और तिक्त निरूहण देकर स्नेह को निकाल देवै ।

कफावृत वस्ति के लक्षण ।

तन्द्राशीतज्वरालस्यप्रसेकारुचिगौरवैः ॥
समूर्च्छाग्लानिभिर्विद्यात्श्लेष्मणास्नेहमावृतम् ।

अर्थ—स्नेहन वस्ति के पीछे तन्द्रा, शीत ज्वर, आलस्य, प्रसेक, अरुचि, भारापन, मूर्च्छा और ग्लानि हो तो स्नेह को कफावृत समझना चाहिये ।

कफावृत वस्ति में उपाय ।

कटुतिक्तकषायोष्णैःसुरामूत्रोपसाधितैः ॥
फलतैलयुतैःसाम्लैर्वस्तिभिस्तंविनिर्हरेत् ।

अर्थ—कफावृत वस्ति में कटु, तिक्त, कषाय और उष्ण द्रव्य, तथा सुरा और गोमूत्रके साथ सिद्धकी हुई निरूहण वस्ति जिस में मेनफलका कल्क, तेल और कांजी मिला हो देकर स्नेह को निकाल देवै ।

अतिभोजनावृत वस्ति के लक्षण ।

छर्दिमूर्च्छारुचिग्लानिशूलानिद्रांगमर्दनैः॥
आमलिङ्गैःसदाहैस्तंविद्यादत्यशनावृतम् ।

अर्थ—वमन, मूर्च्छा, अरुचि, ग्लानि, शूल, निद्रा, अंगमर्द, आम के लक्षण और दाह हो तो समझना चाहिये कि स्नेह अत्यन्त भोजन से आवृत है ।

उक्तरोग में उपाय ।

कटूनांलवणानांचक्वाथैश्चूर्णैश्चपाचनम् ।
विरेकोमृदुरत्रामविहिताचक्रियाहिता ।

अर्थ—इस में कटु और लवण द्रव्यों का क्वाथ और चूर्ण द्वारा आमदोषका पचाना ठीक है, इसी तरह मृदु विरेचन और आमनाशक अन्य अन्य क्रिया भी हित हैं ।

पुरीषावृत वस्ति के लक्षणोपाय ।

विण्मूत्रानिलसङ्गार्तिगुरुत्वाध्मानहृद्ग्रहैः।
स्नेहंविडावृतंज्ञात्वास्नेहस्वेदैःसवर्त्तिभिः॥
श्यामाबिल्वादिसिद्धैश्चनिरूहैःसानुवासनैः।निर्हरेद्विधिनासम्यगुदावर्त्तहरेणच

अर्थ—स्नेहन वस्ति के ग्रहण करने के पीछे जो विष्ठा, मूत्र और अधोवायु का बिबन्ध हो, भारापन, अफरा और हृदयमें शूल होता हो तो समझना चाहिये कि स्नेह विष्ठासे आवृत है । उसके निकालने के लिये स्नेह स्वेद और वर्ति प्रयोग करै। तथा श्यामा निसोथ की जड़, और बिल्वादि पंचमूल के क्वाथ के साथ सिद्ध कीहुई निरूह और अनुवासन वस्ति देवै। तथा इस में उदावर्त नाशक क्रियाओं का करना भी हित है ।

ऊर्ध्वगतवस्ति के लक्षण ।

अभुक्तेशून्यपायौवावेगात्स्नेहोऽतिपीडितः ॥ धावत्यूर्द्धंततःकण्ठादूर्द्धेभ्यःखेभ्यएत्यपि ॥

अर्थ—बिना भोजन किये वा शून्य गुदा में स्नेह वस्ति का अत्यन्त पीड़न करनेसे स्नेह ऊपर को दौड़ता है तब वह कंठसे ऊपर के मार्ग मुख और नासिका द्वारा निकल पड़ता है ।

ऊर्ध्वगतवस्तिमेउपाय

मूत्रश्यामात्रिवृत्सिद्धोयवकोलकुलत्थवान् । तत्सिद्धंतैलइष्टोऽत्रनिरूहःसानुवासनः ।

अर्थ—गोमूत्र, दोनों प्रकार की निसोथ,

इन को जौ, बेर, कुलथी के क्वाथ के साथ सिद्ध कर के निरूह देवै अथवा उक्त द्रव्यों के साथ सिद्ध करके तेल देवै तौ ऊर्ध्वगतवस्ति ठीक होजाती है ।

कण्ठादगच्छतःस्तम्भकण्ठग्रहविरेचनैः ॥ छर्दिघ्नीभिःक्रियाभिश्चतस्यकार्यंनिवर्तनम् ।

अर्थ—कण्ठ से स्नेह के निकलने पर कंठ रुककर स्नेह को रोक लेता है, इस का निवर्त्तन विरेचन और छर्दिनाशक चिकित्सा से होता है ।

उपेक्ष्य वस्ति ।

यस्यनोपद्रवंकुर्य्यात्स्नेहवस्तिरनिस्सृतः॥ सर्वोऽल्पोवृतरौक्ष्याद्धापेक्ष्यःसहिविजानता ।

अर्थ—रूक्षताके कारण स्नेहन वस्ति विना निकले किसी प्रकार का उपद्रव न करै, उसका सब वा थोडा स्नेह उपेक्षा करने के योग्य होता है ।

मुक्तस्नेहका पश्चात् कर्म ।

मुक्तस्नेहंसुखोष्णंचलघुपथ्योपसेवनम् ॥ भुक्तवान्मात्रयायोज्यमनुवास्यत्र्यहात्त्र्यहात् । धान्यनागरसिद्धंहितोयंदद्याद्विचक्षणः ॥ व्युषितायनिशांकल्यमुष्णंवा केवलंजलम् ।

अर्थ—आवृत स्नेह के निकल जाने के पीछे सुखोष्ण हलका पथ्य मात्राके अनुसार देवै फिर तीसरे दिन अनुवासन देवै । पीने के लिये धनियां और सोंठ डालकर औटाया हुआ जल देवै, अथवा रात्रि में भोजन न कराके प्रातःकाल केवल उष्ण जल देवै ।

उष्णोदक के गुण ।

स्नेहोऽजीर्णंजरयतिश्लेष्माणंतद्भिनत्ति च ॥ मारुतस्यानुलोम्यंचकुर्य्यादुष्णोदकंनृणाम् । वमनेचाविरेकेचनिरूहेसानुवासने ॥ तस्मादुष्णोदकंदेयंवातश्लेष्मप्रशान्तये ।

अर्थ—उष्णजल अजीर्ण स्नेह को पचाता है । कफका भेद न करता है और वायुका अनुलोमन करता है इसी से वमन, विरेचन निरूहण वा अनुवासन में वात कफकी शान्ति के लिये उष्ण जल देना चाहिये ।

रूक्षनित्यस्तुदीप्ताग्निर्व्यायामीमारुताशयी वंक्षणश्रोण्युदावर्तैवातार्त्ताश्चादिनेदिने । एषांचाशुजरास्नेहोयात्यम्बुसिकतास्विव ॥

अर्थ—नित्यप्राति रूक्ष सेवन करने वाले दीप्ताग्नि वाले, व्यायामशील, वात कोष्ठ वाले, तथा जिनकी वंक्षण, श्रोणी और उदावर्त वातग्रस्त हों उन्हें दिया हुआ स्नेह शीघ्रही ऐसे जीर्ण होजाता है जैसे वालूरेत में डाला हुआ जल शुष्क होजाता है ।

अतोऽन्येषांत्र्यहात्प्रायःस्नेहंपचतिपावकः । नत्वामंप्रणयेत्स्नेहंसद्यभिष्यन्दयेद्गुदम् ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए मनुष्यों से भिन्न मनुष्यों की अग्नि तीन दिन में स्नेह को पचा सकती है । वस्ति द्वारा आम स्नेह का प्रयोग कदापि करना उचित नहीं है, क्यों

कि इस से गुदा अभिष्यान्दित होजाती है।

सावशेषंचकुर्वीतवायुःशेषेहितिष्ठति ।

अर्थ—वस्ति में जितना स्नेह होता है उस सब का प्रयोग नहीं किया जाता है क्योंकि वचे हुए स्नेह के साथ वायु होती है।

नचैवगुदकण्ठाभ्यांदद्यात्स्नेहमनन्तरम्॥ उभयस्मात्समक्षच्छन्वाय्वग्नीनदूषयेत् समत् ।

अर्थ—एक ही समय में गुदा और कंठ दौनों से स्नेह का प्रयोग करना उचित नहीं है,क्योंकि एक साथ जानेसे वायु और अग्नि को दूषित करता है।

स्नेहवस्तिनिरूहंवानैकमेवातिशीलयेत् ॥ उत्क्लेशाग्निवधौस्नेहान्निरूहात्पवनाद्भयम् । तस्मान्निरूढःस्नेह्यःस्यान्निरूढश्चानुवासितः ॥ स्नेहशोधनयुक्त्यैववस्तिकर्म त्रिदोषनुत् ।

अर्थ—स्नेह वस्तिऔर निरूह वस्ति एक साथ देना ठीक नहींहै,क्योंकि स्नेहसे उत्क्लेश और अग्निका नाश होता है और निरूह से वायुका भय होता है। इस लिये जिसको निरूह देना हो उसे प्रथम स्नेहन देवै और निरूह देने के पीछे अनुवासन देवै। स्नेहन और शोधन की युक्तिहीं से वस्ति कर्म त्रिदोष नाशक होता है।

कर्मव्यायामभाराध्वयानस्त्रीकर्षितेषुच ॥ दुर्बलेवातभग्नेचमात्रावस्तिःसदामतः । ह्रस्वायाःस्नेहमात्रायामात्रावस्तिः समो भवेत् ॥ यथेष्टाहारचेष्टस्यसर्वकालंनिरत्ययः । बल्यंसुखोपचर्य्यंचसुखंस्पष्टपुरीषकृत् ॥ स्नेहमात्राविधानंहिबृंहणंवातरक्तनुत् ॥

अर्थ—परिश्रम, व्यायाम, भारवहन, मार्ग की थकावट, सवारी से थकित और स्त्री संगम से कर्षित तथा दुर्बल और वातग्रस्त रोगों में नीचे लिखीहुई मात्रा वस्ति दैनी चाहिये। मात्रा वस्ति स्नेह की ह्रस्व-मात्रा के समान होती है। मात्रा वस्ति ग्रहण कर के यथेष्ट आहार विहार करना चाहिये जिस से किसी प्रकार का उपद्रव न हो। मात्रानुसार स्नेह प्रयोग करने से वह स्नेह बल को वढाता है, सुख करता है दस्त सुख पूर्वक होता है, वातरक्त दूर होजाता है और पुष्टाई वढती है। (जो स्नेह आधेदिन में पचजाता है और जो सुकुमार मनुष्यों के पक्ष में प्रयोग किया जाता है, उसेही स्नेहकी ह्रस्वमात्रा कहते हैं) ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकौ ।

वातादीनांशमायोक्ताःप्रवराःस्नेहवस्तयः । तेषांचाज्ञप्रयुक्तानांव्यापदःसचिकित्सिताः ॥ प्राग्भोज्यंस्नेहवस्तेर्यद्भुवंयेऽर्हास्यूहाश्चये । स्नेहवस्तिविधिश्चोक्तो मात्रावस्तिविधिस्तथा ॥

अर्थ—इस स्नेहव्यापद अध्याय में वातादिदोषोंकी शान्ति के लिये उत्तम २ स्नेह वस्तियों का वर्णन कियागया है, तथा अयोग्य रीति से प्रयोग कीहुई स्नेहवस्तियों के रोग, उनकी चिकित्सा और वस्ति के

प्रयोग करने से पहिले जो आहार किया जाता है, जो स्नेह प्रयोग के योग्य हैं, जो तीन दिन के भीतर स्नेह वस्तिके योग्य हैं, उनका भी वर्णन कियागया है । तथा इस में स्नेह वस्तिकी विधि और मात्रावस्ति की विधि भी वर्णन की गई है ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धिस्थानेस्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथातोनेत्रवस्तिव्यापादिकांसिद्धिंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम नेत्रवस्ति व्यापादिकाकी चिकित्सा वर्णन करेंगे ।

अथनेत्राणिवस्तींश्चशृणुवर्ज्यानिकर्मसु । नेत्रस्याज्ञप्रणीतस्यव्यापदःसचिकित्सिताः ॥

अर्थ—चिकित्सा में प्रयोग न कियेजाने के योग्य नेत्र और वस्ति तथा अज्ञान के हाथ से प्रयुक्त कीहुई वस्ति नलकी विपाद और फिर उन रोगों में जो २ चिकित्सा कर्तव्य हैं, उन सब का वर्णन विस्तार पूर्वक कियाजाता है ।

वर्जित वस्ति नल ।

ह्रस्वंदीर्घंतनुस्थूलंजीर्णंशिथिलवन्धनम् । पार्श्वछिद्रंतथावक्रमष्टौनेत्राणिवर्जयेत् ॥

अर्थ—ह्रस्व, दीर्घ, पतला, मोटा, पुराना शिथिल बन्धन, पार्श्वछिद्र (जिसके इधर विधर छेद हो) और टेढा, ये आठ प्रकार के वस्ति नल वर्जित हैं ।

ह्रस्वादि वस्ति नलके उपद्रव ।

अप्राप्त्यातिगतिक्षोभकर्षणक्षणनस्रवाः । गुदपीडागतिर्जिह्मातेषांदोषायथाक्रमम् ॥

अर्थ—वस्तिनल छोटा होने से उचित स्थान पर नहीं पहुंचता है । दीर्घ होने से उचित स्थान से ऊंचा चला जाता है । पतला होने से क्षोभ को प्राप्त होता है । स्थूल होने से वस्ति मल मार्ग को खींचती है । पुराना होने से भीतर जाकर टूटजाता है । शिथिल वन्धन होने से स्राव होता है । पार्श्व में छिद्र होने से गुदा को पीडित करता है और टेढा होने से वस्ति की गति टेढी होती है ।

वर्जित वस्ति ।

विषमच्छिद्रमांसलस्थूलजालीकवातलाः । छिन्नः क्लिन्नश्चतानष्टौवस्तीन्कर्मसुवर्जयेत् ॥

अर्थ—विषम, सछिद्र, मांसल (जिसका चमडा उडकर केवल मांस रह गया हो), स्थूल, जालीक (जालयुक्त), वातल (वायुयुक्त), छिन्न (फटीहुई) और क्लिन्न (गीली) ये आठ प्रकार की वस्ति वर्जित हैं ।

विषमादिवस्तियों के उपद्रव ।

गतिवैषम्यविस्रत्वस्राव्यदौर्ग्राह्यनिस्रवाः ॥

फेनिलच्युतिधार्य्यत्वंवस्तिःस्युर्वस्तिदोषतः ।

अर्थ—विषम वस्ति होने से वस्ति की गति ऊंची नीची होजाती है । मांसल होने से विस्रत्व, सच्छिद्र होने से स्राव, स्थूल होने से पकड़नेकेअयोग्यजालयुक्त होनेसेस्राव,वातल होनेसे वस्तिके द्रव्यमें झाग,छिन्नहोनेसे वस्ति द्रव्य का निकलना, और क्लिन्न होने से वस्ति द्रव्यकी रुकावट । ये उपद्रव होतेहैं ।

प्रणेता की अज्ञता के उपद्रव ।

सवातातिद्रुतोत्क्षिप्ततिर्य्यगुत्क्षिप्तकम्पिताः ॥ अतिमन्दगमन्दातिवेगदोषाःप्रणेतृतः ।

अर्थ—वस्ति की वायुके साथ प्रेरण होना अति उत्क्षिप्त, टेढापनके साथ उत्क्षिप्त, कम्पन, अति मन्दगति, मन्द वेग और अतिवेग । ये सब दोषा वस्ति के प्रणोता अज्ञानता के हैं ।

अनुच्छ्वास्मानुबन्द्धेवादत्तोनिःशेषएववा॥ प्रविश्यक्षुभितोवायुःशूलतोदकरोभवेत् । तत्राभ्यंगोगुदस्वेदोवातघ्नान्यशनानिच॥

अर्थ—वस्ति के प्रयोग करने से पहिले उसे दावकर भीतर की सब वायु निकाल देनी चाहिये । ऐसा न करने से वस्ति शेष जब वायुका अनुवन्ध हो और उसका भी प्रयोग कर दिया जाय तौ वायु उदर में प्रवेश करके कुपित होगी तथा शूल और तोद उत्पन्न करेगी । इस जगह तैल का मर्दन, गुदा में स्वेदन कर्म और वातनाशक अन्नपान सेवन करना चाहिये ।

द्रुतादि प्रणीत वस्ति के कर्म ।

द्रुतंप्रणीतेनिष्कृष्टेसहसोत्क्षिप्तएववा ॥ स्यात्कटीगुदजंघार्तिर्वस्तिस्तम्भोरुभेदनम् । भोजनंतत्रवातघ्नंस्नेहःस्वेदाःसवस्तयः ॥

अर्थ—वस्ति के शीघ्रतासे प्रयोग करने शीघ्रता से निकलने और सहस्र उत्क्षिप्त होने से कमर, गुदा और जंघा में वेदना होने लगती है, वस्ति में स्तम्भता और ऊरुओं में भेदन होता है । इस में वातनाशक भोजन, स्नेहन कर्म, स्वेदन कर्म तथा अनुवासन और निरूहण वस्तियों का प्रयोग करना उचित है ।

तिर्य्यावन्धनकेलक्षण ।

तिर्य्यग्बन्धावृतद्वारेवद्धेवापिनगच्छति ॥ नेत्रेतदृजुनिष्कृष्यसंशोध्यचपुनर्नयेत् ।

अर्थ—टेढेबन्धन से वस्तिका मार्ग रुकजाने पर अथवा और किसी कारण से वद्ध होनेपर वस्ति जा नहीं सक्ती है । इस से उस समय वस्ति के नलको गुदा से अलग कर के उसे सीधा और शुद्ध कर के फिर प्रविष्ट करै ।

पीडनकेउपद्रव ।

पीड्यमानेऽन्तरामुक्तेगुदेप्रतिहतोऽनिलः॥ उरःशिरोरुजंसादमूर्वोश्चजनयेद्बली । वस्तिःस्यात्तत्रविल्वादिफलश्यामादिमूत्रवान् ॥

अर्थ—वस्ति पीडन पूर्वक वस्ति क्रिया के बिना समाप्त हुयेही जो वस्ति मुक्त करदी जाय तौ गुदा में प्रतिहत बायु कुपित

होकर हृच्छूल, शिरोवेदना और ऊरुसाद उत्पन्न करती है। इसमें बिल्वादिपंचमूल मेनफल, त्रिवृतादिगण और गोमूत्र इन से सिद्ध कीहुई निरूहणवस्ति देवै।

कम्पनकेउपद्रव।

स्यादाहोदवथुःशोफःकम्पनाभिहतेगुदे।
कषायमधुराःशीताःसेकास्तत्रसवस्तयः॥

अर्थ—वस्ति प्रयोग में कम्पन होजाने से गुदा में चोट लगकर दाह, जलन और सूजन उत्पन्न होती है इसमें कषाय मधुर शीतल परिषेक और अनुवासन तथा निरूहण वस्ति का प्रयोग करना ठीक है॥

अतिप्रणीतवस्ति के उपद्रव।

अतिमात्रप्रणीतेननेत्रेणक्षणनाद्बलः।
स्यात्सार्तिदाहनिस्तोदगुदवर्चःप्रवर्तनम्॥
तत्रसर्पिःपिचुः क्षीरंपिच्छावस्तिश्चशस्यते॥

अर्थ—वस्ति के अत्यन्त बल पूर्वक प्रविष्ट करने से गुदामार्ग विदीर्ण होजाता है, इससे वेदना, दाह, सुई छिदनेके समान पीडा और गुदा के मलका निकलना ये लक्षण होते हैं। इसमें घृत, पिचु (घृतप्लुत रुई का फोआ), दूध और पिच्छावस्ति हित हैं।

मन्दप्रणीत वस्ति के लक्षण।

नवावहतिमन्दस्तुवाह्यस्त्वाशुनिवर्तते।
स्नेहस्तत्रपुनःसम्यक्प्रणेयःसिद्धिमिच्छता

अर्थ—मन्दप्रणीत वस्ति गमन नहीं करसक्ती है किन्तु शीघ्रही प्रत्यागमन करती है। इस जगह पुनः अच्छी रीति से स्नेहन वस्ति का प्रयोग करना उचित है।

अतिपीडित वस्ति के लक्षण।

अतिप्रपीडितःकोष्ठेतिष्ठत्यायातिवागलम्
तत्रवस्तिर्विरेकश्चगलपीडादिकर्मच॥

अर्थ—अत्यन्त पीडित वस्ति कोष्ठ में रुकजाती है अथवा गले में आजाती है। ऐसी जगह पर अनुवासन वस्ति, विरेचन और गलपीडनादिकर्म करना ठीक है।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन।

तत्रश्लोकः।

नेत्रवस्तिप्रणेतॄणांदोषानेतान्सभेषजान्।
वेत्तियस्तेनमतिमान्वस्तिकर्माणिकारयेत्।

अर्थ—इस अध्याय में वस्तिनल और वस्ति के दोष, अज्ञान प्रणेता से उत्पन्न हुए उपद्रव और उनकी चिकित्सा वर्णन कीगई है। इन सब बातों को जो बुद्धिमान् जानता है उसीसे वस्तिकर्म कराना उचित है।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांसिद्धिस्थानेनेत्रवस्तिव्यापादिकासिद्धिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

षष्ठोऽध्यायः॥

अथातोवमनविरेचनव्यापत्सिद्धिंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वमन विरेचन व्यापत्सिद्धि नामकअध्याय की व्याख्या करेंगे।

अथशोधनयोःसम्यग्विधिमूर्द्धानुलोमयोः

असम्यक्कृतयोश्चैवदोषान्वक्ष्यामिसौष
धान् ॥

अर्थ—अबहम वमन विरेचनकी सम्यक् विधि तथा असम्यक् वमन विरेचन के दोष और उनकी चिकित्सा का वर्णन करते हैं।

अत्युष्णवर्षशीताहिग्रीष्मवर्षाहिमागमाः।
अन्तरेषुप्रावृडाद्याःतेषांसाधारणास्त्रयः ॥

अर्थ—ग्रीष्मऋतु में अत्यन्त गरमी पडती है, वर्षाऋतु में वर्षा अधिक होती है। और शीतऋतु में जाड़ा अधिक होता है। इन ऋतुओं के सन्धि काल में प्रावृट, शरत् और बसन्त ये तीन ऋतु और होती हैं इनमें वर्षा, गर्मी और शीत साधारण होता है

संशोधनकासमय ।

प्रावृट्शुचिनभौज्ञेयौशरदूर्जासहोपुनः ।
तपस्यश्चमधुश्चैववसन्तःशोधनंप्रति ॥
एतानृतून्विकल्पयैवंकुर्य्यात्संशोधनंनृ
णाम् ।

अर्थ—अषाढ और श्रावण इनदो महीने में प्रावृटऋतु होती है, कार्तिक और अगहन में शरद तथा फाल्गुण और चैत्र में बसन्तऋतु होती है। वमन विरेचन देनेके येही तीन समय हैं ॥

स्वस्थवृत्तिमभिप्रेत्यव्याधौव्याधिवशेनतु॥
कर्मणांवमनादीनांअन्तरेष्वन्तरेषुच ।
स्नेहस्वेदौप्रयुञ्जीतस्नेहाद्यन्तेप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—स्वस्थमनुष्यों को ऊपर कही हुई ऋतुओं में वमन विरेचन देना उचित है। परन्तु व्याधिग्रस्त मनुष्य को व्याधिके कारण ग्रीष्मादि ऋतुओं में भी संशोधन दियाजासक्ता है। वमनादि पंचकर्म कराने के पहिले स्नेहन स्वेदन करना चाहिये और पीछे वमनादि का प्रयोग करै।

अविरेच्यरोगी ॥

विसर्पपिडकाशोफकामलापाण्डुरोगिणः।
अभिघातविषार्तांश्चनातिस्निग्धान्विरेच
येत् ॥

अर्थ—विसर्प, पिडका, सूजन, कामला, पांडुरोग, अभिघात और विष इन रोगों से पीडित मनुष्य को अत्यन्त स्निग्ध करके विरेचन न देवै अर्थात् थोडा स्निग्ध करकेही विरेचन देवै।

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम्।
स्नेहोत्क्लिष्टशरीरायरूक्षंदद्याद्विरेचनम् ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नेचजीर्णेमात्रावदौषधम् ।
एकाग्रमनसापीतंसम्यग्योगायकल्पते ॥
स्निग्धात्पात्राद्यथातोयमयत्नेनप्रणुद्यते ॥
कफादयःप्रणुद्यन्तेस्निग्धाद्देहात्तथौषधैः।
आर्द्रकाष्ठंयथावह्निर्विष्यन्दयतिसर्वतः ॥
तथास्निग्धस्यवैदोषान्स्वेदोविष्यन्दयेत्
स्थिरान् ।

अर्थ—अतिस्निग्ध शरीर वाले को स्नेह विरेचन न दैना चाहिये। स्नेह से उत्क्लिष्ट शरीर वालेको रूक्ष विरेचन देवै। पहिले दिन का आहार पचने पर स्नेह और स्वेद से युक्त होकर एकागमन से वमन विरेचन औषधों का पान करने से वमन विरेचन का सम्यक् योग होता है। जैसे चिकने पात्रसे विना प्रयत्नही पानी निकल जाता

है उसी तरह स्निग्ध औषधियों द्वारा स्निग्ध देह से कफादि दोष शीघ्रही निकल जाते हैं।

जैसे अग्नि गीले काष्ठ को चारों ओर से विष्यन्दित करदेती है अर्थात् उस के जल को खींच लाती है, उसी तरह से स्वेदन कर्म स्निग्ध देह के स्थिर दोषों को विष्यन्दित करदेता है।

स्नेहस्वेद से संशोधन का दृष्टान्त।

क्लिष्टवासोयथोत्क्लेश्यमलैःसंशोध्यतेऽम्भसा ॥ स्नेहस्वेदैस्तथोत्क्लेश्यशोध्यतेशोधनैर्मलः ।

अर्थ—मैले वस्त्र को जैसे सावन, सज्जी आदि से मसल कर जल से धोकर स्वच्छ करते हैं उसी तरह शरीरस्थ मल को स्नेहन स्वेदन से उत्क्लेशित करके संशोधन औषधियों द्वारा शुद्ध करतेहैं।

अजीर्ण भोजन में संशोधन निषेध।

अजीर्णेवर्धतेग्लानिर्विबन्धश्चैवजायते ॥ पीतंसंशोधनंचैवविपरीतंप्रवर्तते ।

अर्थ—अजीर्ण में वमन विरेचनादि औषध के सेवन करने से ग्लानि बढती है और विबन्ध उत्पन्न होजाता है तथा वमन विरेचन की विपरीत गति होजाती है।

मात्रावत् औषधके लक्षण।

अल्पमात्रंमहावेगंबहुदोषहरंसुखम् ॥ लघुपाकंसुखास्वादंप्रीणनंव्याधिनाशनम्। अविकाराविपन्नञ्चनातिग्लानिकरञ्चतत्। गन्धवर्णरसोपेतंविद्यान्मात्रावदौषधम् ॥

अर्थ—जो औषध अल्पमात्रा होने पर भी महावेगवती होती है, बहुत दोषों को नाश करने वाली और सुखदायक होती है, जो लघुपाकी, सुस्वाद, प्रीणनकर्त्ता और व्याधिनाशक होती है,जो अविकारी,अव्यापन्न, ग्लानि न करने वाली, गंधवर्ण और रससे युक्त औषध मात्रावत् कहाती है।

सम्यग्योग करने वाली औषध।

विधूयमानसान्दोषान्कासादीन्अशुभोदयान् । एकाग्रमनसापीतंसम्यग्योगायकल्पते ॥

अर्थ—औषध पीनेके समय कामक्रोधादि अशुभकर्त्ता मानसिक दोषों को दूर करके जो औषध एकाग्रमनसे सेवन की जाती है उसका सम्यग्योग होता है।

वमनविरेचन का पूर्वकर्म।

नरःश्वोवमनंपाताभुञ्जीतकफवर्द्धनम् । सुजरंद्रवभूयिष्ठंलघुशीतंविरेचनम् ॥ उत्क्लिष्टाल्पकफत्वेनाशुमंदोषाःस्रवन्तिहि ।

अर्थ—जिस को प्रातःकाल वमनकारक औषध पान करानी है उसे आज कफका बढाने वाला भोजन कराना चाहिये। जिस को प्रातःकाल विरेचनकर्ता औषध पान करानी है उसे आज ऐसा लघु और शीतल आहार देवै जो बहुत शीघ्रही पचजाय। इस प्रकार आहार सेवन करने से कफके बढने के कारण वमन और घटने के कारण विरेचन बहुत शीघ्रही होता है।

शुद्धि के लक्षण।

पीतौषधस्यतुभिषक्शुद्धिलिंगानिलक्षयेत्

ऊर्द्धंकफानुगेपित्तेविट्पित्तेनुकफेत्वधः ॥

अर्थ—जिसने वमन विरेचन औषधपान करी हो उस के शुद्धिके लक्षण देखने चाहियें। वमन देने के पीछे जो प्रथम कफ उद्गीर्ण हो और पीछे पित्त उद्गीर्ण हो तौ वमन से शुद्धि समझना चाहिये। वैरेचनिक औषध के पीछे यदि विष्टा और पित्त के पीछे कफ आने लगे तौ विरेचन द्वारा शुद्धि समझना चाहिये।

हृतदोषंवदेत्कार्श्यंदौर्बल्यंचेत्सलाघवे। वामयेत्तुततःशेषमौषधंनत्वलाघवे ॥ स्तैमित्येऽनिलसङ्गेचानिरुद्गारेऽपिवामयेत्। आलाघवात्तनुत्वाच्चकफस्यापत्परं भवेत् ॥ वमितेवर्द्धतेवह्निशमंदोषाव्रजन्तिहि। वमितंलंघयेत्सम्यक्जीर्णलिङ्गान्यलक्षयन् ॥ तानिदृष्ट्वातुपेयादिक्रमंकुर्यान्नलंघनम्।

अर्थ—यदि रोगी को कृशता, दुर्वलता और देह में हलकापन होजाय तौ समझना चाहिये कि वमन ठीक होगई, उस में जो औषध उस के आमाशय में शेष वची हो उसे वमन कराके निकाल देवै। यदि देह में हलकापन न हुआ हो तौ औषध को न निकालै। जो देह में स्तिमिता हो, अधोवायु और डकार रुकगई हो तौ भी वमन करावै। जव तक देह में हलकापन न होगा और थोडा सा भी कफ रहैगा तव तक व्याधि रहैगी, बमन करानें के पीछे अग्नि वढती है और दोषसव शान्त होजाते हैं। वमन कराने के पीछे भी जो कफके जीर्ण होने के सम्यक् लक्षण न दिखाई दें तौ लंघन करावै यदि कफके जीर्ण होने के सम्यक् लक्षण दिखाई दें तौ पेयादि क्रमका पालन करावै। लंघन कराना उचित नहीं है।

पेयाकेयोग्यरोगी।

संशोधनाभ्यांशुद्धस्यहृतदोस्यचदेहिनः ॥ यात्यग्निमन्दतांतस्मात्क्रमंपेयादिमाचरेत्।

अर्थ—जिसका देह वमन विरेचन से शुद्ध होगया है और जिसके दोष सव दूर होगये हैं उसकी अग्नि मंद पड़जाती है, इसलिये उसे पेयादिक्रमका पालन कराना चाहिये।

तर्पणादिक्रमकेयोग्यरोगी।

कफपित्तेविशुद्धेऽल्पंमद्यपेवातपैत्तिके। तर्पणादिक्रमंकुर्यात्पेयाभिष्यन्दयेद्धितान्

अर्थ—जिस मद्यप और वात पित्तरोगी काकफ पित्त वमन विरेचन द्वारा शुद्ध होगया है उसे अल्प मात्राके द्वारा तर्पणादिक्रम का पालन करावै। क्योंकि पेया उनको अभिष्यन्दित करती है।

जीर्णऔषधकेलक्षण।

अनुलोमोऽनिलःस्वास्थ्यंचक्षुत्तृष्णोर्जोमनस्विता ॥ लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिःजीर्णौषधाकृतिः।

अर्थ—वायु का अनुलोमन, स्वस्थता, क्षुधा, तृषा, ऊर्जा, मन में प्रफुल्लता, इन्द्रियों का हलकापन और शुद्ध डकार ये सव जीर्ण औषध के लक्षण हैं।

जीर्णवशिष्टऔषधकेलक्षण ।

क्लमोदाहोङ्गमर्दश्चभ्रमपमूर्च्छाशिरोरुजा ।
अरतिर्बलहानिश्चसावशेषौषधाकृतिः ॥

अर्थ—क्लांति, दाह, अंगमर्द, भ्रम, मूर्च्छा, शिर में वेदना, यातना और बलहानि ये सब जीर्णावशिष्ट औषध के लक्षण हैं ।

अकालेऽल्पातिमात्रंचपुराणंनचभावितम्
असम्यक्संस्कृतंचैवव्यापद्येतौषधंद्रुतम् ।

अर्थ—जो औषध कुसमय पानकी जाय, अथवा अतिमात्रा वा अल्पमात्रा वा पुरानी, वा अभावित वा अच्छीतरह संस्कार न कीहुई औषध सेवन कीजाय तो उस से शीघ्रही उपद्रव होते हैं

असम्यकऔषधकेदशउपद्रव ।

आध्मानंपरिकर्तिश्चस्रावोहृद्ग्रहोगात्रयोग्रहः ॥
जीवादानंसविभ्रंशःस्तम्भःसोपद्रवःक्लमः । अयोगादतियोगाच्चदशैताव्यापदो मताः ॥

अर्थ—औषध के अयोग वा अतियोगसे आध्मान, परिकर्तिका, स्राव, हृद्ग्रह, अंगग्रह, जीवादान, विभ्रंश, स्तम्भ, उपद्रव और क्लान्ति ये दसरोग उपस्थित होते हैं।

प्रेष्यभैषज्यवैद्यानांवैगुण्यादातुरस्यच ।
शुद्धोक्लिष्टेनदुर्गन्धामहृद्यमतिबाध्यते ॥

अर्थ—परिचारक, औषध, वैद्य और रोगी इनकी विगुणता से शुद्ध दोष भी उत्क्लिष्ट होकर दुर्गन्ध और अत्यन्त वा वहुत अप्रियताको उत्पन्न करते हैं ।

योगःसम्यक्प्रवृत्तिःस्यादतियोगोऽतिवर्त्तनम् । अयोगःप्रातिलोम्येननचाल्पंवा प्रवर्त्तनम् ॥

अर्थ—औषध का योग होने से दोषोंकी सम्यक् प्रवृत्ति होती है । अतियोग होनेसे अत्यन्त प्रवृत्ति होतीहै । औषधका अयोग होने से दोषों की प्रति लोमता के कारण दोषों की प्रवृत्तिसर्वथा नहीं होतीहै अथवा थोड़ी होती है ॥

अजीर्ण में विरेचनपानका अवगुण ।

श्लेष्मोत्क्लिष्टेनदुर्गन्धमहृद्यमल्पंवाबहु ।
विरेचनमजीर्णेचपीतमूर्द्धंप्रवर्तते ॥

अर्थ—अजीर्ण में विरेचन के पान कर-ने से कफकी उत्क्लिष्टता के कारण थोडा वा बहुत ऊपर के मार्ग से निकलजाता है।

वमनकर्त्ताऔषध से विरेचन ।

क्षुधार्तमृदुकोष्ठाभ्यांस्वल्पोत्क्लिष्टकफेन वा । तीक्ष्णंपीतंस्थितंक्षुब्धंवमनंस्याद्विरेचनम् ॥

अर्थ—जिसको भूखलगरहीहो, जिसका कोठा मृदु हो, वा जिसका कफ वहुत ऊ-द्धीर्णनहो उसको तीक्ष्ण वमन कारक औ-षधके पान करानेसे वह औषध स्थिर और क्षुब्ध होकर दस्त लाने लगती है ।

प्रातिलोम्येनदोषाणांहरणात्तेहृतकृच्छ्रशः
अयोगसंज्ञेकृच्छ्रेणयदागच्छतिचाल्पशः ॥

अर्थ—इस तरह वमन औषध के वि-रेचनमें बदल जानेसे प्रतिलोम रीति से दोषों के निकलने पर भी यदि रोगी को किसी प्रकारका कष्ट नहो तौभी वमनका अयोग होताहै क्योंकि इस दशामें दोष

थोड़े थोड़े वा कष्टसे निकलते है ।

पीतौषधोनशुद्धश्चेज्जीर्णेतस्मिन्पुनःपिबे त् । औषधंनतुजीर्णेऽन्यद्भयंस्यादतियो गतः ॥

अर्थ—संशोधन औषध के पान करनेसे यदि रोगी शुद्ध नहो तौउस औषधके पचने पर फिर वही औषध पान कराना चाहिये । यदि औषध के विना पचे ही और औषध पान करादी जायगी तौ अति योग के कारण अन्य भय होगा ।

कोष्ठस्यगुरुतांज्ञात्वालघुत्वंबलमेवच । अयोगेमृदुवादद्यादौषधंतीक्ष्णमेववा ॥

अर्थ—संशोधन औषध के अयोग में कोष्ठका भारापन, हलका पन और बलका विचार कर फिर मृदु वा तीक्ष्ण औषधका पान करावै ।

वमनंनतुदुश्छर्दंदुष्कोष्ठंनविरेचनम् । पाययेतौषधंभूयोहन्यात्पीतंपुनर्हितौ ॥

अर्थ—जिसको वमन कठिनतासे होती है, उसे वमन नकरावै । जिसका कोष्ठ कड़ाहो उसे विरेचन नदेवै । क्योंकि ऐसे मनुष्यों को वमन विरेचन करानेसे प्राणों की हानि होती है ।

अस्निग्धास्विन्नदेहस्यरूक्षस्यानवमौषध म् । दोषानुत्क्लेश्यानिर्हर्तुमशक्तंजनये द्गदान् ॥ विभ्रंशंश्वयथुंहिक्कांतमसोदर्श नंभृषम् । पिण्डिकोद्वेष्टनंकण्डूमूर्वोःसादं विवर्णताम् ॥

अर्थ—अस्निग्ध, अस्वेदित और रूक्ष देह वाले को पुरानी औषध देनेसे दोष उत्क्लिष्ट तौ होजाते हैं परन्तु निकल नहीं सकते क्योंकि वह वीर्य हीन होती है । तथा रोग उत्पन्न होजाते हैं । ऐसी औषधियोंसे विभ्रंश, सूजन, हिचकी, अन्धकार दर्शन, पिंडलियोंमें ऐंठन, खुजली और ऊरुसाद ये उपद्रव होतेहैं ।

स्निग्धस्विन्नस्यचात्यल्पंदीप्ताग्नेजीर्णमौ षधम् । शीतैर्वास्तब्धमामैर्वादोषानुत्क्ले श्यनाहरेत् ॥ तानेवजनयेद्रोगानयोगः सर्वएवसः । विज्ञायमतिमांस्तत्रयथोक्तां कारयेत्क्रियाम् ॥

अर्थ—स्निग्ध और स्विन्नरोगी को यदि मात्रा थोडी दीजाय अथवा वह रोगी की दीप्ताग्निके कारण पचजाय, अथवा शीतल उपचार और आम द्वारा औषध स्तब्ध होजाय तौ वह दोषों को उत्क्लिष्ट करके निकाल नहीं सक्ती है । ऐसा होनेसे ऊपर लिखेहुए सम्पूर्णरोग उपस्थित होते हैं । इसी को औषध का अयोगभी कहते हैं । इसतरह औषध का अयोग समझकर बुद्धिमान् वैद्य को उचित ह कि नीचे लिखी हुई क्रिया का अवलंवन करै ।

वमनविरेचनअयोगमेंउपाय ।

तंतैललवणाभ्यक्तंस्विन्नंप्रस्तरसङ्करैः ॥ पाययेतपुनर्जीर्णेसमूत्रैर्वानिरूहयेत् । नि रूहैश्चरसैर्धान्वैर्भोजयित्वानुवासयेत् ॥ फलमागधिकादारुसिद्धतैलेनमात्रया । स्निग्धंवातहरैः स्नेहैः पुनस्तीक्ष्णेनशोध येत् ॥

अर्थ—ऐसे मनुष्य को नमक मिलेहुये

तेल से अभ्यक्त कर के प्रस्तरस्वेद और संकर स्वेद द्वारा सुवेदितकरै पहिले औषध वा आहार के पचनेपर गोमूत्र मिली हुई निरूहण वस्ति देवै। तत्पश्चात् जांगल मांसरस के साथ भोजन कराके अनुवासन देवै। अनुवासन का तेल मात्रावत् मैनफल पीपल और देवदारु इन के कल्क और काथ के साथ सिद्ध करना चाहिये। फिर इस रोगी को वातनाशक तैलों से स्निग्ध करके तीक्ष्ण संशोधन देना उचित है।

अतितीक्ष्णंक्षुधार्तस्यमृदुकोष्ठस्यभेषजम्। हृत्वाशुविट्पित्तकफान्धातून्विस्रावयेद्द्रवान ॥ बर्णस्वरघ्नंयदाहंकण्ठूशोषंभ्रमंतृषाम्। कुर्याच्चमधुरैस्तत्रशेषमौषधमुल्लिखेत्॥

अर्थ—क्षुधा से पीडित और मृदु कोष्ठ वाले को तीक्ष्ण संशोधन देने से प्रथम विष्टा पित्त और कफ निकल जातें हैं। वही औषध फिर धातुओं को पिघाल कर स्रावित करती है तथा वलवर्णनाश, स्वरभंग, दाह, खुजली, शोष, भ्रम और तृषा इन उपद्रवों को उत्पन्न करतीहै। ऐसे स्थलपर मधुरद्रव्यों से मिश्रित वमन देकर विनापची शेष औषध को वमन द्वारा निकालदेना चाहिये।

वमनेतुविरेकःस्याद्विरेकेवमनंमृदु। परिषेकावगाहाद्यैःसुशीतैःस्तम्भयेच्चतत्॥ कषायमधुरैःशीतैरन्नपानौषधैस्तथा। रक्तपित्तातिसारघ्नैर्दाहज्वरहरैरपि॥

अर्थ—वमन के अतियोग में विरेचन और विरेचन के अतियोग में मृदु वमन देना हित है, तत्पश्चात् शीतल परिषेक और अवगाहनादि द्वारा उसका स्तम्भन करै। कसीली, मीठी और शीतल अन्नपान और औषधी तथा रक्त पित्तातिसारनाशक और दाहज्वर नाशक औषधादिका व्यवहार कर के स्तम्भन करना चाहिये॥

अतियोगनाशक प्रयोग।

अञ्जनंचन्दनोशीरमजासृक्छर्करोदकम्॥ लाजचूर्णैःपिबेन्मन्थमतियोगहरंपरम्॥ शुङ्गाभिर्वावटादीनांसिद्धांपेयांसमाक्षिकाम्। वर्चःसांग्राहिकैःसिद्धंक्षीरभोज्यञ्चदापयेत्॥ जांगलैर्वारसैर्भोज्यंपिच्छावस्तिश्चशस्यते। मधुरैरनुवास्यश्चसिद्धेनक्षीरसर्पिषा॥

अर्थ—रसौत, रक्तचंदन, खस, इनको पीसकर बकरे के रुधिर और खांड़ के शरबत के साथ खील के चूर्ण में मन्थ बनाकर पान करने से अतियोग दूर होजाता है।

बटादि दूधवाले वृक्षोंकी टहनियों के अग्रभाग पेया में डालकर सिद्ध करै फिर ठंडा होनेपर शहत मिलाकर पानकरै तौ अतियोग दूर होजाता है॥

मल को संग्रह करनेवाली औषधियां डालकर सिद्ध कियाहुआ दूध करने से भी अतियोग दूर होजाता है तथा जांगलमांस रस के साथ भोजन कराना और पिच्छावस्ति भी देना हित है तथा जीवनीयादि मधुर गणोक्त द्रव्य डालकर दूध को पकावै फिर उस में से घी निकालकर उसकी अनुवासन वस्ति देवै॥

ये ऊपर लिखे सब प्रयोग विरेचन के अतियोग में हित हैं ॥

वमनातियोगमेंप्रयोग ॥

वमनस्यातियोगेतुशीताम्बुपरिषेचितम् । पिबेत्फलरसैर्मन्थंसघृतक्षौद्रशर्करम् ॥ सोद्गारायांभृशंवम्यांमूर्च्छायांधान्यमुस्त योः । समधूकाञ्जनंचूर्णलेहयेन्मधुसंयुतम् ।

अर्थ—वमन के अतियोग में शीतलजल के छींटे रोगी के मारै और फलों के रसों के साथ मन्थ बनाकर उस में घी, शहत और शर्करा डालकर पानकरै। डकारसहित अत्यन्त वमन में और मूर्च्छा में धनियां मोथा, मुलहटी और रसौत इनका चूर्ण शहत मिलाकर चटावै।

वमतोऽन्तःप्रविष्टायांजिह्वायांकवलग्रहः। स्निग्धाम्ललवणाहृद्यायुषक्षीररसैर्हिताः । फलान्यम्लानिखादेयुस्तस्यचान्येऽग्रतो नराः ॥

अर्थ—वमन करते २ जो जिह्वाभीतरको घुसगई हो तौ नमक और हृदय प्रिय यूष वा दूध वा मांसरसका कवल धारण करावै। ऐसे स्थलपर खट्टेअनारआदि के फल रोगी को खवावै अथवा रोगी के सामने किसी अन्य मनुष्यको खवावै।

निःसृतजिह्वा में उपाय ।

निःसृतांतुतिलद्राक्षाकल्कयुक्तांप्रवेशयेत् ।

अर्थ—वमन करते करते जो जिह्वा बाहर निकल आई हो तौ जीभ पर तिल और दाख का लेप करने से जिह्वा भीतर को चली जायगी।

वाग्ग्रहमें चिकित्सा ।

वाग्गृहानिलरोगेषुघृतमांसोपसाधितम् ॥ यवागूंतनुकांदद्यात्स्नेहस्वेदौचबुद्धिमान् ।

अर्थ—वमन करते करते वाणी के रुक जाने पर वा वायुके कुपित होने पर घृत और मांस रसके साथ सिद्ध की हुई पतली यवागू और स्नेह स्वेद का प्रयोग करना चाहिये।

वमितश्चाविरिक्तश्चमन्दाग्निश्चविलंघितः॥ अग्निप्राणविवृद्ध्यर्थंक्रमंपेयादिकंभजेत् ।

अर्थ—वमन विरेचन द्वारा संशुद्ध, मन्दाग्नि और लंघन करने वाले की अग्नि का बल बढाने के लिये पेयादि क्रमका पालन करना उचित है।

बहुदोषस्यरूक्षस्यहीनाग्नेरल्पमौषधम् ॥ सोदावर्तस्यचोत्क्लेश्यदोषान्मार्गान्निरु ध्यते । भृशमाध्मापयेन्नाभिपृष्ठपार्श्वशिरो रुजम् ॥ श्वासंविण्मूत्रवातानांसङ्गंकुर्या च्चदारुणम् ।

अर्थ—बहुत दोषों से युक्त, रूक्ष वा मन्दाग्नि वाले को अथवा उदावर्त रोगी को अल्पमात्रा में वैरेचनिक औषध का पान कराने से दोष उत्क्लिष्ट होकर मार्गों को रोक देते हैं। इससे नाभि के पास बड़ा अफरा होजाता है, पीठ, पसली और सिर में दर्द होने लगता है। श्वास, विष्ठा,मूत्र और अधोवायु दारुण रीति से रुकजातेहैं।

अभ्यङ्गस्वेदवर्त्त्यादिसनिरूहानुवासन म् ॥ उदावर्तहरंसर्वंकर्माध्मातस्यशस्यते ।

अर्थ—ऐसा अफरा होने पर तैलमर्दन

स्वेद, वर्त्ति प्रयोग, निरुहण और अनुवासन तथा उदावर्त्तनाशक सम्पूर्ण प्रयोग इस जगह हित हैं।

ऐंठा होने का कारण।

स्निग्धेनगुरुकोष्ठेनसामेबलवदौषधम्॥ क्षामेणमृदुकोष्ठेनश्रान्तेनाल्पबलेनवा। पीतागत्वागुदंसाममाशुदोषंनिरस्यति॥ तीव्रशूलांसपिच्छास्त्रांकरोतिपरिकर्त्तिकाम्।

अर्थ—स्निग्ध मनुष्य को अथवा भारी कोठे वाले को अथवा आमदोष वाले को वलिष्ठ औषध देने से, अथवा क्षीण, मृदु कोष्ठ, श्रान्त और अल्पवल वाले को वैसी ही औषध देने से आम सहित दोष उद्गीर्ण होकर गुदाके मार्ग से निकलने लगते है। तव पेट में अत्यन्त शूलयुक्त, पिच्छा युक्त और रुधिर सहित परिकर्त्तिका वा मरोडा होने लगता है।

ऐंठकी चिकित्सा।

लंघनंपाचनंसामेरूक्षोष्णंलघुभोजनम्॥ बृंहणीयोविधिःसर्वःक्षामस्यमधुरस्तथा।

अर्थ—इस तरह आमयुक्त दोष में लंघन पाचन तथा रुक्ष और उष्ण हलका भोजन हित है। यदि क्षीण पुरुष के ऐसा उपद्रव हो तौ उसे बृंहणीय तथा मधुर औषधों का सेवन कराना हित है।

आमाजीर्णेनुबद्धश्चेत्क्षाराम्ललघुशस्यते॥ पुष्पकासीसमिश्रंवाक्षारेणलवणेनवा। सदाडिमरसंसर्पिःपिवेद्वातेऽधिके सति॥

अर्थ—आमाजीर्ण के कारण जो विबन्ध हुआ हो तौ क्षार और शटाई डालकर हल का भोजन प्रशस्त है। जो वायुकी अधिकता हो तौ पुष्पका सीस मिश्रित, अथवा क्षार और नमक युक्त अनार का रस मिला हुआ घृत हित है।

दध्यम्लंभोजनेपानेसंयुक्तंदाडिमत्वचा। देवदारुतिलानांवाकल्कमुष्णाम्बुनापिवेत्॥ अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षकदम्बैर्वाशृतं पयः।

उसी तरह वायुकी अधिकता होने पर खाने पीने की द्रव्यों में अनारके छिलके के साथ खट्टे दही का सेवन करना चाहिये। अथवा देवदारु और तिलके कल्को गरम जल के साथ पान करै। अथवा पीपल, गूलर पाकड और कदंव की छाल दूध में सिद्ध करके पान करावै।

कषायमधुरंबस्तिंपिच्छाबस्तिमथापिवा॥ यष्टीमधुकसिद्धंवास्नेहबस्तिंप्रदापयेत्।

अर्थ—कषाय और मधुर द्रव्यों की वस्ति अथवापिच्छावस्तिअथवामुलहटीके साथसिद्ध की स्नेहवस्तिभी वायकी अधिकता में हित है।

अल्पंतुवहुदोषस्यदोषानुत्क्लेश्यभेषजम्॥ अल्पाल्पंस्रावयेत्कण्डूशोफकुष्ठानिगौरवम्। कुर्य्याच्चाग्निवधोत्क्लेशस्तैमित्यारुचिपाण्डुताम्॥ परिस्रावश्च तंदोषंशमयेद्वामयेदपि।

अर्थ—वहुत दोषों से युक्त मनुष्य को अल्प विरेचन देने से दोष उद्गीर्ण होकर

थोडे थोडे स्रावित होते हैं । ऐसा होने से खुजली, सूजन, कोढ, भारापन, अग्निनाश, उत्क्ले, स्तिमिता, अरुचि और पांडुरोग उत्पन्न होते हैं और स्राव भी होता रहता है । इस उपद्रव में संशमन औषध देकर दोषों की शान्ति करै, जो संशमन से भी शान्त न हो तौ वमन करावै ।

स्नेहितंवापुनस्तीक्ष्णंपाययेच्चविरेचनम् ॥ शुद्धेचूर्णासवारिष्टान्संस्कृतांश्चप्रदापयेत् ।

अर्थ—रोगी को स्निग्ध करके फिर तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये । फिर शुद्ध होने पर चूर्ण, आसव, अरिष्ट और संस्कार किये हुए यूषादि का सेवन करावै ।

पीतौषधस्यवेगानांनिग्रहान्मारुतादया कुपिताहृदयंगत्वाघोरंकुर्वन्तिहृद्ग्रहम् । सहिक्काकासपार्श्वार्तिदैन्यलालाक्षिविभ्रमैः ॥ जिह्वांखादतिनिसंज्ञोदन्तानकिटिकटापयन् । नगच्छेद्विभ्रमंतत्रवामयेदाशुतंभिषक् ॥ मधुरैःपित्तमूर्च्छार्त्तंकटुभिःकफमूर्च्छितम् । पाचनीयैस्ततश्चास्य दोषशेषंविपाचयेत् ॥ कायाग्निञ्चबलं चास्यक्रमेणोत्थापयेत्ततः ।

अर्थ—वमन बिरेचनकर्त्ता औषधियोंको पीकर जो वेगों का निग्रह करता है, उसके वातादिक दोष कुपित होकर हृदय में पहुंचकर घोर हृदयग्रह उत्पन्न करते हैं । हिचकी, खांसी, पसलीका दर्द, दीनता, नेत्ररक्तता और विभ्रम ये उपद्रव भी उत्पन्न होते हैं, रोगी बेहोश होकर जिह्वा को चबाजाता है दांतों को किड़किडाने लगता है । ऐसे समयपर वैद्यको उचित है कि बिना घबडाये शीघ्रही वमन करावै । जो रोगी पित्तकी अधिकता से मूर्च्छित हो तौ मधुर द्रव्यों से और कफ मूर्च्छित को कटुद्रव्यों के प्रयोग से वमन करावैं । फिर जो दोष शेष बचेहों उन्हें पाचनद्रव्यों से पक्व करै । तत्पश्चात् रोगी की जठराग्नि और बलके बढाने का प्रयत्न करै ।

पवनेनातिवमतोहृदयंयस्यपीड्यते ॥ तस्मैस्निग्धाम्ललवणंदद्यात्पित्तकफेऽन्यथा ।

अर्थ—अत्यन्त वमन करनेके कारण वायु जिस के हृदयको पीडित करै उसको स्निग्ध, नमकीन और खट्टी औषधदेनी चाहिये। परन्तु पित्तकफकी अधिकता होनेपर, स्निग्ध खट्टी और नमकीन औषध नदेनी चाहिये ॥

पीतऔषधकेवमननिग्रहमेंउपद्रव ।

पीतौषधस्यवेगानांनिग्रहेणकफेनवा ॥ रुद्धोतिवाविशुद्धस्यगृह्णात्यङ्गानिमारुतः स्तम्भवेपथुनिस्तोदसादोद्वेष्टार्तिमूर्च्छितैः तत्रवातहरंसर्वस्नेहस्वेदादिकारयेत् ।

अर्थ—जिसने वमन करानेवाली औषध पानकी हो और वह अपने उस वेग को रोकले, उसका कफ प्रबलहोजाता है और उस प्रबलकफ से वायु रुककर अंगग्रह, स्तम्भ, कम्पन, सुई भिदनेकीसी पीडा, अंगसाद, उद्वेष्टन, यातना और मूर्च्छा रोगों को उत्पन्न करती है । ऐसी जगह पर वातनाशक क्रिया तथा स्नेह और स्वेददैना

आवश्यकीय है। * * * ॥

अतितीक्ष्णंमृदौकोष्ठेलघुदोषस्यभेषजम् ॥ दोषान्हत्वाविनिर्मथ्यजीवंहरतिशोणितम्।

अर्थ—लघुदोष वाले के मृदु कोष्ठ में अतितीक्ष्ण औषध का प्रयोग सम्पूर्ण दोषों को दूर कर के तथा मन्थन कर के जीव शोणित को निकाल देता है।

शोणित की परीक्षा

तेनान्नंमिश्रितंदद्यात्द्वायसायशुनेऽपिवा ॥ भुंक्तेतच्चेद्वदेज्जीवंनभुंक्तेपित्तमादिशेत्।

अर्थ—तीक्ष्णवमनसे जो रक्त निकलता है उसकी यह परीक्षाकरनेके लिये कि यह शोणित जीवशोणित वा रक्तपित्तका शोणितहै,यह कामकरना चाहिये कि इस वमनके रुधिरको अन्नमें मिलाकर कौएवा कुत्तेको खवावै। जो कुत्ते कौए उसे खालें तौउसे जीव शोणित समझना चाहिये और जो नखांय तौ उसे पित्तरक्त समझना चाहिये।

दूसरीपरीक्षा।

शुक्लंवाभावितंवस्त्रंसाधानंकोष्णवारिणा ॥ प्रक्षालितंविवर्णस्यात्पित्तंशुद्धंतुशोणिते।

अर्थ—दूसरी परीक्षा यह है कि एक सफेद कपडे को इस रक्त में भिगोकर सुखा लेवे, फिर इसे थोडे गरम जल से धोवै। यदि रंगत बिगड़ जाय तौ रक्त पित्त का रक्त है, यदि शुद्ध बनीरहैतौ जीवशोणित समझना चाहिये।

तृष्णामूर्च्छामदार्तस्यकुर्यादामरणात्क्रियाम् ॥ तस्यापित्तहरांसर्वामतियोगेचयामता।

अर्थ—विरेचन के अतियोग में तृषा, मूर्च्छा और मत्तता होनेपर मरणपर्य्यन्त पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये तथा अतियोग में जो जो उपाय कहे हैं वे भी सब करने चाहियें।

मृगगोमहिषाजानांसद्यस्कंजीवतामसृक् पाययेताशुसन्धानंजीवोजीवेनगच्छति। तदेवदर्भमृदितंरक्तंवस्तिंप्रदापयेत् ॥

अर्थ—रक्त के अत्यन्त क्षीण होने पर हिरन, गौ भैंस वा बकरे का तत्काल निकला हुआ रक्तपान करावै। इस से निकले हुए जीव शोणित का सन्धान होताहै और रोगी भी शीघ्रही सजीव होजायगा। तथा इन्ही पशुओं के रुधिर में दाभ रगडकर वस्ति देनी चाहिये।

श्यामाकाश्मर्य्यबदरीदूर्वावीरैःशृतंजलम्। घृतमण्डाञ्जनयुतंवस्तिंशीतंप्रदापयेत् ॥

अर्थ—अनन्तमूल, खंभारी,बेर, दूब, और क्षीरकाकोली इनका क्राथ करले उस क्राथ में घृतमंड और रसौत मिलाकर शीतल वस्ति देवै।

पिच्छावस्तिंसुशीतंवाघृतमण्डानुवासनम्। गुदंभ्रष्टंकषायैश्चस्तम्भयित्वाप्रवेशयेत् ॥ सामगान्धर्वशब्दांश्चसंज्ञानाशेऽस्यकारयेत्।

अर्थ—अथवा शीतल पिच्छावस्ति देकर घृतमंडकी अनुवासन देवै। बहुत विरेचन

होने से जो गुदाभ्रंश होगई हो अर्थात् काच निकलती हो तौ उसे क्षीर वृक्षों के कषाय से स्तब्ध कर के भीतर को प्रवेश करदेवै । जो रोगी बेहोश होगया हो तौ सामवेदकी ऋचाओं का गान और सुन्दर वाजों का शब्द रोगी के सन्मुख करै ॥

यदाविरेचनंपीतंविडन्तमवतिष्ठते ॥ वमनंभेषजान्तंवादोषानुत्क्लेश्यनावहेत् । तदाकुर्वन्तिकण्ड्वादीन्दोषाःप्रकुपिता गदान् ॥ सविभ्रंशःपुनस्तत्रस्याद्यथाव्याधिभेषजम् ।

अर्थ—जो विष्टा के निकल चुकतेही वैरेचनिक औषध का फल जाता रहै और पित्त न निकलै, इसीतरह वमन औषध के निकलतेही वमन क्रियाकाफल जातारहै और कफ का दर्शन न हो तौ उस मनुष्य के खुजली आदिरोग उत्पन्न होजाते हैं,इसको वमन विरेचन औषधों का विभ्रंश कहते हैं।

पीतंस्निग्धेनसस्नेहंतद्दोषान्मार्दवाद्धृतम् ॥ नवाहयतिदोषांस्तुस्वस्थानात्स्तम्भयेच्च्युतान् । वातसङ्गगुदस्तम्भशूलैःक्षरतिचाल्पशः ॥ तीक्ष्णंवास्तिविरेकंवा सोर्होलंघितपाचितः ।

अर्थ—जो स्निग्ध मनुष्य स्नेहयुक्त विरेचन पानकरै तौ वह विरेचन मृदुता के कारण दोषों से रुकजाता है और अपने स्थान से हटेहुए दोषों को भी स्तम्भित कर देता है, इससे वात विवन्ध, गुदस्तम्भ और गुदशूल होता है, उस के मल थोडा थोडा निकलता है । ऐसी जगहपर तीक्ष्ण वमन विरेचन वा लंघन पाचन हित होताहै।

रूक्षंविरेचनंपीतंरूक्षेणाल्पबलेनवा ॥ मारुतंकोपयित्वाशुकुर्य्याद्घोरानुपद्रवान् । स्तम्भशूलानिघोराणिसर्वगात्रेषु मुह्यतः ॥ स्नेहस्वेदादिकस्तत्रकार्योवात हरोविधिः ।

अर्थ—रूक्षवा बलहीन मनुष्यजो रूक्षविरेचनका पानकरैतौ वह विरेचन वायुको कुपितकरकेघोर उपद्रवों कोउत्पन्नकरतीहै, इस से सम्पूर्ण देह में घोर स्तम्भ और शूल होते हैं । इस में वातनाशक स्नेहन स्वेदन विधि करनी चाहिये ।

स्निग्धस्यगुरुकोष्ठस्यमृदूत्क्लेश्यौषधंकफम् पित्तंवातंचसंरुध्यसतन्द्रागौरवंक्लमम् ॥ दौर्बल्यश्चाङ्गसादश्चकुर्य्यादाशुतदुल्लिखेत् । लंघनंपाचनंचात्रस्निग्धेतीक्ष्णंचशोधनम् ॥

अर्थ—जो स्निग्ध और भारी कोठे वाला मनुष्य मृदु औषध का पान करै तौ वह औषध उस के कफ को उत्क्लिष्ट और वात पित्त को रोककर तन्द्रा, भारापन, क्लान्ति, दुर्बलता और अंगसाद को उत्पन्न करती है । इस में उस औषध को शीघ्रही वमन द्वारा निकलवा देवै, फिर लंघन और पाचन द्वारा स्निग्धता और गुरुता को दूर करके तीक्ष्ण विरेचन देवै ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

तत्रश्लोकौ ।

इत्येताव्यापदःप्रोक्ताःसर्वाहिसचिकित्सिताः । वमनस्यविरेकस्यकृतस्याकुश

लैर्नृणाम् ॥ एतान्विज्ञायमतिमानवस्था श्चैवतत्त्वतः । कुर्यात्संशोधनंसम्यगारो ग्यार्थीनृणांसदा ॥

अर्थ—इस अध्याय में अप्रवीण वैद्य द्वारा वमन विरेचन के प्रयोग में जो जो व्याधियां होजाती हैं वेसव चिकित्सा सहित वर्णन की गई है । बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि इन सब वातों को और अवस्था को जानकर आरोग्य की अभिलाषासे मनुष्यों को वमन विरेचन देवैं ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचिता यां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांसिद्धि स्थानेवमनविरेचनव्यापत्सिद्धिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ॥

अथातोवस्तिव्यापादिकांसिद्धिंव्याख्या स्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय वोले कि अव हम वस्ति व्यापादिका सिद्धि की व्याख्या करेंगे ।

धीधैर्यौदार्यगाम्भीर्यक्षमादमतपोनिधि म् । पुनर्वसुंशिष्यगणःपप्रच्छविनया न्वितः ॥ काःकतिव्यापदोवस्तेःकिंसमु त्थानलक्षणाः । काश्चिकित्साइतिप्रश्ना न्श्रुत्वातानब्रवीद्गुरुः ॥

अर्थ—शिष्यगणों ने बुद्धि, धीरता, गंभीरता, उदारता, क्षमा, दम और तपकी निधि पुनर्वसु से अत्यन्त नम्रता पूर्वक प्रश्न किया कि हे भगवन् ! वस्ति के रोग कैसे होते हैं, कितने हैं उन के उत्पन्न होनेके कारण और लक्षण क्याहैं और उनकी चिकित्सा भी क्या है । इन प्रश्नो को सुनकर गुरु उनका समाधान करने लगे ॥

वस्ति के रोग ।

नातियोगौक्लमाध्मानौहिक्काहृत्प्राप्तिरू र्द्धता । प्रवाहिकाशिरोऽङ्गार्तिःपरिकर्त्तः परिस्रवः ॥ द्वादशव्यापदोवस्तेरसम्य ग्योगसम्भवाः । आसामेकैकशोरूपंचि कित्सांचनिबोधत ॥

अर्थ—अयोग, अतियोग, क्लान्ति, आध्मान, हिचकी, हृदय में धक् २, उर्द्धता, प्रवाहिका, शिरोवेदना, अंगशूल, परिकर्त्तिका परिस्राव । ये बारहरोग वस्ति के हैं, ये सब रोग वस्ति के असम्यक् योग से होते हैं अव हम इन में से प्रत्येकके रूप और चिकित्सा का वर्णन करते हैं, श्रवण करो।

अयोगव्यापल्लक्षण ।

गुरुकोष्ठेऽनिलप्रायेरूक्षेवातोल्वणेऽपिवा। शीतोऽल्पलवणस्नेहद्रवमात्रोघनोऽपिवा॥ वस्तिःसंक्षोभ्यतंदोषंदुर्बलत्वादनिर्हरन्। करोतिगुरुकोष्ठत्ववातमूत्रशकृद्ग्रहम् ॥ नाभिवस्तिरुजंदाहंहृल्लेपंश्वयथुंगुदे । क ण्डूंगण्डानिवैवर्ण्यमरुचिंवह्निमार्दवम्॥

अर्थ—वातप्राय भारी कोष्ठवाला वा वाताधिक्य रूक्ष पुरुष इनको शीतल, थोडे नमककी, थोडे स्नेह की, इसीतरह केवल पतली वा गाढी वस्ति दीजाय तौ यह वस्ति दोषको कुपित करतीहै परन्तु दुर्वलता

के कारण उसे निकाल नहीं सक्ती है, इस से कोष्ठ में भारापन, अधोवायु, मल और मूत्रकी रुकावट, नाभिशूल, वस्तिशूल, दाह, हृल्लेप, गुदामें सूजन, खुजली, गंडमाला, बिवर्णता, अरुचि और मन्दाग्नि ये लक्षण होते हैं।

अयोगव्यापच्चिकित्सा ।

तत्रोष्णायाःप्रमथ्यायाःपानंस्वेदाः पृथग्विधाः । फलवर्त्योऽथवाकालंज्ञात्वाशस्तं विरेचनम् ॥ विल्वमूलत्रिवृद्दारुयवकोलकुलत्थवान् । सुरादिमूत्रवान्वस्तिःस प्राक्पेष्यस्तमानयेत् ॥

अर्थ—इस रोगमें गरम प्रमथ्या पान करानी चाहिये, अनेक प्रकारके स्वेदनकर्म, फलवर्त्ति और यदि उचित समय होतौ विरेचन भी देवै। (दोपल चांवलों को कूटकर अठ गुने जलमें पककर चौथाई शेष रहने पर ग्रहण करे, इसे प्रमथ्या कहते हैं)।

बेलकी जड़, निसोथ, देवदारु, जौ, बेर और कुलथी इनका कल्क तथा सुरा और गोमूत्र के साथ निरूहण देवै, परन्तु पहिले दीहुई वस्तिको प्रथम निकाल लैना चाहिये।

अतियोगव्यापल्लक्षण ।

स्निग्धस्विन्नोऽतितीक्ष्णोष्णोमृदुकोष्ठोतियुज्यते । तस्यलिंगंचिकित्सांचशोधनाभ्यांसमाभवेत् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्नेहन स्वेदन करने के पीछे मृदुकोष्ठ वाले मनुष्य को तीक्ष्ण और उष्ण वस्ति देनेसे वस्ति का अतियोग होताहै। वमन विरेचन के अतियोग के सदृशही वस्ति के अतियोग के लक्षण और चिकित्सा होती हैं।

अतियोगव्यापच्चिकित्सा ।

पृश्निपर्णींस्थिरांपद्मंकाश्मर्यंमधुकंबलाम् ॥ पिष्ट्वाद्राक्षांमधूकंचक्षीरेतण्डुलधावनम् । द्राक्षायाःपश्चलोष्टस्यप्रमादेमधुकस्यच ॥ विनीयसघृतंवस्तिंदद्याद्दाहातियोगिने ।

अर्थ—दूधमें चावलोंको धोकर उन में महुआ का कल्क, वा दाखका कल्क, वा जली हुई मृत्तिका, वा मुलहटी का कल्क डालकर जो प्रसाद अर्थात् स्वच्छ पदार्थ निकले उसमें पृश्णिपर्णी, वा शालिपर्णी, वा पद्मकाष्ठ वा खंभारी वा मुलहटी वा खरैटी इनमें से एक एक का वा जो सब मिलसकें तौ सबका कल्क मिलाकर घीके साथ वस्ति देनेसे अतियोगका दाह नष्ट होजाता है।

क्लमव्यापल्लक्षण ।

आमदोषेनिरूहेणमृदुनादोषईरितः ॥ रुणद्धिमार्गंवातस्यहन्त्यग्निंमूर्च्छयत्यपि । क्लमंविदाहंहृच्छूलंमोहवेष्टनगौरवम् । कुर्यात्स्वेदैर्विरूक्षैस्तंपाचनैश्चाप्युपाचरेत्

अर्थ—आमदोष में मृदु निरूहण वस्ति देने से दोष उद्गीर्ण होकर वात के मार्ग को रोक देते हैं, तथा अग्नि को मन्द करके मूर्च्छित भी कर देते है। इस में क्लान्ति विदाह, हृदयशूल, मोह, अंगड़ाई और भारापन होता है। इस में रूक्ष स्वेदन और

पाचन द्वारा चिकित्सा करनी उचित है ।

वलमव्यापच्चिकित्सा ।

पिप्पलीकत्तृणोशीरदारुमूर्वाशृतंजलम् । पिबेत्सौवर्चलोन्मिश्रंदीपनंहृद्विशोधनम्॥ वचानागरशस्योवादधिमण्डेनचूर्णिताः। पेयाःप्रसन्नयावास्युरारिष्टेनासवेनवा । दारुत्रिकटुकंपथ्यांपलाशंचित्रकंशटीम्। पिष्ट्वाकुष्ठञ्चमूत्रेणपिबेत्क्षारांश्चदीपनान्॥वस्तिमस्यविदध्याच्चसमूत्रंदाशमूलिकम्।समूत्रमथवाव्यक्तलवणंमधुतैलिकम्॥

अर्थ—पीपल, रोहिषतृण, उसीर, देवदारु मरोडफली इनके क्वाथ में संचलनमक डाल कर पान करने से अग्नि संदीपन और हृदय की विशुद्धि होती है ।

अथवा बच, सोंठ, कचूर (सर्ज्यैला = सज्जी और छोटी इलायची, पाठान्तर) इन के चूर्ण को दधि मंडके साथ, वा प्रसन्ना के साथ, वा अरिष्ट के साथ, वा आसवके साथ पान करै ।

अथवा देवदारु, त्रिकुटा, हरड, पलास चीता, कचूर और कूठ इन को गोमूत्र के साथ पीसकर पान करै अथवा सब प्रकार के दीपनकर्त्ता क्षार पान करै ।

अथवा दशमूल के क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर वस्ति देवै अथवा गोमूत्र में थोडा सात्म तथा शहत और तेल डालकर वस्ति दैनी चाहिये ।

आध्मानव्यापल्लक्षण ।

अल्पवीर्योमहादोषेरूक्षेक्रूराशयेकृतः । वस्तिर्दोषावृतोरुद्धमार्गोरुन्ध्यात्समीरणम् ॥ सविमार्गोऽनिलःकुर्यादाध्मानंमर्मपीडनम् । विदाहंगुरुकोष्ठस्यमुष्कवंक्षणवेदनाम् ॥ रुणद्धिहृदयंशूलैरितश्चेतश्च धावति ॥

अर्थ—क्रूर कोष्ठवाले वहुत दोषोंसेयुक्त रूक्ष मनुष्यको अल्पवीर्यवाली वस्ति देने से दोषों से आवृतवायु ऊपर के और नीचेके सम्पूर्ण मार्गों को रोक देती है, वह विमार्गगामी वायु मर्मपीडनकर्त्ता आध्मान उत्पन्न करती है विदाह कोष्ठ में भारापन, अंडकोष और वंक्षण में वेदना और हृदय में रोध होता है । और वायु शूल करती हुई पेट में इधर उधर दौडती है ।

आध्मानव्यापच्चिकित्सा ।

फलश्यामादिभिःकुष्ठकृष्णालवणसर्षपैः। धूममाषवचाकिण्वक्षारचूर्णगुडैःकृताम् । करांगुष्ठनिभांवर्तियवमध्यांनिधापयेत् ॥ स्वभ्यक्तस्विन्नगात्रस्यतैलाक्तांस्नेहितेगुदे ॥ अथवालवणागारधूमसिद्धार्थकैःकृताम् । विल्वादिश्चनिरूहःस्यात्पीलुसर्षपमूत्रवान् ॥ सरलामरदारुभ्यांसिद्धंचैवानुवासनम् ।

अर्थ—इस जगह सूत्रस्थान के अपामार्गतण्डुलीय अध्याय में कहेहुए मेनफलादि और निसोथ आदि, कूठ, पीपल, सेंधानमक सरसों, धूमसा, माष, वच, सुरावीज और जवाखार इन सबको पीसकर गुड़ में सानकर हाथ के अंगूठे की वरावर वत्ती वनाकर उस में जौका चून भरदे, इस वत्ती को तेल में भिगोकर रोगीकी गुदा में रख-

देवै । वत्ती रखनेके पहिले रोगीको अच्छी तरह से अभ्यक्त और स्वेदित करले और गुदा में भी तैल लगादेवै । अथवा सेंधानमक, धूमसा और सफेद सरसों इनकी वत्ती बनाकर पूर्ववत् गुदा में रक्खै । अथवा बिल्वादि पंचमूल के क्वाथ के साथ पीलू और सरसोंका कल्क और गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्ति देवै, अथवा सरलकाष्ठ और देवदारु इन से सिद्ध की हुई अनुवासन वस्ति देवै ।

हिक्काव्यापच्चिकित्सा ।

मृदुकोष्ठेऽबलेवस्तिरतितीक्ष्णोऽतिनिर्हरन् ॥ कुर्य्याद्धिक्काहितंतस्मैहिक्काघ्नंबृंहणञ्चयत् । बलास्थिरादिकाश्मर्यत्रिफलागुडसैन्धवैः । सुप्रसन्नारनालाम्लैस्तैलं पक्त्वानुवासयेत् । कृष्णालवणयोरक्षं पिवेदुष्णाम्बुनायुतम् ॥ धूमलेहरसक्षीरस्वेदाश्चान्नंचवातनुत् ।

अर्थ—मृदु कोष्ठवाले दुर्वल मनुष्य को तीक्ष्णवस्ति देने से वह वस्ति दोषों को निकाल कर हिचकी उत्पन्न करती है इस में हिक्कानाशक और बृंहण औषधदेना हित है। हिचकियों को रोकने के लिये खरैटी, शालिपर्ण्यादि पंचमूल, खंभारी, त्रिफला, गुड और सेंधानमक इन सबका कल्क एक सेर, तेल चारसेर, प्रसन्ना और अम्लकांजी सोलह सेर इन सबको मिलाकर पाक कर के अनुवासन देवै। अथवा पीपल और सेंधानमक दोनों दो तोले लेकर गरम जल के साथ पीने चाहियें। इस में धूम, लेह, मांसरस, दूध, स्वेदन और वातनाशक अन्न हितकर होते हैं ।

हृदयचिकित्सा ।

अतितीक्ष्णःसवातोवानवासम्यक्प्रपीडितः।घट्टयेद्धृदयंवस्तिस्तत्रकाशकुशोत्कटैः । स्यात्साम्ललवणस्कन्धकरीरबदरीफलैः शृतैर्वास्तिर्हितःसिद्धंवातघ्नैश्चानुवासनम्

अर्थ—वस्तिके अत्यन्त तीक्ष्ण होनेपर अथवा वायुयुक्त होनेपर अथवा ठीकरीति से पीडित न होनेपर वह हृदय में धकधकाहट उत्पन्न करती है । इस में कांस, कुशा और ईख की जड़ का क्वाथ कर के इस में अम्लस्कन्ध और लवणवर्गके द्रव्य करीर और वेर डालकर सिद्ध करके वस्ति देवै । तथा वातनाशक औषधियों से सिद्ध कियेहुए तेलकी अनुवासन वस्तिदेवै ।

ऊर्ध्वव्यापच्चिकित्सा ।

वातमूत्रपुरीषाणांदत्तवेगान्निगृह्णतः ॥ अतिवापीडितोवस्तिर्मुखेनायातिवेगवान् । मूर्च्छाविकारंतस्यादौदृष्ट्वाशीताम्बुनामुखम् ॥ सिञ्चेत्पार्श्वोदरंचाधःप्रमृज्याद्व्यथयेच्चतम् । केशेष्वालम्बचाकाशेधनुषात्राशयेद्भृशम् ॥ गोखराश्वगजैःसिंहैराजप्रेष्यैस्तथोरगैः । उल्काभिरेवमन्यैश्चभीतस्याधःप्रवर्तते ॥

अर्थ—अधोवायु, मूत्र और पुरीष के उपस्थित वेगों को रोककर वस्ति ग्रहण कीजाय अथवा वस्ति अत्यन्त पीडित कीजाय तौ वह मुखके द्वारा वाहर निकल जाती है। ऐसा होने पर यदि रोगी को मूर्च्छा रोग

होजाय तौ प्रथमही मुख पर ठंडे जल के छींटे मारै। पसली और उदर तथा अधो-भाग में मार्जन करै और फिर उसे व्यग्र करदे। उसके केश पकडकर ऊंचे करै और धनुष खींच कर उसे डरावै अथवा गौ, घोडा, गधा, हाथी सिंह, राजकर्मचारी, सर्प और उल्का आदि दिखाकर डरावै जिस से वस्ति नीचे को प्रवृतहो जाय।

वस्त्रपाणिग्रहैःकण्ठोरुन्धयान्नम्रियतेतदा प्राणोदाननिरोधाद्धिशसिद्धतरमार्गगः अपानःपवनोवस्तियमाश्वेवापकर्षति॥ ततःक्रमुककल्कांपाययेताम्लसंयुतम्। औष्ण्यात्तैक्ष्ण्यात्सरत्वाच्चवस्तिंसो म्यानुलोमयेत्॥ पक्वाशयस्थितेस्विन्नेनि रूहोदाशमूलिकः। यवकोलकुलत्थैश्च विधेयोमूत्रभावितः॥ बिल्वादिपञ्चमूले नसिद्धोवस्तिरुरःस्थिते। शिरःस्थेनाव नंधूमःप्रच्छार्यसर्षपैःशिरः॥

अर्थ—वस्त्र और हाथसे कंठ को इस तरह दावै कि मरने न पावै, इस तरह कंठ को दावने से प्राण और उदान वायुके रुकने के कारण अपान वायु का वेग नीचे को बढ जाता है, इस से वस्ति शीघ्रही नीचे को चली जाती है। तत्पश्चात् दो तोले सुपारी का कल्क कांजी के साथ पान करावै इस कल्क की उष्णता, तीक्ष्णता और खर-ता के कारण वस्ति शीघ्रही निकल आती है। जो वस्ति पक्वाशय में स्थित हो तौ उसे निकालने के लिये दशमूलके क्काथ के साथ जौ, वेर, कुलथी का कल्क तथा गो-मूत्र मिलाकर निरूहण देवै। जो वस्ति हृदय में स्थित होगई हो तौ विल्वादि पंच मूल के क्वाथ के साथ निरुहण देवै। जो वस्ति शिर में स्थित हो तौ नस्य और धूम पान का प्रयोग करै और सिरके ऊपर सरसों का लेप करै।

प्रवाहिका व्यापच्चिकित्सा।

स्निग्धस्विन्नेमहादोषेवस्तिर्मृद्वल्पभेषजः उत्क्लेश्याल्पंहरेद्दोषंजनयेच्चप्रवाहिका म्॥ सवस्तिपायुशोफेनजंघोरुसदनेन वा। निरुद्धमारुतोजन्तुरभीक्ष्णंसंप्रवा हते॥ स्वेदाभ्यङ्गाश्निरूहांश्चशोधनीयानु लोमिकान्। विदध्याल्लंघयित्वातुवर्त्तिं कुर्य्याद्विरिक्तवत्।

अर्थ—वहुत दोषों से युक्त मनुष्य को स्निग्ध और स्विन्न करके मृदु वीर्य और अल्पवस्तिका प्रयोग किया जाय तौ वह सब दोषों को उद्गीर्ण करके अल्पदोष को निकालती है, इस से प्रवाहिका रोग हो-जाता है " प्रवाहिका उसे कहते हैं जो पुरीषोत्सर्ग की थोडी थोडी देर में शंका होती है और मल थोडासा निकल जाता है और पेट में दर्द सा रहता है "। इस वस्ति से गुदा में सूजन तथा जंघा और ऊरू में अवसाद उत्पन्न करती है। रुकी हुई वायुके कारण वार वार पुरीषोत्सर्ग की शंका होती है।

इस में स्वेदन, अभ्यंग, तथा शोधनीय और अनुलोमनकर्त्ता निरुहण देना उचित है। इस तरह रोगी को लंघन कराके

विरेचन दिये हुए रोगी की तरह पेयादि क्रमका पालन करावै ।

शिरः शूल के लक्षण ।

दुर्बलेतीव्रदोषेचदुष्कोष्ठेचतनुर्मृदुः । शीतोऽल्पश्चावृतोदोषोवस्तिस्तद्विहितोऽनिलः ॥ मार्गैर्गात्राणिसन्धावनूर्द्धमूर्द्धन्युपाहितम् । ग्रीवांमन्येचगृह्णातिशिरःकण्ठंभिनत्तिच ॥ बाधिर्य्यंकर्णनादंचपीनसंनेत्रविभ्रमम् ।

अर्थ—ऐसे मनुष्य को जो दुर्बल हो और जिस के दोष तीव्र हों और कोष्ठ मृदु हो उसे ठंडी और अल्पवस्ति देनेसे वह वस्ति दोषों से घिरजाती है, वस्ति के इसतरह आवृत होनेपर वायु विहत होकर ऊपर को जाती है, वहां जाकर ग्रीवा और दोनों मन्याओं को जकड़ लेती है। सिर और कंठ में भिदने कीसी पीड़ा होती है । तथा वहरापन, कर्णनाद (कानों में झनकार), पीनस और नेत्र विभ्रम ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

शिरःशूलचिकित्सा ।

कुर्य्यादभ्यञ्जनंतैलल्लवणेनयथाविधि ॥ युञ्ज्यात्प्रधमनंनस्यैर्धूमैरास्यविरेचनैः । विरेचनैर्निरूहैश्चवस्तिभिश्चानुलोमिकैः

अर्थ—इसरोगमें विधिपूर्वक तेल और नमक का अभ्यंग करै । तथा प्रधमन, धूम, नस्यआदि शिरोविरेचन का प्रयोग करै तथा विरेचन, निरूहणवस्ति और आनुलोमिक वस्तिका भी प्रयोग करै ।

अंगशूललक्षण ।

सुस्विन्नस्निग्धदेहस्ययस्यवस्तिर्विधीयते अतितीक्ष्णोगुरुश्चैवसोऽतिमात्रंप्रवर्त्तयेत् ॥ स्रुतेषुतस्यदोषेषुनिरूढस्यातिमात्रशः । स्तब्धोदावृत्तकोष्ठस्यवायुःसंप्रतिहन्यते ॥ विलोममसमुद्भूतोरुजत्यङ्गानिदेहिनः । गात्रवेष्ठननिस्तोदभेदस्फुरणजृम्भणैः ॥

अर्थ—जिस रोगी को अच्छी तरह से स्निग्ध और स्विन्न करके अतितीक्ष्ण और भारी वस्ति दी जाती है, उसके दोष बहुत निकल ने लगते हैं । इस तरह दोषों के निकलने पर अत्यन्त निरूहित, स्तब्ध और उदावृत कोष्ठ वाले मनुष्य की वायु प्रतिहत होजाती है । तब वायु की विलोमताके कारण अंगोंमें शूल होने लगता है । देह में अंगड़ाई, निस्तोद, भेद, स्फुरण और जंभाई ये उपद्रव उत्पन्न होतेहैं।

अंगशूलचिकित्सा ।

तंतैललवणाभ्यक्तंसेचयेदुष्णवारिणा । एरण्डपत्रनिष्क्वाथैःप्रस्तरैश्चोपपादयेत् ॥ यवान्कुलत्थान्कोलानिपञ्चमूलेतथोभये । जलाढकद्वयेपक्त्वापादशेषेणतेनच कुर्यात्सविल्वतैलोष्णलवणेनानुवासनम् ॥ निरूहणंसमाश्वस्तंद्रोण्यांसमवगाहयेत् । ततोभुक्तवतस्तस्यकारयेतानुवासनम् ॥ यष्टीमधुकतैलेनविल्वतैलेनवाभिषक् ।

अर्थ—उक्तरोगी के देहपर तेल और नमक का मर्दन करके उसे गरमजल से सेचन करै तथा अरंड के पत्तों के क्वाथ से सेचन करै प्रस्तर स्वेद का प्रयोग करै।

जौ, कुलथी, बेर, दसमूल इनको अठगुने जल में पक्क कर के चौथाई शेष रहने पर उतार लेवै, फिर इस में प्रमाणसे विल्वतैल और सैंधानमक मिलाकर गरम २ से अनुवासन देवै। तथा निरूहण देकर रोगी के स्वस्थ होनेपर जलसे भरीहुई द्रोणीमें स्नान करावै फिर भोजन कराके भोजन के पचनेपर अनुवासन देवै। इसमें मुलहटी के तेल का वा विल्व के तैल का अनुवासन दिया जाता है ॥

परिकर्त्तिकाकीचिकित्सा।

मृदुकोष्ठाल्पदोषस्यरूक्षतीक्ष्णोऽतिमात्रवान् ॥ वस्तिदोषान्निरस्याशुजनयेत्परिकर्तिकाम्। त्रिकवंक्षणवस्तीनांतोदंनाभेरधोरुजम् ॥ विवन्धाल्पाल्पमुत्थानंगुदनिर्लेखनंभवेत्। स्वादुशीतौषधैस्तत्रपयइक्ष्वादिभिःशृतम् ॥ यष्टयाह्वतिलकल्काभ्यांवस्तिस्यात्क्षीरभोजिनः।

अर्थ—ऐसे रोगी को जिसका कोष्ठ मृदु हो और दोष भी कम हों उसे रूक्ष,तीक्ष्ण और अतिमात्रावाली वस्ति देने से दोषों के निकलने पर परिकर्त्तिका रोग उत्पन्न होता है। तथात्रिक, वंक्षण और वस्ति में सुई छिदने कीसी पीड़ा होती है, नाभिके नीचे वेदना होती है, विवन्ध और मलका थोड़ा थोड़ा स्राव होता है। वस्तिके अत्यन्त पीड़न करने से गुदा विदीर्ण होजाती है। इस में ईख आदि स्वादु और शीतल द्रव्यों के साथ औटाये हुए दूध में मुलहटी और तिलका कल्क मिलाकर पान करावै। इस में केवल दूध का पथ्य हित है।

पित्तरक्त में चिकित्सा।

पित्तरक्तेऽम्लउष्णोवातीक्ष्णोवालवणोऽथवा ॥ वस्तिर्लिखतिपायुंतुतीक्ष्णोऽतिविदहत्यपि। सविदग्धःस्रवत्यस्रंपित्तंचानेकवर्णवत् ॥ सार्यतेवहुवेगेनमोहंगच्छतिचासकृत्। आर्द्रशाल्मलिवृन्तैस्तुचुण्णैराजंपयःशृतम् ॥ सर्पिसायोजितंशीतंवस्तिमस्मैप्रदापयेत्। वटादिपल्लवेष्वेषःकल्पोयवतिलेषुच ॥ सुवर्चलोपोदकयोःकर्बुदारेचशस्यते। गुदेसेकाःप्रदेहाश्चशीताःस्युर्मधुराश्चये ॥ रक्तपित्तातिसारघ्नीक्रियाचात्रप्रशस्यते।

अर्थ—रक्तपित्त में खट्टी, गरम, तीक्ष्ण वा नमक की वस्ति देने से गुदा विदीर्ण होजाती है। अत्यन्त तीक्ष्ण होने पर विदाह भी होता है। इस तरह गुदा के विदीर्ण और विदग्ध होने पर अनेक रंग का पित्त स्रावित होता है, तथा वहुत वेग से स्राव होने पर मूर्च्छा भी हो जाती है।

इस रोग में सेमर के कच्चे डंठलों को कूटकर उनके साथ बकरी का दूध सिद्ध करै। फिर इस में घृत मिलाकर ठंडा होने पर वस्ति देवै।

इसी तरह से बट आदि वृक्षों के पत्तों का कल्क अथवा जौ और तिलका कल्क अथवा सुवर्चला और पोई अथवा रक्त कनेर इन के साथ दूध औटाकर घृत मिलाकर ठंडा होने पर बस्ति देवै।

गुदा में शीतल परिषेक, मधुर द्रव्यों का शीतल लेप तथा रक्तपित्तनाशक और अतिसार नाशक चिकित्सा इस में करनी चाहिये।

अध्यायकाउपसंहार।

भवतिचात्र।

इत्येताव्यापदःप्रोक्तावस्तेःसाकृतिभेषजाः॥ बुध्याकात्स्न्र्येनतान्वस्तीन्नियुञ्जन्नापराध्यति।तीक्ष्णत्वंमूत्रविल्वादिलवणक्षारसर्षपैः॥प्राप्तकालंविधातव्यंक्षीराद्यैर्मार्दवंतथा।आपादतलमूर्द्धस्थान्दोषान् पक्काशयेस्थितः॥ वीर्येणवस्तिरादत्तेखस्थोऽर्कोभूरसानिव। यद्वत्कुसुम्भसंमिश्रात्तोयाद्रागंहरेत्पटः॥ तद्वद्द्रवीकृतात्कायान्निरूहोनिर्हरेत्मलान्।

अर्थ—ऊपर लिखी हुई रीतिके अनुसार वस्तिकी व्यापत् उन के लक्षण और चिकित्सा वर्णन कीगई हैं। इन सम्पूर्ण वातों को विचारकर वस्ति का प्रयोग करने से वैद्य अपराध का भागी नहीं होता है।

यदि योग्य समझाजाय तो गोमूत्र, विल्व, मैनफल, लवण, क्षार और सरसों मिलाकर वस्ति तीक्ष्णकरली जाती है। तथा दूध और घृतादि के मिलाने से वस्ति मृदु होजाती है॥

जैसे आकाश में स्थित सूर्य पृथ्वीके रसों को खींचलेता है उसीतरह से मलाशयस्थ वस्ति अपने वीर्य से पांव के तलुएसे लेकर मस्तक के तलुए तक के दोषों को खींच लेती है॥

जैसे वस्त्र कसूम मिलेहुए जलमें से ललाईको खींच लेता है उसी तरह स्नेहनस्वेदनादिसे द्रवकीहुई देह में से निरूहणवस्ति दोषों को खींचलेती है।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धिस्थानेवस्तिव्यापादिकासिद्धिर्नाम सप्तमोऽध्यायः॥ ७॥

अष्टमोऽध्यायः॥

अथातःप्रामृतयोगिकांसिद्धिंव्याख्यास्यामः॥ इतिहस्माहभगवानात्रेय।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अबहम प्रासृतयोगिका सिद्धिकी व्याख्या करेंगे॥

अथेमान्सुकुमाराणांनिरूहान्स्नेहनान्मृदून॥ कर्मणाविप्लुतानांचवक्ष्यामिप्रसृतैःपृथक्।

अर्थ—अबहम सुकुमार और परिश्रम से थकेहुए मनुष्यों के लिये जिसतरह मृदु निरूह और स्नेह का प्रयोग करना चाहिये उन के प्रसृत द्वारा अलग अलग प्रमाणों को कहेंगे॥

क्षीरात्द्वौप्रसृतौकार्यौमधुतैलघृतात्त्रयः॥ खजेनमथितोवस्तिर्वातघ्नोबलवर्णकृत्।

अर्थ—दो प्रसृत दूध और शहत, तेल तथा घी तीनों मिलेहुए तीन प्रसृत, इन सबको मिलाकर रई से मथकर वस्ति देवै। इस से वात दूर होजाती है तथा बल और वर्ण वढते हैं॥

एकैकःप्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिषः ॥ विल्वादिमूलक्काथात्द्वौकौलत्थात्द्वौस वातनुत् ।

अर्थ—तेल, प्रसन्ना, शहत और घी एक २ प्रसृत, विल्वादि पंचमूल का क्वाथ दो प्रसृत और कुलथी का क्वाथ दो प्रसृत, ये सब मिलाकर रई से मथकर वस्ति देवै तौ वात दूर होजाती है ।

पञ्चमूलरसात्पञ्चद्वौतैलात्क्षौद्रसर्पिषोः एकैकःप्रसृतोवस्तिःस्नेहनीयोऽनिलापहः

अर्थ—पंचमूल का क्वाथ पांच प्रसृत, तेल दो प्रसृत, शहत और घी एक एक प्रसृत इनको मिलाकर वस्ति देनेसे स्नेहन होता है और वादी दूर होजाती है ॥

वीर्यवर्द्धननिरूह ।

सैन्धवार्धाक्षएकैकःक्षौद्रतैलपयोघृतात्। प्रसृतोहपुषाख्यौचनिरूहःशुक्रकृत्परम्

अर्थ—सेंधानमक एक तोला, शहत, तेल, दूध और घी एक २ प्रसृत, इसी तरह हवुषा का क्वाथ एक प्रसृत । इन को मिलाकर निरूहण वस्ति देने से वीर्य की अत्यन्त वृद्धि होती है ।

पञ्चतिक्त निरूह वस्ति

पटोलनिम्बभूनिम्बरास्नासप्तच्छदाम्भसः ॥ चत्वारःप्रसृताएकोघृतात्सर्षप कल्कितः । निरूहःपञ्चतिक्तोऽयंमोहाभिष्यन्दकुष्ठनुत् ॥

अर्थ—परवल, नीमकी छाल, चिरायता, रास्ना और सप्तच्छद इनका क्वाथ चार प्रसृत, घी एक प्रसृत तथा उचित प्रमाण से सरसों का कल्क । इन सब को मिलाकरवस्तिका प्रयोग मोह, अभिष्यन्द और कुष्ठ को दूर कर देता है ।

क्रिमिनाशक वस्ति ।

विडङ्गत्रिफलाशिग्रुफलमुस्ताखुपर्णिजात्॥ कषायात्प्रसृताःपञ्चतैलादेकोविमथ्यतान् । विडङ्गपिप्पलीकल्कान्निरूहःक्रिमिनाशनः ॥

अर्थ—वायविडंग, त्रिफला, सहजने के बीज, मोथा और मूषिकपर्णी इन का क्वाथ पांच प्रसृत और तेल एक प्रसृत । इनमें योग्य प्रमाणसे वायविडंग और पीपल का कल्क डालकर मथ डाले । इस निरूहण वस्तिसे क्रिमि दूर होजाते हैं ।

वृष्यबस्ति ।

पयस्येक्षुस्थिरारास्नाविदारीक्षौद्रसर्पिषः एकैकःप्रसृतोवस्तिः कृष्णाकल्कोवृषत्वकृत् ।

अर्थ—क्षीरकाकोली, ईख, शालिपर्णी, रास्ना, विदारीकन्द, शहत और घी, इन मेंसे क्वाथ के योग्यों का क्वाथ और रसके योग्यों का रस एक एक प्रसृत लेकर पीपलका कल्क डालकर वस्ति दीजाय तौ अत्यन्त वृषता होती है ।

चत्वारस्तैलगोमूत्रदधिमण्डाम्लकाञ्जिकात् ॥ प्रसृताःसर्षपैःकल्कैर्विट्सङ्गानाहभेदनः ।

अर्थ—तेल, गोमूत्र, दधिमंड और अम्लकांजी एक एक प्रसृत और सरसों का

कल्क इनकी वस्ति देनेसे विष्ठाका विवन्ध और आनाह दूर होजाते हैं ।

श्वदंष्ट्राश्मभिदेरण्डरसात्तैलात्सुरातथा॥ प्रसृताःपञ्चयष्ट्याह्वकौन्तीमागधिकासिता । कल्कोवस्तिःसमानाहेमूत्रकृच्छ्रेपरो मतः ॥

अर्थ—गोखरू,पाखान भेद और अरंड की जड इनका क्वाथ तीन प्रसृत, तेल एकप्रसृत, और सुरा एक प्रसृत इन में मुलहटी,रेणुका, पीपल और मिश्री इनका कल्क उचित प्रमाण से डालकर वस्ति देवै । यह वस्ति आनाह और मूत्रकृच्छ्र में अत्यन्त उत्कृष्टहै

एतेसलवणाःकोष्णानिरूहाःप्रसृतानव ।

अर्थ—ये जो ऊपर नौ प्रकार की वस्ति कही गई हैं, इन में सेंधानमक डालकर कुछ गरम करलैनी चाहियें और फिर इनका प्रयोग करना चाहिये ।

मृदुवस्तौजडीभूतेतीक्ष्णोऽन्योवस्तिरिष्यते ॥ तीक्ष्णैर्विकर्षितैःस्वादुप्रत्यास्थापनमेवच ।

अर्थ—मृदुवस्ति जब निकाम होजाय तब तीक्ष्ण वस्ति देनी चाहिये, तथा तीक्ष्ण वस्ति के प्रयोग से रोगी के विकर्षित होने पर मधुर द्रव्यों के द्वारा आस्थापन करना हित है ।

वातोपसृष्टस्योष्णैःस्युर्गुदादाहादयोयदि। द्राक्षाम्बुनात्रिवृत्कल्कंदद्याद्दोषानुलोमनम् ॥ तद्धिपित्तशकृद्वातान्हृत्वादाहादिकान्जयेत् ।

अर्थ—जो वातरोगी मनुष्य को तीक्ष्ण वस्ति देने से गुदा में दाह आदि उपद्रव उत्पन्न हों तौ दाख के क्वाथ के साथ निसोथ का कल्क पान करावै । इससे दोषों का अनुलोमन होता है और पित्त, विष्ठा और वायु दूर होकर दाहादि उपद्रव शान्त होजाते हैं ।

शुद्धश्चापिपिबेत्शीतांयवागूंशर्करायुताम्।

अर्थ—इस तरह रोगी के शुद्ध होने पर उसे शीतल यवागू में शर्करा मिलाकर पान करावें ।

अथवातिविरिक्तःस्यात्क्षीणविट्कःसभक्षयेत् । माषयूषेणकुल्माषान्पिबेद्दध्यथवा सुराम् ॥

अर्थ—अत्यन्त विरेचनसे जिसका विष्ठा क्षीण होगयाहो उसे माषयूषके साथ कुलमाष का भोजन देवै अथवा दही वा सुरा का पान करावै ।

सातंचेदतिसार्येतप्रतिशूलैररोचकी । स तदाहपुषाकुष्ठनतदारुवचाःपिवेत् ॥

अर्थ—वस्ति देने से पीछे शूल, अरुचि और आमातिसार होतौ हाऊ बेर, कूठ, तगर, देवदारु और वच इनका चूर्ण पान करे ।

शकृद्वातमसृक्पित्तंकफंवायोऽतिसार्यते। पक्वैस्तत्रस्ववर्गीयैर्वस्तिःश्रेष्ठंभिषज्यितम्

अर्थ—वस्ति प्रयोग के पीछे विष्ठा, अधोवायु, रक्त पित्त और कफ अत्यन्त निकलता हो तौ अतिसार नाशक द्रव्यों से सिद्ध कीहुई वस्ति का प्रयोग अत्यन्त हितकर है ।

षण्णामेषांद्विसंसर्गात्त्रिंशद्भेदा भवन्तितु।
केवलैःसहषट्त्रिंशाद्विद्यात्सोपद्रवानपि ।

अर्थ—आम, विष्टा, वायु, रक्त, पित्त और कफ इन दो दो के मिलने से पन्द्रह भेद होते हैं तथा केवल आमादि छः और नौ उपद्रव जो आगे वर्णन किये जांयगे इनसब के मिलने से तीसभेद होते हैं ।

नौ उपद्रव ॥

शूलप्रवाहिकाध्मानपरिकर्त्तारुचिज्वरान्।
सतृष्णादाहमूर्च्छार्दींश्चैवांविद्यादुपद्रवान्

अर्थ—उपद्रव नौ प्रकार के होते हैं यथा-शूल, प्रवाहिका, आध्मान, परिकर्त्तिका अरुचि, ज्वर, तृष्णा, दाह और मूर्च्छा ये उपद्रव होते हैं ।

तत्रामेवमनंकार्य्यंव्योषाम्ललवणैर्युतम् ॥
पाचनंशस्यतेवस्तिरामेहिप्रतिषिध्यते ।

अर्थ—आमातिसार में त्रिकुटा, खटाई और नमक के साथ वमन कराना उचित है। अथवा पाचन देनाभी हित है परन्तु आम में वस्ति देना अहित ॥

वातघ्नग्राहिवर्गीयैर्वस्तिःशकृतिशस्यते ।
स्वाद्वम्ललवणःशस्तःस्नेहवस्तिसमीरणे॥
रक्तेरक्तेनपित्तास्रेकषायःस्वादुतिक्तकैः ।

अर्थ—विष्टा के अतिसार में वातनाशक और संग्राही वर्ग की औषधें देवै । वातातिसार में स्वादु, अम्ल और लवण द्रव्यों की स्नेहनवस्ति देवै । रक्तातिसार में बकरे आदि के रक्तकी वस्ति देवै । पित्तरक्त में कषाय, स्वादु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवै । कफातिसार में कषाय, कटु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवै ।

सार्येवाणेकफेवस्तिःकषायकटुतिक्तकः ।
शकृतावायुनाचामेतेनवर्चस्यथाऽनिले॥
संसृष्टेऽन्तरपानंस्याद्व्योषाम्ललवणैर्युतम् ।

अर्थ—आमविष्टा से युक्त अतिसार में वा आमवायु से संसृष्ट अतिसार में वस्तिकर्म से पीछे त्रिकुटा का चूर्ण, कांजी और सैंधानमक पान करावै ।

पित्तेनामेऽसृजावाथितयोरामेनवापुनः ॥
संसृष्टयोर्भवेत्पानंसव्योषस्वादुतिक्तकम्

अर्थ—पित्त और आम के संसर्ग युक्त अतिसार में अथवा रक्त और आम के संसर्ग युक्त अतिसार में पित्तरक्त आम के संसर्ग युक्त अतिसारमें त्रिकुटा, स्वादु और तिक्त द्रव्यों का सेवन करना चाहिये ।

तथामेकफसंसृष्टेकषायव्योषातिक्तकम् ।
आमेतनुकफेव्योषकषायलवणैर्युतम् ॥

अर्थ—आमकफातिसारमें कषाय, त्रिकुटा और तिक्तद्रव्यों का सेवन करै । तथा आमसंसृष्ट अल्पकफ में त्रिकुटा, कषाय और नमक का सेवन हित है ।

वातेनविशिपित्तेवाविट्पित्तास्रैस्तथानिले । मधुराम्लकषायःस्यात्संसृष्टेवस्तिरुत्तमः ॥

अर्थ—वातसंसृष्ट विष्टातिसारमें अथवा वातपित्तातिसार में अथवा वातपित्तयुक्त विष्टातिसार में वातयुक्त पित्तरक्तातिसार में मधुर, अम्ल और कषाय द्रव्यों की वस्ति देना हित है ।

शकृच्छोणितयोःपित्तशकृतोरक्तपित्तयोः।
वस्तिरन्योन्यसंसर्गेकषायस्वादुतिक्तकः॥

अर्थ–विष्टा और रक्त अथवा विष्टा और पित्त अथवा रक्तपित्त इनके अतिसारमेंअथवा तीनों के सान्निपातिक अतिसार में कषाय स्वादु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवै।

कफेनविशिपित्तेवाकफेविट्पित्तशोणितैः।
व्योषतिक्तकषायःस्यात्संसृष्टेवस्तिरुत्तमः

अर्थ—कफविष्टातिसारमें वा कफपित्ताति-सार में तथा कफ, विष्टा,पित्त और रक्तके अतिसार में त्रिकुटा, तिक्त और कषाय द्रव्यों की वस्ति हित है।

स्याद्वस्तिर्व्योषतिक्ताम्लःसंसृष्टोवायुना कफे। मधुरव्योषतिक्तस्तुरक्तेकफाविमूर्च्छिते॥

अर्थ—वात कफातिसार में त्रिकुटा और तिक्त अम्ल द्रव्यों की वस्ति हित है। तथा कफ रक्तातिसार में मधुर, त्रिकुटा और तिक्त द्रव्यों की वस्ति उत्तम है।

मारुतेकफसंसृष्टेव्योषाम्ललवणोभवेत्।
वस्तिर्वातेनरक्तेतुकार्यःस्वादम्लतिक्तकः॥

अर्थ—कफसंसृष्ट वातातिसार में त्रिकुटा अम्ल और लवण द्रव्यों की वस्ति देवै। तथा वातसंसृष्ट रक्तातिसार में स्वादु,अम्ल और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देनी चाहिये।

त्रिचतुःपञ्चषड्योगानेवमेवविकल्पयेत्।
युक्तिश्चैषातिसारोक्तासर्वरोगेष्वपिस्मृता।

अर्थ—इसी तरह से आम, विष्टा,वायु पित्त, रक्त और कफ इन छः मलों के तीन तीन, चार चार, पांच पांच और छः दोषों के मिलने से बीस प्रकार के उपद्रव होते हैं, यथा–आमविष्टावात, आमविष्टापित्त, आमविष्टारक्त, आमविष्टाकफ, विष्टावात-पित्त, विष्टावातरक्त, विष्टावातकफ, वात पित्तरक्त, वातपित्त कफ और पित्तरक्त कफ। चार २ दोष वाले यथा--आमविष्टा वातपित्त, आमविष्टावातरक्त, आमविष्टावात कफ, विष्टावातपित्तरक्त, विष्टावातपित्तकफ और वातपित्तरक्तकफ। पांच पांच दोष वाले यथा--आमविष्टावातपित्तरक्त, आम-विष्टावातपित्तकफ और विष्टावातपित्तरक्त कफ। छः वाला एक, यथा--आमविष्टावात पित्तरक्तकफ।

अतिसार में कही हुई यही युक्ति सब रोगों में स्मरण रखनी चाहिये।

युगपत्षट्रसंपण्णांसंसर्गेपाचनंभवेत्॥
निरामाणांनपञ्चानांवस्तिंषाड्सिकोमतः

अर्थ—आमविष्टावातपित्तरक्तकफ इन छः ओं के संसर्ग में स्वादु अम्ललवणकटु तिक्त कषाय इन छः ओं का एक साथ प्रयोग करने से मल का पाक होता है तथा आमरहित अन्य पांच उपद्रवों के संसर्ग में छःओं रसों की वस्ति हित है।

उदुम्बरशलाटूनिजम्ब्वाम्रोदुम्बरत्वचः।
शंखसर्जरसंलाक्षांकर्दमंचपलाशिकम्॥
पिष्ट्वातैःसर्पिषःप्रस्थंक्षीरद्विगुणितंपचेत्।
अतीसारेषुसर्वेषुपेयमेतद्यथाबलम्॥

अर्थ—सूखा हुआ गूलर, जामनकी छाल, आमकी छाल, गूलरकी छाल, शंखका चूर्ण, राल, लाख और कर्दम अलग २ एक एक

पल लेकर पीसलेवै इस में एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूध मिलाकर पकावै। इस को सब प्रकार के अतिसारों में बल के अनुसार पान कराना उचित है।

कच्छुराधातकीविल्वसमंगारक्तशालिभिः। मसूराश्वत्थशुंगैश्चयवागूःस्याज्जलेशृतैः॥

अर्थ--केंचके बीज, घायकेफूल, बेलगिरी, लज्जालू, रक्तशाली, मसूर और पीपलके वृक्षकी डंठल इनके क्काथ के साथ सिद्ध करके यवागू पीनेसे आतिसार दूर होजाताहै।

बालोदुम्बरकट्वंगसमंगाप्लक्षपल्लवैः। मसूरधातकीपुष्पबलाभिश्चतथाभवेत्॥

अर्थ--नेत्रवाला, गूलर, श्योनाक, लज्जालू, पाकड़के पत्ते, मसूर, धाय केफूल, और खरैटी इनके क्काथ के साथ पूर्ववत् यवागू पान करे।

स्थिरादीनांबलादीनांइक्ष्वादीनामथापि वा। क्काथेपुसमसूराणांयवाग्वःस्यात्पृथक्पृथक्।

अर्थ--शालिपर्ण्यादि पंचमूल, अथवा बलादि गणोक्त द्रव्य, अथवा इक्ष्वादि गण के द्रव्योंके क्काथ के साथ मसूरकी यवागू पानकरै।

कच्छुरामूलशाल्यादितण्डुलैरुपसाधितः दधितक्रारनालाम्लक्षारोक्षिचुरसेऽपि वा। शीताःसशर्कराक्षौद्राःसर्वातीसारनाशनाः॥ ससर्पिर्मरिचाजाज्योमधुरालवणाःशिवाः॥

अर्थ--केंचकी जड़ के क्काथके साथ शालीतंडुलों की यवागू अथवा दही, तक्र, कांजी, जवाखार और ईखके साथ सिद्धकी हुई यवागू के ठंडा होने पर उसमें चीनी और शहत मिलाकर पान करनेसे सब प्रकारके आतिसार दूर होजाते हैं। सब प्रकारकी यवागू मेंघी, काली मिरच, जीरा, मधुर द्रव्य और नमक येमसाले भी डाल देने चाहियें।

अध्यायकाउपसंहार।

तत्रश्लोकाः।

स्निग्धाम्ललवणमधुरंपानंबस्तिश्चमारुतेकोष्णम्॥ शीतंतिक्तकषायंमधुरंपित्तेचरक्तेच। तिक्तोष्णकषायकटुश्लेष्मणिसंग्राहिवाततुच्छकृति॥ पाचनमामेपानंपिच्छासृग्बस्तयोरक्ते। अतिसारात्प्रत्युक्तंमिश्रंद्वन्द्वादियोगजेष्वपिच॥ तत्रोद्रेकविशेषाद्दोषेषूपक्रमःकार्यः।

अर्थ--वातमें स्निग्ध, अम्ल, लवण और मधुर औषध सेवन करनी चाहिये और वस्ति कुछ कुछ उष्ण होनी चाहिये। पित्त और रक्त में शीतल, तिक्त, कषाय और मधुर औषधों का सेवन हित है। कफमें तिक्त, उष्ण, कषाय और कटु द्रव्य सेवन करनी चाहिये। मलमें संग्राही और वातनाशक औषधों का सेवन हितहै। आम में पाचन द्रव्योंका सेवन हितहै। रक्तमें पिच्छा वस्ति और रक्त वस्ति का सेवन उत्तम है। इसी तरह से द्वन्द्वजादि और सान्निपातिक आतिसारमें भी समझना

चाहिये । मिश्रित दोषों में जिस दोषकी आधिकता दीख पड़े उसीके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

प्रासृतिकाःसव्यापत्क्रियानिरूहास्तथा तिसारहिताः ॥ रसकल्पघृतयवागश्चो क्तागुरुणाप्रसृतासिद्धाविति ।

अर्थ---इस प्रासृतकासिद्धि अध्याय में सम्पूर्ण प्रासृतिक योग, जुदे २ उपद्रव, उनकी जुदी २ चिकित्सा, अतिसार को दूर करनेवाली भिन्न २ प्रकारकी निरूहण वस्ति रसोंकी कल्पना, घृत और यवागू वर्णन कियेगये हैं ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांसिद्धिस्थानेप्रासृतियोगिकासिद्धिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः ।

अथातःत्रिमर्मीयांसिद्धिंव्याख्यास्यामः॥ इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम त्रिमर्मीय सिद्धि की व्याख्या करेंगे ।

सप्तोत्तरंमर्मशतंअस्मिन्शरीरेस्कन्धशाखाश्रितमग्निवेश ! तेषामन्यतमपीडायांसमधिकपीडाभवतिचेतनानिबद्धवैशेष्यात्

अर्थ—हे अग्निवेश ! इस शरीरमें स्कन्ध और शाखाओं में आश्रित एकसौसात मर्म हैं । इन मर्मों में से किसी एकमें भी पीडा होनेसे सम्पूर्ण शरीर में अत्यन्त व्याकुलता उत्पन्न होती है क्योंकि मर्मस्थान में चेतना विशेषरूपसे निबद्ध है.

मर्मस्थानों में गुरुता ।

तत्रशाखाश्रितेभ्योमर्म्मभ्यः स्कन्धाश्रिताभिगरीयांसिशाखानांतदाश्रितत्वात्। स्कन्धाश्रितेभ्योऽपिहृद्वस्तिशिरांसितन्मूलत्वाच्छरीरस्य ।

अर्थ—इन में से जो मर्म शाखा में (हाथ पांवों में) आश्रित हैं उन से स्कन्ध के मर्म्म गुरुतरहै । (स्कन्धसिर और धड़) क्योंकि शाखा भी स्कन्ध के आश्रित हैं । स्कन्धाश्रित मर्मों में भी अन्य मर्मोंकी अपेक्षा हृदय, वस्ति और शिर अत्यन्त गुरुतर हैं, क्योंकि येही शरीर के मूल हैं ॥

तत्रहृदिदशधमन्यःप्राणोदानमनोबुद्धिचेतनामहाभूतानिचनाभ्यामराइवप्रतिष्ठितानि ।

अर्थ—जैसे नाभि में अमरानाडी रहती है, उसी तरह हृदय में दस धमनियां रहती हैं । प्राण, उदान, मन, बुद्धि और चेतना ये भी हृदयहीमें रहती हैं । शरीर के अन्य अंगों की अपेक्षा हृदय में पंचमहाभूत का स्थान भी अधिकतर है ।

शिरसीन्द्रियाणिइन्द्रियप्राणवाहानिचस्रोतांसिसूर्यमिवगभस्तयःसंश्रितानि ॥

अर्थ—जिस तरह सूर्य में सम्पूर्ण किरणें आश्रित हैं उसी तरह मस्तक में सम्पूर्ण

इन्द्रियां और इन्द्रियों के प्राण वाही स्रोत आश्रित हैं ।

वस्तिस्तुस्थूलगुदमुष्कसेवनीशुक्रमूत्रवाहिनीनानालीनां । मध्येमूत्राधारोम्बुवाहानां सर्वस्रोतसामुदधिरिवापगानां ॥ प्रतिष्ठिताभवतिबहुभिश्चतन्मूलैर्मर्मसंज्ञकैःस्रोतोभिर्गगनमिव । दिनकरैर्व्याप्तमिदंशरीरम् ॥

अर्थ–स्थूल अंत्र, अंडकोष, सीवन, शुक्रवाहिनी नाडी और मूत्रवाहिनी नाडियों के बीच में वस्ति होती है । जैसे समुद्र सब नदियों के बीच में रहता है इसतरह यह वस्ति भी सम्पूर्ण जलवाही स्रोतोंकी मूत्राधार है अर्थात् मूत्र यहीं आकर इकट्ठा होता है । जैसे आकाश सूर्यकी किरण जालों से व्याप्त है, उसीतरह से यह सम्पूर्ण शरीर भी तन्मूल मर्म्मसंज्ञक स्रोतों के जाल से व्याप्त है ।

तेषांत्रयाणामन्यतमस्यापिभेदादाश्वेवभेदःस्यादाश्रयनाशादाश्रितस्यनाशःतदुपरतात्तुघोरव्याधिप्रादुर्भावस्तस्मादेतानिविशेषेणरक्ष्याणि । बाह्याभिघाताद्वातादिदोषेभ्यश्च॥

अर्थ—उक्त तीनों मर्म्मो मेंसे किसी एक मर्मका भेद होनेसे शीघ्रही शरीर का भेद होजाताहै, क्योंकि आश्रयका नाश होनेसे आश्रित का भी नाश होजाता है । इन मर्मस्थानों के उपघात से अनेकघोर व्याधियां उत्पन्न होजाती हैं, इसलिये इन मर्मस्थानो की वाह्य अभिघात और आन्तरिक वातादिदोषों से विशेषरक्षा करनी चाहिये ।

हृदयाभिघातके उपद्रव ।

तत्रहृदयभिहतेकासश्वासबलक्षयकंठशोषक्लोमाकर्षणजिह्वानिर्गममुखतालुशोषापस्मारोन्मादप्रलापचित्तनाशादयःस्युः

अर्थ—इन मर्म्मों में से हृदय में चोट लगने पर खांसी, श्वास, बल की क्षीणता, कंठशोष, क्लोमाकर्षण, जिह्वाका बाहर निकलना, मुखशोष, तालुशोष, अपस्मार, उन्माद, प्रलाप और संज्ञानाश ये उपद्रव होते हैं ।

शिरमें चोटके उपद्रव ।

शिरस्यभिहतेमन्यास्तम्भार्दितचक्षुर्विभ्रममोहवेष्टनचेष्टानाशकासश्वासहनुग्रहमूकगद्गदत्वनिमीलनगण्डस्पन्दनजृम्भणलालास्रावस्वरहानिवदनजिह्मत्वादीनि

अर्थ—सिरमें चोट लगने से मन्यास्तम्भ, अर्दित, नेत्रविभ्रम, मोह, अंगडाई, चेष्टानाश, खांसी, श्वास, हनुग्रह, मूकता, गद्गदता, चक्षुनिमीलन (आंखों में झपकी आना), गंडस्पन्दन, जंभाई, लालास्राव, स्वरभंगता, और मुखका टेढा पड़ जाना, ये उपद्रव होते हैं ।

वस्तिमें चोटके उपद्रव

वस्तौतुवातमूत्रवर्चोनिग्रहवंक्षणमेहनवस्तिशूलकुण्डलोदावर्तगुल्मवर्ध्मानिलाष्ठीलोपस्तम्भनाभिकुक्षिगुदश्रोणिग्रहादयः ।

अर्थ—वस्ति में चोट लगने से अधोवायु, मूत्र और विष्ठा का विबन्ध, वंक्षणशूल, लिंगशूल, वस्तिशूल, वात कुंडल, उदावर्त,

गुल्म, वातष्ठीला, उपस्तम्भ, नाभिग्रह, कुक्षिग्रह, गुदग्रह, और श्रोणिग्रह, ये उपद्रव होते हैं ।

वाताद्युपसृष्टानांत्वेषांलिङ्गानिचिकित्सितेसक्रियाविधीन्युक्तानि । किन्त्वेतानि विशेषतोऽनिलाद्रक्ष्याएयनिलोहिपित्तकफसमुदीरणेहेतु ॥ प्राणमूलश्चसचवस्तिसाध्यतमः । तस्मान्नवस्तिसमंकिञ्चित्कर्ममर्म्मपरिपालनम् ॥

अर्थ—चिकित्सितस्थान में वातादिदोषों से संसृष्ट इन मर्मस्थानों के उपद्रवों के लक्षण और उनकी चिकित्सा विधिपूर्वक वर्णन करदीगई है, किन्तु ये तीनों मर्म वायु से अधिकतर रक्षा के योग्यहैं क्योंकि वायुही पित्तकफ के उदीर्ण करने का हेतु है । यह प्राणमूल वायु अन्य उपायों की अपेक्षा वस्तिकर्म से अत्यन्त साध्य होती है । इसलिये मर्म्मों की रक्षाके लिये वस्ति कर्म से अधिक और कोई उपाय नहीं है।

तत्रषडास्थापनस्कन्धान्विमानेद्वौचानुवासनस्कन्धाविहचविहितान्वस्तीन्बुध्याविचार्यमहामर्म्मपरिपालनार्थंप्रयोजयेद्वातव्याधिचिकित्साञ्च ।

अर्थ—इन में से विमानस्थान में छः आस्थापन स्कन्ध और सिद्धिस्थान में दो अनुवासन स्कन्ध वर्णन कियेगये हैं । इनका बुद्धि द्वारा अत्यन्त विचार करके महामर्मों की रक्षा के लिये इनका प्रयोग करना चाहिये । यदि इन मर्मों में वेदना होने लगे तौ वातव्याधिके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये ।

वातोपसृष्टहृच्चिकित्सा ।

भूयश्चहृद्युपसृष्टेवातेहिंगुचूर्णलवणानामन्यतमचूर्णसंयुक्तंमातुलुङ्गस्यरसेनवान्येनवाम्लेनहृद्येनवापाययेतस्थिरादिपञ्चमूलरसःसशर्करःपानार्थंविल्वादिपञ्चमूलरससिद्धाचयवागूःहृद्रोगविहितञ्चकर्म।

अर्थ—वात द्वारा हृदय के उपसृष्टहोने पर हिंगुचूर्ण या और किसी प्रकारके नमक के साथ पेया बनाकर बिजौरे का रस वा और किसी खट्टे द्रव्य का रस डालकर पान करै । शालिपर्ण्यादि पंचमूलके क्वाथ में शर्करा डालकर पानकरै अथवा विल्वादि पंचमूल के क्वाथ में सिद्धकी हुई यवागू पानकरै । तथा हृदयरोग में कही हुई चिकित्सा भी हित हैं ।

वातोपसृष्टशिरकीचिकित्सा ।

मूर्ध्नितुवातोपसृष्टेऽभ्यङ्गस्वेदनोपनाहनस्नेहपाननस्तःकर्मावपीडधूमादीनि ।

अर्थ—वातोपसृष्ट शिर में अभ्यंग, स्वेदन उपनाहन, स्नेहपान, नस्यकर्म, अवपीडन और धूमादिकर्म प्रशस्त हैं ॥

वातोपसृष्टवस्तिमेंचिकित्सा ।

वस्तौतुकुम्भीस्वेदोवर्तयश्च । श्यामादिभिर्गोमूत्रसिद्धोनिरूहः । बिल्वादिभिस्वरसासिद्धःशरकाशेक्षुदर्भगोक्षुरकमूलशृतक्षीरैश्च । त्रपुसैर्वारुखराश्वाबीजयवान्हृद्धीकल्कितोनिरूहः । पीतदारु

कसिद्धतैलानुवासनः । तैल्वकञ्चसर्पि विरेकार्थम् ।

अर्थ—वातोपसृष्ट वस्ति में कुम्भी स्वेद और वर्तिप्रयोगप्रशस्तहैं।त्रिवृतादि दसद्रव्यों का क्वाथकरके गोमूत्र में मिलाकर निरूहण देना चाहिये । विल्वादि पंचमूल के क्वाथ के साथ सरकंडे की जड, कुशाकी जड, ईख की जड और गोखरूकी जड इन से सिद्ध किया हुआ दूध मिलाकर वस्ति का प्रयोग उत्तम है । अथवा खीरा ककडी के वीज वन अजवायन इनके क्वाथ में ऋद्धि वृद्धि का कल्क डालकर निरूह देवै । सरलकाष्ट डालकर सिद्ध किये हुए तेल की अनुवासन देवै । तथा विरेचन कराने के लिये तिल्वक डालकर सिद्ध किया हुआ घृत हित है ।

शतावरीगोक्षुरकबृहतीकण्टकारिकागुडूची पुनर्नवोशीरमधुकाद्विशारिवालोध्रश्रेयसी कुशकाशमूलकषायक्षीरचतुर्गुणंबलावृषर्ष भकखराश्वोपकुञ्चिकात्सकत्रपुषैर्वारु वीजशितिमारकमधुकवचाशतपुष्पाश्मभे दमदनफलकल्कसिद्धंतैलमुत्तरवस्तिर्नि रूहशुद्धास्निग्धास्विन्नस्य वस्तिशूलमूत्रावि कारहरइति ॥

अर्थ—सितावर, गोखरू, वडी कटेरी, छोटी कटेरी, गिलोय, सांठ, उशीर, मुलहटी, निसोथकी जड, अनन्तमूल, लोध, गजपीपल, कुशाकी जड, कांसकी जड, इन सब द्रव्यों का क्वाथ क्वाथ से चौगुना दूध तथा खरैटी, अडूसा, ऋषभक, वन अजवायन कालाजीरा, इन्द्रजौ, खीराके वीज, ककडी के वीज, सितिमारक, मुलहटी, वच, सौंफ, पाषाण भेद और मेनफल इन द्रव्यों का कल्क और तेल मिलाकर पाक करै । पीछे रोगी को निरूहित, शुद्ध, स्निग्ध और स्वेदित करके इस तेलकी उत्तर वस्ति देनी चाहिये इस से वस्तिशूल और मूत्र विकार दूर होजाते हैं ।

मर्म प्रकरण का उपसंहार ।

भवतिचात्र ।

हृदिमूर्ध्निचवस्तौचनृणांप्राणाःप्रतिष्ठिताः तस्मात्तेषांसदायुक्तःकुर्वीतपरिपालनम् ॥

अर्थ—हृदय, मूर्द्धा और वस्ति में मनुष्यों के प्राण रहते हैं । इस लिये युक्ति पूर्वक इन मर्मों की रक्षा करनी चाहिये ।

आघातवर्जनंनित्यंस्वस्थवृत्तानुवर्तनम् । उत्पन्नार्त्तिविघातश्चमर्मणांपरिपालनम् ॥

अर्थ—मर्मोंकी रक्षाके लिये नित्य प्रति चोटसे वचना, स्वस्थवृत्ति का अनुसरण करना और उत्पन्न रोगों का नष्ट करना ये ही उपाय हैं ।

अतऊर्द्धविकारायेत्रिमर्मीयेचिकित्सिते । नप्रोक्तामर्मजास्तेषांकांश्चिद्वक्ष्यामिसौष धान् ॥

अर्थ—जो जो मर्म संवंधी रोग त्रिमर्मीय चिकित्सिताध्याय में वर्णन करने से रह गये हैं अव उनका चिकित्सा सहित वर्णन किया जाता है ।

अपतन्त्रकके लक्षण ।

क्रुद्धःस्वैःकोपनैर्वायुःस्थानादूर्द्धंप्रपद्यते । पीडयन्हृदयंगत्वाशिरःशंखौचपीडयन् ॥

नमयेच्चाक्षिपेच्चांगान्युच्छ्वासंनिरुणद्धि च । उच्छ्वसितिसचकृच्छ्रेणस्तब्धाक्षोऽथानिमीलनः ॥ कपोतइवकूजंश्चनिःस ज्ञश्चोऽपतन्त्रकः ।

अर्थ—अपने उदीर्ण होने के कारणों से वायु कुपित होकर अपने स्थान से ऊपर को जाती है और हृदय में पहुंचकर हृदय को अत्यन्त पीडित करती है, सिर और कनपटी में अत्यन्त वेदना उपस्थित करती है। अंगों को झुकादेती है और आक्षेपण करती है, श्वास को रोक देती है अथवा श्वास कठिनता से आता है। आंख स्तब्ध होजाती है अथवा आंखें झपकी चली जाती हैं। कंठ में कबूतर की गुटरगूंके सदृश शब्द होने लगता है। वेहोशी छा जाती है, इसे ही अपतंत्रक कहते हैं।

अपतानक के लक्षण ।

दृष्टिंसंस्तम्भ्यसंज्ञाञ्चहत्वाकण्ठेनकूजति॥ हृदिमुक्तेनरःस्वास्थ्यंयातिमोहंवृतेपुनः । वायुनादारुणंप्राहुरेकेतदपतानकम् ॥

अर्थ—नेत्रों का स्तब्ध होना, वेहोशी होना, कण्ठ में कूजन होना, हृदय से वायु के दूर होने पर स्वस्थता होना, तथा वायुके फिर आवृत होने पर अस्वास्थ्य होना ये सब लक्षण दारुण अपतानक के हैं।

श्वसनःकफवाताभ्यांरुद्धस्तस्यविमोचयेत् । तीक्ष्णैःप्रधमनैःसंज्ञान्तांस्मुमुक्षासु विन्दति ॥

अर्थ—जिस मनुष्य का श्वास कफ और वात से रुक गया हो उस श्वास को तीक्ष्ण प्रधमन द्वारा निकालने का यत्न करै। श्वास के खुलने पर चेतभी होजाता है।

मरिचंशिग्रुवीजानिविडंङ्गंचफणिज्झकम् एतानिसूक्ष्मचूर्णानिदद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥

अर्थ—कालीमिरच, सहजने के बीज, वायविडंग, फणिज्झक, इन को महीन पीसकर शीर्ष विरेचन देवै।

तुम्बुरूण्यभयाहिंगुपौष्करंलवणत्रयम् । यवक्काथाम्बुनापेयंहृत्पार्श्वाद्यपतन्त्रके ॥

अर्थ—धनियां, हरड, हींग, पौहकरमूल, सैंधानमक, संचरनमक और विडनमक इनके चूर्ण को जौके क्वाथ के साथ पान करने से हृदयशूल, पार्श्वशूल और अपतंत्रक दूर होजाते हैं।

हिंग्वम्लवेतसंशुण्ठींससौवर्चलदाडिमम्। पिवेद्वातकफघ्नश्चकर्म्महृद्रोगनुद्धितम् ॥ शोधनावस्तयस्तीक्ष्णाहितास्तस्यचकृत्स्नशः । सौवर्चलाभयाव्योषैःसिद्धन्तुस्याद्घृतंहितम् ।

अर्थ—हींग, अमलवेद, सोंठ, संचलनमक और अनारका छिलका इनका चूर्ण पान करने से उक्त रोग दूर होजाते हैं, इन में वातकफनाशक और हृद्रोगनाशक क्रिया भी हित हैं। इन रोगों में शोधनकर्त्ता तीक्ष्णवस्ति पूर्णरीति से उपयोगी होती हैं। तथा संचलनमक हरड और त्रिकुटा इन के साथ सिद्ध किया हुआ घृत भी हित है।

तन्द्रारोगकाहेतु ।

मधुरस्निग्धगुर्वम्लसेवनाच्चिन्तनाच्छ्र मात् । शोकाद्व्याध्यनुषङ्गाच्चवायुनोदीरितःकफः ॥ यदासौसमवस्कन्द्यहृदयं हृदयाश्रयान् । समावृणोतिज्ञानादींस्त दातन्द्रोपजायते ॥

अर्थ—मधुर, स्निग्ध, भारी और खट्टे पदार्थों के अत्यन्त सेवन से, चिन्ताकरने से परिश्रम से, शोक से, व्याधि के अनुषंग से वायु के कारण कफ उदीर्ण होकर जब रोगी के हृदय को आवृत करलेता है तब हृदय के आश्रयभूत ज्ञान आदि को आवृत करलेता है उस समय तन्द्रानामक रोग उत्पन्न होता है ।

तन्द्रा के लक्षण ।

हृदयेव्याकुलीभावोवाक्चेष्टेन्द्रियगौरव म् । मनोबुद्ध्यप्रसादश्चतन्द्रायांलक्षणं मतम् ॥

अर्थ—हृदय में व्याकुलता, वाणी में भारापन, चेष्टा में भारापन और इन्द्रियों में भारापन, मन और बुद्धिकी अप्रसन्नता ये सब तन्द्रा के लक्षण हैं ।

तन्द्रा में चिकित्सा क्रम ।

कफघ्नंतत्रकर्तव्यंशोधनंशमनानिच । व्यायामोरक्तमोक्षश्चभोज्यञ्चकटुतिक्त कम् ॥

अर्थ—तन्द्रारोग में कफनाशक,संशोधन तथा रोगी के दुर्बल होनेपर संशमन क्रिया करनी चाहिये यदि यह तन्द्रा ज्वरादि रोगों से उत्पन्न न हुई हो तो व्यायाम, रक्तमोक्षण और कटु तिक्त द्रव्यों के साथ भोजन भी हित है ।

वस्तिरोगों के भेद ।

मूत्रौकसादंजठरंकृच्छ्रंस्रोतसङ्गसंक्षयम् । मूत्रातीतोऽनिलाष्ठीलावातवस्त्युष्णमारु तौ ॥ वातकुण्डलिकाग्रन्थिविड्घातोव स्तिकुण्डलम् । त्रयोदशैतेमूत्रस्यदोषास्तां ल्लिंगतःशृणु ॥

अर्थ—मूत्रौकसाद, मूत्रजठर,मूत्रकृच्छ्र,मूत्रोत्संग,मूत्रसंक्षय,मूत्रातीत,वाताष्ठीला, वात वस्ति,उष्णवायु, वात कुंडलिका,ग्रन्थि,विडघात और वस्ति कुंडल । ये तेरह मूत्र के विकार हैं । अब इन के लक्षणों का वर्णन करते हैं ।

मूत्रौकसाद के लक्षण

पित्तंकफंद्वयंवापिवस्तौसंहन्यतेयदा । मारुतेनतदामूत्रंरक्तपीतंघनंसृजेत् ॥ स दाहंश्वेतसान्द्रंवासर्वैर्वालक्षणैर्युतम् । मूत्रौकसादंतंविद्यात्पित्तश्लेष्महरैर्जयेत् ॥

अर्थ—पित्त वा कफ अथवा दोनों पित्त कफ जब वायुके कारण वस्ति में इकट्ठे होजाते हैं तब लाल, पीला और गाढा पेशाव होने लगता है अथवा दाह युक्त सफेद और गाढ़ा पेशाव होता है अथवा समस्त लक्षणों से युक्त पेशाव होता है । इसे मूत्रौकसाद कहते हैं । इसमें पित्तकफनाशक क्रिया करनी चाहिये ।

मूत्रजठरकीसहेतुचिकित्सा ।

विधारणात्प्रतिहतंवातोदावर्तिनंयदा । पूरयत्युदरंमूत्रंतदातदानिमित्तरुक् ॥ अ

पक्तिमूत्रविट्सङ्गैस्तन्मूत्रजठरंवदेत् । मूत्रवैरेचनींतत्राचिकित्सांसंप्रयोजयेत् ॥ हिंगुद्विरुत्तरंचूर्णंत्रिमर्मीयेप्रकीर्तितम् ।हन्यान्मूत्रोदरानाहंध्मापितंगुदमेढ्रयोः ।

अर्थ— मूत्र के उपस्थित वेगको रोकने से मूत्र प्रतिहत होकर जब वायुके कारण उलटा लौटता है तब उदर को पूरण करके मूत्र वहां स्थित होजाता है और विना कारण ही वेदना होने लगती है। फिर धीरे २ पाचन शक्ति कम होजाती है और मूत्र तथा विष्टा का विवन्ध होजाता हैइसे मूत्र जठर कहते हैं । इस में मूत्र के विरेचन करने वाली चिकित्सा करनी चाहिये। तथा त्रिमर्मीय चिकित्सित अध्याय में जो द्विरुत्तर हिंगु चूर्ण वर्णन किया गया है वहभी हित है । इसके प्रयोग से मूत्ररोग, उदर रोग आनाह अफरा तथा गुदा और लिंग के अन्य रोगभी दूर होजाते हैं ।

मूत्र कृच्छ्रके लक्षण

मूत्रितस्यव्यवायात्तुरेतोवाताद्धतंच्युतम्॥ पूर्वंमूत्रस्यपश्चाद्वास्रवेत्कृच्छ्रंतदुच्यते ।

अर्थ—जो मूत्रका वेग उपस्तित होरहा हो और उस समय स्त्री गमन करै तौ शुक्र वायु से उद्धूत होकर मूत्र के मार्ग में रहजाता है । इस में ऐसा होता है कि शुक्र निकलने के पीछे मूत्र झरता है वा मूत्र निकलने के पीछे शुक्र झरता है । इस रोग को मूत्र कृच्छ्र कहते हैं ।भाषा में यह शोजाक के नाम से प्रसिद्ध है ।

मूत्रोत्संगकेलक्षण ।

खवैगुण्यानिलाक्षेपैःकिञ्चिन्मूत्रस्यतिष्ठति ॥ मणिसन्धौस्रवेत्पश्चात्तंसम्यग्वाथवातिरुक् । मूत्रोत्सङ्गःसविच्छिन्नउच्छ्रोषोगुरुशेफसः ॥

अर्थ—मूत्र मार्गके विगुण होने और वायुके आक्षेप से मूत्र करते समय कुछ मूत्र लिंग की मणिकी सान्धियों में ठहर जाता है और पीछे विना वेदना के वा अत्यन्त वेदनासे निकल जाता है इसी विछिन्न मूत्र रोध को मूत्रोत्संग कहते हैं । इस रोग से लिंग में भारापन भी होजाता है ।

मूत्र संक्षयके लक्षण ।

वाताकृतिर्भवेद्वातान्मूत्रेशुष्यतिसंक्षयः ।

अर्थ—वायुके प्रकुपित होनेके कारणजब मूत्रसूखकर क्षीण होजाता है उसे मूत्र संक्षय कहते हैं । इस में वातप्रकोप के लक्षण मिलते हैं ।

मूत्रा तीतके लक्षण

चिरंधारयतोमूत्रंत्वरयानप्रवर्त्तते । वाहमानस्यमन्दंवामूत्रातीतःसउच्यते ॥

अर्थ—मूत्रके उपस्थित वेग को बहुत देर तक रोककर फिर प्रस्राव करने से मूत्र जलदी नहीं निकलता है अर्थात् बहुत धीरे धीरे निकलता है । इसी को मूत्रातीत कहते हैं ।

वाताष्ठीला के लक्षण ।

वस्तिमाध्मापयन्क्रुद्धोगुदावायुश्चलोन्नताम् । कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलांमूत्रविण्मार्गरोधिनीम् ॥

अर्थ—कुपित हुई वायु वस्ति और गुदा को फुलाकर चलायमान ऊंची अत्यन्त तीव्र वेदना युक्त वाताष्ठीला को उत्पन्न करती है। इस से विष्टा और मूत्रका मार्ग रुक जाता है।

वातवस्ति के लक्षण।

मूत्रमाधारयेद्वस्तौवायुःक्रुद्धोविदारणात्। मूत्ररोधार्तिकण्डूभिर्वातवस्तिःसउच्यते॥

अर्थ—क्रुद्ध वायु वस्ति में मूत्र को रोक लेती है। इस रुकावटसे मूत्ररोध, वेदना और खुजली उत्पन्न होती है, इसे वात वस्ति कहते है।

उष्णवात के लक्षण।

ऊष्मणासौश्मकंमूत्रंशोषयन्रक्तपीतकम्। उष्णवातःसृजेत्कृच्छ्राद्वस्त्युपस्थार्त्तिदा ह्वत्॥

अर्थ—पित्तकी गरमी मूत्र को सुखा देती है। इस से मूत्र गरम और लाल वा पीला वडे कष्ट से होता है। इसे उष्णवात कहते हैं। इस से वस्ति और उपस्थ में वडी वेदना होती है।

वातकुंडलिका के लक्षण।

गतिसङ्गादुदावृत्तःसमूत्रस्थानमार्गयोः॥ मूत्रस्यविगुणोवायुर्भग्नव्याविद्धकुण्डली। मूत्रंविहन्तिसंस्तम्भभङ्गगौरववेष्टनैः॥ तीव्ररुक्मूत्रविट्सङ्गैर्वातकुण्डलिकेतिसा।

अर्थ—वायु विगुण होकर मूत्राशय और मूत्र के मार्ग को रोक देती है, इससे मूत्र ऊपर को फिर चढने लगता है। यह वायु भग्न और व्याविद्ध होकर चक्कर खाजाती है, इससे मूत्राघात उत्पन्न होता है। इस रोग में स्तम्भता, टूटने की सी वेदना, भारापन, ऐंठन, तीव्रशूल, मूत्रविवन्ध और पुरीष विवन्ध ये लक्षण होते हैं। इसे वातकुंडलिका कहते हैं।

मूत्रग्रन्थि के लक्षण।

रक्तंवातकफाद्दुष्टंवस्तिद्वारेसुदारुणम्॥ ग्रन्थिंकुर्यात्सकृच्छ्रेणसृजेन्मूत्रंतदावृतम्। अश्मरीसमशूलन्तंमूत्रग्रन्थिंप्रचक्षते।

अर्थ—वायु और कफके कुपित होजाने से विगडा हुआ रुधिर वस्ति के द्वारपर एक दारुण गांठ उत्पन्न करता है। इस गांठसे रुकजाने के कारण मूत्र वडी कठिनतासे होता है। इसमें पथरी के समान घोर वेदना होती है। इस रोग को मूत्रगन्थि कहते हैं।

विड्विघात के लक्षण।

रूक्षदुर्वलयोर्वातेनोदावृत्तंशकृद्यथा॥ मूत्रस्रोतःप्रपद्येतविट्संसृष्टंतदानरः। विड्गन्धंमूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातंविनिर्दिशेत्॥

अर्थ—रूक्ष और दुर्वल मनुष्यके वात के प्रकोप से उलटा फिर हुआ विष्टा मूत्र वाही स्रोत पर आक्रमण करलेता है। ऐसा होने से विष्टा मिला हुआ मूत्र कठिनता से निकलने लगता है और इस में विष्टा कीसी दुर्गन्ध आती है। इसरोग को विड्विघात कहते हैं।

वस्ति कुंडल के लक्षण।

द्रुताध्वलङ्घनायासैरभीघातात्प्रपीड़ना

त् । स्वस्थानाद्वस्तिरुद्वृत्तः स्थूलस्तिष्ठति गर्भवत् ॥ शूलस्पन्दनदाहार्तोबिन्दुंबिन्दुं स्रवत्यपि । पीडितःसंसृजेद्धारासंस्तम्भो द्वेष्टनार्तिमान् । वस्तिकुण्डलमाहुस्तंघोर शस्त्रविषोपमम् ॥ पवनप्रबलप्रायोदुर्निवार्यमबुद्धिभिः ।

अर्थ—जल्दी चलने से, भ्रमण करने से, छलांग मारने से, परिश्रम करने से, चोट लगने से, प्रपीडन से बस्ति अपने स्थान से उलटी फिरकर गर्भ की तरह स्थूल होकर ठहरजाती है । इस से वस्ति में शूल, स्पन्दन, दाह और वेदना होती है और मूत्र बूंद २ टपककर निकलता है । वस्ति को हाथ से दवाने पर मूत्र की धारा निकलती है परन्तु निकलते समय संस्तम्भन, उद्वेष्टन और बड़ी घोर वेदना होती है । इस रोगको वस्तिकुण्डल कहते हैं, यह शस्त्र और विष के समान दारुण रोग है । इस रोगमें प्रायः वातकी प्रवलता होती है । यह रोग निर्बुद्धि वैद्य से अच्छा नहीं होसक्ता है ।

तस्मिन्पित्तान्वितेदाहःशूलमूत्रविवर्णता ॥ श्लेष्मणागौरवंशोफःस्निग्धंमूत्रंघनंसितम् ।

अर्थ—इन रोगों में यदि वायु पित्तान्वित होती है तौ दाह, शूल और मूत्रकी विवर्णता होती है । यदि कफान्वित होती है तौ वस्ति में भारापन और सूजन, तथा मूत्र में चिकनाई, गाढापन और सफेदाई होती है ॥

श्लेष्मरुद्धाबिलोवस्तिःपित्तोदीर्णोनसिध्यति ॥ अविभ्रान्ताविलःसाध्योनत्वयः कुण्डलीकृतः ।

अर्थ—जो वस्ति कफ से रुद्ध हो और कुपित पित्त से युक्त हो वह असाध्य होती है । परन्तु कुंडलीकृत वस्ति कफ द्वारा रुद्ध न होनेपर भी असाध्य होती है ।

कुंडलीभूतवस्ति के लक्षण ।

स्याद्वस्तौकुण्डलीभूतेतृड्मोहःश्वासएवच

अर्थ—वस्ति के कुंडलीभूत होनेपर तृषा, मोह और श्वास ये उपद्रव होते हैं ।

दोषाधिक्यमपेक्ष्यैतानमूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत् । वस्तिमुत्तरवस्तिंचसर्वेषामेवयोजयेत् ॥

अर्थ—मूत्रसंवंधी इन सम्पूर्ण रोगों में जिस दोषकी अधिकता हो उसीके अनुसार मूत्रकृच्छ्रको दूर करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये । इन सव प्रकारके रोगों में उत्तर वस्ति देना हित है ।

उत्तरवस्तिकावर्णन ।

पुष्पनेत्रंतुहेमंस्यात्सूक्ष्ममौत्तरवास्तिकम् । जातीपुष्पस्यवृन्तेनसमंगोपुच्छसंस्थितम् ॥ रौप्यंवासर्षपच्छिद्रंद्विकर्णद्वादशांगुलम् ।

अर्थ—उत्तरवस्ति का नल सुवर्ण का बनाया जाता है इसका मुख चमेलीके फूल के डंठल के समान सूक्ष्म होता है और यह नल गौकी पूंछ के समान वीचमें मोटा होता है, यदि सुवर्ण का न होसकै तो चांदी केसेही काम चलजाता है । इस के मुख का छिद्र सरसों के समान होता है इसकी लम्बाई बारह अंगुलकी होती है, तथा इस में दो कर्णिका होती हैं ।

उत्तरवस्तिकीमात्राकाप्रमाण ।

तेनाजवस्तियुक्तेनस्नेहस्यार्धपलंनयेत् ॥
यथावयोविशेषेणस्नेहमात्रांविकल्पयवा ।

अर्थ—बकरे की वस्ति से भी उत्तर वस्ति बनाई जाती है । उत्तरवस्ति द्वारा आधा पल स्नेह दियाजाता है । अथवा अवस्था के अनुसार भी स्नेहकी मात्रान्यून वा अधिक होसक्ती है ।

उत्तरवस्ति के देनेकी रीति ।

स्नातस्यभुक्तभक्तस्यरसेनपयसापिवा ॥
सृष्टविण्मूत्रवेगस्यपीठेजानुसमेमृदौ ॥
ऋजोसुखोपविष्टस्यहृष्टेमेढ्रेघृतान्विते ।
शलाकयान्विष्यगतिंयद्यप्रातिहताव्रजेत् ॥
ततःशेफःप्रमाणेनपुष्पनेत्रंप्रवेशयेत् । गुदवं
न्मूत्रमार्गेणप्रणयेदनुसेवनीम् ॥

अर्थ—रोगी को स्नान कराके मांसरस वा दूध के साथ भात का भोजन करावै । फिर मलमूत्र का त्याग करवा के घुटने के समान ऊंचे कोमल आसन पर सीधा विठा देवै परन्तु इसमें रोगीको किसी प्रकार का क्लेश न होनेपावै। फिर चिकित्सक रोगी के लिंगको हृष्ट और घृताभ्यक्त कर के उस के छिद्रमें सलाई डालकर मार्ग को देखै कि मार्गकहां तक ठीक है । यदि सलाई बिना रुके चली जाय तो लिंग के समान उस के भीतर वस्ति का नल प्रवेश करदे । इसके प्रवेश करते समय वडीही सावधानी का काम है कहीं ऐसा न हो कि हाथ हिलजाय।प्रवेश करते समय इसका मुख लिंग और गुदाके बीच में जो सीवन होती है उसकी ओर होना चाहिये ।

वस्तिकीगतिका वर्णन ।

हिंस्यात्ध्यातिगतंवस्तिंदूनेस्नेहोनगच्छति ।

अर्थ—अत्यन्त वेग से प्रेरित की हुई वस्ति अनिष्ट संपादन करती है और अत्यन्त मन्द वेग से प्रेरित वस्ति उचित स्थान पर नहीं पहुंच सक्ती है ।

सुखंप्रपीड्यनिष्कम्पंनिष्कर्षेन्नेत्रमेवच
प्रत्यागतेद्वितीयंतुतृतीयंचप्रदापयेत् ।
अनागच्छन्नुपेक्ष्यस्तुरजनीव्युषितस्यच॥

अर्थ—जिस तरह निष्कम्पता के साथ वस्ति नल प्रवेश कियागया है उसी तरह से पीडन करके निष्कम्पताके साथ निकाल लैना चाहिये । वस्ति के प्रत्यागत होने पर दूसरी और तीसरी वस्ति देवै । जो वस्ति प्रत्यागत न हुई हो तो एक रात्रि तक उपेक्षा करनी उचित है ।

प्रत्यागमनकाउपाय ।

पिप्पलीलवणागारधूमापामार्गसर्षपैः ।
वार्ताकुरसनिर्गुण्डीशम्पाकैःससहाचरैः॥
मूत्राम्लपिष्टैःसगुडैर्वर्तिंकृत्वाप्रवेशयेत् ।

अर्थ—पीपल, सेंधानमक, धूमसा, ओंगा के बीज, सरसों, बेंगन का रस, निर्गुण्डी, अमलतास का गूदा और सहचरी इनको गोमूत्र और कांजी के साथ पीसकर गुड मिलाकर बत्ती बनाकर लिंग में प्रवेश करने से वस्ति प्रत्यागमन करलेती है ।

बत्तीकाआकारादिवर्णन ।

अग्रेतुसर्षपाकारापश्चान्माषसम्मिताम्॥

नेत्रदीर्घांघृताभ्यक्तांसुकुमारामभंगुराम् ।
नेत्रवन्मूत्रनाड्यांतुपायौवांगुष्ठसम्मिताम्॥

अर्थ—बत्ती का मुख आगेकी ओर सरसों के समान और नीचे को आधे उरद के बराबर होना चाहिये । यह भी वस्ति नल के समान बारह अंगुल लम्बी बनाई जाती है । यह कोमल हो, टूटी हुई न हो और इसपर घी भी चुपड़ देना चाहिये । जो बत्ती मूत्रनाडी में होकर प्रविष्ट कीजाती है उसका आकार वस्ति के नल के सदृश होता है और जो गुदामार्ग द्वारा प्रविष्ट कीजाती है वह हाथ के अंगूठे के समान होती है ।

उत्तरवस्तिमेंपथ्यादिवर्णन ।

स्नेहेप्रत्यागतेताभ्यांसानुवासनिकोविधिः
परिहारश्चसव्यापत्ससम्यक्दत्तस्यलक्षणः

अर्थ—स्नेह के प्रत्यागत होने पर वही पथ्यादि सेवन करने चाहियें जो अनुवासन में वर्णन किये गये हैं, उत्तर वस्तिमें किसी प्रकार का उपद्रव खड़ा होजाय तौ वही काम करना चाहिये जो अनुवासन संबंधी उपद्रवों में वर्णन कियागया है । सम्यक् प्रदत्त उत्तर वस्ति के लक्षण सम्यक् प्रदत्त अनुवासन बस्ति के सदृश होते हैं ।

स्त्रीको उत्तरवस्ति ।

स्त्रीणांचार्त्तवकालेतुप्रतिकर्मतदाचरेत् ।
गर्भाशनासुखंस्नेहंतदादत्तेह्यपावृता ॥
गर्भयोनिस्तदाशीघ्रंजितेगृह्णातिमारुते ।

अर्थ—जोस्त्रीको उत्तरवस्ति दैनी हो तौ ऋतुकाल में दैनी चाहिये क्योंकि उससमय योनि गर्भ ग्रहणके योग्य होतीहै और उसका मुख खुला रहता है इस लिये स्नेह को सुख पूर्वक ग्रहण कर सकती है । उस समय उत्तर वस्ति के देने से वायुके दूर होजाने के कारण गर्भ भी शीघ्र रहजाता है ।

वस्तिजेषुविकारेषुयोनिविभ्रंशजेषुच ॥
योनिशूलेषुतीव्रेषुयोनिव्यापत्स्वसृग्दरे ।
अप्रस्रवतिमूत्रेचबिन्दुंबिन्दुंस्रवत्यपि ॥
विदध्यादुत्तरंवस्तिंयथास्वौषधसंस्कृतम् ।

अर्थ—सब प्रकार के वस्ति विकार, योनि विभ्रंश जन्य विकार, तीव्रयोनिशूल, योनिव्यापत्, रक्त प्रदर, मूत्ररोध, और मूत्र के बिन्दुबिन्दु टपकना । इन सब रोगों में स्त्रियों को भिन्न २ औषधियों से संस्कार की हुई उत्तर वस्ति दैनी चाहिये ।

स्त्रियों की वस्ति का प्रमाण ।

पुष्पनेत्रप्रमाणन्तुप्रमदानांदशांगुलम् ॥
मूत्रस्रोतःपरीणाहंमुद्गस्रोतोऽनुवाहिच ।
गर्भमार्गेतुनारीणांविधेयंचतुरंगुलम् ।
द्व्यंगुलंमूत्रमार्गेतुबालायास्त्वेकमंगुलम् ।

अर्थ—स्त्रियोंकी उत्तर वस्ति का नल दस अंगुलका होता है । इसकी स्थूलता मूत्र के स्रोतकी स्थूलता के समान बनवावे । इसकी गति मूत्र के स्रोतके अनुरूप होती है । नलका छिद्र मूंगकी बरावर होना चाहिये । स्त्रियों के गर्भ मार्ग में चार अंगुल वस्ति, मूत्रमार्ग में दो अंगुल और बालिका के एक अंगुल लम्बी वस्ति होनी चाहिये ।

उत्तानायाःशयानायाःसम्यक्सङ्कोच्य
सक्थिनी । अथास्याःप्रणयेन्नेत्रंमनुवंश

गतंपुखर् ॥ द्वित्रिश्चतुरितिस्नेहानहोरात्रे णयोजयेत् ॥ त्रस्तिवस्तोप्रणीतेचवस्ति श्चान्तराभवेत् । त्रिरात्रंकर्मकुर्वीतस्ने हमात्रांविवर्द्धयेत् ॥ अनेनैवविधानेनक

र्मकुर्य्यात्पुनस्त्र्यहात् ।

अर्थ—स्त्रियों को उत्तर वस्ति देने के समय चित्त शयन करा देवै, दोनों पांव इकट्ठे कर दे फिर योनि में पीठके वांसे की ओर मुखकर के वस्तिनल को प्रविष्ट करै । एक दिन रात में दो तीन वा चार वार स्नेह का प्रयोग करै । इसतरह वस्ति के प्रत्यागमन करने पर फिर वस्तिका प्रयोग करै । इस तरह तीन दिन करता रहै परन्तु वस्ति की मात्रा उत्तरोत्तर वढा दैनी चाहिये फिर तीन दिन ठहर कर इसी तरह से फिर वस्ति देनी चाहिये ।

शंखकके सहेतु लक्षण ।

अतःशिरोविकाराणांकाश्चिद्भेद ःप्रवक्ष्य ते ॥ रक्तपित्तानिलादुष्टाःशंखदेशेविमू र्च्छिताः । तीव्ररुग्दाहरागांहिशोफंकुर्व न्तिदारुणम् ॥ सशिरोविषवद्वेगीनिरुध्या शुगलंतथा । शंखकोऽग्निनिभःक्षिप्रंवि नाशयतिमानवम् ॥ जीवेत्त्र्यहंचेद्भैषज्यं प्रत्याख्यायास्यकारयेत् । शिरोविरेक

सेकादिसर्वंवीसर्पनुच्चयत् ॥

अर्थ—अव हम सिरके विकारों के कुछ भेद वर्णन करते हैं । कनपटी में रक्त,पित्त और वायु दूषित होकर उस जगह तीव्र वेदना, दाह, राग और शोफ उत्पन्न हो-जाते हैं । यह रोग विष के समान वेगवान् होता है और कंठ को रोककर अग्निवत् शीघ्रही मनुष्य को मार डालता है । यदि रोगी तीन दिवस तक जीता रहै तव यह कहकर कि रोगी असाध्य है, चिकित्सा करै । इस रोग में शिरोविरेचन, परिषेक और सव प्रकारकी विसर्पनाशक क्रिया करै।

अर्द्धावभेदकके सहेतु लक्षण ।

रूक्षात्यध्यशनात्पूर्ववातावश्यायमैथुनैः। वेगसन्धारणायासव्यायामैःकुपितोऽनि लः । केवलःसकफोवार्द्धंगृहीत्वाशिरस स्ततः ॥ मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटार्धे चवेदनाम् । शस्त्राशनिनिभांकुर्य्यात्ती व्रांसोऽर्धावभेदकः ॥ नयनंवाथवाश्रो

त्रमतिवृद्धोविनाशयेत् ।

अर्थ—रूक्षभोजन,अतिभोजन,अध्यशन, पुरवैया पवन, ओस, मैथुन, मलमूत्रादि वेग धारण, परिश्रम और व्यायाम, इनसे वायु कुपित होकर स्वयं वा कफ के साथ मिलकर आधे मस्तक में स्थित होजाती है, और मन्या, भ्रकुटी, कनपटी कान और नेत्र तथा आधे मस्तक में शस्त्र वा वज्रके समान तीव्र वेदना उत्पन्न करती है । यह अर्द्धाव भेदक रोग जव बहुत वढ जाता है तव नेत्र और कानों को भी हानि पहुंचाता है ।

अर्द्धावभेदककी चिकित्सा

चतुःस्नेहोत्तमांमात्रांशिरःकायविरेचनम्। नालीस्वेदोपनाहादिकुर्यादन्तेऽग्निकर्मच जीर्णञ्चघृतंदेयंवस्तिकर्मानुवासनम् ॥ प्र तिश्यायेशिरोरोगेयच्चोद्दिष्टंचिकित्सितम्।

अर्थ—इस अर्द्धावभेदक रोग में चार प्रकार के स्नेह की उत्तम मात्रा का पान कराना चाहिये । नाड़ी स्वेद उपनाह, अग्निकर्म, पुराना घृत और अनुवासन वस्ति कर्म इस रोग में प्रशस्त हैं, तथा प्रतिश्याय और शिरो रोग में जो २ चिकित्साएं कही गई हैं वेभी इस रोग मे करनी चाहिये ।

सूर्य्यावर्त्त के सहेतुलक्षण

सन्धारणाद्यजीर्णाद्यैर्मस्तिष्कंरक्तमारुतौ॥ दुष्टौदूषयतस्तच्चदुष्टंताभ्यांविमूर्च्छितम्। सूर्योदयांशुसन्तापाद्दुःखंविष्यन्दतेश नैः ॥ ततोदिनेशिरःशूलंदिनवृध्याचव र्द्धते । दिनक्षयेचततस्त्यानोमस्तिष्केसं प्रशाम्यति ॥ सूर्यावर्तःसतत्रस्यात्सर्पि रौत्तरभक्तिकम् ।

अर्थ—मल मूत्रादि वेगोंके संधारण और अजीर्णादि कारणों से रक्त और वायु दूषित होकर मस्तक को दूषित करदेते हैं। इस तरह रक्त वात से दूषित मस्तक में सूर्यकी किरणों के ताप से ज्यों २ दिन चढता है मस्तक में वेदना बढती चलीजाती है, तथा दुपहर पीछे ज्यों २ दिन घटता है वेदना भी घटती चलीजाती है । इस रोग को सूर्य्यावर्त्त कहते हैं, इसमें भोजन के पीछे घृतपान कराना हित है ।

सूर्य्यावर्त्तमेंउपाय ।

शिरःकायविरेकौचमूर्ध्नांत्रिस्नेहधारणम्॥ जांगलैरुपनाहश्चघृतक्षीरैश्चसेचनम् । वर्हितित्तिरिलावादिशृतक्षीरोत्थितंघृतम् नावनंजीवनीयाष्टगुणक्षीरोपसाधितम्॥

अर्थ—इस रोग में शिरो विरेचन, कायविरेचन,मस्तकमें तैल धारण, जांगल मांसका उपनाह,तथा घृत और दुग्ध से सेचन करना हित है । मोर, तीतर, लवा आदि जांगल पक्षियों का मांस डालकर औटायेहुए दूध का घी, जीवनीय गणोक्त द्रव्योंका कल्क और अठगुना दूध मिलाकर पाक करै।इस घृत की नस्य लैने से यह रोग जाता रहता है ।

अनन्तवात के लक्षण ।

उपवासातिशोकातिरूक्षशीताल्पभोजनैः। दुष्टादोषास्त्रयीमन्यापश्चाद्घाटेतुवेदनाम् तीव्रांकुर्वन्तिसाचाक्षिभ्रूशंखेष्ववतिष्ठते। स्यन्दनंगण्डपार्श्वस्यनेत्ररोगंहनुग्रहम् ॥ सोऽनन्तवातस्तंहन्यात्शिरोकावर्तनाशनैः

अर्थ—उपवास करना, अनन्त शोक करना, अत्यन्त रूखा और शीतल भोजन करना वा अत्यल्प भोजन करना । इन बातों से तीनों दोष कुपित होकर मन्या के पिछले भाग में अत्यन्त तीव्र वेदना उत्पन्न करते हैं, और यह वेदना आंख भ्रकुटी और कनपटी में स्थित होकर गण्डस्थल के इधर उधर स्पन्दन, नेत्ररोग और हनुग्रह को उत्पन्न करती है । इस रोग को अनन्तवात कहते हैं इसमें उदावर्त्त वाशिनी क्रिया हित है ।

शिरः कम्प के लक्षण ।

वातोरूक्षादिभिःक्रुद्धःशिरःकम्पमुदीरयेत् । स्नेहस्वेदातिवातघ्नंशस्तंनस्यश्चतर्पणम् ।

अर्थ—रूक्षादि सेवन से क्रुद्ध हुई वात शिरः कम्पको उत्पन्न करती है इस में वातनाशक स्नेह, स्वेद तथा नस्य और तर्पण हित है।

शिरोरोग में नस्यकी प्रधानता।

नस्यकर्म्मचकुर्वीतशिरोरोगेषुसूक्ष्मवित्॥ द्वारंहिशिरसोनासातेनतद्व्याप्यहन्तितान्।

अर्थ—सब प्रकार के शिरोरोगोंमें नस्य कर्म करना हित है क्योंकि नासिका सिर का द्वार है, इस द्वार से प्रेरित औषध मस्तक में पहुंचकर उस के सब रोगोंको नष्ट करदेती है।

नस्यकर्मकेभेद।

नावनश्चावपीडश्चध्मापनंधूमएवच॥ प्रतिमर्षश्चविज्ञेयंनस्तःकर्मतुपञ्चधा।

अर्थ—नावन, अवपीड, ध्मापन, धूम और प्रतिमर्ष। ये पांच नस्यके भेद हैं।

नावनादि के लक्षण

स्नेहनःशोधनश्चैवस्नेहःस्यान्नावनंद्विधा॥ शोधनःस्तम्भनश्चस्यादवपीडोद्विधामतः। चूर्णस्याद्ध्मापनंसन्धिदेहस्रोतोविशोधनम्॥ विज्ञेयस्त्रिविधोधूमःप्रागुक्तःशमनादिकः। प्रतिमर्षोभवेत्स्नेहोनिर्दोषउभयार्थकृत्॥

अर्थ—नावन के स्नेहन और शोधन दो भेद हैं। शोधन और स्तम्भन ये दो भेद अवपीड़के हैं ध्मापन नस्य उसे कहते हैं कि इस का चूर्ण दो मख के नल में भर कर फूंक मार कर नाक में पहुंचाया जाता है इस से देह के सम्पूर्ण स्रोत शुद्ध होजाते हैं। धूमके शमनादिक तीन भेदों का वर्णन पहिले हो चुका है। प्रतिमर्ष में स्नेहका प्रयोग होता है, यह संशोधन और संशमन दोनों काम करता है और निर्दोष भी है।

नस्यके कर्म।

एवंतद्रेचनंकर्मतर्पणंशमनंत्रिधा।

अर्थ—इसीतरह रेचन, तर्पण और शमन ये नस्य के ये तीन कर्म हैं।

रेचन साध्यरोग।

स्तम्भसुप्तिगुरुत्वाद्याःश्लैष्मिकायेशिरोगदाः॥ शिरसोरेचनंतेषुनस्तःकर्म्मप्रशस्यते।

अर्थ—मस्तक की स्तम्भता, सुप्ति, भारापन तथा अन्य कफजन्य रोगों में रेचन कर्म हित है।

तर्पणसाध्यरोग।

येचवातात्मकारोगाःशिरःकम्पार्दितादयः। शिरसस्तर्पणंतेषुनस्तःकर्मप्रशस्यते॥

अर्थ—जो शिरःकम्प और अर्दित से आदि लेकर वातात्मक रोगहैं उनमें तर्पण नस्य प्रधान है।

शमनसाध्यरोग।

रक्तपित्तादिदोषेषुशमनंनस्यमिष्यते॥

अर्थ—रक्तपित्तादि दोषों में शमननस्य हितकारी होती है।

ध्मापनंधूमपानश्चयथायोग्येषुशस्यते। दोषादिकंसमीक्ष्यैवभिषक्सम्यक्चकारयेत्॥

अर्थ—दोषादिक की परिक्षा कर के

यथा योग्य ध्मापन और धूमपानका प्रयोग करना चाहिये ।

विरेचनद्रव्य ।

फलादिभेषजंप्रोक्तंशिरसोयद्विरेचनम् ॥ तच्चूर्णंकल्पयेत्तत्रपचेत्स्नेहविरेचनम् ।

अर्थ—पहिले जो शिरोविरेचन के लिये फलादि द्रव्य वर्णन कियेगयेहैं उन्हीं द्रव्यों के साथ स्नेह को सिद्ध कर के शिरोविरेचन देना चाहिये ।

तर्पणद्रव्य ।

यदुक्तंमधुरस्कन्धेभेषजंतेनतर्पणम् ॥ साधयित्वाभिषक्स्नेहंनस्तः कुर्याद्विधान वित् ।

अर्थ—मधुरस्कन्ध में जिन द्रव्यों का वर्णन कियागया है उन द्रव्यों के साथ स्नेह सिद्ध कर के तर्पण देवै ।

तर्पणकीरीति।

प्राक्सूर्येमध्यसूर्येवाप्राक्कृतावश्यकस्यच॥ उत्तानस्यशयानस्यशयनेस्वास्तृतेसुखम्। प्रलम्बशिरसःकिञ्चित्किञ्चित्पादोन्नत स्यच ॥ दद्यान्नासापुटेस्नेहंतर्पणंबुद्धिमा न्भिषक् ।

अर्थ—प्रातःकाल वा मध्यान्हके समय मलमूत्रादि आवश्यकीय कर्मों के पीछे रोगी को सुखदाई शय्यापर आराम से सीधा शयन कराके सिर कुछ नीचा करा देवै और पांवों को सुकड वा देवै । इस तरह शयन कराके नासिका के छिद्र में स्नैहिक तर्पण भर देवै ।

अनवाक्शिरसोनस्यंनशिरःप्रतिपद्यते । अत्यर्थवाक्शिरसोनस्यंमस्तुलुङ्गेचातिष्ठते ॥

अर्थ—विना नीचा सिर किये नस्य देने से वह सिर में नहीं पहुंचती है और अत्यन्त नीचा सिर करके देने से भेजेमें पहुंचजाती है।

अतएवशयानस्यशुद्ध्यर्थंस्वेदयेच्छिरः ॥ संस्विन्नासापुटंनाम्यवामेनाङ्गुष्ठपर्वणा। हस्तेनदक्षिणेनाथकुर्यादुभयतःसमम् ॥ प्रणाल्यापिचुनावापिनस्तःस्नेहंयथाविधि। कृतेचस्वेदयेद्भूयआकर्षेच्चपुनःपुनः ॥ तं स्नेहंश्लेष्मणासाकंतथास्नेहोनातिष्ठति ।

अर्थ—इस लिये रोगी को शयन कराके मस्तक की शुद्धिके लिये प्रथम सिर को स्वेदित करै पीछे वांये अंगूठे के पोरुए से नासिका के पुटों को उठाकर दोनों का समान भाव में करके नल के से वा रुई के फोए से विधि पूर्वक नस्यकर्म करै । इस तरह नस्यकर्म करके फिर स्वेदन देवै । ऐसा करनें से स्नेह कफके साथ वाहर निकल आवेगा मस्तक के भीतर न रह सकैगा ।

स्वेदनोत्क्लेशितःश्लेष्मानस्तःकर्मण्यु पस्थिते ॥ भूयःस्नेहस्यशैत्येनशिरसि स्त्यायतेततः । श्रोत्रमन्यागलाद्येषुविका रायसकल्पते ॥

अर्थ—मस्तक का कफ स्वेदन से उत्क्लिष्ट होजाता है परन्तु नस्यकर्म के स्नेह की शीतलता से फिर जमजाता है । इससे कान मन्या और कंठ आदि में विकार उत्पन्न होजाते हैं ।

ततोनस्तःकृतेधूमंपिबेत्कफविनाशनम् ।

हितान्नभुङ्निवातोष्णसेवीस्यान्निहते
न्द्रियः ॥

अर्थ—तत्र नस्यकर्म करने के पीछे कफ नाशक धूमपान करै, पथ्य अन्न का सेवन निर्वात स्थान में वास और उष्णसेवन करै तथा जितेन्द्रियतासे रहै।

प्रधमापन विधि ।

विधिरेषोऽत्रपीडस्यकार्यःप्रधमापनस्यतु।
तत्षडंगुलयानाड्याधमेच्चूर्णमुखेनतु ॥

अर्थ—यह ऊपर लिखी हुई विधि अव पीडनकी कही गई है। छः अंगुलकी नली में नस्य का चूर्ण भरकर फूंक मारने से जो चूर्ण मस्तक में पहुंचाया जाता है वह प्रधमापन नस्य है।

शिरोविरेचन के पश्चात्कर्म ।

विरिक्तशिरसंतूष्णंपाययित्वाम्बुभोजये
त्। लघुत्रिष्वविरुद्धश्चनिवातस्थमतन्द्रि
तम् ॥

अर्थ—शिरोविरेचन के पीछे रोगी को गरम जल पान कराके तीनों दोषों से अविरुद्ध लघुभोजन कराके निवात स्थान में वैठावै परन्तु नींद न लेने देवै।

विरेकशुद्धौदोषस्यकोपनंयस्यसेवते। स
दोषोविचरंस्तत्रकरोतिस्वानगदानबहून्॥
यथास्वंविहितंतेषुक्रियांकुर्याद्विचक्षणः।

अर्थ—विरेचन के द्वारा शरीर के शुद्ध होने पर जो मनुष्य दोषों को कुपित करने वाले आहार विहार का सेवन करता है, उस के यथा दोष अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते है। ऐसे रोगों में जैसा दोष हो उसी के अनुसार चिकित्सा करना उचित है।

नस्यकर्म के अनुचित काल ।

अकालकृतजानाश्चरोगाणामनुरूपतः ॥
अजीर्णेभोजनेभुक्तेतोयेपीतेऽथदुर्दिने।
प्रतिश्यायेनवेस्नानेस्नेहपानेऽनुवासने ॥
नावनंस्नेहनंरोगानकरोतिश्लैष्मिकान्ब
हून। तत्रश्लेष्महरःसर्वःतीक्ष्णैश्चोष्णादि
भिर्हितः॥

अर्थ—कुसमय में नस्यकर्म करने से जो जो उपद्रव होते हैं उनकी चिकित्सा भी उनहीं के अनुसार की जाती है, वेकुसमय ये हैं, यथा–अजीर्ण में, भोजन करके जल पीकर, मेघाच्छादित दिन में, जुकाम में स्नान करतेही, स्नेहपान करके, अनुवासन कर्म के पीछे स्नैहिक नस्य का प्रयोग करने से बहुत प्रकार के कफजरोग उत्पन्न होते हैं। ऐसे स्थान पर सब प्रकारकी कफनाशक तीक्ष्ण और उष्ण क्रिया हित।

क्षामेविरेचितेगर्भेव्यायामाभिहतेतृषि।
वातोरूक्षेणनस्येनक्रुद्धःस्वान्जनयेद्गदान्
तत्रवातहरःसर्वोविधिःस्नेहनबृंहणः।
स्वेदादिःस्यत्घृतंक्षीरंगर्भिण्यास्तुविशे
षतः ॥ ज्वरशोकाभितप्तानांतिमिरंमद्यप
स्यतु। रूक्षैःसेकाञ्जनैर्लेपःपुटपाकैश्च
शोधयेत् ॥

अर्थ—क्षीण, विरेचित, गर्भिणी, शारीरिक परिश्रम से थकित और तृषित मनुष्यों को नस्य देने से वायु कुपित होकर वातात्मक रोगों को उत्पन्न करती है। इस में

सब प्रकार की वातनाशक विधि, स्नेहन, बृंहण, स्वेदन, घृत और दूध हितकर हैं। और ये सब विधि गर्भिणी स्त्री के लिये तथा ज्वर और शोक से पीडित मनुष्यों के लिये बहुत उपयोगी हैं। मद्यप मनुष्य के तिमिररोग को रूक्ष, सेक, अंजन, लेप और पुटपपाक द्वारा शुद्ध करै।

स्नेहनंशोधनंश्चैवद्विविधंनावनेमतम्। प्रतिमर्षश्चतस्यार्थंकरोतिनचदोषवान्॥ नस्तःस्नेहांगुलिंकुर्यात्प्रातर्निशिचसर्वदा नचोच्छिंघेदरोगाणांप्रतिमर्शःसदाढ्यकृत्

अर्थ—नस्यकर्म स्नेहन और शोधन दो प्रकार का होता है, प्रतिमर्ष दोनों प्रकार की नस्यका काम देता है और निर्दोष भी है।

स्नेह में अंगुली डुबोकर प्रतिदिन प्रातः काल और रात्रि के समय नाक के छिद्रमें डालकर सूंघै परन्तु जोरसे न सूंघै। निरोगी मनुष्यों को प्रतिमर्ष दृढ़ करता है।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन।

त्रीणियस्मात्प्रधानानिमर्माण्यभिहतेषुच। तेषुलिङ्गंचिकित्साश्चरोगभेदाश्चसौषधाः॥ विधिरुत्तरवस्तेश्चनस्तःकर्मविधिस्तथा। सव्यापद्भेषजांसिद्धौमर्माख्यायांप्रकीर्तितमिति॥

अर्थ—इस त्रिमर्मीय सिद्धिनामक अध्याय में हृदयादि तीन प्रधान मर्मों में चोटलगने से जो जो विकार होते हैं, उन के लक्षण चिकित्सा, उन विकारों के जुदे २ भेद उनकी चिकित्सा उत्तरवस्ति की विधि, नस्यकर्म की विधि, उन के बिकार तथा उनकी चिकित्सा ये सब बातें वर्णन की गई हैं।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धिस्थानेत्रिमर्म्मीयसिद्धिर्नाम नवमोऽध्यायः॥९॥

दशमोऽध्यायः॥

अथातोवस्तिसिद्धिंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वस्ति सिद्धि की व्याख्या करेंगे॥

सिद्धानांवस्तीनांशस्तानांतेपुतेषुरोगेषु॥ शृण्वग्निवेश! गदतःसिद्धिंसिद्धिप्रदांभिषजाम्।

अर्थ—हे अग्निवेश! अब हम भिन्न २ रोगोंकी अनुभव कीहुई और हितकारी वस्तियों को कहतेहैं। इन के प्रयोग करने से वैद्य को सिद्धि मिलती है।

बलदोषकालप्रकृतिःप्रविभज्ययोजितः॥ सम्यक्स्वैःस्वैरौषधवर्गैःस्वान्स्वान्रोगान्नियच्छति।

अर्थ—बल, दोष, काल और प्रकृतिको विचार कर उन २ रोगों के नाश करने वाली औषधियों से सिद्धिकी हुई वस्ति उन रोगोंको दूर करती है।

कर्मान्यद्वस्तिसमंनविद्यतेशीघ्रसुखविशो

धित्वात् ॥ आश्वपतर्पणयोग्यत्वनिरत्य यत्वाच्च ।

अर्थ—वस्ति के समान और कोई दूसरी क्रिया शीघ्रकारी, सुखकारी और शोधनकर्त्ता नहीं है । यह शीघ्रही अपतर्पण करती है और इस में किसी प्रकार के उपद्रव भी नहीं होते हैं ।

सत्यपिदोषहरत्वेकटुतीक्ष्णोष्णादिभेष जादीनाम् ॥ दुःखोद्गाराहृद्यत्वकोष्ठाबा धाविरेकेस्युः ।

अर्थ—कटु, तीक्ष्ण और उष्ण औषधियां यद्यपि दोषों को दूर कर देती हैं, परन्तु उन औषधों के पीने में कष्ट होता है, डकार बुरी आती हैं, मन अप्रसन्न होजाता है और विरेचन होने में कोठे में पीडा भी होती है ।

आस्थापन योग्य व्यक्ति ।

अविरेच्यौशिशुवृद्धौतावप्राप्तप्रहीनधातु वलौ । आस्थापनामेवतयोःसर्वार्थकृदुत्त मंकर्म ॥ वलवर्णहर्षमार्दवगात्रस्नेहान्नृ णांददत्याशु ।

अर्थ—वालक और वृद्ध विरेचन के योग्य नहीं होते हैं क्योंकि वालक निर्वल होते हैं और उनकी धातु भी अपरि पक्वहोती हैं, तथा वृद्ध क्षीणधातु और दीनवल होते हैं, इसलिये वालक और वृद्धों के लिये आस्थापन कर्म सब चिकित्साओं से उत्तम और सर्वार्थकारी है । इस कर्म से वल, वर्ण, हर्ष, तथा शरीर में कोमलता और चिकनाई ये सब शीघ्रही वढ़ते हैं ।

वस्तियोंकेगुण ।

अनुवासनंनिरूहश्चोत्तरवस्तिश्चसत्रिवि धः ॥ शाखावातार्तानांसकुञ्चितस्तब्ध भग्नरुग्णानाम् । विट्सङ्गाध्मानारुचिप रिकर्तरुगादिषुचशस्तः ॥

अर्थ—अनुवासन, निरूहण और उत्तर ये तीन प्रकार की वस्तियां होतीहैं । वस्ति प्रयोग शाखागत वात, गात्रसंकोच, स्तम्भता, भग्नता, वेदना, मलविवन्ध, आध्मान अरुचि और परिकर्त्तिका आदि रोगों में हितकारी है ।

उष्णार्तानांशितानशीतार्तानांतथासुखो ष्णांश्च । तद्योग्यौषधयुक्तान्वस्तीन्सर्व त्रविनियुञ्ज्यात् ॥

अर्थ—उष्णतासे पीडित मनुष्योंको शीतल वस्ति और शीत से पीडितों को सुखोष्ण वस्ति हितकर है । उपयुक्त औषधियों से संस्कार कीहुई वस्ति सर्वत्र देनी चाहिये ।

वृंहणवस्तिके अयोग्यरोगी ।

वस्तीन्नबृंहणीयान्दद्याद्व्याधिषुविशोध नीयेषु । मेदस्विनोविशोध्यायेचनराःकु ष्ठमेहार्ताः ॥

अर्थ—शोधन के योग्य व्याधियों में वृंहणवस्ति नहीं दीजाती है । जो मेदस्वी वमन विरेचन के योग्य तथा कुष्ठरोगी और प्रमेही हैं उनको आस्थापन नहीं दीजाती है ॥

संशोधनवस्तिकेअयोग्यव्यक्ति ।

नक्षीणक्षतदुर्वलमूर्च्छितकृशशुष्कदेहाना

म् । युञ्ज्याद्विशोधनीयान्दोषनिवद्धायु
षोयेच ॥

अर्थ—क्षीणरोगी, क्षतरोगी, दुर्बल, मूर्च्छाग्रस्त, कृश, शुष्क देहवालों को और जिन के दोष आयु से निवद्ध है उन को संशोधन वस्ति नहीं देनी चाहिये ।

वाजीकरणेऽसृक्पित्तयोश्चमधुघृतपयोयु
ताः । सर्वशस्ताःसतैलमूत्रारनालवण
श्चकफवाते ॥ युञ्ज्याद्द्रव्याणिवस्ति
ष्वम्लंमूत्रंपयःसुराक्वाथम् । अविरोधाद्धा
तूनांरसयोनित्वाच्चजलमुष्णम् ॥

अर्थ—वाजीकरण के योग्य रोगों में और रक्त पित्त में शहत, घी और दूध की वस्ति दैनी चाहिये । और कफवात में तेल, कांजी और सैंधेनमक की वस्ति दैनी चाहिये । वस्ति में कांजी, गोमूत्र, दूध, मदिरा और क्वाथ ये सव मिलाने चाहियें। परन्तु इन द्रव्यों मेंसे वे द्रव्य दैने चाहियें जो रोगी की धातु से अविरुद्ध हों । तथा जल सम्पूर्ण द्रव्योंकी योनि अर्थात् उत्पत्ति का कारण है इस से गरम कर के जल दैना चाहिये ।

सुरदारुशताह्वैलाकुष्ठमधुकपिप्पलीमधु
स्नेहाः । ऊर्द्धानुलोमभागानिसर्षपाःश
र्करालवणम् ॥ आवापोवस्तीनामतः
प्रयोज्यानियेषुयानिस्युः ।

अर्थ—देवदारु, सोंफ, इलायची, कूठ, मुलहटी, पीपल, स्नेह, वमनकारक द्रव्य, वैरेचानिक द्रव्य, सरसों, शर्करा और सेंधानमक इन सब द्रव्यों को घोटकर वस्ति में डालना चाहिये परन्तु इस वातपर ध्यानरहै कि जिससमय जौनसी डालनीहो वही डालनी चाहिये ।

युक्तानिसहकषायैस्तदुत्तरतःप्रवक्ष्यन्ते ॥
चिरजातकठिनबलिषुव्याधिषुतीक्ष्णान्वि
पर्ययेचमृदून् । सप्रतिवापकषायानयुञ्ज
त्यनुवासननिरूहान् ॥

अर्थ—अब कषायोपयोगी वस्ति द्रव्यों का बर्णन करतेहैं । जोरोग बहुत पुराने कठिन और बलवान् हैं उनमें तीक्ष्ण द्रव्योंसे युक्त और तीक्ष्ण कषायों से युक्त अनुवासन वा निरूहण दैवे । और जो रोग इनसे विपरीत है अर्थात् नये साधारण और दुर्वल हैं उनमें मृदु द्रव्योंकी अनुवासन और निरूहण दैनी चाहिये ।

अर्द्धश्लोकैरतःसिद्धान्नानाव्याधिषुवर्ग
शः ॥ वस्तीन्वीर्यसमैर्भागैर्यथार्हानिह
तान्शृणु ।

अर्थ—भिन्न भिन्न व्याधियोंमें लाभकारी सम्पूर्ण वास्तियां यथावीर्य और यथाभाग आधे आधे श्लोकोंमें नीचे लिखी जातीहैं, उन्हैं ध्यानसे श्रवण करो ।

वातनाशकप्रयोग ।

विल्वाग्निमन्थश्योनाकाःकाश्मर्यःपाट
लिस्तथा ॥ शालपर्णीपृश्निपर्णीबृहत्यौ
वर्धमानकः । यवाःकुलत्थाःकोलास्थि
स्थिराचेतित्रयेऽनिलोशस्यन्तेसचतुःस्नेहा
पिशितस्यरसान्विताः ।

अर्थ—(१)विल्व, अरनी, श्योनाक, खंभारी और पाटला, (२)शालिपर्णी,

पृश्निपर्णी, दोनों कटेरी और अरंडकी जड़, (३) जौ कुलथी, बेरकी गुठली और शालिपर्णी। इन तीन वर्गों के भिन्न२ कषायोंमें चारों प्रकारके स्नेह और मांसरस डालकर वस्ति देनेसे बातरोग शान्त होजातेहैं।

पित्तनाशक प्रयोग।

नलवञ्जुलवानीरशतपत्राणिशेवलम् ॥ मञ्जिष्ठाशारिवानन्तापयस्यामधुयष्टिका। चन्दनंपद्मकोशीरन्तुङ्गश्चपैत्तिकेत्रयः ॥ सशर्कराक्षौद्रघृताःसक्षीरावस्तयोहिताः।

अर्थ—(१) नरसल की जड़, जलवेत, वेत, पद्मकमल, और शैवाल, (२) मजीठ, सारिवा, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली और मुलहटी, (३) रक्तचन्दन, पद्माख, खस, और पुन्नाग। इनतीन भिन्न भिन्न वर्गों के कषाय चीनी, घी, शहत, और दूध के साथ मिलाकर वस्ति द्वारा प्रयोग करने से पित्तजरोगों को दूरकरते हैं।

कफनाशकप्रयोग।

अर्कस्तथैवचालार्कएकाष्ठीलापुनर्नवा ॥ हरिद्रात्रिफलामुस्तंपीतदारुकुटन्नटम्। पिप्पल्यःचित्रकश्चेतित्रयस्तेश्लेष्मरोगिणाम् ॥ सक्षारक्षौद्रगोमूत्रानातिस्नेहान्विताहिताः।

अर्थ—(१) सफेद आक, लाल आक बक वृक्ष और सांठ, (२) हलदी, त्रिफला, मोथा, दारुहलदी, और केवटी मोथा. (३) पीपल और चीते की जड़। इन तीन भिन्न २ वर्गों का कषाय जवाखार, शहत, गोमूत्र और थोडे से स्नेह के साथ मिलाकर वस्ति द्वारा प्रयोग करने से कफरोग दूर होजाते हैं।

पक्वाशयशोधनप्रयोग।

फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गववकवत्सकाः ॥ श्यामाचत्रिफलाचैवस्थिरादन्तीद्रवन्त्य पिप्रकीर्याचोदकीर्याचनीलिनीक्षीरिणी तथा ॥ सप्तलाशंखिनीलोध्रंफलंकाम्पिल्वकस्यच। चत्वारोमूत्रसिद्धास्तेपक्वाशयविशोधनाः ॥

अर्थ—(१) मेनफल, जीमूत, कटुतुम्बी, तोरई और इन्द्रजौ, (२) श्यामानिसोथ, त्रिफला, दन्ती और द्रवन्ती, (३) दोनों प्रकार के कंजा, नीलिनी और क्षीरिणी, (४) सातली, शंखिनी, लोध, मेनफल और कबीला। इन चार भिन्न २ वर्ग के प्रयोगों को गोमूत्र में सिद्ध करके वस्ति द्वारा प्रयोग करने से पक्वाशय शुद्ध होजाता है।

शुक्रवर्द्धन प्रयोग।

काकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गपर्णीशतावरी विदारीमधुयष्ट्यह्वाशृंगाटककसेरुके ॥ आत्मगुप्ताफलंमाषाःगोधूमायवास्तथा जलजानूपजंमांसमित्येतेशुक्रवर्धनाः ॥

अर्थ—(१) काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी और सितावर (२) विदारीकन्द, मुलहटी, सिंघाडा और कसेरू, (३) केंच के वीज, उरद, गेहूं और जौ, (४) जांगल और आनूप मांस। ये चार प्रयोग शुक्र को बढाने वाले हैं।

सांग्रहिक प्रयोग ।

जीवन्तीचाग्निमन्थश्चधातकीपुष्पवत्सकौ । प्रग्रहःखदिरःकुष्ठंशमीपिण्डातकोयवाः ॥ प्रियंगूरक्तमूलीचतरुणीस्वर्णयूथिका । वटाद्याःकिंशुकंलोध्रमितिसांग्राहिकामताः ॥

अर्थ—(१) जीवन्ती, अरनी, धायके फूल और इन्द्रजौ, (२) अमलतास, खैर, कूठ, शमी, मेनफल और जौ, (३) प्रियंगु, लज्जालु, ग्वारपाठा और स्वर्णयूथी (४) वटादि क्षीर वृक्ष, किंशुक और लोध । ये चारों प्रयोग संग्राही हैं ।

परिस्राव में प्रयोग ।

परिस्रवेशृतंक्षीरंसंवृश्चीरपुनर्नवम् । आखुपर्णिकयावापितण्डुलीयकयुक्तया ॥

अर्थ—सफेद सांठ और लालसांठ डालकर औटाया हुआ दूध अथवा मूषिकपर्णी और चौलाई डालकर औटाये हुए दूध की वस्ति देने से परिस्राव दूर होजाता है ।

दाहनाशक प्रयोग ।

कोलकतककाण्डेक्षुदर्भकालेक्षुशालिभिः । दाहघ्नःसघृतक्षीरोद्वितीयश्चोत्पलादिभिः

अर्थ—बेरकी गुठली, निर्मलीफल, कांडेक्षु दाभ, ईखकी जड और शालि की जड और घी इन को दूध के साथ औटाकर वस्ति द्वारा प्रयोग करने से दाह दूर होजाता है । इसी तरह उत्पलादि गणोक्त द्रव्य और दूध के साथ सिद्ध किये हुए घृत की वस्ति दाह नाशक है ।

कर्बुदाराढकीनीपाविदुलैःक्षीरसाधितैः । वस्तिःप्रदेयाभिषजाशीतःसमधुशर्करः ॥

अर्थ—सफेद कचनार, अडहरकी जड, कदम्ब और बेत इन सम्पूर्ण द्रव्यों के साथ सिद्धकी हुई दूध की वस्ति को ठंडा करके शहत और चीनी डालकर प्रयोग करने से दाह दूर होजाता है ।

परिकर्तिका में वस्ति ।

परिकर्तेतथावृन्तैःश्रीपर्णीकोविदारजैः ॥ मुष्टिःशाल्मलिवृन्तानांक्षीरसिद्धोघृतान्वितः ।

अर्थ—खंभारी औरलालकचनारकेडंठलों को दूध और घी के साथ सिद्ध करै अथवा सेमर के ठंडल एक पल और दूध इनके साथ घी को सिद्ध करके वस्ति देने से परिकर्तिका दूर होजाती है ।

प्रवाहिकानाशक प्रयोग ।

हितःप्रवाहणेतद्वद्वृन्तैःशाल्मलिकस्यच ॥

अर्थ—प्रवाहिका में सेमर के डंठल और दूध के साथ सिद्ध घृत की वस्ति भी हित कर है ।

अति योग नाशक प्रयोग ।

अश्वावरोहिकाःकाकनासाराजकशेरुकैः ॥ सिद्धाःक्षीरेऽतियोगेस्युः क्षौद्राञ्जनघृतैर्युताः ॥ न्यग्रोधाद्यैश्चतुर्भिश्चतेनैवविधिनापरः ।

अर्थ—असगंध, कौआठोंटी और राज कसेरू इन के साथ सिद्ध दूध की वस्ति में शहत, शर्करा और घी मिलाकर प्रयोग करने से अतियोग दूर होता है ।

इसी तरह से वड, गूलर, पीपल और पकड

इनके साथ सिद्ध दूधकी वस्ति भी अतियोग नाशक है।

वृहतीक्षीरकाकोलीपृश्निपर्णीशतावरी॥ काश्मर्यवदरीदूर्वातथोशीरप्रियंगवः। जीवनीयैःशृतौक्षीरौद्वौघृताञ्जनसंयुतौ॥ वस्तीप्रदेयोभिषजाशीतौमधुसशर्करौ।

अर्थ--(१) वडी कटेरी, क्षीरकाकोली पृष्णिपर्णी, सितावर, (२) खंभारी, वेर की गुठली, दूब, उसीर और प्रियंगु। इन दो वर्गों के साथ पृथक् २ दूध सिद्धकर के उस में घी, अंजन, शहत और चीनी मिलाकर वस्ति देने से अतियोग दूर हो-जाता है।

जीवशोणितमें वस्ति।

शशैणदक्षमार्जारमहिषाव्यजशोणितैः॥ सद्यस्कैर्मृदितैर्वस्तिर्जीवादानेप्रशस्यते।

अर्थ--खरगोश, हरिण, मुर्गा विल्ली, भैंस, भेड़ और वकरा इनका ताजा रुधिर लेकर वस्ति द्वारा प्रयोग करनेसे अतियोग से हुई जीवशोणितकी क्षीणता दूर होजातीहै।

गोव्यजामहिषीक्षीरैर्जीवनीयैर्युतैस्तथा॥ तेनैवविधिनावस्तिर्देयःसक्षौद्रशर्करः।

अर्थ--गौ, भेड, बकरी और भैंस इनका दूध जीवनीय गणका कल्क, घी, शहत और चीनी मिलाकर वस्ति देने से अतियोग दूर होजाता है।

मधूकमधुकद्राक्षादूर्वाकाश्मर्यचन्दनैः॥ शर्कराचन्दनद्राक्षामधुधात्रीफलोत्पलैः।

अर्थ--रक्त के क्षीण होनेपर महुआ, मुलहटी, दाख, दूब, खेभारी और चन्दनकी वस्ति। अथवा चीनी, रक्तचन्दन, दाख, मुलहटी, आंवला और नीलकमलकी वस्ति हितकारी होती है

रक्तपित्तमेंप्रयोग।

रक्तपित्तप्रमेहेतुकषायःसोमवल्कजइति॥

अर्थ--रक्त पित्त और प्रमेह में सफेद खैर के क्वाथ की वस्ति हित होती है।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन।

त्रिकास्त्रयोऽनिलादीनांचतुष्काश्चापरे त्रयः। पक्वाशयविशुद्ध्यर्थंवृष्यासांग्राहिकास्तथा॥ परिस्रावेतथादाहेपरिकर्तेप्रवाहणे। सातियोगौमतौद्वौद्वौजीवादानेतथात्रयः॥ रक्तपित्तेद्वयंमेहएकत्रिंशच्च पञ्चच। सुलभाल्पौषधक्लेशावस्तयोगुणवत्तमाः॥

अर्थ--इस वस्ति सिद्धि अध्यायमें वातरोग में तीन, पित्तरोगमें तीन, कफरोग में तीन, पक्वाशय के शोधने में चार, शुक्रवर्द्धक तीन, संग्राहक तीन, परिस्राव में तीन, दाह में दो, परिकर्तिका में एक, प्रवाहिकामेंएक, अतियोग में पांच जीवितरक्त के क्षय में तीन, रक्तपित्त में एक और प्रमेह में एक इसतरह वस्ति के छत्तीस प्रयोग वर्णन किये गये हैं॥

अध्यायकाउपसंहार।

गुल्मातिसारोदावर्तस्तब्धसंकुचितादिषु। सर्वाङ्गैकाङ्गवेगेषुरोगेष्वेवंविधेषुच॥ यथास्वमौषधैःसिद्धान्वस्तीन्दद्याद्विचक्षणः पूर्वोक्तेनविधानेनकुर्याद्योगान्पृथग्विधानिति॥

अर्थ--गुल्मरोग, अतीसार, उदावर्त्त,

स्तब्धता, संकोच, सर्वांगघात, एकांगघात, तथा इसी प्रकार के अन्यरोगों में भी उसी उसी रोग को नाश करनेवाली औषधियों के साथ सिद्ध कीहुईवस्ति देनी चाहिये। ये वस्तियां विद्वान् वैद्य द्वारा पूर्वोक्तरीतिसे पृथक् २ कल्पना कर के दीजासक्ती हैं।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचिता यांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धि- स्थानेवस्तिसिद्धिर्नामदशमोऽध्यायः॥ १० ॥

—⊛⊛—

एकादशोऽध्यायः।

अथातःफलमात्रासिद्धिंव्याख्यास्यामः।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम फलमात्रा सिद्धि की व्याख्या करेंगे।

भगवन्तमुदारसत्त्वधी।
श्रुतिविज्ञानसमृद्धमात्रिजम्॥
फलवस्तिवरत्वनिश्चये।
सविवादामुनयोऽप्युपागमन्॥
भृगुकौशिककाप्यशौनकाः।
सपुलस्त्यासितगौतमादयः॥
कतमत्प्रवरंफलादिषु।
स्मृतमास्थापनयोजनास्विति।

अर्थ—एक समय भृगु, कौशिक, काप्य शौनक, पुलस्त्य, असित और गौतम आदि मुनियों में इसबात पर विवाद हुआ कि आस्थापन में कोन फल श्रेष्ठ है। इस झगडे को निवटाने के लिये ये सब मिलकर उदारसत्व, उदारधी, श्रुति विज्ञानसम्पन्न भगवान् अत्रिनन्दनके पास उपस्थित हुए।

फल विषय में भिन्न २ मत।

कफपित्तहरंपरंफले।
त्वथजीमूतकमाहशौनकः॥
मृदुवीर्यतयाभिनत्तित।
दितिचोवाचनृपोऽयवामकः॥
कटुतुम्बीफलमुत्तमंमतं।
वमनेदोषसमीरणञ्चतत्॥
तदधृष्यमशैत्यतीक्ष्णता।
कटुरौक्ष्यैरितिगौतमोब्रवीत्॥
कफपित्तनिवर्हणंपरं।
सतुधामार्गवमेष्वमन्यत॥
तदमन्यतवातलंपुन।
र्वडिशोग्लानिकरंबलापहम्॥
कुटजंप्रशशंसचोत्तमं।
नबलघ्नंकफपित्तहारिच॥
अतिविज्जलमूर्द्धभागिकं।
पवनक्षोभिचकाप्यआहतत्॥
कृतबेधनमाश्ववातलं।
कफपित्तंप्रबलंहरेदिति॥
तदसाध्वितिभद्रशौनकः।
कटुचारोहिवलघ्नमित्यपि॥

अर्थ—शौनक कहतेथे कि कफपित्तनाशक होनेसे जीमूतकाफल उत्तमहै। राजावामक का यह मतथा कि जीमूत मृदुवीर्य और मलको भेदनकर्त्ता है, और कटुतुम्बी का फल वमन कराने में उत्तम है क्योंकि यह दोषों को शीघ्रही उद्गीर्ण करता है। परन्तु गौतम

की यह रायथी कि कटुतुम्बी उष्ण, तीक्ष्ण, कटु और रूक्ष होती है इससे अधृष्य होती है और धामार्गव कफपित्त को नाश करने वाली है इससे इस काम में धामार्गव श्रेष्ठ है। इसपर वडिश वोल उठे कि धामार्गव वातकर्त्ता, ग्लानिकारक और वल नाशक है, इससे तो इन्द्रजौ अच्छे हैं क्योंकि वे वल को दूर नहीं करते हैं और कफपित्तनाशक भी हैं। यह सुनकर काप्य वोले कि इन्द्रजौ अत्यन्त पिच्छिल, ऊर्ध्वगामी और वातप्रकोपक हैं, किन्तु कृतवेधन आशुकार, अवातल और प्रवल कफपित्त को दूर करने वाली है। भद्रशौनक वोले कि कृतवेधन अच्छी नहीं होती है, क्योंकि यह कडवी है और वलघ्नभी है।

इतितद्वचनानिहेतुभिः।
सुविचित्राणिनिशम्यतुष्टिमान्॥
प्रशशंसफलेषुनिश्चयं।
परमश्चात्रिसुतोऽब्रवीदिदम्॥

अर्थ—इनऋषियों के सहेतुक भिन्न भिन्न वचनों को सुनकर अत्रिनन्द फलों के विषय में अपना मत प्रकाश करने लगे।

फलदोषगुणान्सरस्वती।
प्रतिसर्वैरपिसम्यगीरिता॥
नतुकिञ्चिददोषनिर्गुणं।
गुणभूयस्त्वमतोविचिन्त्यते॥

अर्थ—आप सब लोगों ने इन फलों के गुण दोषों का वर्णन वहुत अच्छी रीति से किया है। परन्तु इन में से कोई द्रव्य निर्दोष और निर्गुण नहीं है। किन्तु प्रत्येक द्रव्य में स्थान की विशेषता से गुणों की अधिकता होती है।

विषयविशेष से फलों को उत्कृष्टत्व।

इहकुष्ठहितागरागरी।
हितमिक्ष्वाकुतुमेहिनेमतम्॥
कुटजस्यफलंहृदामये।
प्रवरंकोटफलश्चपाण्डुषु॥
उदरेकृतवेधनंहितं।
मदनंसर्वगदाविरोधितु॥

अर्थ—जीमूत का फल कोढमें हितकारी है, कटुतुम्वी प्रमेह में उत्तम है, इन्द्रजौ हृद्रोग में, कोटफल पांडुरोग में और कृतवेधन उदररोग में हितकारी है, तथा मेनफल सव प्रकार के रोगों में अविरोधी है।

मदनफलकी उत्कृष्टता।

मधुरंसकषायतिक्तकं।
तदरूक्षंसकटूष्णविज्जलम्॥
कफपित्तहृदाशुकारिचा।
प्यनपायंपवनानुलोमिच॥
फलनामविशेषतस्त्वतो।
लभतेऽन्येषुफलेषुसत्स्वपि॥

अर्थ—मेनफल मधुर, कुछ कसीला, तिक्त, रूखापन से रहित, कटु, उष्ण और पिच्छिल होता है, यह कफपित्तनाशक, आशुकारी, उपद्रव रहित और वातानुलोमी है, इस हेतु से वमनकारक अन्य फलों के विद्यमान् होने पर भी मेनफल श्रेष्ठ होता है।

गुरुणाचवचस्युदाहृते।
मुनिसंघैरितिपूजितेततः॥

प्रणिपत्यमुदासमन्वितः ।
सहितःशिष्यगणोऽनुपृष्टवान ॥

अर्थ—गुरू के इस वचन को सुनकर सव मुनियोंने पूजन किया और चरणों में नमस्कार कर के फिर पूछा ।

सर्वकर्मगुणकृद्गुरुणोक्तो ।
वस्तिरूर्द्धमतमर्थवेदिना ॥
नाभ्यधोगुदगतश्चशरीरात् ।
सर्वतःकथमपोहतिदोषान् ॥

अर्थ—हेगुरो ! आपने पहिले कहाहै किवस्ति सम्पूर्ण कर्मोंके करनेवाली और सम्पूर्ण गुण करनेवालीहै । परन्तु वस्ति नाभिके नीचे गुदामें स्थित होकर किस तरह दोषोंका अपकर्षण करतीहै ।

तद्गुरुरब्रवीदिदंशरीरं ।
तन्त्रयतेऽनिलःसङ्गविघातात् ॥
केवलएवदोषसहितः ।
सहिवायुःप्रकोपमुपयाति ॥
तत्पवनंसपित्तकफविट्कं ।
शुद्धिकरोऽनुलोमयातिवास्तिः ॥
सर्वशरीरगश्चगदसंघात् ।
प्रकाशनात्प्रशान्तमुपयाति ॥

अर्थ—उक्त प्रश्नको सुनकर गुरुबोले किवायु शरीर के सम्पूर्ण द्रव्योंको इकट्ठे रखतीहै । और वायुही शरीरको धारण करतीहै, अकेली वायु कुपित होजाती है तथा अन्य दोषके साथ भी कुपित होतीहै वस्ति पक्वाशय में जाकर पित्त कफ और विष्टाके साथ उस वायुको अनुलोमित करतीहै । इस तरह शुद्ध हुई वायु सम्पूर्ण शरीरमें गमन करके रोगों के समूहको दूर करती हुई शान्त होजातीहै । इसका यह तात्पर्य है कि वायुका शरीर के सब द्रव्योंसे संबंध है, इससे वायुके शुद्ध होने पर शेष द्रव्य भी शुद्ध होजातेहैं । किन्तु पक्वाशय वायुका प्रधान स्थानहै और वस्ति पक्वाशयकी वायुको मल के साथ शुद्ध करती है । इस तरह वायुके शुद्ध होनेपर वह सम्पूर्ण देहमें विचरती हुई शरीर को शुद्ध करके रोगों को शान्त कर देतीहै ।

अथाभिगम्यार्थमखण्डितंधिया ।
गजोष्ट्रगोऽश्वाव्यजवस्तिकर्म ॥
अपृच्छदेनंसचवस्तिमब्रवीत् ।
विधिश्चतस्याहपुनःप्रचोदितः ॥

अर्थ—तत्पश्चात् शिष्योंने उक्त सववर्णन जानकर पूछा किहे महाराज ! हाथी, ऊंट गौ, घोड़ा, भेड और वकरी को वस्ति किस तरह दींजाती है । यह सुनकर आत्रेय उक्त पशुओं को वस्ति दैनेकी विधि वर्णन करने लगे ।

अजाविकेसौम्यगजोष्ट्रयोत्रों ।
गवाश्वयोर्वस्तिमुशन्तिमाहिषम् ॥
अजाविकादन्तसुवस्तिमुत्तरं ।
वदन्तिवस्तिंविपरीतरूपम् ॥

अर्थ—वकरी, भेड़, हाथी, ऊंट, गौ और घोडे के लिये भैंसे की वस्ति पुट से वस्ति बनवानी चाहिये । बकरी, भेडआदि की वस्ति को सुवस्ति और उत्तरवस्ति को उत्तरसुवस्ति कहते हैं ।

सुवस्तिकाप्रमाण ।

सुवस्तिमष्टादशषोडशांगुलं ।
तथैवनेत्रञ्चदशांगुलंक्रमात् ।
गजोष्ट्रगोऽश्वात्मजवस्तिसंधौ ।
चतुर्थभागेचसकर्णिकंवदेत् ॥

अर्थ—हाथी और ऊंट के लिये सुवस्ति के नल का प्रमाण अठारह अंगुल गौ और घोडे के लिये सोलह अंगुल तथा भेड और बकरी के लिये दश अंगुलका होता है । इसकी कर्णिका मनुष्यकी वस्तिसे चौगुनी होती है ॥

सुवस्तिकीमात्राकाप्रमाण ।

प्रस्थस्त्वजाव्योर्हिनिरूहमात्रा ।
गवादिषुद्वित्रिगुणोयथाबलम् ॥
निरूहउष्ट्रस्यतथाढकद्वयं ।
गजस्यवृद्धिस्त्वनुवासनेऽष्टमः ॥

अर्थ—बकरी और भेड़की निरूहण मात्रा एक प्रस्थ होती है । गौ और घोडे की निरूहमात्रा बल के अनुसार दो तीन प्रस्थकी होती है, ऊंटकी निरूहमात्रा दो आढक तथा हाथीकी मात्रा बलके अनुसार बढादी जाती है । इन सब जीवों को जो अनुवासन वस्ति देनी हो तो निरूह से आठवां भाग काम में लायाजाता है ।

निरूहकासाधारणप्रयोग ।

कलिंगकुष्ठमधुकंसपिप्पलि ।
वचाशताह्वामदनंरसाञ्जनम् ॥
हितानिसर्वेषुगुडःससैन्धवो ।
द्विपञ्चमूलंसविकल्पनात्त्विदम् ॥

अर्थ—इन्द्रजौ, कूठ, मुलहटी, पीपल, वच, सौंफ और मेनफल इन के क्वाथ में रसौत, गुड और सेंधानमक मिलाकर सब प्रकार के जन्तुओं को साधारण रीति से निरूहण दीजाती है । तथा दशमूल के क्वाथ की भी निरूहणवस्ति दीजाती है ।

हाथीकोनिरूहणप्रयोग ।

गजेऽधिकोऽश्वत्थवराश्वकर्णजाः ।
सखादिराःसग्रहसालतालजाः ॥

अर्थ—विशेष कर के हाथी को पीपल बड़, सालकी निरूहण देवै, अथवा खैर, अमलतास, साल और तालकी निरूहण वस्ति देनी चाहिये ॥

ऊंट का निरूहण प्रयोग ।

तथाचउष्ट्रेयवशिग्रुपाटली ।
मधूकसाराःसनिकुम्भचित्रकाः ॥

अर्थ—ऊंटके लिये जौ, सहंजना, पाटला, महुआ का सार, दन्ती और चीते का निरूह प्रयोग करै ।

गौ के लिये प्रयोग ।

पलाशभूतीकसुराह्वरोहिणी ।
कषायउक्तस्त्वधिकोगवांहितः ॥

अर्थ—गौके लिये पलास, अजवायन, देवदारु और कुटकी इनके कषायकी निरूहण देवै ।

घोडे के लिये प्रयोग ।

पलाशदन्तीसुरदारुकत्तृण ।
द्रवन्त्यउक्तस्तुरगस्यचाधिकाः ॥

अर्थ—घोडे के लिये पलास, दन्ती, देवदारु, गन्धतृण और दन्ती की निरूहण देवै ।

खरोष्ट्र प्रयोग ।

खरोष्ट्रयोःपीलुकरीरखादिराः ।
शम्पाकविल्वादिगणस्य चच्छदाः ॥

अर्थ—गधे और ऊंट के लिये पीलू, करील, खैर, अथवा अमलतास और बिल्वादि गण के पत्तों का प्रयोग करै ।

भेडबकरी के लिये प्रयोग ।

अजाविकानांत्रिफलापरूषकं ।
कपित्थकर्कन्धुसविल्वकोलजम् ॥

अर्थ—भेड वकरियों के लिये त्रिफला और फालसा अथवा कैथ, वेर, विल्व और वडा वेर इनकी निरूहण देवै ।

अथाग्निवेशःसततोन्तरान्तरा ।
हितंचपप्रच्छगुरुस्तदाहच ॥
सदातुराःश्रोत्रियराजसेवका ।
स्तथैववेश्याःसहपण्यजीविभिः ॥

अर्थ—तदनन्तर अग्निवेश ने फिर पूछा कि हे महाराज श्रोत्रिय ! राजसेवक, वेश्या और पण्यजीवी सदा रोगी क्यों रहते हैं, यह सुनकर गुरु वोले ।

श्रोत्रियादि के रोगी रहने का कारण ।

द्विजोहिशिष्याध्ययनव्रताह्निक ।
क्रियादिभिर्देहहितंनचेष्टते ॥
नृपोपसेवीनृपचित्तरक्षणात् ।
परानुरोधाद्बहुचिन्तनाद्भयात् ॥
नृचित्तवर्त्तिन्युपचारतत्परा ।
मृजाविभूषानिरतापरांगना ॥
सदासनादत्यर्थनुबद्धविक्रय ।
क्रयादिलोभदापिपण्यजीविनः ॥

अर्थ—ब्राह्मण सदा शिष्यों को पढाने तथा वृत और आन्हिक क्रिया में तत्पर रहते हैं, इससे शरीर की भलाई की चेष्टा नहीं करते हैं । राजसेवक राजा के अनुकूल काम करने में तत्पर रहते हैं और पराधीनता, वहुचिन्ता और भय उन के जी में सदा वना रहता है इससे स्वस्थता का यत्न नही कर सकते हैं । वेश्या पर पुरुषों के चित्तको लुभाने में और पराई सेवाकरने में तत्पर रहती है और रात दिन आभूषणादि से अपने देह को आभूषित करने में लीन रहती है इसी से यह भी सदैव रोगिणी रहती है । दूकानदार एक स्थान पर बहुत वैठे रहते हैं, द्रव्योपार्जन तथा क्रयविक्रय (खरीद फरोख्त) में लगे रहते हैं, एवं लोभ के कारण स्वास्थ्यपालन में असमर्थ होते हैं ।

अन्य सदा रोगियों का वर्णन ।

सदैवतेह्यागतवेगनिग्रहं ।
समाचरन्तेचनकालभोजनम् ॥
अकालनिहारविहारसेविनो ।
भवन्तियेन्येऽपिसदातुराश्चवे ॥

अर्थ—ये लोग मलमूत्रके उपस्थित वेगों को रोक लिया करते हैं, ठीक समय पर भोजन नहीं करते हैं, कुसमय मलत्याग करते हैं और कुसमय डोलते फिरते हैं । इससे सदारोगी वने रहते हैं । तथा और भी मनुष्य जो इसी तरह करते हैं वे भी सदैव रोगी वने रहते हैं ।

समीरणंवेगविधारणोद्धतं ।
विवद्धसर्वाङ्गरुजाकरंभिषक् ॥

समीक्ष्यतेषांफलवर्तिमादितः ।
सुकल्पितांस्नेहवतींप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—उपस्थित वेगों के रोकने से ऐसे मनुष्यों के वायु कुपित होजाती है, मल मूत्र का विबन्ध होजाता है और सम्पूर्ण अंग में वेदना होने लगती है । इसमें प्रथम ही अच्छी तरह तयार की हुई स्नेहयुक्त फलवर्ती का प्रयोग करना चाहिये ।

निरूहणकापश्चात्कर्म ।

निरूहितंधन्वरसेनभोजितं ।
निकुम्भतैलेनततोऽनुवासयेत् ॥

अर्थ—निरूहण के पीछे जांगल मांसरस के साथ भोजन कराके दन्तीके साथ सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासनदेवै ॥

बलाश्वगन्धासहविल्वचित्रकान् ।
द्विपञ्चमूलेकृतमालकोत्पले ॥
यवानकुलत्थांश्चपचेज्जलाढके ।
रसःसपेष्यस्तुकलिङ्गकादिभिः ॥
सतैलसर्पिर्गुडसैन्धवोहितः ।
सदानराणांवलवर्द्धनःपरः ॥

अर्थ—खरैटी, असगंध, बेल, चीता, दसमूल, अमलतास, नीलोफर, जौ, कुलथी, इनको एक आढक जलमें पकाकर चौथाई शेष रहनेपर छानले, इस क्वाथ में इन्द्रयवादि दस द्रव्यों का कल्क तेल, घी, गुड और सेंधानमक मिलाकर पकावै । इसका अनुवासन श्रोत्रियादि रोगियों के बलका बढानेवाला है ॥

पुनर्नवैरण्डनिकुम्भचित्रकान् ।
सदेवदारुत्रिवृतानिदिग्धिकाम् ॥
महान्तिमूलानिचपञ्चतद्भवान् ।
विपाच्यमूत्रेदधिमस्तुसंयुते ॥
सतैलसर्पिर्लवणैश्चपञ्चभि ।
र्विमूर्च्छितंवस्तिमथप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—सांठ, अरंड, दन्ती, चीता, देवदारु, निसोथ, कटेरी, वृहत्पंचमूल इन को दही के तोड मिलेहुए गोमूत्र में पकावै । फिर इस क्वाथ में तेल, घी और पांचो नमक मिलाकर वस्ति देवै ।

तथैवशस्तंमधुकेनसाधितम् ।
फलेनबिल्वेनशताह्वयाथवा ॥

अर्थ—उक्तरीति से मुलहटी, अथवा बेलफल अथवा सौंफ के साथ सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासन देवै ।

बालकऔरवृद्धकोनिरूहण ।

सजीवनीयस्तुरसोनुवासने ।
निरूहणेचालवणोशिशोर्हितः ॥
नचान्यदाश्वङ्गबलाभिवर्द्धनं ।
निरूहवस्तेःशिशुवृद्धयोःपरम् ॥

अर्थ—बालकों के लिये जीवनीय गण के क्वाथ के साथ सिद्ध तेलकी अनुवासन दैनी चाहिये । बालकों को जो निरूहण दीजाती है उस में नमक नहीं डाला जाता है बालक और वृद्धों के लिये निरूहण के अतिरिक्त शरीर के बलको शीघ्र बढानेवाली और कोई औषध नहीं है ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकः ।

फलकर्म्मवस्तिवरतत्त्वनिश्चयोवाज्यदी

नाम् । सततातुराश्चदृष्टाःफलमात्रायां हितंचैषाम् ॥

अर्थ—इस फलमात्रा सिद्धि नामक अध्याय में वमन कारक औषधोंमें मेनफल को उत्कृष्टता, हाथी घोड़े आदि जीवोंकी बस्तियों का वर्णन, राजसेवक, वेश्या आदि परोपजीवी मनुष्यों के सदा रोगी रहने का कारण और उनकी चिकित्सा विधि पूर्वक वर्णन की गई है।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांसिद्धिस्थानेफलमात्रासिद्धिर्नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

द्वादशोऽध्यायः ।

अथातउत्तरसिद्धिंव्याख्यास्यामः ॥ इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम उत्तर वस्ति सिद्धि की व्याख्या करेंगे।

संशोधनकेपीछेपेयादिविधि।

अथखल्वातुरंवैद्यःसंशुद्धंवमनादिभिः ॥ दुर्बलंकृशमल्पाग्निमुक्तसन्धानवन्धनम् । निर्हृतानिलविण्मूत्रकफपित्तंकृशाशयम् ॥ शून्यदेहंप्रतीकारासहिष्णुंपरिपालयेत् ।

अर्थ—जो रोगी वमन विरेचनादि संशोधन द्रव्योंके प्रयोगसे शुद्ध होकर दुर्बल कृश, मन्दाग्नि, तथा मुक्तसन्धि बन्धन (हाथ पांव आदि की सन्धियोंका दुर्बलता के कारण ढीला होना)होगयाहो, तथा वायु, विष्टा, मूत्र, कफ और पित्तके निकलनेसे उसका आशय कृश पड़गयाहो। एवं देहकी शून्य होजाने के कारण औषध को न सह सकताहो उसको औषध न देकर केवल परिपालन विधिका अवलम्बन करना चाहिये।

यथैवतरुणंपूर्णंतैलपात्रंतथैवच ॥ गोपालइवदण्डीगाःसर्वस्मादपचारतः ।

अर्थ—जैसे तेल से भरेहुए नवीन घडेकी रक्षा यत्नपूर्वक कीजातीहै और जिसतरह ग्वालिये लठ्ठकी सहायता से गौओं की सब प्रकार के अपचार से रक्षा करते हैं, उसी तरह बैद्य को उचित है कि रोगी की रक्षा करै।

अग्निसंदीपनक्रम।

अग्निसन्धुक्षणार्थन्तुपूर्वंपेयादिभिर्भिषक् रसोत्तरेणैवचरेत्क्रमेणक्रमकोविदः ।

अर्थ—जठराग्नि के वढाने के निमित्त प्रथम पेयादि का पालन करावै, पीछे मांस रस का व्यवहार करना चाहिये।

स्निग्धाम्लस्वादुहृद्यानिततोऽम्ललवणौरसौ ॥ स्वादुतिक्तौततोभूयःकषायकटुकौ ततः ।

अर्थ—तत्पश्चात् प्रथम स्निग्ध,अम्लस्वादु और हृद्य रस का सेवन करा के फिरखट्टे और नमकीन रस देवै, उस से पीछेस्वादु और तिक्तरस, फिर उस से पीछे कसीले और कडवे रसों का सेवन करावै।

अन्योन्यप्रत्यनीकानांरसानांस्निग्धरूक्ष

योः ॥ व्यत्यासादुपयोगेनप्रकृतिंगमये द्भिषक् ।

अर्थ— इसतरह विपरीत क्रम से रोगी को रसों का सेवन करावै अर्थात् किसी दिन स्निग्ध रस देदेवै और किसी दिन रूक्ष देवै । इस तरह क्रम से उपचार करने पर रोगी अपनी पूर्व प्रकृति पर आजायगा ।

प्रकृतिगतकेलक्षण ।

सर्वक्षमोनिरासंगोरतियुक्तःस्थिरेन्द्रियः वलवान्सत्वसम्पन्नोविज्ञेयःप्रकृतिंगतः ।

अर्थ—जब रोगी सब प्रकार के आहार विहार करने में समर्थ होजाय, मलमूत्र का विबन्ध जातारहै, विषयों में चित्त स्थिर होने लगै, सब इन्द्रियां दृढ होकर अपने२ विषय में प्रवृत्त हों,शरीर में बल बढजाय और मन सत्व युक्त होजाय तब समझना चाहिये कि मनुष्य अपनी पूर्वप्रकृति पर आगया है ॥

अप्रकृतिगतकोवर्जितकर्म ।

एतांप्रकृतिमप्राप्तःसर्ववर्ज्यानिवर्जयेत् ॥ महादोषकराण्यष्टाविमानितुविशेषतः । उच्चैर्भाष्यंरथक्षोभमतिचंक्रामणासने ॥ अजीर्णाहितभोज्येचदिवास्वप्नंसमैथुनम्

अर्थ—जबतक रोगी अपनी प्रकृति पर न आवै तबतक सब प्रकारके वर्जित द्रव्यों को सेवन करना ठीक नहींहै । विशेष कर के अत्यन्त उपद्रवकर्त्ता नीचे लिखेहुए आठ कर्मों का परित्याग कर देवै । यथा-उच्च भाषण (चिल्लाकर बोलना) रथक्षोभ (सवारी पर चढकर ऊंचे नीचे मार्गों पर चलना), अति चंक्रमण (बहुत भ्रमण करना) अत्यासन (एक स्थानपर बहुत बैठना) अजीर्णभोजन (पूर्वान्न के बिना पचे वा दुष्पाच्यभोजन), अहित भोजन (अपथ्य द्रव्य) दिवास्वप्न (.दिनमेंसौना और मैथुन (स्त्री सहवास) ।

वर्जोपचारसेवनकेअवगुण ।

तज्जादेहोर्ध्वसर्वाधोमध्यपीडामदोषजाः श्लेष्मजाःक्षयजाश्चैवव्याधयःस्युर्यथाक्रमम् ।

अर्थ—क्योंकि उच्चभाषण से देह के ऊपर के भाग में रोग उत्पन्न होजाते हैं रथक्षोभ से सर्वांगयातना, अतिचंक्रमण से नीचेके देहमें व्याधियां होती हैं, अत्यासन से मध्य देह में रोग होतेहैं, अजीर्ण भोजन से आमदोषज व्याधियां होती हैं, अहित भोजन से वातज व्याधियां, दिवास्वप्न से कफजव्याधिया और मैथुन से क्षयज व्याधियां उत्पन्न होती है ।

तेषांविस्तरतोलिंगमेकैकस्यसभेदतः ॥ यथावत्संप्रवक्ष्यामिसिद्धान्वस्तींश्चयापनान् ।

अर्थ—अबहम इन प्रत्येक व्याधियों के जुदे २ भेद, लक्षण और चिकित्सा विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे, तथा कुछ अनुभवकी हुई यापनवस्तियों का बर्णन भी करेंगे ।

उच्चभाषणकेउपद्रव ।

तत्रोच्चैर्भाष्यातिभाष्याभ्यांशिरस्तापकर्ण । शंखनिस्तोदस्रोतोरोधमुखतालुक

ण्ठशोषतैमिर्य्य ॥ पिपासाज्वरतमकहनु मन्याग्रहनिष्ठीवनोरः पार्श्वशूलस्वरभेद हिक्काश्वासादयःस्युः ॥

अर्थ—उच्चभाषण वा अतिभाषण से सिर में ताप, कान और कनपटी में सुई छिदने कीसी पीडा, स्रोतःसमूहका अवरोध, मुखशोष, तालुशोष, कण्ठशोष, अन्धकार दर्शन, पियासा, ज्वर, तमकश्वास, हनुग्रह, मन्याग्रह, निष्ठीवन, वक्षःशूल, पार्श्वशूल, स्वरभंग, हिचकी और श्वासादिकरोग उत्पन्न होजाते हैं।

रथक्षोभके उपद्रव

रथक्षोभात्सन्धिपर्वशैथिल्यहनुनासाकर्णशिरःशूलतोदवन्हिविक्षोभाटपान्त्रकूजनाध्मापनहृदयेन्द्रियोपरोधस्फिक्पार्श्ववंक्षणवृषणकटीपृष्ठवेदनासन्धिस्कन्धग्रीवादौर्बल्याङ्गाभितापपादशोफप्रस्वापहर्षणादयः।

अर्थ—रथक्षोभ से सन्धि और जोडों में शिथिलता, ठोडी नाक कान और सिर में शूल और सुई छिदने की सी वेदना, मन्दाग्नि, आटप, आंतों का कूजना, अफरा, हृदयोपरोध, इन्द्रियगणोपरोध, नितम्ब पसली बंक्षण अंडकोष कमर और पीठ में वेदना, सन्धि कन्धे और ग्रीवा में दुर्बलता अंगाभिताप, पांवों पर सूजन, प्रस्वाप (शरीर का सुन्न होजाना) और रोमहर्षण ये उपद्रव होते हैं।

अतिचंक्रमण के उपद्रव।

अतिचंक्रमणात्पादजंघोरुजानुवंक्षणश्रोणीपृष्ठशूलसक्थिसादनिस्तोदपिण्डिकोद्वेष्टनांगमर्दांसाभितापशिराधमनीहर्षकासश्वासाः।

अर्थ—अतिचंक्रमण से पांव जांघ ऊरू जानु वंक्षण श्रोणी पीठ में शूल होता है, सक्थियों में अवसन्नता और निस्तोद, पिंडलियों में ऐंठन, अंगमर्द, कंधों में ताप, शिरा और धमनियों में हर्षण, खांसी और श्वास आदि उपद्रव भी होते हैं।

अत्यासन के उपद्रव।

अत्यासनाद्रथक्षोभजाःस्फिक्पार्श्ववंक्षणवृषणकटीपृष्ठवेदनादयः।

अर्थ—अत्यासन से वे सब उपद्रव होते हैं जो रथक्षोभ से होते हैं तथा नितम्ब पार्श्व, वंक्षण, अंडकोष, कमर और पीठ में भी वेदना होती है।

अजीर्ण भोजन के उपद्रव।

अजीर्णाध्यशनाभ्यांमुखशोषाध्मानशूलनिस्तोदपिपासागात्रसादच्छर्द्यतीसारमूर्च्छाज्वरप्रवाहणामविषादयः॥

अर्थ—अजीर्ण भोजन और अध्यशन से मुखशोष, आध्मान, शूल, निस्तोद, पिपासा, अंगसाद, वमन, अतिसार, मूर्च्छा, ज्वर, प्रवाहण और आमविष ये उपद्रव होते है।

अहित भोजन के उपद्रव।

विषमाहिताशनाभ्यामनन्नाभिलाषदौर्बल्यवैवर्ण्यकण्डूपामागात्रावसादयथादोषप्रकोपजाश्चग्रहण्यर्शोविकारादयः।

अर्थ—विषम भोजन और अहित भोजन

से अन्न में अरुचि, देह में दुर्बलता, विवर्णता, खुजली, पामा, अंगावसाद और जैसा दोष प्रकुपित हो उसी के अनुसार ग्रहणी और अर्श रोग उत्पन्न होजाते हैं ।

दिवास्वप्न के उपद्रव ।

दिवास्वप्नादरोचकाविपाकाग्निनाशस्तैमित्यपाण्डुत्वकण्डूपामादाहच्छर्द्यंगमर्दहृत्स्तम्भजाड्यतन्द्रानिद्राप्रसंगग्रन्थिजन्मदौर्बल्यरक्तमूत्राक्षितातालुलेपाःपिपासाच ।

अर्थ—दिन में सोनेसे अरुचि, अविपाक मन्दाग्नि, स्तिमिता, पांडुत्व, खुजली, पामा, दाह, वमन, अंगमर्द, हृत्स्तम्भ, जडता, तन्द्रा, निद्रानाश, गांठ होना, दुर्बलता, मूत्र और नेत्रों का लाल पडजाना, तालु में कफकी सी लिहसावट और पियासा, ये उपद्रव होते हैं ।

मैथुन के उपद्रव

व्यवायादाशुबलसादोरुसादवस्तिशिरोगुदमेढ्रवंक्षणोरुजानुजंघापादशूलहृदयस्पन्दननेत्रपीडाङ्गशैथिल्यशुक्रमार्गशोणितागमनकासश्वासशोणितष्ठीवितस्वरावसादकटीदौर्बल्यैकांगसर्वांगरोगमुष्कश्वयथुवातवर्चोमूत्रासंगशुक्रविसर्गजाड्यवेपथुवाधिर्यविषादाः । उत्पाद्यतइवगुदस्ताड्यतइवमेढ्रमवसीदतीवमनोवेपतेहृदयंपीड्यन्तेसन्धयस्तमःप्रविश्यतइवचेत्येवमेभिरष्टभिरभिचारैरेतेप्रादुर्भवन्त्युपद्रवाः।

अर्थ—स्त्रीं गनमसे वल हानि, ऊरुसाद, वस्ति प्रदेश सिर गुदा मेढ्र वंक्षण ऊरु जानु जंघा और दोनों पांवों मे वेदना, हृदय का धड़कना, नेत्रों में दर्द, अंग में शिथिलता, वीर्य के मार्गसे रुधिरका निकालना, खांसी, श्वास, कफके साथ रुधिर आना, स्वरभंग कमरमें दुर्बलता, एकांगरोग, सर्वांगरोग, अंडकोषमें सूजन, अधोवायु विष्टा और मूत्रका विबन्ध, विना इच्छा ही वीर्यपात होना, जड़ता, कम्पन, बहिरापन आर विषाद आदि उपद्रव होतेहैं । गुदामें फटने कीसी पीड़ा होतीहै, मेढ्रमें चोट लग ने कीसी पीड़ा होतीहै, मन अवसन्न होजाता है, हृदय में कम्पन होता है, सन्धियों में पीडा होती है, और आंखों के साम्हने अंधेरासा छाजाता है ।

इनआठ प्रकार के वर्जित कर्मोंके सेवन करने से ऊपर लिखेहुए उपद्रव होते हैं ।

उच्चभाषणजन्यरोगोंमें उपाय ।

तेषांसिद्धिरुच्चैर्भाष्यातिभाष्यजानामभ्यंगस्वेदोपनाहधूमनस्योपरिभक्तस्नेहपानरसक्षीरादिभिर्वातहरःसर्वोविधिर्मौनश्च

अर्थ—उच्चभाषण और अति भाषण जन्यरोगों में अभ्यंग, स्वेद, उपनाह, धूम नस्य, भोजन के पीछे घृतपान दुग्धादिसेवन, सव प्रकारकी वातनाशकविधि और मौनधारण करने चाहियें ।

रथक्षोभजन्यरोगोंमेंउपद्रव ।

रथक्षोभातिचंक्रमणात्यासनजानांस्नेहस्वेदादिवातहरकर्म्मसर्वंनिदानवर्जम् ।

अर्थ—रथक्षोभ से उत्पन्न हुए रोगों में

तथा अतिचंक्रमण और अत्यासन से हुए रोगों में स्नेहन और स्वेदन से आदिलेकर वातनाशक कर्म करने चाहियें तथा जिन जिन कारणों से वे रोग उत्पन्न हुएहैं उन्हें भी छोड़ देना चाहिये ।

अजीर्णाध्यशनजरोगोंमेंउपाय ।

अजीर्णाध्यशनजानांनिरवशेषतःछर्दनं रूक्षस्वेदधूमपानलंघनीयपाचनीयदीपनी यौषधावधारणञ्च ।

अर्थ—दुष्पाच्य भोजन करने से तथा अध्यशन से जो रोग होते हैं उन में निःशेष वमन, रूक्षस्वेदन, धूमपान तथा लंघनीय, पाचनीय और दीपनीय औषधोंका प्रयोग करना चाहिये ।

विषमभोजनादिजन्यरोगोंमेंउपाय ।

विषमाध्यहताशनजानांयथास्वंदोषक्रिया ।

अर्थ—विषम भोजन और अहितभोजन करने से जो उपद्रव होते हैं उन में जैसा दोष हो उसीको नाश करनेवालीचिकित्सा करनी चाहिये ।

दिवास्वप्नजरोगोंमेंउपाय ।

दिवास्वप्नजानांधूमपानलंघनवमनविरेचनव्यायामरूक्षाशनानिष्ठदीपनीयौषधः प्रयोगः । प्रकर्षणोन्मर्दनपरिषेचनादिश्चश्लेष्महरःसर्वोविधिः ॥

अर्थ—जो रोग दिन में सोने से उत्पन्न हुए हैं उन में धूमपान, लंघन, वमन, शिरोविरेचन, व्यायाम, रूक्षभोजन और अनिष्ठ दीपनीय औषधों का प्रयोग हित है इस में लेखन, उन्मर्दन, और परिषेचनादि क्रियाओं का करना भी आवश्यकीय है ।

मैथुनजन्यरोगोंमेंउपाय ।

मैथुनजानां जीवनीयसिद्धयोः क्षीरसर्पिषोरुपयोगः । तथावातहराः स्वेदाभ्यंगोपनाहा वृष्याश्चाहाराः स्नेहास्नेहविधयो यापनवस्तयोऽनुवासनञ्च । मूत्रे कृतवास्तिशूलेषु चोत्तरवस्तिः । विदारीगन्धादिगणजीवनीयगणक्षीरसंसिद्धं तैलस्याद्यापनाश्चवस्तयः सर्वकालंदेयास्तानुपदेक्ष्यामः ॥

अर्थ—मैथुन से उत्पन्न हुए रोगों में जीवनीय गणोक्त द्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए दूध और घीका प्रयोगकरै, तथा वातको दूर करने वाले स्वेद, अभ्यंग, उपनाह, पुष्टिकारक आहार, स्नेहनकर्म, स्नेहविधि, यापनवस्ति और अनुवासन वस्तिका प्रयोगभी हितहै, मैथुन के कारण जो मूत्रमें विकारहो वा वस्तिमें शूलहोतौ उत्तर वस्ति का प्रयोग करना उचित है । विदारीगन्धादि गण, जीवनीय गण और दूध के साथ सिद्ध किया हुआ तेल और यापन वस्ति सदाही हित हैं ।

अब यहां से यापन वस्तियों वर्णन करेंगे।

यापन वस्ति की विधि ।

मुस्तोशीरबलारग्वधरास्नामाञ्जिष्ठाकटुरोहिणीत्रायमाणापुनर्नवाविभीतकगुडूचीस्थिरादिपञ्चमूलानिपलिकानिखण्डशः क्लिसान्यष्टौचमदनफलानिप्रक्षाल्यजलाढकेपरिक्वाथ्यपादशेषेरसःक्षीरद्विप्रस्थसं

युक्तःपुनःशृतःक्षीरावशेषेरसःक्षीरद्विप्रस्थ संयुक्तःपुनःपुनःशृतःक्षीरशेषःपादजांगल रसस्तुल्यमधुघृतःशतकुसुममधुककुटज फलरसाञ्जनप्रियंगुकल्कीकृत ससैन्धवः सुखोष्णवस्तिःशुक्रमांसबलजननःक्षतक्षी णकासगुल्मशूलविषमज्वरवर्ध्मकुण्डलो दावर्तकुक्षिशूलमूत्रकृच्छ्रासृग्रजोविसर्पप्र वाहिकाशिरोरुजाजानूरुजंघावस्तिग्रहा श्मर्युन्मादार्शःप्रमेहाध्मानरक्तपित्तश्लेष्म व्याधिहरःसद्योबलजननोरसायनश्च ।

अर्थ—मोथा, उसीर, खरैटी, अमलतास, रास्ना, मजीठ, कुटकी, त्रायमाणा, सांठ, वहेडा, गिलोय, और शालिपर्ण्यादि पंच-मूल इन सब द्रव्यों को एक २ पल लेवै तथा आठ मेनफल इन सब के टुकडे २ कर के पानी से धोकर एक आढक जल में पकावै । जब चौथाई शेष रहजाय तब उसे छानकर फिर उस में दो प्रस्थ दूध डालकर फिर औटावे, जब दूध शेष रहजाय तब उतारले और इस से चौथाई जांगल मांस-रस और बराबर का दूध और घी डाले और इसी में सोंफ,मुलहटी, इन्द्रजौ, रसौत और प्रियंगु इन के कल्क में सेंधानमक मिलाकर डालदे फिर गुनगुना करके वस्ति देवै । यह वस्ति शुक्र, मांस और बलको बढाती है । तथा क्षतक्षीण, खांसी, गुल्म, शूल, विषमज्वर, वर्ध्म, कुण्डल, उदावर्त्त कुक्षिशूल, मूत्रकृच्छ्र, रक्तप्रदर, विसर्प, प्र-वाहिका, शिरोरोग, जानुग्रह, ऊरुग्रह, जंघाग्रह वस्तिग्रह, अश्मरी, उन्माद, अर्शरोग, प्रमेह, आध्मान, रक्तपित्त, तथा कफजन्य व्याधि-यां इस वस्ति से दूर होजाती हैं । यह वस्ति सद्यः बलकारक और रसायन है ।

दूसरीयापनवस्ति ।

एरण्डमूलपलाशात्षट्पलंशालपर्णीपृ श्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकागोक्षुरकरा स्नाश्वगन्धागुडूचीवर्षाभूःआरग्वधदेवदा र्विंतिपलिकानिखण्डशःक्लिष्टानिफला निचाष्टौमक्षाल्यजलाढकेक्षीरपादेपचेत् । पादशेषंकषायंपूतंशतकुसुमाकुष्ठमुस्तापिप्प लीहपुषाबिल्ववचावत्सकफलरसाञ्जन प्रियंगुयवानीसंक्षेपकल्कितंमधुघृततैलसै न्धवयुक्तंसुखोष्णंनिरुहमेकंद्वौत्रीन्वाद द्यात् । सर्वेषांप्रशस्तोविशेषतोललितसु कुमारक्षतक्षीणस्थविरार्शसानांअपत्यका मानाञ्च ।

अर्थ—अरंडकी जड़, और ढाक छः २ पल । शालिपर्णी, प्रश्निपर्णी, वडी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, रास्ना, असगंध, गिलोय, सांठ अमलतास, और देवदारु इन में से प्रत्येक एक २ पल लेकर टुकड़े टुकड़े करले फिर इन्हें जल से धोकर एक आढक जल में चौथाई आढक जल मिलाकर पकावै, जब चौथाई शेष रहजाय तब इसको छान लेवै फिर इस क्वाथ में नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क तथा शहत, घी, तेल और सेंधानमक मिलाकर एक, दो, वा तीन निरूहण वस्ति देवै । कल्कके द्र-व्य, यथा—सोंफ, कूठ, मोथा, पीपल, हाऊबेर, विल्व, वच, इन्द्रजौ, मेनफल,

रसौत, प्रियंगु और अजवायन हैं। यह वस्ति सुखोष्ण दीजाती है। यहवस्ति प्रायः सबके लिये हित है परन्तु विशेष कर के ललित, सुकुमार, क्षतक्षीण, स्थविर और अर्शरोगियोंको हितहै तथा जो संतान की इच्छा करतेहैं उनके लिये भी हितहै।

तीसरीविधि।

सहचरबलामूर्वामूलशारिवासिद्धेनपयसा तथा। बृहतीकण्टकारीशतावरीछिन्नरुहा ॥ शृतेनपयसामधुकमदनपिप्पलीकल्ककृतेनपूर्ववद्वस्तिः ॥

अर्थ—सहचरी, खरैटी, मरोड़फली और अनन्तमूल इनके साथ दूध सिद्ध कर के अथवा बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, सितावर और गिलोय इनके साथ दूध औटाकर उसमें मुलहटी, मेनफल और पीपल का कल्क मिलाकर पहिलेकी तरह वस्ति देवै।

चौथीविधि।

तथाबलातिबलाविदारीशालपर्णीपृष्णिपर्णी। बृहतीकण्टकारिकादर्भमूलयवकाश्मर्य्याबिल्वफल। सिद्धेनपयसामधुकमदनकल्कीकृतेनमधुघृतसौव र्चलप्रयुक्तेनकासज्वरगुल्मलीहार्दितस्त्रीमद्य क्लिष्टानांसद्योबलजननोरसायनश्च ॥

अर्थ—इसी रीतिसे खरैटी, अतिबला, विदारीकन्द, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, दोनों कटेरी, दाभकीजड़, जौ, खंभारी, बेलफल, और मेनफल इनके साथमें सिद्ध कियेहुए दूध में महुआ और मुलहटी का कल्क तथा शहत, घी और संचर नमक डालकर वस्तिदेवै। यह वस्ति खांसी, ज्वर, गुल्म और प्लीहासे पीडित, अर्दितरोगी, स्त्री कर्षित और मद्यकर्षित रोगियोंको तत्काल बलकी देनेवाली और रसायन है।

पांचवींविधि।

तथाबलातिबलारास्नारग्वधमदनबिल्वगुडूचीपुनर्नवैरण्डाश्वगन्धासहचरपलाशदेवदारुद्विपञ्चमूलानिपलिकानियवकोलकुलत्थद्विप्रसृतंशुष्कमूलकानाञ्चजलद्रोणसिद्धंनिरूहप्रमाणंशेषंकषायंपूतंमधुकमदनशतपुष्पाकुष्ठपिप्पलीवचावत्सकफलरसाञ्जनप्रियंगुयवानीकल्कीकृतंगुडघृततैलक्षौद्रक्षीरमांसरसाम्लकाञ्जिकसैन्धवयुक्तंसुखोष्णंवस्तिदद्यात्। शुक्रमूत्रवर्चःसंगेऽनिलजेगुल्महृद्रोगाध्मानवर्ध्मपार्श्वपृष्ठ कटीग्रहसंज्ञानाशबलक्षयेषुच ॥

अर्थ—इसीतरह बला, अतिबला, रास्ना अमलतास, मेनफल, बेलफल, गिलोय, सांठ, अरंडकीजड़, असगंध, सहचर, ढाक, देवदारु और दसमूल इन को एक एक पल लेवै तथा जौ, बेर और कुलथी तथा सूखी मूली दोदो प्रसृत लेकर एक द्रोण जलमें पाककरै। जितना निरूहके लिये क्वाथ आवश्यक होताहै उतना शेष रहने पर छान ले। फिर इस क्वाथ में मुलहटी, मेनफल, सोंफ, कूठ, पीपल, वच, इन्द्रजौ, रसौत, प्रियंगु और अजवायन कल्क मिलावै तथा गुड़, घी, तेल, शहत, दूध, मांसरस, अम्लकांजी और सेंधानमक मिलाकर सुखोष्ण वस्ति देवै। यह वस्ति

शुक्र,मूत्र और विष्टा के विवन्ध में, तथा वातज गुल्मरोग, हृद्रोग, आध्मान, वर्ध्म, पार्श्वग्रह, पृष्ठग्रह, कटीग्रह, संज्ञानाश और वलक्षय में वहुत उत्तम है ।

छटी विधि

हपुषार्द्धकुडवद्विगुणार्द्धचुण्णयवःक्षीरोदकसिद्धःक्षीरशेषोमधुघृततैललवणयुक्तःसर्वांगविसृतवातरक्तसक्तविण्मूत्रस्त्रीखेदितहितोवातहरोवुद्धिमेधाग्निवलजननश्च ।

अर्थ—हाऊबेर आधाकुडव,आधे कुटेहुए जौ एककुडव, इनको समानभाग मिले हुए दूध और जल में औटावै, जब दूध शेष रहजाय तव इस में शहत, घी, तेल, और नमक मिलाकर वस्ति देवै तो सर्वांगगत वातरक्त, विष्टा का विवन्ध, मूत्रका विवन्ध तथा अत्यन्त स्त्री प्रसंग से उत्पन्न हुई क्षीणता को दूर करता है, यह वस्ति वात नाशक, वुद्धिवर्द्धक, मेधावर्द्धक, अग्निवर्द्धक और वलवर्द्धक होती है ।

सातवीं विधि ।

ह्रस्वमूलपञ्चकषायक्षीरोदकासिद्धःपिप्पलीमधुकमदनकल्काःसगुडघृततैललवणःक्षीणविषमज्वरकर्षितस्यवस्तिः ॥

अर्थ—लघु पंचमूल को समानभाग दूध और जल में सिद्ध करके दूध के शेष रहने पर इस में पीपल,मुलहटी,मेनफलका कल्क तथा गुड, घी, तेल और नमक मिलाकर यह वस्ति तथा विषम ज्वर के कारण कृश हुए रोगी को देवै ।

आठवीं विधि ।

बलातिबलापामार्गात्मगुप्ताष्टपलार्द्धचुण्णयवाञ्जलिकषायःपूर्ववद्वस्तिःस्थविरदुर्वलक्षीणस्त्रीनिषेविणांपथ्यउत्तमः ।

अर्थ—बला,अतिबला ओंगा और केंचके वीज येसब आठपल तथाआधे कुटे हुए जौ एक अंजलि इन को समानभाग दूध और जल में क्वाथ करके इस क्वाथ में पूर्वोक्त पीपल आदिका कल्क डालकर तथा गुड, घी, तेल और नमक मिलाकर वृद्ध दुर्वल, क्षीण और स्त्री सेवियों को वस्ति देवै।यह वस्ति वहुत उत्तम है ।

नवीं विधि ।

बलामधुकविदारीदर्भमूलमृद्वीकायवैःकषायमाजेनपयसापक्त्वामधुकल्कितंसमधुघृतसैन्धवंज्वरार्तेभ्योवस्तिंदद्यात् ॥

अर्थ—खरैटी,मुलहटी विदारीकंद,दाभकी जड किसमिस और जौ इन का वकरी के दूध में पकाकर मुलहटी का कल्क तथा घी, शहत और सेंधानमक डालकर ज्वर पीडित रोगियों को वस्ति देवै ।

दसवीं विधि ।

शालपर्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरकमूलकाश्मर्यपरूषकखर्जुरफलमधुकपुष्पैरजाक्षीरजलप्रस्थाभ्यांसिद्धःकषायःपिप्पलीमधुकोत्पलकल्कितःसघृतसैन्धवोक्षीणेन्द्रियविषमज्वरकर्षितस्यवस्तिः ॥

अर्थ—शालिपर्णी, पृश्णिपर्णी, गोखरू की जड, खंभारी, फालसा, खजूर, मेनफल, और महुआ इन को एक प्रस्थ वकरी के

दूध और जल में क्वथितकरके, इस क्वाथ में पीपल, मुलहटी और नीलकमल का कल्क तथा घी और सेंधानमक मिलाकर दुर्बलेन्द्रिय और विषम ज्वरसे कर्षित रोगी को वस्ति देवै ।

ग्यारहवींविधि ।

स्थिरादिपञ्चमूलीपञ्चपलेनशालिषष्टिकयव गोधूममाषकषायपञ्चप्रसृतेनछागपयःशृतं । पादशेषंकुक्कुटाण्डरसमधुघृतशर्करासैन्धवसौवर्चल युक्तोवस्तिर्वृष्यतमोवलजननश्च ॥

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूल के पांचों द्रव्य पांचपल, शालिचांवल, साठी चांवल, जौ गेंहू और उर्द ये सब पांच प्रसृत इन को वकरी के दूध में सिद्ध करै चौथाई शेष रहने पर उस को छानकर उसमें मुर्गे के अंडे का रस, शहत, घी, चीनी, सेंधानमक, संचरनमक, मिलाकर वस्ति देवै । यह वस्ति अत्यन्तवृष्य और वलकारक होती है ।

वारहवींविधि ।

कल्पश्चैषांशिखिगोनर्दहंसाण्डरसैस्यात् ।

अर्थ—उक्त क्वाथ में मुर्गे के अण्डे के रसकी जगह मोर, सारस वा हंस के अंडों का रस डालकर वस्ति दीजाय तौ भी वही गुण करती है ।

तेरहवींविधि ।

सतित्तिरिःसमयूरः राजहंसपंचमूलीपयःसिद्धं । शतकुसुममधुकरास्नाकुटजफल पिप्पलीकल्कः ॥ घृततैलगुडसैन्धवयुक्तो वस्तिर्वलवर्णशुक्रजननोरसायनश्च ॥

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूलको समान भाग दूध और जल में क्वथित करके उन का क्वाथ लेलेवै, इस क्वाथ में तीतर, मोर वा राजहंस का मांसरस तथा सोंफ, मुलहटी, रास्ना, इन्द्रजौ और पीपल इन का कल्क तथा घी, तेल, गुड और सेंधानमक मिलाकर वस्ति देनेसे वल, वर्ण और वीर्य की वृद्धि होती है । यह वस्ति रसायनहै।

चौदहवींविधि ।

द्विपञ्चमूलीकुक्कुटरससिद्धंपयःपादशेषं । पिप्पलीमधुकरास्नामदनमधुककल्कं ॥ शर्करामधुघृतयुक्तंस्त्रीष्वतिकामानांवलजननोवस्तिः ॥

अर्थ—दसमूल और मुर्गे के मांसरसको एकत्र कर के दूध में औटावै जव चौथाई शेष रहजाय तव पीपल, मुलहटी, रास्ना, मेनफल और मुलहठी का कल्क तथा चीनी, शहत और घी मिलाकर उनको वस्ति देवै जो स्त्रियों में अत्यन्त आसक्ति रखते हैं । यह वस्ति वलकारक भी है ।

पन्द्रहवींविधि ।

मयूरमपित्तपक्षपादास्यान्त्रंस्थिरादिभिः पलिकैःसहजलेपयसिपक्त्वाक्षीरशेषंमदनविदारीशतकुसुमा । मधुककल्कीकृतंमधुघृतसैन्धवयुक्तंवस्तिंदद्यात् । स्त्रीष्वतिप्रसक्तक्षीणेन्द्रियेभ्योहितोवलवर्णकरः ॥

अर्थ—एक मोर के पित्ते, पंख, पांव, मुख और आंतों को दूर कर के केवल मांस और हड्डियों को लेलेवै । फिर इस मांसको पांच पल जल और दूध में सिद्ध

कर के दूध शेष रहने पर छानले, फिर इसमें मेनफल, विदारीकन्द, सौंफ और मुलहटी का कल्क तथा शहत, घी और सेंधानमक मिलाकर वस्ति देवै, यह वस्ति स्त्रियों में अत्यन्त प्रसक्त और क्षीणेन्द्रिय वालों के लिये हितकारी और बल तथा वर्ण को वढ़ानेवाली है।

सोलहवीं विधि।

कल्पश्चैषविष्किरप्रतुदप्रसहाम्बुचरेषुस्या
द्दक्षीरोहितादिषुमत्स्येषु।

अर्थ—मोर के मांस के वदले विष्किर, प्रतुद, प्रसह और जलचारी जीवों का मांस प्रयोग करै, परन्तु रोहू मछली के प्रयोग के साथ दूधकाप्रयोग न करना चाहिये।

सत्रहवीं विधि।

गोधानकुलमार्जारमूषकशल्लकमांसानांद
शपलानभागान्सपञ्चमूलान्पयसिपक्त्वा
तत्पयःपिप्पलीफलकल्कसैन्धवसौवर्चलश
र्करामधुघृततैलयुक्तंवस्तिर्वल्योरसायनः
क्षीणक्षतस्यसन्धानकरोमथितोरस्करथ
गजहयभग्नवातवलासकप्रवृत्युदावृत्तत्रा
तसक्तमूत्रवर्चःशुक्राणांहिततमश्च।

अर्थ—गोह, नौला, विल्ली, चूहा और सेह इनसबका मांस पांचपल पंचमूल पांचपल, इन को दूध और जल समान भागमें औटावै, दूध शेष रहनेपर छानकर इसमें पीपल और मेन-फल का कल्क सेंधानमक, संचरनमक, चीनी शहत, घी मिलाकर वस्ति देवै, यह वस्ति वलकारक और रसायन होती है। क्षत और क्षीणरोगी को संधान करने वाली है जिसका हृदय फट गया हो, जिसका शरीर रथ, हाथी वा घोडे से टूट गया हो, जिस को वातवलास और उदावर्त रोग हो, तथा वातके कारण जिसका मूत्र, विष्ठा और वीर्य रुकगया हो, ऐसे रोगियों को यह वस्ति बहुत हित है।

अठारवीं विधि।

कूर्मादीनांअन्यतमपिशितसिद्धंपयोगोवृ
षनागहयनक्रहंसकुक्कुटाण्डरसमधुघृतश
र्करासैन्धवेक्षुरकात्मगुप्तफलकल्कसंसृष्टो
वस्तिःवृद्धानामपिवलजननः॥

अर्थ—कछुए आदि दस प्रकार के जल जन्तुओं में से किसी एक के मांसको दूध में सिद्ध करके उस दूध में गौ वैल, हाथी, घोडा का मांसरस, हंस और मोर के अंडों का रस, शहत, घी, चीनी, सेंधा-नमक, तालमखाना, कैंचके वीज और मेन फल इनका कल्क मिलाकर वस्ति देने से वृद्ध मनुष्य भी वलवान् होजाते हैं।

उन्नीसवीं विधि।

गोवृषवस्तवराहवृषणकर्कटचटकासिद्धंक्षी
रंउच्चटकेक्षुरकात्मगुप्तामधुघृतयुतंकिञ्चि
ल्लवणितंवस्तिः।

अर्थ—वैल, विजार, वकरा और शूकर इनके अंडकोष, तथा किरकेंटा और चिडा इन का मांसरस इन को डालकर औटाये हुए दूध में उच्चटक, तालमखाना और कैंचके वीज का कल्क तथा शहत घी और थोडा सा नमक मिलाकर वस्ति देवै।

वीसवी विधि ।

कर्कटकरसश्चटकाण्डरसयुक्तःसमधुघृतश र्करोवस्तिःइत्येतेवस्तयःपरमवृष्याः ॥

अर्थ—कर्कटरस, चिरोंटे के अंडे का रस शहत घी और चीनी मिलाकर वस्ति देवै, ये वस्ति अत्यन्त वृष्य होती है ।

इक्कीसवीं विधि ।

उच्चटकेक्षुरकात्मगुप्ताःशृतक्षीरप्रतिभोज नानुपानाःस्त्रीशतगामिनंनरंकुर्य्युः ।

अर्थ—उच्चटा, तालमखाना और कैंच के वीज इन के साथ सिद्ध किया हुआ दूध भोजन करने के साथ वा भोजनसे पीछे पान करै तौ सौ स्त्रियों से भोग की शक्ति होवै ।

वाईसवी विधि ।

दशमूलमयूरहंसकुक्कुटक्काथात्पञ्चप्रसृतं तैलघृतवसामज्जचतुष्प्रसृतयुक्तंशतपुष्पा मुस्तहपुषाकल्कीकृतंसलवणोवस्तिःपाद गुल्फोरुजानजंघात्रिकवंक्षणवस्तिवृष णानिलहरः ॥

अर्थ—दशमूल, तथा मोर, हंस और मुर्गा इन के मांस का क्काथ कर के पांच प्रसृत लेवै और इस क्वाथ में तेल, घी, चर्बी और मज्जा चार प्रस्थ तथा सोंफ, मोथा, हाऊबेर इनका कल्क और थोड़ा सा नमक मिलाकर वस्ति देवै । यह वस्ति पांव, टकना, ऊरू, जानु, जंघा, त्रिकवंक्षण वस्ति और अंडकोषके वायुसंबंधी रोगोंको दूर करती है ॥

तेईसवीं विधि ।

मृगविष्किरानूपविलेशयानामेतेनैवकल्पेन वस्तयोदेयाः ।

अर्थ—मृग, विष्किर, आनूप और विलेशयों के मांस की वस्ति भी इसीतरह से दीजाती है ।

चौवीसवींविधि

मधुघृताद्विप्रसृतंतुल्योष्णोदकंशतपुष्पार्द्ध पलंसैन्धवार्द्धाक्षयुक्तोवस्तिर्दीपनोबृंहणो वलवर्णकरोनिरुपद्रवोवृष्यतमोरसायन। क्रिमिकुष्ठोदावर्त्तगुल्मार्शोब्रध्नप्लीहमेह हरः ।

अर्थ—शहत और घी दो प्रसृत, गरम जल दो प्रसृत, सोंफ आधापल, सेंधानमक आधा तोला इनको मिलाकर वस्ति देवै । यह वस्ति दीपन, बृंहणकर्त्ता, बलवर्णवर्द्धक, निरुपद्रव, अत्यन्त वृष्य और रसायन है । यह वस्ति क्रिमिरोग, कोढ, उदावर्त्त, गुल्म रोग, अर्श, ब्रध्न, प्लीहा और प्रमेहको दूर करदेती है ॥

पच्चीसवींविधि

तद्वतसमधुघृताभ्यांपयस्तुल्योवस्तिपूर्वक ल्पेनबलवर्णकरोवृष्यतमोनिरुपद्रवोव स्तिमेढ्रपाकपरिकर्त्तिकामूत्रकृच्छ्रपित्त व्याधिहरोरसायनश्च ।

अर्थ—इसीतरह शहत और घी तथा दोनों समान दूध मिलाकर पूर्वरीतिसे वस्ति देवै । यह वस्ति बल और वर्ण बढानेवाली, अत्यन्त वृष्य, उपद्रव रहित है । इस के सेवनसे वस्तिपाक, मेढ्रपाक, परिकर्त्तिका,

मूत्रकृच्छ्र और पित्तव्याधियां दूर होजाती हैं। यह रसायन भी है।

छब्बीसवीं विधि।

मधुघृताभ्यांमांसरसतुल्योमुस्ताक्षयुक्तः पूर्ववत्वास्तिर्वलासपादहर्षगुल्मजानूरुनिकुञ्चनिवस्तिवृषणमेढ्रपृष्ठशूलहरः।

अर्थ—शहत और घी तथा दोनों के बराबर मांसरस और एक तोले मोथा मिलाकर पूर्ववत् वस्ति का प्रयोग करै। यह वस्ति कफ, पादहर्ष, गुल्म, जानुका निकुंचन ऊरुनिकुंचन, वस्तिशूल, वृषणशूल, मेढ्रशूल, और पृष्ठशूल को दूर करती है।

सत्ताईसवीं विधि।

सुरासौवीरकुलत्थमांसरसमधुघृततैलसप्तप्रसृतंमुस्तशताह्वाकल्किर्तसलवणोवस्तिःसर्ववातरोगहरः।

अर्थ—सुरा, सौवीरक, कुलथी का रस, मांसरस, शहत, घी और तेल सब मिलाकर सात प्रसृतलेवै इसमें मोथा और सोंफ का कल्क तथा सेंधानमक मिला कर वस्ति देवै, यह वस्ति सब प्रकार के वात रोगोंको दूर करतीहै।

अट्ठाईसवींविधि।

तथाद्विपञ्चमूलंत्रिफलाविल्वमदनफलकषायोगोमूत्रसिद्धःकुटजमदनफलमुस्तपाठाकल्कितःसैन्धवयावशूकक्षौद्रतैलयुक्तो वस्तिःश्लेष्मव्याधिवस्त्याटोपवातशुक्रसङ्गपाण्डुरोगाजीर्णविषूचिकालसकेषुदेया इति।

अर्थ—लघुपंचमूल, वृहत्पंचमूल, त्रिफला बेलसोंठ और मेनफल इनका गोमूत्र में क्काथ करके इसमें इन्द्रजौ, मेनफल, मोथा और पाठा इनका कल्क तथा सेंधानमक, जवाखार, शहत और तेल मिलाकर वस्ति देवै। यह वस्ति कफके रोग, वस्ति प्रदेशके आटोप, अधोवायु और शुक्रके विवन्ध, पांडुरोग, अजीर्ण विषूचिका और अलसक इन रोगों को दूर करतीहै।

स्नेहप्रकरण।

अथऊर्द्ध्ववृष्यतमान्स्नेहान्वक्ष्यामः॥

अर्थ—तदन्तर आत्रेय बोले कि अब हम अत्यन्त वृष्य स्नेहों का वर्णन करेंगे।

शतावरीगुडूचीक्षुविदार्य्यामलकद्राक्षाखर्जूराणांयन्त्रपीडितानांरसप्रस्थमेकैकंतद्वत्घृततैलगोमाहिष्याजाक्षीराणांद्वौद्वौदद्यात्। जीवकर्षभकमेदमहामेदत्वक्क्षीराशृङ्गाटकमधूलिकामधुकोच्चटकापिप्पलीपुष्करवीजनीलोत्पलकदम्बपुष्पपुण्डरीककेशरकल्कानपृषततरक्षुमांसकुक्कुटचटकचकोरमत्तावर्हिजीवजीवककुलिंगहंसानांरसंवसामज्जादेश्चप्रस्थंदत्वासाधयेत्॥

अर्थ—सितावर, गिलोय, ईख, भूमिकूष्माण्ड, आंवला, दाख और खजूर इनको अलग अलग कोल्हूमें पेलकर एक एक प्रस्थ रस लेवै, इसीतरह से घी, तेल, गौका दूध, भैंसका दूध और बकरी का दूध दोदो प्रस्थ लेवै। तथा जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, वंशलोचन, सिंघाडा, मधूलिका, मुलहटी, उच्चटा पीपल, पद्मवीज,

नीलोत्पल, कदम्बके फूल, पुंडरिया काट और नागकेसर इनका कल्क तयार करै। पृषत, हरिण, तरलु (रोझ), मुर्गा, चिडा चकोर, मत्ताक्ष, मोर, जीवंजीवक कुलिंग और हंस इन का रस एक प्रस्थ तथा वसा और मज्जा एक प्रस्थ डालकर सब को पकावै।

उक्त वस्ति की विधि।

ब्रह्मघोषशंखपटहभेरीनिनादैःसिद्धंसित च्छत्रकृतछायंगजस्कन्धमारोपयेद्भगवन्तं वृषध्वजंअभिपूज्यतंस्नेहंत्रिभागमाक्षिक मंगलाशीःस्तुतिदेवतार्चनैर्वस्तिंगमयेत्।

अर्थ—इस स्नेह का पाक करते समय वेदध्वनि, शंख, पटह और भेरी बजाता रहै। जब पक कर सिद्ध होजाय तब जिस मनुष्य के लिये इसका प्रयोग करना हो उस के ऊपर सफेद छत्र तानकर हाथी पर चढावै, फिर भगवान् वृषध्वज का पूजन कराके, इस स्नेह से तिहाई शहत मिलाकर मंगलपाठ, आशीर्वचन, स्तुति और देवतार्चन के साथ वस्ति का प्रयोग करै।

उक्तवस्ति के गुण।

नृणांस्त्रीविहाराणांनष्टरेतसांक्षतक्षीण विषमज्वरार्त्तानांव्यापन्नयोनीनांवन्ध्या नांरक्तगुल्मानांमृतापत्यानामनार्त्तवीना श्चस्त्रीणांक्षीणमांसरुधिराणांपथ्यतमर सायनमुत्तममूवलीपलितनाशनंविद्यात्।

अर्थ—जो मनुष्य स्त्रियोंसे अत्यन्त विहार करते हैं, जिनका वीर्य नष्ट होगया है, जोक्षत, क्षीण और विषमज्वरसे पीडितहै, जिन स्त्रियोंके योनिरोगहैं, जो वन्ध्या हैं, जिन के रक्तगुल्म है, जिनके बच्चे मरजाते हैं, जिनके रजोदर्शन नहीं होताहै, जिनका मांस और रुधिर क्षीण होगया है उनको यह वस्ति श्रेष्ठतम, उत्तम रसायन और वली पलित नाशक है (झुरियां और सफेद बालों को दूर करनेवाली है)।

बलादिस्नेह।

वलागोक्षुरकरास्नाश्वगन्धाशतावरीसह चराणांशतंशतन्यायोज्यजलद्रोणशतेप्र साध्यंतस्मिन्जलद्रोणावशेषेरसेवस्त्रपूते विदार्य्यामलकरसयोर्वस्तमाहिषवराहवृष कुक्कुटवर्हिहंसकारण्डवसारसानांघृततै लयोश्चैकंप्रथक्प्रस्थमष्टौप्रस्थान्क्षीरस्यद त्वाचन्दनमधुकमधूलिकात्वक्क्षीराविस मृणालोत्पलपटोलफलात्मगुप्ताप्रियालपाकि तालमज्जञ्चखर्जूरमृद्वीकातामलकीवरट कारीजीवकर्षभक्षुद्रसहान्महासहाशता वरीमेदापिप्पलीह्रीवेरत्वक्पत्रकल्पांश्च दत्वासाधयेत्। ब्रह्मघोषादिनाविधिस्त त्सिद्धंवस्तिमादद्यात्। तेनस्त्रीशतंगच्छे तनचात्रास्तेविहाराहारयन्त्रणाक्वचित्। एषवृष्योवर्ण्योबृंहणआयुष्योवलीपलित नुत्। क्षतक्षीणनष्टशुक्रविषमज्वरार्त्ता नाम्व्यापन्नयोनीनाञ्चपथ्यतमः।

अर्थ—खरैटी, गोखरू, रास्ना, असगंध, सितावर और सहचर इनमेंसे प्रत्येक सौ२ पल लेकर सौ द्रोण जल में पकावै जब पकते २ एक द्रोण रहजाय तब उसे वस्त्र में छानलेवै। फिर विदारीकन्द और आंवले

का रस एक २ प्रस्थ, बकरा भैंसा सूअर बैल मुर्गा मोर हंस कारण्डव और सारस इनका मांसरस एक २ प्रस्थ, घृत और तेल एक २ प्रस्थ और दूध आठ प्रस्थ इन सबको इकट्ठा करै फिर चन्दन, मुलहटी, मधूलिका, वंशलोचन, कमलनाल, मृणाल, नीलोफर, परवल, मेनफल, कैंच के बीज, अन्नपाकी, तालका गूदा, खजूर, किसमिस, भूआंवला, कटेरी, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, सितावर, मेदा, पीपल, नेत्रवाला, दालचीनी और तेजपात इनका कल्क। इन सबको मिलाकर पूर्ववत् वेदध्वनि के साथ सिद्ध करै और फिर इसका प्रयोग करै। इस वस्ति के सेवन से मनुष्य में सौ स्त्रियों से गमन करनेकीशक्ति होजाती है इस में आहार विहारकी किसी प्रकारकी रोक टोक नहीं है। यह वस्ति पुष्टिकारक,वर्णकारक,बृंहण,आयुवर्द्धक और बली पलित नाशकहै। यह वस्ति क्षतक्षीण रोगी, नष्टशुक्ररोगी, विषमज्वरपीडित तथा योनिरोग से पीडित स्त्रियों के लिये हित है।

सहचरादिस्नेह।

सहचरपलशतंप्रोदकद्रोणचतुष्टयेपक्त्वा द्रोणशेषेरसेसुपूतेविदारीक्षुरसप्रस्थाभ्यामष्टगुणक्षीरंघृततैलप्रस्थंबलामधुकमधूकचन्दनमधूलिकाशारिवामेदामहामेदाकाकोलीक्षीरकाकोलीपयस्यागुरुशार्ङ्गेष्टाव्याघ्रनखशटीसहचरसहस्रवीर्यावरांगलोध्राणामक्षसमैर्द्विगुणशर्करैःकल्कैः साधयित्वाब्रह्मघोषादिविधिना। तत् सिद्धंवस्तिंदद्यादेषसर्वरोगहरोरसायनो ललितानांश्रेष्ठोऽन्तःपुरचारिणीनांक्षत क्षयवातपित्तवेदनाश्वासकासहरस्त्रिभागमाक्षिकोवलीपलितनुद्वर्णरूपबलमांस शुक्रवर्द्धना॥

अर्थ—सौपल सहचर को चारद्रोणीजल में पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले। फिर विदारीकन्दका रस एक प्रस्थ,ईख का रस एक प्रस्थ,दूध आठ प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ तेल एक प्रस्थ ग्रहण करै। तथा खरैटी,मुलहटी,महुआ,चन्दन,मधूलिका, शारिवामेदा,महामेदा,काकोली,क्षीरकाकोली भूमिकूष्मांड, अगर, शार्ङ्गेष्टा, बघनखी, कचूर, सहचरी, दूब, दालचीनी और लोध प्रत्येक एक एक तोला तथा इन सब से दूनी चीनी मिलाकर वेदध्वनि के साथ पूर्ववत् पाक करै। सिद्ध होने पर वस्ति द्वारा इसका प्रयोग करै। यह वस्ति सिद्ध है। तथा यह वस्ति सम्पूर्ण रोगों के नाश करने वाली,रसायन, सुकुमार तथा अन्तःपुर में रहने वालियों के लिये हित है। इस से क्षतरोग, क्षयी रोग, वातज वेदना, पित्तज वेदना, श्वास और खांसी दूर होजाती हैं। इस स्नेह में तिहाई शहत मिलाकर सेवन करने से वली पलित दूर होजाता है। इससे वर्ण, रूप, वल, मांस और वीर्य वढता है।

इत्येतेरसायनाःस्नेहवस्तयः। सतिविंशतपाकावासहस्रपाकावाकार्यावीर्यबलाधानार्थमिति॥

अर्थ—इस तरह सब रसायन प्रयोग और स्नेह वस्तियों का वर्णन किया गया है। विभव होने पर वीर्य और बल बढाने के निमित्त इन स्नेहों का शतपाक और सहस्त्रपाक करके वस्ति द्वारा प्रयोग करना चाहिये।

भवन्तिचात्र।

इत्येतेवस्तयःस्नेहाश्चोक्ताप्राणिषुसद्धिताः। सुस्थानामातुराणाञ्चवृद्धनाञ्चावरोधिनः॥ अतिव्यवायशीलानांशुक्रमांसबलप्रदाः। सर्वरोगप्रशमनाःसर्वेष्वृतेषुयोगिकाः॥ नारीणामप्रजातानांनराणाश्चाप्यपत्यताम्। उभयार्थकरादृष्टास्तेहवस्तिनिरूहयोः॥

अर्थ—प्राणियों के हित के लिये इन स्नेह वस्तियों का वर्णन किया गया है, ये बस्तियों रोग रहित, रोगग्रस्त और वृद्ध सब ही को अनुकूल हैं। जो अत्यन्त स्त्री सेवीहैं उन के शुक्र, मांस और बल को बढ़ातीहै, सम्पूर्ण रोगों को नाश करने वाली हैं- ये सब ऋतुओं में दीजा सक्ती है। इन के सेवन बन्ध्या स्त्री और निःसन्तान पुरुषोंके सन्तान उत्पन्न करता है। ये वस्तियां अनुवान और निरूहण दोनों का काम देती हैं।

वस्तिसेवनमेंवर्जितकर्म।

व्यायामोमैथुनंमद्यंमधूनिशिशिराम्बुच। सम्भोजनंरथक्षोभवस्तिष्वेतेषुगर्हितम्॥

इन बस्तियों में व्यायाम, मैथुन, मद्यपान, शहत सेवन, शीतल जल, अत्यन्त भोजन और रथक्षोभ वर्जित हैं।

वस्तियोंकीसंख्या।

शिखिगोनर्दहंसाण्डैर्दक्षवद्वस्तयस्त्रयः। विंशतिर्विष्किरैस्त्रिंशत्प्रतुदैःप्रसहैस्तथा त्रिंशदेकास्तथासप्तविंशतिश्चाम्बुचारिभिः नवमत्स्यादिभिश्चैवशिखिकल्पेनवस्तयः॥ दशकर्कटकाद्यैश्चकूर्मकल्पेनवस्तयः। मृगैः सप्तदशैकोनविंशतिर्विष्किरैर्नव। आनूपैर्दक्षशिखिवद्भूशयैश्चचतुर्दश॥ एकोनत्रिंशदित्येतेसहस्नेहैःसमासतः। प्रोक्ताविस्तरशोभिन्नाद्वेशतेषोडशोत्तरे॥ एते माक्षिकसंयुक्ताःकुर्वन्त्यतिवृषंनरम्।

अर्थ—मोर, सारस और हंस के अंडों की तीन वस्ति, मुर्गेकी एक, विष्किर पक्षी वीस प्रकार के होते हैं इस से उनकीबीस वस्ति, प्रतुद तीस प्रकार के होते हैं इससे उनकी तीस वस्ति, प्रसहोंकी इकत्तीस वस्ति जलचारियोंकी सत्ताईस, मछलियों की नौ, कर्कटकादि की दस, हिरनों की सत्रह, विष्किरों की उन्नीस, आनूप की नौ, भूशयों की चौदह तथा उन्तीस प्रकार के स्नेह। इस तरह सब प्रकार की वस्तियां मिलकर दो सौ सोलह हैं पर इनकी संख्या कुछ अधिक होती है।

इन वस्तियों में यदि शहत और मिला दिया जाय तो अत्यन्त पुष्टिकारक होजाती हैं॥

नातियोगंनचायोगंस्तम्भितास्तेचकुर्वते॥

अर्थ—इन वस्तियोंके प्रयोग से अयोग वा अतियोग कुछ नहीं होता है और न ये स्तम्भित होती हैं॥

उक्तवस्ती में आस्थापनविधि ।

मृदुत्वान्ननिवर्तेरन्यस्यत्वेतेप्रयोजिताः । समूत्रैर्वस्तिभिस्तैस्तैरास्थाप्यःक्षिप्रमेवसः

अर्थ—यदि उक्त वस्ति मृदुता के कारण प्रत्यागमन न करै, तौ गोमूत्र के साथ सिद्ध की हुई तीक्ष्ण आस्थापन वस्ति का शीघ्रही प्रयोग करना चाहिये ।

अतिसेवितयापनकेउपद्रव ।

शोफाग्निनाशपाण्डुत्वशूलार्शःपरिकर्त्तिकाः । स्युर्ज्वरश्चातिसारश्चयापनात्यर्थसेवया ॥

अर्थ—यापन वस्ति के अत्यन्त सेवन करने से सूजन, मन्दाग्नि, पांडुरोग, शूल, अर्श, परिकार्त्तिका, ज्वर और अतिसार ये उपद्रव होते हैं ।

उक्त उपद्रवोंमेंचिकित्सा ।

अरिष्टक्षारशीध्वाद्यातत्रेष्टादीपनीक्रिया ।

अर्थ—इन उपद्रवों में अरिष्ट, क्षार, शीधु और अग्निसंदीपन क्रिया हित होतीहैं।

अति सेवनका निषेध ।

युक्तयातस्मान्निषेवेतयापनान्नप्रसङ्गतः ॥

अर्थ—इसलिये वस्तियों का युक्तिपूर्वक सेवन करना चाहिये, अप्रसंग से इनका सेवन कदापि न करै ।

इत्युच्चैर्भाष्यपूर्वाणांव्यापदःसचिकित्सिताः । विस्तरेणपृथग्दृष्टास्ताभ्यांरक्षेन्नरं सदा ॥

अर्थ—इस तरह उच्चभाषण से आदि लेकर सब रोगों के लक्षण और उनकी चिकित्सा बिस्तार पूर्वक वर्णन कीगई हैं। इन सम्पूर्ण रोगों से मनुष्य की सदा रक्षा करनी चाहिये ।

सिद्धिस्थानकेलक्षण ।

कर्मणांवमनादीनांअसम्यक्करणापदाम् । यत्रोक्तंसाधनंस्थानेसिद्धिस्थानंतदुच्यते ॥

अर्थ—वमन विरेचनादि पंचकर्मों के असम्यक् योग से जो उपद्रव होते हैं उनका साधन इस स्थान में वर्णन किया गया है इससे इसे सिद्धिस्थान कहते हैं।

इत्यध्यायशतंविंशमात्रेयमुनिवाङ्मयम् । हितार्थंप्राणिनांप्रोक्तमग्निवेशेनधीमता ॥

अर्थ—इस तरह आत्रेयमुनिने मनुष्यों की भलाई के लिये जो २ उपदेश दिये हैं उनको आग्निवेशने इन एकसौ बीस अध्यायों में विभक्त कियाहै ।

इसग्रन्थकाफल ।

दीर्घमायुर्यशःप्रज्ञामारोग्यंचापिपुष्कलम् । सिद्धिंचानुत्तमांलोकेप्राप्नोतिविधिनापठन् ॥

अर्थ—जो मनुष्य विधिपूर्वक इस ग्रन्थ को पढ़ेगा उसको दीर्घायु, यश, बुद्धि, पुष्कल निरोगता और अनुपम सिद्धि मिलैगी ।

विस्तारयतिलेशोक्तंसंक्षिपत्यतिविस्तरम् । संस्कर्ताकुरुतेतन्त्रंपुराणंचपुनर्नवम्

अर्थ—अग्नि वेशने जो बातें संक्षिप्तसे वर्णन कीहैं उन्हीं को प्रतिसंस्कर्ता चरकाचार्यने विस्तारपूर्वक वर्णन कीहैं । जोबातें उन्होंने विस्तारपूर्वक वर्णन कीहैं,वे चरकने संक्षिप्त करके समझादीहैं । इस तरह अग्नि

वेशके रचेहुए प्राचीन ग्रन्थको चरकाचार्यने नया बना दियाहै ।

अतस्तन्त्रोत्तममिदंचरकेणातिबुद्धिना ।
संस्कृतंतंतुसंसृष्टंविभागेनोपलक्ष्यते ॥

अर्थ—यह ग्रन्थ कहीं कहीं बहुत विस्तृत और कहीं बहुत अल्पथा, इससे इसको चरकने पुनः संस्कार करके सर्वोत्तम बनादियाहै और इसके विभागभी पृथक् पृथक् करदियेहैं ।

इदमन्यूनशब्दार्थंतन्त्रंदोषविवर्जितम् ।
अखण्डार्थंदृढबलोजातःपञ्चनदेपुरे ॥
कृत्वाबहुभ्यस्तन्त्रेभ्योविशेषाच्चबलोच्चयम् । सप्तदशौषधाध्यायंसिद्धिकल्पैरपूरयत् ॥

अर्थ—इस ग्रन्थमें किसी विषयकी कमी नहींहै, किसी प्रकारका दोषभी नहींहै और अखंडार्थ भीहै, पहिले यह खंडितथा इसमें चिकित्सित स्थानके पहिले सत्रह अध्याय तथा कल्पस्थान और सिद्धिस्थान नहीं थे। पंचनद नामक नगर में एक दृढ़वल हुआ था उसने बहुत से अन्य ग्रन्थोंसे संग्रह करके येसत्रह अध्याय तथा कल्पस्थान और सिद्धिस्थान इस में लगाकर इस ग्रन्थ को पूर्ण कर दियाहै ।

तन्त्रयुक्तियोंकावर्णन ।

पञ्चत्रिंशद्विचित्राभिर्भूषितंतन्त्रयुक्तिभिः
तत्राधिकरणंयोगोहेत्वर्थोर्थःपदस्यच ॥
प्रदेशोद्देशनिर्देशवाक्यशेषाःप्रयोजनम् ।
उपदेशापदेशातिदेशार्थापत्तिनिर्णयाः ॥
प्रसङ्गैकान्तनैकान्तःसापवर्गोविपर्ययः ।
पूर्वपक्षविधानानुमतव्याख्यानसंशयाः ॥
अतीतानागतापेक्षास्वसंज्ञाह्यसमुच्चयाः।
निदर्शनंनिर्वचनंसन्नियोगोविकल्पनम् ॥
प्रत्युच्चारस्तथोद्धारःसम्भवस्तन्त्रयुक्तयः।
तन्त्रव्याससमासाभ्यांभवन्त्येतानिकृत्स्नशः ॥

अर्थ—यह ग्रन्थ पेंतीस प्रकारकी विचित्र तंत्रयुक्तियों से आभूषित है, वे तन्त्र युक्तियां येहैं, यथा—अधिकरण, योग, हेत्वर्थ, पदार्थ, प्रदेश, उद्देश, निर्देश, वाक्यशेष, प्रयोजन, उपदेश, अपदेश, अतिदेश, अर्थापत्ति, निर्णय, प्रसङ्ग, एकान्त, अनेकान्त, अपवर्ग, विपर्य्यय, पूर्वपक्ष, विधान, अनुमत, व्याख्यान, संशय, अतीतापेक्षा, अनागतापेक्षा, स्वसंज्ञा, असमुच्चय, निदर्शन, निर्वचन, सान्नियोग, विकल्पन, प्रत्युच्चार, उद्धार और सम्भव। ये सब युक्तियां इसी ग्रन्थ के भीतर संक्षेप वा विस्तार से वर्णन कीगई है।

तन्त्रेसमासव्यासोक्ताभवन्त्येताहिकृत्स्नशः । एकदेशेनदृश्यन्तेरामासाभिहितेतथा । यथाम्बुजवनस्यार्कःप्रदीपोवेश्मनोयथा ॥ प्रबोधनप्रकाशार्थास्तथातन्त्रस्य युक्तयः ।

अर्थ—ये सब तन्त्र युक्तियां संक्षेप वा विस्तारसे इसग्रन्थहीमेंहैं, परन्तु इनकासुखपूर्वक ज्ञान होजाने के निमित्त यहां इकट्ठी कर के लिखी गई हैं । जैसे कमलों के वन को सूर्य खिलाता है और घर में दीपक प्रकाश करता है इसी तरह से ये तन्त्रयुक्तियां

इस ग्रन्थ के अर्थ को प्रकाशित करतीहैं।

एकस्मिन्नापियस्येहशास्त्रेलब्धास्पदामतिः। सशास्त्रमन्यदप्याशुयुक्तिज्ञत्वात्प्रबुध्यते ॥

अर्थ—जिसकी इस एकही शास्त्रमें बुद्धि लब्धास्पद होगई है अर्थात् इसके विषयों को अच्छी तरह समझगईहै, वह इन युक्तियोंके सहारेसे अन्यशास्त्रोंका शीघ्रही स्वयं विचार कर सकताहै।

अधीयानोऽपिशास्त्राणितन्त्रयुक्तयाविचक्षणः ॥ नाधिगच्छतिशास्त्रार्थानर्थान् भाग्यक्षयेयथा।

अर्थ—भाग्यकी मन्दता के कारण ऐसा भी होताहै कि बहुतसे बुद्धिमान् मनुष्य तन्त्र युक्तियोंके अनुसार शास्त्रोंके पढनेपर भी शास्त्रके विषयोंको अच्छी तरह नहीं समझतेहैं जैसे भाग्यके क्षीण होने पर मनुष्यको किसी तरह अर्थ प्राप्ति नहीं हो सकती है।

ग्रन्थको शस्त्र से समानता।

दुर्गृहीतंक्षिणोत्येवशास्त्रंशस्त्रमिवाबुधम्। सुगृहीतंतदेवज्ञंशास्त्रंशस्त्रश्चरक्षति।

अर्थ—असम्यक् रीतिसे पढाहुआ शास्त्र अज्ञानीको ऐसे नष्ट करदेता है, जैसे बुरी तरह से पकडा हुआ शस्त्र अजान आदमी को नष्ट करदेता है। परन्तु सुगृहीत शास्त्र और शस्त्र ज्ञानवान् मनुष्यकी रक्षा करते हैं।

तस्मादेताःप्रवक्ष्यन्तेविस्तरेणोत्तरेपुनः ॥ तत्त्वज्ञानार्थमस्यैवतन्त्रस्यगुणदोषतः।

अर्थ—इसीलिये यहां इन तन्त्रयुक्तियों का पुनर्वार वर्णन कियागयाहै किइन तन्त्र युक्तियों से इस ग्रन्थ के गुण और दोषों के तत्वका ज्ञान होजाय।

इदमखिलमधीत्यसम्यगर्थान्विदिशति योविमलःप्रयोगनित्यः। समनुजसुखजीवितप्रदानात्भवतिधृतिस्मृतिबुद्धिधर्मवृद्धः ॥

अर्थ—इस ग्रन्थ को अच्छीतरह पढकर और उसके विषयों को अच्छीतरह समझ कर जो चिकित्सा का प्रयोग करताहै वह मनुष्यों को सुख और जीवदान देनेसे धृति स्मृति,बुद्धि और धर्मकी प्राप्ति करताहै।

यस्यद्वादशसाहस्रीहृदितिष्ठतिसंहिता। सोऽर्थज्ञःसविचारज्ञश्चिकित्साकुशलश्चसः। रोगांस्तेषांचिकित्साञ्चसाकिमर्थनबुध्यते।

अर्थ—यह संहिता जिसमें बारह सहस्त्र श्लोक संख्याहै जिसके हृदयमें स्थित है वही अर्थज्ञ और विचारज्ञ है तथा वही चिकित्सा में भी कुशल है, वह रोग और उनकी चिकित्सा को किसतरह नहीं जान सक्ता है।

इतिश्रीकृष्णलालकृतभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धिस्थानेउत्तरवस्तिसिद्धिर्नामद्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

ग्रन्थका गौरव ।

चिकित्सावन्हिवेशस्यसुस्थातुरहितंप्रति ।
यदिहास्तितदन्यत्रयन्नेहास्तिनतत्क्वचित् ॥

अर्थ—स्वस्थ और रोगीके हितके लिये जो चिकित्सा अग्निवेश ने इस ग्रन्थ में वर्णन कीहै वहअन्य किसी ग्रन्थमें नहीं मिलसक्ती है किन्तुजो बात इसग्रन्थ में नहीं है वह कहीं और जगह भी नहीं मिलसक्ती है ॥

॥ अस्यग्रन्थस्योत्तरार्द्ध ॥

* समाप्तम्. *

Printed at the L. N. Press Moradabad.

॥ ओ३म् ॥

श्रीहरिम्वन्दे

सुश्रुतसंहिता

मूल भाषाटीका शारीरिक के चित्र और अंगरेजी कोष सहित छपकर तयार है।

हे प्रियवरो—आज हम सहर्ष आपलोगों का चित इधर खींचते हैं क्योंकि यह कहावत प्रसिद्ध है कि "एक तन्दुरुस्ती और हजार नियामत" चाहै जैसी प्रियवस्तु क्योंनहो तन्दुरुस्ती के विगड़तेही वह अप्रिय मालूम होनेलगती है यहांतक तो है कि मनुष्य इस प्यारी से प्यारी देह से भी ग्लानि करके मृत्यु की वाट देखने लगता है अस्तु यह देह रक्षा आयुर्वेद के प्राचीन सदग्रन्थों में कहेहुये नियमों का पालन करने सेही होसकती हैं वे नियम जैसे पूर्णरूप से इस ग्रन्थ में दिये हैं किसी दूसरे ग्रन्थ में दर्शन को भी नहीं है। इसी ग्रन्थका आशय लेलेकर अथवा ज्योंके त्यों प्रकरणों को लेकर वहुतसे नवीन वैद्यों ने अपने२ नाम से ग्रन्थरचदिये हैं। वैद्यक के इस अखिल भंडार में चिकित्सा सम्वन्धी कोईभी ऐसा विषय नहीं छोड़ागया है जिससे दूसरे ग्रन्थों की आवश्यकता हो यदि पांचसौ रुपये की कीमत के अन्यग्रन्थ खरीदलो तौभी इसकी समता नही करसकते हैं क्योंकि यह तो स्वयम् धन्वन्तरिजी के मुखका उपदेश है. इसग्रन्थ की अनुक्रमणिका ९० पृष्ठ में है शारीरिक सम्वन्धी चित्र ४० पृष्ठ में हैं सम्पूर्णग्रन्थ १४८० पृष्ठ में समाप्त है कागज पुष्ट अक्षर वम्वई, विलायती कपड़े की सुनहरी अक्षरों की जिल्द मूल्य डाकव्यय सहित १०) है ॥

प्रतिष्ठापत्र

हिन्दीवङ्गवासी कलकत्ता

१९ जून सन् १८९६

यहग्रन्थ वैद्यक शास्त्र के प्राचीन प्रामाणिक तथा उत्तम बड़े ग्रन्थों में से है। इसके जाने विना वैद्य वैद्य नहीं होसकता वैद्यक चिकित्सा आदिका यह अगाध समुद्र है। इसके कर्त्ता सुश्रुताचार्य्य ने जो कुछ किया वह आजतक किसीसे नहीं हुआ। वैद्य के घरकी यहग्रन्थ परम निधि है। आजकल श्रीमथुरापुरी से यह भाषानुवाद सहित छपकर निकला है। अनुवादकर्त्ता श्रीकृष्णलालजी वैश्य हैं। इन्हीं के मित्र श्यामलालजी ने इसे मथुरामें छपवाकर प्रकाशित किया है। मूल्य १०) रुपया है।

पूरे ९० पृष्ठ में इसपुस्तक की अनुक्रमणिका है। इसके पीछे ४० पृष्ठ में वैद्यक के आचार्य्य ऋषिमुनियों का तथा कईप्रकार के वैद्यक शास्त्रसम्बन्धी यन्त्रों की तसवीरेंदी हैं यन्त्रों के वनाने की विधि इस देश से वहुतदिन से लुप्त सी होगई है, इसीसे इन यन्त्रों की शकल अङ्गरेजी यन्त्रों से कागजपर तराशी गई है। शायद कोई बुद्धिमान् चेष्टाकरेगा तो धातु से भी वनाकर दिखासकेगा। खैर कागजपर यन्त्रों की तसवीर की कल्पना पहिले वङ्गालियोंने की। पीछे यह और हुई। परन्तु इसमहान्ग्रन्थको सम्पूर्ण हिन्दी में अनुवाद सहित छापकर पहिले पहल प्रकाश करने का यश मथुरापुरीही के हिस्से में आयाहै इसके लिये लालाश्यामलालजी वधाई के पात्र हैं। इससे आगे मुख्य ग्रन्थ मूल संस्कृत और भाषा नुवाद सहित है। १३४० पृष्ठ में समाप्त हुआ है। इसप्रकारसाराग्रन्थ मिलझुलकर १४७० पृष्ठतक पहुंचता है। छापा कागज अच्छे हैं। जिल्द भी खासी वन्धी है। अनुवाद ठीक शब्दार्थ या भावार्थही करके वस नहीं की, वरञ्च मौके मौकेपर व्याख्या भी अनुवादकर्त्ता महाशय करते चलेआते हैं। यह व्याख्या संस्कृत जाननेवाले लोग तो अथ से अलग पहचानही लेंगे परन्तु कोरीभाषाका भरोसा रखनेवाले पृथक् करने में सहजही समर्थ न होंगे। वह उसे भी अनुवादके अन्तर्गत समझेंगे अनुवाद की भाषा समझने के योग्य है, अच्छी है जहांतहां नोटभी ग्रन्थकार ने लगाये हैं। वड़ा परिश्रम ग्रथकर्त्ता का सव विषयों को पृथक्२ करके उनकी तालिका वना देने में हुआ है। ९० पृष्ठकी लम्वी तालिका ग्रन्थके सव विषय अलग अलग दिखादेती है। यह न होती तौ इतने वड़े ग्रन्थ में कोईवात ढूंढ निकालना वड़ाही कठिन होता।

अनुवाद ग्रन्थकार ने ध्यानसे किया है। और यह अच्छाकिया है, कि जिनदवाओं के हिन्दी नाम में शकहै, उनकासंस्कृत नाम रहने दिया है। पुस्तक अच्छी हुई है। * *

राजस्थान समाचार

अजमेर १८ सितम्बर १८९७

भगवान धन्वन्तरिजी ने कई शिष्यों सहित सुश्रुत नामक शिष्य को आयुर्वेद का उपदेश किया और सुश्रुत ने फिर ग्रन्थ रचा उसका नाम सुश्रुत संहिता है जो इस समय तक आर्य्यों के आयुर्वेद का मुख्य ग्रन्थ माना जाता है। हमारे आयुर्वेदीय ग्रन्थों में अनेक ऐसी वातें लिखी हैं जो अब तक यूरोप के अत्यंत खोज करने वाले विद्वान भी नहीं जानसके। ऐसी अनेक वातें इस सुश्रुत संहिता में भी हैं। यह ग्रन्थ अत्यंत गंभीर और कठिन है इस से संस्कृत के उत्तम कोटिके विद्वानों के सिवाय दूसरे लोग इस से लाभ नहीं उठा सकते थे। इसी कारण से इस की भाषा टीका का होना अत्यन्त आवश्यक था सो इश्वर कृपा से मथुरानिवासी श्यामलालजी ने करवाकर बडा उपकार किया। यह ग्रन्थ हमारे पास समालोचना के लिये आया है।

इस ग्रन्थ में ऊपर मूल और नीचे पंडित श्री कृष्णलालजी की कीहुई भाषा है। मुम्बई के टाइप और उत्तम कागज़ में अच्छे ढंग से ग्रन्थ छपा है।

भाषान्तर शुद्ध हिन्दी भाषा में जैसा चाहिये वैसा किया है। केवल सीधा भाषांतर करने से प्रयोजन न खुले ऐसे स्थानों में भले प्रकार से अभिप्राय खोला गया है, वह भी ऐसा कि व्यर्थ ग्रन्थ नहीं बढाया गया। अनेक स्थलों पर मूल ग्रन्थ से विशेष बातें दूसरे ग्रन्थों से भी उठाकर रखदीं और उनका भाषांतर भी कर दिया। आवश्यक्तानुसार अनेक स्थानों में नोट अर्थात् टिप्पणी भी कीगई है। प्रयोजन यह कि इस बहुमूल्य ग्रन्थ का सब कार्य्य एक विद्वान पंडित के हाथसे हुआ है जो इस विषय को भी जानता है कहीं २ भाषांतर करने में असावधानी रही प्रतीत होती है परन्तु ऐसे भारी ग्रन्थ में होना सम्भव है। मूल बड़े अक्षरों में और भाषा टीका उस से थोड़े छोटे अक्षरों में है।

ग्रन्थ के आदि में इस से सम्बन्ध रखने वाले चित्र दिये हैं जिन में डाक्टरी चित्रोंसे सहायता ली जान पड़ती है। यह कहना कठिन है कि ये चित्र सुश्रुतके कथन से कितने मिलते हैं। आदि में बहुत बड़ी और सविस्तर सूची दी गई है जिस में सब बातों के निकालने में बड़ी सहायता मिले। विलायतीकपड़े की स्वर्णाक्षर सहित उत्तम जिल्द बन्धी है। ग्रन्थ सब प्रकार से उत्तम और प्रत्येक के संग्रह करने योग्य है। मोल १०) रुपये।

"मित्र"

कामठी १८ अगस्त सन् १८९६ ई०

यह वैद्यक के श्रेष्ठ तथा बड़े ग्रंथों में से प्रथम श्रेणी का परम पुनीत प्राचीन और प्रमाणीक बड़ाग्रन्थ है जिसके कर्त्ता महर्षिवर्य श्री सुश्रुताचार्य्यजी हैं, साम्प्रति इसको अथर्व वेदका उपांग रूप आयुर्वेद भी कहसकते हैं। जैसे इसग्रन्थ के पढ़ने से वैद्य वैद्यविद्या में प्रवीण हो सर्वत्र प्रतिष्ठा पाते हैं वैसे अन्य वैद्यक ग्रन्थों के पढ़ने से नहीं, क्योंकि यह आर्ष ग्रन्थ है इसमें जो कुछ वैद्यक विषय में लिखागया है वह सब सत्यही है, आजतक यह ग्रन्थ संस्कृत में होने से सर्वसाधारणों के समझ में आना अत्यन्त कठिनथा परन्तु अब इसपरलोकोपकारार्थ मथुरा निवासी श्रीकृष्णलालजी ने ऐसे उत्तम प्रकार से भाषानुवाद करदिया कि जिससे इस ग्रंथ को सर्वसाधारण भी भलीभांति जानसकें, इन्हीं के मित्र श्यामलालजी ने इसे बंबई के मनोहर टाइपसे स्वेत चिकने पुष्ट कागज पर मथुरा में छपवाकर प्रसिद्ध किया है इसपर विलायती कपड़े की सुनहरी अक्षरों सहित सुन्दर जिल्द बंधी है मूल्यडाकव्यय सहित १०) रुपये हैं, प्रथम इस ग्रंथ की अनुक्रमणिका ९० पृष्ठ तक है इस अनुक्रमणिका में अनुवाद कर्त्ता ने बड़े परिश्रम के साथ ग्रंथ के सब विषय पृथक् २

प्रकार से दिखाये हैं कि जिससे इतने बड़े ग्रंथमें से भी जो विषय निकालना चाहो वही चट निकलसकता है फिर वैद्यकाचार्य्य ब्रह्मादि देवर्षियों के तथा वैद्यक शास्त्रसंबन्धी यन्त्रों के और शारीरिक के ऐसे ऐसे सैकड़ों विचित्र चित्र दिये हैं कि जिनके देखनेमात्र से ही शारीरिक का तथा शस्त्रक्रियाका बहुत कुछ ज्ञान होसकता है इसके आगे १३२१ पृष्ठ में मुख्यग्रंथ, मूल संस्कृत और भाषानुवाद सहित समाप्त कियागया है फिर ३ पृष्ठों में सुश्रुत संहिता का परिशिष्ट भागदिया है जिसमें सुश्रुतोक्त एक सहस्र १२० रोगों की गणना और वातपित्त कफ इनतीनों दोषों के ६२ भेद श्लोकोंद्वारा प्रदर्शित कियेगये हैं अनन्तर १४ पृष्ठों में कठिन शब्दों के आकारादि क्रम से भाषा तथा अंगरेजी नामान्तर दियेगये हैं. एवं यह ग्रंथ समस्त मिलाने से १४७० पृष्ठतक पहुंचता है, इसग्रंथपर ऐसा सरल और शुद्ध भाषानुवाद आजतक किसी ने नहीं किया और किसी ने ऐसे सर्वोपयोगी ग्रंथ को एकसाथ छापकर प्रकाशित करने का साहस भी न किया इसलिये श्री कृष्णलालजी तथा इनके मित्र श्यामलालजी को कोटिशः धन्यवाद तथाउज्वल कीर्ति के पात्र समझना चाहिये, इस ग्रंथ का भाषानुवाद तो यथार्थ में प्रशंसनीय है ही परन्तु इसमें जो कहीं २ नोट दिये गये हैं वे भी बड़े उपयोगी हैं विशेष लिखने से तो प्रशंसा पाईजाती है परन्तु अनुवाद कर्त्ता ने अनुवाद के अन्तर्गत जो कुछ लिखा है वह सब प्रकरणानुकूल है समस्त वैद्य तथा विद्यानुरागी विद्वज्जनों को उचित है कि वैद्यक के और सौ ग्रंथ न खरीदकर इस एकही ग्रन्थ को अवश्य खरीदें ।

पुस्तक मिलने का पता.

लाला श्याम लाल
श्यामकाशी प्रेस
(मथुरा)

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
लक्ष्मीवेंकटेश्वर छापाखाना
कल्याण (मुम्बई)